REFRENCE

हिंदी विश्व कोष

भाग - 16

16

हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्तवारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

———※———

षोड़श भाग

[सानन्द सिद्धान्तवागीश—मर्य्यादाबन्ध]

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XVI.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prâchyavidyâmahârnava,

Siddhânta-vârid, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintâmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Bangiya Sâhitya Parishad and Kayastha Patrika; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism; Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society, Associate Member of the Asiatic Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by B. Basu. at the Visvakosha Press.

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta

1928.

हिन्दी

विश्वकोष

षोड़श भाग

भवानन्द सिद्धान्तवागीश—नवद्वीपवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक और वैयाकरण। आप ख्यातनामा पण्डित विद्यानिवासके पिता और रुद्रतर्कवागीशके पितामह थे। भट्टाचार्य शतावधानं राघवेन्द्र और जगदीश भट्टाचार्य आपके छात्र थे। ये ईसाकी १६वीं शताब्दीके शेष भागमें विद्यमान थे।

आपने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है ; जैसे—तत्त्वचिन्तामणि व्याख्या, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति गूढ़ार्थप्रकाशिका भवानन्दी वा शब्दार्थ सारमञ्जरी, अनुमानदीधिति सारमञ्जरी, अवयव, अवयवग्रंथरहस्य, ऊ ातवादटिप्पन, उदाहरणलक्षणटीका, उपनयनलक्षणटीका उपाधिसिधान्तग्रंथ टीका, कारकवाद, कारकाद्यर्थनिर्णय, कारकार्थ, कारणवादार्थ, केवलान्वयिग्रंथ-टीका, तृतीय चक्रवर्त्तिलक्षणटीका, तृतीय प्रगल्भलक्षण-टीका, दशलकार विचार, द्वितीय चक्रवर्त्तिलक्षणटीका, द्वितीय स्वलक्षणटीका, पक्षता ग्रन्थरहस्य; पक्षतापूर्णपक्षग्रंथटीका, परामर्शग्रंथरहस्य, पुच्छलक्षण टीका, पूर्णपक्षग्रंथ टीका, प्रतिज्ञालक्षणटीका, प्रथमप्रगल्भलक्षण टीका, प्रामाण्यवादरहस्य, वादबुद्धिविचार, मिश्रलक्षण, लड़ार्थवाद, व्याप्तिवाद, सङ्गतिलक्षण, सत्प्रतिपक्षपूर्णपक्षग्रंथटीका, सत्प्रतिपक्षसिद्धांतग्रंथटीका, सव्यभिचारसिद्धांतग्रंथटीका, सहचार, सामान्यनिरुक्ति टीका, सिद्धांतलक्षणटीका और हेत्वाभास आदि।

भवानी (सं० स्त्री०) भवस्य भार्या भव (इन्द्रवरुणभवशर्वेति पा ४।१।४९) इति स्त्रियां ङीष्, ततः आनुक्। भव पत्नी, दुर्गा।

भवानी—मन्द्राजप्रदेशके नीलगिरि पर्वतकी कुन्दशाखावाही एक नदी। यह अक्षा० ११° ६′ उ० तथा देशा० ७६° ३७′ पू० समतल क्षेत्र पर गिर कर पूर्वकी ओर वह गई है। बादमें प्रायः १०५ मील स्थान तै कर भवानी-नगरमें कावेरी नदीके साथ मिली है। शाखानदी इसके कलेवरको बढ़ाती है। कावेरी-सङ्गम स्थानके भवानी नगरको छोड़ कर इसके किनारे मेट्टु पालयम, सत्यमङ्गलम्, अट्टानि, देनैकङ्कोटिया आदि कई एक प्रधान नगर अवस्थित हैं।

भवानी—१ मन्द्राजप्रदेशके कोयम्बतूर जिलेके अन्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० ११° २३′ से १२° ५७′ उ० तथा देशा० ७७° ५१′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७१५ वर्गमील है। इसके पूर्व और दक्षिणमें कावेरी तथा भवानी नदी बहती है। इसमें इसी नामका एक शहर

और ६१ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। यहां कई जगह प्राचीन शिव-मन्दिर और दुर्गादिका ध्वंसावशेष देखा जाता है। इसके उत्तर पश्चिम पार्वतीय वन्यप्रदेशमें वन्यजातिका वास है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० ११° २७′ उ० तथा देशा० ७७° ४०′ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ८६३७ है। पहले यह स्थान मदुराराजके किसी सामन्तके अधिकारमें था। यहां कावेरी और भवानी नदीके ऊपर पुल बना हुआ है। यहां सङ्गमेश्वरका विख्यात शिव-मन्दिर विद्यमान है। प्रति वर्षके कार्त्तिक मासमें बहुतसे यात्री इकट्ठे होते हैं। इसके समीप ही एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष देखा जाता है। शहरमें सुन्दर गलीचा और सूती कपड़े तैयार होते हैं।

भवानी—स्वनामख्याता हिन्दूदेवी, हिमाचलकी कन्या और महादेवकी स्त्री। शक्तिरूपणी भवानीकी शान्त और भयावह भेदसे दो प्रकारकी प्रकृति है। बहुधा इनकी शेषोक्त प्रकृतिकी ही पूजा होती है। शान्त प्रकृतिमें ये उमा, गौरी, पार्वती, हेमवती, जगन्माता और भवानी नामसे तथा भीमा प्रकृतिमें दुर्गा, काली, चण्डी, चण्डिका और भैरवी नामसे प्रसिद्ध है।

दक्षयज्ञत्यक्तप्राण सतीदेह विष्णुके द्वारा छिन्न होने पर उनके अङ्गविशेषसे एक एक देवीपीठ स्थापित हुआ था।

'स्थानेश्वरे भवानी तु विल्वके विल्वपत्रिका' (मत्स्यपु०)

चैत्रशुक्लाष्टमीको भवानीका जन्म हुआ था। इस उद्देशसे उस दिन भवानीव्रत किया जाता है। (व्रतप्रकाश)

सेवकसेविकाओंकी बुद्धिशक्ति और प्रकृतिके अनुसार हिंदूकी भवानीदेवी नानारूपमें पूजित होती हैं। हिंदूकी भवानीदेवीके साथ मिश्रदेशीय आइसिस और ग्रीकदेवी जुमे, हिकेट, पोलस और भिनसकी सम्पूर्ण सदृशता देखी जाती है।

पार्वतीरूपमें इन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरको प्रसव किया है अर्थात् अपनी शक्तिको त्रिधा करके ये उनकी शक्तिरूपमें विराजित हैं। शैवगण लिङ्गरूपी शिव तथा योनिरूपिणी भवानीकी युगलमूर्त्तिकी पूजा करते हैं।

नेपाल-राजधानी भातगांवनगरमें महाधूमधामसे भवानीपूजा-पद्धति बहुल परिमाणमें प्रचलित है। महाराष्ट्रोंके अधिकारकालमें भवानी-पूजाका विशेष प्रचार था। यहांका तुलजाभवानीका मन्दिर जनसाधारणके निकट तीर्थक्षेत्रमें गिना जाता है। समस्त राजपूतानेमें विशेषतः मेवारमें महासमारोहसे नौ दिन तक भवानीकी पूजा होती है। महाराणा अपने प्रधान आमात्य और सामन्त राजाओंसे परिवृत्त हो इस पूजामें शामिल होते हैं।

कहते हैं, कि भवानीसे आदिष्ट हो कर महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीने विजयपुरके सेनापति अफजल खाँको 'भवानी' नामक खड्गसे संहार किया था। शिवाजीने देवीदत्त उस अस्त्रकी अर्चनाके लिये अपने राजमहलमें एक मन्दिर बनवाया था। अङ्गरेज अभ्युदयके प्राक्काल तक महाराष्ट्रपतिकी संतान उसकी पूजा करती थीं।

भवानी—नाटोर-राजकुललक्ष्मी, राजा रामकान्तकी महिषी। 'रानी भवानी' नामसे इनकी बंगालमें बहुत प्रसिद्धि है। ये साक्षात् अन्नपूर्णा रूपिणी ब्राह्मण-प्रतिपालिनी और दीनदुःखियोंकी जननी थीं। वङ्गभूमिमें हिन्दूधर्म और ब्राह्मण्यरक्षा तथा अपने स्नेहाञ्चलसे दीनदरिद्रोंकी अश्रुधारा पोंछनेके लिए आप वास्तवमें भवानीरूपमें ही अवतीर्ण हुई थीं। उस समय उत्तर-पश्चिम वङ्गमें ऐसा कोई भी ब्राह्मण न था, जिसने रानी भवानी द्वारा दी हुई भूसम्पत्ति वा आर्थिक सहायता न ग्रहण की हो। वङ्गदेशसे ले कर सुदूर काशीधाम तक आपकी अक्षय पुण्यकीर्त्तियां उन्हींकी महिमा घोषित कर रही हैं। मुर्शिदाबादके समीपवर्ती बड़नगरमें अब भी उनकी अतुलनीय देवभक्तिका निदर्शन पाया जाता है। भागीरथीके तीर पर अपने साधु-जीवनको अतिवाहित करनेके उद्देशसे आपने अपनी प्रियतर वास-भूमि बड़नगरमें ही जीवनका शेषभाग विताया था। यहीं पर द्रवमयी गङ्गाके पुण्यमय सलिलमें आपका जीवनप्रदीप सदाके लिए निर्वापित हुआ था।

बड़नगरके साथ रानीभवानीकी जीवनीका अधिक सम्बन्ध है। बड़नगर उनके अतिशय आदरकी चीज थी, इसलिए पहले उसका थोड़ासा वर्णन किया जाता है। उन्होंने इस स्थानको देव मन्दिरोंसे परिपूर्ण कर

वाराणसीके समतुल्य बना दिया था। अब वड़नगरने अरण्य-रूप धारण कर लिया है, फिर भी सर्वत्र एक न एक देवमन्दिर नयनगोचर हुआ करता है। महारानी भवानी द्वारा स्थापित वहांकी भवानीश्वर शिव मूर्त्ति और राजराजेश्वराकी प्रतिमा वाराणसीके विश्वेश्वर और अन्नपूर्णासे किसी प्रकार कम नहीं कही जा सकती। भवानीकी पुण्यवती कन्या तारादेवी द्वारा स्थापित गोपाल मूर्त्ति, विन्दुमाधव और अष्टभुज गणेशने दुण्ढिराजका स्थान अधिकार किया है। इसके सिवा वहां और भी सैकड़ों देवालय विद्यमान हैं, उसे वङ्गालका एक तीर्थ-स्थान समझना चाहिए।

नाटोर-राजवंशके प्रतिष्ठाता राय रायां रघुनन्दनने मुर्शिदावाद नवाव सरकारके यहां नायव कानून-गोका कार्य करते हुए अपने भ्राता रामजीवनके नामसे जो जमींदारियां प्राप्त की थीं, रामजीवनकी पुत्रवधू रामकान्तकी पत्नी भारत विख्याता रानी भवानीने उनका सद्व्यय कर पुण्यश्लोक नाम अर्जन किया है। नाटोर देखो।

वं० सं० ११५३में राजा रामकान्तके परलोक सिधारने पर, राजवधू रानी भवानी उनकी समस्त सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी हुईं। उस समय उनकी सारी भू-सम्पत्तिसे डेढ़ करोड़ रुपया कर वसूल होता था, जिसमेंसे करीब १० लाख रुपये सरकारको राजस्व स्वरूप दिये जाते थे।*

रानी भवानी राजशाही जिलेके अन्तःपाती छातिम-ग्राम-निवासी आत्माराम चौधरीकी कन्या थीं, उनकी माताका नाम कस्तूरीदेवी था ¶। नाटोर-राजसरकारके विश्वस्त कर्मचारी दयारामके × उद्योगसे यह अलोक-सामान्या ब्राह्मणकुमारी राज-रानी हुई थीं। रामकान्तके वयःप्राप्त होने तथा जमींदारीके शासन और यथारीति राजस्व प्रदानमें असमर्थ होने पर नवाव अलीवर्दी खांने देवीप्रसाद पर राजशाही जमींदारीका भार अर्पण किया। दीवान दयाराम वालिका भवानी पर ब[हु]त ही स्नेह करते थे। उन्हें साथ ले कर राजा और रानी मुर्शिदावाद आ कर जगतसेठ फतेचंदके शरणापन्न हुए। जगतसेठके अनुरोधसे उनका राज्य वापस दे दिया गया था। स्वामीका लोकान्तर हो जाने पर रानी भवानीने अपने हाथमें राज्यभार ले लिया था। एकमात्र दयाराम ही उनके परामर्शदाता और राजकार्य-परिचालक थे।

अल्पावस्थामें वैधव्यदशा प्राप्त होने पर उन्होंने हिंदू रमणीके लिए आवश्यक कर्तव्य ब्रह्मचर्यका अवलम्वन कर जीवनका शेष भाग बड़े आनन्दसे विताया था। उस समय आप देवसेवा, ब्राह्मणसेवा, दीन हीन पालन, जलाशय-खनन और वृक्ष प्रतिष्ठादि पुण्यकार्योंका अनुष्ठान किया करती थीं, जिससे जनसाधारण उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते थे। तारा नामक उनकी एक कन्या थी। यशोहर जिलेके अन्तर्गत खुरजाग्राम * निवासी रघुनाथ लाहिड़ी † नामक एक ब्राह्मणकुमारके साथ तारादेवीका विवाह हुआ था। परन्तु रघुनाथ थोड़ी उमरमें ही ताराको चिरब्रह्मचारिणी और रानी देवीके वक्षस्थल पर पहाड़ रख कर स्वर्गधामको सिधार गये। अगत्या रानी भवानीको दत्तकपुत्र ग्रहण करना पड़ा। यह गृहीत पुत्र ही वंगालके

---

* Holwell's Interesting Historical Events p. 192

¶ मतभेद पाया जाता है, कि इनकी माताका नाम जयदुर्गा था। उन्होंने मातृपूजाके लिए छातिनाग्राममें अपने जन्मस्थान अर्थात् सूतिकागृहके ऊपर मंदिर बनवा कर वहां एक सुवर्णमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। अद्यापि जयदुर्गाकी पूजा प्रचलित है। परंतु अभी तक बड़नगरस्थक स्तूरीश्वर-शिवमूर्त्ति कस्तूरी-देवीके नामकी घोषणा कर रही है।

× दीघापातिया राजवंशके आदिपुरुष। भवानीके विवाह-पत्रमें इनके हस्ताक्षर हैं।

* किन्हीके मतसे यह ग्राम राजशाही जिलेके नाटोरके पास है।

† बाहारबंदकी अधिकारिणी रघुनाथरायकी पत्नी रानी सत्यवती भवानीकी मातृष्वसा थीं। वे अन्तिम दशामें काशीवासिनी हो कर उक्त सम्पत्ति अपने भगिनीपुत्रको दे गई थीं। रामकांतकी मृत्युके बाद रानी भवानीने वह सम्पत्ति अपने जामाता रघुनाथको दे दी। रघुनाथकी मृत्युके बाद वह कुछ समयके लिए राजा गौरीप्रसादके पास और बादमें रानी भवानीके हाथ आई।

साधक-चूड़ामणि राजयोगी रामकृष्ण हैं। रामकृष्णके वयःप्राप्त होने पर रानी उनके हाथमें जमींदारीका भार सौंप दिया और स्वयं गङ्गातीरमें जा कर रहने लगीं। पहले कह चुके हैं कि, बड़नगरमें उनका निवास-भवन था, बीच-बीचमें वे वहां जा कर भी रहती थीं। पीछे वे सांसारिक विप्लवोंसे मुक्त हो कर देव सेवामें लीन हो गईं। उनके प्रयत्नसे बड़नगर देवमन्दरादिसे परिपूर्ण हो कर काशी-तुल्य हो गया था। माताके साथ तारादेवी * भी गङ्गावासिनी हो गई थीं।

रानी भवानीकी समस्त कीर्त्तिओंकी एक धारावाहिक तालिका बनाना कठिन है। अब भी काशी गया आदि तीर्थस्थानोंमें उनकी अक्षय कीर्त्तियां देदीप्यमान हैं। बड़नगरमें रह कर वे नित्य प्रति जो पुण्य कार्य करती थीं, उनका स्मरण करने मात्रसे चमत्कृत होना पड़ता है। क्षुद्र रमणी-हृदयमें इतना बल और अध्यवसाय रह सकता है, यह बात धारणाके परे है।

प्रतिदिन चार दण्ड रात्रि रहते रानी भवानी शय्या त्याग कर जप करने बैठ जाती थीं। अर्धदण्ड रात्रि रहते जप समाप्त करके वे अपने हाथसे पुष्प-चयनार्थ उद्यानमें प्रवेश करती थीं। अन्धकार रात्रिमें प्रकाश करनेके लिए उनके आगे पीछे नौकर चाकर मशाल लिये फिरते थे। पुष्पचयनके बाद प्रातःकाल ही वे गङ्गास्नान करती थीं और दोनों सन्ध्या गङ्गातीर पर बैठ कर जप, गङ्गा-पूजा और शिवपूजा करती थीं। उसके बाद प्रत्येक देवालयमें पुष्पाञ्जलि दे कर, पुराण-पाठ वा श्रवण, शिव-पूजा और इष्टपूजामें लग जाती थीं। इस प्रकार करीब दोपहर हो जाता था। उसके बाद, अपने हाथसे भोजन बना कर दस ब्राह्मणोंको जिमाती थीं। फिर परिवारस्थ अन्य ब्राह्मणोंके भोजनकी व्यवस्था कर स्वयं ढाई पहर बीते हविष्यान्न ग्रहण करती थीं। तदन्तर दीवान दफ्तर-में कुशासन पर बैठ कर मुखशुद्धि पूर्वक कर्मचारीगणको राजकार्यकी आज्ञा देती थीं। कर्मचारीगण उनके आदेशानुसार आज्ञाएं लिख लेते थे। तीसरे पहर वे फिर बङ्गला भाषामें पुराणपाठ श्रवण करती थीं। दो दण्ड दिन रहते हुए उनका पुराण श्रवण समाप्त होता था। उस समय कर्मचारीगण उनके आदेशानुसार लिखी हुई आज्ञाओं पर हस्ताक्षर करा ले जाते थे। सन्ध्याके समय पुनः गङ्गादर्शन और गङ्गाके समीप घृतप्रदीप-प्रदानके उपरान्त वास-भवनमें जा कर चार दण्ड तक जप करती थीं। पश्चात् जल ग्रहण करके दफ्तर दीवानमें जा कर राजकार्यका पर्यवेक्षण कर यथा-यथ आज्ञा देती थीं। रात्रि एक पहरके समय वे प्रजा-जनोंकी प्रार्थना सुन कर उसका विचार करती थीं। अंतमें पौरजन कौन किस प्रकार हैं इस बातका तत्त्वानुसंधान कर रात्रि डेढ़ पहरके समय विश्रमार्थ शयन करती थीं।

रानी भवानीने बड़नगर और उसके निकटवर्ती देवालयोंके लिए प्रायः एक लाख रुपयेकी वृत्ति निर्दिष्ट कर दी थी, जो देवकार्यमें ही व्ययित होती थी। वे उसमेंसे एक दमड़ी भी अपने काममें न लाती थीं। उन्होंने अपने लिए और सहचारी विधवा-मण्डलीके लिए गवर्मेण्टसे वृत्ति पानेकी प्रार्थना की थी। ऐसे अतुल ऐश्वर्यकी अधिकारिणी हो कर स्वार्थत्याग-पूर्वक, अङ्गरेजोंसे वृत्ति-भिक्षा करना उनके कठोर ब्रह्मचर्यकी पराकाष्ठा है।

इस प्रकार कठोर ब्रह्मचर्य अवलम्बन-पूर्वक देव-ब्राह्मण और दीनजनोंकी सेवामें आत्मजीवन उत्सर्ग कर रानी भवानीने ७९ वर्षकी अवस्थामें गङ्गातीर पर देहत्याग किया। वर्तमान समयमें राणी भवानी हिन्दू-विधवाका आदर्श-चरित्र दिखा गई हैं, इसमें सन्देह नहीं।

रानी भवानीके जीवनकालमें ही राजा रामकृष्णकी मृत्यु हो गई; इसलिए उनके पुत्र विश्वनाथ सम्पत्तिके अधिकारी हुए। विश्वनाथ वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो गये थे, इससे उनकी महिषी रानी जयमणि रानी भवानीके

---

* प्रवाद है, कि—भागीरथीनदीमें नौका-विहार करते समय सिराजने प्रासाद पर आलुलायितकेशा रूपलावण्यवती ताराको देखा और वे उस पर मुग्ध हो गये। उन्होंने ताराको हरण करनेके अभिप्रायसे बड़नगरको कई आदमी भेजे। राणी भवानीको यह दुःसंवाद मिलते ही उन्होंने उस पारके साधकबागमें मस्तराम बाबाजीको समाचार भेजा। बाबाजीने सिराजके मनोरथको व्यर्थ करनेके लिए अनेक वैष्णवोंको भेजा था। कई कारणोंसे सिराजके नाम यह प्रवाद असत्य ठहरता है।

निकट जा कर रहने लगी थीं। भवानी जयमणिको समस्त देवोत्तर सम्पति दानपत्र-सूत्रमें अर्पण कर गई*। इसके सिवा उनके नामसे एक वृत्ति थी, जो अब लुप्त हो गई है।

काशीमें रानी भवानी द्वारा स्थापित भवानिश्वर-मन्दिर है, उसके शिलालेखमें लिखा है कि --

"वाणव्याहृतिरागेन्दुसमिते शकवत्सरे।
निवासनगरे श्रीमद्विश्वनाथस्य सन्निधौ॥
धरामरेन्द्र-वारेन्द्र-गौड़भूमीन्द्र भामिनी।
निर्ममे श्रीभवानी श्रीभवानीश्वर मन्दिरम्॥"

इससे मालूम होता है, कि काशीका भवानीश्वर मन्दिर (शक सं० १६७५में) स्थापित हुआ था। प्रवाद है; कि उसी एक ही समयमें बड़नगरमें भी भवानीश्वर-मन्दिर निर्मित हुआ था। इसके सिवा बड़नगरमें राज-राजेश्वरी-मन्दिर, करुणामयी-मन्दिर, चार बङ्गला मन्दिर, जोड़बङ्गला आदि उन्होंने प्रतिष्ठित किये थे। कितने ही प्रधान प्रधान देव-मन्दिर अब भी भग्नावस्थामें विद्यमान हैं। रानी भवानी राज-प्रासादके नीचेवाले कमरोंमें रहती थीं। अब वह राजप्रासाद भग्नावस्थामें पड़ा है। उसके दक्षिणमें दीवानखाना और दिवानखानाके दक्षिणमें रानी भवानीका ब्राह्मण-भोजनका स्थान है। वहां पर वे ब्राह्मणोंके लिए स्वयं अपने हाथसे भोजन बनाती थीं।

भवानी-कवच (सं० क्लो०) पापग्रहादिके प्रकोपको निवारण करनेवाला देवीके नामका एक कवच। (रुद्रयामल)

भवानीदास—पञ्जाब-केशरी महाराज रणजित्‌सिंहके दीवान और सम्राट् अहमदशाहके मन्त्री ठाकुरदासके पुत्र। १८०८ ई०में मुसलमान राजा शाह सुजाकी सैनिकवृत्ति छोड़ देने पर, महाराज रणजित्‌सिंहने आपको अपना दीवान नियुक्त किया। राजस्व-सम्बन्धी कार्यमें आप विलक्षण पारदर्शिता रखते थे। महाराजके राजस्व और सेना विभागके आयव्ययका संस्कार कर आपने यथेष्ट कृतित्वका परिचय दिया था। १८०९ ई०में ये सेना ले कर जम्बू विजयके लिए गए। एक मास अवरोधके बाद जम्बू अधिकार कर इन्होंने वहांके विद्रोही सरदार देदूको राज्यसे बहिष्कृत कर दिया। १८१३ ई०में हरिपुरका पार्वत्य प्रदेश अधिकृत कर आप रणजित्‌सिंह द्वारा विशेष सम्मानित हुए थे। बादमें आप मुलतान, पेशावर और युसुफजै युद्धमें जयी हुए थे। कोषाध्यक्ष मिश्र बेलीराम द्वारा आप पर खजानेकी चोरीका अभियोग लगा गया, जिससे क्रुद्ध हो कर महाराज रणजित् सिंहने सभामें आपको म्यान-सहित तलवार मारी और एक लाख रुपये जुर्माना किया था। उसके बाद रणजित् सिंहने उन्हें पार्वत्यप्रदेशमें एक नौकरी दे कर निर्वासित कर दिया। परन्तु राजकार्यमें उनकी विशेष पारदर्शिता और कर्मदक्षता देख कर महाराजने उन्हें फिर लाहोर बुला लिया। १८३४ ई०में भवानीदासकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

भवानीदास (सं० पु०) गड़ादेशके एक अधिपति।

भवानीदास चक्रवर्त्ती—ज्योतिषाङ्कुरके प्रणेता।

भवानीपति (सं० पु०) भवान्याः पतिः ६-तत्। महादेव। काव्यादिमें भवानीपति इस पदका प्रयोग करनेसे दोष होता है।

भवानीपाटना—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलेके अधीन कालाहण्डी सामन्तराज्यका प्रधान नगर।

भवानीपाठक—वारेन्द्र भूमिवासी एक ब्राह्मण सन्तान। यह दस्यु-सरदार कह कर जनसाधारणमें परिचित था। बचपनमें भलीभांति शास्त्रचर्चा करके ये जन्मभूमिके दुःखसे कातर हो गया। मुसलमानीशासनसे स्वदेशीय हीनदुःखी प्रजावर्गका क्लेश दूर करनेके लिये यह छद्मवेशी संन्यासीसेनाकी सहायतासे मुसलमानोंका राजस्व अपहरण करता था और उस प्रजारक्तको प्रजाके हृदयमें ढाल देता था। अंगरेजी-शासनके प्रारम्भमें भवानी और देवीने रङ्गपुर अञ्चलमें जो अपना प्रभुत्व फैलाया

* पहले ही कहा जा चुका है, कि रानी भवानी देवोत्तर सम्पत्ति जयमणिको दे गई थीं। उस दानपत्रके लिखित प्रणाली-के दोषसे जयमणिके पोष्यपुत्रके साथ नाटोर-राजवंशका मुकदमा चला था। विचार-निष्पत्तिके बाद उक्त सम्पत्ति तीन भागोंमें विभक्त हो गई। नाटोर-वंशीय राजराजेश्वरीके, बड़नगरके कुमार-गण तारादेवी द्वारा प्रतिष्ठित गोपालके और मठवाटीकेपुरोहितगण शिवलिङ्गके सेवक निर्दिष्ट हुए हैं।

था, वह इतिहासमें वर्णित है। यह घटना इतिहासमें १७७३ ई० का संन्यासी-विद्रोह नामसे मशहूर है।

प्रायः ५० हजार संन्यासी अनुचरोंसे परिवृत पाठकने प्रखर वेगवाली त्रिस्रोताकी जलराशि और तीरभूमिको आलोड़ित करके अंगरेजोंके हृदयमें आतङ्क उपस्थित कर दिया था। पाठकके एक और साथी था जिसका नाम मजनूशाह था। शास्त्रकुशली पाठकके दूरदर्शी परामर्शने देवो और मजनूके कराल कृपाणकी सहयोगिता पाई थी। इस समय एक तो देश दुर्भिक्षसे प्रपीड़ित था, दूसरे हेष्टिंस वहादुरका अमानुषिक अत्याचार। अनाहारसे प्रजा हाहाकार कर रही थी, पर कठोरतापूर्वक प्रजाके रक्तशोषणमें हेष्टिंस वहादुर तिलमात्र भी वञ्चित नहीं होते थे। यह सब देख कर निरोह शास्त्राध्यायो ब्राह्मणका शोणित उत्तप्त हो उठा। उसने अन्नवस्त्रहीन दुःखो प्रजाको 'राजाके दोषसे प्रजाका कष्ट' दिखला कर उत्तेजित किया। धीरे धीरे वे सबके सब दलपुष्ट हो कर विद्रोही-दलमें परिणत हुए। किन्तु अङ्गरेजोंकी कमानोंके सामने तलवार, तीर आदि ले कर बंगाली सेना कब तक ठहर सकती थी। जब वे अङ्गरेजोंका बल अधिक देखते थे, तब निविड़ अरण्यमें छिप कर आत्मरक्षा करते थे। अच्छा मौका देख कर हो वे अङ्गरेजों पर टूट पड़ते और उन्हें अच्छी शास्ति देते थे। इस प्रकार सेनापति टामस ससैन्य विद्रोहीके हाथसे यमपुर सिधारे। उक्त तीन व्यक्तियोंके उपद्रवसे अस्थिर हो कर रङ्गपुरके तत्कालीन कलेक्टर गुडलैंड साहबने लेफटेनाण्ट ब्रेननको एक दल सिपाहीके साथ उन लोगोंके विरुद्ध भेजा। बहारवन्दमें ही भवानीपाठकके साथ ब्रेननका युद्ध छिड़ा। इस युद्धमें संन्यासियोंकी हार नहीं होने पर भी परिणामदर्शी भवानीपाठकने भावी अमङ्गलकी आशङ्का करके आत्मसमर्पण किया *।

भवानीपुर—१ कलकत्तेके दक्षिणांशवर्त्ती एक शहर। यह अक्षा० ११° ३२' उ० तथा देशा० ७८° २३' पू० आदिगङ्गाके किनारे अवस्थित है। इसके पास ही अलीपुरकी पशुशाला और छोटे लाटका प्रासाद अवस्थित है। २ वारेन्द्रभूमके नाटोरसे तीन योजन उत्तरमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां सतीदेवीका अंगुलिपीठ है। (देशावली)

भवानीप्रसाद—एक ग्रन्थकार। इन्होंने पूजामालिका और सारचिन्तामणि नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

भवानीवल्लभ (सं० पु०) शिव।

भवानीशङ्कर—१ शुक्ल भूदेवकृत धर्मविजय नामकके टीकाकर्त्ता। २ चेतसिंहकल्पद्रुमतन्त्र, चन्द्रचिंतामणि, स्मृतिचरण और स्वप्रकाशताविचार नामक चार ग्रन्थके प्रणेता।

भवानीशङ्कर सेतुपति—रामनादके सेतुवंशीय एक राजा। इन्होंने १८५४ १७२८ ई० तक राज्यशासन किया था। सेतुपतिवंश देखो।

भवान्तकृत् (सं० पु०) अंतं करोतीति कृ-क्विप्, भवस्य जन्मनः अन्तकृत् ६ तत्। वेधा, ब्रह्मा। ब्रह्माको निद्रितावस्थामें समस्त जगत् ध्वंस होता है। २ संसारनाशक के ज्ञान। 'ज्ञानान्मुक्तिः।' ज्ञान होनेसे ही मुक्ति होती है, फिर उसको जन्ममृत्यु कुछ भी नहीं होती।

भवाभीष्ट (सं० पु०) भवस्य अभीष्टः। १ गुग्गुल। भवे अभीष्टः ७-तत्। (त्रि०) २ भावमें ईप्सित।

भवायना (सं० पु०) शिवका उपासक या भक्त, शैव।

भवायना (सं० स्त्री०) भवःशिव एव अयनमाश्रयस्थलमस्याः, शिवशिरसि स्थितत्वादस्यास्तथात्वं। गङ्गा। कोई कोई गौरादित्व-प्रयुक्त ङीप् करके 'भवायनी' यह पद निष्पन्न करते हैं। (त्रि०) २ शिवतत्पर, शैव।

भवास्य—चातुर्मास्य-प्रयोगके प्रणेता।

भविक (सं० क्ली०) भवः प्रभावः ऐश्वर्यादिकमित्यर्थं उत्पाद्यत्वेनास्त्यस्येति ठन्। मङ्गल। (त्रि०) २ मङ्गलयुक्त।

भविचारिन् (सं० त्रि०) आकाशचारी।

भवित (सं० त्रि०) भवो मङ्गलं जातोऽस्येति तारकादित्वादितच्। अतीतोत्पत्तिक, जो हो चुका हो।

भवितव्य (सं० त्रि०) भविष्यकाले कर्मणि भावे शक्यार्हे-

---

* सुनते हैं, कि वृटिश सरकार उन्हें कालापानीकी सजा दी थी। फिर किसी किसीका कहना है, कि ब्रेननके युद्धमें भवानीपाठक और उनके अधीनस्थ तीन सेनापति निहत, आठ आहत और ४२ बन्दी हुए थे।

प्रेष्यानुज्ञाप्राप्तकालार्थे च भू-धातोस्तव्यः । भवनीय, अवश्य होनेवाली बात, होनहार ।

"न भवद्भ्यामहं शोच्यो नायं राजापराध्यति ।
भवितव्यमनेनैव येनाहं निधनं गतः ।" (अग्निपु०)

भविष्यमें सुख वा दुःख अवश्यम्भावी है, जिसे खण्डन करनेका किसीका भी साध्य नहीं है। वही भवितव्य है ।

विधाता भी भवितव्यको बदल नहीं सकते। इसे भाग्य वा अदृष्ट कहते हैं । भवितव्यके फलसे कब क्या होगा, उसका स्थिर करना कठिन है। भवितव्यका द्वार सभी जगह विद्यमान है।

भवितव्यता (सं० स्त्री०) भवितव्यस्य भावः तल्-टाप् । १ भाग्य, अदृष्ट, किस्मत । २ भावी, होनहार ।

भवितृ (सं० त्रि०) भू-शीलार्थे-तृच् । भवनशील ।

भवित्र (सं० त्रि०) भुवन, अन्तरीक्ष और उदक ।

भविम (सं० पु०) भवाय काव्यादि प्रकाशाय इनः सूर्य इव ततः पृषोदरादित्वात् साधुः । काव्यकर्त्ता ।

भविपुला (सं० स्त्री०) छन्दोभेद ।

भविल (सं० पु०) भू (सलिकल्यनिमहिभड़िभण्डिशण्डिपिण्डि-तुण्डिकुकिभूभ्य इलच् । उण् १।५५) इति इलच् । १ षिङ्ग, जार । २ भव्य, भविष्यत् ।

भविष्णु (सं० त्रि०) भू (भुवश्च । पा ३।२।१३८) इति इष्णुच्, भवते धातोश्छन्दसि विषये ताच्छील्यादिषु 'इष्णुच्' प्रत्ययो भवतीति काशिका । भवनशील, भविता ।

भविष्य (सं० त्रि०) भू-लटः सद्वेति शतृस्यट्च्, ततो विभाषायां पृषोदरात् तस्य लोपः । १ भविष्यत्काल, आनेवाला काल । २ भविष्यत् कालसम्बन्धी । (क्ली०) ३ पुराणविशेष, भविष्यपुराण । ४ फलविशेष ।

पुराण देखो।

भविष्य—राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा, देवराजके पुत्र ।

राष्ट्रकूटवंश देखो ।

भविष्यगङ्गा (सं० स्त्री०) शम्भलेश्वरतीर्थमें अवस्थित एक पुण्यतोया सरित् । (स्कन्दपुराण शम्भलमाहात्म्य)

भविष्यगुप्ता (सं० स्त्री०) कालके अनुसार गुप्ता नायिका-का एक भेद ।

भविष्यत् (सं० त्रि०) भू लृटः शतृस्यट् च । वर्त्तमान कालके उपरान्त आनेवाला काल, आगामी काल । पर्याय—अनागत, श्वस्तन, प्रगेतन, वत्स्यत् । वर्त्तिष्यमाण, आगामी, भावी ।

भविष्यत्ता (सं० स्त्री०) वर्त्तमान उत्तरणपूर्वक भविष्यन्मुखमें लीनता । (क्ली०) २ भविष्यत्व, भविष्यतका भाव ।

भविष्यदापेक्ष (सं० पु०) अवश्यम्भावी किसी भविष्यत् घटनाका अलङ्कारभेद ।

भविष्यद्वक्ता (सं० पु०) १ भविद्वाणी करनेवाला, वह जो होनेवाली बात पहलेसे ही कह दे ।

भविष्यपुराण (सं० क्ली०) अष्टादश महापुराणके अन्तर्गत पुराणभेद । इसके प्रतिपाद्य विषयादि नारदपुराण शब्दमें दिये गये हैं । विस्तृत विवरण पुराण शब्दमें देखो ।

भविष्यसुरतिगोपना (हिं० स्त्री०) भविष्यगुप्ता देखो ।

भविष्योत्तर (सं० क्ली०) पुराणभेद, भविष्योत्तरपुराण ।

भवीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन बहुः बहु-ईयसुन्, बहोर्लोपो भुश्च बहोति भूरादेशः वेदेन ईलोपः । बहुतर ।

भवीला (हिं० वि०) १ भावयुक्त, भावपूर्ण । २ बाँका, तिरछा ।

भवुआ—१ शाहाबाद जिलेके अन्तर्गत एक उपविभाग । भू-परिमाण १३०१ वर्गमील है । भवुआ चाँद और मोहनीय ले कर १८६५ ई०में यह उपविभाग संगठित हुआ है ।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर । यह अक्षा० २५° २' ३०" उ० तथा देशा० ८३° ३६' ३५" पू०के मध्य अवस्थित है ।

भवेश (सं० पु०) १ शिवका एक नाम । २ संसारका स्वामी ।

भवेश—एक हिन्दू राजा, सांख्यप्रवचनभाष्यके प्रणेता राजा हरसिंह देवके पिता ।

भवेश—एक ज्योतिर्विद् । इन्होंने श्रीपतिकृत जातक-पद्धति की टिप्पनी लिखी है ।

भवेशकवि - एक प्राचीन कवि । ये परिभाषाविवेक प्रणेता वर्द्धमानके पिता थे ।

भव्य (सं० क्ली०) भवतीति भूयते इति वा भू (भव्यगेयेति । पा ३।४।६८) इति यत् । भव्यादयः शब्दाः कर्त्तरि वा निपात्यन्ते इति काशिका । १ फलविशेष, भलता ।

पर्याय—भव, भविष्य, भावन, वक्त्रशोधन, लोमफल, पिच्छिलवीज। गुण—अम्ल, कटु, उष्ण। कच्चे फलका गुण—वात और कफनाशक। पक्के फलका गुण—मधुराम्ल, रुचिकारक, श्रम और शूलनाशक। २ कर्मरङ्गवृक्ष, कमरख। ३ कारवेल्ल, करेला। ४ निम्ववृक्ष, नीमका पेड़। ५ शरीर धारण करनेवाला। ६ भवसिद्धक, वह जिसे लिङ्ग पदकी प्राप्ति हो। ७ मनु चाक्षुषके अन्तर्गत देवताओंके एक वर्गका नाम। ८ नवें मन्वन्तरके एक ऋषिका नाम। ९ पुराणानुसार ध्रुवके एक पुत्रका नाम। १० रसभेद। (त्रि०) ११ शुभ, मङ्गल सूचक। १२ जो देखनेमें भारी और सुंदर जान पड़े, शानदार। १३ सत्य, सच्चा। १४ योग्य, लायक। १५ भविष्यमें होनेवाला। १६ श्रेष्ठ, बड़ा। १७ प्रसन्न, खुश। (क्ली०) १८ अस्थि, हड्डी।

भव्यजीवन (सं० पु०) निर्युक्तिभाष्य नामक जैनग्रन्थके रचयिता।

भव्यता (सं० स्त्री०) भव्यस्य भावः तल्-टाप्। भव्यताका भाव वा धर्म।

भव्या (सं० स्त्री०) भव्य टाप्। १ उमा, पार्वती। २ गजपिप्पली, गजपीपल।

भव्यिराज—एक प्राचीन बौद्धराज-मन्त्री। ये अश्मकराजके प्रधान सचिव थे।

भशिरा (सं० स्त्री०) कन्दविशेष।

भष (सं० पु०) भषतीति भष-कुक्कुरादि शब्दे, अच्। कुक्कुर, कुत्ता।

भषक (सं० पु० स्त्री०) भषतीति भष-(क्कुन शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि। उण् २।३२) क्कुन्। कुक्कुर, कुत्ता।

भषण (सं० क्ली०) भष-ल्युट्। कुक्कुरशब्द, कुत्तेका भौंकना।

भषत् (सं० क्ली०) अन्तःकरण।

भषा (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी।

भषी (सं० स्त्री०) भष-स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। शुनी, कुत्ती।

भसत् (सं० स्त्री०) वभस्तीति भस्(शॄदृभसोऽदिः। उण् १।१२९) इति अदिः। १ काष्ठ, लकड़ी। २ अश्वमांस, घोड़ेका मांस। ३ जघन। ४ भास्कर। ५ योनि। ६ मांस। ७ कारण्डवपक्षी। ८ प्लव। ९ काल। १० हृत्पिण्ड।

भसद्य (सं० त्रि०) कटिप्रदेशभव, तत्सम्बन्धीय।

भसन (सं० पु०) वभस्तीति भस्-ल्यु। भ्रमर, भौंरा।

भसन्त (सं० पु०) वभस्तीति भस बाहुलकात् झच्। काल, समय।

भसन्धि (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां सन्धिः। अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रोंके चौथे चरणकी बादके नक्षत्रोंकी संधि।

भसमा (हिं० पु०) पीसा हुआ आटा। २ नीलकी पत्तीकी बुकनी। ३ एक प्रकारका खिजाब जिससे बाल काले किये जाते हैं।

भसमूह (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां समूहः। नक्षत्रसमूह।

भसान (वं० पु०) काली या सरस्वती आदि मूर्त्तिको पूजाके उपरान्त किसी नदीमें प्रवाहित करना।

भसाना (वं० क्रि०) १ किसी चीजको पानीमें तैरनेके लिये छोड़ना। २ किसी चीजको पानीमें डालना।

भसिंड (हिं० स्त्री०) कमलकी जड़, कमलनाल।

भसित (सं० क्ली०) भस्-क्त। भस्म।

भसींड (हिं० स्त्री०) कमलनाल, मुरार।

भसुर (हिं० पु०) पतिका बड़ा भाई, जेठ।

भसूँड़ (हिं० पु०) हाथीकी सूँड़।

भसूचक (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां सूचकः। दैवज्ञ, ज्योतिषी।

भस्त्रका (सं० स्त्री०) भस्यते इति भस दीप्तौ त्रन् टाप्। चर्मप्रसेविका, आग सुलगानेकी भाथी।

भस्त्रा (सं० स्त्री०) भस्यतेऽनयेति भस (हुयमाश्रुभसिभ्यस्त्रन्। उण् ४।१६७) इति त्रन्, अजादित्वात् टाप्। १ अग्निदीपक चर्मनिर्मित यंत्रविशेष, आग सुलगानेकी भाथी। पर्याय—चर्मप्रसेविका, भस्त्राका, भस्त्रका, भस्त्री, भस्त्रिका। २ चर्मस्थली, चमड़ेकी थैली।

भस्त्राका (सं० स्त्री०) भस्त्रा, भाथी।

भस्त्रिक (सं० त्रि०) भस्त्रया हरति (भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्। पा ४।४।१६) इति ष्ठन्। भस्त्रा द्वारा हरणकारी।

भस्त्री (सं० स्त्री०) भस्यते ऽनयेति भस-त्रन्, गौरादित्वात् ङीष् । भस्त्रा, भाथी ।

भस्त्रीय (सं० त्रि०) भस्त्रा उत्करादित्वात्-छ (पा ४।२।९०) भस्त्राका अदूरदेशादि ।

भस्म (सं० क्ली०) भस्मन् देखो ।

भस्मक (सं० क्ली०) भस्म-संज्ञायां कन्, वा भस्म करोति कृ-ड । १ रोगभेद, भस्मकीटरोग ।

भावप्रकाशमें इस रोगके निदानादि लिखे हैं । अधिक और रूखी चीज खानेवाले व्यक्तियोंका कफ क्षीण तथा वायु और पित्तवर्द्धित हो कर जठराग्नि अत्यन्त वर्द्धित हो जाती है एवं वह वर्द्धित अग्नि वायुके साथ संयुक्त हो कर थोड़ी ही देरके अन्दर भस्मीभूत कर डालती है, इसीसे इसको भस्मकरोग कहते हैं । भस्मकरोगमें रक्तादि धातु परिपाक हो जाती है । सुतरां उसको उपेक्षा करना ही श्रेय है । पिपासा, घर्म, दाह और मूर्च्छा ये सब भस्मकरोगके उपद्रव हैं । भस्मकरोगमें यदि खाई हुई वस्तु जल्दी पच जाय और धातु परिपाक हो, तो समझना चाहिये कि रोगीका जीवन शीघ्र ही नष्ट होनेको है । (भावप्र० जाठराग्निविकारा०) २ अतिशय बुभुक्षा, बहुत अधिक भूख । ३ स्वर्ण, सोना । ४ रूप । ५ विड़ङ्ग । ६ भार्गी । (वैद्यकनि०)

भस्मकाग्नि (सं० पु०) तन्नामक रोगविशेष, भस्मकीटरोग ।

भस्मकारी (हिं० वि०) भस्मकरनेवाला, जलानेवाला ।

भस्मकूट (सं० पु०) कामरूपस्थित पर्वतभेद । इस पर्वत पर स्वयं शिवजी वास करते हैं ।

भस्मगन्धा (सं० स्त्री०) भस्मेन इव गन्धो यस्याः । रेणुका नामक गन्धद्रव्य ।

भस्मगन्धिका (सं० स्त्री०) भस्मगन्धोऽस्त्यस्या इति भस्मगन्ध (अत इनि ठनौ । पा ५।२।११५) इति ठन् टाप् । रेणुकाख्य गन्धद्रव्य ।

भस्मगन्धिनी (सं० स्त्री०) भस्मनः इव बाहुल्येन गन्धो ऽसयस्या इति भास्मगंन्ध इनि ङीष । रेणुका ख्य गन्ध द्रव्य ।

भस्मगर्भ (सं० पु०) भस्म गर्भे यस्य । तिनिशवृक्ष ।

भस्मगर्भा (सं० स्त्री०) भस्मगर्भे यस्याः इति टाप् । १ शीशम । २ रेणुका नामक गन्धद्रव्य । ३ तिनिशवृक्ष ।

भस्मजाबाल (सं० पु०) उपनिषद्भेद ।

भस्मता (सं० स्त्री०) भस्मनोभावः तल् टाप् । भस्मका भाव वा धर्म ।

भस्मतूल (सं० क्ली०) भस्म तूलति तूलयति वेति तूलक । १ ग्रामकूट । २ पांशु-वर्षण । ३ उहिम, तुषार ।

भस्मन् (सं० क्ली०) बलस्तीति भस्-भर्त्सनदीप्त्योः (सर्वधातुभ्यो मनिन् । उण् ४।१४४) इति मनिन् । १ दग्ध काष्ठादि-विकार, लकड़ी आदिके जलने पर बची हुई राख । २ चिताकी राख जिसे शिवजी अपने मस्तक पर लगाते हैं, मदनके भस्म होने पर महादेवने उस भस्मको अपने सर्वाङ्गमें लगाया था ।

"महादेवोऽथ तद्भस्म मनोभवशरीरजम् ।
आदाय सर्वगात्रेषु भूतिलेपं तदा करोत् ॥
लपशेषाण्यि भस्मानि समादाय तदा हरः ।
सगणोऽन्तर्दधे कालीं विहाय विधि सम्मते ॥"
(कालिकापु० ४१ अ०)

भस्मको ललाटमें लगा कर तब शिवपूजा करनी होती है । भस्म, त्रिपुण्ड्रक, रुद्राक्ष-धारण और विल्वपत्रके विना शिवपूजा करनेसे सम्यक् फल प्राप्त नहीं होता । इस पर कोई कोई कहते हैं, कि पूजाका फल बिलकुल नहीं होगा, सो नहीं, कुछ अवश्य होता है ।

"बिना भस्मत्रिपुण्ड्रेण बिना रुद्राक्ष मालया ।
पूजितोऽपि महादेवो न स्यादस्य फलप्रदः ॥"
(आह्निकत०)

भस्म धारण करके उसके ऊपर चन्दनादि धारण नहीं करना चाहिये । किन्तु चन्दनादिके ऊपर भस्म धारण किया जा सकता है ।

विधिपूर्वक जाबालोक्त मंत्रपाठ द्वारा भस्म धारण विधेय है । भस्म लगानेसे उसको आग्नेय स्नान कहते हैं । स्नान देखो ।

"आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः कृतम् ।" (यामल)

कांसेके बरतनको राखसे मलने पर वह विशुद्ध होता है ।

२ अश्मरीविकार, एक प्रकारका पथरीरोग । अश्मरी देखो । (त्रि०) ४ जो जल कर राख हो गया हो, जला हुआ ।

भस्मप्रिय (सं० पु०) शिवका नामान्तर।

भस्ममेह (सं० पु०) मेहजनित अश्मरी रोगभेद।

भस्मरोहा (सं० स्त्री०) भस्मनि रोहतीति रुह-अच्-टाप्। दग्ध वृक्ष।

भस्मवेधक (सं० पु०) भस्म इव वेधकः। कर्पूर, कपूर।

भस्मसात् (सं० अव्य०) भस्म कात्स्न्येन सम्पन्नं करोति भस्मन्-साति। भस्माकारमें परिणत, छार खार कर डालना। २ सम्यक् भस्मीभूत, एकदम राख कर देना।

भस्मसूत (सं० पु०) १ रससिन्दूर। २ चूड़ामणिरस।

भस्मस्नान (सं० पु०) सारे शरीरमें राख मलना, राखसे नहाना।

भस्माकार (सं० पु०) भस्म करोतीति कृ (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इति अण्। रजक, धोबी।

भस्माग्नि (सं०पु) उदराग्निज रोगभेद।

भस्माङ्ग (सं०पु०) कपोत, कबूतर।

भस्माङ्गी—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके-तुमकुड़ जिलान्तर्गत एक पर्वत। इस पर्वतके शिखर पर भस्माङ्गेश्वरका मन्दिर अवस्थित है। पर्वतके चारों ओर गिरिदुर्ग स्थापित हैं। देख कर अनुमान किया जाता है, कि विधर्मियोंके हाथसे देवमन्दिर और देवमूर्त्तिको रक्षाके लिये ये सब दुर्गादि बनाये गये थे। यहां बेदार नामक पार्वतीय जातिका वास है।

भस्माङ्गेश्वर—दाक्षिणात्यस्थ भस्माङ्गी पर्वतका शिवलिङ्ग भेद।

भस्माचल (सं० पु०) कामरूपस्थित पर्वतभेद।

भस्माह्वय (सं० पु०) भस्म आह्वयते स्पर्द्धते इति आ-ह्वे-बाहुलकात्श। कर्पूर, कपूर।

भस्मासुर (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्रसिद्ध दैत्य। इसकी तपस्यासे संतुष्ट हो कर शिवजीने इसे वर दिया था, कि जिसके शिर पर तुम हाथ रखोगे वह भस्म हो जायगा, एक दिन वह पार्वती पर मोहित हो कर शिवको हो जलाने पर उद्यत हुआ। शिवजी भागे। यह देख कर श्रीकृष्णने वटुका रूप धारण कर छलसे इसके सिर पर इसका हाथ फेरवा दिया जिससे यह स्वयं भस्म हो गया। शिवजीसे वर पानेके पहले इसका नाम वृकासुर था।

भस्मित (सं० त्रि०) १ जलाया हुआ। २ जला हुआ।

भस्मीभूत (सं० त्रि०) १ जो जल कर राख हो गया हो, बिलकुल जला हुआ। २ विनाशित, जिसका नाश किया गया हो।

भहराना (हिं० क्रि०) १ टूट पड़ना। २ झोंकसे गिर पड़ना, एकाएक गिरना। ३ फिसल पड़ना। ४ किसी काममें जोरोंसे लग जाना।

भहूं (हिं० स्त्री०) भौंह देखो।

भाँई (हिं० पु०) खरादनेवाला, कूनी।

भाँउर (हिं० स्त्री) भांवर देखो।

भाँकड़ी (हिं० पु०) एक जंगली झाड़ जिसे हसद सिंघाड़ा भी कहते हैं। यह गोखरूसे मिलता जुलता होता है।

भाँग (हिं० स्त्री०) मादकताको उत्पन्न करनेवाला सनकी जातिका एक पौधा, जो गांजेकी (Canali- sativa) समश्रेणीका कहा गया हैं। गांजा शब्दमें यह लिखा जा चुका है, कि गांजेका पेड़ स्त्री पु०के भेदसे दो प्रकारका है। पु० वृक्ष फुल-भांगके नामसे और स्त्री० वृक्ष गुल-भांगके नामसे प्रसिद्ध है इनके फूलोंसे दोनोंका पार्थक्य मालूम हो जाता है। पकने पर इसके पुष्प वीजकोष और पत्रादि समेत शाखाग्रवर्त्ती कोमल पत्तोंको हाथसे दवा कर जो गोंद-सा निकाला जाता है, उसे 'चरस' कहते हैं। जटा गांजा है और पत्तोंको भांग कहते हैं। गञ्जिकावृक्षकी समश्रेणीका एक प्रकारका रांड़ा-वृक्ष देखनेमें आता है उसकी पकी पत्तियां ही भांग नामक मादक द्रव्य है। कोई कोई इसे वन-सिद्धि वा जंगली भांग कहते हैं। गांजाकी जटासे सटी हुई पत्तियोंका नाम गांजापत्ती-भांग है। गांजा देखो।

विभिन्न देशोंमें भांग शब्द गांजा और भाँग दोनोंके बदले व्यवहृत होता है। हिन्दी—सब्जा, सब्जो, सिद्धि। बङ्गला—सिद्धि, भांग। संस्कृत—भङ्गा। पञ्जाबी—भङ्गी, भांग, बेन्धो, सब्जो। काश्मीरी—बङ्गी। मराठी भांग, झाड़। दाक्षिणात्य—सिद्धि, गांजेका झाड़। तामिल—भङ्गी इलाई। तेलगू—भङ्गीअकु। कनाड़ी—भङ्गी,भेङ्गीगीड़। फारसी—दरख्तेबन्ध। ब्राह्मी—केनदिन। सिन्धु—सुखो-सवला

इस वृक्षसे जगत्के लिए हितकर दो चीजें उत्पन्न होती हैं। वे दोनों ही मनुष्यके बड़े कामकी चीज हैं। जटा और पत्रसे जो गांजा और सिद्धि नामक मादक द्रव्य होता है, वह मादकता दोषसे दुष्ट होने पर भी भेषज गुणमें साधारणके लिए विशेष उपकारी कहा गया है। सुश्रुत, भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें भङ्गके गुण लिखे हैं। भङ्गा और सिद्धि देखो।

हिन्दूधर्मके प्राचीन वेदादि ग्रन्थोंमें भी भांगका उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद और अथर्ववेदमें इसे सोमके अङ्गभूत कहा गया है। यज्ञमें ऋषीगण सोमके बदले इसे ही पान करते थे। इसकी छालसे सन नामकी एक तरहकी रस्सी बनती है। सुप्राचीन वैदिकयुगमें उसका भी व्यवहार था। ऋग्वेदान्तर्गत कौशिकी ब्राह्मणका 'भङ्गजाल' और 'भङ्गशयन' शब्द इस बातका परिचय दे रहा है। उक्त ग्रन्थमें भङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्गमें व्यवहृत हुआ है, इससे भी दो प्रकारके वृक्षोंका अस्तित्व सूचित होता है।

पुराणादिमें शिवके भङ्गपानसे रक्तनेत्र होनेका उल्लेख है; दुर्गापूजाके विजया-वरणके समय दुर्गादेवीके मुखमें भांग और पान दिया जाता है। यात्राकालमें सिद्धि प्रदान करती है, इससे इसका दूसरा नाम सिद्धि है। बङ्गालमें विजयादशमीके दिन इसे दुर्गाकी प्रसादी पवित्र द्रव्य मान कर सर्वसाधारण लोग पानीय रूपमें इसका व्यवहार करते हैं। उस दिन हिन्दूमात्र ही घरमें समागत बन्धु और कुटुम्बियोंको सिद्धि और मिष्टान्न भोजन करा कर शुभालिङ्गन करते हैं।

पहले गांजा और चरस शब्दमें उसके सेवनादिका विषय लिखा जा चुका है। भांग (सिद्धि) अनेक मसालों के साथ घोंट छान कर पीई जाती है। इसके सेवनसे शोणित और शरीर उष्ण, मस्तिष्क विकृत, मन एकाग्र, दुःखका ह्रास और स्फूर्तिका विकाश आदि मादकता लक्षणोंका क्रमशः विकाश होता है। मात्रानुसार सेवन करनेसे इससे पित्तादिदोष नष्ट होते और उदराग्निकी वृद्धि होती है।

साधारणतः काली मिर्च, सौंफ, छोटी इलायची, लवङ्ग, जायत्री, जायफल, पोस्ता, गुलाबके फूल, खीराके बीज, खरबूजाके बीज आदिके साथ भांग घोंटी जाती है। सुबह थोड़ी भांगको पानीमें भिगो कर, शामको करीब ४ बजे उसे अच्छी तरह मल कर धोना चाहिए। फिर उसे उपर्युक्त मसालोंके साथ सिल बटिया या पत्थरके इमामदस्तामें नीमके घोंटेसे घोंटना चाहिये और उसमें कच्चा दूध, मिसरी, नारियलका पानी आदि मिला कर सेवन करना चाहिए। उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें मुसलमानों और हिन्दुओंमें तथा मथुरा वृन्दावनमें चौबे आदि व्रजवासियोंमें काफी भांगका सेवन होता है, तथा राजपूताना औरवं गालियोंमें भी भांग पीनेका प्रचार है।

भांगरा (हिं० स्त्री०) किसी धातु आदिकी गर्द या छोटे छोटे कण।

भांज (हिं० स्त्री०) १ किसी पादर्थको मोड़ने या तह करनेका भाव अथवा क्रिया। २ भांजने या घुमानेकी क्रिया या भाव। ३ वह धन जो रुपया, नोट आदि भुनानेके बदलेमें दिया जाय, भुनाई। ४ तानेका सत।

भांजना (हिं० क्रि०) १ तह करना, मोड़ना। २ मुग्दर आदि घुमाना। ३ दो या कई लड़ोंको एकमें मिला कर बटना।

भांजा (हिं० पु०) भानजा देखो।

भांजी (हिं० स्त्री०) वह बात जो किसीके होते हुए काममें बाधा डालनेके लिये कही जाय, शिकायत।

भांट (हिं० पु०) १ भाट देखो। २ देशी छींटोंकी छपाईमें कई रंगोंमेंसे केवल काले रंगकी छपाई जो प्रायः पहले होती है।

भांटा (हिं० पु०) बैंगन देखो।

भांड़ (हिं० पु०) १ परिहासक, वह जो खूब हंसा सकता हो।

२ परिहास-रसिक सम्प्रदाय विशेष। राजा और सम्भ्रान्त लोगोंकी सभामें नाना प्रकार अङ्गभङ्गी अथवा सुललित वाक्य विन्यास वा हँसी-मजाक द्वारा उपस्थित व्यक्तियोंका मनोरञ्जन करना ही इनका प्रधान कर्म है। मुसलमान लोग इनके तमाशेको 'नकल' कहते हैं। प्राचीन संस्कृत नाटकोंके राजानुचर विदूषक वर्त्तमान भांड़ोंके अनुरूप थे। परंतु भांड़ोंसे विदूषकके कार्यमें बहुत प्रभेद देखनेमें आता है। प्राचीन हिंदू राजाओंके

विदूषक कालान्तरमें 'भांड़' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। नवद्वीपके राजा महाराजा कृष्णचन्द्रकी सभामें गोपाल भांड़ और सम्राट् अकबरशाहकी सभामें बीरबल अपना कृतित्व दिखा गये हैं।

मुसलमान राजाओंके समयमें भी भांड़ोंका आदर था। कहा जाता है कि मुगल-पति तैमूरलङ्गने पुत्रशोकसे विह्वल हो कर बारह वर्ष तक निरन्तर विलाप किया था। सैयद हुसेन नामक एक पारिषदने अरबी भाषामें एक सुललित हास्योद्दीपक ग्रन्थ बना कर उनके शोकको मिटाया। इसके लिए मुगल बादशाहने उन्हें "भांड़"-की उपाधिसे विभूषित किया। ये सैयद हुसेन ही भांड़-सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता थे। क्रमशः भांड़ोंने स्वतन्त्र व्यवसाय करना शुरू कर दिया, जिससे वे शाखा जातिके रूपमें परिगणित होने लगे। हुसेन सैयद-वंशीय होने पर भी वर्त्तमान भांड़ लोग शेख या मुगलवंशसे उत्पन्न हैं। सिया और सुन्नी सम्प्रदायके भेदसे इनका विवाहादि होता है। आचार-व्यवहारमें प्रायः ये मुसलमानोंके सदृश ही हैं, कोई कोई आचार हिन्दू जैसे भी हैं। भांड़ जाति चेंड़ और काश्मीरी नामको दो शाखाओंमें विभक्त हैं। अयोध्याके नवाब नसीरउद्दीनने काश्मीरी भाड़ोंको बुलाया था।

वर्त्तमान हिंदू भांड़ कैथेला (कापिष्ठली), बाह्मनिया, उजहार, बघेला, गूजर, नुनिया, कड़ा, पित्तरहङ्गर, बरहा, तबलटिया और शाहपुरी आदि श्रेणियोंमें विभक्त हैं। फिर मुसलमानभांड़ोंकी निम्नलिखित श्रेणियां हैं—बरसा, भंदेला, बुड़दिया, देशी, गाववाणी, हमलपुरी, हरथाजरेहा, जबोया, कैथला, कायस्थ, काशीवाल, काश्मीरी, काठिया, कतोला, कव्वाल, खा खारिया, खत्री, खेती, मोथरा, मुसलमानी, नकल, नौमसलिक, पठान, पटुया, पुरबिया, रावत, सादिकी, शेख, ताराकिया आदि।

इनके बारह या चौदह वर्षकी अवस्थामें ही विवाहका योग्यकाल समझा जाता है। विधवाएं अपने अपने स्वामीके वंशमें विवाह कर सकती है, अन्यत्र नहीं। स्त्रीके चरित्रमें सन्देह हो तो ये उसे घरसे निकाल देते हैं और वह स्त्री फिर कभी उस वंशमें विवाह नहीं कर सकती। मुसलमान रीत्यानुसार इनकी विवाहादिकी क्रियाएं होती हैं। लखनऊके भांड़ सिया-सम्प्रदाययुक्त हैं और अन्य मुसलमान भांड़ सभी सुन्नी-सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं।

लखनऊके भांड़ लोग पांचपीर (गाजीमियां) और सैयद हुसेनकी भक्ति करते हैं। वे पांचपीरकी मलीदा, सरबत और फूलमालासे पूजा करते हैं और सैयद हुसेनको हलुआ, मलीदा और मिठाईसे पूजते हैं। सब-ई-बरात उत्सवमें परलोकगत व्यक्तियोंके लिए खाद्यद्रव्यादि चढ़ाये जाते हैं। चेंड़ लोग ढोलक और काश्मीरी लोग तबला और सारंगी बजाते हैं। भांड़ लोग आमोदके लिए प्रधान सहकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं। पश्चिम और उत्तर-भारतमें विशेषतः युक्तप्रान्तमें जन्मोत्सवमें भांड़ लोग आ कर हास्यकर खेल दिखलाते हैं और विवाहादिमें तो अधिकतासे इनके तमाशे होते हैं। इस कार्यमें इन्हें काफी आमदनी होती है और दर्शकगण भी हास्य दृश्यको देख कर परम आनन्द उपभोग करते हैं।

भांड़ा (हिं० पु०) १ पात्र, बरतन। २ बड़ा बरतन।

भांति (हिं० स्त्री०) तरह, किस्म।

भांपना (हिं० क्रि०) १ ताड़ना, पहचानना। २ देखना।

भांभी (हिं० पु०) जूता सीनेवाला, चमार।

भायं भायं (हिं० पु०) नितान्त एकान्त स्थान वा सन्नाटेमें होनेवाला शब्द।

भांवता (हिं० पु०) भावता देखो।

भांवना (हिं० क्रि०) १ किसी चीजको खराद या चक्कर आदि पर घुमाना, खरादना।

भांवर (हिं० स्त्री०) १ चारों ओर घूमाना या चक्कर काटना, परिक्रमा करना। २ अग्निकी वह परिक्रमा जो विवाहके समय वर और वधू मिल कर करते हैं। ३ हल जोतनेके समय एक बार खेतके चारों ओर घूम आना। (पु०) ४ भौंरा देखो।

भा (सं० स्त्री०) भा-दीप्तौ (षिद्भिदादिभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४) इत्यङ्, टाप्। १ प्रभा, चमक, प्रकाश। २ कान्ति, शोभा, छटा। ३ किरण, रश्मि। ४ बिजली, विद्युत्।

भाइ (हिं० स्त्री०) प्रकार तरह। २ ढंग, चालढाल।

भाई (हिं० पु०) १ किसी व्यक्तिके माता-पितासे उत्पन्न

दूसरा पुरुष, सहोदर, भैया। भ्रातृ देखो। २ अपनी जाति या समाजका कोई व्यक्ति, बिरादरी। ३ संबोधन। ४ किसी वंश या परिवारकी किसी एक पीढ़ीके किसी व्यक्तिके लिये उसी पीढ़ीका दूसरा पुरुष।

भाईचारा (हिं० पु०) १ भाईके समान होनेका भाव। २ परममित्र या बंधु होनेका भाव।

भाईदूज (हिं० स्त्री०) कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया, यमद्वितीया। इस दिन बहन अपने भाईको टीका लगाती और भोजन कराती है। भ्रातृद्वितिया देखो।

भाईपन (हिं० पु०) १ भ्रातृत्व, भाई होनेका भाव। २ परम मित्र या बंधु होनेका भाव।

भाईबंद (हिं० पु०) भाई और मित्र-बंधु आदि, अपनी जाति और बिरादरीके लोग।

भाईबिरादरी (हिं० स्त्री०) जाति या समाजके लोग।

भाउ (हिं० पु०) उत्पत्ति, जन्म।

भाउदाजी—बम्बई प्रदेशवासी एक प्रत्नतत्त्वविद्। कोङ्कण विभागके सावन्तवाड़ीके निकटस्थ किसी ग्राममें इनका जन्म हुआ था। अपनी धी-शक्तिके प्रभावसे इन्होंने विद्योपार्जन कर जनसाधारणमें अच्छा नाम कमा लिया था। ये एलफिनष्टन और ग्राण्ट मेडिकल कालेज नामक विद्यालयमें पाठाभ्यास करके कर्मक्षेत्रमें उतरे थे। इनके यत्नसे बम्बई शहरमें संस्कारसभा (Bombay Reform Association), शिक्षा-समिति (Board of Education), जादूगर आदि स्थापित हुए थे। १९वीं शताब्दीके मध्य भागमें जन्म ले कर ये विद्वन्समाजमें प्रतिष्ठा लाभ कर गये हैं।

भाउसाहब—प्रसिद्ध महाराष्ट्र-सेनापति। इन्होंने पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें विशाल महाराष्ट्र-वाहिनीको ले कर अहमदशाहका मुकाबला किया था।

सदाशिव भाउ देखो।

भाऊ (हिं० पु०) १ प्रेम, स्नेह। २ भावना। ३ स्वभाव। ४ वृत्ति, विचार। ५ महत्व, महिमा। ६ अवस्था, हालत। ७ रूप, शक्ल।

भाकर (सं० पु०) १ पुराणानुसार नैर्ऋत्यकोणमेंका एक देश। २ भास्कर, सूर्य।

भाकसी (हिं० स्त्री०) भट्ठी, भरसाई।

भाकुट (सं० पु०) भया दीप्त्या कुटतीति कुट-क। मत्स्य-विशेष, एक प्रकारकी मछली। इसका सिर बहुत बड़ा होता है। इसका गुण—मधुर, शीतल, वृष्य, श्लेष्मकारी और गुरु माना गया है।

भाकुरि (सं० पु०) भां कुर्चति कुर्च-कि पृषोदरादित्वात् साधुः। दीप्तिकारक।

भाकूट (सं० पु०) भायुक्ताः कूटाः शिखराणि यस्य। १ पर्वतभेद। २ मत्स्यविशेष।

भाकोष (सं० पु०) भानां दीप्तीनां कोष इव। सूर्य।

भाक्त (सं० त्रि०) भक्तेः गौण्यावृत्ते रागतमिति भक्ति-अण्। १ पारिभाषिक, औपचारिक। "नन्वेवं परतू सप्तमे मासि क्रियमाणस्य कथं षाण्मासिकत्वम्" (तिथितत्त्व) सप्तम मासमें जो मासिक श्राद्ध होता है, उसे किस प्रकार षाण्मासिक कह सकते हैं? वह श्राद्ध सप्तम मासमें होने पर भी उपचारवशतः उसे षाण्मासिक कहते हैं, यही भाक्त है। जहां पर उपचारवशतः अथवा लक्षण शक्ति द्वारा अर्थकी प्रतीति होती है, उसे भाक्त कहते हैं। भक्तस्येदमिति अण्। २ भक्तसम्बन्धी। भक्तमस्मै दीयते नियुक्तमिति भक्त (भक्तादनन्यतरस्याम। पा ४।४।६८) इत्यण्। ३ अन्न द्वारा पोष्य। ४ नियत अन्नदान। भक्ताय हितं अण्। ५ भक्त-सम्पादन-साधन तण्डुल।

भाक्तिक (सं० त्रि०) भक्तमस्मै नियुक्तं दीयते इति भक्त (भक्तादनन्य तरस्यां। पा ४।४।६८) इति पक्षे ठक्। १ अन्न द्वारा पोष्य। २ अन्नदान।

भाक्ष (सं० त्रि०) भक्षा शीलमस्य छत्रादित्वादण् (पा ४।४।६२) भक्षणशील।

भाक्षालक (सं० त्रि०) भक्षालि-देशे भवः (धूमादिभ्यश्च। पा ४।२।१२७) इति वुञ्। भक्षालिदेश भवमात्र।

भाखर (हिं० पु०) पर्वत, पहाड़।

भाग (सं० पु०) भज्यते इति भज भागसेवयोः कर्मणि घञ्। १ अंश, हिस्सा। २ भाग्य, किस्मत। ३ पार्श्व, तरफ। ४ सौभाग्य, खुश-नसीबी। ५ भाग्यका कल्पित स्थान, ललाट। ६ एक प्राचीन देशका नाम। ७ ऐश्वर्य, वैभव। ८ प्रातःकाल, भोर। ९ पूर्व-फल्गुनी नक्षत्र। १० तत्समसंख्या, एकादश संख्या। ११ किसी राशिको अनेक अंशों या भागोंमें बांटनेकी क्रिया, गुणनके विपरीत क्रिया।

जिस राशिके भाग किये जाते हैं उसे भाज्य और जिससे भाग देते अथवा जितने अंशोंमें भाग देते हैं उसे भाजक कहते हैं। भाज्यको भाजकसे भाग देने पर जो संख्या निकलती है उसे फल और जो शेष रह जाता है उसे भागशेष कहते हैं।

भाग दो प्रकारका है, मिश्र और अमिश्र। जव भाज्य और भाजक दोनों ही अनवच्छिन्न अथवा एक जातीय अवच्छिन्न संख्या हो, तो उसे अमिश्र भाग और जव भाज्य अथवा भाजक, दोनों ही नाना अंशोंकी अवच्छिन्न संख्या हो, तव उसे मिश्रभाग कहते हैं।

यदि ÷ ऐसा चिह्न किसी दो संख्याके वीचमें रहे, तो पहलेको दूसरी संख्यामें भाग करना होगा, इसका नाम विभक्त है। भागमें यदि भाज्य अवच्छिन्न और भाजक अनवच्छिन्न संख्या हो, तो भागफल अवच्छिन्न संख्या होगा। जैसे, ३० रु०में ६से भाग देनेसे ५ और ३०को ६से भाग देनेसे ५ होता है, अर्थात् ६ रु० ३० रुपयेमें ५ वार शामिल है।

अमिश्रभाग—भाज्य भाजकको इस प्रकार वैठाओ—भाजक भागफल। भाज्यके अङ्कोंमें वाईं ओरसे ऐसे कितने अङ्क लो जो भाजककी अपेक्षा अधिक हो। पीछे पहाड़ा द्वारा देख लो, कि इस वांई ओरको अल्प संख्याके भीतर भाजक कितनी वार शामिल है। जितनी वार शामिल होगा उसे भागफलके स्थानमें रखो। इस अङ्कको भाजकके साथ गुणा कर गुणनफलको भाज्यके नीचे वैठाओ। अव घटा कर जो संख्या निकलेगी उसकी दाहिनी ओर भाज्यकी शेष संख्या वैठा कर पूर्ववत् क्रिया करते जाओ। यदि भाजक अवशिष्टको अपेक्षा अधिक हो, तो भागफलमें शून्य वैठा कर भाज्यके दूसरे अंशको नीचे उतारो। इस प्रकार जव तक भाज्यके सभी अङ्क न उतर जांय; तव तक क्रिया करते रहो। आखिरमें यदि शेष कुछ भी न वचे तो केवल भागफल स्थिर हुआ और यदि शेष वचे तो भागफल और भागशेष स्थिर होगा।

यदि कोई गुणनफल उसके ऊपरके अङ्कोंकी अपेक्षा अधिक हो, तो भागफलके शेष अङ्कको घटा देना पड़ेगा और यदि अवशिष्ट भाजककी अपेक्षा अधिक अथवा उसके समान हो, तो भागफलके शेष अङ्कको वढ़ा देना होगा। यदि भाजक २०से अधिक न हो, तो भाग पहाड़े द्वारा सुगमतासे सम्पन्न हो सकता है।

उदाहरण—२३३८२६८में ६७५८का भाग दो।

```
६७५८ ) २३३८२६८ ( ३४६
        २०२७४
        ------
         ३१०८६
         २७०३२
        ------
          ४०५४८
          ४०५४८
        ------
              ०        भागफल = ३४६
```

यहां पर भाजक छः हजार सात सौ अठावन है और भाज्यके प्रथम पांच अङ्क तेईस लाख अड़तीस हजार दो सौ है, इसके भीतर भाजक ३०० वार है, तथा ६७५८ × ३०० = २० - २७४००; किन्तु वनानेकी सुविधा-के लिये शून्य न रख कर ४ को २के नीचे रखा तथा इस गुणनफलको घटानेसे ३१०८ निकला। अव नियमानुसार ६को नीचे उतारा। इस ६ से छः दश अथवा ६० समझा जाता है। किन्तु उपरोक्त कारणसे शून्य नहीं रखा गया। अव कुल संख्यासे तीन लाख दश हजार आठ सौ अढ़सठ समझा जाता है। इसके मध्य भाजक ४० वार शामिल है, ६७५८ × ४० = २७०३२० पहलेकी तरह शून्य अलग कर २७०३२ को ३१०८६ से घटाया और घटावफल ४०५४ निकला इससे चालीस हजार पांच सौ चालीस समझा जाता है तथा नियमानुसार ८ उतारनेसे कुल संख्या चालीस हजार पांच सौ अड़चालीस हुई। इसके भीतर भाजक ६ वार है। नीचेकी प्रक्रिया देखो।

```
६७५८ ) २०२७४०० + २७०३२० + ४०५४८ ( ३०० + ४०
       २०२७४००                          + ६ = ३४६
       -------
        २७०३२०
        २७०३२०
       -------
         ४०५४८
         ४०५४८
       -------
```

यदि भाजकके शेषमें शून्य रहे, तो प्रक्रियाको निम्नोक्त

नियम द्वारा घटा सकते हैं। भाजकमें जितने शून्य हैं, उन्हें एक चिह्नसे पृथक् करो, पीछे नियमानुसार भाग दो। जो भागशेष रहेगा उसके बाद भाज्यके पृथक् किये हुए अंकोंको बैठा देनेसे कुल अवशिष्ट निकल आयेगा।

भाज्य और भाजक दोनोंके शेषमें जब शून्य रहे, तब भी उक्त नियमानुसार क्रिया करनी होगी। यदि एक राशिको दूसरी राशिसे भाग करने पर शेष कुछ भी न बचे, तो दूसरी राशिको पहली राशिका उत्पादक वा गुणनीयक कहते हैं। यथा—२का १२में भाग देनेसे शेष कुछ भी नहीं रहता है इसलिए २ १२ का उत्पादक वा गुणनीयक है।

मिश्रभाग—एक मिश्रराशिको कुछ समान अंशोंमें विभक्त करने अथवा एक मिश्रराशिमें दूसरी मिश्रराशि कितनी बार शामिल है उसे जाननेके तरीकेको मिश्रभाग कहते हैं। जब भाजक अनवच्छिन्न संख्या हो, तब ऐसा किया जाता है।

अमिश्रभागमें भाज्य और भाजक जिस प्रकार रखा जाता है, यहां भी उसी प्रकार रखना होगा। पीछे भाजक भाज्यकी सर्वोच्च श्रेणीकी राशिमें कितनी बार शामिल है, यह देखना होगा। जितनी बार शामिल होगा उसे भागफलकी जगह बैठाओ। अनन्तर सामान्य भागमें जिस प्रकार गुणा और घटाव किया जाता है उसी प्रकार करना होगा। यदि शेष कुछ बच रहे, तो उसे निम्न श्रेणीकी राशिमें परिणत करो और जो फल होगा उसे भाजक द्वारा भाग दो, इस प्रकार करते करते शेष पर्यन्त भाग करना होगा।

अलावा इसके एक और प्रकारका भाग है जिसे समानुपातिक भाग कहते हैं। जब किसी संख्यामें इस प्रकार भाग देना होगा कि अंश किसी निर्दिष्ट समानुपातानुसार हो, तब निम्नलिखित नियमानुसार करना होगा।

नियम—कुछको ऐसे भिन्नमें लाओ जिनका साधारण हर समस्त अनुपातकी समष्टि हो और अवयवोंके अलग अलग लव हो। पीछे प्रत्येक भिन्नकी दी हुई संख्याको गुणा करो, गुणफल जो होगा वही निर्णीत अंश निकलेगा। (पाटीगणित)

भागक (सं० त्रि०) १ अंशभागसम्बन्धीय। (पु०) २ भाजक।

भागकर (सं० पु०) १ शिव। करोतीति-कृ-ट-कर, भागस्य करः। २ भागकारक, विभाग करनेवाला।

भागजाति (सं० स्त्री०) भागस्य जातिः। विभागके चार प्रकारोंमेंसे एक। इसमें एक हर और एक अंश होता है, चाहे वह समभिन्न हो वा विषम भिन्न हो जैसे—$\frac{3}{4}$, $\frac{2}{3}$

भागड़ (हिं० स्त्री०) भागने, विशेषतः बहुतसे लोगोंके एक साथ घबरा कर भागनेकी क्रिया या भाव।

भागण (सं० पु०) भानां गणः। १ सूर्यादिकी प्रभा। २ भागसम्बन्धी।

भागत्याग (हिं० पु०) जहदजहल्लक्षणा देखो।

भागदा (सं० स्त्री०) भागं ददाति-दा-अङ्। भागप्रदाता, भाग देनेवाला।

भगादुध (सं० पु०) विभागप्रद।

भागध (सं० त्रि०) प्राप्य वस्तुका अंश प्रदान।

भागधेय (सं० क्ली०) भाग एव भागरूप नामभ्यो धेयः। इति अभिधानान्नपुंसकत्वं। १ भाग्य, तकदीर। (पु०) भागेन धीयतेऽसौ वा कर्मणि यत्। २ राजदेयकर, वह कर जो राजाको दिया जाता है। ३ दायाद, सपिंड।

भागना (हिं० क्रि०) १ किसी स्थानसे हटनेके लिये दौड़ कर निकल जाना, चटपट दूर हो जाना। २ पिण्ड छुड़ाना, कोई काम करनेसे बचना। ३ टल जाना, हट जाना।

भागनेय (सं० पु०) भागिनेय देखो।

भागफल (सं० पु०) वह संख्या जो भाज्यको भाजकसे भाग देने पर प्राप्त हो, लब्धि।

भागभाज् (सं० त्रि०) भागं भजते भज ण्वि। विभागकर्त्ता, बाँटनेवाला।

भागमण्डल—मन्द्राज प्रदेशके कुर्ग विभागान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० १२° २३´ उ० तथा देशा० ७५° ३६´ पू०के मध्य विस्तृत है। यहां एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष देखा जाता है। टीपूसुलतानके साथ जब कुर्गराजका युद्ध छिड़ा था, उस समय इस स्थानने युद्धक्षेत्रमें परिणत हो कर ऐतिहासिक प्रसिद्धि लाभ की है। १७८५ ई०में हैदरके पुत्र टीपूने इस नगरको घेरा

डाल कर अधिकार किया। उस समय उन्होंने प्रायः पांच हजार कुर्गवासियोंको महिसुरमें ला इसलाम धर्ममें दीक्षित किया था। १७९० ई०में कुर्गराज दद्दवीर राजेन्द्रने फिरसे भागमण्डल दुर्ग पर कब्जा कर लिया। यहां एक बहुत पुराने समयका मन्दिर विद्यमान है। तीर्थ-यात्रिगण कावेरी नदीके उत्पत्ति-स्थानको देखनेकी मनशासे यहां आते हैं।

भागमातृ (सं० स्त्री०) भाग निकालनेकी एक प्रणाली।

भागरा (हिं० पु०) एक संकरराग जो किसी किसीके मतसे श्रीरागका पुत्र माना जाता है।

भागल (सं० पु०) भगलऋषिका गोत्रापत्य। (सांख्यकारिका)

भागलक (सं० त्रि०) भगल अहीरणादित्वात् वुञ्। भगव्यापारादिसे निवृत्त।

भागलक्षणा (सं० स्त्री०) भागे लक्षणा ७ तत्। शक्यार्थांश के भेदका परित्याग कर इतरांशबोधक लक्षणभेद, जहत्, अजहत् और स्वार्थ लक्षणा। लक्षणा देखो।

भागलपुर—१ विहार और उड़िसा प्रदेशके अन्तर्गत एक विभाग। भागलपुर, सन्थाल परगना, मुङ्गेर और और पूर्णिया इन चार जिलाओंको ले कर यह विभाग संगठित है। पहले मालदह भी इसी विभागमें शामिल था पर १९०५ ई०में बङ्गाल और आसाममें मिला लिया गया। यह अक्षा० २३° ४८' से २७° १३' उ० तथा देशा० ८५° ३६' से ८८° ५३' पू०के मध्य विस्तृत है। इसमें १४ शहर और १८६७० ग्राम लगते हैं। शहरोंमें भागलपुर शहर ही सबसे बड़ा है।

२ भागलपुर विभागका एक जिला। यह अक्षा० २४° २३' से २६° ३४' उ० तथा देशा० ८६° १९' से ८७° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४२३६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें नेपाल, उत्तर-पू०में पूर्णिया जिला, दक्षिण और पूर्वमें संथाल परगना तथा पश्चिममें दरभङ्गा जिला और मुङ्गेर है।

भागलपुर जिलेका प्राकृतिक सौन्दर्य विशेष मनोहारी नहीं होने पर भी स्वास्थ्यके लिये यहांका जलवायु सुखप्रद है। चारों ओर गण्ड शैलोंने वनमालाको अपने वक्ष पर धारण करके प्रान्तरभूमिको श्यामलभूषासे भूषित कर रखा है। उसके बीच बीचमें आम्रवन और महुएके वृक्ष सुमिष्ट फलफूलोंसे शोभित हो कर जगत्‌की सृष्टि कुशलताका परिचय दे रहे हैं।

यहां पर्वत और वनमालाको भेद कर पुण्यसलिला गङ्गानदी पूर्वकी ओर बह गई है और जिलेको दो भागोंमें विभक्त करती है। इसका उत्तरी विभाग तिरहुत जिले तक विस्तृत है। उसके मध्य भागमें हिमालयवाहिनी बहुत सी शाखानदियोंके बहनेके कारण उसका सौन्दर्य, स्वास्थ्य और उर्वराशक्ति बहुत कुछ बढ़ गई है। दक्षिण पूर्व भागमें भी असंख्य शाखा नदियां बह गई हैं जो जमीनकी उत्पादिका शक्ति और कृषिकार्यमें सहायता पहुंचाती हैं। गङ्गाके उपकूलदेशमें बाढ़का जल ही कृषिका प्रधान अवलम्बन है। कोशीनदीकी गति परिवर्त्तित हो जानेसे जिलेका उत्तर-पूर्वांश श्रीहीन हो गया है। पहले जो निम्न तराई प्रदेश श्यामल धान्यश्रेत्रसे शोभित रह कर उर्वरताकी पराकाष्ठा दिखलाता था, अभी वह अरण्यमें पर्यवसित हो कर व्याघ्र महिषादिके आवासमें परिणत हो गया है। भागलपुर नगरके दक्षिणी भूभागने क्रमशः उन्नत हो कर पर्वताकार धारण किया है। महुए और आम्र काननको छोड़ कर यहां कपासके वृक्ष भी देखे जाते हैं।

नदियोंमें गङ्गा ही सर्वप्रधान है। अलावा इसके उत्तरांशमें कोशी, तिलयुगा, वाती, दिमड़ा, तलवा, परवाण, धूमान, चलौनी, लोरण, कटना, दौस और घागरी आदि कई शाखा नदियां बहती हैं। दक्षिणांशमें एक मात्र चन्दन नदी ही उल्लेखयोग्य है। बड़ी-बड़ी नदियोंमें बारहों महीने नावें आती जाती हैं।

यहां रेशमकी खेती होती है। खनिज पदार्थमें गन्धक, ताँबा, लोहा आदि पाया जाता है।

इस स्थानका कोई प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। यहांकी चम्पानगरी महाभारतोक्त अङ्गराज कर्णकी राजधानी थी। स्थानीय कर्णगढ़ पर्वत और अनेकानेक कीर्त्तियाँ आज भी महावीरकर्णके गौरवकी घोषणा करती हैं। यूएनचुवंग (Hiuen Tsiang)के वर्णनसे मालूम होता है, कि जिस समय बौद्धोंकी प्रधानता थी उस समय यहां हजारों सङ्घाराम प्रतिष्ठित हुए थे

और ७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें वे सभी नष्ट भ्रष्ट कर डाले गये। उस समय हीनयान मतावलम्बी प्रायः दो सौ बौद्धाचार्य धर्मालोचनामें व्यापृत थे। एतद्भिन्न यहां विभिन्न साम्प्रदायिक देवमन्दिर थे जिनमेंसे पथरघाटा पर्वतशिखरके मन्दिर ही उल्लेखयोग्य हैं।

शिलालिपि पढ़नेसे जाना जाता है, कि मगधके गुप्तवंशीय महाराजाधिराज परम भट्टारक आदित्यसेन देव और पालवंशीय राजा नारायण पालदेवने यहां अपना आधिपत्य फैलाया था।

मुसलमानी अमलदारीमें यह विहार प्रदेशके अन्तर्भुक्त था और चम्पा आदि स्थान सामान्य परगने-रूपमें गिने जाते थे। १७६५ ई०में इष्ट-इण्डिया-कम्पनीको जब बङ्गालकी दीवानी मिली, तब यह जिला मुङ्गेर सरकारकी पूर्व सीमाके रूपमें गण्य हो कर मुसलमान नवाबके अधीन था। उस समय गङ्गाका दक्षिणांशवर्त्ती चैपरगना भागलपुरसे पृथक् था। १७६६ ई० पर्यन्त यहांका राजस्वसंग्रह और शासन-कार्यका भार किसी देशीय कर्मचारीके हाथ सपुर्द रहा। उसी सालके शेष भागमें राजस्व और प्रयोजनीय अन्यान्य विषयोंका विशेष विवरण जाननेके लिये राजमहलसे एक अङ्गरेज-परिदर्शक नियुक्त हुए; किन्तु वे अच्छी तरह कृतकार्य न हो सके। १७७२ ई०में इस देशमें सुशासन स्थापित करनेके उद्देश्यसे कम्पनी बहादुरने स्वकीय असाधारण अध्यवसाय-गुणसे तथा स्थानीय जमींदारोंकी सहायतासे कलकृर क्लिभलैण्ड द्वारा थोड़े ही दिनोंके अन्दर शासनशृङ्खला स्थापन कराई थी। इस समय इसके दक्षिण और पश्चिमांशमें भारी उपद्रव होता था। उन्होंने उक्त स्थानको पुनः पुनः आक्रमण और लूट करके ऐसा विपर्यस्त कर डाला था, कि उसकी शासन निर्देशक कोई सीमा निश्चित न रही। उसकी सीमा निर्देश करनेके लिये १७७४ ई०में एक स्वतन्त्र कर्मचारी नियुक्त किया गया।

राजस्वसंग्रह और दण्डविधि प्रतिष्ठाके साथ साथ यहांकी सीमाका कुछ परिवर्त्तन हुआ है। १७७७से १७७८ ई०के मध्य दस्युदलने प्रायः ४४ ग्राम लूट कर जला दिये। राजस्वसंग्राहक क्लिभलैण्डके यत्नसे (१७८० ई०में) यहांका दस्युप्रभाव जाता रहा। दस्युदलका प्रभुत्व जब बिलकुल खर्व हो गया, तब यहां कृषिवाणिज्यकी विशेष उन्नति हुई। १८६४ ई०में गङ्गाके उत्तर तीरवर्त्ती ७०० वर्गमील जमीन इस जिलेके अन्तर्भुक्त की गई और १८७४ ई०में खड़गपुर परगनेको भागलपुरसे पृथक् कर मुङ्गेर जिलेके अधीन किया गया।

यहांके विभिन्न स्थानमें अनेकानेक प्राचीन कीर्त्तियोंका निदर्शन पाया जाता है। भागलपुर नगरके सन्निकटस्थ दो मुसलमानतीर्थ वा मसजिद और जैन ओसवाल सम्प्रदायियोंके दो मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं। कर्णगढ़ पर्वतके क्लिभलैण्डस्तम्भ और गुहादि देखने लायक हैं। एतद्भिन्न पथरघाटा, मायागञ्ज, कहलगांव आदि स्थानोंमें सैकड़ों हिंदूमन्दिर और गुहादिका भग्नावशेष विद्यमान है। बङ्गके शेष स्वाधीन मुसलमान-राजा महमूदशाहका कहलगांवमें देहान्त हुआ था। दक्षिणमें सुलतानगञ्ज, भागलपुर, कहलगांव, पीरपैंती, बेलहर, अमरपुर, बाराहाट, जयपुर और बांका तथा उत्तरमें मधेपुरा, किशनगञ्ज, बनगांव, प्रतापगञ्ज, विहपुर और सुपोल आदि स्थान यहांके वाणिज्यकेन्द्र समझे जाते हैं। गङ्गातीरवर्त्ती सुलतानगञ्जके दो गण्डशैलोंमेंसे एकके शिखर पर मसजिद और दूसरे पर गैबीनाथका मन्दिर प्रतिष्ठित है। यह मन्दिर गङ्गाकी बीच धारमें अवस्थित है। इस स्थानका दृश्य बड़ा ही मनोरम है। सुलतानगञ्ज देखो। इसी जिलेमें सिंहेश्वर नामक एक प्रसिद्ध स्थान है जहां प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है। इस मेलेमें बहुतसे हाथी बिकनेको आते हैं। यहांका मन्दार-पर्वत हिंदूका एक पवित्र तीर्थ समझा जाता है। वहां प्रतिवर्ष तिलासंक्रान्तिमें एक भारी मेला लगता है, जिसमें दूर दूर देशके लोग समागम होते हैं। पर्वत प्रायः ७०० फुट ऊंचा है। इसके चारों ओर समुद्रमन्थनज्ञापक सर्प खोदित देखा जाता है। तीर्थमाहात्म्य छोड़ कर यहां प्रत्नतत्त्वविदोंके आदरणीय अनेक पदार्थ हैं। पर्वतके शिखर पर तथा पाददेशमें एक वृहत् पुष्करिणी है। इस पुष्करिणीमें उक्त उपलक्षको यात्रिगण स्नान करते हैं। कहते हैं, कि इसमें स्नान करनेसे सभी पाप जाते रहते हैं, इसीसे इसका

पापहरणी नाम-रखा गया है। यहां ध्वंसावशिष्ट दुर्गादि-व्यतीत बौद्धयुगके अनेक मन्दिरादिका निदर्शन पाया जाता है।

इस जिलेमें तरह तरहके धान और नीलकी खेती होती है। पहले यहां रेशम वहुल प्रमाणमें प्रस्तुत होता था, पर अभी उसका ह्रास हो गया। यहांका वाफ़्ता तमाम मशहूर है और दूर दूर देशोंमें उसकी रफ्तनी होती है। जिस विस्मयकर डेंगू ज्वरकी कथा आज भी वङ्गवासीके हृदयमें जागरूक है उसकी उत्पत्ति सबसे पहले इसी जिलेमें १७७२ ई०को हुई थी।

इस जिलेमें २ शहर और ३०६३ ग्राम लगते हैं। जन-संख्या बीस लाखसे ऊपर है जिनमेंसे सैकड़े पीछे ८९ हिन्दूकी और १० मुसलमानकी संख्या है तथा शेष १में अन्यान्य जातियाँ हैं।

जिलेकी प्रधान उपज है धान, गेहूं, मटर, चना. मकई, ज्वार, तिल, अरहर और ईख। कोयले, लकड़ोके कोयले, रूई, मसाले, चने, रेशम और तम्बाकूकी दूसरे दूसरे देशों से आमदनो और यहांसे धान, चावल, गेहूं, चने, तेल-हन और नोलकी रफ्तनी होती है। राजकार्यकी सुविधा-के लिये यह जिला चार उपविभागोंमें विभक्त है, यथा—भागलपुर, वांका, मधेपुरा और सुपौल। डिष्ट्रिक् मजि-ष्ट्रेट-कलेकृर तथा उनके सहकारी पांच डिपुटो कलकृर और दो सव-डिपुटी कलक्टर द्वारा राजकार्य परिचालित होता है।

विद्याशिक्षामें यह जिला वहुत पीछे पड़ा हुआ है। सैकड़े पीछे ४ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। पर अव यहांके अधिवासियोंका ध्यान इस ओर अधिक झुका है। प्रतिवर्ष नये नये स्कूल खोले जा रहे हैं। अभी कुल मिला कर १५११ स्कूल हैं जिनमेंसे १ आर्ट स्कूल, २५ सेकण्ड्री, १०६२ प्राइमरी और ३३१ स्पेशल स्कूल हैं। इनमेंसे तेजनारायण जुबली कालेज और कर्णगढ़की संस्कृत पाठ शाला ही प्रधान है। स्कूलके अलावा २० अस्पताल हैं। जिलेकी आवहवा वहुत स्वास्थ्यप्रद है, पर गङ्गाके उत्तर कोशी किनारे अवस्थित किशुनगञ्ज इलाकेकी आव-हवा विलकुल खराव है। वहां अकसर मलेरियाका प्रकोप देखा जाता है। जिलेका ताप-परिमाण ६२ से ८९ और अप्रिल मासमें ९७° चढ़ आता है। वार्षिक वृष्टिपात ५१ इञ्च है।

३ भागलपुर जिलेका सदर उपविभाग। यह अक्षा० २५° ४' से २५° ३०' उ० तथा देशा० ८६° ३१' से ८७° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ९३३ वर्ग-मील और जनसंख्या छः लाखके करीव है। इसमें भागलपुर और कहलगाँव नामके २ शहर और ८३० ग्राम लगते हैं।

४ उक्त जिलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २५° १६' उ० तथा देशा० ८७° ०' पू० गङ्गाके दाहिने किनारे अव-स्थित है। कलकत्तेसे रेलवे द्वारा इसको दूरी २६५ मील और नदी द्वारा ३२९ मील है। जनसंख्या अस्सी हजारके करीव है। यहां ई-आई-रेलवेकी लूप लाइनका एक स्टेशन है जहांसे इसको एक शाखा-लाइन वौंसी तक और दूसरी वो० एन० डवलूको वरारी तक दौड़ गई है। वरारीघाटमें फेरी स्टीमर द्वारा मुसाफिर पुण्यसलिला भागीरथी पार कर वी. एन. डवलूको ही दूसरी गाड़ी पर सवार होते हैं। यहां गङ्गातटका दृश्य वड़ा ही मनो-रम है। यहांके गङ्गातट पर अवस्थित वरारीके जमीं-दार ठाकुरजोकी प्रकाण्ड अट्टालिकाएँ और मन्दिरादि इसकी शोभाको और भी परिवर्द्धित करते हैं। इनमेंसे 'हरिमन्दिर' उल्लेखयोग्य है। उक्त मन्दिर स्वर्गीय वावू श्रीमोहनठाकुरकी अक्षयकीर्त्तिका परिचायक है। उक्त उदारचेता दयापरवश महाशयके धार्मिक सुपुत्र श्रीकेशव-मोहन ठाकुर अपने पूज्य पिताकी अक्षय कीर्त्तिको अक्षुण्ण रखनेमें विशेष यत्नवान् हैं।

भागलपुर स्टेशनसे थोड़ी ही दूर उत्तर दो वड़ी वड़ी धर्मशालाएँ हैं। शहर और शहरतल्लीमें मुसलमानों-की कई एक मसजिदें और ओसवाल जैनोंके दो विख्यात मन्दिर हैं। इनमेंसे एक मन्दिर जगत्‌शेठ कर्त्तृक प्रति-ष्ठित है। हिन्दूमन्दिरोंमेंसे 'वूढ़ानाथका मन्दिर' ही उल्लेख योग्य है। यह शहरके उत्तर गङ्गाके किनारे प्रतिष्ठित है।

पहले ही कहा जा चुका है कि मुसलमानी अमलदारी-में यहांकी विशेष श्रीवृद्धि हुई थी। वङ्गालके अफगान-शासन कर्त्ताओंका दमन करनेके लिये सम्राट् अक-वर शाहने १५७३ और १५७५ ई०में मुगल-सेना भेजी।

दूसरी वारके युद्धमें मानसिंह परिचालित सेना-दलने इसी नगरमें छावनी डाली थी। तभीसे यहां मुगलसेना-निवेश स्थापित हुआ था।

१५९२ ई०में मुगलसेनाके उड़ीसा-विजयमें प्रेरित होने पर यह स्थान किसी फौजदारके शासनाधीन हुआ।

भागलपुरके राजस्व संग्राहक और सुशासन प्रतिष्ठाता मि० अगष्टस क्लिभलैण्ड साहवके स्मरणार्थ यहां दो स्मृति-स्तम्भ विद्यमान हैं।

शहरसे उत्तर पूर्वमें अदालत पड़ती है। इसका अहाता बहुत लम्बा चौड़ा है। यहीं पर सब अदालत लगती हैं। इस स्थानसे थोड़ी ही दूर पूर्व सेण्ट्रल जेल-से सटा हुआ 'आनन्दगढ़' नामक एक सुन्दर राजप्रासाद है। यह भवन वास्तवमें अपने नामको सार्थक बनाता है। यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं होती, कि भागलपुर शहर भरमें तथा आसपासके स्थानोंमें इस जोड़का सुन्दर भवन नहीं है। इसके अभ्यन्तर भागमें सूक्ष्म-शिल्प-कार्य झकाझक चमक रहे हैं। सदर फाटकसे ले कर प्रासाद तक दोनों बगलमें कतारकी कतार तरह तरहके पेड़ लगे हैं। सच पूछिये, तो यहांकी शोभा मनको मोहती है। भवनके चारों ओर जो आमकी वाटिका है वह हृदयकी विचित्तताका सञ्चार करती है। इस सुरम्य अट्टालिकामें बरारीके जमींदार वावू सूर्यमोहन ठाकुर रहते हैं। आप स्वर्गीय वावू प्राणमोहन ठाकुरके कनिष्ठ पुत्र और स्टेटके तीन पट्टीदारोंमेंसे एक हैं। आपके चचा स्वर्गीय वावू उग्रमोहन ठाकुर मरते समय अपनी जमींदारी जो करीब एक लाख रु० आयकी है, इन्हींके नामसे विल कर गये हैं। वाल्यावस्थामें ही आप माता पिता-हीन हो चुके हैं। आप अभी हैं तो नावालिग, पर जमींदारी सम्बन्धी कार्योंमें विलक्षण पारदर्शिता रखते हैं। आपका स्वभाव बहुत हंसमुख है और प्रजाके दुःख सुखको सुननेके लिये सदैव तत्पर रहते हैं। आपकी दानशीलता बहुतोंके लिये आदर्शरूप है। आपने पैतृक सम्पत्तिके रूपमें धार्मिक प्रेमकी अभिरुचि प्राप्त की है।

आप सभी पट्टीदार स्वर्गीय वावू मदनमोहन ठाकुर-के वंशधर हैं। यहां पर यह कह देना अत्यावश्यक है, कि मदनमोहन ठाकुर एक उच्च दर्जेके वकील थे। वकालतसे उन्होंने अच्छा नाम कमा लिया था। 'वनैली-राज' शब्दमें जो लिखा गया है, कि वे वावू वेदानन्दके यहां नौकरी करते थे, यह बात असत्य-सी प्रतीत होती है। कारण, बरारी ष्टेटसे हमें जो विवरण मिला है, उसमें इसका कहीं भी जिक्र नहीं है, वल्कि साफ साफ लिखा है कि, 'ष्टेटके प्रतिष्ठाता वावू मदन ठाकुर एक अच्छे वकील थे। उनका स्वतन्त्र कारोवार था और बहुत-सी नीलकी कोठियां भी थीं, इत्यादि।' अतः इस विश्वस्त सूत्रसे उनका बनैलीराजके अधीन काम करना असत्य ठहरता है। बारारी देखो।

शहरकी जनसंख्या ७५७६० है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ७०, मुसलमानकी २९ और शेष १में ईसाई तथा जैन हैं। यहां १८६४ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। यहांका टी· एन· जुवली कालेज स्थानीय जमींदार वावू तेजनारायणसिंह द्वारा १८८७ ई०में स्थापित हुआ है। अभी यह कालेज शहरसे थोड़ी ही दूर पश्चिम नाथनगरके समीप एक विशाल भवनमें उठ कर चला गया है। इसमें छात्रावास भवन भी संलग्न है। उक्त कालेजके अलावा एक सरकारी, तीन सरकारी साहाय्य-प्राप्त हाई स्कूल, एक शिक्षक ट्रेनिंग स्कूल तथा कई एक मिडिल और प्राइमरी स्कूल हैं। ट्रेनिंग स्कूलके पास ही सरकारी अस्पताल और पुलिस ट्रेनिंग स्टेशन है। यहांके कारागारमें बहुत बढ़ियां कम्बल कैदियों द्वारा तैयार होता है। इसीके पास होमें स्थानीय जमींदार वावू रमणीमोहन द्वारा प्रतिष्ठित एक मवेशी अस्पताल भी है। शहरकी आवहवा कुल मिला कर स्वास्थ्यप्रद है।

भागलपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत घर्घरा नदी तीरस्थ एक नगर। यह अक्षा० २६° १०´ ४०´´उ० तथा देशा० ८३° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जन-साधारणका विश्वास है, कि जामदग्न्य परशुरामने यहां पर जन्मग्रहण किया था। यहां एक सुप्राचीन प्रस्तर स्तम्भ विद्यमान है; किसीके मतसे परशुराम और किसीके मतसे राजा भीमसिंह उस स्तम्भके स्थापयिता माने जाते हैं। अलावा इसके यहां बहुसंख्यक ध्वंसा-वशेषक निदर्शन है।

भागलि (सं० पु०) भगला अपत्यार्थे वाह्वादित्वात् इञ् (पा ४।१।९६) १ भगलका गोत्रापत्य । २ तन्नामक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि ।

भागलेय (सं० पु०) भागलिका गोत्रापत्य ।

भागवंत (हिं० वि०) भाग्यवान्, खुशकिस्मत ।

भागवत (सं० क्ली०) भगवतो भगवत्या वेदं भगवत् 'तस्येद' इत्यण् । अष्टादश पुराणके अन्तर्गत एक महा-पुराण ।

"यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ॥"
"लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धे मसिंहसमन्वितम् ।
प्रोष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् ॥"

(मत्स्यपु० पुराणदानप्रस्ताव)

जो इस महापुराणको लिख कर प्रोष्ठपदी पूर्णिमामें दान करते हैं, वे विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं। यह ग्रन्थ वेदव्यास-प्रणीत है और इसमें अठारह हजार श्लोक हैं।

भागवत-ग्रन्थ वेदान्तकी टीका स्वरूप है। वेदान्त-शास्त्रमें ब्रह्मका जो निगूढ़ तत्त्व प्रकट किया गया है, भागवतमें उसीकी विस्तृत रूपसे व्याख्या की गई है। यह भागवतग्रन्थ अमृत-स्वरूप है। भागवतके प्रारम्भमें ही लिखा है :—

"निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतं द्रवसंयुतम् ।
पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।"

(भाग० १।१।३)

यह वाक्य यथार्थमें ही सत्य है। वेदान्तके प्रथम-सूत्रमें "जन्माद्यस्य यतः" आदि सूत्र निविष्ट हैं। भाग-वतके भी प्रारम्भमें "जन्माद्यस्य यतोन्वयादितरतश्चार्थे-ष्वभिज्ञः स्वराट्" इत्यादि वर्णित हुआ है। सम्पूर्ण वेदान्त-शास्त्र अध्ययन करनेके वाद भागवतका अध्ययन करनेसे वेदांतका मर्म अच्छी तरह समझमें आ जाता है। यह कहनेमें अत्युक्ति नहीं कि भागवतकी तरह भगवद्भक्ति-प्रधान और वेदांतका तात्पर्य-बोधक ऐसा ग्रन्थ दूसरा नहीं है। भागवत महापुराण है या उपपुराण, इस विषय-को ले कर बहुत मतभेद है। इस सम्बन्धमें नाना पुराणों-में नानारूप मत पाया जाता है। कोई कोई इसको उपपुराण और देवी भागवतको महापुराण कहते हैं।

पुराण शब्दमें विस्तृत विवरण देखना चाहिये।

भागवत (सं० त्रि०) भगवान् हरिः भगवती दुर्गा वास्य देवतेति भगवत् (सास्य देवता । पा ४।२।२४) इति अण् । भगवद्भक्त, जो भगवान्‌का भक्त हो। लक्षण इस प्रकार कहा है—

"सर्वदेवान् परित्यज्य नित्यं भगवदाश्रयः ।
रतस्तदीयसेवायां स भागवत् उच्यते ॥"

(पाद्मोत्तरखं० ९९ अ०)

जो अन्य समस्त देवताओंको छोड़ कर भगवान्‌का आश्रय लेते हैं और उन्हींकी सेवामें रत रहते हैं, वे ही भागवत हैं।

"सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥"

(हरिभक्तिवि०)

जो सकल भूतमें अपना भगवद्भाव अवलोकन करते हैं और भगवान् एवं आत्मामें सबको देखते हैं वे ही भाग-वत प्रधान हैं।

"शिवे च परमेशाने विष्णौ च परमात्मनि ।
समबुद्ध्या प्रवर्त्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥" (हरिभक्तिवि०)

जो शिव, परमेश्वर, विष्णु और परमात्मामें समान बुद्धि रखते हैं, वे ही भागवत-प्रधान हैं। इस श्लोकके साथ 'सर्वदेवान् परित्यज्य' इस श्लोकका विरोध है; क्योंकि पहले कहा गया है कि जो सम्पूर्ण देवताओंको छोड़ कर भगवान्‌का आश्रय लेते हैं और यहां कहा है, कि जो शिव और विष्णु आदिको समान समझते हैं वे ही भागवत हैं। जरा ध्यानसे विचार किया जाय, तो यहां विरोध कुछ भी नहीं है। विष्णु की भक्ति करो और अन्य देवताओंको निन्दा करो ऐसा अभिप्राय यहां नहीं है। अनन्य चित्तसे भगवानका भजन करना ही इसका तात्पर्य है। जिनके समीप सर्वदा भागवत रहता है जो उस शास्त्रको प्रतिदिन पूजा करते और वही जिनको सबसे अधिक प्रिय है, वे ही महा-भागवत हैं।

"येषां भागवतं शास्त्रं सदा तिष्ठति सन्निधौ ।
पूजयन्ति च ये नित्यं ते स्युर्भागवता नराः ॥

येषां भागवतं शास्त्रं जीवितादधिकं भवेत्।
महाभागवताः श्रेष्ठा विष्णुना कथिता नराः॥"
(हरिभक्तिवि० १० वि०)

हरिभक्तिविलासके १०वें विलासमें भागवत (भगवद्भक्त)-का विस्तृत विवरण लिखा है, अति संक्षेपमें उस विषयकी यहां आलोचना की जाती है।

जो तुलसी-काननको देख कर भक्तिके साथ नमस्कार करते हैं, तुलसीकाष्ठकी माला धारण करते हैं और तुलसीकी गन्धसे परम पुलकित हो जाते हैं, वे भागवत प्रधान हैं। जो सर्वदा विष्णुकी कथा श्रवण करते हैं विष्णुके माहात्म्यादि कीर्त्तन करते हैं, विष्णुकी कथासे जिन्हें परम प्रीति है, वे ही भागवत प्रधान हैं।

जो सर्वदा यज्ञेश्वर विष्णुकी प्रार्थना करते हैं और शुभ विष्णुक्षेत्रमें विष्णुकी प्रतिमा बना कर उनकी पूजा करते हैं और मनवचनकामसे विष्णुपरायण हैं, वे ही भागवत हैं। जो ब्राह्मण तापादि पञ्चसंस्कारोंसे युक्त हैं, नव इज्या-कर्मकारक हैं, अर्थपञ्चक-विशिष्ट हैं, वे ही भागवतप्रधान हैं। जो महाविपत्तिमें पड़ने पर भगवान् विष्णुके प्रति अविचलित भक्ति रखते हैं, जिनका चित्त भगवान् विष्णुके सिवा अन्यत्र निविष्ट नहीं होता, वे ही भागवतप्रधान हैं।

"तापादिपञ्चसंस्कारी नवेज्या कर्मकारकः।
अर्थपञ्चकविद्विप्रो महाभागवतो हि सः॥
यस्य कृच्छ्रगतस्यापि केशवे रमते मनः।
न विच्युता च भक्तिर्वै स वै भागवतो नरः॥
आपद्गतस्य यस्येहभक्तिरव्यभिचारिणी।
नान्यत्र रमते चित्तं स वै भागवतो नरः॥"
(हरिभक्तिविलास, १० वि०)

भागवती (सं० स्त्री०) वैष्णवोंकी एक प्रकारकी कंठी जिसे वे गलेमें पहनते हैं और जिसके दाने बिलकुल गोल गोल होते हैं।

भागवतोत्पल—स्पन्दप्रदीप नामक तन्त्रग्रन्थके प्रणेता।

भागवान (हिं० वि०) भाग्यवान् देखो।

भागविज्ञेय (सं० पु०) सांख्यकारिकाधृत दार्शनिक-भेद।

भागवित्त (सं० पु०) ऋषिभेद।

भागवित्तायन (सं० पु०) भागवित्तिका गोत्रापत्य।

भागवित्ति (सं० पु०) चूड़नामक ऋषिभेद।

भागवित्तिक (सं० पु०) भागवित्तिः कुत्सायां यून्यपत्ये वा ढक्। तदीय कुत्सित युवा अपत्य।

भागवृत्ति (सं० स्त्री०) उणादिवृत्तिभेद।

भागशस् (सं० अव्य०) भाग-वारार्थे शस्। भाग, भागमें।

भागसिंह—पञ्जावके एक अछलू-वालिया सरदार। इन्होंने जेसासिंहके वाद मिसलके अधिपति हो कर रामगड़ियायोंके साथ कई वार युद्ध किया था। १८०१ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

भागसिद्ध (सं० पु०) एक प्रकारका हेत्वाभास।

भागहर (सं० त्रि०) हरतीति हृ-अच्, भागस्य हरः। अंशग्राही, भाग या अंश लेनेवाला।

भागहार (सं० पु०) भागस्य हारो हरणम्। गणितमें किसी राशिको कुछ निश्चित अंशोंमें विभक्त करनेकी क्रिया, भाग। भाग देखो।

भागहारिन् (सं० त्रि०) भागं हरति हृ-णिनि। अंशग्राही।

भागा—पञ्जावप्रदेशके कांगड़ा उपविभागके मध्य हो कर प्रवाहित एक गिरिनदी। यह गिरिसङ्कटके उत्तर-पश्चिम स्थित तुषारावृत हिमशिखरसे निकल कर जनशून्य पर्वत पर प्रायः ३० मील विचरण करती हुई लाहुल उपत्यकाके कैलङ्ग ग्रामके निकट हो कर बह गई है। पीछे यह तण्डो नगरके समीप चन्द्र नामक शाखानदीसे मिल कर 'चन्द्रभागा' नामसे बजती है।

भागापहारजाति (सं० स्त्री०) भग्नांशके जिस हर द्वारा समान किया जाता है अथवा योग या वियोग द्वारा किसी एक भग्नराशिको दूसरी राशिके साथ समान किया जाता है, ऐसा अङ्कप्रकरणविशेष।

भागार्थिन् (सं० त्रि०) भागं अर्थयति अर्थ-णिनि। भागप्रार्थी।

भागार्ह (सं० त्रि०) भागस्य अर्हः। जो भाग देनेके योग्य हो, विभक्त करनेके लायक।

भागासुर (सं० पु०) पुराणानुसार एक असुरका नाम। (गणेशपु०)

भागिक (सं० त्रि०) भाग (भागादयश्च। पा ५।१।५६)

इति पक्षे ठन्। वृद्धिके लिये दत्त मुद्रादि, वह ऋण जो ब्याज पर दिया जाय।

भागिन् (सं० त्रि०) भज-घिनुण्। १ अंशविशिष्ट। (पु०) २ शिव। ३ हिस्सेदार, शरीक। ४ अधिकारी, हकदार।

भागिनेय (सं० पु०) भगिन्या अपत्यं भगिनी (स्त्रीभ्यो-ढक्। पा ४।१।१२०) इति ढक्। भगिनीपुत्र, बहनका बेटा, भानजा। पर्याय—स्वस्त्रीय, स्वस्त्रिय। भगिनीपुत्र मुख्य प्रतिनिधि है अर्थात् प्रतिनिधि देनेमें भागिनेय ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है। जिस प्रकार पुत्रादिका प्रतिपालन करना कर्त्तव्य है, उसी प्रकार भागिनेयका भी उचित है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये लोग भागिनेयको गोद नहीं ले सकते, किन्तु शूद्रके लिये निषिद्ध नहीं है।

"दौहित्रो भागिनेयश्च शूद्रे स्तु क्रियते सुतः।
ब्राह्मणादित्रये नास्ति भागिनेयसुतः क्वचित्॥"

(दत्तकचन्द्रिका)

भागिनेयकी मृत्यु पर मामाको पक्षिणी अशौच होता है और मामाकी मृत्यु पर भी भागनेयको उसी प्रकार अशौच होता है। (शुद्धितत्त्व)

भागिनेयी (सं० स्त्री०) भगिनी-ढक् स्त्रियां ङीप्। भगिनीकी कन्या, वहनकी लड़की, भानजी।

भागी (सं० पु०) भागिन् देखो।

भागीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन भागीय ईयसुन्, इनो-लोपः। अतिशय भागयुक्त।

भागीरथ (सं० पु०) भगीरथ देखो।

भागीरथभारती—एक परिव्राजक परमहंस। १८७४ ई०-में ये विद्यमान थे। इन्होंने पैदल दक्षिणमें सेतुबन्ध रामेश्वर, पूर्वमें आसाम-सीमान्तवर्त्ती पर्वतमाला, पश्चिममें काबुल, कन्धार, हिङ्गलाज और खोरासन तथा उत्तरमें हिमालय पर्वत पार कर भोटदेशके मध्य होते हुए पश्चिमकी ओर चीनतातारके अन्तर्गत यारकन्द नगर तक परिभ्रमण किया था। १८११ ई०में ये एकदङ्गली गोसांईके जहाज पर चढ़ कर अरवदेशके मस्कट नगरमें पहुंचे। वहांसे फिर समुद्रपथसे मोरीसस द्वीप गये। मोरीसस द्वीपसे लौटते समय इन्होंने आदन और मक्का नगरको पीछे छोड़ते हुए १७।१८ दिनके बाद भूमध्य-सागरके पश्चिमोत्तर-देशमें एक पर्वतके ऊपर ज्वालामुखीका दर्शन किया था।*

भागीरथी (सं० स्त्री०) भगीरथस्येयं अण् ङीप्। गङ्गा, जाह्नवी। राजाभगीरथ ही इस लोकमें गङ्गाको लाये थे। इसीलिये उसका यह नाम पड़ा।

"भगीरथेन सा नीता तेन भागीरथी स्मृता।
इत्येव कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यान मुत्तमम्॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० गङ्गोपाख्या०)

विशेष विवरण गङ्गा शब्दमें देखो।

भागीरथी—वङ्गदेशमें प्रवाहित गङ्गानदीकी एक शाखा। यह मुर्शिदाबाद जिलेके सूती थानाके अन्तर्गत छापघाटी ग्रामकी मूल नदीसे विच्छिन्न हो कर दक्षिणकी ओर दौड़ गई है। विधुपड़ाके समीप मुर्शिदाबाद जिलेका परित्याग कर पलाशीके विख्यात युद्धक्षेत्र होती हुई नवद्वीपके निकट यह नदी जलङ्गीके साथ मिलती है। पीछे हुगली नामसे कलकत्ता राजधानीके सम्मुख हो कर वह गई है। जलङ्गीको छोड़ कर मुर्शिदाबाद जिलेके वांसलोई, पागला, चोरा, डेकरा, अजय और खेरी नामक छोटी छोटी स्रोतस्विनी इसके कलेवरको बढ़ाती है। जङ्गीपुर, मुर्शिदाबाद, जियागञ्ज, वहरमपुर, कटोआ, नवद्वीप, हुगली, कलकत्ता आदि नगर भागीरथीके किनारे अवस्थित है।

हिन्दू लोग इस पुण्यतोया भागीरथीको परम पवित्र मानते हैं। पुराणमें सगरवंशके उद्धारके लिये सूर्यवंशावतंस भगीरथ कर्त्तृक गङ्गा लानेकी जो किम्बदन्ती है, इस पवित्रसलिला शाखा नदीके ऊपर वही आरोपित हुई है। कहते हैं, कि भगीरथ वङ्गदेश हो कर गङ्गादेवीको ले गये थे, इसी कारण यहां पर देवनदीका भागीरथी नाम पड़ा है। भागीरथ जब कपिलके शापसे भस्मीभूत सगरवंशके प्रकृत पथको न दिखला सके। तब गङ्गा,

* परमहंसका कहना है, कि वह पर्वत रूमशाम देशके निकटवर्त्ती है। तुरुष्कका नाम रूम और सिरियाका नाम शाम है। सुतरां वह ज्वालामुखी सिपारी द्वीपस्थ आग्नेयगिरिके जैसा प्रतीत होता है।

सौ धाराओंमें विभक्त हो कर उनके अन्वेषणमें निकली। इसीसे भागीरथीका शतमुखी मुहाना नदीजालसे विजड़ित है। इस नदीके मुहाने और समुद्रके मध्यवर्त्ती सागरद्वीपमें सागरयात्रीगण सगरवंशकी लीलाभूमिके दर्शन करते हैं।

२ युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलेमें प्रवाहित गङ्गाकी अङ्गभूत नदीविशेष। यह गङ्गोत्तरी शिखरकी तुङ्गभूमिसे निकल कर गढ़वाल राज्यके पार्वतीय वक्षको जलसिक्त कर देवप्रयागके निकट अलकनन्दासे मिलती है। वहां पर इसका आकार छोटा होने पर भी हिन्दू लोग इसीको भागीरथसे लाई गई पवित्र वारिधारा मानते हैं। बहुतोंका विश्वास है, कि यह भागीरथी अलकनन्दा-सम्मिलन पर गुप्त भावमें गङ्गा नामसे प्रवाहित हो कर पुनः मुर्शिदाबादके निकट स्वतन्त्रता लाभ करके भागीरथी नामसे सागरसङ्गममें मिलती है। गङ्गा देखो।

भागीरथी—युक्तप्रदेशके गढ़वाल राज्यके अन्तर्गत एक गिरिशृङ्ग। यह भागीरथीकी उत्पत्तिस्थान गङ्गोतरी-शिखरके समीप हो अवस्थित है। इसकी ऊँचाई समुद्रपृष्ठसे २१३६० फुट है।

भागुणिमिश्र—जलाशयप्रतिष्ठा और प्रसादप्रतिष्ठा नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भागुरि (सं० पु०) १ भागुरिस्मृतिके प्रणेता एक ऋषिका नाम। कमलाकरने इनका उल्लेख किया है। २ एक वैयाकरण और आभिधानिक। हलायुध, क्षीरस्वामी आदिने इनका नामोल्लेख किया है। ३ एक ज्योतिर्विद् (वृ० स० ४८।२) पर्याय—शतलुम्पक।

भागोजीनायक—महाराष्ट्र-देशवासी एक भील-सरदार। भीलोंकी नायकता ग्रहण कर ये अंग्रेजोंके विद्रोही हुए थे। १८५७० ई०में जब उत्तर-भारतमें सिपाही-विद्रोह जारी था, तब ये दक्षिण-भारतमें वैर-निर्यातनके उद्देशसे हाथमें तलवार ले अंग्रेजोंके विरुद्धाचारी हो गये थे।

पहले यह भील-सरदार अहमदनगरमें अंग्रेज-गवर्मेण्टके अधीन पुलिसमें काम करते थे। १८५५ ई०में ये दङ्गामें पकड़े जानेके कारण कैद किये गये। उस समय पार्श्ववर्ती भील राज्यमें भी विद्वेषाग्नि प्रधूमित हो रही थी। कहीं निजाम राज्यसे भील लोग आ कर अहमदनगर पर चढ़ाई न कर दे, इस भयसे अंग्रेज लोग विशेष सतर्क हो रहे थे। उत्तर भारतके सिपाही विद्रोहके भावी फलकी आशङ्कासे ही अंग्रेजोंने सबको अस्त्र-त्यागका आदेश दे दिया। भागोजी कारामुक्त होनेके बादसे प्रतिहिंसानलमें जर्जरित हो रहे थे। महासाहसी भागोजीको यह आदेश अच्छा नहीं लगा। वे अपनी जन्मभूमि नान्दूर सिङ्गोट ग्राम छोड़ कर निकट ही पूनासे नासिक जानेके मार्गमें दल बल सहित अवस्थिति करने लगे। उनकी गम्भीर प्रकृति उनकी शक्तिकी परिचायक थी। एक दिनमें उनके छत्र तले प्रायः ५० आत्मीय आ उपस्थित हुए। वे सभी अंग्रेजोंसे बदला लेनेको तयार थे।

इस संवादको पा कर अंग्रेजोंकी तरफसे लेफ्टनेन्ट हेनरी थेचर मात्र ५० सेनाको ले कर उनके दमनार्थ अग्रसर हुए। दोनों दलोंके संघर्षसे एक खण्ड-युद्ध हो गया। उसमें भीलोंके हाथसे हेनरी आदि कितने ही अंग्रेज भाग गये। इस युद्धसे उत्साहित हो कर समग्र भील-जातिने आ कर इनका साथ दिया। इस प्रकार क्रमशः उनके अधीन ७ हजार भील इकट्ठे हो गये। उक्त युद्धके १४ दिन बाद (ता० १८ अक्टोबरको) आकोलाके अन्तर्गत समशेरपुर पर्वत पर भागोजीके साथ अंग्रेज-सेनापति मेकनगी द्वारा परिपालित २६ पदातिकोंका संघर्ष हुआ। इस युद्धमें अंग्रेज पक्षके लेफ्टनेन्ट ग्रेहम और मि० चैपमैन आहत हुए थे।

एक ओर भील-विद्रोहके दमनके लिए अंग्रेज लोग जैसे व्यस्त थे दूसरी ओर विद्रोहीगण भी उसी प्रकार मत्तताके साथ नासिक, खानदेश और निजाम-राज्यमें युद्ध विग्रहादि द्वारा साधारणके हृदयमें आतङ्क उत्पन्न कर रहे थे। अब तक उन्होंने अहमदनगरमें पदार्पण नहीं किया था। १८५६ ई०में ग्रीष्मऋतुमें भागोजी और हरजी नामक भील सेनादलको ले कर अहमदनगर आ उपस्थित हुए। सङ्गमनेरसे ४ कोस दक्षिण-पूर्वमें अम्भोरादर नामक स्थानमें भील और अंग्रेजोंमें युद्ध हुआ। इस युद्धमें भीलपक्षके भागोजीके पुत्र यशवन्त मारा गया और कई एक घायल हुए।

फिर शीतके प्रारम्भमें भागोजीने भील दल एकत्र करके कोरहाला और कोपरगांव लूटा। इस संवादको

पा कर अंग्रेज-सेनापति नुटलने उनका पीछा किया। लगातार १४ दिन तक सह्याद्रिकी कन्दराओंमें घूमते हुए शत्रुकी आँखोंमें धूल झोंक फिर वे अहमदनगर जा पहुंचे। उसी वर्ष ११ नवम्बरको नासिक जिलेके अन्तर्गत सिन्नर उपविभागके मिंठसागर ग्राममें भागोजीके साथ अंग्रेज-सेनापति सूटरके साथ युद्ध हुआ। इस युद्धमें भागोजो नायक दलवल-सहित मारे गये। उनकी मृत्युके वाद दो-एक भील-सम्प्रदाय उनके साथ मिलनेके लिए अग्रसर हुए थे, परन्तु उन्हें शीघ्र ही अंग्रेजों द्वारा उपयुक्त दण्ड मिल गया था।

भाग्य (सं० क्ली०) भज्यतेऽनेन इति भज (ऋहलोर्ण्यत्। पा ३।१।१२४) इति ण्यत् (चजोः कुघिण्यतोः। पा ७।३।५२) इति कुत्वं। १ प्राक्तन, शुभाशुभकर्म। पर्याय—दैव, दिष्ट, भागधेय,नियति, विधि, प्राक्तन-कर्म, भवितव्यता शुभाशुभ कर्म।

भाग्यका सिद्धान्त प्रायः सभी देशों और जातियोंमें किसी न किसी रूपमें माना जाता है। हमारे शास्त्रकारोंका मत है, कि हम लोग संसारमें आ कर जितने अच्छे या बुरे कर्म करते हैं, उन सबका कुछ न कुछ संस्कार हमारी आत्मा पर पड़ता है और आगे चल कर हमें उन्हीं संस्कारोंका फल मिलता है। इसी संस्कारको भाग्य वा कर्म कहते हैं और इसीके द्वारा हम लोग सुख या दुःख पाते हैं। एक जन्ममें जो शुभ या अशुभ कृत्य किये जाते हैं उनमेंसे कुछका फल उसी जन्ममें और कुछका जन्मान्तरमें भोगना पड़ता है। इसी विचारसे यहां भाग्यके चार विभाग किये गये हैं, यथा—संचित प्रारब्ध, क्रियमाण और भावी। प्रायः लोगोंका यही विश्वास रहता है, कि संसारमें जो कुछ होता है, वह सदा भाग्यसे ही होता है और उस पर मनुष्यका कोई अधिकार नहीं होता।

"समुद्रमन्थने लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम्।
भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्॥" (उद्भट)

भाग्यमें जो होगा उसकी अन्यथा करनेका किसीका साध्य नहीं है।

२ उत्तर-फल्गुनी नक्षत्र। (त्रि०) ३ भागिक, जो भाग करनेके योग्य हो।

भाग्यवत् (सं० त्रि०) भाग्य अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वं। भाग्ययुक्त, भाग्यवान्।

भाग्यभाव (सं० पु०) भाग्यविषयक शुभाशुभ विषय, तकदीर सम्बन्धी अच्छा या बुरा भाव। जातकके जन्म-लग्नसे नवम स्थानमें भाग्यविषयक शुभाशुभ विचार किया जाता है। जातिकाभरणमें लिखा है:—

"भाग्यस्थानं परं ज्ञेयं विहाय भवनान्तरम्।
आयुर्विद्या यशो वित्तं सर्वं भाग्ये प्रतिष्ठितम्॥
विहाय सर्वं गणकैर्विचिन्त्यं भाग्यालयं केवलमत्र यत्नात्।
आयुश्च माता च पिता च वंशो भाग्यन्वितेनैवे
भवन्ति धन्याः॥"

तनु आदि अन्यान्य स्थान त्याग कर पहले भाग्यस्थानकी चिंता करना विशेषरूपसे आवश्यक है, क्योंकि आयु, विद्या, यशः और वित्त ये सभी भाग्याधीन हैं। इस कारण ज्योतिर्विद् पण्डितोंको अन्यान्य चिन्ता छोड़ कर यत्नके साथ भाग्य-चिन्ता करनी चाहिए। भाग्यधर व्यक्तिका जीवन, माता, पिता और वंश सव कुछ धन्य है।

लग्न और चन्द्रसे नवम स्थानको भाग्यचक्र कहते हैं। उस स्थानके अधिपति शुभग्रह यदि उसी स्थानमें रहें, अथवा उस स्थानमें उक्त शुभग्रहकी दृष्टि रहे, तो मनुष्य स्वदेशोद्भव भाग्यफल भोग करता है। और यदि वह भाग्यस्थान अधिपतिके सिवा अपने उच्च गृहस्थ शुभग्रह द्वारा दृष्ट वा युक्त हो, तो मनुष्य देशान्तरमें भाग्यवान् होता है। परन्तु क्रूरग्रह द्वारा दृष्ट वा युक्त होनेसे भाग्यहीन हो कर विविध दुःख भोग करता है। भाग्येश्वर यदि बलवान् हो कर भाग्यस्थानमें अथवा स्वगृहमें रहे, तो उस स्थानके ग्रह-संस्थानका विचार कर शुभाशुभका विवेचन किया जाता है। जिसके जन्मकालमें लग्नस्थ तृतीयस्थ और पञ्चमस्थ बलवान् ग्रहकी नवम स्थानमें दृष्टि हो, वह व्यक्ति रूपवान् विलासशील और बहु अर्थयुक्त होता है। जो जन्मकालमें नवमस्थ ग्रह स्वगृहस्थित हो कर शुभग्रह द्वारा लक्षित होता है, वह मनुष्य भाग्यशाली और कुलभूषण हुआ करता है। नवमस्थ रवि और मङ्गल यदि पूर्णेन्दुयुक्त और बलवान् हो, तो मनुष्य अपने वंशकी मर्यादाके अनुसार शुभग्रहकी दशामें राजमन्त्री अथवा राजा होता है। यदि कोई ग्रह भाग्यस्थानमें

हो तथा गृह उसका उच्च स्थान हो तो वह मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है, और शुभग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे मनुष्य बलवान् विलासशील और पति होता है। इसी प्रकार भाग्य-परीक्षा की जाती है। (जातकाभरण)

भाङ्ग—भांग देखो।

भाङ्गक (सं० क्ली०) छिन्नवस्त्र, फटा कपड़ा।

भाङ्गड़माट—वङ्गालके २४ परगने जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २२° ३१´ उ० तथा देशा० ८८° २८´ पू०के मध्य भाङ्गड़ नामक खालके ऊपर अवस्थित है। प्रतिवर्ष यहांके मुसलमान साधुके उद्देशसे एक मेला लगता है।

भाङ्गा—१ अयोध्याप्रदेशके बहराइच जिलान्तर्गत एक नगर। यह राप्ती और ताकला नदीके अन्तर्वेदोके ऊपर अवस्थित है। यहां एक विस्तर्ण आम्रकानन है। २ फरीदपुरका एक उपविभाग।

भाङ्गासूरि सं० पु०) ऋतुपर्णके वंशमें उत्पन्न एक राजाका नाम। (महा० ३ पर्व)

भाङ्गिन (सं० त्रि०) भङ्गाया भवनं क्षेत्रमिति (विभाषातिल-माषोमा-भङ्गाणुभ्यः। पा ५।२।४) इति पक्षे खञ्। भङ्गाक्षेत्र।

भाङ्गिल (सं० क्ली०) काश्मीरस्थ नगरभेद।
(राजतरङ्गिणी ७।४९६)

भाङ्गिलेय (सं० पु०) भाङ्गिलदेशजातमात्र।

भाचक्र (सं०पु० क्रान्तिवृत्त।

भाज—बम्बई प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह कार्ली रेल-स्टेशनसे १ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। निकटवर्त्ती शैलके ऊपर १७ गुहामन्दिर और चैत्यादि विद्यमान हैं। कहते हैं, कि वे सब बौद्धप्राधान्यके समय बनाये गये थे।

भाजक (सं० त्रि०) भज ण्वुल्। १ भागकारक, विभाग करनेवाला। (पु०) २ वह अंक जिससे किसी राशिको भाग दिया जाय।

भाजकांश (सं० पु०) भाजकोंऽशः। गुणनीयक, वह संख्या जिससे किसी राशिको भाग देने पर शेष कुछ भी न बचे।

भाजन (सं० क्ली०) भाज्यते इति भाज-पृथक् करणे ल्युट्। १ पात्र, बरतन। २ आधार। ३ योग्य, पात्र। ४ आढक नामकी तौल।

भाजनता (सं० स्त्री०) भाजनस्य भावः तल्-टाप्। भाजनत्व, पात्रता, योग्यता।

भाजित (सं० त्रि०) भाज्यते स्मेति भाज-क्त। १ पृथक् कृत, अलग किया हुआ। २ जिसको दूसरी संख्यासे भाग दिया गया हो। भावे क्त (क्ली०) ३ भाग।

भाजिन् (सं० पु०) भज-सेवायां णिनि। सेवक, नौकर।

भाजी (सं० स्त्री०) भाज्यते इति भाज-कर्मणि-घञ्, भाज (जानपदकुण्ड गोनस्थल भाजनागेति। पा ४।१।४२) इति ङीष्। १ व्यञ्जनविशेष, तरकारी, साग आदि। २ मांड़, पीच। ३ मेथी।

भाज्य (सं० त्रि०) भज्यते भज-कर्मणि ण्यत्। १ भजनीय, विभाग करनेके योग्य। (पु०) २ वह अंक जिसे भाजक अंकसे भाग दिया जाता है।

भाट—निम्नश्रेणीकी एक ब्राह्मणजाति। श्राद्धादिमें दान-ग्रहण, राजाके आगमनकालमें स्तुति-पाठ आदि इनके कार्य हैं। श्राद्धमें दान-ग्रहण और स्तुतिवादके कारण वे निम्नश्रेणोके ब्राह्मणोंमें शामिल किये गये हैं। दक्षिण-भारतके सिवा प्रायः समग्र भारतमें इनका वास है। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें नाना प्रकारको किम्वदन्तियां प्रचलित हैं। किन्हीं किन्हींका कहना है, कि क्षत्रिय पिता और विधवा ब्राह्मणी मातासे इनकी उत्पत्ति है। अन्योंका विश्वास है कि, ये मनु-वर्णित मागधजातिके हो वंशधर हैं। किसीके मतसे वैश्य पिता और कायस्थ मातासे इनकी उत्पत्ति है और कोई कोई विद्वान् ऐसा भी कहते हैं, कि महादेवने अपने वृष और सिंहकी रक्षाके लिए भाटोंकी सृष्टि की थी; परन्तु भाट अपनी दुर्वलता वश सिंहके पंजेसे वृषकी रक्षा करनेमें क्रमशः असमर्थ होने लगे। प्रतिदिन सिंह सांड़ोंका प्राण-संहार करने लगा। यह देख शूलपाणिने अत्यन्त विरक्त हो कर भाटोंसे अधिक बलवान चारणोंकी सृष्टि की। तबसे सिंह वृषके संहार करनेमें अकृतकार्य हुआ। मतान्तर इस प्रकार भी है, कि ब्रह्माको यज्ञाग्निसे दो पुरुषोंकी उत्पत्ति हुई थी। महाकालीने उन्हें पिपासातुर देख कर स्तन्य पान कराया, जिससे उनके जीवनकी रक्षा हुई। उनका नाम मागध और सूत था। इनका क्रमसे पूर्व

और पश्चिममें वासस्थान निर्दिष्ट हुआ। इन्हींकी सन्तति भाट नामसे प्रसिद्ध हुई।

किन्हींका मत है कि, कालीने राक्षसोंको निधन करते समय अपने अद्भुत कीर्त्तिकलापको मानव-समाजके समक्ष प्रकट करनेके लिए अपने स्वेदकणसे भाटोंकी सृष्टि की। किन्हींका ऐसा मत है कि, जो निकृष्ट ब्राह्मणगण राजसभामें तथा सेनाके साथ सर्वदा गमना गमन करके पूर्वपुरुषोंके कीर्त्तिकलापोंका कीर्त्तन-पूर्वक राजा और सैनिकोंको उत्साहित और उल्लासित करते थे, वर्त्तमान भाटगण उन्हींके वंशधर हैं। महाभारतमें, कुरुक्षेत्रसे हस्तिना लौटते समय भाटोंके साथ युधिष्ठिर-का साक्षात्कार हुआ था, ऐसा उल्लेख है। उक्त महाकाव्यमें ये ब्राह्मण कहे गये हैं। ऐसे अनेक प्रमाण पाये जाते हैं, कि जिनसे इन्हें ब्राह्मण ही प्रमाणित किया जा सकता है। ये यज्ञोपवीत धारण करते हैं, नीच-जातिके लोग इन्हें महाराज कह कर पुकारते हैं। ये अपने अपने प्रभुको यजमान और अपनेको यज्ञयाजक कहते हैं। परंतु किञ्चित् विवेचना करने पर मालूम होता है कि राजपूत आदि जातियां व्यवसायके कारण भाट संज्ञाको प्राप्त हुई हैं और वे इन्हींमें मिल गई हैं।

चारणगण भाटोंके समान ही हैं। इनको उत्पति और कार्यादि भाटोंके सदृश है। चारण देखो)

उपर्युक्त किम्वदन्तियों और भाटोंकी वर्त्तमान सामाजिक अवस्था पर विचार करनेसे मालूम होता है, कि ये उत्कृष्ट वर्णसे जातिच्युत हो कर निकृष्टत्वको प्राप्त हुए हैं, अथवा पूर्व-वर्णित मागधादि सङ्कर-वर्णसे राज-वंशानुकीर्त्तन आदि द्वारा राजप्रासाद और प्रतिष्ठा प्राप्त करके ये क्रमशः उच्चवर्णका परिचय दे रहे हैं। कुछ भी हो, बङ्गालके भाटगण क्षत्रियके औरस और विधवा ब्राह्मणीके गर्भसे अपनी उत्पत्तिको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि, बङ्गालके आदिशूर द्वारा कनौजमें लाये गये पञ्च ब्राह्मणोंके वंशधरोंकी राढ़देशमें विस्तृतिसे पहले बङ्गालमें जिन यज्ञयाग-हीन ब्राह्मणोंका वास था, उनकी एकतम शाखा, जो घटकतावृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करती थी, उसीके वे वंशधर हैं। बल्लालसेनकी कौलीन्यमर्यादा ग्रहण करनेमें असमर्थताके कारण वे बंगालसे विताड़ित हुए थे। इस प्रकार राजानुग्रहसे वञ्चित होनेसे तथा बंगालके सीमान्त देशमें निरुपाय अवस्थामें आ पड़नेसे क्रमशः उनकी अवस्था विपरीत होने लगी और इस तरह वे क्रमशः श्राद्धादिका हेय दान ग्रहण करनेके लिए बाध्य हुए। यही कारण है, कि आज भाटगण इस प्रकार निकृष्ट वर्णत्वको प्राप्त हुए हैं।

वास्तवमें अब भी श्रीहट्टके राढ़ीय ब्राह्मणगण भाटोंके साथ एकत्र भोजन करते हैं। किंतु ढाका और त्रिपुराकी तरफ ये अस्पृश्य समझे जाते हैं। वहां ये छतादि बना कर उदरपूर्त्ति करते हैं।

ये भरद्वाज, विरम, दशौन्धि, गजभीम, याग, केलिय, महापात्र, राय और राजभाट इन नौ शाखाओंमें विभक्त हैं। उपशाखाओंमें बुलन्द शहरके सपहर, मथुराके बड़वार, इटावाके आटसैल और वर्च, कानपुरके लाहौर, इलाहाबादके गङ्गवर, गाजीपुरके वन्दीजन आजमगढ़के लखौरिया, उनाव और सीतापुरके कनौजिया, रायबरेलीके आम-लखिया, फैजाबादके आटशैल, वन्दीजन दक्षिणचार और गङ्गावर, गोण्डाके वसरिया, सुलतानपुरके गा, गङ्ग-वार, मधुरिया और राणा ; प्रतापगढ़के गन्धव, गङ्गवार, और जुझहैन, तथा बाराबङ्कीके बसोधिया आदि प्रसिद्ध हैं।

जातितत्त्वविद् इलियटका मत है कि भाट और याग जाति एक ही है। कार्यकी विशेषतासे ये बरमभाट या वादी, याग-भाट और राजभाट नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। किसी विशेष कार्योपलक्षमें पूर्वोक्त भाटगण नियोजित हुए थे। शेषोक्त भाटगण विवाह अथवा निमन्त्रणमें पूर्वपुरुषोंके कीर्त्तिकलाप गाते हैं और प्रत्येक वंशकी धारावाहिक तालिका रख देते हैं। ये दो या तीन वर्ष बाद अपने अपने यजमानोंके पास जाते हैं और उनके अज्ञातसारमें जो घटनाएं हुई हैं उन्हें तथा जन्ममृत्युका विशेष विवरण लिख कर यजमानोंके अवस्थानुसार रुपये, पशु और वस्त्रादि ले कर लौट आते हैं। राजपूताना और दिल्लीके सन्धिस्थलमें, गङ्गातीरवर्त्ती द्वारनगर और अयोध्याको उत्तरांशमें इनका प्रधान वासस्थान है। रोहिल-खण्डमें गौड़ ब्राह्मण ही भाटोंका कार्य करते हैं। किसी किसीने इनको प्रधानतः आठसैल, महापात्र, केलिया,

मैनपुरोवाल, जङ्गिर, भटर और दशौन्धि इन सात श्रेणियोंमें विभक्त किया है। परन्तु इस प्रकार श्रेणि-विभाग करनेसे चौरानो जातीय आदि थोक किसी प्रकार भी इसके अन्तर्गत नहीं किया जा सकता।

जो भाट मुसलमानोंके प्रादुर्भावसे इसलाम-धर्ममें दीक्षित हुए थे, वे तुर्कभाट वा मुसलमान भाट कहलाते हैं। अब वे मुसलमानोंकी तरह क्रिया करते हैं, फिर भी उन्होंने पूर्वपुरुषार्जित वंशानुकीर्त्तन प्रथाको नहीं छोड़ा है।

विवाहपद्धति।—उच्च जातियोंकी भांति इनमें भी गोत्रानुसार विवाह प्रथा प्रचलित है। मिर्जापुर आदि स्थानोंमें वहनकी कन्या, फूफूकी कन्या, शालेकी लड़की और मामाको लड़कीके साथ विवाह नहीं होता। स्त्रीको वहन वड़ी न हो तो उसके साथ विवाह हो सकता है। साधारणतः कम उम्रमें हो यथासाध्य यौतुक दे कर कन्याएं व्याही जाती हैं। पिता गरीब होने पर कभी कभो ज्यादा उम्रमें भो कन्याका विवाह हुआ करता है। परन्तु उससे पिताको निन्दा होती है। दरिद्र पिता यदि शुल्क ग्रहण करे, तो भी समाजमें वह अपवादजनक है। विधवा-विवाह और निःसंतान भ्रातृ-जायाके साथ विवाह निषिद्ध है।

पुत्र उत्पन्न होने पर तथा कन्यादानके समय नन्दीमुख श्राद्ध क्रिया जाता है। इनमेंसे हिन्दू कानूनके अनुसार उत्तराधिकारका अधिकार प्रचलित है। परन्तु बंगालमें घनिष्ठ ज्ञाति मौजूद होने पर दौहित्र उत्तराधिकारी नहीं हो सकता।

मुसलमान भाट 'तुर्कभाट'के नामसे प्रसिद्ध हैं। पूर्वभारतके मुसलमान भाटोंका कहना है, कि वे राजा चेतसिंहके अधीन कार्य करते थे। जोनाथन डनकान साहबने हिंसापरवश हो कर बलपूर्वक उन्हें मुसलमान बना लिया तथा पश्चिमदेशवासी भाटोंको साहबउद्दीन महम्मद घोरीने मुसलमान बनाया था। उनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातिके आचार प्रचलित हैं। वे हिन्दुओंकी तरह विवाहके समय पुरोहित द्वारा हिन्दू-प्रथानुसार कन्यादानका कार्य सम्पादन कराते हैं। उसके बाद वे मुसलमान काजो द्वारा निकाह आदिका कार्य कराते हैं। मुसलमान भाट धनियोंके घर गा बजा कर जोविका-निर्वाह करते हैं। मिर्जापुरियोंमें याब, काञ्जरोगण, खावानी, राजभाट और वन्दोजन उपशाखाएं पाई जाती हैं। ये बालकोंकी सुन्नत कराते और मृतदेहको गाड़ते हैं, फिर भी हिन्दुओंकी श्राद्धादि क्रियाएं इनमें प्रचलित हैं।

हिंदू-भाटगण धर्मनिष्ठ है तथा शैव और वैष्णव इन दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। प्रचलित हिंदू-देवदेवियोंके सिवा वे वड़वीर, महावीर और शारदाकी आराधना करते हैं। वैशाख संक्रान्तिमें रन्धनशालामें लड्डू और होम द्वारा गौरीपति अर्थात् शिवकी अर्चना की जाती है। वैशाखमासके मङ्गलवारमें घटस्थापन करके लड्डू, उपवीत, पुष्पमाला आदि द्वारा महावीरकी पूजा होती है। संक्रामकरोगका प्रभाव होने पर ये भवानीकी आराधना करते हैं।

भाट (सं० पु०) १ वर्णसङ्कर जातिविशेष। २ स्तुति, पाठक। ३ राजदूत। ४ भाड़ा।

भाट (हिं० स्त्री०) १ वह भूमि जो नदीके दो करारोंके बीचमें हो, पेटा। २ नदीका किनारा। ३ नदीका बहाव, उतार। ४ बहावकी वह मिट्टी जो नदीका चढ़ाव उतरने पर उसके किनारों परकी भूमि पर वा कछारमें जमती है।

भाटक (सं० पु० क्ली०) भाटतीति भट पोषणे ण्वुल्। व्यवहारार्थं दत्तशकटादि लभ्य धन, भाड़ा।

भाटकल—बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत उत्तर कनाड़ा जिलेका एक प्राचीन शहर। यह अक्षा० १३° ५९´ उ० तथा देशा० ७४° ३२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या सात हजारके करीब है। इसका प्राचीन नाम मणिपुर है। १४वीं शताब्दीसे १६वीं शताब्दी तक यह नगर बट्टिकल, बटिकुल आदि नामसे पाश्चात्य भ्रमणकारियोंके निकट विख्यात था।

पहले इस नगरमें चावल और चोनीका जोरों वाणिज्य चलता था। गोआ, अरमुज आदि स्थानोंके वणिक इस स्थानमें हमेशा वाणिज्यके लिये आया करते थे। १५०५ ई०में पुर्त्तगीजोंने इस नगरमें एक कोठी खोली। किन्तु गोआ नगर अवरोधके बादसे उन्होंने इस स्थानकी आशा एक तरहसे छोड़ दी थी। १६६८ ई०में अंगरेजोंने यहां पर जो एजेन्सी खोलनेकी कोशिश

को, पर किसी प्रकार वे कृतकार्य न हो सके। कप्तान हमिल्टनका कहना है, कि १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यहां अनेक हिन्दू और जैन-देवमन्दिरोंका भग्नावशेष वर्त्तमान था।

भाटकुली—अमरावती जिलेका एक नगर। यह अमरावती शहरसे १० मील दूर अक्षा० २०° ५४´ उ० तथा देशा० ७७°३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७६.७ है।

भाटनेर—हनुमानगढ़ जिलेका एक शहर। यह स्थानक गिरिदुर्ग इतिहासमें विख्यात है। राजस्थानके प्रणेता टाड तथा कप्तान पाउनेट आदि महाशयगण इस दुर्गको भूरि भूरि प्रशंसा कर गये हैं। तारीख-इ-हिन्द नामक मुसलमान इतिहासमें लिखा है, कि सुलतान महमूदने १००१ ई०में भारत-चढ़ाईके समय इस दुर्ग पर अधिकार किया था। राजस्थानमें लिखा है, कि यह दुर्ग तैमुर लङ्गसे अधिकृत हुआ था। उन्होंने अपने वंशके किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिके हाथ इस दुर्गका कुल भार सौंपा। किन्तु भट्टिगणके निकट परास्त हो कर मुगलोंने इस दुर्गको छोड़ दिया। १५२७ ई०में खेत्सिंह कोन्धालत सदाछायल-राजपूतोंको परास्त कर भाटनेरको पुनः अपने अधिकारमें लाये। १५४६ ई०में हुमायूंके भाई कामराननें खेत्सिंह और पांच हजार राजपूतोंको मार कर इस दुर्गको फतह किया। किन्तु थोड़े ही दिनोंके अन्दर वे बीकानेरके राजा जेत्सासे पराजित हो कर दुर्ग छोड़नेको वाध्य हुए। पीछे फिरोज छयालके पुनः इस दुर्गको हस्तगत करने पर राव जेत्साने अपने लड़केको उनके विरुद्ध भेजा। उन्होंने मुसलमानोंको परास्त कर दुर्ग पर अधिकार जमाया।

सम्वत् १८१६ अथवा १८१७ ई०में होसेन महमूद नामक एक भट्टिनेता इस नगरको जीतनेके कुछ समय बाद ही पराजित हुए। सम्वत् १८६१ ई०में बीकानेरकी सेनाने बड़े कष्टसे इस स्थानको जीता था। १८०० ई०में जार्ज टामसने इस दुर्ग पर दखल जमाया। किन्तु वे अधिक दिन तक इसे अपने अधिकारमें न रख सके। आखिरमें यह दुर्ग बीकानेर राज्यके अन्तर्भूत हुआ था यह शहर अभी हनुमानगढ़ नामसे प्रसिद्ध है।

भाटपुर—अयोध्याके अन्तर्गत हरदोई जिलेका एक ग्राम। यह गोमती नदीके दाहिने किनारे पड़ता है।

भाटशोल (सं० क्ली०) जलजात तन्नामक उद्भिद्विशेष। (Aeschy nomene Paludosa)

भाटा (हिं० पु०) १ पानीका चढ़ावकी ओरसे उतारकी ओर जाना, चढ़ावका उतरना। २ समुद्रके चढ़ावका उतरना, ज्वारका उल्टा। ज्वारभाटा देखो। ३ पथरीली भूमि।

भाटि (भट्टि)—राजपूत जातिविशेष। ये लोग चन्द्रवंशीय यदु-कुल-सम्भूत हैं। प्रवाद है, कि भाटिगणने अति प्राचीन कालमें अपने आदिम स्थानका परित्याग कर मरुस्थल और गजनीमें राज्य वसाया। पीछे रोमके बादशाह तथा खोरासनाधिपतिसे युद्धमें परास्त हो कर ये लोग पुनः सिन्धुनदको पार कर गये और पञ्जाबमें उपनिवेश वसाया। दुशाल और जयशाल नामक भाटिके दो पुत्र थे। जयशालसे जशलमीर राज्यकी सृष्टि हुई। दुशालने भट्टियानामें अपना वासस्थान कायम किया। जाठ और वत्तू शाखा दुशालसे उत्पन्न है।

राठोर जातिके अभ्युदयके पहले जशलमीरका राज्य बहुत दूर तक विस्तृत था। जशलमीर राजगण भाटिवंशीय हैं। पञ्जाबमें प्रायः सब जगह इस जातिका वास देखा जाता है। किन्तु भट्टियानाके अन्तर्गत भाटनेर नगर इनका आदि वासस्थान कह कर प्रसिद्ध है।

जाट और भाटिगण अभी इस प्रकार मिश्रित हैं कि, उनके मध्य कोई पृथकता नहीं देखी जाती। इन लोगोंके मध्य भी वत्तू और जइमवर आदि उपशाखाएं हैं। भाटिगण हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। मुसलमानी अमलदारीमें बहुतोंने मुसलमान धर्मग्रहण किया था। भाटिगण उच्चवंशीय राजपूतोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं।

भाटि—सुन्दरवनका जो अंश हिजली परगना और मेघना नदीके मध्यवर्त्ती है, उसे मुसलमान ऐतिहासिकगण भाटि नामसे उल्लेख कर गये हैं। यह अक्षा० २०° ३०´ से २२° ३०´ उ० तथा देशा० ८८°से ९१° १४´ पू०के मध्य विस्तृत है। ज्वारके समय जलप्लावित होता है और भाटाके समय जग उठता है, इसी कारण इसे भाटि कहते हैं। वर्त्तमान समयमें सुन्दरवनका जो अंश वाखरगञ्ज और खुलना जिलेमें अवस्थित है, वह भी भाटि कहलाता है।

भाटिया—राजपूत जातिकी एक शाखा। प्रधानतः मथुरा, सिन्धु, गुजरात, युक्तप्रदेश, बम्बई, कच्छ, पंजाब और बङ्गालके कई स्थानोंमें इनका निवास है। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें नाना प्रकार किम्वदन्तियां प्रसिद्ध हैं। मथुराके भाटिया लोग भाटसिंहको अपना पूर्वपुरुष कहते हैं। पुराणोल्लिखित यदुवंश ध्वंसके समय ओधू और वज्रनाभ नामके दो यादवोंने भाग कर आत्मरक्षा की थी। वज्रनाभ कुछ दिन राजा बानासुरके आश्रयमें रहे थे। उसके बाद महाराजाधिराज पाण्डवकुल-तिलक परीक्षित् ने मातृगर्भमें श्रीकृष्ण द्वारा जीवनरक्षाके प्रतिदानस्वरूप, असहाय वज्रनाभको मथुरा और इन्द्रप्रस्थ राज्य प्रदान किया। वज्रनाभ और उनके वंशके अस्सी नरपतिगण निर्विघ्नतः राज्य करते रहे। यदुवंशीय शेष राजा जयसिंहके राजत्वकालमें बयानाके राजा अजयपालने मथुरा पर चढ़ाई कर जयसिंहको पराजित और निहत किया। विजयपाल, अजयराज और विजयराज नामक जयसिंहके तीन पुत्रोंने कन्नौज जा कर वहां एक राज्य स्थापित किया। उसके बाद ज्येष्ठ भ्राताके साथ दोनों भाइयोंका कलह उपस्थित हुआ, तो उन दोनोंने करौलीके निकटवर्त्ती एक भयानक जंगलमें जा कर देवी अम्बामाईकी आराधना की। देवीने सन्तुष्ट हो कर उन्हें जब वर देना चाहा, तो उन्होंने राज्यप्राप्तिका वर माँगा। इसके बाद देवीके आदेशसे अजयराजने भट्टिसिंह नाम रख कर जैसलमेर राज्य स्थापित किया। परंतु जैसलमेरकी प्रचलित किम्वदन्तीके साथ उल्लिखित मथुराके प्रवादमें कुछ पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। श्रीकृष्णकी मृत्युके बाद यादवगण चारों तरफ जाने लगे। उस समय श्रीकृष्णके दो पुत्रोंने सिंधुके किनारे उपनिवास स्थापन किया था। उसके बाद उन लोगोंमें शालिवाहन नामक एक व्यक्तिने पञ्जाब जय कर वहां अपने नामानुसार एक नगर स्थापित किया। कालांतरमें वे गजनीराज सुलतान महमूद द्वारा पराजित और विताड़ित हो कर जैसलमेरमें वास करने लगे।

इस प्रकार कहा गया है कि, भाटियाओंके पाश्चात्य वासस्थानको छोड़ कर मथुरा आ कर वसने पर राजपूतोंने उनके साथ वैवाहिक-सम्बन्ध स्थापन करना अस्वीकार किया। उसके लिए उन लोगोंने मुलतानमें एक सभा बुलाई और अनेक वादानुवादके बाद शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंके साथ परामर्श कर स्थिर किया कि, पात्र और पात्रीके पूर्वपुरुषोंमें ४९ पुरुषका व्यवधान होने पर परस्परमें विवाह हो सकता है। इस प्रकार वंश-व्यवधानसे उनमें स्वतन्त्र नुख वा थोककी उत्पत्ति हुई थी। स्वगोत्रमें विवाह प्रचलित होने पर भी एक नुखमें नहीं हो सकता। उन थोकोंका नामकरण किसी किसी व्यक्ति वा नगर अथवा व्यवसायके नामानुसार हुआ था। सप्त गोत्रमें कुल मिला कर ८४ नाम हैं।

भाटिया हिन्दूधर्मावलम्बी हैं और हिन्दू-रीत्यानुसार ही इनकी विवाहादि क्रियाएं निष्पन्न होती हैं। इन लोगोंके विवाहमें कुलाचार्यकी आवश्यकता नहीं होती। वर-कन्याके पिता अथवा अभिभावकगण ही विवाहकी बात चीत तय कर लेते हैं। कन्याके पिता मनोनीत भावी जामाताके पास कुछ शक्कर, एक रुपया और नारियल भेजेंगे। इसको 'सगुन' कहते हैं। ये चीजें उसके पिता, भाई और बन्धुवर्गोंके सामने उसे दी जाती हैं। इस प्रकार सगाई पक्की होने पर फिर विवाहमें कोई बाधा नहीं आ सकती। परन्तु यदि वर अथवा कन्याकी कोई अङ्गहानि हो, तो विवाह नहीं होता। लड़कियोंका विवाह बारह वर्षसे पहले होता है। स्त्री वन्ध्या होने पर, रोगग्रस्त अथवा व्यभिचारिणी होने पर ही एक स्त्रीके रहते हुए पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है, अन्यथा नहीं। असती स्त्री और पर-दारासक्त पुरुषोंको समाजच्युत किया जाता है।

भाटियागण प्रायः व्यवसायी होते हैं। ये कृषिकार्य, नौकरी और दुकानदारी आदि द्वारा भी जीविकानिर्वाह करते हैं।

२ दाक्षिणात्यका एक व्यवसायी सम्प्रदाय।

भाड्या देखो।

भाटियारा (भठियारा)*—सेनावाहिनीकी पश्चाद्गामी खाद्यद्रव्य विक्रयकारी जातिविशेष, युक्तप्रदेशवासी मुसलमान। सराय आदिमें पाचकवृत्ति और तमाकू

* कोई कोई अनुमान करते हैं, कि संस्कृत भ्रष्टकार शब्दके अपभ्रंशसे उनका वर्त्तमान नामकरण हुआ है।

आदि बेचना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ये लोग अपनेको शेरशाहके पुत्र सलीमशाहके वंशधर बतलाते हैं। मुगल-सम्राट् हुमायूं द्वारा शेरशाहकी पराजयके बाद इन लोगोंने दैन्यदशामें पहुंच कर दास्यवृत्तिका अवलम्बन किया है। उक्त प्रवादके मूलमें चाहे कुछ भी क्यों न रहे, पर इन लोगोंमें शेरशाही और सलीमशाही नामक थोक अवश्य हैं। इसीसे अनुमान किया जाता है, कि इन लोगोंने उक्त प्रवादके अवलम्बन पर दो थोकोंका उद्भावन कर लिया है।

फिर दूसरी किंवदन्तीसे जाना जाता है, कि ये लोग हिन्दु भाटि जातिसे इसलाम-धर्ममें दीक्षित होनेके बाद वर्त्तमान संज्ञाको प्राप्त हुए हैं। इनमें भाटियारा और हरिचारा नामक दो स्वतन्त्र थोक हैं। वेशभूषाकी पृथकतासे आपसमें स्वतन्त्रता देखी जाती है। विभिन्न स्थानमें रहनेके कारण इनके प्रायः ५२ श्रेणीविभाग हो गये हैं। आगे चल कर भाटि जाति अथवा अन्य श्रेणीके हिन्दू इनके साथ मिल गये थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। भील, चौहान, जालक्षत्री मुखेरी, नामवाई आदि हिंदू नामधेय श्रेणी ही उसका प्रकृष्ट प्रमाण है।

ये लोग सभी सुन्नी-सम्प्रदायी मुसलमान हैं। गाजी-मींया और पांचपीरके ऊपर इन लोगोंकी अचला भक्ति है। मृतदेह दफनाई जानेके बाद प्रेतात्माकी कुशल-प्रार्थनाके लिये ये लोग तीसरे दिन 'तीज' और चालीसवें दिन 'छेहलम्' नामक उत्सव मनाते हैं। विवाहका शुभ दिन निर्देश करनेके लिये ब्राह्मणका परामर्श लेते थे, पर अभी सभी कार्य मुसलमानी प्रथानुसार होते हैं। शेरशाही और सलीमशाही रमणियां व्यभिचार-दोषसे कलङ्कित हैं। सरायमें यात्रियोंका आदर-सत्कार करनेमें ये विशेष पटु हैं। मिर्जापुर प्रदेशके पश्चिमवासी भाठियागण 'महोगीर' कहलाते हैं। ये लोग मांस बेच कर अपना गुजारा चलाते हैं।

भाट्या (भाटिया) दाक्षिणात्यवासी वणिक्‌विशेष। भाटि-जातिसे इनकी उत्पत्ति है। ये लोग सर्वतोभावमें हिन्दू हैं, सभी निरामिषभोगी हैं, मद्य मांस वा मत्स्य-भोजन इनमें बिलकुल निषिद्ध है। इनमेंसे अधिकांश वैष्णव हैं, गोपाल, कृष्ण आदि विष्णुमूर्त्तिके उपासक हैं। देवद्विजमें इनकी विशेष भक्ति है। स्थानीय सभी देवता विग्रहके प्रति ये लोग विशेष श्रद्धावान् हैं।

भाठ (हिं० स्त्री०) १ वह मिट्टी जो नदी अपने साथ चढ़ाव-में बहा कर लाती है और उतारके समय कछारमें ले जाती है। यह मट्टी तहके रूपमें भूमि पर जम जाती है और खादका काम देती है। २ भाट देखो। ३ धारा, बहाव।

भाठा (हिं० पु०) १ भाटा देखो। २ गड्ढा।

भाठी (हिं० स्त्री०) पानीका उतार, भाठा।

भाड़ (हिं० पु०) भड़भूंजोंकी भट्ठी। इस भट्ठीमें वे अनाज भूननेके लिये बालू गरम करते हैं। इसका आकार एक छोटी कोठरी सा होता है जिसमें एक द्वार होता है और और जिसकी छत पर बहुतसे मट्टीके बरतन ऊपरको मुंह करके जड़े होते हैं। इसकी दीवार सवा हाथ ऊंची होती है। इसके द्वारसे इन्धन डाला जाता है। आग-की गरमीसे बालू लाल होता है जिसे अलग निकाल कर दूसरे बरतनमें दानोंके साथ रख कर भूनते हैं। दो तीन बार इस प्रकार गरम बालू डालने और चलानेसे दाने खिल जाते हैं।

भाड़भूत (भारभूत) बम्बई प्रदेशके भरोंच जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह नर्मदाके उत्तरी किनारे अवस्थित है। यहां भारभूतेश्वर महादेवके सामने हर बीसवें वर्ष एक मास तक मेला लगता है। उस समय लाखों मनुष्य इकट्ठे होते हैं। यहांके देवमन्दिरका खर्च गवर्मेण्टसे दिया जाता है।

भाड़ा (हिं० पु०) १ किराया। २ हाथ भर ऊंची एक प्रकारकी घास। यह निर्बल भूमिमें बहुतायतसे उगती है। पशु इसे बड़े चावसे खाते हैं। ३ वह दिशा जिस ओर-को वायु बहती हो।

भाण (सं० पु०) भण्यतेऽत्रेति भण-अधिकरणे घञ्। नाट-कादि दशरूपकके अन्तर्गत रूपकविशेष। यह एक अङ्क-का होता है और इसमें हास्यरसकी प्रधानता होती है। इसका नायक कोई निपुण, पण्डित वा अन्य चतुर व्यक्ति होता है। इसमें नट आकाशकी ओर देख कर आप ही आप सारी कहानी उक्ति प्रत्युक्तिके रूपमें कहता जाता है, मानो वह किसीसे बात कर रहा हो। वह बीच बीचमें

हंसता जाता और क्रोधादि करता जाताहै। इसमें धूर्त्तके चरित्रका अनेक अवस्थाओं सहित वर्णन होता है। वीच वीचमें कहीं कहीं संगीत भो होता है। इसमें शौर्य और सौभाग्य द्वारा श्रृङ्गार रस भी सूचित होता है। संस्कृत भाणोंमें कौशिको वृत्ति द्वारा कथाका वर्णन किया जाता है। यह दृश्यकाव्य है। नाटक देखो।

२ व्याज, मिस। ३ ज्ञान, वोध।

भाणक (सं० पु०) भाण एव स्वार्थे कन्। भाण।

भाणकस्थान (सं० क्ली०) रोमकसिद्धान्त-वर्णित स्थान भेद।

भाणिका (सं० स्त्री०) भाण, एक अंकमें समाप्त होनेवाला हास्यरसप्रधान दृश्यकाव्य।

भाण्ड (सं० क्ली०) भण्यते भणति वेति भन्-शब्दे (ञमन्ताड्डः। उण् १।११३) इति ड, ततः प्रज्ञादित्वादण्। १ पात्र, वरतन। मिताक्षरामें लिखा है, कि वाहक के दोषसे यदि भाँड़ फूट जाय, तो उसे क्षतिपूरण करना होगा। यदि दैवकृत वा राजकृत फूट जाय, तो कुछ भी नहीं देना होगा। (मिताक्षरा०) २ वणिक्का मूल धन, पूंजी। ३ भूषा। ४ अश्वभूषा। ५ भण्डवृत्ति, भांड़पन। ६ गर्दभाण्डवृक्ष।

भाण्डक—मध्यप्रदेशके चन्दा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ७´ उ० तथा देशा० ७६° ७´ पू० चन्दानगरसे ६ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। नगरके पश्चिममें एक सुप्राचीन जङ्गल है जो भतालासे भरपत तक फैला हुआ है। प्रवाद है, कि यहां महाभारतोक्त भद्रावती नगरी स्थापित थी। भीमसेन यहां पर युवनाश्व-राजके साथ युद्ध करके उनके सङ्कुण नामक यक्षीय अश्वको हर ले गये थे। दिवाला पर्वत पर आज भो भीमके पदचिह्न देखे जाते हैं।

भाण्डकके गुहामन्दिर तथा दिवाला और विन्ध्यासन पर्वतके मन्दिरादि, गिरिदुर्ग, भद्रावतोके मन्दिर, राजप्रासादकी ध्वंसावशेषभित्ति, निकटस्थ ह्रदोपरिस्थ सेतु और सैकड़ों मन्दिरादिके ध्वंसावशेषसे यहांका प्राचीन समृद्धिका विषय जाना जाता है। अभी इसकी वह समृद्धि अपहृत हो गई है।

जैन हरिवंशमें इस प्राचीन नगरका उल्लेख है। यह प्राचोन कोशल-राज्यके अन्तर्भुक्त था। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमने इसे शिलालिपि कथित वाकाटक राज्य माना है। पूर्वोक्त ध्वंसावशेषको छोड़ कर यहां पार्श्वनाथ, वदरीनाथ और चण्डोदेवीका मन्दिर विद्यमान है। यहांके विन्ध्यासन पर आज भी अनेक सुप्राचीन बौद्धगुहामन्दिरका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

भाण्डक (सं० क्ली०) क्षुद्र पात्रविशेष, छोटा भांड़।

भाण्डगोपक (सं० पु०) वह जो बौद्धसंघारामादिमें भाण्डादिकी रक्षा करते हैं, बौद्धभण्डारी।

भाण्डपति (सं० पु०) वणिक्, व्यवसायी।

भाण्डपुट (सं० पु०) भाण्डे पुटो यस्य। नापित, नाई।

भाण्डपुष्प (सं० पु०) सर्पविशेष। पर्याय—कौक्कुटि-कन्दल।

भाण्डप्रतिभाण्डक (सं० क्ली०) १ विनिमय, अदला वदला। २ लीलावत्युक्त अङ्कविशेष। इसका नियम इस प्रकार है,—विनिमय प्रक्रियाका फल त्रैराशिकके अनुसार और अपेक्षाकृत सहजमें जाना जाता है। अन्यान्य विषयोंमें वहुराशिकके साथ इस प्रक्रियाका सम्पूर्ण ऐक्य है। विशेषता केवल इतनी ही है, कि दोनों श्रेणी-के फल और हरको विनिमयकी तरह इसमें मूल्यका भी परिवर्त्तन करना होता है।

नीचे इसका एक उदाहरण दिया जाता है,—

यदि ३०० अनारका मूल्य १६ रु० और ३० आमका १ रु० हो, तो १० अनारके वदलेमें कितने आम मिलेंगे?

३००	३०	परिवर्त्तन	
१६	१	३००	३०
१०		१	१६
			१०
३००÷४८००		गुणनफल	

भागफल १६

अथवा ३०० अनारका दाम यदि १६ रु० हो, तो १० का दाम कितना होगा? इससे १० अनारका दाम $\frac{१६ \times १०}{३००} = ८\frac{८}{१५}$ आना जाना गया। फिर ३० आमका दाम १ रु० होनेसे एक आमका दाम २ पैसा हुआ। अव देखना चाहिये, कि १ आमका दाम १० अनारके मध्य कितनी वार शामिल है:—

$$८\frac{८}{१५} \text{ आना} \div २\frac{२}{१५} = \frac{१२८ \times ४}{१५} \times \frac{१५}{३२} = १६$$

सुतरां १० अनारके वदलेमें १६ आम पाये जांयगे। (लीला ती)

भाण्डभाजक (सं० पु०) वौद्ध मठादिमें भाण्ड-विभाग कारो।

भाण्डमूल्य (सं० क्ली०) १ भाण्ड ही मूलधन। २ भांड़का मूल्य।

भाण्डल (सं० त्रि० भाण्ड लाति ला-क। भाण्डग्राहक।

भाण्डव (सं० त्रि०) भाण्डोरदूरादि अण्। भण्डुसमोपादि।

भाण्डशाला (सं० स्त्री०) भाण्डानां शाला, भाण्डागार, भंडार।

भाण्डागार (सं० पु०) भाण्डानां पात्रादीनामागारः। गृहविशेष, भंडार।

भाण्डागारिक (सं० पु०) भाण्डागारे नियुक्तः (अगारान्ताट्ठन्। पा ४।४।७०) इति ठन्। भाण्डारी, वह जो भंडारघरमें नियुक्त हो।

भाण्डापुर (सं० क्ली०) नगरभेद

भाण्डायनि (सं० पु०) भाण्डऋषिका गोत्रापत्य।

भाण्डार (सं० क्ली०) भाण्ड तदाकारमृच्छति ऋ-अण्, उपपद समास। गृहभेद, भण्डार घर।

भाण्डारा (भण्डार)—नागपुर विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २०°४०´ से २१° ४७´ उ० तथा देशा० ७९°२७´ से ८०° ४०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३९६५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें सिवनी और बालाघाट; दक्षिणमें चाँदा, पूर्वमें रायपुर तथा पश्चिममें नागपुरजिला है। भंडारनगरमें जिलेका विचार विभाग स्थापित है।

इस जिलेका पश्चिमांश वेणगङ्गा तट तक विस्तृत है। यहां खेती बारीकी अच्छी सुविधा है। उत्तर और पूर्वदिशा निविड़ जङ्गलावृत गण्डशैलसे आच्छन्न है। गोंड़ आदि असभ्य अनार्य जातियां इस निवृत स्थानमें रह कर व्याघ्रादिकी अपेक्षा और भी हिंस्रतर हो गये हैं। उस दुर्द्धर्ष असभ्य जातिके भयसे कोई भी इस पार्वत्य वन्यभूमिमें पदार्पण करनेका साहस नहीं करते। एतद्भिन्न सतपुरा पर्वतमालाकी कुछ शाखा-प्रशाखाओंने इसके दक्षिण विभागको समाच्छन्न कर रखा है। अम्वागढ़ वा सिन्दूरझरि, वहाही, कनेड़ी और नवगांव आदि पार्वतीय दृश्यसे परिपूर्ण हैं।

यहां वेण गङ्गा, गरवी और वाघ नदीके किनारे तथा स्थानीय गिरिमाला पर नाना वर्णका पत्थर देखनेमें आता है। वेणगङ्गामें सभी समय जल रहता है, इसीसे उसके गर्भस्थित पत्थर नजर नहीं आते। वावनखरी, वाघ, कनहान, चूलवन आदि अगणित पार्वत्य स्रोत वेणगङ्गामें गिरते हैं। किन्तु दारुण ग्रीष्मके समय उनमें सब समय जल नहीं रहता। उक्त नदीमाला भिन्न यहां प्रायः ५ हजार छोटे छोटे ह्रद हैं। स्वभाव-निम्न शैलवक्ष पर अजस्र पार्वतीय जलधाराके सञ्चित होनेसे ह्रदोंकी उत्पत्ति हुई है। कहीं तो बांध द्वारा रुद्धगति हो कर इस जलराशिने एक विस्तीर्ण खातको पूर्ण कर सुविस्तृत ह्रदाकार धारण किया है। नवगाँव, शिरेगाँव' शिवनी आदि स्थानोंके ह्रद सबसे बड़े हैं तथा प्रायः ५॥ वर्गमील स्थान आवृत किये हुए हैं। इन सब ह्रदोंमें कहीं कहीं जो समुत्थित पर्वत-खण्ड हैं वे निविड़ वनमाला से समाच्छादित हो कर व्याघ्रादि हिंस्र जीवोंसे परिवृत हैं और जनसाधारणके भीतिप्रद हो गये हैं।

वन्य विभागमें शाल, शीशम आदि गृहनिर्माण योग्य वृक्ष नहीं रहने पर भी एकमात्र महुएके वृक्षसे तमाम जंगल भरा पड़ा है। यहांके लोग रोटी वा शराव वनानेके लिये महुएके फूलको जमा कर रखते हैं। एतद्भिन्न वनके मध्य गोंद, नाना प्रकारके सुमिष्ट फल और भेषजादि पाये जाते हैं। गोंड़, ग्वाला, प्रधान और धोमर आदि जातियां खानसे लोहेको निकाल कर गलातीं और पीछे उसे वाजारमें बेचती हैं। चीता, व्याघ्र और पार्वतीय विषधर सर्प यहांके अधिवासियोंका कृतान्त-सदृश है। प्रतिवर्ष व्याघ्रके कवल वा सर्पाघातसे सैकड़ों मनुष्य भवलीलाको शेष कर संसारकी यन्त्रणासे मुक्त होते हैं।

इस जिलेका कोई प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। ऐसा सुना जाता है, कि एक समय गौली लोगोंने यहां अपना आधिपत्य फैलाया था। आज भी वे लोग निकटवर्त्ती जंगलोंमें रह कर ग्राम वा नगरमें आते और

२ उक्त सम्पत्तिका प्रधान ग्राम और शिवनारायण तहसीलका सदर ।

भातगाँव—विहार और उड़ीसाके पूर्णिया जिलेका एक शहर ।

भाता (हिं० पु०) उपजका वह भाग जो हलवाहेको राशिमेंसे खलिहानमें मिलता है। पूर्वकालमें जव मासिक वेतन या दैनिक मजदूरी देनेकी प्रथा नहीं थी, तव हल जोतनेवालेको अन्नकी उपजका छठा भाग दिया जाता था और उसके वदलेमें वह वर्ष भर स-परिवार खेतीके सव काम काज करता था। यह प्रथा अव भी नेपालकी तराई में कहीं कहीं है।

भाति (सं० स्त्री०) भा-क्तिन्। १ शोभा, कान्ति।

भाति (हिं० स्त्री०) भाँति देखो।

भातु (सं० पु०) भातीति भा (कमिमधि-जनिगाभायाहिभ्यश्च। उण् १।७३) इति तु। १ सूर्य। २ दीप्त।

भातु—निकृष्ट जातिविशेष। युक्तप्रदेश और दाक्षिणात्यमें इनका वास है। युक्तप्रदेशमें ये नारायण और वांसकी पूजा करते हैं। परन्तु दाक्षिणात्यके भातु मूर्त्तिपूजा करते ही नहीं। ये व्यायाम, कुर्दन और ऐन्द्रजालिक क्रीड़ा द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। ये संशीय, वेरीय, हावुर, कोलाहाटी, दुम्वं, दुघेरवर आदि नामोंसे भिन्न भिन्न स्थानोंमें प्रसिद्ध हैं।

भातुड़िया—१ एक प्राचीन गण्ड ग्राम, भातुड़िया जिलेका प्रधान नगर। इसके पश्चिममें महानन्दी और पुनर्भवा, दक्षिणमें गङ्गा, पूर्वमें करतोया और उत्तरमें दिनाजपुर तथा घोड़ाघाट है। मुसलमानी अमलदारीमें मालदहका पूर्वांश भातुड़िया नामसे प्रसिद्ध था। भातुड़िया-राज कंस यहांके शासनकर्त्ता थे। पीछे ब्राह्मणवंशीय जमींदार रामकृष्णकी स्त्री शर्वाणीदेवीने इस सम्पत्तिका भोग किया। उनकी मृत्युके वाद यह स्थान नाटोरराजवंशके पूर्वपुरुष-रघुनन्दनके हाथ लगा।

२ वर्द्धमान जिलेका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २३° २६' उ० तथा देशा० ८८° २२' पू०के मध्य अवस्थित है।

भातोड़ी—वम्वई प्रदेशके अह्मदनगर जिलेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अह्मदनगरसे ५ कोस उत्तर-पूर्व मेहकरी नदीके किनारेअ वस्थित है। यहां ४र्थ निजामशाही राज मूर्त्तजा निजामशाह (१५६५-१५८८ ई०)-के प्रधान मन्त्री सलावत खांका वनाया हुआ एक सुवृहत् ह्रद है। १८७७ ई०में वृटिश-सरकारने इसका संस्कार कराया था। यहांका नरसिंह-मन्दिर शिल्पनैपुण्य-पूर्ण है।

भाथा (हिं० पु०) १ चमड़ेकी वनी हुई लम्वी थैली। इसमें तीर भर कर तीर चलानेवाले पीठ पर वा कटिमें वांधते हैं। इसे तरकश या तूणीर भी कहते हैं। २ वड़ी भाथी।

भाथी (हिं० स्त्री०) १ चमड़ेकी धौंकनी जिसे लगा कर लोहार भट्ठीकी आग सुलगाते हैं। धौंकनी देखो।

भादर—वम्वई प्रदेशके अहमदावाद जिलेमें प्रवाहित एक नदी। रणपुरके निकट भादरगोमासङ्गम पर आजम खाँ नामक गुजरातके एक सूवादार द्वारा प्रतिष्ठित (१६३८ ई०) एक भग्नदुर्ग विद्यमान है। २ भाद्रमास।

भादू—वंगालके अन्तर्गत वांकुड़ा और मानभूम जिलेमें रहनेवाली वाउरी जाति द्वारा अनुष्ठित एक उत्सव, जो भाद्रमासकी संक्रान्ति और उससे पहले दिन हुआ करता है। यह भादोंके महीनेमें होता है, इसीसे इसका नाम भादू पड़ा है। लगभग प्रत्येक वाउड़ीके घरमें, भाद्रमासके प्रारम्भसे ही स्त्रियां पद्मके ऊपर वा एक चौकोन तख्त पर एक कुमारी मूर्त्ति स्थापन कर उसे देवीकी मूर्त्ति मान कर नाना अलङ्कारोंसे सुशोभित किया जाता है। उस मासमें प्रत्येक ग्रामकी वयोज्येष्ठा रमणी और वालिकाएं एकत्र हो कर उस देवीके चारों तरफ नृत्यगीतादि करती हुई प्रदक्षिणा देती हैं। मासके अन्तमें दो दिन तक रात्रि दिन नृत्यगीत और ढोल वजा कर वड़ी धूमधामसे इस उत्सवको पूरा करती हैं। इसे उनका व्रत समझना चाहिए।

भादों (हिं० पु०) एक महीनेका नाम, सावनके वाद और कारके पहलेका महीना। भाद्र देखो।

भाद्र (सं० पु०) भाद्री पौर्णमास्यस्मिन्निति भाद्री। (सास्मिन् पौर्णमासीति पा ४।२।२१) इत्यण्। वैशाख आदि वारह मासोंके अन्तर्गत एक मास। इस मासकी पूर्णिमा तिथिमें भाद्रपद नक्षत्रका योग होता है।

इसलिये इसका नाम भाद्र हुआ है। प्रथमतः यह मास दो प्रकारका है, सौर और चान्द्र। सूर्य और चन्द्र ले कर सौर और चान्द्र हुआ है। सिंहराशिमें जितने दिन सूर्य रहते हैं, उतने दिन सौरभाद्र है। चान्द्र-मास भी मुख्य और गौणचान्द्रके भेदसे दो प्रकारका है। सिंहस्थ रव्यारब्ध शुक्ल प्रतिपदादि अमावस्या पर्यन्त मुख्य चान्द्र भाद्र है और सिंहस्थ रव्यारब्ध पूर्णिमा पर्यन्त गौणचान्द्र। (मलमासतत्त्व) पर्याय—नभस्य, प्रौष्ठपद, भाद्रपद। (अमर) इस मासमें जन्मग्रहण करने पर धीर, वराङ्गनाओंका प्रिय, रिपुसंहर्त्ता, कुटिल और सर्वदा हास्ययुक्त होता है।

"नभस्यमासे खलु जन्म यस्य धीरो मनोज्ञश्च वरांगनानाम्।
रिपुप्रमाथो कुटिलोऽतिमर्मा प्रपन्नभर्त्ता स भवेत् सहासः।"
(कोष्ठीप्र०)

यदि भाद्रमासमें किसीके घर गाय वियावे, तो उसकी ६ मासके भीतर मृत्यु हो जाती है। अतएव भाद्रमासमें गाय वियाने पर तुरत ही वह गाय ब्राह्मणको दान कर देना चाहिए। पश्चात् यथाविधान होम करना आवश्यक है। यहां भाद्रमाससे सिर्फ सौरभाद्र ही समझना चाहिए। चान्द्रभाद्रमें गाय वियावे तो कोई दोष नहीं है।

"भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते।
मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः॥
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।
प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत्॥"

होमादि शान्ति-विधान करनेकी आवश्यकता नहीं। संक्रान्तिमें इस पुण्यकालके बाद प्रसव होने पर शान्ति-करना उचित है, गर्भादान अनावश्यक है।

संक्रमणोत्तरषोड़शदण्डात्मक पुण्यकालाभ्यन्तरे गोः प्रसवे विप्रसम्प्रदानक-गोप्रदानपूर्वक शान्तिः कार्येति विशेषः तदतिरिक्तसिंहस्थरवौ गोःप्रसवे शान्तिमात्रं कर्त्तव्यं न गोः प्रदानम्।"
(निर्णयसिन्धु)

भाद्रमासमें कौनसे कर्म करना आवश्यक है, उसका विषय कृत्यतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है,—श्रावणी पूर्णिमाके बाद भाद्र कृष्णाष्टमीव्रत सभीको करना चाहिए। जन्माष्टमी शब्दमें विशेष विवरण देखो।

भाद्रमासकी शुक्ला पञ्चमीको नागपूजा की जाती है। जो विधानानुसार कर्कोटकादि नागपूजा करते हैं, उनको फिर सप्तम पुरुष पर्यन्त नागभय नहीं रहता। इसीलिए इस भाद्रकी पञ्चमीको नागपञ्चमी कहा गया है।*

भाद्रमासकी शुक्ला एकादशीके दिन भगवान् विष्णुका पार्श्व परिवर्त्तन होता है, इसलिए पार्श्वपरिवर्त्तन-एकादशी अवश्य करनी चाहिए। भाद्र शुक्ला द्वादशीके दिन सांय-कालमें भगवान् विष्णुकी पूजा कर कृताञ्जलि हो इस मन्त्रका पाठ करना चाहिए।

"ॐ वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव।
पार्श्वेन परिवर्त्तस्व सुखं स्वपिहि माधव॥"

पश्चात् इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिए।

"त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत् सुप्तं भवेदिति।
प्रबुद्धे त्वयि बुध्येते जगत् सर्वचराचरम्॥" (कृत्यतत्त्व)

भाद्रमासके उभय पक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्र-दर्शन नहीं करना चाहिए। दैवात् यदि चन्द्रदर्शन हो जाय, तो प्रायश्चित्त करना उचित है।†

भाद्रमासमें अगस्त्यको अर्घ देना सभीके लिए आवश्यक कर्त्तव्य है। यह सौर मासमें ही दिया जाता है। संक्रान्तिके पहले तीन दिनोंमें प्रातःकालमें स्नानादि कर संकल्प करना चाहिए। "ॐ अद्येत्यादि सर्वाभिलषित-सिद्धिकामोऽगस्त्यपूजनमहं करिष्ये॥" इस प्रकार

---

* "तथा भाद्रपदे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः।
यस्त्वालिख्य नरो भक्त्या कृष्णवर्णादि वर्णकैः॥
पूजयेद्गन्धपुष्पैश्च सर्पिर्गुग्गुलुपाय सैः।
तस्य तुष्टिं समायान्ति पन्नगास्तक्षकादयः।
आसप्तमात् कुलात्तस्य नभयं सर्पतो भवेत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नागान् संपूजयेन्नरः॥" (कृत्यतत्त्व)

† "नारायणोऽभिशप्तस्तु निशाकरमरीचिषु।
स्थितश्चतुर्थ्यामद्यापि मनुष्यानापतेच्च सः॥
अतश्चतुर्थ्यां चन्द्रन्तु प्रमादाद्वीक्ष्य मानवः।
पठेद्वात्रेयिकावाक्यं प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः॥"

अभिशप्तो मिथ्यापरीवादविषयीभूतः सोऽभिशापः अद्यापि मनुष्यान पतेत। ततश्च प्राङ्-मुखउदङ्मुखो वा कुशतिलजला-न्याय ॐ अद्येत्यादि सिंहार्कचतुर्थी चन्द्रदर्शनजन्य-पापक्षयकामो धातुर्यीवाक्यमहं पठिष्ये।" इत्यादि। (कृत्यतत्त्वे भाद्रकृत्यम्)

संकल्प करके शालग्राम वा जलमें दक्षिणामुखसे अगस्त्यकी पूजा करनी चाहिए। बादमें सितपुष्पाक्षत-युक्त जल शङ्खमें ले कर अर्घ देना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है;—

"ॐ काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुत सम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तुते॥"

पश्चात् इस मन्त्रसे प्रार्थना की जाती है,—

'आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः।
समुद्रः शोषितः येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु॥"

(कृत्यतत्त्व)

भाद्रदारव (सं० त्रि०) भद्रदारु सम्बन्धीय।

भाद्रपद (सं० पु०) भाद्रपदा नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भाद्रपदी सा यत्र मासे सः, भाद्रपदी-अण्। भाद्रमास।

भाद्रपदा (सं० स्त्री०) १ पूर्व भाद्रपदा नक्षत्र। २ उत्तर भाद्रपदा नक्षत्र। पर्याय—प्रौष्ठपदा।

भाद्रमातुर (सं० पु०) भद्रमातुरपत्यमिति भद्रमातृ (मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः। पा ४।१।११५) इति अण, उकाराश्चान्तादेशः इति कारिका। सती पुत्र, जिसकी माता सती हो।

भाद्रमौञ्ज (सं० त्रि०) भद्रमुञ्ज निर्मित मेखला।

भाद्रवर्मण (सं० पु०) भद्रवर्माका गोत्रापत्य।

भाद्रविक (सं० पु०) चीन-धान्य, चेना।

भाद्रशर्मि (सं० पु०) भद्रशर्माका गोत्रापत्य।

भाद्रसाम (सं० पु०) भद्रसामका गोत्रापत्य।

भान (सं० क्ली०) भा भावे ल्युट्। १ प्रकाश, रोशनी। २ दीप्ति, चमक। ३ ज्ञान, प्रकाश। ४ प्रतीति, आभास।

भान (हिं० पु०) १ भानु देखो। २ तुङ्ग नामक वृक्ष। तुङ्ग देखो।

भानजा (हिं० पु०) बहिनका लड़का।

भानपुर—मध्यप्रदेशके इन्दोर राज्यके भानपुर तहसीलका प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ३१´ उ० तथा देशा० ७५° ४५´ पू०के मध्य रेवानदीके किनारे एक गण्डशैलके तटदेश पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ४६३६ है। समुपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १३४४ फुट है। नगर चारों ओर प्राचीरसे घिरा है। शहरके बीचमें यशोवन्तराव होलकरका असम्पूर्ण प्रासाद और दुर्ग अवस्थित है। इस प्रासादमें यशोवंतकी प्रस्तर-प्रतिमूर्त्ति विद्यमान है। १८११ ई०में भानपुरकी छावनीके मध्य यशोवन्तकी मृत्यु हुई थी। उनका भग्नावशेष जहां पर गिरा था, उसके ऊपर श्वेतप्रस्तर निर्मित छतरी बनाई गई है। शहरमें नायब सूबाका कार्यालय, स्कूल, कारागार, अस्पताल और डाकबंगला है।

भानमती (हिं० स्त्री०) वह नटी जो जादूका खेल करती हो, जादूगरनी।

भाननेर—मध्यप्रदेशके जब्बलपुर जिलान्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह विन्ध्यपर्वतमालाकी दक्षिण-पूर्व शाखा है और नरसिंहपुर जिलेके नर्मदा नदी तीरस्थ सङ्कलघाट पर्वतसे ले कर मैहिर उपत्यका तक विस्तृत है। यहांकी कालुमर नामक गिरिश्रेणी २५४४ फुट ऊंची है।

भानवी (हिं० स्त्री०) यमुना।

भानवीय (सं० त्रि०) १ भानु सम्बन्धीय। (क्ली०) २ दक्षिण चक्षु, दाहिनी आंख।

भाना (हिं० क्रि०) १ मालूम होना, जान पड़ना। २ अच्छा लगना, रुचना। ३ शोभा देना, सोहना। ४ चमकाना।

भानिकर (सं० पु०) किरणसमूह, आलोक।

भानियर—काश्मीरराज्यके पार्वत्यप्रदेशके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह उरिसे नौसरो जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां विचित्र कारुकार्य्ययुक्त एक हिन्दू देवमन्दिर है।

भानु (सं० पु०) भाति चतुर्दशभुवनेषु स्वप्रभया दीप्यते इति भा (दाभाभ्यां नुः ।३२) इति नु। १ सूर्य। २ विष्णु। ३ किरण। ४ अर्कवृक्ष, मदार। ५ एक देवगन्धर्वका नाम। ६ कृष्णके एक पुत्रका नाम। ७ उत्तम मन्वंतरके एक देवताका नाम। ८ राजा। ९ जैन ग्रंथोंके अनुसार वर्त्तमान अवसर्पिणीके पंद्रहवें अर्हत्के पिताका नाम। १० अङ्गिरः सृष्ट तपसके एक पुत्रका नाम। ११ यादवविशेष। १२ प्राधाके एक पुत्रका नाम। १३ प्रभु, मालिक। (स्त्री०) १४ कृष्णकी एक कन्याका नाम। १५ दक्षकी एक कन्याका नाम। १६ धर्मकी एक पत्नीका नाम।

भानु—रामसहस्रनामके प्रणेता।

भानुक—सह्याद्रिखण्डवर्णित एक राजा।
(सह्याद्रि ३३।७८)

भानुकम्प (सं० पु०) ग्रहणादिके समय सूर्यके बिम्बका कांपना। फलित ज्योतिषमें यह अमङ्गलसूचक माना गया है।

भानुकर—एक कवि। पद्यामृत तरङ्गिणीमें इनका नामोल्लेख है।

भानुकेशर (सं० पु०) सूर्य।

भानुखेरा—वृन्दावनस्थित कुण्डविशेष। इस कुण्डका जल अति उपादेय है। इसके चारों ओर राजा वृषभानुकी गायें रहती थीं। (श्रीवृन्दावनलीलामृत, भक्तमाल)

भानुगुप्त—गुप्तवंशीय एक राजा।

भानुचन्द्र—काव्यप्रकाशटीका और कादम्बरीटीकाके प्रणेता।

भानुचन्द्रगणि—एक जैनपण्डित। इन्होंने मुगल-सम्राट् अकबर जलालउद्दीन (१५१४-१६०५ ई०)की सभामें रह कर वसन्तराजकृत शकुनार्णव ग्रन्थकी टीका लिखी। इनके शिष्य सिद्धचन्द्रने इसका संशोधन किया है।

भानुचूड़ामणि—औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—स्वर्ण, रससिंदूर, प्रवाल, वङ्ग, लौह, ताम्र, तेजपत्र, यमानी, कचूर, सैन्धवलवण, मिर्चा, कुट, खैर, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, रसाञ्जन और स्वर्णमाक्षिक इनके बराबर बराबर भागको जलमें घोंट कर दो रत्तीकी गोली बनावे। प्रतिदिन सबेरे इसका सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर जाता रहता है।

भानुज (सं० पु०) भानोर्जायते जन-ड। १ यम। २ शनिश्चर। ३ कर्ण।

भानुजा (सं० स्त्री०) यमुना।

भानुजिदीक्षित—प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजि-दीक्षितके पुत्र। इन्होंने राजा कीर्त्तिसिंहदेवके अनुरोध करने पर व्याख्यासुधा या सुबोधिनी नामक अमरकोषकी टीका लिखी है। स्वीय साधुजीवनके परिचयस्वरूप इन्होंने परवर्त्ती कालमें 'रामभद्राश्रम'की उपाधि पाई थी।

भानुजित्—खेचरभूषण नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता।

भानुतनया (सं० स्त्री०) यमुना।

भानुदत्त—१ एक वैयाकरण। देवराजने इनका नामोल्लेख किया है। २ कुमारभार्गवीय नामक दो ग्रंथके प्रणेता। ३ मुहूर्त्तसार नामक ज्योतिर्ग्रंथके रचयिता। ४ मिथिलावासी एक पण्डित; गणपतिनाथके पुत्र। ये अलङ्कारतिलक, रसतरङ्गिणी, रसमञ्जरी और शृङ्गारदीपिका नामक ग्रंथ लिख गये हैं।

भानुदत्ता—संयतिकी एक पत्नीका नाम।

भानुदिन (सं० क्ली०) भानोर्दिनं। सूर्यका दिन, रविवार।

भानुदीक्षित—गुरुबालप्रबोधिनी नामक अमरकोषटीका और लिङ्गभट्टिय नामक एक अभिधानके प्रणेता।
भानुजिदीक्षित देखो।

भानुदेव (सं० पु०) भानुरेव देवः। १ सूर्य। २ पाञ्चाल देशीय पाण्डव पक्षीय एक वीर। ये भारतयुद्धमें कर्णके हाथसे मारे गये थे। ३ राजपुत्रभेद। ४ उमाङ्गाधिपति चन्द्रवंशीय एक राजा। आप १४५० सम्वत्में विद्यमान थे। ५ उड़ीसाके एक राजा। इन्होंने चालुक्य-राजकन्या जाकल्लदेवीको व्याहा था। ६ उक्त राजवंशीय २य नरसिंहदेवके पुत्र।

भानुनाथदैवज्ञ—भौआलवंशीय चन्दनानन्दके पुत्र। इन्होंने भक्तिरत्न और व्यवहाररत्न नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

भानुपण्डित (सं० पु०) १ सज्जनवल्लभके प्रणेता। २ एक कवि। ये श्रीवैद्य भानुपण्डित नामसे प्रसिद्ध थे। शार्ङ्गधर-पद्धतिमें इनका ना ोल्लेख है।

भानुपाक (सं० पु०) औषध आदिको सूर्यकी गर्मी या धूपकी सहायतासे पकानेकी क्रिया। रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसके पाकका विधान इस प्रकार लिखा है,—लौह चूर्णको वार वार छान कर त्रिफलाके काढेमें प्रक्षालन करे। सूख जाने पर सूर्यकी किरणमें पकावे। पीछे लोहेके समान त्रिफलाको द्विगुण जलमें पाक कर चतुर्थ भागावशेष रहते उस काढ़ेको सूर्यकी गर्मीमें सुखा ले। इसीको भानुपाक कहते हैं (रसेन्द्रसारसं०)

भानुप्रताप (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक राजाका नाम। यह कैकय देशके राजा सत्यकेतुके पुत्र थे। तुलसीकृत रामायणमें इनकी कथा इस प्रकार है—एक दिन भानुप्रताप आखेटको बाहर निकले। जङ्गलमें इन्हे

एक सूअर दिखाई दिया। इन्होंने घोड़ेको उसके पीछे छोड़ा। निविड़ जङ्गलमें जा कर सूअर कहीं छिप रहा और राजा जङ्गलमें भटक गये। इस प्रकार भटकते भटकते इन्हें एक तपस्वीका आश्रम मिला। यह तपस्वी और कोई न था, राजाका शत्रु था जिसका राज्य इन्होंने छीन लिया था। राजा बहुत प्यासे थे और उन्होंने तपस्वीको पहचाना न था। तपस्वीसे जब उन्होंने पानी मांगा तब उन्हें एक तालाब बतला दिया गया। राजाने वहां जा कर जल पी कर अपनी प्यास बुझाई। रात हो रही थी, तपस्वीने राजाको अपने आश्रममें ले गया। रातके समय दोनोंमें बात चीत हुई। तपस्वीने कपटसे राजाको अपनी मीठी मीठी बातोंसे वशीभूत कर लिया। तपस्वीकी बातोंमें पड़ कर राजा रातको वहीं सो रहे। अब तपस्वीने अच्छा मौका देख कर अपने मित्र कालकेतु राक्षसको बुलाया और वह क्षण भरमें राजाको उठा कर उनकी राजधानीमें पहुंचा आया तथा घोड़ेको घुड़सालमें बांध आया। राजाके पुरोहित साथ ही थे सो उस दुष्ट राक्षसने उन्हें भी उठा कर पर्वतकी एक गुफामें बंद कर दिया और आप पुरोहितका रूप धारण कर उनकी जगह पर लेट रहा। प्रातः काल जब राजा बिछावन परसे उठे, तब उन्हें मुनि पर विशेष श्रद्धा हुई। पुरोहितको बुला कर राजाने तीसरे दिन भोजन बनानेकी आज्ञा दी और ब्राह्मणोंको भोजनका निमन्त्रण दिया। कपटी पुरोहितने तरह तरहके मांसोंके साथ मनुष्यका मांस भी पकाया। जब ब्राह्मण लोग भोजन करने उठे और राजा परोसने लगे, इसी बीचमें आकाशवाणी हुई कि तुम लोग यह अन्न मत खाओ, इसमें मनुष्यका मांस है। ब्राह्मण लोग आकाशवाणी सुन कर उठ गये और राजाको शाप दिया, कि तुम परिवार सहित राक्षस हो। कहते हैं, कि वही राजा भानुप्रताप मरने पर दूसरे जन्ममें रावण हुए।

भानुफला (सं० स्त्री०) भानुरिव दीप्तिमत् फलमस्याः। कदली, केला।

भानुभट्ट (सं० पु०) एक ग्रन्थकार, नीलकण्ठ- भट्टके पुत्र और शङ्कर भट्टके पौत्र। इन्होंने एक वस्त्रस्नानविधि, होमनिर्णय और द्वैतनिर्णयसिद्धान्तसंग्रह नामक अपने पितामह कृत धर्माद्वैतनिर्णय ग्रन्थका एक संक्षिप्त परिचय लिखा है।

भानुभट्ट—प्रश्नार्णवके प्रणेता नारायणदास सिद्धके गुरु।

भानुमत् (सं० पु०) भानवः सन्त्यस्येति भानु-मतुप्। १ सूर्य। २ कलिङ्गके एक राजाका नाम। ३ केशिध्वजके एक पुत्रका नाम। (भाग० ९।१३।२१) ४ भर्गका एक नाम। ५ कृष्णके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ६ दीप्तियुक्त, प्रकाशमान्।

भानुमती (सं० स्त्री०) भानु-मतुप् ङीप्। १ विक्रमादित्यकी रानीका नाम यह अत्यन्त रूपवती और इंद्रजाल विद्याकी जानकार थी। ३ कृतवीर्यकी कन्या जो अहंयातिसे ब्याही थी। ३ अङ्गिरसकी पहली कन्याका नाम ४ यादव भानुकी कन्या। ५ दुर्योधनकी पत्नी। ६ गङ्गा। ७ राजा सगरकी एक स्त्रीका नाम। ८ जादूगरनी।

भानुमय (सं० त्रि०) रश्मिसम्वलित आलोकमाला समाकीर्ण।

भानुमान (हिं० वि०) भानुमत् देखो। (पु०) २ कोशलदेशके एक राजाका नाम। ये दशरथके श्वसुर थे। ३ भानुमत् देखो।

भानुमाली (सं० त्रि०) सह्याद्रिखण्डवर्णित एक राजा। (सह्याद्रि० ३३।१४९)

भानुमित्र (सं० पु०) १ राजा चन्द्रगिरीके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु०) २ गढ़ादेशाधिपति एक राजाका नाम। ३ एक प्राचीन राजाका नाम। ये मौर्यवंशीय पुष्यमित्रके बाद गद्दी पर बैठे थे।

भानुमिश्र—एक कवि। पद्यामृततरङ्गिणीमें इनकी रचित कविता उद्धृत हुई है।

भानुमुखी (सं० पु०) सूर्यमुखी।

भानुरथ (सं० पु०) चन्द्रगिरिराजपुत्र।

भानुल (सं० पु०) १ भानुदत्तका नामान्तर। २ कार्त्तिक।

भानुवन (सं० क्ली०) भार्गवन नामक अरण्य।

भानुवर्म (सं० पु०) दाक्षिणात्यके अन्तर्गत पलाशिकाके कादम्बवंशीय एक राजाका नाम।

भानुवार (सं० पु०) भानोर्वारः। रविवार, एतवार। अमावस्या, द्वादशी संक्रान्ति और रविवार इन सब दिनोंमें

स्नान, जप, होम, देवतापूजा और उपवास विशेष पुण्यकर है। (तिथितत्त्व)

भानुविक्रम—चेरवंशीय एक राजाका नाम, त्रिवाङ्कोड़राज-वंशके प्रतिष्ठाता

भानुशक्ति—सेन्द्रकवंशीय एक राजा। ये कादम्बराज हरिवर्माके समसामयिक थे।

भानुसुत (सं० पु०) १ यम। २ मनु। ३ शनिश्चर। ४ कर्ण।

भानुसुता (सं० स्त्री०) यमुना।

भानुसेन (सं० पु०) कर्णके एक पुत्रका नाम।

भानेमि (सं० पु०) भानां प्रभाचक्राणां नेमरिव सूर्य।

भान्त (सं० पु०) भायाः दीप्तेः पञ्चदशाह मध्ये अन्तो-यस्य। शुक्ल और कृष्णपक्षके पञ्चदशाहके मध्य कान्तिका उपचय और अपचययुक्त चन्द्र। २ नक्षत्र और राशिका अन्त।

भान्द (सं० पु०) अतिपुराण भेद।

भान्धुप—वम्बई प्रदेशके थाना जिलान्तर्गत समुद्रतीरवर्त्ती एक वन्दर। यह अक्षा० १९° ८′ ४५″ उ० तथा देशा० ७२° ५९′ १५″ पू०के मध्य विस्तृत है। यहां एक रेलवे-स्टेशन है।

भाप (हिं० स्त्री०) १ पानोके वहुत छोटे कण जो उसके खौलनेकी दशामें ऊपरको उठते दिखाई पड़ते हैं और ठंढक पा कर कुहरे आदिका रूप धारण करते हैं। विशेष विवरण वाष्प शब्दमें देखो।

भापना (हिं० क्रि०) भांपना देखो।

भापशाह—वम्बईप्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक गण्ड शैल।

भावर (हिं० पु०) हिमालय, राजपूताने, मध्य भारत दक्षिण आदिमें पहाड़ी प्रदेशोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी घास। यह रस्सी वनानेके काममें आती है।

भाभर—गुजरात प्रदेशके पालनपुर एजेन्सीके अन्तर्गत भाभर राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ७′ उ० तथा देशा० ७१° ४३′ पू०के मध्य पालनपुरसे ५५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

भाभर (हिं० पु०) १ वह जंगल जो पहाड़ोंके नीचे और तराईके वीचमें होते हैं। यह प्रायः साखू आदिके होते हैं। २ एक प्रकारकी घास। यह रस्सी वनानेके काममें आती है और पर्वतों पर उगती है।

भाभरो (हिं० स्त्री०) १ गरम राख, भूभल। २ कहारकी वोलीमें धूल जो राहमें होती है।

भाभी (हिं० स्त्री०) वड़े भाईकी स्त्री, भौजाई।

भाम (सं० पु०) भमनमिति भाम क्रोधे घञ्। १ क्रोध, गुस्सा। २ प्रकाश, दीप्ति। ३ सूर्य। ४ भगिनीपति, वहनोई। ५ एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण और अन्तमें तीन सगण होते हैं।

भाम—वरारके वून जिलेका एक जनशून्य शहर। यह अक्षा० २०° १३′ ३३″ उ० तथा देशा० ७८° ३′ पू०के मध्य जेऊत-मलसे १६ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां रघुजी भोंसलेके सेनानिवासका भग्नावशेष वर्त्तमान है। कहते हैं, कि यहां किसी समय पांच हजार वैरागी वास करते थे। पहले यह नगर जंगलसे परिपूर्ण था।

भाम—वम्बई प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत नदीविशेष। यह सह्यपर्वतसे निकली है।

भाम (हिं० स्त्री०) स्त्री।

भामक (सं० पु०) भाम एव स्वार्थे कन्। भगिनीपति, वहनोई।

भामकवि—षड़भाषाचन्द्रिकाके रचयिता।

भामचन्द्र—पूना जिलान्तर्गत एक गण्डशैल। इस पर भाम-चन्द्र (शिव)-का मन्दिर और सीताकुण्ड नामक जल-प्रपात है। यह पर्वत चाकनसे ७ मील पश्चिम पड़ता है। उक्त शिवमन्दिर व्यतीत इस पर्वत पर अनेक गुहामन्दिर और दघोव आदि वौद्धकोर्त्तियां मौजूद हैं।

भामण्डल (सं० क्ली०) भानां मण्डलं। १ रश्मिमेखला। २ अङ्कित ऋषि वा राजाके मुखकी चतुर्दिकस्थ किरण-माला।

भामता—जातिविशेष। इस जातिके लोग चोरो करके अपना गुजारा चलाते हैं। इनका आचार, व्यवहार और परिच्छद उच्च जातिके हिन्दुओं-सा है। इनमेंसे प्रायः सभी सङ्गतिपन्न। भामतीय देखो।

भामती—षड्दर्शनटीका कृत वाचस्पति-मिश्रकृत वेदान्त सूत्रकी टीका। यह टीका अतिशय प्राञ्जल है।

भामतीय—दाक्षिणात्यकी भ्रमणशील जातिविशेष। इस जातिके लोग चोरी और ठगीसे जीविकानिर्वाह करते हैं। पूनाके पश्चिम भाम्बुंदा, गणेशखण्ड आदि स्थानोंमें इनका वास है।

भामनी (सं० पु०) भामं नयति नी-क्विप्। १ परमेश्वर। (त्रि०) २ प्रकाशक। ३ मालिक।

भामह (सं० पु०) १ एक अलङ्कारशास्त्रके प्रणेता। २ राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा।

भामह—एक प्राचीन ग्रन्थकार। ये वररुचिकृत प्राकृत-प्रकाशकी मनोरमावृत्ति नामक टीका और एक अलङ्कार ग्रन्थ लिख गये हैं।

भामा (सं० स्त्री०) भामते इति भाम-अच् टाप्। १ कोपना स्त्री, क्रुद्ध औरत। २ स्त्री, औरत।

भामिन् (सं० त्रि०) भाम-णिनि। १ क्रोधयुक्त। २ तेजस्वी।

भामिनी (सं० स्त्री०) भामते इति भाम-णिनि ङीप्। १ कोपनास्त्री, क्रोध करनेवाली स्त्री। २ स्त्री, औरत। ३ तुनय नामक गन्धर्वकी दुहिता। (मार्कण्डेयपु० १२८।७)

भामी (सं० त्रि०) भामिन् देखो।

भामेर—बम्बईप्रदेशके खान्देश जिलांतर्गत एक प्राचीन नगर। अभी यहां पूर्वतन नगरका ध्वंशावशेषमात्र रह गया है। यह निजामपुरसे ४ मील दक्षिण पड़ता है।

भामो—उत्तर-ब्रह्मका एक जिला। यह अक्षा० २३° ३७' से २४° ५२' उ० तथा देशा० ९६° ३४' से ९७° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१४६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें मैतकिना जिला, पूर्वमें चीनकी सरहद, दक्षिणमें मोङ्गमीतका शानराज्य और पश्चिममें कठा जिला है।

जिलेका नाम शान है। इसका प्राचीन इतिहास नहीं मिलता, पर इतना जरूर है, कि एक समय शान राज्य बहुत चढ़ा बढ़ा था। समपेनगोमें इसकी राजधानी थी जिसका भग्नावशेष आज भी भामो शहरमें दृष्टिगोचर होता है। १८८५ ई०में वृटिश सरकारने इस पर अधिकार जमाया। जिलेमें इसी नामका १ शहर और ७८३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८० हजारके करीब है। विशेष विवरण ब्रह्म शब्दमें देखो।

२ उक्त जिलेका पूर्वी उपविभाग। यह अक्षा० २३° ४६' से २४° ५२' उ० तथा देशा० ९७° १' से ९७° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १७२३ वर्गमील और जनसंख्या ५७५७२ है। इसमें ५९८ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका सदर। यह अक्षा० २४° १५' उ० तथा देशा० ९७° १५' पू० इरावदी नदीके किनारे अवस्थित है। चीनराज्यके साथ इस नगरका विस्तृत वाणिज्य होता है। पहलेसे यह नगर अभी उन्नत दशामें है। यहांकी जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है।

भाम्बुर्दा—बम्बईप्रदेशके पूना जिलांतर्गत मुथातीरस्थ एक गण्डग्राम। यह ग्राम पूनासे सटा हुआ है और काठके एक पुलसे पूनानगरके साथ संयोजित है। यहां पशु क्रय-विक्रयके लिये प्रति बुधवारको एक छोटा मेला लगता है। ग्रामके प्रांतभागमें अङ्गरेजोंका वासभवन और विख्यात पाञ्चालेश्वर मन्दिर है। १८०१ ई०में विख्यात यशोवन्त राव होलकरके भाई विठोजी होलकर यहां पर बाजीरावसे पकड़े गये थे। बाजीरावने सिन्दे राजको प्रसन्न करनेके लिये विठोजीके हाथ पांव बांध कर उनकी हत्या करनेका हुकुम दिया था।

भाम्बोर—बम्बईप्रदेशके कराची जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २४° ४०' उ० तथा देशा० ६७° ४१' पू०के मध्य अवस्थित है। अभी यह नगर ध्वंसावस्थामें पड़ा है। इसका प्राचीन नाम देवल है, पर किसी किसीका कहना है, कि मुसलमानोंके आक्रमणके पहले इस नगरका नाम महारा वा मानसार था।

भाय (हिं० पु०) १ भाई। २ अन्तःकरणकी वृत्ति, भाव। २ भाँति, ढंग। ३ परिमाण। ४ दर, भाव।

भायजात्य (सं० पु०) कपिवलका गोत्रापत्य।

भायप (हिं० पु०) भ्रातृभाव, भाईचारा

भाया (हिं० वि०) प्रिय, प्यारा।

भायावदर—बम्बईप्रदेशके हलार जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २१° ५१' १५" उ० तथा देशा० ७०° १७' १५" पू०के मध्य अवस्थित है।

भायिल—१ राजमालवंशीय एक राजा। २ गृहनिर्माण।

भार—१ कच्छदेशीय जातिविशेष। दिल्लीके सम्राट् जहांगीरके शासनकालमें उनके लड़के शाहजहांने इन लोगोंको परास्त किया था।

भार (सं० पु०) म्रियते इति भृञ् मरणे (अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां । पा ३।३।१९) इति घञ् । १ परिमाण जो बीस पसेरीका होता है । २ विष्णु । ३ गुरुत्व, बोझ ।

भार (हिं० पु०) १ वह बोझ जिसे बहँगीके दोनों पल्लों पर रख कर कंधे पर उठा कर ले जाते हैं । २ रक्षा, संभाल । ३ किसी कर्त्तव्यके पालनका उत्तरदायित्व । ४ आश्रय, सहारा ।

भारक (सं० पु०) भार नामकी तौल ।

भारकी (सं० स्त्री०) भृ बाहुलकात् अङ्कच् । पोषणकर्त्री स्त्री, दाई ।

भारङ्गी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा । इसकी ऊंचाई मनुष्यके बराबर होती है । इसकी पत्तियां महुएकी पत्तियों से मिलती हुई गुदार और नरम होती हैं । लोग इन पत्तियोंका साग बना कर खाते हैं । इसमें सफेद फूल लगते हैं । इसकी जड़, डंठल, पत्ती और फल औषधके काममें आते हैं । इसके फूलका नाम गुलअसवर्ग है । इसकी पत्तियोंका प्रयोग ज्वर, दाह, हिचकी और त्रिदोषमें होता है । इसके मूलका गुण गर्म, रुचिकर, और दीपन माना गया है । इसका स्वाद कड़ुआ, कसैला, चरपरा और रूखा है ।

भारण्ड (सं० पु०) उत्तरकुरुदेशज शकुनपक्षी ।

भारत (सं० पु०) भारतान् भरतवंशीयानाधिकृत्य कृतो ग्रन्थ इत्यण् । १ ग्रन्थभेद, महाभारतका पूर्वरूप या मूल जो २४००० श्लोकका है । यह महर्षि वेदव्यास द्वारा रचा गया है । विशेष विवरण महाभारत शब्दमें देखो । २ वर्षभेद, जम्बूद्वीपके नववर्षके अन्तर्गत वर्षविशेष । भरतस्य मुनेरयं भरत-अण् । (पु०) ३ नट । ४ अग्नि । भरतस्य गोत्रापत्यमिति भरत-अण् । ५ भरतका गोत्रापत्य, भरतके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष । ६ कथा, लम्बा चौड़ा विवरण ।

भारत—समरसारोदाहरणके प्रणेता ।

भारतआचार्य—तन्त्रसारधृत एक तन्त्रग्रन्थकार ।

भारतकर्ण—तत्त्वकणिकाके रचयिता ।

भारतखण्ड (सं० पु०) भारतवर्ष देखो ।

भारतचन्द्रराय—एक सुप्रसिद्ध वङ्ग-कवि । ये कालिका मङ्गल (अन्नदामङ्गल) लिख कर अपनेको वङ्गवासियोंके निकट चिरपरिचित कर गये हैं । ग्रन्थकी भाषा अश्लील होने पर भी उसकी रचना वैचित्र्य और कवित्व पूर्ण श्रुतिमधुर सरल पदविन्यास देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है । साहित्य और काव्यादि साधारणतः सामयिक समाज-चित्र सङ्कलित हो सकता है । कवि भारतचंद्रने अपने अपने ग्रंथके मध्य जिन सब अमार्जित रुचिका वाक्यविन्यास किया है, वह तत्कालीन सामाजिक विप्लवका परिचायक है । नवाबी अमलदारीमें मुसलमानोंके अत्याचार और सुखविलासी जमींदारोंकी यथेच्छा चारितासे उस समय समाजमें एक विशेष उच्छृङ्खला उपस्थित हो गई थी । उस विलासिता और कामिनीकाञ्चन लालसामें पड़ कर उस समय सभी प्रायः आदिरसके अनुरागी हो गये थे । इसी कारण आदिरस-सुखास्वादनोत्सुक नवद्वीपाधिपति महाराज कृष्णचंद्रके आदेशसे कविश्रेष्ठ भारतचंद्र विद्यासुन्दरकी तरह आदिरस पूर्ण ग्रंथके प्रणयनमें समर्थ हुए थे । जो कुछ हो, आप सामयिक रुचिके वशवर्त्ती हो कर अपनी कवित्व-शक्तिकी पराकाष्ठा दिखला गये हैं ।

भारतमण्डल—जम्बूद्वीपके अन्तर्गत भारताख्य देशभेद । भारतवर्ष देखो ।

भारतवर्ष—जम्बूद्वीपके अन्तर्गत एक क्षेत्र । हिंदुस्तान कहनेसे भी भारतवर्षका ज्ञान होता है । ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—

"भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतं ॥"

(पूर्वभाग ४८।१०)

प्रजाओंका भरण करते थे, इसलिए मनु भरत नामसे आख्यात हैं और भरत नामक मनु प्रतिपालित होनेसे इस वर्षका नाम भारतवर्ष हुआ । कोई कोई दुष्मन्तके पुत्र भरतके नामानुसार भारतवर्ष नामकी निरुक्ति बतलाते हैं । कुमारिकाखण्ड और नारसिंहपुराणमें लिखा है, जम्बूद्वीपाधिपति अग्नीध्रके ज्येष्ठ पुत्र नाभिने हिमालयका आधिपत्य प्राप्त किया । नाभिके पुत्र ऋषभ और उनके पुत्र भरत थे । इन भरतने बहुत काल तक धर्मानुसार जिस वर्षका शासन किया था, वही उनके

नामानुसार भारतवर्ष कहलाया *। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार, भरतके पिताने उन्हें यह राज्य दिया था इस लिए इस वर्षका नाम भारतवर्ष पड़ा†।

पौराणिक सीमा और भूवृत्तान्त।

ब्रह्माण्ड, मत्स्य, विष्णु आदि पुराणोंमें भारतवर्षकी जो सीमा निर्दिष्ट है, वह नीचे दी जाती है—

"उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणञ्च यत्।
वर्षं तद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा॥"

जो देश समुद्रके उत्तरमें और हिमालय पर्वतके दक्षिणमें है, उसका नाम भारतवर्ष है। यहांकी प्रजा भारती नामसे प्रसिद्ध है।

पौराणिक विभाग।

उक्त पुराणोंमें लिखा है,—

"भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदाः प्रकीर्त्तिताः।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्तेत्वगम्याः परस्परम्॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः॥
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
योजनानां सहस्रन्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरं॥
आयतो ह्याकुमारिकादागङ्गाप्रभवाच्च वै।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्रत्रयमेव च।
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु नित्यशः।
पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैर्वर्त्तयन्तो व्यवस्थिताः॥"

(ब्रह्माण्डपुराण ४८।१२—२७)

इस भारतवर्षके नौ विभाग कहे गये हैं। इसका प्रत्येक भाग समुद्र द्वारा अन्तरित होनेसे परस्पर अगम्य है। इन नौ विभागोंके नाम ये हैं—इन्द्रद्वीप, कशेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान् नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वारुण, इसके सिवा नौवां सागर वेष्टित द्वीप है। इस नौवें द्वीपका उत्तर-दक्षिणमें आयत सहस्र योजन है, किंतु कुमारिकासे गङ्गा तक इसका उत्तर-दक्षिणमें वक्र-रूप विस्तार तीन सहस्र योजन है। इस नौवें द्वीपके प्रान्तभागमें सर्वदा बहुतर म्लेच्छ वास करते हैं। इसकी पूर्वसीमामें किरातों, पश्चिममें यवनों तथा मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंका, यज्ञ, युद्ध और वाणिज्यादि अवलम्बन-पूर्वक वास है। वामन-पुराणमें नवम द्वीप कुमारिद्वीप नामसे कहा गया है *। वामन पुराणके मतसे—

"पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः।
आन्ध्रा दक्षिणतो वीर तुरुष्काश्चापि चोत्तरे॥"

अर्थात् इस कुमारद्वीपको पूर्व सीमामें किरातराज्य, पश्चिममें यवनराज्य, दक्षिणमें आन्ध्रराज्य और उत्तरमें तुरुष्कराज्य है। यह कुमारद्वीप ही वर्त्तमानमें भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध है। इस नवम द्वीपके अतिरिक्त अन्य आठ द्वीप वर्त्तमान भारतवर्षके बाहर भारतमहासागरके मध्यमें अवस्थित जान पड़ते हैं। उनमें ताम्रवर्ण और नागद्वीप वर्त्तमान सिंहलद्वीपका अंश विशेष है, ऐसी प्रसिद्धि थी, इसके बहुत प्रमाण भी मिलते हैं। परन्तु इन्द्रद्वीपके प्राचीन नाम परिवर्त्तित होनेसे उनके वर्त्तमान अवस्थानका निर्णय करना एक प्रकारसे दुःसाध्य ही है।

पुराणानुसार भारतीय अनुद्वीप।

उक्त नौ द्वीपोंके अतिरिक्त ब्रह्माण्डपुराणमें और भी कई एक भारतीय अनुद्वीपोंका उल्लेख है। जैसे—

"अङ्गद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीपमेव च।
शङ्खद्वीपं कुशद्वीपं वराहद्वीपमेव च॥
अङ्गद्वीपं निबोध त्वं नानासङ्घसमाकुलं।
नानाम्लेच्छगणाकीर्णं तद्द्वीपं बहुविस्तरं॥
हेमविद्रुमपूर्णानां रत्नानामाकरं क्षितौ।
नदीशैलवनैश्चित्रं सम्मितं लवणाम्भसा॥
तत्र चक्रगिरिर्नाम नैकनिर्झरकन्दरः।
तत्र सा तु दरी चास्य नानासत्त्व समाश्रया॥

* "नाभेः पुत्रस्तु ऋषभाद्भरतो चाभवत्ततः।
तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते॥"
(कुमारिका ३३ अ०)
नारसिंहपुराण ३०वां अध्याय देखना चाहिये।

† "हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय ददौ पिता।
तस्माच्च भारतं वर्षं —" (मार्कण्डेयपु०)

* अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
कुमाराख्यपरिख्यातो द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥"
(वामनपुराण)

भास्कराचार्यके गोलाध्यायमें यह नवम द्वीप 'कुमारिका' नाम-से वर्णित हुआ है।

स मध्ये नागदेशस्य नैकदेशो महागिरिः ।
कोटिम्यां नाग-निलयं प्राप्तो नदनदीपतिं ॥
यवद्वीपमिति प्रोक्तं नानारत्नाकरान्वितम् ।
तत्रापि द्युतिमान्नाम पर्वतो धातुमण्डितः ॥
समुद्रगानां प्रभवः प्रभवः काञ्चनस्य तु ।
तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतम् ॥
मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरं कनकस्य च ।
आकरं चन्दनानाञ्च समुद्रानां तथाकरं ॥
नानाम्लेच्छगणाकीर्णं नदीपर्वतमण्डितं ।
तत्र श्रीमांस्तु मलयः पर्वतो रजताकरः ॥
महामलय इत्येवं विख्यातो वर पर्वतः ।
द्वितीयं मन्दरं नाम प्रथितञ्च सदा क्षितौ ॥
अगस्त्यभवनं तत्र देवासुरनमस्कृतं ।
तथा काञ्चनपादस्य मलयस्यापरस्य हि ॥
निकुञ्जैस्तृणसोमाङ्गैराश्रमं सिद्ध सेवितं ।
नाना पुष्प फलोपेतं स्वर्गादपि विशिष्यते ॥
तथा त्रिकूटनिलये नानाधातु विभूषिते ।
अनेकयोजनोत्सेधे चित्रसानुदरीगृहे ॥
तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणा ।
निर्यूहवलभी चित्रा हर्म्यप्रासादमालिनी ॥
शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्का नाम महापुरी ॥
सा कामरूपिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनां ।
आवासो बलदृप्तानां तद्विद्यादेव विद्विषां ।
मानुषाणामसम्बाधा ह्यगम्या सा महापुरी ।
तस्य द्वीपस्य वै पूर्वे तीरे नदनदी पतेः ॥
गोकर्णनामधेयस्य शङ्करस्यालयो महान् ।
तथैव राज्यं विज्ञेयं शङ्खद्वीप समाश्रितं ॥
शतयोजनविस्तीर्णं नानाम्लेच्छ गणालयं ।
तत्र शङ्खगिरिर्नाम धौतशङ्खदलप्रभः ॥
नानारत्नाकरः पुण्यः पुण्यकृद्भिर्निषेवितः ।
शङ्खनागा महापुण्या यस्मात् प्रभवते नदी ॥
यत्र शङ्खमुखो नाम नागराजकृतालयः ।
तथैव च कुशद्वीपं नानापुण्योप शोभितम् ॥
नाना ग्रामसमाकीर्णं नानारत्नाकरं शिवम् ।
कामदा नाम विख्याता दुष्टचित्तनिवर्हणी ॥
महाभागा भगवती प्रभाभिस्ताभिरिज्यते ।
तथा वराहद्वीपे च नाना म्लेच्छगणाकुले ॥
नानाजातिसमाकीर्णे नानाधिष्ठानपत्तने ।
धनधान्ययुते स्फीते धर्मिष्ठजनसङ्कुले ॥
नदीशैलवनैश्चित्रैर्बहुपुष्पफलोपगैः ।
वराहपर्वतो नाम तत्र रम्यः शिलोच्चयः ।
अनेककन्दरदरी-गुहा-निर्झर-शोभितः ।
तस्मात् सुरसपानीया पुण्यतीर्थतरङ्गिणी ॥
वाराही नाम वरदा प्रवृत्तास्य महानदी ॥
वाराहरूपेण तत्र विष्णावे प्रभविष्णवे ।
अनन्यदेवतास्तस्मै नमस्कुर्वन्ति वै प्रजाः ॥
एवं षड़ेते कथिता अनुद्वीपाः समन्ततः ।
भारतद्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः ॥"

(ब्र०पु० ५१।१४—४२)

अर्थात् अङ्गद्वीप, यवद्वीप, मलयद्वीप, शङ्खद्वीप, कुशद्वीप और वराहद्वीप नामसे प्रसिद्ध बहुप्रकार प्राणिपरिपूर्ण नाना रत्नोंके आकर छह द्वीप हैं। विशाल अङ्गद्वीपमें म्लेच्छजाति रहती है और उसमें सुवर्ण, प्रवाल तथा नाना प्रकारके रत्नोंकी खानें हैं। यह द्वीप अनेक प्रकार नदी पर्वत और वन द्वारा अलङ्कृत और लवण-समुद्र द्वारा परिवेष्टित है। यहां चक्र नामका एक पर्वत है। उसकी गुहाएं अति विस्तृत और नाना प्रकारके प्राणियोंसे परिपूर्ण हैं। यह महागिरि नागदेशके मध्य भागमें अवस्थित है। इसके ऊपर बहुतसे प्रदेश हैं। पर्वतके दोनों प्रान्तभाग समुद्र तक फैले हुए हैं।

यवद्वीप नानाविध रत्नोंका आकर है। उसमें नाना धातु-मण्डित द्युतिमान् नामक एक पर्वत है। इस पर्वतसे अनेक नदियां उत्पन्न हुई हैं और उसमें नाना प्रकारके रत्न पाये जाते हैं।

मलयद्वीपमें बहुविध चन्दन, स्वर्ण, मणि और रत्न मिलते हैं। वहां बहुतसे म्लेच्छ वास करते हैं। उसमें अनेक नदियां और छोटे छोटे पर्वत अवस्थित हैं। बहुत भांतिके वन और उपवनों द्वारा परिशोभित होनेसे इस द्वीपकी प्राकृतिक शोभा अतिशय मनोहारिणी है। यहां एक रजताकर मलय पर्वत है, जो महामलय नामसे भी प्रसिद्ध है मन्दार नामका और एक पर्वत है, जिस

पर देवासुर-पूजित अगस्त्य मुनिका आश्रम प्रतिष्ठित हैं। पूर्वोक्त मलय पर्वतके स्वर्णमय पादमें मनोहर तृणादि निर्मित अति पवित्र एक आश्रम है। वह स्थान सर्वदा अनेक प्रकारके पुष्पों और फलोंसे अलंकृत रहता है, तथा प्रति पर्वमें वहां स्वर्ग अवतीर्ण हुआ करता है। वहां त्रिकूट-निलय पर नाना धातु विभूषित अत्युच्च नाना प्रकार सानु और गुहा शोभित मनोहर शृङ्गों, प्राचीरों और तोरण-युक्त प्रासादोंसे शोभित लङ्कापुरी शोभित है। यह एक सौ योजन विस्तृत और ३०० सौ योजन लम्बी है। यहां सुरद्वेषो कामरूपी महाबलशाली राक्षसगण निवास करते हैं। यह स्थान मनुष्योंके अगम्य होनेसे कभी भी मानवों द्वारा परिपोड़ित नहीं होता।

इस द्वीपके पूर्वदिशामें समुद्रके निकट शङ्खद्वीप है। वहां गोकर्ण नामक महादेवका अति वृहत् आलय और शत योजन विस्तृत एक राज्य है। उसमें अनेक प्रकारकी म्लेच्छ जातियां अवस्थान करती हैं। वहां अनेक प्रकार रत्न परिपूरित शङ्खको भांतिका शुभ्रवर्ण अति मनोहर एक शङ्ख नामक पर्वत है, जिस पर सत्कर्मशाली प्राणी वास करते हैं। इस पर्वतसे शङ्खनामा नामक एक पूत-सलिल नदी प्रवाहित हुई है। इसी पर्वत पर शङ्खमुख नामक नागराजका आलय है।

नाना प्रकारके काननादिसे परिशोभित, बहुग्राम-समाकीर्ण, नानारत्नाकर और बहुविध पुण्यवान् पुरुषों-से परिपूर्ण कुशद्वीप भारतके प्रान्तभागमें अवस्थित है। वहांके मनुष्य दुष्टचित्तविनाशिनी महाभागा भगवती कामदा देवीकी पूजा करके अभीष्ट लाभ करते हैं।

वराहद्वीपमें अधिक संख्यक म्लेच्छोंका आवास है। वहां अन्यान्य जातियां भी हैं। यह द्वीप नाना प्रकारके धनधान्यसे पूर्ण है। इसमें अनेक नदियां, पुष्पफल-शोभित वन और वराह नामक शिलामय अति रमणीय एक पर्वत है, जिससे निर्मलसलिला तरङ्गमयी नदी उत्पन्न हुई है। यहांके मनुष्य एकाग्रचित्तसे उस सर्व-लोक प्रभवकारी अनन्त विष्णुको नमस्कार और पूज-नादि करते हैं, अन्य देवताओंकी उपासना नहीं करते। इसी प्रकार दक्षिणदिशामें अनेक प्रकारके भारतद्वीप हैं।

(ब्रह्माण्डपु०)

ऊपर जिन छह भारतीय अनुद्वीपोंका विषय लिखा गया है, वे भारतमहासागरमें अवस्थित हैं। उनमेंसे अङ्गद्वीप अब अन्नम् वा कम्बोज नामसे (कम्बोज देखो), यवद्वीप अब भी यवद्वीप नामसे, मलयद्वीप अब सुमात्रा नामसे (उपनिवेश देखो); शङ्खद्वीप अब सम्बर नामसे और वराहद्वीप अब अष्ट्रेलिया नामसे प्रसिद्ध है। वर्त्त-मान भौगोलिक गण भी भारतीय द्वीपपुञ्ज (Indian Archipelago) नामसे इनका उल्लेख किया करते हैं।

पौराणिक खण्ड वा वर्त्तमान भारतवर्ष।

प्रायः प्रत्येक पुराणमें हो भारतवर्षका विषय अल्प-विस्तररूपसे आलोचित हुआ है। अति संक्षेपमें उसकी यहां आलोचना की जाती है। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—एकमात्र भारतवर्षके सिवा और कहीं भी पाप और पुण्यका फलभोग नहीं करना पड़ता। यहीं स्वर्ग है और यहीं अपवर्ग है। महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारिपात्र ये सात भारतवर्षके कुलपर्वत हैं। इन पर्वतोंके समीप और भी हजारों पर्वत हैं। इनके सानु विस्तृत, उच्छ्रित, विपुलायत और मनोज्ञ हैं।

इस भारतवर्षमें कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुर, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डर, पुष्प, उर्जयन्त, रैवत, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर, श्रीपर्वत, कोर तथा और भी जो सैकड़ों पर्वत हैं, उनके द्वारा जनपद समूह म्लेच्छ और आर्य्य इन दो भागोंमें विमिश्रित हैं।

भारतवर्षमें गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रु, वितस्ता, ऐरावती, कुहू, गोमती, धूतपापा, वाहुदा, दृशद्वती, विपाशा, देविका, वंक्षु, निश्चीरा, गण्डकी, कौशिकी ये नदियां हिमालयके पाददेशसे समुद्भूत हुई हैं। आर्य्य और म्लेच्छगण इन नदियोंका जलपान करते हैं।

वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिंधु, वेण्वा, नन्दिनी, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्वती, तापी, विदिशा, वेत्र-वती, शिप्रा और तरणी ये सब नदियां पारिपात्र पर्वतकी आश्रित हैं। शोण, नर्मदा, सुरथा, अद्रिजा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, चित्रोत्पला, तमाला, करमोदा, पिशा-चिका, पिप्पली, श्रोणि, विपाशा, वञ्जुला, सुमेरुजा,

भक्तिमती, शकुली, त्रिदिवा, क्रमु और वेगवाहिनी, ये नदियां ऋक्षपर्वतके पाददेशसे निकली हैं। शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेण्वा, वैतरणी सिनीवाली, कुमुद्वती, करतोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिरा ये नदियां विन्ध्य-पादसे निकली हैं और सभी पुण्यतोया तथा पवित्रस्वभावा हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेण्वा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या और कावेरी, ये नदियां भी विंध्यपाद प्रसूता हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा और उत्पलावती मलयाद्रिसम्भूता हैं। इन नदियोंका जल अत्यंत शीतल है। पितृकुल्या, सोमकुल्या, ऋषिकुल्या, इक्षुका, त्रिदिवा, लाङ्गलिनी और वंशकरा आदि नदियां महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा, पलाशिनी, ये शक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं। हिमवत्-पादसे निकली हुई सरस्वती और गङ्गा आदि नदियाँ परम पवित्र-स्वरूपा हैं। इन महानदियोंके सिवा यहां हजारों छोटी छोटी नदियां भी हैं, जिनमें कोई कोई तो वर्षाकालमें प्रवाहित होती हैं और अवशिष्ट सदा ही प्रवाहित रहती हैं।

मत्स्य, अश्मकूट, कुल्य, कुन्तल, काशि, कोशल, अथर्व, कलिङ्ग, मलक, वृक, ये जनपद मध्यदेशमें अवस्थित हैं। जहां गोदावरी नदी है, सह्यपर्वतके उन उत्तर-विभागोंमें जो देश हैं, वे सब परम रमणीय और सर्वोत्कृष्ट हैं।

महात्मा भार्गवका रमणीय गोवर्द्धनपुर, वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोय, अपरान्त, शूद्र, पह्लव, चर्मचण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शतद्रुज, कलिङ्ग, पारद, हारहूण माठर, बहुभद्र, कैकेय, देशमालिक, क्षत्रियोपनिवेश, वैश्य और शूद्रकुल, काम्बोज, दरद, बर्वर, हर्षवर्द्धन, चीन, तुखार, वाह्यतो, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, कशेरुक, लम्पाक, शूलकार, चूलिक, जगुड़, औपक, आनिभद्र, किरात, तामस, हंसमार्ग, काश्मीर, तङ्गन, शूलिक, कुहक, और्ण, दर्ण, ये समस्त जनपद उत्तर दिशामें अवस्थित हैं।

प्राच्य जनपद —अध्रावक, मुदकर, अन्तर्गिरि, प्रवङ्ग, वङ्गेय, मालद, मालवर्त्तिक, ब्रह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, मल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्रक, विदेह, ताम्रलिप्त, मल्ल, मगध और गोमन्त, ये प्राच्य जनपद हैं। दक्षिणापथस्थित जनपद—पुण्ड्र, केरल, गोलांगुल, शैलूष, मूषिक, कुसुम, वासक, महाराष्ट्र, महिषक, कलिङ्ग, आभीर, वैश्यिक, आठ्यक, शबर, पुलिन्द, विन्ध्यमौलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, मौलिक, भोगवर्द्धन, नैषिक, कुन्तल, अन्ध्र, उद्भिद और वनदारक, ये देश दाक्षिणात्यमें हैं।

अपरान्तदेश-स्थित जनपद—सूर्पारक, कालिवर्ण, दुर्ग, तालिकट, पुलिन्द, सुमीन, रुपप, श्वापद, कुरुमी, कटाक्षर, नासिक्य, उत्तर नर्मद, भरुकच्छ, माहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, आवन्त्य और आर्बुद, ये अपरान्त देश हैं।

सरज, करुष, केरल, उत्कल, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्किन्ध्य, तोशल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर, तुम्बुल पटु, नैषध, अन्नज, तुष्टिकार, वीहिहोत्र और अवन्ति ये जनपद विन्ध्य-पृष्ठ पर अवस्थित हैं। नीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस, कुंत प्रावरण, ऊर्ण दार्व, त्रिगर्भ मालव, किरात और तामस ये पार्वत्यदेश हैं। इन स्थानोंमें ही सत्य और त्रेता आदि चारों युगोंको विधि प्रचलित हैं। इस भारतवर्षके दक्षिण, पश्चिम और पूर्वमें महासागर है। हिमालय पर्वत इसके उत्तरमें, धनुर्गुणाकारमें अवस्थित है। केवल इस भारतवर्षमें ही मानव शुभाशुभ कर्मानुसार ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व, देवत्व, मनुष्यत्व आदि प्राप्त करते हैं। यही एकमात्र कर्मभूमि है; संसारमें इसके अतिरिक्त द्वितीय कर्मभूमि नहीं है। देवगण भी देवत्वसे भ्रष्ट हो कर यहांके मनुष्यत्वको प्राप्त करनेके लिए सर्वदा अभिलाषा रखते हैं। मनुष्यगण यहां जो कुछ करते हैं, सुर वा असुरगण भी वैसा नहीं कर सकते। (मार्कण्डेयपु० ५७ अ०)

विष्णुपुराणमें लिखा है—भारतवर्षका विस्तार नौ हजार योजनका है। भारतवर्ष स्वर्ग और मोक्षगामी पुरुषोंकी कर्मभूमि है। यहाँ महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान् ऋक्ष, विंध्य और पारिपात्र ये सात कुल-पर्वत हैं। इस स्थानसे स्वर्गादि और पातालादि लोकोंमें गमन किया जा सकता है। अन्य किसी स्थानमें मनुष्योंके कर्मकी विधि नहीं है। इसके पूर्वमें किरातगण,

पश्चिममें यवन और मध्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं। शतद्रु और चन्द्रभागा आदि नदी हिमालयके मूलदेशसे निर्गत हुई हैं। नर्मदा और सुरसा आदि नदियां विन्ध्याचलसे, तापी और पयोष्णी आदि नदियां ऋक्षपर्वतसे, गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणी आदि सह्य पर्वतसे, कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि मलय पर्वतसे, त्रिसोमा और ऋषिकुल्यादि महेन्द्र पर्वतसे तथा कुमारी आदि नदियां शुक्तिमान पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं। इन नदियोंकी हजार हजार शाखा-नदी और उपनदियां हैं। कुरु पञ्चाल-वासिगण, मध्यदेशादि स्थानवासिगण, पूर्व देशवासिगण, पुण्ड्र, कलिङ्ग, मगध और सम्पूर्ण दाक्षिणात्यवासिगण तथा इनके सिवा अपरान्त, सौराष्ट्र, शूर, भीर, अर्बुद, कारुष, मालव और पारिपात्रनिवासिगण, सौवीर, सैन्धव, हून, शाल्व और शाकल-वासिगण उक्त नदियोंके तीर पर वास करते हैं तथा उनका जल पान करते हैं। (विष्णुपुराण)

पुराणोंमें भारतवर्षकी जैसी सीमा और जनपदादिका उल्लेख है, उससे मालूम होता है, कि प्राचीन भारतवर्षका आकार वर्त्तमान भारतकी आकृतिकी अपेक्षा कुछ वृहत् था। जिस समय पुराणादि सङ्कलित हुए थे, उस समय पश्चिममें यवननिवास आयोनिया वा फारस, पूर्वमें पूर्वोपद्वीपके सीमान्तस्थ कम्बोज वा आनम, उत्तरमें तुर्किस्तान और दक्षिणमें सिंहलद्वीप पर्यन्त भारतवर्षके सीमान्तभुक्त था। वैदेशिकोंके आक्रमणसे इसका आयतन ह्रासको प्राप्त हो गया है।

प्राकृतिक दृश्य और भू-वृत्तान्त।

भारतवर्षकी आकृति एक त्रिभुजकी भांति है। गिरिश्रेष्ठ हिमालय उसकी भूमि है तथा पूर्वघाट और पश्चिमघाट दो भुजाएं। यह अक्षा० ८°से ३५° उ० और देशा० ६६° ३८' से ९८° ३२' पू०के मध्य है। उत्तरमें हिमालय पर्वतका दुर्भेद्य प्राचीर पार होने पर तिब्बतकी मालभूमि पड़ती है। दक्षिणमें भारत-महासागर है। भारत महासागरकी एक शाखा अरब-महासागर पश्चिममें कुछ दूर तक तथा द्वितीय शाखा बङ्गोपसागर पूर्वमें कुछ दूर तक विस्तृत है। उत्तरपश्चिमकोणमें हिमालयसे निकले हुए सालिमान और हाला पर्वतका प्राचीर पार करनेके बाद अफगानिस्तान और अंग्रेजों द्वारा रक्षित बलुचिस्तान पड़ता है। पूर्वमें हिमालयसे निकली हुई अनुन्नत गिरिश्रेणी बङ्गोपसागरके किनारे निग्रेस अन्तरीप तक विस्तृत है। इस अल्पोच्च गिरि-प्राचीरको पार कर अङ्गरेजोंने ब्रह्मदेश पर अधिकार कर उसे भारतके अन्तर्गत कर लिया है उत्तरमें हिमालय पर्वतकी गोदमें प्रत्यन्त पर्वतके ऊपर पार्वतीय स्वाधीन राज्य नेपाल और भूटान तथा सिक्किमदेश है।

विंध्याचलने भारतवर्षके मध्यमें रह कर उसे दो भागोंमें विभक्त कर दिया है। उत्तरमें आर्यावर्त्त और दक्षिणमें दाक्षिणात्य है। आर्यावर्त्त चार भागोंमें विभक्त है। जैसे—हिमालयप्रदेश, मध्यप्रदेश, प्राच्यप्रदेश और प्रतीच्यप्रदेश। दाक्षिणात्य भी चार विभागोंमें बंटा हुआ है, जैसे—नर्मदाप्रदेश, गोदावरीप्रदेश, कृष्णाप्रदेश और कावेरीप्रदेश।

आर्यावर्त।—उत्तरमें तिब्बतकी तीन माइल ऊंची मालभूमि और दक्षिणमें दक्षिणापथकी आधी माइल ऊंची मालभूमिके मध्यमें आर्यावर्त्तका पूर्वपश्चिमविस्तारी निम्न क्षेत्र है। उत्तर और दक्षिणकी मालभूमीका जल-स्रोत नदियोंके आकारमें इस निम्न भूमि पर गिर रहा है, दोनों मालभूमियोंसे कर्दम ला कर उसने कितने ही समय इस प्रान्तरको आच्छादित किया है; इस मृत्तिकाके कितने ही नीचे जाने पर पाषाण मिलता है। परन्तु दक्षिणमें मालभूमि पर कोमल मिट्टी नहीं जमी है, पाषाण निकला हुआ है। यही कारण है, कि आर्यावर्त्त जितना शस्यशाली है दाक्षिणात्य उतना नहीं। आर्यावर्त्तमें तीन बड़ी नदियां हैं। १ पश्चिममें सिंधु, यह नदी हिमालयके उत्तरसे निकल कर उसके प्राचीरको भेदती हुई पञ्जाब-क्षेत्रमें जा पहुंची है। शतद्रु, विपाशा, चंद्रभागा, इरावती और वितस्ता ये पांच नदियां क्रमशः सिंधुमें जा मिली हैं। इस पञ्चनद विधौत प्रदेशका नाम पञ्चनददेश वा पञ्जाब है। पञ्जाबके बाद सिंधु नदी सिंधु प्रदेशकी मरुभूमिमें घुसी है। बलुचिस्तानकी मरुभूमि मनोहर हाला पर्वतकी पार कर यहां तक आई है। उसके बीचसे चल कर सिंधु नदी

अरव सागरमें जा मिली है। पश्चिममें जैसे सिंधु है, वैसे हीं, २ पूर्वमें—ब्रह्मपुत्र। यह नदी भी हिमालयके उत्तरी भागसे उत्पन्न हुई है। पूर्व प्रांतमें रास्ता काट कर निकलती हुई यह नदी कुछ दूर तक पूर्वमुखी हैं। ब्रह्मपुत्र नदी उत्तरमें हिमालयकी गोदमें भूटान देश और दक्षिणमें वङ्गोपसागर तक विस्तृत उच्च पार्वत्यप्रदेशमें बहती हुई चली गई है। इस खातका नाम आसाम उपत्यका है। आसाम-उपत्यकाको वङ्गालप्रदेशका पूर्व-द्वार समझना चाहिए। इस द्वारसे ब्रह्मपुत्रने वङ्गालकी सम-भूमिमें प्रवेश कर दक्षिणकी तरफ़ जा गङ्गामें प्रवेश किया है। दोनोंके मिलित स्रोत वङ्गोपसागरमें प्रवाहित हैं।

३ मध्यमें—गङ्गा है। गङ्गा हिमालयके दक्षिण क्रोड़-से निकली है। द्रवीभूत तुषारकी धारा आस-पाससे स्रोत सञ्चय करती हुई हरिद्वारके निकट समतटमें आई और उससे गङ्गाका स्रोत क्रमशः मन्द हो गया है। गङ्गा कुछ दूर तक दक्षिणमुखी गई है। प्रयागमें यमुनासङ्गमके निकट दक्षिण पथकी मालभूमिकी उच्च पाषाण-देह सामने पड़ जानेसे आगे दक्षिणकी तरफ न जा सकनेके कारण गङ्गा पूर्वकी ओर प्रवाहित हुई है। दक्षिण मालभूमिका जल चर्मण्वती नदीके आकारमें यमुनाका जलस्रोत बढ़ा रहा है। प्रयागसे राजमहल तक गङ्गा मालभूमिके किनारे किनारे पूर्वकी ओर प्रवाहित है। इस प्रदेशमें उत्तरमें हिमालयसे जो नदियां आ कर गङ्गामें मिली हैं, उनमें गोमती, सरयू, गण्डकी और कौशकी ही प्रधान हैं। दक्षिणकी माल-भूमिसे शोण नदीका जल भी इस प्रान्तमें आ मिला है। राजमहलके वाद गङ्गा दो धाराओंमें विभक्त है। प्रथम क्षीणधारा भागीरथी दक्षिणवाहिनी है और दूसरी प्रवलधारा पद्मा पूर्वदक्षिणवाहिनी है। पद्माके साथ ब्रह्मपुत्रके संगमके वाद दोनोंका मिश्रित स्रोत दक्षिणकी ओर प्रवाहित है।

राजमहलसे ले कर वङ्गोपसागर पर्यन्त देश त्रिकोणा-कार है। इसके दक्षिणमें वङ्गोपसागर और पश्चिममें भागीरथी है। भागीरथी पार होते ही छोटा-नागपुरमें दक्षिणपथकी मालभूमिका प्रारम्भ कहा जा सकता है। पूर्वमें पद्मा और ब्रह्मपुत्रकी मिश्रित धारा है। इस धाराको पार कर कुछ दूर जाने पर त्रिपुराकी उच्च मालभूमि पड़ती है। दोनों ओरकी उच्च पाषाणमय मालभूमिमें से यह प्रदेश किसी समय सागरके गर्भमें था। वङ्गोपसागर राजमहल तक विस्तृत था। गङ्गाके प्रवाहमें बहनेवाले कर्दमने कालक्रमसे धीरे धीरे सागर-गर्भको पूर्ण कर, सैकड़ों वर्ष मिट्टी पर मिट्टी विछा कर इस प्रदेशका निर्माण किया है। भागीरथी और पद्मासे निकली हुई सहस्र जलधारा ऊर्णनाभके जालकी भांति इस भूमि पर विस्तृत हैं। वर्षाके समय समग्र प्रदेश जलमग्न हो जाता है और वर्षा बीत जाने पर फिर ज्योंका त्यों हो जाता है। परन्तु समग्र प्रदेशकी भूमि पर मिट्टीका आस्तरण जमा रह जाता है।

गङ्गाके स्रोतके साथ जितना कीचड़ और मिट्टी बहती है, उतनी और किसी भी नदीके स्रोतमें नहीं बहती। इस कारण देश-निर्माण शक्तिमें गङ्गा अतुलनीया है।

गङ्गा वास्तवमें हमारी जननी है। गङ्गाके द्वारा भारतकी यह वङ्गभूमि सागरके गर्भसे उत्तोलित और गठित है। वङ्गालके पश्चिमस्थ देश गङ्गा और उसकी उपनदियों द्वारा प्रवाहित मिट्टीके द्वारा ही उर्वर और शस्यशाली प्रान्तरमें परिणत हुए हैं। जननीरूपमें गङ्गा साधारणकी पालयत्री हैं। प्रतिवर्ष अपने प्रवाहके द्वारा नवीन मिट्टी विछा कर भूमिकी उर्वरता और शस्य-समृद्धि की वृद्धि किया करती हैं। भारतके करोड़ों आदमी अनायास लब्ध इस शस्य-सम्भारको पा कर प्राण धारण करते हैं। अन्यान्य देशोंमें शस्य-उत्पादनके लिए कितना परिश्रम किया जाता है। परन्तु गङ्गामातृक देशोंमें कृषक केवल वीज वो कर ही फल प्राप्त करते हैं, वस इतना ही उनका परिश्रम है।

इसके सिवा, इस अनायास-लब्ध शस्य-सम्पत्तिको नावमें लाद कर गङ्गाके स्रोतमें बहा दो; एक प्रदेशकी सम्पत्ति गङ्गाके प्रवाहसे विना व्ययके अन्य प्रदेशमें पहुंच जायगी। हम सिर्फ नाव पर चढ़ा कर नावसे उतार लेनेसे ही छुट्टी पा जायेंगे। आर्यावर्तमें अन्तर्वाणिज्यके लिए प्रकृति-निर्मित यह राजपथ है; इस पथके बीच बीचमें मनुष्य दल बांध कर वास करते हैं और गङ्गाके प्रवाहमें अपने अपने देशका पण्यद्रव्य बहा कर ले जाते तथा

विदेशसे नाना द्रव्य ले आते हैं। इस प्रकारसे गङ्गाके किनारे बड़े बड़े समृद्धिशाली नगर निर्मित हो गये हैं। आर्यावर्त्तमें जितने भी बड़े बड़े नगर हैं, प्रायः सभी गङ्गाके किनारे वा उसकी किसी शाखा नदीके किनारे बसे हुए दिखाई देंगे।

आर्यावर्त्त सिन्धु, गङ्गा और ब्रह्मपुत्र इन नदियोंसे शोभित विस्तृत समतट क्षेत्र है। इसके प्रदेशोंके नाम इस प्रकार हैं। १ पश्चिममें सिन्धुनदीके किनारे पञ्चनद-धौत पञ्जाब। २ उसके दक्षिणमें मरुभूमि सदृश सिंधु-प्रदेश। ३ पूर्वमें यमुना-तीर पर उत्तर-पश्चिम प्रदेश। ४ उसका एकांश गोमती-धौत अयोध्या। ५ उत्तर-पश्चिम प्रदेश पार हो कर विहार प्रदेश। ६ विहारके पूर्वमें वङ्गाल। ७ वङ्गालके पूर्वोत्तरकोणमें ब्रह्मपुत्र-खोदित आसाम-उपत्यका। इन सात प्रदेशोंके सिवा उत्तरमें हिमालयकी गोदमें कई पार्वत्य प्रदेश हैं, जिनमें काश्मीर, नेपाल और भूटान प्रधान हैं।

दक्षिणापथ।—आर्यावर्त्तके दक्षिणमें उच्च पाषाणमय मालभूमिका नाम दक्षिणापथ है। यह मालभूमि त्रिकोणाकार है। उच्चता आधी माइल है। किसी समय यह भूमि और भी ऊंची थी, और उसका ऊपरी भाग इससे भी समतल था। लाखों वर्षकी वृष्टिकी धारासे और नदीके स्रोतसे मालभूमि अब क्षयको प्राप्त हो गई है। जो स्थान क्षयित नहीं हुए हैं, वे अब भी ऊंचे और पर्वत जैसे दीखते हैं। जिन स्थानोंमें नदियोंने बहुत समयसे रास्ता काट कर नहर-सी बना दी हैं, वहां अब उपत्यका दिखाई पड़ती है। कहनेका मतलब यह है कि मालभूमिका ऊपरी भाग अब समतल नहीं रहा है। समग्र मालभूमि खण्ड-विखण्ड, ऊंची-नीची हो कर पर्वत और उपत्यकाओंमें बंट गई है। पर्वत कहीं कहीं तो श्रेणीवद्ध ही लगातार खड़े हैं, और कहीं कहीं अलग दीख पड़ते हैं। इस प्रकार उत्पन्न पर्वतश्रेणीने मालभूमिके त्रिभुजको तीन दिशाओंमें घेर रखा है।

पश्चिममें अरब सागरके किनारे एक पर्वतश्रेणी, जिसका नाम पश्चिमघाट वा सह्याद्रिश्रेणी है, गुजरातसे ले कर कुमारिका तक चली गई है। समुद्रसे ये श्रेणीवद्ध पर्वत ठीक सीढ़ी-दार घाट जैसे मालूम देते हैं। पूर्वमें वङ्गोपसागरके किनारेसे भी एक पर्वतश्रेणी उड़िष्यासे कुमारीका तक गई है। जिसका नाम है पूर्वघाट। यह श्रेणी पश्चिम घाटके समान ऊंची नहीं है, और न वैसी अखण्ड वा श्रेणीवद्ध ही है। बहुत सी नदियां इस श्रेणीको काट कर वङ्गोपसागरमें जा मिली हैं, जिनमें महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी प्रधान हैं। उच्चतर पश्चिमघाटको कोई भी नदी काट नहीं सकी है, इसीलिये वह अखण्ड है। केवल उत्तरप्रान्तमें दो जगह नर्मदा और तापती नदी इसे भेद कर काम्बे-उपसागरमें प्रवाहित हुई हैं।

मालभूमिकी पश्चिम-घाटश्रेणी, पूर्वसीमामें पूर्वघाटश्रेणी, कुमारिकासे प्रायः दोनों समुद्रके किनारे किनारे उत्तरकी ओर चली गई हैं। मालभूमिकी उत्तर-सीमामें भी एक पर्वतश्रेणी है, जिसका नाम विन्ध्यश्रेणी है। परन्तु विन्ध्याचलको पर्वतश्रेणी कहना भूल है। यह पर्वत-प्राचीर सदृश नहीं मालूम देता। यह सर्वत्र ही खण्डित और छिन्न हो कर एक सुदीर्घ और विस्तृत पार्वत्यप्रदेशमें परिणत है। इस पार्वत्यप्रदेशका दैर्घ्य गुजरातसे भागीरथीके किनारे तक है और विस्तार एक तरफ नर्मदासे यमुनातीर तक और दूसरी ओर महानदीसे गङ्गातीर तक है। यह भू-भाग पर्वत-संकुल दुर्गमप्रदेश है। इस प्रदेशका कुछ विशेष विवरण देना आवश्यक है।

इस पार्वत्यप्रदेशकी पश्चिम-सीमामें आरावल्ली पर्वत गुजरातसे यमुनातीरमें दिल्ली तक विस्तृत है। गुजरातके निकट आरावल्लीका सर्वोच्च शृङ्ग 'आबू' वा अर्बुद पर्वत जैन मन्दिरोंसे अलंकृत है। आरावल्लीके पश्चिमांश और पूर्वांशमें कुछ दूरमें राजपूताना-प्रदेश है। राजपूतानाके पश्चिमांशमें सिन्धुप्रदेशकी मरुभूमि प्रसारित हैं। पूर्वांश पर्वतमय है। इस पर्वतसे सटी हुई चर्मण्वती नदी उत्तरके जमुनाकी ओर प्रवाहित है। राजपूताना और नर्मदाके बीचकी मालभूमि मालवप्रदेश है और मालवके पश्चिममें उपद्वीप गुजरात है। राजपूताना और मालवके पूर्वमें पर्वतमय स्वदेशीयके अधीन मध्यभारत प्रदेश और अङ्गरेजों द्वारा अधिकृत मध्यप्रदेश है। इस प्रदेशसे उत्तरमुखी शोण नदी गङ्गाकी

तरफ और पूर्वमुखो महानदी वङ्गोपसागरकी ओर धावित हुई है। मध्यभारत और मध्य प्रदेशके पूर्वमें और भी दो प्रदेश हैं। एक पर्वतसंकुल छोटानागपुर भागीरथीके किनारे तक विस्तृत है। छोटा-नागपुर प्रदेश में पार्श्वनाथ-पर्वतका शिखर जैनमन्दिरोंसे शोभित हो कर मानो अर्बुद पर्वतका अनुकरण ही कर रहा है। दूसरा पर्वतसंकुल उड़िष्याप्रदेश वङ्गोपसागर-सैकतमें समाप्त है। छोटा-नागपुरका कुछ पानी तो अजय, दामोदर, कांसाई, रूपनारायण आदि पार्वत्य नदियोंको सृष्टि करता हुआ भागीरथीमें पड़ता है और कुछ सुवर्णरेखा, वैतरणी आदि छोटी छोटी नदियोंके आकार-में उड़िष्या हो कर वङ्गसागरमें जाता है। महानदी भी उड़िष्यामें प्रवाहित है।

पार्वत्य प्रदेशके दक्षिणकी मालभूमि विशेष पर्वत-संकुल नहीं है। हां, सर्वत्र ऊंची-नीची अवश्य है। दोनों घाटश्रेणियोंने दक्षिणमें एकत्र हो कर नील-गिरिकी सृष्टि की है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि माल-भूमिकी ढाल पश्चिमसे पूर्वकी ओर है। पश्चिम ऊंचा है और पूर्व नीचा। यही कारण है, कि नर्मदा और ताप्तीके सिवा अन्यान्य नदियां पश्चिमघाटसे उत्पन्न हो कर मालभूमि पार करती हुई वङ्गोपसागरमें जा मिली हैं। नदियोंकी रफ्तार प्रायः एक-सी है। ऊंचेसे नीचे उतरते समय वेगसे चलती हैं, पर्वतके रास्ते काट कर उतरते समय गर्जन करती हैं और समतलक्षेत्रमें धीरे धीरे बहती रहती हैं।

नर्मदा और ताप्ती मालभूमिको काटती हुई गई हैं। दोनोंके बीचमें पाषाणमय भूमि ऊंची हो कर पर्वत-श्रेणी जैसी दिखाई देती हैं। इस श्रेणीका नाम सात-पुरा-पर्वत है।

मालभूमि पर तीन बड़े प्रदेश देशीय राजाओंके अधिकारमें हैं; हैदराबाद, महिसुर और तिरुवाङ्कोड़। इनके उत्तर-पूर्व और पश्चिममें अङ्गरेजोंका अधिकार है पूर्वभागको मन्द्राजप्रदेश कहते हैं। हैदराबादके उत्तरमें बरार है।

वर्त्तमान नाम।

वर्तमान भारतवर्षको पाश्चात्य लोग 'हिन्दुस्तान' कहते हैं। संस्कृत 'सिन्धु' शब्द जिन्द-भाषामें 'हिन्दु' हो गया है। फिर यही 'हिन्दू' शब्द प्राचीन ग्रीकोंमें 'हिन्दोस' वा 'इन्दिकस' प्राचीन पारसिक राजा दरायुसके शिलालेखोंमें 'इधुस' चीनोंमें 'सिन्तु' वा 'इंतु नामसे तथा हिब्रु ग्रन्थोंमें 'हद्दू' सिरीयक ग्रंथोंमें 'ह्यादू' पारसिक ग्रंथोंमें 'हिंदू' और अरबोंमें 'हिन्द' नामसे उल्लिखित हुआ है। वैदिक ऋषि गण पूर्वमें सिंधुनद प्रवाहित पञ्जाब प्रदेशमें वास करते थे। उन्होंने "सप्त सिंधव" नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है। पारसिकोंके उच्चारणानुसार वही 'हिंदू'में परिणत हुआ है। इस प्रकारसे पश्चिम सीमान्तवासियों-में सिंधुवासी आर्यगण हिंदू नामसे परिचित होनेसे यान-प्रभावके समय समस्त उत्तर भारत वा आर्यावर्त्त 'हिन्दुस्तान' नामसे प्रख्यात हुआ था, और उसके समग्र भारतवर्ष ही 'हिन्दुस्तान' कहलाया।

राजकीय विभाग।

वर्तमान भारतको चार राजकीय भागोंमें विभक्त किया जाता है। जैसे—१ अंग्रेजी राज्य, २ करद राज्य ३ स्वाधीन राज्य और ४ अन्य यूरोपीय जातियों द्वारा अधिकृत राज्य।

अंग्रेजी राज्य।

अंग्रेजों द्वारा शासित राज्य १४ प्रधान प्रादेशिक विभागोंमें विभक्त है। जैसे—१ वङ्गाल, २ आसाम, ३ विहार और उड़िष्या, ४ युक्तप्रदेश, ५ मध्यप्रदेश, ६ पंजाब ७ मद्रास, ८ बम्बई, ९ ब्रह्मप्रदेश; तथा १० कुर्ग (Coorg) ११ अजमेर और मेहेरवाड़ा, १२ बरार, १३ अन्दामन और निकोबर, १४ ब्रिटिश बलुचिस्तान, और १५ सीमान्त-प्रदेश। इनमेंसे आदि ९ प्रदेश एक एक गवर्नरके अधीन हैं; और शेष ६ प्रदेश चीफ कमिश्नरों द्वारा शासित होते हैं। ये समस्त प्रदेश गवर्नर जनरल (वायसराय)-के अधीन हैं। पहले ब्रह्मदेश भारतसे पृथक् था, गवर्नर-जनरल लार्ड डफरिनने उस भारतवर्षमें मिला लिया है।

१। वङ्गालप्रदेश।—इस प्रदेशको राजधानी कलकत्ता है। इसके अधीन ५ विभाग और २४ जिले हैं। नीचे विभागोंका तदन्तर्गत जिलोंका और उसके सदरोंका उल्लेख किया जाता है।

(१) प्रेसिडेन्सी विभागमें ५ जिले हैं। जैसे—१ चौबीस-परगना-सदर अलीपुर। २ नदीया, कृष्णनगर। ३ यशोहर, यशोहर। ४ खुलना, खुलना। ५ मुर्शिदाबाद, बरहम।

(२) राजशाही-विभागमें ७ जिले हैं:—१ दिनाजपुर, दिनाजपुर। २ राजशाही, रामपुर-बोयालिया। ३ रङ्गपुर, रङ्गपुर। ४ बोगड़ा, बोगड़ा। ५ पवना, पवना। ६ दारजिलिंग, दार्राजलिंग। ७ जलपाईगुड़ी, जलपाईगुड़ी।

(३) ढाका विभागमें ४ जिले है:—१ ढाका, ढाका। २ फरीदपुर, फरीदपुर। ३ बाखरगञ्ज, बारिसाल। मैमनसिंह, मैमनसिंह।

(४) चट्टग्रामविभागमें ३ जिले हैं:—१ चट्टग्राम, चट्टग्राम। २ नोआखाली, नोआखाली। ३ त्रिपुरा, कुमिल्ला

(५) वर्द्धमान विभागमें ६ जिले है:—१ हवड़ा, हवड़ा। ४ हुगली, हुगली। ३ वर्द्धमान, वर्द्धमान। ४ बाँकुड़ा, बाँकुड़ा। ५ वोरभूम, सिउड़ी। ६ मेदिनीपुर, मेदिनीपुर।

२। आसाम-प्रदेश।—यह प्रदेश १२ जिलोंमें विभक्त है। यथा—१ ग्वालपाड़ा, धुबड़ी। २ कामरूप, गौहाटी। ३ दरंग, तेजपुर, ४ लक्ष्मीपुर डिबरूगढ़। ५ शिवसागर, शिवसागर। ६ नौगां, नौगां, ७ नागापहाड़, कोहिमा। ८ खसिया और जयन्तिया, शिलं। ९ गारो पहाड़, तुरा। १० कछाड़, सिलचर। ११ श्रीहट्ट, श्रीहट्ट वा सिलहट। १२ उत्तर और दक्षिण लुसाई पहाड़, लुंले।

३। बिहार और उड़िष्या प्रदेश।—इस प्रदेशमें कुल ५ विभाग और २० जिले हैं। यहां की राजधानी पटना है।

(१) भागलपुर विभागमें ४ जिले हैं:—१ भागलपुर, भागलपुर। २ मुङ्गेर, मुङ्गेर। ४ पूर्णिया पूर्णिया। ४ संथालपरगना, नया दुमका।

(२) पटना विभागमें ७ जिले हैं—१ पटना, वाकीपुर। २ गया, गया। ३ शाहाबाद, आरा।

(३) तिरहुत विभागमें ४ जिले हैं:—१ दरभङ्गा, दरभङ्गा। २ मुजफ्फरपुर, मुजफ्फरपुर। ३ सारन, छपरा। ४ चम्पारन, मोतिहारी।

(४) उड़िष्याविभागमें ४ जिले हैं:—१ बालेश्वर, बालेश्वर। २ कटक, कटक। ३ पुरी, पुरी। ४ अंगुल, अंगुल।

(५) छोटानागपुर विभागमें ५ जिले हैं—१ हजारीबाग, हजारीबाग। २ लोहरदंगा, रांची। ३ पालामू, दालतनगञ्ज। ४ सिंहभूमि, चांईबासा। ५ मानभूमि, पुरुलिया।

४। युक्तप्रदेश (आगरा-अवध)—इस प्रदेशके गवर्नरके अधीन ६ विभाग और ४८ जिले हैं। राजधानी लखनऊ है।

(१) इलाहाबाद विभागमें ७ जिले हैं—१ इलाहाबाद, इलाहाबाद। २ फतेपुर, फतेपुर। ३ कानपुर, कानपुर। ४ बांदा, बांदा। ५ हमिरपुर, हमिरपुर। ६ झांसी, झांसी। ७ झालन, झालन।

(२) बनारस, विभागमें ५ जिले हैं:—१ बनारस, बनारस वा काशी। २ बलिया, बलिया। ३ गाजीपुर, गाजीपुर। ४ जौनपुर जौनपुर। ५ मिरजापुर, मिरजापुर।

(३) गोरखपुर विभागमें ३ जिले हैं:—१ गोरखपुर, गोरखपुर। २ बस्ती, बस्ती। ३ आजमगढ़, आजमगढ़।

(४) आगरा विभागमें ६ जिले हैं—१ आगरा, आगरा। २ एटा, एटा और खासगंज। ३ मैनपुरी, मैनपुरी। ४ फारुखाबाद, फारुखाबाद। ५ इटावा, इटावा। ६ मथुरा, मथुरा।

(५) मेरठ विभागमें ६ जिले हैं—१ देहरादून, देहरादून। २ मेरठ, मेरठ। ३ अलीगढ़, अलीगढ़ और कोयल। ४ बुलन्दशहर, बुलन्दशहर। ५ मुजफ्फरनगर, मुजफ्फर नगर। ६ सहारनपुर, सहारनपुर।

(६) कुमायुं विभागमें ३ जिले हैं:—१ अलमोड़ा, अलमोड़ा। २ नैनीताल, नैनीताल। ३ गढ़वाल, श्रीनगर।

(७) रोहिलखण्ड विभागमें ६ जिले हैं:—१ शाहजहांपुर शाहजहांपुर। २ पीलीभींत पीलीभींत। ३ बरेली, बरेली ४ बुदाऊं, बुदाऊं। ५ मुरादाबाद, मुरादाबाद। ६ बिजनौर, बिजनौर।

(८) लखनऊ विभागमें ६ जिले हैं:—१ लखनऊ, लखनऊ। २ सीतापुर, सीतापुर। ३ हरदोई। ४ उन्नाव, उन्नाव। ५ रायबरेली, रायबरेली। ६ खेरी, लक्ष्मीपुर।

(९) फैजाबाद विभागमें ६ जिले हैं:—१ फैजाबाद, फैजाबाद। २ बराइच, बराइच। ३ गोंडा, गोंडा। ४ बार-बंकी, नवाबगंज। ५ सुलतानपुर, सुलतानपुर। ६ प्रतापगढ़, प्रतापगढ़।

५। मध्यप्रदेश—इस प्रदेशके अधीन ४ विभाग और १८ जिले हैं। राजधानी नागपुर है।

(१) नागपुर विभागमें ५ जिले हैं:—१ नागपुर, नागपुर। २ भण्डारा, भण्डारा। ३ चांदा, चांदा। ४ वर्धा, हिंगनघाट। ५ बालाघाट, बड़ा।

(२) जब्बलपुर विभागमें ५ जिले हैं:—१ जब्बलपुर, जब्बलपुर। २ सागर, सागर। ३ दमोह, दमोह। ४ सिवनी, सिवनी। ५ मण्डला, मण्डला।

(३) छत्तीसगढ़ विभागमें ३ जिले हैं:—१ बिलासपुर, बिलासपुर। २ रायपुर, रायपुर। ३ सम्बलपुर, सम्बलपुर।

(४) नर्मदा विभागमें ५ जिले हैं:—१ बेतूल, बेतूल। २ छिन्दवाड़ा, छिन्दवाड़ा। ३ होशङ्गावाद, होशङ्गावाद। ४ नीमाड़, खण्डवा। ५ नरसिंहपुर, नरसिंहपुर।

६। पञ्जाबप्रदेश।—पञ्जाब गवर्मेन्टके अधीन ६ विभाग और ३१ जिले हैं। भारतकी प्रधान राजधानी दिल्ली है।

(१) दिल्ली विभागमें ७ जिले हैं:—१ दिल्ली, दिल्ली। २ गुड़गांव, रिवाड़ी। ३ रोहतक, रोहतक। ४ हिसार, हिसार। ५ करनाल, करनाल। ६ अम्बाला। ७ सिमला, सिमला।

(२) जालन्धरमें ५ विभागमें ५ जिले हैं:—१ जालन्धर, जालन्धर। २ होशियारपुर, होशियारपुर। ३ काङ्गड़ा, काङ्गड़ा। ४ लुधियाना, लुधियाना। ५ फिरोजपुर, फिरोजपुर

(३) लाहोर विभागमें ६ जिले हैं:—१ लाहोर, लाहोर। २ अमृतसर, अमृतसर। ३ गुरुदासपुर, गुरुदासपुर। ४ मुलतान, मुलतान, ५ झङ्ग, झङ्ग ६ मण्टगोमरी, मण्टगोमरी।

४ रावलपिण्डी विभागमें ६ जिले हैं:—रावलपिंडी, रावलपिण्डी। २ झेलम, झेलम। ३ गुजरात, गुजरात। ४ शाहपुर शाहपुर। ५ गुजरानवाला, गुजरानवाला। ६ सियालकोट, सियालकोट।

डेराजात विभागमें ४ जिले हैं:—डेरा-इसमाइल खां, डेराइसमाइल खाँ। २ डेरा गाजी खां, डेरा गाजी खाँ। ३ बन्नू, बन्नू। ४ मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फरगढ़।

(६) पेशावर विभागमें ३ जिले हैं:—१ पेशावर, पेशावर। २ हजारा, हजारा। ३ कोहाट, कोहाट। विशेष—यह विभाग नवगठित सीमान्त प्रदेशके अन्तर्गत है।

७। मन्द्राज प्रेसिडेन्सी।—मन्द्राज गवर्मेण्टके अधीन ४ विभाग और २१ जिले हैं। राजधानी मन्द्राज है।

१ उत्तरविभागमें ७ जिले हैं:—१ गञ्जाम, बहरमपुर। २ विशाखपट्टन, विशाखपट्टन। ३ गोदावरी, कोकनद (काकनाड़ा)।

(२) मध्य विभागमें ८ जिले हैं:—१ कृष्णा, मछलीपट्टन। २ नेल्लूर, नेल्लूर। ३ चैङ्गलपट्ट, सैदापेट। ४ उत्तर आरकाड़, चित्तूर। ५ कड़ापा, कड़ापा। ६ कर्णूल, कर्णूल। ७ बेल्लरी, बल्लार। ८ अनन्तपुर, अनन्तपुर।

(३) दक्षिण विभागमें ५ जिले हैं:—१ दक्षिण आरकाड्, कडालूड़। २ तञ्जोर, तञ्जोर। ३ मदुरा, मदुरा। ४ तिनेवेल्ली, पालमकोट। ५ त्रिचिनापल्ली, त्रिचिनापल्ली।

(४) पश्चिमविभागमें ५ जिले हैं:—१ मलबार, कालीकट। २ दक्षिण कनाड़ा, मंगलोर। ३ कोयम्बतोर, कोयम्बतोर। ४ सेलम, सेलम (चेर)। ५ नीलगिरि, उतकामन्द।

बम्बई प्रेसिडेन्सी।—बम्बई गवर्मेण्टके अधीन ४ विभाग और २३ जिले हैं। बम्बई नगर इस प्रदेशकी राजधानी है

(१) उत्तरविभागमें ६ जिले हैं:—१ अहमदाबाद, अहमदाबाद। २ भड़ौंच, भड़ौंच ३ खेड़ा, खेड़ा। ४ पञ्चमहल, गोदड़ा। ५ थाना, थाना। ६ सूरत, सूरत।

(२) मध्य विभागमें ६ जिले हैं:—१ खानदेश, धूलिया। २ नासिक, नासिक। ३ अहमदनगर, अहमदनगर। ४ पूना, पूना। ५ सतारा, सतारा। ६ शोलापुर, शोलापुर।

(३) दक्षिण विभागमें ६ जिले हैं:—१ कोलाबा, अलीबाग। २ धारवाड़, धारवाड़। ३ कनाड़ा, कनाड़ा। ४ रत्नगिरि, रत्नगिरि। ५ बेलगाम, बेलगाम। ६ बीजापुर, बीजापुर।

(४) सिन्धु विभागमें ५ जिले हैं:—१ कराची, कराची। २ हैद्राबाद, हैद्राबाद। ३ शिकारपुर, शिकारपुर। ४ थर और पार्कर, अमरकोट। ५ उत्तरसिन्धुसीमा, जेकोबाबाद।

९। ब्रह्मप्रदेश (वर्मा)।—यह प्रदेश दो भागोंमें विभक्त है। एक उत्तर-ब्रह्म और दूसरा निम्न ब्रह्म।

(१) उत्तर-ब्रह्म (सानराज्य सहित) मन्दाले।

(२) निम्नब्रह्म ४ भागोंमें विभक्त है। १ आराकान आकायव। २ पेगू, पेगू। ३ तेनासेरिम, मौलमीन। ४ इरावती, रंगून।

१०। कुर्ग।—मेरकरा वा महादेवपट्टनम्।

११। अजमेर वा मेरवाड़ा।—अजमेर।

१२। बरार।—अमरावती।

१३। अन्दामन और निकोबर।—पोर्टब्लेयर।

१४। ब्रिटिश बलुचिस्तान।—कोयेटा।

१५। सीमान्तप्रदेश।—पेशावर, कोहाट।

करद और मित्र राज्य।

भारतवर्षमें करद और मित्र राज्योंकी संख्या छह सौसे भी ज्यादा होगी। उनमेंसे प्रधान प्रधान राज्योंके नाम लिखे जाते हैः—

निज़ामराज्य, सिन्धियाराज्य, गायकवाड़ महिसुर, तिरुवाङ्कोड़ और काश्मीर राज्य प्रधान हैं। इनके सिवा राजपूताना एजेन्सीके अधीन १८ और मध्यभारतीय एजेन्सीके अधीन ७१ राज्य हैं। राजपूतानामें जयपुर, जोधपुर वा मारवाड़, भरतपुर, जैसलमेर, वीकानेर, कोटा, अलवर और धौलपुर तथा मध्यभारतमें रीवाँ, पन्ना, भूपाल और बुन्देलखण्ड ये राज्य प्रधान हैं।

बङ्गाल गवर्नमेन्टके अधीन कोचविहार और पार्वत्य त्रिपुरा; युक्तप्रदेशकी गवर्नमेन्टके अधीन रामपुर और गढ़वाल; पञ्जाब गवर्मेण्टके अधीन पटियाला, झिन्द, नाभा, कपूरथला, वहावलपुर और चम्बर; वम्बई गवर्नमेण्टके अधीन कच्छ, काठियावाड़, काम्बो, सावन्तवाड़ी, कोल्हापुर, इन्दौर आदि प्रधान राज्य हैं।

स्वाधीन राज्य।

भारतमें स्वाधीन राज्य दो ही हैं:—नेपाल और भूटान।

यूरोपीय अन्यान्य जातिका अधिकार।

चन्दननगर, पुंदिचेरी, माही, करिकाल और यूनान ये स्थान फरासीसियोंके अधिकारमें हैं तथा गोया, दमन और दीऊ ये स्थान पोर्तुगीजोंके अधिकारमें है।

पूर्वोक्त प्रत्येक राज्यका विस्तृत विवरण उसी शब्दमें देखो।

जलवायु और कृषि।

यह विशाल भारतभूमि नाना नद-नदियों, वन-उपवनों और ह्रद एवं गिरिमालाओंसे समाच्छन्न है। वन, पर्वत, नदी और शस्यक्षेत्रादिके प्राकृतिक समावेशके कारण स्थान-विशेषमें जलवायुका भी उत्कर्षापकर्ष देखनेमें आता है। उत्तरमें हिमालय पर्वतके तुषार-मण्डित शिखरोंका समूह गगनतलको स्पर्श कर रहा है। विशाल बाहु-वेष्टनसे गिरिराजने मानो भारतके उत्तर-पश्चिम और उत्तरपूर्व-कोणोंको अङ्गगत ही कर रखा है। मेघमाला-समन्वित इन पर्वतोंके वक्षस्थल पर बहती हुई वायु विभिन्न गतियोंमें इतस्ततः विचरण करती रहती हैं। इसीलिए समतलक्षेत्र और हिमालयप्रदेशकी वायु-गति पृथक् पृथक् है।

इसकी पश्चिम, दक्षिण और पूर्व-सीमामें क्रमशः अरब-उपसागर, भारतमहासागर और वङ्गोपसागर ये तीन प्रशान्त समुद्र अपने अपने विस्तीर्ण वक्षस्थलों पर ऊर्मिमाला धारण कर नाना रङ्गों और वायुतरङ्गोंमें क्रीड़ा कर रहे हैं। इन विशाल वारिधि-हृदय पर कर्कट और मकरक्रान्तियोंमें सूर्यके प्रखर रश्मिजालसे आन्दोलित हो वायुराशि एक प्रबल प्रवाहको प्राप्त होती है। जिसको कि साधारण समुदाय मौसमी वायु कहता है। इतस्ततः सञ्चारमान भारतप्रवेशोन्मुख वायुराशि गिरि-कन्दराओं और समतलक्षेत्रोंको अतिक्रम कर भारतके वक्षस्थल पर जो अपनी क्रीड़ा करती है, उसीसे तूफान, आंधी, वृष्टि और भूमिकी उत्पादिका-शक्तियां एकत्र हो कर देशका एक महामङ्गल साधन करती हैं।

किस प्रकार इस क्रिया द्वारा भारतवासियोंका उपकार साधित होता है, यह बात विना भारतभूमिका प्राकृतिक अवस्थान-निर्णयके नहीं जानी जा सकती। इसलिए यहां प्राकृतिक सौन्दर्यका एक संक्षिप्त चित्र खींचा जाता है।

उत्तरमें पृथिवीकी सर्वोच्च पर्वतमालाने विशाल बाहुओंको धारण कर भारतके पश्चिमी उत्तर और पूर्व-विभागको आच्छन्न कर दिया है। उसकी असंख्य

उपत्यकाएं, अधित्यकाएं, कन्दराएं, घाटियां और नदियां तथा सञ्चित ह्रदाकार जलराशिका समूह इस सञ्चारमान वायुकी क्रीड़ाभूमि है। एशिया महादेशसे भारतखण्डको वियोजन करनेवाला यह हिमालय प्रदेश भारतका उत्तर-विभाग कहलाता है। इससे उत्पन्न शतद्रु, सिन्धु, गङ्गा, यमुना, घर्घरा और शाखाप्रशाखा-प्रसूत ब्रह्मपुत्र नद-प्रवाहित विस्तृत आर्यावर्त-भूमि इसका मध्यविभाग है और उससे परवर्त्ती विन्ध्य पर्वतमालाके अधित्यका प्रदेशसे पूर्व और पश्चिम घाटपर्वत श्रेणियोंके मध्य-वर्त्ती, कुमारिका तक विस्तीर्ण, दाक्षिणात्य भूभाग भारत महादेशका तृतीय विभाग है। इस दक्षिण-भारतमें नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी आदि नदियोंने, अपने अपने अववाहिकामार्गसे प्रधावित हो कर पार्श्ववर्त्ती उच्च भूमिसे समतलक्षेत्रोंको पृथक् कर दिया है।

वनराजि-समाच्छन्न पार्वत्यप्रदेशका विशाल शाल-वन और सेंगुन, सीसम, पीपल, बबूल, महुआ, झाऊ आदि ऊंचे वृक्षोंके विस्तीर्ण प्रान्तर भाग तथा नदीमाला समाकीर्ण समतलक्षेत्रके आम्रकानन वसन्तकी मलय हिल्लोलोंसे आन्दोलित हो कर ग्रीष्मके उत्तप्त वायु-प्रवाहसे फलभारावनत और पक्वताको प्राप्त हो रहे हैं। विस्तृतायतन शाखाप्रशाखावाही वट, अश्वत्थ, कपास, तिन्तिड़ी, बबूल आदि वृक्षोंका समूह फल-फूलोंसे सुशो-भित हो कर नदी-तीरवर्त्ती क्षेत्रोंमें विराज रहा है। प्रशस्त प्रान्तर देशमें उक्त पवनान्दोलित वृक्षोंकी शोभा बड़ी ही रमणीय है।

नदियोंके उत्पत्तिस्थानसे अवतरण कर धीरे धीरे जितना निम्नवर्त्ती त्रिकोणद्वीपांशमें उपनीत होंगे, उतना ही नूतन प्राकृतिक सौन्दर्य नयनगोचर होगा। नदियोंके जलसे प्लावित सैकतदेशके विस्तीर्ण धान्यक्षेत्रोंके बीच बीचमें बांसोंके झाड़, नारिकेल, खजूर, सुपारी और ताड़-वृक्षोंके समूह उन्नत मस्तक हो कर खड़े मानो स्वभावकी समताको तोड़ रहे हैं। उस विशाल प्रान्तर देशकी निर्जनताको भेद कर स्थान स्थान पर जो ग्रामों वा पल्लियोंके समूह हैं, वे उस देशके वासियोंके अत्यावश्यकीय कदली आदिके उपवनोंसे परिशोभित और समाच्छादित हो कर बड़े मनोहर दीख पड़ते हैं। ग्रामोंसे सटे हुए बांसोंके झाड़ और नारियलके पेड़ साधारणतः विशेष उपकारी हैं। उनसे रस्सी, तेल, खाद्य पदार्थ तथा और भी कामकी चीजें मिला करती हैं। जिन ग्रामोंमें बांस और नारि-यल आदिके वृक्ष अधिक संख्यामें रहते हैं, वहां तूफानका प्रकोप कम होता है। नदीके तीरवर्त्ती ग्राम वृक्षादि द्वारा समाच्छन्न न होनेसे सदा ही तूफानकी आशङ्कासे शङ्कित रहते हैं।

नदियां जितनी ऊंची भूमियोंको छोड़ कर नीचेकी तरफ जाती हैं। उतना ही प्राकृतिक दृश्योंमें भी परिवर्तन होते देखा जाता है। शुष्क और उच्च भूमि उत्तरभारतके गेहूं, जौ, मक्का, जुआर और बाजरा तथा निम्न त्रिकोण द्वीपांशवर्त्ती क्षेत्रोंके धान्यादि इसके उज्ज्वल प्रमाण हैं। कृषकोंने अपनी अपनी वास-भूमिके सन्निकट उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त धान्य बोना सीख लिया है। रङ्ग-पुरकी कड़ी मिट्टी पर और १२ फुटके करीब नीची दल-दल-जमीन पर भी खेती है। बंगालके शस्यभाण्डार बाखरगंज जिलेमें भी इसी तरहकी नीची दलदल भूमि पर खेती होती है।

ईख, तिल, तीसी, सरसों, तम्बाकू, रुई, नील, जाफ-रान, कुसुम, हलदी, अदरक, धनियां, मिरच, जीरा आदि उत्कृष्ट मसाले और रंगके पदार्थ जलवायुके गुणसे उत्तर और उत्तरपश्चिम-भारत तथा निम्न बङ्गालमें उत्पन्न होते हैं। मुसब्बर, अण्डी आदि कृषि-क्षेत्रो-त्पन्न पदार्थोंके सिवा गुल्माच्छादित वनोंमें नाना प्रकारकी जड़ी-बूटी पैदा होती है। रजन, गोंद, सीरीस और भोगविलासके काममें आनेवाले नाना प्रकार गन्ध-द्रव्य घने जङ्गलों और पार्वतीय वनभूमिसे आ कर यहां वाणिज्यद्रव्यमें परिणत होते हैं। आसामकी उपत्यकामें उत्पन्न चाय, युक्तप्रान्तमें गङ्गाके किनारे उत्पन्न अफीम, निम्नबंगालमें पैदा होनेवाली रेशम, पाट, सन और जङ्गलोंमें उत्पन्न लाख और तसर सुखाभिलाषी मानव जीवनके लिए आवश्यक सामग्री है। वनोंमें उत्पन्न होने-वाला महुआ पार्वतीय असभ्य जातियोंका प्रधान आहार्य द्रव्य है और उससे बननेवाली मदिरा भी उस देशके

रहनेवालोंकी एक प्यारी चीज़ है। बङ्गालमें झोपड़ियोंके ऊपर फलनेवाले पेठा-फल और विलायती कद्दू तथा आंगनोंमें पैदा होनेवाले तरबूज, बैंगन आदि फल जलवायुके गुणसे श्रीवृद्धि प्राप्त करते हैं। साल, सीसम और तून नामक वृक्षोंके समूह नाना वर्णोंकी पुष्पलताओं द्वारा वेष्टित हो कर वनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। बीच बीचमें बड़ी बड़ी पुष्करिणी कमल, कह्लार और कुमुदमालाओंसे मंडित हो कर शोभाकी वृद्धि कर रही हैं। जिन उद्भिद् वा वनस्पतियोंसे भारतवासियोंका ग्रासाच्छादन, अङ्गाच्छादन और वैदेशिकोंका वाणिज्य चलता है, वे सब वनस्पतियां उन उन देशवासियोंके उपयोगितानुसार उन्हीं उन्हीं स्थानोंमें उत्पन्न होती हैं।

सिन्धुनदके उत्पत्ति-स्थान हिमालयकन्दरसे ले कर ब्रह्मपुत्र पर्यन्त उच्च हिमालय-भूमि पर कुछ गिरि-संकटोंको छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी नदीके अववाहिका-चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते। कैलास-शिखरसे निकली हुई एकमात्र शतद्रु नदी ही पार्वतीय उपत्यका-भूमिको विच्छिन्न करती हुई दक्षिणकी ओर बह गई है। इस पर्वत प्राचीरके १६।१७ फुट ऊंचे स्थान पर दिनमें तिब्बत अधित्यकामुखी एक शुष्क उत्तरवायुका सञ्चार होता है। उस समय दक्षिणवाही कोई भी वायु पर्वत-भूमि पर नहीं चलती। परन्तु रात्रिको दक्षिण ढालू प्रदेशसे एक दक्षिणाभिमुखी शीतल वायु नदीके समतल प्रप्रात तक प्रवाहित होती है। यह प्रभात-स्निग्ध शीतल पवन अधिकतर प्रखर मालूम देता है। समतलक्षेत्रसे पर्वतकी ऊंची शिखा तक बहनेवाले शीतल प्रवाहको पार्वतीय वायुका शीतकटिबन्ध कहा जा सकता है।

प्राचीन आर्य उपनिवेशको छोड़ कर हिमालयकी पादभूमिसे समुद्रतीर पर्यन्त विस्तृत दलदल-युक्त सिन्धु विभाग, कच्छकी लवणाक्त सैकतभूमि, जैसलमेर और बीकानेरका पर्वतसमाकीर्ण मरुप्रदेश और लुसाई नदीसे प्लावित उर्वर शस्यक्षेत्रोंमें प्रायः वर्षा नहीं होती। इसके पूर्ववर्त्ती आरावल्ली शिखरसे लगे हुए स्थानोंमें तथा उत्तरपञ्जाब प्रदेशमें दक्षिण-पश्चिमी मौसुमीवायु और उससे विपरीत मौसुम शीतऋतुमें बहुत वर्षा होती है। पञ्जाबके दक्षिणदिग्वर्त्ती मुलतान और सिरसा विभागमें वर्षाका परिमाण ७ इञ्च है।

बङ्गीय डेल्टा भागमें दो विस्तृत क्षेत्र देखनेमें आते हैं। उनमेंसे प्रथम आसाम-उपत्यका और ब्रह्मपुत्रके दलदलयुक्त अववाहिका प्रदेशको ले कर बना है। इसकी उत्तर-सीमामें हिमालयपादप्रसूत गण्डशैलमाला और दक्षिणमें गारो, खसिया और नागा पर्वत है। दूसरा विभाग उक्त तीनों पर्वतके निम्नभागमें अवस्थित झील और दलदलयुक्त स्थान त्रिपुरा और लुसाई राज्यसे विच्छिन्न है। इस प्रदेशका जलवायु साधारणतः जलसिक्त है। पर्वतमालाके दक्षिणदिशामें प्रबल वर्षा होनेके कारण स्थानीय स्वास्थ्यमें विशेष वैषम्य उपस्थित होता है। शिवसागर और सिलचर नामक स्थानकी वैकालिक वायवीय चापकी परिणति आवहविद्याविदोंके लिए एक आलोचनाकी वस्तु है।

आर्यावर्त्तके अनुगाङ्गप्रदेशको अतिक्रम करनेसे पुनः विन्ध्य और सातपुरा पर्वतमालाकी विस्तीर्ण अधित्यका भूमि दृष्टिगोचर होती है। इसके उत्तरमें कर्कटक्रान्ति, पूर्वमें सीमान्तप्रदेश, दक्षिणमें मध्यप्रदेश और पश्चिममें काम्बे-उपसागर है। भारतके वक्षस्थल पर स्थापित यह विस्तीर्ण अधित्यकाभूमि भूतत्त्वकी भौगोलिक आलोचनाके लिए विशेष उपयोगी है। इसकी प्रधान प्रधान अववाहिकाविधौत नदियां उत्तरमें गङ्गा और नर्मदामें तथा दक्षिणमें ताप्ती, गोदावरी, महानदी और अन्यान्य शाखास्रोतोंमें जा मिली हैं। सुदूर पश्चिममें नर्मदा और ताप्ती नदी प्रवाहित सीमान्तराल दो उपत्यकाओंमें पूर्व-पश्चिमाभिमुखी वायु चलती है। दक्षिण-पश्चिम मौसुमके समय यहां बहुत वर्षा होती है।

विन्ध्य-गिरिमालाके विस्तीर्ण अधित्यका देशको पार कर उत्तरकी तरफ मालवा और बुन्देलखण्डको अधित्यकामें पहुंच सकते हैं। यह नर्मदा उपत्यकासे पूर्वमें शोण नदी तक विस्तीर्ण है। इसके अव्यवहित पश्चिमदेशमें आरावल्ली पर्वत अहमदाबादसे दिल्लीके समीप तक गया है। वहां इस पर्वतमालाके रहनेसे स्थानीय और पूर्वदिग्वर्ती अजमेरप्रदेशकी वर्षा

और वायु भिन्न गतिको प्राप्त हुई है। आबू पहाड़के पार्श्ववर्ती स्थानमें वायु दक्षिणपश्चिम-गतिमें प्रवाहित है। वहां जब दक्षिणपश्चिम मौसुमी वायु चलती है तो बहुत वर्षा होती है। आश्चर्यका विषय है, कि इसके पश्चिमपाददेशमें बीकानेरके मरुभू प्रान्तर पर्यन्त विस्तृत स्थानमें कभी वर्षा नहीं होती।

सातपुरा शैलमालाके दक्षिण-दिग्वर्ती त्रिकोणाकार दाक्षिणात्य अधित्यका भूमि पश्चिममें सह्याद्रि (पश्चिम घाट), दक्षिणमें नीलगिरि और पूर्वमें पूर्वघाट पर्वत-वेष्ठित तटभूमि द्वारा संगठित है। यहां हमेशा दक्षिण-पश्चिमी मौसुम-वायु बहती रहनेसे वर्षाको भी कमी नहीं रहती; परन्तु जब वह वायु पश्चिममुखी हो कर घाट-प्राचीरके ऊपर चलती है, तब उसके निकटवर्ती पूना आदि स्थानोंमें वर्षाकी कमी हो जाती है। उस समय पूर्वदिग्वर्ती स्थानमें पर्याप्त वर्षा हुआ करती है। परन्तु पश्चिमघाट और सातपुरा पर्वतमालासे टकरा कर उधर-से लौटते समय वह वङ्गोपसागरमें प्रवाहित एक पूर्व-वायुगतिके साथ मिल जाती है। फिर वह उत्तरकी ओर अनुगङ्गाप्रदेशमें न बह कर पुनः दक्षिणपूर्व भारतके किनारे प्रवाहित होती है। यही पहले दक्षिणपूर्व मौसुमी वायु कहलाती थी। (अब भी बहुतसे लोग इसे दक्षिण-पूर्वी मौसुमी वायु कहते हैं।) यह उस दक्षिण-पश्चिम मौसुमी वायुको एक भिन्न गति मात्र है। इससे वर्षा खूब होती है।

पूर्व और पश्चिम-घाटके कोणाकार संयोग-स्थलमें नीलगिरिका अधित्यका प्रदेश है। इसके दक्षिणमें अनमलय, पालनी और त्रिवाङ्कोडका पार्वत्यप्रदेश है। इन दोनोंके व्यवधानमें २५ माइल विस्तीर्ण पालघाट नामक गिरिसङ्कट है। यहांकी दक्षिणपश्चिम मौसुमी वायुकी क्रीड़ा अतीव रमणीय है। उस समय यहां बहुत वर्षा होती है, किन्तु उत्तरपूर्वी मौसुमके समय बेल्लोरके निकटवर्ती मालबर उपकूलमें प्रबल वेगसे तूफान होता है। सामुद्रिक वायुके स्वच्छन्द विहारके कारण यहांकी उत्कामन्द उपत्यका साधारणके लिए विशेष स्वास्थ्यकर है। कप्तान न्यूबोल्डका कहना है कि, इस स्थानकी वायु पूर्वकी ओर निकल कर कभी कभी वङ्गोपसागरमें भीषण तूफान ला देती है।

उक्त दोनों घाटोंके पार्श्ववर्ती भारतोपकूल और पर्वत-तट साधारणतः वनसे घिरा हुआ है। परंतु वाणिज्य वन्दर साफ-सुथरे शस्यादिसे परिपूर्ण हैं। यहां वर्षा-ऋतुमें प्रबल वृष्टिपात होता है। इसलिए यहांकी वायु उष्ण होने पर भी जलसिक्त मालूम पड़ती है।

ब्रह्मदेशमें आवा नगरीके समस्त भूभाग पर्वतमय है। भूमिकम्पसे समय समय पर यहांकी बहुत ही हानि होती रहती है। १८३६ ई०में आवा नगरी श्रीहीन हो गई थी। पर्वत और उपत्यकादिके अवस्थानके भेदसे यहां किसी किसी स्थानकी वायुकी गति-में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। वायुके ऊपरमें स्थित मेघमालाकी गतिका पर्यवेक्षण करके डा० अण्डसेनने निश्चय किया है कि, यहां भी हिमालय प्रदेशकी तरह एक दक्षिणपश्चिम वायुगति विद्यमान है। ईरावती नदीकी उपत्यकाके नीचे अर्थात् पेगू विभागके समीपस्थित प्रदेशमें प्रभूत वर्षा होती है। यहांका जल-वायु नतो बहुत ठण्डी ही है और न विशेष गरम, साधा-रणके लिए मनोरम है। परन्तु पेगूका उत्तरवर्ती उपत्यका विभाग शुष्क और वृक्षादि-रहित मरुभूमि सदृश है। यहां वायुका प्रायः अभाव ही समझना चाहिए।

आवहविद्याविदोंने अनुसंधित्सु हो कर वायुमान यन्त्रकी सहायतासे भारतके उच्च और निम्न स्थानोंसे वायुका उत्ताप और चाप ग्रहण कर जो सिद्धान्त निश्चय किया है, वह वायवीय अवस्था-भेदसे वृष्टिपातके निरा-करणमें समर्थ है। नीचे उदाहरण-स्वरूप कुछ स्थानोंके नाम, चाप, ताप और वृष्टिपातका नक्सा दिया जाता है।

स्थान	वायवीय ताप	चाप	वृष्टिपात
कलकत्ता	७६-२°	२६°८४१	६६°१६ इञ्च
बम्बई	७८-८°	२६°८२२	६७ „
मन्द्राज	८२-४°	२६°८५६	४४ „
दार्जिलिंग	५३-६°	२४°०५८	११६°२५ „
सिमला	५४-३° (जून)		७०°४२ „
दिल्ली	६४-३° (जून)		२७°५ „
मुलतान	६५-		७°१९ „
पोर्टब्लेयर	८०-५°		११८°२५ „
सागरद्वीप	७६-५°		७३°८५ „
फाल्सपोयंट	८०-२०°	२६° ८२१	

ऊपरकी निर्दिष्ट परिमाण-सूची वार्षिक हिसावके सामञ्जस्यानुसार उद्धृत की गई है। कभी कभी स्थान विशेषमें वृष्टिपात और तापनिर्दिष्ट संख्यासे द्विगुण भी हो जाता है। वायवीय ताप और चापके ऐसे उन्नमन और अवनमनको देख कर आवहविद्गण मेघ, वृष्टि और आंधीके तारतम्यको समझनेमें समर्थ होते हैं। इसीलिए मेघ-मण्डित आकाशमें घोर घनघटा और वारिसिञ्चन-सहित साइक्लोन, टर्णाडो आदि भीषण झटिका-प्रवाह कभी कभी भारतभूमिको आलोड़ित कर दिया करता है। हिन्दूशास्त्रोंमें इसे एक प्रकारका दैव विपत्पात कहा गया है।

भारतवर्षीय आवहविद्याविद्गण वाह्य प्रकृतिके साथ वायुको गतिविधिकी पर्यालोचना कर इस प्रकारके एक सिद्धान्तमें उपनीत हुए हैं :—

वायुका चाप अधिक होनेसे शीतकालमें वृष्टि और और हिमालयके पश्चिमदेशमें प्रभूत तुषारपात होगा। साथ ही दक्षिण-पश्चिममें मौसुमी वायु भी चलती रहेगी, उस वायुका वेग क्षीण होनेसे किसी किसी जगह लगातार वार वार वृष्टिपात और कहीं कहीं दीर्घकाल-व्यापी अनावृष्टि हुआ करती है। अतएव दुर्भिक्षादि उपद्रव भी पीछे पीछे चलते हैं। बहुत ऊहापोहके साथ भारतवर्षके प्राकृतिक अवस्थानका पर्यवेक्षण करनेसे ज्ञात होगा कि वायु-प्रवाहके इस नियमित कारणसे ही वङ्गाल और मालावरकी अपेक्षा दाक्षिणात्य और उत्तर-भारतमें कृषिकार्यमें उपयोगी वृष्टिपातका अभाव हुआ करता है। चापके आधिक्यके कारण वायुके विपर्ययसे ही पहले इस शस्यपूर्णा भारतभूमि पर बहुत वार दुर्भिक्ष हो चुका है। दुर्भिक्षके प्राक्कालीन वायवीय परिवर्तनके समय सूर्यमें एक विन्दुपात दिखलाई देता है। किसी भी एक समयसे दूसरे समय तक जो सूर्यमें उक्त प्रकार-का विन्दुपात होता है, वह सौरविन्दु संवत्सर (Sun-sdotCycles) नामसे प्रसिद्ध है। १८९८ ई०के भारी भूकम्प और दुर्भिक्षके समय इस प्रकारका सौरविन्दु और भानुकम्प दिखलाई दिया था। यह भावी दुर्घटना-सूचक एक दैवचिह्न है।

जलवायुके प्रभावसे ही कृषिकार्यकी उन्नति और अवनति होती है। प्रकृतिकी समता-रक्षापूर्वक वृष्टिपात और वायुप्रवाह अपने अपने कार्यमें तत्पर रहें तो भूमि-को उर्वरता बढ़ती है। अतिवृष्टि वा अनावृष्टि विशेष अमङ्गलकारी है। स्थान विशेषमें १२ फुट नीचे जलगर्भसे धान्य उत्पन्न होता है, किन्तु लगातार वर्षा हो कर यदि वह धान्यको डुबो दे, तो धान्य नाशकी अधिक सम्भावना है। इसी प्रकार धन्य-वपनके वाद ऊँची सूखी भूमिमें भी अधिकवर्षा होनेसे जड़ सड़ कर धान्यकी विशेष क्षति करती है। इसीलिए किसान लोग स्वाभाविक आवश्यक वर्षा चाहते हैं। वृष्टिका अभाव होने पर नदी आदिसे नहर या वम्बा निकाल कर खेतोंमें पानी पहुंचाया जाता है। परंतु लगातार ५-६ वर्ष सूखा पड़नेसे नदीमें भी जलाभाव हो कर दुर्भिक्ष अनिवार्य हो जाता है। प्रशस्त मार्गादि तथा वाणिज्यकी सुविधा होनेसे अब भारतवर्षको स्थानीय दुर्भिक्षसे विशेष पीड़ित नहीं होना पड़ता है। दाक्षिणात्य भूमिके पार्वत्य विभागमें गमनागमनकी विशेष सुविधा न होनेसे वहां दुर्भिक्षका प्रकोप अधिक होता है। अना-वृष्टिके कारण सुदूरव्यापी दुर्भिक्षसे तथा वाणिज्यके लिए भारतीय पण्यद्रव्य विदेशमें जानेसे भारतवासी विशेष क्षतिग्रस्त और दुर्भिक्ष पीड़ित-हुआ करते हैं।

समग्र भारतवर्षमें करीव ६ करोड़ आदमी कृषि-कार्य (खेती-वारी) द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। ये श्रमजीवी किसान लोग अपनी अपनी भूमिको अव-स्थानुसार खाद दे कर तथा अन्यान्य उपायोंसे उर्वरता बढ़ाते हैं। उससे साधारण जमीनको अपेक्षा अधिक नाज पैदा होता है। जमीनमें वीज वोनेके पहले पहल जोतना पड़ता है। उसके वाद वीज फैला कर फिर उसे जोतने-से अंकुर उत्पन्न होते हैं। धान्यकी खेतीकी प्रथा पृथक् है। उसमें पहले जोती हुई पनीली जमीन पर बीज बखेरे जाते हैं पीछे अंकुर निकल कर जब वे एक बिलस्तके होते हैं, तव उन्हें दूसरे साफ खेतमें गाड़ देते हैं। भारतवर्षमें प्रधानतः धान्य, गेहूं, जौ, जुआर, बाजरा, उरद, अरहर, चना, मटर आदि अनाज तथा राई, सरसों, तीसी, रेंड़ी और तिल आदि तैलकबीज, बैंगन, आलू, गोभी, मूली, पियांज, लहसुन, गाजर, सकरकन्दी आदि शाकसब्जी, आम, केला, कटहर, दाड़िम, अमरूद, खरबूज,

फूट, ककड़ी, नीबू, आदि समस्त सुमिष्ट और अम्लमधुर-फल, सुपारी, नारियल, खजूर, ईख, तम्बाकू, चाय, अफीम, और पाट, सन, रेशम, रुई नील, लाख आदि द्रव्य उत्पन्न होते हैं। किसान लोग अपनी अपनो जमीन-में पैदा हुई चीजोंको बेच कर जमीनकी मालगुजारो देते और अपने जीवन निर्वाहकी आवश्यक सामग्री संग्रह करते हैं। दक्षिणमें नीलगिरोसे लगाकर हिमालयके ढालू प्रदेश तक तथा पूर्वमें खासिया पर्वतसे चट्टग्राम तक और ब्रह्म आदि स्थानोंमें चाय, आलू, गोबी और सिन-काना नामक उद्भिद्की खेती होती है। उक्त पदार्थोंको खेती-बारीका विवरण उन उन शब्दमें लिखा गया है। अंगरेजों द्वारा शासित भारतके विभिन्न स्थानोंमें अधिकतर किस चीजको कितनी जमीनमें खेती होती है, उसकी एक तालिका नीचे दी गई है :—

उत्पन्न होनेवाले द्रव्य	मन्द्राज	बम्बई	सिन्धु	पञ्जाब	मध्यप्रदेश	निम्नब्रह्म	महिसुर	बरार।
धान्य (चावल)	४६००००००	११६५०००	५१२०००	४०००००	४५५००००	२५५५०००	५४००००	३१०००
गेहूं	१६०००	५६१०००	३५४०००	७००००००	३६०००००	...	११०००	५२५०००
क्षुद्रशस्य	१०६००००००	५८००००००	६३४०००	६००००००}	५१४००००	...	३४००००००	२७६००००
उड़द	१६००००००	८३००००	११५०००	३२०००००}				१८००००
तैलकरवीज	८००००००	६२८०००	१८००००	८००००००	१३६००००	१५०००	१३००००	४६००००
रुई	१००००००	१३५००००	७००००	६६००००	८४००००	१००००	१५०:०	२०८.०००
तम्बाकू	६००००	३५०००	६०००	८००००	४८०००	१७००:	१६०००	१७०००
नील	१२००००	१४०००	१००००	११००००	...	७००	...	...
ईख	२१०००	५००००	४:००	३८००००	१०००००	४०००	१३०००	५०००

यह जमीनका परिमाण अन्दाजसे लिखा गया है। कहीं कहीं इससे भी कहीं अधिक जमीन जोती और बोई जाती है।

बंगालमें धान्य और पाटकी खेती मुख्य है। सारे बंगाल भरमें कितनी जमीन पर धान और पाटकी खेती होती है, इसका निर्दिष्ट विवरण उपलब्ध नहीं है। पाट, नील, इक्षु, तम्बाकू और तैलकर बीजोंका विवरण उन उन शब्दोंमें देखो।

हल जोतनेमें बैल, भैंसे, ऊंट और घोड़े आदि जीव काम आते हैं। इन पशुओंकी सहायताके विना जमीनका जोतना बिलकुल असम्भव है। अनाज और सब्जी पैदा करनेके लिए किसानोंमें जैसा उद्योग, परिश्रम और आग्रह पाया जाता है, वैसा वाणिज्यके अभिप्रायसे सम्प्रदाय विशेषमें पशुपालनकी आकांक्षा भी प्रबल हो उठी है। वे भी किसानोंकी तरह अपने अपने पशुओंका पालन और उनके बच्चे पैदा कर बेचा करते हैं। पञ्जाब और उससे पश्चिम प्रदेशमें युद्ध-व्यवसायके लिए घोड़े और खच्चर, घीके लिए भैंसें, यान और कृषिके लिए ऊंट बेचनेके लिए हाथी और ऊनके लिये बकरे और भेड़े, चरबी और खानेके लिए सूअर आदि पशु पाले जाते हैं

लोभ और लाभके वशवर्ती हो कर गवर्मेएटने जैसे मैमनसिंह राजवंशका हस्ति-विक्रय व्यवसाय छीन लिया, वैसे ही दक्षिण, मध्य और पश्चिम-भारतके वन्य प्रदेशसे अर्थ सञ्चय करनेके अभिप्रायसे उन लोगोंने देशीय सामन्तोंसे वन्य विभाग हस्तगत कर लिये। जिससे मूल्यवान् साल, सेगुन, सिरीस तून आदिके जङ्गल-प्रकृतिके अधीन रह कर पुष्ट कलेवरमें विद्यमान रह सकें तथा दावानलसे जल न सकें इसके लिए गवर्नमेएटने विशेष व्यवस्था की है। १८४४ और १८४७ ई०में बम्बई और मद्राज गवर्नमेण्टने वन्य विभाग अधिकार करनेके लिये प्रयास किया था। उनके प्रस्तावित विषयमें लभ्यांश अधिक जान कर गवर्नमेएटने १८६४ ई०में डा० ब्राण्डिसको वन्यविभागका प्रधान परिदर्शक (*Inspector General of Forest*) बनाया था। उसके दूसरे ही वर्ष वन-रक्षण सम्बन्धी एक कानून बना दिया गया। गवर्न-

मेएट द्वारा अधिकृत समस्त वनभूमि साधारणतः रक्षित (Reserved) और मुक्त (Open) ऐसे दो प्रकार की है। रक्षित वन वन्य-विभागके कार्यकर्त्ताओं द्वारा, खास अधीनतामें स्थापित हैं। जंगलियों द्वारा आग लगाये जानेके भयसे उसके चारों तरफ सशस्त्र प्रहरी नियुक्त हैं। इनमें असभ्य पार्वत्य जातियां वास नहीं कर सकतीं। 'मुक्त' वनोंको रक्षाके लिए किसी प्रकारका पहरा नहीं है। वन्य जातियां इच्छानुसार उनमें खेतो-वारी कर सकती है; परन्तु उनमें भी जहां जहां सालके पेड़ हैं, वे रक्षित हैं। इन प्रदेशोंमें आवादीके लिए वन्य विभाग (Forest Department)-में वार्षिक वहुत रुपये व्यय होते हैं; इसे तृतीय श्रेणी समझना चाहिए।

उत्तर-पश्चिम सीमान्तदेश, आसाम, चट्टग्राम, आराकान, ब्रह्म, मध्यभारत और पश्चिमघाट आदि पर्वतमालओंमें अनेक असभ्य जातियोंका वास है। वे स्वतन्त्र प्रथासे कृषिकार्य निर्वाह करते हैं। ब्रह्ममें 'तौङ्गया', उ० प० सीमान्तमें 'जूम', हिमालयमें 'कील', मध्यप्रदेशमें 'दह्या' और पश्चिमघाट पर्वतमालामें 'कुमारी' प्रथासे खेतीवारी होती है। इन स्थानोंमें हलसे खेत नहीं जोते जाते। कहीं वन्य-भूमिको जला कर, कहीं खुरपासे मिट्टी छील कर और कहीं कुल्हाड़ी या कुदालीसे खोद कर बीज बोये जाते हैं। ये एक जमीन पर लगातार दो वर्ष खेती नहीं करते। हर वर्ष जमीन वदल लिया करते हैं। ये जमीनमें किसी प्रकारका सार नहीं देते और न शिक्षित किसानोंकी तरह कुछ उलट-फेर ही करते हैं। तथापि उनके खेतोंमें वहुतायतसे धान्यादि अनाज पैदा होता है।

वाणिज्य।

पण्यद्रव्यको खरीद-विक्रीका नाम वाणिज्य है। भारतीय प्रजाके परिश्रम और कृषि-कौशलसे उत्पन्न द्रव्यको ही 'पण्य' कहते हैं। वर्ष भर सरदी-गरमी, वर्षा और घाम सह कर कष्टसहिष्णु कृषकगण अपने अपने खेतोंमें जो फसल पैदा करते हैं उसमेंसे कुछ अंश अपने भरण-पोषण और आगामी बीजके लिए रख कर वाकी सब मालगुजारी आदि आनुसङ्गिक व्यय-भार वहनके लिए महाजनोंके हाथ बेच देनेको वाध्य होते हैं। कहीं कहीं पेशगी देनेवाले महाजन लोग उस वाकीके अंशसे भी ज्यादा माल ले लेते हैं, जिससे बेचारे किसानोंको अपने भरणपोषणमें भी अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इन अत्याचारोंसे कभी कभी प्रजा-विद्रोह आदि उत्पात तथा दुर्भिक्षादि भी दिखाई देने लगते हैं। वङ्गालकी नीलकी कोठीवालोंका अत्याचार, १७७३ ई०के संन्यासि-विद्रोह और १८३१-३२ ई०के कोल विद्रोह आदि उच्छृङ्खलताओंका कारण था। राजा प्रजाके कष्टों पर ध्यान नहीं देते थे, इसी कारण प्रजा ऐसे उद्धत भावको धारण करती थी।

प्रजागण अपने अपने परिश्रमसे उपार्जित धान्यादि महाजनोंके हाथ सौंप कर निश्चिन्ततासे पैर पसार कर सोते हैं। निरीहस्वभाव दीन दुःखी किसान लोग तो अपनी अपनी जमीनकी तरक्कीमें लगे रहते हैं, पर महाजन लोग लाभकी आशासे एक जगहकी चीज दूसरी जगह ले कर बेच देते हैं। फल यह होता है, कि जहां पैदावारी होती हैं, वहांके लोग कष्ट पाते हैं। उधर महाजन लोग शहरोंमें दूने भाव पर माल बेच कर मनमें फूले नहीं समाते।

भारतीय वाणिज्य साधारणतः चार प्रकारसे चला करता है। १ अर्णवयान द्वारा वैदेशिक राज्यके साथ, २ उपकूलवर्त्ती नगरोंमें, ३ हिमालयके उत्तर और पूर्व सीमान्तवर्ती राज्योंके साथ और ४ भारतसाम्राज्यके मध्य।

विस्तीर्ण समुद्रके बीचमें रहने पर भी भारतके उपकूलदेशोंमें वाणिज्यके लिए उपयोगी बन्दरगाह नहीं हैं। गङ्गा और ब्रह्मपुत्र नदीके समग्र अववाहिका प्रदेशमें उत्पन्न होनेवाले द्रव्यका वाणिज्य केवल कलकत्ताके मार्गसे ही होता है। इसके सिवा अन्य स्थानोंमें पैदा होनेवाली चीजें भी देशीय और वैदेशिक बणिक् सम्प्रदाय द्वारा अच्छी तरह बोरे आदिमें भरी जा कर गाड़ी, नाव या रेलसे कलकत्ता बन्दरकी तरफ आती है। भारतकी चीजें भारतमें ही स्वदेशियोंके व्यवहारार्थ जो जाती आती हैं, वह अन्तर्वाणिज्य कहलाता है और जो द्रव्य वैदेशिकोंके जहाजोंमें भर कर सुदूर देशान्तरोंमें भेजा जाता है, उसका नाम सामुद्रिक-वैदेशिक-वाणिज्य है। इसी तरह गुजरात, दाक्षि-

णात्य और मध्यप्रदेशका तमाम अनाज बम्बई हो कर, सिन्धु प्रदेशका अनाज करांची हो कर और इरावती प्रवाहित निम्न ब्रह्ममें उत्पन्न होनेवाला माल रंगून हो कर समुद्रके मार्गसे नाना देशोंमें भेजा जाता है। यह भी सामुद्रिक वाणिज्य है और सड़कोंके सिवा इन चारों बन्दरोंमें माल पहुंचानेकी सुविधाके लिए रेलपथ भी विस्तृत है। इनके अतिरिक्त मालावर उपकूलमें गोआ, कोचीन, मङ्गलोर, कोन्नानोर और बेपूर तथा करमण्डल-उपकूलस्थ मछलीपत्तन आदि छोटे छोटे बन्दरगाहोंमें भी भारतका औपकूलिक वाणिज्य होता है। मालावर उपकूलवर्ती वाणिज्य बन्दरगाहोंमें भी भारतका औपकूलिक वाणिज्य चलता है। मालावार उपकूलवर्त्ती वाणिज्यबन्दरोंमें अथवा वहांको नदियोंमें जहाज जा सकते हैं। परन्तु करमण्डल उपकूलवर्ती मन्द्राज आदि नगरोंमें प्रवेश करनेका मार्ग निरापद नहीं है। वैदेशिक जहाज नजदोकमें ही समुद्रमें ठहराये जाते हैं। वहांसे छोटे छोटे स्टीमरों या नावोंके जरियेसे माल ला कर जहाजोंमें लादा जाता है। भारतीय सामुद्रिक वाणिज्यका चालीसवां भाग कलकत्ताके मार्गसे और तदनुरूप बम्बईके मार्गसे तथा षष्ठांश मन्द्राज, चतुर्थांश रंगून, द्वि-अंश कराची और शेष अष्टांश उपकूलवर्ती छोटे बन्दरोंसे होता है।

बहुत समयसे भारतमें वैदेशिक वाणिज्यका प्रभाव विस्तृत था। उस समय भारतीय वणिक् विभिन्न देशोंमें स्वदेशीय पण्य द्रव्य ले कर वाणिज्यके लिए गमन करते थे। चीन, यव, वालि आदि द्वीपों और अरब, इजिप्ट, रोम आदि सुदूर देशोंमें भारतीय धनरत्न और धान्यादि शस्यका विक्रय होता था। भारतमें उत्पन्न मुक्ता प्रवाल, मरतक, होरा चुन्नी आदि मूल्यवान् प्रस्तरोंकी प्रसिद्धि समृद्ध रोमसाम्राज्यमें भी परिव्याप्त थी। नेल्लूर, वाली आदि स्थानोंमें उस प्राचीन भारतीय वाणिज्यके निदर्शन मिले हैं। इसके सिवा ऐतिहासिक और भ्रमणकारियोंके वृतान्त पढ़नेसे भी उस वाणिज्यकी स्मृति जागृत हो उठती है।

भारतवासियोंका वह वाणिज्य-गौरवके अपसृत होने तथा वर्त्तमानमें भारतीय (हिंदू) वणिकोंका ध्यान वाणिज्य प्रसारकी ओर न रहने पर भी भारतीय बाणिज्यका किसो प्रकार ह्रास नहीं हुआ है। अब वैदेशिक वणिक्-सम्प्रदाय भारतको सामग्र वाणिज्य शक्तिको हड़प रहा है। भारतमें हिंदू राजाओंका लोप होने पर क्रमशः विधर्मी मुसलमानोंका शासन फैल गया। ११९३ ई०में महमद गोरोके भारताक्रमणके वाद उत्तर-भारतमें मुसलमानोंका प्रभाव विस्तृत हुआ। उस समय मुसलमान लोग भारतमें पैदा होनेवाली तरह तरहकी चीजें अफगानिस्तान, तुर्किस्तान आदिमें ले जा कर उसके बदले वहांके भेंड़, बकरे, रोम, सींग आदि भारतमें ला कर बेचते थे। अब भी मुसलमान और कुछ पञ्जावी आदि वणिक् अफगान सीमान्त और तुर्किस्तानमें रह कर पार्वत्य वाणिज्यको प्रसार बढ़ा रहे हैं। अलाउद्दीन खिलजीके दाक्षिणात्य आक्रमणसे पहले दक्षिणापथ में राष्ट्रकूट, यादव, चालुक्य आदि राजवंश राजत्व करते थे। उस समय हिंदू बणिक्गण वाणिज्यकी उन्नतिमें दत्तचित्त थे। उस समय अरब आदि देशोंसे विदेशी वणिक लोग भारतमें आ कर पण्यद्रव्य खरीद ले जाते थे। मुगलसम्राट् अकबरशाहके दण्डप्रतापसे दाक्षिणात्यमें मुगल और मुसलमानोंका प्रभाव मजबूत हो गया था, तबसे दाक्षिणात्यके करीब सभी वाणिज्य मुसलमान राजपुरुषोंके हस्तगत हो गये। अत्याचारी मुसलमानराजपुरुषोंके ऊपर क्रुद्ध होकर सम्भवतः हिन्दू वणिकोंने मुसलमानोंकी वासभूमि अरब आदि देशोंमें जा पण्य द्रव्य बेचना बन्द कर दिया था। साथ हो इसलाम-धर्मदीक्षाके प्रयासी मुसलमानोंके कठोर शासनसे पीड़ित हो कर, विद्वेषवश हो चाहे जातिच्युतके भयसे, वे मुसलमानोंका सहवास छोड़नेके लिए सब तरहसे वाध्य हुए थे। यही कारण है कि इस प्रकार थोड़े ही समयके भीतर भारतवासी हिन्दुओंका वैदेशिक वाणिज्यका अन्त हो गया।

जिस प्रकार भारतीय पण्य द्रव्य किसी समय दूर देशोंके लिए भेजे जाते थे, उसी प्रकार वहांकी कोई न कोई चीज उस समय भारतवासियोंकी अङ्ग-शोभा बढ़ाती थी। अन्तर्वाणिज्यके फलसे दाक्षिणात्यसे जिस प्रकार प्रवाल, मुक्ता आदि समुद्रज मूल्यवान द्रव्य उत्तरभारतमें आते थे, उसी प्रकार सुदूर अष्ट्रेलिया द्वीपसे अब भी

मुक्ता, प्रवालादि भारतमें आया करते हैं। भारतमें यवन राजाओंके अधिकारकालमें नाना प्रकार अलङ्कार और अंगरखे आदिका प्रचार था। भास्कर शिल्पमय ग्रीक और शक चित्रोंसे उसका पूरा आभास मिलता है।

भारतका प्राचीन वाणिज्यस्रोत क्षीण होने पर पुर्त्तगीज ओलन्दाज, फरासीसी, जर्मन और अंग्रेज वणिक्गण वाणिज्यके उद्देशसे एक एक कर भारतमें पदार्पण करने लगे। पुर्त्तगीजोंने वाणिज्यके अभिप्रायसे भारतमें आ कर भारत महासागरके किनारे कैसा प्रभुत्व विस्तार किया था, 'पुर्त्तगीज' शब्दमें उसका विस्तृत विवरण देखना चाहिए। जर्मन वणिकोंका अर्थ-पिपासाके कारण हो हो वा परामर्श-दाताओंके पारस्परिक विरोधके कारण, अकालमें हो समुद्रगर्भमें जलबुद्बुदवत् नाश हो गया था। ओलन्दाजोंने कुछ दिनके लिए भागीरथी तीरवर्त्ती श्रीरामपुर ग्राममें रह कर वाणिज्यकी उन्नतिकी चेष्टा की थी, परंतु अंग्रेजों और फरासीसियोंके साथ प्रतियोगितामें पराङ्मुख हो कर वे श्रीरामपुरकी कोठी अंग्रेज वणिकोंके हाथ बेच कर निम्न बंगालकी वाणिज्याशा विसर्जित करनेके लिए वाध्य हुए। आखिरमें भारतमें दृढ़भित्ति स्थापनके लिए फरासीसी और अंग्रेज वणिकोंमें घोर प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हुई। दाक्षिणात्यमें फरासीसी और अंग्रेजोंका विरोध इतिहासमें ज्वलन्त अक्षरोंमें लिखा है। १७५७ ई०में फरासीसियों और आखिरमें नवाव सिराजउद्दौलाको परास्त कर अंग्रेज वणिकोंने लार्ड क्लाइवकी अधिनायकतामें वङ्गराज्यमें प्रभुत्व स्थापन किया। १८०३ ई०में महाराष्ट्र विजयके बाद समस्त दाक्षिणात्यमें अंग्रेजवणिकोंका प्रसार बढ़ने लगा। उसके बाद १८५७ ई०के प्रसिद्ध सिपाही विद्रोहके बादसे अंग्रेज-वणिक्-सम्प्रदायने अप्रतिहत प्रभावसे भारतमें सामुद्रिक वाणिज्यका विस्तार किया। अब अंग्रेज, फरासीसी, ग्रीक, जर्मन, हिन्दू, पुर्त्तगीज, यहूदी, पारसी, मुसलमान आदि नाना जातीय वणिक-सम्प्रदायने भारतके वाणिज्य-सूत्रको धारण किया हैं; परन्तु सभी अंग्रेजको शुल्क देते हैं।

वैदेशिक वणिक्समिति द्वारा भारतमें आने वाली चीजें ये हैं,—कोरे, धुले हुए और छोंट आदि नाना प्रकारके सूती वस्त्र, छतरी, कोयला, लोहेकी तमाम चीजें छुरा, कैंची, उस्तरे, आदि अस्त्रशस्त्र, कल कब्जे, अनेक प्रकारके मद्य, तांवा, लोहा सीसा, सोना, चांदी आदि धातुएं, नाना प्रकार खाद्यद्रव्य, रेलगाड़ीका असवाव, नमक, रेशम और उससे वनी हुई चीजें, गरम मसाले, चीनी, पश्मी वस्त्र, नारियलका तेल और औषधादि नाना प्रकार उपकरण।

भारतसे विदेशको जानेवाली चीजें—चाय, काफी, रूई, सूतीवस्त्र, सूत, नील और अन्यान्य रंग, धान्य, चावल, गेहूं, चना आदि अनाज; पशुचर्म; पटसन और वोरे, लाख, तैलादि, अफीम; सोरा, मसीना, तिल, राई, रेंड़ी आदि तैलकर वीज; रेशम और उससे उत्पन्न गरदादिके वस्त्र, गरम मसाला, चीनी, साल और सेंगुनकी लकड़ी, तम्बाकू, ऊन और ऊनके वस्त्र आदि। इनके सिवा और भी बहुत सी चीजें विभिन्न देशोंको जाती हैं। विशेष विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखो।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि वर्त्तमान युगमें एकमात्र अंग्रेज वणिकोंने जागतिक वाणिज्यका पूर्णाधिकार अपने हाथमें ले रखा है। उनके उत्साहसे प्राच्य देशोत्पन्न सभी प्रकारके पण्यद्रव्य इंग्लैण्डकी राजधानी लण्डनमें लाये जाते हैं और वहांसे यूरोपके विभिन्न देशवासी वणिक्गण प्रयोजनानुसार सन, ऊन आदि चीजें खरीद लिये जाते हैं। पहले दक्षिण अफ्रीकाके उत्तमाशा अन्तरीपको वेष्टन कर पण्यवाही जहाज यूरोपमें पहुंचते थे। १८६९ ई०में स्वेज संयोजनसे नहर काटी जानेसे वाणिज्यका प्रसार बढ़ा और एक लम्बे रास्तेका भी आविष्कार हुआ। अब वणिक् दलको विशेष कष्ट नहीं सहना पड़ता। भारतीय पण्य द्रव्यसे परिपूर्ण हो कर अर्णवपोत एक मासके भीतर ही सुदूर इंग्लैण्डमें पहुंच जाते हैं।

भारतका आभ्यन्तरीण वाणिज्य भारतीय सभ्य जातियों द्वारा ही प्रचलित हुआ है। सुप्राचीन आर्ययुगमें जो लोग वाणिज्यकार्यमें नियुक्त थे, वे मनु द्वारा 'वैश्य' नामसे उक्त हुए हैं। अब भी उस वैश्यवर्णके बहुतसे लोग वाणिज्यकार्यमें लिप्त हैं। बम्बई प्रदेशके पारसी, गुजराती, वनिया और राजपूतानेके जैन मारवाड़ी

लोग वाणिज्य व्यापारमें समाधिक उन्नत हैं। दाक्षिणात्य, मन्द्राज और मैसूर विभागमें लिङ्गायत लोग, करमण्डल उपकूलमें शेठी और कोमती लोग तथा उन्नतशील शूद्र, मारवाड़ी, शेठी और नाखुदा लोग देशीय वाणिज्यका विस्तार कर रहे हैं। बङ्गालके वाणिज्यको हस्तगत करने के लिए बहुतसे जैन मारवाड़ी मुर्शिदावादमें आ कर बसे हैं। ये उत्तरमें चीन सीमान्त और पूर्वमें खसिया पर्वत तक जा कर वहांके लोगोंके साथ स्वच्छन्दता पूर्वक व्यापार करते हैं। युक्तप्रदेशका वाणिज्यकेन्द्र बनियोंके हाथमें है। समग्र पञ्जावप्रदेशमें खत्री वा क्षत्री कहलानेवाले वैश्यसम्प्रदायने वाणिज्य विस्तार कर रखा है। देशीय वणिक्गण भारतसीमान्तवर्त्ती अफ़गानिस्तान, उसके निकटवर्त्ती पार्वत्य राज्य, काश्मीर लाडक, तिब्बत, नेपाल, चीन, आसाम सीमान्तस्थित पार्वत्य प्रदेश, उत्तर और निम्न ब्रह्म तथा श्याम, कम्बोडिया आदि दूर देशोंमें जा कर अपना अपना वाणिज्य करते हैं।

प्रत्येक नगरस्थित बाजारोंमें अथवा ग्रामोंकी हाट वगैरहमें स्थानीय एक एक छोटा वाणिज्य चला करता है। किसी किसी हाटमें कृषकोंके लाये हुए धान्यादि शस्योंका बहुत बड़ा कारोबार भी होता है। आड़तियां महाजन लोग उन स्थानोंमें रह कर खरीद बिक्री किया करते हैं। देवोद्देशसे मेला वा उत्सवादि होने पर उसमें भी कहीं कहीं इस प्रकारसे धान्यादि शस्य और गाय, बैल, घोड़ा आदि पशुओंका क्रयविक्रय होते देखा जाता है।

भारतमें रेल-पथके विस्तारके पहले रास्ता और नदियों द्वारा वाणिज्यकी वस्तुएं जगह जगह जाया आया करती थीं। कलकत्तासे उत्तर पश्चिम प्रदेशमें गमनकी सुविधाके लिए १६वीं शताब्दीमें अफ़गानके सम्राट् शेरशाहने वर्त्तमान ग्रेण्ड ट्रैङ्क रोड नामक सुविस्तृत मार्ग चलाया। बड़े लाट वेण्टिक बहादुरने उसका संस्कार कर वाणिज्यके मार्गका सुविस्तृत किया है। इस प्रकार प्रशस्त मार्गमेंसे कुछ सड़कें निकाल कर उत्तर पश्चिम-भारतके प्रधान प्रधान नगरोंमें मिला दी गई। इन्हीं मार्गोंसे किसी समय वणिक् लोग पेशावर तक जाया करते थे। और तो क्या, हिमालय, नीलगिरि और पश्चिमघाट आदि पर्वतमालाओंके ऊपरसे गिरिसङ्कटों हो कर मालसे लदी हुई बैलगड़ियां आया जाया करती थीं। अब भारतमें उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और मध्यभारत सर्वत्र ही रेलें हो गई हैं। उनमेंसे कुछ वणिक् सम्प्रदायके अधीन हैं। इसके सिवा अंग्रेज गवर्नमेण्ट और सामन्तराजों द्वारा परिचालित भी कई एक रेल हैं। उनमें इष्ट-इण्डिया, ग्रेटईष्टर्नबेङ्गाल, राजपूताना-मालवा, बम्बई बड़ोदा आदिका रेलपथ प्रधान हैं।

रेलवे वा रेलपथ देखो।

पहले लिख चुके हैं कि अनावृष्टि, अतिवृष्टि और ज्यादा रफ्तनी होने पर देशमें दुर्भिक्ष होता है। रेलें चल जाने से गमनागमन और वाणिज्य परिचालनके लिए विशेष सुविधा हुई है सही, पर देशवासीका दुःख और अशान्ति दिन दिन बढ़ती जाती है। जहां रेल वा गमनयोग्य मार्ग नहीं है कोई भी वणिक् वहां जा कर व्यापार करनेको तयार नहीं थे, परन्तु अब रेलके कारण सुविधा हो जानेसे उन स्थानोंकी सभी चीजोंको लाभार्थी वणिक् लोग इच्छानुसार विभिन्न स्थानोंमें भेज देते हैं। पहले वे इच्छानुसार उन चीजोंको इस्तेमाल करते थे, पर अब वे अपने ही देशमें पैदा होनेवाली चीजोंसे खुद ही वञ्चित रह जाते हैं और इस तरह बड़ा कष्ट पाते हैं। इस पर ऊपरसे यदि जलवायुकी गड़बड़ी हो जाय वा वर्षा न हो, तो ऐसी हालतमें दुर्भिक्ष होना स्वाभाविक ही है।

इतिहास देखनेसे मालूम होता है, कि १७६९-७० ई०में निम्न गाङ्गप्रदेश (बङ्गाल)में एक महामारी उपस्थित हुई थी। १७८०-१७८३ ई०में कोङ्कणराज्य हैदर द्वारा लुटनेके बाद वहां दुर्भिक्ष हुआ था। महामति बार्कने इसका ओजस्विनी भाषामें अच्छा चित्र खींचा है। १७८३-८४ ई०में बहुकालव्यापी अनावृष्टिके कारण उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें दुर्भिक्ष हुआ था। उस समय वारेन हेष्टिंग्स् बहादुरने दुर्भिक्षसे पीड़ित प्रजाओंके सहायतार्थ कई एक धान्य-शालाएं खुलवा दी थीं। उनमेंसे पटना-का गोला अब भी विद्यमान है। १८५४ ई०में और एक

बार अंग्रेजोंने उस गोलाको खोल कर दरिद्रोंकी उदर पूर्त्ति की थी। १७६०-६२ ई०में मन्द्राजप्रदेशमें दो वर्ष तक महामारीका प्रकोप रहा था। उसके वाद १८६० ६१ ई०में पुनः भीषणमूर्त्ति धारण कर दुर्भिक्षने युक्तप्रदेश में अपना प्रभुत्व जमाया था। उस समय दुर्भिक्षके कठोर प्रपीड़नसे प्रजावर्गको भारी कष्टोंका सामना करना पड़ा था। चारों ओर हाहाकार छा गया था और उसने भयानक रूप धारण किया था, जिसका आभास हमें तत्कालीन राज्यशासनकी शिथिलतासे विलक्षणरूपसे मिलता है *। १८६५-६६ ई०में पुनः उड़िष्याप्रदेशमें महादुर्भिक्ष आ धमका। उस समय लाखों उड़िष्यावासी भूखों मर गये। १८६४ ई०में, आश्विन मासके भीषण तूफान और वाढ़के कारण निम्न वङ्गाल वह गया था, जिससे स्थानीय शस्यभण्डारकी विशेष क्षति हुई थी। उसी समयसे धान्यादिकी तेजी शुरू होने लगी। इसके २।३ वर्ष वाद वं० सन् १२७४में तारीख २१ कार्तिक शुक्रवारके दिन "कार्तिककी आँधी" से वङ्गाल प्रदेश ऐसा तहस नहस हो गया कि तवसे धान्यादि शस्योंका मूल्य ही वढ़ गया। सुना जाता है, कि आश्विनकी आंधीसे पहले वङ्गालमें ॥।) आना मन चावल विकता था और कार्तिककी आंधीके वाद ८) १०) मन चावल विका था। उस समय वहुतेरे वंगवासी गरीव भाई भूखों मर गये थे और नाना प्रकारसे कष्ट सहे थे। १८६८-७० ई०में सूखा पड़ा जिससे युक्तप्रदेश और राजपूतानेमें दुर्भिक्षका सञ्चार हुआ। इसके वाद १७३-७४ ई०में विहार प्रान्तमें भयानक दुर्भिक्षने दर्शन दिये थे। उस समय गवर्नमेण्टने स्थानीय पीड़ित लोगोंके कष्ट दूर करनेका प्रयत्न किया था। इसके थोड़े ही दिन वाद १८७६ ई०में पुनः समग्र भारतमें एक दीर्घव्यापी दुर्भिक्षका सञ्चार हुआ। ऐसी लोमहर्षण दुर्घटना भारतके अदृष्टमें फिर कभी नहीं हुई। उस समय अनाहारसे और विसूचिका आदि रोगोंसे दक्षिणभारत प्रायः जनशून्य हो गया था। १८९८-९९ ई०में पुनः दक्षिणभारतमें दुर्भिक्षका प्रकोप दिखलाई दिया था। उस समय भारतके वड़े लाट लार्ड कर्जन और उनकी सहधर्मिणी महोदयाने कर्मक्षेत्रमें उपस्थित रह कर विभिन्न देशवासियोंसे अर्थ याचना की थी। उनकी प्रार्थनासे प्राप्त धनादिसे दीन दुःखो प्रजाकी उदरपूर्ति हुई थी। गवर्नमेण्टके राजकोषसे भी प्रजावर्गके दुःखनिवारणार्थ अर्थव्यय किया गया था। वर्तमान सदीमें १९०२, १९१०, १९२१, १९२४ ई०में भी जगह जगह अन्नकष्ट और जलकष्ट हो चुका है और उड़िष्या आदि प्रदेशोंमें प्रायः हुआ करता है।

शासन-प्रणाली।

अंग्रेजों द्वारा अधिकृत भारतवर्षका सुश्रृङ्खलतासे शासन करनेके लिए विलायतकी पार्लियामेंण्ट द्वारा पांच वर्षके लिए एक राजप्रतिनिधि नियुक्त किये जाते हैं जो गवर्नर जनरल कहलाते हैं। वे और उनकी मन्त्रिसभा भारतके लिए आवश्यक कानून वना कर शासन कार्य निष्पन्न करती है। किन्तु किसी किसी विषयमें वड़े लाट वा गवर्नर जनरलको मन्त्रिसभासे विना परामर्श लिये ही स्वमतानुसार कार्य करनेकी क्षमता प्राप्त है। उपरोक्त मन्त्रि सभामें वड़े लाट वहादुरके सिवा और भी छः सात सुदक्ष एवं विज्ञ अंग्रेज कर्मचारी हैं। निर्दिष्ट समयान्तरसे इस सभाका अधिवेशन हुआ करता है। भारतीय आईन और शासन-सम्वन्धी समस्त विचार तथा वैदेशिक राजनीतिकी आलोचना और मीमांसा करना इसका उद्देश है। इसके अलावा आईन वनानेके लिए पूर्वोक्त सभ्यों, वम्वई और मन्द्राजके शासनकर्ताओंके प्रतिनिधि, तथा कुछ मनोनीत देशीय और वैदेशिक सुयोग्य सभ्योंको ले कर एक सभा और भी संगठित है। जिस प्रदेशमें उस व्यवस्थापक सभाका अधिवेशन होता है, वहांके शासनकर्ता भी उस सभाके सभ्य समझे जाते हैं। इस सभाके कार्य विवरणको साधारण समुदाय भी जान सकता है, उसके लिए कोई वाधा नहीं।

* No useful lesson of administrative experience is to be learned from the long list of famines and scarcities which afflicted the several provinces of India at recurring periods during the first half of the present century. (W. W. Hunter 'India'.)

विचार-कार्यकी सुविधाके लिए वङ्गाल, विहार, वम्बई, मन्द्राज, मध्यप्रदेश, युक्तप्रदेश और पञ्जावमें "हाई-कोर्ट" नामके एक एक सर्वोच्च विचारालय हैं। उनमें प्रदेशीय फौजदारी और दीवानी मामले मुकदमोंका फैसला किया जाता है। इसके सिवा प्रत्येक जिलेमें गवर्नर और प्रादेशिक शासनकर्त्ताओंका अधीनस्त जज और सब-जज तथा प्रत्येक महकमामें २।३ मुन्सिफ विचार कार्यमें नियुक्त हैं।

समन्त्रिक गवर्नर-जनरल भारतके सर्वमयकर्त्ता होने पर भी वास्तवमें वे स्वयं समस्त कार्य नहीं करते। शासन-कार्यकी सुविधाके लिए अंगरेजों द्वारा अधिकृत भारत कई-एक प्रदेशोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक प्रदेशमें 'गवर्नर' वा 'चीफ कमीश्नर' उपाधि-धारी एक एक शासन-कर्त्ता नियुक्त हैं। वे 'गवर्नर-जनरल'के कर्तृत्वाधीन में रह कर अपने अपने प्रदेशका शासन करते हैं। गवर्नर पार्लियामेण्ट सभासे और चीफ कमिश्नर सिविल-सर्विससे मनोनीत हो कर भेजे जाते हैं।

शिल्प-जात द्रव्य।

अति प्राचीनकालसे भारतमें शिल्पकी चर्चा चली आ रही है। दो-तीन शताब्दीके पहले, भारतवर्ष शिल्प विद्यामें पृथिवीके अन्य किसी देशकी अपेक्षा हीन नहीं था परन्तु वर्त्तमानमें कोयलेके व्यवहार-प्रसङ्गसे प्राकृतिक-विज्ञानके अभिनव तत्त्वोंका आविष्कार होनेसे, यूरोप और अमेरिकाने शिल्प-विद्यामें परमोत्कर्ष प्राप्त किया है। भारतवर्ष अब किसी प्रकार भी उनकी समकक्षता नहीं कर सकता। पूर्वके गौरवको खोता हुआ क्रमशः पीछे हटता जाता है। वाष्प-परिचालित मशीनोंकी शक्तियोंके साथ दैहिक बलकी प्रतियोगिता नितान्त असम्भव जान, भारतके शिल्प-जीवियोंने हताश हो कर अपनी अपनी जातीय वृत्तियां छोड़ दी हैं और वे अब कृषि-विद्याका आश्रय ग्रहण कर रहे हैं।

बहु प्राचीन समयसे ही भारतवर्षमें सर्वोत्कृष्ट सूती वस्त्र तयार हुआ करते थे। पूर्व-पाश्चात्य वणिक्गण भारतमें आ कर इस देशके सूती वस्त्रादि खरीदते थे और उन्हें अपने अपने देशमें ले जा कर बेचते और लाभ उठाया करते थे। सूक्ष्मता, चाकचिक्य और निर्माणकौशलमें भारतीय वस्त्र आज भी जगत्में अतुलनीय है। परन्तु मैनचेष्टरके वस्त्र अति सुलभ मूल्यमें विकनेके कारण यह व्यवसाय दिनोंदिन श्रीहीन हो रहा है।

रेशमी वस्त्र प्रायः भारतके सर्व स्थानोंमें प्रचलित हैं। आसाम और ब्रह्मदेशमें प्रायः सभी लोग रेशमी वस्त्र पहना करते हैं। ये वस्त्र स्त्रियां तैयार करती हैं, ब्रह्मदेशमें चीनसे रेशम आती है। आसाम में रेशमके कीड़ोंसे रेशम बनती है। वङ्गालमें भी प्रायः सर्वत्र रेशमका प्रचार है। पञ्जाव और सिन्धु-प्रदेशके शहरोंमें तथा भागलपुर, आगरा, हैदरावाद और दाक्षिणात्यके अनेक स्थानोंमें सूत मिला कर रेशमी वस्त्र बनाये जाते हैं। बनारस, मुर्शिदाबाद, अहमदाबाद और त्रिचिनापल्लीमें बहुतायतसे विशुद्ध रेशमी वस्त्र तयार होते हैं। फिलहाल बम्बई आदि शहरोंमें भी रेशमी वस्त्र तयार करनेके लिए कोठियां स्थापित हुई हैं। बम्बईसे नाना प्रकारके रेशमी वस्त्र बन कर ब्रह्म देशमें विक्रयार्थ जाते हैं।

ढाका, पटना और दिल्लीमें मसलिन वस्त्रों पर रेशमी सूतसे फूल काढ़े जाते हैं। यहां सलमेका काम भी होता है। गुजरातमें चामरकी चीजोंपर सलमेका काम किया जाता है। शानदार उत्सवों पर सलमा सितारेके कामदार मखमलके चँदवे, हाथीके हौदे, घोड़ेके साज और छतरी आदिका व्यवहार होता है। ये सब गुलवर्गा और औरङ्गावादमें बनते हैं।

वङ्गालमें तथा भारतके उत्तरांशमें अनेक स्थानोंमें सतरंची और दरी तयार होती हैं। काश्मीर, पञ्जाव, सिन्धु आदि प्रदेशोंमें तथा आगरा, मिरजापुर, जबलपुर, वराङ्गल, मालावार और मछलीपत्तन आदि स्थानोंमें उत्कृष्ट पशमी गलीचे बनते हैं। काशी और मुर्शिदाबादमें मखमलके उमदा कार्पेट (गलीचा) बना करते हैं। तञ्जोर और सालममें रेशमके कार्पेट तयार होते हैं।

भारतके अनेक स्थानोंमें सोने और चाँदीके उत्कृष्ट गहने और बासन आदि तयार होते हैं। ढ़ाका और कटककी चांदीकी चीजोंका कारु-कार्य विशेष प्रसिद्ध है। त्रिचिनापल्ली, दिल्ली, बनारस आदिकी सोने और चाँदीकी जरी और साड़ी कारु-कार्यके लिए मशहूर

है। भारतवर्षकी प्राचीन राजधानियोंमें उत्कृष्ट लौह-निर्मित अस्त्र-शस्त्र प्रस्तुत होते हैं। तलवारोंकी म्यान भी यहां एकसे एक उमदा बनती हैं। पञ्जावके अनेक स्थानोंमें बन्दूक बनती हैं और बहुत जगह स्थानीय व्यवहारोपयोगी तांबे और पीतलके वासन भी तयार होते हैं। बनारसके तामे और पीतलके बरतन सबसे उत्तम होते हैं।

मुर्शिदाबादके खागराके बरतन बहुत मशहूर हैं। भारतके घण्टे बहुत ही सुन्दर और सुमधुर शब्दयुक्त होते हैं। सिंधु-प्रदेशमें अनेक प्रकारके सुन्दर मिट्टीके बरतन बनते हैं।

बौद्धधर्मके प्रभावकालमें भारतमें जो प्रस्तर-मूर्त्तियां और गुहामन्दिर खोदित हुए थे, उनके द्वारा भारतके शिल्प-नैपुण्यका विलक्षण परिचय मिलता है। भारतके अनेक स्थानोंमें काष्ठ-निर्मित गृहादिमें शिल्पकार्यका विलक्षण प्रभाव दीख पड़ता है। मुर्शिदाबाद, अमृतसर, काशी और त्रिवांकुरमें हाथीके दांतकी चीजें बनती हैं। कृष्णनगरके बने हुए मिट्टीके खिलौने बहुत ही खूबसूरत होते हैं।

खनिज पदार्थ।

भारतके प्रायः सर्वत्र लोहेकी खानें पाई जाती हैं। यहांका खनिज अपरिष्कृत लौह पृथ्वीके अन्यान्य स्थानोंमें प्राप्त लोहोंकी अपेक्षा बहुत विशुद्ध है। देशीय प्रथानुसार यहां खनिज धातुसे विशुद्ध धातु बनाई जाती है। परन्तु यह प्रथा बहुत ही व्ययसाध्य है। इसलिए भारतीय लौह विलायती लोहेके साथ प्रतियोगितामें अक्षम है। बङ्गालके अन्तर्गत रानीगंज और उसके आस-पास तथा मध्य प्रदेशके बरार और मोहपानीमें कोयलेकी खानें हैं। इनमें रानीगंजकी खान सबसे बड़ी है। रानीगञ्जकी कोयलेकी खानका आयतन ५०० माइल है। यहां छह यूरोपीय तथा अन्यान्य कम्पनियां भी व्यवसाय करती हैं। सन्थाल और बाउरी लोग यहांकी खानमें काम करते हैं। यूरोपीय कोयलेमें फी-सदी ३से ६ भाग तक परन्तु भारती कोयलेमें १४से २० भाग तक राख रहती है। देशी कोयलेमें बरोराका कोयला ही ऐसा है, जिसमें राख कमती होती है और वह करीब यूरोपीय कोयलेकी तरह साफ होता है।

करमण्डल उपकूलसे उड़िष्या पर्यन्त समुद्र तीरवर्ती स्थानोंमें समुद्रके पानीको जला कर नमक बनाया जाता है। राजपूतानाकी सांभर झीलके पानीसे भी नमक बनता है। पञ्जाब प्रदेशके पर्वतोंमें बहुतसी नमककी खानें हैं। दाक्षिणात्यमें स्थानीय नमक काममें लाया जाता है। उड़िष्यामें विलायती और सैन्धव लवणका प्रचार है। पूर्व-बङ्गमें विलायती नमक ही अधिकतासे प्रचलित है।

बिहारान्तर्गत तिरहुत, सारन, चम्पारन आदि जिलोंसे तथा युक्तप्रदेशके कानपुर, गाजीपुर, इलाहाबाद और बनारस जिलेसे प्रतिवर्ष १६०००० मन सोरा कलकत्तामें आता है। यहांसे यह सोरा विक्रयार्थ अमेरिका आदि देशोंको भेजा जाता है।

भारतके अनेक स्थानोंमें सोना भी पाया जाता है। पार्वत्य नदियोंसे भी अनेक स्थानमें सोना इकट्ठा किया जाता है। परन्तु इस तरीकेसे जो सोना प्राप्त किया जाता है, वह परिश्रमके मूल्यके बराबर भी नहीं होता। दार्जिलिंगसे पश्चिम कुमायूंके मध्यवर्ती हिमालय प्रदेशमें बहुतसी तांबेकी खानें हैं। उन खानोंसे नेपाली मजदूर लोग अग्नि-प्रस्तरोंको काट कर उससे विशुद्ध धातु बनाते हैं। छोटा-नागपुरके सिंहभूमि जिलेमें अपरिष्कृत तांबा बहुत मिलता है। पञ्जाबके सीमान्त प्रदेशमें सीसा उत्पन्न होता है। पञ्जाबके पार्वतीय सामन्त-राज्यमें तथा महिसुर और ब्रह्मदेशमें बहुत जगह मिट्टीके तेल (केरोसिन)-की खानें हैं। खासिया पहाड़का सिलहट-चूना तथा बांकुड़ाका कटनी चूना कलकत्ता तथा अन्यान्य स्थानोंमें बहुत जाता है। राजपूतानाके अन्तर्गत मकरानाके संगमरमर पत्थरसे आगरेका प्रसिद्ध ताज-महल बना है। बरण-कम्पनीकी रानीगंजकी टाली और अन्यान्य पत्थरकी चीजें काफी मशहूर हैं।

प्राचीनकालसे भारतवर्ष रत्नप्रसू नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध है। किसी समय गोलकुण्डाका हीरा अत्यन्त

आदरकी और मूल्यवान् वस्तु थी। परन्तु वर्तमानमें वहां हीरा दुष्प्राप्य है। कोई कोई कहते हैं कि, गोलकुण्डाका हीरा मन्द्राजके गञ्जाम और गोदावरी जिलेसे निजाम राज्यकी सीमा तक विस्तृत भूभागमें पाया जाता था। १८१८ ई० तक महानदी-तीरवर्ती सम्बलपुरमें हीरा मिलता था। आजकल सिर्फ एक पन्नाराज्यमें हीरा पाया जाता है।

प्राणि-तत्त्व।

पशुराज सिंह भारतके पशुओंमें प्रथम उल्लेखयोग्य है। वर्तमान समयमें गुजरातकी मरुभूमिमें यह अद्भुत जन्तु दिखाई देता है। परन्तु इन सिंहोंके केशर न होनेसे प्राणितत्त्ववित् पण्डितगण इन्हें वास्तविक सिंह नहीं मानते। हिंस्र पशुओंमें व्याघ्र प्रधान और अनिष्टकर है। प्रतिवर्ष भारतमें असंख्य मनुष्य और पशु इनके हाथसे अकालमें प्राण गंवाते हैं। हिमालयसे सुन्दरवन तक इस देशके प्रायः सर्व स्थानोंमें यह जन्तु देखनेमें आता है। यह करीब ८ हाथ तक लम्बा होता है। इसके सिवा, तरक्षु, चीता, धवल-वाघ, मेघवर्ण और संगमरमरके रंगका वन्यविड़ाल आदि व्याघ्र जातीय जन्तु भारतके जङ्गलोंमें पाये जाते हैं। तरक्ष व्याघ्रके समान प्राणि-हत्या करता है। इसकी लम्बाई करीब ५ हाथकी होती है। चीता दाक्षिणात्यमें ज्यादातर देखनेमें आता है। स्थानीय अधिवासिगण हरिणके शिकारके लिए इन्हें शिकारी कुत्तोंकी तरह शिक्षा दिया करते हैं। ये पृथिवीस्थ सम्पूर्ण पशुओंकी अपेक्षा द्रुतगामी होते हैं। लिरिया, सियार, और जंगली कुत्ते आदि कुक्कुर जातीय प्राणि भी उल्लेख योग्य हैं। लिरिया भेड़, बकरी आदिके छोटे छोटे बच्चोंका शिकार करता है और दाव मिलने पर छोटे छोटे लड़केको भी उठा ले जाता है। जंगली कुत्ते ही परच जानेके बाद शिकारी कुत्ते हो जाते हैं। इसके बाद देशके बड़े बड़े जंगलों और पहाड़ोंमें काले भालू भी पाये जाते हैं। वे चिउंटी, शहद और फल खा कर अपना गुजारा करते उत्तेजित होने पर कभी आदमियों पर भी आक्रमण कर बैठते हैं। पञ्जाबसे आसाम तक भारतके उत्तरांशमें भोटी भालू देखे जाते हैं।

भारतवर्षमें कुर्ग, मैसूर और आसामके पार्वतत्य उपत्यकामें हाथी रहते हैं। आजकल हाथीका रोजगार स्वयं गवर्नमेण्टने अपने हाथमें ले लिया है। गवर्नमेण्टकी आज्ञा विना कोई भी हाथी पकड़ या उसका शिकार नहीं कर सकता। इसके लिए १८७६ ई०का ६ठा आईन नामक एक स्वतन्त्र कानून बना हुआ है। यदि कोई गवर्नमेण्टकी अनुमतिके विना हाथीका शिकार करे या पकड़े तो उसे कानूनन पहली वार ५००) जुर्माना और दूसरी वार ५००) जुर्माना और ६ मासकी कैदकी सजा दी जाती है। भारतीय हस्ती लगभग ८ हाथ ऊंचा होता है। साधारणतः हाथी 'खेदा' बना कर पकड़ा जाता है। उपर्युक्त स्थान देख कर उसके चारों तरफ २।४ हाथ अन्तरसे बड़े बड़े साल वृक्ष गाड़ दिये जाते हैं। उन पेड़ोंके सहारे चारों तरफ मजबूत घिरावके बीचमें बहुतसे केलेके पेड़ गाड़ दिये जाते हैं; इस तरह खेदा बन जाने पर उसमें पाले हुए हाथीके जरिये जङ्गली हाथियोंको आवद्ध किया जाता है और फिर खानेकी कमीके कारण जब वे बहुत कमजोर हो जाते हैं तब पाले हुए हाथीकी सहायतासे उनके पैरोंमें सांकलें डाल दी जाती हैं। उसके बाद क्रमशः वे पालतू जैसे हो जाते हैं। भारतमें हस्तियोंकी संख्या दिनों दिन घटती ही जाती है।

भारतवर्षमें चार प्रकारके गण्डार (गैंड़े) देखनेमें आते हैं। एक जातीय गैंड़ा ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे तथा सुन्दरवनमें वास करते हैं। इनके कपाल पर एक एक खड्ग रहता है। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त स्थानोंमें यवद्वीपीय गैंड़े भी दिखलाई दिया करते हैं। सुमात्रा, चट्टग्राम और ब्रह्मदेशमें भी गैंड़े हैं। इन गैंड़ोंके कपाल पर दो दो खड्ग देखनेमें आते हैं।

जंगली सूअर भारतके सर्वत्र देखे जाते हैं। ये शस्यके लिए तो प्रधान अन्तराय-रूप हैं। वराहजातीय एक प्रकारका क्षुद्र जन्तु नेपालकी तराई और सिक्किममें पाया जाता है। कुछ वर्ष हुए इस जातिका एक सूअर आसाममें मारा गया था। सिन्धु और कच्छ प्रदेशकी मरुभूमिमें प्रायः वन्य गर्दभ मिलते हैं। हिमालयके जंगलमें अनेक जातीय जंगली भेड़ और बकरियां देखनेमें आती हैं। ये करीब १२००० फुट नीचे रहती

हैं। गुजरात और उड़िष्याके उपकूलमें कृष्ण मृगोंके झुण्डके झुण्ड विचरण करते हैं। इनके प्रत्येक सारझुण्ड-में एकसे अधिक नरमृग नहीं दीख पड़ता। स्थानीय हिन्दू लोग इनका मांस खाते हैं। हिन्दुस्तानमें गुजरातकी तरफ नोली गाय बहुत पायी जाती है। ये मृग-जातीय होने पर भी इसका गाय जैसा आकार है और इसीलिए हिन्दू लोग इसे नहीं मारते और न इसका मांस ही छूते हैं। इसके अतिरिक्त सांभर, बारसिंहा, चिताल आदि अनेक जातिके मृग भारतमें पाये जाते हैं। सांभर मृग धूसरवर्ण होता है। इसके सिंहकी तरह एक प्रकार का केशर भी है। बारसिंहा बंगाल और आसामके जङ्गलों-में रहता है। चिताल हरिण देखनेमें बड़ा खूबसूरत होता है। पूर्वघाट पर्वत, मध्यभारत, आसाम तथा ब्रह्मदेशमें गौर और गयाल आदि अनेक प्रकारकी जंगली गायें पायी जाती हैं। आसाम और ब्रह्मदेशके जंगली भैंसे बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके सिवा भारतके अन्यान्य स्थानों-में भी ये भैंसे देखे जाते हैं। भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र छोटे और बड़े बहुत तरहके चूहे पाये जाते हैं, जो जमीन-के नीचे बिल बना कर रहते है। एक तरहका चूहा नारि-यलके पेड़ पर भी रहता है।

भारतवर्ष अनेक प्रकारके सुन्दर और बलिष्ठ पक्षियों-का वासस्थान है। मयूर, तोता, मैना, काकातुआ (सफेद सुआ), चन्दना, कबूतर, कोयल, आदि पक्षी पाले जाते हैं। श्येन, शकुनि, गृद्ध और विहङ्गम भी मांस द्वारा जीवन धारण करते है। बगुला आदि मछलीका शिकार करते है। हंस और अन्यान्य जलचर पक्षियोंकी संख्या भी काफी है।

सरीसृप जन्तु भारतमें अधिकतासे देखे जाते हैं। सर्प, गोह, गिरगिट, छिपकली आदि जन्तु इसी श्रेणी-के अन्तर्गत हैं। वर्षाकालमें इस देशके सर्व स्थानोंमें, विशेषतः निम्न बंगालमें सपका अत्यन्त प्रादुर्भाव हुआ करता है। प्रति वर्ष बङ्गालमें सैकड़ों व्यक्ति सांपके काटे-से मर जाते हैं। विषधर सर्पोंमें गोक्षुरा, पातराज, शङ्खचूड़ आदि प्रधान हैं। सर्पके काटने पर 'आमोनिया' सेवन करनेसे बहुत कुछ उपशम होता है।

भारतवर्षीय समस्त जलाशयोंमें छोटी और बड़ी तरह तरहकी मछलियां पाई जाती है। 'रोहित' 'मृगोल' आदि मछली बड़ी होती हैं और 'श्रृङ्गी' 'चिंगड़ी' आदि छोटी। पार्वत्य नदियोंमें 'महशिर' वा 'महासोल' नाम-की एक प्रकारकी मछली देखनेमें आती है, जिसका वजन ३० सेर तक होता है। शुशुक भी मत्स्य जातीय जन्तु है। इस देशमें बहुत तरहके कीड़े मकोड़े भी पाये जाते हैं। मधुमक्षिका आदि कीड़ोंका निःस्वार्थ परिश्रम मनुष्यके हितके लिए होता है। मच्छर, चिउंटी, खटमल आदिका काटना बड़ा कष्टकर होता है। कई जातिके कीट और पतङ्ग नाना प्रकार विचित्र वर्णोंसे चित्रित होते हैं, जिन्हें देख कर विधाताके अद्भुत कौशलका पता लगता है।

उद्भिद्।

भारतवर्षमें अनेक तरहके उद्भिद् उत्पन्न होते हैं। उद्भिद् विद्याके प्रथानुसार श्रेणी-विभाग कर उनका नाम देनेसे ग्रन्थका कलेवर बहुत बढ़ जायगा। इसलिए इस देशके उद्भिदोंका स्थूल विवरण लिखा जाता है। कार्य्यकी सुविधाके लिए भारतवर्षको प्रधानतः चार भागों में विभक्त किया जाता है। जैसे—हिमालयप्रदेश, उत्तर-पश्चिमप्रदेश, पश्चिमभारत और आसाम। हिमालय प्रदेशमें चीनदेशीय वृक्ष और लता गुल्मादि उत्पन्न होते हैं। वहां यूरोपके देवदारुजातीय वृक्ष भी पाये जाते हैं। उत्तरपश्चिमविभागमें वृक्षादिकी संख्या भारतके अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा बहुत कम है। यहां फारस, अरब और मिस्रदेशीय वृक्षादि उत्पन्न होते हैं। सिंधु प्रदेशके अधिकांश वृक्ष अफरीकासे लाये हुए मालूम पड़ते हैं। पश्चिम भारतका खजूरका पेड़ प्रसिद्ध है। वहां नारियल और ताड़की खेती होती है; तथा तूण, साल, बीड़ा आदि बहुतायतसे पैदा होता है। आसाम-विभागमें मलय उपद्वीप-जात वृक्षलतादि उत्पन्न होते हैं।

शिक्षा-प्रणाली।

बहुत प्राचीन समयसे ही भारतमें विविध विद्याको आलोचना होती रही है। शास्त्रविद्या, शस्त्रविद्या, कला-विद्या, आदिमें भारतवासी हिन्दूगण उन्नतिके उच्चतम सोपानमें चढ़ चुके थे। जिस समय पाश्चात्य सुसभ्य जातियोंके पूर्वपुरुष स्वभावके अनावृत वक्षमें, जङ्गल और

पर्वतकी कन्दराओंमें जीव-जन्तुओंकी तरह वास करते थे, उस समय भारतवर्षमें आर्य सन्तानगण वेद, वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, दर्शन, स्मृति, न्याय, अलङ्कार नाटक और विज्ञान आदि नाना प्रकार शास्त्रोंमें पारदर्शिता प्राप्त कर सभ्य-जगत्‌में शीर्ष स्थानीय थे। गणित, ज्योतिष, संगीत, भास्कर्य आदि वैज्ञानिक, शिल्प और कलाविद्या ; तथा नालिकादि युद्धास्त्र निर्माणके विषयमें भी उनका विशेष नैपुण्य दीख पड़ता था।

अङ्गरेजों द्वारा अधिकृत वर्त्तमान भारतमें शिक्षा-विभाग अङ्गरेज गवर्मेण्ट द्वारा परिचालित होता है। सुप्राचीन वैदिक युगमें वेद और उपनिषेदादि ग्रंथ मुनि ऋषियोंके आयत्त थे। वे इच्छानुसार शिष्य परम्परामें उन के प्रकृतार्थकी आवृत्ति किया करते थे। मन्त्रादि सङ्गीत-के स्वरमें हृदयमें गूंथ देते थे। पीछे वेदज्ञ ऋषियोंके अभावमें उनके वंशधर ब्राह्मणोंने उन ग्रंथोंकी आलोचनाका भार अपने ऊपर लिया। वे स्वतः प्रवृत्त हो कर अध्यापना और अध्ययनकार्यमें व्रती हुए थे। विद्याशिक्षामात्र ब्राह्मणोंका ही कार्य था। वे जवानी अथवा हस्तलिखित पोथियोंकी सहायतासे विभिन्न देशागत छात्रमण्डलीको शिक्षा दिया करते थे। इस तरह वंशानुक्रमसे छात्रशिक्षकों द्वारा उक्त सुप्राचीन महामूल्य शास्त्रादि परिरक्षित और प्रचलित हुए। यद्यपि भारत बहुत दिनों तक नाना वैदेशिक आक्रमणोंसे प्रपीड़ित रहा, तो भी टोल, पाठशाला, मठ और सङ्घाराम आदि बहु प्रकारसे विद्याकी चर्चा यहां बनी ही रही है। बड़े बड़े ग्रामों और नगरोंमें तथा भद्र और उच्च वंशीय वणिकोंको देशीय भाषामें आवश्यकीय विषयकी शिक्षा दी जाती थी। मुसलमान राजाओंके राज्यमें राज्य और राजसभाके पण्डितोंको ऐतिहासिक ग्रन्थ-रचनाके लिए उत्साहित किया जाता था। प्राचीन हिंदुओंमे धारावाहिक इतिहास लिखनेकी कोई सुव्यवस्था न थी। पौराणिक उपाख्यानों तथा महाभारत रामायण आदिमें जिन राजवंशोंका इतिहास लिखा गया है। उसकी आनुषङ्गिक बहुत सी घटनाएं रूपक-वर्णित होनेसे राजोपाख्यान मूलतः अविश्वास्य हो गये हैं। परन्तु मुसलमानोंके प्राधान्यमें इतिहास लिखनेकी जो पद्धति चली है, वह समधिक उत्कर्षता-प्राप्त है, इसमें सन्देह नहीं।

ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीने पहले पहल भारतके विद्या-प्रसार सम्बन्धमें कोई चेष्टा नहीं की। वारेन हेष्टिंग्स्‌ने बङ्गालके शासनकर्तृत्व-कालमें कलकत्ता-मदरसा-कालेजको स्थापना कर अपनी उदारनीतिका परिचय दिया था। लार्ड आमहर्स्टके शासनकालमें (१८२४ ई०में) कलकत्ताके संस्कृत कालेजकी स्थापना हुई। १८३५ ई०में बेण्टिकके समयमें कलकत्ता-मेडिकल-कालेज स्थापित हुआ। १७९१ ई०में अङ्गरेजोंकी कृपासे बनारसमें आगरा-कालेज प्रतिष्ठित होने पर उत्तरपश्चिमप्रदेशमें पाश्चात्य धर्म-याजकोंने स्वधर्म-प्रचारके लिए देशीय भाषाको शिक्षा प्राप्त कर तथा उन भाषाओंमें बहुतसे ग्रंथ रच कर साधारणमें प्रचार किया था। कलकत्ताके पार्श्ववर्ती श्रीरामपुर ग्राममें 'वैप्टिष्ट मिशन' सम्प्रदायने विद्याशिक्षाको उन्नतिके लिए पुस्तकादि मुद्रित की थीं। कैरो, मर्समैन आदि श्रीरामपुरके मुद्रण-यन्त्रोंमें कृत्तिवासी रामायण और 'समाचार-चन्द्रिका' नामक साप्ताहिक पत्र छपा कर विद्याशिक्षाके प्रसारकी बहुत कुछ वृद्धि कर गये हैं। विद्योन्नतिके विषयमें मिसनरियोंके प्रबल आग्रहको देख कर गवर्मेण्टने स्वतः प्रवृत्त हो कर शिक्षाविभागकी उन्नतिकी ओर ध्यान दिया। बहुत वादानुवादके बाद 'भारतगवर्मेण्ट १८५४ ई०में' शिक्षा विस्तारके लिए बद्धपरिकर हुई। उस समय कलकत्ता, बम्बई और मन्द्राजमें तीन विश्वविद्यालय स्थापित हुए। अङ्गरेजी शिक्षाके लिए प्रत्येक जिलेमें एक एक स्कूल खोला गया और बङ्गला विद्यालयोंकी आर्थिक सहायता की गई। शिक्षाकार्य सुचारुरूपसे चले इसके लिए प्रत्येक विभागमें एक एक डिरेक्टर और कई परिदर्शक नियुक्त किये गये। बादमें विश्वविद्यालयके परीक्षोत्तीर्ण छात्रोंको उनकी योग्यताके अनुसार निर्दिष्ट समयके लिए कुछ छात्रवृत्तियां देनेकी प्रथा भी प्रचलित हुई। इन छात्रवृत्तियोंके बल पर दरिद्र छात्रोंको अनायास बहु व्ययसाध्य अंग्रेजी शिक्षालाभका सुयोग प्राप्त हुआ है।

इतिहास।

भारतका आदि इतिहास अतीत कालके गंभीर गह्वरमें निहित है। भारतके आदि ग्रंथ वेद और रामायण महाभारतादि नाना पुराणोंसे जो आदि वृत्तान्त प्राप्त होता है, वह इतना रूपक और कल्पनामिश्रित है कि, उससे निखालिस सत्य निकाल लेना एक तरहसे दुःसाध्य है।

कुछ भी हो; क्या देशीय और क्या पाश्चात्य, वर्तमान सभी पुराविद्गण एक वाक्यसे स्वीकार करते हैं कि, हमारी ऋक्संहिता जगत्का आदि ग्रन्थ है। इस आदि ग्रन्थसे हम समझ सकते हैं कि, पञ्चनद-तीरवासी वैदिक आर्यगणोंने जब अन्तर्भारतमें प्रवेश किया था, तब उनके साथ नाना स्थानोंमें कृष्णवर्ण दास वा दस्यु जातिका युद्ध विग्रह चल रहा था।

आर्योंके पूर्ववर्ती भारतवासी।---वही कृष्णवर्ण दास वा दस्युगण हो भारतके आदिम अधिवासी गिने जाते हैं। ऋक्संहितामें ये दस्यु वा दासगण 'अनास' अर्थात् नासिका रहित, अक्रतु वा यज्ञहीन, ग्रथी अर्थात् जल्पक, 'मृध्रवाच्' हिंसितवाक्, श्रद्धाहीन और बुद्धिशून्य इत्यादि विशेषणोंसे विशेषित किये गये है। (ऋक् ५।२९।१०, ७।६।३) ये लोग याग यज्ञादिको नहीं मानते थे, न करते थे, आर्योंसे इनकी सम्पूर्ण भिन्न प्रकृति थी, भिन्न कार्य थे। आर्यगण उन्हें मनुष्योंमें नहीं गिनते थे। (ऋक् १०।२२।७-८) तथापि उन लोगोंने बहुतसे ग्राम नगरादि बसाये थे, तथा उनके प्रयत्नसे अनेक दुर्भेद्य दुर्ग बने थे। वृत्र, नमुची, शम्बर, वल आदि दास वा असुरगण उस आदिम जातिके अधिनायक थे। ऋक्संहितामें लिखा है कि, आर्योंके मुख्य देवता इन्द्रने उस दस्यु वा दास जातिके प्रभावको नष्ट करके उन्हें अपने वशमें किया था। (ऋक् ६।१८।३) आर्योंके प्रभावसे दस्युगण पराजित हो कर कोई वन जङ्गलमें दूर देशोंको भाग गये थे, कोई आर्योंकी अधीनताको स्वीकार कर शूद्ररूपसे आर्यसमाजभुक्त हुए थे। अन्यव्रत नामसे उनका वर्णन किया गया है। उनका आचार-व्यवहार आर्यजातिसे सम्पूर्ण भिन्न था। (ऋक् ८।५६।१०) इसीलिए छान्दोग्योपनिषदमें लिखा है कि—"आज भी जो व्यक्ति दीनहीन, श्रद्धाहीन वा यज्ञहीन है, उसे असुर वा असुरधर्मा कहा जाता है। असुरोंका यही सनातनधर्म है कि, वे शवदेहको अर्थ, वसन और अलङ्कारोंसे सजाया करते हैं। वे समझते हैं, कि इस प्रकारके कार्य करनेसे ही इहलोकका पुरुषार्थ सिद्ध हो जाता है*।" छान्दोग्योपनिषद्में असुर वा दासजातिका विशेष लक्षण जैसा लिखा है, वर्त्तमान पार्वत्य वा वन्य कोल, भील, शबर आदि अनार्य जातिके आचार व्यवहारमें उसका आभास पाया जाता है। आज भी आदिम जातियोंके मृतोद्देशसे निर्मित प्रस्तर-स्तम्भोंको खोद कर देखनेसे उसके नीचे पीतल तांबे वा सोनेके एक प्रकारके अलङ्कार पाये जाते हैं। स्मरणातीत कालसे भारतको आदिम जातियोंके दुर्भेद्य गिरि-गह्वरोंमें आश्रय लेने पर भी, वे इस प्राचीन प्रथाको न छोड़ सकी थीं। दुर्भेद्य पर्वत वा अरण्योंमें वास और नगरवासी सुसभ्य जातियोंसे संस्रव न रहनेसे इनका आदिभाव अब भी सम्पूर्णरूपसे परिवर्त्तित नहीं हुआ। वराहमिहिरने पर्णशबरके नामसे जिस प्राचीन जातिका उल्लेख किया है, उसकी 'पतुआ' नामक शाखा अब तक केवल पेड़के पत्तोंसे ही अपनी लज्जा-रक्षा करती थी। १८७२ ई०में अंग्रेज-सरकारकी कोशिशसे उन लोगोंने पहले पहल कपड़ा पहनना सीखा है। इस पार्वत्य वा वन्य-जातिकी शाखाएं हिमालयसे नीलगिरि तक भारतके प्रायः समस्त पार्वत्यप्रदेशोंमें थोड़ी बहुत संख्यामें वास करती हैं। निर्जन गिरि-गह्वरोंमें उनकी दुर्भेद्य दुर्गरूपमें रक्षा होती रहनेसे और वैदेशिक संस्रव न होनेसे हजारों वर्षोंसे वे एक रीतिसे उसी तरह बस रही हैं। अब पाश्चात्य प्रभावके विस्तारके साथ-साथ उनकी भी अवस्थाओंमें परिवर्तन हो रहा है और कालान्तरमें सभ्य जातिमें इनकी गिनती होने लगेगी इसके चिह्न भी इनमें दिखलाई दे रहे हैं।

ऋक्संहितामें उस आदिम जातिकी सभ्यताका परि-

* "तस्मादप्यद्येह अददानं अश्रद्दधानं अयजमानं आहुरासुरो बतेति। असुराणां ह्येषोपनिषत् प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेन अलंकारेणेति संस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते।

(छान्दोग्योपनिषद् ८।८।५)

चय मिलता है। वह सभ्यता कहां गई ? सम्भव है, आर्यजातिके प्रभावसे वह जाति दास्यरूपमें गण्य होनेसे, दासत्वके सिवा अन्य कार्यमें अधिकार न होनेसे तथा अधिकतासे जंगलोंमें वास होनेसे, उन्नत न हो सकी। आर्यसमाजका प्रधान अङ्ग चातुर्वर्ण्य-विभाग इनमें प्रचलित न था, किन्तु ये सभी एकता सूत्रमें आबद्ध थे। इनके सदृश एकप्राणता बहुतसी उच्च जातियोंमें भी नहीं पाई जाती। अङ्गामी नागा, जुअङ्गा, कोल आदि शब्दोंमें विस्तृत विवरण देखो।

आर्योंका प्रभाव।—वैदिक ज्योतिषाङ्गकी आलोचनासे स्थूल स्थिर किया गया है कि, ईसाके प्रायः ६००० वर्ष पहलेसे ही वैदिक आर्यसभ्यताने विस्तार प्राप्त किया था। इसलिए ८ हजारसे चली आई पञ्चनदकी आर्यसभ्यता क्रमशः ब्रह्मावर्त्तमें विस्तृत हुई थी। पञ्चनदके आर्यगण पहले अग्नि, इन्द्र, वायु आदिकी उपासना करते थे।

'आर्य' और 'वेद' देखो।

सरस्वती और दृशद्वती-प्रवाहित ब्रह्मर्षिदेश ही भारतमें भावी आर्य-सभ्यताके विस्तारका आदि स्थान है, यह बात बहुतोंने स्वीकार की है। वेद-संहिताके प्रचारके समय आर्य-सभ्यता इस ब्रह्मावर्त वा ब्रह्मर्षि-देश तक सीमाबद्ध थी। यहीं पर आर्य ऋषियोंने वेदोंकी संहिताएं गाई थीं और यजुर्वेदका कर्मकाण्ड यहीं पर अनुष्ठित होता था। यहीं पर रुद्रकी पूजा प्रवर्त्तित थी। वेदके ब्राह्मण और आदि आरण्यकोंके प्रचारके समय आर्यजाति मगध अतिक्रम कर सदानीराके किनारे पहुंची थी। उसी समय शवर, पुण्ड्र, अन्ध्र, मुतिव आदि अनार्यजातियोंके साथ आर्य-संस्रव हुआ था और तो क्या, ऐतरेय ब्राह्मणमें उन जातियोंको विश्वामित्रकी सन्तान कहा गया है। वैदिकसूत्र-ग्रंथकी रचनाके समय आर्यगण दाक्षिणात्यमें प्रवेश कर रहे थे।

भारतीय आर्यसमाजका प्रधान विशेषत्व चातुर्वर्ण्य विभाग है। वर्तमान पाश्चात्य विद्वानोंका विश्वास है कि आदि वैदिक युगमें जिस समय आर्यगण पञ्चनदमें वास करते थे, उस समय उनमें चातुर्वर्ण्य विभाग संगठित नहीं था। परन्तु यह मत अब समीचीन नहीं समझा जाता। और सत्य भी है, क्योंकि किसी समाजकी सर्वादिम अवस्थामें जाति-विभाग सम्भव-पर नहीं हो सकता। परन्तु सभ्यता-विस्तारके साथ सभी जातियोंमें अवस्थानुसार उच्च नीच भेद प्रथा अवश्यम्भावी है, अन्यथा किसी भी समाजकी रक्षा नहीं हो सकती। इस प्रकारका उच्च नीच विभाग केवल भारतीय आर्योंमें ही नहीं, किन्तु जो जातियां वर्तमानमें सभ्य समझी जाती हैं, उन सवोंमें भी परोक्ष वा प्रत्यक्षरूपमें प्रचलित है। जब वैदिक आर्यगण पञ्चनदमें वास करते थे उस समय वे सभ्यतामें बहुत उन्नत हो गये थे। यह बात ऋक्संहितासे स्पष्ट ज्ञात होती है और इस ऋक्संहितामें ही जब चातुर्वर्ण्यका प्रसंग है, तो ऐसी दशामें निःसन्देह यह कहा जा सकता है, कि आर्य समाजमें बहुत पहलेसे ही वर्णविभाग संगठित था। 'आर्य' और ऋकसंहिता देखो।

पुराविद्गण सभी इसी बातको मानते हैं कि मिसरकी सभ्यता ही जगत्में सर्वादिम है। किंतु वहां पुरोहित और राजन्यका अधिकार एक होके हाथमें न्यस्त होनेसे शक्तिका अपलाप हुआ और इसीलिए मिसरीय सभ्यता स्थायी न रह सकी। परन्तु आर्यगण पुरोहित और राजन्यका अधिकार विभिन्न हस्तोंमें रख कर सभ्यताके साथ स्थायी शक्ति-विस्तारमें समर्थ हुए, यही आर्योंका विशेषत्व है।

जो लोग वेदके मन्त्रों द्वारा इन्द्रादि वैदिक देवोंकी स्तुति करते थे वा वेद-मंत्रोंका प्रकाश करते थे वे वा उनके अपत्यगण ही वेदमें 'ब्राह्मण' नामसे अभिहित हुए हैं। और जो अपने बाहुबलसे राज्य-विस्तारमें समर्थ हुए थे तथा वैदिक स्तोताओंकी रक्षामें तत्पर थे, वे तथा उनके अनुगामी वीरगण 'क्षत्रिय' नामसे परिचित हुए और उनके अनुगत प्रजा-साधारण 'वैश्य' कहलाये; यह त्रिवर्ण ही वैदिक आर्यसमाजकी शक्ति है।* केवल भारतीय आर्य ही क्यों, सुदूर उत्तरमद्र, उत्तरपारस्य और शाकद्वीपीय आर्योंमें भी यह त्रिवर्ण ही समाजकी शक्तिरूपमें निर्दिष्ट हुआ है। पारसिकोंके आदि धर्मशास्त्र 'जन्द-अवस्था'से इसका प्रमाण मिलता

* "बङ्गेर जातीय इतिहास" नामक बंगला पुस्तका १म भाग, प्रथमांश, २७-२९ पृष्ठ देखो।

है। विजित अनार्यों और समाजभ्रष्ट कुछ अनधिकारी नीच आर्यों को ले कर ही शूद्रसमाजकी सृष्टि है। इस शूद्रसमाजसे पार्थक्य रखनेके लिए ही प्रथम त्रिवर्ण को 'द्विज' कहा गया है और द्विजातिकी सेवा ही शूद्रका एकमात्र कर्त्तव्य बतलाया गया है। क्रमशः भारतवर्षमें आर्य-सभ्यताका विस्तार, विभिन्न जातियोंके संस्रवसे नाना मिश्र और सङ्कर जातियोंकी उत्पत्ति तथा नाना विप्लवोंके कारण धीरे धीरे भारतीय आर्यगणोंने दृढ़तर चातुर्वर्ण्य समाज संगठित किया। गृह्यसूत्र और नाना स्मृति ग्रन्थोंमें इसके प्रमाण विद्यमान हैं। हजारों वर्ष बीत चुके हैं, फिर भी नाना विधर्मियोंके प्रबल अनुक्रमणोंसे भी उस सुदृढ़ भित्तिका नाश नहीं हुआ है। गृह्यसूत्र और स्मृतियोंमें चातुर्वर्ण्यका जैसा कुछ विधिनिषेधादि वर्णित है, आज भी हिन्दू समाज उसके अनुसार चल रहा है।

गृह्यसूत्र और धर्मशास्त्रोंका जिस समय प्रचार हुआ था, उस समय ब्राह्मणगण केवल वेदस्तोता वा सामान्य पुरोहित रूपमें नहीं गिने जाते थे, बल्कि उस समय उनका राजा और प्रजा तथा अन्यान्य सभी जातियों पर प्राधान्य विस्तृत था। इसी समयमें कम्बोज, शक आदि भारतवहिर्वासी क्षत्रियजाति 'वृषल' नामसे परिचित हुई थी। इस ब्राह्मण प्राधान्यकालमें ही किसी किसी क्षत्रियने ब्राह्मण होनेकी चेष्टा की थी, यहां तक कि कोई कोई ब्राह्मण नामसे भी परिगणित हुए थे, जिनमें विश्वामित्र और देवापिका नाम उल्लेख योग्य है। इस ब्राह्मण-प्राधान्यके चरमकालमें परशुरामका अवतार कीर्त्तित हुआ था। बहुत समय पीछे क्षत्रियाभ्युदयका सूत्रपात हुआ; उस समय रामचन्द्रके हाथसे परशुरामकी पराजय विघोषित हुई। परन्तु ब्राह्मणोंका सर्वप्रधान सम्मान ज्योंका त्यों बना रहा। उस समय यह स्थिर हो गया था कि ब्राह्मणोंकी ज्ञानचर्चा और वैदिक कर्मानुष्ठान ही प्रधान धर्म है, धर्माचरण द्वारा वे राजाधिराजोंकी अपेक्षा अधिक सम्मानित होंगे। कुरु पाण्डवोंके समयमें क्षत्रिय-प्रभावका चरमोत्कर्ष देखा गया था। रामायणसे ज्ञात होता है, कि राजाकी मृत्युके बाद कुल-पुरोहित राज्य अधिकार करते थे और वे ही बादमें उपयुक्त अधिकारीको राज्य शासन करने देते थे। परन्तु महाभारतके समय राजाकी मृत्युके बाद कुल-पुरोहितका वह अधिकार नहीं था। महाभारतके कर्त्ताने "वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानः" (आदिपर्व १३०।१९) कह कर क्षत्रियोंके श्रेष्ठत्वकी घोषणा की है। इसके बाद कुरुक्षेत्रके कुलक्षयकर महासमरसे ही क्षत्रिय-प्रभाव खर्व होने लगा और सीमान्त प्रदेशसे अन्य दुर्द्धर्ष जातियां भी भारतमें प्रवेश करने लगी। उसी क्षत्रिय-प्रभावके ह्रासके साथ साथ वैदिक इन्द्रादि देवगण भी पूर्वसम्मान लाभसे वञ्चित हुए। उस समय पूर्व और दक्षिण भारतमें ब्राह्मण-प्रभाव विस्तृत हो चुका था, तब भी उन प्रदेशोंमें अनार्यों का प्रभाव सर्वथा तिरोहित न हुआ था। पञ्चनद और ब्रह्मर्षिप्रदेशकी प्रशान्त प्रकृतिने पूर्व भारतमें विभीषिकामयी मूर्त्ति धारण की थी। गङ्गाके भीम-प्रवाहमें जनपदोंके नित्य अवस्था परिवर्त्तन, नित्य तूफानोंका उत्पीड़न आदि प्रकृति विपर्य्यय तथा देश भेदसे मानवोंकी अवस्था और आचार पार्थक्यको पर्यालोचना करके पौराणिक ब्राह्मणगण ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिमूर्त्तियोंकी कल्पना और उसके साथ ही देश-काल-पात्रोपयोगी नाना देव-देवियोंकी प्रतिमाकी उपयुक्त पूजाका प्रचार करने लगे। उस समय एक ओर जैसे सरल निम्न श्रेणीके उपासकोंके लिए 'नाना मूर्त्ति-पूजा प्रचलित हो रही थी, दूसरी ओर वैसे ही परमज्ञानी आर्य ब्राह्मणोंमें ज्ञानचेष्टाके साथ नाना दार्शनिक तत्त्व उद्भावित हो रहे थे। जिस समय यूरोपीय जगत् एक प्रकारकी वन्य सुषुप्तिमें निस्तब्ध था, उस समय भारतीय ब्राह्मणोंके हृदयमें उच्चतर दार्शनिकतत्त्वविकाशका होना कम गौरवका विषय नहीं है। और तो क्या, उसके शताब्दियों बाद, ईसासे ३ शताब्दी पहले यवनदूत मेगस्थनिस् भी ब्राह्मणोंको निर्जन उपवनोंमें जन्म मृत्युकी आलोचनामें लिप्त देख कर चमत्कृत हुआ था। वास्तविक आत्मसंयम और आत्मोत्कर्ष प्राप्तिका अनुराग ब्राह्मणोंमें जैसा प्रबल था, जगत्के इतिहासमें कहीं भी वैसा निदर्शन नहीं मिलता। दर्शन, वेदान्त, सांख्य आदि देखो।

आत्मसंयम और आत्मज्ञानके प्रभावसे ब्राह्मणगण जिस भाषातत्त्व और जिस विज्ञानचिकित्सा-शास्त्रादिका प्रचार कर गये हैं, वर्त्तमान सभ्य-जगत् विस्मयोत्फुल्ल हृदयसे

उसकी भूयसी प्रशंसा कर रहा है। विज्ञान, भाषा, पाणिनि, आयुर्वेद आदि शब्द देखो। इन्हीं भारतीय आर्य ब्राह्मणोंने अङ्कशास्त्र और आयुर्वेदादि नाना शास्त्रोंका उद्भावन कर, उनके पन्थानुसरणकारी पाश्चात्य गणोंको उन शास्त्रोंने धन्य बना दिया है।

विविध दर्शनोंकी सृष्टिके साथ साथ नाना मतों और नाना सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति होने लगी। प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदायने अपने अपने मतोंके प्राधान्यस्थापन के लिए प्रयत्न किया। परस्परको दार्शनिक प्रतिद्वन्द्विता में ब्राह्मण समाजकी एकताग्रन्थि शिथिल होने लगी। इस प्रकार अन्तर्विप्लवसे ब्राह्मणशक्ति खर्व हो गई। पण्डित समाजकी ऐसी विशृङ्खलताको देख कर क्षत्रिय समाज प्राधान्य-लाभकी चेष्टा करने लगा। उसी चेष्टाके फलसे कई एक शताब्दीके बाद जैन और बौद्धधर्मका प्रसार हुआ।

जैन और बौद्ध-प्रभाव।—ईसाके ७७७ वर्ष पहले तेईसवें जैनतीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथ निर्वाणको प्राप्त हुए। उन्होंने जिस चातुर्याम धर्मका प्रचार किया उसको ले कर ब्राह्मणसमाजमें महाविप्लव उपस्थित हो गया। यों तो छन्दोग्योपनिषद्के समयसे ही क्षत्रियगण ब्रह्मविद्यामें श्रेष्ठ हो चुके थे, यहां तक कि बहुतसे विज्ञ ब्राह्मण भी इस विद्याके लिए क्षत्रियोंके पास पहुंचा करते थे, उपनिषदादिमें इसका प्रमाण मिलता है। परन्तु महाभारतीय युगमें क्षत्रियोंकी पूर्ववत् ज्ञानचर्या एक तरहसे उठ-सी गई थी। महाभारतसे मालूम होता है कि क्षत्रियगण प्रधानतः हस्तिसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र, धनुर्वेद आदिकी शिक्षा ग्रहण करते थे। (महाभारत २।५।११०, १२०) परन्तु ब्राह्मणसमाजमें दार्शनिक संग्राम छिड़ने पर, उस आन्दोलनके समय क्षत्रियोंने भी ज्ञानचर्चाकी ओर ध्यान दिया। प्रारम्भमें ब्राह्मणसमाजके प्राधान्यकी अवहेलना कर मस्तक उठानेका साहस किसीको भी न हुआ। श्रीपार्श्वनाथने ही सर्वप्रथम ब्राह्मण प्राधान्यको अस्वीकार किया ; तथा कर्म और ज्ञानके प्रभावसे ही मानव-समाज श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र ही मोक्षका मार्ग है, ऐसा उपदेश दिया।* परन्तु बहु-संख्यक मानव-समाज उनके मतानुवर्ती हो गया, फिर भी उससे ब्राह्मणसमाजकी विशेष क्षति नहीं हुई थी।

इसके दो शताब्दी बाद महावीर और सिद्धार्थ नामके दो क्षत्रिय-कुमारोंने अपने अपरिसीम ज्ञान और तपके प्रभावसे, क्रमशः जैन और बौद्धधर्मका प्राधान्य स्थापन किया और वे सफलकाम हुए।

'जैनधर्म' 'महावीर' 'बौद्ध' आदि शब्द देखो।

जैन तीर्थङ्कर महावीरस्वामी और बौद्ध शाक्यसिंह, ये दोनों ही प्रायः समसामयिक थे। ईसाके ५२७ वर्ष पहले महावीर स्वामी मोक्ष गये हैं और ईसाके ५४२ वर्ष पहले शाक्यबुद्धने निर्वाणलाभ किया है। दोनों ही महापुरुष ब्राह्मणवर्णसे ले कर चाण्डाल तक सबको समान दृष्टिसे देखते थे। दोनों स्वार्थत्याग जीवोंके प्रति अनुराग, सर्वसाधारणकी मुक्तिकामना और विशुद्ध धर्मोपदेश आदि गुणों पर मुग्ध हो कर सभी जातिके लोग झुण्डके झुण्ड आ कर उनके पैरों पड़ने लगे और जैन तथा बौद्धधर्मके धर्मवीरोंके प्रभावसे ब्राह्मणादि अनेक द्विजातियोंने भी वैदिक मार्गको छोड़ दिया था। जीवहिंसाकी प्रवृत्ति उनके हृदयसे धीरे धीरे दूर हो गई और परोक्षमें सभी क्षत्रिय-प्राधान्यको स्वीकार करनेके लिए बाध्य हुए। उससे पहले शूद्रको किसी शास्त्रमें अधिकार न था, किन्तु अब शूद्रोंको भी ज्ञानचर्चा और धर्मचिन्ता करनेका अवसर मिला। इस समयमें, उन्हें अपेक्षाकृत उच्च धर्माधिकार प्राप्त होनेसे वे कट्टर पक्षपाती हो गये और जिस प्रकारसे उनका धर्म निर्विरोधसे भारत भूमि पर प्रचारित हो, उसके लिए सभी विशेष प्रयत्नवान् हुए।†

* प्राचीन जैनग्रंथोंमें लिखा है, कि श्रीपार्श्वनाथसे पहले भी २२ तीर्थङ्कर और हो चुके थे। उन्होंने भी जैनधर्मका समधिक प्रचार किया था।

† महावीरस्वामीके मतानुवर्त्ती जैनोंका कहना है कि, क्षत्रियोंसे ही ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति है। यही कारण है कि जहां क्षत्रियोंका अशौच ५ दिनका माना है, वहां ब्राह्मणोंका १० दिनका और वैश्योंका १२ दिनका माना गया है। यथा—

"क्षत्रियेषु कुमारेषु येऽणुव्रतपरायणाः।
सृष्टास्ते ब्राह्मणाः पश्चाद्भरतेनान्त्यवेधसा ॥४।१८॥

जैनधर्म और बौद्धधर्ममें क्या पार्थक्य है, इसका परिज्ञान साधारण समुदायको नहीं है। पहले लोग मूलतः दोनोंको एकसा ही समझते थे। किन्तु दोनोंके धर्ममतको गवेषणापूर्वक देखनेसे उभय धर्मोंमें बहुत कुछ पार्थक्य मालूम होता है। यद्यपि लक्ष्य दोनोंका "मोक्ष" ही है, तथापि उसकी प्राप्तिके उपाय स्वरूप क्रिया-काण्ड और श्रद्धान-विषयमें बहुत कुछ अन्तर है। जैनधर्म आत्माके बहुत्वको मानता है, उसके मतसे आत्मा अनंतानन्त हैं, किन्तु बौद्धधर्म आत्माके बहुत्वको स्वीकार नहीं करता। विशेष विवरण 'जैनधर्म' और 'बौद्ध' शब्दमें देखना चाहिये।

साधारण समुदायके समझने और विचारनेमें सुविधाके लिए इन महापुरुषोंने देश-प्रचलित भाषामें जैन और बौद्धधर्मका प्रचार किया; तथा अपने शिष्योंको भी भविष्यमें तदनुवर्त्ती होनेके लिए आदेश दिया। यही कारण है कि गाथा और पालिभाषामें प्राचीन बौद्धग्रन्थ तथा मागधी और अर्द्धमागधी भाषामें प्राचीनतम जैन-ग्रन्थ लिपिबद्ध हुए हैं। पुरातत्त्वविदोंने बहुत आलोचनाके बाद स्थिर किया है कि, प्राचीनतम जैन और बौद्धधर्मशास्त्र ईसाके ३ से ४ शताब्दी पहले सङ्कलित हुए हैं। जैनधर्म, प्रियदर्शी और बौद्ध देखो।

क्षत्रियाणां तदाशौचमिष्यते पञ्च वासरान् ॥ ४।३६।
दशाहं ब्राह्मणानां स्याद्द्वादशाहं विशां भवेत्।
शूद्राणामर्द्धमासं स्यान्नैतन्नृपतस्विनोः ॥ ४।४० ॥"
(चन्द्रप्रभसूरिकृत जिनसंहिता)

परन्तु यह श्वेताम्बराचार्यका मत है। प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्रीमज्जिनसेनस्वामीने लिखा है कि, जहां ब्राह्मणोंके लिए १० दिनका विधान है, वहां क्षत्रियोंके लिए २ और वैश्योंके लिए ११ दिन अशौच कहा गया है।

इसके सिवा ब्राह्मणोंके पुराणोंमें ब्राह्मण परशुराम द्वारा इक्कीस बार पृथिवी निःक्षत्रिय होनेकी कथा है, उसके उत्तरमें क्षत्रियोंके प्राधान्य-कालमें सहस्रार्जुनके पुत्र सुभौम द्वारा इक्कीस बार पृथिवी अब्राह्मण करनेका प्रसङ्ग लिखनेमें भी श्वेताम्बर जैन-ग्रन्थकर्त्ता नहीं चुके हैं। परन्तु सुप्राचीन दिगम्बर जैनग्रंथकारोंने इसका कोई विषय उल्लेख नहीं किया। (पुराण देखो)।

उक्त दोनों महापुरुषोंके उच्च उपदेश तत्कालीन राजन्यमण्डलीने ग्रहण किये थे, इसीलिए उक्त दोनों धर्मके प्रचारमें विशेष सुविधा हुई थी।

लगभग ईसाके ५१५ वर्ष पहले पारस्याधिप दरायुस (Dareios Hystaspes) विस्तास्पने सिन्धु नदके दक्षिणकूलमें अवस्थित गान्धार, सिन्धु; आर्क्षोद और हरवती पर अधिकार किया था। किन्हींका मत है कि, काइरस (*Cyrus*)-के समयसे जरक्षेस (*Xerxes*) के समय तक उक्त अंश फारसके अधीन था। उस समय अज्ञातशत्रु मगधके सिंहासन पर अधिष्ठित थे और शाक्योंका प्रभाव भी अक्षुण्ण था। परन्तु ईसासे ४७८ वर्ष पहले कोशलाधिप प्रसेनजित्के पुत्र विरुधकने शाक्यवंशका ध्वंस किया था। इसके कुछ समय बाद अजातशत्रुके शेष वंशधर महनन्दी आविर्भूत हुए। उसके बाद महापद्मनन्दका अभ्युदय हुआ। पुराणोंमें ये ही क्षत्रियान्तकारी बतलाये गये हैं। ईसासे ३७२ वर्ष पहले चाणक्यके कौशलसे नन्दवंशका मूलोच्छेद और चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक हुआ था।

श्रावणबेलगोलाके शिलालेखसे ज्ञात होता है कि, सम्राट् चन्द्रगुप्तने जैनोंके शेष श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामीका परम सम्मान किया था और उनके शिष्यत्व स्वीकार करनेमें भी वे पराङ्मुख नहीं हुए हैं। ईसासे ३४७ वर्ष पहले इन भद्रबाहुस्वामीने निर्वाण प्राप्त किया था। पाश्चात्य ऐतिहासिकगण नन्दवंश-ध्वंसकारी उक्त चन्द्रगुप्तको ही अलेकसन्दरके समसामयिक और Sandrokottos समझ कर भारतीय इतिहास भित्ति-स्थापनमें अग्रसर हुए हैं। उनका कहना है कि, Sandrokottosके बिना वे भारतके प्राचीन इतिहासकी जटिल ग्रन्थिको किसी भी तरह नहीं खोल सकते थे। परन्तु यह हम पहले ही प्रमाणित कर चुके हैं कि, पाश्चात्य ऐतिहासिकोंने जिनचन्द्रगुप्तको ध्रुवतारा-लक्ष्य बना कर भारतीय इतिहास-समुद्रसे उत्तीर्ण होनेकी चेष्टा की है, वे वास्तवमें अलेकसन्दरसे पूर्ववर्ती हैं। ईसासे ३२६ वर्ष पहले अलेकसन्दर सिन्धु नद पार हो कर भारतमें आये थे। किन्तु चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक ईसासे ३७२ वर्ष पूर्वमें हुआ था, तथा ईसासे ३१६ वर्ष पहले उनके

पुत्र बिन्दुसारकी राज्य-समाप्ति हुई थी। प्रियदर्शी देखो।

अशोक प्रियदर्शी ही अलेकसन्दरके शिविरमें उद्धत युवक Sandrokottos नामसे परिचित हुए थे। वही युवक कालान्तरमें समस्त भारतका अधीश्वर बना था। पहले ब्राह्मणभक्त, फिरजैनधर्मावलम्बी और बौद्ध भक्त हुए थे। इन्हींके प्रयत्नसे बौद्धधर्म सिर्फ एशियामें ही नहीं, बल्कि सुदूर यूरोपमें भी प्रचारित हुआ था। इनकी सभामें रह कर ग्रीकदूत मेगस्थिनेस्ने भारतके चित्रका प्रकाश किया था। अशोकके बौद्धधर्म प्रचारके लिए अशेष प्रयत्न और आदरप्रदर्शन करने पर भी उनके पौत्र दशरथने आजीवक नामक जैनोंके प्रति ही यथेष्ट अनुराग दिखाया था। बराबरके निकटस्थ नागार्जुनी पर्वत पर खोदित दशरथकी अनुशासनलिपि ही इस बातका प्रमाण है।

समस्त भारतवर्ष किसी समय मौर्यवंशका एकच्छत्राधीन था। मौर्यवंश-विलोपके साथ ही पश्चिम-सिन्धुप्रदशमें यवन लोग, उत्तरमें लिच्छिविगण और दक्षिणमें पाण्ड्य और चोलराजगण प्रबल हो उठे। यहां तक कि, उस समय भारतभूमि बहुसंख्यक छोटे छोटे स्वाधीन राज्योंमें विभक्त हो गई। शुङ्गगण नाम मात्रके लिए राजचक्रवर्ती थे।

पुष्यमित्र अन्तिम मौर्यराज वृहद्रथके सेनापति थे। वृहद्रथको मार कर उन्होंने अपने पुत्र अग्निमित्रको मौर्य राज्य प्रदान किया था। तभीसे मित्रवंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। यवन, पुष्यमित्र, मौर्य आदि शब्द देखो।

शुङ्गवंशीयगण विदिशामें अधिष्ठित थे, मालविकाग्निमित्र नाटकसे इसका पता चलता है। उस समय समग्र कलिङ्ग खारवेल (उर्फ भीखूराज) नामक एक जैन नृपतिके अधीन था। उन्होंने लालकके पौत्र हाथिसाहकी कन्याके साथ विवाह किया था और कुसुम्बक्षत्रियोंको सहायतासे मूषिक, शातकर्णि और राजगृहके राजाको पराजित किया था। उस समय दक्षिणापथमें सातवाहनवंशीय राजाओंका अभ्युदय हो रहा था। सातवाहनराजवंश देखो।

लगभग ईसासे १४४ वर्ष पहले मिलिन्द (Menander) नामक पञ्जाबके यवन नृपति अति प्रबल हो उठे थे। उन्होंने अयोध्याकी राजधानी साकेतनगरी तक जय कर लिया था। उनके समसामयिक महाभाष्यकार पातञ्जलि उस संग्रामका आभास दे गये हैं। ईसाके १५५ वर्ष पहले उनका राज्यकाल शेष हुआ था और शकोंने प्रधान लाभ किया था।

भारतमें शकाधिकार।—हरिवंश और अन्यान्य पुराणोंसे ज्ञात होता है कि, सगरके पिता वाहुराज शक, कम्बोज, तालजङ्घ आदिके हाथसे मारे गये थे। उस समय उन शकोंने हैहय राजाओंके पक्षमें युद्ध किया था। बादमें सगरके हैहयोंका विनाश कर पितृहत्या परिशोध लेने पर, शक, कम्बोज आदि जातियोंने आ कर वशिष्ठका आश्रय लिया था। वशिष्ठके कहने पर सगरने शकोंका संहार नहीं किया, केवल सिरके आधे बाल कटवा दिये। मनुसंहितामें (१०।४३-४४) लिखा है:—

"शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्राविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः।"

धीरे धीरे क्रियालोपके कारण तथा ब्राह्मणोंके अदर्शन होनेसे ये क्षत्रिय जातियां वृषलत्वको प्राप्त हुई थीं। जैसे—पौण्ड्रक, उड्र, शक, यवन, काम्बोज, द्राविड़ आदि।

मनुसंहितासे ज्ञात होता है कि शक यवन आदि बहुतसी जातियां पूर्वकालमें विशुद्ध क्षत्रिय समझी जाती थीं। स्व स्व वृत्तियोंका परित्याग करनेसे और ब्राह्मणोंके न मिलनेसे सभी वृषलत्वको प्राप्त हुए थे। सम्भव है, सगर वा अन्य किसी प्रबल हिंदू राजाके प्रभावसे भारतवासी शक, काम्बोज आदि क्षत्रिय जाति वृषलत्व प्राप्त और ब्राह्मणहीन हुई थीं। जैसे—अधिक दियकी बात नहीं है, गौड़ाधिप बल्लालसेनने वैश्य जातीय वङ्गालके वणिकोंके प्रति क्रुद्ध हो कर ब्राह्मणोंके परामर्शसे उनका जल अस्पृश्य बतलाया था, तथा गुरु और पुरोहितोंको बन्द करके उनको अति नीच समझा था। भिन्न देशोंसे आगत शक काम्बोज आदिके भाग्यमें भी शायद ऐसा ही बदा था।

मध्य एशियावासी काम्बोजोंमें भी किसी समय वैदिक आर्यभाषा प्रचलित थी, यह बात यास्कके निरुक्त

स्पष्ट मालूम होती है। शाक, काम्बोज आदि मध्य-एशियावासी विभिन्न जातियोंने बहुत पूर्व कालमें भारतवर्षमें आ कर उपनिवेश स्थापन किया था; इसके भी अनेक प्रमाण पुराणोंमें मिलते हैं।

पहले जिस जातिकी जहां अवस्थिति है, उसके नामसे उस जनपदकी प्रसिद्धि हुआ करती थी। गरुड़-पुराणसे जाना जाता है कि, किसी समयमें दक्षिणापथमें कर्णाटक और कम्बोजघएट तथा भारतके दक्षिण-पश्चिममें अम्बष्ठ, द्राविड़, लाट, काम्बोज, स्त्रीमुख, शक और आनर्त्त इन जनपदोंकी अवस्थिति थी* । भारतके दक्षिण-पश्चिममें काम्बोज और शकजातिका वास था, यह बात पुराणोंके सिवा प्राचीन ग्रन्थों और शिलालेखोंमें भी वर्णित है।

हिरोदोतसने लिखा है कि, फारसके बादशाह दरायुस के अधीन भारतमें छत्रोप राज्य (Satraphy) था, वह फारसके समस्त प्रदेशोंसे समृद्धिशाली था, तथा उससे कर ६०० तौल (talents) सोना प्राप्त होता था। दरायुसके समय पंजाब और सिन्धु प्रदेश फारसके अधीन पारस्य-सम्राट्के अधीन यहां जो शकराज आधिपत्य करते थे वे 'छत्रप' (Satrap)† (प्राचीन शिलालेखों-में क्षत्रप) नामसे प्रसिद्ध थे। माकिदनवीर अलेकसन्दर के साथ पारस्य-पतिका जो महासंग्राम छिड़ा था उसमें भारतीय शक प्रजा ही (Indo-Scythians) उनके दक्षिण हस्त-स्वरूप थी। इन वीरोंमें 'सकसेन (Sacasenae) नाम देखनेमें आता है। यवन-समरमें पारस्य सम्राट्के लिए उन लोगोंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था।

राजपूत-इतिहास लेखक प्रसिद्ध टाडसाहबने लिखा है कि, "जिट (Indo-scythic Getes = जाट), तक्षक और असि आदि शकगण ईसाके जन्मसे ६०० वर्ष पहले भारत में आये थे। उसी समय शकोंने एशिया माइनर तक और बादमें स्कन्दनाभ (Scandinavia) तक जय किया था। इसके थोड़े ही समय बाद शकजातीय असि (अश्व) और तोचारी तुषारोंने बक्त्रिया राज्यको विपर्यस्त किया था। बालटिकसागरके किनारेसे आनेवाली शकजातीय असि, काठी (Cathi) और कम्बरी* (Cimbri) लोगोंकी शक्ति रोमकोंको भी अच्छी तरह विदित हो गई थी†।

कुछ भी हो, पूर्व वर्णित ऐतिहासिक और पौरा-णिक विवरणोंसे ज्ञात होता है कि, बहु प्राचीनकालसे ही भारतके साथ शाक वा शकजातिका संस्रव है¶।

अब देखना चाहिए कि, भारतके शकोंने किन किन स्थानोंमें और कैसे आधिपत्य विस्तार किया था।

फारसके अखमनीवंशीय (Achaemenidae) राजाओंके समयमें शकोंके पञ्चनद प्रदेशमें आधिपत्य प्राप्त न करने पर भी उसी समयसे शक संस्रव हो रहा था। उस समयमें (ईसाके पूर्वकी ४थी शताब्दीमें पञ्चनद प्रदेशमें और खरोष्ठी अक्षर-युक्त मुद्राका प्रचलन तथा पारस्य स्थापत्यका निदर्शन देखनेमें आता है। कनिंग-हम, डाक्टर बुल्हर आदि प्रत्नतत्त्वविदोंने निश्चय किया है कि, प्रसिद्ध मग पुरोहित अग्निपूजा-प्रवर्त्तक जरथुस्त्र-का नाम ही उच्चारणभेदसे 'खरोष्ट्र' हो गया है। उन मग-पुरोहित-द्वारा प्रवर्त्तित अक्षर ही 'खरोष्ठी' नामसे प्रसिद्ध हुए थे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है+। जहां तक सम्भव है, पञ्जाबमें उनके वंशधरों द्वारा ही यह लिपि प्रचलित हुई होगी।

---

* "कर्णाटाः कम्बोजघण्टा दक्षिणापथवासिनः।
अम्बष्ठा द्राविड़ा लाटाः काम्बोजा स्त्रीमुखाः शकाः॥
आनर्त्तवासिनश्चैव ज्ञेयाः दक्षिणपश्चिमे॥" (५५।१५)

† छत्रप वा छत्रपसे ही परवर्त्तिकालमें 'छत्रपति' उपाधि प्रच-लित हुई थी। सुप्रसिद्ध महाराष्ट्रवीर शिवाजी भी 'छत्रपति' उपाधिसे विभूषित हुए थे।

* राजस्थानमें जो 'शाकम्भरी' देवी हैं, टाड साहबका विश्वास है, कि वे प्रथमतः शाकोंकी अधिष्ठात्री देवी थीं। Tods Ragasthan. Vol. p. 63

† Tod's Rajasthan Vol. 1

¶ टाड साहबने अपने प्रसिद्ध इतिहास राजस्थानमें दिखाया है, कि अधिकांश राजकुलोंमें शक-रक्त प्रवाहित आश्चर्यका विषय है कि, फिर भी सबोंने सूर्यचन्द्रवंशीय क्षत्रियके नामसे परिचय देनेमें कुछ द्विविधा नहीं की है।

+ Cunningham's coins of Incient Andia p. 36-37

पञ्चनदमें जो 'शाकल' नगर था, सम्भवतः शक वा शाकोंके वासके कारण उसका नाम 'शाकल' पड़ा था। पहले ही कहा जा चुका है कि, माकिदन-वीर अलेकसन्दरके साथ दरायुसके युद्धके समय दरायुसके क्षत्रप भारतीय वीरोंने उनकी पार्श्वरक्षा की थी। उन वीरोंने भारतके किस अंशमें राज्य किया था, यह निश्चितरूपसे नहीं मालूम हो सका।

सम्भवतः उस समय पश्चिम-पञ्जाब और सौराष्ट्र-प्रदेशमें शक-क्षत्रपोंने सामान्यभावसे आधिपत्य किया होगा। परन्तु यह ठीक है कि, अलेकसन्दरके अनुचर यवनोंके प्रभाव-विस्तार और मौर्यवंशके अभ्युदयके साथ ही क्षत्रपोंका प्रभाव खर्व हुआ था। मौर्यराज अशोकके समयमें तुषास्प नामक कोई एक यवनसौराष्ट्रमें क्षत्रप थे। सम्भवतः उसी समयमें वा उससे कुछ पहले सौराष्ट्रमें यवनोंका प्रभाव विस्तृत हुआ था। शक सम्बन्धमें इस समयका और कोई उल्लेख नहीं मिलता। उसके बाद यवन-प्रवाह लुप्त होने पर, शकोंका प्रभाव बढ़ा। मत्स्यपुराणमें भी देखा जाता है कि, ७ गर्दभिल, १८ शक, ८ यवन, १४ तुषार, १३ मुरुण्ड और १६ हूण राजाओंने भारतमें राज्य किया *। इनमें तुषार, मुरुण्ड और हूण ये तीन जातियां शकजातिकी ही शाखा समझी जाती हैं।

शकोंका पुनरभ्युदय ठीक किस समय हुआ था, यह बात भारतीय और ग्रीक ग्रन्थोंसे स्पष्ट नहीं मालूम पड़ती। चीनोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका सविस्तार वर्णन है। †

जिस समय वाह्लिक (Bactria) देशमें यवन-राज्य-प्रतिष्ठित हुआ था, उस समय चीनके दक्षिणांशसे 'सेक' (शक) जातिने आ कर सोगदियाना और त्रान्सक्सियाना अधिकार किया था; उनके नामानुसार यह स्थान सेस्तान वा शकस्थान नामसे प्रसिद्ध हुआ था। ये शकगण ही किसी समय फारसके अखमनोवंश और माकिदनवीरोंके साथ होनेवाले घोरतर संग्राममें लिप्त थे।

ईसासे १६५ वर्ष पहले ये ही शकगण यूचो (Yueh-chi) नामक अन्य एक शाखासे परास्त हो कर और सोगदियाना खो कर वाह्लिककी तरफ धावित हुए थे। वहां यवनोंके साथ शकोंका कुछ समय तक संग्राम हुआ था। इसी समयमें पार्थिव (पारद) लोग आ कर शकोंके साथ सम्मिलित हुए थे, इन दोनों जातियोंमें जैसी मित्रता थी वैसी ही शत्रुता भी मौजूद थी। कुछ भी हो, यह जाति अन्तमें परस्पर सम्बन्ध-सूत्रमें आबद्ध हुई थी और बादमें एक ही जाति कहलाई थी।

शकजातिय यूचियोंने शकस्थानसे आ कर ईसासे १२० वर्ष पहले वाह्लिकदेश अधिकार किया, और यवन लोग भगाये जाने लगे। इसके कुछ ही समय बाद कुषन नामकी एक शकजातिने परोपनिसस् (पौराणिक निषध-गिरि) पार कर काबुल उपत्यकामें प्रवेश पूर्वक यवन-शासनका चिह्न तक नष्ट कर दिया और इस तरह क्रमशः उत्तर भारतमें उनका आधिपत्य जम गया। किन्हीं विद्वान्‌का अनुमान है कि शकोंके प्रभावसे अयोध्या प्रदेशका अधिकांश उस समय 'साकेत' नामसे प्रसिद्ध था।

शकाधिकारमें भारतके नाना स्थानोंसे जो शिलालेख, ताम्र-शासन और प्राचीनमुद्रा प्राप्त हुई हैं, उनमें मोआस वा मोग नामक शकराजका प्रथम उल्लेख पाया जाता है। † किसी किसी पुराविद्‌का अनुमान है कि, इस मोग नामक शक राजाके राजत्वकालमें आराकोसिया (Arachosia) वर्त्तमान गजनी और द्राङ्गियाना

---

* "सप्त गर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु।
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश।
त्रयोदश मुरुण्डश्च हूणा ह्येकोनविंशतिः॥"

(मत्स्यु पु० २७३ अ०)

† Drouin's Revue Numis 1888 p. 13

* शकोंकी जन्मभूमिका ग्रीक भौगोलिकोंने 'साकितइ' Sakitai नामसे उल्लेख किया है। इस नामके साथ 'साकेत' शब्दका यथेष्ट सौसादृश्य है पहले लिखा जाचुका है कि 'शाक-द्वीप' नामने ही यवनोंके यहां Sakita वा Scythia रूप धारण किया होगा।

+ तक्षशिलासे आविष्कृत ताम्रलेखमें 'मोग' तथा उनके निजी सिक्केमें 'रजतिरजस महतस मोअस' नाम देखा जाता है।

Drangiana) प्रदेश 'शकस्थान'* नामसे प्रसिद्ध हुआ था, तथा सिन्धु और पञ्चनदका कुछ अंश शकराजमें सम्मिलित हुआ था।

मोगके वाद अजेस और अजिलेस् उत्तराधिकारी (करीव ईसासे १०० वर्ष पहले) हुए। इनके साथ पार्थिव वा पारद (*Parthian*) राजाओंकी विशेष घनिष्ठता हो गई थी। इसी समयमें पार्थिवराज वोनोनेस और शकपति स्पलगदम† शकस्थानमें राज्य करते थे, तथा मोगके वंशधर अजेस् सिन्धुनद प्रवाहित जनपदमें आधिपत्य करते थे। उस समय शकस्थानके पार्थिवराजने सिंधुपतिका प्राधान्य स्वीकार किया था। मोगवंशीयोंकी तक्षशिला (पश्चिम पञ्जाव), शाकल (पूर्व पञ्जाव) और कावुलमें राजधानी थी। थोड़े ही समयमें इस मोगवंशका अधिकार पूर्वमें मथुरा और दक्षिणमें सौराष्ट्र तक विस्तृत हो गया था। शकराजकी अधीनतामें मथुरा, सौराष्ट्र और मालवमें एक एक क्षत्रप (Satrap) नियुक्त हुए थे। इस क्षत्रपोंकी क्षमता किसी पराक्रमी राजासे कम न होती थी। इनके उद्यम और वलवीर्यके प्रभावसे शकाधिकार वहुत कुछ विस्तृत हुआ था।

मथुरामें शकक्षत्रपवंश।—मथुराके शक-क्षत्रपोंमें रञ्जुवुल वा राजुवुलका नाम प्रथम है। पहले पहल ये ही क्षत्रप हुए थे और अन्तमें क्षमता और अधिकारवृद्धिके साथ साथ 'महाक्षत्रप' उपाधिको प्राप्त हुए थे। मथुराके सिंहस्तम्भमें इनका 'राजुल' नामसे उल्लेख है। इस सिंहस्तम्भमें लियककुसुलक नामसे और भी एक क्षत्रपका नाम पाया जाता है।

(Epigraphia Indica; vol iv, p, 54; Numismatic chronicle, for 1890, p. 103, Grundriss der Indo-Arisenen Philologic vol 11 Part 3, p. 7)

'मोअस' नामके देखनेसे अनुमान होता है कि, पुराणमें 'मगस' नामक शाकद्वीपीय क्षत्रियका नाम वर्णित हुआ है।

* अब शकस्थानके कुछ अंश 'सेस्तान' नामसे परिचित हैं।

† खोरष्ट्रीलिपियुक्त सिक्कोंमें स्पलहोरपुत्र सध्रमियस स्पलगदमस' अर्थात् स्पलहोरपुत्रस्य धर्मीयस्य स्पलगदमस्य ऐसा पाया जाता है।

राजुवुलके वाद उनके पुत्र सौदास और हगमास तथा उनके सहयोगी हगानका नाम प्राचीन सिक्कोंमें मिलता है। मथुरा के स्तम्भमें सौदासकी कहानी लिखी हुई है। तक्षशिलासे शकराज मोगके ७८ संवत्में उत्कीर्ण, लियक कुसुलकके पुत्र छत्रप कुसुलक पतिकका एक ताम्रशासन मिला है।

कुसुलकके पहले मनिगुल और उनके पुत्र जिहोनिस (ईसासे ८० वर्ष पहले) अपने अपने सिक्कोंमें 'छत्रप' उपाधिका व्यवहार किया। अलावा इसके मोगवंशके अजेसके सहयोगी इन्द्रवर्मा और उनके पुत्र अस्पवर्मा तथा त्रिजयमित्रपूत नामक कई क्षत्रपोंके नाम उत्तर-भारतसे आविष्कृत प्राचीन सिक्कोंमें निकले हैं। ये शक-क्षत्रपगण शककुषन-राजाओंके पहले प्रवल हो गये थे।

शकजाति नाना शाखाओंमें विभक्त हो गई थी, जिनमें कुषन शाखा प्रधान है। शकराज मियउस वा हेरउसके सिक्कोंमें उन्होंने अपना परिचय 'शककुषन' नामसे दिया है। प्रसिद्ध शकाधिप कनिष्कने भी अपने सिक्कोंमें 'गुषनवंश-संवर्द्धक' लिखा है*।

चीन-इतिहासके अनुसार यिन-मो-यू नामक एक व्यक्तिने ईसासे ४९ वर्ष पहले किपिन (कावुल) अधिकार किया था। कोई कोई इतिहासज्ञ इस व्यक्तिको और मियउसको एक ही समझते हैं।

शककुषनवंश।—शकजातिकी युएति श्रेणी फिर पांच शाखाओंमें विभक्त है, जिनमें कुषन एक है। ईसासे २५ वर्ष पूर्वमें कुषन-शाखाओंने अन्य चार शाखाओंमें प्रधानतः प्राप्त की और कुषन दलपतिको अधीनतामें पांचों शाखामें मिल कर कावुल प्रदेश अधिकृत किया। उस दलपतिका नाम कुजुलकस (Kujula kadphises) था। इनके सिक्कोंमें खरोष्ठी लिपिमें इस प्रकार लिखा है— "कुजुलकसस कुषनयवुगस ध्रमठिदस"। अस्सी वर्षकी अवस्थामें लगभग ईस्वी सन् १०में इनकी मृत्यु हुई थी। उसके वाद कुजुलकर (Kujulakar Kadphises) नामक 'देवपुत्र' उपाधिधारी एक शक-कुषन राजका उल्लेख मिलता है। किन्हींका ख्याल है कि, ये कुजुलकसके पुत्र थे और इन्हींके समयमें भारतके

* Indian Antiquary 1881, p, 122,

अन्तर्भागमें कुषन-आधिपत्य प्रवर्त्तित हुआ था। उसके बाद हिम-कृत्तिससे (Hima Kadphises)-ने उत्तर-भारतमें आधिपत्य विस्तार किया था। ये परम शैव थे और इनके सिक्कोंमें त्रिशूलधारी शिवमूर्त्ति है तथा खरोष्ठीलिपिमें इस प्रकार उपाधि लिखी हुई है—"महरजस रजतिरजस सर्वलोग ईश्वरस महीश्वरस हिमकप्तिसस।" *

हिम-कात्तिसके बाद प्रसिद्ध शककुषन-राज कनिष्कका उल्लेख मिलता है। राजतरङ्गिणीमें हुष्क युष्क और कनिष्क इन तीनोंका ही "तुरुष्कान्वय" नामसे वर्णन किया गया है। इससे तुरुष्क भी शकवंशीय ठहरते हैं।

कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव।—किन्हींका विश्वास है कि, शककुषन-वंशीय कनिष्कसे ही शकसंवत् वा शकाब्द प्रचलित हुआ है और बहुतोंका यह भी कहना है कि, यह बात विश्वसनीय नहीं है। पुराविद् कनिंगहम साहबका मत है कि, प्रसिद्ध शक-क्षत्रप चष्टनने जो संवत् चलाया था, वही शकाब्द वा शकसंवत्के नामसे प्रसिद्ध हुआ। शकसंवत्के पूर्वमें कनिष्कका अभ्युदय है।

कनिष्क कट्टर बौद्ध हो गये थे। बौद्धशास्त्र संग्रह करनेके लिये ही उनकी सभामें ४थ धर्मसङ्गीति हुई थी। बहुतसे बौद्ध पण्डितोंका विश्वास है कि, इन्हीं कनिष्ककी चेष्टासे नागार्जुन द्वारा महायान मत प्रवर्त्तित हुआ था। ये बौद्ध होने पर भी शाक, आवस्तिक और ब्राह्मण्यधर्मकी अवमानना नहीं करते थे। इनके सिक्कोंमें शाक, आवस्तिक और हिन्दू देव-देवियोंकी मूर्त्ति रहनेसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। कनिष्कका राज्य उत्तरमें काश्मीर, पूर्वमें मथुरा, दक्षिणमें सिन्धु और पश्चिममें गान्धार पर्यन्त विस्तृत था। बौद्ध ग्रन्थोंके अनुसार, कनिष्कने समस्त भारतमें महायानमतका प्रचार किया था।

* खरोष्ठीमें आकार छोड़ दिया गया है। इसका संस्कृत रूप "महाराजस्य राजाधिराजस्य सर्वलोकेश्वरस्य माहेश्वरस्य हिमकप्तिसस्य।"

कनिष्कके बाद हुविष्कको राज्याधिकार प्राप्त हुआ। ये भी बौद्धधर्मानुरागी थे। इसके बाद शकाधिप वासुदेव सिंहासन पर बैठे। पहले बौद्धप्रिय होने पर भी अन्तमें ये शैव हो गये थे। इनके सिक्कोंमें त्रिशूलधारी शिवमूर्त्ति खुदी हुई है। वासुदेवके नामके साथ 'देवपुत्र' उपाधि रहनेसे कोई कोई उन्हें भारतीय हिन्दू समझते हैं; परन्तु भारतमें उनका जन्म और हिन्दूधर्ममें अनुराग होने पर भी ग्रीक-लिपियुक्त उनके सिक्कोंके देखनेसे यही ज्ञात होता है कि वे हिंदूकुल-जात नहीं थे। 'देवपुत्र' उपाधिके विषयमें प्रसिद्ध पुराविद् कनिंगहम साहबका लिखना है कि, चीनके सम्राट्ने जैसे 'वगपुत्र' * की जगह 'वगपुर' उपाधि ग्रहण की थी, यह 'देवपुत्र' उपाधि भी उसी तरहकी है। कनिंगहम इन वासुदेव और पुराणोक्त काण्वायन द्विजवंशीय वासुदेव नामक राजाको एक ही समझते हैं। पुराणोक्त काण्वायन वासुदेवका जो समय निरूपित हुआ है, शकाधिप देवपुत्र वासुदेव भी ठीक उसी समयके हैं। काण्वायन वासुदेवने अपने प्रभु शुङ्ग वा मित्रवंशीय शेष राजा देवभूतिको मार कर सिंहासन अधिकार किया था। लगभग ईस्वी सन् ५१में देवपुत्र वासुदेवका राज्यावसान हुआ था।

सौराष्ट्र, आनर्त्त और मालवमें शकाधिकार और दाक्षिणात्यमें आन्ध्र राज्य।—जिस समय उत्तर भारतमें शकक्षत्रपगण अधिकारविस्तार कर रहे थे, उस समय भी दक्षिण-भारतमें भिन्न भिन्न शक-क्षत्रप निश्चेष्ट नहीं थे। ईसाकी पहली शताब्दीमें मालवा और राजपूतानामें चष्टनके पिता तथा पश्चिम-भारतमें नहवानके पिता क्षत्रप थे। खहरात नहपान भी पहले सामान्य क्षत्रप थे; अन्तमें महाराष्ट्रका कुछ अंश, उत्तर कोङ्कण, गुर्जर, सुराष्ट्र आनर्त्त (काठियावाड़) और कच्छ प्रदेशस्थ जनपदोंको करायत्त कर अपने बलवीर्यके प्रभावसे महाक्षत्रप हुए

* यदि 'बगपुत्र' वा 'मगपुत्र' की जगह 'देवपुत्र' व्यवहृत हुआ हो और काण्वायण द्विज यदि मगपुत्र ही हों, तो कण्वायण गण शाकद्वीपी ब्राह्मण हैं या नहीं, इस सम्बन्धमें भी आलोचना और अनुसन्धान करनेकी आवश्यकता है।

थे। इनके जामाता दीनीक-पुत्र उषवदात (ऋषभदत्त) शककुलमें एक अति गण्य राजा हुए हैं। सुराष्ट्रसे नासिक तक उनका अधिकार विस्तृत था। शककुलमें जन्म होने पर भी देवद्विजमें उनकी प्रगाढ़ भक्ति और सद्धर्ममें यथेष्ट अनुराग था। उन्होंने उत्तमभद्र नामक क्षत्रियों के साथ कुटुम्बिता (सम्बन्ध) की थी और महा क्षत्रपके आदेशसे उनको सहायताके लिए मालवों को परास्त किया था। उनके शिलालेखके पढ़नेसे विदित होता है कि—"वे ब्राह्मण-भोजन कराते थे, प्रभासक्षेत्रमें उन्होंने बहुतसे ब्राह्मणोंके विवाह कराये थे, और चातुर्मास्यके समय अनेक भिक्षुकोंको असन-वसनादि प्रदान किये थे।" अधिकतः सम्भव है कि, ब्राह्मणानुरक्तिके कारण ही शकाधिपोंमें सहजमें ही भारतवासियोंके हृदयमें अधिकार कर लिया था, तथा इसी लिए शकराज्य विस्तृत और स्थायी हुआ था। कोई कोई शकक्षत्रप ब्राह्मणानुकूल्यके ही कारण विशुद्ध क्षत्रिय समझे गये थे। अन्यथा विदेशीय अहिन्दू राजाके लिए लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराना सहजसाध्य नहीं होता। अब भी किसी नीच-जातिके घर भोजन करना ब्राह्मणोंकी प्रकृतिके विरुद्ध है। ऐसी दशामें लगभग दो हजार वर्ष पहले लाख ब्राह्मणोंका शकोंके यहां आहार करना, शकोंके नीच जातित्वका परिचायक नहीं हो सकता। डा० भाण्डारकरने लिखा है कि इन शक राजाओंने ब्राह्मण्यधर्म ग्रहण किया था *। इसलिए भी ब्राह्मणोंके निकट वे उच्च जातीय समझे गये थे, यह सम्भव है। शिलालेखसे जाना जाता है कि, शकराज नहपानके अयम नामक एक मन्त्री थे †।

उषवदात नहपानके जामाता होने पर भी वे श्वशुरके सिंहासन पर बैठे थे, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। प्रसिद्ध पुराविद् कनिंगहम साहबने शिलालेख और सिक्कोंकी सहायतासे लिखा है कि, नहपानवंशके राजत्वके बाद चष्टन मालवाके क्षत्रप हुए थे, और उन्होंने शक-गौरवको स्थायी बनानेके अभिप्रायसे शकाब्दका प्रचार किया था *। पाश्चात्य भौगोलिक टलेमीने इन्हीं राजाको Tiastanes नामसे उल्लेख किया है। उज्जयिनीमें उनकी राजधानी थी।

मत्स्यपुराणसे ज्ञात होता है कि मौर्यवंशीय राजा दशरथके पूर्व ही भारतमें शकाधिकार विस्तृत था। डा० भाण्डारकरके मतसे अन्ध्रभृत्य वा सातवाहनवंशीय राजा गौतमपुत्रके पूर्वसे ही शकोंने वारम्बार भारत पर आक्रमण कर सिंधु और राजपूताना तक राज विस्तार किया था ¶। प्राचीन ताम्रलेखादिमें जो शकराजाओंके समयका उल्लेख है सम्भवतः वह किसी महाप्रतापशाली शकविजेता द्वारा प्रवर्त्तित संवत् है। उन्होंने यहां स्थायी आधिपत्य प्राप्त किया था और उन्हींके अधीनतामें नहपान और चष्टन अथवा उनके पिताने पश्चिम-भारत और मालवामें क्षत्रप-पद प्राप्त किया था।

नहपानका शेषाब्द १२४ ई०में पड़ता है। उसके बाद गोतमी पुत्र वा पुड़मायीने महाराष्ट्र प्रदेश अधिकार किया था†।

कनिंगहमने उज्जयिनी-पति चष्टनको नहपानसे बहुत परवर्त्ती कालका बतलाया है, परन्तु यह युक्तिसङ्गत नहीं दीखता। निम्नलिखित विवरणके पढ़नेसे

* Bhandarkar's Dekkan, p, 1.,

† Archaeological survey of western India, junner Inscriptions, no, 10.

* Cunningham's Coins of Mediaeval India.

"बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः।
षट्त्रिंशत् तु समा राजा भविता शक एव च।
सप्तानां दश वर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति।
राजा दशरथोऽष्टौ तु तस्य पुत्रश्च संसतिः।
इत्येते दशमौर्यस्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम्॥"
(मत्स्य पु०, २७१।२२—२४)

¶ शुङ्ग वा मित्रवंश और काण्वायनवंशके आचरणकी आलोचना करनेसे यही मालूम होता है कि, वे भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। अपने प्रभुकी हत्या कर राज्य ग्रहण करना, यह शकोंका स्वाभाविक विशेषत्व है। कुरुक्षेत्र-महासमरके कुछ समय बाद ही शाकद्वीपी-ब्राह्मणोंने भारतमें प्रवेश किया था। पुष्यमित्रादि की तरह इनकी भी मित्र उपाधि वंशगत थी।

† Bhandarkar's Dekkan, 2nd Ed. P.27.

नहपान और चष्टन समसामयिक मालूम होते हैं।

जैनोंकी कालकाचार्य-कथाके पढ़नेसे मालूम होता है कि, उज्जयिनीमें ईसासे ७४ वर्ष पूर्वसे ५७ वर्ष पूर्व तक शकाधिकार था। उस समय प्रतिष्ठानमें सातवाहन-वंशीय शातकर्णि राज्य करते थे। अधिकतर यही सम्भव है कि, विक्रमादित्य उपाधिधारी सातवाहन वंशीय किसी आन्ध्र राजाने ही मालवामें शकोंको पराजित कर मालव-स्थित्यब्द वा विक्रमसंवत्का प्रचार किया है। परन्तु इन आन्ध्रराजका अधिकार स्थायी नहीं रहा था। वे पराक्रान्त शक नृपतियोंसे युद्धमें वार वार पराजित हुए थे। अन्तमें शक-क्षत्रप चष्टन मालवामें प्रबल हुए थे।

उन्होंने शनैः शनैः सातवाहनोंके अधिकारभुक्त अनेक जनपदोंको अधिकृत कर 'महाक्षत्रप' उपाधि धारण की थी। सातवाहनवंश उस समय दक्षिणापथ-का अधीश्वर समझा जाता था। उज्जयिनीपति चष्टनने सातवाहनवंशीय किसी राजाको समरमें पराजित कर उस घटनाको चिरस्मणीय बनानेके लिए 'शकसंवत्' प्रचलित किया था। शकोंने बहुत पूर्वसे ही ब्राह्मण्य-धर्म ग्रहण किया था। यहां तक कि स्वयं शकराज चष्टन दक्षिणापथके प्रसिद्ध अधीश्वरोंके साथ विवाह सम्बन्धमें आबद्ध थे। इस विवाह सूत्रसे चष्टनके वंशधरोंने 'शक नाम त्याग कर 'हिंदू' नाम ग्रहण किया था।

शकाजितमें खहरात (खगारात) एक प्रसिद्ध कुल है। नहपान और चष्टन ये दोनों ही उसी कुलमें उत्पन्न हुए थे। नहपानने सम्भवतः चष्टनकी अधीनतामें ही पहले पश्चिम भारतमें आधिपत्य विस्तार किया था। यह भी असम्भव नहीं कि उन्होंने अथवा उनके जामाता उषवदातने उज्जयिनि-पतिके शासनकी उपेक्षा कर 'महा-क्षत्रप' उपाधि ग्रहण-पूर्वक पश्चिम-भारतमें सुबृहत् राज्य विस्तार किया था। उनके प्रभावसे उज्जयिनी पति शकराज म्रियमाण और उनके कुटुम्बी सातवाहनगण हीनप्रभा हो गये थे। लगभग ईसासे १२४ वर्षमें नहपानका राज्य समाप्त हो चुका था। उस समय उज्जयिनीमें चष्टनके पुत्र जयदाम राजत्व करते थे। वे सिर्फ 'क्षत्रप' ही समझे जाते थे। इसके कुछ ही समय पश्चात् सातवाहन कुलतिलक गोतमीपुत्र शातकर्णिने (लगभग ईस से १३३ वर्ष पूर्वमें) खहरातवंश-का ध्वंस कर पुनः दाक्षिणात्यमें सातवाहन गौरवकी प्रतिष्ठा की थी। शातकर्णिके प्रभावसे पश्चिम भारतीय शक-क्षत्रपगण अधिकारच्युत हुए और राजपूतानेसे ले र प्रायः समस्त दाक्षिणात्य शातकर्णिके एकच्छत्रा-धीन हो गया।

खहरात वंशाधीन शक सेनाओंने दाक्षिणत्यमें शात कर्णिसे पराजित हो कर सम्भवतः मालवाके राजाके निकट आश्रय ग्रहण किया था तथा उन्हींकी सहायतासे जयदामके पुत्र रुद्रदाम पुनः पश्चिम-भारतमें शकाधिकार विस्तार करनेमें समर्थ हुए थे। गिरनरसे प्राप्त रुद्रदाम के सुबृहत् शिलालेख में लिखा है;—

"स्वेच्छा-पूर्वक समागत और अनुरक्त प्रजा वृन्दको जो विशेष आश्रय दान देते हैं, पूर्व और पश्चिम आकरावन्ती (मालवाप्रदेश), अनूप (द्वारका प्रदेश), नीवृद्ध, आनर्त्त (काठियावाड़), सुराष्ट्र (सोरठ श्वभ्र, भीरुकच्छ (भरोच), सिन्धु, सौवीर (पञ्जावका दक्षिणांश), कुकुर (राजपूतानाका कुछ अंश), अप-रान्त (कोङ्कणप्रदेश), निषाद (भाटनेर प्रान्त) आदि जनपदोंको जिन्होंने अपने बलवीर्यके प्रभावसे उपार्जित और आधिपत्य विस्तार किया था; समस्त क्षत्रियों द्वारा अन्यायरूपसे 'वीर' उपाधिप्राप्त यौधेयोंको जिन्होंने समूल उत्सादन किया था, जिन्होंने दक्षिण पथपति शातकर्णि-को पुनः पुनः पराजित करके भी उनके साथ सम्बन्ध होनेसे उत्सादन न कर महायश प्राप्त किया था और राज्यभ्रष्ट अधिपतिको पुनः राज्य प्रदान किया था, जो स्वयम्बर-सभामें अनेक राजकन्याओं द्वारा वरण किये गये थे, उन्हीं महाक्षत्रप रुद्रदामने सहस्र वर्ष व्यापी गो-ब्राह्मणोंके हितार्थ और धर्म कीर्त्तिवृद्धिके लिए इस सेतु का पुनः निर्माण कराया है¶।"

¶ आगर्भात् प्रभृत्यविहतसमुदितराजलक्ष्मीधारणागुणातः सर्व-वर्णैरभिगम्यरक्षणार्थं पतित्वे वृतेन ...... स्वयमभिगत-जनपद प्रणिपत्तिविशेषशणादेन स्ववीर्यार्जितानामनुरक्त-सर्वप्रकृतीनां पूर्वा-

उक्त प्रमाणसे स्पष्ट है कि, रुद्रदाम राजपुत्र होने पर भी महाक्षत्रप उपाधि उनके पिताको उपलब्ध नहीं थी। इन्होंने अनेकोंको आश्रय दिया था; सम्भव है, उन्हीं लोगों ने मुग्ध हो कर उन्हें अपना अधीश्वर बनाया था, उन्हीं-के साहाय्यसे रुद्रदाम महाक्षत्रप हुए थे और पञ्चनदसे कोङ्कण तक उनके अधिकारमें आ गया था। दक्षिणापथ पति शातकर्णिके साथ इनकी कुटुम्बिता थी, इसीलिए इन्होंने उनका राज्य नहीं लिया था। शातकर्णीके साथ उनका कैसा निकट सम्बन्ध था, यह बात शिलालिपिमें स्पष्ट नहीं है। सम्भव है, उन्होंने सातवाहन वंशीय किसी राजकन्याके साथ विवाह किया हो। इधर नासिक में प्राप्त शातकर्णि वंशीयोंके शिलालेखसे ज्ञात होता है कि—"गोतमीपुत्र शातकर्णि आसीक, अश्मक, मुरक, सुराष्ट्र, कुकुर, अपरान्त; अनूप, विदर्भ, आकर, अवन्ती, विन्ध्यावत्, पारिपात्र, सह्य, कृष्णगिरि, मच, श्रीस्तन, मलय, महेन्द्र, श्रेष्ठगिरि और चकोर पर्वतके राजा कहलाते थे।" ¶

उक्त जनपदोंके स्थानकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि उपर्युक्त जनपदोंमेंसे अधिकांश नहपान वा उषवदातके ही अधिकारमें थे और गोतमीपुत्र शातकर्णिने शकाधिपको समरमें पराजित करके उनका उद्धार किया था। परन्तु यह विस्तीर्ण राज्य उनके वंशधरोंके अधिकारमें न रह सका। पहले जो रुद्रदामका शिलालेख उद्धृत किया गया है, उसके पढ़नेसे स्पष्ट ही मालूम पड़ता है कि, महाक्षत्रप रुद्रदामने दक्षिणापथ-स्थित जनपदोंके सिवा क्षत्रपाधिकार-भुक्त सुराष्ट्र आदि समस्त जनपदोंको अपने अधिकारमें मिला था और उनकी अधीनतामें सुविशाख नामक एक पह्लव सुराष्ट्रमें क्षत्रप हुए थे। परन्तु रुद्रदामने सह्य, कृष्णगिरि आदि दक्षिणापथ-स्थित जनपदों पर कब्जा नहीं किया था; वे स्थान उनके कुटुम्बी शातकर्णिके ही राज्यमें शामिल थे। शातकर्णिके प्रिय पुत्र वाशिष्ठी-पुत्र शातकर्णि (चतुरपन)-ने महाक्षत्रपकी कन्याका पाणिग्रहण किया था ¶। डा० भाण्डारकरका मत है कि वाशिष्ठीपुत्र पुडुमायीने १३०से १५४ ई० तक उनके गोमतीपुत्र यज्ञश्री शातकर्णिने १५४से १७२ ई० तक और उनके पुत्र वाशिष्ठीपुत्र शातकर्णि (चतुरपन)-ने १७२ से १९० ई० तक राज्य किया था†। इधर महा-क्षत्रप रुद्रदामके शिलालेख और प्राचीन मुद्राओंके देखनेसे यह निश्चित होता है कि उन्होंने लगभग १३०से १७० ई० तक राज्यशासन किया था। ऐसी दशामें रुद्रदामके शिलालेखमें जिन शातकर्णिका उल्लेख है, वे यज्ञश्री शातकर्णि ही प्रतीत होते हैं। ज्यादातर यही सम्भव है कि उन्होंने महाक्षत्रप रुद्रदामसे युद्धमें पराजित हो कर रुद्रदामकी दुहिता मढ़रीके साथ अपने पुत्र वाशिष्ठी-पुत्र चतुरपानका विवाह कराया हो। मालूम होता है, इसी सम्बन्धके कारण ही रुद्रदामने दाक्षिणात्य पर हस्तक्षेप नहीं किया था। वाशिष्ठीपुत्र चतुरपनके औरस और शक-राजकन्याके गर्भसे मढ़रीपुत्र शकसेनका जन्म हुआ था। चतुरपनके बाद ये महाक्षत्रप-दौहित्र शकसेन ही दाक्षिणापथके अधीश्वर (१९०से १९७ तक) हुए थे।

शकाधिप रुद्रदामके पितामहने जिस शकाब्दका प्रचार किया था, आगे चल कर वही संवत् उनके और वंशीयोंकी चेष्टासे समस्त भारतमें प्रचलित हो गया।

नीचे रुद्रदाम-वंशीय महाक्षत्रप राजाओंकी वंशावली और राज्यकाल उद्धृत करते हैं।

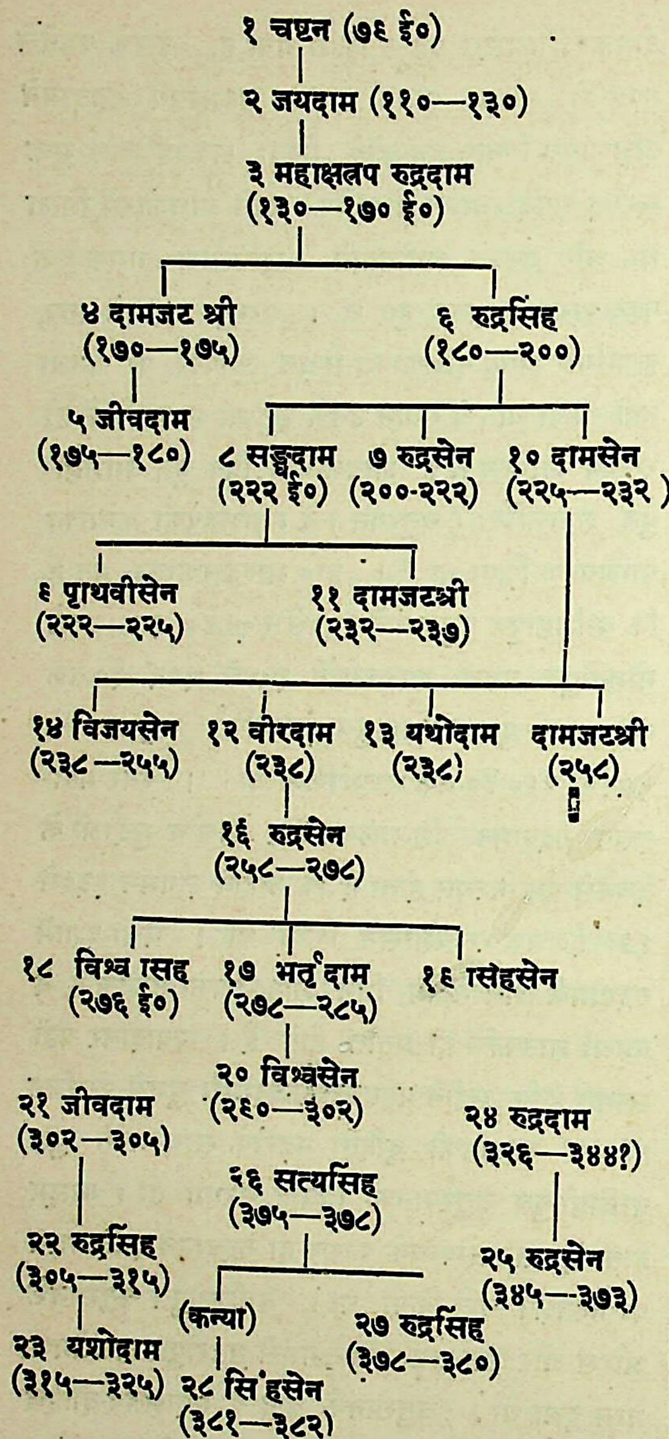
पराकरावन्त्यनूपनी वृदानर्त्त सुराष्ट्र-श्वभ्रभरुकच्छसौवीर-कुकुरापरान्तनिषादानां समग्राणां तत्प्रभावाद्य सर्वक्षत्राविष्कृतवीरशब्दजातोत्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्सादकेन दक्षिणापथपतेस्सातकर्णेर्द्विरपि नीर्व्याजमवजीत्यावजीत्य सम्बन्धावावदूरतरतया अनुत्सादनात् प्राप्तयशसा माद...स्तविजयेन भ्रष्टराजप्रतिष्ठापकेन स्वयमधिगत-महाक्षत्रप-नाम्नानरेन्द्रकन्या-स्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण, रुद्रदाम्ना वर्षसहस्राय गोब्राह्मणाहितार्थं धर्मकीर्त्तिवृद्ध्यर्थं......सेतुं विधाय सर्वनगर-सुदर्शनतरं कारितं।"

Indian Antiguary, vii p, 262,

¶ "असिक-अससक, मूढसुरठकुकुरापरत अनुपविदभ आकरावतिराजस विञ्छावतपारियातसहकण्हगिरिमचसिरिटन मलयमहिंद-सेटगिरिचकोरपवतपतिस।" (पुड़मयीका नासिकका शिलालेख)

† Bhandarkar's Dekkan, 2nd, ed p, 29,

,, ,, p, 39



उक्त वंशसूची और उपलब्ध मुद्राओंकी सहायतासे ज्ञात होता है कि पश्चिम भारतमें शकवंशीय २८ राजाओं ने १म शकाब्दसे ३१० शकाब्द तक राज्य किया है। १४वें और १५वें क्षत्रपके मध्यवर्ती समयमें (लगभग २५१ ई०में) ईश्वरदत्त नामक एक व्यक्तिने शक शासनको नष्ट करनेकी चेष्टा की थी, परन्तु उसकी चेष्टा सफल नहीं हुई। २७वें क्षत्रप रुद्रसिंहने अपनी मुद्रामें 'क्षत्रप महाराज' लिख कर अपना परिचय दिया है।

आर्यावर्त्तमें गुप्त और दक्षिणापथमें चेदि और चालुक्यों-के अभ्युदयसे क्षत्रपराज्य नष्ट हुआ था तथा कालान्तरमें जा कर राज्यसम्पदा-हीन क्षत्रपवंशधरगण हिन्दूसमाज-में मिल गये थे और साथ ही विख्यात शकजातिका नाम भी विलुप्त हो गया था।

राजस्थान-इतिहासके लेखक टाड साहबके अनुवर्त्ती हो कर कहा जा सकता है कि—शक-राजवंशियों-ने ही पश्चिमभारतसे भगाये जाने पर राजस्थानके मरु-देशका आश्रय लिया था और सूर्यवंशीय राजपूत कह कर अपना परिचय दिया था।

गान्धारमें शकराज्य।—जिस समय मथुरामें कुषन-वंशीय वासुदेव और पश्चिम-भारतमें महाक्षत्रप रुद्र-सिंह शकराज्यका शासन करते थे, उस समय किदार नामक महाकुषनवंशीय एक दलपतिने परोपनिषस्-गिरिको पार कर कुषनोंके हाथसे गान्धार जय किया था। थोड़े ही समयके भीतर उन्होंने तमाम काबुल-उपत्यका और पञ्जावका कुछ अंश जीत लिया। इस किदारवंशने ४२८ ई० तक राजत्व किया था। ४२८ ई०में फारसके बादशाह १म वरहरानने किदारवंशियोंको सम्पूर्णरूपसे पराजित किया था और इस तरह किदार-वंशीय उनके अधीन हुए थे। उसके बाद ४५ ई०में हूणोंने प्रवल हो कर गान्धारराज्य अधिकार किया।

हूणोंकी वास-भूमि हुङ्गेरिया थी। पहले ये अक्-सासके किनारे पर रहते थे। ये भी आदिशाक-वंशसे उत्पन्न थे। भारतमें शकाधिकार विस्तृत होने पर इन-मेंसे भी कोई कोई भारतमें आये थे, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु पराक्रान्त कुषन और खहरातवंशके अधिकार-कालमें उनमेंसे किसीने भी सिर न उठाया था। ३८८ ई०में दक्षिण पश्चिमभारतसे शकाधिपत्य विलुप्त हुआ था।

उस समय मध्य एशियावासी हूण लोग निश्चिन्त न थे। अपने सौभाग्य-पथको उन्मुक्त करनेके लिए वे फारसके शासनवंशीय राजाओंके साथ पुनः पुनः युद्ध कर रहे थे। यज्देगर्दके समय लगभग ४४० ई०में शासन-सेनाको परास्त कर हूणोंने भारतके सीमान्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया। उसी समय वे भारता-धिकारकी भी चेष्टा कर रहे थे। गुप्तसम्राट् स्कन्द-

गुप्तके शिलालेखसे मालूम होता है कि, उन्होंने कई वार युद्धमें हूणोंको पराजित (४५२से ४८० ई०) किया था।

प्रत्नतत्त्वविद् कनिंगहम और स्पसन आदिका मत है, कि हूणोंके दलपतिने किदारकुषनोंसे गान्धारराज्य जीत कर ४६५से ४७० ई०के भीतर शाकलमें राजधानी स्थापित की थी। चीन-इतिहासमें वे 'लय-लिहु' और प्राचीन मुद्राओंमेंसे 'राजा लखन उदयादित्य' नामसे प्रसिद्ध है।

लखनके पुत्र महावीर तोरमनने काश्मीरसे राजपूताना तक हूणाधिकार विस्तृत किया था (४६०-५१५ ई०)। उनके पुत्र सुप्रसिद्ध मिहिरकुल थे। इन मिहिरकुलके प्रतापसे काश्मीरसे विन्ध्याद्रि तक समग्र आर्यावर्त्त प्रकम्पित था और गुप्तसाम्राज्य अधःपतित हुआ था। अन्तमें यशोवर्म्म, मालवाके राजा विष्णुवर्द्धन और मगधाधिपति नरसिंह गुप्त वालादित्यको अधिनायकतामें समस्त हिन्दू राजाओंने एकत्र हो कर ५४४ ई०में मिहरकुलको निपातित किया था और साथ ही हूणजातिका प्रवल प्रताप अस्तमित हुआ था। थोड़े ही समय बाद गान्धारके किदारकुषनवंशीय शाहिराजने हूणोंको सम्पूर्णतः पराजित कर अपने नष्टराज्यका पुनः उद्धार किया था। इस समयसे लगा कर ईस्वी १०वीं शताब्दी तक गान्धारराज्य कुषनवंशके ही अधिकारमें रहा। सुप्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक और ज्योतिर्विद् अलवेरुनीने गान्धारके किदारवंशीय राजाओंको कानिरु (कनिष्क)-राजाके वंशधर लिखा है। और फिर उन्होंने राजतरङ्गिणीकार कहलनकी तरह इस किदारवंशको तुरुष्क वंशोद्भव और काबुलके हिन्दू-राजा वतलाया है। इधर ६५६ ई०में प्रसिद्ध मुसलमान भौगोलिक मसूदी कान्धारको (गान्धारको) राजपूतोंके राज्यान्तर्गत लिखा रहे हैं।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि कनिष्क, वासुदेव आदि कोई कोई शकाधिप 'देवपुत्र' उपाधिका व्यवहार करते थे। वही 'देवपुत्र' कालान्तरमें जा कर 'राजपुत्र' हो गया है और उसीसे राजपूत शब्दकी उत्पत्ति है। पहले कई जगह कहा गया है कि शक राजाओंको खरोष्ट्री-लिपिमें 'ा' कार छोड़ दिया गया है। बहुत जगह संस्कृत 'राजपुत्र'के स्थानमें खरोष्ट्री लिपिमें 'रजपूत' शब्दका प्रयोग हुआ है। अब भी राजपूतानाके रहनेवाले क्षत्रियगण अपनेको 'रजपूत' कहा करते हैं।

राजपूतानाके प्रसिद्ध ऐतिहासिक टाड साहवने भी लिखा है कि—राजपूतानामें आनेसे पहले राजपूत लोग जाबुलिस्तान और गान्धारमें राज किया था*। ये शकवंश सम्भूत होने पर भी सभी हिन्दू क्षत्रिय कहलाते थे। टाड साहवने ईसाकी ५वीं शताब्दीका एक शिलालेख प्रकट कर दिया है कि, शक-राजपूतोंने यादवोंकी कन्याका पाणिग्रहण किया था और वे क्षत्रिय कहाते थे। अनेक जैनग्रन्थोंमें भी हूणोंको क्षत्रिय माना गया है। छत्तीस क्षत्रियकुलोंमें हूणजातिने भी स्थान पाया है।

गांधारके शेष किदार-राजके मंत्री कल्लट (कल्लर) नामक एक ब्राह्मण थे। अलबेरुनीने उनका लगतुरमान (अलकितोरमान) नामसे वर्णन किया है। इस ब्राह्मण मंत्रीने अर्थवलसे किदारराजके हाथसे गांधार राज्य छीन लिया था। ये "शाही" कहलाते थे। गांधारमें सैकड़ों वर्ष राज्य करनेके बाद, १०२६ ई०में इस राजवंशका राज्यावसान हुआ और मुसलमानोंका अधिकार बढ़ने लगा। इस राजवंशके साथ काश्मीरके क्षत्रिय राजाओंका अनेक प्रकारका संम्बंध था। राजतरङ्गिणीसे मालूम होता है कि, काश्मीरकी राजमहिषियोंमेंसे बहुतसी गांधार-राजवंशकी कन्याएं थीं। गांधार-राजवंश जंजूह (जञ्ह) राजपूत भी समझे जाते थे। टाड साहवने लिखा है कि, गांधारकी शकवंशीय राजपूत शाखाने राजपूतानेमें आधिपत्य विस्तार किया था।

शक-संस्रव।—शकाधिकारका जो कुछ संक्षिप्त इतिहास कहा गया है, उससे सभी समझ सकते हैं कि शकद्वीप और वहांके शकोंके साथ भारत वर्षका विशेष संम्बंध स्थापित हुआ था। पहले वे सभी सूर्योपासक थे। मगाचार्य जरथुस्त्र द्वारा अग्नि पूजाका प्रचार हुआ था और

---

* गान्धारसे आविष्कृत शक-मुद्राओंमें 'जबुल' उपाधि देखी जाती है। इसीसे शकोंकी वासभूमि जाबुलिस्तान नामसे प्रसिद्ध हुई।

पारस्याधिपतियों द्वारा उनके मतानुसार सौर शक-गण अग्नि-पूजक हुए थे। भारतमें जो शक मुद्रा उपलब्ध हुई हैं, उनमें सूर्योपासना और अग्निवेदी दोनोंके ही चिह्न हैं। भारतमें भी वे प्रथमतः सौर और अग्नि पूजक समझे गये थे। अब भी जो राजपूत अपनेको सूर्यवंशीय और अग्निकुलोद्भव बतलाते हैं उनका ऐसा कहना सम्भवतः उसी पूर्वतन शकोंकी धर्मपरिचायक क्षीण स्मृति मात्र है।

भारतमें जब पहले पहल शकाधिपत्य विस्तृत हुआ था, उस समय यहां बौद्ध और जैन ये दोनों ही धर्म प्रवल थे। परन्तु फिर भी ब्राह्मणोंमें शिवोपासना विलुप्त न हुई थी। शकाधिपतिगण पहले 'शैव' हुए थे। पीछे कनिष्कके समयसे इस वंशमें बौद्ध और जैनधर्मानुराग प्रवल हुआ। अन्तमें ब्राह्मणोंके प्रभावसे अधिकांश शकोंने हिन्दूधर्म ग्रहण कर ब्राह्मणोंका प्राधान्य स्वीकार किया था। भारतीय क्षत्रियोंके प्रभावसे बौद्ध और जैनधर्मका अभ्युदय हुआ था। संभवतः उस क्षत्रिय-प्रभावको विलुप्त करनेके लिए ही नीतिकुशल ब्राह्मणोंने शक राजाओंका आश्रय लिया था। इस समय शक राजाओंने भी अपनेको गोब्राह्मण भक्त कह कर अपना आत्मगौरव प्रगट किया था। बौद्धधर्म जब तक विशेष प्रवल था, तब तक ब्राह्मणभक्त शक राजगण भी सामान्यतः बौद्ध-भिक्षुकोंको आश्रय देते थे। अन्तमें बौद्धानुरक्ति शकोंके हृदयसे बिलकुल ही लुप्त हो गई थी। वे नितान्त गोब्राह्मणभक्त हो गये थे। ब्राह्मणोंने भी उन्हें विशुद्ध क्षत्रिय मान लिया था। इन राजाओंके प्रभावसे ब्राह्मण्यधर्मका पुनरभ्युदय हुआ और पूर्वतन क्षत्रियप्राधान्य नष्ट होनेके साथ साथ बौद्ध और जैन धर्म भी हीन होने लगा।

शक राजा जब क्षत्रिय समझे जाने लगे, तब उनके भारतीयत्व और विशुद्ध-क्षत्रियत्व प्रतिपादनार्थ ब्राह्मण और भट्टकवि-समुदाय वशिष्ठ द्वारा अग्निकुलोत्पत्तिकी कथाका प्रचार करने लगे और वही पीछे जा कर राजपूत समाजमें प्रकृत विवरण समझा जाने लगा। अब कोई भी राजपूत अपनेको शकवंशीय नहीं समझते। कुछ भी हो, टाड साहबने नाना प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि, अब भी राजपूतोंके आचार व्यवहार, रीति-नीति और उत्सवादिमें पूर्वतन शक-प्रभाव विद्यमान है।

शक और आन्ध्रों (सातवाहनों)के राजत्वकालमें काञ्चीपुरमें पल्लवोंका आधिपत्य था। पल्लव देखो। उस समय शकगण सौर और ब्राह्मण-धर्मावलम्बी होने पर भी बौद्धधर्मका अनादर नहीं करते थे, उनके कुटुम्बि आन्ध्रगण बौद्ध थे और उनके यत्नसे नासिक आदि स्थानोंमें बहुतर बौद्धकीर्त्तियां स्थापित हुई थीं। आन्ध्रोंका प्रताप खर्व होने पर, शक, पल्लव और काण्वोंके प्रभावसे पुनः ब्राह्मण प्राधान्यका सूत्रपात हुआ। शकोंके शासनकालमें ईश्वरदत्त नामक त्रैकूटवंशीय एक महाक्षत्रप कोङ्कणमें प्रवल हो उठे। उनके प्रभावसे शकाधिकार विचलित हो गया था। यह त्रैकूटकवंश ही बादमें कलचुरी वा चेदि नामसे प्रसिद्ध हुआ है। किसी किसीका अनुमान है कि, इन्हीं महाक्षत्रप ईश्वदत्तके राज्यारम्भसे ही त्रैकूटक वा चेदि संवत् प्रारम्भ हुआ है। शकाधिपति वीरदामके पुत्र रुद्रसेनने पुनः शकोंके नष्ट-गौरवका उद्धार किया था।

गुप्त-प्रभाव।—ईस्वी ४र्थ शताब्दीमें चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य शकके प्रभावका दमन कर आर्यावर्त्तके सम्राट् हुए थे। उनके पुत्र समुद्रगुप्तके समयमें, पश्चिम दक्षिण भारतसे शकाधिपत्य विलुप्त हुआ। समुद्रगुप्तने अश्वमेध यज्ञ करा कर भारतमें वैदिक मार्ग स्थापित किया। गुप्त राजाओंमें अधिकांश वैष्णव और कोई कोई शैव थे। उनके राज्यमें ब्राह्मणोंको पूर्णसम्मान प्राप्त हुआ था। ईस्वी ४थी शताब्दीके शेषमें चीन-परिव्राजक फाहियान भारतमें आये थे और वे यहां बौद्ध एवं हिन्दू-धर्मका प्रभाव समान देख गये थे। ४२२ ई०में बघेल-खण्डमें उच्चकल्प नामक किसी एक राजवंशका अभ्युदय हुआ था। गुप्ताधिकारके शेषभागमें, ४७६ ई०में, कुसुमपुरमें सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् आर्यभट्टने जन्मग्रहण किया। ४९५ ई०में सेनापति भटार्कके अभ्युदयसे सौराष्ट्रमें वलभीराजवंश प्रतिष्ठित हुआ। उसी समयमें गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्तकी मृत्यु होने पर, मौका देख शाकलपति हूणराज तोरमान मध्यभारत पर्य्यन्त अधिकार कर बैठे। परन्तु कुछ ही समय बाद वे गुप्तराज नरसिंह और वलभीपति भटार्ककी सम्मिलित चेष्टासे पराजित हो गये। तोरमानके परास्त होने पर भी उनके पुत्र मिहिर

कुलने पुनः अपने पूर्वगौरवकी रक्षा की। उन्होंने गुप्त प्रभावका ध्वंस कर पश्चिम और मध्यभारत अधिकार कर लिया। ५३० ई०में कोरूरके रणक्षेत्रमें आर्यावर्त्तके राजाओंकी सम्मिलित शक्तिसे मिहिरकुल पराजित हुए। ५३३ ई०में मालवपति यशोवर्म अपने भुजवीर्य वलसे नाना स्थानोंको जीतकर भारतके सम्राट् हुए थे। उनकी सभामें सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वराहमिहिर रहते थे। उस समय सौराष्ट्रमें वलभी और वातापिपुर वा वादामीमें चालुक्यगण प्रवल हो गये थे। इधर उत्तर भारतमें मौखरिवंशने गुप्तोंके हाथसे पश्चिम मगध ले कर कान्यकुब्जमें अपनी राजधानी स्थापित की थी। वलभी, चालुक्य और मौखरि राजवंश देखो।

स्थाण्वीश्वरका वर्द्धनवंश।—इस समय थानेश्वरमें वर्द्धनवंशने अपना मस्तक ऊंचा कर रखा था। वर्द्धनवंशीय चतुर्थ राजा प्रभाकरवर्द्धनने उत्तरमें हूण और दक्षिणमें गुर्जरोंको पराजित कर महाराजाधिराजकी उपाधि ग्रहण की थी। कान्यकुब्जके राजा ग्रहवर्मा उनके जामाता थे। प्रभाकरके ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्द्धन हूणोंके साथ युद्धार्थ उत्तरको ओर भेजे गये थे। इसी समय प्रभाकरकी मृत्यु हो गई। राज्यवर्द्धनने सम्पूर्ण रूपसे हूणोंको परास्त किया और राजधानीमें लौट कर वे पितृसिंहासन पर आरूढ़ हुए और उस समय सुयोग देख कर मालवपतिने कान्यकुब्ज पर चढ़ाई कर दी और ग्रहवर्माको मार कर राज्य ले लिया। परंतु कुछ ही समय वाद राज्यवर्द्धनने उन्हें पराजित कर कान्यकुब्जका पुनरुद्धार किया था। उस युद्धयात्राके समय वे कर्ण-सुवर्णराज शशाङ्कका दमन करने आये थे। शशाङ्क अत्यन्त बौद्ध-विद्वेषी थे। बोधिद्रुम छेदन करनेके कारण ही राजवर्द्धनको उन्हें दमन करना पड़ा था। कपटाचारी शशाङ्क राजाने उनकी वश्यता स्वीकार कर ली और आमन्त्रणपूर्वक उन्हें अपने शिविरमें बुला कर विश्वासघातकताके साथ उनकी हत्या कर डाली। राज्यवर्द्धनके प्रियतम सहोदर हर्षवर्द्धनने भ्रातृ-हत्याका प्रतिशोध लेनेके लिए ससैन्य गौड़ आ कर शशाङ्कका राज्य ध्वंस कर दिया। कुछ ही समयमें हर्षवर्द्धन आर्यावर्त्तके सम्राट् हो गये थे। कान्यकुब्जमें उनकी राजधानी थी।

आर्यावर्त्त-जयमें समाधिक मत्त हो कर उन्होंने दाक्षिणात्य विजयके लिए आयोजन किया था। वलभीपतिके उनके समक्ष पराजय स्वीकार करने पर भी, चालुक्यराज सत्याश्रय पुलिकेशि उनकी गति रोध करनेमें समर्थ हुए थे। हर्षवर्द्धनने पुलिकेशिसे पराजित हो कर दाक्षिणात्यकी जयाकांक्षा छोड़ दी। उन्हींके राज्यकालमें सुप्रसिद्ध चीन-परिव्राजक यूएनचुयंग भारतमें आये थे। पुलिकेशिने भी उस समय 'महाराजाधिराज परम भट्टारक' उपाधि ग्रहण की थी। उनकी अपूर्व कीर्त्ति शिल्प नैपुण्यकी पराकाष्ठा इलोराके गुहामन्दिरमें खोदित और चित्रित है। प्रसिद्ध कवि वाणभट्ट, मयूर, दण्डी, दिवाकर और मानतुङ्गने जिस प्रकार हर्षदेवकी सभाको उज्ज्वल किया था, उसी प्रकार पुलिकेशिकी सभामें भी रविकीर्त्ति नामक एक प्रसिद्ध जैनकवि रहते थे, जो अपनेको कालिदास और भारविके समकक्ष समझते थे। ६२८ ई०में चापवंशीय राजा व्याघ्रमुखकी सभामें सुविख्यात ज्योतिर्विद् ब्रह्मगुप्त रहते थे। इसके २ वर्ष वाद सुविस्तृत चालुक्य-राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया। पूर्व भागमें विष्णुवर्द्धनने स्वाधीन नृपति हो कर वेङ्गीमें राजधानी स्थापित की। चालुक्य देखो। इसी समय सिंधुप्रदेशके चच नामक एक ब्राह्मणने अपने प्रभुके हाथसे वल-पूर्वक राज्याधिकार छीन लिया था। लगभग ६४८ ई०में हर्षदेवकी मृत्यु हुई। उसके वाद अर्जुन नामक उनके एक सेनापतिने कान्यकुब्ज अधिकार किया। परंतु चीनसे आई हुई बहुसंख्यक बौद्धसेनासे वे पराजित हो गये। इसके थोड़े समय वाद यशोवर्मदेवने कान्यकुब्ज पर कब्जा कर लिया। सुप्रसिद्ध महाकवि भवभूति उनकी सभाको उज्ज्वल किया करते थे।

इसी समयमें मगधमें अपना अपना प्राधान्य स्थापित करनेके लिए गुप्त और मौखरिवंशमें परस्पर महायुद्ध हुआ, जिसमें दोनों ही पक्ष हीनवल हो गये। उसी समय काश्मीरके राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ दिग्विजयके लिए निकले थे और समस्त आर्यावर्त्तको उन्होंने विदलित किया था। कान्यकुब्ज, गौड़, गङ्ग आदि अनेक देशोंको उनकी अधीनता स्वीकार करनेके लिए

बाध्य होना पड़ा था। इसके एक वर्ष बाद मगधमें गोपालका और गौड़में जयन्तका अभ्युदय हुआ था।

हिन्दूधर्माभ्युदय।—गौड़ाधिपति जयन्त अपने जामाता काश्मीरपति जयादित्यकी सहायतासे लगभग ७५० ई०में 'आदिशूर' उपाधि धारण कर पञ्चगौड़के अधीश्वर हुए थे, और कान्यकुब्जाधिपति यशोवर्माकी सभासे उन्होंने पांच ब्राह्मण और पांच कायस्थोंको बुला कर गौड़-मण्डलमें हिन्दू-धर्मका विस्तार किया था। लगभग ७६० ई०में धर्म-पालने आदिशूरके पुत्र भूशूरके हाथसे पौण्ड्रवर्द्धन राज्यका अधिकार ले लिया। महाराज भूशूर राढ़देशमें आ कर राज्य करते रहे। उत्तरांशमें गौड़ आदि स्थानोंमें पालवंश तथा दक्षिणांश राढ़देशमें शूरवंशने बहुत दिनों तक राज्य किया था। पालवंशकी कीर्त्ति वङ्गालके नाना स्थानोंमें अब भी देखनेमें आया करती हैं। वे बौद्ध होने पर भी हिन्दूधर्मका अनादर नहीं करते थे। उनकी साम्यनीतिके प्रचारकालमें वङ्गालमें बौद्ध और हिन्दूधर्म-मिश्रित-तान्त्रिक मत प्रचलितहुआ था। उस तान्त्रिकधर्मका प्रभाव अब वङ्गालसे विलुप्त नहीं हुआ है। पाल राजाओंके समयमें उनके द्वारा परिचालित नालन्दा-विहार ज्ञानचर्चाके लिए जगद्विख्यात हो गया था। चीन, तातार, आनाम, श्याम आदि नाना दूरदेशोंसे सैकड़ों छात्र यहां विद्याजनके लिए आते थे; दस हजार विद्यार्थी यहां बिना व्ययके विद्याभ्यास करते थे। ईस्वी ७वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक भी नालन्दाके विश्वविद्यालयकी समृद्धि देख गये थे। पीछे मुसलमानोंके प्रभावसे भारतका ज्ञान-निकेतन नालन्दा-विहार विध्वस्त हो गया। विहारके निकट बड़गांव नामक स्थानमें उस विश्वविद्यालयके सामान्य स्मृति-चिह्न अब भी मौजूद हैं।

शूरवंशका प्रभाव नष्ट कर सेनवंश पहले पहल राढ़देशमें ही प्रबल हुए; पीछे धीरे धीरे पालवंशको पराजित कर उन्होंने मिथिला, गौड़ और समस्त वङ्गाल पर अधिकार कर लिया। सेनवंशीय राजाओंमें महाराज बल्लालसेन देवका नाम वङ्गालमें प्रसिद्ध है। ये महातान्त्रिक थे। ब्राह्मण और कायस्थोंमें कुलविधिका प्रचलन कर ये चिरस्मरणीय हुए हैं। इनके पुत्र लक्ष्मण सेनके समयसे ही वङ्गाल मुसलमानोंके हाथमें जाने लगा था। सेनवंशीय परवर्त्ती राजाओंने पूर्ववङ्गाल और चन्द्रद्वीपमें बहुत काल तक राज्य किया था; फिर भी उनका पूर्व-प्रताप नष्ट हो चुका था।

'शूर' 'पाल' 'सेनराजवंश' और चन्द्रद्वीप देखो।

मगध और गौड़में पालवंशके प्रभावके समय कान्यकुब्जमें यशोवर्म-वंशीय चक्रायुध इन्द्रायुध आदि राजा राज्य करते रहे; उसके बाद भोज और राठोरोंका आधिपत्य विस्तृत हुआ। भोज, राठोर और राष्ट्रकूट राजवंश देखो। ईसाकी ८-१०वीं शताब्दीमें, कालञ्जरमें चन्द्रात्रेय वा चन्देल और नर्मदाके किनारे त्रिपुरी वा तेवार नामक स्थानमें हैहय वा चेदिवंश प्रतिष्ठित हुआ। प्रसिद्ध चाहमन वीर पृथ्वीराजने चन्देलराज परमर्दिदेवको पराजित कर कालञ्जरराज्य दिल्ली साम्राज्यमें मिला लेने पर भी हैहय-वंशीय चेदिराजाओंने किसीकी भी वश्यता स्वीकार नहीं की। मुसलमानोंके अधिकारमें भी यह वंश अपनी स्वाधीनताकी रक्षामें समर्थ था। १७३० ई०में महाराष्ट्राधिनायक रघुजी भौंसलेने हैहय-राजधानी रत्नपुरको अपने राज्यमें मिला लिया। अब भी रत्नपुरका हैहयवंश मध्य-प्रदेशमें विद्यमान है।

सिन्धुप्रदेशमें हिन्दूराज्य।—पहले लिख चुके हैं कि, ईसाकी ७वीं शताब्दीमें सिन्धुप्रदेशमें ब्राह्मणाधिपत्य विस्तृत हुआ, परंतु ब्राह्मणगण उसे अधिक दिन तक भोग न सके। ७११ ई०में महम्मद-इ-बन कासिमने सिंधु पहुंच कर ब्राह्मणराज दाहिरको पराजित और निहत किया। उस समय अरबियोंके अत्यचारसे सिंधु-प्रदेश विशेष उत्पीड़ित हो गया था। ७५० ई०में मुसलमानोंको भगा कर सौवीर राजपूतोंने सिंधुप्रदेशमें अपना आधिपत्य जमाया। गुजरातके चालुक्योंने अनेक बार उनके राज्य पर आक्रमण किया था। ईसाकी १२वीं शताब्दीके अंतमें नसीरउद्दीन कुबचने सिंधुप्रदेशका उत्तरांश जीत लिया और २४ वर्ष तक वे उसका उपभोग करते रहे। १२१२ ई०में उनकी मृत्यु होने पर 'जाम' उपाधिधारी सौमन राजपूतोंने उत्तर-सिंधु पर अधिकार किया। १३८० ई०में अंतिम हिंदू राजा तिम्मजी जामकी मृत्यु हुई, उनके वंशधरोंने इसलामधर्म ग्रहण

किया और उसके साथ ही साथ सिंधुप्रदेशमें मुसलमान-का प्रभाव फैल गया। सिन्धुप्रदेश देखो।

दिल्लीका हिन्दूराज्य।—किसी समय इन्द्रप्रस्थमें चंद्र-वंशीय क्षत्रिय नृपतिगण प्रवल प्रतापसे राज्य कर गये हैं। क्षेमकसे इस वंशका अवसान हुआ है। उसके वाद प्राचीन इन्द्रप्रस्थकी समृद्धि शकोंके हाथसे विध्वस्त हुई थी। वहुत कालके उपरान्त, लगभग ६३६ ई०में अनङ्गपालके प्रयत्नसे यहां तोमरवंशीयोंने राज्य विस्तार किया। इस वंशके १६ राजाओंके राजत्व करनेके वाद ११५१ ई०में अजमेरके राजा चाहमानवंशीय विशालदेवने दिल्ली पर अधिकार किया। इसी सूत्रसे तोमरवंशीय शेष राजा अनङ्गपालने अपनी कन्याका विवाह विशाल-देवके पुत्र सोमेश्वरके साथ किया था और प्रतिज्ञा की थी कि सोमेश्वरका पुत्र दिल्ली-सिंहासन पर वैठेगा। तदनुसार सोमेश्वरके पुत्र पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेरके राजा हुए। यह चाहमानवंशीय वीर नृपति किसी समय समग्र आर्यावर्त्त पर अधिकार-विस्तारमें समर्थ होने पर भी, देशवैरी राठोरकुल-कलङ्क जयचन्दके षड्-यन्त्रसे ११६१ ई०में मुसलमानोंके हाथ परास्त और निहत हुए; और उसके साथ ही आर्यावर्त्तसे हिंदू-साम्राज्यका भी अन्त हो गया।

परमार, चाहमान, पृथ्वीराज और राजस्थान देखो।

दाक्षिणात्यमें हिन्दूप्रभाव।—ईसाकी १२वीं शताब्दीमें आर्यावर्त्त मुसलमानोंके हस्तगत होने पर भी दाक्षि-णात्यके हिन्दू राजागण तव भी स्वाधीन थे। अति प्राचीन समयसे ही अरव, मिश्र, ग्रीस और सिरियाके साथ दाक्षिणात्यके वाणिज्यका सम्बन्ध था। दाक्षिणात्य देखो। पहले लिख चुके हैं कि, ईसाकी १म शताब्दीसे ४र्थ शताब्दी तक पश्चिम भारतमें शकाधिपत्य विस्तृत था; और उस समय सातवाहन, पल्लव, पाण्ड्य, कादम्व आदि राजगण नाना स्थानोंमें राज्य करते थे।

बौद्ध सातवाहनोंका प्रभाव विलुप्त होने पर हिन्दू कादम्बोंका प्रभाव फैला। उस समय महामति शङ्कराचार्य केरलमें आविर्भूत हुए। उन्होंने बौद्धदर्शन और वेदांत-के सारधर्मको ले कर मायावाद (अद्वैतावाद)का प्रचार किया, जिससे दाक्षिणात्यमें बौद्ध, जैन और विभिन्न तान्त्रिक प्रभाव निवारित हुआ। शङ्कराचार्य देखो।

सातवाहन, पल्लव, पाण्ड्य, आदि राजाओंका प्रभाव मन्द होने पर चालुक्य; राष्ट्रकूट, गङ्ग और चोल आदि क्षत्रिय राजाओंका प्रभाव विस्तृत हुआ। चालुक्योंके विषयमें पहले ही लिखा जा चुका है। मिताक्षराके रचयिता विज्ञानेश्वर चालुक्य-राजसभाके प्रधान पण्डित थे। मान्यखेटमें राष्ट्रकूटोंने, चेरमें (वर्तमान सेलम नामक स्थानमें), गङ्गोंने और काञ्चीमें चोल राजाओंने राजधानी स्थापित की थी। १२वीं सदी तक ये स्वाधीन राजा रहे और परस्परमें युद्ध विग्रह भी किया करते थे। चालुक्य, राष्ट्रकूट, गङ्गा, मौर्य, चोल, काञ्ची-पुर शब्द देखो।

ईसाकी ११वीं शताब्दीमें सूर्यवंशीय राजेंद्र चोलने सम्पूर्ण दाक्षिणात्यका अपने अधिकारमें करके राढ़, वङ्गाल, विहार आदि नाना प्रदेशोंके राजाओंसे कर लिया था। गौड़ देखो।

११५७ ई०में चेदि-कुलोद्भव विज्वलदेवने चालुक्य-राज ३य तैलपको परास्त कर चालुक्य राजधानी-कल्याण पर कब्जा किया था। उनके प्रधान मंत्री वासव लिङ्गायत सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता थे। लिङ्गायत देखो। विज्वलदेवके वंशधरोंने केवल २० वर्ष राज्य किया। उसके वाद कर्णाटके होयशल वल्लालवंशीय २य वल्लालने उनका राज्य अधिकार कर लिया। कुछ ही समय वाद चालुक्यवंशीय ४र्थ सोमेश्वरने अपने महासामन्त काकतेय राजाओंको सहायतासे पितृ-राज्य उद्धार करने की चेष्टा की थी, परंतु महावीर २य वल्लालने उनकी सम्पूण चेष्टाओंको व्यर्थ कर दिया था।

दाक्षिणात्यमें यादवराज्य।—वल्लालगण यादववंशीय थे, और सभी श्रीकृष्णके वंशधर कहलाते थे। इनका आदि निवास मथुरा था। इस वंशके दृढ़प्रहार नामक एक व्यक्तिने दाक्षिणात्यमें एक छोटोसा राज्य स्थापित किया था। राष्ट्रकूट और चालुक्य राजाओंके अधीन महासामंत रूपमें उनके १८ मस्त वहीं वीते। उसके वाद १६वें राजा भिल्लमने ११८६ ई०में कल्याण अधिकार कर राज्यका विस्तार किया और देवगिरिमें राजधानी कायम की। होयशल वल्लालोंके साथ इनका तीन पुश्त तक विवाद चला, फिर यादवगण ही दाक्षिणात्यके सर्व प्रधान अधीश्वर हुए। सङ्गीतरत्नाकरके प्रणेता प्रसिद्ध

कायस्थ पण्डित सोढल और उनके बाद चतुर्वर्गचिन्तामणिप्रधान मंत्री थे। प्रसिद्ध वैयाकरण वोपदेव भी इस यादवराजसभाके मुख्य पण्डित थे। यादवराजोंके अधीन जितने भी महासामंत थे, उनमें निकुम्भगण ही प्रधान थे। इसी निकुम्भ-राजसभामें अद्वितीय ज्योतिर्विद् भास्कराचार्य अवस्थान करते थे।

होयशल वल्लालगण भी यादववंशीय थे। पहले ये प्राच्य चालुक्य राजाओंके अधीन महासामन्त समझे जाते थे। इस वंशके १म वल्लालने भी अपनेको स्वाधीन नृपति घोषित किया था। उनके वंशधर विष्णुवर्द्धनने १११३से ११३७ ई० तक राज्य किया था और उनका अधिकार बहुत विस्तारको प्राप्त हुआ था। सुप्रसिद्ध वैष्णव दार्शनिक रामानुज इसी समयमें आविर्भूत हुए और यादवपति विष्णुवर्द्धनने उनसे वैष्णव धर्म ग्रहण किया। चालुक्योंका सम्पूर्णतः अधःपतन होने पर, होयशल वल्लालोंने महिसुर तथा और भी बहुतसे प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। इस वंशके २य वल्लालने "सम्राट्" उपाधि ग्रहण की थी। उसके बाद इस वंशके ५ राजा और हुए। उसके बाद अलाउद्दीनके सेनापति मालिक काफूरने आ कर वल्लालराज्यका ध्वंस कर डाला। यादववंश देखो।

किसी समय काकतेय-राजगण चालुक्योंके अधीन थे और एक बार काकतेय-राज वोम्मने चालुक्योंके प्रनष्ट गौरवके उद्धारके लिए भी चेष्टा की थी। परंतु दैववश चालुक्योंका अधःपतन होने पर वोम्म स्वाधीन हो गये। वर्तमान निजाम-राज्यके अन्तर्गत ओरङ्गलमें स्वाधीन काकतेय राजाओंका राजधानी थी। सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ इस काकतेय-राजसभामें विराजमान थे। अलाउद्दीनने काकतेय प्रभावको नष्ट भ्रष्ट करनेकी बहुत कोशिशें कीं परंतु वे कृतकार्य न हो सके। वाह्मणीवंशके साथ काकतेय राजाओंका शताब्दव्यापी घोर समर होता रहा था। अहमदशाह वाह्मणीके साथ होनेवाले युद्धमें काकतेय प्रतापरुद्रने अपना जीवन विसर्जन किया था; तथापि इस हिंदू वीरवंशने १५० वर्ष तक ओरङ्गलमें अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की थी। १४२४ ई०में ओरङ्गलराज्य वाह्मणीराजके अधीन हुआ। काकतेय देखो।

काकतेयवंशके अभ्युदयके साथ कलिङ्गमें गङ्गवंश भी प्रवल हो उठा था। चालुक्यराजके दौहित्र महावीर चोड़गङ्ग ९९९ शकमें कलिङ्गके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए थे। इन्होंने उत्कल जय करके स्थायीकीर्त्ति रखनेके लिए जगन्नाथका प्रसिद्ध महामन्दिर और भुवनेश्वरके केदारगौरी आदि मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा कराई थी। इस गङ्गवंशके राजाओंने लगभग सौ वर्षसे अधिक समय तक उत्कलका शासन किया था।

गाङ्गेय देखो।

गङ्गराजगण चन्द्रवंशीय थे। इनके अवसानके बाद सूर्यवंशीय राजाओंने उत्कलका शासन किया। इस वंशके कपिलेन्द्रदेवका नाम भारत-प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने बाहुबलसे दाक्षिणात्यके मुसलमान राजाओंको अनेक बार परास्त किया था। और तो क्या, दिल्लीश्वर तक उनके प्रभावसे विचलित हो गये थे।

कपिलेन्द्रदेव, उत्कल और गोपीनाथपुर शब्द देखो।

इस वंशके प्रतापरुद्रके बाद उड़िष्यामें विद्रोह उपस्थित हुआ। तेलिङ्गा मुकुन्ददेवने कौशलसे राज्याधिकार किया। उस समय हिन्दुओंके अन्तर्विवादसे उत्कलराज्य हीनवल हो गया था। सुयोग समझ कालापहाड़ने उड़िष्या आक्रमण कर (१५६५ ई०में) उसे वङ्गालके मुसलमान शासनमें सम्मिलित कर लिया।

भारतमें वैदेशिक विप्लव और मुसलमानका आगमन।

भारतमें आर्य-उपनिवेशके बाद, विभिन्न देशवासियोंका समागम हुआ। पाश्चात्य राज्योंके प्राचीन इतिहासोंकी आलोचना करनेसे विदित होता है कि, बहुत पूर्वकालमें इजिप्त देशीय ओसिरिस, फेराव, रामसेस और आसिरीय साम्राज्ञी सेमिरामिसने भारत-सीमान्त पर चढ़ाई की थी। परंतु इस घटनाका कोई प्रकृष्ट उपाख्यान लिपिवद्ध न होनेसे, इसके मौलिकत्वके विषयमें सन्देह रह जाता है। फिर भी पारस्य राज दरायुसके भारताक्रमणकी बात किसीसे छिपी नहीं है। उनके राजस्वका लगभग एक तृतीयांश भारतीय स्वर्णमुद्रासे संगृहीत होता था। विजेता पारस्यराजशक्तिके अवसानके समय पुनः पञ्जाव प्रदेशमें क्षत्रियोंका

प्राधान्य स्थापित हुआ। यही कारण है कि, ईसासे पूर्वकी ४थी शताब्दीके शेषभागमें माकिदन-पति अलेकसन्दरके भारताक्रमणसे पश्चिम-भारतमें यवनराजवंशका समावेश पाया जाता है। अलेकसन्दरके साथ क्षत्रियराज पुरु और मौर्यराज अशोकने कैसी प्रतिद्वन्द्विता की थी, यह बात अन्यत्र लिखी गई है।

अलेकसन्दर, पुरु, प्रियदर्शी और यवन देखो।

यवन-राजवंशके अवसानके साथ साथ क्रमशः भारतमें शक और हूणजातिका प्रभाव विस्तृत हुआ। परन्तु इनमेंसे कोई भी भारतके एकच्छत्राधिपत्यको प्राप्त नहीं हो सके। इसके बाद भारतमें इसलामधर्मावलम्वी म्लेच्छोंका प्रादुर्भाव हुआ।

ईसाकी ६ठी शताब्दीके शेषभागमें और ७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें भारतवर्षमें एक प्रबल सामयिक विप्लव संघटित हुआ। उस समय ब्राह्मण्य-धर्मके धीर अभ्युत्थानके कारण बौद्ध-प्राधान्य विलुप्त हो रहा था। जिस समय प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक यूएनचुयांग बौद्धधर्मग्रंथोंके संग्रहार्थ कृतनिश्चय हो कर हिमालयके अत्युच्च प्रदेशको पार कर भारतमें विचरण कर रहे थे, ठीक उसी समय सुदूर पश्चिम-अरबमें इसलामधर्मके प्रवर्तक महम्मदकी मृत्यु हुई थी। महम्मदीय धर्मोन्मादसे मत्त मुसलमानोंने एक एक कर उत्तर-अफरीका, रोमसाम्राज्य और पूर्वमें भारत पर्यन्त समस्त भूभाग हस्तगत कर लिया था। ६४७ ई०में ओसमानने थाना और भरोंच जय करनेके अभिप्रायसे सेना भेजी थी। ६६२ और ६६४ ई०में पुनः सिंधुप्रदेश पर आक्रमणकी चेष्टा की गई। इसके उपरांत महम्मदकी मृत्युके लगभग ८० वर्ष बाद बोगदादके राजा खलीफा वालिदके महम्मदबीन-कासिम नामक अरबी सेनापतिने ७११ ई०में बलुचिस्तानके मरुराज्यको पार कर सिंधुप्रदेश पर चढ़ाई की। उस समय दाहिर नामक एक ब्राह्मण नरपति सिंधुप्रदेशके अधिपति थे। उन्होंने उद्धत और उन्मुक्तकृपाण अरबी सेनाका सामना न कर सकनेके कारण अपना राज्य मुसलमानोंको दे दिया। युद्धके समय आलोर और ब्राह्मणावाद नामके दो नगर नष्ट हो गये थे। कासिम और उसके वंशके मुसलमान यहां ज्यादा दिन राज्य नहीं कर सके। सौवीर-क्षत्रियोंने लगातार कई बार युद्ध करके मुसलमानोंके नाकोंदम कर दिया और आखिर सिन्धुराजसे उन्हें भगा कर ही दम ली।

इसी समयसे भारतमें क्षत्रियप्राधान्य समुपस्थित हुआ। मुसलमानों द्वारा पराजित होनेके बादसे सभी क्षत्रिय सन्तान आत्म-रक्षामें तत्पर होने लगीं। राजा हर्षवर्द्धनके राजत्वके बाद और कोई भी हिन्दू राजा भारतमें एकच्छत्राधिपत्य स्थापन नहीं कर सके थे। वङ्ग, मगध, कन्नोज, कालञ्जर, मालवा, रत्नपुर, गुजरात, सिंधु पञ्जाब, दिल्ली, अजमेर और समग्र दाक्षिणात्य प्रदेश छोटे छोटे राजाओं द्वारा शासित होते थे। इतिहास-प्रसिद्ध राष्ट्रकूट, चालुक्य, परमार, चौहान आदि क्षत्रिय राजवंशोंने स्वतन्त्र पताकाएं उड़ाई थीं। उनमें परस्पर ईर्षानल प्रज्वलित रहनेके कारण ऊपरसे सद्भाव होते हुए भी पारस्परिक एकता नहीं थी।

भारतकी ऐसी आभ्यन्तरिक विशृङ्खलताका अनुभव कर ९७७ ई०में गजनीके सिंहासन पर बैठनेके बादसे सवक्तगिन क्रमशः भारत-सीमान्तमें पदार्पण करनेकी चेष्टा करने लगे। भावी विपत्तिकी आशङ्का देख लाहोरके राजा जयपालने उनके विरुद्ध युद्धकी आयोजना की। उस समय दिल्ली, अजमेर, कालञ्जर और कनौज आदिके राजाओंने इनकी सहायता की थी; किन्तु दुर्भाग्यवश वे जयी न हो सके। सवक्तगिनने पेशावर प्रदेश अपने राज्यमें मिला लिया। उनके पुत्र महमूदने १००१ से १०२६ ई० तक १७ बार भारत पर चढ़ाई की थी, जिसके फलस्वरूप पश्चिममें पञ्जाब, दक्षिणमें गुजरात, पूर्वमें कन्नोज उत्तरमें काश्मीर पर्यन्त भूभाग उनके हाथमें चला गया। उन्हें भारतमें राज्य करनेकी आकांक्षा नहीं थी, बल्कि धन लूट कर वे परिपुष्ट हुए थे। यही कारण है कि वे भारतमें मुसलमान-राज्य स्थापित न कर सके। १०३० ई०में महमूदकी मृत्युके बाद लाहोर और नागरकोट आदि स्थानोंमें हिन्दूओंने स्वाधीनताकी ध्वजा उड़ानेका प्रयास किया था। लाहोर कुछ दिनके लिए महमूद-राजवंशके वैरामके शासनाधीन था। अफगानिस्तानमें घोर और गजनीवंशके पारस्परिक विरोधसे गजनीराजवंश उत्सन्न हुआ और घोरराजवंश क्रमशः काबुलराज्यमें

प्रतिपत्ति विस्तार करता रहा। ११८६ ई० तक गजनी वंशने लाहोर-राजधानोमें शासनकार्य चलाया था।

गोर राजवंशके प्रतिष्ठाता महम्मद गोरीने ११७६ ई०में लाहोर अधिकार किया। ११८६ ई०में वे खुसरू मालिकको पराजित और बन्दी कर लाहोर लाये और फिर उन्होंने समस्त पञ्जाब प्रदेशमें अपना प्रभुत्व फैलाया।

जिस समय अफगानिस्तानमें गजनी और गोर सरदारोंका परस्पर विरोध चल रहा था, ठीक उसी समयमें भारत-साम्राज्य छोटे राज्यखण्डोंमें विभक्त हो कर परस्पर की प्रतियोगितामें फँसा हुआ था। दिल्ली और अजमेरके राजा चौहान कुलोद्भव पृथ्वीराज और कान्यकुब्जाधिपति राठोरवंशोय जयचन्द इन दोनोंमें उत्तराधिकारको ले कर विरोध उपस्थित हुआ। गोरी-राजधानी लाहोरके निकटस्थ राजाओंको परस्परमें विरुद्धाचारी देख, ११९१ ई०में मौका पा कर महम्मद दिल्ली आक्रमणके लिए अग्रसर हुए। तिरोरीके युद्धक्षेत्रमें मुहम्मद गोरी पराजित हो कर भाग गये। परन्तु ११९३ ई०के थानेश्वर युद्धक्षेत्रमें पृथ्वीराज पकड़े गये। उनके साथ साथ भारतका हिन्दू-शासन भी विलुप्त हो गया। चन्द्रवंशीय पाण्डवोंके वलवीर्यसे प्राप्त इन्द्रप्रस्थ राजधानी इतने दिनों बाद मुसलमान-राजवंशके हाथमें चली गई।

दिल्ली नगरमें राजपाट स्थापन कर महम्मद गोरीने दूसरे ही वर्ष (११९४ ई०में) कनौज और बनारस पर चढ़ाई कर दी। इटावाके युद्धमें जयचन्द्र पराजित और निहत होनेके बाद उनका राज्य मुसलमान राज्यमें मिला लिया गया। बनारस और कन्नौज विजयके बाद जय-लब्ध धनरत्नको ले कर महम्मद गजनीको तरफ चल दिये। जाते समय वे अपने विश्वस्त सेनापति कुतबुद्दीनको राज्यशासनके लिए प्रतिनिधि नियुक्त कर गये। कुतबुद्दीनने दिल्ली राजधानीसे शासन-सम्बंधी सुव्यवस्था करके ११९५ ई०में ग्वालियर जय किया। उनके प्रसिद्ध सेनापति महम्मद-इ-बख्तियारने ११९९ ई०में वङ्गालकी राजधानी नवद्वीप पर चढ़ाई की और वङ्गाल पर कब्जा कर लिया। अस्सी वर्षके वृद्ध राजालक्ष्मणसेन राज-प्रासादको छोड़ कर विक्रमपुरकी तरफ भाग गये।

सबक्तगीनके अधिकारके समय (९७७ ई०) पेशावर प्रदेश अफगानिस्तान राज्यकी सीमामें शामिल था। महमूद उस सीमाको पञ्जाबके पश्चिमांश तक विस्तृत कर गये। उसके बाद महम्मद गोरीने सिन्धुके मुहानेसे ले कर गङ्गाके मुहाना तक विस्तृत आर्यावर्त्त-विभागमें मुसलमान-प्रभुत्व स्थापन किया था।

उनकी मृत्युके बाद (१२०६ ई०)-से प्रतिनिधि कुतबउद्दीन गजनीके अधीनता-पाशका छेदन कर स्वाधीन रूपसे दिल्ली राजधानीमें राज्य कर रहे थे; इसलिए उन्हें ही भारतवर्षके प्रथम मुसलमान-सम्राट् समझना चाहिए। उनके राजत्वकालसे इब्राहिम लोदीके शासनकाल (१२०६ से १५२६ ई०) तकके समयको पठानवंशका अधिकारकाल कहा जा सकता है।

गुलामवंश।—कुतबउद्दीन पहले क्रीतदास थे, इसलिए उनके वंशके १० राजाओंको इतिहासमें 'गुलामराज' कहा है। कुतबद्दीनके शासनकालमें नसीरउद्दीन मुलतान और सिन्धु-प्रदेशके तथा बख्तियार वङ्गाल और विहार प्रदेशके शासनकर्त्ता नियुक्त थे। अलतमस नामक उनके एक क्रीतदासको राजानुग्रहसे जामातृपद प्राप्त हुआ था। उसी व्यक्तिने कुतबउद्दीनके पुत्र आरामको राज्यच्युत कर दिल्ली-सिंहासन अधिकार किया। उन्होंने मालवा जय कर राजपूतानाके सिवा समस्त आर्यावर्तमें मुसलमान प्राधान्य स्थापन किया था।

१२३६ ई०में अलतमसकी मृत्युके बाद उनके पुत्र रुकुनउद्दिन और फिर कन्या रजिया सिंहासन पर बैठी थी। रजियाके सिवा और कोई भी मुसलमान रमणी भारतके सिंहासन पर नहीं बैठी। एक क्रीतदासके प्रति अत्यन्त अनुरक्त होनेके कारण रजिया राज्यच्युत हुई। उसके बाद उनके भाई बहराम, रुकुनके पुत्र मसाउद और अलतमसके पुत्र नसीरउद्दीनने यथाक्रमसे राज्य किया। अलतमसके राजत्वकालमें तातार देशमें चङ्गेज़खां नामक मुगलवंशका जो सौभाग्य सूर्य उदित हुआ था, उसीके प्रखरतर कर प्रसारणसे नसीरका भारत-साम्राज्य भस्मीभूत होनेके उन्मुख हो गया था। मुगल लोग भारत पर कई बार आक्रमण करके भी गुलामवंशकी विशेष हानि नहीं कर सके थे। नसीरको मृत्युके बाद

उनके बहनोई गयासउद्दीन वलचनखां सिंहासन पर बैठे। उनके राजत्वकालमें बङ्गालके नवाव तुग्रिलखां विद्रोही हो गये थे। गयासउद्दीनने अपने हाथसे उन्हें मार कर अपने पुत्र वखराखांको बङ्गालके सिंहासन पर विठाया। उनकी मृत्युके बाद वखराखांके पुत्र कैकोवाद दिल्ली सिंहासन पर बैठे। परन्तु ये राज्य-रक्षामें असमर्थ होनेके कारण, खिलजीवंशीय पराक्रान्त अमात्योंने उन्हें मार कर जलालउद्दीनको दिल्लीका सिंहासन प्रदान किया।

गुलामवंशके राजाओंका सिंहासन पर बैठनेका समय इस प्रकार है:—

कुतवउद्दीन	१२०६	वहराम	१२३६
आराम	१२१०	मसाउद	१२४१
अलतमस	१२११	नसीरउद्दीन	१२४६
रुकनउद्दीन	१२३५	बुलवन	१२६६
सुलताना रजिया	१२३६	कैकोवाद	१२८६

खिलजीवंश।—कैकोवादको राज्य-च्युत करके खिलजी-राजवंशके प्रतिष्ठाता जलालउद्दीन दिल्ली-सिंहासन पर बैठे। उनके उपयुक्त भ्रातुष्पुत्र अलाउद्दीनने बुन्देलखण्ड, मालवा और दाक्षिणात्य जय कर पितृव्यका शासन-सीमाका विस्तार किया। १२६४ ई०में उन्होंने सेना-सहित विंध्यापर्वत अतिक्रम कर महाराष्ट्रके यादववंशीय राजा रामराज पर आक्रमण किया। इस प्रकार अचानक अतर्कित अवस्थामें आक्रांत होनेके कारण वे राज्यकी रक्षा न कर सके, इसलिए उन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली। जयोद्दृप्त अलाउद्दीन (१२६५ ई०में) राजधानीको लौट रहे हैं, सुन कर जलाउद्दीन उल्लसित मनसे उन्हें आलिङ्गन करनेके लिए अग्रसर होनेवाले थे कि इतनेमें क्रूर हृदय अलाउद्दीनने उन्हें मार डाला और स्वयं दिल्लीके सिंहासन पर अधिकार कर बैठे।

अल्लाउद्दीनके चित्तोर आक्रमणकी वात किसीसे छिपी नहीं है। राणा भीमसिंहकी पत्नी प्रथितनामा पद्मिनीदेवीने इसी युद्धमें चितानलमें आत्मविसर्जन किया था। दिल्लीश्वरके प्रसिद्ध सेनापति राजपूतवंशीय मालीक काफूर द्वारा परिचालित दाक्षिणात्य विजय वाहिनीने देवगिरि और द्वारसमुद्रके यादवराज तथा ओरङ्गलके काकतेयोंको पराभूत कर रामेश्वर तक दक्षिण भारतको तहस-नहस कर डाला था। उनके अन्यतम सेनापति उलथखांने १२६७ ई०में कर्णदेवको पराजित कर गुजरात अधिकार किया था। किन्तु अस्थिर-चित्तता और कर्तव्यहीनताके कारण दिल्लीश्वर ज्यादा दिन इस साम्राज्यसुखको न भोग सके। उनके अधीनस्थ मुसलमान शासनकर्त्ताओंके विद्रोह, कुतलूखां द्वारा परिचालित मुगल-सेनाके आक्रमण तथा चित्तोर, गुजरात और महाराष्ट्र प्रदेशके हिन्दू नरपतियोंके स्वाधीनता-लाभके प्रयासने अन्तिम जीवनमें उन्हें बहुत ही हैरान कर दिया था। १३१६ ई०में उनकी मृत्युके समय हरपालदेवने दाक्षिणात्यमें स्वाधीनताकी ध्वजा फहराई थी।

अलाउद्दीनकी मृत्युके वाद काफूरने सिंहासन-अधिकारकी चेष्टा की, परन्तु सम्राट्के तृतीय पुत्र मुवारकने उन्हें गुप्तभावसे मरवा कर वे खुद सिंहासन पर बैठे। राजपद पर अधिष्ठित हो कर उन्होंने अपने भाई और शत्रुपक्षीय अमात्योंको मरवा दिया। पश्चात् दाक्षिणात्यकी ओर अग्रसर हो कर हरपालदेवको पराजित और निहत किया। मालिक खुसरू नामक एक इसलाम धर्मावलम्बी हिन्दू उनका विशेष प्रियपात्र था। राजानुग्रहसे वह व्यक्ति राज्यका हर्त्ता-कर्त्ता हो गया था। दिल्लीमें मद्यपान-निरत और सुख-शय्यामें पड़े पड़े मुवारक जब अपने ऐश्वर्यका उपभोग कर रहे थे, तब उनके प्रियतम खुसरू दाक्षिणात्य और मालावार-उपकूलवर्त्ती प्रदेशोंको जीत कर उनकी समृद्धिको हड़पनेके लिए अग्रसर हुए और सेना-सहित वहांसे लौट कर उन्होंने मुवारककी हत्या की। परन्तु उनका सिंहासन-प्राप्तिका सुख-स्वप्न शीघ्र हो नष्ट हो गया। पञ्जावके शासनकर्त्ता गयासउद्दीन तोगलकने सेना-सहित उपस्थित हो कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया और साथ ही खुसरूका भी काम तमाम किया (१३२१ ई०में)।

खिलजीवंशका अधिकारकाल (१२८८-१३२१)

जलालउद्दीन	१२८८	मुवारक	१३१६
अलाउद्दीन	१२६५	खुसरू	१३२१

तुगलकवंश।—मालिक काफूर और मालिक खुसरूके द्वारा समग्र दाक्षिणात्य भूमि मुसलमान-शासनाधीन होने पर भी उस समय महाराष्ट्र-भूमि हिन्दूराजाओंके

प्राधान्यसे पूर्ण थी, परन्तु गयासुद्दीनने उस देशको जीत कर हिन्दूशासनका उच्छेदन कर दिया था। विदर और ओरङ्गलके राजाको कर देने पर उन्हें छुटकारा मिला था। गियासउद्दीन सुवर्णग्राम जीत कर जब राजधानोको लौटे तो पुत्र जूनाखां (आलुफखां)के षड़यन्त्रसे वे भी मारे गये।

वृद्ध पिताको मार कर 'महम्मद तुगलक' नाम ग्रहण-पूर्वक आलुफखांने १३२५ ई०में पठानराज-सिंहासन पर अधिरोहण किया। ये नाना शास्त्रोंमें सुपण्डित और नाना विद्याओंमें पारदर्शी होने पर भी उनकी एकमात्र अविमृष्यकारीता ही उनके समस्त अनर्थों वा दोषोंका आकर हो गई थी। दौलतावादमें राजधानीकी प्रतिष्ठा करनेके लिए उन्होंने दिल्लीके अधिवासियोंको जैसा निगृहीत किया था, उसी प्रकार हठकारितासे ही उनका चीन और पारस्यअभियान अकालमें विलयको प्राप्त हुआ। प्रभूत धन और असंख्य सेना वृथा नष्ट हो जानेसे राज्यमें घोर विश्रृङ्खलता उपस्थित हो गई। उन्होंने अपने राजकोषकी पूर्त्तिके लिए (नोटकी तरह) ताम्रखण्ड चलानेकी वृथा चेष्टा की। इस विषयमें अकृतकार्य होने पर, उन्होंने प्रजा पर असङ्गत कर लगा दिया, जिससे राज्यमें घोर विप्लव उठ खड़ा हुआ और उस विद्रोहके कारण दक्षिण और पश्चिम भारतके कुछ देश हिंदू राजवंशोंके और स्थानीय मुसलमान शासनकर्त्ताओंके हाथ लग गये।

महम्मदके कोई पुत्र सन्तान न थी। १३५१में उनका मृत्यु-संवाद दिल्ली पहुंचने पर, ख्वाजाजहान्‌ने एक ६ वर्षके बालकको राजा बना कर उसकी घोषणा कर दी। उस समय फिरोज तुगलक सेना-विभागमें नियुक्त थे, पर महम्मदके अन्तिम प्रार्थनानुसार उनके भतीजे फिरोजको सिंहासन पर बिठाया गया।

महम्मदने अपने वीर्य और बुद्धिबलसे जिस विशाल भारतसाम्राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, शेष जीवनकी दुर्बुद्धिता के कारण उसीका वे मूलच्छेदन कर गये। परवर्त्ती मुगल सम्राट् अकबरशाहने अपूर्व मैत्री कौशलसे जिस दृढ़ बंधनसे भारतसाम्राज्यको आवद्ध किया था, एक औरङ्गजेबकी बुद्धिहीनतासे उसकी दृढ़ग्रंथि शिथिल हो गई थी। इसके सिवा उस समय पठान-सेनामें विभिन्न श्रेणीके मुसलमानोंका समावेश होनेसे भी राज्यमें विश्रृङ्खलताका सूत्रपात हो गया। तुर्की, अफगानी, मुगल और इसलाम धर्मावलम्बी हिंदूगण सभी अपने अपने प्राधान्य स्थापनके लिये प्रयत्नशील थे। इसीलिए विभिन्न सम्प्रदायी सेनादल और शासनकर्त्ताओंमें परस्पर विरोध अवश्यम्भावी हो गया था।

फिरोज तुगलकने राजासन पर बैठ कर प्रथम ही दक्षिणात्य और बङ्गालके राजाओंको दिल्लीकी अधीनता के श्रृङ्खलमें आवद्ध किया और अपनी उदार प्रकृतिके कारण स्वल्पमात्र कर ले कर उन्हें स्वाधीनभावसे अपने अपने राज्यकी परिचालना करनेका आदेश दिया। फिरोजाबाद नगर-स्थापन (जो कि आगरके पास है), मसजिद, प्रासाद, विद्यालय, चिकित्सालय, सराय, पुल, मुसाफिरखाना, कूप और कीर्त्तिस्तम्भ आदिकी प्रतिष्ठा; शतद्रु, कागार और जमुनासे नहर निकालना, बाँध और लम्बी लम्बी झीलें बनाना आदि इनके जीवनके प्रधान कार्य थे। राज-ऐश्वर्यसे ममत्व छोड़ कर उन्होंने १३८१ ई०में अपने पुत्र नसीरउद्दीन महम्मदके लिए राज-सिंहासन त्याग दिया। परन्तु उस बालकके अपनी बुद्धि विपर्ययसे भाइयोंके विरोधी हो जानेसे दिल्लीमें महा हत्याकाण्ड हो गया। इस घटनाके बाद फिरोजने पुनः शासन-भार अपने ऊपर ले लिया। १३८८ ई०में उनकी मृत्युके बाद पौत्र गयासुद्दीन सिंहासन पर बैठे। निरन्तर मद्यपानमें आसक्त रहनेसे उनके स्वसम्पर्कीय भाईने उन्हें १३८९ ई०में, (५ मास राज्य-भोगके बाद) मार डाला।

गयासकी हत्या करनेके बाद पुण्यात्मा फिरोजके अन्यतम पौत्र आबूबखरने दिल्ली-सिंहासन अधिकार किया। दस मास राज्य करनेके बाद उसी वर्ष नवेम्बर मासमें फिरोजके अन्य पुत्र युवराज महम्मदखाँ द्वारा आबूबखर राज्य-च्युत हुए। १३९० ई०में वे नसीरउद्दीन तुगलक नाम ग्रहण कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। पीछे उन्हें आबूबखर और मेवाती-राजपूतोंके विद्रोह दमनार्थ बहुत परिश्रम उठाना पड़ा। आबूबखरने उन्हें दिल्लीसे भगा दिया और मेवाती राजपूतोंने उनकी राजधानी लूट ली। दोनों युद्धके दारुण परिश्रमसे

वे रोगग्रस्त हो गये और उसीसे (१३९४ ई०में) उनकी मृत्यु हो गई।

उनके पुत्र हुमायूं ४५ दिन राज्य करनेके बाद सहसा मृत्युके ग्रास बन गये। इसलिए सिंहासनको ले कर फिर विभ्राट् उपस्थित हुआ। इसके बाद मृत राजा नसीरउद्दीन महम्मदके अन्यतम पुत्र महमूदको ही सिंहासन पर बिठाना निश्चित किया गया। पठान राजवंशके अधःपतनके प्रारम्भमें जो शासनकी विशृङ्खलता उठ खड़ी हुई, उसीने समग्र भारतमें व्याप्त हो कर स्वाधीन राज्योंका संगठन किया। बालक महमूदका राजत्व साधारणकी इच्छाके विरुद्ध था। एक दल महमूदको ले कर प्राचीन दिल्लीके प्रासादमें रहा और दूसरा दल फिरोज तुगलकके पौत्र-नसरत खाँ को ले कर फिरोजाबाद पहुंचा और वहीं उन्हें राजमुकुट पहनाया गया। अमात्योंके गृहविप्लवसे दिल्ली नगरी जन-शून्य होने लगी। ३ वर्ष लगातार रक्तपातके बाद, १३९९ ई०में इकबाल खाँ ने महमूदको हस्तगत करके नसरत खांको नगरसे भगा दिया। इस राष्ट्रविप्लवके समय वङ्गाल, मालवा, खानदेश, गुजरात आदि स्थानोंके शासनकर्त्तागण स्वाधीन हो गये। जगद्विख्यात मुगल-सम्राट् तैमूरलङ्गको समरकन्दमें रहते हुए इस पठान-विप्लवकी बात मालूम पड़ी। मौका देख कर वे अपनी विपुल-सेनाके साथ दिल्लीकी ओर चल पड़े।

१३९८ ई०के सेप्तेम्बर मासमें सिंधुनद पार कर वे पञ्जाब प्रदेशको लूटते हुए जनवरी महीनेमें पानीपतकी सड़क पकड़ कर फिरोजाबादके सामने आ पहुंचे। इस युद्धमें पराजित हो कर महमूदवजीर गुजरात प्रदेशको भाग गये। तैमूरने अपनेको भारत-सम्राट् घोषित किया और स्वदेशको लौटते वक्त वे सैयद खिजिर खाँ को लाहोर-राजधानीमें अपने प्रतिनिधि स्वरूप छोड़ गये। पहले नसरत खांने दिल्ली अधिकार करनेकी चेष्टा की, पीछे महमूद वजीरने भी इकबाल खाँके सहयोगसे दिल्ली में घुस कर राज्य नष्ट करनेकी कोशिश की। यहीं पर १४१२ ई०में महम्मदकी मृत्यु हुई। उनके साथ ही तुगलक वंशका राज्य भी लुप्त हो गया।

तुगलकवंशका राज्यकाल।

गयासउद्दीन	१३२१ ई०
महम्मद तुगलक	१३२५ ई०
फिरोज तुगलक	१३५१ ई०
नसीरउद्दीन महम्मद	१३८७ (कुछ महीने)
फिरोज (पुनः)	१३८८ ई०
गयासउद्दीन	अक्टूबर १३८८ से फरवरी १३८९ तक
अबूबखर	फरवरी १३८९ से नवेम्बर तक
नसीरउद्दीन महम्मद (२य)	१३९०-१३९४ ई०
हुमायूं	४५ दिन मात्र
महमूद	१३९४ से १४१२ (बीचमें १३९९ ई०में ५ दिन तैमूरलङ्गने राज्य किया)

सैयदवंश।—महम्मदकी मृत्युके बाद अमात्योंके अनुरोधसे वजीर-प्रधान और सेनापति दौलत खाँ लोदी को सिंहासन पर अभिषिक्त किया गया। लाहोरके प्रतिनिधि खिजिरखांने उन्हें पराजित कर दिल्ली अधिकार किया। बन्दी अवस्थामें १४१६ ई०में दौलत खाँकी मृत्यु हो गई। १४१६से १४२१ ई० तक खिजिरखांने बड़ी शानके साथ दिल्लीके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंका शासन किया। १४२२ ई०में उनकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र मुबारक दिल्लीके राजा हुए। १४३५ ई०में ये अपने वेतनभोगी हिंदू-कर्मचारियों द्वारा मारे गये। उसके बाद सैयद राज महम्मद (१४३५-१४४५ ई०) और अलाउद्दीन (१४३५-१४७८ ई०)के राज्यकालमें विभिन्न शासनकर्त्ताओं के विद्रोह-दमनके सिवा और कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी। अलाउद्दीन सात वर्ष राज्य करनेके बाद १४५२ ई०में अपने भाईके लिए राजसिंहासनको छोड़ कर राजकीयकोलाहलसे अवसर ले, बदाऊंके निभृत निलयमें जा धर्मालोचनामें निरत हुए। उनके अवसर-समयमें बहोललोदी नामक एक सम्भ्रान्तवंशीय अफगानी राजकार्यका पर्यवेक्षण करते थे। अलाउद्दीन उन्हींको अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर गये थे।

लोदीवंश।—वाणिज्यके उद्देशसे भारतमें आ कर लोदीवंशीय अफगानी लोग क्रमशः अपनी उन्नति करने लगे। खिजिर खाँके साथ तुगलकाधीन वजीर इकबाल खाँका जो युद्ध हुआ था उसमें बहलोल लोदीके

चचाने अपने हाथसे इकबालका प्राण-संहार किया था। कृतोपकारके पारितोषिक-स्वरूप उन्हें सैयद-प्रतिनिधि द्वारा सरहिन्दका शासनकर्तृत्व प्राप्त हुआ। उस व्यक्तिने भतीजे बहलोलके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। चचाकी मृत्युके बाद बहलोलको सरहिन्दका शासनकर्तृत्व प्राप्त हुआ। क्रमशः उनकी यशोभाति चारों ओर फैलने पर अलाउद्दीनको दृष्टि आकृष्ट हुई। सैयद-राजाने उन्हें वज़ीर पद दे कर विशेष सम्मानित किया। १४७८ ई०में सिंहासन पर बैठने पर भी, वास्तवमें १४५२ (किसी किसीके मतसे १४५०) ई०में ही अलाउद्दीनके बदाऊं चले जानेके बादसे ही बहलोलका दिल्ली-राजशासन काल समझना चाहिए। २६ वर्ष युद्धके बाद उन्होंने शर्कीराजाओंसे जौनपुर छीन लिया। बहलोलने हिमालयसे ले कर बनारस तक विस्तृत राज्यको अपने पांच पुत्रोंको बांट देना चाहा था, किंतु अमात्यगणोंकी प्रार्थनाके अनुसार वे अपनी इस इच्छाको पूरी न कर सके थे। अमात्यों-ने उनके एक पौत्रको और बेगम साहबाने अपने पुत्र निजाम खांको सिंहासन देनेके लिए बादशाहसे अनुरोध किया। इसी बीचमें उनकी मृत्यु हो गई।

पौत्रको सिंहासन देनेके लिए बहलोल और उनके ज्येष्ठपुत्र बरबाक खाँका अभिमत होने पर भी अमात्योंने युवराज निज़ाम खाँको ही सिंहासन पर बिठाया। इन्होंने सिकन्दर लोदी नाम धारण कर दिल्ली सिंहासन पर बैठनेके साथ ही विरुद्धाचारी अपने ज्येष्ठ भ्राता बरबाकके विरुद्ध अस्त्रधारण किया और अन्तमें उन्हें जौनपुरके शासनकर्तृत्व पदसे ही उतार दिया। मालवा, बुन्देलखण्ड आदि स्थानोंके हिन्दूराजगण इनके हाथसे निगृहीत हुए थे। १५१७ ई०में इनकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र इब्राहिम लोदी राजा हुए। इनका भ्रातृविरोध और इनके पिताका हिन्दू-विरोध इतिहासमें अतुलनीय है।

इनके राजत्वकालमें विहारके शासनकर्त्ता बहादुरखां लोहानी और पञ्जाब-पति दौलतखाँ लोदीने दिल्लीके अधीनतापाशको तोड़ डाला। दौलतखाँके सादर आमन्त्रणसे मुगलसम्राट् बाबरने सेनासहित काबुलसे आ कर पानीपतके रणक्षेत्रमें (१५२६ ई०में) इब्राहिमको पराजित और निहत कर दिल्ली-राजसिंहासन पर अधिकार किया। इब्राहिमके पतनके बादसे ही पठानवंशके निष्ठुर अत्याचार भारतसे लोप हो गये थे।

पानीपतका युद्ध समाप्त होने पर, मुगलोंको सौभाग्य लक्ष्मी भारत-सिंहासन पर अधिष्ठित हुईं। यहां पर मुगलराजवंशके अधिष्ठानके पूर्वमें पठानशासनसे प्रपीड़ित हो कर जो सब मुसलमानवंश दाक्षिणात्यमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर स्वाधीन भावसे शासन कर रहे थे उनका भी संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

महम्मद तुगलकका कठोर अत्याचार ही पठान-साम्राज्यकी अवनतिका मूल कारण है। उनके बादके पचास वर्षोंमें पठान-राजवंशका सम्पूर्णतः अधःपतन हुआ था। इस पतनके साथ साथ कई जगह मुसलमान राज्यका अभ्युदय हुआ था। जिन हिंदू और मुसलमानोंने पठानोंकी अधीनता स्वीकार की थी, वे सभी राज कर देनेके लिए बाध्य थे; परंतु अन्यान्य सभी विषयोंमें वे स्वाधीनभावसे कार्य करते थे।

ये सब मुसलमान शासनकर्त्तागण समय समय पर हिंदू कर्मचारियों पर विश्वास स्थापन कर राजकार्य सम्पन्न करते थे, किन्तु जहां मुल्लाओंका प्रभाव था, वहीं पर हिंदूगण विशेषरूपसे निगृहीत होते थे। इन विद्वेषी म्लेच्छोंके उपद्रवोंसे काशी और पुरीधामके अतिरिक्त कुरुक्षेत्र, प्रभास, वृन्दावन अयोध्या और गुजरातप्रदेशके नाना तीर्थक्षेत्र और मन्दिर आदि नष्ट हुए थे, तथा उनके स्थानमें मसजिद दरगाह आदि बनाई गई थीं इस निग्रहके समयमें अनेक तेली, जुलाहा, कोरी, पटवा, निकारी, पंजारी और पार्वतीय विभिन्न जातियां इसलाम धर्ममें दीक्षित हो गई थीं। हिन्दूशक्तिके अभावके कारण धर्म लोप होता देख ब्राह्मणोंने उस समय सामाजिक और पारिवारिक विधिनियम संस्कारके लिए स्मृतिसंग्रह करके हिंदूधर्मकी रक्षार्थ बहुत कोशिशें की थीं। यही कारण है कि, हिंदूधर्मद्वेषी मुसलमानोंके प्राधान्यकालमें भी हम माधवाचार्य, विश्वेश्वर भट्ट, चण्डेश्वर, वाचस्पति मिश्र, आचार्य चूड़ामणि, प्रतापरुद्र, रघुनन्दन और कमलाकर आदिको हिंदूधर्मकी रक्षामें तत्पर पाते हैं।

पठान संघर्षणके विशेष आन्दोलनसे हिन्दूसमाजमें

एक विशेष परिवर्त्तन हो गया था। मुसलमानोंकी एकेश्वर उपासनाका अनुकरण कर हिंदू भी एकेश्वरवादी धर्म प्रवर्त्तनमें संलग्न हुए थे। ईसासे पूर्व की ५वीं और ६ठी शताब्दीमें जैसे जैन और वौद्धोंके प्रादुर्भावके समय ब्राह्मण, भिक्षु और आचार्यों के हाथसे धर्मविस्तारका मार्ग खुला था, ईसाकी १५वीं वा १६वीं शताब्दीमें भी उसी प्रकार ब्राह्मणोंके सिवा साधु संन्यासियोंके यत्नसे धर्मसम्प्रदायका प्रचार हुआ था। पूर्वोक्त समयमें पालि और मागधी आदि भाषाओंमें धर्म ग्रन्थ रचे गये थे, इस समयमें भी उसी प्रकार चैतन्य द्वारा बंगला, नानकसे पञ्जावी, कवीरसे हिन्दी और तुकाराम द्वारा महाराष्ट्र भाषामें नाना ग्रन्थ प्रचारित हुए थे।

एक तरफ जैसे धर्म विप्लवसे भारतमें विभिन्न धर्म सम्प्रदायोंके समावेशके कारण भारतीय हिन्दुओंका धर्म-प्राण उत्तेजित हुआ था, वैसी ही दूसरी तरफ राष्ट्र-विप्लवके कारण भारतके नाना स्थानोंके खण्डराज्योंने अपना अपना स्वाधीन-शासन विस्तार भी किया था। इससे दाक्षिणात्यमें कई हिंदू राज्य स्थापित होने पर भी मुसलमानोंके हिंदू-विद्वेषसे देशको नष्ट करनेवाले महान अमङ्गल हुए थे।

महम्मद तुगलककी शासनविशृङ्खलासे सुवर्णग्राम और गौड़के शासनकर्त्ता विद्रोही हो गये। अन्तमें गौड़ेश्वर सामसुद्दीन समग्र बङ्गाल अधिकार कर स्वाधीनभावसे राज्य करते रहे। फिरोज तुगलक इन्हें दमन न कर सकनेके कारण १३५७में ये स्वाधीन राजा समझे गये। इसके बाद दिनाजपुरके हिंदू राजा गणेश (कंस) सामसउद्दीनके पौत्रको मार कर १४०५ ई०में सिंहासन पर बैठे। उनके वंशधरोंने लगभग ४० वर्ष राज्य किया। १४४५ ई०में उनके वंशधरको राज्यच्युत कर पुनः सामसउद्दीनके वंशधर इलायसशाही राजाओं ने ४२ वर्ष तक राज्य किया। उनके राजत्वके शेष समय में खोजा और हवसियोंका विप्लव हुआ था। हवसी सरदार फिरोज़ पुरवीने (१४९१-९३ ई०में) विशेष दक्षताके साथ राजकार्य सम्हाला था। उनके पुत्रको राज्यच्युत-का मुजफ्फरने हवसी-सिंहासन अधिकार किया। परन्तु अमात्योंने १४९६ ई०में षड़यन्त्र करके उन्हें मार डाला और वजीर सैयद शरीफको सिंहासन प्रदान किया।

मन्त्रि प्रधान 'अलाउद्दीन हुसेनशाह' नाम धारण कर बङ्गालका शासन करते रहे। १४९४ ई०में उन्होंने खोजा हवसियोंको राज्यसे वहिष्कृत कर दिया। वालकाल में सुबुद्धिखां नामक एक कायस्थ राजकर्मचारीके अधीन कार्य करते समय वे हिन्दुओंके सौजन्यसे विशेष संतुष्ट थे। हिन्दुओंके प्रति श्रद्धा परवश हो कर उन्होंने रूप और सनातन नामक दो धार्मिक हिंदू प्रवरोंको राज्यकार्यमें नियुक्त किया था। उनके पुत्र नसरत शाह और महमूद शाहके राज्यके समय १५३६ ई०में महमूदको पराजित कर शेरशाह बङ्गालके सुलतान बन गये। उनके वंशीयगण दिल्लीसे भगाये जानेके बाद सामर्थ्य हीन हो गये। १५६३ ई०में करानीवंशके सुलेमानने उनसे बङ्गालका सिंहासन छीन लिया।

सुलेमानके हिंदूधर्मत्यागी प्रसिद्ध सेनापति काला-पहाड़ने १५६५ ई०में मुकुन्ददेवको पराजित और जगन्नाथमूर्त्तिको जला कर बङ्गालमें आधिपत्य विस्तार किया। १५७२ ई०में सुलेमानकी मृत्यु होने पर उनके भाई दाउद खाँको बङ्गालका सिंहासनप्राप्त हुआ। उनके साथ मुगल-सम्राट् अकवर शाहका विरोध उपस्थित होनेसे बङ्गालप्रदेश १५७५ ई०में मुगल-साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया।

महम्मद तुगलकके शासनकर्त्ता मालिक उस शर्क (खोजा जहान) ने १३९४ ई०में जौनपुरमें स्वाधीन शासन विस्तार किया। उन्हींके वंशके ६ राजाओंने जौनपुर नगरीको नाना अट्टालिकाओंसे विभूषित किया था। सिकन्दर लोदी द्वारा जौनपुर विध्वस्त होने पर शर्किवंशका अंत हो गया। जौनपुर देखो।

तैमूरलङ्गके भारताक्रमणके समय (१४४३ ई०में) दिल्लीश्वरके मुलतानप्रदेशमें शासन-शृङ्खला स्थापनमें असमर्थ होने पर वहांके अधिवासियोंने शेख युसुफ नामक एक व्यक्तिको राजा मनोनीत किया। १४४५ ई०में लुङ्गवंशीय जाय शिहराने उन्हें मार कर मुलतान अधिकार किया। १५२७ तक लुङ्गवंशीय राजगण यहां राज्य करते रहे। उसके बाद सिंधुप्रदेशके शासनकर्त्ता शाह हुसेन अरघुनने मुलतान

जय किया। सम्राट् अकवर शाहने अरघुन-राजाको अपने शासनाधीन किया था। मुलतान देखो।

गुजरातके शासनकर्त्ता फरहात्-उल मुल्क हिंदुओंका पक्ष ले कर हिंदू-मन्दिरादि निर्माण करा रहे हैं, सुन कर दिल्लीश्वरने १३९१ ई०में जाफर नामके एक विधर्मी राजपूतको शासनकर्त्ता नियुक्त कर गुजरात भेजा था। १०३६ ई०में महमूद द्वारा विध्वस्त सोमनाथ-मन्दिर भीमदेव द्वारा पुनः संस्कृत होने पर भी जाफरने उसे फिर तुड़वा दिया था। साथ ही अन्यान्य मन्दिर तथा तीर्थक्षेत्र भी जाफर द्वारा अपवित्र हुए थे। १३९६ ई०में जाफरने सुलतान मुजफ्फर शाह नाम ग्रहण कर राजा शासन किया। उनकी मृत्युके वाद उनके वंशधर अहमदने (१४१२ ई०में) अनहिलपत्तनसे राजधानी उठा कर अहमदाबादमें स्थापित की। मालवाके राजा हुसङ्ग शाह और खानदेशके फरुकी राजगण उनसे पराजित हुए थे। उनके वंशधर महमूद विगाड़ाने जूनागढ़ और चम्पानगरके हिंदू सामंत राजा तथा २य मुजफ्फरने मालवा जय और पुर्त्तगीजोंको समुद्रके वीच पराजित किया था।

१५२६ ई०में वहादुरशाहने सिंहासन पर वैठनेके साथ ही मालवा पर चढ़ाई की। १५३७ ई०में मालवा राज्य उनके अधिकारमें आया था। चित्तोरके राणा संग्रामसिंहके मालवाको सहायता पहुंचानेके कारण १५२६ ई०में उन्होंने चित्तोर अवरोध किया था। संग्रामसिंहकी मृत्युके वाद इनके चित्तोर अधिकार करने पर राजपूत-कुलललनाएं चितामें जल कर स्वर्ग सिधारी। इस अवरोधके समय भारतमें पहले पहल तोपका व्यवहार हुआ था।

राणा संग्रामसिंहकी विधवा पत्नी राणी कर्णावतीने वैर-निर्यातनके वश हो मुगल-सम्राट् हुमायूँकी शरण ली और 'राखी' भेज कर उन्हें मित्रतासूत्रमें आवद्ध किया। तदनुसार हुमायूँने चित्तोर अधिकार कर गुजरात आक्रमण किया, जिससे वहादुरशाह दीउ द्वीपको भाग गये। पुर्त्तगीज लोग वहुत दिनोंसे वाणिज्यके लिए दीउद्वीपकी आकांक्षा कर रहे थे। हुमायूँ द्वारा विताड़ित वहादुरशाहने जव पुर्त्तगीजोंका आश्रय ग्रहण किया, तव पुर्त्तगीजोंने उन्हें दीउ छोड़ देनेके लिए वाध्य किया। उसके वाद शेरशाहके विप्लवमें हुमायूँ विताड़ित होने पर वे स्वाधीन हो कर राज्य-शासन करते रहे। जव वे पुर्त्तगीजोंके साथ सन्धि-भङ्ग करनेका प्रयास करने लगे, तव पुर्त्तगीज नेताओंने उन्हें निमन्त्रण दे कर वुलाया और वहां उनकी हत्या कर डाली। गुजरातके शेष राजा ३य मुजफ्फर अपना राज्य सम्राट् अकवरशाहको समर्पित कर १५७२ ई०में वे दिल्लीके मन्त्री वन गये। अन्तमें उन्होंने दिल्लीसे भागनेकी चेष्टा की, किंतु सफलता न मिलनेसे अंतिम जीवन उन्होंने काठियावाड़के हिंदू राजा रायसिंहके आश्रयमें विताया। गुर्जर देखो।

दिलावर खाँ गोरी नामक एक व्यक्ति फिरोज तुगलकके अमात्य थे, उन्हें मालवाका शासनभार प्राप्त हुआ था। उन्होंने १४०१ ई०में अपनी स्वाधीनता घोषित कर माण्डूनगरमें राजधानी कायम की थी। होसङ्गावादके स्थापयिता उनके पुत्र होसङ्ग विशेष रणदक्ष थे। उनकी मृत्युके वाद महमूदने खिलजी मालव जय करनेके वाद अजमेर, करौली और रणस्तम्भपुर अधिकार किया। ३य खिलजीराजके समयसे मालवाकी वहुत कुछ श्रीवृद्धि हो गई थी। १५१२ ई०में नसिरउद्दीन खिलजीके राज्यमें संघटित राष्ट्र विप्लवके समय मालवाके राजा २य महमूद मेदिनीराय नामक एक राजपूत सरदारके परामर्शसे चलते थे। मुसलमानोंने मेदिनीरायको राजासे भगानेके लिए गुर्जरपति २य मुजफ्फरकी शरण ली। इसी सूत्रसे चित्तोरके राजपुतोंके साथ गुजरातके मुसलमानोंका युद्ध आरम्भ हुआ। युद्धमें आहत और वन्दी हो कर सुलतान महमूद मण्डूमें लाये गये। उनकी मृत्युके वाद, उनके पुत्रने गुर्जरपति वहादुरशाहसे अपने दुःखकी वात कही, १५३६ ई०में उन्होंने मालवा पर अधिकार किया था। मालवा देखो।

१३१६ ई०में खानदेशके फरुखी राजा दिल्लीश्वरके अधीनतापाशको तोड़ कर स्वाधीनभावसे राज्यशासन करने लगे। वुरहानपुरमें उनकी राजधानी थी। १५९९ ई०में मुगलोंने उस पर अधिकार जमाया। खानदेश और फरुखि देखो।

१३८७ ई०में जाफरखाँ नामक एक सेनापतिने दिल्ली-सैन्यको पराजित कर दाक्षिणात्यमें अपनी स्वाधीनता फैलाई। बाल्यकालमें ये गङ्ग नामक एक ब्राह्मणके दास थे। ब्राह्मणकी उक्तिके अनुसार वे राजा हुए थे। इस कारण उस ब्राह्मणके सदय व्यवहार और भविष्यत् उन्नति-वचनकी सार्थकता देख कर कृतज्ञतावश उन्होंने 'हुसेन गङ्ग वाह्मणी' नाम ग्रहण कर अपने प्रभुके पवित्र नामसे वाह्मणी राज्य स्थापन किया था। ईसाकी १५वीं शताब्दीके मध्यभागमें वाह्मणीराज्य समृद्धिकी चरम सीमा तक पहुंच चुका था। उस समय दक्षिणमें तुङ्गभद्रा, पश्चिममें गोआ, उत्तरमें मालवा और उड़िष्या तथा पूर्वमें मछलीपत्तन तक दक्षिणार्द्ध उनके करतलगत था। ओरङ्गल और विजयनगरके हिंदू राजाओं और मुसलमानोंके साम्प्रदायिक विरोधसे वाह्मणी राज्यध्वंसको प्राप्त हुआ था। वाह्मणीराजवंश, कुलवर्ग और विदर देखो।

वाह्मणीराज्यके अधःपतनके वाद दाक्षिणात्यमें पांच स्वाधीन मुसलमान राज्योंका अभ्युत्थान हुआ था।

(१) आदिलशाहीवंश—१४८६ ई०में युसुफ आदिल शाहने इस राज्यकी स्थापना की थी। वीजापुरमें उनकी राजधानी थी। १६८८ ई०में मुगल-सम्राट् औरङ्गजेवने इस पर अधिकार कर लिया।

(२) कुतवशाहीवंश—१५१२ ई०में कुतवउल् मुल्कने विदरकी अधीनताको अमान्य कर गोलकुण्डामें स्वतन्त्र राजपाट स्थापित किया था। वादमें हैद्रावादनगरमें राजधानी स्थानान्तरित हुई थी। ओरङ्गल, द्राविड़ और कर्णाटप्रदेशके हिन्दू सामन्त राजाओंने कुतवशाहीकी अधीनता स्वीकार की थी। १६८८ ई०में यह मुगलोंके अधीन हो गया।

(३) निजामशाही वंश—वरार-वासी इसलाम धर्मावलम्वी ब्राह्मणाधम निजाम उल् मुल्क महमूद गवान द्वारा जुन्नरके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। उनके पुत्र अहमदने १४९० ई०में अहमदनगरमें राज्य स्थापन कर अपनेको स्वाधीन राजा घोषित किया। १६३६ ई०में शाहजहाँने इसे मुगल साम्राज्यमें मिला लिया।

(४) इमादशाही वंश—हिन्दूकुलाधम इसलामधर्मावलम्वी फतेउल्ला-इमादशाह महमूद गवान द्वारा वरार प्रदेशके, शासनकर्त्ता नियुक्त हुए थे। उन्होंने १४८६ ई०में गाविलगढ़में और पीछे इलिचपुरमें राजधानी स्थापित की थी। १५७१ ई०में यह अहमदनगरके निजामशाही राज्यान्तर्भुक्त हो गया।

(५) वरिदशाही-वंश—वाह्मणीराज महमूदके मंत्री कासिमवरिद (१४९२ ई०) इस वंशके प्रतिष्ठाता थे। उनके पुत्र अमीर वरिदको १५२७ ई०में विदर राज्य प्राप्त हुआ था। उनके वंशधर अलीवरिदने 'शाह' उपाधि धारण कर स्वाधीनभावसे राज्यशासन किया था। इस वंशके राजाओंकी शासनविशृङ्खलताके कारण विदर-राज्य शीघ्र ही वीजापुरके अधीन चला गया था। १६०९ ई० तक वरिदशाहीवंश विदरमें ही था। १६५७ ई०को यह मुगलोंके हाथ लगा।

पठान-साम्राज्य शक्तिके अवसन्न होने पर, जिस समय उनमेंके मुसलमान शासनकर्त्तागण विद्रोही हो कर अपनी अपनी स्वाधीनताके लिए लड़-मर रहे थे, ठीक उसी समय विजयनगर, उड़िष्या, वघेलखण्ड, मेवाड़ आदि स्थानोंके राजपूतगण प्रभूत शक्ति-संचयसे वलीयान् हो कर मुसलमानोंका सामना करनेके लिए अवसर ढूंढ़ रहे थे। उस समय दाक्षिणात्य, उड़िष्या और राजपूतानाके वीरपुत्रगण अपने वलवीर्यके प्रतापसे स्वदेश और स्वजातिके गौरवकी रक्षामें तत्पर थे। हिन्दुओंने उन्नतमस्तक और वीरदर्पसे मुसलमान शासनकर्त्ताओंको विपर्यस्त कर दिया था, इतिहासमें इसके यथेष्ट प्रमाण पाये जाते हैं। उसी हिन्दू और मुसलमानोंके घोर विप्लवके समय पुर्त्तगीजोंने भारतमें पदार्पण किया था।

विजयनगर राज्य।—अलाउद्दीनके सेनापति मालिक काफूर द्वारा द्वारसमुद्रके होयशल वल्लालोंके परास्त होने पर, मुसलमान शासनकर्त्ताओंके उपद्रवसे समग्र दाक्षिणात्य शासनशृङ्खलतासे शून्य हो गया था। उस समय विजयनगरमें एक स्वाधीन हिन्दू राजवंशका अभ्युत्थान हुआ। प्रतिष्ठाता वुक्करायने विजयनगरके सिंहासन पर अपना अधिकार किया। उनके पुत्र सङ्गम तथा पौत्र हरिहर और वीर वुक्करायने दोर्दण्ड प्रतापसे १३३६से १३७९ ई० तक दाक्षिणात्यका शासन किया। उनके अधिकार कालमें वैदिक धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा हुई थी। सुप्रसिद्ध वेदभाष्य और दर्शनसंग्रहकार माधवा-

चार्य वीर बुक्करायके प्रधान मन्त्री थे। गोआके मुसलमानों और ब्राह्मणीवंशके राजाओंने इनके सामने पराजय स्वीकार किया था। १४४४ ई०में समरकन्द-राजदूत आवदार रज्जाक विजयनगरकी समृद्धिको देखकर दंग रह गये थे। २य देवरायकी शासन-शृङ्खलाके दोषसे मन्त्रिवर्ग परस्पर विद्रोही हो गये और मन्त्रिवर नरसिंहने सिंहासन अधिकार कर लिया। समग्र दाक्षिणात्यने नरसिंहके पुत्र कृष्णदेवरायकी (१५०६-१५३० ई०) अधीनता स्वीकार कर ली थी। उनके पुत्र अच्युतरायने १५३०से १५४२ ई० तक राज्य किया। उनके सदाशिव, रामराज और तिरुमल्ल नामके तीन पुत्र थे। इन तीनों पुत्रोंमें वीर्यवान् रामराजने ही मुसलमानोंकी प्रतियोगिता की थी। १५६५ ई०में दाक्षिणात्यके समस्त मुसलमान राजा एक साथ विजयनगरके विरुद्ध खड़े हुए। तालिकोटके युद्धमें रामराज मारे गये और उनकी राजधानी तहस-नहस कर दी गई। मन्द्राजके वेल्लरी-विभागमें तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणी-किनारे पर विजयनगरके ध्वंसावशेष अब भी देखनेमें आता है।

रामराजके अधःपतनके बाद सदाशिव पेंनाकोंएडामें भाई तिरुमल्लके पास गये। तिरुमल्लके पुत्र वेङ्कटपतिने वहांसे चल कर चन्द्रगिरिमें राजधानी स्थापित की। उनके वंशमें ४र्थ वेङ्कटपतिसे १६३९ ई०में अंग्रेज वणिकोंने मन्द्राजनगरमें स्थान प्राप्त किया था। आनगुण्डिके वृत्तिभोगी सरदार नरसिंह राजवंशमें ही उत्पन्न हुए थे। विजयनगर देखो।

रेवा वा रीवाँ राज।—गुर्जरप्रदेशमें चालुक्य शक्तिका ह्रास होने पर, वघेलाओंने उस देशमें शासन किया था। उस वंशकी एकतम शाखा वघेलखण्ड (बुन्देलखण्ड) में आ कर राज्य करने लगी। गोंड़ और चेदिसेनाकी सहायतासे उन्होंने मध्यभारतमें प्रभुत्व विस्तार किया था। सिकन्दर लोदी, बाबर और अकबरशाह वघेलाओंका विशेष समादर करते थे। अकबरके आश्रित प्रसिद्ध गायक मियां तानसेनने वघेलाराज रामचन्द्रदेवकी सभाको आलोकित किया था। रीवाँ नगरमें उस वंशके सरदार अब भी राज्य कर रहे हैं। बुन्देलखण्ड और रीवां वा रेवा देखो।

मेवाड़राज्य।—राजपूतसामन्त राजाओंमेंसे मेवाड़के राजवंशने कभी भी मुसलमानोंकी अवनति स्वीकार नहीं की। बप्पारावल, समरसिंह आदिने पहलेसे ही मुसलमानोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। अलाउद्दीनके चित्तोर-आक्रमण और पद्मिनीके चितारोहणने इतिहासमें अमरत्व प्राप्त किया है। राजपूत कुलतिलक हमीरने मुसलमानोंसे चित्तोर अधिकार किया था। उनके वंशके महाराणा कुम्भ और संग्रामसिंह मुसलमानोंके विरुद्ध अस्त्र-धारण करनेमें समर्थ हुए थे। मुसलमानोंके गया अधिकार करने पर संग्राम द्वारा परिचालित राजपूत सेना वहां भेजी गई थी। उन्होंने बाबरके सहयोगी हो कर इब्राहिम लोदीके विपक्षमें युद्ध किया था। बाबरको भारत-साम्राज्य-स्थापनके प्रयासी देख कर १५२७ ई०में-वे फतेपुर-सिकरीमें मुगल-सेनाके सम्मुखीन हुए। इस भीषण-युद्धमें राजपूतगण हत-बल हो गये थे। शेरशाह द्वारा हुमायूँके पराजित होने पर बहादुरशाहने चित्तोर आक्रमण कर उसे ध्वंस कर दिया। उसके बाद उदयपुरमें राजपूत-राजधानी स्थापित हुई। उसके बाद हलदीघाट-विजयी महाराणा प्रतापसिंह अकबरशाहकी प्रतिद्वन्द्विता कर अक्षय यशःख्याति छोड़ गये हैं। प्रतापसिंह देखो।

उड़िष्या-राज्य।—विख्यात गङ्गवंशीय राजन्यवर्गोंका प्राधान्य यथास्थानमें लिखा जा चुका है। कलिङ्गके अधिपति राजराजके पुत्र चोड़गङ्गदेवने उत्कल विजय किया। उनके वंशके ५म राजा अनङ्गभीमदेवने जगन्नाथ-मन्दिरका संस्कार कराया। अलाउद्दीन खिलजीके राजत्वकालमें राजा नरसिंहदेवने बङ्गालके मुसलमानोंको विशेषरूपसे निगृहीत किया था। प्रवाद है—उस समय हुगली जिलेके पवित्र तीर्थ त्रिवेणी घाट तक उड़िष्या-राज्यकी सीमा विस्तृत थी। उक्त वंशमें राजा प्रतापरुद्रदेव चैतन्य महाप्रभुके भक्तिधर्मकी उपासनामें मग्न हुए थे। प्रतापरुद्रकी मृत्युके बाद उड़िष्यामें विद्रोह उपस्थित हुआ। तेलिङ्गानगर निवासियोंने इस मौके पर मुकुन्ददेवको राजासन प्रदान किया। राजवंश-परिवर्त्तनके साथ उड़िष्याकी राजशक्तिका ह्रास भी हुआ था। १५६५ ई०में कालापहाड़ने दुर्बल उड़िष्यापतिको पराजित कर उनका राज्य बङ्गालमें मिला लिया था

पहले ही लिखा जा चुका है कि, पठानराजवंशके अधःपतनके प्राक्कालमें पुर्त्तगोज नाविक भास्कोदगामा १४९८ ई०में उत्तमाशा अन्तरीपमें परिभ्रमण कर कालिकटमें सामरी-राजके समक्ष उपस्थित हुए थे। उस समय अरवदेशीय वणिक् गण भारतमें वाणिज्य-विस्तार कर रहे थे। उन लोगोंने पुर्त्तगोज सम्प्रदायके प्रति ईर्षान्वित हो कर मुसलमान-शासनकर्त्ताओंको उत्तेजित करनेकी कोशिशें कीं। अरवियोंको वाणिज्यका घोर शत्रु जान कर पुर्त्तगोजोंने अपने देशसे नौ-सेना बुला ली। १५०७ ई०में बीजापुर, गुज़रात और इजिप्टकी सम्मिलित मुसलमान नौ सेना पुर्त्तगोजोंसे पराजित हो गई। गोआ आदि स्थानोंमें उपनिवेश स्थापन और भारतीय द्वीपपुञ्जोंमें वाणिज्य प्रभावका विस्तार आदि ऐतिहासिक घटनाएं यथास्थानमें लिखी गई हैं।

पुर्त्तगीज देखो।

चङ्गेजखाँ और तैमूरकुलतिलक वावरशाहने, दौलतखाँ लोदीके आमंत्रणसे भारतमें आ कर १५२६ ई०में पानीपतके युद्धमें इब्राहिम लोदीको परास्त कर पश्चिम-भारत अधिकार किया। जौनपुरमें दरियाव खाँ लोहानी स्वाधीनता-प्रयासी हो कर जव अफगान राज्य स्थापन करनेके लिए वद्धपरिकर हुए, तव वावरशाहने उन्हें परास्त किया। वादमें उन्होंने वनारस और पटना अधिकार किया। १५२७ ई०में उन्होंने राणा संग्रामसिंहको फतेपुरसिकरीके युद्धमें वहुत मुगलसेनाका क्षय कर हतवल कर दिया था। वावरशाह देखो।

मुगल-राजवंश।—वावरके पुत्र हुमायूँने पञ्जाव और अयोध्या प्रदेशको मुगल-साम्राज्यमें मिला लिया। मेवाड़की रानी कर्णावतीको प्रार्थनासे उन्होंने गुर्जर-पति वहादुरशाहको परास्त किया था। इस समय दिल्ली-पूर्वदेशमें शेर खां नामक शूरवंशीय एक अफगान सरदार राज्य कर रहे थे। सिकन्दर लोदीके पुत्र महमूद लोदीके अधीन शेर खाँ काम करते थे। महमूदको पराजित कर वावरशाहने दरियाव खांके पुत्र बालक जलालको राज-प्रतिनिधि नियुक्त किया। दादूखांके ऊपर राज्य-परिचालनका भार सौंपा गया। शेरखांने दादूको वशीभूत कर विहार, रोहता और चुनार दुर्ग पर आधिपत्य प्राप्त किया। शेरखांके भयसे डर कर वङ्गालके राजा महमूदने जव हुमायूँसे आश्रयकी प्रार्थना की, तो हुमायूँने सेना-सहित आ कर पटना अधिकार कर लिया। वर्षा आने पर शेरखांने मुगल-सेनाको पराजित कर विहार, वनारस, चुनार, कन्नोज, जौनपुर आदि स्थान जीत लिये। हुमायूँके आगराकी तरफ भागने पर वक्सरके रणक्षेत्रमें दोनों पक्षोंमें घोरतर युद्ध हुआ; इस युद्धमें हुमायूँने गङ्गामें कूद कर भागनेकी चेष्टा की। पानीमें डूबने पर एक भिस्तीने उनकी रक्षा की थी।

आगरा पहुंच कर हुमायूं युद्धका आयोजन करने लगे। कनौजके पास फिर मुगल और पठानोंमें युद्ध हुआ। इस युद्धमें पराजित हो कर हुमायूं सपरिवार भारत छोड़नेके लिए वाध्य हुए थे। उनके भाई कामराननें पञ्जाव दे कर शेरखांकी राज्यतृष्णा निवृत्त की। शेरखां द्वारा भारतमें पुनः पठान राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

पठान राजवंश।—१५४० ई०में शेरशाह नाम धारण कर शेर खांने दिल्लीके सिंहासन पर उपवेशन किया। पाश्चात्य लोगोंके आक्रमणसे अपने राज्यकी रक्षाके अभिप्रायसे उन्होंने रोहतास दुर्ग वनवाया। १५४१ ई०में मालवा प्रदेशको वशीभूत कर उन्होंने विश्वासघातकता पूर्वक रायसिंहके दुर्ग पर कब्ज़ा किया। मारवाड़ राज्य अधिकार करनेके वाद उन्होंने कालञ्जर अवरोध किया। कालञ्जरके राजा कीर्त्तिसिंह असीम साहससे शेरशाहके साथ युद्ध करने लगे। १४४५ ई०में अवरोध के समय शत्रुपक्षीय एक जलता हुआ गोला शेरशाहके वारूदखानेमें आ गिरा जिससे उनकी मृत्यु हो गई। शेरशाहके पुत्र सलीमशाहके द्वारा कालञ्जर अधिकृत होने पर चन्देल-राजवंशका अवसान हो गया। १५५३ ई० तक निर्विवाद राज्य करनेके वाद सलीमके परलोक सिधारने पर उनके साले मुवारिज़ खाँने अपने भानजे फिरोजखाँको अन्तःपुरमें ले जा कर निष्ठुरभावसे उसकी हत्या कर डाली और स्वयं 'महम्मदशाह' शूर नाम रख कर सिंहासन पर वैठे। साधारण लोग इन्हें आदिलि नामसे ही जानते थे। दिल्लीमें हिमू नामका एक हिन्दू दूकानदार था। राज चरित्र कलुषित और व्यसनासक होने पर हिमू

राजाका विशेष प्रियपात्र हो गया। क्रमशः यही व्यक्ति राज्यका सर्वेसर्वा और राजा आदिल वा महम्मदशाहका प्रधान परामर्शदाता हो गया था। हिमूने अपने बुद्धिवल-से साम्राज्य-शासनमें विशेष पारदर्शिता दिखलाई थी।

राजाके व्ययाधिक्यसे राजकोष शून्य हो गया, जिस-से अमात्योंकी भूसम्पत्ति-हरणकी आकांक्षा वलवती हो उठी। इस कारण राज्यमें घोरतर विशृङ्खलता उपस्थित हो गई। चुनार-विद्रोहसे अवकाश पा कर इब्राहिम खां नामक राजाके किसी निकटात्मीयने आगरा और दिल्ली अधिकार कर लिया। इधर राजाके साले सिक-न्दरशाहने पञ्जाव प्रदेशमें अपना अधिकार जमा लिया। सिकन्दरके द्वारा पराजित हो कर इब्राहिम राजधानी छोड़ भाग गये। मार्गमें कालपीके पास चुनारसे लौटते हुए हिमूके साथ उनकी भेंट हुई। हिमूने पीछा कर उन्हें वैना दुर्गमें अवरुद्ध कर लिया। वङ्गालके राजा महम्मदशाह सूरके विद्रोह-दमनके लिए हिमू वेनाका अवरोध छोड़नेके लिए वाध्य हुए। वङ्गालमें उन्होंने विशेष सुव्यवस्था की थी।

पूरवमें हिमूको युद्ध कार्यमें लगा देख हुमायूँ पञ्जाव पर आक्रमण कर वैठे। सिकन्दरशूरके पराजित होने पर, १५५५ ई०में आगरा और दिल्ली मुगलोंके हाथ लगा। छह मास दिल्लीमें रहनेके वाद, संग-मरमरकी सीढ़ीसे गिर कर हुमायूँकी मृत्यु हो गई। हुमायूँकी मृत्युका संवाद सुन कर हिमूने वड़े उत्साहके साथ आगरा अधिकार कर मुगल सेनाको दिल्लीसे भगा दिया और स्वयं महाराजाधिराज विक्रमादित्य नाम धारण-पूर्वक दिल्लीके सिंहासन पर उपविष्ट हुए।

इस समय चौदहवर्षके कुमार अकवर अपने अवि-भावक वैरामखाँके साथ पञ्जावमें वास कर रहे थे। हिमू उनके दमनार्थ पञ्जावकी ओर अग्रसर हुए। पानीपतमें दोनोंमें घोर संघर्ष हुआ। १५५६ ई०में पानीपतके २य युद्धमें हिमू कैद कर लिये गये और अकवरके सामने पेश हुए। वैरामखाँने अकवरके समक्ष ही शिरच्छेद कर मुगल कण्टक दूर किया। जिस समय मुगलोंके हाथसे हिमू मारे गये, उस समय आदिल चुनारमें थे। वङ्गाल-के विद्रोहदमन करनेमें आदिलकी मृत्यु हुई और साथ ही शूर-वंशका लोप हो गया।

मुगलवंश।—कन्नौजके युद्धमें शेरशाह द्वारा पराजित हो कर हुमायूँ जोधपुरकी तरफ भागे, पर वहां आश्रय न मिलनेसे उन्हें फिर अमरकोटके राजाके समीप जाना पड़ा। वहां १५४२ ई०में वालक अकवरका जन्म हुआ। अमरकोटके राणाप्रसादके साथ विरोध उपस्थित होने-से हुमायूँको फारस जाना पड़ा। जाते समय वे अपने भाई कमरानके हीरट स्थित शासनकर्त्ता हिन्दाकके पास अपने प्रिय पुत्र अकवरको छोड़ गये। वाल्यकालमें अक-वरने अपने चचा कमरानके हाथसे दो वार निष्कृति पाई थी। पानीपतके युद्धके वाद, अकवर दिल्ली और आगराके अधीश्वर तो हो गये, पर वास्तवमें वैरामखाँ पर ही राज्य-शासनका भार रहा। वैरामखाँ वड़े ही दुर्दान्त थे। उनके कठोर शासनसे सभी त्रस्त हो गये। स्वयं अकवरशाह मातासे मिलनेका वहाना कर दिल्ली पहुंचे और वैरामखांकी अधीनता त्याग कर १५६० ई०में वे स्वयं राज्य-शासन करने लगे। इसके वाद मक्का जाते समय गुजरातमें वैरामखां गुप्तचरों द्वारा मारे गये।

१५५६ ई०में हुमायूंकी अपघात मृत्युके वाद, राजा-सनमें उपविष्ट हो कर अकवरशाहने १६०५ ई० तक भारत साम्राज्यका शासन किया था। पिताकी मृत्युके समय आप पञ्जावके अफगान विद्रोहके दमनमें फँसे हुए थे। राज्याधिकार प्राप्त करनेके वाद ७ वर्ष तक लगातार युद्ध करके इन्होंने अपने राज-सिंहासनकी दृढ़ता सम्पा-दन की थी। उस समय जौनपुर, मालवा, गढ़मण्डल आदि स्थान उनके शासनाधीन हुए थे। पहले दिल्ली और आगराके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंको अपने अधिकारमें करने वाद उन्होंने १५५८ ई०में चित्तोर और अजमेर, १५७० ई०में अयोध्या और ग्वालियर, १५७२-में गुजरात और वङ्गाल, १५७८ में उड़िष्या, १५८१ में काबुल, १५८६में काश्मोर, १५९२ में सिंधु और १५९४ ई०में कान्दाहार राज्य जय किया था। उनके जीवनकाशेषांश दाक्षिणात्य-विजयमें अतिवाहित हुआ था। १५९५ ई०में अहमदनगर अवरोधके समय चांदवीवीके साथ इनका घोरतर युद्ध हुआ। चांद-वीवीने अहमदनगरकी रक्षाके लिए उन्हें वरारप्रदेश दे दिया। अहमदनगर अवरोधके वाद उन्होंने खानदेश

राज्य पर अधिकार किया। १६०५ ई०में अकबरशाहकी मृत्यु हुई।

राजपूतोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापन और हिन्दुओंके प्रति सदय व्यवहार ही उनकी साम्राज्य-भित्तिके दृढ़ीकरणका प्रधान अवलम्बन हुआ था। उनके ४१५ मनसवदारोंमें ५१ हिंदू थे। प्रजाकी हितकामनासे उन्होंने जिजिया कर उठा दिया था। टोडरमल्लकी जरीव और राजस्व अवधारण उनके राजत्वकी एक प्रधान घटना थी।

अकबरशाह सिर्फ हिन्दुओंके ही पक्षपाती थे, सो नहीं, जैन, सिख, ईसाई, मुसलमान आदि विभिन्न सम्प्रदायके लोग उनके द्वारा सम्मानित होते थे। प्रसिद्ध धर्म-प्रचारक सेण्टजुभियरके भ्राता ईसाई धर्मके प्रचारार्थ भारतमें आये थे, तो वे भी अकबरशाहके सान्ध्यसम्मिलनमें समवेत और पूजित हुए थे। आबुलफजलके परामर्शसे और विभिन्न धर्मसम्प्रदायके साथ सामञ्जस्य रखते हुए उन्होंने इलाहीधर्मका प्रचार किया था। विश्वब्रह्माण्डमें मूलस्वरूप सूर्यदेव ही उनके द्वारा प्रवर्त्तित धर्ममें ईश्वरत्वका प्रधान अवलम्बन हैं—वे ही जगत् प्रकृतिके आधारभूत हैं, सुतरां परब्रह्म रूपमें प्रतिपादित हुए हैं।

वे संस्कृत और फारसी भाषामें विशेष पक्षपाती थे। जो व्यक्ति संस्कृतमें पारसी भाषामें रूपान्तर नहीं कर सकते थे, उनका राजकीय पद पर नियुक्त होना असम्भव था। रामायण, महाभारत, कथासरित्सागर आदि सुललित संस्कृत ग्रन्थ उन्हींके उत्साहसे फारसी भाषामें अनुवादित हुए थे। मियां तानसेनके सङ्गीतालयसे उनकी सभा प्रतिध्वनित होती थी। अबुलफजलके भाई फैजीने सबसे पहले संस्कृतभाषामें षड़दर्शणकी शिक्षा प्राप्त की थी।

१६०५ ई०से १६२७ ई० तक अकबरके पुत्र सलीमशाहने जहांगीर नामसे मुगल साम्राज्यका शासन किया। नूरजहांका विवाह, महव्वतका विरोध, इङ्गलैण्डके राजदूत सर टामसरोका मुगल-सभामें आगमन और सूरतमें अंग्रेजों द्वारा वाणिज्यके लिए कोठी स्थापन तथा पुर्त्तगीज वणिकों द्वारा अमेरिकासे ताम्रकूटका लाना, ये सब जहांगीरके राजत्वकी विशेष घटनाएं हैं।

जहांगीर और नूरजहां देखो।

१६२७से १६५८ ई० तक मुगल-सम्राट् शाहजहांने राजत्व किया था। मुगलवंशकी कुलप्रथाके अनुसार ये भी पितृ-विरोधी थे। १६३६ ई०में इन्होंने अहमदनगर जीत कर विद्रोही सेनापति खाँजहान लोदीको काफी सजा दी थी। निजामशाही राज्य-आक्रमणके समय महाराष्ट्र सेनापति शाहजी (शिवाजीके पिता)ने उनकी विशेष प्रतिद्वन्द्विता की थी। बादमें काबुल और बदाकसान जीत कर उन्होंने मुगलवंशका गौरव बढ़ा गया। अकबरशाह सुकौशलसे जिस साम्राज्यभित्तिकी स्थापना कर गये थे, जहांगीरके शासनकालमें उसकी पुष्टि और वृद्धि हुई थी। शाहजहां उसकी सर्वाङ्गीनता सम्पादन कर गये। इस समय मुगलोंका सौभाग्य-केन्द्र शीर्षस्थान तक पहुंच जा चुका था। ताजमहल, मोती-मसजिद और मयुरासन मुगलगौरवके निदर्शन हैं।

अकबरके यत्नातिशयसे लब्ध जो मुगल-साम्राज्य धीरे धीरे शाहजहांके समयमें शासन-समृद्धिसे परिवर्द्धित हुआ था, दुर्वृत्त कुटिल हृदय हिंदूविद्वेषी औरङ्गजेवके कठोर शासनके फलसे उसको अवनतिका सूत्रपात हुआ। हिंदू और मुसलमानोंमें सद्भाव स्थापन कर अकबरशाहने जिस सौख्यतासूत्रका ग्रंथन किया था, औरङ्गजेबके बुद्धिविपर्ययसे उसका बन्धन शिथिल हो गया। औरङ्गजेब ऐसे विद्रोहरूप वीजका रोपण कर गये कि उस अनर्थकारी वीजने मुगल-साम्राज्यका विलोप हो कर दिया।

दाराशिकोह, शाहसुजा, मुराद और औरङ्गजेब, इस प्रकार शाहजहांके चार पुत्र थे। बड़े दाराशिकोह अकबरशाहके धर्ममतावलम्वी थे। उन्होंने एक उपनिषद् ग्रंथ फारसीभाषामें अनुवादित किया है। ज्येष्ठ पुत्र दाराके गुण और विद्यावतासे संतुष्ट हो कर सम्राट्ने उन्हें ही सिंहासन देनेका निश्चय कर लिया था। औरङ्गजेबने १६५८ ई०में आगरा-रणक्षेत्रमें दाराको पराजित किया। उसके बाद अपने भाई मुराद और वृद्ध पिताको कैद कर उन्होंने शाहसुजाको आराकानमें निर्वासित किया था। १६५६ ई०में दाराशिकोह सिंधुप्रदेशमें पकड़े गये और बादमें औरङ्गजेव द्वारा मरवा दिये गये।

१६५८ ई०में भारत-साम्राज्यके अधीश्वर बन कर औरङ्गजेब प्रवल-प्रतापसे राज्यशासन करने लगे।

उनके अधिकारमें मुगलोंकी सेनाशक्ति सौभाग्यके शीर्षस्थान पर अवस्थित थी; किंतु १७०७ ई०में उनकी मृत्युके साथ ही मुगलप्राधान्यका अवसान हो गया। जिस समय औरङ्गजेव सीमान्तवर्ती पार्वत्य राज्योंमें शासन विस्तारके लिए व्यस्त थे, उस समय दिल्ली राजधानीमें सत्नामी नामक एक हिन्दूसम्प्रदायके साथ मुगलोंका घोर विरोध उपस्थित हुआ। किसी सामान्यसूत्रसे एक सत्नामीके साथ एक मुगल-पदातिकका विरोध ही इस संघर्षका कारण था। कई खण्डयुद्धके वाद संन्यासी-सम्प्रदायकी विजय हुई। अवरोधसे सम्राट्ने स्वयं मुगल सेनाको उत्तेजित कर दिल्लीके विरोधका दमन किया था। इसके बाद स्वभावजात हिन्दू-विद्वेषसे मुगल-सम्राट् औरङ्गजेवने दिल्लीकी अधीनस्थ हिन्दूसेना मात्रका प्राण-संहार किया। उनके स्त्री पुत्रादि क्रीत-दास रूपमें विके थे। अनन्तर उन्होंने प्रत्येक हिंदू पर जिजिया कर लगाया। इसके सिवा दाक्षिणात्य-विजय (गोलकुण्डा और बीजापुर-अधिकार) तथा १६८६ ई०में राजपूत-विद्रोह, महाराष्ट्रीय और सिक्ख शक्तिका अभ्युत्थान ये भी उनके राज्यके प्रधान घटनाएं हैं।

औरङ्गजेब देखो।

महाराष्ट्र अभ्युत्थान — जो राजपूतगण मुगलोंके चिर सहाय थे, औरङ्गजेवके विद्वेषवशतः हो उन्होंने मुगल पक्ष छोड़ दिया। मुगलोंके विपक्षमें उदयपुरके राणा राजसिंहके विशेष रण नैपुण्यका परिचय दे गये हैं। इधर दाक्षिणात्यमें छत्रपति शिवाजीकी छत्रच्छायामें महाराष्ट्र भी विशेष दक्षताके साथ मुगलोंका सामना कर रहे थे। शिवाजो वीजापुर-राजके अधीन घाटगिरि दुर्गके अधिनायक थे। उन्होंने साम्य, मैत्री, भेद और दण्डका अवलम्बन-पूर्वक दाक्षिणात्यके मुसलमान शासनकर्त्ताओंको कठपुतलियोंकी तरह नचाया था। जिस चातुर्य और कौशलसे उन्होंने औरङ्गजेवके मनोरथको व्यर्थ किया था; वह महाराष्ट्र इतिहासमें स्पष्टतया लिखा है। उनकी वारात और पूना-आक्रमण तथा प्रहरिपरिवेष्टित मुगलोंकी राजधानी दिल्लीसे भाग जाना, उनके जीवनकी अद्भुत घटनाएं हैं। शिवाजी देखो।

१६८० ई०में शिवाजीकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र शम्भाजीने महाराष्ट्र-रश्मिका संयोजन किया। उन्होंने कई बार मुगल-सेनाको विपर्यस्त किया था। सुकौशली औरङ्गजेवके उन्हें कोङ्कणप्रदेशमें अवरुद्ध कर निहत करने पर (१३८० ई०) महाराष्ट्र-शक्ति कुछ दिनोंके लिए शिथिल हो गई।

शम्भाजीके शिरच्छेदनके वाद उनके पुत्र शाहू (२य शिवाजी) राजा हुए। उनके पितृव्य राजाराम राजकार्यकी देख-भाल करते थे। मुगलोंके रायगढ़-दुर्गमें शाहूको कैद करने पर, राजारामने गिञ्जिदुर्गमें राजोपाधि ग्रहण की। १६९८ ई०में मुगल सेनापति जुलफिकर खांके गिञ्जि आक्रमण करने पर, राजाराम सतारको भाग गये। इसी समय महाराष्ट्र-सेनामें गृहविच्छेद उपस्थित हुआ। सेनापति शान्तजी घोरपड़में अपनी सेना द्वारा मारे गये। राजाराम और धनजी यादव आदि महाराष्ट्र सरदारगण चौथसंग्रहमें प्रवृत्त हुए थे। इसके प्रतिविधानके लिए सम्राट्ने जुलफिकर खांको महाराष्ट्रोंके विरुद्ध भेजा। एक एक कर महाराष्ट्रोंके सभी दुर्गों पर आक्रमण होने लगे। १६९९ ई०में सतारा-दुर्ग मुसलमानोंके हस्तगत हुआ। जुलफिकर खांने राजारामको वन्दी करनेके लिए सिंहगढ़ तक पीछा किया। यहां हृदरोगसे राजारामकी मृत्यु हो गई।

राजारामके वाद, उनके शिशुपुत्र ३य शिवाजी राजा हुए। इन वालकी तरफसे उनकी माता ताराबाई राजकार्यकी पर्यालोचना करने लगीं। उस समय भी दक्षिणमें मुगलोंके साथ युद्ध चल रहा था। महाराष्ट्रसेनाके गुप्त युद्धों और लूट-मारोंसे औरङ्गजेब क्लान्त हो गये। अत्यधिक व्ययसे राजकोष प्रायः शून्य हो चला था। सेनापतियोंका वेतन चुकाना भी कष्टकर दिखाई देने लगा। इधर राजपूतोंके साथ युद्ध और आगराके जाटोंके विद्रोहसे नाकोदम आ चुकी थी; ऐसी अवस्थामें वाध्य हो कर सम्राट् औरङ्गजेवको महाराष्ट्रोंसे सन्धि करनेके लिए वाध्य होना पड़ा। महाराष्ट्रोंके द्वारा असङ्गत क्षतपूर्त्तिका प्रस्ताव रखे जाने पर सन्धिभङ्ग हो गई। गर्वित औरङ्गजेव भग्नहृदयसे महाराष्ट्रोंके उपद्रव सहते रहे और आखिर १७०७ ई०में अहमदनगरमें उनकी मृत्यु हो गई।

मृत्यु-समय पर्यन्त औरङ्गजेब दाक्षिणात्यमें मुगल-प्रभाव को अक्षुण्ण बनाये रखनेमें यत्नशील थे। उनके अधिकार कालमें मुगल-साम्राज्यकी सीमा सुदूर पर्यन्त विस्तृत हुई थी। इस प्रकार वीर्यवत्ताके साथ, काश्मीरसे कुमारिका तक साम्राज्य विस्तारमें कोई भी मुसलमान राजा आज तक समर्थ नहीं हुए थे।

औरङ्गजेबने अपने साम्राज्यको मुआजिम आजम और कामबक्स नामक अपने तीन पुत्रों को बांट देनेका आदेश दिया था। उनकी मृत्युके बाद तीनों भाई राज्यप्राप्ति के लिए परस्पर विरुद्धाचारी हो गये। अन्य भाइयों के मारे जानेके बाद मुआजिम 'बहादुरशाह' (शाहआलम) १म नाम धारण कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। १७०७ ई०से १७१२ ई० तक बहादुरशाहने राज्य किया।

महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके वंशधर शाहू युवराज आजिम द्वारा कारामुक्त हुए। शाहूके दाक्षिणात्यमें प्रवेश करने पर, उन्हें राज्यके वास्तविक उत्तराधिकारी समझ बहुतसे महाराष्ट्र सरदारों ने उनका पक्ष अवलम्बन किया। इधर ताराबाईने सिंहासनच्युतिके भयसे शाहू को जाली ठहरानेकी चेष्टा की। इसी सूत्रसे एक युद्ध भी हुआ। ताराबाईके पराजित होने पर, शाहू १७०८ ई०में सताराके राजा हुए। राजा शाहूके मंत्री बालाजी विश्वनाथसे महाराष्ट्र भूमि पर पेशवाका आधिपत्य विस्तृत हुआ। पेशवा देखो।

उदयपुर, जयपुर और जोधपुरके राजपूत राजाओं को स्वाधीनता प्रदान कर बहादुरशाहने मुगलसाम्राज्यमें शान्ति स्थापित की। राजपूतानाका और वहांकी राजधानियों-के नामानुसार उन्हीं शब्दोंमें विशेष विवरण देखना चाहिये।

सिख-अभ्युदय।—ईसाकी १५ शताब्दीमें पञ्जाबप्रदेशमें बाबा नानक द्वारा सिख-धर्म प्रवर्त्तित हुआ। गुरु नानककी मृत्युके बाद कई एक गुरु चुपचाप मुसलमानोंके अत्याचार सहते हुए लाहोरके पास अवस्थान करते रहे। १६०६ ई०में खुसरूके विद्रोहमें साथ दे कर सिख-दल विशेष निगृहीत हुआ था। यहां तक कि उन्हें अपनी वास भूमि लाहोरको छोड़ कर शतद्रु और यमुनाके मध्यवर्त्ती पार्वतीय अन्तराल भूमि में वास करनेके लिए बाध्य होना पड़ा था। दशवें गुरु गोविन्दने (१६८५ ई०) प्रतिहिंसा-परवश हो कर सिखोंको शस्त्र-विद्याकी शिक्षा दी और मुसलमानोंके निष्ठुरताका प्रतिशोध लेनेके लिए वे कटिबद्ध हुए। मुसलमानोंने इस संवादको पाते ही क्रुद्ध हो सिखोंके दुर्गों पर कब्जा कर उन्हें कैद कर लिया और गुरु गोविंद के परिवारवर्गको मरवा डाला तथा अन्यान्य सिखोंको विशेष बर्बर-व्यवहारसे उत्पीड़ित किया। स्वयं गुरु गोविन्द भी जब दाक्षिणात्यमें भेज कर मार डाले गये, तो सिख-सम्प्रदाय उन्मत्तप्राय हो उठा। उन लोगों ने बन्दा नामक एक संन्यासीकी अधिनायकतामें पञ्जाबके पूर्वभाग पर धावा मार कर मुसलमानोंकी मसजिदें तोड़ फोड़ डालीं और मुल्लाओंको मार डाला। ग्रामसे ग्रामान्तर आक्रमण करते और तलवारोंसे शत्रुओंका उच्छेद करते हुए वे सहारनपुर तक अग्रसर हुए। सर-हिंद सूबेदार इस समय विशेषरूपसे निपीड़ित हुए थे। बहादुरशाहने बंदाके गिरि-दुर्गमें घेरा डाला; परंतु बन्दाने कौशल-पूर्वक भाग कर अपनी रक्षा कर ली। १७१२ ई०में लाहोरमें बहादुर शाहकी मृत्यु हो गई।

बहादुरकी मृत्युके बाद सिंहासनके पीछे उनके चार पुत्रोंमें विवाद उपस्थित हुआ। मंत्री जुलफिकर खांके षड्यंत्रसे आजिम उस्-शान, खुजिस्ता आखिर और रुफि उल्-कादेर ये तीनों भाई मार डाले गये और बड़े भाई मैज-उद्दीन जहानदारशाह सिंहासन पर बैठे। उक्त चारों पुत्रोंमें आजिम-उस्-शान विशेष योग्य व्यक्ति थे। उनके एकमात्र पुत्र फरुखसियर बङ्गालमें थे, इस लिये वे बच गये।

विलासी जहांदार शाहको कठपुतली बना कर प्रभुत्व करनेकी मनशासे जुलफिकरने उनकी सहायता की थी। उमरावोंने उनके इस सगर्वव्यवहारसे फरुखसियरको बुला भेजा। बिहारके शासनकर्त्ता सैयद हुसेन अली और इलाहाबादके शासनकर्त्ता सैयद अबदुल्लाकी सहायतासे आगराके युद्धमें सम्राटको पराजित और राज्यच्युत कर फरुखसियरने सिंहासन अधिकार किया।

राजासन पर बैठ कर उन्हों ने अवदुल्ला और हुसेन अलीको वजीर और सेनापति पद पर नियुक्त किया। वास्तवमें ये दो सैयद भाई हों राज्यके सर्वेसर्वा हो गये थे। सिख सरदारोंकी हत्या, १७१७ ई०को महाराष्ट्रोंके साथ संधि, डा० हैमिल्टनकी प्रार्थना पर विना शुल्कके अङ्गरेजोंको वाणिज्य करनेकी आज्ञा और ३८ ग्रामोंका खरीदना, ये उनके राज्यकी प्रधान घटनाएं हैं।

फरुखसियर देखो।

१७१९ ई०में फरुखसियरको मार कर उन सैयद भाइयोंने रफी-उद्-राज और रफी-उद्-दौला नामक दो राजपुङ्गवोंको सिंहासन पर विठाया; परंतु उनके अकालमें ही मर जानेसे रोशन अखतयार महम्मदशाहको सिंहासन दिया गया। इनके राज्यमें वजीर प्रधान चींग लिज खां निजाम-उल्-मुल्क (आसफजा) और सादत अलीने क्रमशः अपने अपने स्वाधीन राज्योंकी स्थापना की। हैद्रावादमें निजामराजवंश और अयोध्यामें वजीर वंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। अयोध्या और निजाम देखो। १७२०से १७३८ ई० तक महम्मदशाहने राज्य किया था। इस समय महाराष्ट्रक्षेत्रमें पेशवाओंका प्रभुत्व दूना हो गया था। प्रसिद्ध 'वर्गीयउपद्रव' अलिवर्दीके राजत्वकालमें वङ्गालमें संघटित हुआ था। १७३७ ई०में नादिरशाहने दिल्ली अधिकार किया। नादिरशाह देखो।

नादिरशाहकी मृत्युके वाद, उनके विख्यात सेनापति अहमदशाह अवदलीने १७४७ ई०में भारत आक्रमण किया। इस युद्धमें उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ।

महम्मदशाहकी मृत्युके वाद उनके पुत्र युवराज अहमदने १७४८से १७५४ ई० तक राज्य किया। १७५१ ई०के रोहिला-युद्धमें उन्हें सिन्धिया और होलकर राज्यकी सहायता ग्रहण करनी पड़ी थी। अवदलीके द्वितीय आक्रमणसे उन्होंने पञ्जावका स्वत्व छोड़ दिया, जिससे वजीरके साथ उनका मनोवाद (१७५३ ई०) हो गया। इसके वाद आसफ़जाके पौत्र गाजीउद्दीनने वजीर हो कर उनकी हत्या कर डाली और औरङ्गजेवके वंशधर किसी एक राजपुरुषका २य आलमगीर नाम रख उन्हें सिंहासन पर विठाया। २य आलमगीरके राजत्वकालमें (१७५४-५९ ई०) वजीर गाजीउद्दोनकी विश्वासघातकतासे क्रोधोद्दीप्त हो कर अवदलीने दिल्ली आक्रमण और साथ ही उसका ध्वंस कर डाला। अवकी वार भी महाराष्ट्रोंने दिल्लीका पक्ष ले कर युद्ध किया था। १७६१ ई०में पानीपतकी ३री लड़ाईमें मुगल और महाराष्ट्र-शक्ति हमेशाके लिए लुप्त हो गई। अहमदशाद अवदली देखो।

१७५९ ई०में २य आलमगीरके मारे जाने पर, उनके पुत्र अली जहर १७६० ई०में शाह आलमके नामसे दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। १८०६ ई०में २य अकवर और १८३४ ई०में महम्मद वहादुरशाहको दिल्लीका सिंहासन प्राप्त हुआ। परन्तु इसी समयसे अंग्रेज वणिक् सम्प्रदाय ही वास्तवमें भारतका शासन कर रहा था। सिपाहीविद्रोहमें सम्मिलित होनेके अपराधसे वे अंग्रेजोंके विचारसे ब्रह्ममें निर्वासित हुए। उनकी पत्नी जिनत्महल और पुत्र जोवनवख्त उन्हींके साथ हो लिये थे।

मुगलोंका अधिकार-काल।

वावर—१५२६-३० हुमायूँ—१५३०-४०

शूरवंश।

शेरशाह सलीमशाह आदिलि	१५४०—५६ ई०

मुगलवंश।

हुमायूं	१५५६	रफीउद्दरजी	१७१९
अकवर	१५५६	रफोउद्दौला	१७१९
जहांगीर	१६०५	महम्मदशाह	१७१९
शाहजहां	१६२७	अहमदशाह	१७६८
औरङ्गजेव	१६४८	आलमगीरशाह (२य)	१७५४
वहादुरशाह	१७०७	शाह आलम	१७५९
जहान्दारशाह	१७१२	अकवर (२य)	१८०६
फरुखसियार	१७१३	महम्मद वहादुर	१८३४

यूरोपीय समागम और अंग्रेजोंका आधिपत्य।

वहु पूर्वकालसेही भारतकी समृद्धि चारों ओर व्याप्त हो गई थी। उसी प्राचीन समृद्धि पर लुब्ध हो कर माकिदनवीर अलेकसन्दरने भारत आक्रमण किया था। उनके परवर्त्ती यवन राजगण यथाशक्ति भारतीय

जलमें बहा देते हैं। इसे मृत्समाधि और जलसमाधि कहते हैं।

"संन्यासिनां मृतं कायं दाहयेन्न कदाचन।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्निखनेद्वाप्सु मज्जयेत् ॥"
(महानि० तन्त्र ८)

संन्यासियोंकी मृतदेह कदापि न जलावे। उसे गन्धपुष्पादि द्वारा अर्चना करके मट्टीमें गाड़ अथवा जलमें बहा दे।

वर्त्तमान समयमें बहुतेरे केवल नाम धारण करते हैं, स्वधर्मोचित साधन और नियमानुष्ठान कुछ भी नहीं करते। ये लोग केवल तीर्थ भ्रमण और विजया धूमपान करके जीवन विताते हैं। सरस्वती, पुरि और दशनामी देखो। ६ एक नदीका नाम।

"भारती सुप्रयोगा च कावेरी सुर्म्मरायथा।"
(भारत ३।२२१।२५)

भारतीकवि—शार्ङ्गधरपद्धतिधृत कविभेद। आप काव्यप्रकाश और काव्यप्रकाशसूत्र लिख गये हैं।

भारती कृष्णाचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद, धर्मवक्ता।

भारतीचन्द्र (सं० पु०) गढ़ादेशाधिपति एक राजा।

भारतीतीर्थ (सं० पु०) १ तीर्थभेद। २ पञ्चदशीके प्रणेता, सुविख्यात सायण और माधवाचार्यके गुरु। इन्होंने वेदान्ताधिकरणन्यायमालाविवरण-प्रमेहसंग्रह नामक ब्रह्मसूत्रभाष्य और व्रतकालनिर्णय तथा पञ्चभूतविवेक नामक ग्रंथ प्रणयन किये हैं।

भारतीय (सं० त्रि०) भारतसंबंधी, भारतका।

भारतीयति (सं० पु०) तत्त्वकौमुदीव्याख्याके प्रणेता, बौधायन यतिके शिष्य।

भारतीवत् (सं० त्रि०) भारती अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। १ भारती तुल्य। २ विशिष्ट। (पु०) ३ इन्द्र।

भारतीश्रीनृसिंह (सं० पु०) शङ्कराचार्यके मतावलम्बी एक प्रसिद्ध आचार्य।

भारतुला (सं० स्त्री०) वस्तु विद्याके अनुसार स्तम्भके नौ भागोंमेंसे पांचवां भाग जो बीचमें होता है।

भारतेय (सं० पु०) भारतका अपत्य।

भारतेश्वर (सं० पु०) १ भारतका अधीश्वर। २ राजा भरत।

भारतेश्वरसूरि—एक जैन सूरि, शिलभद्रके शिष्य।

भारथ (सं० पु०) भारद्वाजपक्षी।

भारथी (हिं पु०) योद्धा, सिपाही।

भारदण्ड (सं० पु०) १ एक प्रकारका साम। २ भारयष्टि, बहंगी।

भारदण्ड (हिं० पु०) एक प्रकारकी कसरत या दण्ड। इसमें दण्ड करनेवाला साधारण दण्ड करते समय अपनी पीठ पर एक दूसरे आदमीको बैठा लेता है। वह पुरुष उसके पैरोंकी नली पर पांव जमा कर हाथोंसे उसकी करधनी वा बन्धन पकड़ कर झुका रहता है और दंड करनेवाला उसका बोझ संभाले हुए साधारण रीतिसे दण्ड करता जाता है।

भारद्वाज (सं० पु०) भरद्वाजस्य अपत्यं गोत्रापत्यमिति वा भरद्वाज (अनृष्यनान्तर्य्ये विदादिभ्यो अञ्। पा ४।१।१०४) इति अञ्। १ द्रोणाचार्य्य। २ ऋषिभेद। इनका रचा हुआ श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र है। ३ अगस्त्य मुनि। ४ मङ्गलग्रह। ५ ध्याघ्राट पक्षी। ६ बृहस्पति पुत्र। ७ देशभेद। ८ अस्थि, हड्डी। ९ बृहत्संहितोक्त एक ज्योतिर्विद। १० उपलेखपञ्जिकाके रचयिता। (त्रि०) ११ भरद्वाज वंशीय, भरद्वाजके कुलमें उत्पन्न।

भारद्वाजक (सं० त्रि०) भरद्वाजसम्बन्धीय।

भारद्वाजायन (सं० पु०) भरद्वाजस्य गोत्रापत्यं भरद्वाज (अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) फञ्। भरद्वाजका गोत्रापत्य।

भारद्वाजी (सं० स्त्री०) १ वनकार्पासी, वन कपास। २ नदीभेद। (भारत ६।९।१९)

भारद्वाजीपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

भारद्वाजीय (सं० त्रि०) १ भारद्वाजसे आगत। (पु०) २ भारद्वाजप्रोक्त-व्याकरण-मतावलम्बी।

भारभारी (सं० त्रि०) भारवहनकारी, बोझ उठानेवाला।

भारभूतितीर्थ (सं० क्ली०) प्राचीन तीर्थ जो अभी भरहुत नामसे प्रसिद्ध है।

भारभृत् (सं० त्रि०) भारं बिभर्त्ति भृ-क्विप्। १ भारधारक, बोझ ढोनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

भारमेय (सं० त्रि०) भरमस्येदं शुभ्रादित्वात् ढक्। भरमसम्बन्धी।

भारय (सं० पु०) भां दीप्तिं रयते प्राप्नोतीति रय गतौ पचाद्यच् । भारद्वाज पक्षी, भरदूला ।

भारयष्टि (सं० स्त्री०) भारस्य यष्टिः ६ तत् । भारवहन-दण्ड, बहङ्गी ।

भारव (सं० क्ली०) भारं वातीति भार-वा (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति क। धनुगुण, धनुषकी रस्सी ।

भारवत् (सं० त्रि०) भार-अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व । भारयुक्त, बोझल ।

भारवाह (सं० त्रि०) भारं वहतीति अण्, णिच वा । १ भारिक, भार ढोनेवाला । २ वहँगी ढोनेवाला । (पु०) ३ गर्दभ, गदहा ।

भारवाहक (सं० त्रि०) १ बोझ ढोनेवाला । (पु०) २ मोटिया ।

भारवाहन (सं० क्ली०) भारस्य वाहनं । भारसम्बन्धी वाहन ।

भारवाहिक (सं० क्ली०) भारस्य वाहन । भारसम्बन्धी वाहन ।

भारवाहिक (सं० त्रि०) १ भारवहनकारी, भार ढोनेवाला । (पु०) २ मजदूर, मोटिया ।

भारवाही (सं० स्त्री०) भारवाह गौरादित्वात् ङीप् । १ नीली । (त्रि०) २ भारवाह, बोझ ढोनेवाला ।

भारवि—एक प्राचीन कवि । विख्यात किरातार्जुनीय नामक महाकाव्य इन्हींकी सुधारसवर्षिणी लेखनीसे निकला है । इन अमर कविवरके आविर्भावसे भारतभूमिका कौन स्थान अलंकृत हुआ था उसका अभी तक कोई पता नहीं लगा है । कहते हैं, कि ये अपने गुरुकी गौएं ले कर हिमालयकी तराईमें चराने जाया करते थे । हिमगिरिके निकुञ्जपुञ्ज आदिसे प्रकृतिकी अनुपम सौन्दर्यराशि देख कर धीरे धीरे उनके हृदयक्षेत्रमें कवित्व बीज अंकुरित होने लगा । क्रमशः इन्होंने कवित्वके उच्चासन पर दखल जमाया । एक दिन भारतीय इतिहासकी आलोचना करते करते द्वैतवन-निवासी युधिष्ठिरादि पञ्च-पाण्डवकी कीर्त्तिकहानी उनके स्मृतिपथमें उदित हुई । तभीसे वे प्रतिदिन गौएं चरानेके बहानेसे निर्जन शैलकुञ्जमें जा कर बैठा करते थे और आपकी होमधेनु पास हीमें स्वेच्छाहार और स्वैर-मनादिका सुखानुभव करती थी । उधर आप हिमगिरिके मञ्जुलतम निकुञ्जमें बैठ कर एक एक भोजपत्रके ऊपर तीन चार वा उससे अधिक श्लोकोंकी रचना करते थे । महाकवि भारविने इस प्रकार प्रतिदिनके रचित श्लोकोंको एकत्र संग्रह कर एक परमोपादेय महाकाव्य प्रकाशित किया । उसी काव्यका नाम किरातार्जुनीय है । उसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है,—

"श्रियःकुरूणामधिपस्य पालनीं प्रजासुवृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम् ।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ॥"

कविने इस महाकाव्यके प्रत्येक सर्गके शेष श्लोकको एक एक लक्ष्मी शब्द द्वारा परिशोभित किया है । इसकी शरद्वर्णना और हिमालयवर्णना आदि बड़ीही रमणीय है । एतद्भिन्न इसके अनेक श्लोक विविध अलङ्कार निकरसे अलङ्कृत और सर्वतोभद्र अर्द्धभ्रमक आदि नानाविध चित्रवन्धसे ग्रथित हैं । विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर केवल एक उद्धृत किया जाता है,—

दे वा का नि नि का वा दे ।
वा हि का स्व स्व का हि वा ॥
का का रे भ भ रे का का ।
नि स्व भ व्य व्य भ स्व नि ॥
(भारवि १५।२०)

कविने अपने ग्रन्थमें इस प्रकार अनेक पाण्डित्य दिखलाया है । एतद्भिन्न केवल एकाक्षर ले कर भी आपने अनेक श्लोकोंकी रचना की है । यथा—

न नो न नु न्नो नुन्नो नोनाना नाना नाना ! ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नाने ना नुन्ननुन्नुत् ।
(भार० १५।१४)

महाकवि भारवि एक असाधारण पण्डित थे । उन्होंने कितनी मात्रामें पाण्डित्य और कवित्वशक्ति ले कर जन्मग्रहण किया था, वह उनकी रचित सरस-मधुर-कवितावलीके प्रति लक्ष्य करनेसे ही मालूम हो सकता है । उनकी रचनाके मध्य प्रसादगुणका विशेष आदर है । प्रायः अधिकांश कविता पढ़ते ही सहृदय पाठकका हृदय-कमल आनन्दरससे प्लावित और शरीर पुलकित हो जाता है । उनकी कविता केवल प्रसादपूर्ण पदकदम्ब

द्वारा ही परिशोभित थी सो नहीं, अन्तर्निहित गभीर भावार्थोंके अपूर्व समावेशचातुर्यसे भी उनके कृतित्वने अनन्य साधारणता लाभ की है। महाकवि भारविकी ललित मधुर रचनाने अर्थगौरवमें जो प्रधान स्थान अधिकार किया है, वह काव्यरस रसिक कोविदोंके निम्न लिखित वचनोंसे ही सहजमें प्रतिपन्न होता है। यथा—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥"

प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ भी एक श्लोकमें अन्तर रसपूर्ण नारिकेल फलके साथ भारवि कविकी उक्तिकी तुलना करके रसिकोंको इसकी सरस सारकथाका इच्छा अनुसार आस्वादन करने कह गये हैं। टीकाकारकृत श्लोक यों है,—

"नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥"

कविवर भारवि सम्भवतः ४थी शताब्दीमें विद्यमान थे। उनका कवित्व-सौरभ तत्परवर्त्ती कालमें चारों ओर फैल गया था। यही कारण है, कि हम लोग ५०७ शकमें उत्कीर्ण २य पुलकेशोकी शिलालिपिमें प्रसिद्ध कवि कालिदासके साथ उनका समावेश देख पाते हैं।

भारवी (सं० पु०) तुलसीवृक्ष।

भारवृक्ष (सं० पु०) सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन।

भारशिव—प्राचीन जातिविशेष।

भाश्टङ्ग (सं० पु०) मृगविशेष।

भारसह (सं० त्रि०) सह-अच् भारस्य सहः। भारसहनकारी।

भारसाधन (सं० त्रि०) कठिन व्यापारसाधनकारी।

भारहर (सं० पु०) हरतीति हृ-अच्, भारस्य हरः। भारवाहक।

भारहार (सं० पु०) भारं हरतीति हृ-अण्। भारवाहक।

भारहारिक (सं० त्रि०) १ भारहरणकारी। २ भारवहनकारी।

भारहारिन् (सं० त्रि०) भारं हरतीति हृ णिनि। भारहरणकारी, भगवान् विष्णु। पृथिवी जब पापसे पराक्रान्त हुई तभी विष्णुने उनका भारहरण किया।

भाराक्रान्त (सं० त्रि०) भारेण आक्रान्तः ३ तत्। भारपीड़ित, बोझसे लदा हुआ।

भाराक्रान्ता (सं० स्त्री०) एक वर्णिक वृत्तिका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें न भ न र स और एक लघु और एक गुरु होते हैं और चौथे, छठे तथा सातवें वर्ण पर यति होती है।

भारावलम्बकत्व (सं० पु०) पदार्थोंके परमाणुओंका पारस्परिक आकर्षण। बहुतसे पदार्थोंको दोनों ओरसे खींचनेमें प्रतिबाधक होता है जिससे वह टूट नहीं सकते। इसी धर्मको भारावलम्बकत्व कहते हैं।

भारि (सं० पु०) इभस्य अरिः पृषोदरादित्वात् साधुः। सिंह।

भारिक (सं० पु०) भाऽस्ति वाह्यतयास्य (अत इनिठनौ। पा ५।२।११५) इति ठन्। भारवाहक, वह जो भार ढोता हो।

भारिट (सं० पु०) पक्षिविशेष, पर्याय—श्यामचटक, शैशिर, कणभक्षक।

भारिन् (सं० पु०) भारोऽस्त्यस्मिन् वेति, भार-इनि। १ भारवाहक। (त्रि०) २ भारयुक्त।

भारी (हिं० वि०) १ गुरु, बोझिल। २ भीषण, कठिन। ३ विशाल, बड़ा। ४ अधिक, अत्यन्त। ५ असह्य, दुभर। ६ सूजा हुआ, फूला हुआ। ७ प्रबल। ८ गम्भीर, शान्त।

भारीपन (हिं० पु०) १ गुरुत्व, भारीका भाव। २ गरीष्ठता, भारी होना।

भारुचि (सं० पु०) धर्मशास्त्र और वेदान्तशास्त्रके प्रणेता। विज्ञानेश्वरने इनका नामोल्लेख किया है।

भारुजिक (सं० त्रि०) भरुज शृगालसम्बन्धीय। (पा ५।३।१०८)

भारुण्ड (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक वनका नाम। यह पञ्जावमें सरस्वति नदीके पास पूर्वमें था।

भारुण्डि (सं० पु०) १ उत्तरकुरुवर्षस्थ पक्षिभेद, एक पक्षीका नाम जो उत्तर कुरुका रहनेवाला है। २ एक ऋषिका नाम। ये भारुण्डि सामके द्रष्टा थे। ३ सामभेद, एक प्रकारका साम।

भारू (हिं० पु०) धीरे धीरे चलनेके लिये एक संकेत। कहार लोग इस शब्दका व्यवहार करते हैं।

भारूप (सं० क्ली०) भा रूपमस्य। चिदात्मक, आत्मा।

भारोद्वह (सं० त्रि०) १ भारवाही, भार ले जानेवाला । (पु०) २ मोटिया, मजदूर ।

भारोपजीवन (सं० क्लो०) भारवहन द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला ।

भारौली—१ युक्तप्रदेशके रायवरेली जिलेका भरजातिका प्रतिष्ठित एक प्राचीन नगर । रायवरेली देखो ।

२ झांसी जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन गण्डग्राम । यह भाण्डसे १॥० कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है । यहां चन्देला राजाओंका प्रतिष्ठत एक सुप्राचीन शिव-मन्दिर विद्यमान है ।

३ गोरखपुर जिलान्तर्गत एक प्राचोन ग्राम । यहां कर्णा जलधाराके निकट एक प्रचीन मन्दिरका ध्वंसावशेष देखा जाता है ।

भारौली गङ्गातीर—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर । यहां एक बौद्धविहारका ध्वंसावशेष और एक सुप्राचोन वट वृक्ष नजर आता है । चीन परिव्राजक फाहियान और यूएनचुवंग यहां आये हुए थे ।

भारौहो (सं० स्त्री०) भारं वहतीति वह-णिच्, स्त्रियां ङीप्, वस्य ऊट् । भारवाहिका, बोझ ढोनेवाली स्त्री ।

भार्ग (सं० पु०) भर्गस्य देशभेदस्य राजा अण् । भर्ग-देशके राजा ।

भार्गभूमि (सं० पु०) आङ्गिरस भार्गवके एक पुत्रका नाम ।

भार्गवेश्वरतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थविशेष ।

भार्गव (सं० पु०) भृगोरपत्यं तद्गोत्रापत्यमिति भृगु-अण् । १ परशुराम । २ शुक्राचार्य । ३ गज, हाथी । ४ भारतवर्षके मध्य प्राच्यदेशान्तर्गत देशविशेष । (मार्कण्डेयपुराण) ५ भृगुके वंशमें उत्पन्न पुरुष । ६ मार्कण्डेय । ७ कुलाल, कुम्हार । ८ शौनक । ९ हीरक, हीरा । १० नीलभृङ्गराज, नोला भंगरा । ११ एक उपपुराणका नाम । १२ जमदग्नि । १३ च्यवन । १४ सह्याद्रिवर्णित एक राजा । १५ संयुक्तप्रदेशमें रहनेवाली एक जाति । इस जातिके लोग अपने आपको ब्राह्मण कहते हैं, पर इनकी वृत्ति बहुधा वैश्योंकी सी होती है । कुछ लोग इन्हें दूसर बनिया भी कहते हैं । (त्रि०) १६ भृगुसम्बन्धी ।

भार्गव—वाग्भूषणकाव्यके प्रणेता ।

भार्गवआचार्य—नामसंग्रहनिघण्टुके रचयिता ।

भार्गवन (सं० क्लो०) द्वारकास्थित वनभेद ।

भार्गवपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह घर्घरा नदीके बाएं किनारे अवस्थित है । इसका वर्त्तमान नाम भागलपुर है । इसके निकटवर्त्ती स्थानोंमें अनेक ध्वंसावशेष देखे जाते हैं ।

भार्गवप्रिय (सं० पु०) भार्गवस्य प्रियः, शुक्राधिष्ठातृदेवताकत्वात् । हीरक, हीरा ।

भार्गवब्राह्मण—भरोचवासी ब्राह्मण जातिकी एक शाखा ।

भार्गवराम—वर्णसङ्करजातिमालाके प्रणयनकर्त्ता ।

भार्गवराम—एक महापुरुष । ये २य पेशवा बाजीरावके गुरु थे ।

भार्गवी (सं० स्त्री०) भार्गव ङीप् । १ पार्वती । भृगोरपत्यं स्त्री भृगु-ङीप् । २ लक्ष्मी । ३ दूर्वा, दूब । ४ नील दूर्वा, नीली दूब । श्वेत दूर्वा, सफेद दूब । ६ भृगुवंशीय स्त्रीमात्र ।

भार्गवी—पुरी जिलेमें प्रवाहित एक शाखा नदी । यह महानदीकी कोयाखाई नदीकी एक शाखासे निकल कर चिल्का झीलमें गिरती है ।

भार्गवीय (सं० त्रि०) भार्गवसम्बन्धी ।

भार्गायन (सं० पु० स्त्री०) भार्गस्य गोत्रापत्यं तै गर्त्तादित्वात् फञ् (पा ४।१।१११) भर्गका गोत्रापत्य ।

भार्गि (सं० पु०) भर्गका गोत्रापत्य ।

भार्गी (सं० स्त्री०) भृज् घञ्, भार्गोऽस्त्यस्या इति (ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् । पा ५।२।१०३) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अण् ततो ङीप् । वृक्षविशेष, भारंगी । भारंगी देखो ।

भार्गीगुड़ (सं० पु०) श्वासाधिकारका औषधभेद । प्रस्तुत प्रणाली—भार्गी १२॥, दशमूल १२॥ सेर और हरीतकी एक सौ, इन सबके चतुर्गुणको ११६ सेर जल द्वारा पाक करके चतुर्थांश शेष रहते उतार ले । पीछे वस्त्र द्वारा छान कर उस क्वाथमें १२॥ सेर पुराना गुड़ और सिद्ध हरीतकी डाले और फिर धीमी आंचमें पकावे । ठंढा हो जाने पर तीन पाव मधु तथा सोंठ, पीपर, मिर्च, दारुचीनी, इलायची और तेजपत्र प्रत्येक आध पाव और यवक्षार चूर्ण एक छटाक छोड़ दे । प्रतिदिन यह हरीतकी

पक्व और लेह चार तोला करके सेवन करनेसे श्वास, पांच प्रकारकी खांसी, अर्श, अरुचि, गुल्म, मलभेद और क्षय-रोग जाता रहता है तथा स्वर, वर्ण और जठराग्नि उद्दीपित होती है। (भावप्र० श्वासाधिकार)

भार्ग्यादि (सं० पु०) विषम ज्वरका कषायभेद। प्रस्तुत प्रणाली,—भार्गी, अब्द, पर्पटक, पुष्कर, शृङ्गबेर, पथ्या, कणाह्व और दशमूल इनके समान भागको आध सेर जलमें सिद्ध कर पीछे आध पाव रहते उतार लेनेसे यह कषाय बनता है। इसके सेवनसे विषमज्वर बहुत जल्द दूर होता है। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधि०)

भार्द्वाजी (सं० स्त्री०) भारद्वजी पृषोदरादित्वात् साधु। वनकार्पासी, वनकपास।

भार्म्य (सं० पु०) मुद्गलगोत्र नृपभेद।

भार्या (सं० स्त्री०) भरणीया इति। (भृञोऽसंज्ञायाम्। पा ३।१।११२) इति ण्यत्, टाप् वा भया दीप्त्या आर्या। वेद-विधान द्वारा विवाहिता स्त्री, शास्त्र-विधिसे विवाहित पत्नी। पर्याय—पत्नी, पाणिगृहीती, द्वितीया, सहधर्मिणी, जाया, दारा, धर्मचारिणी, दार, कलत्र, कलत्रक। (शब्दरत्ना०) सौ अपकर्म करने पर भी भार्याका भरण-पोषण करना उचित है।

"यस्य नास्ति सती भार्या गृहेषु प्रियवादनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥"
(ब्रह्मवै० पु० प्रकृ० खं० ५६ अ०)

जिसके घरमें प्रियवादिनी सती स्त्री नहीं है, उसको वनमें जा कर रहना चाहिए; क्योंकि उसके लिए जैसा घर है वैसा ही अरण्य, दोनों ही समान हैं।

मनुमें लिखा है, जिसपरिवारमें भर्त्ता और भार्यामें परस्पर नित्य सन्तुष्टि नहीं है, उस कुलका निश्चयसे अकल्याण होता है। वस्त्र और आभूषणादि द्वारा कान्तिमती हुए विना स्त्री पतिको प्रमोदित नहीं कर सकती और न स्वामीकी प्रीतिके विना सन्तानकी ही उत्पत्ति हो सकती है। भार्या यदि भूषणादि द्वारा सर्वदा मनोहर रूपमें सुसज्जिता रहे, तो सम्पूर्ण गृह शोभित होता है, और स्त्री यदि रुचिकर न हो, तो सम्पूर्ण गृह शोभाहीन होता है।

जिस कुलमें स्त्रियोंका समादर है, वहां देवतागण प्रसन्न रहते हैं—वह कुल सदा मङ्गलमय है। जिस परिवारमें स्त्रीगण सर्वदा दुःखित रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अतएव जो श्रीवृद्धिकी कामना करते हैं, उन्हें चाहिए कि नित्य अशन, भूषण और वसनादि द्वारा स्त्रियोंको सन्तुष्ट रखें। (मनु ३ अ०)

भार्याके दोष।—भार्या यदि कुरूपा, कश्मला, कलहप्रिया, प्रतिवादकारिणी, कुक्रियासक्ता, लज्जाहीना और परगृहकाङ्क्षिणी हो, तो उसे वास्तवमें जरायुक्त समझना चाहिए। जैसे सर्प-युक्त गृहमें वास करनेवालाको सर्वदा प्राणनाशका भय रहता है, उसी प्रकार ईदृश भार्या जिसके गृहमें विद्यमान हो उसकी मृत्यु निश्चय है, अर्थात् प्रति मुहूर्त्तमें उसे मृत्युयन्त्रणा सताती रहती है। भार्या वास्तवमें अनुरागिणी है या नहीं, इस बातकी परीक्षा विभव क्षीण होने पर होती है*।

भार्याके गुण।—जो स्त्री गुणज्ञा, अल्प-सन्तुष्टा, पतिप्राणा, गृहकार्यमें दक्षा, सर्वदा प्रियवादिनी, नित्य स्नान करनेवाली, सुगन्ध युक्ता, स्वल्प-भाषिणी, धार्मिका, पितृ और देवप्रिया तथा सर्वसौभाग्य-वर्द्धिनी होती है, उसका पति मनुष्य होने पर भी स्वर्गाधिपति इन्द्रके समान है। इस प्रकारकी भार्या बहु पुण्यफल ही प्राप्त होती है। भार्या अर्द्धाङ्ग-स्वरूपा है, भार्या ही एकमात्र श्रेष्ठ सुहृद् और त्रिवर्गका एकमात्र मूल है।

"सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता॥
अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्यामूलं त्रिवर्गस्य भार्यामूलं भविष्यतः॥"
(भारत १७४ अ०)

* "यस्य भार्या विरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया।
उत्तरोत्तरवादास्यात् सा जरा न जरा जरा॥
यस्य भार्याश्रितान्यत्र परवेश्माभिकांक्षिणी।
कुक्रिया त्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा॥
दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्याश्चोत्तरदायकाः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥
आपत्सु मित्रं जानीयात् युद्धे शूरमृणे शुचिम्।
भार्याञ्च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम्॥"
(गरुड़पु० नीतिसा० १०८,१०९ अ०)

भारोद्वह (सं० त्रि०) १ भारवाही, भार ले जानेवाला। (पु०) २ मोटिया, मजदूर।

भारोपजीवन (सं० क्ली०) भारवहन द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला।

भारौली—१ युक्तप्रदेशके रायबरेली जिलेका भरजातिका प्रतिष्ठित एक प्राचीन नगर। रायबरेली देखो।

२ झांसी जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन गण्डग्राम। यह भाण्डसे १॥० कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां चन्देला राजाओंका प्रतिष्ठत एक सुप्राचीन शिव-मन्दिर विद्यमान है।

३ गोरखपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां कर्णा जलधाराके निकट एक प्रचीन मन्दिरका ध्वंसावशेष देखा जाता है।

भारौली गङ्गातीर—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां एक बौद्धविहारका ध्वंसावशेष और एक सुप्राचीन वट वृक्ष नजर आता है। चीन परिव्राजक फाहियान और यूएनचुवंग यहां आये हुए थे।

भारौही (सं० स्त्री०) भारं वहतीति वह-णिन्, स्त्रियां ङीप्, वस्य ऊट्। भारवाहिका, बोझ ढोनेवाली स्त्री।

भार्ग (सं० पु०) भर्गस्य देशभेदस्य राजा अण्। भर्गदेशके राजा।

भार्गभूमि (सं० पु०) आङ्गिरस भार्गवके एक पुत्रका नाम।

भार्गवेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

भार्गव (सं० पु०) भृगोरपत्यं तद्गोत्रापत्यमिति भृगु-अण्। १ परशुराम। २ शुक्राचार्य। ३ गज, हाथी। ४ भारतवर्षके मध्य प्राच्यदेशान्तर्गत देशविशेष। (मार्कण्डेयपुराण) ५ भृगुके वंशमें उत्पन्न पुरुष। ६ मार्कण्डेय। ७ कुलाल, कुम्हार। ८ शौनक। ९ हीरक, हीरा। १० नीलभृङ्गराज, नीला भंगरा। ११ एक उपपुराणका नाम। १२ जमदग्नि। १३ चयवन। १४ सह्याद्रिवर्णित एक राजा। १५ संयुक्तप्रदेशमें रहनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग अपने आपको ब्राह्मण कहते हैं, पर इनकी वृत्ति बहुधा वैश्योंकी सी होती है। कुछ लोग इन्हें दूसर बनिया भी कहते हैं। (त्रि०) १६ भृगुसम्बन्धी।

भार्गव—वाग्भूषणकाव्यके प्रणेता।

भार्गवआचार्य—नामसंग्रहनिघण्टुके रचयिता।

भार्गवन (सं० क्ली०) द्वारकास्थित वनभेद।

भार्गवपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह घर्घरा नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। इसका वर्त्तमान नाम भागलपुर है। इसके निकटवर्त्ती स्थानोंमें अनेक ध्वंसावशेष देखे जाते हैं।

भार्गवप्रिय (सं० पु०) भार्गवस्य प्रियः, शुक्राधिष्ठातृदेवताकत्वात्। हीरक, हीरा।

भार्गवब्राह्मण—भरोचवासी ब्राह्मण जातिकी एक शाखा।

भार्गवराम—वर्णसङ्करजातिमालाके प्रणयनकर्त्ता।

भार्गवराम—एक महापुरुष। ये २य पेशवा वाजीरावके गुरु थे।

भार्गवी (सं० स्त्री०) भार्गव ङीप्। १ पार्वती। भृगोरपत्यं स्त्री भृगु-ङीप्। २ लक्ष्मी। ३ दूर्वा, दूब। ४ नील दूर्वा, नीली दूब। ५ श्वेत दूर्वा, सफेद दूब। ६ भृगुवंशीय स्त्रीमात्र।

भार्गवी—पुरी जिलेमें प्रवाहित एक शाखा नदी। यह महानदीकी कोयाखाई नदीकी एक शाखासे निकल कर चिल्का झीलमें गिरती है।

भार्गवीय (सं० त्रि०) भार्गवसम्बन्धी।

भार्गायन (सं० पु० स्त्री०) भार्गस्य गोत्रापत्यं त्रैगर्त्तादित्वात् कञ् (पा ४।१।१११) भर्गका गोत्रापत्य।

भार्गि (सं० पु०) भर्गका गोत्रापत्य।

भार्गी (सं० स्त्री०) भृज् घञ्, भार्गोऽस्त्यस्या इति (ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्। पा ५।२।१०३) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अण् ततो ङीप्। वृक्षविशेष, भारंगी। भारंगी देखो।

भार्गीगुड़ (सं० पु०) श्वासाधिकारका औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—भार्गी १२॥, दशमूल १२॥ सेर और हरीतकी एक सौ, इन सबके चतुर्गुणको ११६ सेर जल द्वारा पाक करके चतुर्थांश शेष रहते उतार ले। पीछे वस्त्र द्वारा छान कर उस क्वाथमें १२॥ सेर पुराना गुड़ और सिद्ध हरीतकी डाले और फिर धीमी आंचमें पकावे। ठंढा हो जाने पर तीन पाव मधु तथा सोंठ, पीपर, मिर्च, दारुचीनी, इलायची और तेजपत्र प्रत्येक आध पाव और यवक्षार चूर्ण एक छटाक छोड़ दे। प्रतिदिन यह हरीतकी

एक और लेह चार तोला करके सेवन करनेसे श्वास, पांच-प्रकारकी खांसी, अर्श, अरुचि, गुल्म, मलमेद और क्षय-रोग जाता रहता है तथा स्वर, वर्ण और जठराग्नि उद्दीपित होती है। (भावप्र० श्वासाधिकार)

भार्ग्यादि (सं० पु०) विषम ज्वरका कषायभेद। प्रस्तुत प्रणाली,—भार्गी, अब्द, पर्पटक, पुष्कर, शृङ्गवेर, पथ्या, कणाह्व और दशमूल इनके समान भागको आध-सेर जलमें सिद्ध कर पीछे आध पाव रहते उतार लेनेसे यह कषाय बनता है। इसके सेवनसे विषमज्वर बहुत जल्द दूर होता है। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधि०)

भार्द्वाजी (सं० स्त्री०) भारद्वजी पृषोदरादित्वात् साधु। वनकार्पासी, वनकपास।

भार्म्य (सं० पु०) मुद्गलगोत्र नृपभेद।

भार्या (सं० स्त्री०) भरणीया इति। (ऋहलोर्ण्यत्। पा ३।१।१२४) इति ण्यत्, टाप् वा भया दीप्त्या आर्या। वेद-विधान द्वारा विवाहिता स्त्री, शास्त्र विधिसे विवाहित पत्नी। पर्याय—पत्नी, पाणिगृहीती, द्वितीया, सहधर्मिणी, जाया, दारा, धर्मचारिणी, दार, कलत्र, कलत्रक। (शब्दरत्ना०) सौ अपकर्म करने पर भी भार्याका भरण-पोषण करना उचित है।

"यस्य नास्ति सती भार्या गृहेषु प्रियवादनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥"

(ब्रह्मवै० पु० प्रकृ० खं० ५६ अ०)

जिसके घरमें प्रियवादिनी सती स्त्री नहीं है, उसको वनमें जा कर रहना चाहिए; क्योंकि उसके लिए जैसा घर है वैसा ही अरण्य, दोनों ही समान हैं।

मनुमें लिखा है, जिसपरिवारमें भर्त्ता और भार्यामें परस्पर नित्य सन्तुष्टि नहीं है, उस कुलका निश्चयसे अकल्याण होता है। वस्त्र और आभूषणादि द्वारा कान्तिमती हुए विना स्त्री पतिको प्रमोदित नहीं कर सकती और न स्वामीकी प्रीतिके विना सन्तानकी ही उत्पत्ति हो सकती है। भार्या यदि भूषणादि द्वारा सर्वदा मनोहर रूपमें सुसज्जिता रहे, तो सम्पूर्ण गृह शोभित होता है, और स्त्री यदि रुचिकर न हो, तो सम्पूर्ण गृह शोभाहीन होता है।

जिस कुलमें स्त्रियोंका समादर है, वहां देवतागण प्रसन्न रहते हैं—वह कुल सदा मङ्गलमय है। जिस परिवारमें स्त्रीगण सर्वदा दुःखित रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अतएव जो श्रीवृद्धिकी कामना करते हैं, उन्हें चाहिए कि नित्य अशन, भूषण और वसनादि द्वारा स्त्रियोंको सन्तुष्ट रखें। (मनु ३ अ०)

भार्याके दोष।—भार्या यदि कुरूपा, कश्मला, कलहप्रिया, प्रतिवादकारिणी, कुक्रियासक्ता, लज्जाहीना और परगृहकाङ्क्षिणी हो, तो उसे वास्तवमें जरायुक्त समझना चाहिए। जैसे सर्प-युक्त गृहमें वास करनेवालाको सर्वदा प्राणनाशका भय रहता है, उसी प्रकार ईदृश भार्या जिसके गृहमें विद्यमान हो उसकी मृत्यु निश्चय है, अर्थात् प्रति मुहूर्त्तमें उसे मृत्युयन्त्रणा सताती रहती है। भार्या वास्तवमें अनुरागिणी है या नहीं, इस बातकी परीक्षा विभव क्षीण होने पर होती है*।

भार्याके गुण।—जो स्त्री गुणज्ञा, अल्प-सन्तुष्टा, पतिप्राणा, गृहकार्यमें दक्षा, सर्वदा प्रियवादिनी, नित्य स्नान करनेवाली, सुगन्ध युक्ता, स्वल्प-भाषिणी, धार्मिका, पितृ और देवप्रिया तथा सर्वसौभाग्य-वर्द्धिनी होती है, उसका पति मनुष्य होने पर भी स्वर्गाधिपति इन्द्रके समान है। इस प्रकारकी भार्या बहु पुण्यफल ही प्राप्त होती है। भार्या अर्द्धाङ्ग-स्वरूपा है, भार्या ही एकमात्र श्रेष्ठ सुहृद और त्रिवर्गका एकमात्र मूल है।

"सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता॥
अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्यामूलं त्रिवर्गस्य भार्यामूलं भविष्यतः॥"

(भारत १।७४ अ०)

---

* "यस्य भार्या विरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया।
उत्तरोत्तरवादास्यात् सा जरा न जरा जरा॥
यस्य भार्याश्रितान्यत्र परवेश्माभिकांक्षिणी।
कुक्रिया त्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा॥
दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्याश्चोत्तरदायकाः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥
आपत्सु मित्रं जानीयात् युद्धे शूरमृणे शुचिम्।
भार्याञ्च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम्॥"

(गरुड़पु० नीतिसा० १०८,१०९ अ०)

भार्या ही एकमात्र धर्मार्थकामका मूल है। अतएव जिससे भार्याको प्रीति उत्पन्न हो, ऐसा यत्न करना आवश्यक है। जिसके भार्या नहीं है, उसका गृह शून्य है, इसलिए 'भार्या' गृहपद वाच्य है।

"भार्याशून्या वनसमाः सभार्यश्च गृहा गृहाः।
गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते॥"

(ब्रह्मवै० पु० ५६ अ०)

भार्या कदापि त्यज्य नहीं होती। यदि कोई संसारसे विरक्त हो कर अनपत्या युवती पतिव्रता पत्नीको त्याग कर संन्यास अवलम्बन करे, तो मोक्ष होना तो दूर रहा, वरन् उसे नरक जाना पड़ता है। यवती भार्याको दूर रख कर वाणिज्यादिके लिए प्रवासमें अधिक दिन रहना शास्त्र-सिद्ध नहीं है। इससे प्रत्यवाय भागी होना पड़ता है।

"अनपत्याञ्च युवतीं कुलजाञ्च पतिव्रताम्।
त्यक्त्वा भवेद्यः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा॥
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः।
तीर्थाय तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम्॥
न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम्।
अभिशापेन भार्याया नरकञ्च परत्र च॥
इहैव च यशोनाश इत्याह कमलोद्भवः।"

(ब्रह्मवै० पु० श्रीकृष्ण ज० ११२ अ०)

कालिकापुराणमें लिखा है कि, परिणीता भार्याओंको सतत सन्तुष्ट रखना चाहिए, क्योंकि उनके सन्तोषसे मङ्गल और असन्तोषसे अमङ्गल हुआ करता है। जिस घर या वंशमें भर्त्ता वा भार्यामें विशेष प्रीति नहीं है, वहां सर्वदा ही अमङ्गल होता है। चन्द्रदेवने भार्याओंके प्रति अन्याय आचरण किया था, इसलिए उन्हें राजयक्ष्म रोगसे आक्रान्त होना पड़ा था। (कालिकापु० २० अ०)

पुरुषोंका सुख और धनागम सब कुछ भार्याके अधीन है। यज्ञादि धर्म कर्म भार्याके विना नहीं होता। जहां भार्या है वहीं गृह है। भार्याको लेकर ही पुरुष गृही हुआ करता है।

"भार्याधीनं सुखं पुंसां भार्याधीनो धनागमः।
भार्याधीनो सुखोत्पत्तिः भार्याधीनः सुखोदयः॥
यत्र भार्या गृहं तत्र भार्याधीनो गृहे वसेत्।
न गृहेन गृहस्थः स्यात् भार्यया कथ्यते गृही॥"

(पराशरस्मृति)

भार्याट (सं० त्रि०) भार्यया अटति वर्त्तते इति अट गतौ पचाद्यच्। वह जो किसी दूसरेको भोगके लिये अपनी स्त्री दे।

भार्याटिक (सं० त्रि०) अट गतौ भावे घञ्, भार्यया आटौ गतिर्भ्रमणं वा अस्त्यस्येति भार्याट-ठन्। १ स्त्रैण, जो अपनी भार्यामें बहुत अनुरक्त हो। २ हरिणविशेष। ३ मुनिविशेष।

भार्यात्व (सं० क्ली०) भार्या भावे त्व। भार्याका भाव या धर्म।

भार्यापती (सं० पु०) भार्या च पतिश्च तौ, (राजदन्तादिषु परम्। पा २।२।३१) इति साधुः। योषितपती, स्त्री और स्वामी। यह शब्द नित्य द्विवचनान्त है। पर्याय—दम्पती, जम्पती, जायापती (अमर)

भार्याधिकारिक (सं० त्रि०) १ जिसमें भार्या सम्बन्धीय वक्तव्य विषय है। (पु०) २ वात्स्यायनकृत कामसूत्रके तद्विषयक अध्यायभेद।

भार्यारु (सं० पु०) भार्या ऋच्छतीति ऋ गतौ उण्। १ मृगभेद। २ पर्वतभेद। ३ क्रीड़ा द्वारा दूसरेकी भार्यामें पुत्रोत्पादक।

भार्यावत् (सं० त्रि०) भार्या विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। भार्यायुक्त, स्त्री सहित।

भार्यावृक्ष (सं० पु०) भार्यावत् प्रियो वृक्षः। पत्तङ्गवृक्ष।

भार्य्योढ (सं० पु०) ऊढ़ा भार्या येन, आहितादित्वात् वाहु० परनिपातः। ऊढ़भार्यक, विवाहित।

भाल (सं० क्ली०) भा दीप्तौ भावे क्विप्, भां लाति गृह्णातीति ला (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति क। १ भंवोंके ऊपरका भाग, कपाल। पर्याय—ललाट, अलिक, गोधि। २ तेज।

भाल (हिं० पु०) १ भाला, बरछा। २ तीरका फल, तीरकी नोंक। ३ भालू, रीछ।

भालकृत् (सं० पु०) गोत्रप्रवर्तक ऋषिविशेष।

भालचन्द्र (सं० पु०) भाले चन्द्रो यस्य। १ शिव। २ गणेश। (स्त्री०) ३ दुर्गा।

भालचन्द्राचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद।

भालदर्शन (सं० क्ली०) भाले ललाटे दर्शनं यस्य। सिन्दूर सेंदुर।

भालदृश् (सं० पु०) भाले ललाटे दृक् नेत्रं यस्य। शिव, महादेव।

भालना (हिं० क्रि०) १ ध्यानपूर्वक देखना, अच्छी तरह देखना। २ अन्वेषण करना, तलाश करना।

भालनेत्र (सं० पु०) १ शिव, जिनके मस्तक पर एक तीसरा नेत्र है। २ (स्त्री०) दुर्गा।

भालन्दनक (सं० त्रि०) भलन्दनका गोत्रापत्य।

भालयानन्दाचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद।

भाललोचन (सं० पु०) भाले लोचनं यस्य। भालनेत्र, शिव।

भालविभूषणसंज्ञः (सं० पु०) तिलक क्षुप, तिलका-पौधा।

भालवी (हिं० पु०) भालू, रीछ।

भाला (हिं० पु०) १ बरछा नामका हथियार, सांग।

भालाबरदार (हिं० पु०) बरछा चलानेवाला, बरछैत।

भालाङ्क (सं० पु०) भालस्येव अङ्को यत्र भाले अंको यस्येति वा। १ करपत्र नामक अस्त्र। २ शाकभेद, एक प्रकारका साग। ३ रोहित मछली। ४ महा-लक्षणसम्पन्न पुरुष, ऐसा मनुष्य जिसके शरीरमें बहुत अच्छे अच्छे लक्षण हों। ५ कच्छप, कछुआ। ६ शिव, महादेव। ७ ललाटचिह्न।

भालिया (हिं० पु०) वह अन्न जो हलवाहेको वेतनमें दिया जाता है। भाता।

भाली (हिं० स्त्री०) १ भालेकी गांसी या नोंक। २ शूल, कांटा।

भालु (सं० पु०) भृणाति रोगान् भृ उदसने उण् रस्य ल। आदित्य, सूर्य।

भालुक (सं० पु०) भलते हिनस्ति प्राणिन इति भल हिंसायां बाहुलकात् उक्, ततः प्रज्ञादित्वादण्। भल्लूक, भालू।

भालुकि (सं० पु०) १ एक संहिताकार। आप लाङ्गलक मुनिके शिष्य थे। (ब्रह्माण्डपु०) २ योगशास्त्र प्रवर्त्तक ऋषि। हठप्रदीपिकामें इनका नाम पाया जाता है। ३ वैदिकग्रंथप्रणेता। टोडरानन्दमें इनका नामोल्लेख है।

भालुकिन् (सं० पु०) आचार्यभेद।

भालुकीपुत्र (सं० पु०) आचार्यभेद।

भालुनाथ (हिं० पु०) जामवंत, जांबवान।

भालुषणा—बम्बई प्रदेशके महीकांटा एजेन्सीके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यह अक्षा० २३° ५०´ ३०´´ उ० तथा देशा० ७२° ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरि-माण ५६ वर्गमील है। इस स्थानके सामन्तराज जातिके कछुवन कोलि और हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। ये इदरराजको वार्षिक ११६० रु० कर देते हैं। ठाकुर इनकी उपाधि है।

भालू (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध स्तनपायी भीषण चौपाया। यह प्रायः सारे संसारके बड़े बड़े जंगलों और पहाड़ोंमें पाया जाता है। विशेष विवरण भल्लुक शब्दमें देखो।

भालूक (सं० पु०) भलते हिनस्ति जीवानिति भल (उलूकादयश्च। उण् ४।४१) इति ऊक ततः प्रज्ञादित्यादण्। भल्लूक, भालू।

भालेसुलतान—राजपूत जातिविशेष। इनके मध्य 'भाले-सुलतान'की जो उपाधि है, इस सम्बन्धमें नाना प्रकार-के प्रवाद प्रचलित हैं। सुलतानपुरमें प्रवाद है, कि अम्ब-रायके पुत्र बड़र राय दिल्ली बादशाहके अधीन वैदवंशीय सेनाके अधिनायक थे। एक दिन बादशाहने भाड़ोंका दमन करनेके लिये उन्हें भेजा। कृतकार्य हो कर उनके दिल्ली लौटने पर बादशाहने उनका 'आओ भाले सुल-तान' इस वाक्य द्वारा अभिनन्दन किया। तभीसे उक्त संज्ञा चली आ रही है। फिर किसीका कहना है, कि इन लोगोंने तिलकचांदसे यह उपाधि पाई थी। किसी किसी पण्डितके मतसे ये लोग बलभी वंशीय सौराष्ट्र पतियोंके वंशधर हैं। बुलन्दशहरके अधिवासी सिद्धराज जयसिंहको अपना आदिपुरुष मानते हैं। शाहबुद्दीन घोरीने पृथ्वीराजको परास्त करनेके बाद जयसिंहको 'भालेसुलतान'की उपाधि दी थी।

भाल्ल (सं० त्रि०) भल्ल सम्बन्धीय।

भल्लकीय (सं० त्रि०) भल्लकीसम्बन्धीय।

भाल्लपालेय (सं० त्रि०) भल्लपालके गोत्रापत्य।

भाल्लवि (सं० पु०) १ साम शाखाभेद। २ तदध्येता, उसके पढ़नेवाले।

भाल्लविन् (सं० पु०) भल्लविके शिष्य वा तन्मतानुवर्त्तक सम्प्रदाय।

भाल्लवेय (सं० पु०) १ भल्लविका गोत्रापत्य। २ इन्द्र प्रद्युम्नका नामान्तर। ३ आचार्य भेद।

भाल्लवेयोपनिषद्—उपनिषद्भेद।

भाल्लूक (सं० पु०) भालुक, भालू।

भावंता (हिं० पु०) भावी, होनहार।

भावंर (हिं० पु०) एक प्रकार घास जिससे कागज बनता है।

भाव (सं० पु०) भावयति चिन्तयति पदार्थानिति भू-णिच्, पचाद्यच्, भवतीति भू 'भवतेश्चेति वक्तव्यम्' इति काशिकोक्ते र्णो वा। १ नाट्योक्तमें विद्वान् नाट्योक्तिमें जहां भाव शब्दका प्रयोग होता है वहां उसका अर्थ विद्वान् समझना चाहिए। २ मानस विकार, मनकाविकार। ३ सत्ता। (गीता २।१६) ४ स्वभाव। ५ अभिप्राय। (रामायण २।२।१६) ६ चेष्टा। ७ आत्मा। ८ जन्म (अमर) ९ चित्त। (मनु ४।२२७) १० क्रिया। ११ लीला। १२ पदार्थ (रघु ३।४१) १३ विभूति। १४ बुध। १५ जन्तु। १६ रत्यादि भाव। १७ गौरवित। १८ अभिनयान्तर। (त्रिका०) १९ विषय। (हितोपदेश) २० पर्यालोचना। (मनु ६।८०) २१ प्रेम। (गीता १०।१८) २२ योनि। २३ उपदेश। (धरणि) २४ संसार। (अनेकार्थकोष) २५ धात्वर्थ। (मुग्धबोध टीका) २६ नवग्रहकी शयनादि द्वादश चेष्टाएं।

सङ्केतकौमुदीमें द्वादश भावोंका विषय जिस प्रकार लिखा है, यहां संक्षेपमें उसका विवरण लिखा जाता है। कोष्ठी विचार करते समय ग्रहोंके भावों पर विशेष लक्ष्य रखना पड़ता है, कारण कौन-सा ग्रह किस भावमें है, उसमें फल देनेकी क्षमता है या नहीं, इस बातका निर्णय करके उसका फल निश्चय किया जाता है। द्वादश भाव इस प्रकार हैं,—

१ शयन, २ उपवेशन, ३ नेत्रपाणि, ४ प्रकाशन, ५ गमनेच्छा, ६ गमन, ७ सभावसति, ८ आगमन, ९ भोजन, १० नृत्यलिप्सा, ११ कौतुक और १२ निद्रा। ये द्वादश भाव हैं। निम्नलिखित प्रणालीके अनुसार इन भावोंका निर्णय किया जाता है।

रवि आदि नवग्रहोंके शयनादि द्वादशभावोंका निरूपण करना हो तो, उस समय ग्रहगण किस नक्षत्रमें अवस्थित हैं इसका निरूपण करके उस ग्रहमें अधिष्ठित नक्षत्र द्वारा ग्रहको पूरण करो और ग्रहगण स्वीय अधिष्ठित राशिके जिस नवांशभावमें अवस्थित है उस नवांश-परिमित अंक द्वारा उस पूरित अङ्कको गुणा करो, पीछे ग्रहोंको अपने अपने जन्मनक्षत्राङ्कको उस अङ्कमें जोड़ कर जन्म-लग्न-संख्यक और उदयावधि जातदण्ड उसमें मिला दो, उसके बाद उन अङ्कोंका १२से भाग कर जो बचे उस अङ्कसंख्यामें द्वादश भाव ज्ञात होते हैं। यदि शेषाङ्क १ हो तो शयनभाव, २ हो तो उपवेशनभाव, इसी प्रकार अन्य भावोंका निश्चय किया जाता है।

रविग्रहकी शयनादि भावगणना करते समय द्वादश हृतावशिष्ट अङ्कमें ५ जोड़ो, फिर चन्द्रग्रहके ३, मङ्गलके २, बुधके ३, बृहस्पतिके ५, शुक्रके ३, शनिके ३, राहुके ४ और केतुके ५ जोड़ कर भाव-विचार किया जाता है। युक्ताङ्क द्वादशसे अधिक होने पर पुनः उसे १२से भाग करो, जो बाकी बचे उससे भाव मालूम होगा। रविके १६ विशाखा, चन्द्रके ३ कृत्तिका, मङ्गलके २० पूर्वाषाढ़ा, बुधके २२ श्रवणा, बृहस्पतिके ११ पूर्वाफाल्गुनी, शुक्रके ८ पुष्या, शनिके २७ रेवती, राहुके २ भरणी और केतुके ७ अश्लेषा ये नक्षत्र ग्रहोंके जन्मनक्षत्र कहलाते हैं। पहले जिन ग्रहोंके जन्मनक्षत्रकी बात लिखी गई है, वह इस प्रकार समझनी चाहिए।

इस द्वादशभाव आनयनमें भी अनेक मतभेद हैं। किसीके मतसे—शयनादि द्वादशभावोंका विचार करना हो, तो रध्यादि ग्रहगण जिस-राशिमें होंगे, उस राशि-मित अङ्क द्वारा सूर्यादि ग्रहसंख्यक अङ्कका गुणा किया जाता है। पुनः उस अङ्ककी ६६से पूर्ति कर जिस ग्रहकी भाव-गणना की जायगी उस ग्रहके जन्मनक्षत्रको उसमें जोड़ना होगा। पश्चात् लग्नसंख्यक अङ्क, और जातदण्ड परिमित अङ्क इन दोनोंको उसमें जोड़ कर १२ से भाग देने पर जो न बचेगा, उससे क्रमसे शयनादि भाव निर्णीत होंगे। किसीके मतसे—जिस राशिमें ग्रह हो, उस अङ्कोंको द्विगुण करके १५ से उसका गुणा करो, और जिस नक्षत्रमें ग्रह है उस

नक्षत्रपरिमित अङ्कको पूर्वगुणित अङ्कमें मिला कर १२-से भाग करने पर जो बचेगा, उससे भावोंका निर्णय होगा।

पहले ग्रहोंका बलावल विशेषरूपसे स्थिर किया जाना आवश्यक है। कारण, किस स्थानमें ग्रहका कैसा बल है, इस बातको पहले न जान कर भावोंका विचार करना निःप्रयोजन है। क्योंकि, बलका निश्चय किये विना केवल भाव द्वारा फलका निर्णय नहीं हो सकता, व्यतिक्रम हो जाता है; इसलिए बलावल पर विशेष दृष्टि रखना ज्योतिर्विदोंका अवश्य कर्तव्य है।

निद्राभावस्थित कोई पापग्रह जायास्थानमें रहे तो शुभदायक होता है, किन्तु पापग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे कदापि शुभकर नहीं हो सकता। यदि अपने शत्रु गृहगत पापग्रह जायास्थानमें रह कर शत्रु द्वारा दृष्ट हो, तो पत्नीके साथ उसकी मृत्यु होती है। यदि उस स्थानमें शुभग्रह हो तथा वह शुभग्रह शुभाशुभ ग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो उसको प्रथमा स्त्रीकी मृत्यु होती है। जायास्थानमें शयन-भावका फल भी ऐसा ही अशुभ है।

कोई पापग्रह निद्रा वा शयनावस्थामें सुतस्थान पर हो, तो शुभदायक होता है, इसमें किसी प्रकारके विचारकी आवश्यकता नहीं। परन्तु वह पापग्रह यदि अपने उच्चस्थानमें या अपने गृहमें अथवा मूल त्रिकोणमें रह कर सुतस्थानगत हो, तो अवश्य ही सन्तानकी हानि होती है। निद्रा वा शयन-भावापन्न शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो कर सुतस्थानमें हों तो प्रथम सन्तानको विघ्न होता है।

निद्रा वा शयन-भावापन्न पापग्रह मृत्यु-स्थानमें हो तो राजा वा शत्रु द्वारा अपमृत्यु होती है। यदि वह पापग्रह शुभग्रहके साथ मिला हो अथवा शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो गङ्गातीरमें मृत्यु होगी।

शनि, मङ्गल वा राहु मृत्युस्थ होने पर अपमृत्यु वा शिरश्छेदन होता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

कर्मस्थानमें कोई पापग्रह शयन वा भोजन भावमें हो, तो उसे दरिद्रताके कारण समस्त भूमण्डलमें परिभ्रमण करना पड़ता है।

चन्द्रके कौतुक अथवा प्रकाश भावमें कर्मस्थान पर होने से प्रबल राजयोग होता है। यदि शुभग्रह पापग्रहके साथ अयुक्त हो कर २, १० ११, ६ वा ५म गृहमें रहे, तो महती सिद्धि प्राप्त हुआ करती है।

रवि शयन-भावमें होनेसे मन्दाग्नि-युक्त, पित्त-शूल रोग, श्लीपद और अर्श वा भगन्दर रोग होता है। उपवेशन-भावमें रहनेसे शिल्पकर्मकारी, श्यामवर्ण देहविशिष्ट, उत्तम विद्या-रहित, दुःख-युक्त और पर-सेवामें रत होता है। यदि रवि नेत्रपाणि-भावमें रह कर लग्नके पञ्चम, नवम, दशम और सप्तम स्थानमें हो, तो सर्व प्रकारका सुख होता है; तथा इन स्थानोंके सिवा अन्य स्थानमें रहनेसे क्रूरप्रकृति और जलदोष रोगयुक्त होता है। प्रकाशन-भावमें रहे तो चक्षु-रोगयुक्त, अतिशय क्रोधो, परद्वेष्टा, धार्मिक और धनवान् हुआ करता है। परन्तु त्रिकोण और सप्तम स्थानमें रहनेसे दाता, भोक्ता, मानी, राजतनय और धनाधिप होगा। रवि गमनेच्छाभावमें रहे तो निद्राभिलाषी, क्रोधी, नराधम, क्रूरप्रकृति; दाम्भिक, कृपण और परदार-रत होता है। रवि गमनभावमें हो तो प्रथमा स्त्री और प्रथम पुत्र विनष्ट होता है; तथा सभा-वसतिभावमें रहनेसे भार्याप्रिय, मानी, अनेक गुणयुक्त, विद्या और विनयसम्पन्न; आगमभावमें रहनेसे मूर्ख, सर्वदा कर्मकुशल, मिथ्यावादी, कुत्सित-विद्यासम्पन्न, निर्दय और पर-निन्दक; भोजन-भावमें रहनेसे दाम्भिक, मत्स्यमाँसलोभी, शास्त्रवेत्ता और सदाचारी; नृत्यलिप्सा भावमें रहनेसे कर्णरोगी, नाना-विद्या-कुशल, राजपूज्य और पण्डित, कौतुकभावमें रहनेसे उत्साहयुक्त, धन-धान्य-सम्पन्न, सर्वदा कौतुकपरायण, दाता, भोक्ता और शिल्पनिपुण; निद्राभावसे रहनेसे निद्रालु, व्याधि-युक्त, प्रवासी, रक्तचक्षु; क्रोधी और परनिन्दक हुआ करता है।

इस प्रकारसे रविके शयनादि द्वादश भाव-फलोंका निर्णय करना चाहिये। चन्द्रका भावफल—चन्द्र शयन-भावमें रहे तो क्रोधी, दरिद्र, अतिशय लम्पट, गुह्यरोगी और आलसी होता है। चन्द्रके शुक्ल और कृष्ण पक्षके भेदसे फलोंमें तारतम्य हुआ करता है। चन्द्र उपवेशनभावमें रहे तो विद्वेष्टा, प्रवासी, पित्तशूलरोगी, धनहीन, कृपण और कुटिल; नेत्रपाणि-भावमें रहे तो

चक्षुरोगी, श्लीपदी, वाचाल, क्रूर, खल और वीर; गमनेच्छा-भावमें रहे तो अस्थिरमति, मायावी, श्लीपदरोगी और धनहीन; सभावसतिभावमें हो तो दाता, धार्मिक और पुरुषश्रेष्ठ; आगमनभावमें हो तो वाचाल, प्रिय, शान्तप्रकृति, द्विपत्नीक, बहु सन्ततियुक्त, क्रोधी, महादुःखी; भोजनभावमें हो तो अतिशय लोभी, ज्ञातिगणसे परिपूरित, दाता, भोक्ता, अत्यन्त मानी, धनवान्, क्रूरकर्मा, चिररोगी, अतिशय कृश और नियत प्रवासी; नृत्यलिप्साभावमें हो तो गुणवान् धार्मिक, धनवान्, बहुपुत्रयुक्त और दाता; कौतुकभावमें हो तो सर्वसुखसम्पन्न विद्वान् और दाता; निद्राभावमें हो तो पापी, पुत्रशोकयुक्त, अतिशय दुःखी और नियत पृथिवीभ्रमणशील हुआ करता है।

मङ्गलका भावफल।—मङ्गल शयनभावमें होनेसे लम्पट, कृपण, सुखी, अतिशय क्रोधी, अत्यन्त निपुण और पण्डित; उपवेशनस्थानमें रहनेसे नराधम, धनवान्, क्रूरकर्मकारी, निष्ठुर और पापी; नेत्रपाणि भावमें होनेसे सर्वत्र सुख, पुत्र, दारा और धनयुक्त, देहमें किञ्चित् जड़ता, अङ्गसंधि वेदनायुक्त, व्याघ्र, अग्नि, सर्प और जलमें भययुक्त होता है। यह केवल लग्नके सिवा अन्य स्थलमें रहनेसे होगा। परंतु लग्नमें रहनेसे इसका फल अशुभ होगा। मङ्गल यदि प्रकाशनभावमें रहे तो धनवान्, क्षणिक सुखयुक्त; वामनेत्रमें क्षतादि चिह्नयुक्त और ऊंचेसे पतन; गमनेच्छाभावमें रहे तो प्रवासशील, गुह्यरोगी, धनहीन और कुकर्मकारी; सभास्थितभावमें रहे तो धार्मिक, बहुसन्ततिविशिष्ट, गुणवान्, दाता, शिरोरोगी; आगमनभावमें रहे तो खञ्ज, कर्णरोगी, पित्तशूल रोगाक्रांत, नराधम और धनवान्; भोजनभावमें रहे तो मांसलोभी, क्षुद्राकृति, क्रोधी, नियत उत्साहसम्पन्न और धनवान्; नृत्यलिप्साभावमें रहे तो दाता, भोक्ता और सुखी; कौतुकभावमें रहे तो सुपुत्रयुक्त, धनी और दो पत्नी और बहुकन्यासन्तानयुक्त निद्राभावमें रहे तो मूर्ख, धनहीन, क्रोधी और नराधम होता है। लग्न, द्वितीय, तृतीय नवम और एकादश, इन स्थानोंमें रहनेसे उक्त प्रकार फल होता है। अन्य स्थानमें होने पर शुभफल हुआ करता है।

बुधका भावफल।—बुध शयनभावमें रहे, तो धनी, क्षुधित, खञ्ज तथा उसका अङ्गच्छेद होता है। अन्य स्थानमें रहनेसे दरिद्र और अतिशय लम्पट हुआ करता है। बुध उपवेशनभावमें हो, तो कवि, वाक्पटु, गौरवर्ण, और अत्यन्त विशुद्धाचारी होता है। उपवेशनभावस्थित बुध पापग्रहके साथ मिलित और शत्रुग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे महापातक रोग होता है। परन्तु उक्तभावस्थ बुध स्वक्षेत्र वा मित्र ग्रहके साथ मिलित हो, तो नाना प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं; नेत्रपाणिभावमें हो तो श्लीपदरोग, विद्याकी हीनता और पुत्रनाश होता है। इसी प्रकार प्रकाशनभावमें दाता, धार्मिक, धनवान्, गुणी और वेदपारग; गमनेच्छाभावमें लम्पट, स्त्रैण, दुष्ट भार्यासम्पन्न, वहुविध दुःखयुक्त और नित्य कलहकारी, बहुरोग विशिष्ट; गमनभावमें जलदोष रोग, वाणिज्य द्वारा धनलाभ सर्प, और सलिलभय, नाना दुःखभोग; स्त्री-नाश और अङ्गवैकल्य, सभावसतिभावमें मूर्ख, धनवान्, धार्मिक और चिररोगी; आगमनभावमें क्रूरप्रकृति, खल, अत्यन्त मूर्ख, पापशील, नराधम, अस्थिरमति, गुह्य और मूत्रकृच्छ्ररोगविशिष्ट; भोजनभावमें धनहीन, परद्वेष्टा, प्रवासी, रोगी, वामदेहमें क्षतादियुक्त, नृत्यलिप्साभावमें धनवान्, पण्डित, कवि, उत्साहान्वित, अतिशय क्रोधी और दो पत्नीयुक्त; कौतुक भावमें सर्वजनप्रिय, सन्तानविशिष्ट, अर्श, दद्रु और त्वक्‌रोगी; निद्राभावमें समस्त दुःखोंका एकमात्र पात्र, अल्पायु और विवादकारी होगा। लग्न वा दशम स्थानमें बुध निद्राभावमें रहे, तो ये फल होते हैं, अन्यथा शुभफल होंगे।

वृहस्पतिका भावफल।—वृहस्पति शयनभावमें हो, तो विद्वान्, धनसम्पन्न, नाना गुणोंका आश्रय और सुखी होता है, उपवेशनभावमें हो तो दुःखी, बहुभाषी, रोगी, किसी ज़ीवके दन्ताघातसे पीड़ित, शिल्पकर्मवेत्ता और श्लीपदरोगी; नेत्रपाणिभावमें हो तो गौरवर्ण, शिरोरोगी और धनी तथा लग्नसे नवम, षष्ठ वा अष्टम गृहमें इसी भावमें रहे, तो शत्रुक्षय और गङ्गामें मृत्यु होती है। वृहस्पति लग्नमें वा दशम गृहमें रह कर यदि प्रकाशनभावस्थ हों तो वह सन्तान धनवान्, नाना

प्रकार रत्नयुक्त और राजमन्त्री होती है। गमनेच्छा-भावमें लग्नमें रहनेसे पण्डित, अन्यथा लिङ्गमें रोग होता है। सभावसतिभावमें हो तो वक्ता, दाता, धनवान्, राजसेवान्वित, पण्डित; आगमनभावमें हो तो धार्मिक, पण्डित, मानी, नानातीर्थभ्रमणशील, उत्साहान्वित और अहंकारी; भोजनभावमें रहे तो नाना प्रकारसे सुखी, मांसलोभी, श्रेष्ठ, कामुक और प्रियभाषी; नृत्य-लिप्साभावमें रहे तो पण्डित, धनवान्; सात्त्विक, अति-शय ऐश्वर्यशाली; कौतुकभावमें रहे तो सर्वदा धर्म-परायण, नियत उत्साहविशिष्ट और सुखी; निद्राभावमें हो, तो चक्षुरोगी, कृपण, वाचाल और दुःखित हो कर भूमण्डल परिभ्रमणशील होता है। निद्राभावस्थ गुरु यदि लग्नसे पञ्चम, सप्तम वा दशम गृहमें हों तो स्त्री पुत्रका नाश और लग्नमें हों तो दरिद्रता आती है।

शुक्रका भावफल।—लग्नके सप्तम वा एकादशस्थानमें शुक्र शयनभावमें हों, तो नानाविध सुख और अनेक सन्तान होती हैं। सप्तम और एकादशके सिवा अन्य स्थानमें रहनेसे भी सुखी पुत्रनाश होता है। उपवे-शनभावमें हो तो धनवान् और धार्मिक; तथा नेत्रपाणि-भावमें रहनेसे चक्षुरोग होता है। वही शुक्र यदि लग्न वा सप्तममें हो, तो निश्चय ही चक्षु नष्ट हो जाते हैं। एकादशमें होनेसे अतिशय दरिद्र होता है। शुक्र प्रकाशनभावमें द्वितीय, सप्तम वा नवमगृहमें रहे तो धनवान्, धार्मिक और विशुद्धाचारी होगा, इसके सिवा अन्य स्थानमें होनेसे रोगी, नियत विदेशवासी, दुःखभोगी और नृत्यकार्यमें रत रहता है। गमनेच्छाभावमें होनेसे मातृनाश, नित्य उत्साहविशिष्ट, शिल्पकार्यमें निपुण और तीर्थपर्यटनशील; सभावसतिभावमें होनेसे राजमन्त्री, धनेश्वर, समस्त कार्यमें दक्ष और शूलरोगी; आगमनभावमें होनेसे दुःखी, बहुभाषी, पुत्रशोकसन्तप्त और नराधम; भोजनभावमें होनेसे बलवान्, सर्वदा धर्मपरायण, वाणिज्य-लब्ध अथवा सेवा द्वारा लब्ध धनसे धनवान् होता है। शुक्र नृत्यलिप्सा भावमें रहे, तो वाग्मी, पण्डित और कवि होता है। यदि वह शुक्र नीच गृहस्थित हो तो मूर्ख; कौतुकभावमें हो तो धनवान्, सात्त्विक, सर्वदा आह्लादयुक्त और उत्तम वक्ता; तथा वही शुक्र नीचस्थ होने पर इसके विपरीत फल होता है। परन्तु निद्राभावमें होनेसे उपताप-विशिष्ट, नियत क्लेशभागी, रोगी, दरिद्र और विकलाङ्ग हुआ करता है।

शनिका भावफल।—शनि शयनभावमें होनेसे क्षुधार्त्त विकलाङ्ग, गुह्यरोगी और कोषवृद्धि होती है। परन्तु वही शनि यदि लग्न, षष्ठ और अष्टम स्थानमें हो तो नियत विदेशवासी, दरिद्र, विकृत और स्थूलशरीर-विशिष्ट होता है। पञ्चम, सप्तम, नवम वा दशममें हो तो धार्मिक और दाता होता है। उपवेशनभावमें होनेसे श्लीपद और दद्रुरोगी तथा नियत पीड़ा एवं धनका नाश होता है। शनि लग्नमें या दशमें उपवेशन-भावमें होनेसे समस्त प्रकार दुःखभोगी; नेत्रपाणिभावमें होनेसे अबोधव्यक्ति भी पण्डित कह कर प्रसिद्ध, धनवान् धार्मिक और बहुभाषी; प्रकाशनभावमें रहनेसे राजमन्त्री, नानागुण-विभूषित और धार्मिक, गमनेच्छाभावमें रहनेसे बहुपुत्रविशिष्ट, विपुल धनवान्, पण्डित, दाता, और मानवश्रेष्ठ, गमनभावमें रहनेसे श्लीपदरोगी, दन्ता-घात चिह्नयुक्त, अतिशय क्रोधी, कृपण और परनिन्दक; सभावसतिभावमें रहनेसे स्त्री-पुत्र युक्त, धनशाली और नानारत्नयक्त; आगमनभावमें रहनेसे अतिशय क्रोधी और रोगी तथा सर्पादि दंशनसे उसकी मृत्यु होती है। शनि भोजनभावमें हो तो मन्दाग्निविशिष्ट, अर्श, शूल और चक्षुरोगी; नृत्यलिप्साभावमें हो तो चिरकाल धन-वान् और धार्मिक; कौतुकभावमें हो तो राजमन्त्री, विपुल धनवान्, दाता, भोक्ता, अतिशयकर्मकुशल, धार्मिक; पण्डित और विशुद्धाचारी; निद्राभावमें हो तो धनवान्, पण्डित, नेत्र और पित्तशूलरोग, द्विभार्या और बहुसन्तानयुक्त होता है।

राहुका भावफल।—राहु शयनभावमें हों तो क्लेश, अतिशय दुःख, श्लीपदरोग, नियत धननाश और राज-पीड़ा होती है। उपवेशनभावमें रहनेसे कुष्ठादिरोगसे पीड़ित और राजा वा शत्रु द्वारा धननाश होता है। इसी प्रकार नेत्रपाणिभावमें निश्चय ही चक्षुरोगी, सर्प और व्याघ्रसे भयवान्, अधार्मिक, स्त्रैण, कुटिल, धैर्यगुण-विशिष्ट और बहुभाषी; प्रकाशनभावमें धनवान्, नियत

धर्मपरायण, विदेशवासी, उत्साहान्वित, सात्त्विक और राजकर्मकर होता है। इस भावमें राहु कर्कट वा सिंहमें रहे तो शिरच्छेदयोग होता है। राहु गमनेच्छाभावमें हो तो बहुपुत्र-विशिष्ट, अतिशय धनवान्, पण्डित, गुणवान्, दाता और पुरुषश्रेष्ठ होता है। सभावसतिभावमें कृपण, धनवान्, नाना सद्गुणसम्पन्न, धार्मिक, पण्डित और विशुद्धाचारी; आगमनभावमें सबको दुःखदायक और नाना क्लेशयुक्त; भोजनभावमें अत्यन्त लोभी, मन्दाग्निरोगयुक्त, दुःखित, कृपण, क्रूर और कलहप्रिय, नृत्यलिप्साभावमें (लग्नमें रहनेसे) खञ्ज, कुष्ठव्याधि आदि द्वारा अभिभूत, चक्षुहीन और दुर्द्धर्ष होता है। कौतुकभावमें हो तो सम्पूर्ण गुणोंका आवासस्थल, धनवान् और पित्तशूलरोगसे पीड़ित, तथा निद्राभावमें रहे तो शोक और दुःखसे अभिभूत, नाना स्थानवासी, धनहीन और पुत्र रहित होता है।

(सङ्केतकौ०)

रवि आदि नवग्रहके शयनादि द्वादशभावोंका फल इस प्रकारसे स्थिर किया जाता है। इसके सिवा षड्भाव और नवभाव भी हैं, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है,—

१ लज्जित, २ गर्वित, ३ क्षुधित, ४ तृषित, ५ मुदित, और ६ क्षोभित; ये षड्भाव हैं।

यदि कोई ग्रह लग्नसे पञ्चमगृहमें राहुके साथ अवस्थिति करे तो वह ग्रह, अथवा अन्य कोई भी ग्रह रवि, शनि और मङ्गलके साथ एकत्र अवस्थान करे, तो उसे लज्जित भाव कहते हैं। यदि कोई ग्रह अपने तुङ्गस्थानमें अथवा अपने मूल त्रिकोणमें अवस्थान करे, तो वह गर्वितभाव है। यदि कोई ग्रह शत्रुके साथ मिल कर रिपुगृहमें अवस्थित और रिपु द्वारा दृष्ट हो तो वह ग्रह, अथवा कोई भी ग्रह किसी भी स्थलमें शनिके साथ एक राशिमें अवस्थिति करे, तो वह क्षुधित और जलराशिमें कोई ग्रह रह कर शत्रु द्वारा दृष्ट न हो, शुभ ग्रह द्वारा नष्ट न हो तो तृषित भाव होता है। कर्कट, वृश्चिक और मीन वे जलराशि हैं; किसीके मतसे कुम्भ और मकर भी जलराशि है। यदि कोई ग्रह मित्रग्रह द्वारा हो कर मित्रके साथ मित्र भवनमें अवस्थान करे, तो वह ग्रह, और जो ग्रह वृहस्पतिके साथ मिलित है, वह ग्रह मुदितभावापन्न है। जो ग्रह रविके साथ एक राशिमें रह कर पाप ग्रह द्वारा दृष्ट होता है, और यदि उसमें निज शत्रु ग्रहकी दृष्टि हो, तो क्षोभितभाव होता है।

तन्वादि द्वादश भावोंमें समस्त ग्रह ही यदि क्षुधित और क्षोभित भावमें हो, तो जातकको दुःखका एकमात्र आश्रय समझना चाहिए। यदि तन्वादि द्वादश स्थानोंके किसी स्थानमें दो अथवा उससे अधिक ग्रह हो, तथा उनमें परस्पर विभिन्न भाव हो, अथवा एक ग्रह लज्जित और गर्वित इत्यादि भावद्वय, वा भावत्रय युक्त हो, तो उस भावका ग्रह-दत्त फल मिश्र होगा। ग्रह यदि दुर्बल हो, तो फलकी हानि और सबल हो, तो सम्पूर्ण फल होता है। कर्मस्थानमें लज्जित, तृषित, क्षुधित और क्षोभित ग्रह होनेसे दुःखभागी होता है। षड्भावोंमें मुदित और क्षोभितभाव ही प्रशस्त हैं।

दीप्तादि दशभाव।—१ दीप्त, २ दीन, ३ सुस्थ, ४ मुदित, ५ सुप्त, ६ प्रपीड़ित, ७ मुषित, ८ परिहीयमानवीर्य, ९ प्रवृद्धवीर्य, १० अधिकवीर्य; ये दशभाव हैं। स्वीय उच्चस्थ ग्रह दीप्त, नीचस्थ गृह दीन, स्वगृहस्थित ग्रह सुस्थ, मित्रगृहस्थित मुदित, शत्रुगृहस्थित सुप्त, गृहयुद्धमें पराजित ग्रह प्रपीड़ित, अस्तगतगृह मुषित, स्वीय निम्नस्थ गृहकी ओर गतिविशिष्ट गृह परिहीयमानवीर्य, स्वीय उच्च गृहकी ओर गतिविशिष्ट गृह प्रवृद्धवीर्य, और शुभगृहके क्षेत्रादि षड्वर्गस्थित गृह अधिक वीर्य कहलाता है। गृहगण दीप्तभावमें रहें तो उत्तम रूपसे कार्यसिद्धि होती है। दीनभावमें हों तो नरपति भी दीनताको प्राप्त होता है; सुस्थभावमें रहनेसे धन, लक्ष्मी, कीर्त्ति और सुख मिलता है; मुदित भावमें होनेसे आमोद और वाञ्छित फलकी प्राप्ति; सुप्तभावमें होनेसे सर्वदा विपद्; प्रपीड़ित भावमें शत्रु द्वारा पीड़ा; मुषितभावमें अर्थ-हानि; प्रवृद्धवीर्यमें हस्ती और घोटकादिकी प्राप्ति, तथा अधिक वीर्यभावमें राजसदृश और विपुल सम्पदा प्राप्त होती है।

दीप्तादि नवभाव।—१ दीप्त, २ सुस्थ, ३ मुदित, ४ शान्त, ५ शक्त, ६ प्रपीड़ित, ७ दीन, ८ विकल और ९ खल। गृहगण स्थानभेदसे नव प्रकार भाव धारण कर

स्व स्व दशाकालमें भिन्न भिन्न फल प्रदान करते हैं।

स्वीय उच्च राशि-गत ग्रहको दीप्त कहते हैं; इसी प्रकार स्वक्षेत्रगत ग्रहको सुस्थ, मित्रराशिगत ग्रहको मुदित, शुभक्षेत्रगतग्रहको शान्त, निम्न वा पापग्रह-गत ग्रहको हीन, शत्रु राशि-गतग्रहको दुःखित, पापग्रह-संयुक्त ग्रहको विकल, पराजित ग्रहको खल और सूर्यकिरणसे दग्ध ग्रहको कुपित कहा जा सकता है।

दीप्तग्रहके दशाकालमें मानवको राज्य, उत्साह, शौर्य्य, धन, वाहन, स्त्री, पुत्र, सुहृद्, सम्मान और राजसम्मान प्राप्त होता है। सुस्थग्रहके दशाकालमें सुस्थशरीर, राजासे धनकी प्राप्ति, सुख, विद्या, यश, आनन्द, महत्त्व, स्त्री, पुत्र, भूमि, अर्थ और धर्मका लाभ होता है। मुदित ग्रहके दशाकालमें मनुष्य वस्त्रादि, भूमि, गन्धद्रव्य, पुत्र, अर्थ और धैर्य्यको प्राप्त करता है तथा पुराणादि धर्म और गीत-श्रवण, दान, पेय और अलङ्कारादिका लाभ होता है। शान्तग्रहके दशाकालमें सुख, धैर्य्य, भूमि, पुत्र, कलत्र, यानादि, विद्या, आनन्द, बहुल अर्थ और राजसम्मानकी प्राप्ति होती है। हीनग्रहके दशाकालमें मनुष्यको बन्धुवियोग, स्थाननाश और कुत्सितवृत्ति द्वारा जीवनातिपात, जनसमाज द्वारा परित्यक्त और रोगनिपीड़ित होना पड़ता है। दुःखित ग्रहके दशाकालमें मनुष्य अपवादग्रस्त हो कर सर्वदा नानाविध दुःख, विदेशगमन, बन्धुवियोग आदिके कष्ट सहता और चौर, दस्यु और राजासे डरता रहता है। विकल ग्रहके दशाकालमें मानवको विकलता और मनोविकार तथा पित्रादिकी मृत्यु, वाहन और वस्त्राभाव, स्त्री, पुत्र और चौर द्वारा पीड़ित होना पड़ता है। खलग्रहके दशाकालमें मनुष्य कलह, विच्छेद और पितृवियोगजनित दुःख, शत्रुवृद्धि, धन और भूमिनाश तथा आत्मीयजनोंमें निन्दा जनित कष्ट सहता है। कुपितग्रहके दशाकालमें नाना प्रकारसे पापसञ्चय और विद्या, यश, स्त्री, धन, भूमिका नाश इत्यादि नाना प्रकार अमङ्गल होते हैं।

इस प्रकार भावफल और ग्रहोंके बलाबल पर विशेष रूपसे लक्ष्य करके फल निर्णय करना चाहिए।

(सारावली)

इसके सिवा तनु आदि द्वादश स्थानोंमें कौन-कौनसे ग्रह रहनेसे किस प्रकार फल होता है, यह विषय यहां बाहुल्यभयसे नहीं लिखा जा सका है। इन द्वादश स्थलोंको तन्वादि द्वादशभाव कहते हैं। द्वादशभाव देखो।

२७ स्त्रियोंके यौवनकालमें स्वभावज अट्ठाईस अलङ्कारोंमेंसे अङ्गज प्रथमालङ्कार है। स्त्रियोंके भाव, हाव और हेला; ये तीन प्रकार अङ्गज अलङ्कार हैं, जो सत्त्वज कहलाते हैं। (साहित्यद० ३ परि०)

निर्विकारात्मक-चित्तसे होनेवाली प्रथम क्रियाका नाम भाव है, जन्मसे ही कभी जिसके चित्तमें किसी प्रकारका विकार नहीं हुआ है, पश्चात् जो प्रथम विकार हुआ है, उसे 'भाव' कहते हैं।

"निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया।"

जन्मतः प्रभृति निर्विकारे मनसि उद्बुद्धमात्रो विकारो भावः॥

(साहित्यद० ३ परि०)

नायक और नायिकाके प्रथम दर्शनसे चित्तका जो प्रथम विकार है, वह भी भावपद वाच्य है। उदाहरण—

"स एव सुरभिः कालः स एव मलयानिलः।
सैवेयमबला किन्तु मनोऽन्यदिव दृश्यते॥"

(साहित्यद० ३प०)

वही सुरभिकाल है, वही मलयानिल है और वही स्त्री है, किन्तु केवल मन ही अन्य प्रकार मालूम देता है। इस स्थलमें जो मानस विकार है, वही भाव है। इसको प्रणय कहा जा सकता है। सब कुछ ठीक है, किन्तु मन विकृत हो गया है, यह मनकी विकृति ही 'भाव' है।

भावके अन्य लक्षण।—शरीर और इन्द्रियवर्गके विकारजनक विभावजनक जो चित्तवृत्ति है, उसीको भाव कहते हैं। पुराण और नाट्यशास्त्रमें रति और भाव दोनोंको एक ही कहा गया है।

सत्त्व, रजः और तमोमय चित्तविकारका नाम भाव है। भरतने भाव शब्दकी इस प्रकार व्युत्पत्ति की है,—"भावयति जनयति रसान् भावः।" नानाविध अभिनय सम्बन्धी रस उत्पन्न करता है, इसलिए नाटकोंकिमें उसे भाव कहा गया है। यह भाव तीन प्रकारका है,—स्थायी, व्यभिचारी और सात्त्विक। (अमरटीका भरत)

स्थायी-भाव।—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय, ये स्थायी-भाव हैं।

व्यभिचारि भाव।—निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, धृति, व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विरोध, अमर्ष, उग्रता, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क ये व्यभिचारि-भाव है।

सात्त्विक भाव।—स्वेद, स्तम्भ, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय, ये आठ सात्त्विक भाव हैं। (अमर टीका भरत) भगवद् विषयक चित्तानुरक्तिको भी भाव कहते हैं। (भक्तिरसामृतसि०)

२८ तन्त्रोक्त पश्वाचारादित्रय। दिव्यभाव, वीरभाव और पशुभाव। (तन्त्रसार)

इन तीन प्रकार भावोंमें दिव्य और वीर ये दो भाव उत्तम हैं और पशुभाव अधम। वैष्णव पशुभावमें परमेश्वरकी पूजा करते हैं, किन्तु दिव्य और वीर भावमें हो सत्वर उत्तमा सिद्धि प्राप्त होती है।

विभिन्न भावोंका विषय उन्हीं शब्दोंमें देखो।

२६ सङ्गीत सङ्कत पदार्थ-द्योतक हस्तादि चेष्टाभेद। ३० 'यस्य च क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते स भावः' इति व्याकरणपरिभाषित पदार्थ। जिसकी क्रिया द्वारा क्रियान्तर लक्षित हो उसे भाव कहते हैं। इस भावमें सप्तमी विभक्ति होती है, इसलिए इसे भावे सप्तमी कहते हैं। ३१ उत्पत्ति-युक्त पदार्थ, षड्भाव विकार-युक्त पदार्थ। जीव मात्र ही षड्भाव विकारयुक्त है। जन्मविशिष्ट, अस्तित्वयुक्त, वर्द्धनशील, क्षयशील, परिमाणशील और विनाशयुक्त, ये षड्भाव विकार प्रत्येक वस्तुमें हैं। "जायते, अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति" ये छः षड्भाव विकार हैं। जीव जन्म ग्रहण करता है, अस्तित्वयुक्त होता है, क्रमशः वर्द्धित होता है, सर्वदा परिणत होता रहता है, क्षणकाल भी अपरिणत अवस्थामें नहीं रहता, क्रमशः क्षीण होता है, जीवकी जब तक मुक्ति न होगी, तब तक जीव इसी षड्भाव विकारमें पड़ा रहेगा। मुक्तिके बाद ये भावविकार न रहेंगे।

सांख्यदर्शन और पुरुष देखो।

३२ सांख्यमतसिद्ध धर्माधर्मादि बुद्धिधर्म।

"संसरति निरूपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्।"

"भावै रधिवासितं धर्माधर्मज्ञानाज्ञान-वैराग्यावैराग्यैश्वर्यानैश्वर्याणि भावास्तदन्विता बुद्धिः तदन्वितञ्च सूक्ष्म शरीरमिति तदपि भावैरधिवासितं यथा सुरभिचम्पकसम्पर्काद्वस्त्रं तदामोदवासितं भवति तस्मात् भावैरधिवासितत्वात् संसरति।" (तत्त्वकौमुदी)

धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य ये भाव, बुद्धि और सूक्ष्मशरीर भाव-युक्त हैं। इन भावों द्वारा अधिवासित होनेके कारण जन्म, जरा और मृत्यु हुआ करती है।

"पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्।
संसरति निरूपभोगं भावैरधिवासितं लिंगम्।"

(सांख्यकारिका ४०)

सृष्टिके समय प्रधानसे प्रत्येक आत्माके लिए एक एक सूक्ष्म शरीर उत्पन्न हुआ था। वह शरीर अव्याहत है अर्थात् कहीं भी उसका प्रतिरोध नहीं होता। यहां तक कि, वह शिलामें भी प्रवेश कर सकता है। यह आदि सृष्टिके समय उत्पन्न हो कर महाप्रलय तक विद्यमान रहता है, विध्वस्त नहीं होता। यह शरीर ही संसरण करता है, अर्थात् एक शरीरसे उत्क्रान्त हो कर अन्य स्थूल शरीर ग्रहण करता है। सूक्ष्म शरीर निरूपभोग है। स्थूल शरीरके बिना उस शरीरमें स्वतन्त्ररूपसे सुख दुःखादि भोग नहीं होते हैं। धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य भावपद-वाच्य हैं। इन भावोंके संस्कार इस स्थूल शरीरकी विद्यमानतामें सूक्ष्म शरीरसे संलग्न होते हैं। जैसे चित्र आश्रयके विना और छाया वृक्षादिके विना अवस्थान नहीं कर सकती उसी प्रकार बुद्धि भी सूक्ष्म शरीरके विना निराश्रय नहीं रहती। यह लिङ्गशरीर पुरुषके भोगापवर्गके उद्देशसे प्रकृति द्वारा प्रेरित होता है। परन्तु यह प्रकृतिके विभुत्वसे प्रकृतिके आश्रित हैं; और बाह्याभ्यन्तर भेदसे दो प्रकारके हैं। नटो जिस प्रकार नाना भेष बना कर हाव-भाव दिखलाती है, सूक्ष्म शरीर भी उसी प्रकार भाव-प्रेरणासे देव मनुष्यादि शरीर धारण करता है।

"सांसिद्धिकाश्च भावाः प्राकृतिका वैकृतिकाश्च धर्माद्याः।
दृष्टाः करणाश्रयिणः कार्याश्रयिणश्च कललाद्याः॥"

(सांख्यकारिका ४३)

धर्म, ज्ञान और वैराग्यादि भावपद-वाच्य हैं। यह भाव तीन प्रकारका है—सांसिद्धिक, प्राकृतिक और

वैकृतिक। स्वतःसिद्धको सांसिद्धिक कहते हैं; स्वाभाविकको प्राकृतिक और उपायानुष्ठान-प्रभावको वैकृतिक। गर्भमें शुक्र-शोणितका संयोग, प्रथमतः कलल, उसके वाद बुद्बुद, क्रमशः मांस, पेशी, कण्ड, अङ्ग और प्रत्यङ्ग, फिर वाल्यादि अवस्था, ये सब वैकृतिक भाव हैं। भावके विना लिङ्गका और लिङ्गके विना भावका स्वरूप नहीं होता। इसलिए भाव और लिङ्ग नामसे दो प्रकारकी सृष्टि प्रवर्त्तित हुई है। लिङ्ग—तन्मात्र वा सूक्ष्म सृष्टि है, भाव—प्रत्ययसृष्टि है। इसका तात्पर्य इस प्रकार है,—पुरुषार्थ शब्दादि भोग्य पदार्थ और भोगायतन द्विविध शरीर (स्थूल और सूक्ष्म)-के विना सम्पन्न नहीं होता। भोगसाधन इन्द्रिय और अन्तःकरण इन दोनोंके विना भोगकी सम्भावना क्या है? भाव अर्थात् धर्माधर्मादिके विना इन्द्रियादिके रहनेकी वा होनेकी सम्भावना नहीं है, और मोक्षकारण विवेक ज्ञान तो होगा ही कहांसे? इसलिए भावसृष्टि और लिङ्ग-सृष्टि दोनों ही दोनोंके कारण हैं। (सांख्यका० ५२) 'सांख्यदर्शन' देखो।

३३ वैशेषिकोक्त षट्पदार्थ। पदार्थ दो प्रकारका है—भाव और अभाव। इनमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय; ये षट्पदार्थ भावपदवाच्य हैं। (भाषापरि०१४)

३४ प्रत्येक पदार्थासाधारण धर्म।

भाव—प्रेमभक्तिके उपासक वैष्णवोंकी चित्तविक्रियाविशेष ईश्वरके अर्पित चित्तके सम्मिलनाभासज्ञापक विकृत अवस्थाका वाह्यविकाश अथवा इष्ट वस्तुमें ऐकान्तिक आनुरक्तिके कारण तन्मयता और उनके प्रेम-रसास्वादन ग्रहण करने पर मानसिक अवस्थान्तर विघटनरूप चित्त विकार विशेष हो वैष्णव-सम्प्रदायमें 'भाव' कहलाता है। साधक मात्रकी भाव प्राप्ति होती है। जो एकाग्र मनसे ईश्वर चिंतामें निमग्न होते हैं; उनके हृदयमें उस चिंताके अनुरूप प्रक्रियाएं समुपस्थित होती हैं। इस भावांतरकी चरमावस्थाका नाम है दशा-प्राप्ति। धर्मप्राण व्यक्ति मात्रके ही भक्ति विह्वलताके कारण भाववेश होता है। पृथक् रूपमें विभिन्न दशाप्राप्ति हुआ करती है। दशा देखो।

नायक-सम्मिलनमें नायिकाके हृदयगत प्रेमकी अपूर्व अभिव्यक्ति कुछ वहिरङ्गमें प्रकटित होती है। श्रीकृष्णप्रेमासक्त श्रीराधिकाके हृदयमें जो प्रेमभाव समुच्चय उदित होता था, उसका एक एक अन्तरङ्ग और वहिरङ्गका विकाशन ही भावलक्षण है। अलङ्कार, उद्भास्वर और वाचिक भेदसे अनुभाव रस तीन प्रकारका है।

भक्तिके प्राधान्यके कारण भक्तके हृदयमें प्रेमावेश आया करता है। ईश्वरमें प्रेमातिशय्यके कारण प्रेमिकके हृदयमें समय-विशेषमें भाव-विपर्यय उपस्थित होता है। वैष्णवोंने श्रीकृष्ण प्रेमानुरक्तिको पृथक् चित्रोंमें प्रकटित किया है। प्रेमिककी वाचिक वा मानसिक अवस्था पर लक्ष्य देनेसे उसके हृद्गत प्रेमका आभास मिलता है। हरिनाम-रूप अमृतास्वादनके समय हर्ष, रोमाञ्च, अश्रु, स्वरभङ्ग, आदि जो विकार लक्षण अनुभूत होते हैं, वे ही उनके भाव वा सुखदुःख सूचक अवस्थान्तर मात्र हैं।

भक्त अनुराग-वश जब जिस भावमें इष्ट वस्तुके ध्यानमें निमग्न रहते हैं, तब चित्तकी एकाग्रताके कारण उनके हृदय क्षेत्रमें उसी प्रकार ध्यानका एक अनुभाव आ उपस्थित होता है। यही कारण है, कि साधकमात्र ही चित्तके विकार-हेतु मानो ईश्वर-प्रत्यक्ष अपनी भावनाके अनुरूप चित्र ही प्रकटित करते हैं। राधाकृष्ण प्रेम-अनुध्यायी श्रीचैतन्य महाप्रभुके हृदयमें सदा ही इस प्रकारका नायिकाप्रेमभाव जागरित होता था। कभी-कभी वे विरह-विधुरा श्रीराधाकी तरह "हा कृष्ण, हा कृष्ण" कह कर रोने लगते थे और कभी राधिकाकी चिन्तामें उन्मत्त हो कर "कहां है राई मेरी कहां है" कह कर इतस्ततः विह्वलकी तरह घूमा करते थे। यही उनके राधा और कृष्ण-भावका पूर्ण लक्षण है। कृष्ण-चिन्तामें उनके मूर्च्छा, कम्प आदि अन्यान्य भाव भी हुआ करते थे। कृष्णनाम-संकीर्त्तनमें वे आत्म-विह्वल हो कर नाना प्रकार प्रलापवाक्योंसे साधारणमें श्रीकृष्णप्रेम-विषयक नाना कथाओंकी अवतारणा करते थे। कभी कभी चित्तविकारके आतिशय्यके कारण मूर्च्छाभावको प्राप्त होते थे। उनके इस कृष्णप्रेमभावमें सर्वदा ही रमणी श्रेष्ठा राधिकाका नायिकाभाव और प्रेमिकाके अनुवेदनादि लक्षण दिखलाई देते थे, जिससे उनके धर्मानुयायी वैष्णवगण उनके मतके पक्षपाती हो कर नायिका-भावके

लक्षणोंको ही प्रेमधर्मकी पराकाष्ठा मानने लगे हैं।

प्रेम और भक्ति देखो।

इस हृदयविकार-जनित अभिव्यक्तिको भाव कहा गया है। इसमें अलङ्कारभाव सर्वप्रधान है। अलङ्कार जैसे—भाव, हाव और हेला अङ्गज; शोभा, कान्ति, दीप्ति, प्रगल्भ्य, औदार्य, माधुर्य और धैर्य अयत्नज, तथा लीला, विलास, विभ्रम, किलकिञ्चित, विच्छित्ति, विव्वोक, मोट्टायित, कुट्टमित, ललित और विकृति स्वभावज लक्षण हैं*।

जिस प्रकार प्रक्रियासे मनोवृत्तिके क्रोड़ाररसास्वादन-विकाशक चिह्न उदित होते हैं उसे उद्भास्वर भाव कहते हैं†। आलापादि वाचिकभाव द्वादश प्रकारके हैं। इसके सिवा प्रेमरतिमें और भी अनेक प्रकारके भाव समुपस्थित हुआ करते हैं। उनमें १ सात्त्विकभाव, २ महाभाव, ३ सञ्चारिभाव, ४ व्यभिचारभाव, ५ परस्परवशी भाव, ६ स्थायिभाव, ७ प्रेमवैचित्त्य, ८ विप्रलम्भ, ६ दिव्योन्मादादि भाव उल्लेख-योग्य हैं। इन भावोंके आवेशमें बहुधा भक्तोंको दशाप्राप्ति हो हुआ करती है। दशा साधारणतः १० प्रकारकी कही गई है।

भावअर्हत (सं० पु०) एक प्रकारके तीर्थङ्कर।

भावउपनिषद्—उपनिषद्भेद।

भावक (सं० पु०) भाव एव स्वार्थे कन्। १ भाव। २ मानसविकार। (त्रि०) ३ भावपूर्ण, भावसे भरा। ४ भाव करनेवाला। ५ भक्त, प्रेमी। ६ उत्पादक, उत्पन्न करनेवाला।

भावगति (हिं० स्त्री०) इच्छा, इरादा।

भावगम्भीर (सं० त्रि०) भावेन गम्भीरः। भाव द्वारा गम्भीर, जिसका तात्पर्य कठिन है।

भावगम्य (सं० त्रि०) भक्तिभावसे जनाने योग्य, जो भावकी सहायतासे जाना जा सके।

* उज्ज्वलनीलमणिके अनुभाव विवृति-प्रकरणमें इनका लक्षण विस्तृत रूपसे लिखा है; जिन्हें जानना हो, वहांसे जान सकते हैं।

† इन सबका विषय विस्तृतरूपसे उज्ज्वलनीलमणिमें कहा गया है। जिन्हें आवश्यकता हो वहींसे देख सकते हैं।

भावग्राहिन् (सं० त्रि०) भाव-ग्रह-णिनि। भावग्रहण करनेमें समर्थ।

भावग्राह्य (सं० त्रि०) भक्तिसे ग्रहण करनेयोग्य, जिसे ग्रहण करनेसे पूर्ण मनमें भक्ति-भाव लानेकी आवश्यकता हो।

भावचन्द्रसूरि—शांतिनाथचरित्रके रचयिता एक जैनसूरि।

भावज (सं० त्रि०) भावसे उत्पन्न।

भावज (हिं० स्त्री०) भाईकी स्त्री, भाभी।

भावत (सं० त्रि०) भवत अयमिति भवत् अण्। भवदीय।

भावता (हिं० वि०) जो भला लगे। (पु०) २ प्रेमपात्र, प्रियतम।

भावताव (हिं० पु०) किसी चीजका मूल्य वा भाव आदि, निर्ख।

भावत्व (सं० क्ली०) भावसम्बन्धीय।

भावदत्तदान (सं० पु०) वास्तवमें चोरी न करके चोरीकी केवल भावना करना। जैनियोंके मतानुसार यह एक प्रकारका पाप है।

भावदया (सं० त्रि०) किसी जीवको दुर्गति देख कर उसकी रक्षाके अर्थ अन्तःकरणमें दया लाना।

भावदेवसूरि—कालिकाचार्यकथानकप्रणेता।

भावदेवी—एक प्राचीन स्त्री कवि।

भावन (सं० क्ली०) आम्रातकवृक्ष, आमड़ेका पेड़।

भावन—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° २६' उ० तथा देशा० ८१° १८' पू०के मध्य अवस्थित है। भावन नामक एक भर-सरदार अपने नाम पर इस नगरको प्रतिष्ठा कर गये हैं। मुसलमानी अमलदारीमें भरजातिका अधःपतन होनेसे यह नगर मुसलमान शासनकर्त्ताके हाथ लगा। यहां एक भग्न दुर्ग का ध्वंसावशेष देखा जाता है।

भावनगर—बम्बईके काठियावाड़का एक करद मित्रराज्य। यह अक्षा० २०° ५६' ३० से २२° १६' ३०" उ० तथा देशा० ७१° १६ से ७२° २०' ४५" पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २८६० वर्गमील और जनसंख्या चार लाखके करीब है। यहां रूई और लवण बहुतायतसे मिलता है तथा तांबे और पीतलके बरतन दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं। यहांके राजा गुहिलवंशीय राजपूत और ठाकुर उपाधिधारी हैं।

१२६० ई०में सेजक नामक सरदारके नेतृत्वाधीनमें गुहिल राजपूत यहां आ कर बस गये। उनके लड़के रणजी भावनगर राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। १७२३ ई०में भावसिंहने भावनगरको बसाया। स्वयं भावसिंह और उनके लड़के रावल आखेड़जी तथा उनके पौत्र भक्तसिंहने जलदस्यु गणोंका दमन कर स्वदेशमें वाणिज्योन्नतिकी आशासे वम्बई गवर्मेण्टके साथ १७५० ई०में मेल कर लिया। वर्त्तमान राजाका नाम कृष्णकुमार सिंहजी है।

भावना (सं० स्त्री०) भू-णिच्, युच् टाप्। १ ध्यान, मनमें किसी प्रकारका चिन्तन करना। २ पर्यालोचना, साधारण विचार या कल्पना। ३ चित्तका एक संस्कार जो अनुभव और स्मृतिसे उत्पन्न होता है। ४ अधिवासन। विष्णुपुराणके मतसे भावना तीन प्रकारकी है; ब्रह्मभावना, कर्मभावना और ब्रह्मकर्म उभय भावना। सनन्दन आदि ऋषिगण ब्रह्म भावनायुक्त रहते हैं और देवतासे स्थावर तथा चर सबके सब कर्मभावना करते हैं। हिरण्यगर्भ आदिमें कर्म और ब्रह्म दोनों ही विषय भावना है। जिसे जैसा बोध और अधिकार है, उसकी वैसी ही भावना रहती है।

चित्त जैसा होता है भावना भी वैसी ही होती है। चित्तके निर्मल होनेसे ब्रह्मविषयक भावना होती है। इस कारण जिससे चित्त निर्मल हो, शास्त्रोंमें उसीका विधिव्यवस्था दिखलाई गई है। ५ बौद्धमतसिद्ध चार प्रकारकी भावना। ६ कामना वासना। ७ वैद्यकके अनुसार किसी चूर्ण आदिको किसी प्रकारके रस या तरल पदार्थमें बार बार मिला कर घोटना और सुखाना जिसमें उस औषधमें रस या तरल पदार्थके कुछ गुण आ जायं।

भावनामयशरीर (सं० पु०) सांख्यके अनुसार एक प्रकारका शरीर। इसे मनुष्य मृत्युसे कुछ ही पहले धारण करता है। यह शरीर उसके जन्म भरके किये हुए पापों और पुण्योंके अनुरूप होता है। जब आत्मा इस शरीरमें पहुंच जाती है, तभी मृत्यु होती है। जिस प्रकार जोंक जब तक दूसरी घासको पकड़ नहीं लेती तब तक पूर्वाश्रित घासको नहीं छोड़ती है, उसी प्रकार जीव भी कर्मानुरूप भावनामय शरीरको आश्रय किये बिना पूर्वाश्रित देहका त्याग नहीं करता।

भावनाश्रय (सं० पु०) शिवका एक नाम।

भावनि—सह्याद्रिवर्णित एक राजा (सह्या० ३६।१०)

भावनिका (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (कथासरित्सा० १०।१०२)

भावनीय (सं० त्रि०) चिन्ता वा विचारयोग्य।

भावपरिग्रह (सं० पु०) वास्तवमें धनका संग्रहन करना, पर धनके संग्रहकी मनमें अभिलाषा रखना।

भावपाद (सं० पु०) सारस्वताभिधान नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भावप्रकाश—वैद्यक ग्रन्थविशेष। यह ग्रन्थ श्रीमन् भाव मिश्र द्वारा विरचित है। यह एक संग्रह ग्रन्थ है और पूर्व, मध्य तथा उत्तर खण्डमें विभक्त है। इस ग्रन्थमें धन्वन्तरि, आत्रेय और चरकादिका प्रादुर्भाव, सृष्टि-प्रकरण, शारीरतत्त्व, स्वास्थ्यवृत्ति, परिभाषा, द्रव्यगुण, धात्वादिका शोधन और मारणविधि, पञ्चकर्म, पञ्च-निदान तथा रोगोंके निदान और चिकित्सा आदि आयुर्वेदीय सभी विषय सविस्तार वर्णित हैं। यहां तक, कि सिर्फ यही एक ग्रन्थ पढ़नेसे आयुर्वेदीय सभी विषयोंसे जानकार होकर चिकित्साशास्त्रमें पारदर्शी हो सकते हैं। चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि जो कोई भी पुस्तक क्यों न पढ़ी जाय, उसमें दूसरे पुस्तककी आवश्यकता जरूर होगी पर भावप्रकाश मानो गागरमें सागर है। इसी एक ग्रन्थसे आयुर्वेदीय सभी ग्रन्थ पढ़नेका फल होता है। ग्रन्थकारने पुस्तककी समाप्तिमें इस प्रकार लिखा है—

"यावद्व्योमनि बिम्बमम्बरमणेरिन्दोश्च विद्योतते।
यावत् सप्त पयोधराः सगिरयस्तिष्ठन्ति पृष्ठे भुवः॥
यावच्चावनिमण्डलं फणिपतेरास्ते फणामण्डले।
तावत् सद्भिषजः पठन्तु परितो भावप्रकाशं शुभम्॥"

जब तक अम्बरपथमें सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल रहेंगे, जब तक सप्त समुद्र और पर्वत समूह पृथ्वी पर अवस्थान करेंगे और नागराजके फणमण्डल पर जब

तक पृथिवी अवस्थान करेगी, तब तक सद्वैद्यगण इस मङ्गलमय भावप्रकाश ग्रन्थको अध्ययन करेंगे। इस ग्रन्थमें ग्रन्थकारका विशेष परिचय नहीं मिलता है।

भावप्रधान (सं० पु० ; भाववाच्य देखो।

भावबन्धन (सं० पु०) प्रेमरज्जु द्वारा ग्रन्थन, प्रेमपाशसे जोड़ना।

भावबोधक (सं० पु०) भावस्य रत्यादेर्बोधकः अनुभावकः। १ मुखरागादि, वह जिसके द्वारा भावबोध हो। २ मनोभावज्ञापक।

भावभक्ति (हिं० स्त्री०) १ भक्ति-भाव। २ सत्कार, आदर।

भावभट्टसङ्गीतराय—जनार्दन भट्टके पुत्र। इन्होंने अनूप सङ्गीतविलास, नष्टोद्दिष्टप्रबोधक ध्रौवपदटीका और मुरलीप्रकाश नामक तीन सङ्गीतशास्त्रसम्बन्धीय ग्रन्थ लिखे हैं।

भावमन (सं० पु०) पुङ्गलोंके संयोगसे उत्पन्न ज्ञान।

भावमिश्र—१ भावप्रकाश और गुणरत्नमाला नामक ग्रन्थके रचयिता, मिश्र लटकनके पुत्र। २ शृङ्गारसरसीके प्रणेता। ३ नाट्योक्तिमें प्रभुसंज्ञावाचक महाशय व्यक्ति।

भावमृषावाद (सं० पु०) १ ऊपरसे झूठ नहीं बोलना पर मनमें झूठी बातोंकी कल्पना करना। २ शास्त्रके वास्तविक अर्थको दवा कर अपना हेतु सिद्ध करनेके लिये झूठमूठ नया अर्थ करना।

भावमैथुन (सं० पु०) मनमें मैथुनका विचार वा कल्पना करना।

भावय (हिं० पु०) वह व्यक्ति जो धातुकी चद्दर पीटनेके समय पासेको सँड़सेसे पकड़े रहता और उलटता रहता है।

भावयितव्य (सं० त्रि०) भू-णिच्-तव्य। चिन्ताके योग्य।

भावयितृ (सं० त्रि०) भू-णिच्-तृच्। १ मङ्गलाकांक्षी। २ प्रतिपालन और रक्षणावेक्षणकारी, पोसने पालने तथा देखभाल करनेवाला। ३ उद्भावनकर्त्ता।

भावयु (सं० त्रि०) भावमिच्छति क्यच्, उण्, वेदे निपातनात् साधु। भावेच्छु।

भावरत्न—सुबोधिनी नाम्नी ज्योतिर्विदाभरणव्याख्याके प्रणेता।

भावरामकृष्ण—एक प्राचीन पण्डित, विश्वनाथ दीक्षितके पिता। 'भाव' इनकी वंशोपाधि थी। (प्रबोधच० २ ख०)

भावरूप (सं० त्रि०) १ यथार्थ, प्रकृत। २ जिसके अस्तित्व है।

भावली (हिं० स्त्री०) जमींदार और असामीके बीच उपजकी बँटाई।

भाववचन (सं० क्ली०) व्याकरणोक्त भावविहित प्रत्ययान्त शब्द।

भाववत् (सं० त्रि०) भावयुक्त।

भाववाचक (सं० स्त्री०) व्याकरणमें वह संज्ञा जिससे किसी पदार्थका भाव, धर्म या गुण आदि सूचित हो।

भाववाच्य (सं० पु०) व्याकरणमें क्रियाका एक रूप। इससे जाना जाता है, कि वाक्यका उद्देश उस क्रियाका कर्त्ता और कार्य कोई नहीं है, केवल कोई भाव है। इसमें कर्त्ताके साथ तृतीयाकी विभक्ति रहती है, क्रियाको कर्मकी उपेक्षा नहीं होती और वह सर्वदा एक वचन पुलिंग होती है।

भावविकार (सं० पु०) भावस्य विकारः ६-तत्। यास्कके अनुसार जन्म, अस्तित्व, परिणाम, वर्द्धन, क्षय और नाश ये छः विकार। जीवको जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक उसे इस षड्भाव विकारके अधीन रहना पड़ता है।

भावविश्वेश्वर—शिवादित्यकृत सप्तपदार्थी ग्रन्थकी टीकाके रचयिता।

भावविवेक (सं० पु०) एक शास्त्रविद् बौद्ध पण्डित। आप कपिल और नागार्जुनके मतानुसारी थे। धर्मपाल बोधिसत्त्वके बहुत-से मतका आप खण्डन कर गये हैं।

भाववृत्त (सं० पु०) भावः सत्ता वृत्तः प्रवृत्तोऽस्मादिति यद्वा भावः सृष्टिः, तत्र वृत्तः प्रवृत्तः। १ ब्रह्मा। (त्रि०) २ सृष्टिप्रकरण सम्बन्धीय।

भावबृहस्पति—सोमनाथ मन्दिरके एक पुरोहित। इन्होंने 'सोमनाथपत्तन' नामक ग्रन्थकी रचना की है।

भावव्यञ्जक (सं० त्रि०) भाव प्रकट करनेवाला, जिससे अच्छा वा अच्छी तरह भाव प्रकट होता हो।

भावशवलता (सं० स्त्री०) एक प्रकारका अलङ्कार जिसमें कई भावोंकी सन्धि होती है।

भावशवला (सं० स्त्री०) मनोवृत्तिका समन्वय ।

भावशर्मन्—कातन्त्रपरिभाषावृत्तिके प्रणेता ।

भावसन्धि (सं० स्त्री०) एक प्रकारका अलङ्कार । इसमें दो विरुद्ध भावोंकी संधिका वर्णन होता है ।

भावसत्य (सं० त्रि०) ऐसा सत्य जो ध्रुव न होने पर भी भावकी दृष्टिसे सत्य हो ।

भावसवलता (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका अलङ्कार । इसमें कई एक भावोंका अलङ्कार एक साथ वर्णन किया जाता है ।

भावसर्ग (सं० पु०) तन्मात्राओंकी उत्पत्ति ।

भावसागर—एक जैनाचार्य, सिद्धान्तसागरके छात्र । इन्होंने १५१० सम्वत्में जन्मग्रहण किया था । काम्बे-नगरमें जयकेशरी सूरिके निकट ये दीक्षित हुए थे । १५२० सम्वत्में ये इन्हें आचार्यपदसे विभूषित और १५८६ सम्वत्में पञ्चत्वको प्राप्त हुए ।

भावसार—शूद्रजातिविशेष । बम्बई प्रदेशके पूना जिलेमें इन लोगोंका प्रधानतः वास है । ये लोग वलराम, कृष्ण और हिङ्गला माताकी अर्चना करते हैं । मृत व्यक्तिको जलाते हैं और दश दिन तक अशौच मानते है । बालिकाओंका ग्यारहवें वर्षमें विवाह होता है । पुरुषगण बीससे पचीस वर्षके मध्य विवाह करते हैं । कन्याका पिता स्वयं मनोनीत वरके पिताके पास जा कर विवाह-सम्बन्ध स्थिर करता है । इनका आचार व्यव-हार निम्नश्रेणीके हिन्दुओं-सा है ।

भावसिंह—१ राजामानसिंहका पुत्र और भगवानदासके पौत्र । उनके सभापण्डित रुद्रने उनके सम्मानके लिये भावविलासकी रचना की । २ मेदिनीराजके पुत्र । इनके आश्रयमें रह कर भट्टविनायक 'भावसिंहप्रक्रिया' लिख गये हैं ।

भावसिंहदेव—बघेलवंशीय एक राजा । आप हौत्रकल्प-द्रुमके प्रणेता लक्ष्मणभट्टके प्रतिपालक थे ।

भावसेन—कातन्त्ररूपमाला और कौमारव्याकरणके प्रणेता ।

भावहिंसा (सं० स्त्री०) ऐसी हिंसा जो केवल भावमें हो, पर द्रव्यमें न हो ।

भावाकूत (सं० क्ली०) मानसिक चिन्ता वा कल्पना-लहरी ।

भावागणेशदीक्षित—तत्त्वयाथार्थ्यदीपन-प्रणेता, भाव-विश्वनाथके पुत्र । इन्होंने विज्ञानभिक्षुके निकट शिक्षा पाई थी ।

भावाचार्य—गीतगोविन्द टीकाके प्रणेता ।

भावाट (सं० पु०) भावं भावेन वाटतीति अट्-अण् । १ भावक । २ साधु । ३ निवेश । ४ कामुक । ५ नट । ६ भावप्राप्ति ।

भावात्मक (सं० त्रि०) किसी विषयकी प्रकृत अवस्था-का सूचक ।

भावानुगा (सं० स्त्री०) भावं मूर्त्तपदार्थमनुगच्छतीति अनु-गम-ड, टाप् । १ छाया । (त्रि०) २ भक्त्यादि द्वारा अनुगत । ३ अभिप्रायानुगत ।

भावाभाव (सं० पु०) १ भाव और अभाव, होना और न होना । २ उत्पत्ति और क्षय या नाश ।

भावाभास (सं० पु०) एक प्रकारका अलङ्कार ।

भावार्थ (सं० पु०) १ वह अर्थ वा टीका जिसमें मूलका केवल भाव आ जाय, अक्षरशः अनुवाद न हो । २ अभि-प्राय, तात्पर्य ।

भावालङ्कार (सं० पु०) एक प्रकारका अलङ्कार ।

भावालीना (सं० स्त्री०) भावेषु मूर्त्तपदार्थेषु आलीना । छाया ।

भाविक (सं० त्रि०) भावेन निर्वृत्तं ठक । १ भावसाध्य पदार्थ, वह अनुमान जो अभी हुआ न हो पर होनेवाला हो । २ अर्थालङ्कारभेद, वह अलङ्कार जिसमें भूत और भावी बातें प्रत्यक्ष वर्त्तमानकी भांति वर्णन की गई हों । (त्रि०) ३ मर्मज्ञ, जाननेवाले ।

भावित (सं० त्रि०) भाव्यते स्मेति भू-णिच् क्त । १ वासित, सुगंधित किया हुआ । २ प्राप्त, मिला हुआ । २ ३ विशोधित, शुद्ध किया हुआ । ४ चिन्तित, सोचा हुआ ५ मिश्रित, मिलाया हुआ । ६ समर्पित, भेंट किया हुआ । ७ सिक्त, जिसमें किसी रस आदिकी भावना दी गई हो । ८ वीजगणितोक्त अव्यक्त अनेक वर्ग समीकरण द्वारा व्यक्तिकरण ।

भाविता (सं० स्त्री०) भाविनो भावः तल-टाप् । भावित्व, भावीका भाव ।

भावित्र (सं० क्ली०) भवतीति भू-(भुवादिगृभ्यो णित्रन् ।

उणा ४।१७०) त्रैलोक्य, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल।

भाविन् (सं० त्रि०) भविष्यतीति भू-(भु श्च। उणा ४।८) इति इनि, स च णिद्भवति। १ भविष्यत् काल, आनेवाला समय। २ भवितव्यता, अवश्य होनेवाली बात। ३ भाग्य, तकदीर।

भावनी (सं० स्त्री०) भावः शृङ्गारचेष्टाविशेषो विद्यतेऽस्या इनि ङीप्। १ स्त्रीविशेष। २ स्कन्द मातृगणकी अन्यतमा। (भारत ६।४३।११) ३ वर्त्तमान प्रागभाव प्रतियोगिनी।

भावी (हिं० स्त्री०) भाविन् देखो।

भावुक (सं० क्ली०) भवतीति भू (लषपतपदस्थाभूवृषेति। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। १ मङ्गल, आनन्द। (पु०) २ नाट्योक्तिमें भगिनीपति। ३ सज्जन, भला आदमी। (त्रि०) ४ भावना करनेवाला, सोचनेवाला। ५ उत्तम भावना करनेवाला, अच्छी बातें सोचनेवाला। ६ जिस पर कोमल भावोंका जल्दी प्रभाव पड़ता हो।

भावुक—गोकुलवासी एक ब्राह्मण। ये अपुत्रक होनेके कारण वात्सल्यभावमें श्रीकृष्णकी उपासना करते थे। निरन्तर पुत्रभावमें हरिभजन करते करते उनको भावसिद्धि हुई। पुत्ररूपमें श्रीकृष्णने उन्हें दर्शन दिये। पीछे उनके मनमें ऐश्वर्यभावका उदय होनेके कारण श्रीकृष्ण भगवान् अदृश्य हो गये। अनन्तर वह ब्राह्मण बड़े दुःखित हुए और रातदिन श्रीकृष्णके चरणमें रत रह कर अपना समय विताने लगे। श्रीकृष्णने प्रसन्न हो कर परजन्ममें इन्हें फिर दर्शन दिये थे। (भक्तमाल)

भावोत्सर्ग (सं० पु०) क्रोध आदि बुरे भावोंका त्याग।

भावोदय (सं० पु०) एक प्रकारका अलङ्कार। इसमें किसी भावके उदय होनेकी अवस्थाका वर्णन होता है।

भाव्य (सं० क्ली०) भू-ण्यत्। १ अवश्य भवितव्य, अवश्य होनेवाला। २ भावना करनेके योग्य। ३ सिद्ध या सावित करनेके लायक।

भाव्यता (सं० स्त्री०) भावस्य भावः तल् टाप्। भाव्यत्व, भावीका भाव या धर्म।

भाव्यरथ (सं० पु०) एक राजा। (विष्णुपु०)

भाषक (सं० त्रि०) वक्ता, बोलनेवाला।

भावज्ञ (सं० पु०) भावाका ज्ञाता, भाषा जाननेवाला।

भाषण (सं० क्ली०) भाष्-भावे ल्युट्। १ कथन, कहना। २ वक्तृता, व्याख्यान।

भाषना (हिं० क्रि०) भोजन करना, खाना।

भाषा (सं० स्त्री०) भाष्यते शास्त्र व्यवहारादिना प्रयुज्यते इति भाष् (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०२) इति अ प्रत्ययः, टाप्। १ रागोणीविशेष। २ वाक्य, बोली। भाषातत्त्व देखो। ३ वाग्देवता। पर्याय—ब्राह्मी, भारती, गिर, वाच्, वाणी, सरस्वती, व्याहार, उक्ति, लपित, भाषित, वचन, वचस्। (अमर)

४ शास्त्रीय अष्टादश भाषा। यथा,—१ संस्कृत, २ प्राकृत, ३ उदीची, ४ महाराष्ट्री, ५ मागधी, ६ मिश्रार्द्ध मागधी, ७ शकाभीरी, ८ श्रावस्ती, ९ द्राविड़, १० औड़ीय, ११ पाश्चात्य, १२ प्राच्य, १३ वाह्लीक, १४ रन्तिका, १५ दाक्षिणात्या, १६ पैशाची, १७ आवन्ती, १८ शौरसेनी। प्राकृत लङ्केश्वरमें इन सब भाषाओंके लक्षण और उदाहरण लिखे हैं। ५ किसी विशेष जनसमुदायमें प्रचलित वातचीत करनेका ढंग, बोली। ६ वह अव्यक्त शब्द जिससे पशु पक्षी आदि अपना मनोविकार या भाव प्रकट करते हैं। ७ वाणी, सरस्वती। ८ आधुनिक हिन्दी। ९ अभियोगपत्र, अर्जी दावा।

भाषातत्त्व—मानवजातिके मुखसे उच्चारित शब्दपरम्पराके सुललित समावेश और मनोभावव्यञ्जक व्याकरण-समन्वय-साध्य पदावलीको भाषा कहते हैं। भाषा साधारणतः दो प्रकारकी है, १ कथित—जिसमें व्याकरण साध्य शब्द वा पद परम्पराकी आवश्यकता नहीं होती, केवल मात्र मुखोच्चारित शब्दविन्यास द्वारा वस्तु वा व्यक्ति विशेषका आनुषङ्गिक कार्यभाव व्यक्त किया जाता है वही कथित भाषा है (Spoken dialect) और जो व्याकरणसिद्ध पदपरम्परा द्वारा ग्रथित तथा मनोभाव विकाश करनेमें समर्थ है, उसीको भाषा (Language) कहते हैं। कालक्रमसे वर्णमालाका आविष्कार हो जानेसे वह शब्द परम्परा लिपिबद्ध हो कर लिखित भाषामें (Written language) परिणत हो गई है।

मनुष्य-सृष्टि होनेके बाद भाषाकी सृष्टि नहीं हुई। पहले व्यक्त वा अव्यक्त किसी प्रकार शब्द संयोगसे मानवगण अपना मनोभाव प्रगट करते थे। इस

विशाल जगद्वक्षमें विचरण करके मानवगण धीरे धीरे दर्शनज्ञान लाभ करने लगे। मानसिक उन्नतिके बलसे वे जितना ही ज्ञानमार्ग पर चढ़ते थे, उतना ही उनकी दृष्टिशक्तिने वृत्तिका विकाश पाया था। जब नित्य व्यवहार्य्य वस्तुके बदलेमें किसी नैसर्गिक घटनाके ऊपर उनका लक्ष्य पड़ता था, तब उन्होंने ज्ञान और दूरदर्शिताके बल इन विषयके भावपरिज्ञापक शब्दमालाके आविष्कारकी चेष्टा की थी। वर्त्तमान अनुसन्धानसे इन सब विषयोंका प्रकृत प्रमाण पाया गया है। पर्वतकी निभृत गुहामें अथवा वनान्तरालके दुर्भेद्य प्रान्तमें लुक्कायित तथा प्रकृतिकी कोमल गोदमें लालित पालित असभ्य वनचारिगण ज्ञानके अतिरिक्त दूसरा कोई भी विषय अपनी कथित भाषामें व्यक्त नहीं कर सकते थे। कोल, भील, सन्थाल, शबर आदि असभ्य जातिके उन्नतशील जाति द्वारा आविष्कृत कोई अभिनव वस्तु देखनेसे वे उसका प्रतिरूप कोई भी अर्थबोधक शब्द प्रयोग नहीं कर सकते। क्योंकि, उस पदार्थके विषयसे वे बिलकुल अवगत नहीं हैं। किन्तु अंगरेज, जर्मन वा अन्य सुसभ्य जातिको दूसरेकी आविष्कृत वस्तु दिखानेसे ही वे उसी समय उसके अनुरूप एक शब्द प्रयोगकी आवश्यकता समझ कर भाषाके मध्य एक शब्दसंगठन कर लेते हैं। इस कारण कालक्रमसे बहुत-से विभिन्न जातीय शब्द अन्यान्य अनेक भाषाओंके साथ मिल गये हैं। इससे गठित (Coined) शब्द और अपर भाषासे गृहीत (Naturalised) शब्दकी उत्पत्ति हुई है*।

शब्दतत्त्वविदोंने शब्दसादृश्यके अनुसन्धान और आलोचना द्वारा दिखाया है, कि प्राचीन आर्यजातिके शब्दानुकरणसे वर्त्तमान सभ्य जगतकी भाषाकी सृष्टि हुई है। उन आर्यसन्तानोंके उन्नतिके चरममार्ग पर चढ़नेसे वे अपनी आवश्यकीय मन्तव्यसिद्धिके लिये नाना शब्दाविष्कारका उपाय निकालते हैं। जगत्का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदसंहिता पढ़नेसे ऐसे दुर्बोध्य आवश्यकीय बहुलसे शब्दोंका प्रयोग देखनेमें आता है। देवतत्त्व, भूतत्त्व, जलतत्त्व, ज्योतिस्तत्त्व आदि विषयोंमें उन्होंने पारदर्शिता लाभ करके उन सब विषयोंकी उपयोगिताके अनुसार तदनुरूप शब्दकी उद्भावना की है।

आर्यप्रवाहप्रसङ्गसे आर्य जातिकी वैदिक भाषा विभिन्न देशोंमें फैल गई है। यही कारण है, कि हम लोग आर्यभाषागत एक शब्दके अनुरूप संस्कृत, बङ्गला, ग्रीक, जर्मन, अङ्गरेज, फरासी आदि भाषामें देखते हैं। विस्तृत विवरण शब्दतत्त्वमें देखो।

मनुष्यकी स्वभावसिद्ध सामाजिकता, एकत्र वसवासेच्छा, परस्परकी सहानुभूति वा सहायता आदि गुण रहनेसे तथा परस्परके आवश्यकतानुसार वैषयिक कथोपकथनकी सुविधाके लिये मानव बाध्य हो कर भाषाके उद्भवमें मनोयोगी हुए हैं। मानव जातिकी आदिम अवस्थाकी कल्पना करनेसे मालूम होता है, कि उसके जन्मको प्रथम अवस्थासे हो मानवगण वस्तु वा व्यक्ति विशेषकी यावतीय अवस्था जाननेमें यत्नवान् थे अथवा उस तरहकी अवस्था द्वारा तत्तद्विषयाङ्ग समूहमें अभिज्ञता लाभ करनेमें चेष्टित होते थे। मानव जितनी ही अशिक्षित अवस्थामें क्यों न रहे, उसकी तात्कालिक अवस्थामें भी वह वाक्यपरम्परा द्वारा मनोभाव व्यक्त करनेमें समर्थ होता था। उस समय उसकी भाषा सुललित और प्राञ्जल नहीं होने पर भी दुर्बोध्य और असम्पूर्ण थी।

मानव-अवस्थाकी पर्यालोचना करनेसे उनमें दो विशेषत्व दिखाई देते हैं;--किशोर शिशु-स्वभाव और शिक्षासम्पन्न युवक मूर्त्ति। प्रकृतिके क्रोड़शायी शिशुकी आधारभूत शक्ति, इच्छाप्रवणता और ईश्वरदत्त शारीरिक और मानसिक शक्ति समुच्चयका प्रणिधान करनेसे अनुमान होता है, कि उसके उपयुक्त शिक्षा पानेसे अथवा उसकी हृदयनिहित स्वभावज वृत्तियोंके यथानियम कर्षित और स्फुरित होनेसे समय आने पर वह भी पूर्णमात्रामें विकशित हो सकती है। अपर शिक्षित युवक-सम्प्रदायका हृदयजात ज्ञान, सामाजिक आचार और पाण्डित्यानुशीलनकी अनुभावना करनेसे ज्ञात होता है, कि उसकी यह गुणपरम्परा पूर्वपुरुषके सुकृतिबलसे उसमें समर्पित हुई है। स्वभावज गुणसम्पन्न व्यक्तिमात्र

* प्रायः प्रत्येक भाषामें विजातीय भाषासे गठित वा गृहीत शब्दोंका प्रयोग देखा जाता है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर उद्धृत नहीं किया गया।

शिक्षाके आतिशय हेतु उत्कर्षताको प्राप्त होत हैं। उसी प्रकार मानव मात्रको वाल्यावस्थासे उपयुक्त शिक्षा मिलने पर वह उन्नत अवस्थामें लाया जाता है। इस विषयमें उसकी पूर्व पुरुषार्जित ज्ञानवृत्तिकी अपेक्षा नहीं रहती। तात्पर्य यह, कि उसकी स्वाभाविक वृत्तियां आप ही आप स्फूर्त्ति पा कर भाषाज्ञानके उपयोगी होती हैं। फिर एक शिक्षित व्यक्तिकी शिशुसन्तानको प्रकृति-निर्जनस्थानमें रख देनेसे उसको कभी भी पूर्वपुरुषको तरह वाक्य-स्फूर्त्ति नहीं होगी और तो क्या वह शिक्षित सभ्यके गृहवासादिनिर्माणमें अथवा उन लोगोंके समान शिल्पविद्यामें पारदर्शी नही होगी। यथार्थमें वह सन्तान भाषाहीन मूककी तरह हो जायगी; किन्तु उसकी हृदयनिहित सचेष्टता विलकुल दूर नहीं होती। उसको सहजात प्रकृति उसके हृदयक्षेत्रको शिक्षावोज वपनके योग्य वना देती है।

मनुष्यको आदिम अशिक्षित अवस्थाकी कल्पना करनेसे मालूम होता है, कि वे वर्त्तमान उन्नतमानव-जाति और वानर-कुलके मध्यवर्त्ती थे। उस समय वे पश्वादिकी तरह श्रमसहिष्णु, कर्मठ और पक्ष्यादिको नीड़निर्माण-पटुताको तरह शिल्पनिपुण थे। ये सव सहजात कौशल उनमें विद्यमान रहने पर भी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, कि वे सव उस समय प्राकृत भाषासे वञ्चित थे। किन्तु जीव जगत्के अस्फुट अव्यक्त स्वरको तरह उनके भी जिह्वाग्रसे स्वरलहरीका अभ्युत्थान होता था। वह वाक्यावली मार्जित और सुश्राव्य नहीं होने पर भी मानवकी मौलिककथित भाषाकी तरह समझी जाती थी। उसमें भाषागत कोई नियम संग्रोजित नहीं रहने पर भी वही उन लोगोंको मनोभावज्ञापक थी। पहले वे लोग नित्य-व्यवहार्य कुछ विषयोंका भावप्रकाश करनेके लिये कितने शब्दोंको उद्भावन कर लेते हैं। पीछे लगातार अभाव-ज्ञापनमें पारदर्शिता हेतु मानसिक क्रियानिचयका विकाश, जल-वायु प्रकृष्टताहेतु दैहिक वल और वृत्तिशक्तिकी स्फूर्ति तथा अभिनव वस्तुओंमें चित्तके आकृष्ट होनेसे उन्हें नूतन स्वर संयोजनाकी आवश्यकता आन पड़ती है। इस प्रकार स्वभावजात मनुष्य नाना विषयोंमें शिक्षाप्रयासी हो कर भाषाकी उन्नतिके लिये शिक्षित और उन्नत मनुष्य-रूपमें गिने जा सकते हैं। उनकी यह स्वभावसाध्य गुणलब्धशिक्षा जरा भी अपनोदित होनेकी नहीं, वरं उन्नत शिक्षाप्रभावसे उनका मनुष्यत्व देवत्वमें परिणत हो सकता है।

मानव-जन्म ले कर मनुष्यत्वलाभ करनेके कितने दिन वाद मनुष्योंने परम्पराश्रुत-कथा और विषयविशेषके उपयोगी शब्दानुकरण द्वारा मनोभाव ज्ञापन किया था, उसका स्थिर करना कठिन है। उस अवस्थासे वर्त्त-मान उन्नत अवस्थाका विभेद जाननेसे चमत्कृत होना पड़ता है।

प्रयोजनीयताके अनुसार अनुकारी शब्द ले कर पहले मानवजातिकी व्यक्त भाषाका संगठन हुआ। पीछे परम्पराश्रुत कथा और पुनरनुकारी शब्दसमुच्चय भाषा-के सौष्टवकी वृद्धि करता है। आगे चल कर वही परम्परा श्रुत कथा भाषामें रूपान्तरित हुई है।

जनसाधारण इस अनुकृतिवादको ही भाषाका उत्पत्ति-मूलक वतलाते हैं। कोई पदार्थ निःसृत शब्द, जन्तुका स्वतःप्रवृत्त रव अथवा इन्द्रियगोचर कोई पदार्थ देखनेसे हम लोगोंके मुखसे आप ही आप जो स्वर या शब्द निक-लता है, उसके अनुकरणसे ही भाषाकी उत्पत्ति स्वीकार की जाती है। अनुकरणशक्ति मनुष्योंकी स्वभावसिद्ध है। यही कारण है, कि हम लोग वालकको वाँसुरी देखनेसे 'भोंभों'; कुत्ता देखनेसे 'भौं भौं', गाय देखनेसे 'हम्वा', कबू-तर देखनेसे 'बकवकम्' प्रभृति अनुरूप शब्दका प्रयोग करते देखते हैं। मनुष्यसृष्टिके प्रारम्भमें सम्भवतः इसी प्रकार अनुसृष्टिसे आर्य पूर्वपुरुषगण शब्दसृष्टि कर गए हैं।

सुप्राचीन संस्कृत भाषामें वैयाकरणोंके उपद्रवके हेतु अनेक रूपान्तर हुए हैं। सम्प्रति शब्द ले कर उसके मूलका निर्णय करना एक प्रकारसे असम्भव हो गया है। संस्कृत 'निष्ठीवन' शब्दमें अनुकृत-लक्षण छिपा हुआ है। विशेषरूपसे विपर्य्यय प्राप्त होनेसे अभी उसका वह रूप सहजमें अनुभूत नहीं होता। किन्तु उसका प्रकृतिप्रत्यय निर्देश करनेसे निष्ठीवन = नि + ष्ठीव् + ल्युट् इस प्रकार पद होगा। यह ष्ठीव् शब्द वा धातु (अर्थात् मूल शब्द वा root) शुद्ध अनुकरणात्मक है। निष्ठीवन

फेंकनेके समय मुखसे किंवा भूमि पर गिरनेसे जो शब्द निकलता है, वह संस्कृतमें ष्ठीव्, हिन्दीमें पिक् या पिच् और अंगरेजीमें स्पिट् Spit) प्रभृति शब्दमें अनुकृत हुआ है।

निषेधवाचक दन्त्य 'न' शब्दकी उत्पत्ति भी इसी प्रकार है *। पुत्रपोषणेच्छु माता बच्चे को गोदमें ले कर जब बलपूर्वक दूध पिलानेको उद्यत होती है, तब बालक मुख बन्द कर 'नि नि रा लूं उः' प्रभृति अव्यक्त स्वर उच्चारण करता है। पहले 'न' उच्चारण कर बालक निषेध-ज्ञापन करता है। बालकको शिक्षासे युवकका अभ्यास होता है। असभ्य आदिम मनुष्यने जो सीखा था, अभी सभ्य मनुष्यका वही अभ्यस्त हुआ है। आदिमका अनुकरण सभ्यका परम्परा-श्रुत हो गया है।

अपोगण्ड शिशुके इच्छाशक्ति नहीं रहना ही सम्भव है। सुतरां उसकी अनुकरणेच्छा बलवती नहीं हो सकती। उसका ऐसा काम केवल शारीरिक-अनुसृतिमूलक है।

वर्त्तमान भाषाविदोंके मध्य कोई कोई इस अनुकरणवादसे भाषाका अपौरुषेयत्ववाद और सम्मतिवाद तथा कोई कोई एक ही बातको उलट पलट कर भाषाको स्वभावजा और अनुकृतिलक्षणा बतलाते हैं।

व्याकरण-विपर्ययमें भाषाका जैसा परिवर्त्तन हो गया है देश और अवस्थाभेदसे भाषाका वैसा ही उच्चारणवैषम्य प्रतिपादित हुआ है। यही भाषाका विवर्त्तनवाद है। इसके अलावा एक ही देशमें क्षिप्र-प्रयोगवशतः शब्दका भी रूपान्तर हुआ करता है। इसीसे हम लोग सप्तसिन्धवको जगह हप्तहिन्द और हिन्दो या 'हिन्दव'-को जगह 'इण्डिया' नामकी उत्पत्ति देखते हैं।

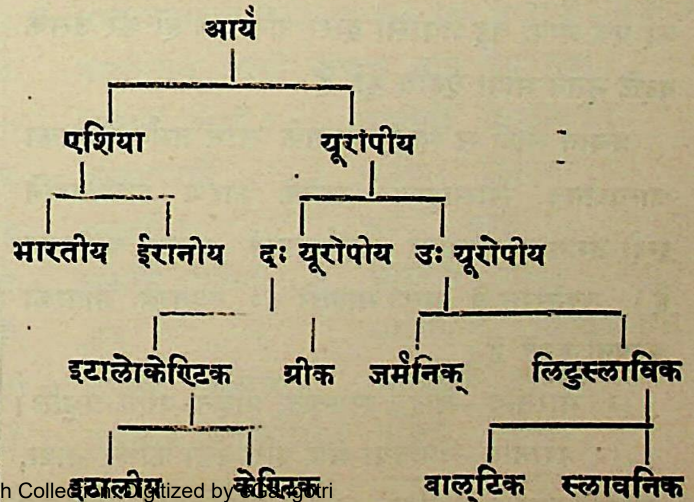
सभी जगह शहरकी भाषासे गांवकी भाषामें स्वातन्त्र्य देखनेमें आता है। गांवकी भाषा शिथिल, विरल ग्रन्थ और दीर्घावयवविशिष्ट तथा शहरकी भाषा साधारणतः दृढ़बद्ध, अस्पष्ट और स्वल्पावयवविशिष्ट होती है। शहरवासिगण परस्परके मिलन और व्यवसाय वाणिज्यमें व्यस्त रहनेके कारण थोड़ी ही बातमें अपना मनोभाव प्रगट करनेको बाध्य हुए हैं।

* संस्कृत—न, बंगला—ना, हिन्दी—नहीं, लैटीन—नि, अंगरेजी—नो प्रभृति।

पहले धातु (root)को शब्दका मूल या प्रकृति ले कर उसमें उपसर्ग (prefix और प्रत्यय (suffix) जोड़नेसे शब्दका लालित्य तथा अर्थ वैचित्र्य संघटित होता है। आवश्यकतानुसार शब्दके रूपपरिवर्त्तनके लिए कई एक विभक्ति affix) प्रवर्त्तित होनेसे भाषाकी अङ्गपुष्टि साधित हुई है। तदनन्तर शब्दकी श्रुतिमधुरता बढ़ानेके लिये जनसाधारणका चित्त आकृष्ट हुआ था। इसी शब्दमाधुर्यको बदलनेमें भाषाका लालित्य और पुष्टि साधित हुई है।

क्रन्दनादि अव्यक्त स्वरके सिवा मनुष्यके एक व्यक्तस्वर (articulate sound) है जिसके द्वारा वे अपना मनोभाव प्रकाशित करनेमे समर्थ होते हैं। वर्णमालाके आविष्कार प्रसङ्गमें जब यह परस्पराश्रुत स्वरलहरी भाषामें प्रयोगजित हुई, तब उसमें स्वरवर्ण और व्यञ्जनवर्णके समावेशको आवश्यकता आ पड़ी। वर्णमालाके उद्भवके पहले भाषा पूर्वापर श्रुतिविद्यामें परिणत थी। संसारके सर्व प्राचीन उन्नत आर्योंको वेदभाषा परम्पराश्रुत हो चली आती थी; वर्णमालाका आविष्कार होनेसे अभी वह जनसाधारणके पाठ तथा उपलब्धिको उपयोगी हुई है। प्राचीन कालके मनुष्योंकी लिखित भाषा पक्षिचिह्न या कोणाकार लिपिमें देखी जाती थी। अभी नाना सुसभ्य देशमें भिन्न भिन्न वर्णमालाका व्यवहार होने लगा है। वर्णमाला शब्द देखो।

भाषा और शब्दतत्त्वविद्गण आर्यजातिको श्रुतगीतिको भाषा तत्त्वका प्रथम आदर्श मानते हैं। उन्होंने उसी आर्यप्रोक्त भाषाको सभी भाषाओंकी जननी स्थिर कर इस प्रकार एक भाषावंशको विस्तार कल्पना की है।



आर्योंके पाश्चात्य उपनिवेशका अनुसरण कर यूरोपीय भाषाका पौर्वापौर्यनिर्णय करनेसे आर्यजातिके दूरान्तर गमनके कारण भाषाके परिवर्त्तन-तारतम्यका स्वीकार करना होता है। विभिन्न स्थानमें वास होनेके कारण आर्यजातिकी पाश्चात्यवाहिनी शाखाका भाषा-विपर्यय संघटित हुआ है, वर्त्तमान यूरोपीय और इन्दो-जर्मन भाषाके सिवा सेमितिक श्रेणीकी हिब्रु, फिनिकीय, आसिरीय, सिरीय, आरव्य और आविसिनीय प्रभृति भाषाने इतिहास तथा साहित्यमें उच्चस्थान अधिकार किया है। उत्तर अफ्रिकाकी वर्वर या लिवीय भाषा, मिस्रीय, कोप्तीय और इथियोपीय प्रकृति हामितिक श्रेणीगत है। दक्षिणपूर्व एशिया अर्थात् चीन, श्याम, ब्रह्म और तिब्बत प्रभृति देशीय भाषा एक पदारुढ़ है। यूराल अल्टेक विभागीय पार्वत्य प्रदेशकी भाषा मङ्गोलीय, तातार, तुर्की, हून, शक तथा तूराणीय प्रभृति विभागोंमें विभक्त है। इसके अलावा पृथिवीके अन्य स्थानोंमें आदिम असभ्यजातिके मध्य स्वतन्त्र स्वतन्त्र भाषा प्रचलित है। भारत महासागरस्थ मडागास्करसे ले कर मलय और पलिनेशिया द्वीपपुञ्ज प्रशान्त महासागरस्थ फिलिपाइन, फर्मोजा, जापान प्रभृति द्वीपावलिमें एक एक प्रकारकी भाषाका व्यवहार देखा जाता है। इसी तरह काकेशस पर्वत, अष्ट्रेलिया, इट्रुरिया एकेड़िया, मेसोपोटेमिया, सुमिरीया, कमस्कटका, गुकागोर, वस्क, वानटु, आलगोकिन, इरोके और दकोटा प्रभृति कई एक भाषा यूरोप, अफ्रिका तथा अमेरिकाके स्थानविशेषमें व्यवहृत थी। सम्प्रति उनमेंसे कई एक भाषा तद्देशवासी द्वारा परित्यक्त हो कर उसके बदले नूतन भाषा गृहीत हुई है।

प्राचीन आर्य संस्कृत भाषाके साथ जर्मन भाषाका धात्वर्थगत सौसादृश्य रहनेके कारण शब्दविदोंने इन्दो-जर्मनीय भाषाको आर्यभाषाके अन्तर्भुक्त रखा है। तदनुसार वे आर्य भाषासे १० स्वतन्त्र भाषाकी कल्पना करते हैं।

(१) भारतीय—वैदिक संस्कृत, प्राकृत, पालि प्रभृति।

(२) ईरानीय—मिदिया और पारस्यकी कथित भाषा, उसमेंसे प्राचीन पारसिक, जन्द (आवस्तिक), बाह्लीक, आकिमीय, कोणाकारलिपिलिखित भाषा, पह्लवी, शासनीय, पजन्द (पारस्य)-अफगान खुर्द प्रभृति।

(३) ग्रीक—ग्रीस और रोमकी विभिन्न भाषा।

(४) आलबिय—श्वेतद्वीपकी भाषा। यह यूरोपीय आर्य भाषाकी अनुरूप है, किन्तु ग्रीकसे स्वतन्त्र है।

(५) आर्मेणीय—इस देशकी विभिन्न भाषा।

(६) इटालीय—लैटिन, फलिस्कान, आमब्रियान और ओस्कान।

(७) केल्टिक—वृटेन द्वीपकी प्राचीन भाषा। अब भी आयर्लैंड, स्काटलैंड और वेल्समें कहीं कहीं यह भाषा प्रचलित है।

(८) जर्मन या ट्यूटन—जर्मन, अंगरेजी, फरासी, ओलन्दाजी, डेनमार, स्कन्दनेवीय, स्वेडिस, नर्स, आइसलैण्डीय प्रभृति भाषा इसके अन्तर्भुक्त है।

(९) बाल्टिक—प्रुसिय, लिथुयनीय और लेटीय।

(१०) स्लावोनिक—रूषीय, रुथेनीय, बुलगेरीय, सार्भीय, स्लावनीय, क्रोसीय, वोहेमिय और पोलीय।

पूर्ववाही आर्य उपनिवेशके मध्य भारतीय वैदिक और संस्कृत भाषा जनसाधारणकी विशेष आदरणीय है। ऋग्वेदसंहिताके जैसा सुप्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ संसारमें दूसरा नहीं है। इसीसे आर्यतत्त्व-अन्वेषणमें भारतीय संस्कृत भाषाका इतना अधिक आदर है। मार्कण्डेय कवीन्द्रकृत प्राकृतसर्वस्वमें भाषा, विभाषा, अपभ्रंश और पैशाच * प्रभृति संस्कृत भाषाका विभेद देखने में आता है। संस्कृत पैशाच, प्राकृत, वङ्ग प्रभृति शब्द देखो।

ईरानीय प्रभृति भाषाका विवरण पहले ही दिया गया है। जन्द, अवस्ता और पारस्य प्रभृति शब्दके इतिवृत्तमें

* "महाराष्ट्री शौरसेनी प्राच्यावन्ती च मागधी।
इति पञ्चविधा भाषा युक्ता न पुनरष्टधा॥"
"शाकारी चैव चाण्डाली, शावर्याभीरिकी तथा।
शाक्कीति युक्ताः पंचैव विभाषा न तु षड्विधाः॥"
"नागरो व्राचडश्चोपनागरश्चेति ते त्रयः।
अपभ्रंशाः परे सूक्ष्मभेदत्वान्न पृथङ्मताः॥"
कैकेयं शौरसेनं च पाञ्चालमिति च त्रिधा।
पैशाच्यो नागरा यस्मात्तेनाप्यन्या न लक्षिताः॥"

उनका प्राचीनत्व प्रमाणित हुआ है । तत्तत् शब्द देखो ।

इसके अलावा इस विशाल भारतसाम्राज्यमें और भी नाना प्रकारकी भाषा प्रचलित हैं जिनमेंसे द्राविड़ीय, कोलकीय, तिब्बतीय ब्रह्म, खस, तै, मोन, आनाम तथा मलय भाषा सर्वप्रधान है।

द्राविड़भाषा ।—तामिल, तेलगु, कणाड़ी, मलयालम, तुलु, कोड़ग और सिंहली भाषा मार्जित तथा उन्नत है। दक्षिण भारतकी तोड़ा, कोटा, गोंड़, खएड, इरुलर, कोड़व, कुरुम्बर, वेद्दा और मध्य भारतकी भूंईया, भूईहार, विञ्जर, कौरव, कोच, माल, माले पहाड़ी, राजमहली, ओरावन तथा रौतिया प्रभृति जातिकी कथित भाषा अमार्जित है।

कोलरीय भाषा ।—असुर या आगरिया, भील, भिलल, भुई, भुईहार, भूमिया, भूमिज, भूञ्जिया, विञ्झार, वीरहोड़, वयार, वागाचेरु, धांगड़, गड़वा, हो, झौङ्ग, कवर, खड़िया या देलकी, खरवार किषण, नागेश्वर वा नकासिया, कोल, कोड़ा, कोड़वा, मुयासी, मईर, मांझी, मेहतू, मीना, मुण्डा, नहर, सन्थाल, सावन्त, जौङ्ग और शवर प्रभृतिकी कथित भाषा ।

तिब्बतीय-ब्रह्मभाषा ।--इस विभागमें तिब्बतसे ले कर ब्रह्मदेश तक पार्वत्य भूभागकी सभ्य तथा वन्य जातियोंकी लिखित और कथित भाषाकी तालिका दी जाती है। यथा—कछाड़ी या वोड़ो, मेछ, होजो, गारो, पानिकोच, देवीरा, छुटिया, त्रिपुर या मोरङ्ग, भोट, सर्प, भूटानी, लोपा, चङ्गलु, त्वङ्ग, गुरुङ्ग, मुर्मि, तक्ष्य, नेवार, पहाड़ी, मगर, लेपछा, दफला, मोड़ी, अरव, लो, आका, मिसमी, चुलिकाटा, तैङ्ग, दिगरु, दिगरु, मिफु, ढिमला, सुनावर कणिव भाषा मिलचन, तीवरस्कद्द, सुमचु। किरान्ती, लिम्बु, कुनावर,ब्रमु, चेपङ्ग, वायु और कुसन्द, जातिको भाषा। नागाजातिकी कथित भाषा—नमसङ्ग या जयपुरिया, वोनपाड़ा, मिठन, तब्लुङ्ग, मलङ्ग, खरी, नौगांव तेङ्गसा, लोटा, अङ्गामी, रङ्गमा, अरङ्ग, कुचा, लियङ्ग या करेङ्ग और मरुम। मिरी, सिंफो, जिलो और ब्रह्म। कूकियोंकी कथित भाषा—थदो, लुसाई, हल्लमी, ख्येङ्ग, मणिपुरी, मरिङ्ग, सोइबू, सूरपई, तंखूल, लुहुप, खुङ्गई, फदङ्ग, चस्फुङ्ग, खुपोम, तकैमी अन्द्र, सेङ्गमाई, चैरेल अनाल और नम्फु। कुमी, कामी, म्रु, वनयोगी या लुङ्ग-खे, पङ्खो, सेन्दु, पोई, शक और क्यो। केरनजातिकी कथित भाषा—स्कौ, वघाई, करेनी, प्वो, तरु, मोपघा गैखो, तोङ्गथु, लिसान। ग्यरुङ्ग, तकपा, मन्याक, थोचू, होर्पा। खासी; तई, थई या श्यामी, लाव, शान, आहोम, खामती, ऐतोन, तेवमो। मोनआनम, मोन, कम्बोजम, आनमी और पलौङ्ग।

संस्कृतादि व्यतीत भारतवर्षमें और भी कई एक भाषाका प्रचलन है जो गौड़ीय या मिश्र संस्कृतसे उत्पन्न हुई है। इसका उल्लेख नीचे किया जाता है। बङ्गाल, विहार और आसाम प्रदेशमें—बङ्गला, तिरहुतो या मैथिली, आसामी और उड़िया। सभ्य उड़िष्याके वासियोंकी लिखित भाषा प्रायः बङ्गलाकी जैसी है, किन्तु उड़िसाके पार्वत्य प्रदेशवासियोंकी भाषा अपेक्षाकृत स्वतन्त्र है। विहार, युक्तप्रदेश, मध्य तथा गुजरात प्रदेशमें—हिन्दी, मैथिली, उर्दू, व्रजभाषा, भोजपुरी, पञ्जावी, मूलतानी, जाटकी, कश्मीरी, नेपाली, सिन्धी, थरेली; ठाकुराली, जिवोली, इरावती, मारवाड़ी, गुजराती, कच्छी, मराठी, कोङ्कणी प्रभृति प्रधान हैं।

भारतीय द्वीपपुञ्जके विभिन्न स्थानमें विभिन्न भाषा प्रचलित है जिनमेंसे अधिकांश कथित हैं। नीचे कुछ लिखित भाषाका प्रमाण दिया जाता है। जो जो जाति जिस जिस भाषामें वातचीत करती है, उनकी भाषाका भी प्रायः वही वही नाम रखा गया है। इस द्वीपपुञ्जमें लगभग डेढ़ सौसे भी अधिक जातिका वास है जिनके मध्य भाषागत विशेष पार्थक्य देखा जाता है। नीचे द्वीप वासी तथा उनकी भाषाका नाम दिया गया।

अदनमें ... लूशों।	अगुतैनो फिलीपाइन।
आलागातमें „ ।	अलोमा न्यूगिनी।
अनमरोपु „ ।	अपयो लूशों।
अर्फाक न्यूगिनी।	असब्लौ वौरु।
अरु „ ।	अहतियागो अहतियागो।
आलोर आलोर।	आसाहन सुमाता।
वञ्जुलाट सिलेविस।	वशिश मलाका।
वतुमेग आववयाता।	वत्तर सुमाता।

बेर्लों तिमोर । वेत्सिमिसाराका मड़ागास्कर ।
वेत्सिलिव होभ । विकोल फिलीपाईन ।
विलोङ्ग मीनहस्स् । विला मलाक्कानिग्रिटो ।
वीमा सम्बव । विसय द्यकजातीय ।
वोनि सिलेविस । बोलाअङ्गो पापुया (सिलेविस)
ब्रेजरक द० अष्ट्रेलिया । वोटंगे मीनहस्स् (उ०सीलेवस)
वतुमेरा आम्वयना । वेत्चियान कैत्तया ।
बुगो या बुजो सिलेविस । वुरिक फिलीपाईन ।
कलिङ्ग लूशों । चिमरों लूशों ।
ददय तगलजाति । देदेले न्युगिनी ।
दोरे न्यूगिनी । दौमजल मिन्दोरो ।
द्यक वोर्णियो । एन्दे फ्लोरिस ।
फेवर्लङ्ग फर्मोजा । गद्दन तगल (लूशों) ।
गलेला गिलोलो । गह सिरम (पापुयान)
गलेतेङ्ग सुन्द । गणि गिलोला ।
गरोन्तलो मीनहसस । गिलोलो हल्महेरा ।
गाईमानि लूशों । होङ्गोते फिलीपाईन ।
होतोन्तलो मोनहस । होभ (ईवारा) मडागास्कर ।
इवालावा लूशों । इनमग फिलीपाईन ।
इदयन फिलीपाईन । इगोरोवे ” ।
इफुगाव लूशों । इकोलों न्यूगिनी ।
इन्नोस वोर्नियो । इलोकनो लूशों ।
इलोङ्गोते लूशों । ईसिनये ” ।
इताने ” । इतनेग ” ।
यव यवद्वीप । जकुन मलयप्रायद्वीप ।
जुरु मलक्का । कनक मावरीतनाट ।
कपटिस न्यूगिनी । कुरु न्यूगिनी ।
कवि यव और वालि । कयन वोर्नियो ।
कियात्त द्यकजाति । केदा मलक्का ।
केमा सिलेविस । किव फ्लोरिस ।
कैयारी न्यूगिनी । कोईपतु न्यूगिनी ।
कोङ्ग सुन्द, फ्लोरिस । कोरिश्चि सुमात्रा ।
कुबु सुमात्रा । कुलकलिज़ा न्यूगिनी ।
कुलो न्यूगिनी । कुपन तिमोर ।
लरुप सुमात्रा । लेत्ती सर्वतीद्वीप ।
लुबु ” । मदङ्ग वोर्नियो ।

मव न्यूगिनी । मादुरो मलय और मदुराद्वीप ।
मयसोल सिरम । मतारेल्लो सिरम ।
मालनेग फिलीपाईन । मलय द्वीपपुंजके प्रधान प्रधान स्थान ।
मालो वोर्नियो । मल्लिकोलो हिब्राईडिज़ ।
मनटोटो तिमोर । ममनुया फिलीपाईन ।
मन्दर सिलेविस । मन्दय फिलीपाईन ।
मङ्गरई फ्लोरिस । मङ्कसस सिलेविस ।
मङ्गिनिस मिन्दोरो । मनोवो मिन्दानाव ।
मावरा न्यूज़ीलैण्ड । मद्दुंना सिराम ।
मेन्तवो पगाईद्वीप । मारो-शूकर और वन्याकद्वीप ।
मिल्लनवी सारावक । मिनकोपि अंडमन ।
मिन्तिरा मलक्का । मिरियम तोरस प्रणाली ।
मोतु न्यूगिनी । मुरङ्ग वोर्नियो ।
नमन ” । मुरुतदान ” ।
माईफोड़ मानसनाम । तियोरम तवल्लो ।
ननकौड़ी निकोवर । निग्रिटो फिलीपाईन ।
एलो सुमात्र । तेतो तिमोर ।
ओरङ्ग विनुया मलक्का । ओरङ्ग हिन्दी वईगियो ।
ओरङ्ग क्लिङ्ग भारत । ओरङ्ग कुबु सुमात्रा ।
” लौट सामुद्रिकदस्यु । ” मलय मलय ।
” सलत् ” । ” सिरणी पुर्त्तगीज़ मिश्र
” उटङ्ग वन्यजातुन । ” गुणोङ्ग पर्वतवासी ।
” दरत् कृषकजाति । ” सकाई मलक्कानिग्रीटो ।
पलवरा न्यूगिनी । पम्पङ्गो तगल ।
पनयनो विषयजाति । पङ्गसिन तगल ।
पापक न्यूगिनी । पापुयान न्यूगिनी प्रभृतिद्वीप ।
परिगि मीनहस्स । कुईवो न्यूगिनी ।
रेजङ्ग सुमात्रा । रोक फ्लोरिस और सुन्द ।
रोवो यूल द्वीप और न्यूगिनी । सहोत गिलोलो ।
शकलव मडागास्कर । सकरण वार्णियों ।
सम्पित वोर्नियो । सरवि सुमात्रा ।
ससक लोम्बोक । शोम-वलङ्ग निकोवर ।
सियाक सुमात्रा । सिदेईया फर्मोज़ा ।
सिलङ्ग मार्गुई । सिमङ्ग मलाका-निग्रिटो ।

सुफलिन लूशीं। सुन्द सुन्द।
तगल सिन्दोरो और लूशीं। तलकावगो मिन्दना जाति।
तङ्गईयन तलगजाति। तौल न्यूगिनी।

वर्त्तमान मर्दु मशुमारीसे अंग्रेजाधिकृत भारतमें विभिन्न भाषाकी जो तालिका दी गई है उससे भारतवासीकी विभिन्न जाति तथा जातिगत भाषाका परिचय मिलता है। जातियोंके मध्य कुछ तो एशियावासी और कुछ यूरोप तथा अमेरिकावासी हैं। नीचे उनके नाम और भाषा लिखी जाती है,—

अरव, अरवी, आराकानो, आर्माणि, आसामी, वड़ग, ब्राहुई, वग्रि, वलूची, वङ्गला, भील, भूई, भूटानो, ब्रह्म, कणाड़ी, कछाड़ी, कैखड़ी, कमौनी, कणौजिया, करेन, करेनी, काश्मीरी, खामति, खन्द, खड़िया खस्मि, खईसी, कोंच, कोल, कोलिसया, कोङ्कणी, कुन, कोकु, कोतर, कुकी, कोड़गो, कच्छी, कुरुम्बर, चव, चेनत्सु, चिन, चनी, चौङ्गथा, दाफला, दैनेत, धाङ्गड़, दोगड़ी, गड़वा, गड़वाली, गारो, गयेती, गोयानिज, गोंड़, गुजराती, हजोङ्ग, हिब्रु, हिन्दू, हिन्दी, जापानी, जाटकी, जोनला, लाक्षाद्वीपो, लाड़, लाड़की, लहली, लालुङ्ग, लम्वड़ी, लम्वनी, लेपचा, लिम्बु, मराठी, मकाणि, मलय, मलयालम, मालेर, मणिपुरी, मारवाड़ो, मेछ, मिकिर, मिरि, मिशमी, मुधी, मुर्मि, नाग, नागर, नागपुरी, नेपाली, नेवारी, पहाड़ी, पञ्जावी, पारसिक, पखतु, पुत्तुल, रभा, शक, सलोन, संस्कृत, शवर, शान, शान्दू, श्यामी, सैन्धवी, सिंहली, सिंफो, संथाली, सोनतेङ्ग, तलैङ्ग, तामिल, तेलगू, भोट, त्रिपुरी, तोड़ा, तौङ्गथु, तुलु, तुर्क, वरावन, उड़िया, योविन, येनाड़ी, येर्कोल और कोड़गकी, वन्यजातिकी अपूर्व भाषा एशिया, महादेशीय, कहलाती है। इसके अलावा मिस्र, वर्वर प्रभृति अफ्रिक देशीय केल्कि, डेनमार, ओलन्दाज, अंगरेज, फरासोसी, जर्मन, फिनिस, फ्लेमिस, गेलिक, ग्रीक, हाङ्गेरीय, आइरिष, इटालीय, लाप, नौरवैजीय, पोलिय, पुर्त्तगीज, रोमनीय, रूष, क्रुभीय, स्पेनीय, स्कच स्वीस, स्वीडीस, सिरीय तथा वेल्स प्रभृति।

वर्णमालाके आविष्कारके वाद आर्यजातिकी वैदिक और संस्कृत भाषा लिखी गई है। ऐतिहासिक गवेषणा तथा शिलालिपि द्वारा जाना जाता है, कि विभिन्न समय में भाषाकी विभिन्नताके साथ साथ लिपिका भी पार्थक्य हुआ था। विख्यात पारस्यराज दरायुसके पुत्र जरक्षेसने अपने अधिकृत १२७ प्रदेशोंमें तत्तद्देशीय भाषाकी अनुज्ञालिपिका प्रचार किया था। जिनमेंसे समारितान, हिब्रु, फिनीकीय, ग्रीक, प्राचीन वाह्लिक (आवस्तिक), इजिप्तकी दिमतिक, वहिस्तन-फलकलिपि, अक्कद और सुसार भाषाके सिवा और किसीका भी निदर्शन नहीं है। वाविलोनियाके मृत्तिकानिहित पुस्तकालयमें प्राप्त मृत्फलकलिपि, इजिप्तकी हाईरोग्लिफिक्स, सिरियाकी कोणाकार लिपि और भारतकी अशोकलिपि सर्व प्राचीनसी प्रतीत होती है। भाषातत्त्वविद्गण अशोकलिपिके वाद फिनीकीय प्रभृति वर्णमालाको उत्पत्ति कल्पना करते हैं। दक्षिण एशिया और भारतमें जिन सव वर्णमालामें शिलालिपि तथा ताम्रफलक पर भाषा लिखी थी, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है,—

इलाहावाद लाट और गुप्त अक्षर, अमरावती, अर्मिय, आर्य या वाह्लिक, वङ्गला, भिलसा, काल्दीय पह्लवी या पार्थिव, देवनागरी, गुजराती फलक और वर्त्तमान लिपि, कृष्णा, कुफिक, कुटिल, लाट या भारतीय पालि, वर्त्तमान पह्लवी और शासनीय पह्लवी, ब्रह्मकी पालि तथा वर्त्तमान पालि, पामिराणो, पञ्जावी, पार्थिय, फिनीकीय, प्यूनिक, सौराष्ट्रकी शाहराज-लिपि, सेमितिक, सिनाई, ५वीं शताब्दीकी सिरीय और वर्त्तमान सिरीय लिपि, तेलिङ्ग, भोट, पाश्चात्य गुहालिपि और जन्द वर्णमाला ही प्रधान हैं।

डाः प्रिन्सेपने संस्कृत भाषाको वर्णमालाके रूपान्तरके समय इस प्रकार निर्द्धारण किया है;—१ बौद्धधर्मके अभ्युदयके समय ईस्वीसन् ५वीं शताब्दीके पूर्वकी संस्कृत लिपि। २ पश्चिम भारतीय गुहालिपि। ३ ईस्वीसन् ४थी शताब्दीके पहलेकी जूनागढ़की अशोकलिपि। ४ २री शताव्दीका गुजरात-ताम्रफलक। ५ ५वीं शताब्दीकी इलाहाबाद-गुप्तलिपि। ६, ७वीं शताब्दीकी संस्कृतके अनुकरणमें भोटलिपि। ९वीं तथा १०वीं शताब्दीकी कुटिललिपि और वङ्गला-वर्णमाला तथा इसके वाद देवनागरी और धीरे धीरे हिन्दोका

कायथी प्रभृति अक्षर और भाषाका उद्भव हुआ है।

११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें महमूदके भारतवर्ष पर, आक्रमण करनेसे भारतीय भाषा समूहमें पारसिक और अरबी भाषाका समिश्रण आरम्भ हुआ। उस समय वजीर प्रधान अबुल अब्बास और अहम्मद मैंमन्दि मुसलमान राजसरकारके सभी कागजात पारसिक भाषामें और चिरस्थायी नत्थीपत्र अरबी भाषामें लिखनेकी प्रथा चला गए। सुतरां उस समय भारतवासीको कर्त्तव्य जान कर अथवा वाध्य हो कर उक्त दोनों भाषा सीखनी पड़ी। इसी प्रकार क्रमशः विजातीय शब्द या पदनिचय भारतीय हिन्दी भाषाके साथ मिल कर १४वीं शताब्दीमें उर्दू भाषाकी उत्पत्ति हुई। हिंदीको इस अभिनव भाषाकी भित्ति कर उसमें अरबी, पारसिक, तुर्की, संस्कृत, द्राविड़, पुर्त्तगीज और कोलरीय भाषाका चलित शब्दसमूह संयोजित किया गया है। १६वीं शताब्दीके पहले डा० जन वशीक गिलखाष्टने इस भाषाका कलेवर बढ़ाया। यूरोपवासी वैदेशिक अथवा भारतके अन्य स्थानवासी सभी जातियां इसी उर्दू-हिंदी भाषाको सहायतासे परस्परमें वातचीत करने लगीं। सारे यूरोपखण्डमें फरासी भाषा जिस प्रकार जनसाधारणमें परिगृहीत हुई है, उसी प्रकार भारतमें विभिन्न जातिकी भाषा जाननेके लिए हिन्दीभाषाका सीखना आवश्यक है। हिन्दी भाषा सभी भारतवासी जानते हैं। अङ्गरेज, फरासी या जर्मन द्वारा हिन्दीभाषामें पूछे जाने पर भारतवासी अनायास उसका उत्तर दे सकते हैं।

भाषापरिच्छेद (सं० पु०) महामहोपाध्याय विश्वनाथ न्याय पञ्चाननकृत न्यायशास्त्रका परिभाषाग्रन्थ। न्यायशास्त्र पढ़नेके पहले भाषापरिच्छेद पढ़ना होता है। इसमें न्यायदर्शनके सभी विषय संक्षेपमें अत्यन्त सुन्दर भाषामें वर्णित हैं। पण्डिताग्रणी विश्वनाथने स्वयं ही भाषापरिच्छेदकी सिद्धान्तमुक्तावली नामक टीका रची। यह टीका अत्यन्त सुन्दर और अशेष पाण्डित्यकी परिचायक है। सिद्धान्तमुक्तावलीकी पुनः दिनकरी तथा रौद्री प्रकृति टीका है। सिद्धान्तमुक्तावलीमें वे महामहोपाध्याय विद्यानिवास भट्टाचार्यके पुत्र कह कर परिचित हुए हैं। उक्त ग्रंथका पहला श्लोक यह है:—

"नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूल चौराय।
तस्मै नमः कृष्णाय संसार महीरुहस्यवीजाय॥"

भाषापरिच्छेदमें १६६ श्लोक हैं। इस ग्रंथमें निम्नलिखित विषय आलोचित हुए हैं;—पदार्थोद्देशकथन, द्रव्यगुण और कर्मविभाग सामान्य और विशेष निरूपण, समवायसम्बन्धकथन, अभावविभाग, सप्तपदार्थका साधर्म्य तथा वैधर्म्यकथन, कारणलक्षण, कारणविभाग, अन्यथासिद्धिलक्षण और विभाग, द्रव्यका समवायिकारणत्व कथन, असमवायिकारणका गुणकर्ममात्रवृत्तित्वकथन, पृथिवीनिरूपण, पृथिवीविभाग, देह, इन्द्रिय और विषय कथन, जल, तेज और वायुनिरूपण, आकाश काल दिक् और आत्मनिरूपण, अनुभूति तथा स्मृतिभेदसे बुद्धिका द्वैविध्यकथन, अनुभूति विभाग, प्रत्यक्षादि प्रमाणकथन, प्रत्यक्षविभाग, द्रव्याध्यक्षमें त्वङ्मनःसंयोगके कारणत्वकथन, सामान्य लक्षणादि भेद द्वारा अलौकिक सन्निकर्षमें भेदत्रयनिरूपण। अनुमितिव्युत्पादन, परामर्श लक्षण, व्याप्ति और पक्षलक्षण, हेत्वाभासविभाग, उपमितिव्युत्पादन, शाब्दवोधप्रकार-परिचय, शाब्दवोधकारणकथन, असत्तिलक्षण, योग्यता, आकांक्षा और तात्पर्य निरूपण, मनोनिरूपण, मनका अणुत्वप्रमाण, गुणनिरूपण, मूर्त्त, अमूर्त्त और मूर्त्तामूर्त्त-गुणकथन, विशेष और सामान्य गुणवर्णन, विभुविशेषगुणका अतीन्द्रियत्वादिकथन, रूपके द्रव्यादिके अध्यक्षमें कारणत्व, रस गंध तथा स्पर्शनिरूपणपत्रादि, स्पर्शान्तर पाकजत्वकथन, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, परत्व और अपरत्व तथा बुद्धिनिरूपण, अप्रमाविभाग, संशय लक्षण, संशयकारणकथन, अप्रमाकारणकथन, प्रत्यक्षादिमें गुणपरिचय, प्रमानिरूपण, व्याप्तिग्रहका उपायकथन, परकीय व्याप्तिग्रह प्रतिवन्धार्थ उपाधिनिरूपण, उपाधिकादूषकता वोजकथन, अनुमानविभाग, सुख तथा दुःख निरूपण, इच्छा और द्वेषकथन, यत्न और निरूपण विभाग, गुरुत्वकथन, गुरुत्वनिरूपण और विभाग, स्नेहनिरूपण, संस्कार निरूपण और विभाग, अदृष्टनिरूपण, शब्दनिरूपण और विभाग। यही सब विषय अत्यन्त संक्षेप तथा सुन्दर भावमें वर्णित हैं।

न्याय और वैशेषिक दर्शन देखो।

दर्शनशास्त्र पढ़नेमें पापरिच्छेद और सिद्धान्तमुक्तावलीको पढ़ लेना आवश्यक है।

भाषापाद (सं० पु०) भाषायाः पादः। चतुष्पाद व्यवहारके अन्तर्गत प्रथम पाद। व्यवहार देखो।

भाषाबद्ध (सं० त्रि०) साधारण देश भाषामें बना हुआ।

भाषासम (सं० पु०) शब्दालङ्कारभेद, काव्यमें केवल ऐसे शब्दोंकी योजना जो कई भाषाओंमें समान रूपसे प्रयुक्त होते हैं।

भाषासमिति (सं० स्त्री०) जैनियोंके अनुसार एक प्रकारका आचार जिसके अन्तर्गत ऐसी बातचीत आती है। जिससे सब लोग प्रसन्न और सन्तुष्ट हों।

भाषिक (सं० त्रि०) वेदादि परिभाषानिर्वृत।

भाषिकस्वर (सं० पु० मन्त्रेतर वेदभागरूप ब्राह्मण।

भाषित (सं० क्ली०) भाष-भावे क्त। १ कथन, बातचीत। (त्रि०) २ कथित, कहा हुआ।

भाषितपुंस्क (सं० त्रि०) भाषितः पुमान् येन कप्। विशेषणत्व प्राप्त जो पुंलिङ्गादिमें अभिहित होता है।

भाषितृ (सं० त्रि०) भाष-तृच्। भाषक, कथक।

भाषिन् (सं० त्रि०) भाष-इनि। कथक, बोलनेवाला।

भाष्य (सं० क्ली०) भाष्यते विवृततया वर्ण्यते इति भाष ण्यत्। १ सूत्रोंकी की हुई व्याख्या या टीका, सूत्रग्रन्थोंका विस्तृत विवरण या व्याख्या। २ किसी गूढ़ बात या वाक्यको विस्तृत व्याख्या।

भाष्यकार (सं० पु०) भाष्यं चूर्णि करोतीति कृ-(कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इत्यण्। महाभाष्यकर्त्ता मुनि। पर्याय—गोनर्दीय, पतञ्जलि, चूर्णिकृत्। (त्रिका०) पाणिनिके भाष्यकार पतञ्जलिमुनि।

"अहञ्च भाष्यकारश्च कुशाग्रीयधियावुभौ।
नैव शब्दाम्बुधेः पारं किमन्ये जड़बुद्धयः।" (दुर्गसिंह)

भाष्यप्रणयकर्त्ता मात्र। जैसे—वेदान्त सूत्रके शङ्कर, रामानुज आदि, योगसूत्रके वेदव्यास, सांख्यसूत्रके विज्ञानभिक्षु, गौतमसूत्रके वात्स्यायन, कणादसूत्रके प्रशस्त पाद, मीमांसासूत्रके शवरस्वामी इत्यादि।

भाष्यकृत (सं० पु०) भाष्यं करोति कृ-क्विप् तुक् च। भाष्यकारक।

भास् (सं० स्त्री०) भासते इति (भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजु ग्रावस्तुवः क्विप्) १ प्रभा, किरण। २ इच्छा।

भास (सं० पु०) भास्यते इति भास-भावे घञ्। १ दीप्ति, प्रकाश। भासते दीप्यते इति भास्-कर्त्तरि अच्। २ कुक्कुट, मुर्गा। ३ गृध्र, गीध। ४ स्वनामख्यात पक्षिविशेष, शकुन्तपक्षी। ५ पर्वतभेद। ६ प्रभाकी कन्या। ७ कविभेद। ८ सह्याद्रि वर्णित एक राजा। ९ मयूख, किरण। १० इच्छा, चाह। ११ गोशाला। १२ स्वाद, लज्जत। १३ मिथ्या ज्ञान।

भासक (सं० त्रि०) १ प्रकाशक, द्योतक। २ मालविकाग्नि मित्र-धृत एक नाट्यकार।

भासकर्ण (सं० पु०) रावणकी सेनाका मुख्य नायक जिसे हनुमानने प्रमदावन उजाड़नेके समय मारा था।

भासता (सं० स्त्री०) भास पक्षीकी तरह स्वभावविशिष्ट, छल बल कौशलसे आहरण।

भासद (सं० क्ली०) भसदः कटिदेशस्येदं अण्। नितम्ब, चूतड़।

भासन (सं० क्ली०) दीपन, प्रकाशन।

भासना (हिं० क्रि०) १ प्रकाशित होना, चमकना। २ प्रतीत होना, मालूम होना। ३ देख पड़ना। ४ लिप्त होना, फंसना।

भासन्त (सं० पु०) भासते इति भास् (तॄभूवहिवसि भासीति। उण् ३।१२८) इति झच्। १ सूर्य। २ चंद्रमा। ३ भास पक्षी। ४ नक्षत्र। ५ सुन्दराकार।

भासमन्त (सं० त्रि०) चमकदार, ज्योतिपूर्ण।

भासमान (सं० त्रि०) १ भासता हुआ, दिखाई देता हुआ।

भासमान (हिं० पु०) सूर्य।

भासर्वज्ञ—एक विख्यात नैयायिक। इन्होंने न्यायसार और न्यायभूषण नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

भासस् (सं० क्ली०) भास-आसस्। दीप्ति।

भासाकेतु (सं० पु०) भासा दीप्तिस्तस्याः केतुः। दीप्तिकारक, उजेला करनेवाला।

भासापुर (सं० क्ली०) वृहत्संहितोक्त पुरभेद। (वृहत्सं० १६।११)

भासिक (सं० पु०) १ दिखाई पड़नेवाला। २ लक्षित होनेवाला, मालूम होनेवाला।

भासित (सं० त्रि०) तेजोमय, चमकीला।

भासु (सं० पु०) सूर्य।

भासुर (सं० पु०) भासते इति (भञ्ज भासमिदो घुरच्। पां ३।२।१६१) इति घुरच्। १ कुष्ठौषध, कोढ़की दवा। (पु०) २ स्फटिक, बिल्लौर। ३ वीर, बहादुर। (त्रि०) ४ दीप्तियुक्त, चमकीला।

भासुरपुष्पा (सं० स्त्री०) भासुराणि पुष्पाण्यस्याः; टाप्। वृश्चिकालि।

भासुविहार—पौण्ड्रवर्द्धनके अन्तर्गत एक बौद्धसङ्घाराम। नागोर नदीके पूर्वी किनारे विहारग्राममें आज भी इसका ध्वंस-स्तूप देखा जाता है। चीन-परिव्राजक यूएन-चुवंग यहांके ७ सौ महायान-सम्प्रदायी बौद्धयतिका शास्त्राध्ययन-विषय उल्लेख कर गये हैं।

भासुरानन्दनाथ—भास्कररायका नामान्तर।

भासुरि—सह्याद्रिवर्णित एक राजा।

भासोक—एक प्राचीन राजा।

भास्कर (सं० क्ली०) भाः करोतीति कृ (दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादीनि। पा ३।२।२१) इति ट। १ सुवर्ण, सोना। (पु०) २ सूर्य। ३ अग्नि। ४ वीर, बहादुर। ५ अर्क वृक्ष, मदार। ६ सिद्धान्तशिरोमणि प्रभृति ज्योतिर्ग्रन्थके कर्त्ता। ७ महादेव। ८ युक्तप्रदेशवासी जातिविशेष। पत्थरके ऊपर चित्र और बेल बूटे आदि बनाना इनका जातीय व्यवसाय है। ये लोग जिस प्रणाली द्वारा पत्थरों पर चित्र अङ्कित करते हैं उसे भास्करविद्या वा स्थापत्य कहते हैं। अजण्टा, इलोरा, गाढ़पुरी पुरी, सांची आदि स्थानोंके मन्दिरादि इनके कृतित्वका अपूर्व निदर्शन है। ६ महाराष्ट्र ब्राह्मणकी एक प्रकारकी पदवी।

भास्कर—१ नागार्जुनके गुरु। २ अभिधानचिन्तामणिधृत एक ग्रन्थकार। ३ प्रभासतीर्थ निवासी एक कवि। भोज प्रबन्धमें इनका नामोल्लेख है। ४ एक शैव दार्शनिक। आप भेदाभेदवादी थे। ५ उन्मत्तराघवनाटकके प्रणेता। ६ काव्यप्रकाश टीका (साहित्यदीपिका)-के प्रणेता। ७ गायत्रीप्रकरणके रचयिता। ८ नानार्थरत्नमालाप्रणयनके कर्त्ता। ६ प्रायश्चित्तप्रदीपक, प्रायश्चित्तविधि, प्रायश्चित्तशतद्वयी और प्रायश्चित्त समुच्चय नामक ग्रन्थके प्रणेता। १० मधुराम्लकाव्यके रचयिता। ११ शुद्धिप्रकाशकके प्रणेता। १२ भाष्याग्नि भट्टके पुत्र। १३ स्पन्दसूत्रवार्त्तिकके रचयिता, दिवाकरके पुत्र और रामकण्ठभट्टके छात्र। १४ यशोवंत भास्करके प्रणेता। १५ सह्याद्रि-वर्णित एक राजा। १६ चंद्रवंशीय एक राजा, आसामराज वल्लभदेवके पूर्वपुरुष। १७ एक ज्योतिर्विद्, कवीश्वर महेश्वराचार्यके पुत्र। आप शाण्डिल्यगोत्रीय कविचक्रवर्ती त्रि-विक्रमके वंशधर थे।

भास्करआचार्य—१ ब्रह्मसूत्रभाष्य और ब्रह्मसूत्रभाष्य सागरके प्रणेता। आप एक दार्शनिक शैव और भेदाभेदवादी थे। संक्षेपशङ्करजय ग्रंथमें इनका उल्लेख है। २ वाक्यपञ्चाध्यायिके प्रणयनकर्त्ता। आप एक विख्यात ज्योतिषी थे। आपके पिताका नाम महेश्वर था। ११९५ ई०में आपकी मृत्यु हुई। करणकुतूहल, ग्रहागम कुतूहल, ब्रह्मतुल्य करण कुतूहल, ब्रह्मतुल्य सिद्धान्तकरणकेशरी, गणितपदी, ग्रहगणित, ग्रहलाघव, ज्ञानभास्कर, रेखागणित, लिङ्गशास्त्र, विवाहपटल, सटोकासिद्धांत शिरोमणि और वासना भाष्य, श्रुतगणित सूर्यसिद्धांतव्याख्या और भास्कर दीक्षितीय नामक ग्रंथके प्रणेता। इन्होंने ११५१ ई०में सिद्धांत शिरोमणि और १८४८ ई०में करणकुतूहलकी रचना शेष की। भास्कराचार्य देखो।

भास्करकण्ठ—चित्तांधबोधटीकाके रचयिता।

भास्करतीर्थ—शै तीर्थभेद ((शिव पु०)

भास्करदीक्षित—१ तप्तमुद्राविद्रावणके प्रणेता। २ रत्नतूलिका सिद्धांतसिद्धाञ्जनटीकाके रचयिता।

भास्करदेव—एक प्राचीन कवि।

भास्करदेव—कोण्डविडुके गजपतिराज विश्वम्भर देवके पुत्र।

भास्करद्युति (सं० पु०) भास्करे द्युतिरस्य। १ विष्णु। (स्त्री०) २ सूर्यकी द्युति, सूर्यकी किरण।

भास्करनृसिंह (सं० पु०) वाराणसीवासो एक भाष्यकार। इन्होंने व्रजलालके अनुरोध करने पर १७८८ ई०में वात्स्यायन कृत कामसूत्रका भाष्य लिखा है। ये सर्वेश्वर शास्त्रीय छात्र थे।

भास्करपन्त—एक महाराष्ट्रसेनापति। ये रघुजी भोंसलेके दीवान थे। बङ्गालमें १०४२ ई०को मुर्शिदकुलकी

पराजयके बाद उनके मन्त्री मीर हबीवने भास्करपन्तको कटक पर आक्रमण करनेके लिए बुलाया। किन्तु अलीवर्दी खाँकी सेनाके एकाएक पहुंच जानेसे उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका। मौका पा कर भास्करने विहार पर आक्रमण किया और वहींसे मुर्शिदाबाद पर चढ़ाई करनेकी इच्छासे पांचेट राज्य तक अग्रसर हुए। यहां आ कर वर्गियोंने लूटपाट मचाना शुरू कर दिया। इस पर अलीवर्दी खाँ वर्गियोंके अत्याचारसे राज्यरक्षाके लिए आगे बढ़े। दोनों दलमें घोरतर युद्ध आरम्भ हुआ। नवाब सेनापति मीरहबीव महाराष्ट्रके हाथ बन्दी हुए। पहलेसे ही वे बङ्गेश्वरके ऊपर क्रुद्ध थे। इस बार उन्होंने महाराष्ट्रीय पक्षका अवलम्बन कर मुर्शिदाबाद पर आक्रमण तथा जगत्‌शेठ आलमचांदका यथासर्वस्व लूट लिया। उसी समय मेदनीपुरसे ले कर कटोया तक प्रायः सभी स्थान महाराष्ट्रोंके हाथ लगे। गङ्गा नदीमें बाढ़ आ जानेके कारण वे दलवलके साथ पार हो कर मुर्शिदाबाद नहीं पहुंच सके। इधर अलीवर्दी अपना दलवल इकट्ठा करने लगे। नदी पार कर नवावने महाराष्ट्रोंको बङ्गालसे भगा दिया। उसी समय कर्णाटसे लौट कर रघुजी भौंसले दलवलके साथ उनसे मिले। उनका दमन करनेके लिए सम्राट् महम्मद शाहने पेशवा बालाजी बाजीराव और अयोध्यापति सफदर जङ्गको भेजा। १७४३ ई०में कटोया और वर्द्धमान तक पहुंच कर अन्तमें रघुजी भौंसले पराजित हुए और भास्करपन्तने दलवलके साथ उड़ीसाकी ओर भाग कर जान बचाई। रघुजीने बङ्गाल लूटनेकी इच्छासे १७४४ ई०में पुनः भास्करपन्तको भेजा। इस समय नवाब अलीवर्दी खांने सन्धिप्रस्तावका बहाना कर भास्कर पण्डितको निमन्त्रित किया। नवावकी सेना हथियारके साथ छिप रही। भास्कर पण्डित दलवलके साथ मुसलमान शिविरमें पहुंचे और नवावके आदेशानुसार एक अनुचरसे मारे गए।

भास्करप्रिय (सं० पु०) भास्करस्य प्रियः ६ तत्। पद्मरागमणि।

भास्करभट्ट (सं० पु०) १ केशवमिश्रकृत तर्कभाषाके तर्कपरिभाषा दर्पण नामक टीकाके रचयिता। २ वृत्यचभास्करके प्रणेता। ३ भोजराजके सभापण्डित। शाण्डिल्यगोत्रीय कविचक्रवर्त्ती त्रिविक्रमके पुत्र। अपने प्रतिपालकसे इन्होंने विद्यापतिकी आख्या पाई थी।

भास्करभट्टपण्डित—दत्तसिद्धान्तमञ्जरीके प्रणेता।

भास्करभट्टमिश्र त्रिकाण्डमण्डन—एक प्रसिद्ध सूत्रनिबंधकार, कुमार स्वामीके पुत्र। इन्होंने ज्ञानयज्ञ नामक तैत्तिरीय संहिताका भाष्य लिखा है। इस भाष्यमें इन्होंने भवस्वामीका नामोल्लेख किया है। एतद्भिन्न आप स्तम्बसूत्र, ध्वनितार्थकारिका, बौधायनसहस्रभोजनटीका, सूत्रनिबन्ध, यजुर्वेदाष्टकभाष्य, आरण्यकभाष्य, ऋग्वेदभाष्य, तैत्तिरीय ब्राह्मणकाठकभाष्य (काठकत्रयभाष्य), तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य और भट्ट भास्करीय नामक वेदभाष्य आदि ग्रंथ इनके बनाये हुए मिलते हैं।

भास्करभूपति—विजयनगर-राजवंशके एक राजा।

भास्करमिश्र (सं० पु०) पद्मनाभकृत सिद्धसारस्वतदीपिकोद्धृत एक ग्रंथकार।

भास्कररविवर्मा—त्रिवाङ्कोड़के एक हिन्दू राजा। इन्होंने यहूदी ईसायोंको कोचिनमें वसनेकी अनुमति दी थी। उनका दिया हुआ अनुज्ञापत्र आज भी गिर्जाध्यक्षके पास मौजूद है। वहांके यहूदियोंका कहना है, कि वह आज्ञापत्र ७७६ ई०में दिया गया था। किन्तु उसकी तामिल वर्णमाला देखनेसे वह लिपि तत्परवर्त्तीकालकी समझी जाती है।

भास्कर रस (सं० पु०) रसौषध विशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—विष, पारद, गन्धक, त्रिकटु, सोहागा और जीरा, प्रत्येक एक एक भाग, लोहा, शङ्खभस्म, अभ्र, कौड़ीको भस्म प्रत्येक दो दो भाग, इन सबके समान लवङ्गचूर्ण। इन्हें बिजौरा नीबूके रसमें ७ दिन भावना दे कर दो रत्तीकी गोली बनावे। इस गोलीको प्रतिदिन पानके साथ चवा कर खानेसे अग्निकी तेजी होती है तथा शूलविसूचिका और अग्निमान्द्य रोगमें प्रयुक्त होनेसे विशेष उपकार होता है।

(भैषज्य रत्ना० अग्नि मान्द्याधि०)

भास्करराव—एक महाराष्ट्र प्रतिनिधि, रघुनाथरावके पुत्र।

भास्करराय—भाट्टदीपिकाव्याख्या मत्वर्थलक्षणविचार और वाद कौतूहलके प्रणेता।

भास्कररायदीक्षित—एक विख्यात उपनिषद् भाष्यकार। इनके पिताका नाम गम्भीरराय दीक्षित था। इन्होंने नृसिंह तथा शिवदत्तसे शिक्षा प्राप्त की थी। ये १६२६ ई०में वाराणसीक्षेत्रमें विद्यमान थे। दीक्षा ग्रहणके बाद वे भास्करानन्द नाथ वा भासुरानंद नाथ नामसे परिचित हुए थे। इन्होंने निम्नलिखित पुस्तकें रचीं। यथा—काठकोपनिषद्भाष्य, केनोपनिषद्भाष्य, जाबालोपनिषद्भाष्य, त्रिपुरोपनिषद्भाष्य, महोपनिषद्भाष्य, मण्डुकोपनिषद्भाष्य, अभिनववृत्तरत्नाकर, अवधूतगीताव्याख्या, अष्टावक्रगीताव्याख्या, आत्मबोधव्याख्या, ईश्वरगीताव्याख्या, कन्यका पुराण, गुप्तवती नामक दुर्गामाहात्म्यटीका, चण्डीस्तवमन्त्रपरिच्छेद, त्रिपुरामहिमटीका, स्तवमंत्रपरिच्छेद, त्रिपुरामहिमटीका, नवरत्नमाला, भाष्यराज वेदाङ्गच्छन्दः सूत्रार्थप्रकाश, मंत्रविभाग, ललिताचनविधि, वारिवास्यरहस्य, वारिवस्यारहस्यप्रकाश, वृत्तचन्द्रोदय, शब्द कौस्तुभभूषण, श्रीविद्यार्चनचन्द्रिका, सिद्धान्तकौमुदी विलास, सेतुबन्ध नामक वामकेश्वरतन्त्रोक्त नित्यषोड़शीकी टीका, सौभाग्यभास्कर नामक ललितासहस्रनामटीका प्रभृति।

भास्कररिपुघंघल—सिंहपुर राजवंशके एक राजा, राजा अचलवर्मा समर घंघलके पुत्र। ये लोग यदुवंशीय थे। कपिलवर्द्धन राजकन्या जयावलीके साथ इनका विवाह हुआ था।

भास्करवंश (सं० क्ली०) सूर्यवंश।

भास्करलवण (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सामुद्रलवण १६ तोला, सौवर्चल १० तोला, विट्लवण, सैन्धव, धनिया, पीपर, पिपरामूल, तेजपत्ता, कृष्णजीरा, तालीशपत्र, नागकेशर, चई, अम्लवेतस, प्रत्येक चार चार तोला, मिर्च, जीरा और सोंठ, प्रत्येक दो दो तोला, दाड़िमका बीजचूर्ण ८ तोला, दारचीनी और इलायची ७ तोला इन सब चूर्णको एकत्र मिला कर इसे प्रस्तुत करे। प्रतिदिन आध तोला लवण मट्ठे और दहीके पानीके साथ खानेसे वातश्लैष्मिक रोग, गुल्म, प्लीहा, उदर, क्षय, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, भगन्दर, शूल, कास, कृमि, मन्दाग्नि आदि रोग जाते रहते है। यह लवण अग्नि दीप्तकारक और पाचक है। मनुष्योंकी भलाईके लिये भगवान् भास्करने इस औषधको तैयार किया है। इस औषधके खाते ही निश्चय है, कि सभी प्रकारका अजीर्ण नष्ट हो जायगा। (भावप्रकाश अग्नि मान्द्य)

भास्कर वर्मन—भगदत्तवंशीय गौड़के एक राजा, नारायण देवके वंशधर। श्रीहर्षने इन पर आक्रमण किया था। चूएनचुवंगके वर्णनसे मालूम होता है कि, कामरूपमें भी ये राज्यशासन करते थे। प्रागज्योतिष देखो।

भास्करविद्या (सं० स्त्री०) कारुकर्म नैपुण्य, पत्थरपर चित्र और बेलबूटे आदि बनानेकी कला। स्थापत्य देखो।

भास्करव्रत (सं० क्ली०) भास्करोद्देशकं व्रतं। सूर्यके उद्देशसे किये जाने का एक व्रत। ब्रह्मपुराणमें इस व्रत का प्रसङ्ग है।

भास्करशर्मा—आयाजि भट्टके पुत्र। आप वृत्तरत्नाकर सेतु नामक वृत्तरत्नाकरकी एक टीका लिख गये हैं।

भास्कर सप्तमी (सं० स्त्री०) व्रतविशेष।

भास्करशास्त्री—तत्त्वबोधनकाव्यके प्रणेता।

भास्करशिष्य—होराशास्त्रार्णवविसारके रचयिता। आप सम्भवतः विख्यात ज्योतिर्विद् भास्कराचार्यके शिष्य थे।

भास्करसोम—एक प्राचीन कवि।

भास्कराचार्य—भारतवर्षके एक सर्वप्रधान ज्योतिर्विद्। पाटनके भवानीमन्दिरसे आविष्कृत शिलालिपिमें इस प्रकार लिखा है—

शाण्डिल्यवंशमें कविचक्रवर्त्ती त्रिविक्रमने जन्मग्रहण किया था। इनके पुत्रका नाम था भास्करभट्ट। उन्होंने भोजराजसे 'विद्यापति' को उपाधि पाई थी। भास्करके पुत्र गोविन्द सर्वज्ञ, गोविन्दके मनोरथ, मनोरथके पुत्र कविश्वर महेश्वराचार्य थे। इन्हीं महेश्वराचार्यके पुत्रका नाम था भास्कराचार्य। ये कविवृन्दके वन्दनीय, कृष्णभक्त, सर्वज्ञ विद्यानिपुण और सत्कीर्त्ति तथा पुण्यवान् थे। भास्करके पुत्र वेदार्थवित्, पण्डितप्रधान, तार्किक चक्रवर्त्ती, ग्रहयागविशारद लक्ष्मीधर थे। सर्वशास्त्रनिपुण जान कर राजा जैत्रपालने इन्हें अपने यहां ले

गए थे। उनके पुत्र राजा सिंघणचक्रवर्त्तीके दैवज्ञवर चङ्गदेव थे। इन्हीं चङ्गदेवने भास्कराचार्यकृत शास्त्रसमूहका प्रचार करनेके लिए मठ प्रस्तुत किया था। भास्कर-रचित सिद्धान्तशिरोमणिप्रमुख ग्रंथावली और उनके वंशधरोंके रचित अन्यान्य ग्रंथ इस मठमें नियमितरूपसे पढ़े जाते थे।'

उक्त शिलालिपिसे जाना जाता है, कि भास्कराचार्यके पिताका नाम था महेश्वराचार्य। इन्होंने जिस वंशमें जन्म लिया था और इनसे जो वंश निकला था, उसमें अनेक विख्यात पण्डित प्रवर जन्मग्रहण कर गये हैं। भास्कराचार्यने स्वकृत गोलाध्यायके अन्तमें भी इस प्रकार परिचय दिया है;—

'आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने।
नानासज्जनधाम्नि विज्जड़विड़े शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः॥
श्रौतस्मार्त्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः।
साधूनाम वधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूड़ामणिः॥६१
तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलप्राप्त प्रसादः सुधीः
मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदं प्रस्फुटम्।
एतद्व्यक्त सदुक्तियुक्तिवहुलं हेलावगम्यं विदां
सिद्धान्तगूथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः (प्रश्नाध्याय)

भास्कराचार्यकी निजोक्तिसे जाना जाता है, कि सह्याद्रिके पाददेशमें अवस्थित विज्जड़विड़ नामक ग्राममें दैवज्ञ चूड़ामणि महेश्वरके औरससे भास्कराचार्यने जन्म ग्रहण किया था।

सिद्धान्तशिरोमणिके टीकाकार मुनीश्वरके मतानुसार,—

'महाराष्ट्र देशके अन्तर्गत विदर्भके निकट गोदावरीसे थोड़ी दूर पर विड़ नामक ग्राम है। वहांसे पांच कोस दूर लीलावतीके मङ्गलाचरणमें 'गणेशाय नमो नीलकमलामलकान्तये' इत्यादि वर्णित उन गणेशकी कृष्णवर्ण प्रतिमा आज भी विद्यमान है। अह्मदनगरसे ४० कोस पूर्व भास्करकी जन्मभूमि उक्त विड़ ग्राममें अवस्थित है और वहांसे ६।७ कोस दूर लिम्ब नामक ग्राममें कृष्णप्रस्तरनिर्मित गणेशमूर्त्ति अब भी नजर आती है।

भास्करकी जन्मभूमि विड़ होने पर भी उनके वंशधरगण पाटनमें जा बसे थे। पाटनके निकटवर्त्ती वहालग्राममें भी भास्करके भ्रातृवंशीय गणक अनन्तदेवके आदेशानुसार उत्कीर्ण शिलालिपि देखनेमें आती है।

भास्कराचार्यने अपने सिद्धान्तशिरोमणिके अन्तमें लिखा है,—"रसगुणपूर्णमही (१०३६) सम शकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः। रसगुण (३६) वर्षेण मया सिद्धांतशिरोमणी रचितः॥" ५८

उक्त श्लोकानुसार १०३६ शकाब्दमें अर्थात् १११४ ई०को भास्कराचार्यने जन्म लिया और ३६ वर्षकी उम्र (११५० ई०)-में सिद्धांतशिरोमणि नामक पुस्तक रची। इनके 'करण कुतूहल' का रचनाकाल निर्देशस्थलमें भी १०७५ शकाब्द लिखा है।

इन्होंने सिद्धांतशिरोमणि, करणकुतूहल और वासनाभाष्यकी रचना की। इसके अलावा भास्कर-व्यवहार तथा भास्करविवाहपटल नामक दो छोटे ज्योतिग्रंथ इन्हींके बनाये हुए हैं। भास्कर देखो।

उक्त ग्रंथोंके मध्य सिद्धांतशिरोमणि सर्वप्रधान है। यह चार खण्डोंमें विभक्त है,—१ला लीलावती या पाटीगणित (Arithmatic); २रा वीजगणित (Algebra) ३रा ग्रहगणिताध्याय (Astronomy) और ४था गोलाध्याय। इन्हीं चार खण्डोंमें भास्कचार्यका यथेष्ट कृतित्व प्रकाशित हुआ है। यद्यपि उन्होंने मध्यमग्रहको बीजसंस्कार 'राजमृगराङ्क' से और मध्यमाधिकारका ग्रहभागणादि मान और स्पष्टाधिकारका परिध्यंशादि सब प्रकारका परिमाण ब्रह्मसिद्धांतसे ग्रहण किया है; यहां तक कि अयनगति भी पूर्वाचार्योंके मतानुसार ही प्रदर्शित हुआ है, तथापि अनेक स्थल पर उन्होंने ऐसी गभीर गवेषणाको परिचय दिया है, कि उनकी एकमात्र सिद्धांत शिरोमणिकी आलोचना करनेसे ही भारतीय ज्योतिष शास्त्रका सम्यक् तत्त्व जाना जा सकता है। त्रिप्रश्नाधिकारमें इन्होंने नाना प्रकारकी अभिनव साधनप्रणाली और अपूर्व बुद्धिकौशल दिखलाया है। शंकुके विषयमें इष्टदिक्छायासाधन और उदयांतर संस्कारका भास्कराचार्यने ही पहले पहल आविष्कार किया है। पातसाधन तथा ग्रहोंके युद्ध-सम्बन्धमें भी इन्होंने पूर्वाचार्योंकी बहुत कुछ गलती दिखाई थी। जिस माध्याकर्षणतत्त्व (Laws

of gravitation)-का आविष्कार कर सर आइजक न्यूटन संसारमें प्रसिद्ध हो गये हैं, उन न्यूटनके जन्मग्रहणके लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व भास्कराचार्य अपने गोलाध्यायमें माध्याकर्षणतत्त्व प्रकाशित कर गए हैं। यह कम गौरवकी बात नहीं है। इनके करणकुतूहल ग्रन्थके आधार पर ग्रहसाधनके लिए 'जगच्चन्द्रसारणी' नामक एक प्रकाण्ड सारणी प्रस्तुत हुई है। भास्कराचार्यरचित ग्रंथसमूहकी बहुत सी टीका मिलती हैं। यथा—

१ लीलावती टीका— नृसिंहपुत्र रामकृष्णकृत गणितामृतलहरी, नृसिंहनन्दन नारायणकृत पाटीगणित कौमुदी, गोवर्द्धनरचित गणितामृतसागरी, गणेशदैवज्ञकृत बुद्धिविलासिनी, धनेश्वर दैवज्ञरचित लीलाभूषण, महीदास और मुनीश्वरकृत लीलावतीविवृति, रामकृष्ण दैवज्ञ कर्त्तृक मनोरञ्जना, रामचन्द्र-विरचित लीलावती भूषण, सूर्यदास दैवज्ञकृत गणितामृतकूपिका, विश्वेश्वर और चन्द्रशेखर पटनायककी रचित यथाक्रम लीलावत्युदाहरण प्रभृति टीका उल्लेखयोग्य है। इसके अलावा दामोदर, देवीसहाय, परशुराम, रामदत्त, लक्ष्मीनाथ, वृन्दावन, श्रीधर प्रभृतिकी टीका भी पाई जाती हैं।

२ वीजगणितटीका—ज्योतिषीकृष्णरचित वीजनवांकुर, रामकृष्ण दैवज्ञका वीजप्रबोध, परमसुखरचित वीजवृत्तिकल्पलता।

३ ग्रहगणिताध्याय और ४ गोलाध्यायकी टीका। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ तथा उनके प्रपौत्र द्वारा रचित शिरोमणिप्रकाश उल्लेखयोग्य है। इसके सिवा नृसिंह, मुनीश्वर और गोपीनाथकी रचित टीका मिलती है।

सूर्यदास 'सूर्यप्रकाश' नामक और रङ्गनाथ 'मितभाषिणी' नामक समग्र सिद्धान्तशिरोमणिकी टीका रच गए हैं।

भास्करानन्दस्वामी—काशीके एक साधु और योगी। वेदान्त शास्त्रमें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। इस सम्बन्धमें इनके बनाये हुए कई ग्रन्थ भी मिलते हैं। तैलङ्ग स्वामीके स्वर्गवासी होने पर इन्होंने काशीक्षेत्रमें प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

भास्करावर्त्त (सं० पु०) सुश्रुतोक्त शिरोरोगभेद। इसका लक्षण—सूर्योदयकालमें चक्षु और भ्रूदेश पर मन्द मन्द वेदना आरम्भ हो कर सूर्यकी प्रखरताके साथ साथ बढ़ती है और सूर्यके अस्त होने पर इसका भी ह्रास होता है। इसीको भास्करावर्त्त वा सूर्यावर्त्त रोग कहते हैं। यह त्रिदोषज रोग है। कभी शैत्य और कभी उष्ण क्रियासे इसका प्रशमन होता है। (सुश्रुत शिरोरोगाधि०)

भास्करामृताभ्र (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अड़ूसकी छाल, मोथा, श्वेत पुनर्णवा, विजबंद और शतमूली प्रत्येकके १ पल परिमित रसमें मार्जित करके सहस्र पुटित अभ्रको शतमूलीके रसमें भावना दे कर गोली बनावे। इसकी मात्रा और अनुपान रोगीके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा। इस औषधका सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल, अम्लपित्त, कमला और रक्तपित्त रोग जाता रहता है।

(भैषज्यरत्ना० अम्लपित्ताधि०)

भास्करि (सं० पु०) भास्करस्यापत्यं इञ्। १ वैवस्त मनु। २ कर्ण। ३ मुनिभेद। (भारत शान्तिप० ४७ अ०)

भास्करीय (सं० त्रि०) भास्कर सम्बन्धीय।

भास्करेष्टा (सं० स्त्री०) भास्करस्य इष्टा। आदित्यभक्ता लता।

भास्त्रायण (सं० क्ली०) भस्त्रा-फक् (पा ४।२।८०) भस्त्रा सम्बन्धीय।

भास्मन (सं० त्रि०) भस्मनो विकारः अण् मनन्तत्वात् न टिलोपः। भस्मविकार।

भास्मायन (सं० पु०) भस्मनो गोत्रापत्यं फञ्। भस्म ऋषिका गोत्रापत्य।

भास्वत् (सं० पु०) भासः भन्त्यस्येति भास् (तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्। पा ५।२।९४) इति मतुप् मस्य व। १ सूर्य। २ अर्क वृक्ष, मदारका पेड़। ३ दीप्ति, चमक। ४ वीर, बहादुर। (त्रि०) ५ दीप्तिविशिष्ट, चमकदार। ६ प्रकाशक, चमकनेवाला।

भास्वत्कविरत्न—सरोजकलिकाके प्रणेता।

भास्वती (सं० स्त्री०) भास्वत्-स्त्रियां ङीप्। १ नदीभेद। २ ऊधस्, गायका स्तन। ३ दीप्तिमती। ४ ज्योतिर्ग्रंथविशेष। इस ग्रंथके मतसे चन्द्र और सूर्यग्रहणकी गणना होती है।

भास्वर (सं० पु०) भासते इति भास् (स्थेशभासपिसकसो

वरच्। पा ३।२।१७५) वरच्। १ दिन । २ सूर्य । ३ सूर्यका अनुचरविशेष । इसे भगवान् सूर्यने तारकासुर-के वधके समय स्कन्दको दिया था। (स्त्री०) ३ कुष्ठौ-षध, कोढ़की दवा। (त्रि०) ५ दीप्तियुक्त, चमकीला।

भिःखराज (सं० पु०) काश्मीराधिपति कुलराजका भतीजा। (राजतरङ्गिणी ८।२३१६)

भिंग (हिं० पु०) १ भृङ्गी नामका कीड़ा। इसका दूसरा नाम बिलनी भी है। २ भौंरा। (स्त्री०) ३ बाधा।

भिंगराज (हिं० पु०) भृङ्गराज देखो।

भिंगाना (हिं० क्रि०) भिगोना देखो।

भिंगोरा (हिं० पु०) १ भृङ्गराज, भँगरा। २ भृङ्गराज पक्षी।

भिंगोरी (हिं० स्त्री०) भृङ्गराज नामक पक्षी।

भिंजाना (हिं० क्रि०) भिगोना देखो।

भिंडा (हिं० पु०) बड़ी सड़क।

भिंडि (हिं० पु०) ढेलवांस, गोफना।

भिंडिपाल (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा डंडा जो प्राचीन कालमें फेंक कर मारा जाता था।

भिंडी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारके पौधेकी फली। इसकी तरकारी बनती है। फली चार अंगुलसे ले कर बालिश्त भर तक लंबी होती है। इसके पौधे चैतसे जेठ तक बोए जाते हैं। जब पौधे ६-७ अंगुलके हो जाते है, तब वे दूसरे स्थानमें रोपे जाते हैं। इसको फसलको खाद और निराईकी बहुत आवश्यकता होती है। इसके रेशोंसे रस्से आदि बनाये जाते हैं। एक प्रकारका कागज भी इससे बनता है। वैद्यकमें इसे उष्ण, ग्राही और रुचि-कारक माना है। इसे कहीं कहीं रामतरोई भी कहते हैं।

भिंदियाल (हिं० पु०) भिंडिपाल देखो।

भिक्षण (सं० क्ली०) भिक्षाकरण, भिक्षा मांगनेकी क्रिया।

भिक्षा (सं० स्त्री०) भिक्ष् याचनादौ। (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१२०) इति अ, ततष्टाप्। १ याचन, मांगना। पर्याय—याच्ञ, अर्चना, अर्दना, प्रार्थना।

"वाणिज्ये वसते लक्ष्मीस्तदर्द्धं कृषिकर्मणि।

तदर्द्धं राजसेवायां भिक्षा नैव च नैव च॥" (चाणक्य)

२ सेवा। ३ भृति। ४ भिक्षित वस्तु, मांगी हुई चीज। शातातपने 'ग्राससमात्रा भवेद् भिक्षा' ऐसा निर्देश किया है।

मनुमें लिखा है, :—

"कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत्।

भिक्षाञ्च भिक्षवे दद्या द्विधिवद् ब्रह्मचारिणे।

गृहीको चाहिए, कि बलिकर्म समाप्त करनेके बाद सबसे पहले अतिथिको भोजन करावें और भिक्षुक या ब्रह्मचारीको यथाविधि भिक्षा दें। उनका यह भिक्षा-दान बड़ा ही पुण्यजनक होता है।

ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके उपनयनके बाद गुरुगृहमें अवस्थान करनेके पहले भिक्षा मांगनेसे जो कुछ मिलता है, वही गुरुको समर्पण कर उनके गृहमें रहना पड़ता है। मनुमें लिखा है, कि ब्रह्मचारियोंको सूर्यकी उपासनाके बाद तीन बार अग्निप्रदक्षिण कर यथाविधि भिक्षाचरण करना चाहिए।

उपनीत ब्राह्मण-ब्रह्मचारीको पहले 'भवत्' शब्द कह कर भिक्षा मांगनी चाहिए। अर्थात् 'भवति ! भिक्षां देहि।' पुरुष होनेसे 'भवन् भिक्षां देहि' ऐसा कहना चाहिए। क्षत्रियको भवत् शब्द बीचमें 'भिक्षां भवति देहि।' वैश्यको भवत् शब्द अन्तमें 'भिक्षा देहि भवति' ऐसा कह कर भिक्षा मांगनी चाहिए।

माता, भगिनी, मातृष्व (मौसी) या जो स्त्री ब्रह्म-चारीको विमुख न करें, उन्हींसे ब्रह्मचारी पहले भिक्षा मांगे। प्रतिदिन प्रयोजनानुरूप भिक्षा संग्रह कर अकपट मनसे गुरुको समर्पणपूर्वक उनके गृहमें वास करना चाहिये (मनु २ अ०)

याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि ब्रह्मचारीको गुरु-गृहमें अपनी जीवनयात्रा निर्वाहके लिए विशुद्ध ब्राह्म-णालयमें भिक्षा मांगनी चाहिए।

(याज्ञवल्क्य स० १।२८-३०)

स्वजाति अथवा सभी वर्णोंसे ब्रह्मचारी भिक्षा मांग सकते हैं, किन्तु पतित, वेदयज्ञादि-विहीन, गुरुकुल ज्ञातिकुल तथा बन्धु इन सबोंसे कदापि भिक्षा न माँगे। यदि किसीसे भी भिक्षा न मिले, तो इन सबोंसे भिक्षा मांग सकते हैं। ऐसा करनेमें कोई दोष नहीं है। किन्तु पूर्वोक्तके निकट यदि भिक्षा मिलनेकी सम्भावना रहे और उनके निकट न जा कर इन्हींसे भिक्षा मांगी जाय, तो प्रत्यवायभागी होना पड़ता है।

भिक्षादान अवश्यकर्त्तव्य है। जिनके जैसा विभव हैं, उन्हें उसीके अनुसार भिक्षा देनी चाहिए। ग्रास भर भिक्षा देना उचित है।

"भोजनं हन्तकारं वा अग्रं भिक्षामथापि वा।
अदत्त्वा नैव भोक्तव्यं यथाविभवमात्मनः॥
ग्रासप्रदानाद्भिक्षा स्यात् अग्रं ग्रासचतुष्टयम्।
अग्राच्चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः॥"
(आह्निकतत्त्व)

ब्रह्मचारीके सिवा जो कोई व्यक्ति भिक्षुकरूपमें उपस्थित हो, उन्हें भिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

व्याधिग्रस्त, अन्नहीन, कुटुम्बविताड़ित तथा पथ-क्लान्त इन सबोंको भिक्षाचर्या करनी चाहिए।

"व्याधितस्यान्नहीनस्य कुटुम्बात् प्रच्युतस्य च।
अध्वानं वा प्रपन्नस्य भिक्षाचर्यं विधीयते॥" (विष्णुपु०)

गृहीके घर जिस दिन अतिथि या भिक्षुक न आवें; उस दिन भिक्षित वस्तु गायको खिला दे अथवा अग्निमें फेंक दे।

"भिक्षुकाभावे चाग्रं गोभ्यो दद्यात् अग्नौ वा क्षिपेत्॥"
(विष्णुसंहिता)

भिक्षाक (सं० पु०) भिक्षते इति भिक्ष् (जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन्। पा ३।२।१५५) इति षाकन्। भिक्षुक, भीख मांगनेवाला।

भिक्षाकरगुप्त—रायमुकुटधृत एक ग्रंथकार।

भिक्षाकरण (सं० क्ली०) भिक्षायाः करणं। भिक्षाकार्य, भीख मांगना।

भिक्षाकी (सं० स्त्री०) भिक्षाक षित्वात् ङीष्। भिक्षुकी।

भिक्षाचर (सं० पु० स्त्री०) भिक्षां चरतीति भिक्षा-चर (भिक्षासेनादायेषु च। पा ३।२।१७) इति ट। १ भिक्षुक, भीख मांगनेवाला। २ काश्मीरराज स्वनामख्यात राजा भोजके पुत्र। (राजतर० ८।१७)

भिक्षाचरण (सं० क्ली०) भिक्षायाश्चरणम्। भिक्षाचर्य, भीख मांगना।

भिक्षाचर्य (सं० क्ली०) भिक्षायाश्चर्या। भिक्षाचरण।

भिक्षाचार (सं० त्रि०) भिक्षाकार्य, भीख मांगना।

भिक्षाटन (सं० क्ली०) भिक्षार्थं अटनम्। १ भिक्षार्थ-गमन, भीख मांगनेके लिए इधर उधर घूमना। शाम और सबेरे भिक्षाके लिये फेरी नहीं देनी चाहिये। (कूर्मपु० उ० १५ अ०) २ शार्ङ्गधरपद्धतिधृत एक कवि।

भिक्षादि (सं० पु०) भिक्षा आदि करके पाणिन्युक्त शब्दगण। गण यथा—भिक्षा, गर्भिणी, क्षेत्र, करीष, अङ्गार, चर्मन्, सहस्र, युवति, पदादि, पद्धति, अथर्वन्, दक्षिणामत, विषय और श्रोत्र। समूह अर्थमें इस गणके उत्तर अण् प्रत्यय होता है। (पाणिनि)

भिक्षान्न (सं० क्ली०) भिक्षालब्धमन्नम्। भिक्षा द्वारा प्राप्त अन्न, वह अन्न जो भीख मांग कर जमा किया गया हो।

भिक्षापात्र (सं० क्ली०) भिक्षाहरणार्थं पात्रं मध्यपदलोपि कर्मधा०। भिक्षाहरणार्थं पात्र; वह बरतन जिसमें भीख-मंगे भीख मांगते हैं। २ भिक्षादानसम्प्रदान ब्रह्मचारी प्रभृति।

भिक्षाप्रचार (सं० पु०) भिक्षार्थ प्रचारः। भिक्षाके लिये गमन, भीख मांगनेकी फेरी।

भिक्षाभुज् (सं० त्रि०) भिक्षाभोजी, भिक्षा द्वारा निर्वाह करनेवाला।

भिक्षामानव (सं० पु०) भिक्षुकमानव।

भिक्षायण (सं० क्ली०) भिक्षार्थ भ्रमण।

भिक्षार्थी (सं० त्रि०) भिक्षा-अर्थ-इनि। भिक्षाप्रार्थी, भिक्षुक।

भिक्षावत् (सं० त्रि०) भिक्षा अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। भिक्षाकारी, भीख मांगनेवाला।

भिक्षावृत्ति (सं० त्रि०) भिक्षा वृत्तिर्जीविका यस्य। भिक्षुक, भीख मांग कर जीविकानिर्वाह करनेवाला।

भिक्षाशिन् (सं० त्रि०) भिक्षां अश्नातीति अश-णिनि। भिक्षुक, भीखमंगे।

भिक्षाशित्व (सं० क्ली०) भिक्षाशिनो भिक्षुकस्य भावः त्व। पैशुन्य, चुगलखोरी।

भिक्षाहार (सं० पु०) भिक्षालब्धः अहारः। भिक्षान्न।

भिक्षितव्य (सं० त्रि०) भिक्ष् तव्य। प्रार्थितव्य।

भिक्षिन् (सं० त्रि०) भिक्षाकारी तापस।

भिक्षु (सं० पु०) भिक्षु-याचने (सनाशंसभिक्षु उः। पा ३।२।१६८) इति उ। ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमोंके अन्तर्गत चतुर्थाश्रमी, भिक्षा मांगनेवाला। यह आश्रम अन्तिम आश्रम है। यह भिक्षु शब्द धर्मी और धर्मपर है। पर्याय—परिव्राज्, कर्मन्दिन्, पाराशरिन्, मस्करिन्, परिव्राजक, पराशरी, व्रजक। ब्रह्मचर्या, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षु यही चार आश्रम हैं। विष्णुपुराणमें इस आश्रमके लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—

तृतीय आश्रमके वाद पुत्र, कलत्र और सभी द्रव्योंसे स्नेहशून्य तथा मात्सर्याका परित्याग कर चतुर्थ आश्रममें प्रवेश करना चाहिए। भिक्षु व्यक्तिको धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्ग साधनसमुदाय तथा यागादिके अनुष्ठान-का परित्याग करना उचित है। ये शत्रु, मित्र, क्षुद्र तथा वृहत् सभी प्राणीके समान मित्र हो जांय। वाक्य, मन या कर्म द्वारा जरायुज, अण्डज, प्रभृति किसी जीवका कदापि अभिद्राचरण न करें। सर्वदा योगरत रहें और सबोंका सङ्ग छोड़ दें। इन्हें गांवमें एक रात और नगरमें पांच रात तक रहना चाहिए। इससे अधिक काल तक रहना उचित नहीं। इसके सिवा वे ऐसे स्थान-में रहें, जहांसे न तो प्रीति ही उपजे और न द्वेष ही हो। जिस समय गृहस्थके पाकादिकी अग्नि बुझ जाय और सबोंका आहार समाप्त हो जाय, उसी समय भिक्षु भिक्षा मांगनेके लिए ब्राह्मणोंके घर उपस्थित होवें। जो आश्रममें शारीरिक अग्निको अग्निहोत्ररूपसे, अपने शरीरमें संस्थापन कर भिक्षान्नरूप हविः समूह द्वारा अपने मुखमें होम करते हैं, तथा चैतन्यरूप अग्नि द्वारा सभी कर्म दहन करनेमें समर्थ हैं, वे ही उत्तम लोक प्राप्त कर सकते हैं। (विष्णुपुराण ३।६ अ०)

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ और वानप्रस्थ आश्रमके वाद भिक्षु नामक चमर आश्रम है। इस आश्रममें भिक्षुओंको सर्वसङ्गपरित्याग, ब्रह्मचर्य, कोपि विसर्जन, इन्द्रियसंयम, एक आवासमें बहुत दिनका वासत्याग, कर्मत्याग, भिक्षाप्राप्त अन्नसे एक ही बार भोजन, आत्मज्ञानाववोधेच्छा तथा आत्मदमन इन सबोंका सर्वदा यत्नपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए। यही भिक्षुओंका सनातनधर्म है। सत्य, शौच, अनसूया प्रभृति वर्णाश्रमके साधारण धर्मके प्रति भी भिक्षुओंको विशेष ध्यान देना उचित है। (मार्कण्डेयपु० २६ अ०)

ब्राह्मण ब्रह्मचर्य-आश्रमके वाद भिक्षु-आश्रम ग्रहण कर सकते हैं। इस आश्रममें वे सुखदुःखरहित, आश्रय-शून्य, जितेन्द्रिय, शम तथा दमगुणसम्पन्न, सबोंके प्रति समदृष्टि, भोगकामनाशून्य और निर्विकार-चित्त होवें। ऐसे धर्माचरणके वाद उन्हें ब्रह्मपद प्राप्त होता है।

(भा० भीष्म० वर्णाश्रम० प०)

निर्णयसिन्धुमें भिक्षुओंके धर्म तथा कर्मकी पद्धति इस प्रकार लिखी है,—भिक्षुगण प्रातःकाल उठ 'ब्रह्मण-स्पते' यह मन्त्र जप कर दण्डादि रख देवें, वाद मलमूत्रका परित्याग करें। अनन्तर गृहस्थोंके लिये जैसा शौच विहित है, उससे चार गुणा उन्हें शौच करना उचित है। इसके वाद आचमन कर पर्व तथा द्वादशी दिनको छोड़ अन्य सभी दिनोंमें प्रणव द्वारा दन्तधावन और वहिः-कटिप्रक्षालन कर जलतर्पणके अलावा स्नान करना चाहिए। तदनन्तर वस्त्रादि पहन कर केशवादिका तर्पण, 'ओं भूस्तर्पयामि' इत्यादि व्याहृति द्वारा तर्पण करें। वाद त्रिकालमें यथाविहित पूजा और जप होमादि-का अनुष्ठान विधेय हैं। विस्तार हो जानेके भयसे पूरा पूरा नहीं लिखा गया। निर्णयसिन्धुमें विशेष विवरण देखो।

विष्णुसंहितामें चतुर्थ आश्रमका विषय इस प्रकार लिखा है,—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ तथा वानप्रस्थ इन तीन आश्रमोंसे आसक्तिके निवृत्त होने पर प्राजापात्ययागके वाद सर्वस्व दक्षिणा दे कर आश्रम ग्रहण करना होता है। इस यागका विषय यजुर्वेदीय उपाख्यान ग्रंथमें लिखा है।

भिक्षु स्वयं अग्नि आरोपित कर भिक्षाके लिए ग्राममें प्रवेश और सात घरसे भिक्षाग्रहण कर सकते हैं। भिक्षा न मिलने पर उन्हें दुःखित नहीं होना चाहिए। वे भिक्षुकसे भिक्षा न मांगे। मनुष्योंके भोजन कर चुकने और जूठा वरतन धोए जानेके वाद भिक्षु मृण्मय पात्र, दारु-मय पात्र या अलावूपात्र (लौका)-में भीख मांगे। भिक्षुकके ये पात्र जलसे ही शुद्ध होते हैं। भिक्षुकको परित्यक्त गृह या वृक्षके नीचे रात बितानी चाहिए। ग्राममें एक रातसे अधिक वास न करें। इन्हें कौपीन और वहिर्वासके

सिवा दूसरे वस्त्रका व्यवहार करना उचित नहीं। कदम बढ़ानेके समय रास्ता देख कर चलें। ये वस्त्रपूत जल-ग्रहण, सत्यपूत-वाक्य प्रयोग तथा मनःपूत आचरण करें। इनको मरने या जीनेकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। दूसरोंके अपमान करने पर उसे सह्य कर लेना उचित है। किन्तु स्वयं दूसरेका अपमान न करें। भिक्षुको चाहिए, कि वे किसी को आशीर्वाद या नमस्कार न करें। भिक्षुओंको प्राणायाम धारण और ध्यान-तत्पर होना उचित है। भिक्षु संसारकी अनित्यता, शरीरकी अशुचिता, जरा द्वारा रूपविपर्यय, शारीरिक और मानसिक, आगन्तुक और स्वाभाविक व्याधि द्वारा उपताप, गर्भमें मूत्रपुरीषके मध्य अवस्थिति, उससे शीतोष्ण-दुःखानुभव, उत्पन्न होनेके समय योनिसङ्कटनिर्गम तथा उस समय विशेष यन्त्रणा, बाल्यकालमें मूढ़ता, गुरुजनके अधीन अवस्थान, अध्ययनमें अत्यन्त क्लेश, यौवनमें विषय प्राप्तिके लिए विशेष प्रयास, असत् कार्य करके विषय लाभके बाद, उसका भोग करनेसे नरकगमन, अप्रियका संसर्ग, प्रियजनोंका विरह, नरकमें अत्यन्त दुःख तथा संसार अनित्यता, संसारमें तनिक भी सुख नहीं इत्यादि विषयकी आलोचना करें और सर्वदा ध्यान-निरत रहें। इन्हें ध्यानके समय दोनों पैरको दोनों जांघमें और दाहिना हाथको बांए हाथ पर रख कर स्थिर चित्तसे परमात्मचिन्तामें निरत रहना चाहिए। तब भिक्षु एकाग्र मनसे निर्भय तथा प्रशान्त चित्त हो चौबीस तत्त्वके अतीत, नित्य, इन्द्रियातीत, निर्गुण, सर्वज्ञ, सर्वतः पाणिपादान्त सर्वतोऽक्षिशिरोमुख परब्रह्मका ध्यान करें। ऐसा करनेसे परम पद लाभ होता है।

(विष्णुसंहिता ९५-९८ अ०)

हारीतसंहितामें लिखा है, कि चतुर्थ आश्रमका नाम भिक्षु या संन्यास है। श्रद्धापूर्वक इस आश्रमका अनुष्ठान करनेसे संसारबन्धनसे छुटकारा मिल सकता है। वानप्रस्थाश्रममें रह कर सब प्रकारके पापोंका ध्वंस कर सकने पर इस आश्रमका अधिकार होता है। वानप्रस्थाश्रममें रह कर पितरों, देवताओं तथा मनुष्योंके उद्देश्यसे दान और श्राद्ध कर एवं अपनी अग्नि क्रियाकी समाप्तिके बाद पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी ओर लक्ष्य कर यह आश्रम ग्रहण करना होगा। यह आश्रम ग्रहण करनेके समय वैवाहिक अग्निको साथ लेना उचित है। इस आश्रमग्रहणके बाद स्त्री-पुत्रादिके साथ बातचीत नहीं करनी चाहिए। भिक्षु चार अंगुल परिमित कृष्ण गोबाल रज्जु द्वारा वेष्टित, समपर्व, प्रशस्त तथा रेणुनिर्मित त्रिदण्ड धारण करें। इन्हें आच्छादन वास, कौपीन, शीतनिवारणी कन्था और दो पादुकाके सिवा और वस्तु रखना उचित नहीं।

भिक्षु उक्त सभी द्रव्य ले कर संन्यास ग्रहणपूर्वक उत्तम तीर्थ गमन, मन्त्रपूत जलसे आचमन और बाद देवताओंका तर्पण करके सूर्यदेवको मंत्र पढ़ कर प्रणाम करें। अनन्तर पूर्वमुख बैठ कर यथाशक्ति गायत्री जपके बाद परब्रह्मके ध्यानमें निमग्न हो जांय। इन्हें प्रतिदिन अपने प्राण धारण निमित्त भिक्षा मांगनेके लिए जाना चाहिए। ये शामको ब्राह्मणोंके घर जा कर दाहिने हाथसे सम्यक् कवल मांगें। बायें हाथमें पात्र रख कर दाहिने हाथसे उसे संग्रह करना चाहिये। भिक्षु भक्षणोपयोगी अन्न संग्रह करें; बाद वह पात्र पवित्र स्थानमें रख कर समाहित चित्तसे चार अंगुल द्वारा ग्रासमात्र अन्न आच्छादन कर एक दूसरे पात्रमें रखें। अनन्तर उसे सूर्यादि भूत देवताओंको प्रदान कर दोनों या एक पात्रमें भोजन करें। शामको संध्या वन्दनादि कर देवगृहादिमें रात्रियापन करना चाहिए। उस समय वे हृदयपद्ममें ब्रह्मका ध्यान करें और ऐसा करनेसे ही उन्हें मुक्ति मिलेगी। (हारीतसं० ७ अ०)

हारीतके मतानुसार भिक्षु कुटीचर, बहूदक, हंस और परमहंस इन्हीं चार श्रेणीमें विभक्त हैं।

> "चतुर्विधा भिक्षवस्तु प्रोक्ताः सामान्यलिङ्गिनः।
> तेषां पृथक् पृथग् ज्ञानं वृत्तिभेदात् कृतं श्रुतम्॥
> कुटीचरो बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः।
> चतुर्थः परमोहंसो यो यः पश्चात् स उत्तमः॥ (हारीत)

उक्त चार श्रेणीके भिक्षु एक दूसरेसे श्रेष्ठ हैं। कुटीचर और हंस शिवलिङ्गकी अर्चना करते हैं तथा बहूदक देवपूजामें लगे रहते, केवल परमहंस ही प्रणव-रूप और ज्ञानानुशीलन करते हैं। सूतसंहिताके ज्ञानयोगखण्डमें इन चार श्रेणीके भिक्षुओंकी वृत्ति प्रभृतिका विषय इस

प्रकार लिखा है,—कुटीचर संन्यासग्रहण कर अपने घर या अपने बन्धुके घर रहें और भिक्षा मांग कर जीविका-निर्वाह करें। शिखाधारण, यज्ञोपवीत, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण, काषाय वस्त्रपरिधान तथा शुद्धाचारी हो कर रहें। इन्हें त्रिसंध्या गायत्रीका जप हमेशा करना उचित है। सर्वाङ्गमें भस्मलेपन, ललाटमें त्रिपुण्ड्रधारण तथा प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक शिवकी अर्चना करना आवश्यक है।

बहूदक—संन्यासाश्रमका अवलम्बन और बन्धुपुत्रादिका परित्याग करके सात घरसे भीख मांग कर जीविकानिर्वाह करें। एक ही घरका अन्न न लें। वे गोपुच्छ लोमकी रज्जु द्वारा बद्ध त्रिदण्ड, शिक्य, जलपात्र, कौपीन, कमण्डलु, गात्राच्छादन, कन्था, पादुका, छत्र, पवित्र चर्म, रुद्राक्षमाला, योगपट्ट, बहिर्वास, खनित्री और कृपाण धारण करें। इन्हें सर्वाङ्गमें भस्मलेपन और त्रिपुण्ड्र, शिखा और यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। ये वेदाध्ययन और देवताराधनामें रत हो कर सर्वदा वाक्यपरित्याग और इष्ट देवताचिन्तनमें तत्पर रहें। सन्ध्याकालको गायत्रीरूप और स्वधर्मोचित क्रियानुष्ठानमें प्रवृत्त होवें।

हंस—भिक्षु, कमण्डलु, शिक्य, भिक्षापात्र, कंथा, कौपीन, आच्छादन, अङ्गवस्त्र, वहिर्वास और वंशदण्ड हमेशा यत्नपूर्वक धारण, अङ्गमें भस्मलेपन, त्रिपुण्ड्र धारण तथा शिवलिङ्ग पूजा करें। इन्हें प्रतिदिन आठ कवल अन्न खाना और शिखाके साथ साथ सभी केश कटा देना चाहिए। संध्याकालमें गायत्रीरूप तथा अध्यात्म-चिंतन, तीर्थसेवा, कृच्छ्र चांद्रायणादि व्रतका अनुष्ठान करना आवश्यक है। ये एक ही रात तक गांवमें रह सकते हैं।

परमहंस—त्रिदण्ड, गोपुच्छ-लोम मिश्रित रज्जु, जल, पवित्र शिक्य, पवित्र कमण्डलु, अजिन, मृत्खण्डी कृपाण, शिखा, यज्ञोपवीत तथा नित्यकर्मका परित्याग करें।

इन्हें कौपीन, आच्छादनवस्त्र, शीतनिवारक कंथा, योगपट्ट, वहिर्वास, पादुका, छत्र, अक्षमाला और वंशदण्ड ग्रहण करना चाहिए। अग्नि इत्यादि मंत्र द्वारा अंगमें भस्मलेपन और तीन बार 'ओं' उच्चारण कर त्रिपुण्ड्र धारण करें।

अत्यंत भोजन और रिपुपरतंत्र होनेसे मनःसंयोग नहीं होता, इसीलिए भिक्षुओंको अपरिमित आहार और काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष विषाद प्रभृतिका परित्याग करना चाहिए। ये चार प्रकारके भिक्षु शौचाचार और ध्यानपरायण तथा सबके सब मोक्षाभिलाषी हैं। कुटीचर, बहूदक और हंस मोक्षलाभके उद्देशसे गायत्री की ही उपासना करें। तीनों वेद प्रणवमूलक हैं और प्रणवमें ही उनका पर्यवसान हैं; अतएव परमहंसको सर्वदा प्रणवका ही जप करना उचित है। परमहंस निर्जन स्थानमें समाहित तथा आनन्दपूर्वक बैठ कर यथाशक्ति समाधिका अवलम्बन करें।

उक्त चार प्रकारके भिक्षुकी अन्त्येष्टिक्रिया भी एक-सी नहीं है। निर्णयसिन्धुके मतसे कुटीचरको दाह, बहूदकको जलतारण, हंसको जलमें निक्षेप और परमहंसको मिट्टीमें गाड़ देनेकी व्यवस्था है। वायुसंहिताके मतसे परमहंसके सिवा अन्य तीन प्रकारके संन्यासीको मिट्टीमें गाड़ कर पीछे जला देना चाहिए।

विशेष विवरण तत्तद् शब्दमें देखो।

२ वह बौद्धसंन्यासी जो संसारमें लिप्त रह कर भिक्षावृत्तिका अवलम्बन करते हैं। बौद्ध शब्द देखो। ३ बुद्धभेद। ४ श्रावणी क्षुप। ५ कोकिलाक्ष।

भिक्षुक (सं० स्त्री० पु०) भिक्षुरेव, भिक्षु स्वार्थे कन्, वा भिक्षते इति भिक्ष-उक। भिक्षोपजीवी, भिखारी। पर्याय—मार्गण, याचनक, वनीयक, याचका अर्थी।

"ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थं मुपस्थितम्।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत्॥"

(मनु ३।२४३)

ब्राह्मण अथवा भिक्षुकके उपस्थित होने पर यथाशक्ति उन्हें भोजन कराना उचित है। इससे अशेष पुण्य लाभ होता है।

ब्रह्मचारी, यति, विद्यार्थी, गुरुपोषक, अध्वग और क्षीणवृत्ति ये छः पारिभाषिक भिक्षुक हैं।

"ब्रह्मचारि यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षड़ेते भिक्षुकाः स्मृताः" (अति)

भिक्षुकीपारक (सं० क्ली०) राजतरङ्गिणीवर्णित स्थान-भेद ।

भिक्षुणी (सं० स्त्री०) भिक्षुकी, बौद्धस्त्रीयतिभेद ।

भिक्षुरूप (सं० पु०) महादेव ।

भिक्षुसङ्घ (सं० पु०) भिक्षुकोंकी समिति वा संघ ।

भिक्षुसङ्घाटी (सं० स्त्री०) भिक्षु' संघटते इति भिक्षु-सम् घट अण् गौरादित्वात् ङीष्। चीवर, योगियों, संन्या-सियों या भिक्षुकोंका फटो पुराना कपड़ा ।

भिखमंगा (हिं० पु०) भिक्षुक, भिखारी ।

भिखार (हिं० पु०) भीख मांगनेवाला ।

भिखारिणी (हिं० स्त्री०) भीख मांगनेवाली स्त्री ।

भिखारिन (हिं० स्त्री०) भिखारिणी देखो ।

भीखारी (हिं० पु०) भिक्षुक भीख मांगनेवाला ।

भिखासाहिब—बलियावासी राजपूत जातिका धर्मसम्प्रदायविशेष । प्रवाद है, कि मर्दनसिंह नामक एक हिन्दू सरदारको यहां खजाना बहुत बाकी पड़ गया था, इस कारण दिल्लीराजधानीमें ये कैद रखे गये । इस समय शाह महम्मद षाड़ि नामक एक मुसलमान फकीरकी कृपासे इन्होंने कारागारसे छुटकारा पाया । उक्त मुसलमान फकीरने इन्हें राममन्त्रमें दीक्षा लेनेका आदेश किया । इस मतके अवलम्बिगण साम्प्रदायिक चिह्न-स्वरूप एक घंटो गलेमें पहनते थे । भिकुरापति मर्दनके भिखा नामक एक शिष्य था । वह जोवनके शेष समयमें वड़गांव नामक स्थानमें आ कर बस गये । तभीसे यहां उक्त समाजकी गद्दी स्थापित है । इन लोगोंके मध्य कुछ वैष्णवोंका और कुछ इस्लामियोंका आचार प्रचलित देखा जाता है ।

भिखिया (हिं० स्त्री०) भिक्षा देखो ।

भिखियारी (हिं० पु०) भिखारी देखो ।

भिखुराज—कलिङ्गके एक प्राचीन राजा ।

भिगाना (हिं० क्रि०) भिगोना देखो ।

भिगोना (हिं० क्रि०) किसी चीजको पानीसे तर करना, गीला करना ।

भिङ्गा—अयोध्याप्रदेशके बहराइच जिलेके अन्तर्गत एक परगना । राप्ती नदी इसको दो भागोंमें बांटती है । १४८३ ई०में इसका पूर्वांश पार्वत्यराज उदतसिंह और राजा संग्रामशाहके तथा पश्चिमाञ्चल इकौनाराजके अधिकारमें था । सम्राट् शाहजहान्के शासनकालमें १६५० ई०को इकौनाधिपति राप्तीको पार कर पूर्वदिग्वर्त्ती दङ्गपुन परगनेके ६२ ग्राम अधिकार कर बैठे । इस समय यहां वंजारडकैतोंका विशेष उपद्रव होनेके कारण तालुकदार गोंड़राजपुत्र भवानीसिंह-चिपेणके नाम पर अपनी सम्पत्ति दान कर गये । वर्त्तमान तालुकदार उक्त भवानीसिंहसे सातवीं या आठवीं पीढ़ीमें होंगे । राप्ती और भाकला शाखाके सङ्गमस्थलकी भूमि अधिक उर्वरा है । उत्तरकी निम्न तराई प्रदेशमें भी काफी धान उपजता है ।

२ उक्त परगनेका प्रधान नगर । यह अक्षा० २७' ४२' उ० तथा देशा० ८१' ५६' पू० राप्ती नदीके बाएं किनारे अवस्थित है । जनसंख्या ६ हजारके करीब है । कहते हैं, कि १६वीं शताब्दीमें इकौनाराजने इस नगरको बसाया । करीब ढाई सौ वर्ष हुए उन्होंने परगने समेत नगरको गोंड़राजवंशके हाथ समर्पण कर दिया । यहां राप्ती नदीके किनारे एक पुराना दुर्ग विद्यमान है । शहरमें दो स्कूल और एक चिकित्सालय है ।

भिङ्गार—बम्बईप्रदेशके अहमदनगर जिलेके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० १९' ६' उ० तथा देशा० ७४' ४५' पू०के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या ५७२२ है । यहां कपड़े बुननेकी बहुत-सी कलें हैं । यहांका तैयार किया हुआ कपड़ा अन्यान्य देशोंमें भेजा जाता है । १८५७ ई०में यहां म्यूनिस्पलिटी स्थापित हुई है ।

भिच्छा (हिं० स्त्री०) भिक्षा देखो ।

भिजवाना (हिं० क्रि०) किसीको भेजनेमें प्रवृत्त करना, भेजनेका काम दूसरेसे कराना ।

भिजवावर (हिं० स्त्री०) भजियाउर देखो ।

भिजाना (हिं० स्त्री०) भिगोना, तर करना, गीला करना ।

भिज्ञ (सं० त्रि०) जानकार, वाकिफ ।

भिटका (हिं० पु०) वमीठा, बामी ।

भिटना (हिं० पु०) छोटा गोल फल ।

भिटनी (हिं० स्त्री०) स्तनके आगेका भाग ।

भिटाशाह—सिन्धुप्रदेशके हैदराबाद जिलान्तर्गत एक नगर । इस नगरमें ज्यादातर मुसलमानोंका ही वास है ।

यहां वसन्द, सन्द, खस केली और वग्राजातीय मुसलमानोंकी संख्या अधिक है तथा उन्होंकी प्रधानता देखी जाती है। उनमेंसे कुछ लोग स्थानीय प्रसिद्ध पीर-वंशोद्भव हैं। हिन्दुओंमें प्रधानतः लोहानो जातिका वास है। १७२७ ई०में शाह अवदुल लतोफने इस नगरको बसाया, इस कारण इसका यह नाम रखा गया है। प्रति वर्ष उक्त शाह लतीफके स्मरणार्थ एक मेला लगता है।

भिटासखँण्डो—मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २६° ३७' उ० तथा देशा० ८५° ५२' पू०के मध्य मुर्हानदीके किनारे अवस्थित है। नेपाल राज्यके साथ यहां धान्यशस्यादिका वाणिज्य जोरों चलता है।

भिड़ (हिं० स्त्री०) वरैं, दतैया।

भिडज (हिं० पु०) शूर, वीर पुरुष।

भिड़ज्जाँ (हिं० पु०) घोड़ा।

भिड़ना (हिं० क्रि०) १ एक चीजका वढ़ कर दूसरी चोजसे टक्कर खाना, टकराना। २ लड़ना, झगड़ना। ३ मैथुन करना, प्रसंग करना। ४ समीप पहुँचना, सटना।

भिण्ड (सं० पु०) भण्यते इति भण् ड, पृषोदरादि० साधुः। भिण्डाक्षुप, भिंडी।

भिण्डक (सं० पु०) भिण्ड-स्वार्थे-कन्। भिण्डा क्षुप।

भिण्डा (सं० स्त्री०) भिण्ड अजादित्वात् टाप्। क्षुपविशेष, भिंडो। पर्याय—भिण्डीतक, भिण्ड, भिण्डक, क्षेत्रसम्भव, चतुष्पद, चतुःपुण्ड्र सुशाक, असुपुत्रक, करपर्ण, वृत्तवोज। गुण—अम्लरस, उष्ण, ग्राही और रुचिकारक।

भिण्डीतक (सं० पु०) भिण्डी सती तकति हसतोति तक-अच्। भिण्डाक्षुप, भिंडी, रामतरोई।

भितरगांव—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह कानपुरसे १० कोस दक्षिणमें वसा है। भितरगांवका अर्थ है, ग्रामका मध्यभाग। इससे अनुमान किया जाता है, कि किसी प्राचीन समृद्धिशाली नगरके मध्यभागमें वर्त्तमान नगर संगठित हुआ है। स्थानीय प्रवाद है, कि प्राचीन फूलपुर नगरके मध्यभागसे ले कर यह ग्राम स्थापित है। अब भी इस नगरसे लगभग आध मील पूर्वमें जो एक प्राचीन नगरका ध्वंसावशेष नजर आता है वह वाहरगांव कहलाता है। यहांके लोग इन दो ग्रामोंको 'वाहरी-भीतरी' या प्राचीन फूलपुरका जीर्ण और संस्कृत विभाग कहा करते हैं।

इस ग्रामके पूर्व ओर आज भी एक बहुत बड़ा देवालय विद्यमान है। इसकी दीवार आठ फीट चौड़ी है। मन्दिर ४७ फीट लम्वा और ३६॥ चौड़ा है। इसकी ईंट १८"×६"३" है।

मंदिरगात्रमें वराह-अवतार, दुर्गा, शिव और गणेश प्रभृति देवमूर्त्ति खोदित हैं। इसकी गठनप्रणाली देख कर प्रत्नतत्त्वविद्गण अनुमान करते हैं; कि ६ठी शताब्दीमें यह मंदिर वना था। उत्तर भारतके इष्टक-निर्मित प्राचीरके मध्य यह एक अपूर्व निदर्शन है।

इस देवालयसे लगभग ३५० हाथ दक्षिण झोंझीनागका मन्दिर अवस्थित है जो ध्वंसप्राय स्तूपमें परिणत हो गया है। इसकी ईंटें देखनेसे मालूम पड़ता है, कि यह पूर्वोक्त देवालयके समकालमें वना हुआ है। इसके अलाव पार्श्ववर्त्ती पवौली, सिम्भुया, राड़, वेदावेदौना, खुर्दा, कांचलीपुर और शहर अमोली प्रभृति ग्राममें और भी कितने कारुकार्य्ययुक्त अपेक्षाकृत छोटे छोटे मन्दिर विद्यमान हैं।

भितरी—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलांतर्गत एक गण्डग्राम। यह गङ्गानदीके वायें किनारे गाजोपुर नगरसे १० कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहांके इष्टकस्तूपकी पर्य्यालोचना करनेसे देखा गया है, कि एक समय यह एक प्राकारपरिवेष्टित दुर्गरूपमें विराजित था। इसकी चूड़ा पर सम्प्रति एक इमामवाड़ा बनाया गया है। इसकी नींव डालते समय नोचेसे प्राचीन दुर्गवाटिका वाहर हुई थो। अभी भी उस रन्ध्रपथसे उसके भीतर जा सकते हैं। वहुत दिन तक उसकी ईंटें जनसाधारणके कार्यमें आनेसे मूलस्तूप विभिन्न अंशमें विभक्त हो गया है। इसका एक ईंट लगभग १६"×१२"×३" है।

यहांकी एक मसजिदमें कारुकार्य्ययुक्त ३० स्तम्भ सज्जित हैं। उसका बुद्धचित्रादि देखनेसे मालूम होता है, कि बौद्धप्राधान्यके समय यहां दो एक बौद्धसंघाराम प्रतिष्ठित थे। इसके अलावा यहां ब्राह्मण्यधर्मके अनेक

निदर्शन पाये जाते हैं। मुसलमानी-अमलदारीमें यहांके ही दोनों निदर्शन मसजिद्गठन-कार्यमें नियोजित हुए थे।

उपर्युक्त ध्वंसावशेषसे-बौद्ध या ब्राह्मण्य धर्मका पौर्वापर्य निरूपण नहीं किया जा सकता। किंतु दोनोंके शिल्पनैपुण्यकी उत्कर्षता देखनेसे अनुभव होता है, कि गुप्तवंशीय हिंदू और बौद्ध-राजाओंमें मतभेद रहनेके कारण समय विशेषसे यहां हिंदू और बौद्धधर्मके प्रचारके लिये शिल्पचातुर्यकी परिपुष्टि साधित हुई थी।

मुसलमान-आधिपत्यमें भी यह ग्राम बहुत कुछ चढ़ा बढ़ा था। यद्यपि उन्होंने जातवैरताके कारण हिन्दू और बौद्ध-धर्मनाशका विशेष परिचय दिया था, तथापि हिंदूके ध्वंसप्राय मंदिर-कलेवरको मसजिदमें ला कर उन्होंने उन उन द्रव्योंके रक्षाविषयमें अन्यरूपसे पूर्वकीर्त्तिकी रक्षा की है। सौभाग्यका विषय है, कि उन्होंने जातक्रोध हो कर उसे एकबारगी नष्ट नहीं किया है। गाङ्गो नदीका चार स्तम्भवाला प्रस्तरसेतु मुसलमान-कीर्त्तिका अन्यतम निदर्शन है।

पूर्वोक्त दुर्गके भीतर सम्राट् स्कंदगुप्तकी स्तम्भलिपि पाई गई है। उसकी अक्षरावलि कालक्रमसे अस्पष्ट हो गई है। उसमें स्कंदगुप्तकी मृत्यु और कुमारगुप्तका राज्यारोहण, विष्णुमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा इत्यादि विषय उत्कीर्ण हैं। उस स्तम्भके नीचे 'श्रीकुमारगुप्त' नामाङ्कित कई एक बड़ी बड़ी ईंटें और उसके निकट ध्वंसराशिमें (१८८५ ई०में) कुमारगुप्तके नामकी चाँदीकी एक बादामी थाली पाई गई है। इसके अलावा मिट्टीके नीचे गुप्तराजाओंकी प्रचलित स्वर्ण, रौप्य तथा ताम्र प्रभृति मुद्रा मिली है। इससे विश्वास होता है, कि भीतरी-दुर्ग एक समय गुप्तराज कुमारगुप्तके अधीन था। चाहे वे स्वयं अथवा उनके अधीन कोई प्रिय सामन्त उसके अधिकारी थे।

भितल्ला (हिं० पु०) १ दोहरे कपड़ेमें भीतरी ओरका पल्ला, कपड़ेके भीतरका परत। (वि०) २ भीतरका, अन्दरका।

भितल्ली (हिं० स्त्री०) चक्कीके नीचेका पाट।

भितौली—१ अयोध्याप्रदेशके बाराबांकी जिलान्तर्गत एक परगना। यह कौड़ियाला और चौका नदीके मध्य अवस्थित है। पहले यह स्थान राइकवाड़ सरदारके अधीन था। सिपाहीविद्रोहके समय जब वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े हुए, तब अङ्गरेजोंने उनका अधिकार छीन लिया और कपूरथलाके महाराजको कृतज्ञता चिह्नस्वरूप यह सम्पत्ति प्रदान की। इसका भू-परिमाण ६२ वर्गमील है।

२ उक्त प्रदेशके उनाव जिलान्तर्गत एक नगर। यह सई नदीके किनारे अवस्थित है। प्रवाद है, कि छः सौ वर्ष पहले दो कायस्थकुलोद्भव व्यक्तियोंने इस नगरको बसाया। चारों ओर विस्तीर्ण आम्रकानन विराजित रहनेसे नगरकी शोभा बड़ी ही मनोरम है।

भितौर—युक्तप्रदेशके बरेली जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह पश्चिम फतेगञ्ज नामसे भी परिचित है। १७९४ ई०की २४वीं अक्तूबरको रोहिलयुद्धमें जो सब अङ्गरेजी सेना यहां मारी गई थी उनके स्मरणार्थ यहां एक प्रस्तरस्तम्भ स्थापित हुआ है। निकटवर्त्ती एक गण्डशैलके ऊपर उक्त युद्धनिहत रोहिलासरदार नाजिब खाँ और बलंद खाँका समाधिमंदिर विद्यमान है।

भित्त (सं० क्ली०) भिद्यते स्मेति भिद्-क्त (भित्तं शकलं। पा ८।२।५९) इति निष्ठातकारस्य नत्वाभावो निपात्यते। खण्ड, टुकड़ा।

भित्ति (सं० स्त्री०) भिद्यते इति-भिद्-क्तिन्। १ प्राचीर, दीवार। पर्याय—कूड्य, कुड्य, कुड्यक, भित्तिका। २ भय, डर। ३ खण्ड, टुकड़ा। ४ प्रभेद, अंतर। ५ सम्विभाग। ६ अवकाश। ७ प्रदेश। ८ चित्त खींचनेका आधार। ९ मूलभित्ति, नींव।

भित्तिका (सं० स्त्री०) भिद्यते भिनत्ति वेति भिद-विदारणे (कृतिभिदिलतिभ्यः कित्। उण् ३।१४७) इति डिकन् किच्च। १ कुड्य, दीवार। २ पल्ली, छोटा गाँव।

भित्तिखातन (सं० पु०) महामूषिक, बड़ा चूहा।

भित्तिचौर (सं० पु०) चोरयतीति चुर-अच्, चौर एव स्वार्थे अण्, चौरः भित्त्या कुड्यादि भेदेन चौरः। चौरविशेष, सेंधकटा। पर्याय—खानिन्, कुड्यच्छिद्र।

भित्तिपातन (सं० पु०) पातयतीति पत-णिच् कर्त्तरि ल्यु, भित्तीनां पातनः। महामूषिक।

भिद् (सं० स्त्री०) भिद्यते इति भिद्-क्विप् । १ प्रभेद, अन्तर । (त्रि०) २ भेदकर्त्ता, छेदनेवाला ।

भिदक (सं० क्ली०) भिनत्तीति भिद् (बहुलमन्यत्रापि। उण् २।३७) इति क्वुन् । १ वज्र । २ खड्ग ।

भिदनवाला—पञ्जाबप्रदेशके सर्हिन्द जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम । यह अक्षा० ३१° १०´ उ० तथा देशा० ७५° पू० शतद्रु नदीके बाएं किनारे अवस्थित है । शतद्रु और विपाशानदीके अन्तर्वेदी मुख पर अवस्थित रहनेके कारण यहां अच्छी फसल लगती है ।

भिदना (हिं० क्रि०) १ पैवस्त होना, घुस जाना । २ छेदा जाना । ३ घायल होना ।

भिदा (सं० स्त्री०) भेदनमिति भिद् (षिद्भिदादिभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४) इति अङ्, टाप् । १ वस्त्रादिका विदारण, कपड़ा फाड़ना । पर्याय—विदर, स्फुटन । २ धन्याक, धनिया । ३ भेद । ४ विशेषकरण ।

भिदादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्दगणभेद । यथा—भिदा, छिदा, विदा, क्षिपा, गुहा, श्रद्धा, मेघा, गोधा, आरा, हारा, कारा, क्षिपा, तारा, धारा, रेखा, चूड़ा, पीड़ा, वर्षा, मृजा, कृपा । भिदादिगणके उत्तर अङ् प्रत्यय होता है । (पाणिनि)

भिदापन (सं० क्ली०) भेदप्रापण ।

भिदि (सं० पु०) भिनत्तीति भिद् (कॄगॄशॄपॄकुटिभिदिच्छिदिभ्यश्च । उण् ४।१४२) इति इ, सच कित् । वज्र ।

भिदिर (सं० क्ली०) भिनत्ति विदारयति भिद् (इषिमदि मुदिखिदिच्छिदिभिदिमन्दीति । उण् १।५२) इति किरच् । वज्र ।

भिदु (सं० पु०) भिनत्ति विदारयतीति भिद् (पॄभिदिव्यधिगृधिधृषिदशिभ्यः । उण् १।२४) इति कु । वज्र ।

भिदुर (सं० क्ली०) भिनत्तीति भिद् (विदिभिदिच्छिदेः कुरच् । पा ३।२।१६२) इति कुरच् । १ वज्र । (पु०) २ प्लक्षवृक्ष ।

भिदुरस्वन (सं० पु०) १ असुरभेद । २ वज्रनिर्घोष । (त्रि०) ३ वज्रकी तरह शब्दकारी ।

भिदेलिम (सं० त्रि०) भिद्-कर्म-कर्त्तरि केलिम । स्वयं भिद्यमान ।

भिद्य (सं० पु०) भिनत्ति कूलमिति भिद्-क्यप् (पा ३।१।११५) निपातितश्च । कूलभेदकारी नद ।

भिद्र (सं० पु० क्ली०) भिनत्तीति भिद्-रक् । (स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपीति । उण् ४।१३) वज्र ।

भिनकना (हिं० क्रि०) १ भिन्न भिन्न शब्द करना । २ किसी कामका अपूर्ण रह जाना । ३ घृणा उत्पन्न होना ।

भिनभिनाना (हिं० क्रि०) भिन्न भिन्न शब्द करना ।

भिनसार (हिं० पु०) प्रातःकाल, सवेरा ।

भिनहीं (हिं० क्रि०) प्रातःकाल, सबेरे ।

भिन्द—१ ग्वालियर राज्यका एक जिला । यह अक्षा० २३° ३३´ से २६° ४८´ उ० तथा देशा० ७८° ३३´ से ७९° ८´ पू०के मध्य अवस्थित है । भू-परिमाण १५५४ वर्गमील है । इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें चम्बल नदी, पूर्वमें पहुज नदी, दक्षिणमें दतिया राज्य और झांसी जिला तथा पश्चिममें ग्वालियर गर्ड जिला है । जनसंख्या चार लाखसे ऊपर है । इसमें भाण्डर और भिन्द नामक दो शहर तथा ८१६ ग्राम लगते हैं ।

२ उक्त जिलेका एक शहर । यह अक्षा० २६° ३३´ उ० तथा देशा० ७८° ४८´ पू०के मध्य विस्तृत है । जनसंख्या प्रायः ८०३२ है । पहले यह नगर विशेष समृद्धिशाली और दुर्गादिसे परिशोभित था, किन्तु अभी श्रीहीन हो गया है ।

भिन्दड़—राजपूतानेके उदयपुर सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २४° ३०´ उ० तथा देशा० ७४° ११´ पू० उदयपुर शहरसे ३२ मील पूर्व और दक्षिणमें अवस्थित है । यह चारों ओर प्राचीर और परिखासे परिवेष्टित है । जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है जिनमेंसे सैकड़े पीछे ६७ हिन्दू, १९ जैन और शेष १४ में अन्यान्य जातियाँ हैं । यहांके सामन्त सिसोदिया राजपूत उदयपुर राज्यके प्रधान अमात्य हैं और 'महाराजा' उनकी उपाधि है । आय ४८०००) रु०की है जिसमेंसे ३२००) रु० दरबारमें करस्वरूप देने पड़ते हैं ।

भिन्दिपाल (सं० पु०) भिदि-इन् भिन्दि विदारणं पालयतीति पालि अण् । १ हस्तप्रमाण-काण्ड, नालिकास्त्र । नालिकास्त्र देखो । २ हस्तक्षेप्य लगुड़, वह छोटी लाठी जो हाथसे फेंकी जाय । पर्याय—मृग । यह आर्यहिन्दुओंका

एक प्रकारका हस्तक्षेप्य युद्धास्त्र था। यह हाथ सवा हाथ लंवा होता था और प्राचीनकालमें शत्रुघाती आयुध पदातिक सेना इसका व्यवहार करती थी।

अग्निपुराणोक्त धनुर्वेदमें भिन्दिपाल व्यवहारकी प्रणाली इस प्रकार लिखी है :—

"संभ्रान्तमथ विश्रान्तं गोविसर्गं सुदुर्द्धरम्।
भिन्दिपालस्य कर्माणि लगुड़स्य च तान्यपि॥"

भिन्न (सं० त्रि०) भिद्यते स्मेति भिद्-क्त। १ भेद-विशिष्ट, कटा हुआ। पर्याय—दारित, भेदित, विदारित। २ सङ्गत। ३ अन्य, दूसरा। ४ फुल्ल, प्रस्फुटित, खिला हुआ। (पु०) ५ क्षतरोगविशेष। इसका लक्षण,—

"कुन्तशक्तीषु खड्गाग्र-विषाणादिभिराशयः।
हतः किञ्चिच्छ्रवेत्तु द्धि भिन्न लक्षणमुच्यते॥"
(सुश्रुतचिकि० २ अ०)

कुन्त, शक्ति, इषु, खड्गाग्र तथा विषाणादि द्वारा कोई आशय भेद हो कर जब उससे स्राव निकलने लगता है, तब उसे भिन्न कहते हैं। पक्काशय और मूत्राशय प्रभृति ७ आशय हैं। इनमेंसे कोई एक आशय भिन्न हो कर उसमें लेहू जमा होनेसे ज्वर और जलन पैदा होती है। मलमूत्रके रास्ते, मुंह और नाकसे लेहू गिरता है तथा मूर्च्छा, श्वास, तृष्णा, आध्मान, अरुचि, मलमूत्र और वायुरोध, घर्मनिःसरण, चक्षुरक्तवर्ण, मुखमें आमिषगन्ध, शरीरमें दुर्गन्ध, हृदय और पार्श्वमें शूल ये सब उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

आमाशय भेद हो कर उसमें लेहू जमा होनेसे रक्त, वमन और अत्यन्त आध्मान तथा शूल होता है। पक्काशय भिद जानेसे वेदना, शरीर गौरव, नाभिका अधोभाग शीतल और कर्ण, नासिका तथा मुखसे लेहू गिरता है। आशय भेद न हो कर यदि अंत्रिभेद हो जाय तो सूक्ष्म पथसे वायु प्रविष्ट हो कर उसका भीतरी भाग भर जाता और आच्छन्न मुख वहुत भारी जान पड़ता है।

भिन्नकी चिकित्साका विषय इस प्रकार लिखा है—नाड़ी भेद करनेसे अकर्मण्य हो जाती है; किन्तु नाड़ी भिन्न न हो कर यदि लम्बित हो जाय, तो इस प्रकार उस नड़ीको हाथसे दवा कर यथास्थानमें घुसेड़ दे, कि जिससे शिरा आहत न होवे। घुसेड़नेके समय उस नाड़ीको पद्मपत्रमें रख कर हाथसे पकड़े। वकरीका घी, यज्ञडुम्वरका पत्ता, यष्टिमधु, नीलोत्पल, रक्तोत्पल, शुक्ल उत्पल, जीवक और ऋषभक इन सवोंको एक साथ पीस कर घृत पाक करना चाहिए। यह घी सव प्रकारकी आहत नाड़ीके लिए उपकारी है। पेटमें जो वार्त्तिके आकारका भेद है, वह निकल जानेसे शोना वृक्षको भस्म और चूर्ण उसके ऊपर विछा कर सूतेसे वांधना और अग्नितप्त शस्त्रसे वहिर्गत भागको छेद देना चाहिये। वाद इस व्रणके मुंह पर मधु लेप कर वांध दे और पूर्वभुक्त अन्नके परिपाक हो जानेसे घी पिलावे। घृतके अभावमें दुग्ध भी पिला सकते हैं। किन्तु यह दूध या घी शर्करा, यष्टिमधु, लाक्षा, गोक्षुरी और चिता इन सवोंके साथ पाक करके देना चाहिए। इससे व्रणजन्य वेदना और जलन नहीं होती है। उक्त रूप छेदन नहीं करनेसे उदराध्मान शूल अथवा मृत्यु भी हो जा सकती है। त्वक् के नीचे शिरा प्रभृतिको भेद अथवा नहीं भेद कर शिराप्रभृतिके भीतर शल्यके कोष्ठमें घुस कर पूर्वोक्त उपद्रव होने और उससे कोष्ठमें रक्तसञ्चय, हस्त, पाद और मुख शीतल, चक्षु रक्त वर्ण तथा मलमूत्रका अवरोध हो जानेसे रोगीको परित्याग कर देना चाहिए।

जो स्थान भिन्न हो कर अंतड़ियां वाहर निकल आती हैं, उस व्रणका मुंह अल्प अथवा अधिक प्रसारित होना उचित है। यदि निर्गत अन्त्रि उस हो कर न घुसाई जा सके, तो मुखको भी उतना ही प्रसारित करना उचित है। वाद उस अंत्रिको यथास्थानमें स्थापित कर उसी समय सिलाई कर देनी होती है। यदि अन्त्रि अपने स्थानसे अलग हो जाय, तो रोगीका श्वास रोक कर यथास्थान अन्त्रि स्थापन करे और पट्ट द्वारा वेष्टन कर उसमें घी लेप दे तथा वायु और पुरीषके मृदु रेचनके लिए चित्रातैलसंयुक्त कुछ गरम घी पिला देवे।

विशेष विवरण व्रण रोगमें देखो। (सुश्रुत चिकि० २ अ०)

६ नीलमका एक दोष जिसके कारण पहननेवालेको पति, पुत्रादिका शोक प्राप्त होना माना जाता है। ७ वह संख्या जो एकाईसे कुछ कम हो।

भिन्नक (सं० पु०) भिन्न संज्ञायां कन्। बौद्ध।

भिन्नकर्ण (सं० त्रि०) १ जिसके कान कुंडलादि पहननेसे कट गये हों। २ भिनकर्ण युक्त पशुभेद।

भिन्नकूट (सं० क्ली०) कामन्दकीय नीतिशास्त्रोक्त वल-व्यसनभेद। हस्ती, अश्व, रथ और पदाति आदिका नाम वल है। इस वलके नाना प्रकारके व्यसन हैं भिन्नकूट उनमेंसे एक है।

भिन्नक्रम (सं० पु०) भिन्नः क्रमो यत्र। वाक्यजात उपक्रमराहित्यरूप भग्न प्रक्रमाख्य काव्यगतदोष।

भग्नप्रक्रम देखो।

भिन्नखुर (सं० पु०) अश्व-पादरोग भेद, घोड़ेके पैरका एक रोग।

भिन्नगर्भ (सं० त्रि०) कामन्दकी नीति-उक्त वलव्यसन-भेद।

भिन्नगालिका (सं० स्त्री०) भिन्नं गालमस्याः कप्, टाप्, अत इत्वं। कर्कटी, ककड़ी।

भिन्नगुणन (सं० क्ली०) लीलावती-उक्त पूरणभेद, एक प्रकारका गुणा।

भिन्नघन (सं० पु०) भग्नांशका घन परिमाण।

भिन्नजातीय (सं० त्रि०) पृथग् जातीय, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायका।

भिन्नता (सं० स्त्री०) भिन्न होनेका भाव, अलगाव, भेद।

भिन्नत्व (सं० क्ली०) भिन्नस्य भाव वा त्व। भिन्नका भाव, जुदाई।

भिन्नदर्शिन् (सं० त्रि०) भिन्न-दृश्-णिनि। विभिन्न मतका देखनेवाला।

भिन्नदला (सं० स्त्री०) मूर्वालता।

भिन्नदृश (सं० स्त्री०) भिन्नं पश्यति दृश्-क्विप्। भिन्न-दर्शनकारी।

भिन्नपरिकर्मन् (सं० क्ली०) लीलावती-उक्त सच्छेदका सङ्कलन, व्यवकलनादिरूप अङ्क संस्काराष्टक।

भिन्नभागहर (सं० पु०) भग्नांशका भागहर।

भिन्नभिन्नात्मन् (सं० पु०) भिन्न भिन्न भेदयुक्त आत्मा यस्य। चणक, चना।

भिन्नयोजनी (सं० स्त्री०) भिन्न योजयतीति युज्-णिच् णिनि, ङीप्। पाषाणभेदकवृक्ष।

भिन्नलिङ्ग (सं० क्ली०) १ अलङ्कारभेद। जहां पर भिन्न वचन और भिन्न लिङ्ग द्वारा उपमा होती है, वहां यह अलङ्कार व्यवहृत होता है। २ पृथक् लिङ्ग, पृथक् चिह्न।

भिन्नवर्ग (सं० पु०) भग्नांशका वर्गमूल। २ भिन्न-जातीय।

भिन्नवर्चस (सं० त्रि०) भिन्नं वर्चः यस्य। द्रवीभूत मलक।

भिन्नवर्ण (सं० क्ली०) १ पृथक् वर्ण, भिन्न रंग। २ ब्राह्म-णादि विभिन्नवर्ण।

भिन्नवर्त्ती (सं० पु०) घोड़ेका शूलरोगभेद। इसका लक्षण—

"अतीसारेण संयुक्तं शूलं यस्योपजायते।
भिन्नवर्त्तिन्तु तं विद्यात्तुरङ्गं दीनचेष्टितम्॥"

(जयदत्त)

घोड़ेके अतिसारके साथ शूल होनेसे यह रोग होता है।

भिन्नवल्कल (सं० पु०) गुच्छकन्द।

भिन्नविट्का (सं० स्त्री०) भिन्ना विट् मलं यया। १ अलाबूलता। (त्रि०) २ द्रवीभूत मलक।

भिन्नविट्कता (सं० स्त्री०) पित्तजन्य मलभेदरोग।

भिन्नवृत्त (सं० त्रि०) विभिन्न छन्दोग्रथित।

भिन्नवृत्ति (सं० स्त्री०) विभिन्नरूप जीवनोपाय।

भिन्नव्यवकलित (सं० क्ली०) भग्नांशका व्यवकलन।

भिन्नसंकलित (सं० क्ली०) भग्नांशका सङ्कलन।

भिन्नएडन (सं० क्ली०) रसाञ्जन चूर्ण।

भिन्नार्थक (सं० त्रि०) भिन्नः अर्थो यस्य कप्। अन्य, दूसरा।

भियस् (सं० क्ली०) भी-बाहुलकात् कसुन्। भय, डर।

भिया (सं० स्त्री०) भीयते इति भी-(षिद्भिदादिभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४) इति अङ् इयङ्, टाप्। भय, डर।

भिया (हिं० पु०) भ्राता, भाई।

भिरि—मध्यप्रदेशके वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक प्राचीन गण्ड ग्राम। यहां प्रतिवर्ष जन्माष्टमीके उपलक्षमें एक मेला लगता है।

भिरिटिक (सं० पु०) वृद्ध शृगाल।

भिरिण्टिक (सं० पु०) श्वेत गुंजा।

भिरिया—सिंधुप्रदेशके हैदराबाद जिलांतर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६°५५´उ० तथा देशा० ६८° १४´ १५´´पू०के मध्य विस्तृत है। म्युनिस्पलिटीके तत्त्वावधानमें नगरकी बहुत श्रीवृद्धि हुई है।

भिलङ्ग—भागीरथीकी कलेवर-वर्द्धिनी पार्वतीय स्रोतस्विनीविशेष। यह युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलेसे निकल कर दक्षिण-पश्चिममें प्रायः २५ कोसका रास्ता तै कर भागीरथीके साथ मिलती है। यह हिंदूके निकट पुण्यसलिला समझी जाती है।

भिलनी (हिं० स्त्री०) १ भील जातिकी स्त्री। २ एक प्रकारका धारीदार कपड़ा या चारखाना।

भिलसा (विदिशा*)—मध्यभारतके सिंधु राज्यके अंतर्गत एक सुरक्षित प्राचीन नगर। भूपालराजधानीसे १३ कोस उत्तर-पूर्व वैत्रवती (वेत्वा) नदीके किनारे अक्षा० २३° ३१´ ३५´ उ० और देशा० ७७° ५०´ ३६´´ पू० नदीतीरवर्त्ती १५४६ फीट उच्च गण्डशैलके ऊपर स्थापित है। भिलसा-दुर्ग सुदृढ़ प्राचीर और परिखा द्वारा परिवेष्टित है।

ध्वंसावशेषके सिवा यहांका प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। इसके समीप वेशमनगरका ध्वंसावशेष नजर आता है। महावंश पढ़नेसे जाना जाता है, कि सम्राट् अशोक यहां पधारे थे। कालक्रमसे वेश्मनगर जब श्रीहीन हो गया तब भिलसा नगरकी ही समृद्धी जग उठी। भारतके निभृततम पार्वतीय प्रदेशमें अवस्थित रहनेके कारण भिलसाकी समृद्धिके ऊपर किसीकी दृष्टि न पड़ी। विभिन्न मतावलम्बी हिंदूसम्प्रदाय अथवा विधर्मी मुसलमानोंमेंसे कोई भी विद्वेषवशतः इसका सुप्राचीन कीर्त्तिस्तम्भसमूह नष्ट करनेमें यत्नवान् न हुए। बौद्धप्राधान्यके समय यहां अनेक बौद्धस्तूप निर्मित हुए थे। उनमेंसे कितने तो सम्राट् अशोकके पहले और कितने उन्हींके राज्यकालमें बने थे। महामौद्गलायन और सारिपुत्र प्रभृति कई एक बौद्धाचार्योंका, जिन्होंने अशोकप्रवर्त्तित ३य महाबोधिसङ्घमें योगदान दिया था, स्मृतिचिह्न आज भी विद्यमान है। निकटवर्त्ती साची, अंधरा, सातधारा और भोजपुर नामक स्थानमें भी बड़े बड़े बौद्धस्तूप नजर आते हैं। इससे प्रतीत होता है, कि एक समय यह जनपद प्रसिद्ध बौद्धक्षेत्ररूपमें गिना जाता था।

विभिन्न समयमें विभिन्न राजाओंके शासनाधीन रह कर यह नगर १५७० ई०में मुगलसम्राट् अकबर शाहके शासनाधीन हुआ। सम्राट् जहांगीरने १६॥० फीट लम्बी एक कमान द्वारा यह दुर्ग सज्जित किया था। इसका कारुकार्य्य देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है।

यहां भारतका सबसे बढ़ियां तम्बाकू और गेहूं उपजता है। भूपालसे ले कर ललितपुर तक रेलवे लाइन होनेसे स्थानीय वाणिज्यकी विशेष सुविधा हुई है।

वर्त्तमान समयमें यह स्थान एक तीर्थरूपमें गिना जाता है। वेत्वा (वेत्रवती) नदीके किनारे देवमंदिरादि और इधर उधर विक्षिप्त बौद्धस्तूप यात्रियोंके देखनेकी चीज है।

भिलाला—मध्यभारतवासी भील जातिकी शाखाविशेष। ये लोग राजपूत-पिता और भील मातासे अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। विन्ध्य-पर्वतके भील-सरदार इसी भिलालावंशसे उत्पन्न हुए हैं। इनका साधारण 'भील'की अपेक्षा अधिक सम्मान होता है। बहुतेरे 'ठाकुर' भी कहलाते हैं।

भिलावां (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध जंगली वृक्ष। यह सारे उत्तरी भारतमें आसामसे पंजाब तक और हिमालयकी तराईमें ३५०० फुटकी ऊंचाई तक पाया जाता है। भल्लातक देखो।

भिलोदिया—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्थाके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। भूपरिमाण ६ वर्गमील है। यहांके सरदार 'ठाकुर' उपाधिधारी हैं। ये लोग गायकवाड़राजको कर देते हैं। पर्वतकन्दरादिसे परिशोभित होने पर भी यहांकी काली मट्टी बहुत उर्वरा है। उत्पन्न द्रव्योंके मध्य रुई, उड़द, सरसोंका बीज, ईख और धान प्रधान है।

भिलोरा—बम्बई प्रदेशके महिकान्था जिलान्तर्गत एक ग्राम। यहांका श्रीचन्द्र प्रभुजीका मन्दिर समधिक विख्यात है।

* शिलालिपिमें इसका भैलस्वामी नाम पाया गया है।

भिलौरी—सतारा जिलेके भासगाँव उपविभागान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ५६´ ३०´´ उ० तथा देशा० ७४° ३०´ ४५´´ पू०के मध्य कृष्णा नदीके बाएं किनारे अवस्थित है।

भिल्ल (सं० पु०) भेलयति भिल-बाहुलकात् लक्। वन्य-जातिविशेष, भीलजाति। भील देखो।

भिल्लकेदार—हिमालयस्थ शिवलिङ्गविशेष। यह मन्दिर श्रीनगरसे १ मील पश्चिममें अवस्थित है। इन्द्रके परामर्शानुसार तृतीय पाण्डव अर्जुन भूतपति महादेवको खोजमें हिमालयदेशको गये थे। वहां पर भिल्ल (किरात)-मूर्त्ति धारण कर पार्वतीपतिने अर्जुनके साथ मल्ल-युद्ध किया था। (भारत वनपर्व) बहुतेरे इस भिल्लकेदार मूर्त्तिको 'विल्वकेदार' कहते हैं।

भिल्लगवी (सं० स्त्री०) भिल्लानां गवी। गवयी, नील गाय।

भिल्लग्राम—अयोध्याप्रदेशके हर्दोई जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। अभी यह बिल या बिल्वग्राम नामसे भी परिचित है। हर्दोई देखो।

भिल्लतरु (सं० पु०) भिल्लप्रियः तरुः। लोध्र पुष्प, लोध। भील लोग इस पुष्पके द्वारा अङ्गभूषणादि करते हैं। यह वृक्ष भीलोंको अतिशय प्रिय है इसीसे इसका नाम भिल्ल हुआ है।

भिल्लभूषण (सं० क्ली०) भिल्लं भूषयति भूषि भू ल्यु। गुञ्जावृक्ष।

भिल्लम—१ सेउणदेशाधिपति पांच यादववंशीयराजा। २ देवगिरिके यादववंशीय एक राजा।

यादवराजवंश शब्द देखो।

भिल्लमाल—गुर्जर जातिकी एक राजधानी। यह श्रीमाल नामसे भी प्रसिद्ध है। श्रीमाल देखो।

भिल्लवेश (सं० त्रि०) भिल्लरूपधारी। श्रीमालके राजा और ब्राह्मणादि सभी अधिवासी भीलकी तरह वेशभूषासे सज्जित हो कर तत्रत्य उत्सवमें आमोद उपभोग करते थे। (स्कन्दपु० श्रीमालमाहात्म्य ३२।४७।४८)

भिल्लादित्य—एक प्रतिहारराज भोटके पुत्र।

भिल्ली (सं० स्त्री०) भिल्ल-ङीप् भिल्लानां प्रियत्वादस्यास्तथात्वं। लोध्र, लोध।

भिल्लीनाथ—बालविवेकिनी नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भिल्लोट (सं० पु०) भिल्लप्रियमुटं पत्रं यस्य। लोध्र वृक्ष।

भिवन्दी—१ बम्बईके थाना जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १६°१२´से १६°३२´ उ० तथा देशा० ७२°५८´ से ७३° १५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४६ वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारके करीब है। इसमें इसी नामका १ शहर और १६६ ग्राम लगते हैं। तालुकका पश्चिम विभाग पर्वतमय है, अन्यान्य सभी स्थानोंमें अच्छी फसल लगती है। स्थानीय कम्बाड़ी नदीका जल विशेष स्वास्थ्यप्रद है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० १६° १८´ उ० तथा देशा० ७३° ३´ पू० बम्बईसे २६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या १०३५४ है। शहरमें धान, सूखी मछली, कपड़े, घास और लकड़ीका वाणिज्य चलता है। यहां सब-जजकी अदालत, अस्पताल और पांच वर्नाक्युलर स्कूल हैं।

भिवानी—१ पञ्जाबके हिसार जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २८° ३६´से २८°५६´ उ० तथा ७५° २६ से ७६° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७५० वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १२४४२६ है। इसमें इसी नामका १ शहर और १३१ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २८° ४८´ उ० तथा देशा० ७६° ८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३५६१७ है। जयपुर, जयशलमेर और बीकानेर आदि जनपदोंका विस्तृत वाणिज्य भिवानीके वाणिज्यकेन्द्रसे चलता है। शहरमें एक एङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक अस्पताल है।

भिवापुर—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ४६´ उ० तथा देशा० ७६° ३०´ ३३´´ पू०के मध्य विस्तृत है। १५५० ई०में भीमसा नामक एक गोंड़-सरदारने इस नगरको बसाया। उनका बनाया हुआ दुर्ग आज भी भग्नावस्थामें पड़ा है। १८७० ई० तक उनके किसी अन्य-वंशधरको बृटिश-सरकारकी ओरसे वेतन मिलता रहा था। नगर परिष्कार परिच्छन्न है। यहां सूती कपड़ेका वाणिज्य चलता है।

भिश्ती (अ० पु०) मशक द्वारा पानी ढोनेवाला व्यक्ति, सक्का।

भिषक् (सं० पु०) वैद्य।

भिषक्प्रिया (सं० स्त्री०) भिषजः प्रिया। गुड़ूची, गुड़ूच।

भिषग्जित (सं० क्ली०) भिषजा जितं। औषध, दवा।

भिषग्जिता (सं० स्त्री०) कन्द गुड़ूच।

भिषग्भद्रा (सं० स्त्री०) भिषजि औषधे वैद्ये वा भद्रा, शुभदायिका। भद्रदन्तिका।

भिषग्मातृ (सं० स्त्री०) भिषजां मातेव। अटरूष, अड़ूस।

भिषग्वरा (सं० स्त्री०) हरीतकी।

भिषङ्माता (सं० स्त्री०) अटरूष, अड़ूस।

भिषज (सं० पु०) बिभेति रोगो यस्मादिति भीलि भीत्यां (भिषः षुक् ह्रस्वश्च । उण् १।१३७) इति अजिः युगागमो ह्रस्वत्वञ्च। १ वैद्य। सुश्रुतादिमें वैद्यके लक्षण और गुणागुणका विषय इस प्रकार लिखा है,—धन्वन्तरिने अष्टाङ्ग आयुर्वेदका उपदेश दिया है। वैद्य इस अष्टाङ्ग आयुर्वेदमें विशेषरूपसे पारदर्शी हो कर चिकित्साकार्य करें। युद्धके समय भीरू व्यक्ति जिस प्रकार अवसन्न हो जाता है, चिकित्सा न सीख कर केवल शास्त्रज्ञानके बल पर चिकित्सा करनेवाले वैद्यको भी उसी प्रकार अवसन्न होना पड़ता है। सुतरां वैद्यको चिकित्सा और शास्त्र दोनों विषयका ज्ञान रहना आवश्यक है। जो वैद्य चिकित्साकार्यमें चतुर हो कर भी शास्त्रका अध्ययन नहीं करते, वे साधुओंके निकट मान्य नहीं हो सकते और राजाको चाहिए, कि ऐसे व्यक्तिको प्राण दण्ड दें। मूर्ख वैद्यके अमृत-सी ओषधि देने पर भी उससे कोई फल नहीं होता। वरन् वह शस्त्र, वज्र या विषकी नाई अपकारक होती है। जो वैद्य शस्त्रक्रिया और स्नेहादि क्रिया नहीं जानते, वे लोभवशतः रोगीको मार डालते हैं। राजाके ध्यान नहीं देनेसे ही ऐसे कुवैद्यका प्रादुर्भाव होता है। रथ जिस प्रकार दो चक्रयुक्त होनेसे देखनेमें सुन्दर लगता है, उसी प्रकार वैद्य भी यदि चिकित्सा और शास्त्र दोनों ही जानते हो तभी वे चिकित्साकार्यमें पारदर्शी हो सकते हैं। शिष्यको गुरुके निकट आयुर्वेदका अध्ययन करना चाहिये। गुरु अपने ज्ञानानुसार शिष्यको उपदेश दें और शिष्य भी दत्तचित्तसे उसका अनुशीलन करें। वैद्यको हेतु, द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाक, दोष, धातु, मलाशय, मर्म, शिरा, स्नायु, संधि, अस्थि, गर्भ-सम्भूत द्रव्यका विभाग, अदृश्यशल्यका उद्धार, व्रणनिरूपण, विविध भग्नदोषका तथा साध्य, याप्य और असाध्य रोगका विचार इत्यादि विषयोंके प्रति विशेष लक्ष्य रखना चाहिए। सिर्फ एक ही शास्त्रका अध्ययन करनेसे शास्त्रका मर्म मालूम नहीं हो सकता, अतएव भिषजको अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करना उचित है। जो गुरुमुखसे शास्त्र सुन कर उसका अभ्यास और तदनुसार काम करते हैं, वे ही भिषक् हैं। इसके अलावा सभी तस्कर (ठग) हैं। चिकित्साशास्त्रमें शल्यतन्त्र ही प्रधान है। औपधेनव, औरभ्र, सौश्रुत तथा पौष्कलावत ये सब ग्रन्थ इसके मूल हैं।

(सुश्रुत ३।४ अ०)

भावप्रकाशमें भिषक्के लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—जो चिकित्सा करते हैं, उन्हें भिषक् या वैद्य कहते हैं। उन्हें शास्त्रार्थमें विशेष व्युत्पन्न, दृष्टकर्मा, चिकित्सा-कुशल, सुसिद्धहस्त, शुचि, कार्यदक्ष, अभिनव औषध और चिकित्साके उपयोगी उपकरणोंसे सुसज्जित, शीघ्रतापूर्वक उपस्थितबुद्धि, धीशक्तिसम्पन्न, चिकित्साव्यवसायी, मिष्टभाषी सत्यवादी तथा धर्मपरायण होना चाहिए। उपर्युक्त गुणसम्पन्न भिषक् ही प्रशंसनीय हैं।

जो भिषक् कुत्सित वस्त्र परिधानकारी, अप्रियभाषी, अभिमानी, मनुष्यके साथ व्यवहारमें अनभिज्ञ और जो विना बुलाये स्वयं आ कर उपस्थित होवें, ये पांच प्रकारके दोषयुक्त वैद्य धन्वन्तरि सदृश होने पर भी निन्दनीय हैं। ऐसे वैद्यसे चिकित्सा नहीं करानी चाहिए।

भिषक्का कर्म।—लक्षणादि द्वारा सम्यक्रूपसे रोग देखना और उसको दूर करना ही भिषक्का कर्त्तव्य है; किन्तु ये आयुर्दाता नहीं हैं। किसी किसीका कहना है, कि उत्तम रीतिसे केवल व्याधिका निर्णय और रोगको दूर करना ही वैद्यका काम नहीं, पर परमायु प्रदान करनेमें भी वैद्य समर्थ हैं। क्योंकि एक सौ

प्रकारकी आगन्तुक मृत्यु वैद्यके द्वारा अपहृत होती है। धन्वन्तरिने एक सौ एक प्रकारकी मृत्यु बतलाई हैं जिनमेंसे कालकृत मृत्यु ही स्वाभाविक और अनिवार्य है। ऐसी मृत्यु निवारण करनेको किसीमें भी क्षमता नहीं। इस कालज मृत्युके अलावा अन्य एक सौ प्रकारकी मृत्युका निवारण करनेमें वैद्य समर्थ हैं। इसीलिए वे आयुःदाता हैं। (भावप्र०) विशेष विवरण वैद्य शब्दमें देखो। चिकित्सकका अन्न अभोज्य है। यदि कोई इनका अन्न खायें, तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है।* यदि कोई वैद्य औषध और मन्त्रको न जान कर चिकित्सा करें, तो उन्हें चोरकी तरह दण्ड देना चाहिए।

"अज्ञातौषधिमन्त्रस्तु यश्च व्याधेरतत्त्ववित्।
रोगिभ्योऽर्थं समादत्ते स दण्डयश्चौरवद्भिषक्॥"

२ औषध, दवा। ३ शतधन्वाके क्षेत्रज पुत्र। ४ विष्णु।

भिषजावर्त्त (सं० पु०) विष्णुका एक नाम।

भिष्टा (हिं० पु०) मल, गू।

भिष्मिका (सं० स्त्री०) दग्धान्न।

भिसज (हिं० पु०) वैद्य।

भिसटा (हिं० पु०) मल, गू।

भिसर (हिं० पु०) ब्राह्मण।

भिसि—मध्यप्रदेशके चाँदा जिलान्तर्गत एक नगर। यहाँ एक सुन्दर देवमन्दिर विद्यमान है।

भिसिणो (हिं० पु०) व्यसनी।

भिस्त (अ० स्त्री०) स्वर्ग, वैकुण्ठ।

भिस्मा (सं० स्त्री०) बभस्तीति भस् दीप्तौ बाहुलकात् स, छन्दसि बहुलमितीत्वम् ब्राह्मणभिस्मेति भाष्यप्रयोगाल्लोकेऽपि। अन्न, अनाज।

भिस्स (हिं० स्त्री०) कमलकी जड़, भसीड़।

भिस्सट (हिं० पु०) पद्मकन्द।

भिस्सटा (सं० स्त्री०) भिस्सामन्नं टीकते इति टीक-गतौ अन्येभ्योऽपीति ड, ततः पृषोदरादित्वात् साधुः। दग्धान्न, जला हुआ भात। अमरटीकासारसुन्दरीमें इसका रूपान्तर भिस्मिटा, भिष्मिटा भिष्मटा और भिस्मिका ऐसा रूप देखा जाता है।

भिस्सा (सं० स्त्री०) अन्न।

भिस्साण्ड (सं० क्ली०) शालूक, कमलकी जड़।

भिस्सिटा (सं० स्त्री०) भिस्मामन्नं टीकते इति टीक-ड पृषोदरादित्वात् साधुः। दग्धान्न।

भींगना (हिं० क्रि०) भिगना देखो।

भींगी (हिं० पु०) १ अलि, भंवरा। २ एक प्रकारका फतिंगा। इसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि वह किसी भी कृमिको अपने रूपमें ले आता है।

भींचना (हिं० क्रि०) १ खींचना, कसना। २ मूंदना, बंद करना।

भींजना (हिं० क्रि०) १ आर्द्र होना, गीला होना। २ लोगोंके साथ हेलमेल बढ़ाना। ३ पुलकित वा गद्गद हो जाना, प्रेममग्न हो जाना। ४ स्नान करना, नहाना। ५ समा जाना, घुस जाना।

भींट (हिं० पु०) भीट देखो।

भींत (हिं० स्त्री०) भीत देखो।

भी (सं० स्त्री०) भी भीत्यां सम्पदादित्वात् क्विप्। भय, डर।

भी (हिं० अव्य०) १ अवश्य, निश्चय करके। २ विशेष, ज्यादा।

भीक (सं० त्रि०) भीत, डरा हुआ।

भीकर (सं० लि०) भयकर, डरावना।

भीख (हिं० स्त्री०) १ किसी दरिद्रका दीनता दिखलाते हुए उदरपूर्त्तिके लिये कुछ मांगना, भिक्षा। २ भिक्षामें दी हुई चीज, खैरात।

भीखम (हिं० वि०) भयानक, डरावना।

भीगना (हिं० क्रि०) पानी या किसी तरल पदार्थके संयोगके कारण तर होना।

---

* "शूद्रान्नं ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रङ्गावतारिणः।
चिकित्सकस्य क्रूरस्य तथा स्त्री मृगजीविनां॥
शौण्डकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मासं व्रती भवेत्॥"

और भी—

"पूयश्चिकित्सितस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम्।
विष्ठावार्द्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम्॥"
(प्रायश्चित्तवि०)

भीचर (हिं० पु०) वीर, बहादुर।

भीजना (हिं० क्रि०) भींगना देखो।

भीट (हिं० पु०) १ टीलेदार भूमि, उभरी हुई पृथ्वी। २ एक प्रकारकी तौल जो प्रायः मन भरके बराबर होती है। ३ वह ऊंची भूमि जहां पानकी खेती होती है, भीटा।

भीटन (हिं० स्त्री०) भीटा देखो।

भीटा (हिं० पु०) १ ऊँची या टीलेदार जमीन। २ वह बनाई हुई ऊँची और ढालुआँ जमीन जिस पर पानकी खेती होती है और जो चारों ओरसे छाजन या लताओं आदिसे ढकी हुई होती है।

भीटा (वीठा)—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलान्तर्गत एक प्राचीन गण्डग्राम। बौद्धप्राधान्यके समय यह स्थान उन्नतिकी चरम सीमा पर पहुंच गया था। भारतीय शक राजाओंकी प्रतिष्ठित बौद्ध-प्रतिमूर्त्ति खोदित लिपि, गुप्त-वंशीय राजा कुमारगुप्त महेन्द्रकी स्थापित स्तम्भलिपि तथा बौद्ध मुद्रादिसे इसका विशेष प्रमाण मिलता है। बौद्धोंके अत्यन्त आग्रहसे यह स्थान 'विभाभयपत्तन' नामक शोभामयी नगरीमें पर्यवसित हुआ था।

वीठा, देवरिया, विकार, मानकुमार, पञ्चमुख और सारिपुत्र प्रभृति परस्पर संश्लिष्ट ग्रामोंकी वर्त्तमान ध्वंसावशिष्ट स्तूपराशिकी कहानी जाननेसे साफ साफ मालूम पड़ता है, कि एक समय ये सब सुप्राचीन वीठा-भयपत्तन नगरोके कीर्त्तिकलापके मध्य गिने जाते थे।

इस प्राचीन नगरका कुछ अंश यमुनावक्षस्थ 'सुयश-देव' नामक गण्डशैलके ऊपर अब भी नजर आता है। यहां पहले एक हिन्दूमन्दिर था। सम्राट् शाहजहान्के सेनापति शाइस्ता खाँने १०५५ हिजरीमें उसे ध्वंस कर डाला। बाद हिन्दुओंने यहां पुनः एक लिङ्ग स्थापित किया है। प्रतिवर्ष कार्त्तिकके महीनेमें उक्त देवोद्देशसे एक मेला लगता है, जिसमें बहुतसे तीर्थयात्री इकट्ठे होते हैं। पार्श्ववर्त्ती दोरिया नामक ग्राममें अश्वघोष बोधि-सत्वकी प्रतिमूर्त्ति शृङ्गारीदेवीके नामसे पूजित होती है। उक्त देवरियाके 'डिह' नामक स्थानमें एक प्राचीन दुर्गका निदर्शन पाया जाता है। मानकुमारके उत्तरपश्चिमकी ओर पञ्चपहाड़ नामक स्थानमें एक बौद्ध सङ्घारामका ध्वंसावशेष नजर आता है।

इधर उधर विक्षिप्त बौद्धस्तम्भमूर्त्तिके अलावा यहां हिन्दू प्राधान्यकी बहुत-सी स्मृतियां पड़ी हुई हैं। ६वीं शताब्दी (६०१ सम्वत)की उत्कीर्ण शिलालिपिसे ब्रह्मण्य-धर्मविस्तारका आभास पाया जाता है। सीता की-रसोई नामक पर्वतगुहा, नरसिंह, शिव, नन्दी, विष्णुके अवतारकी मूर्त्ति, चण्डिकामाता, काली प्रभृति देवमूर्त्ति और पर्वतगात्रमें खोदित पञ्चपाण्डवमूर्त्ति यहाँके हिन्दू-प्राधान्यका प्रकृष्टतम निदर्शन है।

भीड़ (हिं० स्त्री०) १ संकट, आपत्ति। २ एक ही स्थान पर बहुतसे आदमियोंका जमाव, जन-समूह।

भीड़भड़क्का (हिं० पु०) भीड़-भाड़, बहुतसे आदमियोंका समूह।

भीड़भाड़ (हिं० स्त्री०) जनसमूह, भीड़।

भीड़ा (हिं० स्त्री०) १ भीड़ देखो। (वि०) २ संकुचित, तंग।

भीड़ी (हिं० स्त्री०) रामतरोई, भिंडी।

भीणी (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद।

(भारत शल्यप० ४७ अ०)

भीत (सं० क्ली०) भी-क्त। १ भय, डर। (पु०) २ मंत्र-भेद। (त्रि०) ३ भययुक्त, डरावना।

भीत (हिं० स्त्री०) १ भित्तिका, दीवार। २ विभाग करने-वाला परदा। ३ चटाई। ४ छत, गच। ५ खण्ड, टुकड़ा। ६ स्थान, जगह। ७ छिद्र, दरार। ८ त्रुटि, कसर। ९ अवसर, मौका। (वि०) १० डरा हुआ, जिसे भय लगा हो।

भीतर (हिं० क्रि० वि०) १ अन्दर, में। (पु०) २ अंतःकरण, हृदय। ३ रनिवास, जनानखाना।

भीतरा (हिं० वि०) भीतर या जनानखानेमें जानेवाला, स्त्रियोंमें आने जानेवाला।

भीतरिया (हिं० पु०) १ वह जो भीतर रहता हो। २ वल्लभीय ठाकुरके वे प्रधान पुजारी आदि जो मंदिरके भीतर मूर्त्तिके पास रहते हैं।

भीतरी (हिं० वि०) १ भीतरवाला, अंदरका।

भीतरीटांग (हिं० स्त्री०) कुश्तीका एक पेंच।

भीति (सं० स्त्री०) भी-क्तिन्। १ भय, डर। २ कम्प।

भीति (हिं० स्त्री०) दीवार।

भीतिकर (सं० त्रि०) भयङ्कर, डरावना।

भीतिकारी (सं० त्रि०) भयानक, डरावना, खौफनाक।

भीतिकृत् (सं० त्रि०) भीतिं करोति कृ-क्विप्। भयकारक, डरावना।

भीती (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक अनुचरी या मातृकाका नाम।

भीनना (हिं० क्रि०) समा जाना, भर जाना।

भीनाल—राजपूतानेके अजमीर जिलान्तर्गत एक नगर। यहां भीनाल राज्यका प्रासाद अवस्थित है।

भीम (सं० त्रि०) बिभेत्यस्मादिति भी-(भियः षुग्वा, उण् १।१४७) बिभेतेर्मक् धातोर्वा षुगागमश्च इति मक्। १ भयहेतु। पर्याय—भैरव, दारुण, भीषण, भीष्म, घोर, भयानक, भयङ्कर, प्रतिभय। (पु०) २ भयानक रस। ३ शिव, महादेव। ४ विष्णु, भगवान्। ५ महादेवकी आठ मूर्त्तियोंमेंसे आकाशमूर्त्ति। "भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः" (तिथित०) पार्थिव शिवपूजामें शिवकी आठ मूर्त्तिको पूजा करनी होती है। ६ गन्धर्वविशेष। ७ अम्ल-वेतस। ८ आङ्गिरस वह्निभेद, आङ्गिरस नामकी अग्नि। ९ दानवभेद, एक राक्षसका नाम। १० अमावसुवंशीय नृपभेद। ११ सात्वतवंशीय नृपभेद। १२ अष्टादशाक्षर मन्त्रभेद।

"आदौ मध्ये तथा चान्ते चतुरस्रुतो मनुः।
ज्ञातव्यो भीम इत्येष यः स्यादष्टादशाक्षरः॥" (तन्त्रसार)

१३ मध्यम पाण्डव भीमसेन। पर्याय—वीरवेणु, वृकोदर, बकजित्, कीचकजित्, किर्मीरजित्, जरासन्ध-जित्, हिडिम्बजित्, कटव्रण, नागबल, गुणावल।

वायुके औरस और कुन्तीके गर्भसे भीमका जन्म हुआ। एक दिन पाण्डु शिकार खेलनेको वन गए। वहां उन्होंने मैथुन धर्ममें प्रवृत्त एक मृगरूपी ऋषिको मार डाला। इसी कारण ऋषिने पाण्डुको शाप दिया, 'तुम जब मैथुनमें प्रवृत्त होगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी। इस प्रकार पाण्डु अभिशप्त हो कर अत्यन्त कष्टसे समय विताने लगे। अनंतर पाण्डुने एक दिन कुंतीसे कहा, 'मेरे द्वारा पुत्रोत्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं, अतएव तुम मेरे निमित्त पुत्रोत्पादन करो।' इस पर कुंतीने स्वामी नियोगानुसार दुर्वासाके वर-प्रभावसे धर्मसे परम धार्मिक एक पुत्र प्राप्त किया। पाण्डुने इस धर्मपरायण पुत्रको पा कर पुनः कुंतीसे कहा, 'पण्डित लोग क्षत्रियको बलश्रेष्ठ कहते हैं; अतएव तुम एक बलवान् पुत्रके लिये पार्थना करो।' बाद कुंतीने स्वामीकी यह बात सुन कर वायुका आह्वान किया। इस पर महाबल वायुने मृगारूढ़ हो कुंतीके निकट आ कर कहा, 'तुम क्या चाहती हो?' कुंती लज्जित हो शिर नीचे कर बोली, 'मुझे महाकाय बलवान्, सर्वदर्पप्रभञ्जन एक पुत्र प्रदान करें।' अनन्तर वायुसे महाबाहु भीमपराक्रम भीमने जन्मग्रहण किया। इस पुत्रके जन्म लेने पर ही आकाशवाणी हुई, कि बालक सभी बलवान व्यक्तियोंमें श्रेष्ठ होगा। वृकोदरके जन्म लेते ही एक अद्भुत घटना घटी। भीम माताकी गोदसे गिर गए और उनके गात्रस्पर्शसे वहांकी शिला चूर-चूर हो गई। जिस दिन भीमका जन्म हुआ था, उसी दिन दुर्योधनने भी जन्म लिया। भीम अत्यन्त बलशाली थे—दुर्योधनादि कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। अतः शुरूसे ही उनके ऊपर दुर्योधन क्रुध रहते थे। क्रमशः क्रोध और अवस्थाके वशीभूत हो कर दुर्योधनने विषान्न प्रयोगसे भीमको मार डालनेका विचार किया। बादमें हुआ भी वैसा ही। भीम विषाक्त अन्न खा कर बेहोश हो गए। दुष्ट दुर्योधनने मौका पा कर भीमको लता-पाश द्वारा अपने ही हाथोंसे बांध कर जलमें फेंक दिया। भीम जलमें डूब कर नागभवनमें नागकुमारोंके ऊपर जा गिरे। सर्पगण चारों तरफसे भीमको डसने लगे जिससे उनके शरीरका विष उतर गया। अनन्तर भीम वहां पर नागराज द्वारा रक्षित तथा अमृतपान-से परितृप्त हो दश हजार मतवाले हाथीके तुल्य बलवान् हो कर अपने घर लौटे और अपने भाइयोंके सामने दुर्योधनका सारा षड्यन्त्र कह सुनाया। तब युधिष्ठिरने भीमसे कहा, 'यह सब वृत्तान्त किसीसे भी न कहना। अबसे तुम लोग सचेत हो कर रहना। भीमकी मृत्यु नहीं हुई, देख कर दुर्योधनने पुनः भीमके भोजन द्रव्यमें जहरीला विष मिला कर दिया। इस बार भीमने अनायास ही उस विषको पचा डाला। बाद दुर्योधन, कर्ण और शकुनि तीनों मिल कर इन सबोंको

मार डालनेके नाना उपाय ढूढ़ने लगे। पाण्डवगण इसे जान कर भी किसी प्रकारका विद्वेष प्रकाशित नहीं करते थे। ये सबके सब द्रोणाचार्यसे अस्त्रविद्या सीखते थे। भीमने गदायुद्धमें विशेष पारदर्शिता प्राप्त की। दुर्योधन भी गदायुद्धमें उन्हींके बराबर हो गये। बाद दुर्योधन उन पांचों भाइयोंको जतुगृहमें जला कर मार डालनेकी चेष्टा की। वारणावतनगरीमें जतुगृह बनाया गया। दुर्योधनने जतुगृहदाहके लिए पुरोचन नामक एक व्यक्तिको नियोग किया। पाण्डवगण लगभग एक वर्ष तक उसी जतुगृहमें रहे। एक दिन भीमने दुर्योधनके षड्यंत्रको ताड़ गये और जतुगृहमें आग लगा कर माता कुंती तथा भाईयोंके साथ वहांसे चल चले। कुंती और युधिष्ठिरादि थोड़ी दूर जा कर ही बहुत थक गए। इस पर भीम कुंती और भाइयोंको अपने कंधे पर बिठा बहुत दूर ले गए। जब वे निद्रासे बड़े ही व्याकुल हो गए, तब वे सबके सब एक वृक्षके नीचे सो रहे,—केवल भीमने जग कर रात भर पहरा दिया।

जहां पर वे सोये थे, वहांसे थोड़ी दूर पर हिड़म्ब नामक एक भयानक राक्षस रहता था। हिड़म्बने मनुष्यकी गन्ध पा कर अपनी बहन हिड़िम्बाको उनके निकट भेजा। हिड़िम्बा जब उनका विनाश करनेके लिए आई, तब वह भीमके सुकुमार रूपको देख मोहित हो गई। इधर हिड़म्ब बहनके लौटनेमें विलम्ब देख अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और भीम पर टूट पड़ा। बाद भीमके साथ घोरतर युद्ध छिड़ा। युद्धमें भीमने उसे मार कर वनके भयको दूर कर दिया। कुन्ती तथा युधिष्ठिरके आज्ञानुसार हिड़िम्बाके साथ भीमका विवाह हुआ। हिड़िम्बा युधिष्ठिरकी आज्ञासे दिनमें ही भीमके साथ यथेच्छा विहार कर प्रतिदिन उन्हें पहुंचा जाती थी। उसके गर्भसे घटोत्कच नामक एक पुत्र हुआ जो कुरुपाण्डवके युद्धमें असाधारण वीरता दिखा कर अन्तमें कर्णके हाथ मारा गया। भीम माता तथा भाइयोंके साथ एकचक्रा नगर गये और वहां उन्होंने वक नामक राक्षसको मार कर उस नगरको उपद्रवरहित कर दिया।

अर्जुन पाञ्चालराज-नन्दिनी द्रौपदीको लक्ष्यभेद कर ले आए; माताके आज्ञानुसार पांचों भाइयोंने उनसे विवाह किया। बादमें युधिष्ठिर जब इन्द्रप्रस्थके राजा हुए तब राजसूययज्ञके लिए भीम पहले अर्जुन और कृष्णके साथ मगध गए। वहां जरासन्धको मार कर उन्होंने सब राजाओंको कारागारसे छुड़ाया। जरासन्ध देखो।

यज्ञके उपलक्षमें भीमने दिग्विजयार्थ पूर्वसे ले कर बंग देश तक जीत लिया। उनके वीरत्वसे पाञ्चाल, विदेह, दशार्ण, रोचमान, पुलिन्द, कुमार, कोशल, उत्तरकोशल, मल्लभूमि, भल्लाटदेश, काशी, मत्स्य, मलद, वत्स, भर्ग, भोगवान, शर्मक, वर्मक, शक, वर्वर, किरात, मगध, मोदागिरि, पुण्ड्र, कौशिकीक, ताम्रलिप्त, कर्कटक, वङ्ग और सुह्मदेश पाण्डवके शासनाधीन हुए। राजा दुर्योधनने राजसूययज्ञमें कपट द्यूतक्रीड़ासे युधिष्ठिरको पराभव तथा द्रौपदीको जीत कर उन (द्रौपदी)-का अपमान किया। द्रौपदी देखो। इस पर भीमने प्रतिज्ञा की "मैं सन्मुख समरमें दुर्योधनके सामने उनके अपरापर भाइयोंको मार कर दुःशासनके वक्षस्थलका रक्त पीऊंगा और अन्तमें गदायुद्धमें दुर्योधनका ऊरुदेश चूर चूर कर डालूंगा।

अनन्तर दूसरी बारकी द्यूतक्रीड़ासे पांचों पाण्डव तथा द्रौपदी वन गईं। भीमने बारह वर्ष वनवासके अभ्यन्तर किर्मीर और जटासुरका विनाश तथा यक्षोंके साथ युद्ध कर मणिमानका काम तमाम किया और कुबेरानुचरोंको विध्वस्त कर उन्हें शापसे छुड़ाया। एक समय वे वनमें भ्रमण करते हुए अजगररूपी नहुष द्वारा आक्रान्त हुए थे।
नहुष और मणिमान देखो।

घोषयात्राके समय गन्धर्वगण जब दुर्योधनको हरण कर ले चले, तब भीमने युधिष्ठिरके आदेशसे अर्जुनका साथ कर गन्धर्वराज चित्रसेनको हराया और कर इस प्रकार दुर्योधनकी लाज रखा। जिस समय जयद्रथने द्रौपदीको हरण करनेकी चेष्टा की थी, उस समय उन्होंने अर्जुनके साथ मिल कर उसे यथोचित दण्ड दिया था। अज्ञातवासके समय वे वल्लभ नाम धारण कर सूपकाररूपमें (रसोइया) विराटके घर ठहरे थे। बाद कीचकने जब द्रौपदीके सतीत्वनाशको चेष्टा की थी, तब रात्रिकालमें ही भीमने कीचक तथा उपकीचकोंका विनाश किया। भीमने अपने भुजबलसे त्रिगर्त्तपति सुशर्मासे विराट्राज्यका उद्धार किया था।

कुरुक्षेत्रयुद्धमें विशेष वीरता दिखा कर इन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। दुर्योधनादि सौ भाई उन्हींके हाथ मारे गए। युद्धावसान पर महाराज युधिष्ठिरके साथ इन्होंने राज्य सुखभोग कर महाप्रस्थान किया। महाप्रस्थानके समय वे युधिष्ठिरके साथ उपवासनिरत तथा योगपरायण हो क्रमगत उत्तरको ओर हिमालय पर्वत पर गए। अनन्तर सुमेरु पर्वत पार कर यथाक्रम द्रौपदी, सहदेव, नकुल तथा अर्जुन कालके मुखमें पतित हुए। बाद थोड़ी दूर जा कर भीम पृथिवी पर गिर पड़े और उच्चैःस्वरसे धर्मराजको सम्बोधन कर कहा 'महाराज! मैं आपका बड़ा प्रिय था; आज न जानें किस पापसे मेरा पृथिवी पर पतन हुआ।'

इस पर धर्मराजने उनसे कहा,—तुम दूसरेको भक्ष्य वस्तु न दे कर स्वयं अपरिमित भोजन खा लेते थे और अपनेको अद्वितीय बलशाली बतला कर अहङ्कार करते थे, इस पापके कारण तुम भूतल पर पतित हुए।

१४ विदर्भाधिपति। महाभारतमें इनका विवरण इस प्रकार लिखा है,—भीम नामके विदर्भदेशमें एक अत्यन्त बलशाली राजा थे। बहुत दिन तक उनके कोई सन्तान न होनेके कारण वे सर्वदा दुःखित रहते थे। एक समय दमन नामक एक महर्षि उनके यहां आये। धर्मज्ञ भीमने महिषीके साथ अपत्यकाम हो कर महर्षिको सत्कार द्वारा सन्तुष्ट किया। महर्षिके वरप्रभावसे भीमके दम, दाती और दमन नामक तीन पुत्र तथा दमयन्ती नामकी एक कन्या हुई। नल-दमयन्ती देखो।

१५ महर्षि विश्वामित्रके पूर्वपुरुष, अमावसुरके पुत्र और पुरूरवाके पौत्र। १६ कुम्भकरणके पुत्र, रावणका एक राक्षस-सेनापति। १७ गन्धर्वका नाम। १८ पुरुवंशीय ईलिके पुत्र। १९ महादेव, शिव।

भीम—१ पद्यावलीधृत एक कवि। २ परिभाषार्थमञ्जरीकी परिभाषेन्दुशेखर नामक टीकाके रचयिता।

भीम—१ द्वारकाके एक हिंदूनरपति। ये १४३७ ई०में महमूद बैकाड़ासे पराजित हुए। २ चोलराजभेद। ३ सह्याद्रिवर्णित दो राजा। ४ जयशलमीरके महारावल वंशोद्भव एक राजा। ५ जम्बूके एक हिंदूराजा। ये १८२१ ई० में गक्कर-सरदार यशरतके हाथसे मारे गए। ६ शिलाहार वंशीय एक राजा, इन्द्रराजके पुत्र। कोङ्कणप्रदेशमें ये राज्य करते थे। ७ त्रिगर्त्त या कोट-काङ्गड़ाके अधपति। इनके पिताका नाम था राजा विजयराम।

भीम-आचार्य—नृसिंहस्तोत्रके प्रणेता।

भीमक (सं० पु०) एक प्रकारके गण जो पार्वतीके क्रोधसे उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश १६८ अ०) २ भीम देखो।

भीमकलम्बक—मल्लारिमाहात्म्यटीकाके रचयिता।

भीमकुमार (सं० पु०) भीमसेनके पुत्र घटोत्कच।

भीमगढ़—सह्याद्रि-शिखरस्थित एक दुर्ग। यह खानापुरसे ८ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यह दुर्ग उत्तर दक्षिणमें १३८० फुट लम्बा और पूर्वपश्चिममें ८२५ फुट चौड़ा। यह दुरारोह और अत्युच्च शिखर पर अवस्थित है। महाराष्ट्रपति शिवाजीने १६८० ई०में अपने मृत्युकाल तक इस दुर्गको अपने अधिकारमें रखा था। १७१६ ई०में १६ जिलाओंके साथ यह दुर्ग साहुके हाथ सपुर्द हुआ। १७८७ ई०में किसी किसी नैसर्गी-सरदारने वल्लभगढ़, गन्धर्वगढ़ और भीमगढ़दुर्गको कोल्हापुर राजासे छीन लिया। इसके कुछ समय बाद ही विद्रोही आततायियोंको परास्त कर कोल्हापुरराजने भीमगढ़ पर पुनः अधिकार जमाया। १८४४ ई०में बेलगांवकी विद्रोही सेनाओंका दमन करनेके लिये बृटिशसरकारने दुर्गको अपने हाथ ले लिया।

भीमगुप्त—काश्मीरके एक राजा। त्रिभुवनगुप्तकी मृत्युके बाद ये गद्दी पर बैठे, पर थोड़े ही दिनके बाद राक्षसी पितामही दिद्दाके षड्यन्त्रसे मारे गये (राजतर० ६ तरं०)

भीमघोड़ा—युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलान्तर्गत एक हिन्दू-तीर्थ। यह अक्षा० २९°५८´ उ० तथा देशा० ७८°१४´ पू०के मध्य अवस्थित है। देहरादूनके दक्षिण पर्वत-कन्दरके मध्य ३५३ फुट ऊंचे एक प्रलम्ब पर्वतशिखर पर अवस्थित है। एक छोटा कुण्ड ही इस तीर्थक्षेत्रका प्रधान स्थान है। गङ्गाकी गात्रवाहिनी एक छोटी स्रोतस्विनी इसके कलेवरको हमेशा बढ़ाती रहती है। प्रवाद है कि, द्वितीय पाण्डव भीमसेन घोड़े पर सवार हो गङ्गाको गतिको रोक रहे थे; घोड़ेके खुरके आघातसे शिवालय पर्वतमें गुहा बन गई। जो सब तीर्थयात्री पाप खण्डनकी मनशासे उक्त कुण्डमें स्नान

करने आते हैं, वे इस घोड़ागुड़ा और स्थानीय देवमन्दिर दर्शन कर पवित्र देहसे घर लौटते हैं।

भीमचण्डी (सं० स्त्री) एक देवीका नाम।

भीमचन्द्र (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

भीमजानु (सं० पु०) यम-सभास्थित एक राजा।

भीमजी—कच्छके जाड़ेजावंशीय एक राजा, राजा अमरजीके पुत्र।

भीमटकलिञ्जरपति—५ नाटकके प्रणेता।

भीमता (सं० स्त्री०) भीमस्य भावः भीम-तल टाप्। भीमत्व, भय करता।

भीमताल—युक्तप्रदेशके कुमायुन जिलान्तर्गत एक छोटा ह्रद। यह अक्षा० २६° १६' उ० तथा देशा० ७६° ४२' पू० समुद्रपृष्ठसे ४५०० फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। पर्वत पर होनेके कारण इसका प्राकृतिक सौन्दर्य अतीव मनोहर है। इसके गर्भसे निकली हुई जलराशिकी एक छोटी धारा रामगङ्गामें आ कर मिल गई है।

भीमतिथि (सं० पु०) भीमोपोसिता तिथिः मध्यपदलो-पक०। भीम-एकादशी, माघमासकी शुक्ला एकादशी तिथि।

भीमथोड़ी—बम्बई प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक उप-विभाग भूपरिमाण १०३७ वर्गमील है।

भीमदास—धातुपाठके रचयिता।

भीमदासभूपाल—वाक्यसुधाटीकाके रचयिता।

भीमदेव (१म)—गुर्जराधिपति चालुक्यवंशीय एक राजा, दुर्लभराजके पुत्र। ये एक महावीर थे। सिन्धुप्रदेश पर इन्हें ससैन्य चढ़ाई करते देख मालवपति भोजदेव-ने गुर्जर पर आक्रमण किया और अनहिलवाड़पत्तनको जीता। पीछे चेदीराज कर्णकी सहायतासे इन्होंने मालवराजको निहत कर उनके धाराराज्यको अपने कब्जे कर लिया। चालुक्य राजवंश देखो।

भीमदेव (२य)—चालुक्यवंशीय एक दूसरा राजा। आप महाराजाधिराजकी पदवीसे गुर्जरका शासन करते थे।

भीमदेव (३) चालुक्यवंशीय अस्वराजके पुत्र। इन्होंने विक्रमादित्यको परास्त किया था।

भीमदेव (४)—१ कोण मण्डलाधिपति राजा सत्याश्रयके पुत्र। २ काबुलके चतुर्थ हिन्दू-राजा। आप ६५० ई०में विद्यमान थे।

भीमदेव—अनहिलवाड़के एक हिन्दू राजा। सोमनाथ आक्रमणके समय इन्होंने महमूद गजनीके साथ युद्ध किया था।

भीमदैवज्ञ—सर्वार्थ चिन्तामणि नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भीमद्वादशी (सं० स्त्री०) १ भीमोपोसिताद्वादशी, माघकी शुक्ला द्वादशी। २ व्रतभेद। भीमने इस द्वादशीके दिन व्रतका अनुष्ठान किया था, इसीसे यह नाम पड़ा। यह व्रत अशेष-पुण्यजनक है। हेमाद्रि-व्रतखण्डमें इस व्रतके विधान और व्यवस्थादिका विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुछ नहीं लिखा गया।

भीमनगर—त्रिगर्त्ताधिपति भीम द्वारा प्रतिष्ठित नगर, कोटकाङ्ड़ाकी अन्यतम राजधानी। राजा भीमने यहां पर एक दुर्ग बनवाया था। १००८-६ ई०में सुलतान महमूदने काङ्गड़ा चढ़ाईके समय इस दुर्गको तहस नहस कर डाला था। नागरकोट देखो।

भीमनरेन्द्र—सङ्गीतसुधा नामक ग्रन्थके रचयिता।

भीमनाथ—बम्बईप्रदेशके अहमदाबाद जिलांतर्गत एक गण्डग्राम। प्रवाद है, कि यहां हिड़िम्बा राक्षसी रहती थी। माताके साथ पांचो पाण्डव इस वनमें ठहरे थे। विना शिवपूजा किये अर्जुन जल नहीं पीयेंगे, जान कर भीमने उन्हें प्रतारणापूर्वक जमीनमें एक पत्थर गाड़ दिया और अर्जुनसे शिवपूजा करनेको कहा। तद-नुसार महामति अर्जुनने वहां जा कर कायमनोवाक्यसे शिवाराधना की और बादमें घर लौट भोजनादि किये। भीमने जब अपनी चातुराई बतला दी, तब कुंती आदि सबके सब वहाँ पहुंचे। भीमने जा कर वन्यपुष्पादिको हटा प्रस्तर-मूर्त्ति बाहर निकाली। यह शिव नहीं है, इसे प्रतिपन्न करने-के लिए ज्यों ही भीम दण्डाघात करनेको उद्यत हुए, त्यों ही प्रस्तरगात्रसे दूध निकलने लगा। ऐसा देख सबके सब बड़े ही आश्चर्यान्वित हुए और उसी समयसे उक्त मूर्त्ति भीमनाथ महादेव नामसे प्रसिद्ध हुई।

इन्हीं महादेवके नाम पर ग्रामका नाम भीमनाथ पड़ा है। १५३५ सम्वत्में महन्त माधवगिरि और बाद ईश्वरगिरि तथा बुद्धगिरि द्वारा स्थानीय मन्दिर और ग्रामकी बड़ी

हुई उन्नति हुई। देवपूजा और सदाव्रत पालनके लिए यहांके महन्त महाराजको नौ ग्राम मिले हैं।

प्रत्येक वर्षके श्रावण मासकी शुक्लाद्वादशी, पूर्णिमा, कृष्णा षष्ठी और अमावस्याको यहां ब्राह्मण-भोजन होता है। अमावस्यामें यहां तोन दिन तक एक मेला लगता है। द्वारकायात्रिगण प्रायः भीमनाथके दर्शनके लिए यहां आते हैं। सबोंको देवोच्छिष्ट प्रसाद अथवा चावल आदि मिलता है।

यहांके महन्त विवाह नहीं कर सकते—वे अतिथि, वैरागी, गोसाईं प्रभृतिसे एक चेला बना लेते हैं। पूर्वोक्त माधवगिरिके परवर्त्ती महन्तोंके नाम मिलना दुर्लभ है। जो माधवगिरि यहांकी वनमाला काट कर वस्ती बसा गये हैं, उन्हींके परवर्त्ती अमृतगिरि, भावगिरि, आसनगिरि, गुमानगिरि, क्षेमगिरि, भगवान्‌गिरि, बुधगिरि तथा ईश्वरगिरि प्रभृतिके नाम पाये जाते हैं। शेषोक्त ईश्वरगिरि ही है। (१८६३-८५ ई०में) ८० हजार रुपये खर्च कर इस स्थानका संस्कार कर गये हैं।

भीमनाथ—रघुनन्दनके तिथितत्त्वोद्धृत एक पण्डित।

भीमनाद (सं० पु०) भीमो भैरवो नादो यस्य। १ सिंह, शेर। भीमो नादः कर्मधा०। २ भयानक शब्द। (त्रि०) ३ भयानकशब्दविशिष्ट।

भीमनायक (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

काश्मीर देखो।

भीमपराक्रम—एक पाण्ड्यराज। पाण्ड्यराजवंश देखो।

भीमपराक्रम (सं० त्रि०) भीमः पराक्रमो यस्य। १ भयानक पराक्रम। (पु०) २ विष्णु। ३ रघुनन्दनकृत मलमासतत्त्वधृत एक व्यक्ति।

भीमपलाशी (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक संकर रागिनी। इसके गानेका समय २१ दण्डसे २४ दण्ड तक है। यह धनाश्री और पूर्वीको मिला कर बनाई गई है। इसमें गान्धार, धैवत और निषद तीनों स्वर कोमल और बाकी शुद्ध लगते हैं। इसमें पंचम वादी और मध्यम संवादी होता है। कुछ लोग इसे श्रीरागकी पुत्रवधू भी मानते हैं।

भीमपाल—एक राजा। आप वृक्षायुर्वेदके रचयिता सुरपालके प्रतिपालक थे।

भीमपाल—१ पंचालराज्यके अन्तर्गत वदामयूताधिपति एक राजा, राष्ट्रकूटवंशीय देवपालके पुत्र। इनके पुत्र सुरपालने वृक्षायुर्वेद नामक ग्रन्थकी रचना की। २ काबुलाधिपति साहिवंशीय शेष हिन्दूराजा। १०२५ ई०में इनका देहान्त हुआ।

भीमपुर (सं० क्ली०) भीमस्य पुरं ६-तत्। विदर्भराजकी नगरी, कुण्डिनपुर।

भीमबल (सं० त्रि०) भीमः बलं यस्य। १ भयानक वीर्य। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ३ एक प्रकारकी अग्नि।

भीमभट्ट (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकार। पुराण सर्वस्वमें इनका उल्लेख है।

भीममुख (सं० त्रि०) १ भयङ्कर मुखाकृतिविशिष्ट, डरावना मुंहवाला। (पु०) २ वाणभेद। (रामायण ४।४१।५)

भीमर (सं० क्ली०) युद्ध, लड़ाई।

भीमयू (सं० स्त्री०) आत्मनो भीमं वृषमिच्छति क्यच्, वेदे निपा. निपातनादुन्। वृषभेच्छु स्त्रीगवी।

(ऋक् ५।५६।३)

भीमरथ (सं० पु०) भीमो भयानको रथोऽस्य। १ तामस मनु-कल्पमें उत्पन्न असुरविशेष। कूर्मरूपी हरिने इस असुरका बध किया था। २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ३ विकृतिके एक पुत्रका नाम। ४ धन्वन्तरिके एक पौत्रका नाम। ५ सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। ६ केतुमानके पुत्रका नाम। ७ पाण्ड्यवंशीय एक राजा।

भीमरथदेव—महाशिवगुप्तात्मज एक त्रिकलिङ्गाधिपति।

भीमरथी (सं० स्त्री०) १ मनुष्यकी अतिवृद्धावस्था।

"सप्तसप्ततिके वर्षे सप्तमे मासि सप्तमी।
रात्रिर्भीमरथीनाम नराणां दुरतिक्रमा॥" (शब्दमाला)

७७वें वर्षके सातवें मासकी सातवीं रातका नाम भीमरथी है। मनुष्यके लिये यह रात बहुत कठिन होती है और जो इसे पार कर जाता है वह बहुत पुण्यात्मा होता है। २ नदीभेद। यह सह्य पर्वतसे निकली है। इस नदीमें स्नानादि करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं।

"गोदावरी भीमरथी कृष्णावेण्यादिकास्तथा।
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः॥"

(विष्णुपु० २।३।११)

भीमरथी—रोमक-सिधांत-वर्णित-देशभेद ।

भीमराज (हिं० पु०) कालेरंगकी एक प्रसिद्ध चिड़िया। इसकी टांगें छोटी और पंजे बड़े होते हैं। इसकी दुममें केवल १० पर होते हैं। यह प्रायः कीड़े मकोड़े खाती है और कभी कभी चिड़ियों पर भी आक्रमण करती है। भृङ्गराज देखो।

भीमराव नाड़गीर—एक महाराष्ट्र राजद्रोही। इसने १८५७-५८ ई०में अंगरेजोंके विरुद्ध खड़ा हो कर दम्बल राज-कोषको लूटा और कोपल दुर्गको दखल किया। पीछे अंगरेज-सेनापति ह्युजेस (Major Hughe)-ने उन्हें निहत कर कोपलदुर्ग दखल किया था।

भीमराज—१ सह्याद्रि वर्णित एक राजा। २ इदरके एक राजपूत राजा।

भीमरात्रि (सं० स्त्री०) भयानक रात्रि।

भीमरिका (सं० स्त्री०) सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णकी एक कन्या।

भीमरोमक—जनपदविशेष। (मत्स्यपु० १२०।४७)

भीमल (सं० त्रि०) भियोमलः सम्बन्धो यतः। भयङ्कर, डरावना।

भीमलाट—मध्यप्रदेशके वालाघाट जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यहां भीमराज द्वारा प्रतिष्ठित एक लाट वा प्रस्तर-स्तम्भ विद्यमान है। यहां गोंड़ जातिका ही वास अधिक देखा जाता है। यहांका प्रशान्त छाया-विस्तारी वटवृक्ष दाक्षिणात्यके मध्य सर्वश्रेष्ठ है।

भीमवर्मा—१ पल्लववंशीय एक राजा। २ कौशाम्बीके अधिपति सम्राट् स्कन्दगुप्तका एक सामन्त।

भीमवल्लभराज—दाक्षिणात्यके एक हिन्दू राजा।

भीमवांध—विहार और उड़िसाके मुङ्गेर जिलान्तर्गत एक उष्ण प्रस्रवण। यह ऋषिकुण्डसे ८ कोस दक्षिण महादेव पर्वतके ऊपर अक्षा० २५° ४' उ० तथा देशा० ८६° २' पू०के मध्य अवस्थित है। मार्चमासमें इसका उत्ताप १४४°-१५०° (F) तक उठता है।

भीमविक्रम (सं० पु०) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। २ सह्याद्रि वर्णित एक राजा। (त्रि०) ३ भयानक विक्रमशाली।

भीमविक्रान्त (सं० पु०) भीमश्चासौ। विक्रान्तश्चेति। १ सिंह, शेर। (त्रि०) २ भयानक विक्रमविशिष्ट।

भीमवेग (सं० पु०) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। २ दानवभेद। (त्रि०) ३ भयानक वेगविशिष्ट।

भीमवेगरव (सं० पु०) द्रुतगामी विकट शब्द।

भीमवेर—पञ्जावप्रदेशके गुजरात जिलान्तर्गत हिमालयके पादसे निकली हुई एक जलधारा। पार्वतीय उपत्यका और ग्रामको पार कर यह नदी चन्द्रभागाके साथ मिलती है।

भीमवेश (सं० त्रि०) १ भयानक वेशयुक्त। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ३ एक दानवका नाम।

भीमवेशवत् (सं० पु०) धृतराष्ट्रके पुत्रका नाम।

भीमशङ्कर—वारह प्रसिद्ध शिवलिङ्गोंमेंसे एक।

भीमशर (सं० पु०) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। २ भयानक शर। (त्रि०) ३ भयानक शरविशिष्ट।

भीमशासन (सं० पु०) भीमं शासनं यस्य। १ यम। २ कठोर शासनकारी। ३ कठोर शासन।

भीमशाह—एक राजा।

भीमशुक्ल (सं० पु०) एक राजपुत्र।

भीमसाही—काश्मीरके एक राजा। महामन्त्री इन्द्रभानुने इनकी सभाको उज्ज्वल किया था।

भीमसिंह (सं० पु०) एक सुविज्ञ कवि। शार्ङ्गधर-पद्धतिमें इनके रचित श्लोक उद्धृत हुए हैं।

भीमसिंह—१ मेवाड़के एक राजा। ये लक्ष्मणसिंहके चाचा थे। लक्ष्मणकी नवालिगीमें ये राजकार्यकी देख भाल करते थे। उस समय इनकी वीरता चारों ओर फैल गई थी।

इन्होंने चौहानवंशीय हमीरशङ्ककी विख्यात कन्या पद्मिनीदेवीसे विवाह किया था। यही विवाह शिशोदीय-कुलका काल हुआ था। पद्मिनीके अलोकसामान्य रूप-लावण्यकी कथा धीरे धीरे दिल्लीश्वर अला-उद्दिनके कानमें पहुंची। चाहे राजपूत-शक्ति विनाशकी इच्छासे हो चाहे पद्मिनीके रूपलावण्य पर मुग्ध हो कर हो उन्होंने दलवलके साथ चित्तोर पर आक्रमण किया। वहुत दिनों तक घेरा डाले रहनेके वाद भी वे अकृतकार्य हुए। वाद उन्होंने यह घोषणा कर दी, कि पद्मिनीको पा कर ही वे चित्तोर छोड़ देंगे। इतना सुनते ही राजपूतगण और भी दूने उत्साहसे लड़ने लगे। दोनों दलके घमसान

युद्धमें बहुत-से लोगोंके मारे जानेके सिवा और कोई फल न निकला। अनन्तर पुनः अलाउद्दीनने सन्धिका प्रस्ताव कर कहा, कि सिर्फ एक ही वार आइनेमें उस अनुपमा मोहिनीकी छाया देख कर ही वे चुपचाप स्वदेश लौट जांयगे। इस पर विश्वास कर भीमसिंह स्वयं अतिथिरूपी अलाउद्दीनके साथ वातचीत करते हुए दुर्गकी ओर आ ही रहे थे, कि इतनेमें कपटाचारीके गुप्त-सेना दल एकाएक राजपूतवीरको वन्दी कर शिविरमें ले चले। शत्रुको कपटजालमें जड़ीभूत कर दुराचार मुसलमानने हुकुम निकाला कि, मैं जव तक पद्मिनी न पाऊंगा, तव तक भीमसिंहको नहीं छोड़ सकता। यह भयावह सम्वाद चित्तोरमें पहुंचते ही सभी भग्नहृदय तथा हताश हो गए। स्वयं पद्मिनीदेवीने यवन-कवलित स्वामीको छुड़ानेका एक षड़यन्त्र रचा। अपना चचा गोरा तथा गोराके भतीजे वीरवर वादलके परामर्शानुसार पद्मिनीका आत्मसर्पण ही स्थिर हुआ। किंतु पद्मिनीके वदले छद्मवेशी सात सौ शिविकावाही राजपूत सेना मुसलमान छावनीमें भेजी गई। यवनराजने भीमसिंहको अपनी प्रियतमा पत्नीके साथ अंतिम मुलाकात करनेके लिए आध घण्टेका समय दिया। इतने हीमें भीमसिंह कोले कर कई एक शिविका चित्तोर राजधानोकी ओर चल चली। मूढ़ अलाउद्दीनने समझा कि, जो सव राजपूत-ललनाएं पद्मिनीके साथ चिरविदाई लेने आई थीं, वे ही अपनी अपनी शिविकामें वैठ चित्तोर जा रही हैं और उनकी सहवासिनगण शिविकामें ही हैं। क्रमशः जव आध घंटा वीत गया तव अलाउद्दीनके मनमें सन्देह हुआ। पत्नीके साथ भीमसिंहका सम्भाषण उन्हें अच्छा न लगा—उनके हृदयमें ईर्षा उत्पन्न हुई। उन्होंने तुरत ही शिविकाके कपड़े उतार लेनेका आदेश दिया। कपड़े उतार लिये गए और उससे सशस्त्र सेनादल निकल पड़ा। दोनों दलमें घोरतर युद्ध होने लगा।

इधर अलाउद्दीनके आदेशानुसार एक दलसेना शत्रुके पीछे दौड़ाई गई। भीमसिंह घोड़े पर सवार हो वहुत जल्द ही चित्तोरदुर्ग पहुंच गए। यहां गोरा राजपूत-राज भीमसिंहकी पत्नी तथा कुलकामिनियोंके सम्मानार्थ उन्मत्तकी तरह लड़े। इस युद्धमें चित्तोराधिष्ठात्री देवीके आदेशानुसार अरिसिंह, अजयसिंह प्रभृति राणाके ग्यारहों पुत्र मारे गए। इस वार राणा भीमसिंह देवीकी रक्त पिपासाशान्तिके लिए स्वयं आत्मविसर्जनमें कृतसंकल्प हुए। यह भयावह व्यापार काममें लानेके पहले 'जहर व्रत-का' अनुष्ठान हुआ। इसमें राजपूत-कुलकामिनीगण कुलमाहात्म्यरक्षामें समर्थ हुई थीं।

पद्मिनी देखो।

जहरव्रत उद्यापित होने पर राणा भीमसिंह लड़ाईको तैयारी करने लगे। उन्होंने एकमात्र अवशिष्ट कनिष्ठ पुत्रको कैलवारा प्रदेश भेज कर निश्चिन्त मनसे समरानल प्रज्वलित किया। उनके अधीनस्थ सामन्तगण राजपूत-कुलकी गौरवरक्षार्थं उत्साह पूर्वक अग्रसर हुए। रणमदसे उन्मत्त तातारसैन्यके साथ रणकेशरी राजपूत वीरोंका घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। इसी युद्धमें भीमसिंह मारे गए और चित्तोरनगर मुसलमानोंके हाथ लगा। वाद उन्होंने इसे तहस नहस कर डाला।

२ उक्त वंशके एक राजा, हामीरके पुत्र। ये १७७८ ई०में विद्यमान थे।

भीमसिंह (राव)—मारवाड़के एक अधिपति। ये मारवाड़पति विजयसिंहके पौत्र तथा भूमसिंहके पुत्र थे। राजा विजयसिंहको वार-वधूविलासमें आसक्त देख कर सामन्तोंने वीरप्राण भीमसिंहको सिंहासन देनेका सङ्कल्प किया।

सामन्तोंको एक साथ वैठे देख वृद्ध राजा विजयसिंह वड़े ही विचलित हो गये। वे उन्हें खुश करनेके लिए स्वयं सामन्त-शिविरमें पहुंचे। इधर राव भीमसिंह राउसके सामन्तराजके साथ मिल कर वारवधूका सव कुछ लूट नागरकी ओर अग्रसर हुए। वहीं पर उन्होंने छावनी डाली। यह सुन कर अन्य सभी सामन्तगण एकाएक उद्विग्न हो पड़े। इतने हीमें विजयसिंह सामन्त शिविरका परित्याग कर भीमसिंहके पास पहुंचे।

उन्होंने भीमसिंहको आश्वासनमें भुला सुजात और शिवयानी दुर्गका अधिस्वामी वना दिया। मारवाड़का सिंहासन न पा कर युवक भीमसिंह उसी छोटे प्रदेशको पा सन्तुष्ट रहे।

भीमसिंहको देशान्तर भेज कर राजा विजयसिंहने

अपने औरस-जात पुत्र जालिमसिंहको गढ़वाल प्रदेशका पूर्णाधिकार दे भीमसिंहको मारवाड़से निकाल देनेका आदेश किया। जालिमने पिताकी आज्ञा पालनार्थ भीमसिंह पर धावा मारा। घोरतर युद्धके बाद भीमसिंह परास्त हो कर प्राणभयसे जयशलमीरकी ओर भाग गये। उसी समय वृद्ध विजयसिंहने मानवलीला संवरण की। उनकी मृत्युके कुछ पहलेसे ही सामन्त-विद्रोह उपस्थित हुआ था।

भीमसिंहने जयशलमीरमें ही रह कर पितामहकी मृत्युका सम्वाद सुना और तुरत ही अपने अनुचरोंके साथ योधपुर आ धमके। इधर राज्यके प्रकृत उत्तराधिकारी जालिमसिंह राज्यमें प्रवेश करनेके लिए मैरत-नामक स्थानमें शुभमूहूर्त्तकी प्रतीक्षा करने लगे। चतुर भीमसिंहने उन्हें परास्त कर राजमुकुट अपने शिर पर धारण किया। जब भीमसिंहने सुना, कि जालिम सिंहासनलाभकी इच्छासे अग्रसर हुए हैं, तब उन्होंने जालिमको पकड़नेके लिए एक दलसेना भेजी। भिलारा नामक स्थान पर दोनों दलमें मुठभेड़ हुई। अन्तमें जालिमने हार कर मेवारेश्वरकी शरण ली।

मारवाड़-सिंहासन पर बैठ कर राजा भीमसिंहने नरपिशाच सम्राट् औरङ्गजेबकी नाईं संहारमूर्त्ति धारण की। अपने राजसिंहासनको कण्टकस्वरूप जान कर उन्होंने पहले अपने चचाको तथा पालक पिताको मार डाला। पीछे अपने कुल चचाको मार कर उनके लड़कोंके ध्वंससाधनमें प्रवृत्त हुए। इसी प्रकार एक एक कर आत्मीय स्वजनको मार उन्होंने राठोरकुलको कलङ्कित किया था।

अन्तमें उन्होंने गुमानसिंहके पुत्र मानसिंहको मारनेकी इच्छासे झलावर दुर्ग घेर लिया। कई वर्ष अवरोधमें कृतकार्य न होनेके कारण भीमसिंह सेनानायकोंके ऊपर अवरोध-भार सौंप कर राजधानी लौटे। जब सामन्तगण मानसिंहको वन्दी न कर सके, तब राजा भीमसिंहने उन सबोंको विशेषरूपसे लाञ्छित तथा तिरस्कृत किया। इस प्रकार अपमानित हो कर सामन्तोंने उनका आश्रय छोड़ दिया और स्वतन्त्ररूपसे विद्रोहाचरण करने लगे। सामन्तोंके ऐसे आचरण पर विरक्त तथा मानसिंहके वन्दीकरणसे हताश हो कर भीमसिंह वेतनभोगी विजातीय सेनाओंकी सहायता लेनेको बाध्य हुए।

इस सेनाको साथ ले उन्होंने उदावत्-सम्प्रदायके सामन्ताधिकृत निजामप्रदेश और दुर्ग तथा अन्यान्य सामन्तोंकी वहुत-सी भूवृत्ति अपना ली।

निजामजयसे स्पर्द्धित तथा उत्साहित हो कर वेतनभोगी सेनादलने पुनः भीमसिंहकी अधिनायकतामें झलावर नगर अधिकार किया, किन्तु थोड़े ही सेनाके साथ मानसिंह दुर्गमें अवरुद्ध रहे। लगभग ग्यारह वर्ष तक झलावर दुर्गमें अवरुद्ध रह कर मानसिंहने अन्न कष्टका सहन करते हुए आत्मरक्षा की थी। इसी अवरोधके समय भीमसिंहकी मृत्यु हुई। १७९२ ई०से ले कर १८०३ ई० तक उन्होंने वड़े उत्कण्ठाके साथ राज्यभोग किया था।

भीमसिंहपण्डित—शार्ङ्गधरपद्धतिधृत एक कवि।

भीमसेन—१ एक टीकाकार। इन्होंने १७२३ ई०में सुधासागर नामक काव्यप्रकाश टीका तथा हर्षदेवकृत रत्नावलीकी टीका रची। २ दुर्गामाहात्म्य टीकाके प्रणेता। ३ धातुपाठ तथा भैमी व्याकरणके रचयिता। रायमुकुट और पद्मनाभने इनका उल्लेख किया है। ४ वैद्यबोध संग्रह नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। ५ सूपशास्त्र यां पाकशास्त्रके प्रणयकर्त्ता। ये किरातनगर निवासी थे। ६ यक्षभेद। ७ एक तान्त्रिकाचार्य।

भीमसेन—१ एक प्राचीन नरपति। इन्होंने तोरमानके पहले भारतका शासन किया था। गुप्ताक्षरमें लिखा है, कि म॰॰ रुचिताङ्कित उनकी प्रचलित मुद्रा पाई गई है। २ एक हिन्दू राजा। ये ५२ संवत्‌में विद्यमान थे।

भीमसेन (सं० पु०) १ मध्यम पाण्डव, भीम। भीम देखो। २ गन्धर्वभेद। ३ कर्पूरभेद। ४ जनमेजयके एक भाईका नाम। ५ पौरवप्राचीन जनमेजयके एक पुत्रका नाम।

भीमसेनकवि—दत्तसंग्रह नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भीमसेन थापा—नेपालके एक राजा।

भीमसेन गदा—इलाहाबादमें जो ४ शिलालिपियुक्त सुप्राचीन प्रस्तरलाट विद्यमान हैं। उसे ही स्थानीय लोग 'भीमसेनकी गदा' कहते हैं।

भीमसेनी (हिं० पु०) १ भीमसेनी कपूर। (वि०) २ भीमसेन संबंधी, भीमसेनका।

भीमसेनी एकादशी (हिं० स्त्री०) १ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी, निर्जला एकादशी। २ माघ शुक्ला एकादशी।

भीमसेनोकपूर (हिं० पु०) कपूर देखो।

भीमस्वामी—एक सुविज्ञ ब्राह्मण। राजा वर्मदेव इनके प्रतिपालक थे।

भीमहास (सं० क्लो०) भीमे ग्रीष्मादौ हासः प्रकाशः यस्य। इन्द्रतूल, गुड्डोकी डोरी।

भीमा (सं० स्त्री०) भी मक्, स्त्रियां टाप्। १ रोचनाख्य गन्धद्रव्य, रोचन नामका गन्धद्रव्य। २ कशा, चाबुक। ३ नदीविशेष। ४ दुर्गादेवी। चण्डीमें लिखा है, कि भगवती दुर्गाने हिमाचल पर भयानक रूप धारण कर मुनियोंके त्राणके लिये राक्षसोंका संहार किया था, इसी कारण उनका नाम 'भीमादेवी' पड़ा है।

"पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले।
रक्षांसि क्षययिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्॥
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः।
भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति॥"
(मार्कण्डेयपु० देवीमा०)

भीमा—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक नदी। यह सह्याद्रि पर्वतके अक्षा० १९° ४' ३०" उ० तथा देशा० ७३° ३४' ३० पू० भीमाशङ्कर ग्रामके समीपमें निकल कर पूना, अहमदनगर, शोलापुर और कालादगी जिलेके मध्य होती हुई दक्षिण पूर्वकी ओर कृष्णानदीमें मिलती है।

भीमाकर (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। इनके पुत्रका नाम इन्द्राकर था।

भीमाग्नि—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत एक गिरिसङ्कट। वेल्लरी जिलेसे सन्दूर जानेमें इसी राहसे जाना होता है। यह अक्षा० १५° ७' उ० तथा देशा० ७६° ३' पू०के मध्य विस्तृत है।

भीमादि (सं० पु०) भीम आदि करके पाणिन्युक्त शब्दगण। यथा—भीम, भीम, भयानक, वाह, चरु, प्रस्कन्दन, प्रपात, समुद्र, स्रुव, स्रुक्, दृष्टि, रक्षः, शंकु, शुक, मूर्ख, खलति। (पाणिनि)

भीमादेव (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। (राजतर० ८।२१)

भीमार—राजपूतानेके योधपुर राज्यान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २६° १६' उ० तथा देशा० ७१° ३३' पू०के मध्य विस्तृत है। यहां चौहान-राजपूतोंका वास है। पोकर्णसे वालम जानेके रास्ते पर अवस्थित होनेसे यहांके वाणिज्यकी उन्नति हुई है।

भीमावरम्—मन्द्राजप्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक तालुक। भूपरिमाण ३२१ वर्गमील है। उन्दी, वेलपुर, छिन्नकापडम्, गोष्ठा नदी और अकुवीड़ आदि खाल और प्रणाली इस तालुकके मध्य हो कर वह गई है, इस कारण खेतीवारीमें बड़ी सुविधा है। वीरवासरमनगर यहांका प्रधान स्थान है। एतद्भिन्न भीमावरम्, उन्दी, अकुवीड़ और गुणुपुड़ी आदि नगरोंमें चावलका विस्तृत कारोबार है।

भीमावरम्—मन्द्राज-प्रदेशके नेल्लूर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। शृङ्गार-आयकोण्डाके पवित्र देवतीर्थके खर्च वर्चके लिये यह ग्राम दान किया गया है। निकटवर्त्ती गण्डशैलके ऊपर अगस्त्यमुनि द्वारा प्रतिष्ठित एक विष्णु मन्दिर और एक गुहा विद्यमान है। इस गुहाके सामने एक भीषणाकार प्रस्तर-प्रतिमूर्त्ति दण्डायमान है। प्रतिवर्ष वैशाखमासमें यहां नरसिंह स्वामी विष्णुमूर्त्तिके उद्देशसे एक मेला लगता है।

भीमाशङ्कर—बम्बईप्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक शिवमन्दिर। यह पश्चिमघाट शैलके शिखर पर भीमानदीके किनारे अवस्थित है। दाक्षिणात्यमें यह एक प्राचीन तीर्थ समझा जाता है। यहांके प्राचीन भग्नमन्दिरके बदलेमें नानाफड़नवीशने महादेवका एक नया मन्दिर बनवा दिया था। उनकी विधवा पत्नी भी इस मन्दिरके शिखरको सुशोभित कर गई हैं। यहां दो कुण्ड हैं जिनमेंसे एक भीमा नदीका उत्पत्तिस्थान समझा जाता है।

इस तीर्थक्षेत्रके उत्पत्ति-सम्बन्धमें यहां पौराणिकी किंवदन्ती इस प्रकार प्रचलित है;—अयोध्यापति सूर्यवंशीय राजाने मृगयाकालमें अज्ञातवशतः हरिणरूपी दो ऋषियोंको मार डाला। राजा इस पापके प्रायश्चित्तके लिये महादेवको तपस्यामें लग गये। देवादिदेवने उनकी तपस्या पर मुग्ध हो कर उन्हें वर मांगनेको कहा।

त्रिपुरासुरको युद्धमें पराजित करके महेश्वर उस समय श्रान्ति दूर कर रहे थे। उनके कपालभागको घर्माक्त देख कर भीमकने उस कपालदेशनिःसृत घर्मराशिसे सर्वलोक हितकर एक सरिद्वरके लिये प्रार्थना की। तदनुसार भीमानदी उत्पन्न हुई। प्रतिवर्ष शिवरात्रि-उपलक्षमें यहां एक यात्रा-उत्सव होता है।

भीमू (हिं० पु०) भीमसेन।

भीमेश (सं० क्ली०) शैवतीर्थभेद। यहां पर भीमेश नामक शिवलिङ्ग अवस्थित है।

भीमेश्वर (सं० क्ली०) शिवपुराणोक्त शैवतीर्थभेद।

भीमेश्वर तीर्थ—विदर्भराज भीम द्वारा स्थापित शैवतीर्थ-विशेष। यहां भीमेश्वर शिवलिङ्ग विद्यमान है।

(तापीखण्ड)

भीमेश्वरभट्ट—रससर्वस्व नामक अलङ्कार-ग्रथके प्रणेता। इनके पिताका नाम रङ्गभट्ट था।

भीमैकादशी (सं० स्त्री०) भीमेन उपोसिता एकादशी, मध्यपदलोपी कर्मधा०। माघ मासकी शुक्ला एकादशी। यह एकादशी-व्रत सवोंको करना उचित है। इस व्रतके करनेसे विष्णुका परमपद अनायास ही लाभ होता है। वैष्णवके मतानुसार जीवन भरमें यदि किसी प्रकारका धर्मानुष्ठान न किया जाय, तो शयन, उत्थान, पार्श्वपरिवर्त्तन और भीम एकादशी, शिवचतुर्दशी और महाष्टमी इन सब व्रतोंका अनुष्ठान करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं और अन्तमें विष्णुपद प्राप्त होता है। दशमीके दिन संयम कर के एकादशीके दिन उपवास और द्वादशीके दिन पारण करना होता है।

"ततः पुण्यामिमां भीमतिथिं पापप्रणाशिनीम्।
उपोष्य विधिनानेन गच्छेद्विष्णोः परं पदम्।
भीमतिथिं भैमीत्वेन ख्यातामेकादशीं॥"

(एकादशीतत्त्व)

एकादशीको उपवास करके द्वादशीके दिन विष्णुपूजा करनी होती है, यह दिन भीमद्वादशी नामसे प्रसिद्ध है। इस व्रतका विधान मत्स्यपुराणमें सविस्तार लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं लिखा गया।

भीमोत्तर (सं० पु०) कुष्माण्ड, कुम्हड़ा।

भीमोदरी (सं० स्त्री०) उमा, दुर्गाका एक नाम।

भीमोरा—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़ जिलान्तर्गत एक छोटा राज्य। यह अक्षा० २२° उ० तथा देशा० ७१° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। भीमोरा नगर इसकी राजधानी है।

भीम्राथली (हिं० पु०) घोड़ोंकी एक जाति।

भीर (सं० पु०) जातिविशेष। आभीर देखो।

भीर (हिं० स्त्री०) १ भीड़ देखो। २ कष्ट, दुःख। ३ सङ्कट, विपत्ति। (वि०) ४ भयभीत, डरा हुआ।

भीरा (हिं० पु०) १ मध्य भारत तथा दक्षिण भारतमें मिलनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। इसकी लकड़ियोंसे शहतीर बनते हैं और इसमेंसे गोंद, रंग और तेल निकलता है। (वि०) २ डरपोक, कायर।

भीराराय—भाटियाके एक हिन्दू राजा। १००६ ई०में गजनीपति महमूदने इन्हें युद्धमें मारा था।

भीरी (हिं० स्त्री०) अरहरका दाल।

भीरु (सं० त्रि०) बिभेतीति भी-भये (भियः क्रुक्लुकनौ। पा ३।२।१७४) १ भयशील, डरपोक, बुजदिल। पर्याय—त्रस्नु, भीरुक, भीलुक, भीलु। (स्त्री०) २ भयशीला स्त्री। ३ शतावरी। ४ कण्टकारी, भटकटैया। ५ शतपदिका। ६ अजा, बकरी। ७ छाया। (पु०) ८ श्रृगाल, गीदड़। ९ व्याघ्र, शेर। १० इक्षुभेद, ऊखकी एक जाति। ११ मल्लिका पुष्प, बेला फूल।

भीरुक (सं० क्ली०) भीरु-संज्ञायां कन्। १ वन, जंगल। २ पेचक, उल्लू। ३ इक्षुभेद, ऊखकी एक जाति। ४ मत्स्य भेद, एक प्रकारकी मछली। ५ रौप्य, चांदी। (त्रि०) ६ भययुक्त, डरपोक।

भीरुकच्छ (सं० पु०) भरुकच्छका पाठान्तर। भरोच-प्रदेश।

भीरुचेतस (सं० त्रि०) भीरु भयशील चेतो यस्य। १ भीरुहृदय, कायर। (क्ली०) २ भयशील चित्त। ३ हरिण।

भीरुण (सं० त्रि०) भयावह, डरावना।

भीरुता (सं० स्त्री०) भीरूणां भावः तल्-टाप्। १ भीरुत्व, डरपोकपन। २ भय, डर।

भीरुताई (हिं० स्त्री०) भीरुता देखो।

भीरुपत्नी (सं० स्त्री०) भीरूणीव पत्राण्यस्या, गौरादित्वात् ङीष्। शतमूली।

भीरुरन्ध्र (सं० पु०) १ भयजनक रन्ध्र। २ चूल्हा।

भीरुष्ठान (सं० क्ली०) भीरूणां स्थानं 'अम्बादेः स्थस्येति' षत्वं। भीरुओंका स्थान।

भीरुसत्त्व (सं० त्रि०) भयशील चित्तयुक्त।

भीरुहृदय (सं० पु०) भीरु हृदयं यस्य। हरिण, हिरन।

भीरू (सं० स्त्री०) भीरु (ऊङ् तुः। पा ४।१।६६) इति ऊङ्। भयशीला नारी डरपोक औरत।

भील—मारवाड़की आदिमनिवासी वन्य तथा पार्वत्य जातिविशेष। राजपूतानेके अरवली पहाड़से ले कर सिन्धु और राजपूतानेकी मरुभूमि तक तथा खानदेश और अह्मदाबादके वन एवं तुङ्गशिखर पर इनका वास देखा जाता है।

बहुत-से मनुष्य इन भीलोंको भारतवर्षकी आदिम जातियोंमेंसे एक बतलाते हैं। संस्कृत साहित्यमें ये भिल्ल तथा किसीके मतानुसार भीर और आभीर भी कहलाते हैं। आभीर नाम सुन कर कोई ऐसा भी समझ सकते हैं, कि सम्प्रति जो 'अहीर' या ग्वाला कहे जाते हैं, वे ही आभीर हैं। अहीर शब्द देखो। पाश्चात्य दुर्दान्त भीलगण उक्त जातिके नहीं हो सकते, किंतु साहित्यदर्पणके "आभीर शावरीचापि काष्ठपत्रोपजीविषु।" (अर्थात्) काष्ठजीव आभीरी तथा पत्रोपजीवीगण शावरी भाषामें बातचीत करते हैं। इससे जाना जाता है, कि पूर्व समयमें आभीरियोंकी वन्यकाष्ठसंग्रह करना ही उपजीविका थी और अब भी सभी जगह भीलोंकी यही वृत्ति है। किन्तु गोपजातीय अहीरोंके मध्य ऐसी प्रथा नहीं है। किसीका कहना है, कि कालक्रमसे आभीरोंने ही भीर और भीरस भील नाम प्राप्त किया है। यदुवंश-ध्वंसके बाद जब अर्जुन गुजरातसे कृष्णवनिताओंको साथ ले इन्द्रप्रस्थ आ रहे थे, उसी समय रास्तेमें आभीरदस्युने महावीर गाण्डीवधन्वासे उन कृष्णप्रेयसियोंको छीन लिया था। वही आभीरगण वर्त्तमान भीलोंके पूर्वपुरुष हैं। महाभारतके समय उनकी जैसी उपजीविका थी, अब भी वैसी ही है। किंतु प्राचीन हिंदू धर्मशास्त्रमें ये 'भिल्ल' नामक अन्त्यज जाति कह कर प्रसिद्ध हैं। भिल्ल देखो।

टलेमीने इन भीलोंका फिल्लितो (Phyllitae) नामसे उल्लेख किया है। द्राविडीय व्याकरण-रचयिता डा० काल्डवल साहबके मतानुसार द्राविड़ीय 'विल' अर्थात् धनुषसे इस भिल्ल शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

पश्चिम भारतमें इस भीलके सम्बन्धमें नाना प्रकारके प्रवाद सुने जाते हैं। उनमेंसे एक यह है—एक दिन महादेव एक गहन वनमें घूमते घूमते बड़े ही थक गए। उसी समय एक अत्यन्त सुन्दरी युवती वहां आ उपस्थित हुई। उस मनोमोहिनीको देख कर ही महादेवके सभी रोग जाते रहे। उन दोनोंके पारस्परिक सहवाससे कई एक सन्तान उत्पन्न हुई जिनमेंसे एक देखनेमें बदसूरत थी। एक दिन उसने गुस्सेमें आ कर महादेवके प्रिय वृषको मार डाला। इसी कारण वह घने जंगल तथा जनहीन पर्वत पर भगा दिया गया। उसीकी सन्तान, समाज-बहिष्कृत भीलजाति है। वे अब भी 'महादेवके चोर' कह कर अपना अपना परिचय देते हैं।

इस वन्यजातिमें तीर चलानेकी असाधारण क्षमता है। प्रवाद है, कि महावीर द्रोणाचार्यने एक भीलराजका अपूर्व धनुचालन देख कर ईर्षापरवश हो उसकी और उसकी प्रजाओंके वृद्धाङ्गुष्ठ काट डालनेका आदेश दिया था।

पश्चिम तथा मध्य भारतके अनेक स्थानोंमें भील देखे जाते हैं। वे अपना आदिवास मेवाड़ या मरुदेश (योधपुर) बतलाते हैं। एक समय सारा राजपूताना इन्हींके अधिकारमें था। अब भी किसी किसी राजपूतराजके सिंहासनारोहणके समय जब तक भीलसरदार आ कर राजटीका नहीं देख लेता, तब तक उनका राज्याभिषेक सिद्ध नहीं होता है।

बहुत दिनोंसे दस्यु और क्रूर प्रकृतिवाले कहलाने पर भी ये साहसी, वीर और विश्वासी होते हैं। ये आततायीके ऊपर जैसे रंज होते हैं, वैसे ही शरणागत तथा आश्रयदाताके प्रति अनुरक्त भी रहते हैं,—यहां तक कि, प्राण दे कर भी आश्रितके मङ्गलविधानमें तत्पर रहते हैं। जिन सब घने जङ्गलोंमें लोग प्रवेश करनेसे डरता है, वे उन सब दुर्गम वनजङ्गलके कोने कोने तकका हाल जानते हैं, दुरारोह गिरिमालाओंमें सुगम पथ ढूंढ निकालते हैं—ये दुर्गम पथ

तथा गिरिमालाके समीप देशोंमें अनायास विचरण या लङ्घन करनेमें समर्थ होते हैं। राजपूतगण इस जातिको वन्यपशुकी नाईं घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। किन्तु राजस्थानके इतिहासमें राजपूत प्रभुके लिए इस जातिके आत्मोत्सर्गका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। दुर्द्दन्त, अवाध्य और महात्याचारी होने पर भी ये विश्वास-घातक या दीनदुःखियोंके उत्पोड़क नहीं हैं। वरं ऐसा देखा गया है, कि भीलडाकू वड़े वड़े राजपुरुष धनी गृहस्थोंका वहुत-सा धन लूट कर दीन दरिद्रोंकी सेवामें व्यय करते थे।

पुरुषगण परस्वापहरण और दस्युतामें जैसा आमोद प्रमोद अनुभव करते हैं, इनको रमणियोंका वैसा ही परोपकारमें अनुराग देखा जाता है। पुरुष जैसे निर्दय हैं, रमणियां वैसी ही दयामयी तथा मानमयी होती हैं। जव कोई भीलके करालकवलमें पतित होता है, तव भील रमणियोंकी कृपाभिक्षाके सिवा उसकी रक्षाका कोई उपाय नहीं है। भगवान्‌का सृष्टिरक्षाकौशल क्या ही अपूर्व है! सैकड़ों असहाय पथिक भीलोंके हाथसे करालकालके गालमें पतित होनेको प्रस्तुत भी हुए हैं, किन्तु भील रमणियोंकी करुणासे उन्होंने अनायास प्राणरक्षा पाई है—कभी कभी उनकी सहायतासे सुदूर दुर्गम पथ पथिकके लिए सुगम हो जाता है।

भीलोंका तीर और धनुष हो जातीय अस्त्र है। सरदार या प्रधान ही केवल तलवार धारण करते हैं। इनके वाल पीछे लटके रहते हैं और देह सदा अपरिष्कार रहती है। ये न तो अधिक लम्बे और न नाटे ही होते, अथच वलिष्ठ तथा कष्टसहिष्णु होते हैं। स्त्रियां खर्वाकार और देखनेमें कदर्य होती हैं। सम्भ्रान्त महिलाएं पैरसे ले कर घुटने तक पीतलके कड़े पहनती हैं। स्त्रीपुरुष दोनों ही मद्यप्रिय होते हैं। गो और शूकर मांसके सिवा दूसरा मांस खानेमें इन्हें कोई आपत्ति नहीं। किसी भी उत्सवके समय सवोंको प्रचुर मद्य और थोड़ा थोड़ा मांस होना ही चाहिए, अन्यथा कोई उत्सव सुसम्पन्न नहीं होता। मद्य ले कर अनेक समय उत्सवके आमोदमें महाविवादका सूत्रपात और दारुण रक्तपात हो जाता है। यह रणप्रिय जाति सामान्य उत्तेजनासे ही धनुर्वाण ग्रहण करती है। गो-हरण तथा स्त्रीहरण होनेसे महाशास्ति देनेके लिए वहुत दिनों तक युद्धविग्रह चलता है। जव कोई भील वाग्-दत्ता कन्याको ले कर भाग जाता है, तव कन्याके पितृ-पक्षके साथ दूसरे पक्षका घोर विवाद होता है। जव तक एक पक्षकी निवासभूमि भस्मराशिमें परिणत न होती और वहुत-से मनुष्योंके प्राण नष्ट न हो लेते, तव तक विवादकी शान्ति नहीं होती।

शीत और वर्षाके समय यह जाति वड़ी ही शान्त हो जाती है; किन्तु शस्याहरणके वाद और शस्यवपनसे पहले ग्रीष्मकालमें ये वड़े ही उद्धत स्वभावके होते और नशेमें मस्त हो कर भिन्न भिन्न गांवोंमें जा लूटपाट मचाते हैं। उस समय इस भैरवमूर्त्तिके सामने आना वडा ही दुश्वार हो जाता है। इस समय अनेक ग्राममें भीलगण लेहूकी धारा वहा देते हैं। किन्तु जो व्यक्ति शत्रुका दमन कर जयश्री प्राप्त करता है, भील-समाजमें वही सम्मानित होता है और रमणी-समाजमें उसीके वीरत्वकी कहानी गाई जाती है। ऐसे वीर पुरुषको पानेकी प्रायः सभी भीलकुमारी इच्छा रखती है।

अनेक समय भीलकुमारीगण २०।२५ वर्ष तक अविवाहिता ही रहती हैं। माता पिता कन्याके विवाहके लिये कोई चेष्टा ही नहीं करते। अगर वे ऐसा करें, तो सभी उस कन्याके चरित्र पर सन्देह डालते हैं। कन्याके पिता या भाई ही घटक होते हैं। अकसर वर-पक्षसे ही विवाहका प्रस्ताव उठता है। यदि कन्याके पिता उसे पसन्द कर लेते तो सम्मति दी जाती है। वाद वरके पिता दो वरतनमें मद्य ले कर एक वटवृक्षके नीचे अथवा ग्रामके वीच एक अच्छी जगहमें आ ठहरते हैं, वहीं पर कन्याके पिता और भाई आदि उनसे मिलते हैं। वरके पिता कन्याके पिताको कितना पण देंगे, वह वहीं पर स्थिर होता है। तीस रुपयेसे साठके भीतर ही पण देना पड़ता है। देना पावना चुकाने पर वरका पिता कई एक ढाकके पत्तोंका ठोंगा (पुरिया) वनाता है और उसमें दो आने रख कर उसे मद्य-पात्रके ऊपर ढक देता है। अनन्तर कन्याका भाई अथवा कोई दूसरा वालक पैसेको ले कर उस ठोंगेको उलट देता है।

इस प्रकार 'सगरी' या वाग्दान सम्पन्न होता है। बाद सब कोई पात्रस्थ मद पीते हैं। तदनन्तर कन्याका पिता एक बकरा काट कर वर और उसके पिताको खिलाता है। इसके बाद सभी अपने अपने घर चले जाते हैं।

वाग्दानके ५।६ महीने बाद विवाहका आयोजन होता है। वरकर्त्ता कन्याके लिए एक साड़ी, एक अंगरखा और एक कमरबन्द भेज देता है। कन्या भी उसे पहन कर सबोंको दिखाती फिरती है। कन्याका पिता धनी होनेसे एक भैंसा काटता है अन्यथा एक बकरा, और वर तथा वरपक्षीय एवं ग्रामवालोंको भोज देता है। बाद एक ब्राह्मण चार आने पैसे ले कर विवाहका शुभ दिन स्थिर करता है। वरकर्त्ता कुल रुपयेमेंसे आधा तो नकद और बाकी आधेमें एक बैल अथवा कोई दूसरी चीज कन्याकर्त्ताको देता है। निर्दिष्ट शुभ दिनमें वर उबटन लगा कर बन्धुबान्धव तथा आत्मीय कुटुम्बके साथ कन्याके घरकी ओर यात्रा करता है। कन्याकर्त्ता आत्मीय स्वजन और वाद्यकरादिको साथ ले गांवकी सीमा पर आता है और वरके कपालमें कुंकुमका 'तिलक' लगा कर वर तथा बरातीको सत्कार पूर्वक ले जाता है। गांवमें आ कर सभी एक छायादार वृक्षके नीचे अथवा किसी मनोहर स्थानमें विश्राम करते हैं। अनन्तर कन्याकर्त्ता घर जाता है और वरकर्त्ताको भी उस समय प्रथाके अनुसार कुछ खर्च करना पड़ता है।

विवाहके दिन तीसरे पहरको कन्याके पिताके घर महाभोज होता है। वर-कन्याके विवाहकी पहली रात बितानेके लिए एक स्वतन्त्र गृह निर्दिष्ट रहता है। वर तथा कन्यापक्षीय सभी अतिरिक्त मद्यपानसे मत्त रहते हैं। दूसरे दिन सुबहको कन्याका पिता यौतुक-स्वरूप कन्याको एक बैल अथवा उसके इच्छानुसार द्रव्य देता और वरके पिताको एक पगड़ी दे विदा करता है।

भीलोंके ६० श्रेणी या थोक हैं। अपनी अपनी श्रेणीके मध्य विवाह करना मना है।

इन लोगोंमें मृतकके उद्देश्यसे नाना प्रकारके कुलाचार प्रचलित हैं। स्वाभाविक मृत्यु होनेसे पहले एक सफेद कपड़ा शवके ऊपर ढंक दिया जाता है, उसकी बगलमें मैदा और चीनी दहीमें मिला कर रख देते हैं—यही उनके परलोक-यात्राको खुराक है। शवदेह जला देनेके बाद वस्त्रादि निकटस्थ जलाशयमें और श्मसानके उद्देश्यसे एक पैसा फेंक दिया जाता है। तीन दिनके बाद चिताभस्मको भी जलमें फेंक देते हैं और मृतके स्मरणार्थ वहीं पर एक पत्थर खड़ा कर देना होता है। मृतकके उपस्थित आत्मीय कुटुम्बगण स्नान करनेके बाद भींगे कपड़ेको निचोड़ कर उसी पत्थर पर जल देते हैं। बारहवें दिन मृतके निकट तथा दूरसम्पर्कीय ज्ञाति कुटुम्बोंको भोज देना होता है। इस दिन कंधकटाओं बिना सिरके भूतोंको खिलाना पड़ता है। इसीलिए इस अन्त्येष्टि क्रियाका नाम है 'काट'। मृतका उत्तराधिकारी अवस्थापन्न होनेसे इस 'काट' के लिए दो तीन सौ रुपयेका मद्य खर्च करता है। इस दिन सुबहसे ले कर प्रायः सारा दिन 'अरद' नामक एक प्रकारका श्राद्धानुष्ठान किया जाता है। भोपा या गांवके डायनझाड़नेवाले ओझा आ कर एक पीढ़ी पर बैठते हैं और सामनेमें रिकाबसे ढंकी हुई मिट्टीकी एक खंजड़ी रखते हैं। दो भील ढाककी लकड़ीसे वह खंजरी बजाते और गाते हैं। इसी तरह बजानेसे भोपा (ओझा) के शरीरमें प्रेतावेश होता है। बाद प्रेतकी जो इच्छा होती है, वही मांगता है। स्वाभाविक मृत्यु होनेसे प्रेत प्रायः घी दूध आदि मांगता और वह जो बात कह कर मरा है, ओझाके मुंहसे वही बातें निकलती हैं।

मांगनेके साथ ही ओझाको वही चीज देनी पड़ती है। ओझा उसे सूंघ कर एक ओर फेंक देता है। किन्तु यदि अपघात या अस्वाभाविक उपायसे किसीकी मृत्यु हुई हो, तो भोपा अक्सर तीर धनुक अथवा बन्दूक हो मांग बैठता है। कहीं पर जैसे आग लगाने अथवा महायुद्ध करने चला हो, उसी भावसे भोपा चिल्लाता और इधर उधर दौड़ता है। मृतके पूर्व पितरोंको भोपा आह्वान करता है और उनकी प्रीतिके लिए उपहार देता है। इस प्रकार भोपाके काममें ही सारा दिन बीतता है। सन्ध्याके समय भील-योगी आते और अनेक प्रकारके कौतुक करते हैं। पहले उन्हें बारह सेर आंटा और पांच सेर मकईका मैदा देना होता है। वह सब

मृतककी चारपाईके सामने रखा जाता है। योगी उस मैदे पर पीतलका एक घोड़ा, उसके चारों ओर बहुत-से पैसे और तोर गाड़ देता है। घोड़ेके सामने दो खाली घड़े जिनमेंसे एकको लाल और दूसरेको सफेद कपड़ेसे ढंक कर रखते हैं और घोड़ेको एक डोरीमें बांध देते हैं। अनन्तर योगी मन्त्रोच्चारण कर मृतकके पूर्व पुरुषोंको बुलाता है। योगीके आदेशानुसार मृतकके वंशधर-पितृपुरुषोंकी परितृप्तिके लिए उपहार दिया जाता है और उस योगीको एक गाय दी जाती है। उसके प्रार्थनानुसार योगी वह प्रस्तुत कर एक गड़हेमें पितरोंके उद्देशसे दे देता है। बाद उसमें एक पात्र मद्य और एक पैसा दे कर उस गड़हेको बन्द कर देना पड़ता है। अनन्तर मुखाग्निदाता योगीको यथासाध्य उपहार देता है। मृतके आत्मीयगण भी यथाशक्ति मुखाग्निदाताको उपहारादि देते हैं। अन्तमें आत्मीय कुटुम्ब सभी मिल कर प्रचुर मद्यपान तथा नृत्यगीत आरम्भ करते हैं। दूसरे दिन गांववालोंमें भोज होता है। इस महाभोजको सुचारुरूपसे सम्पन्न करनेके लिए आत्मीय स्वजन कोई चावल, कोई घी और कोई अन्य द्रव्य देता है। मृतकके जामाताको एक भैंस देनी पड़ती है। उसके नहीं देनेसे मृतकके शाले या भाईको ही देनी पड़ती है।

मृतककी विधवा पत्नीसे पहले पूछा जाता है, कि तुम स्वामीके घर रहेगी या मैके जाएगी अथवा सगाई या दूसरा पति करेगी। जब उसकी पत्यन्तर ग्रहणकी इच्छा रहती है, तब वह पिताके घर ही जाना पसन्द करती है। मृतकके छोटा भाई रहने पर उस विधवाको दूसरेके घर नहीं जाने देता। वह उस विधवाके निकट जाता और अपने कपड़ेसे उसका सिर ढक देता है। तभीसे वह अपने देवरकी स्त्री समझी जाती है और देवर भी उसे आदर पूर्वक अपने घर ले आता है। आठ दिनके बाद अशौच बीत जाने पर वह स्त्री हाथकी चूड़ी या बाला तोड़ डालती है और उसके बदले नवपतिकी दी हुई चूड़ी या बाला पहनती है। तभी 'नातरा' या पुनर्विवाह कहा जाता है। केवल स्वामीका छोटा भाई ही उस विधवाको रख सकता है, सो नहीं। पर मृत भ्राताका पत्नीग्रहण भीलोंमें सम्मानका चिह्न है, इसीलिए अल्पवयस्क देवर भी युवती भाभीको नहीं छोड़ता। देवर नहीं रहनेसे 'काट' समाप्त होनेके आठ दिन बाद, पिता या कोई आत्मीय आ कर विधवाको ले जाता है। दो एक महीने तक वह पिताके घर रहती है; अनन्तर पिताके आदेशानुसार अन्य किसी व्यक्तिके साथ सगाई करती है अथवा वह अपनी इच्छासे किसी युवाके साथ रहती है। भीलगण रमणीकी बड़ी ही कदर करते हैं। सुतरां जिसके घर युवती जाती है वह जोते जी उसका परित्याग नहीं कर सकता। विधवा तो अपने इच्छानुसार जिस किसी पुरुषको वर सकती है, पर पिताकी स्वश्रेणीमेंसे किसीको आत्मसमर्पण नहीं कर सकती।

यदि पिता विधवा कन्याका नातरा या दूसरेके साथ विवाह करा दे, तो विधवाके पूर्व स्वामीके वंशधरका उसके पिताके साथ विवाद खड़ा होता है और वह क्षतिपूर्त्ति मांगता है। पहले ही विधवाके पिता पर आक्रमण करता और उसका घर जला देता है। अनन्तर पञ्चायत बैठती है और उसके आदेशानुसार कन्याके पिताको ५० से २०० रुपये तक उत्तराधिकारीको देना पड़ता है। इधर विधवाका पिता 'नात्र' कारी जामातासे इस क्षतिपूरणके रुपयेका दावा करता है। इस पर यदि वह रुपये देनेमें आनाकानी करता है, तो पिता उस जामाताका घर जला देता है। जब तक पिता रुपये पा कर सन्तुष्ट नहीं होता तब तक घोरतर विवाद चलता रहता है—यहां तक, कि दोनों दलमें खून खराबी भी हो जाती है। किन्तु विधवा पिता अथवा आत्मीयकी सम्मति न ले कर यदि किसी अन्य पुरुषके पास चली जाय, तो मृतका उत्तराधिकारी उस पुरुष पर आक्रमण और उसीसे रुपये वसूल करता है।

यदि कोई अविवाहिता अदत्ता कन्या किसीके प्रेममें फंस जाय, तो तुरत ही उसके पिता या आत्मीय स्वजन इसका पता लगाते हैं—पता लगने पर उस युवकका फिर निस्तार कहां! कन्याका आत्मीय स्वजन उस पर आक्रमण करते और उसके घरमें आग लगा देते हैं। कभी कभी गांवके दूसरे घर भी

भुजङ्गपर्णिनी (सं० स्त्री०) भुजङ्गस्तदाकार इव पर्णानि सन्ति यस्या इनि-ङीप्। नागदमनी।

भुजङ्गपुष्प (सं० पु०) भुजङ्ग इव पुष्पमस्य। १ क्षुपभेद। सुश्रुतके अनुसार एक क्षुपका नाम। २ एक फूलके पेड़का नाम।

भुजङ्गप्रयात (सं० क्ली०) भुजङ्गवत् प्रयातं गतिरिव भङ्गीमान, शब्दविन्यासो यस्य। छन्दोभेद, एक वर्णिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें बारह वर्ण होते हैं जिनमें पहला, चौथा, सातवां और दशवां वर्ण लघु और शेष गुरु होते हैं अथवा प्रत्येक चरण चार यगणका होता है।

भुजङ्गभुज् (सं० पु०) भुजङ्गं भुङ्क्ते इति भुज-क्विप्। १गरुड़। २ मयूर, मोर।

भुजङ्गभोजी (सं० पु०) भुजङ्गं भुङ्क्ते भुज-णिनि। १ राजसर्प। २ गरुड़। ३ मयूर।

भुजङ्गम् (सं० पु०) भुज कौटिल्ये इगुपधेति क, भुजः कुटिली-भवन् गच्छतीति भुज-गम (गमेः सुपि वाच्यः। पा ३।१।३८८) इत्यस्य वार्त्तिकात् 'खच् डिद्वाच्यः' इति डिद्भावे टिलोपाभावः मुम् च। १ सर्प, सांप। २ सोसक, सीसा नामकी धातु।

भुजङ्गलता (सं० स्त्री०) भुजङ्गवत् कुटिला तत्प्रिया वा लता। नागवल्ली।

भुजङ्गविजृम्भित (सं० क्ली०) छन्दोभेद, एक वर्णिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें २६ वर्ण इस क्रमसे होते हैं—आदिमें दो मगण, फिर एक तगण, तीन नगण, रगण, सगण और अंतमें एक लघु और एक गुरु।

भुजङ्गसंगता (सं० स्त्री०) छन्दोभेद, एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें नौ नौ वर्ण होते हैं जिनमें पहले सगण, मध्यमें जगण और अन्तमें रगण होता है।

भुजङ्गहन् (सं० पु०) भुजङ्गं हन्तीति हन्-क्विप्। गरुड़।

भुजङ्गा (हिं० पु०) काले रंगका एक पक्षी। इसकी लम्बाई प्रायः डेढ़ बालिश्त होती है। यह पक्षी भारत, चीन और श्याम देशमें पाया जाता है। इसकी बोली बड़ी सुहावनी लगती है और प्रतिदिन प्रातःकालमें बोलता है। एक बारमें मादा चार अण्डे देती है।

भुजङ्गाक्षी (सं० स्त्री०) भुजङ्गस्येव अक्षि पुष्पं यस्याः (अच्नोऽदर्शनात्। पा ५।४।७६) इति अच्, गौरादित्वात् ङीष्। रास्ना।

भुजङ्गाख्य (सं० पु०) भुजङ्गस्य आख्या इव आख्या यस्य। १ नागकेशर। (त्रि०) २ सर्पनाशक।

भुजङ्गान्तक (सं० पु०) १ मयूर, मोर। २ गृध्र, गीध।

भुजङ्गिका (सं० स्त्री०) वेशनदके उपकण्ठित एक अति प्राचीन ग्राम। इस ग्राममें एक समय बहुसंख्यक ब्राह्मणोंका वास था। १६ सौ वर्ष पहलेका इस स्थानकी समृद्धिका उल्लेख मिलता है।

भुजङ्गिनी (सं० स्त्री०) १ गोपाल नामक छन्दका दूसरा नाम। २ सर्पिणी, नागिन।

भुजङ्गी (सं० स्त्री०) भुजङ्ग स्त्रियां ङीष्। १ सर्पिणी, सांपिन। २ शक्तिमूर्त्तिभेद। ३ एक वर्णिक वृत्तिका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें ग्यारह वर्ण होते हैं जिनमें पहले तीन यगण आते हैं और अन्तमें एक लघु और एक गुरु रहता है।

भुजङ्गेन्द्र (सं० पु०) भुजङ्गानां इन्द्रः। सर्पराज वासुकि, अनन्त।

भुजङ्गेरित (सं० क्ली०) छन्दोभेद।

भुजङ्गेश (सं० पु०) भुजङ्गानामीशः। १ वासुकि। २ शेष। ३ पिङ्गल मुनिका नाम। ४ पतञ्जलिका एक नाम।

भुजज्या (सं० स्त्री०) सूर्यसिद्धान्तोक्त त्रिकोणक्षेत्रकी भुजजीवा।

भुजदण्ड (सं० पु०) बाहुदण्ड।

भुजदल (सं० पु०) हस्त, हथेली।

भुजनगर—बम्बईप्रदेशके कच्छराजका एक दुर्गसुरक्षित राजधानी। यह अक्षा० २३° १५′ उ० तथा देशा० ६०° ४८′ ३०″ पू०के मध्य गण्डशैलके पाददेशमें अवस्थित है। बहु प्राचीन कालसे इस नगरकी समृद्धिका परिचय मिलता है। यहांके सुप्राचीन कीर्त्तिस्तम्भ प्रत्नतत्त्वालोचनाका प्रकृष्ट विषय है। जनसाधारणका विश्वास है, कि प्राचीन कालमें यह नगर अहिकुलदेवता भुजङ्गके उद्देशसे उत्सर्ग किया गया था। यहांके राव लोगोंका समाधिमन्दिर और भारमलजी प्रागमलजी

आदिकी छतरी १६वीं शताब्दीके पहलेकी बनी हुई मालूम होती है। एतद्भिन्न प्राचीन राजप्रासाद, नगरके भीतरकी मसजिद तथा सुवर्णराय, कल्याणेश्वर और स्व-मण्डप आदि देवमन्दिर देखने योग्य हैं। १६वीं शताब्दी-के प्रारम्भमें तथा शेष भागमें यहां जो दो बार भूमिकम्प हुआ था उससे नगरको महती क्षति हुई थी। अन्तिम बारके प्रबल भूकम्पसे यह राजधानी भूगर्भमें ला पता हो गई।

भुजपाश (सं० पु०) गलेमें हाथ डालना, गलबाँहो।

भुजप्रतिभुज (सं० पु०) सरल क्षेत्रकी समानान्तर या आमने सामनेकी भुजाएं।

भुजफल (सं० क्ली०) भुजेन आनीतं फलं। सिद्धान्त-शिरोमणि-उक्त भुज द्वारा आनीत फलभेद।

भुजबंद (हिं० पु०) १ भुजबन्ध देखो। २ बाजूबंद।

भुजबन्ध (सं० पु०) १ भुज वेष्टन। २ बाजूबंद। ३ अंगद।

भुजबल (सं० पु०) भुजस्य बलं। बाहुबल।

भुजबल—सुवर्णपुराधिपति। कलिङ्गाधोश्वर हैहयवंशीय प्रथम जाजल्लदेवने इन्हें परास्त किया।

भुजबल (हिं० पु०) शालिहोत्रके अनुसार एक भौंरी जो घोड़ेके अगले पैरमें ऊपरको ओर होती है। लोगोंका विश्वास है, कि जिस घोड़ेको यह भौंरी होती है, वह अधिक बलवान् होता है।

भुजबलगङ्ग—दाक्षिणात्यके होयशाल-बल्लालवंशीय एक राजा, राजा विष्णुवर्द्धनका नामान्तर। इन्होंने शाम्भल देवीको ब्याहा था। गङ्गराजधानी तलकाड़ उनके अधि-कारभुक्त था। अलावा इसके उन्होंने अपने भुजबलसे और भी अनेक स्थान जीते थे। प्रवाद है, कि रामानुजा-चार्यने उन्हें वैष्णव धर्ममें दीक्षित किया था।

भुजबल भीम—एक धर्मशास्त्रके प्रणेता। रुद्रधरने श्राद्ध-विवेकमें तथा रघुनन्दनने मीमांसतत्त्वमें इनका नामोल्लेख किया है।

भुजमध्य (सं० क्ली०) भुजस्य मध्यं। १ भुजान्तर क्रोड़। २ कर्पूर, कपूर।

भुजमूल (सं० क्ली०) भुजस्य मूलं ६तत्। १ बाहुमूल, कांख। २ खवा, पक्खा।

भुजवा (हिं० पु०) भड़भूंजा।

भुजराम—अद्वैतदर्पणके प्रणेता। इनका दूसरा नाम भजनानन्द था।

भुजशालिन् (सं० त्रि०) प्रशस्तबाहुसम्पन्न।

भुजशिखर (सं० पु०) स्कन्ध, कंधा।

भुजशिर (सं० क्ली०) भुजस्य शिर इव। स्कन्ध, कंधा।

भुजा (सं० स्त्री०) भुज-टाप्। बांह, हाथ।

भुजाकण्ट (सं० पु०) भुजायाः करस्य कण्ट इव हस्तनख, हाथका नाखून।

भुजागम (सं० पु०) वृक्ष, पेड़।

भुजाढकी (सं० स्त्री०) कलायविशेष, एक प्रकारकी उड़द।

भुजाग्र (सं० पु०) भुजस्य अग्रः ६तत्। कर, हाथ।

भुजादल (सं० पु०) भुजाया बाहोर्दल इव। हाथका पंजा।

भुजान्तर (सं० क्ली०) भुजयोरन्तरं मध्यं। १ क्रोड़, गोद। २ वक्षः। ३ दो भुजाओंका अन्तर।

भुजाना (हिं० क्रि०) भुनाना देखो।

भुजामध्य (सं० क्ली०) बाहुका मध्यभाग, केहुनी।

भुजामूल (सं० क्ली०) स्कन्धाग्र, कांख।

भुजाली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बड़ी टेढ़ी छुरी। इसका व्यवहार प्रायः नेपाली आदि करते हैं। इसे कुकरी या खुखरी भी कहते हैं। २ छोटी बरछी।

भुजि (सं० पु०) भुनक्ति, भुङ्क्ते वा सर्वानिति भुज (भजेः किच्च। उण् ४।१४१) इति इ सच किन्, सर्वभक्षकत्वा-दस्य तथा त्वं। १ वह्नि, आग। २ भोग। ३ भोक्ता।

भुजिङ्ग (सं० पु०) देशभेद।

भुजिया (हिं० पु०) १ उबाला हुआ धान। २ उबाले हुए धानका चावल।

भुजिष्य (सं० पु०) भुङ्क्ते स्वाम्युच्छिष्टमिति भुज्यते इति वा भुज (रुचिभुजिभ्यां किष्यन्। उण् ४।१७८) इति किष्यन्। १ स्वतन्त्र। २ हस्तसूत्र, हाथका सूता। ३ दास, सेवक। ४ रोग।

भुजिष्या (सं० स्त्री०) भुजिष्य-टाप्। १ दासी। २ गणिका, वेश्या।

भुजैल (हिं० पु०) भुजङ्गा नामक पक्षी।

भुज्यु (सं० पु०) भुज्यतेऽनेनेति भुज-भक्षणे (भुजि मृङ्भ्यां

भुक् त्युकौ। उणा ३।२१) इति भुक्। १ भाजन, पात्र। २ अग्नि, आग। ३ वैदिक कालके एक राजाका नाम। ये तुमुके पुत्र थे। अश्विनीकुमारने इन्हें समुद्रमें डूबनेसे बचाया था। (त्रि०) ४ रक्षक।

भुञ्जत (सं० त्रि०) भुज-शतृ। भोगकर्त्ता।

भुञ्जान (सं० पु०) भुज-शानच्। भोगकर्त्ता।

भुटिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी धारी जो डोरिए और चारखानेके बुननेमें डाली जाती है।

भुट्ट (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

भुट्टपुर (सं० क्ली०) भुट्टराजा कर्त्तृक निर्मित नगर।

भुट्टा (हिं० पु०) १ मक्केकी हरी बाल। मक्का देखो। २ जुआर वा बाजरेकी बाल।

भुट्टेश्वर (सं० पु०) भुट्ट कर्त्तृक भुट्टपुरमें प्रतिष्ठित शिव-मूर्त्ति विशेष।

भुठार (हिं० पु०) वह घोड़ा जो ऐसे प्रदेशमें उत्पन्न हुआ हो जहांकी भूमि बलुई वा रेतीली हो।

भुठौर (हिं० पु०) घोड़ोंकी एक जाति। इस जातिके घोड़े गुजरात आदि मरुस्थल देशोंमें होते हैं।

भुड़ली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका फूल।

भुड़ारी (हिं० पु०) वह अन्न जो राशिके दाने पर बालमें डंठलके साथ लगा रहता है, लिड्डूरी।

भुणिक (सं० पु०) गोत्रप्रवरभेद।

भुन (हिं० पु०) अव्यक्त गुंजारका शब्द, मक्खी आदि-का शब्द।

भुनगा (हिं० पु०) १ एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा। यह प्रायः फूलों और फलोंमें रहता है और शिशिर ऋतुमें प्रायः उड़ता रहता है। २ कोई उड़नेवाला छोटा कीड़ा, पतिंगा। ३ बहुत ही तुच्छ वा निर्बल मनुष्य।

भुनगी (हिं० स्त्री०) ईखके पौधोंको हानि पहुंचानेवाला एक छोटा कीड़ा।

भुनना (हिं० क्रि०) १ भूननेका अकर्मक रूप। २ आगकी गरमीसे पक कर लाल होना। ३ रुपये आदिके बदलेमें अठन्नी, चौअन्नी आदिका मिलना।

भुनभुनाना (हिं० क्रि०) १ भुन भुन शब्द करना। २ मन-ही मन कुढ़ कर अस्पष्ट स्वरमें कुछ कहना, बड़-बड़ाना।

भुनाना (हिं० क्रि०) भूननेका प्रेरणार्थक रूप। २ रुपये आदिको अठन्नी, चौअन्नी आदिमें परिणत कराना, बड़े सिक्के आदिको छोटे सिक्कों आदिसे बदलना।

भुनुगा (हिं० स्त्री०) भुनगा देखो।

भुवि (हिं० स्त्री०) पृथ्वी, भूमि।

भूमन्यु (सं० पु०) १ पौरव भरतपुत्र नृपभेद। २ तद्-वंशीय प्राचीन धृतराष्ट्र पुत्रभेद।

भुमिया (हिं० पु०) भूमिया देखो।

भुरकना (हिं० क्रि०) १ सूख कर भुरभुरा हो जाना। २ भूलना। ३ चूर्णके रूपके किसी पदार्थको छिड़कना, भुर-भुराना।

भुरका (हिं० पु०) १ बुकनी, अबीर। २ मट्टीका बड़ा कसोरा, कुज्जा। ३ मट्टी आदिका वह पात्र जिसमें लड़के लिखनेके लिये खड़िया मिट्टी घोल कर रखते हैं।

भुरकाना (हिं० क्रि०) १ भुरभुरा करना। २ छिड़कना, भुरभुराना। ३ भुलवाना, बहकाना।

भुरकी (हिं० स्त्री०) १ अन्न रखनेके लिये छोटा कोठिला, धुनकी। २ पानीका छोटा गड्ढा। ३ छोटा कुल्हड़ या कुज्जा।

भुरकुटा (हिं० पु०) छोटा कीड़ा या मच्छड़, छोटा मकोड़ा।

भुरकुन (हिं० पु०) चूर्ण, चूरा।

भुरकुस (हिं० पु०) चूर्ण।

भुरजी (हिं० पु०) भड़भूंजा।

भुरण्यु (सं० क्ली०) भुरण्य-उण्। १ भरण। २ क्षिप्र। (त्रि०) ३ तद्युक्त, तेज।

भुरत (हिं० पु०) बरसातमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। यह आपसे आप उगती है। जब तक नरम रहती है, तब तक पशु इसे बड़े चावसे खाते हैं।

भुरता (हिं० पु०) १ दब कर वा कुचल कर विकृतावस्था-को प्राप्त पदार्थ। २ चोखा या भरता नामका सालन। चोखा देखो।

भुरभुर (हिं० स्त्री०) १ ऊसर या रेतोली भूमिमें होने-वाली एक प्रकारकी घास। (पु०) २ बुका।

भुरभुरा (हिं० वि०) जिसके कण थोड़ा आघात लगने पर भी बालूके समान अलग अलग हो जांय।

भुरभुरोई (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास जो ऊसर और

आदिकी छतरी १६वीं शताब्दीके पहलेकी बनी हुई मालूम होती है। एतद्भिन्न प्राचीन राजप्रासाद, नगरके भीतरकी मसजिद तथा सुवर्णराय, कल्याणेश्वर और स्व-मण्डप आदि देवमन्दिर देखने योग्य हैं। १६वीं शताब्दी-के प्रारम्भमें तथा शेष भागमें यहां जो दो बार भूमिकम्प हुआ था उससे नगरको महती क्षति हुई थी। अन्तिम बारके प्रवल भूकम्पसे यह राजधानी भूगर्भमें ला पता हो गई।

भुजपाश (सं० पु०) गलेमें हाथ डालना, गलवाँही।

भुजप्रतिभुज (सं० पु०) सरल क्षेत्रकी समानान्तर या आमने सामनेकी भुजाएं।

भुजफल (सं० क्ली०) भुजेन आनीतं फलं। सिद्धान्त-शिरोमणि-उक्त भुज द्वारा आनीत फलभेद।

भुजबंद (हिं० पु०) १ भुजबन्ध देखो। २ बाजूबंद।

भुजबन्ध (सं० पु०) १ भुज वेष्टन। २ बाजूबंद। ३ अंगद।

भुजबल (सं० पु०) भुजस्य बलं। बाहुबल।

भुजबल—सुवर्णपुराधिपति। कलिङ्गाधीश्वर हैहयवंशीय प्रथम जाजल्लदेवने इन्हें परास्त किया।

भुजबल (हिं० पु०) शालिहोत्रके अनुसार एक भौंरी जो घोड़ेके अगले पैरमें ऊपरको ओर होती है। लोगोंका विश्वास है, कि जिस घोड़ेको यह भौंरी होती है, वह अधिक बलवान होता है।

भुजबलगङ्ग—दाक्षिणात्यके होयशाल-बल्लालवंशीय एक राजा, राजा विष्णुवर्द्धनका नामान्तर। इन्होंने शाम्भल देवीको ब्याहा था। गङ्गराजधानी तलकाड़ उनके अधि-कारभुक्त था। अलावा इसके उन्होंने अपने भुजबलसे और भी अनेक स्थान जीते थे। प्रवाद है, कि रामानुजा-चार्यने उन्हें वैष्णव धर्ममें दीक्षित किया था।

भुजबल भीम—एक धर्मशास्त्रके प्रणेता। रुद्रधरने श्राद्ध-विवेकमें तथा रघुनन्दनने मीमांसतत्त्वमें इनका नामोल्लेख किया है।

भुजमध्य (सं० क्ली०) भुजस्य मध्यं। १ भुजान्तर क्रोड़। २ कपूर, कपूर।

भुजमूल (सं० क्ली०) भुजस्य मूलं ६तत्। १ बाहुमूल, कांख। २ खवा, पक्खा।

भुजवा (हिं० पु०) भड़भूँजा।

भुजराम—अद्वैतदर्पणके प्रणेता। इनका दूसरा नाम भजनानन्द था।

भुजशालिन् (सं० त्रि०) प्रशस्तबाहुसम्पन्न।

भुजशिखर (सं० पु०) स्कन्ध, कंधा।

भुजशिर (सं० क्ली०) भुजस्य शिर इव। स्कन्ध, कंधा।

भुजा (सं० स्त्री०) भुज-टाप्। बाँह, हाथ।

भुजाकण्ट (सं० पु०) भुजायाः करस्य कण्ट इव हस्तनख, हाथका नाखून।

भुजागम (सं० पु०) वृक्ष, पेड़।

भुजाढकी (सं० स्त्री०) कलायविशेष, एक प्रकारकी उड़द।

भुजाग्र (सं० पु०) भुजस्य अग्रः ६तत्। कर, हाथ।

भुजादल (सं० पु०) भुजाया बाहोर्दल इव। हाथका पंजा।

भुजान्तर (सं० क्ली०) भुजयोरन्तरं मध्यं। १ क्रोड़, गोद। २ वक्षः। ३ दो भुजाओंका अन्तर।

भुजाना (हिं० क्रि०) भुनाना देखो।

भुजामध्य (सं० क्ली०) बाहुका मध्यभाग, केहुनी।

भुजामूल (सं० क्ली०) स्कन्धाग्र, कांख।

भुजाली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बड़ी टेढ़ी छुरी। इसका व्यवहार प्रायः नेपाली आदि करते हैं। इसे कुकरी या खुखरी भी कहते हैं। २ छोटी बरछी।

भुजि (सं० पु०) भुनक्ति, भुङ्क्ते वा सर्वानिति भुज (भजेः किच। उण् ४।१४१) इति इ सच कित्, सर्वभक्षकत्वा-दस्य तथा त्वं। १ वह्नि, आग। २ भोग। ३ भोक्ता।

भुजिङ्ग (सं० पु०) देशभेद।

भुजिया (हिं० पु०) १ उबाला हुआ धान। २ उबाले हुए धानका चावल।

भुजिष्य (सं० पु०) भुङ्क्ते स्वाम्युच्छिष्टमिति भुज्यते इति वा भुज (रुचिभुजिभ्यां किष्यन्। उण् ४।१७८) इति किष्यन्। १ स्वतन्त्र। २ हस्तसूत्र, हाथका सूता। ३ दास, सेवक। ४ रोग।

भुजिष्या (सं० स्त्री०) भुजिष्य-टाप। १ दासी। २ गणिका, वेश्या।

भुजैल (हिं० पु०) भुजङ्गा नामक पक्षी।

भुज्यु (सं० पु०) भुज्यतेऽनेनेति भुज-भक्षणे (भुजि मृङ्भ्यां

भुक त्युकौ। उणा ३।२१) इति भुक्। १ भाजन, पात्र । २ अग्नि, आग। ३ वैदिक कालके एक राजाका नाम। ये तुमुके पुत्र थे। अश्विनीकुमारने इन्हें समुद्रमें डूबनेसे बचाया था। (त्रि०) ४ रक्षक।

भुञ्जत (सं० त्रि०) भुज-शतृ। भोगकर्त्ता।

भुञ्जान (सं० पु०) भुज-शानच्। भोगकर्त्ता।

भुटिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी धारी जो डोरिए और चारखानेके बुननेमें डाली जाती है।

भुट्ट (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

भुट्टपुर (सं० क्ली०) भुट्टराजा कर्त्तृक निर्मित नगर।

भुट्टा (हिं० पु०) १ मक्केकी हरी वाल। मक्का देखो। २ जुआर वा वाजरेकी वाल।

भुट्टेश्वर (सं० पु०) भुट्ट कर्त्तृक भुट्टपुरमें प्रतिष्ठित शिव-मूर्त्ति विशेष।

भुठार (हिं० पु०) वह घोड़ा जो ऐसे प्रदेशमें उत्पन्न हुआ हो जहांकी भूमि वलुई वा रेतीली हो।

भुठौर (हिं० पु०) घोड़ोंकी एक जाति। इस जातिके घोड़े गुजरात आदि मरुस्थल देशोंमें होते हैं।

भुड़ली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका फूल।

भुड़ारी (हिं० पु०) वह अन्न जो राशिके दाने पर वालमें डंठलके साथ लगा रहता है, लिट्टुरी।

भुणिक (सं० पु०) गोत्रप्रवरभेद।

भुन (हिं० पु०) अव्यक्त गुंजारका शब्द, मक्खी आदि-का शब्द।

भुनगा (हिं० पु०) १ एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा। यह प्रायः फूलों और फलोंमें रहता है और शिशिर ऋतुमें प्रायः उड़ता रहता है। २ कोई उड़नेवाला छोटा कीड़ा, पतिंगा। ३ बहुत ही तुच्छ वा निर्वल मनुष्य।

भुनगो (हिं० स्त्री०) ईखके पौधोंको हानि पहुंचानेवाला एक छोटा कीड़ा।

भुनना (हिं० क्रि०) १ भूननेका अकर्मक रूप। २ आगकी गरमीसे पक कर लाल होना। ३ रुपये आदिके बदलेमें अठन्नी, चौअन्नी आदिका मिलना।

भुनभुनाना (हिं० क्रि०) १ भुन भुन शब्द करना। २ मन-ही मन कुढ़ कर अस्पष्ट स्वरमें कुछ कहना, बड़-बड़ाना।

भुनाना (हिं० क्रि०) भूननेका प्रेरणार्थक रूप। २ रुपये आदिको अठन्नी, चौअन्नी आदिमें परिणत कराना, बड़े सिक्के आदिको छोटे सिक्कों आदिसे बदलना।

भुनुगा (हिं० स्त्री०) भुनगा देखो।

भुवि (हिं० स्त्री०) पृथ्वी, भूमि।

भूमन्यु (सं० पु०) १ पौरव भरतपुत्र नृपभेद। २ तद्वंशीय प्राचीन धृतराष्ट्र पुत्रभेद।

भुमिया (हिं० पु०) भूमिया देखो।

भुरकना (हिं० क्रि०) १ सूख कर भुरभुरा हो जाना। २ भूलना। ३ चूर्णके रूपके किसी पदार्थको छिड़कना, भुर-भुराना।

भुरका (हिं० पु०) १ बुकनी, अबीर। २ मट्टीका बड़ा कसोरा, कुज्जा। ३ मट्टी आदिका वह पात्र जिसमें लड़के लिखनेके लिये खड़िया मिट्टी घोल कर रखते हैं।

भुरकाना (हिं० क्रि०) १ भुरभुरा करना। २ छिड़कना, भुरभुराना। ३ भुलवाना, बहकाना।

भुरकी (हिं० स्त्री०) १ अन्न रखनेके लिये छोटा कोठिला, धुनकी। २ पानीका छोटा गड्ढा। ३ छोटा कुल्हड़ या कुज्जा।

भुरकुटा (हिं० पु०) छोटा कीड़ा या मच्छड़, छोटा मकोड़ा।

भुरकुन (हिं० पु०) चूर्ण, चूरा।

भुरकुस (हिं० पु०) चूर्ण।

भुरजी (हिं० पु०) भड़भूंजा।

भुरण्यु (सं० क्ली०) भुरण्य-उण्। १ भरण। २ क्षिप्र। (त्रि०) ३ तद्युक्त, तेज।

भुरत (हिं० पु०) वरसातमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। यह आपसे आप उगती है। जब तक नरम रहती है, तब तक पशु इसे बड़े चावसे खाते हैं।

भुरता (हिं० पु०) १ दब कर वा कुचल कर विकृतावस्था-को प्राप्त पदार्थ। २ चोखा या भरता नामका सालन। चोखा देखो।

भुरभुर (हिं० स्त्री०) १ ऊसर या रेतीली भूमिमें होने-वाली एक प्रकारकी घास। (पु०) २ बुक्का।

भुरभुरा (हिं० वि०) जिसके कण थोड़ा आघात लगने पर भी बालूके समान अलग अलग हो जांय।

भुरभुरोई (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास जो ऊसर और

रेतीली भूमिमें उपजती है। इसे भुलनी या भुरभुर भी कहते हैं।

भुरली (हिं० स्त्री०) १ भुड़ली, कमला। १ खेतीकी फसलको हानी पहुंचानेवाला एक कीड़ा।

भुरिज् (सं० स्त्री०) भरति सव धरतीति भृज् (भूज उच उण् २।७२) इति इजि, धातो रुकारान्तादेशः। १ पृथिवी। २ बाहु। ६ द्यावा पृथिवी, स्वर्ग और पृथिवी।

भुरकी (हिं० स्त्री०) भुरका देखो।

भुरुण्ड (सं० पु०) १ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। २ भारुण्ड पक्षी।

भुर्वणि (सं० पु०) भुवं अनि न दीर्घः। १ कर्त्ता।

भुलना (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी घास। इसके विषयमें प्रवाद है, कि इसके खानेसे लोग सव बातें भूल जाते हैं। २ भूलनेवाला व्यक्ति, वह जो भूल जाता हो।

भुलभुला (हिं० पु०) गरम राख, आगका पलका।

भुलवाना (हिं० क्रि०) १ भूलनेके लिये प्रेरणा करना, भ्रममें डालना। २ विस्मृत करना, विसारना।

भुलसना (हिं० क्रि०) गरम राखमें झुलसना, पलकेमें झुलसना।

भुलाना (हिं० क्रि०) १ भ्रममें डालना, धोखा देना। २ विस्मृत करना, भूलना।

भुलावा (हिं० पु०) धोखा, छल।

भुवंग (हिं० पु०) सांप।

भुवंगम (हिं० पु०) सांप।

भुवः (हिं० पु०) १ वह आकाश वा अवकाश जो भूमि और सूर्यके अन्तर्गत हैं, अन्तरिक्षलोक। यह सात लोकोंके अन्तर्गत दूसरा लोक है। लोक शब्द देखो। २ सात महाव्याहृतियोंके अन्तर्गत दूसरी महाव्याहृति। मनुस्मृतिके अनुसार यह महाव्याहृति ओंकारकी उकार मात्राके संग यजुर्वेदसे निकाली गई है।

भुव (सं० पु०) भवन्तीति भू-क। १ अग्नि, आग। २ भुवोलोक। भूरादि सात लोकोंके अन्तर्गत दूसरा लोक। लोक शब्द देखो।

भुवड़—गुजरातप्रदेशके कच्छ जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह भद्रेश्वरसे ३॥० कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां जो भुवनेश्वर महादेवका मन्दिर विद्यमान है उसका कारुकार्य प्राचीन चित्रशिल्पकी उन्नतिका आभास देता है। मन्दिरमें १२२६ संवतमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि है।

भुवद्वत् (सं० पु०) भू शतृ, तुदादि भुवन्; धारयन्, अस्त्यस्य मतुप् मस्य वः, तान्तत्वेऽपि पदत्वं। धारकयुक्त आदित्य।

भुवद्वसु (सं० त्रि०) धनद।

भुवन (सं० क्ली०) भवन्त्यस्मिन् भूतानिति भू (भू-सू-धू भुस् जिभ्यश्छन्दसि। उण् २।८०) इत्यत्र वहुलवचनाद्भाषायामपि प्रयुज्यते इति क्युन्। १ जगत्, संसार। २ सलिल, जल। ३ गगन, आकाश। ४ जन। ५ चतुर्दश संख्या, चौदहकी संख्या। ६ लोक। पुराणानुसार लोक चौदह हैं—सप्तसर्ग और सप्तपाताल। भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य ये सात स्वर्ग लोक और अतल, सुतल, वितल, गभस्तिमत्, महातल, रसातल और पाताल ये सात पाताल हैं।

"पातालानाञ्च सप्तानां लोकानाञ्च यदन्तरम्।
शुषिरं तानि कथ्यन्ते भुवनानि चतुर्द्दश ॥" (अग्निपु०)

७ भूतजात, सृष्टि। ८ एक मुनिका नाम।

भुवन—आसाम प्रदेशके कछाड़ जिलान्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह वराक और सोनाई नदीका अववाहिकाके मध्य अवस्थित है। इसकी ऊंचाई ७ सौसे ३ हजार फुट तक है। यह पर्वतभूमि जिलेकी पूर्वीसीमामें विस्तृत है। पर्वतके ऊपर जो शिवमन्दिर है, वह तीर्थक्षेत्रमें गिना जाता है। प्रतिवर्ष वहुत-से लोग यहां जुटते हैं।

भुवनकोश (सं० पु०) भुवनस्य कोश इव। भूगोल, भूमण्डल। भागवत तथा विष्णुपुराणादिमें भुवनकोशका सविस्तार विवरण लिखा है, पर यहां अत्यन्त संक्षेपमें दिया जाता है—मैत्रेयके पराशरसे भुवनकोषका विषय पूछने पर उन्होंने कहा था, कि जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर ये सातों द्वीप यथाक्रम लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध और जल इन सात समुद्र द्वारा सर्वत्र समभावसे परिवेष्टित हैं। जम्बूद्वीप इन सबोंके बीचमें है। इसके मध्यस्थलमें स्वर्णमय सुमेरु पर्वत है। इसकी ऊंचाई चौरासी हजार योजन, तलभाग सोलह हजार योजन तथा ऊपरीभाग वत्तीस हजार

योजन विस्तृत है। इसके मूलका कुल चौड़ाई सोलह हजार योजन है। सुतरां सुमेरु पृथ्वीरूप पद्मको कर्णिका अर्थात् बोजकोश-स्वरूप संस्थित है। इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषध तथा उत्तरमें नील, श्वेत और शृंगी ये सब वर्षपर्वत भारतवर्षादिके सीमानिरूपक हैं। मध्यस्थित नील और निषध ये दोनों पर्वत पूर्वपश्चिममें लक्षयोजन तक लम्बे हैं और बाकी दो उनका दशवां भाग है। मेरुके दक्षिणमें पहले भारतवर्ष, बाद किम्पुरुष वर्ष और तब हरि तथा उत्तरमें रम्यक; हिरण्मय और इसके उत्तरमें कुरुवर्ष है। इनमेंसे हर एक नौ हजार योजन तक विस्तृत हैं। इलावृत वर्ष भी मेरुके चारों ओर नौ हजार योजन तक फैला हुआ है—पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुपार्श्व है। इन सब पर्वतों पर क्रमशः कदम्ब, जम्बू, पीपल, और वट चार वृक्ष हैं जो पर्वतकी ध्वजाके समान ऊंचे हैं। इस पर्वत पर जम्बू वृक्ष होनेके कारण ही इस द्वीपका ऐसा नाम पड़ा है। इस जम्बू वृक्षके महागज-परिमित फल पर्वत पर गिर कर विस्तीर्ण हो जाते हैं। उनकेरससे वहांकी विख्यात जम्बूनदी निकल कर गन्धमादनकी ओर बह गई है। यहांके अधिवासी इसी नदीका जल पीते हैं। इस जलमें स्वेद या दौर्गन्ध नहीं है। यह जल पीनेसे वहांके मनुष्योंको जरा या इन्द्रियक्षय नहीं होता, वरन् अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। इस नदीके किनारेकी मृत्तिका जम्बू नद सुवर्णरूपमें परिणत होती है। यह जाम्बूनदसुवर्ण सिद्धोंका भूषण है। मेरुके पूर्व भद्राश्व और पश्चिममें केतुमालवर्ष है तथा इनके बीच इलावृतवर्ष है। सुमेरुके पूर्वमें चैत्ररथ वन, दक्षिणमें गन्धमादनवन, पश्चिममें वैभ्राजवन तथा उत्तरमें नन्दनवन है। अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस ये चार देवभोग्य सरोवर मेरुके चारों ओर अवस्थित है। शीतान्त, कमुञ्च, कुररी और माल्यवान् ये सब पर्वत मेरुके पूर्व ओरके केसर हैं। त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग और रुचक दक्षिण ओरके; शिखिवासा, वैदूर्य, कपिल और गन्धमादन पश्चिम ओरके हैं तथा शङ्खकूट, ऋषभ, हंस और नाग ये सब केसर पर्वत उत्तरकी ओर अवस्थित हैं।

मेरुके ऊपर अन्तरीक्षमें चारों ओर हजारों योजन तक ब्रह्माकी पुरी है। इसके चारों ओर तथा इन्द्रादि लोकपालोंके विख्यात पुर हैं। विष्णुपादोद्भवा गङ्गा चन्द्रमण्डलको चारों ओरसे प्लावित करती हुई अन्तरीक्षसे ब्रह्मपुरीमें गिरी हैं। वहां पर गिर कर गङ्गा चार भागोंमें विभक्त हुई हैं जिनका नाम सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा है। उनमेंसे सीता पूर्व वाहिनी हो कर आकाशपथमें एक पर्वतसे दूसरे पर्वत पर बह गई है और बाद भद्राश्व नामक पूर्ववर्ष होती हुई समुद्रमें मिलती है। चक्षु भी पश्चिमकी ओर सब पर्वतोंको लांघती हुई केतुमाल नामक पश्चिमवर्ष हो कर सागरमें गिरी है। भद्रा उत्तरगिरि तथा उत्तर कुरुवर्ष अतिक्रम कर उत्तर समुद्रमें मिल गई है। माल्यवान् और गन्धमादनपर्वत उत्तर दक्षिणमें नील तथा निषध पर्वत तक लम्बा है। मेरु उन पर्वतोंके बीच कर्णिकाके रूपमें संस्थित है। मर्यादा पर्वतके मध्यवर्त्ती भारतवर्ष, केतुमालवर्ष, भद्राश्ववर्ष तथा कुरुवर्ष जम्बूद्वीपपद्मके पत्रस्वरूप हैं। जठर और देवकूट ये दोनों मर्यादापर्वत उत्तर और दक्षिणमें नील तथा निषध तक फैले हुए हैं। पूर्व और पश्चिममें आयत गन्धमादन और कैलास ये दोनों मर्यादा पर्वत अस्सी योजन तक लम्बे और समुद्रके भीतर घुस गये हैं। मेरुके पश्चिम आदि भागोंमें निषध और पारिपात्रादि मर्यादा पर्वत अवस्थित है।

मेरुके चारों ओर शीतान्त प्रभृति जिन सब केसर पर्वतोंका उल्लेख किया गया है, उन सब पर्वतोंके मध्य उत्तमोत्तम कन्दर हैं जहां सिद्धदेव गायकगण रहते हैं। इन सब कन्दरोंमें सुरम्यकानन तथा पुर हैं। इन सब पुरोंमें देवताओंके किन्नरसेवित सभी आयतन वर्ण हैं। ये सब स्थानभौम स्वर्ग कहलाते हैं। यहां धार्मिक मनुष्योंका वास है। पापिगण सैकड़ों जन्ममें भी यहां नहीं आ सकते। भगवान् विष्णु भद्राश्ववर्षमें हयशिरारूपमें, केतुमालवर्षमें वराहरूपमें और भारतवर्षमें कूर्मरूपमें अवस्थित हैं। सर्वेश्वर हरि विश्वरूपमें सर्वत्र ही विराजमान हैं।

किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं, वे शोक, श्रम, उद्वेग, क्षुधा तथा भयादि नहीं हैं। प्रजागण निरातङ्क और सर्व दुःखविवर्जित हैं। यहां पर्जन्यदेव वर्षण नहीं करते—

पार्थिव जल ही प्रचुर परिमाणमें मिलता है, इस कारण जलका कष्ट नहीं होता। इस स्थानमें सत्य और त्रेतादि युगनियम नहीं हैं। इन सब वर्षोंमें सात सात करके कुलाचल और सैकड़ों नदियां हैं। यही भुवनकोष है।
(विष्णुपु० २।२ अ०)

इस भुवनकोषका विषय भागवतके ५।१६।१७।१८ अध्यायमें और नृसिंह पुराणके ३०वें अध्यायमें विशेष रूपसे वर्णित है और इस प्रकार अन्य पुराणोंमें भी है। विस्तारके भय यहां नहीं दिया गया। पुराण देखो।

भुवनचन्द्र (सं० पु०) काश्मीरराज पृथिवि चन्द्रके पुत्र।

भुवनपति (सं० पु०) अग्निका भ्रातृभेद, अग्निके भाई एक देवता। भुवनस्य पतिः। २ भुवनका प्रभु, संसार का मालिक।

भुवनपाल—१ कच्छपघातवंशीय एक राजा। २ पञ्चाल-राज्यके अन्तर्गत वदामयूताके राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा

भुवनपाल—छोकरेक्ति विचार शीला नामक गाथाकोशकी टीकाके प्रणेता।

भुवनपावन (सं० त्रि०) भुवनस्य पावनः। भुवनको पवित्र करनेवाली गङ्गादेवी।

भुवनभर्त्तृ (सं० पु०) भुवनस्य भर्त्ता। भुवनपति, संसारका मालिक।

भुवनमति (सं० स्त्री०) काश्मीरराज कीर्त्तिराजकी कन्या।

भुवनमोहनविद्यारत्न—नवद्वीपवासी एक विख्यात नैयायिक। ये प्रसिद्ध नैयायिक श्रीरामशिरोमणिके पुत्र थे।

भुवनराज (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

भुवनशासिन् (सं० त्रि०) भुवन शास-णिनि। भुवनपति, संसारका शासन करनेवाला।

भुवनसद् (सं० त्रि०) भुवनस्थित।

भुवनसिंह—चित्तोरके एक गुहिलवंशीय राजा। इन्होंने चाहमानराज कितुङ्ग और सुलतान अलाउद्दीनको परास्त किया था।

भुवनाद्भुत (सं० त्रि०) भुवनको विस्मय करनेवाला।

भुवनाधीश (सं० पु०) १ रुद्रभेद। २ त्रिभुवनके अधिपति।

भुवनाधीश्वर (सं० पु०) त्रिभुवनके अधिपति।

भुवनानन्द (सं० पु०) विश्वप्रदीपके प्रणेता।

भुवनेश (सं० पु०) १ शिवमूर्त्तिभेद। २ स्थानभेद।

भुवनेशानी (सं० स्त्री०) जगत्कर्त्री।

भुवनेशी (सं० स्त्री०) शक्तिमूर्त्तिभेद।

भुवनेशी यन्त्र—कृष्णानन्दकृत तन्त्रसारवर्णित शक्तिपूजाका एक यन्त्र।

भुवनेश्वर—उड़ीसाप्रदेशके अन्तर्गत पुरी जिलेका एक श्रेष्ठ शैवक्षेत्र। यह अक्षा० २०´१५´ उ० तथा देशा० ८५´ ५०´ पू० बङ्गाल-नागपुर रेलवेके 'भुवनेश्वर' नामक स्टेशनसे एक कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या ३०५३ है।

भुवनेश्वर वास्तवमें भुवनके मध्य एक द्रष्टव्य स्थान है। यहांके असंख्य शिवमन्दिर, हिन्दू शिल्पीके अपूर्व रचनाकौशल तथा यहांका नयनमोहन भास्करकार्य जिन्होंने एक बार स्थिर चित्तसे देखा है, वे मुग्ध हो गए हैं। प्रतिष्ठाताको अजस्र धन्यवाद दिये विना कोई रह नहीं सकता। हिन्दू, मुसलमान और अंगरेज पुराविद्गण इस पवित्र मन्दिरवृन्द-विभूषित प्राचीन भूमिका उल्लेख कर गए हैं।

प्रत्नतत्त्वविद् राजा राजेन्द्रलाल मित्रके मतसे इस पुण्यभूमिका प्रकृत नाम है 'त्रिभुवनेश्वर'। किन्तु उच्चारणको सुविधाके लिए केवल भुवनेश्वर नाम ही परिचित है। उन्होंने और भी लिखा है,—"उदयगिरिकी हाथीगुफासे उत्कीर्ण शिलालिपिमें जिस कलिङ्गनगरी का उल्लेख है, वही यह भुवनेश्वर है। बुद्धके समय कलिङ्गनगरी बौद्धधर्मका एक प्रधान स्थान गिना जाता था। बुद्धके निर्वाणलाभ करने पर, उनका पवित्र देहावशेष कई एक खण्डोंमें विभक्त हो कर प्रधान प्रधान राजाओंके हाथ लगा था, उनमेंसे कलिङ्गनगरीके अधिपतिको बुद्धदेवका पवित्र दन्त प्राप्त हुआ था। पहले वह दन्त कलिङ्गनगरी हीमें स्थापित हुआ। बाद यहांसे पिपलीके निकटवर्ती दन्तपुरी या दांतन नामक स्थानमें वह दन्त लाया गया। इस प्रकार ईस्वीसन् ६००के पहलेसे ही यह स्थान कलिङ्गनगरी कहलाता था।* उन्होंने

* Mitra's Antiquities of Orissa Vol, II, p, 61-62

हाथीगुफासे उत्कीर्ण शिलालिपिमें ऐरराज-प्रतिष्ठित एक सुवृहत् सरोवरका उल्लेख देख कर स्थिर किया है, कि यही सरोवर प्रसिद्ध विन्दुसागर था तथा भुवनेश्वरमें ही कलिंगाधिपतिकी राजधानी थी* ।

ष्टार्लि, हण्टर, कनिंहम, राजा राजेन्द्रलाल प्रभृति ऐतिहासिकोंने मादलापञ्जीके ऊपर निर्भर कर एक वाक्यमें लिखा है, कि उड़ीसाके केशरिवंशके प्रतिष्ठाता ययातिकेशरीने ही भुवनेश्वरलिङ्गकी प्रतिष्ठा की और उसी समयसे यह स्थान 'भुवनेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

ऊपर जो सब मत कहे गये हैं, यहांके पुरातत्त्वकी आलोचना करनेसे वे सब युक्तियां निरर्थक-सी जान पड़ती हैं। बुद्धदेवके समय भुवनेश्वरमें बौद्धोंका जो प्रधान अड्डा था, उसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। खण्डगिरि तथा उदयगिरिमें बौद्धकीर्त्तिका जो निदर्शन देखनेमें आता है, वह बुद्धदेवके बहुत पीछेका बना हुआ है - इसका कुछ हिस्सा सम्राट् अशोकके समयमें प्रतिष्ठित हुआ है। विशेषतः भुवनेश्वर-अञ्चलमें ऐर नामक राजा किस समय राज्य करते थे, इसका प्रमाण नहीं मिलता। हाथीगुफासे उत्कीर्ण शिलालिपिमें जैनधर्मावलम्बी कलिङ्गाधिपति खारवेलकी यशःकीर्त्ति लिखी है। इनके साले हाथीसाहबके नाम पर तथा हस्तिमूर्त्तिसे हाथीगुफाका नाम पड़ा है। राजा राजेन्द्रलाल, कनिंहम, हण्टर, प्रभृति पुराविदोंने जिस हाथीगुफाको बौद्धकीर्त्ति कह कर घोषणा की थी, अभी वह जैनकीर्त्ति-सी प्रमाणित हुई है। किन्तु उक्त जैनराज खारवेलने किस समय भुवनेश्वरमें राजधानी स्थापित की थी, उसका आज तक भी कोई प्रमाण नहीं मिला है। इधर ५वीं शताब्दीमें केशरि वंशके प्रतिष्ठाता ययाति द्वारा भुवनेश्वरकी प्रतिष्ठा कविकल्पना-सी मालूम पड़ती है। कारण, उस समय अथवा बादमें उसके केशरिवंशके प्रतिष्ठातारूप ययातिकेशरीका नाम सामयिक लिपि या प्राचीन इतिहासमें वर्णित नहीं हुआ है। जगन्नाथ शब्दमें दिखाया गया है, कि उड़ीसाके वर्त्तमान ऐतिहासिकगण जो मादलापञ्जीकी दुहाई देते हैं, उसका प्राचीन अंश कल्पनामूलक है, ऐतिहासिकोंके निकट उसका कोई मूल्य नहीं। भुवनेश्वरकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मादलापञ्जीका विवरणको भी उसी प्रकार काल्पनिक कह सकते हैं।

काल्पनिक तथा आधुनिक रचित मादलापञ्जीके ऊपर निर्भर न कर प्राचीन ग्रंथसमूह और भुवनेश्वरके नाना स्थानमें उत्कीर्ण सामयिक शिलालिपिसे हमें जो यथार्थ इतिहास मिला है, मादलापञ्जीकी समालोचनाके साथ साथ वह नीचे लिखा जाता है। महाभारतके वनपर्व(११४अध्याय)में लिखा है,—

राजा युधिष्ठिरने गङ्गासागर संगम पर जा कर पांच सौ नदीमें स्नान किया और अपने भाइयोंके साथ समुद्रके किनारेसे कलिंगकी ओर यात्रा की। लोमशने कहा, 'हे कुन्तीनन्दन! ये सब देश कलिंग नामसे प्रसिद्ध हैं। इस प्रदेशमें जहां पर धर्मने देवताओंके शरणागत हो कर यज्ञ किया था, वहीं बैतरणी नदी है। पर्वतसे सुशोभित हमेशा ऋषियोंसे युक्त तथा द्विजाति-निषेवित वह यज्ञभूमि बैतरणी नदीके उत्तर तीर पर है जो स्वर्गगामी व्यक्तिकी देवयानस्वरूप है। पूर्व समयमें ऋषि तथा अन्यान्य महात्माओंने वहीं पर यज्ञ किया था। हे राजेन्द्र! इसी स्थान पर रुद्रदेवने यज्ञमें पशु ग्रहण किया था और कहा था, कि यही मेरा हिस्सा है। हे भरतर्षभ! जब रुद्रदेवने पशुहरण किया, तब देवताओंने उनसे कहा, कि आप परस्व ग्रहण न करें—समग्र यज्ञीय भागके अभिलाषी न होवें। अनन्तर उन्होंने कल्याणस्वरूप वाक्यसे उनका स्तव करके इष्टि द्वारा सन्तुष्ट कर सम्मानित किया। इस पर रुद्रदेव पशुका परित्याग कर देवयानसे चले गये। हे युधिष्ठिर! इस सम्बन्धमें रुद्रकी जो गाथा है, सो सुनिये। देवताओंने रुद्रके भयसे उन्हें सब भागोंमेंसे उत्कृष्ट सद्योजात भाग चिरकाल प्रदान करनेका सङ्कल्प किया। जो मनुष्य यहां पर यह गाथा गान कर स्नान करते हैं, उनका देवयान नयनपथमें प्रकाशित होता है।' वैशम्पायनका कहना है, कि इसके बाद महाभाग पाण्डवोंने द्रौपदीके साथ वैतरणीमें उतर कर पितरोंका तर्पण किया। अनन्तर थोड़ी दूर आ कर युधिष्ठिर बोले 'मैं इस नदीमें स्नान कर मनुष्यभारसे

* Mitra's Antiquities of Orissa. Vol. II p. 69.

मुक्त हुआ। देखिये, मैं आपको प्रसन्नताके हेतु संपूर्ण लोक देखता हूं। जयकारी महात्मा वानप्रस्थोंका स्वर सुना जाता है।' इस पर लोमशने कहा, 'हे राजन्! आप जो शब्द सुनते हैं, वह यहांसे तीस हजार योजनकी दूरी पर निकलता है। आप चुप रहें। हे राजेन्द्र! वह जो सामने वन दिखलाई पड़ता है, वही स्वयम्भूवन है। यहीं पर प्रतापवान् विश्वकर्माने स्वयम्भू यज्ञ किया था। इस यज्ञमें उन्होंने कश्यपको दक्षिणास्वरूप गिरि-काननके साथ साथ सारी पृथिवी दान कर दी। हे कौन्तेय! उसी समय पृथिवी अवसन्न हो गई। उन्होंने क्रुद्ध हो कर लोकेश्वर प्रभुसे कहा, 'भगवन्! मुझे जो आपने मर्त्तके हाथ सौंपा, सो उचित नहीं—आपका दान वृथा हुआ। कारण, मैं रसातल अर्थात् दक्षिण-की ओर चली। इस पर कश्यपने पृथिवीको विपण्णा जान कर उन्हें प्रसन्न करनेके लिए तपस्या की। पृथिवी उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हुई और पुनः जलसे बाहर निकल कर वेदीरूपमें प्रकाशित हो गई। महाराज! वही संस्थान लक्षणा वेदी प्रकाशित होती है। आप उस पर आरोहण करनेसे वीर्यवान् हो जायंगे। हे राजन्! वह वेदी समुद्रका आश्रय लिये हुई है—इस पर जानेसे ही आपका मङ्गल होगा। वह वेदी छूनेसे ही समुद्रमें प्रवेश करती है। अतएव आप जिस किसी प्रकार उस पर जा सकें, उसीके लिए मैं स्वस्त्यन करूंगा। 'ओं विश्वगुप्त विश्वपर! आपको नमस्कार है। हे देवेश! आप इस समुद्रके लवणाक्त जलमें रहें। हे विष्णो! आप अग्नि, सूर्य तथा जलकी योनि हैं—आप वीर्य और अमृतकी नाभि हैं।' हे पाण्डव! यह सत्यवाक्य कह कर आप अति शीघ्र उस वेदी पर चढ़ जायं। 'हे विष्णो! अग्नि आपकी योनि है, इड़ा आपकी देह है। आप वीर्याधार तथा अमृतके साधन हैं। इस वेदवाक्य-का जप कर आप नदीमें स्नान कीजिए। हे कुरुश्रेष्ठ! इसके अलावा देवयोनि समुद्रको कुशाग्रसे भी स्पर्श न करें। अनन्तर स्वस्त्ययनादि सम्पन्न कर महात्मा युधिष्ठिर सागरमें गए और लोमशके आदेशानुसार सब कार्य समाप्त कर उन्होंने महेन्द्र पर्वत पर जा रात बिताई।

उपरोक्त विवरणसे इन कई एक तीर्थों या पुण्यक्षेत्रों-का पता चलता है। १ला गङ्गासागर-सङ्गम, बाद कलिङ्ग-देशमें वैतरणीतीर्थ तथा उसके किनारे देवयज्ञस्थान। यही यज्ञस्थान अभी याजपुर नामसे प्रसिद्ध है। विश्वकर्माका तपस्यास्थान स्वयम्भूवन, लवणसागरकी समीपवर्त्ती वेदी * जो अभी महावेदी या पुरुषोत्तम क्षेत्र कह-लाती है, बाद महेन्द्राचल है। यह पर्वत गञ्जामप्रदेश-में अवस्थित है और परशुरामका स्थान कह कर आज भी विख्यात है।

महाभारतमें वनपर्वके उक्त पर्वाध्यायमें जिन जिन तीर्थों-में पञ्चपाण्डव गए थे, अत्यन्त संक्षेपमें उन्हीं तीर्थोंका उल्लेख है। तीर्थ या पुण्यक्षेत्रके सिवा पाण्डवोंने जिन सब स्थानोंमें पदार्पण किया था, महाभारतकारने उन सबों-का उल्लेख अप्रासङ्गिक जान कर न दिया। अतः गङ्गा-सागरसे महेन्द्राचल सैकड़ों योजन दूर रहने पर भी उन-के बीच बहुत-से स्थानोंका महाभारतमें कोई उल्लेख नहीं आया है।

जो कुछ हो, महाभारतके विवरणसे यह जाना जाता है, कि हम लोगोंका आलोच्य भुवनेश्वरक्षेत्र वनपर्वके उक्त पर्वाध्याय-रचनाकालमें विश्वकर्माका तपस्या-स्थान स्वयम्भूवन† कह कर ही प्रसिद्ध था। उस समय यह स्थान द्वितीय काशी या एकाम्रकानन नहीं कहलाता था। एकाम्रकाननकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें जो सब पौराणिक आख्यान परवर्त्ती कालमें प्रचलित हुआ है, उसका भी कोई आभास नहीं मिलता।

सम्भवतः बुद्धदेवके अभ्युदयके समय यह पवित्र स्थान तपस्वियोंका प्रिय 'स्वयम्भूवन' कह कर परिचित

* गौड़ाधिप श्रीमद्मणसेनके पुत्र विश्वरूपसेनके ताम्रशासनमें यह स्थान—"वेलायां दक्षिणाब्धेर्मुषलधरगदापाणिसंवासवेद्यां" अर्थात् दक्षिणसागरके किनारे बलराम तथा कृष्णकी अधिष्ठानवेदी वर्णित है। इस वेदीका अपरापर विवरण जगन्नाथ शब्दमें लिखा गया है।

† महाभारतके बङ्गानुवादकोंने स्वयम्भूवन का अर्थ "ब्रह्माका वन" लगाया है। किन्तु दुर्घटार्थप्रकाशिनि प्रभृति सुप्राचीन भारत-टीकामें स्वयम्भूका अर्थ शम्भु लिखा है।

पाया जाता है। सम्भवतः उसी प्रासादमें उद्योतकेशरी रहते थे। कलिङ्गाधिपति चोड़गङ्गके आक्रमणसे वे राज्य छोड़ कर भाग गये। उनके बहुत कोशिश करने पर भी यह देवल देवप्रतिष्ठाके अभावसे अङ्ग रहित रह गया। शत्रुके हाथसे उनका प्रासाद तहस नहस तो हो गया, पर देवांद्‌शसे बने हुए देवलने हिन्दूविजेतासे रक्षा पाई, किन्तु विजित नृपवंशको कीर्त्ति होनेके कारण अङ्गहीन मन्दिरमें देवप्रतिष्ठा प्रतापशाली गङ्गराजगण अनावश्यक तथा हीनचित्तके परिचायक-से प्रतीत होते हैं।

उद्योतकेशरीके पूर्व पुरुषके प्रतिष्ठित रामेश्वरमंदिरका ध्वंसावशेष उक्त जङ्गलके निकट पड़ा हुआ है।

मेघेश्वर।

भास्करेश्वरके पूर्व २०० हाथकी दूरी पर मेघेश्वरका प्रसिद्ध मंदिर है। उड़ीसाके प्रत्नतत्वमें राजा राजेंद्रलालने इस मंदिरका नाम तक भी उल्लेख नहीं किया। किंतु एकाम्रपुराण, स्वर्णाद्रि महोदय प्रभृति अनेक ग्रंथोंमें इस मेघेश्वरका माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित है। एकाम्रपुराणमें लिखा है,—आठ मेघने सिद्धिलाभकी इच्छासे एकाम्रक्षेत्रमें आनेके लिए देवराज इन्द्रसे प्रार्थना की। बाद उन्होंने इन्द्रकी आज्ञा पा कर एक साथ हो कल्प वृक्षसे १७०० धनुकी दूरी पर एक निर्मल शिलातल चून लिया और विश्वकर्माको कह कर वहां परिखा, तोरण, कुण्ड, गोपुरादि सर्वावयवयुक्त एक तुङ्ग प्रासाद बनवाया। वहां उनके दान, अर्चना, तप और यज्ञसे संतुष्ट हो कर महेश्वरने उन्हें दर्शन दिये और वर देना चाहा। मेघोंने प्रार्थना की, 'हम लोगोंने यह प्रासाद बनाया है। आप यहां अवस्थान करें'। इस पर महादेव बोले, 'मैं यहां मेघेश्वर नामसे वास करूंगा। इसका विमलजल युक्त हृद भी मेरा प्रीतिप्रद तथा सर्वपापनाशक होगा। (एकाम्रपु० ३८ अध्याय)

एकाम्रपुराण चाहे जो कुछ कहे पर मेघेश्वर मन्दिर उत्कलविजयी चोड़गङ्गके पुत्र राजराजके साले महावीर स्वप्नेश्वर देवकी कीर्ति है। मेघेश्वरमें पहले एक शिलाफलक था जो अभी अनन्तवासुदेवके मन्दिरमें भवदेवभट्टकी प्रशस्तिके पास रखा है। जनरल स्टूयार्ट द्वारा उक्त शिलाफलक हटाया गया था और मेजर किटोने उसे वर्त्तमान स्थान पर रखा है। इस शिलालिपिसे जाना जाता है, कि गौतमगोत्रमें राजपुत्र छारदेवने जन्म ग्रहण किया। उनके पुत्र मूलदेव, मूलदेवके पुत्र अहिरम और अहिरमके स्वप्नेश्वर नामक पुत्र तथा सुरमा नामकी एक कन्या थी। इसी सुरमासे चोड़गङ्ग-राजपुत्र राजराजदेवका विवाह हुआ। विवाहके सम्बन्धसे ही स्वप्नेश्वर गङ्गराजसभामें विशेष सम्मानित होते थे। इन्हीं स्वप्नेश्वर देवने वर्त्तमान मेघेश्वरका सुंदर मन्दिर बनवाया था। मन्दिरके समीप जो मेघकुण्ड है, वह भी उन्हींका बनाया हुआ है। स्वप्नेश्वरके भगिनीपति राजराज ११वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। उस मंदिरकी जैसी शोभा थी, अभी वैसी नहीं है; फिर भी वह देखने लायक है।

मुक्तेश्वर।

राजारानी-देवल (मंदिर)-से ६०० हाथकी दूरी पर एक आम्रवन था और वहां कई एक सिद्ध पुरुष रहते थे, इसलिये यह स्थान सिद्धारण्य नामसे विख्यात है। यहां कई एक शीतल प्रस्रवण भी हैं। अतः ऐसे मनोरम स्थानमें श्रेष्ठ देवालय क्यों न निर्मित हो? ऐसे सुरम्य निर्जन स्थानमें कौन रहना पसंद नहीं करता? उत्कलके भूपतिगण विभिन्न समयमें यहां मुक्तेश्वर, केदारेश्वर, सिद्धेश्वर और परशुरामेश्वर प्रभृतिकी सौधावलीकी प्रतिष्ठा कर चिरस्थायी कीर्त्ति छोड़ गये हैं। यहां जितने देवालय हैं, उनमेंसे मुक्तेश्वर या मुक्तीश्वर भूलने लायक नहीं है। उत्कल-शिल्पियोंने इस मंदिरमें अपनी गुणपणाकी पराकाष्ठा दिखलाई है। किन्तु मंदिरका वैसा दृश्य अभी न रह गया है—अभी वह अस्पष्ट, वर्णहीन तथा अङ्गहीन हो गया है। फिर भी वह अत्यन्त सुंदर विगत शिल्पनैपुण्यका मर्यादा-परिचायक है। देवल कुल ३५ फीट ऊंचा, मोहन २५ फीट, इसका सामनेवाला तोरण (मेहराब) १५ फीट है, किन्तु विभिन्न अंशका रचनाविन्यास, स्थाननिर्वाचन तथा परिमाण-पारिपाट्य देखनेसे शिल्पीके असाधारण कौशलका परिचय मिलता है। जो जहांके योग्य है, वह वहां ही सन्निविष्ट है—जहां जो रखनेसे सबोंका मन आकर्षित हो सकता है, शिल्पियोंने मानों दैवशक्तिप्रभावसे पत्थर ले कर वही खेल खेला है। सजावटकी क्या ही बहार है—कहीं

तो ढेरके ढेर पुष्पगुच्छ हैं, कहीं सुसज्जित तथा सुनियमित नरनारीमूर्त्ति, कहीं गजवासिनी देवीमूर्त्ति असिवर्मावृत असुरको मारनेमें उद्यता, कहीं भगवती अन्नपूर्णा भोलानाथको अन्नभिक्षादानमें निरता, कहीं पञ्चशिरा भुजङ्गके चक्रके नीचे अर्द्ध सर्पाकृति रमणी, कहीं सिंह हाथीके ऊपर, कहीं सिंहके साथ हाथीका युद्ध और कहीं हाथीकी सूंड़में बंधा हुआ सिंह है,—पुनः नर्त्तकियोंका हावभाव-युक्त नाना दृश्य, कोई नाचती हैं, कोई मृदङ्ग, वोणा अथवा तम्बुरा वजाती है, कोई प्रेमके आवेशमें प्रियतमका आलिङ्गन करती हैं ;—कोई वलिष्ठ राक्षसमूर्त्ति वोझ ढो रही है, सिद्धर्षिगण शिवपूजामें नियुक्त हैं, गुरु शिष्यको उपदेश दे रहे हैं, कोई पुस्तक पढ़ रहा है, कहीं छतके नीचे कोई नारी खड़ी हैं, कोई स्त्री दरवाजे पर सुग्गेको हाथमें लिये हुए हैं, कोई रमणी वृक्षके नीचे और कोई कच्छपके ऊपर शोभायमान हैं। रमणियोंके वालकी क्या ही वहार है। उनके शिरके कितने ही साज हैं :—फूलकी सजावट, लतापत्रोंका काम, तथा झाड़की वनावट क्या ही सुन्दर है। इसकी शोभा बड़ी ही अपूर्व है। यथार्थमें मन्दिरका शिल्पवैपुण्य लेखनी द्वारा प्रकाशित नहीं की जा सकती। जिन्होंने अपनी आंखों देखा है; वे ही जानते हैं—उत्कल शिल्पियोंको सैकड़ों धन्यवाद दिये विना दर्शक कदापि नहीं लौटते। इतनी कारीगरी, ऐसा शिल्पचातुर्य जो मानों प्रकृतिके ही अनुकूल है। मंदिरमें जहां जहां जल रहनेसे सुंदर लगता है वहीं पर स्वभावजात प्रस्रवण शिल्पोके कौशलसे गृहायतनके अन्तर्गत वर्त्तमान है। वास्तविकमें इस निर्जन सिद्धारण्यमें मुक्तिदाता मुक्तीश्वरके मन्दिरमें जानेसे मन पुनः सांसारिक कार्य्योंकी ओर नहीं आना चाहता। इच्छा होती है कि सदाके लिए वहीं रहें और उन्हीं भूतभावन भवानीपतिके उद्देश्यमें मनप्राण समर्पण करें।

मुक्तेश्वरके पार्श्वमें ही एक सरोवर है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई यथाक्रम १०० और ६५ फोट है। इसके तोन ओर पत्थरसे बंधे हैं और नागकेशरकी छायामें पत्थरकी सोढ़ी शोभित है। इस सरोवरमें कई एक प्रस्रवण हैं, इसी लिये कुण्डमें सब दिन स्वच्छ जल रहता है। यही जल कुम्भीराकृति मुख हो कर गौरीकेदार कुण्डमें गिरता है। यह कुण्ड भी ७० फोट लम्बा और २८ फोट चौड़ा है। इसके भी तीन घाट पत्थरसे बंधे हैं और दक्षिणांशमें २० फोट लम्बी तथा १० फोट चौड़ी पत्थर की सीढी है। इस गौरीकेदारका जल इतना परिष्कार है, कि १६ फोट गहरा होने पर भी इसका निचला भाग दिखलाई पड़ता है। ऐसा सुस्वादु तथा परिष्कार पानीय जल भुवनेश्वरमें और कहीं भी नहीं मिलता। इस कुण्डके नीचे भी प्रस्रवण है। शिवपुराणके मतसे गौरीने स्वयं यह पुष्करिणी खोदी थी। यहां एक वर्ष तक स्थिर चित्तसे स्नान करनेसे सर्वकाम सिद्ध होता है *। कपिलसंहितामें लिखा है, कि कुण्डका जल पीनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।†

कुण्डके घाट पर कई एक छोटे छोटे घर हैं जिनमेंसे एककी वाहरी दीवारमें ८ फीट ऊंची एक हनूमान मूर्त्ति और दूसरीमें सिंहवाहिनी दुर्गामूर्त्ति गड़ी हैं। इस देवीकी जैसी सुन्दर मुखश्री भुवनेश्वरकी और किसी भी मूर्त्तिमें नहीं है। दोनोंकी पूजा प्रतिदिन होती है।

केदारेश्वर।

दुर्गादेवीके दक्षिण भागमें ४१ फीट ऊंचा केदारेश्वरका मन्दिर है। इस मन्दिरमें या इसके चौकोन मोहनमें उतनी सजावट नहीं है। देखनेसे यह वहुत पुरानासा मालूम पड़ता है। इसका गर्भगृह मूलमन्दिरसे वहुत

* मन्दिर तथा शिलालिपिके सम्बन्धमे विस्तृत विवरण Journal of Asiatic Soceity of Bengal, Vol, Lxvi, pp, 11-22 पृष्ठ देखो।

* "तत्र साक्षात् स्वयं देवो गौरी त्रैलोक्यसुन्दरी।
स्वयमेवाखनोत् कुण्डं सर्वपापप्रणाशनम्॥
स्नात्वा तस्मिन् महाकुण्डे संवत्सरसमाहितः।
कृत्वाशोऽर्च्चनं तत्र सर्वकामफलप्रदम्॥"
(शिवोपपुराण उत्तरखण्ड)

† "विन्दूद्भवे तनुत्यागात् त्रिसृष्टमे पिण्डदानतः।
केदारे उदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥"
(कपिलसंहिता)

प्राचीन प्रतीत होता है। ब्रह्मपुराणमें केदारेश्वर लिङ्ग-का उल्लेख है। केदारेश्वरके दरवाजेकी चौखटकी दाहिनी ओर एक अस्पष्ट शिलालिपि उत्कीर्ण है। उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि १००४ शकमें उत्कलविजेता चोड़गङ्गके आधिपत्य कालमें उक्त मन्दिर बना है। एकाम्रपुराण तथा कपिलसंहितामें भी इसका माहात्म्य वर्णित है।

केदारेश्वर-मन्दिरके सामने ही गौरीमन्दिर है। शीतला-षष्ठीके दिन यहां भुवनेश्वरके सचललिङ्ग गौरीदेवी-से विवाह करने आते हैं।

सिद्धेश्वर।

मुक्तेश्वरसे १०० हाथ उत्तर-पश्चिम एक अत्यन्त प्राचीन भग्न मन्दिर है एकाम्रपुराणमें लिखा है, कि विष्णुके आदेशानुसार विश्वकर्माने यह मन्दिर बनाया है। शिवकी उपासनासे विष्णु यहां सिद्धलाभ करते हैं, इसीलिए यहांके अधिदेवताका नाम सिद्धेश्वर है। इस मन्दिर की ऊंचाई ४७ फोट है। मन्दिरके दक्षिणमें चक्रेश्वर, शङ्करेश्वर, शक्रेश्वर, शक्त्येश्वर, वायव्येश्वर, वरुणेश्वर, धनदेश्वर, पावकेश्वर, चन्द्रशेखर, परशुरामेश्वर आदि बहुत से मन्दिर हैं। शेषोक्त परशुरामेश्वरका मंदिर लगभग ६० फोट ऊंचा है। इसका सर्वाङ्ग नाना शिल्पनैपुण्य युक्त हैं। राजा राजेन्द्रलालका विश्वास है, कि बौद्ध विहारके ढंग पर यह मन्दिर बनाया गया है। इसका कोई कोई अंश विलायतके शैक्सनोंके गिरजा-घरके-से मालूम पड़ते हैं। जो कुछ हो, मंदिरकी गठन देखनेसे यह महामंदिरसे अत्यंत प्राचीन समझा जाता है। एकाम्रपुराणने परशुरामेश्वर, 'दैत्येश्वर'के नामसे वर्णित हुए हैं।

अलाबुकेश्वर।

परशुरामेश्वरसे थोड़ी दूर उत्तर पश्चिममें अलाबु-केश्वरका मन्दिर है। बहुतोंका विश्वास है, कि मंदिर-प्रतिष्ठाता अलाबुकेशरीके नाम पर ही इसका ऐसा नाम पड़ा है। किंतु पहले ही कहा जा चुका है, कि आलबुकेशरी नामके कोई राजा हुए थे या नहीं, इसका कोई प्रकृष्ट प्रमाण नहीं मिलता। एकाम्रपुराणके मतानुसार महादेवके अलाबू कमण्डलुसे ही इसका अलाबुकेश्वर नाम हुआ है। इस मंदिरसे २०० गज पश्चिममें नाकेश्वर नामक एक सुंदर अथच परित्यक्त मंदिर वर्तमान है।

उत्तरेश्वर।

विंदुसागरके उत्तरी किनारे बहुत-से छोटे बड़े मंदिर हैं, जिनमेंसे उत्तरेश्वर प्रधान है। एकाम्रपुराणके मत-से, यहां महादेवने भीममूर्त्ति धारण की और देवी भगवतीने उन्हें लुभानेके लिए बहुत से रूप धारण किये थे। पृथिवीके मध्य यह स्थान सबोंकी अपेक्षा पुण्य-प्रद माना जाता है। इसके निकट भीमेश्वर नामक एक मंदिर है। प्रवाद है, कि मध्यम पाण्डव भीमने यहां आ कर यह मंदिर निर्माण किया। किन्तु हम लोगोंका विश्वास है, कि भुवनेश्वर-मंदिराभ्यन्तरस्थ शिलाफल-कोक्त राजा भीमदेव द्वारा सम्भवतः यह भीमेश्वरमंदिर स्थापित हुआ होगा।

उक्त स्थानके उत्तरपश्चिम आध मीलकी दूरी पर रामाश्रम अशोकवन दिखाई पड़ता है। यहां एक समय किसी केशरीराजका प्रासाद था, उसीके निकट रामेश्वरमंदिर तथा अशोकतीर्थ है अशोकतीर्थ-के चारों ओर अनेक देवालय हैं जिनमेंसे राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, हनूमान प्रभृतिके छोटे छोटे मन्दिर भी नजर आते हैं। इनके समीप ही गोसहस्रहद और उस-के किनारे गोसहस्रेश्वर मंदिर है। एकाम्रपुराणमें लिखा है, कि भगवतीने यहां गोचारणके समय लिङ्गमें-से दूध निकलते देखा था। गोसहस्रेश्वरके उत्तर-पूर्व ईशाने-श्वर और इसके बाद यथाक्रम भद्रेश्वर, कुक्कुटेश्वर, पर-मेश्वर, पूर्वेश्वर, स्वर्णकूटेश्वर, वैद्यनाथ, सूक्ष्माम्रातकेश्वर, रुद्रेश्वर, वालकेश्वर, भीमेश्वर, उत्पलेश्वर, जटिलेश्वर, आम्रातकेश्वर, वैतालदेवल प्रभृति छोटे बड़े कई एक शिवालय हैं जिनमेंसे वैताल देवलकी बनावटमें कुछ विशे-षता है। इसकी चूड़ा चौकोन और ऊपरमें तीन कलस हैं। दूरसे देखनेसे यह दाक्षिणात्यके गोपुर-सा प्रतीत होता है। मंदिरमें यथेष्ठ कारुकार्य तथा शिल्पनैपुण्य नजर आता है।

सोमेश्वर।

वैताल देवलसे लगभग १००० हाथ दक्षिण सोमेश्वर का मंदिर है। इसे देखनेसे मन विमुग्ध हो जाता है।

इसका सौंदर्य और शिल्पनैपुण्य मुक्तेश्वरसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। मंदिरकी ऊँचाई ३३ फीट है। इसके मोहनकी लम्बाई और चौड़ाई ३३×२१ फीट है। इसकी बगलमें ही पत्थरका बंधा हुआ एक बड़ा सरोवर है जिसका नाम है पापनाशिनी। प्रथमाष्टमीके समय यहां भुवनेश्वरकी सचलमूर्त्ति लाई जाती है।

सारी देवल।

महामन्दिरसे उत्तर तथा बड़ादण्ड और बिन्दुसागर जानेके रास्ते पर अनेक मंदिर हैं जिनमेंसे सारीदेवल उल्लेखयोग्य है। इसकी ऊँचाई ६३ फीट है। मंदिरकी भित्ति लगभग २६ फीट चौड़ी है और घरका भीतरीभाग १२×११ फीट है। मंदिर और मोहनमें यथेष्ट शिल्प-नैपुण्य है। इसकी सजावटमें कुछ विशेषता है। भुवनेश्वरके प्रायः किसी भी मंदिरमें ऐसी सजावट नहीं देखी जाती। इसकी दीवारमें अनेक प्रकारकी मूर्त्ति चित्रित हैं।

कपिलेश्वर।

महामंदिरके सामने एक रास्ता उत्तरमें बड़ादण्ड होता हुआ आध कोस दक्षिण जा कर कपिलेश्वर ग्राममें मिल गया है। यहां बहुत-से ब्राह्मण रहते हैं, उनके वासगृह बड़े ही परिष्कार परिच्छिन्न तथा सुचित्रित हैं। ग्रामकी अन्तिम सीमा पर कपिलेश्वरका प्रसिद्ध मंदिर है। इसका चबूतरा १७८×१७२ फीट है और चारों ओर ८ फीट ऊँचा दुर्भेद्य प्रस्तरका प्राचीर है। मध्यस्थलमें मोहन, नाटमंदिर और भोगमण्डप-युक्त देवल है। यह ४६ फीट ऊँचा है। सारे मंदिरमें ही साधारण शिल्पनैपुण्य नजर आता है। देखनेसे ही लिङ्गराजके महामंदिरकी अपेक्षा यह पुराना मालूम पड़ता है। इसका नाटमंदिर और भोगमण्डप मूलमंदिर तथा मोहनसे बहुत पीछे बना था। भोगमण्डपमें नाना प्रकारके सुंदर मण्डोदक चित्र देखे जाते हैं। मंदिरके दक्षिण प्रवेशद्वारके नीचे एक बड़ा सरोवर है। इसमें चिरस्थायी एक प्रस्रवण भी है, इसीलिये इसका जल बड़ा ही परिष्कार रहता है। ग्रामीण मनुष्य इसीका जल पीते हैं। शिवपुराण, एकाम्रपुराण, कपिलसंहिता, स्वर्णाद्रि-महोदय तथा एकाम्रचन्द्रिकामें इसका माहात्म्य वर्णित हैं। बहुतसे यात्री कपिलेश्वरका दर्शन करने आते हैं। इनकी नित्य सेवादि भुवनेश्वर-सी होती है।

लिङ्गराज।

अन्यान्य शिवलिङ्ग की तरह लिङ्गराजकी भी पत्र, पुष्प, भङ्ग, दुग्ध, जल प्रभृति द्वारा पूजा होती है और जगन्नाथकी तरह यहां भी नित्य अन्नभोगका प्रबन्ध है। अन्य स्थानका शिवनिर्माल्य अग्राह्य है। किन्तु भुवनेश्वरका निर्माल्य कभी भी कोई परित्याग नहीं करते, यात्री परम भक्तिके साथ इसे ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार जगन्नाथका अन्नभोग चण्डालसे ले कर ब्राह्मण तक सभी एक साथ बैठ कर आहार कर सकते हैं, लिङ्गराजका भोग भी उसी प्रकार ब्राह्मण शूद्र सभी जाति एकत्र भोजन करती है। नीच जातिके छूनेसे भी लिङ्गराजका भोग अपवित्र नहीं होता है।

नित्यसेवाके अलावा लिङ्गराजकी द्वादश यात्रा तथा उपयात्रा होती है।

द्वादश यात्रा तथा—१ली अगहन मासकी कृष्ण-जन्माष्टमीको प्रथमाष्टमी यात्रा, २री इसी मासकी शुक्लाषष्ठीको प्रावरणोत्सव, ३री पौष-पूर्णिमाकी पुष्ययात्रा, ४थी मकर संक्रान्तिमें घृतकम्बलयात्रा, ५वीं माघसप्तमीयात्रा, ६ठीं शिवरात्रि, ७वीं चैत्रमासमें अशोकाष्टमी, ८वीं चैत्रमासकी शुक्ला चतुर्दशीको दमनभञ्जिका, ९वीं वैशाखमें अक्षयतृतीयाको चन्दनयात्रा, १०वीं आषाढ़की शुक्ला अष्टमीको परशुरामाष्टमी यात्रा, ११वीं इसी मासमें शुक्ला चतुर्दशीको शयनचतुर्दशी यात्रा, १२वीं श्रावणकी शुक्ला चतुर्दशीको पवित्रारोपणयात्रा। इसके सिवा कार्त्तिकमासमें यमद्वितीया तथा उत्थानचतुर्दशीयात्रा होती है।

उपयात्रा—अग्रहायणमें धनुसंक्रान्ति, माघमें वसन्त पञ्चमी तथा भीमैकादशी, फाल्गुनमें कपिलयात्रा और दोलयात्रा, चैत्रमें वासंतीपूजाके समय नवपत्रिका, ज्येष्ठमें शीतलाषष्ठी, भाद्रमें जन्माष्टमी और गणेशचतुर्थी, आश्विनमें षोड़शदिनपर्व तथा दशहरा और कार्त्तिकमें कुमारोत्सव होता है। भुवनेश्वरके सम्बन्धमें अन्यान्य विवरण एकाम्र शब्दमें देखो।

भुवनेश्वरी (सं० स्त्री०) भुवनस्य ईश्वरी। दश महाविद्याके अंतर्गत देवीभेद।

"काली तारा महाविद्या षोड़शी भुवनेश्वरी।"

(तन्त्रसा०)

प्राणतोषिणीमें लिखा है—पुराकालमें भगवान् ब्रह्मा जब जगत्सृष्टि करनेके लिये तपस्यामें निमग्न थे, उस समय ये परमाशक्ति परमेश्वरी उनको तपस्यासे संतुष्ट हो कर चैत्र मासकी शुक्ला नवमी तिथिको आविर्भूत हुई थीं।

"अथ श्रीभुवनां वक्ष्ये त्रैलोक्योत्पत्तिमातरम्।
पुरा ब्रह्मा जगत्स्रष्टुं तपोऽतप्यत दारुणं।
तपसा तस्य सन्तुष्टा शक्तिः सा परमेश्वरी।
चैत्र शुक्लनवम्यान्तु उत्पन्ना तारिणी स्वयं॥"

(प्राणतोषिणी)

ब्रह्मपुराणमें ये आङ्गिरसवंशधरोंकी कुलदेवी मानी गई हैं।

"दिदेशाङ्गिरसं वंशे स देवी भुवनेश्वरीं" (ब्रह्मपु० १८।४)

दशमहाविद्या महाविद्या और शक्ति शब्द देखो।

भुवनेश्वरी कवच (सं० स्त्री०) तंत्रसारोक्त धारणीय कवचभेद।

भुवनेश्वरी भैरवी (सं० स्त्री०) तंत्रोक्त भैरवीभेद।

भुवनेष्ठा (सं० पु०) मायातत्कार्यात्मके भुवने भूतजाते तिष्ठति उपहितः सन् वर्त्तत इति भुवने स्था विच्, तत्पुरुषे कृति बहुलमिति सप्तम्या अलुक् ततः षत्वं। सर्वव्यापी परमात्मा। (अथर्व २।१।४)

भुवनौकस् (सं० पु०) भुवने ओकः स्थानं यस्य। भुवनवासी।

भुवन्ति (सं० पु०) भुवं तनोति तन-बाहु-ति, मुम्। भूमण्डलविस्तारक।

भुवण्यु (सं० पु०) भवतीति (कन्युच क्षिपेश्च। उण् ३।५१) इति चकारात् भूनो रपि कन्युच्। १ सूर्य। २ अग्नि। ३ चंद्रमा। ४ प्रभु।

भुवपति (सं० पु०) १ अग्निके भ्रातृभेद, अग्निके भाई। २ भुवलोकपति।

भुवस् (सं० अव्य०) भवतीति भू (भूरञ्जिभ्यां कित्। उण् ४।२१६) इति असुन्, सच कित्। १ आकाश। २ महाव्याहृति भेद। भुवः देखो।

भुवर्लोक (सं० पु०) भुवश्चासौ लोकश्चेति। भूरादि सप्तलोकके अन्तर्गत द्वितीय लोक। अन्तरिक्षलोक।

"भूमिसूर्यान्तरं यच्च सिद्धादिमुनिसेवितम्।
भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तम॥"

(विष्णुपु० २।७ अ०)

भूमि और सूर्यके मध्यवर्ती जो स्थान है उसे भुवर्लोक वा द्वितीय लोक कहते हैं। इस लोकमें सिद्धादि और मुनिगण रहते हैं। पृथिवीका विस्तार और परिमण्डल जितना है, उतना ही भुवर्लोकका विस्तार और परिमण्डल है।

भुवस्पति (सं० पु०) भुवो लोकस्वामी।

भुवा (हिं० पु०) रुई, घूआ।

भुवार (हिं० पु०) भुवाल देखो।

भुवाल (हिं पु०) राजा।

भुवि (हिं० स्त्री०) पृथिवी, भूमि।

भुविष्ठ (सं० त्रि०) भुवि तिष्ठति स्था-क, अलुक् स ततःषत्वं। भुवि स्थित, पृथिवीस्थित।

भुविस् (सं० क्ली०) भवतीति भवत्यस्मिन् रत्नादीनि वा भू (भुवः कित्। उण् २।११३) इति इसिन्, सच कित्। समुद्र।

भुविस्पृश् (सं० त्रि०) भुवि स्पृशति स्पृश् क्विप्, अलुक समास। पृथिवीके स्पर्श करनेवाले।

भुलेश्वर—मूलेश्वर देखो।

भुशुण्डी—१ पुराणवर्णित त्रिकालज्ञ काकविशेष। इनके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि ये अमर और त्रिकालज्ञ हैं तथा कलियुगमें होनेवाली सब बातें देखा करते हैं। कुरुक्षेत्रको लड़ाईके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जब भुशुण्डीसे रणवार्त्ता पूछी, तब उन्होंने उत्तरमें कहा था "सत्ययुगके शुम्भ-निशुम्भ युद्धमें हमने बिना आयासके दैत्यरक्त पान और मांस भक्षण किया था। त्रेतायुगके रामरावणयुद्धमें हमें थोड़ा परिश्रम उठाना पड़ा था। किंतु इस कुरुपाण्डव युद्धमें हमें भारी कष्ट भुगतना पड़ा।" इससे जाना जाता है, कि शुम्भसंहारके कारण देवदानवमें जो युद्ध चला था, वह जगतको एक महती घटना है। राक्षसपति रावणनिधनव्यापारने सामरिक महाघटनाका दूसरा स्थान पाया है और यह तृतीय कौरवयुद्ध पहलेके दो युद्धोंकी अपेक्षा बहुत हीन है योगवाशिष्ठरामायणके निर्वाणप्रकरणके पूर्वभाग (१५-२७ अ०)-में भुशुण्डीका उपाख्यान सविस्तार लिखा है।

पुरीधामके सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिरके समीप भुशुण्डी काककी प्रस्तरमूर्त्ति स्थापित है। उक्त मूर्त्ति चतुष्पद विशिष्ट है। जगन्नाथ देखो। (स्त्री०) २ एक अस्त्रका नाम। इसका प्रयोग महाभारतके कालमें होता था। यह चमड़ेका बनाया जाता था। इसके बीचमें एक गोल चंदवा होता था जिसे चमड़ेके कड़े तसमोंसे बांध कर दो लम्बी डोरियोंमें लगा देते थे। डोरो समेत इसकी लंबाई तीन हाथ होती थी। इसके चंदवेमें पत्थर भर कर और डोरियोंको दाहिने हाथसे घुमा कर लोग शत्रु पर फेंकते थे।

भुषण्डी (सं० स्त्री०) पाषाण क्षेपणार्थ चर्ममय चन्द्ररूप अस्त्रभेद। भुशुण्डी देखो।

भुस (हिं० पु०) भूसा

भुसावल—१ बम्बई प्रदेशके खानदेश जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २०° ४७´से २१° १४´ उ० तथा देशा० ७५° ४१´से ७६° २४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ५७० वर्गमील है। इसमें ३ शहर और १८० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १०६३१५ है। ताप्ती, पूर्णा, बाघर, पुर, भगवती और सुखी नदीके अलावा यहां खेतीबारीके लिये हजारों कूप हैं। नदीतीरवर्त्ती स्थान विशेषमें उर्वरता और शस्यकी प्रचुरता दिखाई देने पर भी अपरापर स्थान आम, बबूल आदि वनमाला से परिवेष्टित है। स्थानीय स्वास्थ्य उतना खराब नहीं है। केवल पूर्णासे सुखा नदीका पार्वत्य भूभाग स्थानों में रोगोंका प्रकोप देखा जाता है। रोगकी प्रबलता और मृतकी अधिकताके कारण यह स्थान जनशून्य हो गया है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ३´ उ० तथा देशा० ७५° ४७´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १६३६३ है। यहां पर ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवेकी नागपुर शाखाका सङ्गम होनेसे स्थानीय वाणिज्यकी विशेष उन्नति हुई है। यहां १८८२ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। शहरमें सब-जजकी अदालत, तीन अङ्गरेजी स्कूल, दो वर्नाक्युलर स्कूल और दो अस्पताल हैं।

भुसेहरा (हिं०) भुसौरा देखो।

भुसौठा (हिं० पु०) भूसा रखनेका स्थान।

भूंइमाली—पूर्ववङ्गवासी कृषिजीवी निकृष्ट जातिविशेष। पालकी-वहन और दासवृत्ति इनकी प्रधान उपजीविका है। इनकी आकृति प्रकृति और कार्यादि पर गौर करनेसे अनुमान होता है, कि ये ही पूर्व समयमें वङ्गके आदिम निवासी थे। बाद इन्होंने हिंदूके क्रिया-कलाप और रीति नीतिको सीखा। दिनाजपुर आदि उत्तर-पूर्व बंगमें इनकी गिनती हाड़ीकी श्रेणीमें है। ढाकाके भूंइमालिगणका कहना है, कि एक समय ये सब क्षुद्र थे, बाद अपने कर्मफलसे ऐसा हीन हुए हैं। प्रवाद है, कि एक समय हरपार्वती दोनों ही भक्तोंकी परितुष्टिके लिये मध्यधाममें पधारे। सभी जाति देवोकी मनोमोहिनी मूर्त्ति दर्शन कर तृप्त हुई, केवल एक दुर्भाग्य भूंइमाली अस्फुट स्वरमें बोला था, 'यदि मैं ऐसी रूपवती युवती पाऊं तो सब प्रकारके निकृष्ट कर्म कर सकता हूं।' देवादिदेवने यह सुन उसे एक रूप-गुणवती भार्या प्रदान कर झाड़ूदारका निकृष्ट कर्ममें नियुक्त किये, उसी समयसे ये सब इस प्रकार निकृष्ट कर्म करते आ रहे हैं।

इनमें बड़ा भागिया और छोटा भागिया नामके दो स्वतन्त्र थोक हैं। इनमें पारस्परिक विवाहादि तथा सामाजिक आचार-व्यवहार प्रचलित नहीं है। प्रथमोक्त भूंइमालिगण कृषि, गीतवाद्य और पालकी-वहन आदि कार्य करते हैं; किन्तु शेषोक्त श्रेणीके भूंइमालिगण विष्ठा फेंकनेका काम करते हैं। ये डोम, मेहतर या हलालखोर आदिके जैसा न आप ही निकृष्ट कार्य करते और न अपनी स्त्रीको ही ऐसा निकृष्ट कार्य करने देते हैं। त्रिपुरा-राज्यके सराइलवासी भूंइमालिगण सूअर पालते हैं। वे अन्यान्य भूंइमाली इन्हें अपनी श्रेणीमें शामिल नहीं करते हैं।

पूर्वोक्त दो श्रेणीके सिवा मिश्र तीनो वेहारा नामक उनका एक और थोक है। वे वल्लालसेनात्मज मित्रसेन निर्दिष्ट बंगालका आदिम वेहारा जाति कह कर अपना परिचय देते हैं। सम्भवतः वे सेन राजाओंके समयसे ही वेहारा का कार्य करते आ रहे हैं। उनमें अधिकांश मनुष्य कृषिजीवि हैं। अनेक हिन्दूपरिवार उन्हें अपना दास बनानेमें जरा भी संकोच नहीं करते। एक ही

ब्राह्मणके उनको याचकता करने पर भी वड़ा भागियागग मितसेनीसे घृणा करते हैं तथा एक साथ भोजन भी नहीं करते।

कीर्त्तन और गीतवाद्यव्यवसाय छोड़ कर अभी ये गांव गांवमें चौकीदारी करते हैं। गाँवकी श्रीवृद्धिके लिये बहुत-से जमींदार या गांवको पञ्चायत झाड़जंगल-परिष्कार, पथघाट-निर्माण, झाड़ूदार और शवदेह-को गांवसे बाहर ले जानेके लिये इन्हें नियुक्त करती है। गांवमें पात्रका विवाह होने पर एक रुपया और पात्रीके विवाहमें ये आठ आने पाते है। विवाहके समय ये मसालचीका भी काम करते हैं। हिन्दू अपने घरमें भूंइमालीसे झाड़ नहीं दिलाते, कारण इनके घुसनेसे गृह आदि अपवित्र हो जाता है। किन्तु किसी किसीके यहां इनकी वालिका आंगन साफ करती और स्त्रियां साधारणतः धाईका काम करती हैं। कभी कभी ये गृहस्थके नित्यव्यावहार्य वरतन आदि भी साफ करती हैं।

हिन्दूके श्राद्धमें ये वेदी तैयार करते और दुर्गोत्सव आदि कार्योंमें आंगनको गोवरसे लीपते हैं। संध्या समय देवप्रदत्त वलिका भाग इनके सिवा दूसरा कोई नहीं पाता। वास्तु-पूजा और घर वनानेमें भी इनकी सहायता लेनी पड़ती है।

ढाका और ब्रह्मपुत्रनदके प्राचीन खातवासी भूंइमालिगणके मध्य पराशर और आलम्यान गोत्र प्रचलित है। वे समगोत्रीमें विवाह नहीं करते। विवाहमें निम्नश्रेणीके ब्राह्मण उनकी पुरोहिताई करते हैं। साधारणतः ये लोग वैष्णव हैं, श्रीकृष्ण ही उनके प्रधान उपास्य देवता हैं। वे प्रायः सभी हिंदू पर्व करते हैं। एतद्भिन्न खाजाखिजर और पीरवदरकी पूजा भी इनमें प्रचलित है। आषाढ़ मासके अम्बुवाचीमें वे तीन दिन तक भूमिकर्षणादि नहीं करते।

उच्चश्रेणीय हिन्दुओंके क्रियाकलाप आदिका अनुसरण कर शूद्रश्रेणी कह कर परिचित होनेकी चेष्टा करने पर भी वे गांवमें नहीं रहने पाते। अब भी वे जातिगत नीच वृत्ति कर जीवन धारण करते हैं। अन्यान्य निम्नश्रेणीके जैसा आज कल इन्होंने सूअरका मांस खाना एकदम छोड़ दिया है। पचास वर्ष पहले वे चाण्डालोंके साथ बैठ कर खाते थे; किन्तु अभी उच्चसमाजमें मिलनेकी प्रत्याशासे वे अपना साहचर्य परित्याग करनेको वाध्य हुए हैं।

भूंइया—स्वनामख्यात भारतवासी जातिविशेष। यथार्थमें यह 'भूंइया' शब्द जातिवाचक है अथवा नहीं, इस विषयमें जातितत्त्वविदोंके मध्य आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है। पूर्वमें आसामसे पश्चिम राजपूताना तथा उत्तरमें युक्तप्रदेशसे दक्षिण मन्द्राज तकके विस्तीर्ण भूभागमें भूँइया जातिका वास है। राजपूतानेके भूंइया (भूमिया)गण राजपूत, विहारके भूँइया (भूमिहारी)गण वाभन तथा पूर्ववङ्ग और आसामके भूंइया (वारूँया)-गणोंके मध्य मुसलमान और हिन्दूजातिका समावेश रहनेके कारण वे अनुमान करते हैं, कि भूँइया शब्द जातिगत न हो कर वरं व्यक्तिगत था। पहले पहल जिन सब व्यक्तियोंने जंगल काट कर गांव वसाये वे स्थानीय जमींदार या राजासे भूमिका सत्त्व पा कर भूंइया कहलाने लगे। अव भी आसामके बहुत-से भूम्याधिकारी भूंइया कहलाते हैं।

इस प्रकार गाङ्गपुर और वोनाइ सामन्तराज्य, छोटानागपुर तथा मानभूममें, केंउझर तथा लोहारडागाका मुण्डा, ओरावन आदि अनार्यजातिके मध्य भी भूमिज या भूंइया उपाधि देखी जाती है। प्रवाद है, कि वर्त्तमान भूंइया नामधारी अनार्यजातिके पूर्व-पुरुषोंने यहां आ कर सबसे पहले वास किया था।

द्राविड़-शाखाभुक्त जिस अनार्य सम्प्रदायने इस प्रकार एकत्र वास किया है वे भी भूंइया नामधारी जाति रूपमें गण्य होते हैं। हिन्दू, मुसलमान आदि जाति या वंशके उपाधिधारी भूंइयाओंको छोड़ छोटानागपुर अधित्यकाके दक्षिणस्थ गाङ्गपुर, वोनाइ, केंउझर और वामड़ा आदि सामन्त राज्यवासी भूंइयाओंके जातितत्त्वकी आलोचना करने पर शेषोक्त जाति ही यथार्थमें भूंइया कहलाती है। सिंहभूम, हजारीवाग और दक्षिण-विहारमें मुसहर नामक भूंइयाकी प्रतिपत्ति देखी जाती है।

मिर्जापुरवासी भूंइयाओंके उत्पत्तिसम्बन्धमें जो एक प्रवाद प्रचलित है वह यों है—मोम और कुम्मनामक

ऋषियोंके यथाक्रम भद्र और महेश नामके दो लड़के थे। उनमेंसे भद्र मगधके विजन जंगलमें गये और वहां तपस्या में नियुक्त हुए। महेश भी उनकी सेवाके लिये वनको चल पड़े। नित्यप्रति महेश वनमें जा फलमूल आहरण किया करते थे। जो कुछ फल मिलता था उसका आधा आपभक्षण करते और आधा भ्रातृसेवाके लिये रख छोड़ते थे। जिस निम्बवृक्षके तले भद्र ध्यानमें निरत थे एक दिन उसीको छाल उन्होंने खा ली। तभीसे वे निम्ब ऋषि नामसे प्रसिद्ध हुए।

इस प्रकार कठोर तपस्यामें बारह वर्ष बीत गये। भगवान्‌ने उनको छलनेके लिये एक स्वर्ग-विद्याधरीको भेजा। निम्बऋषिने उसकी सेवा और रूपदर्शन पर कामाभिभूत हो उसके साथ सहवास किया। इस संयोगके फलसे उनके सात पुत्र उत्पन्न हुए। इन सात पुत्रोंके वंशसे मगहिया, तीरवाह, दण्डवार, घेलवार मुसहर, भूंइहार या भूंइयार जातिकी उत्पत्ति हुई। उक्त ऋषिसे उत्पत्ति हुई थी इस कारण भूंइया लोग अपनेको ऋषियान् भूंइया बतलाते हैं। मिर्जापुरी-भूँइयागण मुसहर और भूमिहारोंके साथ अपनी आत्मीयता स्वीकार करते हैं, किन्तु छोटानागपुरके भूँइयाके साथ कोई सम्पर्क नहीं रखते। शेषोक्त स्थानके भूँइयागण शम्भूकसे अपनी उत्पत्तिको कल्पना करते हैं। किसी किसी स्थानके भूँइयागण कोल, सन्थाल या खासिया जातिकी तरह अपनी उत्पत्ति-काहनी प्रकाश करते हैं।

गाङ्गपुर और बोनाईवासी भूंइया घोर कृष्णवर्ण, बलिष्ठ, सुगठित, मध्यमाकृति और कर्मठ होते हैं। कठिन परिश्रमसे भी वे नहीं उकताते। उनका चौखूंटा मुंह, नाक, गण्डास्थि, हनु, दन्त और चिबुकास्थि देखनेसे ये समतलवासीके जैसे मालूम होते हैं। फिर केउंझरवासी पार्वतीय भूंइया लोगोंको आकृति बहुत कुछ तुराणी-से मिलती-जुलती है। उनके प्रशस्त मुख, पुष्ट अधरोष्ठ, छोटे कपाल और चक्षु प्रभृतिसे उसका विशेष प्रमाण मिलता है। पहलेके जैसा केउंझरी भूंइयागण भी बलिष्ठ तथा क्षुद्राकार हैं। मिर्जापुरियोंके साथ केउंझरियोंका सादृश्य लक्षित होता है। सिंहभूमके दक्षिणस्थ भूंइयागण अपने-को 'पवनवंश' वा 'पवन-का-पूत' बतलाते हैं। विहार-के दक्षिणस्थ मुसहरसे ले कर लोहरडंगाके दक्षिण खण्डाइत-पाइक पर्यन्त सभी स्थानवासी भूंइया ऋषिमुनि या ऋषियासनको अपना कुलदेवता मानते हैं। ऋक्ष (भल्लुक) उन लोगोंका जातिनिर्वाचक था*। आजकल वह ऋक्ष देवता, मुनि या पूर्वपुरुषमें पूजित होता है। इस प्रवादमूलमें चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, पर इतना अवश्य अनुमान किया जाता है, कि मिर्जापुर, सिंहभूम, गाङ्गपुर आदि सामन्तराज्य तथा विहार और लोहर-डंगाके पार्वत्य अधित्यकावासी भूंइया एक श्रेणीमें निबद्ध थे। विभिन्न स्थानमें वास करनेके कारण उन लोगोंके मध्य अनेक विषयोंमें पृथकता तथा दूरनिबन्धता हो गई है।

बंगालके भूंइयाओंके सामाजिक अवस्थानका निर्णय करना कठिन है। स्थानविशेषमें अवस्था परिवर्त्तनके कारण वे स्वतन्त्र श्रेणीमें विभक्त हो गये हैं। उड़ीसाके सामन्तराज्यके भूंइया आपसमें आदान प्रदान करके पूर्व-पुरुषार्जित भू-सम्पत्तिको अपने अधीन रखते हुए एक स्वतन्त्र दलयुक्त हो गये हैं। उनमें किसी किसीके राजपूत कह कर अपना परिचय देने पर भी वे अपनी सामाजिक रीति-नीति नहीं छोड़ सकते। आज भी सर्दारके अधीनस्थ दलपतियोंसे युद्ध-विग्रहमें सहायता पानेकी इच्छा-से सबोंको पूर्वप्रथाके अनुसार भूमि दान करते हैं। इस प्रकार भूमि लाभ कर उड़ीसाके खण्डाइत-सम्प्रदाय दल-बलसे पुष्ट हो समाजमें बहुत कुछ समुन्नत हुए हैं।

उड़ीसा-राजवंशकी उन्नतिके समय सैनिकवृत्ति अव-लम्बन कर खण्डाइत आदिने सभ्यताके सोपान पर आरोहण कर समाजमें जिस प्रकार प्रतिष्ठालाभ किया है, विहारमें उनके सहयोगिगण उपनिवेश स्थापनके बाद उस प्रकार प्रशस्त क्षेत्र न पानेके कारण वन्यस्वभावसे ही चलते हैं। अभी वे सब भूमिलाभसे वञ्चित हो बामन और राजपूतोंके अधीन कृषि या अन्यान्य कर्म ग्रहण करनेको बाध्य हुए हैं। वे सब अनार्य रीतिके अनुसार चूहे पकड़ कर खाते थे। इसलिये हिन्दुओंमें मुसहर

* अब भी अनेक पार्वतीय वन्यजातिके बीच वृक्ष, पहाड़, मेढ़क, सूअर आदिसे जातीय नामकरण प्रचलित है।

नामसे परिचित हुए हैं। विदेश जा कर सामाजिक अवस्थामें हीन होने पर भी उन्होंने भूंइया नामका गौरव परित्याग नहीं किया, किन्तु खण्डाइत लोगोंने समाजमें प्रकृष्ट स्थान पानेकी आशासे घृणापूर्वक उस नामको छोड़ दिया है।

केउंझरके भंइयाओंमें माल, दण्डसेन, खट्टी और राजकुली नामक आठ स्वतन्त्र थोक देखे जाते हैं। राजवंशके साथ संस्रव रहनेसे शेषोक्त थोकका नाम राजकुली पड़ा है। ऐसा सुना जाता है, कि प्रायः २७ पीढ़ी पहले भूंइयाओंने एक मयूरभंग राजपुत्रको अपहरण कर अपना राजा बनाया। उस राजपुत्रके औरस और भंइया रमणीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुए वही राजकुली कहलाये।

मिर्जापुरी भूंइयाओंके मध्य तीरवाह, मगहिया, दण्डवार, महतवार, महाठेक, मुसहर, भंइहार या भूंइयार नामक आठ थोक हैं। उनमें लोहारडांगा और मानभूमिके प्रदेशमें दण्डवार, मगहिया, महतवाव, तीरवाह और मुसहर शाखाभुक्त भंइयाका वास देखनेमें आता है। इन आठ श्रेणीके नाम कार्य या जीवविशेषके नामसे अनुकृत हुए हैं। तीर द्वारा प्राप्त होनेके कारण तीरवाह, दण्ड-(व्यायाम)से दण्डवार, मगधमें वास करनेके कारण मगहिया, मूसा (चूहा) भक्षण करनेसे मुसहर तथा दलपति या मण्डलके पदस्थ होनेसे महतवार, ऐसा नाम पड़ा है। बंगालके मुसहरोंसे ऐसा सुना जाता है, कि करीब ३ या ४ पीढ़ी गुजरी, वे मगध राज्यका परित्याग कर इस देशमें बस गये हैं। उन लोगोंके विवाहादि सभी कार्य यहीं पर होते हैं। विहारवासी मुसहरोंके साथ उनका कुछ भी सम्पर्क नहीं है।

बंगालके तीरवाह, दण्डवार और महतवारोंमें परस्पर आदान-प्रदान प्रचलित है तथा मगहिया, महठेक, भूंइहार या भंइयार और मुसहरगण परस्परमें पुत्र-कन्याका विवाह देते हैं। सभी समय यही नियम लागू है। कभी कभी वे अपने अपने थोकमें भी विवाह देते है।

हजारीबाग और सन्थाल परगनेके भूंइयागण तथा टिकाइत भूंइयागण जमींदार हैं। इसलिये समाजमें उन्होंने उच्चासन प्राप्त किया है। वे क्रमशः स्थानीय निम्नश्रेणीकी राजपूत जातिके साथ मिलनेकी चेष्टा करते हैं। एतद्भिन्न संथाल परगनेमें राय भूंइया और देशवाली तथा मानभूममें कातरा, मुसहर और धोरा भूंइया आदि कितने थोक हैं।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि इन लोगोंके विवाह सम्बन्धमें विशेष विधिनिषेध नहीं है। एक श्रेणीके मध्य दो तीन पीढ़ी बीत जाने अथवा उस पूर्वतन सम्बन्धके स्मृतिपथसे अलग हो जानेसे पुनः उस परिवारके साथ विवाह शादी हो सकती है। पूर्व सम्पर्कके कारण कोई अड़चन नहीं रहती। पर विवाहके पहले जातीय पञ्चायत अवश्य बैठती है। विवाह या श्राद्धके समय जाति-कुटुम्बको भोज नहीं देने, स्वश्रेणीवहिर्भूत व्यक्तिके साथ खानपान करने तथा व्यभिचार-दोषदुष्ट होनेसे पञ्चायत उस व्यक्तिको सजा देती है। साधारणतः एक स्थानवासी भ्रातृवर्गको बकरा, शराब और अन्न खिलानेसे ही वह दोषसे मुक्त हो जाता है। इस जातीय पञ्चायतका दलपति महतो कहलाता है। यह पद भी उसके पितृपदानुसारी होता है। यदि कभी कोई बालक महतो दलपति हो, तो पञ्चायतसे सलाह ले कर कोई दूसरा व्यक्ति उसके बदलेमें काम कर सकता है।

इनके कन्यापुत्रके विवाहके लिये देशान्तरमें पात्र पात्रीकी तलाश नहीं करनी पड़ती। एक स्थानमें दलबद्ध हो कर जो सब भंइया वास करते हैं वहीं पर सामाजिक विधिनिषेधकी रक्षा कर अपनेमेंसे ही पात्र या पात्रीको चुन लेते हैं। यदि कोई व्यक्ति समर्थ हो, तो वह एकसे ज्यादा पत्नी खरीद कर सकता है। ये पत्नियां स्वामीके घरमें विभिन्न प्रकोष्ठमें अथवा पित्रालयादिमें स्वेच्छासे रह सकती हैं। विवाहके पहले और पीछे स्त्रियोंकी स्वाधीन भ्रमणेच्छा बलवती देखी जाती है। यदि कोई अविवाहिता बालिका इस प्रकार स्वाधीन भावमें रहते समय अपनी श्रेणीके किसी युवकके प्रेममें आसक्त हो जाय, तो कन्याका पिता साधारण भोज दे कर उसीके साथ विवाह करा देता है। किन्तु यदि

वह अपर जातीय किसी पुरुषके साथ गुप्तप्रेममें फंस जाय, तो पञ्चायत उसको समाजसे निकाल बाहर करती है। पिता माताका इच्छासे ही पुत्रकन्याका विवाह होता है। बालक-बालिकाका विवाहका समय बारह वर्ष तक निर्द्धारित है। धनी और निर्धनके पक्षमें कन्यापण पांच रुपये, ४ सेर चावल, २ सेर चीनी और १ सेर हल्दी है। विवाहके बाद वर कन्या यदि दोमेंसे कोई गूंगा, उन्माद, कुब्ज, ध्वजभङ्ग या भग्नाङ्ग हो जाय, तो विवाहबन्धन टूट जाता है।

स्वामी या स्त्रीको यदि एक दूसरेके चरित्र पर संदेह हो, तो विवाहबन्धन टूट जा सकता है, पर पञ्चायतको इस विषयमें प्रकृष्ट प्रमाण अवश्य दिखलाना होगा। स्वामीत्यागके बाद वह रमणी पुनः विवाह कर सकती है। सगाई-प्रथाके अनुसार वे विधवाविवाह कर सकती हैं; किन्तु उस समय स्त्रीके श्वशुरको केवल साड़ी और अपने घरमें स्वजाति भोजके सिवा और कुछ नहीं देना होता। यदि कनिष्ठ देवर ज्येष्ठ भाभीके साथ विवाह करना न चाहे तो वह विधवा रमणी किसी औरके साथ विवाह कर सकती है।

जो रमणी अपने देवरका परित्याग कर दूसरेसे विवाह करती है, उसे पूर्व स्वामीके औरसजात पुत्र या सम्पत्ति पर कुछ भी अधिकार नहीं रहता। वह बालक अपने चचाके अधीनमें प्रतिपालित हो, पितृ-सम्पत्तिका अधिकारी होता है। यदि देवर ज्येष्ठ भाभीके ग्रहण करे, तो उसे भतीजेका पालन अवश्य करना होगा तथा उसके बालिग होने पर यदि पृथक् पृथक् होना चाहे, तो सम्पत्तिका आधा आप और आधा भतीजीको देना होता है।

इन लोगोंके मध्य दत्तकग्रहणकी व्यवस्था स्वतन्त्र है। ये भतीजे या नातीको दत्तक ले सकते हैं; किन्तु भानजेको लेना एकदम निषिद्ध है। साधु पुरुषके सिवा रंडुआ, कोढ़ी अन्धा या ध्वजभंग आदि व्यक्ति दत्तक-ग्रहण कर सकते हैं। दत्तकग्रहणके समय उन्हें किसी विशेष नियमका पालन नहीं करना होता।

सन्तान पैदा होने पर एक चमारिन आ कर बच्चेकी नाड़ीको काटती है पीछे उस नाड़ीको उसी स्थानमें गाड़ देती है जहां शिशु भूमिष्ठ हुआ था। छः दिन तक प्रसूतिको सूतिका गृहमें रहना पड़ता है। शेष दिनमें षष्ठी पूजा होती है। इस दिन परिवारमें सबोंको क्षौरकार्य करना होता है और रसोई घरकी पुरानी हांड़ीको फेंक कर नई हांड़ीमें रसोई बना कर खाते हैं। धात्री, प्रसूति और बालकको स्नान करानेके समय ननद आ कर सूतिका-गृहको परिष्कार करती है।

जातबालकके पांचवें या छठें वर्षमें कर्णवेध होता है। विवाहके समय वरका पिता खुदसे कन्या पसन्द कर आता है। तदन्तर पात्रका मामा, महतो और चार पांच मनुष्य कन्याके पित्रालय जाते हैं। विवाहकी बातचीत पक्की होने पर वरपक्षीय व्यक्तियोंको खिलाना होता है। दूसरे दिन सबेरे गृहस्थित आंगनमें मैदेका एक आसन तैयार कर उस पर कन्याको खड़ा किया जाता है। बादमें कन्या और वरपक्षके लोग आ कर कन्याको देखते तथा आशीर्वाद दे जाते हैं।

वागदान होने पर विवाहका दिन स्थिर होता है। उसके तीन दिन पहले माठमंगल उत्सव समाहित होता है। बादमें क्रमशः टीकादान, तेलहांड़ी, भातवान, पर-छन आदि क्रिया अनुष्ठित होती है।

बारातको ले कर वर कन्याके पित्रालयमें जाता है तथा निर्दिष्ट एक वृक्षके नीचे विश्राम करता है। कन्या-पक्षीयगण उस जगह पर आ कर वरके पैर धुलाते और उसके बाद कन्याका पिता आ कर जामाताको घर पर ले जाते हैं। वहां जा कर वर कन्याको बल पूर्वक पकड़ विवाह मंडपसे बाहर लाता है। तदन्तर वृक्ष विवाह कर पहले उसमें सिन्दूर देता और तब कन्याके मांगमें सिंदूर देता है। यही विवाहबन्धनका एकमात्र नियम है।

उन लोगोंमें साधारणतः तीन प्रकारका विवाह प्रचलित देखा जाता है। १ चरहौवा या कुमारी-दान, २ सगाई या विधवाविवाह तथा ३ गुरावत या परिवर्त्त विवाह।

वे लोग रोगीको घरमें नहीं मरने देते। शेष समय आने पर उसे निकटवर्ती नदीके किनारे ले जाते हैं तथा प्राण-पखेरु उड़ने पर यथानियम दाह करते हैं। मुखमें अग्नि देनेकी प्रथा रहने पर भी कोई

मन्त्र नहीं है। सब विषयमें ये हिन्दूका अनुकरण करते हैं। जो निकटात्मीय मृतके मुखमें आग देता है वह दूसरे दिन सबेरे दाहस्थानसे अस्थिभस्म उठा कर नदीमें फेंक देता है। उनका अशौच दश दिन तक रहता है। इस समय यह हविष्यान्न पाक कर खाता है तथा प्रति दिन मृतकको एक पिण्ड देनेके बाद आप खाता है। दशवें दिन क्षौरकर्म समाप्त होने पर आत्मीय कुटुम्ब मृतके घर पर एकत्रित होते और प्रेतकी तृप्ति-लिये एक बकरा मार कर खाते हैं। बाद मद्यादि पान और मांस, अन्न आदि भोजनके बाद श्राद्धकार्य सुसम्पन्न होता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि हिन्दूप्रधानस्थानमें रह कर इन्होंने नाना विषयमें उनका अनुकरण करना सीख लिया है। विवाह, जातकर्म, शवदाह, तथा देव-पूजादि भी ये सब हिन्दूके जैसे करते हैं, किंतु दुःखका विषय है, कि पूर्वोक्त किसी भी कार्यमें उन्हें ब्राह्मणकी आवश्यकता नहीं होती। काली, परमेश्वर, पहाड़ीदेवी, धरित्रीमाता आदि उनके प्रधान उपास्य देवता हैं। अनन्तचतुर्दशी उनका एक महोत्सव है।

बोनाईवासी भूंइयाओंमें दसुमपत, बामोनीपत, कोई सरपत और बोरम नामक चार ग्राम्य देवताकी पूजा प्रचलित है। 'देवसारा' नामक ग्राम्यनिकुञ्जमें उनकी पूजा होती है। उनके मध्य 'देवरी' नामक सम्प्रदाय पुजारीका काम करता है।

भूंइयार—युक्तप्रदेशके मिर्जापुरके दक्षिणदिग्वासी अनार्य जातिविशेष। बेउंरा प्रथासे अर्थात् वन दखल कर उपयोगी कृषिकार्य सम्पन्न करनेके कारण इनकी बेउंरिह संज्ञा पड़ी। प्रवाद है, कि वे भौंड़ादह नामक स्थानसे यहां आ कर हिन्दूके आचार-व्यवहारका अनुकरण करने लग गये हैं। यहां तक, कि वे सन्निकटस्थ भूमिहार ब्राह्मण या क्षत्रियोंके नाम ग्रहण करनेमें जरा भी कुण्ठित नहीं होते। उन्होंने भूमिहारसे अपनेको भूंइहार कहलानेकी चेष्टा की थी तथा धीरे धीरे उसीसे भूंइहार संज्ञा भी प्राप्त कर ली है। उनकी आकृति अनार्योंसे मिलता जुलतो है, इस कारण जातितत्त्वविदोंने उन्हें मुण्डा, भूंइय आदि जातिकी समश्रेणीमें शामिल किया है। जोनाथन डनकान साहब उन्हें 'बेवारिया' नामसे उल्लेख कर गये हैं।

मिर्जापुरी भूंइयारोंमें पन्द्रह थोक हैं जिनमेंसे खगोरिह, सूइदह, खटकरिह, देवहरिया और बारगोरिहा नामक पांच और पांच थोक वासभूमिके नामसे कल्पित हुए हैं। अलावा इसके भूंइहार, नापान, भसार, भल्ल, शिशिबुनबुन, कड़वाराय, दासपूत और भनिहा नाम विभिन्न विषयसे लिये गये हैं, ऐसा मालूम होता है।

अपने अपने थोकमें विवाह निषिद्ध होने पर भी पारस्परिक आदान प्रदानमें दोष नहीं समझते। ममेरा, चचेरा फुफेरा या मौसेरा प्रथासे विवाहमें कोई विशेष आपत्ति नहीं है। एक पीढ़ीके बाद पुनः पितृ और मातृकुलमें विवाह हो सकता है।

पञ्चायत सभासे सामाजिक झगड़ेकी निष्पत्ति होती है। बूढ़े मनुष्य ही मध्यस्थ हो कर मामलेका फैसला करते हैं। यदि पुरुष व्यभिचारी और परदारगामी हो, तो उसे दो वर्षके लिए जातिच्युत किया जाता है और यदि रमणियां अपरजातिके पुरुषके प्रेममें फंस गई हो, तो मद्यमांस देनेसे ही उन्हें रिहाई मिलती है।

इन लोगोंका विवाह बहुत कुछ अनार्यजाति सरीखा है। पुरुष एकसे अधिक विवाह कर सकता है, बशर्त्ते कि उनमें उनके भरण पोषणकी सामर्थ्य हो। विवाहके बाद यदि वर कुष्ठादिरोगसे ग्रसित हो जाय, तो कन्याका पिता पंचायतकी अनुमति ले कर देवरसे उसका विवाह करा सकता है। विधवा सगाई प्रथाके अनुसार विवाह कर सकती है। लेकिन इस समय अपने आत्मीयवर्गसे सलाह लेना आवश्यक है। यदि देवर उससे विवाह न करना चाहे, तो वह विधवा किसी दूसरेको वर सकती है।

हिन्दूकी प्रथा देख कर इन लोगोंने भी दत्तक ग्रहण करना सीख लिया है। किन्तु ये किसी क्रियाकलापका अनुष्ठान नहीं करते। इनकी जातिक्रिया बिलकुल नहीं है। चेचकसे अथवा कुंवारेमें यदि कोई मर जाय, तो उसे जमीनमें गाड़ देते हैं और जिसकी मृत्यु इसके परे हुई है उसकी मृतदेह जलाई जाती है। तीसरे दिन क्षौर कर्म करके ये लोग शुद्ध हो जाते हैं। प्रेतपूजा और उपदेवताकी पूजामें जीवबलि दी जाती है।

पतञ्जिन्न ये लोग महादेव और धरित्री माताकी भी उपासना करते हैं। सेवनारिया नामक ग्राम्य देवताकी पूजा प्रचलित है। आश्विनके महीनेमें और फाल्गुनके होली-पर्वमें ये लोग आमोदप्रमोदमें मस्त रहते हैं।

भूँकना (हिं० क्रि०) १ कुत्तोंका भूं भूं या भौं भौं शब्द करना। २ व्यर्थ बकना।

भूँख (हिं० स्त्री०) भूख देखो।

भूँखा (हिं० वि०) भूखा देखो।

भूँचाल (हिं० पु०) भूकम्प देखो।

भूँजना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुको आगमें डाल कर या और किसी प्रकार गर्मी पहुंचा कर पकाना। २ तलना, पकाना। ३ दुःख देना, सताना।

भूँजा (हिं० पु०) १ भूना हुआ अन्न, चबेना। २ भड़भूंजा।

भूँडरी (हिं० स्त्री०) वह भूमि जो जमींदार नाऊ, बारी, फकीर, या किसी संबंधीको माफीके तौर पर देता है।

भूँड़िया (हिं० पु०) वह व्यक्ति जो मंगनीके हल-बैलोंसे खेती करता हो।

भूँडोल (हिं० पु०) भूकम्प देखो।

भूँभाई (हिं० पु०) वह मनुष्य जिसे गाँवका स्वामी किसी दूसरे स्थानसे बुला कर अपने यहाँ बसावे और उसे निर्वाहके लिये कुछ माफी जमीन दे।

भूरो (हिं० पु०) भ्रमर, भौंरा।

भू (सं० पु०) भू-क्विप्। रसातल।

भू (सं० स्त्री०) भू-आधारे कर्त्तरि अपादाने वा क्विप्। १ पृथिवी, भूमि। २ स्थानमात्र, जगह। ३ यज्ञाग्नि। ४ सीताजीकी एक सखीका नाम। ५ सत्ता। ६ प्राप्ति।

भू (हिं० स्त्री०) भौंह।

भूआ (हिं० पु०) रूईके समान हलकी और मुलायम वस्तुका बहुत छोटा टुकड़ा।

भूक (सं० क्ली०) भवतीति भू-(सू-कू-भू-शुषि-मुषिभ्यः कक्। उण् ३।४१) इति कक्। १ छिद्र। २ काल। (पु०) ३ अन्धकार।

भूकदम्ब (सं० पु०) भुवि कदम्ब इव। १ अलम्बुषवृक्ष, मुंडी। २ महाश्रावणिका।

भूकदम्बक (सं० पु०) भूकदम्बसंज्ञायां कन्। यवानी, अजवाइन।

भूकदम्बा (सं० पु०) गोरक्षमुण्डी।

भूकन्द (सं० पु०) भुवः पृथिव्याः कंद इव। १ महाश्रावणिका। २ शूरण, ओल।

भूकपित्थ (सं० पु०) कपित्थ वृक्षभेद, कैथका पेड़ और उसका फल।

भूकम्प (सं० पु०) भुवः पृथिव्याः कम्पः। भूमिकम्पन, पृथिवीके ऊपरी भागका सहसा कुछ प्राकृतिक कारणोंसे हिल उठना। विशेष विवरण भूमिकम्प शब्दमें देखो।

भूकर्ण (सं० पु०) ज्योतिःशास्त्रमें निरक्षमण्डलका व्यासार्द्ध। Radius of the equator

भूकर्णि (सं० पु०) एक मुनि।

भूकर्बुदारक (सं० पु०) वृक्षविशेष, लिसोड़ा। पर्याय—क्षुद्रश्लेष्मान्तक, भूशेलु, लघुशेलु, लघुपिच्छिल, लघुशीत, सूक्ष्मफल, लघुभूतद्रुम, भूकर्बुदार। इसका गुण—मधुर, कृमि और शूलनाशक, वातप्रकोपण कुछ शीतल और स्वर्णमारक।

भूकल (सं० पु०) भुवः पृथिव्याः कलः। दुर्विनीताश्व।

भूकश्यप (सं० पु०) भुवि पृथिव्यां कश्यप इव, भुवः कश्यप इति वा। वसुदेव।

"तदस्य कश्यपस्यांशस्तेजसा कश्यपोपमः।
वसुदेव इति ख्यातो गोषु तिष्ठति भूतले॥"
(हरिवंश ५६ अ०)

कश्यपके अंशसे वसुदेव उत्पन्न हुए इसीसे उनका यह नाम पड़ा।

भूकाक (सं० पु०) भुवि ख्यातः काकः। १ स्वल्पकङ्क, एक प्रकारका छोटा कंक या बाज। २ क्रौञ्च पक्षी। ३ नील कपोत, नीला कबूतर।

भूकुम्भी (सं० स्त्री०) भुवि कुम्भीव। भूपाटली।

भूकुष्माण्डी (सं० स्त्री०) भुवि कुष्माण्डीव। भूकुष्माण्ड, भुइँ कुम्हड़ा।

भूकेश (सं० पु०) भुवः पृथिव्याः केश इव। १ शैवाल, सेवार। २ वटवृक्ष जिसकी जटाएं जमीन पर लटकती रहती हैं।

भूकेशा (सं० स्त्री०) भूकेश-टाप्। राक्षसी।

भूकेशी (सं० स्त्री०) भूकेश-स्त्रियां ङीप्। सोमराज नामक वृक्ष।

भूक्षित् (सं० पु०) भुवं क्षितिं क्षिणोतीति क्षिद्-क्विप्। शूकर, सूअर।

भूक्षीरवाटिका (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक नगरी।

भूख (हिं० स्त्री०) १ वह शारीरिक वेग जिसमें भोजनको इच्छा होती है। क्षुधा देखो। २ आवश्यकता, जरूरत। ३ अभिलाषा, कामना।

भूखड़—दशनामी संन्यासि-सम्प्रदाय। ये लोग खप्पड़ ले कर भीख मांगते हैं।

भूखण्ड (सं० क्ली०) १ भूमिखण्ड। २ पद्म और स्कन्द पुराणके अन्तर्गत खण्डभेद।

भूखर (हिं० स्त्री०) १ क्षुधा, भूख। २ इच्छा, ख्वाहिश।

भूखर्जूरी (सं० स्त्री०) भूसंलग्ना खर्जूरी, शाकपार्थिवादित्वात् समासः। क्षुद्र खर्जूरी, छोटी खजूर। पर्याय—भूयुक्ता, वसुधाखर्जूरिका, भूमिखर्जुरी। गुण—मधुर, शीतल, दाह और पित्तनाशक।

भूखा (हिं० वि०) १ क्षुधित, जिसे भोजनकी प्रवल इच्छा हो। २ दरिद्र, जिसके पास खाने तकको भी न हो। ३ इच्छुक, जिसे किसी वातकी इच्छा या चाह हो।

भूगन्धा (सं० स्त्री०) मुरा नामक गन्धद्रव्य।

भूगर (सं० क्ली०) भुवः पृथिव्याः गरं। विष, जहर।

भूगर्भ (सं० पु०) १ भवभूति कवि। भूः सर्वभूताश्रय भूता पृथ्वीगर्भे कुक्षौ यस्येति। २ विष्णु। ३ भूमिका अभ्यन्तर भाग, पृथ्वीका भीतरी हिस्सा।

भूगर्भगृह (सं० क्ली०) भूमध्यस्थित गृहं। १ भूमध्य स्थित गृह, तहखाना। २ तन्त्रोक्त यन्त्र वहिःस्थित रेखात्रय विशेषात्मक पदार्थ।

भूगर्भशास्त्र (सं० पु०) वह शास्त्र जिसके द्वारा इस वातका ज्ञान होता है, कि पृथ्वीका संघटन किस प्रकार हुआ है, उसके ऊपरी और भीतरी भाग किन किन तत्त्वोंके वने हैं, उसका आरम्भिक रूप क्या था और इसका वर्त्तमान विकसित रूप किस प्रकार और किन कारणोंसे हुआ है। इस शास्त्रमें पृथ्वी की आदिम अवस्थासे ले कर अव तकका एक प्रकारका इतिहास होता है जो कई युगोंमें विभक्त होता है और जिनमेंसे प्रत्येक युग की कुछ विशेषताओंका विवेचन होता है। वड़ी वड़ी चट्टानों, पहाड़ों तथा मैदानोंके भिन्न भिन्न स्तरों की परीक्षा इस शास्त्रके अन्तर्गत होती है और इसी परीक्षाके द्वारा यह निश्चित होता है, कि कौन-सा स्तर या भूभाग किस युगका वना है। इस शास्त्रमें यह भी रहता है, कि पृथ्वी पर जल-वायु और वातावरण आदिका क्या प्रभाव पड़ता है।

भूगोल (सं० पु०) भूर्गोलो मण्डलमिव। भुवनकोष, भूमण्डल, गोलाकार मण्डल।

"मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोल व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥"
(सूर्यसि०)

जिस शास्त्रमें पृथ्वीके ऊपरीभागका विवरण वर्णित हो उसे भूगोल कहते हैं।

खगोल गोल, पृथिवी तथा भुवनकोष शब्द देखो।

ज्योतिषिक भूगोल।

भास्कराचार्य्य प्रभृति हिन्दू-ज्योतिर्विदोंके मतसे पृथिवी गोलाकार और अचल है। यह किसी मूर्त्त पदार्थका अवलम्बन कर अवस्थित नहीं है और न इसकी गति ही है। ग्रहगण और नक्षत्रमण्डल इसीके चारों ओर घूमते हैं। कदम्बकुसुम जिस प्रकार केशरकलापसे परिवेष्टित रहता है उसी प्रकार इस भूगोल पर पर्वत, चैत्य, मनुष्य, असुर तथा देवगण अवस्थित हैं।

(सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय)

आर्यभट्टके मतसे पृथिवी स्थिर नहीं है, वरन् हमेशा घूमती रहती है। ग्रह, नक्षत्र प्रभृति ज्योतिष्कमण्डली निश्चल है, पृथिवीकी गतिके अनुसार उनका उदय और अस्त होता है।

सिद्धान्तशिरोमणिकारने गणित तथा युक्ति द्वारा पृथिवीका गोलत्व सावित किया है।

"भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञ-कविरवि-कुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैर्वृतोवृत्तः सन् मृदनिल-सलिल-व्योमतेजोमयोऽयम्।
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वञ्च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्॥"
(सिद्धान्तशिरोमणि)

यह परिदृश्यमान गोलाकार भूखण्ड चन्द्र, बुध, शुक्र, मङ्गल, वृहस्पति, शनि और नक्षत्रकक्षावृत्तसे परिवृत है तथा अन्य आधारकी अपेक्षा न कर अपनी शक्तिसे सर्वदा

आकाशमें अवस्थान करता है। उसी शक्तिसे दानव, मनुष्य तथा देवदैत्यादिके साथ विश्वसंसार अधिष्ठित है।

भारतीय ज्योतिर्विद्गण, पृथिवी गोल नहीं है, यह कल्पना करना भी असम्भव समझते थे। सिद्धान्त-शिरोमणिकारने गोलाध्यायमें कहा है, कि गोलानभिज्ञ गणक मानों राजा हीन राज्य, वक्ताहीन सभा तथा घृत हीन भोजनके समान हैं।

भास्कराचार्यने पौराणिक मतानुसार पृथिवीको समतल बतलाया है—

"यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते ॥"

पृथिवी यदि दर्पणोदरकी तरह समतल है, तो फिर इससे बहुत ऊँचे पर भ्रमणशोल सूर्य मनुष्य तथा देवता द्वारा सर्वदा क्यों नहीं दिखलाई पड़ते ?

पृथिवीको गोलाई साबित करनेके लिए प्राचीन ज्योतिर्विद् लल्लाचार्यका कहना है,—

"समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्ताल-निभा बहूच्छ्रया।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः ॥"

यदि पृथिवी समतल होती, तो तालके समान अत्यन्त उच्च वृक्ष दूरसे क्यों नहीं नजर आते ?

पृथिवीकी गोलाई हीसे दिन रात होती है, पौरा-णिक मतखण्डनकी जगह भास्कराचार्यने कहा है,—

"यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति स दक्षिणभागतः ॥"

यदि कनकाचल सुमेरु रात्रिका कारण हो, तो सूर्य डूबने पर वह स्वर्णमय सुमेरु क्यों नहीं दिखलाई पड़ता ? उक्त पर्वत जब उत्तरकी ओर है, तब फिर अंशुमाली सूर्य दक्षिणमें क्यों उदित होते हैं ?

पृथिवी तो गोल है, किन्तु देखनेमें यह समतल-सी जान पड़ती है, इसका कारण यह है,—

"अल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात् सर्वतोमुखं।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धरां ॥"

(सूर्यसिद्धान्त)

मनुष्य पृथिवीके आयतनके सामने अत्यन्त छोटे हैं, अतः यह वर्त्तुलाकार रहने पर भी चक्राकार समतल क्षेत्रकी तरह प्रतीत होती है।

"समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत् पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥"

(गोलाध्याय)

पृथिवी बहुत बड़ी है, अतः इसकी परिधिका शतांश भी उस पर स्थित मनुष्यको समतल जान पड़ता है।

पृथिवीका गोलत्व प्रमाणित होनेसे, अवश्य ही इसका ऊर्द्ध्वाधः मानना होगा। क्योंकि वर्त्तुलाकार पदार्थ-का एक भाग ऊपर और दूसरा नीचे रहता है। अतः नीचे रहनेवाले अधिवासियोंका मस्तक नीचेकी ओर रहनेसे वे गिर जा सकते हैं ऐसा ख्याल हो सकता है।

इस विषयमें सूर्य सिद्धान्तने कहा है,—

"सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितं।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्द्ध्वं क्व वाप्यधः ॥"

गोलाकार पृथिवी अनन्त आकाशमें स्थित है, सुतरां उसका ऊर्द्ध्व या अधः ही कहां है ? सभी अपने अपने स्थानको ऊपर समझते हैं।

इस विषयमें भास्कराचार्यने और भी कहा है।

"यो यत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थमात्मानमस्या उपरिस्थितञ्च।
समन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्थामिथश्च ते तिर्यगिवामनन्ति ॥
अधः शिरस्का कुदलान्तरस्थाः छायां मनुष्य इव नीरतीरे।
अनाकुलास्तिर्यगधः स्थिताश्च तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र ॥"

जो मनुष्य जहां रहता है वह वहीं पर रह कर पृथिवी तलको अपना पदतलस्थ तथा अपनेको उसके ऊपर स्थित समझता है। पृथिवीके चतुर्थ भागस्थ ९०° अंश अर्थात् प्राचीन महाद्वीपके मध्यस्थल पर मनुष्य मात्र ही धरामण्डलके ऊपर अधिष्ठित हैं, अतः वे इसे तिर्यग-भावमें बतलाते हैं। किन्तु जो विपरीत भाग पर (१८०° अंश अर्थात् नूतनमहाद्वीपमें) रहते हैं, वे हम लोगोंको जलाशयके किनारे खड़े मनुष्यके जलस्थ अधःशिरस्क प्रतिविम्बके जैसे मालूम पड़ते हैं; किन्तु यह भ्रममात्र है।

कारण, यह अनन्त आकाश पृथिवीके चारों ओर है। सुतरां पृथिवी-वासी मनुष्यमात्रके मस्तकके ऊपर ग्रहनक्षत्रसे मण्डित आकाश और पदके नीचे वसुंधरा है। हमलोग जिस प्रकार यहां रहते हैं, वे भी उसी प्रकार वहां अवस्थान करते हैं।

भूमण्डलके गोलत्वके विषयमें गोलाअध्यायमें अनेक प्रमाण हैं—

"निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ ध्रुवौ नरः पश्यति दक्षिणोत्तरौ।
तदाश्रितं खे जलयन्त्रवत् तथा भ्रमद्भचक्रं निजमस्तकोपरि॥"
"उदग्दिशं याति यथा तथा नरस्ताथ स्यान्नतमृक्षमण्डलं।
उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेस्तदन्तरे योजनजांपलांशका॥"
(गोलाध्याय)

निरक्षदेशस्थ मनुष्य दक्षिण और उत्तर ध्रुवको क्षितिमण्डलके साथ संलग्न तथा ध्रुवाश्रित राशिचक्रा को अपने मस्तकोपरिस्थ आकाशमें जलयन्त्रके समान भ्रमणशील देखते हैं। निरक्षदेशसे मनुष्य जितना हो उत्तरकी ओर अग्रसर होंगे, उतना हो वे अपने मस्तको-परिस्थ ऋक्षमण्डलको पीछेकी ओर अवनत तथा उत्तर ध्रुवको उत्तरोत्तर उन्नत देखेंगे। इसीसे पृथ्वीका गोलत्व साफ साफ प्रमाणित होता है।

पुराणमें भी पृथ्वीकी गोलाईका प्रकृष्ट प्रमाण मिलता है। यथा—

"उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः।
स्वर्भानोस्तु वृहत् स्थानं तृतीयं यत् तमोमयम्॥"
(मत्स्य १२८।६० कूर्म ४०।१५)

यह विपुलायतना पृथ्वी शून्यमार्गमें उत्क्षिप्त शिला-खण्डकी तरह नीचे न गिर कर किसी शक्तिके बल शून्यमार्गमें अवस्थित है, ऐसा भी भास्कराचार्यके गोला-ध्यायमें वर्णित है।

"आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे॥"
(गोलाध्याय)

पृथ्वी अपनी आकर्षणी शक्तिसे शून्यमें स्थिर है और उसी आकर्षणी शक्तिके बलसे आकाशमें उक्षिप्त गुरु वस्तु इसकी ओर आकृष्ट होती है। भूपृष्ठ पर खड़े हो कर जिस प्रकार हम लोग समझते हैं, कि आकाश ऊपरमें अवस्थित है, उसी प्रकार भूमण्डलके चारों ओर स्थित मनुष्य आकाशको ऊपर ही देखते हैं। सुतरां सबोंके मतसे यदि पृथ्वी नीचेकी ओर पड़े, तो यह कहां अवस्थित होगी? इसका कारण उद्धारसापेक्ष है। यथार्थमें ऊंचा नीचा कोई भी स्थान नहीं है, अतः पृथ्वी आकाशमें स्थिर है।

पौराणिक मतसे भूगोलके वर्णनमें अनेक मतभेद देखनेमें आता है और सम्प्रति वे अब कल्पित जान पड़ते हैं। गोलाध्यायमें भूगोलपुरनिवेश इस प्रकार वर्णित हुआ है।

"लङ्काकुमध्ये यमकोटीरस्याः प्राकपश्चिमे रोमकपत्तनञ्चा।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येऽथ याम्ये वड़वानलश्च॥
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड् गोलविदो वदन्ति॥
लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात् तदा दिनार्द्धं यमकोटिपुर्यां।
अधःस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद् रोमके रात्रिदलं तदैव॥"

भूगोलके मध्यस्थलमें लङ्का, पूर्वमें यमकोटि, पश्चिम-में रोमकपत्तन, अधःस्तलमें सिद्धपुर, उत्तरमें सुमेरु और दक्षिणमें वड़वानल है। (कुमेरु) गोलवित् पण्डितोंने उक्त छः स्थानको भूपरिधिके पादान्तरित अर्थात् चतुर्थांश समान अन्तरमें अवस्थित बतलाया है। लङ्कापुरमें जब सूर्योदय होता है, उस समय यमकोटिमें दो पहर दिन, सिद्धपुरमें अस्तकाल और रोमकपत्तनमे दोपहर रात रहती है।

ध्रुवोन्नति और अक्षांशके अभावसे भूगोलका मध्य-स्थल निर्णित होता है। गोल शब्द देखो।

"तेषामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः।
न तासु विषुवछाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते॥"

विषुववृत्त उक्त चार पुरीके ऊपर हो कर गया है, अतः सूर्य जब उक्त विषुववृत्त हो कर जाते हैं, तब इन सब स्थानोंमें अक्षच्छाया तथा ध्रुवोन्नति नहीं रहती। इसो लिए उक्त वृत्तको निरक्षवृत्त कहते हैं। जिस दिन रातदिन बराबर होतो है, उसी दिन सूर्य इस वृत्तके ऊपर हो कर जाते हैं। निरक्षवृत्त तथा विषुववृत्त परस्पर अभिन्न हैं। उत्तर और दक्षिणमेरुके आकाशमें दो ध्रुवतारे हैं। निरक्षदेशस्थ मनुष्य उक्त दोनों तारेको क्षितिज (Horizon) वृत्तमें मिला हुआ देखते हैं। इसीलिए निरक्ष वृत्तमें अवस्थित लङ्का प्रभृति चारों पुरीके ध्रुवोन्नति नहीं है, किन्तु निरक्षदेशसे जितना हो उत्तर बढ़ा जाय, ध्रुव उतना ही ऊंचा दिखलाई पड़ता है। अतः ध्रुवो-न्नतिसे सभी स्थानोंका अक्षांश निरूपित होता है।

प्रमाण—

"मेरोरुभयतो मध्ये ध्रुवतारे नभःस्थिते।
निरक्षदेशसंस्थानामुभये क्षितिजाश्रये॥
अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजाश्रयोः।
नवतिर्लम्बकांशास्तु मेरावक्षांशकास्तथा॥" (सूर्यसिद्धान्त)

निरक्षदेशका अक्षांश ०° और मेरुका निरक्षसे ६०° अंश है।

बाद सिद्धान्तशिरोमणिग्रन्थके गोलाध्यायमें भूगोल या भुवनकोषका द्वीप और समुद्रसंस्थान तथा परिधि और पृष्ठफल इस प्रकार लिखा है,—

लवण-समुद्रके मध्यस्थ अर्द्ध भूमिभागको आचार्यगण जम्बूद्वीप कहते हैं। परार्द्ध दो द्वीपके दक्षिण लवण और क्षीरोद प्रभृति समुद्र अवस्थित है। पहले लवण-जलधि और पीछे दुग्धसिन्धु है। इसी दुग्धसिन्धुसे अमृत, अमृतांशु चन्द्र तथा लक्ष्मी उत्पन्न हुई थीं और वहीं पूजनीय ब्रह्मादि देवगण तथा वासुदेव वास करते हैं। बाद इसके दधि, घृत, इक्षु, सुरा और निर्मल जल-मय समुद्र वर्त्तमान हैं।

'पातालके मनुष्योंका आवासस्थल वड़वानल स्वादु-जलमय है और इस पाताल प्रदेशमें फणास्थित मणि-किरणमें समुज्ज्वलकान्ति फणिगण तथा असुरगण वास करते हैं और वहीं सिद्धगण उज्ज्वल सुवर्णमण्डितदेह दिव्य रमणियोंके साथ क्रीड़ा करते रहते हैं। इसके बाद शाक, शाल्मल, कौश (कुश), क्रौञ्च, गोमेदक तथा पुष्कर द्वीप दो दो समुद्रके अन्तर पर अवस्थित हैं।

'लङ्का देशके उत्तर हिमगिरि, बाद हेमकूट और उसके बाद सिन्धु तक फैला हुआ निषधदेश है। सिन्धुपुर-के उत्तर शृङ्गवत् शुक्लनीलवर्ष विद्यमान है और उसीमें द्रौणिदेश अवस्थित है। भारतवर्षके उत्तर किन्नरवर्ष, बाद हरिवर्ष, सिद्धपुर, कुरुवर्ष कुरुवर्षके बाद हिरण्मय और रम्यक वर्ष है। माल्यवान् पर्वत यमकोटिपत्तनसे तथा गन्धमादन रोमकपत्तनसे नीलशैल और निषध तक विस्तृत है। इन दोनों पर्वतोंके बीच इलावर्ष है। जलधि-मध्यवर्ती मालाकी तरह जिसे पण्डितगण भद्रतुरग कहते हैं, गन्धमादन अवस्थित है और उसके मध्यवर्ती भू-भागको कलाज्ञ व्यक्तिगण केतुमाल वर्ष कहते हैं। इलावृतवर्ष देवताओंका लीलाक्षेत्र हैं।

भास्कराचार्यने पौराणिक भूगोलका ही बहुत कुछ अनुसरण किया है। किस किस पुराणमें भूगोलका विवरण हैं, वह पुराणशब्दमें अठारहवें पुराणकी सूची पढ़नेसे जाना जाता है। विस्तारके भयसे वह यहां नहीं लिखा गया। पृथिवी, भुवनकोष प्रभृति शब्द देखो।

किसी किसी पुराणके मतसे पृथिवी समतल बतलाई गई है। भास्कराचार्यने उन सब असमीचीन मतों तथा बौद्धजैनोंके सभी मतोंका गोलाध्यायमें युक्ति द्वारा खण्डन किया है। भास्कराचार्य प्रभृति वरेण्य ज्योतिर्विद्गण गणित ज्योतिषमें असाधारण पाण्डित्य प्रकाशित करने पर भी भौगोलिक देश, द्वीप, सागरादि संस्थान विषयमें पौराणिक मतकी ही पोषकता कर गये हैं।

काव्यभावसुलभ भारतवर्षमें जन्मग्रहण कर उन्होंने अपने दुरूह गणित और ज्योतिषके वर्णनाकालमें भी कवित्व दिखलानेको नहीं छोड़े। वे मानससरोवरका नामोल्लेख करनेके समय कवित्व प्रलोभन नहीं भूल सके थे। इसी कारण लिखा है,—"सरःसु रामारमणाश्रमालकाः सुरा रमन्ते जलकेलिलालसाः।" इससे स्पष्ट जान पड़ता है, कि वे भूगोलका यथार्थ स्थानका निरूपण करनेमें ध्यान न दे "पुराविदः समवर्णयन" ऐसा कह कर निश्चिन्त हुए हैं।

भारतवासी बहुत पहलेसे ही भूगोलतत्त्व जानते थे। उन्होंने चाहे योगप्रभावसे हो अथवा अध्यवसायके गुणसे, अति प्राचीन कालसे चिरतुषारावृत उत्तरकुरु और सोमगिरि (Aurora Borealis)-का आविष्कार किया था। ऐतरेय-ब्राह्मणमें उत्तरकुरु तथा उत्तरमद्रका उल्लेख है। वाल्मीकिरामायणके किष्किन्धाकाण्डमें सीतान्वेषणके समय सुग्रीव द्वारा समुद्रके दूसरे किनारे-के बहुत से जनपदका जो विवरण मिलता है, उसे पढ़ने-से जान पड़ता है, कि भारतवासी अति प्राचीन कालसे भूमण्डलके बहुत दूर देशसे जानकार थे। महाभारतमें भी जम्बूखण्डके निर्माणप्रसङ्गमें भूवृत्तान्त-सम्बन्धीय अनेक कथाएं लिखी हैं। पुराणकी कथा पहले ही वर्णित हो चुकी है।

बौद्ध और जैनगण भी भूवृत्तान्तके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें लिख गए हैं। जैनोंकी सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्र-प्रज्ञप्ति और क्षेत्रसमाससे भूगोलकी बहुत-सी बातें

मिलती हैं। विक्रमसागर, देशावलीविवृति, दिग्विजय प्रकाश प्रभृति बहुतसे संस्कृत ग्रंथोंमें नाना जनपदका भूवृत्तांत वर्णित है। भारतवासियोंने पूर्वकालसे ही जिस प्रकार ख-लोकका ध्रुवक तथा विक्षेप स्थिर किया था, उसी प्रकार वे भूगोलके भी नाना स्थानोंका अक्षांश स्थिर कर गए हैं। यंत्रराज नामक ग्रंथमें इसका बहुत कुछ आभास मिलता है।

पाश्चात्य भूगोल—विवरण।

जिस शास्त्रमें पृथिवीपृष्ठका विवरण है, उसे भूगोल (Geography) कहते हैं। अर्थात् भूपृष्ठस्थित देशादिके प्राकृतिक विभाग, नद, नदी, ह्रदपर्वतादिका वर्णन, जीव, उद्भिज्ज और उत्पन्न सामग्री तथा राजकीय शासनादिके विवरणविशिष्ट शास्त्रको भूगोल कहते हैं। भूगोल और इतिहास ये दोनों परस्पर सापेक्ष शास्त्र हैं।

पाश्चात्य जगत्में सुप्रसिद्ध ग्रीक-कवि होमरके काव्यमें सर्व प्रथम भूगोलका उल्लेख मिलता है। प्रसङ्गक्रमसे उक्त काव्यमें अनेक भौगोलिक विवरण दिये गये हैं। उस समय अर्थात् ईस्वी सन् ६०० वर्ष पहले होमरके परवर्त्ती ग्रंथकारगण भूगोलका उल्लेख करते आये हैं। होमरने पृथिवीको अण्डाकार और समतल तथा इसके चारों ओर एक अविरामवाही जलस्रोत बहता है, ऐसा वर्णन किया है। जो कुछ हो, होमरवर्णित भूगोलमें यूरोपके कई एक स्थान और एशिया तथा अफ्रिकाका नामोल्लेखमात्र है। ईस्वी सन् ८०० वर्ष पहलेसे भूगोलका कलेवर कुछ बढ़ा है और उसमें पाश्चात्य जगत्‌के अनेक स्थानका विवरण और नील नदीका तथा अफ्रीकाके दक्षिणखण्डवासी यूथीपियोंका उल्लेख देखा जाता है।

ईस्वी सन् ७०० वर्ष पहले फिनीकीय वणिक्‌गण अफ्रिका देखने आये। उन्होंने सबसे पहले समुद्रयात्रा की। अनन्तर पीथागोरा सेरके समय पृथिवीका गोलाकार होना साबित हुआ और इसके बाद प्लेटोके समयमें यह सिद्धान्तमें परिणत हुआ। उस समय वणिक्‌विद्याकी यथेष्ट उन्नति होनेके कारण बहुत-से नवीन स्थान आविष्कृत हुए और हिमिल्को नामक एक नाविकने ब्रिटिश द्वीपपुञ्जका आविष्कार किया।

होमरके समय पृथिवीके दो विभाग थे, अभी चार विभाग हुए—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम। हीरोदोतस जैसे इतिहासके जनक थे, वैसे ही वे सर्वप्रथम भूगोलरचयिता भी थे। वे स्वयं बाबिलन और इजिप्ट प्रभृति अनेक स्थानोंका परिदर्शन कर सबोंका वर्णन लिख गए हैं।

पुनः आज तक ग्रीसदेशमें ज्योतिष-शास्त्रकी आलोचना नहीं देखी जाती। ईस्वी सन् ६०० वर्ष पहले दार्शनिक पण्डित थेलिस्‌ने सबसे पहले एक सूर्यग्रहणकी गणना की। इसके कुछ दिन बाद ग्रीक पण्डितगण अलेकजेण्ड्रियाके ज्योतिर्विदोंके अनुकरणसे अक्षांश तथा देशान्तरकी गणना द्वारा भूपृष्ठस्थ स्थान-समूहके दूरत्वनिर्णयमें सचेष्ट हुए थे।

इसके कुछ दिन बाद ग्रीक-पण्डित एराटोस्थिनिसने एक भूगोलकी रचना की। उनके प्रदत्त मानचित्रमें यूरोपके बहुतसे स्थान निर्दिष्ट हुए। उस समय ग्रीसमें ज्ञानकी अनेक वृद्धि हुई थी और पर्यटकगण नवीन देश देखनेमें उत्सुक हो कर पृथ्वीके बहुत-से स्थानोंमें घूमने लगे।

बाद एशिया-माइनर-निवासी ष्ट्राबोने पूर्वलब्ध विवरणावलीको एकत्र कर सुश्रृङ्खलाभावसे अपना भूगोल विवरण प्रकाशित किया।

जो पाश्चात्यदेशके प्रत्नतत्त्वकी खोजमें हैं उन्हें आज भी ष्ट्राबोकी सहायता लेनी पड़ती है।

जब ष्ट्रोबाने भूगोल रचा, उस समय रोमसाम्राज्यके सौभाग्यसूर्यकी उज्ज्वल किरणसे पृथ्वी चमक उठी थी। ष्ट्राबोका भूगोल उक्त रोमसाम्राज्यमें सभी जगह आदर पूर्वक पढ़ा जाने लगा। उस समय अलेकजेण्ड्रिया ज्ञानका भण्डार कह कर संसारमें विख्यात था।

अलेकजेण्ड्रियाकी ज्योतिर्विद्याकी उस समय बहुत कुछ उन्नति हुई। उसी समय मिश्रके अन्तःपाती पिलुसियमनगरके सुप्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिर्विद् टलेमीका जन्म हुआ। टलेमीने अलेकजेण्ड्रियाके विश्वविद्यालयमें शिक्षित हो कर खगोल और भूगोलके सम्बन्धमें अपूर्व ग्रंथकी रचना की। उनकी बनाई हुई पुस्तकका नाम है

अलमेजिष्ट। ७वीं शताब्दीमें यह ग्रन्थ अरबी भाषामें अनुवादित हुआ। हारूण-अल-रसीद देखो।

जो कुछ हो, टलेमी ही प्राचीनकालके एकमात्र प्रसिद्ध भूगोल-प्रणेता थे।

टलेमीप्रकाशित भूगोलमें ग्रीक और रोमकगण भूमण्डलका हाल जहां तक जानते थे, सभी वर्णित है। टलेमीकी पुस्तक १४ सौ वर्ष तक पाश्चात्य जगत्में अप्रतिहतभावमें प्रचलित रही। १४वीं शताब्दी तक टलेमीके भौगोलिक ज्ञानभण्डारमें फिर एक भी रत्न सञ्चित न हुआ। अनन्तर रोमका सौभाग्यसूर्य जब असभ्य वर्बर-राहुकवलसे ग्रस्त हुआ तब फिर विज्ञान-चर्चा भी पाश्चात्य भूखण्डसे जाता रहा।

बाद १६वीं शताब्दीमें जब यूरोपमें विद्यालोचनाके नवयुगका उदय हुआ, तब शास्त्रचर्चाके विविध द्वार उद्घाटित हो नाना लुप्त रत्नोंका अनुसन्धान होने लगा। इसी समय स्पेनियार्डोंने जगत्के इतिहासका सौभाग्य-शीर्ष स्थान दखल किया। कलम्बसने अमेरिकाका पता लगाया। ओलन्दाजगण उत्तमाशाअन्तरीप घूमते हुए भारतवर्ष आ धमके और मेगेलन, ड्रेक, कप्तान कूक प्रभृति जगद्विख्यात नाविकोंने भूमण्डलका प्रदक्षिण कर भौगोलिकज्ञानकी चरमोन्नति की। इसके परवर्त्ती समयका भूगोल-विवरण आजकल शिक्षित व्यक्तियोंको विदित है तथा विश्वकोषके महादेश तथा देशादिकी वर्णनामें भी वे सब प्रकाशित हुए हैं और होंगे। अतः विस्तार और पौनरुक्तिके भयसे उन सबोंकी आलोचना नहीं की गई।

भूपृष्ठभागका विवरण।

पृथ्वीका ऊपरीभाग जल और स्थलभागमें विभक्त है। इसके तीन भाग जल और एक भाग स्थल है।

जलभाग—महासागर, सागर, उपसागर, प्रणाली, ह्रद, नदी, उपनदी प्रभृति नामसे कल्पित है।

जो विस्तीर्ण लवण-जलराशि पृथ्वीको घेरे हुई है, वही महासागर है, भौगोलिकोंने सुविधाके लिए उसका स्वतन्त्र नामसे अवस्थान-निर्देश किया है। महासागर पुनः पांच भागोंमें विभक्त हैं,—(१) उत्तर (आर्कटिक) महासागर, (२) दक्षिण (एण्टार्कटिक) महासागर, (३) प्रशान्त (पैसफिक) महासागर, (४) अटलाण्टिक महासागर और (५) भारत (इण्डियन) महासागर।

१ उत्तरमहासागर—उत्तरमेरुप्रदेशमें। २ दक्षिण-महासागर—दक्षिण मेरुप्रदेशमें। ३ प्रशान्तमहासागर—एशिया और अमेरिकाके मध्य। ४ अटलाण्टिक महासागर—यूरोप और अफ्रीका तथा अमेरिकामें। ५ भारत-महासागर—एशियाके दक्षिणमें।

उक्त पांचों महासागरके मध्य प्रशान्तमहासागर सबोंकी अपेक्षा बड़ा और उत्तरमहासागर सबसे छोटा है। सम्पूर्ण जलभागका परिमाणफल प्रायः १४ करोड़ ५० लाख वर्गमील है।

महासागरकी अपेक्षा छोटे लवणमय जलभागका नाम सागर है। ऐसा जलभाग जो प्रायः चारों ओर स्थल द्वारा घिरा रहता है, वह उपसागर कहलाता है।

जो सङ्कीर्ण जलभाग दो बड़े बड़े जलभागको परस्पर मिलाता है अथवा जो दो स्थलभाग हो कर प्रवाहित होता है, उसे प्रणाली कहते हैं।

चारों ओर सम्पूर्णरूपसे स्थल द्वारा घिरे हुए स्वाभाविक जलभागका नाम ह्रद है। ह्रद बहुत बड़ा होनेसे सागर कहलाता है। जैसे, कैस्पियन सागर।

जो जलप्रवाह पर्वत, ह्रद या प्रस्रवणसे निकल कर सागरादिमें गिरता है, उसे नदी कहते हैं।

जो नदी पर्वतादिसे निकल कर किसी दूसरी नदीमें जा मिलती है, उसे उपनदी और जो नदीसे निकल कर किसी ओर वह जाती है, उसे शाखा नदी कहते हैं। जहां पर दो नदियां मिलती हैं, वह सङ्गम-स्थान कहलाता है। जिस स्थानसे नदी निकलती है वह नदीका उत्पत्तिस्थान और जहां पर नदी समुद्रमें या ह्रदमें जा मिलती है, उसको नदीमुख या मुहाना कहते हैं। नदीके मुहानेको निकटस्थ त्रिकोणाकार भूमिका नाम डेल्टा है।

वर्त्तमान भौगोलिकोंने भूपृष्ठको दो महाद्वीपमें विभक्त किया है, पूर्व या प्राचीन महाद्वीप और पश्चिम या नूतन महाद्वीप। इस महाद्वीपके अन्तर्गत जो विस्तीर्णभूभाग है, जिसमें अनेक देश हैं, उसको महादेश कहते हैं।

प्राचीन महाद्वीपमें—(१) एशिया, (२) यूरोप और (३) अफ्रीका। नूतन महाद्वीपमें—(१) उत्तर अमेरिका, (२) दक्षिण अमेरिका, यही पांच महांश हैं।

अभी अवसीनिया (सामुद्रिक) नामक समुद्र-गर्भस्थ बड़े बड़े द्वीपोंको ले कर भौगोलिकगण एक स्वतन्त्र महादेशकी कल्पना करते हैं।

महादेशोंके मध्य एशिया सबसे बड़ा और जनपूर्ण है। यूरोप सबसे छोटा होने पर भी उन्नत तथा सुसभ्य है। अमेरिकाकी जनसंख्या सबोंकी अपेक्षा थोड़ी है और अफ्रीका सबसे अनुन्नत और असभ्य है। महादेशोंका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

१४९२ ई०में विख्यात यूरोपीय नाविक कलम्बसने अमेरिकाका आविष्कार कर अपने पोताध्यक्ष अमेरिका भेस्पुचिके नामानुसार उस स्थानका नाम 'अमेरिका' रखा।

परिमाणफल—समूची पृथिवीका परिमाण साढ़े उन्तीस करोड़ वर्गमीलसे भी अधिक है जिसमेंसे जल भाग साढ़े चौदह करोड़से ऊपर है और स्थल भाग पांच करोड़ है। जनसंख्या लगभग डेढ़ सौ करोड़ है।

स्थलभाग साधारणतः महादेश, देश, द्वीप, उपद्वीप, अन्तरीप, योजक, उपकूल, पर्वत इत्यादि नामसे प्रसिद्ध है।

विस्तीर्ण भूमिखण्डको महादेश और उसके एक एक अंश को देश कहते हैं। चारों ओर जल द्वारा परिवेष्टित भूमिखण्डको द्वीप और ऐसे ही कई एक द्वीप एकत्र रहनेसे उसे द्वीपपुञ्ज कहते हैं। इसी प्रकार महादेशके समीपवर्त्ती प्रायः चारों ओर जल-परिवेष्टित कोई कोई भूमिखण्ड जो एक ओर स्थल द्वारा महादेशके साथ संलग्न है, वह उपद्वीप कहलाता है।

जो भूभाग क्रमशः सूक्ष्म हो कर समुद्रकी ओर चला गया है, उसके अग्रभागका नाम अन्तरीप है। वह सङ्कीर्ण भूमिखण्ड जो किसी दो बड़े भूमिखण्डको मिलाता है, योजक या डमरूमध्य कहलाता है। समुद्रके तीरवर्त्ती स्थानका नाम उपकूल है।

पृथिवीके ऊपर अत्यन्त ऊंचे प्रस्तरमय स्थानको शैल या पर्वत और बहुत दूर तक फैले हुए ऐसे पर्वतोंको पर्वत श्रेणी कहते हैं। छोटे छोटे पर्वत पहाड़ कहलाते हैं।

पर्वतके अग्रभागको शृङ्ग, चूड़ा या शिखर कहते हैं। यथा, काञ्चनजङ्घा।

जिस पर्वतके शृङ्गदेशस्थ छिद्रसे समय समय पर धूम, भस्म, अग्निशिखा इत्यादि निकलती है, उसका नाम आग्नेय या ज्वालामुखी पर्वत है।

दो पर्वतोंके बीच विस्तीर्ण प्रान्तरक्षेत्रको उपत्यका और पर्वतमय ऊंची भूमिको अधित्यका कहते हैं।

पार्वतीय ऊंची भूमिकी मध्यस्थित नदीका खात अववाहिका (basix) और दो अववाहिकाकी मध्य-पार्वत्यभूमि जलवाध Water shed कहलाती है।

दो पर्वतके मध्यवर्त्ती सङ्कीर्णपथको गिरिवर्त्म, पास या घाटी कहते हैं।

जिस भूमिके ऊपरका भाग प्रायः समान और पर्वतादिविहीन रहता है, वह समतल भूमि कहलाता है।

वृक्षलतादि परिशून्य जलाशयादिविहीन विस्तीर्ण बालुकामय प्रान्तर भूमिको मरुभूमि कहते हैं। मरुभूमिकी मध्यस्थित उर्वरा भूमिका नाम मारवद्वीप या वेसिस है। यथा-फेजान।

भूपृष्ठ पर नाना जातीय मनुष्योंका वास है। वर्ण और गठनादिके भेदसे मनुष्य जाति तीन प्रधान श्रेणीमें विभक्त हैं। यथा—ककेशीय, मङ्गोलीय और निग्रो। मलय और आमेरिक इण्डियन ये दोनों जाति मङ्गोलीय जातिके अन्तर्गत हैं।

१ ककेशीय—इस श्रेणीके मनुष्योंका शरीरगठन और वर्ण सुन्दर होता है, किन्तु इनके बड़ी बड़ी दाढ़ी होती हैं। यूरोपमें, पश्चिम एशियामें कैसपियन सागरके दक्षिणसे दक्षिण-एशियामें भारतवर्ष तक और अफ्रीकाके उत्तर भागमें इस जातिका वासस्थान है।

२। मङ्गोलीय—इनका वर्ण पीला, वाल काले, आंखें छोटी, मुंह चिपटा और दाढ़ी थोड़ी होती है। एशियाके उत्तर पूर्व तथा मध्यप्रदेशमें इस जातिका वास है।

३। निग्रो—इनका चमड़ा काला, नाक चिपटी, होंठ मोटा ठुड्ढी लम्बी तथा वाल घुंघरीले और भेड़की तरहके होते हैं। ये अफ्रीकाके दक्षिण और मध्य स्थानमें रहते हैं।

४। मलय—ये मङ्गोलीय और निग्रो जातिके मध्यवर्त्ती

होनेके कारण उनसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। मलय उपद्वीप और भारतद्वीप पुञ्जमें इनका वास है।

५। आमेरिक या लोहित इण्डियन—ये उत्तर और दक्षिण अमेरिकाके बहुत-से स्थानोंमें पाये जाते हैं। ये लोग ताम्रवर्णके हैं।

ये सब मनुष्य नाना सम्प्रदायमें विभक्त हैं। विभिन्न समयमें विभिन्न प्रवर्त्तकके अभ्युदयसे पृथिवी पर नाना धर्म प्रचलित हुए हैं जिनमेंसे हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान, खृष्टान, यहूदी इत्यादि प्रधान हैं।

भूगोलविद्या (सं० स्त्री०) वह विद्या जिसके द्वारा पृथिवीकी आकृति, धर्म, विभाग, गति और सम्बन्ध आदि जाना जाय। (Geography)

भूघन (सं० पु०) शरीर।

भूचक्र (सं० क्ली०) १ पृथिवीकी परिधि। २ विषुवरेखा। ३ अयनवृत्त। ४ क्रान्तिवृत्त। ५ अक्ष और द्राघिम रेखा।

भूचणक (सं० पु०) वृक्षभेद, मुंगफली।

भूचम्पक (सं० पु०) भमिचम्पकक्षुप, भचम्पा।

भूचर (सं० पु०) भुवि चरतीति चर-ट। १ वह जो पृथ्वी पर रहता हो, भमि पर रहनेवाला प्राणी। २ दीमक।

भूचरसिद्धि (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त सिद्धिभेद।

"ततोऽधिकतराभ्यासात् वलमुत्पद्यते भृशम्।
येन भूचरसिद्धिः स्याद्भूचराणां जये क्षमः॥"

(दत्तात्रेयसं०)

तन्त्रशास्त्रमें जिन सब सिद्धियों या साधनाओंका उल्लेख है, भूचरसिद्धि उनमेंसे एक प्रधान गिनी जाती है। वास्तविकमें तन्त्रवाक्यकाममें ग्रहण कर यदि वे रोक-टोक इस अघटन-घटना-पटीयसी सिद्धिकी ओर मन निविष्ट किया जा सके, तो निश्चय ही इस सिद्धि या साधनाके प्रभावसे साधकको कोई भी वस्तु अप्राप्य, अगम्य या अप्रत्यक्ष नहीं रह जाती। उस समय करतलगत आमलक फलके समान अभीप्सित सभी विषय साधकके पास आपे आप आ जाते हैं।

किन्तु इस सिद्धिलाभमें सम्पूर्ण-रूपसे कृतकार्य होना बड़ा ही दुश्वार है। अनेक विघ्नबाधाओंको पार कर सुदृढ़ अभ्यासकी पूर्ण सहायतासे अधिकारी हो सकने पर इस सिद्धिरूप समृद्ध सौधशिखर पर चढ़ा जा सकता है। दत्तात्रेयसंहितामें लिखा है, कि योगी जब अभ्यासके बलसे इस साधनामें सिद्ध हो जाते हैं, तब उनकी अनुपम रूपमहिमाके कन्दर्पका दर्प खर्व हो जाता है और अनेक विघ्न आ उपस्थित होते हैं। यहां तक, कि रूपमुग्ध अङ्गनाएं अनङ्गपीड़ित हो उनके साथ सहवास करनेकी कामनासे आती हैं। सुतरां इस हालतमें योगी यदि उस अङ्गनाके आलिङ्गनमें लिप्त होवें, तो उनका अधःपतन बहुत शीघ्र हो जाता है। उस समय उनकी विन्दुपातवशतः आत्मा क्षीण हो जाती और जो कुछ भी शक्तिशामर्थ्य रहती है, सभी एकबारगी क्षयको प्राप्त होती है। अतएव ऐसी सिद्धिके अधिकारी होनेमें योगी व्यक्तिको कदापि रमणीका सङ्ग न करना चाहिए। हमेशा सब तरह उन्हें स्वीय विन्दु धारणमें लगा रहना उचित है। इस प्रकार इन्द्रियनिग्रहपूर्वक योगी जब सिद्धिके प्रयासी हों तब एक निर्जन स्थानमें जा कर उन्हें पूर्वार्जित पापराशिके विनाशके लिए पहले प्रणव जपका अनुष्ठान करना चाहिए। ऐसा करनेसे वे पवित्रता लाभ करेंगे और सभी विघ्नबाधाएं दूर हो जायंगी।

इसी अभ्यास-योगको भूचरसिद्धिकी प्रथमावस्था बतलाया गया है। योगी पहले इसी अभ्यासमें प्रवृत्त हो बाद वायु-अभ्यासले कुम्भक अवस्थामें जावें। चाहे दिनमें हो या रातमें, एक महीना तक प्रतिदिन एक बार कुम्भकका अवलम्बन कर इन्द्रियोंका जो प्रत्याहरण करते हैं, उसीका नाम प्रत्याहार है। कुम्भकावस्थामें उपनीत योगीके लिए उस समय प्रत्याहारका अनुष्ठान भी नितांत प्रयोजनीय है। योगावलम्बी साधक उस समय अपनी आंखोंसे जो देखेंगे, कानोंसे जो सुनेंगे, नाकसे जो गन्ध लेंगे, रसनासे जिस रसका आस्वाद लेंगे और त्वक् द्वारा जो स्पर्श करेंगे, उन सबोंकी आत्मासे ही भावना करनी चाहिए। इस प्रकार अतंद्रित हो योगी व्यक्ति जब यत्नपूर्वक प्रतिदिन एक पहर तक पूर्वोक्त विधानोंके अनुष्ठानमें लिप्त रहेंगे, तभी उनके एक अलौक सामान्य सामर्थ्य आ उपस्थित होगी। उस समय वे दूरदृष्टि, दूरश्रुति प्रभृति अमानुषोचित क्षमता प्राप्त करेंगे।

उनके मुखसे जो बात निकलेगी वह उसी समय सिद्ध होगी, वे कामचरत्वलाभ करते हैं। उनके मलमूत्रादिका संस्पर्श करनेसे लोहा भी स्वर्णरूपमें परिणत हो जाता है। अधिक क्या, प्रतिदिन अभ्यासके बलसे वे खेचरत्व और इससे भी अन्य अधिकतर सामर्थ्यलाभके अधिकारी हो सकते हैं। किन्तु योगी जब अपनी इस अलौकिक सामर्थ्यका अनुभव करें तब वे बुद्धिबलसे इसे अपना अभ्युदय न समझ कर महासिद्धिका फल समझें। उस समय योगीको चाहिए, कि वे अपनी क्षमता किसीसे भी न कहें और न किसी को कुछ शिक्षा ही दें। वे अपनी सामर्थ्य छिपानेके लिए मनुष्यके सामने गूंगे, अन्धे, बहिरे और मूर्खकी तरह चुपचाप रह जांय; अन्यथा उनके कार्यमें बाधा पहुंचेगी। वे अपने अभ्यासयोगमें शिथिलप्रयत्न हो जांयगे और ऐसा होनेसे उन्हें साधारण मनुष्यकी नाईं हो जाना पड़ेगा। सुतरां उनके कोई सामर्थ्य नहीं रह जाती। इसीलिए योगी पुरुषको चाहिए, कि वे गुरुका वाक्य कदापि न भूलें और रातदिन यथाविहित अभ्यासके वशवर्त्ती होवें। इस प्रकार अभ्यासयोगसे ही क्रमशः योगी परिचयावस्थाको प्राप्त होते हैं। परिचयावस्था और तदनन्तर अनुष्ठेय विषयोंका अनुष्ठान करनेसे ही योगरत महापुरुष महासिद्धि लाभ कर कृतकृत्य हो जाते हैं।

इस विषयका विस्तृत विवरण दत्तात्रेयचन्द्रिका और रुद्रयामलके चौदहवें पटलमें देखो।

भूचरी (सं० स्त्री०) योग शास्त्रानुसार समाधि अंगकी एक मुद्रा। इसका निवास नाकमें है और इसके द्वारा प्राण और अपानवायु दोनों एकत्र हो जाती हैं।

भूचाल (हिं० पु०) भूकम्प, भूडोल।

भूचित्र (सं० क्ली०) भुवः पृथिव्याः चित्रं। पृथिवीका मानचित्र, मैप।

भूच्छत्र (सं० क्ली०) छत्राक, कुकुरमुत्ता।

भूच्छाय (सं० क्ली० स्त्री०) भुवश्छाया (विभाषा सेनासुराच्छायानिशानाम्। पा २।४।२५) इति तत्पुरुषे विभाषया नपुंसकं, छायाबाहुल्ये तु केवलं क्लीवत्वं। अन्धकार।

भूजन्तु (सं० पु० भुवो जन्तुरिव। उपरसविशेष, सीसा।

भूजम्बु (सं० क्ली०) भुवो जम्बुरिव सादृश्यात्। १ गोधूम, गेहूं। २ भूमिजम्बुवृक्ष, बनजामुन। ३ विकङ्कतवृक्ष।

भूटान—हिमालयकी पूर्वपाद भूमिमें अवस्थित एक पार्वतीय स्वाधीन सामन्त राज्य। यह अक्षा० २६° ४५´ से २८° उ० तथा देशा० ८९° से ९२° पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें भोटराज्य; पूर्वमें अर्द्धसभ्य पार्वतीय स्वाधीन जातियोंकी वासभूमि; दक्षिणमें अंगरेजाधिकृत ग्वालपाड़ा, कामरूप और जलपाईगूड़ी जिला तथा पश्चिममें सिक्किम राज्य है।

श्यामल समतल शस्यक्षेत्रसमूहके नहीं रहने पर भी इस स्थानकी पार्वतीय शोभा अत्यन्त मनोरम है। कहीं तो नतोन्नत गिरिखण्डसमूह लतामण्डपकी नाईं श्यामभूषासे विभूषित है, कहीं बड़े बड़े पौधे तथा वृक्ष अत्यंत ऊंचे शिखर पर वर्त्तमान हैं मानों मुकुटधारी राजाके जैसे प्रशान्त पर्वतवृक्ष पर शासन करते हों। इन छोटे छोटे वृक्षोंकी शोभा इतना मनोहारी है, कि समय समय पर पाथकगण दूरसे ही यह अपूर्व दृश्य देख कर मुग्ध और आत्मविस्मृत हो जाते हैं। हिमालय श्रेणीके तुषारधवलचित्रपट पर यह वृक्षराशि मानो अगणित सेनाकी तरह रणप्रतीक्षामें खड़ी है। उनके ऊपर मेघमालाकी क्रीड़ा बड़ी ही विस्मयोद्दीपक है—इसका माधुर्य वर्णनातीत है।

प्राकृतिक सौन्दर्यशालिनी यह पार्वत्य भूमि मुक्तमालाकी नाईं असंख्य स्रोतमालाको वक्षस्थल पर धारण कर विधाताकी सृष्टिकुशलताका परिचय दे रही है। गभीरपर्वत-कन्दरा और अत्युच्च शिखरभूमि हो कर धीरे धीरे बहती हुई अनेक स्रोतस्विनी उस भयावह निर्जन पार्वत्य प्रदेशको अतिक्रम कर दक्षिणकी ओर ब्रह्मपुत्रमें आ मिली हैं। कहीं कहीं यह जलराशि पर्वत कन्दर भेद कर प्रपाताकारमें गिरती है। भ्रमणकारी टार्नरने इस विषयका उल्लेख किया है, कि उक्त जलधारा इतने ऊंचे स्थानसे भूतल पर गिरती है, कि ऊपरसे देखनेमें ऐसा जान पड़ता है, मानो वह मध्यस्थलमें ही विलीन हो जाती है और नीचेसे एक सूक्ष्म जलधारा मृदु-मन्दगतिमें पर्वतगात्रसे निकलती हुई-सी जान पड़ती है। मानसाई यहांकी प्रधान नदी है। तासगांव पार

कर यह नदी ब्रह्मपुत्रमें मिलती है। यहां इसकी धारा इतनी प्रखर है, कि उसका पार करना बड़ा ही दुश्वार है। यहां जाने आनेके लिए एक पुल बना हुआ है। इसके अलावा यहां माछु, चिन्चु, तोर्सा, मालिचु, कुरुछु, धर्ला रायदक और साङ्कोश आदि नदियां प्रधान हैं।

भूटियाका कहना है, पहले यहां तेफु नामक जातिका वास था। जनसाधारणका विश्वास है, कि वे कूचविहार-स्थ कोच जातीय थे। दो शताब्दी पहले एक दल भोट-सेनाने आ कर तेफुओंको हराया और वहां अपना दखल जमाया। राजकीय कार्य दो व्यक्तिके हाथ सौंपा गया, १ले धर्मराज या जातीय गुरु और २रे देवराज या सामयिक शासनकर्त्ता। पेनलोंके द्वारा प्रति तीन वर्षमें एक एक व्यक्ति देवराज पद पर अभिषिक्त होते हैं। राज्यशासनसंक्रान्त इन दोनों राजाओंको परिचालित करनेके लिए लेनोहन नामक एक स्थायी मन्त्रीसभा है। किन्तु यथार्थमें यहां कोई शासनशृङ्खला प्रचलित नहीं है निम्नतन राजकर्मचारी और दुर्गाध्यक्षगण यहांके प्रकृत अधीश्वर हैं। उनके कठोर शासन, बलपूर्वक करसंग्रह और यथेच्छ अत्याचारने राज्यमें शासन-विशृङ्खला तथा अराजकताका प्रभाव फैला दिया है। उनके राज्य... परिचालक धर्मराज ईश्वरके अवताररूपमें कल्पित हैं। उनकी मृत्युके दो एक वर्ष बाद पुनः बालकरूपी धर्मराज-का अभ्युदय होता है।

धर्मराजके बालकावतार साधारणतः किसी प्रधान-तम राजकर्मचारीके घर जन्म लेते हैं। इस बालकके पूर्वतन धर्मराजका कोई निदर्शन दिखा सकने पर उनकी धर्मराजपदप्राप्ति कायम की जाती है। अनन्तर उसे मठमें रख कर विद्याशिक्षा दी जाती है। वयः प्राप्त होने पर वही व्यक्ति राजपद पर प्रतिष्ठित होता है। बाल्या-वस्थामें उसके प्रभावकी जैसी प्रतिपत्ति रहती है इस समय उसकी उस शक्तिका बहुत कुछ ह्रास हो जाता है। देवराज जातीय सभा द्वारा राजपद पर निर्वाचित होने पर भी यथार्थमें वे पूर्व या पश्चिम भूटानस्थ दो शासन कर्त्ताओंमें-से बलवान्‌के हाथमें कठपुतलीकी तरह रहते हैं और उन्हींकी देखरेखमें नाम मात्रको राजा कह कर घोषित होते हैं।

१७७२ ई०से अंगरेजोंके साथ भूटानवासियोंका राजकीय संस्रव संघटित हुआ। उसी वर्ष भूटियाने कोचविहार पर चढ़ाई कर दी। कोचविहारके अधिपतिने अंगरेजोंसे सहायता मांगी। इस पर कप्तान जेमूसने भूटियोंको मार भगानेकी आज्ञा दी। अंगरेज कम्पनीके साथ युद्धमें भूटिया सेनादल हार कर स्वदेश लौट गया। तिब्बतराज-प्रतिनिधि तेसुलामाकी मध्यस्थतामें दोनों पक्षमें १७७४ ई०को सन्धि स्थापित हुई। १७८३ ई०में वाणिज्यकी उन्नति तथा विस्तृतिकी आशासे अंगरेज-कम्पनीने कप्तान टार्नरको भूटानराजके पास भेजा। किन्तु कम्पनीकी आशा निराशामें परिणत हुई। अनन्तर १८२६ ई०में जब अंग्रेजोंने आसाम तक अधिकार कर लिया, उस समय भी भूटानके साथ उनका कोई विशेष राजकीय संस्रव न हुआ। बाद भूटियाने पर्वतकी पाद-देशस्थ 'द्वार' भूमि पर बलपूर्वक अधिकार जमाया और उसके लिए थोड़ा कर देना स्वीकार किया। अङ्गी-कारानुसार कर न दे सकने पर भी वे अंगरेजोंकी अधिकार सीमा पार कर लूट पाट मचाने लगे। इस पर कप्तान पेम्बार्टन सुव्यवस्था स्थापन करनेके लिए भूटानराजके पास गये। दोनों पक्षमें सन्धिस्थापन और क्षतिपूर्त्ति होनेका भी कोई लक्षण न देख अंगरेज-गवर्मेण्ट आसामका द्वारप्रदेश उनके हाथसे ले लेनेको वाध्य हुई और जिससे भूटियागण शान्तभाव धारण कर भविष्यमें कोई उत्पात न मचावें, इसके लिए इन्होंने वार्षिक १० हजार रुपये भूटानराजको देना स्वीकार किया। किन्तु द्वारप्रदेशमें भूटियोंके बारम्बार अत्याचार और दौरात्म्यसे विरक्त हो कर अंगरेजोंने उनके राजाके पास आवेदनपत्र लिख भेजा। अन्तमें डर दिखा कर भी जब भूटियाको निरस्त न कर सके, तब १८६३ ई०में माननीय असल्यूडन अत्याचारके क्षतिपूरणकी आशासे भूटानराजके पास उपस्थित हुए। उस समय भूटियों-का अत्याचार चरम सीमा तक पहुंच गया था। वे दल बांध कर पार्वत्य देशसे नीचे उतर द्वारवासी प्रजाओं-को बेहद सताते थे। लुण्ठन, ग्रामदाह, हत्या और उन्हें क्रीतदास रूपसे हरण कर उन्होंने द्वारविभागको तहस नहस कर डाला।

इडन साहब भूटान राजतन्त्रसे बड़े ही तंग हो गए। यहां तक, कि विवादी सम्पत्ति तथा अन्यान्य अनेक विषय भूटानराजको छोड़ देनेके लिए वे भूटान गवर्मेण्टसे एक सन्धिपत्र पर अपना दस्तखत देनेको बाध्य किये गये। अंगरेजराजकी विना अनुमतिके बलपूर्वक ऐसा अपमान-कर हस्ताक्षर ग्रहण करनेके कारण भारतराज-प्रतिनिधि बहुत बिगड़े और उक्त सन्धिकी शर्त्तको नामंजूर कर पूर्व संधिके शर्त्तानुसार द्वारप्रदेशका कर देना बन्द कर दिया। साथ साथ उन्होंने विगत पांच वर्षके मध्य जो सब द्वारवासी प्रजा भूटान लाई गई थी, उन्हें शीघ्र लौटा देनेकी आज्ञा दी। किन्तु भूटियाराजने एक भी न सुनी। इस पर अंगरेज-प्रतिनिधिने १८६४ ई०को १२वीं नवम्बरको ग्यारह पश्चिम द्वार अंगरेज साम्राज्य-भुक्त करनेका आदेश दिया। उस समय तो भूटियाने अंगरेजोंसे कोई छेड़छाड़ न की, किन्तु दूसरे वर्ष जनवरीमें भूटियाने पर्वत परसे उतर कर एकाएक दीवान-गिरिस्थ अंगरेज सेनादल पर चढ़ाई कर दी। अंगरेजी सेना इस प्रकार हठात् आक्रान्त होनेसे तंग तंग आ गई। बाद जनरल टुम्वसने अपनी सेना ले भूटियोंको हराया और उसी वर्षके नवम्बर महीनेमें पुनः सन्धि स्थापित हुई जिससे भूटानराज बंग और आसामके १८ द्वार विभागके साथ साथ अङ्गरेजोंकी हृत प्रजाको लौटा देनेको बाध्य हुए। इस द्वारविभागसे भूटानका अधिक राजस्व संगृहीत होता था, अतः अंगरेजोंने भी देवराज तथा धर्मराजको वार्षिक २५ हजार रुपये देना स्वीकार किया और यह भी शर्त्त ठहरी, कि यदि वे अंगरेजोंके साथ सद्भाव रखेंगे, तो भविष्यमें ५० हजार रुपये दिये जायंगे। उसी समयसे भूटानराज अंगरेजोंके साथ सदव्यवहार रखते आये हैं। सम्प्रति बहुत-से भूटिया ग्वालवाड़ाके निकट आ बसे हैं।

यहां हिमालयपर्वत पर नाना प्रकारके वृक्ष पाये जाते हैं। हाथी, बाघ, हरिण प्रभृति पशु तथा नाना जातीय पक्षियोंके अलावा यहां टङ्गस्थान नामक भूभाग में टङ्गन नामका एक प्रकारका घोड़ा देखनेमें आता है। बल और सुन्दरतामें यह अन्य अश्वजातिसे कहीं बढ़ा चढ़ा है।

इस असभ्य तथा पार्वतीय वन्यदेशमें शिल्पविद्याकी विशेष उन्नति नहीं देखी जाती। स्थानीय मनुष्योंके व्यवहारोपयोगी कम्बल, कपासवस्त्र, वर्फसे ढंके स्थानमें चलने फिरनेके लिए महिषचर्मका जूता, काष्ठपात्र कागज, तलवार, तीर, वर्छा और तांबेकी कड़ाही यहांका प्रधान वाणिज्य है। इसके अलावा यहां नोवू, मृगनाभि, पणीघोड़ा और रेशम भी पाया जाता है।

भूटानराज्यको अपनी राज्य रक्षाके लिए अधिक सेनाकी जरूरत नहीं पड़ती। सिर्फ सीमान्त प्रदेशकी रक्षाके हेतु विभिन्न दुर्गमें थोड़ी सेना नियुक्त रहती है जो लगभग सात हजार होगी। किन्तु जब आक्रमणकारी शत्रुओंके विरुद्ध अस्त्रधारण करना पड़ता है, तब समग्र भोटिया-जाति अस्त्र शस्त्र ले उनका सामना करती है। ये राज-कोषके वेतनभोगी नहीं हैं।

पुनखा या तोजेन नगर भूटानकी राजधानी है। जो दार्जिलिङ्गसे ४८ मील पूर्वोत्तर, बुग्नी नदीके बाएं किनारे बसा हुआ है। आसामसे तिब्बतकी राजधानी लासा नगरी जानेके रास्ते पर तासिपेजोङ्ग, पारो, अङ्गदपोरङ्ग, तोङ्गसो नगर विद्यमान हैं। पुनखाकी आबहवा बड़ी अच्छी है और यहांके अधिवासीगण भी समधिक बल-शाली होते हैं।

पार्वत्यविभागकी ऊंचाईके तारतम्यानुसार यहांके जलवायुमें भी विभिन्नता दिखाई पड़ती है। कहीं तो साइबीरियाका-सा कठोर शीत, कहीं अफ्रीकाका दारुण ग्रीष्म और कहीं इटलीका सुखकर वासन्तिक समीरण प्रवाहित होता है। दिन भरका रास्ता घूमनेसे भ्रमणकारी पथिक उक्त विषयका भलीभांति अनुभव कर सकेंगे। राजपुङ्गवके शैत्यवास पुनखाके अधिवासिवृन्द जिस प्रकार प्रखर सूर्यकिरणके उत्तापसे सन्तप्त होते हैं, उसी प्रकार उसके समीप हो घासा* नगरवासिगण हिमानीके तुषारपात और शीतकष्टसे दिन व्यतीत करते हैं। यहां प्रतिदिन वर्षा होती है और कभी कभी पर्वतगह्वरादिमें तूफान उठ कर पर्वतस्खलन स्वरूप भयानक दृश्य दिखला देता है।

यहांके अधिवासी भूटिया कहलाते हैं। भोटदेशसे

---

* यह नगर पुनखासे दिखाई पड़ता है।

आ कर इन्होंने भूटानप्रदेशमें वास किया है, अधिवासी-वृन्द साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है,—१ला पुरोहित या धर्मयाजक, २रा पेनलो या सरदारगण, ये ही शासनकार्यमें नियुक्त हैं और ३रा निम्नश्रेणीके कृषिजीवीगण।

प्रजावर्ग साधारणतः परिश्रमी होते हैं। कृषिकार्यमें उनका विशेष ध्यान है; किन्तु स्थानीय भूभागके प्राकृतिक अवस्थान और राजपुरुषोंके दौरात्म्यसे सर्वस्व अपहरणके भयसे वे कृषिकार्यमें भी विशेष मनोयोगी नहीं हैं। निम्नश्रेणीके व्यक्तिवर्ग स्वभावतः दरिद्र और उच्चश्रेणी द्वारा सताये जाते हैं। किसी अवस्थापन्न व्यक्तिकी जब निगाह पड़ती है, तब दरिद्रकी और कहां रक्षा—उसकी विषयसम्पत्ति धनों छीन लेते हैं। राजकीय कर्मचारीके क्रीतदासकी अपेक्षा दरिद्र प्रजाकी किसी किसी विषयमें क्षमता है। उनमेंसे किसीको भी भूमिका अधिकार नहीं है। राजकर्मचारी जब चाहते तभी वे उसे देनेको वाध्य हैं। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" यह कहावत भूटानके ही राजतन्त्रमें चरितार्थ होती है। राज्यविभाग या जिलाविशेषके शासनकर्त्ताओंको राजदरबारसे कुछ तनख्वाह नहीं मिलती। उन्हें जब जो आवश्यकता पड़ती है, उसी समय वे स्वच्छन्द रूपसे प्रजाका लेहू चूसते हैं। प्रजाका सर्वस्व अपहरण कर शासनकर्त्ता जो कुछ प्राप्त करते हैं, उससे कुछ अंश उन्हें राजदरबारमें देना पड़ता है, वे बलपूर्वक जितना ही अधिक कर संग्रह करेंगे और राजसरकारमें जितना ज्यादेसे ज्यादा देंगे, उनका उतना ही सम्मान और शासनकर्तृपद अक्षुण्ण रहेगा।

उच्चश्रेणी या राजकीय कर्म-चारिगण नाना दोषदुष्ट हैं। झगड़ा, कलह, विवाद तथा परस्त्रीकातरता उनका प्रधान अङ्ग है। वे निर्दय और लज्जाहीन भिखारी हैं। अवस्थापन्न होनेसे वे दूसरेकी चीज मांगनेमें जरा भी अपमान नहीं समझते। किन्तु यदि उन्हें मुहमांगा द्रव्य न दिया जाय, तो वे विशेष निष्ठुरताके साथ उनका प्राणनाश करनेमें जरा भी कुण्ठित नहीं होते। फिर निम्नश्रेणीके व्यक्ति अपेक्षाकृत सत् और सत्यवादी हैं। वे अपनेही परिश्रमसे कपासवस्त्र, डाफ्ने-वृक्षकी छालसे कागज और धान्यादिसे शराब प्रस्तुत कर उसका उपभोग करते हैं।

भूटियारमणी सतीत्त्वकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं। ५ या ६ भाई स्वच्छन्दरूपसे एक ही स्त्रीका उपभोग कर सकते हैं। ऐसा करनेमें वे कुछ भी बुरा नहीं मानते। यही कारण है, कि स्त्रियां स्वभावतः दुःशीला तथा असद्भावा हैं। अनेक स्वामी रहनेके कारण उनका वंशाधिकार ठीक नहीं रहता। क्योंकि, गर्भज पुत्र किस वंशको उज्ज्वल करेगा, इसका निश्चय नहीं होनेसे ही प्रकृत उत्तराधिकारका ठीक ठीक पता लगाना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए किसी धनवान् परिवारके कर्त्ताकी मृत्यु होनेसे उसकी सारी सम्पत्ति पुत्रकन्याके रहते भी देव या धर्मराजको अधीकारभुक्त होती है।

भूटियोंके मध्य 'धर्मराज' बुद्धका अवतारस्वरूप कल्पित है। राज्यके प्रधान सरदारोंमें एकको देवराज चून लेना पड़ता है। राजकीय नियमानुसार देवराज तीन वर्षके लिए सिंहासनका अधिकारी होता है, किन्तु यथार्थमें जब तक उसके राजकार्य-परिचालनकी क्षमता रहती है तब तक वह राजसिंहासन पर आरूढ़ रहता है। देवराज और धर्मराजके सिवा १२ बौद्धयतियोंकी एक धर्मसभा और ६ जिमपे द्वारा एक भजनसभा गठित होती है। ये धर्माचार्यगण राजकीय कार्यके मन्त्र-दातारूपमें गिने जाते हैं। देवराजके अधीन पर-पिले, या पेमल्पे चिचु नदीके पश्चिम देशका और तोंगुपिलो पूर्व भागका शासन करते हैं। उन दोनोंके अधीन छह छह सूबा या कमिशनर नियुक्त हैं।

भूटियागण मोटे ताजे, साहसी और बलवान होते हैं। यथार्थमें ऐसी सुगठन-प्रतिकृति और कहीं भी नहीं देखी जाती। उनके बलिष्ठ शरीर और भी पदर्शन मुखश्रीने कदर्य आचार व्यवहारमें और भी भीषण बना दिया है। मरूया और चेङ्ग नामक मद्य पीनेसे उनकी आंखें हमेशा रंगी रहती हैं। इसके सिवा उनकी वेशभूषा ऐसी है, मानों प्रकृतिके गम्भीर दृश्यको भीषणताके आच्छादनमें ढंक लिया हो। स्त्रियोंका पहरावा पुरुषका-सा ही है। केवल प्रभेद इतना ही है, कि वे पुरुषकी तरह जूता, अस्त्र और मस्तक पर टोपी नहीं पहनतीं।

शूकरादि विभिन्न मांस तथा चाय उनका प्रधान भोजन है।

उनके रहनेका घर बड़ा ही साफ सुथरा रहता है। झरोखा दरवाजा इत्यादि प्रस्तुत करनेमें वे विशेष शिल्पचातुर्य दिखाते हैं। किवाड़में कभी भी लोहेका कब्जा नहीं लगाते। अत्यन्त सुकौशलसे वे काठका कब्जा वना कर किवाड़ या झरोखेका किवाड़ लटका देते हैं।

बौद्धधर्मके कट्टर विश्वासी होते हुए भी वे छिपेरूपसे उपदेवताकी पूजा और भूतयोनिकी तृप्तिके लिए वहुत-से मन्त्रपाठ भी करते हैं। पूजा या उत्सवमें शिङ्गा, शंख, करताल, ढोल, नगारा, वांसुरी आदि वाद्ययन्त्र वजाये जाते हैं। उनकी भाषा तिब्बती भोटभाषाकी जैसी है। तव स्थानभेदसे उसमें भी परिवर्त्तन देखा जाता है।

यहां प्रायः दो हजार वैलोङ्ग या लामा पुरोहित तथा सैकड़ों धर्मकुमारी हैं।

प्रत्येक ग्रामके समीप कृषिकार्यके लिए पार्वत्यभूमि परिष्कृत होती है जिसमें गेहूं, जौ, सरसों, लालमिर्चा, सलगम आदि उपजते हैं।

भूटानवासी लोपा नामक जाति वड़ी ही कलहप्रिय, भीरु और माया ममताहीन होता है। इनकी छोटी आंखें, विरल कृष्णकेश और चिपटा मुख देखनेसे ये वहुत कुछ चीनवासीसे मिलते हैं। प्रौढ़ावस्थामें भी इनके अच्छी तरह मूंछ दाढ़ी नहीं निकलती।

इनमें चङ्गलो नामक एक स्वतन्त्र दल है। इनका वास उत्तरांशमें ही अधिक है, जिस भाषामें ये वातचीत करते हैं, वह चङ्गलो कहलाती है जो तिब्बतीय भाषासे वहुत कुछ मिलती जुलती है। ये सव अन्यान्य भूटियोंकी अपेक्षा दुवले, पतले और काले होते हैं।

भूटानी (हिं० वि०) १ भूटानसम्वन्धी, भूटानदेशका। (पु०) २ भूटानदेशका निवासी। ३ भूटानदेशका घोड़ा। (स्त्री०) ४ भूटान देशकी भाषा।

भूटिया—भूटानवासी जातिविशेष। भूटान देखो।

भूटिया वादाम (हिं० पु०) एक पहाड़ी वृक्ष। यह पांच हजारसे ले कर दश हजार फुटकी ऊंचाई तक पहाड़ों पर होता है। इसका आकार मझोला होता है, लकड़ी इसकी मजवूत और गुलावी रंगकी होती है, मेज कुरसी आदि चीजें इससे वनाई जाती हैं। वृक्षका फल खाया जाता है।

भूड़ (हिं० स्त्री०) १ वालूमिश्रित भूमि, वलुई भूमि। २ कूएंका सोत, झिर।

भूडोल (सं० पु०) भूकम्प।

भूण (हिं० पु०) १ जलयात्रा, समुद्री सफर। २ जलभ्रमण, जल-विहार।

भूत (सं० क्ली०) १ न्याय। २ पृथिव्यादि भूतपञ्चक; वे मूल द्रव्य जो सृष्टिके मुख्य उपकरण हैं और जिनकी सहायतासे सारी सृष्टिकी रचना हुई है। पञ्चभूत और महाभूत देखो। ३ मृतशरीर, शव। ४ सत्य। ५ पिशाचादि। ६ जन्तु। ७ कुमार कार्त्तिकेय। ८ वस्तुतत्त्व। ९ सृष्टिका कोई जड़ वा चेतन, अचर वा चर पदार्थ वा प्राणी। १० प्राणी, जन्तु। यह चार प्रकारका है, योनिज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। ११ अतीतकाल, गुजरा हुआ जमाना। अतीतकालके पर्याय—वृत्त, अधीत, ह्यस्तन, निभृत, गत। १२ वृत्त। १३ देवयोनिविशेष, पुराणानुसार एक प्रकारके पिशाच या देव। ये रुद्रके अनुचर हैं और इनका मुंह नीचेकी ओर लटका हुआ या ऊपरकी ओर उठा हुआ माना जाता है। ये वालकोंको पीड़ा देनेवाले ग्रह भी कहे जाते हैं। १४ योगीन्द्र। १५ कृष्णचतुर्दशी। १६ भूतनाशक औषध, वह औषध जिसके सेवनसे प्रेतों और पिशाचोंका उपद्रव शान्त होता हो।

"श्वेतापराजितामूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा।
तेन नस्यप्रदानात् स्याद् भूतवृन्दस्य विद्रवः॥
अगस्त्यपुष्पनस्यं वै समरीचन्तु शूलहृत्॥" इत्यादि।

श्वेत अपराजिताके मूलको चावलके धोये हुए पानीमें पीस कर उसकी नस लेनेसे भूतका उपद्रव विनष्ट होता है। मिर्चके साथ अगस्त्यपुष्पका नस भी भूतनाशक है। १७ लौध्र, लोध। १८ कृष्णपक्ष। १९ पुराणानुसार पौरवीके गर्भसे उत्पन्न वासुदेवके वारह पुत्रोंमेंसे सवसे वड़े पुत्रका नाम। २० व्याकरणके अनुसार क्रियाके तीन प्रकारके मुख्य कालोंमेंसे एक, क्रियाका वह रूप जिससे यह सूचित होता हो, कि क्रिया

का व्यापार समाप्त हो चुका। २१ वे कल्पित आत्माएं जिनके विषयमें यह माना जाता है, कि वे अनेक प्रकारके उपद्रव करतीं और लोगोंको बहुत कष्ट पहुंचाती हैं।

विशेष विवरण प्रेत शब्दमें देखो।

(त्रि०) २२ युक्त, मिला हुआ। २३ गत, बीता हुआ। २४ समान, सदृश। २५ जो हो चुका हो।

भूतक (सं० पु०) पुराणानुसार सुमेरु परके २१ लोकोंमेंसे एक लोक।

भूतकरण (सं० क्ली०) वैदिक व्याकरणोक्त संज्ञाविशेष।

भूतकर्तृ (सं० पु०) ब्रह्मा।

भूतकर्म (सं० पु०) मनुष्यभेद।

भूतकटि—१ बौद्धमतानुसार जीवलोकका सर्वोच्च स्थान। २ शून्यता।

भूतकला (सं० स्त्री०) भूतानां कला। पृथिव्यादि पञ्चभूतोंकी उत्पादिकादि शक्तिभेद, एक प्रकारकी शक्ति जो पंचभूतोंका उत्पन्न करनेवाली मानी जाती है।

भूतकाल (सं० पु०) भूतः कालः,। अतीतकाल, बीता हुआ समय।

भूतकालिक (सं० त्रि०) अतीतकाल सम्बन्धीय।

भूतकृत (सं० पु०) भूतानां पृथिव्यादीनां प्राणिनां वा कृत्, कर्त्ता। १ देवता। २ विष्णु।

भूतकेतु (सं० पु०) दक्ष सावर्णिके पुत्रभेद। २ बेताल भेद।

भूतकेश (सं० पु०) भूतस्य केश इव। १ स्वनामख्यात तृण. सफेद दूब। पर्याय—गोलामी, भूतकेशी, अल्पकेशी, केशी। २ निर्गुण्डी, नीलसिंधुवारका पौधा। ३ इन्द्रवारुणी। ४ सफेद तुलसी। ५जटामांसी। ६ पुत्रजीवा। भूतानां केश इव भूतकेशः क्लीवञ्चेति केचित्। ७ स्त्रीचैतन्य।

भूतकेशी (सं० स्त्री०) भूतकेश-गौरादित्वात् ङीष्। १ भूतकेश। २ शेफालिका, निर्गुण्डी। ३ नीलसिन्धुवार।

भूतकेसरा (सं० स्त्री०) मेथिका, मेथी।

भूतक्रान्ति (सं० स्त्री०) भूतानां क्रान्तिः। भूतोन्माद, भूत लगना।

भूतगण (सं० पु०) भूतानां गणः। भूतसमूह।

भूतगन्धा (सं० स्त्री०) भूतः मर्दनं विनापि प्रकटितो गन्धोऽस्याः। मूरा नामक गन्धद्रव्य।

भूतखाना (हिं० पु०) बहुत मैला कुचैला या अंधेरा घर।

भूतग्राम (सं० पु०) भूतानां ग्रामः समूहः। भूतसमूह।

भूतघ्न (सं० पु०) भूतं हन्तीति हन-टक्। १ उष्ट्र, ऊंट। २ लहसुन। ३ भोजपत्रका पेड़। (त्रि०) ४ भूतनाशक, भूतका नाश करनेवाला।

भूतघ्नी (सं० स्त्री०) भूतघ्न ङीप्। १ तुलसी। २ मुण्डितिका।

भूतचतुर्दशी (सं० पु०) भूतप्रिया भूतोद्देशेक्रिया कर्त्तव्या वा चतुर्दशी, मध्यपदलोपि कर्म। गौण कार्त्तिक मासकी कृष्णा चतुर्दशी। इस चतुर्दशीको यमचतुर्दशी भी कहते हैं।

भूतचतुर्दशीके दिन यमपूजा या यमतर्पण अवश्य कर्त्तव्य है। इस दिन अरुणोदयकालमें स्नान करना होता है। अरुणोदयकालके बाद यदि कोई स्नान करे, तो उसका संवत्सरकृत पुण्य विनष्ट होता है। उस दिन चन्द्रोदयकालमें स्नान करनेसे नरकका भय नहीं रहता। कृष्ण-चतुर्दशीके दिन अरुणोदयकालमें ही चंद्रोदय हुआ करता है। पिताके जीवित रहते यमतर्पण और भीष्म तर्पण करना निषिद्ध है। उन्हें अरुणोदयकालमें केवल स्नान ही करना चाहिये। इस दिन यदि मङ्गलवार और चित्रा नक्षत्र पड़े, तो शिवपूजा करनेसे शिवपुरको गति होती है। इस चतुर्दशी और अमावस्याके दिन प्रदोषकालमें दीपदान करना चाहिये। दीपदान करनेसे यममार्गका अन्धकार दूर हो जाता है।

"अमावस्याश्चतुर्दश्याः प्रदोषे दीपदानतः।
यममार्गान्धकारेभ्यो मुच्यते कार्त्तिके नरः॥"

(तिथितत्त्व)

इस दिन अरुणोदयकालमें स्नानके बाद अपमार्गपल्लव मस्तकके ऊपर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर घुमाना चाहिये। मन्त्र यथा—

"शीतलोष्णसमायुक्त सकण्टकदलान्वित।
हर पापमपामार्ग! भ्राम्यमाणः पुनः पुनः॥"

स्नानके बाद निम्नलिखित मन्त्रसे यमतर्पण करना चाहिये। मन्त्र यथा—

"यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च।
उडुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥"

इस चतुर्दशीके दिन १४ प्रकारका शाक खाना चाहिये। इससे प्रेतलोककी गति नहीं होती है।

चौदह शाक ये सब हैं—ओल, केमुक, वास्तुक, सर्षप, काल, निम्ब, जयां, शालिञ्ची, हिमलोचिका, पटोल, शौल्फ, गुडूची, भण्टाकी और शुषुनिया। तिथितत्त्व)

भूतचारिन् (सं० पु०) महादेव।

भूतचिन्ता (सं० स्त्री०) पदार्थविषयिणी चिंता वा अनुशीलन। (सुश्रुत)

भूतजटा (सं० स्त्री०) भूतस्य जटेव तत्सदृशत्वात्। जटामांसी।

भूतज्योतिस् (सं० पु०) सुमतिपुत्र राजभेद।

भूतडामर (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

भूततत्त्व (सं० क्ली) भूतानां भावः त्व। १ पञ्चभूतका भाव वा धर्म। २ वह जिसमें भूतनामधेय अपदेवताकी पूजा और उनको अस्तित्वविषयिणी कथा लिपिबद्ध हुई हो।

भूततन्त्र (सं० क्ली०) १ भूतधर्म। २ अष्टाङ्गहृदयका षष्ठभाग। इस भागमें भूतधर्म संबन्धीय विशेष विवरण लिखा है।

भूततृण (सं० पु०) १ विषभेद। २ गन्धद्रव्यविशेष।

भूतत्व (सं० क्ली०) भूतका भाव या धर्म।

भूतत्त्व (सं० क्ली०) भू-विषयक तत्त्व।

भूतत्त्वविद्या (सं० स्त्री०) पृथिवीके अभ्यन्तरस्थित पदार्थोंका निर्णयात्मक शास्त्र (Geology)। भूविद्या देखो।

भूतद्राविन् (सं० पु०) भूतान् पिशाचान् द्रावयतीति द्रु-णिच्, णिनि। भूताङ्कुश वृक्ष, लाल कनेर।

भूतद्रुम (सं० पु०) भूतप्रियो द्रुमः। श्लेष्मान्तक वृक्ष।

भूद्रुह् (सं० त्रि०) भूतद्रुह क्विप्। प्राणिहिंसक।

भूतधात्री (सं० स्त्री०) भूतानि धरतीति धृ-तृच् ङीप। पृथिवी।

भूतधामन् (सं० पु०) इन्द्रके एक पुत्रका नाम। (महाभा० १ प०)

भूतधाविनी (सं० स्त्री०) पृथिवी।

भूतनाथ (सं० पु०) भूतानां नाथः। १ शिव। २ भूतपति राम।

भूतनाथ—एक कवि। ये प्रज्ञाभूतनाथ नामसे प्रसिद्ध थे।

भूतनायिका (सं० स्त्री०) भूतानां नायिका नियामिका। दुर्गा।

भूतनाशन (सं० क्ली०) भूतानि प्राणिजातानि नाश्यन्तेऽनेनेति नश्-णिच्-ल्युट्। १ रुद्राक्ष। (पु०) २ भल्लातक, भिलावाँ। ३ सर्षप, सरसों।

भूतनिचय (सं० पु०) भूतानां निचयः। भूतसमूह।

भूतन्त्वविद् (सं० पु०) भूतत्त्वज्ञ।

भूतपक्ष (सं० पु०) भूतः प्रियः पक्षः। कृष्णपक्ष।

भूतपति (सं० पु०) भूतानां पतिः। १ महादेव। २ कृष्ण तुलसीवृक्ष, काली तुलसी।

भूतपत्री (सं० स्त्री०) भूत इव कृष्णं पत्रं यस्याः, ङीष्। तुलसी।

भूतपादप (सं० पु०) भव्यफल वृक्ष।

भूतपाल (सं० पु०) भूत-प्रतिपालक विष्णु।

भूतपुर (सं० पु०) जनपदविशेष और जनपदवासी।

भूतपुष्प (सं० पु०) भूतयुक्तं प्राणिविशिष्टं पुष्पं यस्य। श्योनाक वृक्ष।

भूतपूर्णिमा (सं० स्त्री०) भूतानां पूर्णिमा। आश्विनी पूर्णिमा, शरद्-पूर्णिमा। पर्याय—शरदा, कौमुदी, अश्वयुजी, शतपर्वा, रङ्गभूति, कोजागरी।

भूतपूर्व (सं० त्रि०) भूतः पूर्वः। वर्त्तमानसे पहलेका, इससे पहलेका।

भूतप्रकृति (सं० स्त्री०) भूतादिकी मूलप्रकृति।

भूतप्रतिषेध (सं० पु०) भूतविताड़न, भूत झाड़ना।

भूतबाल—एक वैयाकरण। जैनेन्द्र व्याकरणमें इनका उल्लेख है।

भूतब्राह्मण (सं० पु०) भूतात्मनो ब्राह्मणः। देवल, पुजारी।

भूतभर्त्तृ (सं० पु०) भूतानां भर्त्ता। भूतपति, शिव।

भूतभव्य (सं० पु०) विष्णु।

भूतभावन (सं० पु०) भूतानि क्षित्यादीनि भावयति जनयतीति भू-णिच्-ल्यु। १ विष्णु। २ महादेव। (त्रि०) ३ भूतपालक।

भूतभाषा (सं० स्त्री०) पैशाचिक भाषा। पैशाची देखो।

भूतभाषित (सं० क्ली०) पैशाच भाषा।

भूतभृत् (सं० पु०) भूतानि बिभर्त्तीति भू-क्विप् तुगागमश्च। १ विष्णु। (त्रि०) २ भूतधारक।

भूतभैरव (सं० पु०) १ भैरवकी एक मूर्त्तिका नाम।

भूतभैरवरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—हरताल १५ भाग, गन्धक ६ भाग, नई इमली ८७ भाग इन्हें सीज और अकवनके दूधमें भावना दे कर रोहित जटाके रसमें भावित पारद आध भाग उसमें मिला दे और बादमें गोली बनावे। इस औषधका विशुद्ध जल, कपूर और ताम्बूलके साथ सेवन करके सुखसे सो रहे। इससे वातव्याधि और अठारह प्रकारके कुष्ठ, कुष्ठजनित उपद्रव, उग्रज्वर और दाह जाते रहते हैं। (रसेन्द्रसा० कुष्ठचि०)

भूतभौतिक (सं० त्रि०) भूत और भूतजात।

भूतमय (सं० त्रि०) भूतयुक्त।

भूतमहेश्वर (सं० पु०) विष्णु।

भूतमातृ (सं० स्त्री०) भूतानां माता। गौरी और पद्मादि मातृगण, ब्राह्मी और माहेश्वरी आदि मातृगण।

भूतमात्रा (सं० स्त्री०) भूतानां मात्रा। शब्दादि पञ्चतन्मात्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह पञ्च तन्मात्र ही भूतमात्रा है।

(मनु० १२।१७ अ०)

भूतमारि (सं० क्ली०) भूतानि मारयतीति भूत मृ-णिच्-णिनि। चोड़ा नामक गन्ध-द्रव्य।

भूतयज्ञ (सं० पु०) भूतार्थो यज्ञः भूतानि काकादि प्राणिजातानि तान्युद्दिश्यो यो यज्ञ इति वा। गृहस्थके लिये कर्त्तव्य पञ्चयज्ञमेंसे एक यज्ञ। इसे वलिवैश्य भी कहते हैं। पञ्चयज्ञ और वलिवैश्व देखो।

भूतयोनि (सं० स्त्री०) भूतानां आकाशादीनां योनिकारणम्। आकाशादि भूतके उत्पत्तिकारण परमेश्वर।

मानवजगत्में भूत वा उपदेवतादिकी उपद्रवकथा घर घर सुनी जाती है। मानवके भूतावेश और उसकी प्रतिषेध क्रिया तथा भौतिक व्यापारोंकी विस्तृत आलोचना भौतिककाण्डमें की गई है। भौतिककाण्ड देखो।

भूतरय (सं० पु०) मन्वन्तरीय देवभेद। (भाग० ८।५।३)

भूतराज् (सं० पु०) भूताधिपति शिव।

भूतरूप (सं० त्रि०) भूतकी आकृति।

भूतरूपस्थान (सं० क्ली०) भूतमय शरीर।

भूतल (सं० क्ली०) भुवस्तलं। १ पृथिवी, संसार। २ पृथिवीका ऊपरी तल, धरातल। ३ पृथिवीका निचला तल, पाताल।

भूतलिका (सं० स्त्री०) भूतलं पृथ्वीतलं आधारत्वेन अस्त्यस्या इति भूतलं ठन् टाप्। पृक्का, असवर्ग।

भूतलिपि (सं० पु०) भूतानां लिपिः। भूतदैवत वर्णभेद।

भूतलोन्मथन (सं० पु०) दानवभेद। (हरिवंश २४ अ०)

भूतवत् (सं० त्रि०) पूर्ववत्, पहलेके जैसा।

भूतवर्ग (सं० पु०) भूतसमूह।

भूतवादिन् (सं० त्रि०) यथार्थभाषी।

भूतवास (सं० पु०) भूतानां वासो यत्र। १ कलिद्रुम। २ महादेव। ३ विष्णु।

भूतवाहन (सं० पु०) शिवका एक नाम।

भूतवाहनसारथि (सं० पु०) शिव।

भूतविक्रिया (सं० स्त्री०) भूतानामिव विक्रियाऽस्याम्। अपस्माररोग।

भूतविज्ञान (सं० क्ली०) भूतयोनि नामक अपदेवता निराकरण विषयक शास्त्रज्ञान।

भूतविद् (सं० त्रि०) सर्वज्ञ, गुजरी वातजानेवाला।

भूतविद्या (सं० स्त्री०) भूतादि-निवारणार्था या विद्या। आयुर्वेदके अष्ट विभागका एक। सुश्रुतमें लिखा है, कि इस विभागमें देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृलोक, पिशाच, तक्षकादि नाग, सूर्यादि नवग्रह और स्कन्दादिग्रह आदिके प्रभावसे उत्पन्न होनेवाले मानसिक रोगोंका निदान और उपाय होता है। यह उपाय बहुधा ग्रहशान्ति, पूजा, जप, होम, दान, रत्न पहनने और औषधसेवनके रूपमें होता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० १ अ०)

"गृहभूतपिशाचाश्च शाकिनी डाकिनी गृहाः ।
एतेषां निगृहः सम्यक् भूतविद्या निगद्यते ॥"
(वैद्कस० २ अ०)

भूतविनायक (सं० पु०) भूताधिपति, शिव ।
भूतविष्णु (सं० पु०) दशगीतिसूत्रभाष्यके प्रणेता ।
भूतवीर (सं० पु०) जातिभेद ।
भूतवृक्ष (सं० पु०) १ शाखोट वृक्ष, सिहोरका पेड़ । २ श्योनाक वृक्ष ।
भूतवृक्षक (सं० पु०) श्लेष्मान्तक वृक्ष ।
भूतवेशी (सं० स्त्री०) भूतानामिव वेशोऽस्याः गौरादित्वात् ङीष् । १ श्वेत शेफालिका, सफेद निर्गुण्डी । २ निर्गुण्डी ।
भूतब्रह्मन् (सं० पु०) भूतः पिशाच इव ब्रह्मा । देवल,पुजारी
भूतशुद्धि (सं० स्त्री०) भूतानां देहारम्भकपृथिव्यादि पञ्च भूतानां शुद्धिः शोधनं । तन्त्रप्रसिद्ध देहारम्भक चौवीस तत्त्वोंके भावनाविशेष संस्कार द्वारा देवरूपता सम्पादन, पूजादिमें वीज विशेष द्वारा वामकुक्षिस्थित पापपुरुषका दहन कर शरीरशोधन । किसी देवता विशेष की पूजा करनेसे पहले भूतशुद्धि करनी होती है। भूतशुद्धिके विना पूजा करनेका अधिकार नहीं है। भूतशुद्धि द्वारा शरीरस्थित पापपुरुषके दग्ध होने पर पुनः चन्द्रगलित सुधाको नूतन देह निर्माण कर पूजा करनी पड़ती है। भूतशुद्धिका व्यापार बड़ा ही कठिन है।

भूतशुद्धिके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी व्यवस्था है। उनमेंसे साधारणतः पूजा पद्धति आदिमें जिसका प्रयोग देखा जाता है, पहले वही दी जाती है। संयतचेता पुरुष किसी देव या देवीकी पूजा आरम्भ कर आसनशुद्धि प्रभृति विहित विधानोंके अनुष्ठानके बाद देहारम्भ पृथिव्यादि पांच भूतोंका शोधन या देहारम्भक चौवीस तत्त्वोंके भावन संस्कार द्वारा देवरूपता प्राप्त करते हैं।

पूजा पद्धतिमें लिखा है, पहले "रम्" इस वीजमन्त्रसे जल धारा दे कर वह्निप्रकारकी चिन्ता करते हुए दोनों हाथ अपनी गोदमें उत्तान भावसे रखने चाहिए। बाद 'सोऽहम्' इस भावना द्वारा हृदयस्थ दीपकलिकाकृति जीवात्माको मूलाधारस्थित कुलकुण्डलिनीके साथ सुषुम्नापथमें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामक छह चक्र भेद कर मस्तकावस्थित अधोमुख सहस्रदलशाली कमलकर्णिकाके अन्तर्गत परमात्मामें संयोजित करना उचित है। अनन्तर इस परमात्मामें पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार तथा रूप ये चौवीस तत्त्व विलीन हैं, ऐसा सोचते हुए "यम्" इस धूम्रवर्ण वायु वीजका वामनासापुटमें चिन्तापूर्वक सोलह वार जप कर वायु द्वारा अपनी देह परिपूरित करनी चाहिए। फिर दोनों नासापुट धारण कर उक्त वायुवीजका पुनः चौसठ वार जप और इसके बाद कुम्भक कर वामकुक्षिस्थित कृष्णवर्ण पापपुरुषके साथ शरीरका संशोधन कर उचित है। शरीरके संशोधित होनेसे पुनः इस वीजका वत्तीस वार जप कर दक्षिण-नासा द्वारा वायु निकालनी चाहिए। अनन्तर 'रम्' इस वह्निवीजका रक्तवर्ण ध्यान और सोलह वार जप कर वायु द्वारा देह परिपूरित करनी होती है। फिर दोनों नासापुटका धारण करके इस वीजका चौसठ वार जप कर कुम्भक करे। कुम्भकके बाद मूलाधार स्थित वह्नि द्वारा पापपुरुषके साथ शरीर दग्ध कर पूर्वोक्त वह्निवीजका वत्तीस मरतबे जप कर भस्मके साथ वाम नासारन्ध्र द्वारा वायु निकाले। इस प्रकार वामनासामें "ठम्" इस वीजका शुक्लवर्ण ध्यान कर सोलह वार जप द्वारा चन्द्रको ललाट पर ला कर पुनः दोनों नासापुट धारणपूर्वक 'वम्' इस वरुण-वीजके चौसठ वार जप द्वारा उस चन्द्रसे विगलित मातृकावर्णमय पीयूषधारामें समस्त देह विरचित कर 'लम' पृथ्वीवीजके वत्तीस वार जपसे देहको सुदृढ़रूपसे भावना कर दक्षिण नासा द्वारा वायु निकालनी चाहिए।

अनन्तर "हंस" यह वीज हृदयमें ला कर कुलकुण्डलिनी और पृथिवी प्रभृतिको यथायथ स्थानमें स्थापित करना होता है।

शक्तिमें विशेषता यह है, कि 'हंस' वीज द्वारा जीव प्रभृतिको परम शिव पर संयोजित कर पुनः उनको "सोऽहम्" मंत्रसे यथास्थान पर लाना पड़ता है।

"सोऽहमेवं समाभाष्य जीवं हृदि समानयेत् ।" (तंत्रसार)

ज्ञानार्णवमें लिखा है, कि प्राणप्रतिष्ठाक्रमके वाद जीवको देहमें संस्थापित और क्रमानुसार अपनी देह स्थिर करनी चाहिए।

"प्राणप्रतिष्ठया पश्चाद् जीवं देहे निधापयेत् ।
मुखवृत्तं समुच्चार्य हंसस्तु विपरीतकः ॥
उद्धरेत् परमेशानि ! बिग्र यं त्र्यक्षरी मता ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं सर्वकर्माणि साधयेत् ।
तेनैव विधिना देवि ! स्थिरीकुर्यान्निजा तनुम् ॥"
(ज्ञानार्णव)

वाराहीतन्त्रमें उल्लिखित हुआ है:—भूतशुद्धिकी जगह 'हंस' मन्त्र शूद्रको स्मरण करनेका अधिकार नहीं है। यदि करे, तो उसकी दीक्षा विफल हो जाती है और अन्तमें वह नरकमें जाता है।

"हंसाख्यं न स्मरेत् शूद्रो भूतशुद्धौ कदाचन ।
स्मरणान्नरकं याति दीक्षा च विफला भवेत् ॥"
(वाराहीतन्त्र)

शारदातिलकमें लिखा है,—जीवको तेजोमय ध्यान कर पुनः 'नमः' मंत्रसे संयोजित करना चाहिए।

"जीवं तेजोमयं ध्यात्वा नमोमंत्रेण योजयेत् ।"
(शारदातिलक)

यह हुई विस्तृत भूतशुद्धि। अन्य ग्रन्थमें संक्षेपमें भी इसका वर्णन किया गया है। पुरश्चरणचन्द्रिकामें संक्षेप भूतशुद्धिका विषय इस प्रकार लिखा है,—ज्ञानी साधक अपने हृदय-कमलको धर्मरूप कन्दसे उत्पन्न, ज्ञानरूप नाल द्वारा परिशोभित, ऐश्वर्यरूप अष्टदलसे युक्त और वैराग्यरूप कर्णिकासे समन्वित, इस प्रकार ध्यान कर वाद उसे प्रणव द्वारा विकाशित करें। अनन्तर कर्णिकास्थित प्रदीपकलिकानिभ जीवात्माका हृदयमें ध्यान कर मूलमंत्रसे कुण्डलीकी चिन्तापूर्वक सुषुम्नापथमें आत्माको परमात्मासे योजित करें।

विशुद्धेश्वरमें लिखा है, कि अव्ययब्रह्मके साथ संयोगके हेतु शरीराकार-स्वरूप भूतोंका विधान ही भूतशुद्धि है।

"शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनं ।
अव्ययब्रह्मसंयोगात् भूतशुद्धिरियं मता ॥" (विशुद्धेश्वर)

भूतसंसार (सं० पु०) जगत्, विश्वब्रह्माण्ड।

भूतसंक्रामिन् (सं० त्रि०) भूतप्राप्त।

भूतसङ्घ (सं० पु०) भूतसमूह।

भूतसञ्चार (सं० पु०) भूतस्य सञ्चारः। भूतोन्मादरोग। पर्याय—आवेश, चतक्रांति, ग्रहागम। (राजनि०)

भूतसञ्चारिन् (सं० पु०) भूतेषु सञ्चरति इति भूत सम्-चर-णिनि। दावानल।

भूतसन्ताप (सं० पु०) दानवभेद।

भूतसंप्लव (सं० पु०) प्रलय।

भूतसर्ग (सं० पु०) सृज्यते इति सृज-भावे घञ् भूतानां सर्गः। अग्निपुराणमें लिखा है, कि यह भूतसृष्टि चौदह प्रकारकी है,—ब्राह्म, प्रजापतीय, सौम्य, ऐन्द्र, गान्धर्व, कौवेर, रक्षः, पैशाच, मानुष, स्थावर, पाशव, मार्ग, सार्प और शाकुनिक। (अग्निपु०)

भूतसाक्षिन् (सं० पु०) सृष्ट पदार्थका साक्षिरूप।

भूतसाधनी (सं० स्त्री०) भूतानि प्राणिनः साधयति अत्र आधारे ल्युट्, ङीप्। भूमि, पृथिवी।

भूतसार (सं० पु०) भूतः गतः सारो यस्य। १ श्योणाकभेद। २ खदिर सार।

भूतसिद्ध (सं० पु०) तांत्रिकोंके अनुसार वह जिसने भूत प्रेत आदिको सिद्ध और वशमें कर लिया हो।

भूतसूक्ष्म (सं० क्ली०) भूतादितन्मात्र, पञ्चतन्मात्र।

भूतस्थ (सं० त्रि०) भूतावस्थित विष्णु।

भूतस्थान (सं० क्ली०) जीवोंका अवस्थान स्थान।

भूतहत्या (सं० स्त्री०) जीवहत्या।

भूतहन् (सं० पु०) भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका वृक्ष।

भूतहन्त्री (सं० स्त्री०) भूतानि हन्तीति हन-तृच्, ङीप्। १ वन्ध्या कर्कोटकी, वांझ ककोड़ो। २ नील दूर्वा, नीली दूब।

भूतहर (सं० पु०) भूतानि हरतीति हृ-अच्। गुग्गुल।

भूतहारी (सं० क्ली०) भूतानि हरतीति हृ-णिनि। १ देवदारु, देवदार। २ रक्तकरवीर, लाल कनेर।

भूतहास (सं० पु०) सन्निपात ज्वर-विशेष। इसमें इन्द्रियां अपना काम नहीं करतीं, रोगी व्यर्थ वकता है और उसे बहुत हंसी आती है।

भूता (सं० स्त्री०) भूत-टाप्। कृष्णा चतुर्दशी।

भूतांश (सं० पु०) १ ऋषिभेद। २ काश्यप ऋषि। ३ भूतसमूहका अंश।

भूताङ्कुश (सं० पु०) भूतानामअंकुश इव निवारकत्वात्। खनामख्यात वृक्षविशेष, गावजुवान। गुण—तीव्रगन्ध, उत्कट, उष्ण, कटु, भूत और ग्रह आदि-दोषनाशक तथा कफवात-निकृन्तन। (राजनि०)

भूताङ्कुशरस (सं० पु०) रसौषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली पारा, लौह, ताम्र, मुक्ता, हरिताल, गन्धक, मनःशिला, तूतिया, रसाञ्जन, समुद्रफेन, सौरीराञ्जन, और पञ्चलवण प्रत्येक एक भाग, हीरक अष्टमांश, भृङ्गराज, चिता और थूहरका दूध प्रत्येकको ६ वार भावना दे कर वन्द कर रखे। पीछे गजपुटमें पाक करे। भलीभांति पाक हो जाने पर दो रत्तीकी गोली वनावे। इसका अनुपान अदरकका रस है। इसका सेवन करनेसे भूतोन्माद जल्द जाता रहता है। इस औषध सेवनकारीके लिये पिप्पली और दशमूलका कषाय पान, स्वेद, तितलौकी, तीक्ष्ण और रूखी वस्तु खाना विशेष निषिद्ध है। दूध, भैंसका घी और गुरु भोजन तथा सरसोंका तेल लगा कर स्नान करना विशेष उपकारक वतलाया गया है।
(रसेन्द्रसारस० उन्मादरोगाधि०)

अन्यविध—शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, ताम्र ३ भाग, मिर्च १० भाग, अवरककी भस्म ४ भाग, विष १ भाग, सफेद सरसों १ भाग इन सव द्रव्योंको एकत्र अम्लरस द्वारा भावना दे कर गोली वनावे। अनुपान रोगीके वलावलके अनुसार स्थिर करना होगा। इसके सेवनसे कासरोग प्रशमित होता है। (रसकौ०)

भूतात्मक (सं० पु०) भूत सम्वन्धीय भूतमय भूतजात।

भूतात्मा (सं० पु०) भूतानामात्मा। १ देह। २ परमेश्वर। ३ शिव। ४ युद्ध। ५ विष्णु। ६ जीवात्मा।

भूतादि (सं० पु०) भूतानामादिः। १ परमेश्वर। २ सांख्यमतसिद्ध अहङ्कारतत्त्व। अहंतत्त्वसे ही पञ्चभूत हुआ है, इसीसे वह तत्त्व भूतसमूहका आदि है।

भूताधिपति (सं० पु०) भूतनाथ, शिव।

भूतान्तक (सं० पु०) भूतानामान्तकः षष्ठीतत्। १ यम। २ रुद्र।

भूतायन (सं० पु०) भूतानामयनमाश्रयः षष्ठीतत्। नारायण।

भूतारि (सं० क्ली०) भूतानामरिः तन्निवारकत्वात् क्लीवत्वं। हिंगु, हींग।

भूतार्त्त (सं० क्ली०) भूतेन ऋतः ३तत्। भूताविष्ट, भूतग्रस्त।

भूतार्थ (सं० पु०) भूतः सत्यभूतः अर्थो यस्य। यथार्थ।

भूताली (सं० स्त्री०) भूतानामालीव। १ भूपाटली। २ मुषली।

भूतावास (सं० पु०) १ विभीतक वृक्ष, वहेड़े का पेड़। २ शाखोट, सहोरेका पेड़। ३ शरीर, देह। ४ विष्णु। ५ संसार, दुनियां।

भूताविष्ट (सं० त्रि०) भूतेन आविष्टः। १ पिशाचग्रस्त, जिसे भूत या पिशाच लगा हो। भूत लगने पर निम्न लिखित चक्रधारण करनेसे शुभ होता है। भोजपत्र पर इस चक्रको लिख कर कवच धारणकी प्रणालीके अनुसार धारण करना होता है।

भूतनाशक चक्र।

१	८	१८	२३
२०	२१	३	६
७	२	२४	१७
२२	१६	५	४
५०	५०	५०	५०

ज्योतिस्तत्त्वमें इसका विशेष विवरण लिखा है। २ भूताक्रान्त, जो भूतों आदिके प्रभावसे रोगी हुआ हो।

(भूतावेश (सं० पु०) भूतानामावेशः। भूतसञ्चार, भूत लगना।

भूति (सं० स्त्री०) भवत्यनयेति भू (क्तिच क्तौ च संज्ञायाम। पा ३।३।१७४) इति क्तिच्। १ महादेवकी अणिमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धियां। २ शम्भुधृत भस्म, वह राख जिसे शिवजी लगाते हैं। ३ भस्म, राख। ४ सम्पत्ति, वैभव, ऐश्वर्य। ५ हस्तिश्रृङ्गार, हाथीका

मस्तक रंग कर उसका शृङ्गार करना। ६ जाति। ७ पितृगणभेद। ८ लक्ष्मी। ९ वृद्धिनामकी औषधि। १० रोहिषतृण, रूसा घास। ११ भूतृण। १२ उत्पत्ति। १३ सत्ता। १४ पक्क मांस। १५ विष्णु।

भूतिक (सं० क्ली०) भू-क्तिच्, संज्ञायां कन्। १ भूनिम्ब, चिरायता। २ कटफल, कटहल। ३ यमानी, अजवायन। ४ रोहिष तृण, रूसा। ५ चन्दन।

भूतिकर्म (सं० क्ली०) गार्हस्थ संस्कार।

भूतिकाम (सं० पु०) भूतिं कामयते इति कम (कर्मण्यण् पा ३।२।१ इत्यण्) १ राजमन्त्री। २ वृहस्पति (त्रि०) ३ जिसे ऐश्वर्य की कामना हो।

भूतिकील (सं० पु०) भूतेः शस्यादिसम्पत्तेः कील इव जलदत्वात्। भूखात, गड्ढा।

भूतिकृत् (सं० त्रि०) भूतिं करोति कृ-क्विप्। शिव।

भूतिकृत्य (सं० क्ली०) गार्हस्थ संस्कार।

भूतिगर्भ (सं० पु०) भूतिः कवित्व-सम्पत्तिगर्भे अन्तर्यस्य वा भूति शब्द उपाधि नाम्नोऽन्तर्यस्य। भवभूति कवि।

भूतितीर्थ (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेय की एक मातृकाका नाम।

भूतिद (सं० पु०) भूतिं ददातीति दा-क। शिव, महादेव।

भूतिदा (सं० स्त्री०) भूतिद टाप्। गङ्गा।

(काशीखण्ड २९।१३०)

भूतिनि (हिं० स्त्री०) भूतिनी देखो।

भूतिनिधान (सं० क्ली०) निधीयतेऽस्मिन्निति नि-धा-अधिकरणे-ल्युट्, भूत्या निधानं। धनिष्ठा नक्षत्र।

भूतिना (स्त्री० वि०) १ भूतयोनोमें प्राप्त स्त्री। २ शकिनी, डाकिनी आदि।

भूतिमत् (सं० त्रि०) भूतिरस्त्यस्य मतुप्। ऐश्वर्ययुक्त।

भूतिया—सतारा जिलावासी निम्नश्रेणीकी जातिविशेष। ये लोग मराठीसे वहुत कुछ मिलते जुलते हैं, पर इनकी वेशभूषा अति कदर्य है। गलेमें कौड़ीकी माला पहन कर ये घर घर भीख मांगते हैं। भिक्षा ही इनकी एकमात्र उपजीविका है। वहुतेरे भूत-प्रतिषेध मन्त्र द्वारा ओझाकी तरह भूत चढ़ाते और उतारते हैं। इसी कार्यके तथा कदर्य परिच्छदके कारण इनका नाम भूतिया पड़ा है। जन्मसे ले कर मृत्यु तक सभी संस्कार तथा देवदेवीकी पूजा और उपवासादि ये लोग कुणवियोंकी तरह करते हैं।

भूतियुथक (सं० पु०) पुराणानुसार कूर्मचक्रके एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी।

भूतिराज—१ एक जैनपण्डित, सौचुकके पुत्र और इन्दुराजके पिता। २ हेलराजके पिता।

भूतिलय (सं० पु०) तीर्थभेद। (भारत वनप० १२९ अ०)

भूतिवर्द्धन—सह्याद्रिवर्णित एक राजा।

भूतिवर्म (सं० पु०) १ प्राग्ज्योतिषपुरके अधिपति। २ राक्षसभेद।

भूतिवाहन (सं० त्रि०) शिवका एक नाम।

भूतिसित (सं० क्ली०) रौप्यधातु, चाँदी।

भूतिसृज् (सं० त्रि०) १ ऐश्वर्यकारी। २ ऐश्वर्यवान्।

भूती (हिं० पु०) भूतपूजक।

भूतीक (सं० क्ली०) भूतिक, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ भूनिम्ब, चिरायता। २ यमानी, अजवायन। ३ भूतृण, रूसा नामकी घास। ४ कत्तृण। ५ कर्पूर, कपूर।

भूतीवानी (हिं० स्त्री०) भस्म, राख।

भूतीश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

भूतृण (सं० क्ली०) भुवस्तृणम्। गंधतृण। पर्याय—रोहिष, गोमयप्रिय, रामकर्पूर, सत्तृण, शर, श्यामक, ध्यामक, पौर, देवजग्धक। २ भूस्तृण, रोहिसघास। पर्याय—रोहिष, भूति, भूतिक, कुटुम्बक, मालातृण, समालम्बी, छत्र, अतिछत्रक, गुहवीज, सुगंध, गुच्छाल, पुंस्त्वविग्रह, वधिर, अतिगन्ध, शृङ्गरोह, करेन्दुक। गुण—कटु, तिक्त, वातसमूह, भूतग्रहावेश और दारुण विषदोषनाशक।

भूतेज्य (सं० त्रि०) भूतयज्ञ उपदेवताओंके लिये याग।

भूतेन्द्रियजयी (सं० त्रि०) १ जिसने पञ्चभूत और इन्द्रियोंको जीता हो। २ योगी, संन्यासी।

भूतेश (सं० पु०) भूतानां प्राण्यादीनां प्रमथादीनां वालग्रहाणाञ्च ईशः। १ शिव। २ परमेश्वर। ३ स्कन्द।

भूतेश्वर (सं० पु०) १ शिव। २ तीर्थभेद। ३ सह्याद्रिवर्णित एक राजा। ४ हिमालय पर्वतस्थित शिवलिङ्गभेद।

भूतेष्टका (सं० स्त्री०) इष्टकाभेद ।

भूतेष्टा (सं० स्त्री०) १ कृष्ण तुलसी । २ आश्विन कृष्ण चतुर्दशी । ३ उपदेवताकी अभिलषित कृष्णचतुर्दशी ।

भूतोदन (सं० क्ली०) ओदनविशेष ।

भूतोन्माद (सं० पु०) भूतकृतः उन्मादः । पिशाचकृत उन्माद, वह उन्माद रोग जो भूतों या पिशाचोंके आक्रमणके कारण हो ।

भूतोपदेश (सं० पु०) प्रकृत उपदेश, यथार्थ विषयमें शिक्षादान ।

भूतोपमा (सं० स्त्री०) जीवके साथ उपमा, प्रकृत उपमा ।

भूत्तम (सं० क्ली०) भुवि उत्तमम् । सुवर्ण, सोना ।

भूदराश्रया (सं० स्त्री०) भूषिककर्णी; मूसाकानी ।

भूदरोभवा (सं० स्त्री०) भूदर्या भूविले भवतीति भू-अच् टाप् । आखुपर्णी ।

भूदर्या (सं० स्त्री०) भूषिककर्णी, मूसाकानी ।

भूदार (सं० पु०) भुवं दारयतीति दॄ (कर्मण्यण । पा ३।२।३) इत्यण् । शूकर, सूअर ।

भूदारक (सं० पु०) शूर, वीर ।

भूदेव (सं० पु०) भुवो भुवि वा देवः । ब्राह्मण । स्वधर्मनिरत वेदज्ञ ब्राह्मण हो इस मर्त्यधाममें देवताके समान पूजित होते हैं । इसी कारण उन्हें भूदेव कहते हैं ।

भूदेवदेव—कत्यूरीवंशीय एक राजा । ये कुमायुन जिलेके व्याघ्रेश्वर मन्दिरके खर्च वर्चके लिये ग्राम दान कर गये हैं ।

भूदेवपण्डित—नीलकण्ठकृत काशिकातिलक-टीकाके रचयिता ।

भूदेवमुखोपाध्याय—बङ्गालके एक असाधारण प्रतिभाशाली ब्राह्मणसन्तान और प्रसिद्ध ग्रन्थकार । इनके पिताके नाम था विश्वनाथ तर्कभूषण । इनका निवासस्थान तो खानाकुलकृष्ण-नगरमें था, किन्तु ये सदा कलकत्तेमें रहते थे । यहीं पर १७४७ शक (१८२५ ई०)की २री फाल्गुनको इनका जन्म हुआ ।

ये जब आठ वर्षके थे तभी संस्कृत कालेजमें भर्त्ती हुए और तीन ही वर्षमें मुग्धवोध नामक व्याकरण पढ़ लिये । वाद इन्हें अंगरेजी पढ़नेकी इच्छा हुई । दो वर्ष इधर उधर पढ़ कर इन्होंने छह वर्ष हिन्दूकालेजमें पढ़ा जहां इन्हें सर्वोच्च श्रेणीकी छात्रवृत्ति मिली ।

शिक्षाविभागके कर्त्तृपक्षगण भूदेवकी विद्या और बुद्धिमत्ताका परिचय पा कर बड़े ही सन्तुष्ट हुए । उन्होंने उस समय किसी उच्च पदप्राप्तिकी इच्छा प्रकट न की, वरन् अपने वन्धुओंके साथ मिल कर शेयाखाला, चन्दननगर, श्रीपुर आदि कई एक स्थानोंमें स्कूलकी स्थापना कर आप ही शिक्षकका काम करने लगे । किन्तु अर्थाभावसे यह काम वहुत दिनों तक न चल सका । अन्तमें ये ५०) रु० मासिक पर मद्रास कालेजके २य अङ्गरेजी शिक्षक नियुक्त हुए । इनके कामसे सन्तुष्ट हो कर शिक्षाविभागके कर्त्ताने इन्हें १५०) रु० मासिक पर हवड़ा गवर्मेण्ट स्कूलका प्रधान शिक्षक वनाया । उसी समय हवड़ाके मजिष्ट्रेट और उक्त स्कूलके सम्पादक हजसन प्राट साहवके साथ भूदेवका परिचय हुआ । उक्त साहव जव वङ्गालके स्कूल-इन्सपेकृर हुए, तव वे अक्सर इन्हींकी सलाह लिया करते थे । भूदेवका वङ्गला भाषा पर वड़ा ही अनुराग था । प्राट साहवके कथनानुसार इन्होंने "शिक्षाविषयक" नामक एक पुस्तकका प्रचार किया । उसी समय इनका ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुआ ।

हुगलीमें नार्मल विद्यालयके स्थापित होने पर भूदेव ३००) रु० वेतन पर उसके सुपरिण्टेंडेण्ट (तत्त्वावधायक) नियुक्त हुए । उनकी ही चेष्टासे उक्त विद्यालयकी खूब उन्नति हुई । भूदेवने वालकोंकी शिक्षाकी सुविधाके लिए प्राकृतिक विज्ञान १ला और २रा खण्ड, पुरावृत्तसार, इङ्गलैण्डका इतिहास, रोमका इतिहास और यूक्लिड्की ज्यामितिका ३रा भाग प्रकाशित किया ।

१८६२ ई०के जून मासमें जव मेडलिकट साहव प्रतिनिधि स्कूल-इन्सपेकृर हुए, तव भूदेव भी ४००) रु० मासिक पर सहकारी परिदर्शक नियुक्त किये हुए । १८६३ ई०में ये स्कूल-समूहके एडिशनल इन्सपेकृर वने । वे हिन्दुओंकी प्राचीन शिक्षाप्रणालीके पक्षपाती थे । १८६४ ई०के वैशाख महीनेसे इन्होंने अपने कनिष्ठ

पुत्रके नामसे दो आने मूल्यका शिक्षा-दर्पण नामक एक मासिक पत्र निकाला। किन्तु दुःखका विषय था, कि १८६६ ई०में वह पुत्र इस लोकसे चल बसा।

ये गवर्मेण्ट द्वारा उत्तर-पश्चिम प्रदेश तथा पञ्जावकी शिक्षाप्रणालीके परिदर्शनार्थ भेजे गए। इन सब प्रदेशों-की शिक्षाप्रणाली देख कर अङ्गरेजी भाषामें इन्होंने जो सुवृहत् मन्तव्य प्रकट किया, उससे उनके भूयोदर्शन और दोषगुणविचारकी असाधारण क्षमता प्रकाशित हुई और धीरे धीरे ये शिक्षाविभागकी प्रथम श्रेणी पर पहुंच गए। १८६६ ई०को ये 'नार्थ सेन्ट्रल' नामक नव-प्रतिष्ठित विभागके डिभिजनल इन्सपेकृर (विभागीय परिदर्शक)-के पद पर नियुक्त हुए, कुछ दिन बाद प्रधान परिदर्शक बने।

१८७७ ई०में इन्होंने महाराणी भारतेश्वरीसे C. I. E. की उपाधि प्राप्त की और १८८२ ई०में ये छोटे लाटके बङ्गीय व्यवस्थापक सभाके एक सदस्य बने। १८८३ ई०के कुछ पहले इनका "पुष्पाञ्जलि" और फिर कुछ दिन बाद "पारिवारिक' प्रवन्ध प्रकाशित हुआ। पारिवारिक प्रवन्ध ही उनके जातीय जीवनकी विशाल कीर्त्ति है। अङ्गरेजीमें उच्च शिक्षित और अङ्गरेजराजपुरुषोंके साथ विशेष संलिप्त रहने पर भी ब्राह्मण सन्तान भूदेवने अपनी जातीयता नहीं छोड़ी। जिस समय उच्च शिक्षित बङ्गीय समाज अङ्गरेजी शिक्षाके प्रभावसे अङ्गरेजी रीति नीति और आदर्शके पक्षपाती था, उस समय भी स्वजातिप्रिय तथा स्वधर्मानुरागी भूदेव ब्राह्मणत्व-रक्षामें अत्यन्त यत्नवान् थे। अपने 'आचारप्रवन्ध'में वे अपना मनोभाव इस प्रकार प्रकाशित कर गये हैं—

"जातीयता साधनके लिए हिन्दू समाजको आत्म-प्रकृतिके अनुसार चलना चाहिए। भारतवर्षका एकता-साधन अङ्गरेजकी अधीनतामें ही सम्भव है,—अतएव अङ्गरेजोंके प्रति सम्यक् वन्धु-बुद्धि तथा राजभक्ति दिखलाना चाहिये। किन्तु प्रत्येक विषयमें अङ्गरेजों-का अनुकरण परित्यज्य है। अङ्गरेजोंकी प्रकृतिके साथ हिंदूकी प्रकृति नहीं मिलती। अंग्रेज कार्य-कुशल, अहङ्कारी तथा लोभी, किन्तु हिंदू श्रमशील, सुवोध, नम्रस्वभाव और संतुष्टचित्तके होते हैं। अङ्गरेज आत्मसर्वस्व और हिंदू परार्थपर हैं। अङ्गरेजोंसे हिंदूको सिर्फ कार्यकुशलता सीखनी चाहिए और कुछ भी सीखने-का प्रयोजन नहीं।" भूदेव कट्टर हिंदू, यथार्थ स्वदेश प्रेमिक जन्मभूमिके उन्नतिसाधनमें बड़े ही चिन्ताशील थे। इन्होंने हिंदूजातिको सत्त्वगुणसम्पन्न करनेके लिए "आचारप्रवन्ध" प्रकाशित किया। इस प्रवन्धकी उपक्रमणिकामें उन्होंने लिखा है—"सदाचार ही मूल धर्म है, धर्मअर्थसे शास्त्रीयविधिका प्रतिपालन करना चाहिए। यहां विधिप्रतिपालनकी प्रतिवन्धक पांच वस्तु देखी जाती हैं,—(१) विधि-विषयक अज्ञता, (२) विधिके प्रति श्रद्धाहीनता। (३) विजातीय अनुकरणका आतिशय्य, (४) स्वेच्छाचारिताका प्रावल्य (५) स्वाभाविक आलस्य।"

भूदेवको इस वातका बड़ा ही दुःख था, कि उपयुक्त संस्कृत शिक्षाके अभावसे आज ब्राह्मण पण्डित इतने घृणित हो गए हैं, इसीलिए हिन्दूसमाज भी उत्पन्न हो पड़ा है। यही कारण है, कि ब्राह्मण प्रवर भूदेवने जातीय चिकित्साशास्त्र, धर्मशास्त्र प्रभृतिकी भले प्रकारसे अध्या-पनाके लिए अपने पिताके नाम पर "विश्वनाथ चतुष्पाठी' की स्थापना और उसके खर्चके लिए एक लाख साठ हजार रुपये दान कर गये। अन्तमें इस चरित्रवान् उदार महापुरुषने १३०१ सालमें मानवलीला संवरण की।

भूदेवशुक्र—आत्मतत्त्वप्रदीप और उसकी टीका, धर्मविजय नाटक और रसविलास नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भूधन (सं० पु०) भुवो धनं यस्य। राजा।

भूधर (सं० पु०) धरतीति धृ-पचाद्यच्, भुवां धरः। १ पर्वत, पहाड़। २ यन्त्रभेद, भूधरयन्त्र। मूषामें पारा रख कर उसे वालूसे ढक दे, पीछे उसके चारो ओर ओपले सजा कर उसे आगमें पकावे। इसी यन्त्रको भूधरयन्त्र कहते हैं। ३ शेषनाग। ४ विष्णु। ५ राजा। ६ वाराह अवतार।

भूधर—१ काम्पिल्यनिवासी एक ज्योतिर्विद्, भरद्वाज गोत्रीय देवदत्तके पुत्र। आप सूर्यसिद्धान्तविवरण और नरपतिजयचर्या-मञ्जरी नामक दो ग्रन्थ लिख गये हैं। २ शङ्कराचार्यकृत साधन पञ्चक-टीकाके रचयिता। ३ सह्याद्रिवर्णित दो राजा।

भूधरता (सं० स्त्री०) भूधरस्य भावः तल-टाप्। भूधरका भाव या धर्म, भूधरणशक्ति।

भूधरदास—आगरेके रहनेवाले एक खंडेलवाल जैन कवि। इन्होंने जैनशतक और १६८९में पार्श्वपुराण नामक एक जैनग्रन्थ लिखा जिसकी जैनधर्ममें पुराणोंकी भांति पूजा होती है।

भूधरदुर्ग—बम्बईप्रदेशके कोल्हापुर जिलान्तर्गत एक दुर्ग। १८४४ ई०के विद्रोहके बाद अंगरेजोंने इसे तहस नहस कर डाला था।

भूधरेश्वर (सं० पु०) भूधराणामीश्वरः। हिमालय, पर्वतोंका राजा।

भूधात्री (सं० स्त्री०) भूलग्ना धात्री। भूम्यांमलकी, भुंई आंवला।

भूध्र (सं० पु०) भुवं धरतीति धृ (मूलविभुजादित्वात्। पा ३।२।५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या कः। पर्वत, पहाड़।

भूनना (हिं० क्रि०) १ अग्निमें रख कर पकाना, आग पर रख कर पकाना। २ गरम घी वा तेल आदिमें डाल कर कुछ देर तक चलाना जिससे उसमें सोंधापन आ जाय। ३ बहुत अधिक कष्ट देना, तकलीफ पहुंचाना। ४ गरम वालूमें डाल कर पकाना।

भूना (सं० स्त्री०) रोमक-सिद्धान्तवर्णित चन्द्रविभागान्तर्गत देशभेद।

भूनाग (सं० पु०) भुवि नाग इव। उपरसविशेष। पर्याय—क्षितिनाग, भूजन्तु, रक्तजंतुक, क्षितिज, क्षितिजंतु और रक्ततुण्डक। गुण—वज्रमारक, नानाविज्ञानकारक और रसजारण।

भूनिम्ब (सं० पु०) क्षुपविशेष, चिरायता। पर्याय—अनार्यतिक्त, कैरात, रामसेनक, किराततिक्त, हैम, कांततिक्त, किरातक, कटुतिक्त। गुण—वातिक, तिक्त, कफ और पित्तज्वरनाशक, पथ्य, व्रणसंरोपक, कुष्ठ, कण्डूति तथा शोफनाशक।

भूनिम्बादिकषाय (सं० पु०) ज्वररोगमें कषायभेद। इसे भूनिंबादिपाचन भी कहते हैं। प्रस्तुत प्रणाली—चिरायता, गुड़ची, मोथा, नागर प्रत्येक द्रव्य दो तोला इन्हें आध सेर जलमें सिद्ध कर आध पाव रहते उतार ले। इसका सेवन करनेसे ज्वर बहुत जल्द दूर हो जाता है।
(वाभट चि० १ अध्याय)

भूनिम्बादिक्वाथ (सं० पु०) क्वाथौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—चिरायता, अतीस, लोध, मोथा, इन्द्रजौ, गुड़ची, अतिवला, धनिया और बेलकी छाल इन सब द्रव्योंका एक साथ काढ़ा बना कर मधुके साथ सेवन करनेसे मलभेद, श्वास, कास, रक्तपित्त और ज्वर दूर होता है।
(भावप्र० ज्वराधिका०)

भूनिम्बाद्यष्टादशाङ्ग (सं० पु०) कषायौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—चिरायता, देवदारु, दशमूल, कचूर, मोथा, कटकी, इन्द्रजौ, धनियेका चावल और गजपिप्पली कुल मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला। इस कषायका सेवन करनेसे तंद्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह, मोह और श्वासादि उपद्रवोंके साथ सब प्रकारका ज्वर नष्ट होता है। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधि०)

भनीप (सं० पु०) भूमिलग्नो नोपः शाकपार्थिवादिवत् समासः। भूमिकदम्ब।

भूनेता (सं० पु०) भूवो नेता नायकः। राजा।

भूप (सं० पु०) भुवं पाति रक्षतीति (आतोऽनुपसर्गे कः पा ३।२।३) इति क। राजा।

भूपञ्जर (सं० पु०) भुवः पञ्जरः। पृथिवी-देहका क्रमविभाग। पृथिवीपृष्ठका जो भाग हम लोगोंके परीक्षाधीन है, वही भूपञ्जर कहलाता है। बहुतोंने देखा है, कि कुंआ खोदनेके समय विभिन्न प्रकारको मिट्टी निकलती है। एक एक प्रकारकी मिट्टी २ या ४ हाथ अथवा इससे भी अधिक परिमाणमें मिलती है। यह मिट्टी एक ही समयमें गठित नहीं हुई है। जलाशय अथवा नदीके धीरे धीरे भर जानेसे विभिन्न प्रकारका मृत्तिकास्तर बन जाता है।

ऐसा मालूम होता है, कि इस परिदृश्यमान वसुन्धराके किसी भी अङ्गप्रत्यङ्गका परिवर्त्तन नहीं होता। किन्तु पृथिवी-पृष्ठ पर बहुत दिन बाद भूपञ्जरका रूपान्तर हो जाता है। पृथिवीकी आभ्यन्तरिक शक्तिके प्रभावसे कभी धीरे धीरे अथवा कभी बहुत जल्द भूपञ्जरका परिवर्त्तन हो जाया करता है। जो स्थान एक दिन महासमुद्रकी तरङ्गके अभ्यन्तर था, वही आज अभ्रभेदी शैलश्रेणीमें विराजमान है और जिस उत्तुङ्ग पर्वतश्रृङ्ग पर कादम्बिनीका विश्रामनिकेतन था, वहां आज समुद्रका

कल्लोल-कोलाहल बारम्बार ध्वनित होता हैं। भूतत्त्वविदोंने पृथिवीके जीवनकी पर्यालोचना कर इसे चार युगोंमें विभक्त किया है,—१ला आर्कियानयुग (Archian Era), इसके पूर्ववर्त्ती दो विभागका नाम Laurentian Period और Huroman Period। २रा पेलिओजोइक युग (Paleozoic Era) इस युगके Silurian, Devonian और carboniferous विभागमें यथाक्रम कशेरुकास्थिविहीन जीव, मत्स्य, वृक्षलता तथा शम्बुकादिका उद्भव होता है। ३रा मेसोजोइक युग (Mesozoic Era)-के Triassic, Jurassic and Cretaceous विभागमें विराटदेह सरीसृपका प्राधान्य देखा जाता है। इस समय वासुकि-सदृश प्लिसिसोरस और इकथिसोरस प्रभृति प्रकाण्डकाय अजगर भूपृष्ठ पर विचरण करते थे, किन्तु अभी वे एकबारगी निर्वंश हो गये हैं। ४था सिनोजोइक (Cenozoic Era) युगके Tertiary और quarternary विभागमें स्थूल चर्म स्तन्यपायी जीव तथा मनुष्य जातिकी उत्पत्ति हुई है।

उक्त चार युगोंमें पृथिवीके कितने वर्ष बीत चुके हैं, उसका निरूपण करना मनुष्यके लिये दुःसाध्य है। जो कुछ हो, इस अपरिमित कालमें पृथिवीपृष्ठका कितना परिवर्त्तन हुआ है, वही निरूपण करना भूविद्याका उद्देश्य है। पृथिवीकी प्राचीन अवस्थामें जो सब जीव या उद्भिद विद्यमान थे, अभी उनका अस्तित्वमात्र भी नहीं है—केवल किसी किसी पर्वतस्तरमें उनका प्रस्तरीभूत कङ्काल उनके अस्तीत्वका परिचय देता है। पार्वत्य-अञ्चलमें प्रस्तरगात्रावलम्बी विभिन्न स्तरावलीकी अवस्थाकी पर्यालोचना कर भूतत्त्वज्ञोंने अनेक विस्मयकर तत्त्वोंका निरूपण किया है। पहले ही कहा जा चुका है, कि कुंआ खोदनेके समय विभिन्न प्रकारकी मट्टी स्तरस्तरमें सज्जित है।

कोई पललमय मृत्तिकापूर्ण, कोई सुदृढ़ कृष्णवर्ण मृत्तिकामय, कोई बालुकामय और कोई शङ्ख शम्बुकादिके कङ्कालसे पूर्ण स्तर है। कई वर्ष पहले कलकत्तेके किलेके मैदानमें एक अत्यन्त गभीर कूप खोदा गया था। उसमें देखा गया, कि १०० फीट नीचे एक बहुत बड़े वृक्षके काण्ड अक्षतभावमें विद्यमान है। खिदिरपुरका "डग" खोदनेके समय बहुत नीचेसे नाना जातीय प्राणियोंका कङ्काल और वृक्षका ध्वंसावशेष निकला था। इससे स्पष्टतया प्रमाणित होता है, कि वह भूभाग पृथिवीकी आभ्यन्तरिक शक्तिके प्रभावसे भूगर्भमें जा छिपा है। वर्षाकालमें जब नदीका पङ्क मिला हुआ पानी निकलता है, तब जहां तहां पङ्क पड़ जाता है—वह भी एक प्रकारका स्तर है। क्रमशः अन्यान्य पदार्थोंके साथ मिल कर वह स्तर मोटा हो एक नवीन मृत्तिकामें परिणत होता है।

मृत्तिका ही कालक्रमसे पृथिवीकेआभ्यन्तरिक शक्ति तथा रासायनिक संयोगसे शैलस्तरमें परिणत होती है। जिस समय किसी स्थानकी मृत्तिका भूमण्डलकी भूत्क्षेपक तथा अवक्षेपक शक्तिसे उन्नत या भूगर्भमें प्रोथित हुई थी, उसी समय वहांके वासी उद्भिज्ज और जीवजन्तुगण अपनी अधिष्ठानभूत पृथिवीके साथ भूगर्भमें विलीन हो गये थे, किन्तु उनकी अस्थि प्रस्तरके साथ स्तरीभूत हो कर विद्यमान है।

पर्वतके उच्च प्रदेशमें बहुत-से शम्बूकादिके कङ्काल नजर आते हैं। इससे साफ साफ मालूम होता है, कि पर्वतगात्रस्थ उक्त स्थल एक समय जलचर जीवोंका वासस्थान था और पीछे भूगर्भकी शक्तिसे ऊपर उठ गया है।

पर्वत पर बहुत दिन पहले प्रोथित जीवदेह और उद्भिज्जादिकी प्रस्तरीभूत अस्थि मिलनेके कारण भूविद्याकी यथेष्ट उन्नति हुई है। इन सब कङ्कालपूर्ण स्तरमालाओंका पर्यवेक्षण करनेसे कौन देश कितना प्राचीन और कौन कितना समीचीन है, वह अनायास निर्णीत होता है। इन सब प्रस्तरभूत कङ्कालको भूतत्त्व (Geology)में Fossil remains कहते हैं। इन्हीं सब प्रस्तरास्थिकी परीक्षा द्वारा पृथिवीका अतीत इतिहास मनुष्योंका अधिगम्य हुआ है। जब भूपञ्जरके मध्य एक प्रकारके स्तरीभूत शैलखण्ड पर एक जातिका कङ्काल देखते हैं, तब ऐसा अनुमान किया जाता है, कि उक्त सभी प्रस्तर एक समय उत्पन्न हुआ है और एक समय एक जातीय जीव तथा उद्भिज्ज उक्त शैलस्तर पर विद्यमान थे। वह भूपञ्जर-मृत्तिका जब शैलस्तरमें परिणत हुई थी, तब उस परके रहनेवाले

जीवगण और उद्भिज्जादि भी साथ ही साथ प्रस्तरीभूत हो गए हैं।

पाश्चात्य भूतत्त्वज्ञोंने पृथिवीके विभिन्न देशोंकी शैलस्तरावलीकी पर्यालोचना कर भूपञ्जरका जो गठनकाल निरूपण किया है, वही पर्वत कहलाता है।

अपेक्षाकृत प्राचीनतर स्तरमें अतिकाय जीव तथा उद्भिज्जका भग्नावशेष देखनेमें आता है। उसमें पौराणिक सत्ययुगका चित्र वैज्ञानिक सत्यताको बहुत कुछ प्रमाणित करता हैं। हम लोग उच्च पर्वतके शृङ्गसे सुगभीर खनिमध्यस्थ १ मील तक स्थानका पर्यवेक्षण कर सकते हैं। इसी परीक्षाधीन स्तरसमष्टिको भूपञ्जर कहते हैं। विस्तृत विवरण पर्वत, प्रस्तर, पृथिवी और समुद्र शब्द देखो।

भूपति (सं० पु०) भुवः पतिः। १ राजा, नृप। राजाको न्यायपरायण हो कर अपनी सन्तानकी तरह प्रजापालन करना चाहिये। राजन् और राजधर्म शब्द देखो। २ वटुक भैरव। ३ हनुमतके मतसे एक राग जो मेघरागका पुत्र माना जाता है।

भूपति—गणितामृतके प्रणेता।

भूपति—एक भाषा कवि। ये अमेठीके महाराज थे। इनका जन्म सं० १६०३ में हुआ था। इनका असली नाम था गुरुदत्तसिंह बन्धल। इनके यहां कवियोंका खूब मान था। कवीन्द्र आदि कवि इनकी ही सभामें रहते थे।

भूपतिपाल—पालवंशीय एक राजा।

भूपतिराय—बङ्गालके नवाब मुर्शिदकुली खाँका सहकारी। यह इलाहाबादसे मुर्शिदकुलीके साथ आया था। इसकी मृत्युके बाद पुत्र गुलाबराय राजकार्यसे बिलकुल अनभिज्ञ रहनेके कारण दर्पनारायणने कार्यभार ग्रहण किया।

भूपद (सं० पु०) भुवि पदानि मूलान्यस्य। वृक्ष, पेड़।

भूपदी (सं० स्त्री०) भूपद गौरादित्वात् ङीष्। मल्लिका, चमेली।

भूपनारायण—एक कवि। इनका घर कानपुर जिलांतर्गत काकूपुर गांवमें था। ये जातिके भाट थे। इनका जन्म सं० १८५६ ई०में हुआ था। इन्होंने शिवराजपुरके क्षत्रिय राजाओंकी वंशावली बनाई।

भूपपुत्र (सं० पु०) राजपुत्र।

भूपरा (हिं० पु०) सूर्य।

भूपरिधि (सं० पु०) भुवः परिधिः। पृथिवीकी परिधि, व्यास।

भूपलाश (सं० पु०) भुवि पलाशमस्य। वृक्षभेद।

भूपवित्र (सं० क्ली०) गोमय, गोबर।

भूपसमुद्र—मन्द्राजप्रदेशके बेल्लरी जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। पहले यह ग्राम क्रियाशक्तिपुर नामसे मशहूर था। यहां १४८० शककी शिलालिपियुक्त एक आञ्जनेय-मन्दिर विद्यमान है।

भूपसिंह—एक राजा। दानरत्नाकरके प्रणेता रामभट्टके प्रतिपालक।

भूपाटली (सं० स्त्री० भुवि जाता पाटलीव। वृक्षविशेष। पर्याय—भूकुम्भी, भूताली, रक्तपुष्पिका। गुण—कटु और उष्ण।

भूपाल (सं० पु०) भुवं पालयतीति पालि रक्षणे (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इत्यण्। १ राजा। २ काश्मीरराज सोमपालके पुत्र। ३ भोजराजका नामान्तर।

भूपाल—मध्यभारतके मालवके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध मुसलमानी राज्य। यह अक्षां० २०° २६´ से २३° ५४´ उ० तथा देशा० ७६° २८´ से ७८° ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६६०२ वर्गमील है। इसके उत्तर-पश्चिममें सिन्धिया राज्य, पूर्वमें सौगर जिलेका मध्यप्रदेश, दक्षिणमें नर्मदा नदी और होलकर राज्य है। यहांकी नदियोंमें बेतवा और पार्वती नदी प्रधान हैं।

सम्राट् औरङ्गजेबके अफगान सेनापति दोस्त महम्मद इस राजवंशकी प्रतिष्ठा कर गये हैं। इस व्यक्तिने सम्राट्की मृत्युके बाद विद्रोही हो कर निकटवर्त्ती स्थान पर दखल जमाया और अपनेको स्वाधीन राजा बतला कर तमाम घोषित कर दिया।

यह राजवंश बहुत दिनोंसे अंगरेजोंका आनुगत्य है और उनके साथ सद्भाव करता आ रहा है। १७७८ ई०में सेनापति गोडर्डके साथ मित्रता करके ये अंगरेजोंके प्रेमभाजन हुए थे। १८०६ ई०में भूपालराजने सिन्दे-राज और रघुजी भोंसलेके आक्रमणसे आत्मरक्षाके लिए अंगरेजोंसे सहायता मांगी थी। अंगरेज सेनापति उस

समय महाराष्ट्रशक्तिका ह्रास करनेकी कोशिशमें तो थे, पर इस समय अंगरेजोंका बलक्षय करना उनकी बिलकुल इच्छा न थी। इस कारण भूपालराजको सहायता दी गई। जब अंगरेजोंसे सहायता नहीं मिली, तब भूपालराजने पिण्डारियोंसे मेल कर लिया। उस सेना-दलको ले कर उन्होंने रघुजी भोंसले और सिन्देराजके सेनादलको विमुख करनेकी चेष्टा की। दोनों दलकी बेशुमार खूनखराबी हुई। आखिर अंगरेजराजने रणक्षेत्रमें उतर कर दोनोंको निरस्त किया। १८१७ ई०में पिण्डारी-युद्धमें अंगरेजोंने भूपालराजसे सहायता पाई थी। पिण्डारी-दस्युदल भूपालके नवाबका दाहिना हाथ था। इन्हींके अदम्य वीर्यबल पर वे सिन्देराज और नागपुर-पतिके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेमें समर्थ हुए थे। स्वयं दस्युके अत्याचारदमनमें अपनेको असमर्थ देख कर उन्होंने अंगरेजोंसे मेल कर लिया। पिण्डारी देखो।

१८१८ ई०की सन्धिके अनुसार नवाब अंगरेजोंको ६ सौ पदातिक सेनासे सहायता देनेके लिए राजी हुए और युद्धव्ययके लिये अंगरेजोंसे उन्हें मालवके अंतर्गत ५ जिले मिले।

इसके कुछ समय बाद ही एक बालककी पिस्तौलसे नवाबकी मृत्यु हुई। मृत-नवाबको कन्या सिकेन्दर बेगमके साथ उनके भतीजेका विवाह दे कर उन्हींको भूपालके सिंहासन पर बिठाया गया। किंतु उन्होंने राजपद और राजकन्यासे नफरत करके अपने भाई जहांगीर महम्मदके लिये सिंहासन छोड़ दिया।

विधवा नवाबपत्नीने राजकार्यका कुल भार अपने हाथ लिया। राज्य भरमें अशान्ति फैल गई। अनेक तर्क वितर्कके बाद १८३७ ई०में अङ्गरेज बहादुरने बीचमें पड़कर जहांगीर महम्मदको सिंहासन पर बिठाया। १८४४ ई० तक राज्यशासन करके उनका देहान्त हुआ। पीछे उनकी पत्नी सिकेन्दर बेगमने राजतख्त पर बैठ कर १८६८ ई० (मृत्युकाल) तक प्रजापालन किया था। सिपाही-विद्रोहके समय अङ्गरेजोंका पक्ष ले कर अपनी सन्तानकी तरह प्रजापालन करके बेगम साहबा अच्छा नाम कमा गई हैं।

माताकी मृत्युके बाद शाहजहान बेगम सिंहासन पर बैठ कर वंशमर्यादाको अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुई थीं। १८६७ ई०में प्रथम स्वामीसे उनका वियोग हुआ। इस समय सुलतान जहान बेगम नामकी उनके एक कन्या थी। १८१७ ई०में जब तक उनकी दूसरी सादी न हुई तब तक वे पर्देसे बाहर आ कर ही राज-कार्य चलाने लगीं। बादमें मौलवी महम्मद सादिक होसेनसे विवाह हो जाने पर वे फिर पर्दानशीन हो गईं। किंतु अन्तःपुरमें रह कर स्वयं सभी काम करती थीं। उनके स्वामी नवाबकी उपाधिसे भूषित होने पर भी उन्हें राज्यसंक्रांतकी कोई क्षमता न थी। १८७२ ई०में बेगमकी राज्यपरिचालन-शक्ति और राजभक्तिके परितोषिक-स्वरूप वृटिशसरकारने उन्हें G. C. S. I.-की उपाधि दी। १८७४ ई०में उनके प्रथम स्वामीसे उत्पन्न कन्या सुलतान जहान बेगमका शुभविवाह हुआ। उनके स्वामी अहमद अली खाँ उन लोगोंकी तरह मीरजाई-खेल शाखाभुक्त अफगान थे। इस रमणीके गर्भसे दो पुत्र और एक कन्याने जन्म लिया। शाहजहान् बेगमको राजकार्यमें विलक्षण पारदर्शिता थी। १८८० ई०में होसङ्गाबादसे भूपाल तक जो रेललाइन खुली वह उन्हींके यत्नसे। उसका कुल खर्च उन्होंने ही अपने कोषसे दिया था। १८८१ ई०में नमक पर जो शुल्क लगता था उसे बन्द कर दिया। १९०१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनकी एकमात्र कन्या सुलतान जहान बेगम उत्तराधिकारिणी हुई। ये ही वर्त्तमान शासक हैं और नवाब मुहम्मद नासिर उल्ला खाँकी सहायतासे राजकार्य चलाती हैं। इनके दो पुत्र हैं, बड़ेका नाम है, साहिबजादा उबैद उल्ला खाँ और छोटेका हमीदउल्लाखाँ। १९०४ ई०में बेगमको जी० सी० आई० ई०-की उपाधि मिली है। इन्हें वृटिशसरकारसे १९ सलामी तोपें मिलती हैं।

इस राज्यमें ५ शहर और २०७३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या सात लाखके करीब है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या ही ज्यादा है। यहां पच्छिमी हिन्दी, मालवी, और उर्दू भाषा प्रचलित है। खरीफ अनाजमें ज्वार, मकई, उड़द मूंग, कोदो, और बाजरा तथा रब्बीमें गेहूं, चना, जौ, पोस्तबीज, अलसी और ईख प्रधान है।

राजकार्यकी सुविधाके लिये यह राज्य पांच जिलोंमें

विभक्त है। किसीको प्राणदण्ड देनेमें वृटिश-सरकारकी अनुमति नहीं लेनी पड़ती। विचारकार्यमें अंगरेजोंका कुछ भी अधिकार नहीं है। विद्याशिक्षाकी ओर बेगम साहबाका विशेष ध्यान रहता है। विद्याशिक्षाके प्रचारके लिये शाहजहान् बेगमने अपने राज्यमें घोषणा कर दी थी, कि जिनके पास किसी प्रकारकी सार्टिफिकेट नहीं है, वे राजकार्यमें कदापि भर्त्ती नहीं किये जायंगे। फलतः बहुत-से कृषिगण अपने बाल बच्चेको कामोंसे छुड़ा कर स्कूलमें भर्त्ती कराने लगे। क्रमशः बहुतसे स्कूल भी खोले गये। पहले स्कूलोंकी संख्या राज्य भरमें सिर्फ ६३ थी, अभी तीन सौ हो गई है। इनमेंसे "सुलेमान हाई स्कूल" जो भूपाल शहरमें है, प्रधान है। बालिकाओंको सिलाई तथा नक्काशी काममें शिक्षा देनेके लिये भी एक स्वतन्त्र स्कूल है। उक्त सभी स्कूलोंमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। स्कूलके अलावा १८५४ ई०में 'सिकन्दर बेगम' अस्पताल खोला गया है। १८९१ ई०को सेहोरमें एक कुष्ठाश्रम भी स्थापित हुआ है।

२ मध्यभारतके उक्त सामंतराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २३° १६´ उ० तथा देशा० ७७° २५´ समुद्रपृष्ठसे १६५२ फुट ऊँचेमें अवस्थित है। नगर चारों ओर ईंटोंकी दीवारसे घिरा है। उसके मध्यभागमें एक दुर्ग है। नगरके दक्षिण पश्चिमांशमें एक गण्डशैलके ऊपर फतेगढ़ दुर्ग और राजप्रासाद अवस्थित है। इसके दक्षिण पश्चिममें एक सुदीर्घ दीर्घिका है। नगरवासिगण उसका जल पीते हैं। राजा उदयादित्य परमारकी रानीने ११८४ ई०में जो सभामण्डल नामक विशाल मंदिर बनवाया था, अभी उस पर खुदसिया बेगमकी जुमा मसजिद खड़ी है। १८१२-१३ ई०में नागपुर और ग्वालियरकी मिलित शक्तिने उस नगर पर चढ़ाई कर उसके प्राचीरको तहस नहस कर डाला। पीछे १९वीं शताब्दीमें नजर महम्मदने उसका संस्कार कराया। सिकन्दरबेगमने अपने शासनकालमें नगरकी अच्छी उन्नति की, सड़क बनाई गई और उसके किनारेमें तमाम रोशनीका प्रबन्ध किया गया। शाहजहान् बेगमने बहुत-सी अट्टालिकाओंका निर्माण कर नगरकी शोभाको बढ़ाया। उन सब अट्टालिकाओंमें ताजमहल, बाड़ा महल, ताजउल-मसजिद, लाल कोठी, प्रिंस आव वेल्स नामक अस्पताल, लेडी लैन्सडौनी नामक जनाना अस्पताल और नया कारागार उल्लेखयोग्य है। १८८५ ई०में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे, और १८९५ ई०में भूपाल-उज्जैन-शाखा-लाइनके खुल जानेसे नगर उन्नत दशामें है और जनसंख्यामें भी वृद्धि हुई है। अभी जनसंख्या ८० हजारके करीब है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ४३; मुसलमानकी ५४ और शेषमें जैन लोग हैं।

१९०३ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें चार स्कूल हैं। जिनमेंसे एकमें सिर्फ छोटके सरदारके लड़के पढ़ते हैं। प्रिंस येल्स और लेडी लैन्सडौन नामक अस्पतालमें डाक्टरी और धात्रीविद्या भी पढ़ाई जाती है।

भूपालएजेन्सी—भारतके बड़े लाटके मध्य भारतीय एजेन्टके भूर्त्तृत्वाधीनमें परिचालित एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २२° १६´ से २४° २१´ उ० तथा देशा० ७६° १३´ से ७८° ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके दक्षिण और पूर्वमें मध्यप्रदेश, उत्तरमें राजपूताना एजेन्सी और ग्वालियर राज्य तथा पश्चिममें कालीसिन्द है। भूपरिमाण ११६५३ वर्गमील और जनसंख्या १० लाखसे ऊपर है। इसके प्रधान शहर ये सब हैं—भूपाल, सिहोर, नरसिंहगढ़, सारङ्गपुर, राजगढ़, खिलचीपुर और बेरासिया।

भूपालगढ़—सतारा जिलेके थानापुर उपविभागस्थ एक गिरिदुर्ग। स्थानीय प्रवाद है, कि भूपाल नामक एक राजाने इस दुर्गको बनवाया। महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीने अपने राज्यकी पूर्तीसीमारक्षार्थ यहां पर सैन्यस्थापन किया था। मुगलसेनापति दिलावर खांने शम्भूजीको पिताके विरुद्ध खड़े होनेके लिये उभाड़ा। मुगलसेनासे सहायता पा कर शम्भूजीने विद्रोही हो कर इस दुर्ग पर अधिकार किया था।

भूपालपत्तन—मध्यभारतके चांद जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ७०० वर्गमील है। यहांके सरदार गोंड़जातिके हैं।

भूपाल साही (सं० पु०) गढ़ादेशाधिपति एक राजा।

भूपालसिंह—नेपालके एक अधिपति, शक्तिसिंहके पुत्र।

भूपाली (सं० स्त्री०) एक रागिनी। इसके विषयमें आचार्य्योंमें भिन्न भिन्न मत देखा जाता है। कुछ तो इसे हिंडोलरागकी रागिनी, कुछ मालकोशकी पुत्रवधू, कुछ संकर रागिनी मानते हैं। कुछ लोग इसे सम्पूर्ण जातिकी, कुछ ओड़व जातिकी मानते हैं। उनका मत है, कि यह कल्याण, गोंड़ तथा विलावलके मेलसे बनी है। कुछ लोग इसे हास्यरसकी रागिनी कहते हैं. कुछ लोग इसे धार्मिक उत्सवों पर गानेके लिये उपयुक्त बताते हैं। इसके गानेका समय रातको ६ दण्डसे १० दण्ड तक कहा गया है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—सा, ग, म, ध, नि, सा। अथवा—रि, ध, सा, रि, ग, म, प।

भूपालेन्द्रमल्ल—नेपालके एक राजा।

भूपुत्र (सं० पु०) भुवः पुत्रः। १ मङ्गल। २ नरकासुर। (स्त्री०) ३ जानकी, सीता।

भूपुर (सं० क्ली०) भूरिव पुरम्। यन्त्रवहिःस्थित रेखा-सन्निवेशयुत भूम्याकार स्थान।

भूपेष्ट (सं० पु०) भूपानामिष्टः। १ राजादनीवृक्ष, खिरनी-का पेड़। (त्रि०) २ राजाओंके अभिलषित।

भूप्रकम्प (सं० पु०) भुवः प्रकम्पः। भूमिकम्प।

भूफल (सं० पु०) मुद्गभेद, हरा मूंग।

भूबदरी (सं० स्त्री०) भुवि ख्याता वदरी। क्षुद्रवदरीविशेष, एक प्रकारका छोटा बेर।

भूबल (सं० क्ली०) नरपतिजय-चर्य्योक्त जयसाधनोपाय बलभेद। राजाको चाहिये, कि वे स्वरोदयचक्रमें भूबल-का शुभाशुभ स्थिर करके युद्धयात्रा करें। स्वरोदय देखो।

भूबिम्ब (सं० क्ली०) भूच्छाय।

भूभट्ट (सं० पु०) अङ्गदनाटकके प्रणेता।

भूभर्तृ (सं० पु०) भुवो भर्त्ता। पृथिवीपति।

भूभल (हिं० स्त्री०) गर्म राख या धूल, गर्म रेत।

भूभाग (सं० पु०) भुवो भागः। भूमिभाग।

भूभुज (सं० पु०) भुवं भुनक्ति पालयतीति भुज्-क्विप्। राजा।

भूभृत् (सं० पु०) भुवं बिभर्त्तीति भृ-क्विप्, (ह्रस्वस्य पितिकृति तुक्। पा ६।१।७१) इति तुगागमः। १ राजा। २ पर्वत।

भूम (सं० क्ली०) भूमि, पृथिवी।

भूमक-तृतीया (सं० स्त्री०) व्रतविशेष। (भविष्यपुराण)

भूमण्डल (सं० क्ली०) भुवो मण्डलम्। मण्डलाकार भूमिभाग।

भूमन् (सं० पु०) वहोर्भावः बहु-इमनिच्, वहोर्भू। १ बहुत्व २ अतिशय बहु। ३ विराट् पुरुष।

भूमय (सं० त्रि०) भू-मयट्। मृदात्मक। स्त्रियां ङीष्। छाया, सूर्यपत्नी।

भूमवक्रेश्वर—बङ्गालके वीरभूम जिलास्थित वक्रेश्वरक्षेत्र और तीर्थ। वक्रेश्वर देखो।

भूमानन्द सरस्वती—एक विख्यात योगी। ये ब्रह्मविद्या भरणप्रणेता अद्वैतानन्दके गुरु थे।

भूमि (सं० स्त्री०) भवन्ति भूतान्यस्यामिति भू-(भुवः कित्। उण् ४।४५) इति मि, स च कित्। पृथिवी। पर्याय—भू, भूमि, पृथिवी, पृथ्वी, मेदिनी, वसुधा, अवनी, क्षिति, उर्वी, मही, क्षौणी, क्ष्मा, धरा, कु, वसुन्धरा। भूमिके गुण—

"भूमेः स्थैर्यं गुरुत्वञ्च काठिन्यं प्रसवार्थता।
गन्धो गुरुत्वं शक्तिश्च सङ्घातः स्थापना धृतिः॥"

(भारतमोक्षध०)

स्थिरता—अचाञ्चल्य, गुरुत्व—पतनप्रतियोगीगुण, काठिन्य, प्रसवार्थता—धान्यादिकी उत्पत्तिक्षमता, गन्ध-शक्ति—गन्धग्रहणसामर्थ्य, संघात—श्लिष्टावयवत्व, स्थापना तथा मनुष्याद्याश्रय, धृति (पाञ्चभौतिक मतसे धृत्यंश) ये सब भूमिके गुण हैं।

सब प्रकारके दानकी अपेक्षा भूमिदान श्रेष्ठ है। जो भूमिदान या भूमि-प्रतिग्रह करते हैं वे दोनों ही स्वर्गलोक को जाते हैं *।

---

* "सर्वेषामेव दानानां भूमिदानमनुत्तमम्।
यो ददाति महीं राजन! विप्रायाकिञ्चनाय वै॥
अङ्गुष्ठमात्रमथवा स भवेत् पृथिवीपतिः।
न भूमिदानसदृशं पवित्रमिह विद्यते।
भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति।
उभौ तौ स्वर्गमापन्नौ नियतं स्वर्गगामिनौ॥

जो अंगुष्ठमात्र भूमिदान करते हैं, वे पृथिवीपति होते हैं। इस संसारमें भूमिदानके समान और दूसरा कोई दान ही नहीं है। अतः थोड़ा या बहुत जो कुछ भी क्यों न हो, भूमिदान स्वर्ग और मोक्षप्रदायक है; इससे सभी अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

भूमिदानमें जितना पुण्य है, भूमिहरणमें उतना ही पाप है। जो भूमिहरण करते, वे नरकमें विष्ठा-कृमि हो कर पितरोंके साथ वास करते हैं। जो दत्त-भूमिकी रक्षा करते हैं, उन्हें दातासे भी अधिक पुण्य होता है। आध अंगुलके बराबर भूमिहरण करनेसे उसका तब तक नरकमें वास होता है, जब तक चन्द्र और सूर्य रहते हैं। अतएव भूमिहरण कदापि नहीं करना चाहिये।*

भूमिका नाम प्रियदत्ता तथा इसके अधिष्ठाता देव विष्णु हैं। भूमिदान या भूमिपूजामें "प्रियदत्तायै भुवे नमः" इस प्रकार प्रियदत्ताका नामोल्लेख कर पूजा करनी चाहिए। भूमिदाता और गृहीता दोनों ही प्रियदत्ता-का नामोच्चारण कर दान वा ग्रहण करे।

"नामास्याः प्रियदत्तेति गुह्यं देव्याः सनातनम्।
दाने वाप्यथ वादाने नामास्याः परमं प्रियम्॥"
(तिथितत्त्व)

आह्निकतत्त्वमें लिखा है,—प्रातःकाल बिछावनसे उठ कर पृथिवी पर पैर रखनेके समय पहले 'प्रियदत्तायै भुवे नमः' कह कर भूमिको प्रणाम करना चाहिए। बाद दहिना पैर रखना उचित है। भूमि दो प्रकारकी है,—अशुद्धा और शुद्धा। पुनः अशुद्धा भूमि भी तीन प्रकार की है,—अमेध्या, मलिना और दुष्टा। अमेध्या भूमिका लक्षण,—

"प्रसूते गर्भिणी यत्र म्रियते यत्र मानुषः।
चाण्डालैरुषितं यत्र यत्र विन्यस्यते शवः॥
विन्मूत्रोपहतं यत्तु कुणपो यत्र दृश्यते।
एवं कश्मलभूयिष्ठा भूरमेध्येति लक्ष्यते॥"
(तिथितत्त्व)

जिस भूमि पर गर्भिणी सन्तान प्रसव करती है जहां मनुष्यकी मृत्यु होती है अथवा जहां मृतक और विष्ठा-मूत्रादि फेंके जाते हैं, वहा भूमि अमेध्या है। ऐसी भूमि पर रह कर किसी शुभ कार्यका अनुष्ठान नहीं करना चाहिए। दुष्टा भूमि,—

"कृमिकीटपदक्षेपै दूषिता यत्र मेदिनी।
द्रप्सापकर्षणैः क्षिप्तैर्वान्तैश्च दुष्टतां व्रजेत्॥"
"द्रप्सा घनीभूतश्लेष्मा" (तिथितत्त्व)

जहां पर कृमि कीड़ाका वास हो और श्लेष्मादि मल जम जाय, वही दुष्टभूमि कहलाती है। मलिना भूमि,—

"नखदन्ततनूजत्वक्तुषपांशुरजोमलैः।
भस्मपङ्कतृणैर्वापि प्रच्छन्ना मलिना भवेत्॥"
(तिथितत्त्व)

नख दन्त आदि शरीरकी मैल, तुष, धूलि, भस्म, पङ्क और तृणादि द्वारा आवृत भूमिको मलिना भूमि कहते हैं।

उक्त तीनों प्रकारको अशुद्ध भूमि ही त्याज्य है। ऐसी भूमिका विना शोधन किये उस पर कोई सुभकर्म करना उचित नहीं। उक्त अशुद्ध-भूमि निम्नलिखित प्रकारसे शोधन की जाती है।

"दहनं खननं भूमेरुपलेपनवापने।
पर्यन्यवर्षणाच्चैव शौचं पञ्चविधं स्मृतम्॥"
'वापनं मृदन्तरेण पूरणं' (तिथितत्त्व)

दहन, खनन, उपलेपन, वृष्टिवर्षण, अथवा अन्य मृत्तिका द्वारा पूरण इन्हीं पांच उपायोंसे भूमि विशुद्ध होती है। अन्य प्रकारसे,—

यत् किञ्चिद्भूमिदानन्तु सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
महीपते नरः कोऽपि भूमिदो भूमिमाप्नुयात्॥
भूमिदानसमं दानं नास्त्यत्र पृथिवीतले।
तस्मादल्पमलञ्चैव भुक्तिमुक्तिसुखप्रदम्॥
(पाद्मोत्तरखं० ४९ अ०)

* "स्वदत्तादधिकं पुण्यं परदत्तानुपालनम्।
स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम्।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते॥
गामेकं स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्धमंगुलम्।
हरन्नरकमाप्नोति यावदाहूतसंप्लवम्॥" (महाभारत)

"सम्मार्जनेनाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ।
गवाञ्च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चधा ॥"

'सम्मार्जनं तृणाद्यपनयनं, अञ्जनं गोमयेनोपलेपनं, सेको जलेन प्रक्षालनं, उल्लिखनं तक्षणं, परिवासः गवापस्थापनं'

(शुद्धिनिर्णय)

अशुद्ध भूमिसे तृणादिका अपनयन, उसमें गोमय-लेपन, जल द्वारा प्रक्षालन, तक्षण तथा गाभिस्थापन इन पांच प्रकारके कर्म द्वारा भूमि विशुद्ध होती है।

पृथ्वी पर अक्षर नहीं लिखना चाहिए। यदि कोई मोहप्रयुक्त लेपन या वृथा रेखादि खींचे, तो वह जन्म जन्मान्तर तक मूर्ख होता है।

"न भूमौ विलिखेद्वर्णं मन्त्रं न पुस्तके लिखेत् ।
भूमौ तिष्ठति देवेशि जन्मजन्मसु मूर्खता ।
तदा भवति देवेशि ! तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ॥"

(योगिनीतन्त्र तृतीयभा० ७ पः)

ज्योतिषके मतसे भूमिके शुभाशुभका विषय मङ्गल ग्रह द्वारा स्थिर करना होता है।

हम लोगोंके वास्तुशास्त्रमें भूमिके सम्बन्धमें अनेक कथाएं मिलती हैं। विश्वकर्मा प्रकाशमें लिखा है,—

"श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा वर्णानुपूर्वशः ॥२४
सुगन्धा ब्राह्मणी भूमी रक्तगन्धा तु क्षत्रियी ।
मधुगन्धा भवेद्वैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिणी ॥२५
मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया मता ।
अम्ला वैश्या भवेद्भूमिस्तिक्ता शूद्रा प्रकीर्त्तिता ॥२६
गम्भीरा ब्राह्मणी भूमिर्नृपाणान्तुङ्गमाश्रिता ॥३२
वैश्यानां समभूमिश्च शूद्राणां विकटा स्मृता ।
सर्वेषां चैव वर्णानां समभूमिः शुभावहा ॥३३
शुक्लवर्णा च सर्वेषां शुभा भूमिरुदाहृता ।
कुशकाशयुता ब्राह्मी दूर्वा नृपति वर्गगा ॥३४
फलपुष्पलता वैश्या शूद्राणां तृणसंयुता ।
नदीघाताश्रितां तद्वन्महापाषाणसंयुताम् ॥३५
पर्वताग्रेषु संलग्नां गर्त्तविवरसंयुताम् ।
वक्रां शूर्पनिभां तद्वल्लकुटाभ्यां कुरूपिणीम् ॥३६
मुशलाभां महाघोरां वायुना वापि पीड़िताम् ।
वल्लभल्लकसंयुक्तां मध्ये विकटरूपिणीम ॥३७
श्वश्रृगालनिभां रुक्षां दन्तकैः परिवाहिताम् ।
चैत्यश्मशान वल्मीकधूर्त्तकालयवर्जितां ॥३८
चतुष्पथमहावृक्षदेवमन्त्रिनिवासतः ।
दूराश्रितां श्वभ्रगर्त्तयुक्ताञ्च व विवर्जयेत् ॥३९ (१ अ०)

उजली, लाल, पीली और काली यथाक्रम यही चार प्रकारकी भूमि होती है। सद्गन्धयुक्त मृत्तिका ब्राह्मण, शोणितगन्धयुक्त जमीन क्षत्रिय, मधुगन्धयुक्त वैश्य और मद-सी गन्धयुक्त भूमि शूद्र है। इसी प्रकार ब्रह्मभूमि मधुर, क्षत्रभूमि कषाय, वैश्यभूमि अम्ल और शूद्रभूमि तिक्त होती है। फिर भी, ब्रह्मभूमि गम्भीर, क्षत्र भूमि तुङ्ग, वैश्यभूमि समतल और शूद्रभूमि विकट या असमतल है। सभी वर्णोंमेंसे समभूमि तथा शुक्लवर्णकी भूमि ही शुभदायक होती है। जिस जमीनमें कुशकाश जन्मता है, वह ब्राह्मी अर्थात् ब्राह्मणके लिये उपयुक्त है, इसी प्रकार दूर्वायुक्त भूमि क्षत्रियोंके लिये, फलपुष्पलतायुक्त भूमि वैश्योंके लिये तथा तृणयुक्त भूमि शूद्रोंके लिये उपयुक्त है। जिस जमीन हो कर नदीकी धारा बहती है अथवा जो जमीन पथरीली, किसी पहाड़के समीप, गर्त्त और विवरयुक्त, वक्र, वल्मीकयुक्त, देखनेमें खराब, मूषलाकार, वायुपीड़ित, वल्ल और भल्लकयुक्त, कुत्ते और सियारकी वासयुक्त, रुक्ष तथा दन्तकाष्ठसे आच्छादित, चैत्य, जहां श्मशान, वल्मीक और धूर्तोंका वास हो, जहां बड़का पेड़, देव और मन्त्रकारोका वास तथा जो छिद्रगर्भयुक्त हो उस भूमिका परित्याग करना चाहिए।

सुश्रुतमें भूमिपरीक्षाके विषयमें इस प्रकार लिखा है— जो भूमि शर्करा, प्रस्तर, वल्मीक, श्मशान, देवायतन और वालुका प्रभृति द्वारा दूषित अथवा जो छिद्रविशिष्ट, लोणा या भंगुर नहीं हो, किन्तु स्निग्ध, वृक्षलतादिकी अंकुरविशिष्ट, कोमल, स्थिर, समतल, कृष्ण, गौर या लोहित वर्ण हो, ऐसी ही भूमिसे ओषध संग्रह करनी चाहिए। जो भूमि स्निग्ध, शीतल, जलके समीप, शस्य और तृणविशिष्ट, कोमल वृक्ष पूर्ण तथा श्वेतवर्णकी होती है, उसमें जलीयगुण अधिक परिमाणमें रहता है। जो भूमि विविध वर्ण और लघु प्रस्तर पाण्डुवर्ण तथा अल्पवृक्षांकुरविशिष्ट है उसमें अग्निगुण अधिक रहता है। रुक्ष, भस्मराशिका वर्णविशिष्ट, अल्परसयुक्त वृक्ष द्वारा

पूर्ण भूमिमें वायुगुण अधिक पाया जाता है। जो भूमि मृदु, समतल और छिद्रविशिष्ट, श्यामवर्ण, स्वादहीन जलयुक्त, सर्वत्र असार वृक्ष तथा महापर्वतपूर्ण है, उस भूमिमें आकाशगुण अधिक परिमाणमें रहता है।

यह सब विषय पार्थिव और जलीय प्रभृति गुणविशिष्ट भूमिके सम्बन्धमें कहा गया। इनमेंसे जिस भूमिमें पार्थिव तथा जलीय ये दोनों गुण अधिक पाये जाते हैं, उससे विरेचन द्रव्य ग्रहण करना चाहिए। जिस भूमिमें अग्नि, आकाश तथा वायु ये तीनों गुण अधिक परिमाणमें रहते हैं, उससे वमन तथा विरेचन दोनों गुणविशिष्ट द्रव्य और जिस भूमिमें आकाशगुणकी अधिकता रहती है, उससे संयमनीय द्रव्य ग्रहण करना विधेय है।

(सुश्रुत सूत्रस्था० ३७ अ०)

२ योगियोंकी एक अवस्था।

"निरुद्धे चेतसि पुरा सविकल्पसमाधिना।
निर्विकल्पसमाधिस्तु भवेदत्र त्रिभूमिकः॥
व्युत्तिष्ठते स्वतश्चाद्ये द्वितीये परबोधितः।
अन्ते व्युत्तिष्ठते नैव सदा भवति तन्मयः॥"

(गीतागूढ़ार्थदीपिकामें मधुसूदनसरस्वती)

पहले सविकल्प समाधि द्वारा चित्त निरुद्ध होनेसे त्रिभूमिक निर्विकल्प समाधि होती है। पहले व्युत्थान, बाद परिबोधित और तब सर्वदा तन्मयता, यही योगियोंकी त्रिभूमिक अवस्था है। चित्तके क्षिप्तादि राजसिक परिणामका नाम व्युत्थान, और केवल विशुद्ध सत्त्व परिणामका नाम परिबोधित है। इन दोनोंके अभिभूत होनेसे तन्मयता रूप निर्विकल्प समाधि होती है। पातञ्जलदर्शनमें लिखा है,—"तस्य भूमिषु विनियोगः।" संयम सीखनेके समय भूमिक्रमसे अर्थात् सीढ़ी पर चढ़नेकी भांति पूर्व पूर्व अवस्था जीत कर पीछे उत्तरोत्तर सूक्ष्म अवस्था या सूक्ष्म सूक्ष्म आलम्बनका प्रयोग करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह, कि संयमाभ्यासके सम्बन्धमें उत्तम उपदेश यों है,—योगी पहले स्थूल स्थूल विषयका संयम-प्रयोग करनेको सीखें। जिस प्रकार किसी कोठे अटारी पर चढ़नेके पहले नीचेकी सीढ़ियोंको ही एक एक करके पार कर ऊपर जाना होता है, उसी प्रकार स्थूल आलम्बन जीत कर सूक्ष्म आलम्बनमें मनःसमाधि करनी पड़ती है। स्थूल आलम्बनका परित्याग कर एकाएक सूक्ष्म ग्रहण करनेसे संयम अभ्यस्त होना तो दूर रहे, उसकी धारणा भी नहीं होती। सुतरां उसे भूमिक्रमानुसार ही सीखना चाहिए, इसीलिए सूत्रकारने "तस्य भूमिषु विनियोगः।" ऐसा सूत्र निर्देश किया है। सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार तथा निर्विचार यही चार संयमशिक्षाकी पूर्वापर भूमि है। पहले सवितर्क भूमि जीत कर बाद निर्वितर्क भूमि और इसी प्रकार क्रमशः चारों भूमि अतिक्रम कर सकने पर निर्विकल्प समाधि लाभ होती है।

क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध तथा एकाग्र इन पांच प्रकारकी चित्तकी अवस्थाको भी पञ्चभूमि कहते हैं।

३ स्थानमात्र, जगह। ४ जिह्वा, जीभ। ५ वासस्थान। ६ क्षेत्र। ७ आधार। यथा—विश्वासभूमि। ८ रोगियोंकी एक अवस्था।

भूमिकदम्ब (सं० पु०) भूमिजातः कदम्बः शाकपार्थिवादित्वात् समासः। कदम्बविशेष। पर्याय—भूनीप, भूमिज, भृङ्गवल्लभ, लघुपुष्प, वृत्तपुष्प, विषघ्न, व्रणहारक। गुण—कटु, उष्ण, वृष्य, दोषहर, हिम, कषायतिक्त, पित्तवर्द्धक और वीर्यवृद्धिकर।

भूमिकदम्बिका (सं० स्त्री०) मुण्डारीवृक्ष। (राजनि०)

भूमिकन्दली (सं० स्त्री०) लताभेद।

भूमिकम्प (सं० पु०) भूमेः कम्पः ६-तत्। क्षितिचलन, धरतीका डोलना, भूडोल। वृहत्संहितामें भूमिकम्पके लक्षणादि इस प्रकार लिखे हैं,—'भूमिकम्पके सम्बन्धमें बहुत मतभेद देखा जाता है। किसी किसी पण्डितका मत है, कि यह जलमध्य-निवासी वृहत्प्राणिकृत है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि भूभार-धारण क्लिष्ट दिग्गजोंका विश्राम ही इसका कारण है। किसीका कहना है, कि वायु द्वारा वायु निहत और पतित हो कर शब्दपूर्वक भूमिकम्प होता है। फिर कोई इसे अदृष्टकारित बतलाते हैं। किसी किसी आचार्यका कहना है, कि पूर्वकालमें पृथिवी प्रपतन और उत्पतनशील पर्वतोंके उड़ने और गिर जानेसे कम्पित हो कर ब्रह्माके पास गई और प्रार्थना की, "भगवन्! आपने मेरा नाम अचला रखा है। किन्तु अभी मैं सचल तथा अचल पर्वतों द्वारा कांपती हूं जो मेरे लिए असह्य

है। आप कृपया मुझे इस दुःखसे बचावें।" ब्रह्माने पृथिवीकी बात सुन कर इन्द्रसे कहा, 'तुम पृथिवीका शोकहरण करने और पर्वतोंके पर काटनेके लिए वज्र फेंको।" इस पर इन्द्रने सहमत हो कर पृथिवीसे कहा, 'तुम्हें अब कोई डर नहीं; किन्तु वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण दिवारात्रके पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे याममें सत् तथा असत् फल जाननेके लिए तुम्हें कम्पित करेंगे।'

पहले उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाती, रेवती, मृगशिरा और अश्विनी नक्षत्र ये ही वायव्यमण्डल हैं। इस वायव्यमण्डलके होनेसे आकाश धूमावृत हो जाता है, हवा बड़े जोरसे बहती है और सूर्य छिप जाते हैं। इस वायव्यमण्डल द्वारा भूमिकम्प होनेसे शस्य, जल और वनौषधियोंका क्षय होता है तथा वणिकोंको श्वयथु, श्वास, उन्माद, ज्वर और कामजात पीड़ा होती है। सुन्दर पुरुष, अस्त्रधारी, वैद्यगण, स्त्री, कवि, गन्धर्व और पण्यशिल्पीगण सौराष्ट्र, कुरु, मगध, दशार्ण तथा मत्स्य-देश पीड़ित होता है। यही वायुकृत कम्पन है।

पुष्या, आग्नेय, विशाखा, भरणी, पित्र, अज तथा भाग्य संज्ञक नक्षत्रमें आग्नेय वर्ग होता है। आग्नेयवर्ग होनेसे सात दिन तक तारका और उल्कापातावृत आकाश मानों दिग्दाहयुक्त और कुछ दीप्त-सा हो जाती है तथा शस्तशिख अग्नि हवाकी सहायता ले कर विचरण करती है। इस आग्नेय वर्गमें भूमिकम्प होनेसे मेघनाश, जलाशय-शोषण, राजद्वेष तथा दद्रु, विचर्चिका, ज्वर, विसर्पिका और पाण्डुरोग एवं अङ्ग, वाह्लीक, कलिङ्ग, वङ्ग और द्रविड़देश तथा नाना प्रकारके शवरगण पीड़ित होते हैं। यह अग्निकृत कम्पन है।

अभिजित्, श्रवणा, धनिष्ठा, प्राजापत्य, ऐन्द्र, वैश्व, और मैत्र नक्षत्रमें ऐन्द्रवर्ग है। इसमें वृष्टि खूब होती है। ऐन्द्रवर्गमें भूमिकम्प होनेसे राजाका नाश और अतिसार, गलग्रह, वदनरोग, सर्दिप्रकोप तथा खांसी, युगन्धर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुवास्तु और मालवदेश पीड़ित होता है। यही इन्द्रकृत भूकम्प है।

पौष्ण, आप्य, आर्द्रा, अश्लेषा, मूला, अहिर्बुध्न और वारुण नक्षत्रमें वारुणवर्ग होता है। इसमें अनेक जलदगण अंकुशधारसे वर्षा करते हैं। इस वायव्यमण्डलमें भूमिकम्प होनेसे गोनर्द, चेदि, कुक्कुर, किरात और विदेह-वासियोंका अनिष्ट होता है। यह वायुकृत कम्पन है।

वायु, अग्नि, इन्द्र तथा वरुण इन चारसे ही भूमिकम्प होता है। भूमिकम्पके दलपाकका समय छह मास के मध्य है। विना मेघके वृष्टि, अग्निकी विस्फुलिङ्ग-शिखा, वन्यप्राणियोंका ग्राममें प्रवेश, रातमें इन्द्र धनुदर्शन इत्यादि प्रकृतिकी विपरीत गति होनेसे भूमिकम्प प्रभृति नाना प्रकारके दुर्लक्षण उपस्थित होते हैं।

ऐन्द्रमण्डल यदि वायव्यमण्डलको या वायव्यमण्डल ऐन्द्रमण्डलको विनष्ट करे और इसी प्रकार यदि वारुण तथा आग्नेयमण्डल एक दूसरेको निहत करे, तो उसे वेलानक्षत्रजात कंप कहते हैं। आग्नेय तथा वायव्य-मण्डलका परस्पर अभिघात होनेसे राजाकी मृत्यु या पृथिवी पर दुर्भिक्ष, मरक, अनावृष्टि प्रभृति अकल्याण होते हैं। वारुण और ऐन्द्रमण्डलके अभिघातसे सुभिक्ष, कल्याण, वृष्टि तथा प्रीति बढ़ती है, गाएं प्रचुर दुग्ध-संपन्न होतीं और राजागण निवृत्तवैर हो रहते हैं। वायुवर्ग दो सौ योजन, अग्निवर्ग एक सौ दश, वारुण वर्ग एक सौ अस्सी और ऐन्द्रवर्ग साठसे कुछ ज्यादा योजन तक विचलित करता है। भूमिकम्पके बाद तीसरे, चौथे और सातवें दिन अथवा महीने पक्षमें या तीन पक्षमें यदि पुनः भूकम्प हो जाय, तो प्रधान राजाका विनाश होता है। (बृहत्सं० ३२ अ०)

वराहमिहिरने और भी कहा है,—

"उल्का हरिश्चन्द्रपुरं रजश्च।
निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः॥
वातोऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वो।
र्नक्षत्रतारागण वैकृतानि॥" (३२।२४)

उल्का, गन्धर्वपुर, रज़, निर्घात, भूकम्प, दिग्दाह, प्रचण्ड वायु और सूर्यचन्द्रका ग्रहण, नक्षत्र तथा ताराओं-की विकृतिका कारण होता है।

भूमिकम्पके सम्बन्धमें इस प्रकार प्रवाद प्रचलित है,—वासुकि अपनी सहस्र फणाके ऊपर पृथिवीको धारण किये हुए हैं। जब किसी फणाको विश्राम

करनेकी जरूरत होती है, तब वे उसे झुकाते हैं जिससे भूमिकम्प होता है। एक ही समय सभी देशोंमें भूमिकम्प नहीं होता। इसका कारण यह है, कि वे जिस फणा को झुकाते हैं, उसी पर स्थित देशसमूह कम्पित होता है, दूसरा नहीं होता। इस प्रवादको सत्यताके सम्बन्धमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं मिलता।

अद्भुतसागरमें भूमिकम्पके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—

"मेषे वृश्चिकभे गजः प्रचलति व्यासादिभिः कथ्यते।
चापे मीनकुलीरभे च वृषभे सत्यं चलेत् कच्छपः।"
यूके कुन्तधरे मृगेन्द्रमिथुने कन्यामृगे पन्नग-
स्तेयामेकतमो यदि प्रचलति क्षौणी तदा कम्पते॥"

मेष और वृश्चिक राशिमें गज, धनु, मीन, कर्कट और वृष राशिमें कच्छप तथा तुला, कुम्भ, सिंह, मिथुन, कन्या और मकरमें पन्नग चलते हैं; इन गजादिके चलनेसे ही भूमिकम्प होता है। व्यासादिने भूमिकम्पका यही कारण बतलाया है। कच्छप और पन्नगके चलनेसे जब भूमिकम्प होता है, तब बहुत-से मेंढ़क और पन्नग भूमिकम्पमें बड़े ही सुखस्वच्छन्दसे रहते हैं।

"कच्छपे मरणं ज्ञेयं मरणञ्चापि पन्नगे।
सर्वत्र सुखदश्चैव पृथिव्यां चलिते गजे॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

वर्त्तमान वैज्ञानिक तथा भूतत्त्वविदोंमें भी मतभेद देखा जाता है। बहुतोंने भूगर्भके स्थान विशेषके स्वाभाविक कम्पनको ही भूमिकम्प बतलाया है। बहुतोंके मतसे आग्नेय गिरिका संस्रव ही भूमिकम्पका मूलकारण है। जिस कारणसे आग्नेय गिरिसे आग निकलती है, उसी प्रकार आभ्यन्तरिक कारणसे ही भूमिकम्प होता है। जिस प्रकार एक वृहत् लौहखण्ड पर एक ओर भारी हथौड़ी द्वारा खूब जोरसे आघात करनेसे लौहके आघातित अंशसे ले कर दूसरी ओर तक स्पन्दन उत्पन्न होता है, उसी प्रकार इस विराट पृथिवीसे भी आणविक स्रोत या स्पन्दन उत्पन्न हो कर भूमिको प्रकम्पित करता है। भूगर्भके बहुत नीचे कम्पनजनित शिलोच्चयके घर्षणसे पृथिवीका जो जो स्थल कांप उठता है, उसी स्थलमें थोड़ा बहुत भूकम्प अनुभव होता है। किसी-किसी भूतत्त्वविदोंका विश्वास है, कि इस सबल पृथिवीसे नित्यप्रति आणविकस्रोत निकलता है, किन्तु वह क्षीण स्पन्दन सामान्यतः इन्द्रिय द्वारा अनुभूत नहीं हो सकता। वैज्ञानिक यन्त्र द्वारा इसका बहुत कुछ स्थिर हुआ है, कि भूगर्भस्थ स्थितिस्थापक वाष्पराशि आभ्यन्तरिक बहुव्यापी तापकी सहायतासे शब्दपूर्वक विक्षिप्त हो कर अकसर भूमिकम्प करती है।

प्रतिवर्ष १०।१२ बार पृथिवीके नाना स्थानमें भूकम्पकी कथा सुनी जाती है। कहीं कहीं पर इस प्रकार अनर्थकर कम्पनसे सैकड़ों ग्राम और नगर तहस नहस हो गए हैं—सैकड़ों प्राणी अकालमें कालके मुख पतित हुए हैं। यह सब बात सुन कर शरीर रोमाञ्चित हो उठता है।

भूमिकम्पकी तालिका देखनेसे जान पड़ता है, कि एशियाके पूर्व और दक्षिण अंशमें ही भूमिकम्पका कुछ ज्यादा प्रभाव है। कप्तान स्मिथ साहबने गणना कर लिखा है, कि १८००–४२ ई० अर्थात् ४२ वर्षमें इस अंशमें १६२ बार उल्लेख योग्य भूकम्प हुआ है। यह सब भूमिकम्प गाङ्गेयमें ही ज्यादा अनुभूत हुआ था। पारस्यके राजचिकित्सक थलजानने आरब्य और पारस्य इतिहाससे ७वोंसे १७वीं शताब्दीमें जो सब भूकम्प हुआ था, उसकी तालिका संग्रह की है। उन्होंने यह दिखलाया है, कि इतने दिनोंके मध्य १११ बार प्राणनाशके भीषण भूमिकम्प हो गया है जिससे केवल बस्ती और घर ही नहीं, वरन् बहु जनाकीर्ण सैकड़ों नगर अधिवासियोंके साथ भूमिसात् हो गए हैं। एक एक स्थानमें भूमिकम्प सिर्फ एक ही बार हो कर नहीं रह जाता। ६४४ ई०में खुरासानमें बहुदिनव्यापी घोर भूमिकम्प हो गया है। इन सब भूमिकम्पके पहले आकाश मानो एक विशेष भाव धारण करता था, प्रचण्ड वायु चलती थी और बवंडर हवा भी बड़े जोरसे बहने लगते थे। ७से १७वीं शताब्दीके मध्य पारस्यमें भी ऐसे ही ५२ बार भूकम्पका उल्लेख मिलता है जिससे पारस्यके साथ सीरिया, मेसोपटेमिया, इजिप्त, तुर्किस्तान, इराक और खुरासान भी कम्पित हुआ था। यह सब भूमिकम्प कभी कभी इजिप्ट तक फैल गया था, किन्तु पारस्यके जैसा इजिप्टमें अनिष्टकर भूकम्प नहीं हुआ है।

फिर निकटवर्त्ती देशोंमें भूकम्प होनेसे भी १२वींसे ले कर १७वीं शताब्दी तक सीरिया और जूडियामें कुछ भी भूमिकम्प न हुआ। अफगानिस्तानमें अकसर भूकम्पकी वात सुनी जाती है। काबुलमें प्रति वर्ष १०।१२ वार भूमिकम्प होता है। १८४१ ई०में जब अंगरेजोंने जलालावाद पर आक्रमण किया था, उस समय भूकम्पसे जलालावादका प्रत्येक प्राचीर कंप उठा था।

निम्न वङ्गमें विशेषतः सुन्दरवनमें अनेक वार भूमिकम्प हुआ है, जिससे सुन्दरवनका वहुत कुछ अंश समुद्रके नीचे चला गया है और यही कारण है, कि प्राचीन मनुष्योंके घरका चिह्न तक विलुप्त हो गया है। यहां तक कि, वङ्गोपसागरके पूर्वतीरवर्त्ती निग्रेस अन्तरीपसे ले कर अक्याव तक सभी स्थान धंस कर वहुत नीचे चला गया है। फिर आराकानके उपकूलवर्त्ती छोटा द्वीप और शैलमाला रखाङ्गके समतलक्षेत्रसे वहुत ऊपर उठ गई है। आराकानके निकटवर्त्ती द्वीपसमूहके भूतल मध्य जो आभ्यन्तरिकअग्नि विराजमान है, भूतत्त्वविदोंने उसका भी पता लगाया है।

जापानियोंके मध्य एक अद्वितीय भूकम्पतत्त्वज्ञकी कथा सुनी जाती है। उन्होंने पुरावृत्त आलोचना द्वारा दिखलाया है, कि २८५ ई०को निफोनद्वीपमें एक असाधारण भूकम्प हुआ था जिससे एक रातमें ७२॥ मील लम्बा और १२॥ मील चौड़ा एक ह्रद वन गया था। ८९३ ई०को भारतमें एक भूकम्प हुआ था जिससे प्रायः दो लाख प्राणी एकवारगी कालके मुखमें पतित हुए थे। इस प्रकार १०४० और ११३९ ई०में भूकम्पसे यथाक्रम पारस्यके ताब्रिजन नगरमें पचास और गौसनामें दश हजार मनुष्योंकी मृत्यु हुई थी। १५०५ ई०में भूकम्पसे कावुल प्रायः तहस नहस हो गया था। १५९६ ई०को जापानमें जो भूमिकम्प हुआ था, उससे भी अनेक शहरोंका अस्तित्व विलुप्त हो गया है। किन्तु १७०३ ई०के जापानके भूमिकम्पसे एक शहरमें ही दो लाख मनुष्योंके प्राणनाशकी कथा सुननेमें आती है। १७३१ ई०को भी जापानमें भूकम्प हुआ था, किन्तु उससे कुछ विशेष हानि नहीं हुई थी। उस समय चीनकी प्रसिद्ध राजधानी पेकिन शहरमें लाखसे भी अधिक मनुष्य मरे थे।

१७३७ ई०की ११वीं और १२वीं अक्तूवरकी रातको भारी तूफानके साथ प्रचण्ड भूमिकम्पसे गङ्गासागरसे ले कर सभी गाङ्गेय द्वीप प्रायः ६० कोस तक स्थान आलोड़ित हुआ था। उस भूकम्पसे सिर्फ कलकत्तेमें ही लगभग २०००० जहाज और नाव डूब गई थीं। उससे गङ्गाके जलने प्रायः ४० फीट ऊंचा हो कर करीव तीन लाख प्राणियोंका नाश किया था।

चेदुवा द्वीपमें १००से २०० हाथ तक ऊंचे दो कर्दम-आग्नेयगिरि हैं। इस गिरिकी वदौलत भूकम्प होनेवाले द्वीपका कोई कोई स्थान पूर्वसमतलसे कहीं १२ फीट, कहीं १४ फीट और कहीं १६ फीट ऊंचा उठ गया है। १७५० या १७६० ई०में भूकम्पके साथ साथ ऐसा ही उत्संस्थान आरम्भ हुआ। इसी प्रचण्ड भूकम्पनसे ब्रह्मकी राजधानी आवानगरी भी कंप उठी थी।

१७५४ ई०की १ली नवम्बरको पुर्त्तगालकी राजधानी लिसवन शहरमें जो भूमिकम्प हो गया है, यूरोपके इतिहासमें क्षणकालमें वैसी मनुष्यनाशक व्यापारकी कथा सुननेमें कहीं नहीं आती। यह भूमिकम्प सिर्फ छह मिनट तक था जिससे लिसवन शहर विध्वस्त और साठ हजार मनुष्योंकी अकस्मात् मृत्यु हुई थी। भूकम्पनके अवश्यम्भावी परिणाम समुद्रके जलोच्छ्वाससे गृहसमूहकी भित्ति भी जलमग्न हो गई थी। जिन्होंने प्राणरक्षाके लिए अपनी वासभूमिका परित्याग कर अन्य स्थानमें आश्रय लिया था, उन्होंने भी इस भीषण तरङ्गाघातसे अपने प्राण खोये थे ऐसा भूकम्प यूरोपमें और कभी भी नहीं हुआ था।

पहले ही कहा जा चुका है, कि एशियाके पूर्वांशमें ज्यादा भूमिकम्प होता है। सुनते हैं, कि १६८६ ई०को जापानमें एक भयानक भूकम्प हुआ था जिससे सारा जापान कंप उठा था। जापानके अन्तर्गत शोकजा प्रदेशसे ले कर मियाको तक सारा भूभाग ४० दिन पर्यन्त कांपता रहा था। इससे वहुतसे स्थान अग्निमें जल गये और कोई कोई स्थान सागरगर्भशायी हुए थे।

१७१० से १८७२ ई० तक फिलिपाइन द्वीपमें अनेक वार भूकम्प हुआ था। उसमेंसे ४ वजे दिनके समय ४९

सेकेण्डव्यापी कम्पनसे महानर्थ हुआ था। द्वीपके मध्य जहां जहां आग्नेयगिरि था, उनमें-से आग निकलती थी—वहुत-से स्थानसे गरम जल और वालू निकलते थे, किसी किसी स्थानसे तोपकी आवाजकी तरह भयानक शब्द सुनाई पड़ता था।

१७६२ ई०की २री अप्रेलको चट्टग्राममें भयानक भूकम्प होनेके कारण वहुत-से स्थानोंसे जल और गन्ध-युक्त कीचड़ निकला था। इससे वर्द्धवान नामक एक वड़ी नदी एकवारगी सूख गई थी और समुद्रनिकटस्थ वड़छेरा नामक ग्राम वहुत-से जीवजन्तुके साथ भू-गर्भशायी हुआ था। सुननेमें आता है, कि इस भूकम्पसे चट्टग्रामके उपकूलवर्त्ती लगभग ६० वर्गमील स्थान अकस्मात् दव गया था और शेषलंतुम नामक मगपहाड़का एक अंश एकवारगी अन्तर्हित हुआ तथा एक दूसरी शाखा इतनी नीचे चली गई थी, कि सिर्फ उसकी चूड़ा ही नजर आती है। उसी समय सीताकुण्ड पहाड़में दो पर्वत दिखाई पड़े। जिस समय चट्टग्राम नोचे दवा जाता था, ठीक उसी समय रामड़ी, रेंगुयान और च्रेदुवाद्वीपका अनेकांश भूपृष्ठसे ऊपर उठा गया था।

सुमात्राके पश्चिम कूल पर सीमो नामक एक छोटा द्वीप है। चैत्रमासमें वहां एक वार महाभूकम्प हुआ था जिससे आधेसे अधिक द्वीपवासी मृत्युमुखमें पतित हुए थे। सन्ध्याके कुछ पहले वह भूकम्प हुआ था। सभी घर डोलते हैं और छत गिर रही है, देख कर अधिवासिवृन्द खुले मैदानमें जा खड़े हुए, किंतु वहां भी उनका निस्तार नहीं। समुद्रसे तालवृक्ष प्रमाण उपर्युपरि तीन तरंग आ कर उन्हें वहा ले गईं। भाग्यवश जिन्होंने रक्षा पाई, उन्होंने देखा कि भूकम्पके वाद ही मानों हजारों तोपकी आवाजका-सा शब्द करता हुआ समुद्र वड़े वेगसे आ रहा है।

मनिलामें अनेक वार भूमिकम्प हुआ था। उनमेंसे १८६३ ई०में जो भूकम्प हुआ, उससे मनिलाद्वीप तहस नहस हो गया था। यहांका सभी घर मिट्टीमें मिल गया। अधिकांश अधिवासी क्षण भरमें ही इनके मेहमान वने।

भारतवर्षमें भूकम्प विरल नहीं है, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है। उनमेंसे १८१९ ई०की १६ जूनको दक्षिण-पश्चिम भारतमें और १८९७ ई०के जूनमासमें पूर्व भारतमें जो भूकम्प हो गया है। उसकी याद आनेसे हृदय कांप उठता है दक्षिण पश्चिम भारतमें इस भूकम्पनका केन्द्रस्थल कच्छप्रदेश है। दो तीन मिनट-स्थायी इस महाकम्पनसे कच्छकी राजधानी भुजनगरी चरम दुर्दशाको प्राप्त हुई थी, सभी घर गिरकर भुजनगरी समतल हो गई थी और दो हजारसे भी अधिक मनुष्यों की अकाल मृत्यु हुई थी। १ली जुलाई तक प्रति दिन दो एक वार कम्पन होता हो रहा। पूर्वभारतके कम्पनकी जो कथा कही गई है, वह भी सामान्य नहीं है। इस भू-कम्पनसे सारे वङ्ग और आसामकी यथेष्ट क्षति हुई है। कलकत्तेके वहुत-से घर तहस नहस हो गये, ढाका राज-शाही, दिनाजपुर और रङ्गपुरकी सभी वड़ी वड़ी अट्टा-लिकाएं प्रायः विदीर्ण अथवा समतल हो गई हैं। रङ्ग-पुरके अनेक स्थान भेद कर गरमजल, वाष्प तथा कीचड़ निकलता था—वहुत-सी छोटी छोटी नदियोंकी गति परिवर्त्तित हो गई। इस भूकम्पसे वंगदेशकी अपेक्षा आसामकी हो ज्यादा हानि हुई थी। ब्रह्मपुत्रके अनेक स्थानोंकी गतिके साथ साथ जलवायुका भी परिवर्त्तन हुआ है। कछाड़की सभी अट्टालिकाएं भूमि-सात् हो गईं—वहुत जीवजन्तु अकालमें करालकालके गाल फंसे। १६०२ ई०के जुलाई मासमें पारस्यके वन्दर-अव्वासमें जो भूकम्प हुआ था, वह भी सामान्य नहीं। इससे भी अनेक गृह विध्वस्त और वहुत-से जन्तुओंकी मृत्यु हुई थी।

भारतवर्षमें जहां तहां उष्ण प्रस्रवण हैं, भूतत्त्वविद्गण उन सवोंको भूकम्पनसम्भूत वतलाते हैं। भारतमें ऐसे प्रस्रवणकी भी कमी नहीं है। भूमिकम्प यहां भी प्रायः हुआ करता है, पर वैसे प्रचण्ड भूकम्पकी संख्या ज्यादा नहीं है।

भूमिकम्पन (सं० क्ली० : भूमेः कम्पनं। भूकम्प।

भूमिका (सं० स्त्री०) भूमिरिव कायतीति कै-क, स्त्रियां टाप्, यद्वा भूमेरेव स्वार्थे कन् टाप्। १ रचना, वनावट। २ वेशान्तर परिग्रह, दूसरा भेष धारण करना। ३ ग्रन्थका आभास। ग्रन्थ वना कर पहले जो उसका सामान्य आभास रहता है, उसीको भूमिका कहते हैं।

४-वक्तव्य विषयकी सूचना। भूमिरेव स्वार्थे कन् टाप्। ५ वेदान्तके मतसे चित्तकी एक अवस्था। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध यही पांच प्रकारकी चित्तकी अवस्था है।

अत्यन्त संक्षेपरूपमें उन पांचोंकी भूमिकाके विषयकी आलोचना की जाती है।

क्षिप्त—मनको अस्थिरता अर्थात् चञ्चलताका नाम क्षिप्तावस्था है। मन स्थिर नहीं रहता,—एक ही विषय में नहीं लगा रहता। यह हो वह हो ऐसा कह कर हमेशा अस्थिर होता है। यह जोंककी तरह एक आधार छोड़ कर दूसरा ग्रहण करने और सर्वदा वाह्यवस्तुकी आकांक्षामें अस्थिर रहता है। यही क्षिप्तावस्था है।

मूढ़—मन सर्वदा कर्त्तव्याकर्त्तव्यको अग्राह्य कर कामक्रोधादिके वशीभूत और निद्रातन्द्रादिके अधीन होता है—आलस्यादि विविध तमोमय या अज्ञानमय अवस्थामें निमग्न रहता है। तभी मूढ़ावस्था कहलाती है।

विक्षिप्त भूमिका—विक्षिप्त अवस्थाके साथ पूर्वोक्त क्षिप्तावस्थाका वहुत थोड़ा प्रभेद है। वह यह है, कि चित्तकी पूर्वोक्त प्रकारकी चञ्चलतामें क्षणिक स्थिरता अर्थात् मन चञ्चलस्वभावका होने पर भी बीच बीचमें स्थिरता ही विक्षिप्तभूमिका है। चित्त जब दुःखजनक विषयका परित्याग कर सुखजनक वस्तुमें स्थिर होता है—चिराभ्यस्त चांचल्यका परित्याग कर थोड़े समयके लिए निरवलम्वतुल्य होता अथवा केवलमात्र सुखास्वादमें निमग्न रहता है, वही मनकी विक्षिप्तावस्था है।

एकाग्रभूमिका—एकाग्र और एकतान ये दोनों शब्द एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। चित्त जब किसी एक वाह्यवस्तु अथवा आभ्यन्तरीण वस्तुका अवलम्वन कर निर्वातस्थ निश्चल निष्कम्प दीपशिखाकी नाईं स्थिर या अविकम्पितभावसे रहता है अथवा चित्तकी रजस्तमो वृत्तिसे अभिभूत हो कर केवलमात्र सात्त्विकवृत्ति उदित और प्रकाशमय तथा सुखमय सात्त्विकवृत्तिमात्र प्रवाहित रहती है, तभी एकाग्रावस्था जाननी चाहिए।

निरुद्ध भूमिका—पूर्वोक्त एकाग्र अवस्थामें निरुद्धावस्थाका वहुत प्रभेद है। एकाग्र अवस्थामें चित्तका कोई न कोई अवलम्वन रहता ही है, किन्तु निरुद्धावस्थामें ऐसा नहीं होता। यह निरुद्धभूमिका अभ्यस्त होनेसे चित्त अपनी कारणीभूत प्रकृतिको प्राप्त कर कृतकृतार्थकी तरह निश्चेष्ट रहता है। सुतरां उस समय उसके किसी भी प्रकारसे विसदृश परिणाम नहीं रहता। यही निरुद्धावस्था है।

चित्तकी इन पांच प्रकारकी भूमिकाके मध्य प्रथमोक्त तीन अवस्थाके साथ योगका कोई सम्पर्क नहीं है। योगमें सुख होता है, ऐसा सुन कर विक्षिप्तचित्तसे कदाचित् योगसञ्चार हो भी सकता है; किन्तु वह स्थायी नहीं है। अतएव वह भी योगकी अयोग्य भूमि है। एकाग्र और निरुद्ध इन्हीं दो प्रकारकी भूमिकासे योग होता है। उनमें निरुद्ध अवस्थाको ही योग शब्दका प्रकृत या मुख्य अर्थ जानना चाहिए। इस अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए योगीको पहले उपाय द्वारा क्षिप्त, मूढ़ तथा विक्षिप्त अवस्था दूर कर एकाग्र और निरुद्ध अवस्था स्थापित करना उचित है। (वेदान्त और पातःद०)

भूमिकालिका (सं० स्त्री०) गोधूमिकाशाक।

भूमिकुष्माण्ड (सं० पु०) भूमिजातः कुष्माण्डः मध्यपदलोपि कर्मधा०। भुइंकुम्हड़ा।

भूमिखण्ड (सं० क्लो०) १ भूभाग। २ पद्मपुराणका खण्डभेद।

भूमिखर्जूरिका (सं० स्त्री०) भूमिजाता खर्जूरिका। क्षुद्र खर्जूरिका, एक प्रकारकी छोटी खजूर। पर्याय—स्वाद्वी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, काककर्कटी, स्वादुमस्तका। गुण—शीतवीर्य, मधुररस, मधुरविपाक, स्निग्ध, रुचिकारक, हृदयग्राही, क्षत और क्षयनाशक, गुरु, तृप्तिकर, रक्तपित्तनाशक, विष्टम्भी, शुक्रवर्द्धक, वलकारक तथा कोष्ठगत वायु, वमि, कफ, ज्वर, अतीसार, क्षुधा, तृष्णा, कास, श्वास, मत्तता, मूर्च्छा, वातपैत्तिक और मदात्ययरोगनाशक। इसके रसका गुण—मत्तताजनक, पित्तकारक, वातघ्न, कफनाशक, रुचिजनक, अग्निप्रदीपक, वलकर और शुक्रवर्द्धक। (भावप्रकाश)

भूमिखर्जूरी (सं० स्त्री०) भूमिजाता खर्जूरी। भूमिखर्जूरी, एक प्रकारकी खजूर।

भूमिगम (सं० पु०) उष्ट्र, ऊंट।

भूमिगर्त्त (सं० पु०) भूमिविवर, विल।

भूमिगुहा (सं० स्त्री०) भूमिस्थ गह्वर, सुरंग।

भूमिगृह (सं० क्ली०) भूमिस्थित गृह, तहखाना।

भूमिचम्पक (सं० पु०) भूमिजातश्चम्पकः। पुष्पवृक्ष-विशेष, भुइंचंपा। पर्याय—ताम्रपुष्प, सन्धिवन्ध, द्रुघण। क्षत वा व्रणमुख पर इसके मूलका प्रलेप देनेसे व्रण बहुत जल्द पक जाता है।

यह सुदीर्घ पत्रयुक्त छोटा गुल्म उष्णप्रधान भारतकी तथा ब्रह्मकी दलदल भूमिमें पाया जाता है। सिंहल, यव और कोचिन-चीनमें भी इसकी खेती होती है। इसके पुष्पकी सुगन्ध और पत्रकी कमनीयताकी शोभा देखनेके लिये लोग बहुत परिश्रमके साथ इसे आंगनमें अथवा वाटिकामें लगाते हैं। ग्रीष्मकालमें जब इस दण्डहीन वृक्षके पत्रादि झड़ जाते हैं, तब एकमात्र गन्धपुष्प ही इस वृक्षकी शोभाको बढ़ाता और मानवजातिके मनको मोहता है। इसकी गंधख्याति तमाम प्रसिद्ध है।

आयुर्वेदशास्त्रमें इसकी उपकारिताके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी कथाएं लिखी हैं। इसके रेशेको चूर कर क्षतस्थानमें लगानेसे भारी उपकार होता है। अलावा इसके उदरी रोगमें भी इसके रेशे बड़े फायदेमन्द हैं। कुचिला, जायफल और वत्सनाभके साथ इसके कन्दचूर्णका प्रयोग करनेसे गलगण्ड विनष्ट होता है।

इसके कन्दका रंग कुछ पीला होता है। पुष्पसे ले कर रेशे पर्यन्त इसके सभी अंश सुगन्धित होते हैं।

भूमिचल (सं० पु०) भूकम्प। भूमिकम्प देखो।

भूमिचलन (सं० क्ली०) भूमेश्चलनम्। भूमिकम्प।

भूमिचारी (सं० स्त्री०) आखुकर्णीलता, मूसाकानी।

भूमिज (सं० क्ली० भूमेर्जायते इति जन ड। स्वर्ण, सोना। २ नरकासुर। ३ भूमिकदम्ब। ४ भूमिज गुग्गुल। ५ भूनाग, सीसा। ६ यवक्षार, सोरा। (त्रि०) ७ भूमिजात, जो जमीनसे पैदा हुआ हो।

भूमिज—मानभूम, सिंहभूम आदि पश्चिमवङ्गवासी अनार्य जातिविशेष। इनका आचार, व्यवहार, कार्यकलाप तथा भाषागत सादृश्य देख कर जातितत्त्व विद्गण अनुमान करते हैं, कि ये लोग सम्भवतः कोलरीय शाखाभुक्त तथा मुण्डा नामक जातिके समश्रेणीगत हैं। सुवर्णरेखाकी दोनों पार्श्ववर्त्ती पार्वतीय अरण्यभूमि—छोटानागपुरकी अधित्यकासे ले कर पूर्वमें अयोध्यापर्वत तक फैले हुए भूभागमें इनका वासस्थान है। यहां पर मुण्डाओंकी तरह उनका भी समाधिस्तम्भ विद्यमान है। पश्चिमांशवासियोंकी कथित भाषा मुण्डाओंकी भाषासे बहुत कुछ मिलती जुलती है। देवपूजा, शवदाह, अस्थिसमाधि तथा प्रेतकृत्यादि सभी कामोंमें वे मुण्डाओंकी ही नकल करते हैं।

अयोध्या-गिरिश्रेणीके समीपदेशवर्त्ती पूर्वाञ्चलवासी भूमिजगण वङ्गालियोंके साथ रह कर वङ्गला भाषा ही बोलते हैं। हिन्दू वङ्गवासियोंने यहां आ कर पहले इस अनार्य जातिको इस भूमिभागका अधिकारी देखा। भूइंया, या भूंइहार प्रभृतिकी तरह हिन्दूगण भूमिका आदिम अधिकारी समझ कर उन्हें भूमिज कहने लगे। अभी ये लोग पूर्वश्रेणी हिन्दूके आचार व्यवहार और क्रिया-कलापका अनुष्ठान कर हिन्दूके समश्रेणीभुक्त होनेकी चेष्टा करते हैं।

इस जातिकी उन्नतिके सम्बन्धमें अनेक ऐतिहासिक आख्यान मिलते हैं। जङ्गलमहालके चारों ओर स्थानसमूहमें अत्यन्त निष्ठुरताके साथ दस्युवृत्ति करनेके कारण ये 'चूयाड़' कहलाये। अङ्गरेज शासनभुक्त होनेके पहले इन्होंने समय समय पर जातीय औद्धत्यका परिचय दिया था। १७७८ ई०में राजस्वदायमें पांचेटराज-सम्पत्ति विक जाने पर इन्होंने विद्रोही हो राज्यमें बड़ा ही गोलमाल मचाया। जब तक इस सम्पत्तिकी नीलाम रद न हुई और जब तक अंगरेजोंने यह स्वीकार नहीं किया था, कि भविष्यमें कोई दूसरी सम्पत्ति नीलाम न करेंगे, तब तक वे शान्तिपूर्वक न रहे। जितनी ही बार अङ्गरेज गवर्मेण्ट जङ्गलमहाल पर शासन करनेमें प्रयासी हुए, उतनी ही बार अङ्गरेजोंके साथ भूमिजोंका विवाद चला था। जब धलभूराजने अङ्गरेजशक्ति फैलनेमें बाधा डाली, तब अङ्गरेज गवर्मेण्ट उसके विरुद्ध खड़ी हुई। अन्तमें उसको राजच्युत कर अङ्गरेजोंने उसके विपक्षियोंके साथ सद्भाव स्थापित किया।

वराहभूममें भी राज्याधिकार ले कर ऐसा ही गोलमाल उठा। राजा विवेकनारायणकी मृत्युके बाद

पटरानीने अपने वयःकनिष्ठ पुत्रके बदले सर्वाग्रज मध्यमा-पत्नीके पुत्रको ही सिंहासन पर अभिषिक्त करनेको गवर्मेण्टसे कहा। किन्तु भूमिजोंको ऐसी न्यायपरता अच्छी न जंची, अतः वे विशेष विरक्तिके साथ अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े हुए। यह विद्रोह अन्तमें बड़ा ही विपत्तिकर हो उठा। यही १८३२ ई०का गङ्गानारायण या चूयाड़-विद्रोह कहलाता है।

पूर्वोक्त पटरानीके पुत्र लक्ष्मणसिंह सिंहासनलाभकी आशामें अपने बड़े भाईके विरुद्ध खड़े हुए। उपर्युपरि ऐसे उपद्रवसे विरक्त हो कर राजाने उन्हें कैद कर लिया। कारागारमें लक्ष्मणसिंहकी मृत्यु हुई। उनके एकमात्र पुत्र गङ्गानारायण पिताके प्रति किये गये अत्याचारका प्रतिशोध लेनेके लिये बच रहे।

अनन्तर राजा रघुनाथसिंहकी मृत्युके बाद सुप्रिम कोर्टके विचारानुसार पुनः पटरानीके कनिष्ठ पुत्र माधवसिंहको छोड़ मध्यमा पत्नीके ज्येष्ठ पुत्र सिंहासन पर बिठाये गये। जब माधवसिंहने देखा, कि अङ्गरेज सरकारको मना करने पर भी कोई फल न निकला, तब वे अपने भाग्य पर ही निर्भर रहे। अन्तमें भ्रातृराज्यमें दीवान या प्रधान मन्त्रिपद पर नियुक्त हो कर उन्होंने अपना चित्त स्थिर किया। इस काममें रह कर वे व्यवसायी तथा कृषिजीवियोंको रुपये कर्ज लगा कर बहुत सूद लेने लगे। अतः समस्त प्रजामण्डली उनके अत्याचारसे तंग तंग आ गई। गङ्गानारायण इतने दिनोंसे उनके दोषकी खोजमें ही थे। ऐसे अत्याचारी माधवराय-के विरुद्ध उद्धत प्रजामण्डलीको खड़ा करना सहज जान कर वे उन्हें उत्तेजित करने लगे। एक एक कर सैकड़ों मनुष्योंने उनका साथ दिया। सभी एक स्वरसे कहने लगे, कि जब तक ऐसे दुष्ट व्यक्ति राजसंसारसे न निकाल दिये जांय, तब तक चैन नहीं। ऐसा निश्चय करके घटवाल सरदारोंने गङ्गानारायणके साथ जा कर माधवसिंह पर चढ़ाई कर दी और उन्हें पकड़ कर एक पर्वतके समीप ले जा एक सुतीक्ष्ण तीरसे उनका काम तमाम कर दिया।

माधवसिंहकी हत्याके बाद वराहभूममें फिरसे लूट पाट होना शुरू हो गया। लोभके वशीभूत हो कर धीरे धीरे सारा चूयाड़सम्प्रदाय एकत्रित हुआ। अनन्तर चतुष्पार्श्वस्थ सामन्तराज्यवासी अन्यान्य चूयाड़ भी उनके दलमें आ मिले। इस प्रकार दलपुष्ट हो कर गङ्गानारायणने बड़ाबाजारका राजप्रासाद, मुनसफ-कचहरी और पुलिसखाना पर चढ़ाई की और उन्हें लूटा। किन्तु सिर्फ दो ही सिपाही उनके हाथसे मारे गये, बाकी सबके सब भागे।

उस समय सारा जङ्गलमहाल गङ्गानारायणके हाथ आया। उस विशृङ्खलताके समय वे ही एक हर्त्ता कर्त्ता थे। उस समय लुण्ठनयोग्य ऐसा कोई भी स्थान न था जिसने उनका कठोर निष्पीड़न सह्य न किया हो। १८३२ ई०के अप्रेलसे नवम्बर तक गङ्गानारायण बिना किसी रोक टोकके विद्रोहाचरण करनेमें समर्थ हुए। अनन्तर उनका दमन करनेके लिये अङ्गरेजोंने ३ दल पदाति सेना और ८ कमान भेजी। पहले कई एक छोटी छोटी लड़ाईमें तो अङ्गरेज हार गए; किन्तु गोलेके सामने अधिक देर तक न ठहर सकनेके कारण वे पर्वत पर भाग चले।

किन्तु अङ्गरेजीसेनाने उनका पीछा नहीं छोड़ा और अन्तमें गङ्गानारायण दलबलके साथ सिंहभूम प्रदेश लाये गये। यहां उन्होंने दुर्द्दमनीय लर्खा जातिको अपने दलमें लानेकी चेष्टा की। उसी समय खर्सावानके ठाकुर सरदारके साथ उनका विरोध चलता था। उन्होंने गङ्गानाराहणसे कहा, कि यदि वे खर्सावानका दुर्ग अधिकार कर उनके किये हुए अपमानका बदला दे सकें, तो वे सबके सब उन्हींके जैसे वीरके हाथ आत्मसमर्पण कर सकते हैं। किन्तु दुर्ग पर आक्रमण करनेके समय गङ्गानारायणकी मृत्यु हो गई। खर्सावानराजने उनका सिर अङ्गरेज सेनापति यूलकिनसनके पास रिशवत भेज दी।

खर्सावानपतिने गङ्गानारायणका सिर भेजनेके समय अङ्गरेज सेनापतिको जो पत्र भेजा था, उसमें इन भूमिजोंका सामाजिक इतिहास वर्णित है। उन्होंने लिखा है, कि भूमिजोंके इस देशमें आनेका कोई प्रसङ्ग नहीं है। छोटानागपुरके मुण्डाओंके साथ इनका कोई विशेष पार्थक्य देखनेमें नहीं आता। विवाह, एक साथ भोजन या उपवेशन प्रभृति विषयमें उनका कोई भेदाभेद नहीं

है। पूर्वाञ्चलवासी भूमिजगण हिन्दुओंके साथ रह कर ऐसे उन्नत हो गए, कि वे अपनेको उनके सम्पर्कीय बोलनेमें भी घृणा मानते हैं। धलभूमके भूमिजगण अपनेको स्थानीय आदिम अधिकारी बतलाते हैं। वे मुण्डा, हो या सन्थाल प्रभृतिके साथ कोई संस्रव स्वीकार नहीं करते।

बङ्गालके अधिकांश पार्वत्य प्रदेशोंमें ये ही लोग पाये जाते हैं। बाघमण्डीके राजाके सिवा दूसरे सभी अपनेको राजपूत या क्षत्रियवंशसम्भूत बतलाते हैं। अपना क्षत्रित्व प्रतिपादनरूप उद्देश्यसिद्धिके लिए उन्होंने किसी विशिष्ट वंशमें न जा कर स्वतन्त्र वंशकाहिनी प्रचार की है। वराहभूमका राजवंश-विवरणीसे पता चलता है, कि नाथवराह और केशवराह नामक दो विराट राजपुत्र पितासे लड़ाई कर राजा विक्रमादित्यके आश्रयमें पहुंचे। राजा विक्रमादित्यने कनिष्ठ केशवराहके आचरणसे रंज हो कर उसको आरेसे चीर देनेका आदेश दिया और स्वयं उसके लेहूसे बड़के सिरमें राजटीका तथा राजछत्र प्रदान किया। बाद उन्होंने नाथवराहसे कहा, "एक दिन रातमें तुम घोड़े पर चढ़ कर जितनी दूर जा लौट आवोगे, उतनी दूर तकका मैं तुम्हें अधिकारी बनाऊंगा।" उसी समयसे वराहभूमराज्यकी उत्पत्ति हुई। बराभूम देखो।

दो एकको छोड़ कर सिंहभूम और मानभूमके अधिकांश घटवाल इसी भूमिजजातिके हैं। धलभूमके राजवंश अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं, किन्तु उनकी वंशकहानीसे प्रकृत विवरण झलक जाता है। प्रवाद है, कि पांचेट राज्यसे रङ्किनी नामक कालीमूर्त्ति प्रस्थानके समय एक धोबीके घर ठहरी। देवी उस धोबी पर बड़ी प्रसन्न हुई और अपने परिवार-देवताओंमेंसे एक योगिनी ब्राह्मणीके साथ उसका विवाह करा दिया। उसी स्त्रीके गर्भसे धलभूमराजवंशकी उत्पत्ति हुई है*।

इस जातिके मध्य बहुत-से मनुष्य धनी देखे जाते हैं। सरदार घटवालगण छोटे छोटे जमींदार या तालुकदारकी तरह हैं। सरदार अधिकृत भूमि बन्दोबस्त ले कर जो सब घटवाल उक्त सरदारके अधीन रहते हैं, वे जातदार कहलाते और साधारणतः कृषिविद्या द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। इनका आचार व्यवहार तथा रीति नीति बङ्गालियोंसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। कोल, मुण्डा, सन्थाल और हो प्रभृति जातिकी अपेक्षा ये परिच्छन्नस्वभावके हैं। किन्तु दुःखकी बात है, कि अब भी किसी काममें वे अपनी पूर्वतन अनार्य रीतिका ही अनुसरण करते हैं।

इनमें असंख्य थोक पाये जाते हैं, उनमें स्थान विशेषसे कई एक प्रधान और दूसरे सभी अप्रधान गिने जाते हैं। एक स्थानके भूमिजगण दूसरे स्थानमें जा बस जाने पर भी वे पूर्व ग्रामी कह कर ही अपना परिचय देते हैं। इस प्रकार उनमें अनेक दल हो गये हैं।

स्वगोत्र या श्रेणीमें ये विवाह नहीं कर सकते, किन्तु निकटात्मीय सम्बन्धमें ३ या ५ पीढ़ी छोड़ कर विवाह करनेमें कोई बाधा नहीं है। अभी बालिकाविवाह प्रचलित होने पर भी ये युवती कन्याके साथ विवाह करना भी अनुचित नहीं समझते। अविवाहिता कन्याके ऋतुमती होने पर भी वे इसकी परवाह नहीं करते। विवाहके

* इससे यह अनुमान किया जाता है, कि धलभूमके किसी भूमिज-सरदारने ब्राह्मणको ठग कर पुरुलियाके निकटवर्त्ती पारा ग्रामसे पांचेट राजकुलदेवी रङ्किनीको हरण कर अपनी राजलक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठा की। धलभूमवासी सभी [illegible] इस देवीमूर्त्तिकी उपासना करते हैं। मनुष्य-रक्तसे देवी तृप्त होती थीं, अतः प्रतिवर्ष विन्ध्यपर्वत पर मनुष्य अबोध बच्चेको भुलावेमें डाल कर देवीके सामने बलि देते थे। लगभग १८६५ ई० तक यहां नरबलिस्रोत प्रवाहित रहा। इसके साथ साथ विन्ध्यपर्वत पर अनुष्ठित एक दूसरे नृशंस व्यापारका भी लोप हो गया। उस समय अधिवासिगण दो जंगली भैंसेको खदेड़ कर निर्दिष्ट वेष्टमीके निकट (काष्ठप्राचीर-परिवेष्टित एक रङ्गभूम) लाते थे। उसके चारों ओर मचान पर राजा और राजपरिवारस्थ व्यक्ति बैठे रहते थे। यथाविहित पूजादि अनुष्ठानके बाद राजा और राजकुलपुरोहित सबसे पहले बलके उद्देश्यसे दोनों भैंसोंके ऊपर तीर फेंकते थे। बाद इसके वहां बैठे हुए दूसरे भी एक एक कर उक्त दोनों भैंसों पर तीर चलाते थे और वे भैंसे मारे दुःखके बड़े जोरसे चिल्लाते और धीरे धीरे बेहोश हो जाते थे। बादमें सभी नीचे उतरते और कुठाराघातसे उन्हें मार देते थे।

पूर्व यदि किसी पुरुषके संस्रवसे युवती गर्भिणी हो जाय, तो उसी पुरुषको उसके साथ विवाह करना पड़ता है। इनमें बहुत विवाह और विधवाविवाह भी प्रचलित है। स्त्रीका चालचलन खराब होनेसे उसे छोड़ देनेकी विधि है। बड़ा लड़का हो पितृसम्पत्तिका अधिक भाग पाता है और बाकी दूसरेको थोड़ा थोड़ा मिलता है।

काली या महामायाकी पूजामें ये विशेष भक्ति दिखलाते हैं। सिङ्गवोङ्गा या धर्म नामक वे शस्यदाता सूर्यकी भी पूजा करते हैं। ये लोग शवदेहको जलाते हैं। मुखाग्निके वाद मुखाग्निदाता पुरुष घर लौट जाता है और मृतकी पत्नी तथा परिवारस्थ अन्य स्त्रियां वहां कलसीमें जल ला उपस्थित होती हैं। चिताग्नि जल जाने पर स्त्रियां कलसीके पानीसे आग बुझा देतीं और बाद सबके सब घर लौटती हैं। ये दशवें दिन क्षौरकर्म और ग्यारहवें दिन श्राद्ध करते हैं। घटवाल भूमिजोंमेंसे अनेक सैनिकके काम भी करते हैं।

भूमिज-गुग्गुलु (सं० पु०) भूमिजो गुग्गुलुः। आशापुर गुग्गुल। पर्याय—दैत्यमेदज, दुर्गाह्व, आशापुरसम्भव, मज्जार, मेदज, महिषासुरसम्भव। गुण—तिक्त, कटु, कफवातनाशक, मेध्य, भूतघ्न और सुगन्धप्रद। (राजनि०)

भूमिजम्बु (सं० स्त्री०) भूमिजाता जम्बुः। क्षुद्र जम्बु, छोटा जामुन। पर्याय—नादेयिका, नादेयी, भूजम्बु, भूमिजम्बुका, काकजम्बु, शीतपल्लवा, ह्रस्वफला, भृङ्गवल्लभा, ह्रस्वा, भ्रमरेष्टा, पिकभक्षा, काष्ठजम्बु। गुण—कषाय, मधुर, श्लेष्मपित्तनाशक, रुचिकर, संग्राहक, हृदय और कण्ठदोषनाशक, वीर्यकर और पुष्टिवर्द्धक। (राजनि०)

भूमिजम्बु (सं० स्त्री०) भूमिजाता जम्बुरिति मध्यपदलोपिकर्मधा०। भूजम्बु, छोटा जामुन।

भूमिजम्बुका (सं० स्त्री०) स्वनाम-प्रसिद्ध वृक्षभेद। हिमालय पर्वतके पाददेश कुमायुनसे ले कर भूटानपर्यन्त विस्तृत स्थानोंमें तथा दक्षिणभारतमें यह वृक्ष देखनेमें आता है। इसकी जड़का काढ़ा वातरोगमें विशेष उपकारी है।

भूमिजा (सं० स्त्री०) भूमिज टाप्। सीता।

भूमिजीविन् (सं० पु०) भूम्या तत्कर्षणादिना जीवतीति जीव-णिनि। १ वैश्य। २ कृषिजीवी, खेतिहर।

भूमिञ्जय (सं० पु०) राजा विराटके एक पुत्रका नाम।

भूमिडुम्बुर (सं० क्ली०) स्वनाम प्रसिद्ध एक प्रकारका छोटा क्षुप। ग्रीष्मप्रधान भारतके नदी-किनारे, सिंहलमें तथा ब्रह्मके आवासे तेनासेरिम पर्यन्त विस्तृत स्थानोंमें यह वृक्ष पाया जाता है। संस्कृतमें इसे त्रायमाणा कहते हैं। इसके कच्चे रेशेका रस सेवन करनेसे शूलवेदना जाती रहती है। पत्तेका रस दूधके साथ मिला कर पीनेसे उदरामय नष्ट होता है। धनियेके साथ तिक्त रेशेको छालका काढ़ा कासरोगग्रस्त रोगीको पिलानेसे भारी उपकार होता है।

भूमितल (सं० क्ली०) भूतल, पृथ्वीका ऊपरी भाग।

भूमितुण्डिक (सं० पु०) जनपदभेद।

भूमित्व (सं० क्ली०) भूमेर्भावः त्व। भूमिका भाव या धर्म।

भूमिदण्ड (हिं० पु०) साधारण दण्ड या डंड नामकी कसरत जो दोनों हाथ जमीन पर टेक कर और वार वार उन्हीं हाथोंके वल झुक और उठ कर की जाती हो।

डंड देखो।

भूमिदण्डा (सं० स्त्री०) मल्लिका पुष्पवृक्ष, चमेली।

भूमिदाड़िम्ब (सं० क्ली०) स्वनाम प्रसिद्ध लोहितवर्ण गुल्मभेद। (Careya herbacea) कुमायुनके तराईप्रदेशसे ले कर आसाम और चट्टग्रामके पहाड़ीप्रदेशमें तथा वङ्गाल। अयोध्या और मध्य प्रदेशके समतल क्षेत्रमें फाल्गुन और चैत्रमासमें यह वृक्ष उत्पन्न होते देखा जाता है।

भूमिदान (सं० क्ली०) हिन्दूशास्त्रोक्त दानभेद। श्राद्धादि कर्ममें तथा व्रतविशेषमें ब्राह्मणको भूमिदान करनेकी विधि है। धान्यपूर्ण क्षेत्रदान महापुण्यजनक है।

(भूमि शब्द देखो।

भूमिदुन्दुभि (सं० पु०) चर्माच्छादित भूगर्त्त। (वैदिक)

भूमिदेव (सं० पु०) भूमौ देव इव, भूम्या देवो वा। १ ब्राह्मण। २ राजा।

भूमिधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्। भूम्या धरः। १ कुल-पर्वत। २ पर्वतमात्र।

भूमिप (सं० पु०) भूमिं पाति रक्षतीति पा-(आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति क। राजा, भूपति।

भूमिपक्ष (सं० पु०) भूमिः पक्ष इव यस्य । वाताश्व ।
भूमिपति (सं० पु०) भूम्याः पतिः । भूमिनाथ, राजा ।
भूमिपतित्व (सं० क्ली०) भूमिपतेर्भावः, त्व । भूपतिका भाव या धर्म ।
भूमिपाल (सं० पु०) भूमिं पालय-तीति पालि-अण् । राजा ।
भूमिपाल—उमाङ्गाधिपति चन्द्रवंशीय एक राजा । विहार प्रदेशके उमगा नगरमें उनकी राजधानी थी ।
भूमिपालक—सह्याद्रिवर्णित एक राजा ।
भूमिपाश (सं० पु०) वृक्षभेद ।
भूमिपिशाच (सं० पु०) भूमौ पिशाच इव, तद्वदाकृति-मत्वात् । तालवृक्ष, ताड़का पेड़ ।
भूमिपुत्र (सं० पु०) भूम्याः पुत्रः । १ मङ्गलग्रह । २ नरकासुर । ३ श्योणाक वृक्ष ।
भूमिपुत्री (सं० स्त्री०) सीता, जानकी ।
भूमिपुरन्दर (सं० पु०) १ राजा । २ दिलीपका एक नाम ।
भूमिप्रविभाग (सं० पु०) भूम्याः प्रविभागः । सुश्रुतोक्त औषधाङ्ग भूमिविभाग । किस भूमिसे कैसी औषध संग्रह करनी होगी, सुश्रुतमें इसका विशेष विवरण लिखा है । भूमि शब्द देखो ।
भूमिभाग (सं० पु०) भूम्यंश, स्थान, जगह ।
भूमिभुज (सं० पु०) भुमिं भुनक्ति भुज-क्विप् । राजा ।
भूमिभृत् (सं० पु०) भूमि-भृ क्विप, तुक् च । १ राजा । २ पर्वत ।
भूमिभेदिन् (सं० त्रि०) १ भूमिभेदकारक । २ भूमिसे पृथक्-कारी ।
भूमिमण्ड (सं० पु०) भूमिं मण्डयति भूषयतीति मड़ि-अण् । अष्टपादिका लता ।
भूमिमण्डन—सह्याद्रिवर्णित एक राजा ।
भूमिमण्डपभूषणा (सं० स्त्री०) भूमिं मण्डपं भूषयतीति भूषि-ल्यु टाप् । माधवी लता ।
भूमिमत् (सं० त्रि०) भूमि अस्त्यर्थे मतुप् । भूमियुक्त, जिसे भूमि हो ।
भूमिमित्र (सं० पु०) मित्रवंशीय राजभेद ।

भूमिया (हिं० पु०) १ भूमिका अधिकारी, भूमिका असल मालिक । २ ग्रामदेवता । ३ जमींदार । ४ किसी देशके प्राचीन और मुख्य निवासी ।
भूमिरक्षक (सं० पु०) रक्षतीति रक्ष-ण्वुल्, भूमे रक्षकः गमनकाले भूमेरुपरि पादा-प्रदानात् तथात्वं । १ वाताश्व । २ भूमिरक्षाकारी ।
भूमिरुह (सं० पु०) भूमि-रुह-क । वृक्ष ।
भूमिलग्ना (सं० स्त्री०) शुक्ल गोकर्णी, सफेद फूलकी अपराजिता ।
भूमिलता (सं० स्त्री०) १ शङ्खपुष्पीलता । २ किञ्चु-लुका ।
भूमिलवण (सं० क्ली०) मृत्तिकालवण, सोरा ।
भूमिलाभ (सं० पु०) भूमे र्लाभोऽत्र । १ मृत्यु । २ भूमि-प्राप्ति, भूमिका लाभ ।
भूमिलेपन (सं० क्ली०) भूमिर्लिप्यतेऽनेनेति लिप- ल्युट् । १ गोमय, गोवर । २ भूमिका लेपन ।
भूमिलोक (सं० पु०) पृथिवीलोक ।
भूमिवर्द्धन (सं० पु० क्ली०) भूमिं वर्द्धयतेऽनेनेति वृध-णिच् ल्युट् । मृत शरीर, शव ।
भूमिवल्ली (सं० स्त्री०) मार्कण्डिका लता, भुइं आँवला ।
भूमिशय (सं० पु०) भूमौ शेते शी-अच् । १ बालक । २ वनचटक । ३ भूमिशयन ।
भूमिशय्या (सं० स्त्री०) भूमिरेव शय्या । भूमिरूपशय्या, मृत्तिकाशय्या ।
भूमिष्ठ (सं० त्रि०) भूमौ तिष्ठति स्था-क, अम्वादित्वात् षत्वं । १ प्रणत । २ भूमि पर पतित, पृथिवी पर गिरना । ३ जात, उत्पन्न ।
भूमिसत्र (सं० क्ली०) भूमिदान-रूपं सत्रं, मध्यपदलोपि-कर्मधा० । भूमिदानरूपी यज्ञ । महाभारतमें लिखा है—

"इक्षुभिः सहितां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
गोऽश्ववाहनपूर्णां वा बाहुवीर्यादुपार्जिताम् ॥
निधिगर्त्तां ददद् भूमिं सर्वरत्नपरिच्छदाम् ।
अक्षयान् लभते लोकान् भूमिसत्रं हि तस्य तत् ॥"
(भारत अनुशासनप० ६२ अ०)

बाहुवीर्य द्वारा उपार्जिता शस्यशालिनी भूमिदान

करनेका नाम ही भूमिसत्र है। इस यज्ञके करनेवाले अक्षय लोकको प्राप्त होते हैं।

भूमिसे वस्त्र, रत्न, पशु और धान्य तथा यव आदि शस्य उत्पन्न होते हैं। अतएव इहलोकमें भूमिदानकी अपेक्षा उत्कृष्ट दान और कोई भी दान नहीं है। भूमिदाता बहु काल तक समृद्धिशाली हो परमसुखसे कालयापन करते हैं।

जिनने पूर्वजन्ममें भूमिदान किया है, वे ही परजन्ममें भूमिभोग कर सकते हैं। भूमिदान करनेसे तपस्या, यज्ञ, विद्या, सुशीलता, अलोभ, सत्यवादिता, देवार्चना, गुरु शुश्रुषा तथा स्वर्ण, रजत, वस्त्र और मणिमुक्ता आदि विविध धनदानका फल होता है। अनुशासनपर्वके ६२वें अध्यायमें भूमिदानका विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं लिखा गया।

भूमिसम्पुट (सं० पु०) शरावादि।

भूमिसम्भवा (सं० स्त्री०) भूमेः सम्भव उत्पत्तिर्यस्याः। सीता।

भूमिसर (सं० पु०) श्यामाक तृण।

भूमिसव (सं० पु०) व्रात्यस्तोम यज्ञभेद।

भूमिसुत (सं० पु०) भूमेः सुतः। १ मङ्गल। २ नरकासुर। ४ वृक्ष, पेड़। ४ क्रौञ्च, केवाँच।

भूमिसुता (सं० स्त्री०) सीता, जानकी।

भूमिसुर (सं० पु०) ब्राह्मण।

भूमिसेन (सं० पु०) दशममनुके एक पुत्रका नाम।

भूमिस्तोम (सं० पु०) एकाहसाध्य यज्ञभेद, एक दिनमें सम्पन्न होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

भूमिस्नु (सं० पु०) भूमिकीट।

भूमिस्पृश् (सं० पु०) भूमिं स्पृशतीति स्पृश् (स्पृशोऽनुदके क्विन्। पा ३।२।५८) इति क्विन्। १ मनुष्य। २ वैश्य। ३ चौरविशेष। ४ अन्ध। ५ खञ्ज।

भूमिस्पर्श (सं० पु०) उपासनाके लिए बौद्धोंका एक आसन। इसे वज्रासन भी कहते हैं।

भूमिस्पर्शमुद्रा (सं० स्त्री०) भूमिस्पर्श देखो।

भूमिहार—विहारप्रदेशवासी एक श्रेणीके ब्राह्मण। ये लोग भूंइहार, जमींदार, बाभन, मघहिया ब्राह्मण, अयज्ञक ब्राह्मण और चौधरी नामसे जनसाधारणमें प्रसिद्ध हैं। इस जातिकी उत्पत्ति-कथासे (१) इनका नीचजातित्व कल्पित होने पर भी शारीरिक गठन और उदारप्रकृति देखनेसे इन्हें नीचवंशोद्भव नहीं कहा जा सकता। पर हां, इतना जरूर है, कि ये लोग बहु कालसे ब्राह्मणकी यजनयाजनादि वृत्तिका परित्याग कर भूमिरक्षा और कृषिकार्यादि द्वारा कालयापन करते आये हैं। समय समय पर ये लोग क्षत्रियोचित युद्धविग्रहादि द्वारा अपने अधिकारको कायम रखनेके लिये भी विशेष चेष्टा करते हैं। वङ्गालके 'वारभूंया' नामक प्रसिद्ध राजा वा जमींदारोंने एक समय बड़ी वीरतासे मुसलमान राजाओंका मुकावला किया था। भूमिवृत्तिसे उन लोगोंका जिस प्रकार 'भौमिक' नाम पड़ा, विहारमें ये लोग भी उसी तरह 'भूंइहार' वामन या वाभन नामसे पूर्व ब्राह्मण नामका परिचय देते हैं। वाराणसी, बेतिया और मगधके अन्तर्गत टिकारीके ब्राह्मण-राजवंश इसी वाभनवंशसम्भूत हैं।

अरापे, अधिमिश्र, चौबे, चौधरी, दीक्षित, दूबे, ?वार, मिश्र, ओझा, पञ्चोबे, पाण्डे, पाठक, राय, सिंह, श्रोती, ठाकुर, तिवारी और उपाध्याय प्रभृति इनकी वंशोपाधि हैं। इन लोगोंके मध्य तीन प्रकारके गोत्र

(१) इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें तरह तरहकी कथाएँ सुनी जाती हैं। परशुरामने पृथिवीको निःक्षत्रिय करके जिन ब्राह्मणोंको राज्यशासनका भार सौंपा था, उन्हींके वंशधरोंने धीरे धीरे जातीयवृत्तिका परित्याग कर भूम्याधिकारित्व ग्रहण किया। किसी किसीका कहना है, कि पुत्रहीन अयोध्यापति अम्बरीषके यज्ञमें जिस शुनःशेफको विश्वामित्र ऋषिने दयापरवश हो उत्सर्गसे बचाया था, वही ब्राह्मण-वंशधरगण ब्रह्मभावहीन हो बाभन कहलाये। बहुतोंका कहना है, कि मगधपति जरासन्धके यज्ञमें जब लाख ब्राह्मणोंकी उपस्थिति आवश्यक हुई, तब राजदीवान (एक अम्बष्ठ कायस्थ)-ने कुछ निम्नश्रेणीके लोगोंको यज्ञोपवीत दे कर राजाका अभिलाष पूर्ण किया। राजा इन लोगोंके असदृशभावको देख कर दीवान पर बड़े बिगड़े। इस पर दीवानने उनके हाथकी रसोई खा कर राजाका संदेह दूर किया। ये ही लोग पीछे ब्राह्मण-समाजमें नहीं लिये जाने पर बाभन या वामन नामक स्वतन्त्र समाजभुक्त हुए।

प्रचलित हैं (२) जिनमेंसे कुछ तो ऋषिके नाम पर, कुछ कार्य वा व्यक्तिगत (३) और कुछ देशगत (४) हैं। इन लोगोंमें सगोत्रमें विवाह नहीं होता। यहां तक, कि कन्याकी माता और वरको माताका एक गोत्र हो, तो भी विवाह सम्बन्धमें वाधा पहुंचती है। किन्तु युक्तप्रदेशके भूमिहारोंमें ऐसी अवस्थामें कोई वाधा नहीं है। इन लोगोंमें बाल्यविवाह ही प्रचलित है। वालक यदि जवान हो जाय, तो कोई दोष नहीं, पर बालिकाके युवती होने पर दोष लगता है। एक पुरुष दो वा दो से अधिक विवाह कर सकता है। विवाह-प्रथा प्रायः मैथिल, कनोजिया आदि उच्च श्रेणीके ब्राह्मणों-सी है। सिन्दूरदान होनेसे ही विवाह सिद्ध होता है। ये लोग शवदेहको जलाते हैं। १० दिन तक अशौच रहता है, ११वें दिन श्राद्ध होता है। कनोजिया ब्राह्मण और कहीं मैथिल ब्राह्मण भी इनके पुरोहित होते हैं।

उच्च श्रेणीके ब्राह्मणके जैसे ये लोग धर्मकर्म करते हैं। इनमें वैष्णव, शाक्त और शैव साम्प्रदायिक उपासना प्रचलित है। सांप्रदायिक क्रियाकलापमें अभिनिविष्ट रहने पर भी ये लोग कालीमाता और शीतलाकी पूजामें छाग वलि देते हैं तथा प्रति मङ्गलवारको हनुमानकी पूजा करते हैं।

स्थान विशेषमें इन लोगोंकी सामाजिक अवस्था विभिन्न है। दक्षिण-पूर्व विहारमें ये लोग कायस्थसे हीन समझे जाते हैं। शाहावाद, सारण और युक्तप्रदेशमें ये लोग राजपूत जातिके समान हैं। पटना और गयाके अम्बष्ठ कायस्थ इनके हाथकी कच्ची रसोई खाते हैं, पर अन्य श्रेणीके कायस्थ नहीं खाते। उच्च श्रेणीके ब्राह्मणके साथ ये लोग एकत्र जल वा धूमपान नहीं करते हैं। राजपूतगण इनके हाथसे मट्टीके वरतनमें पानी पीते और खाद्यादि भक्षण करते हैं, किन्तु स्थलविशेषमें इसमें भी वैलक्षण्य देखा जाता है। ये लोग ब्राह्मणके हाथको कच्ची पक्की दोनों तथा राजपूतोंके हाथकी पक्की रसोई खाते हैं। ये लोग अपने वालकोंको विहित मन्त्र द्वारा उपनयन-संस्कार देते हैं। शैव और शाक्तगण मछली खाते हैं, किन्तु वैष्णव निरामिषाशी हैं। मद्यपान शास्त्रविरुद्ध है।

वाराणसी, बेतिया, टिकारी, हतोया, तमोखी शिवहर और मधुवनके जमींदार भूमिहार हैं। एतद्भिन्न और भी कितने भूम्याधिकारी ब्राह्मण देखनेमें जाते हैं।

(२) अग्निहोत्र, आथर्व, वाशिष्ठ, भरद्वाज, गर्ग, गौतम, हारीत, काश्यप, कौण्डिन, कौशिक, पराशर, सावर्ण्य, शाण्डिल्य और वात्स्य।

(३) भूषवरात, चौभाइया, एकसेरिया, जलेवार, कोदारिया और पांचभाइया।

(४) यह प्रायः १६२ गोत्र है। यथा—ऐलवार, अम्बारिया, गौड़, शोणभदरिया, गंभारिया, चौसा प्रभृति।

भूमिहारक—ब्रह्मखण्ड-वर्णित जातिविशेष।

भूमी (सं० स्त्री०) भूमि पक्षे ङीष्। भूमि।

भूमीन्द्र (सं० पु०) भूम्यामिद्र इव, भूमेः इंद्र ईश्वरो वा। राजा।

भूमीरुह (सं० पु०) भूमग्रां रोहतीति रुह-क। वृक्ष, पेड़।

भूमिसह (सं० पु०) भूमेः सहते उत्सहते उत्पद्यते इति सहअच्। वृक्षविशेष। पर्याय—द्वारदातु, वरदातु, खरच्छद। गुण—शीतल और रक्तपित्त-प्रसादन।

भूम्यनन्तर (सं० पु०) भूमेरन्तरः। राजशत्रु।

भूम्य (सं० त्रि०) भूमिमर्हति यत्। धरार्ह, पृथ्वी पर होने योग्य।

भूम्याङ्गुल्य (सं० क्ली०) स्वनामख्यातक्षुप। गुण—तिक्तरस, ज्वर, कुष्ठ, आम और सिध्महर।

भूम्याफली (सं० स्त्री०) अपराजिता-लता।

भूम्यामलकी (सं० स्त्री०) भूमिलग्ना आमलकी, शाकपार्थिवादित्वात् समासः। क्षुपविशेष, भुइं आँवला, पर्याय—बहुपुष्पी, जड़ा, अध्यण्डा, तालि, तामलकी, अजटा, सूक्ष्मफला, क्षेत्रामलकी, वितुन्नक, झटा, अमला, अजझटा, ताली, शिवा, झाटा, मला, झटामला, अमलाज् झटा, भूम्यामलकिका, शिवामलकी, बहुपुत्रा, बहुफला, बहुवीर्या, भूधात्री, गुण—वातकारक, तिक्त, कषाय, मधुर, हिम, पिपासा, कास, पित्त, अस्रक, कफ, पाण्डु और क्षतनाशक।

राजनिघण्टुके मतसे पर्याय—तमाली, ताली, तमालिका, उच्चटा, वृष्यादी, वितुन्ना, वितुन्निका, भूधात्री,

चारटी, वृष्या, विषघ्नी बहुपत्रिका, बहुवीर्या, अहिभयादा, विश्वपर्णी, हिमालया, अजझटा, वीरा। गुण—कषाय, अम्ल, पित्त, मेह और दाहनाशक, शीतल तथा मूत्ररोध नाशक। (राजनि०)

यह ठंढे स्थानमें प्रायः घरोंके आस पास होती है। इसकी पत्तियां छोटी छोटी एक सींकेमें दोनों ओर होती हैं और इसी सींकेमें पत्तियोंको जड़ोंमें सरसोंके बराबर छोटे छोटे फूलोंको कोठियां लगती हैं जिनके फूल फूलने पर इतने छोटे होते हैं, कि उनकी पंखड़ियाँ स्पष्ट नहीं दिखाई देतीं। जब फूल झड़ जाते हैं, तब राईके बराबर छोटे छोटे फल लगते हैं। यह घास औषधिके काममें आती है। अजीर्ण, दौर्बल्य और यक्ष्माकास रोगोंमें यह विशेष उपकारी है। इसके फलके बीजसे एक प्रकार का तेल निकलता है।

भूम्यामली (सं० स्त्री०) भूम्या आमलते आत्मानं धारयतीति आ-मल-अच् ङीष्। भूम्यामलकी।

भूम्यालीक (सं० पु०) धरती सम्बन्धी मिथ्या भाषण, किसीकी जमीनको अपना बताना।

भूम्याहुली (सं० स्त्री०) अपराजिता-लता।

भूम्याहुल्य (सं० क्ली०) भूमिमाहोलति आच्छादयतीति आ-हल-क, ततो यत्। क्षुपविशेष। पर्याय—कुष्ठकेतु, मार्कण्डीय, महौषध। गुण—तिक्त, कटु, ज्वर, कुष्ठ और आमनाशक।

भूम्युदराश्रया (सं० स्त्री०) मूषिककर्णीलता, मूसाकानी।

भूयस्—चालुक्यवंशीय एक प्राचीन राजा। कान्यकुब्जके निकटवर्त्ती काञ्चनकटकपुरमें उनकी राजधानी थी।

भूयस् (सं० त्रि) अयमनयो रतिशयेन बहुरिति बहु (द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयसुनौ। पा ५।३।५७) इति ईयसुन् (बहोर्लोपो भू च बहोः। पा ६।४।१५८) इतीयसुन् ईलोपः भुरादेशश्च। बहुतर, अधिक।

भूयस् (सं० अव्य०) भुवे भावाय यस्यति यतते इति-भू-यस्-क्विप्। १ पुनः, फिर। २ बहुत, ज्यादा।

भूयण (हिं० स्त्री०) पृथ्वी।

भूयशस् (सं० अव्य०) भूयस् वीप्सार्थे शस्, सलोपः। बहुश, बहु प्रकार।

भूयस्कर (सं० त्रि०) भूयो बहुतरं करोति कृ-अण्। बहुतरकारक।

भूयस्थत् (सं० त्रि०) भूयो बहुवारं करोतीति कृ-क्विप्। पुनः पुनः कारक।

भूयस्तराम् (सं० अव्य०) अतिशय बार बार।

भूयस्त्व (सं० क्ली०) भूयो भावः त्व। पुनः पुनस्त्व, बहुका भाव या धर्म।

भूयस्विन् (सं० त्रि०) पौनपुन्यविशिष्ट।

भूयिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन बहुरिति बहु इष्ठन् (इष्ठस्य यिट् च। पा ६।४।१५९) इति यिड़ागमो बहोःस्थाने भूरादेशश्च। बहुतर, प्रचुर।

भूयिष्ठभाज् (सं० त्रि०) भूयिष्ठं भजते भज-ण्वि। प्रचुर भजनाकारी।

भूयिष्ठशस् (सं० अव्य०) बहु बारमें, कई दफेमें।

भूयुक्ता (सं० स्त्री०) भुवा युक्ता। भूमिखर्ज्जूरी, भुइंखजूर।

भूर् (सं० अव्य०) भू-रुक्। अन्तरीक्ष लोकके अधःस्थित चरणसञ्चारयोग्य स्थान, लोक।

भूर (हिं० वि०) १ बहुत, अधिक। (पु०) २ बालू।

भूर—अयोध्या प्रदेशके खेरी जिलान्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण ३७६ वर्गमील है। यहांका चौकानतीरवर्त्ती विस्तीर्ण भूभाग अधित्यकाकी तरह ऊँचा है। इसके ऊपरी भाग पर बहुत-से समृद्धिशाली ग्राम हैं। आम्र, अमरूद, बेर आदि असंख्य भक्ष्यफलोंका कानन इसकी शोभाको बढ़ाता है। यह स्थान समधिक उर्वरा और प्रचुर शस्यशाली है। एतद्भिन्न यहांके गणियार नामक निम्न समतलक्षेत्र पर भी अच्छी खेती बारी होती है। शरतकालकी वृष्टिसे नदीमें इतनी बाढ़ उमड़ आती है, कि आसपासके सभी स्थान बह जाते हैं। पीछे पानीके हट जानेसे जमीन पर जो पंक पड़ जाता है उससे जमीनकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है। इस परगनेके अन्तर्गत अलीगञ्ज, शादपुर, बड़िया, खेरा और जगदीशपुर ग्राममें बहुसंख्यक दुर्ग, पुष्करिणी आदिका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। स्थानीय अधिवासिगण इसे वेणराजाकी कीर्त्ति बतलाते हैं।

२ उक्त परगनेका एक प्राचीन ग्राम। निकटवर्त्ती

भागते भागते आप जंगली और पहाड़ी मार्गोंसे रायगढ़ पहुंचे। नगरके वाहर एक देवी-मन्दिरके पास विश्राम करनेके लिये घोड़ेसे उतरे। उसी समय आपको शिवाजीके सेनापतिसे मुलाकात हुई। आपने अपनी सब रामकहानी सेनापतिको कह सुनाई और शिवाजी-की प्रशंसा करते हुए यह कवित्त पढ़ा—

"इन्द्र जिमि जम्भ पर वाडव सुअंभ पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुलराज है।
पौन वारिवाह पर शंभु रतिनाह पर
ज्यों सहस्रवाह पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम दुण्ड पर चीता मृग झुण्ड पर
भूखन वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तिमिरंश पर कान्ह जिमि कंस पर
त्यों म्लेच्छ वंश पर सेर शिवराज हैं॥"

यह सुन कर सेनापतिका हृदय वीरत्वसे फूल गया तथा वार वार पढ़नेको कहा। अन्तमें पढ़ते पढ़ते थक जाने पर सेनापतिने आपको दरवारमें आने कहा।

दूसरे दिन आप दरवारमें पहुंचे, वहां आपने उस सेनापतिको वहुत ढूंढ़ा पर कुछ पता न चला। अन्तमें शिवाजीको राजसभामें आपने कवित्त पढ़े। सारी सभा मुग्ध हो गई। शिवाजी ने आपकी भूरि भूरि प्रशंसा कर उच्च आसन पर बैठनेकी प्रार्थना की और कितनी कविता सुनाने पर शिवाजी प्रसन्न हो बावन गांव हाथी आदिकी आपको खिलत दी। भूषण कवि शिवाजीके साथ स्वयं युद्धमें जाते थे और वीरोंके उत्साह वढ़ाते थे। आपका पूर्णनाम कुछ और था। चित्रकूट नरेश सोलङ्की महाराजने आपको 'कवि-भूषण' की उपाधि दी, आपके 'शिवराजभूषण' से ऐसा पता लगता है। महाराज छत्रसालने आपकी पालकी कन्धे पर ढोई थी। भूषण हजारा, भूषण उल्लास और दूषण उल्लास ये तीन ग्रन्थ और आपके वनाये मिलते हैं। आपकी गिनती तोष कवियोंमें होती है।

भूषणदेव—१ एक प्राचीन कवि।

भूषणभट्ट—१ गायत्रीपद्धतिके प्रणेता। २ कादम्बरी उत्तरार्द्धके रचयिता। ये वाणके पुत्र थे।

भूषणता (सं० स्त्री०) भूषणस्य भाव, तल-टाप्। भूष-णत्व, भूषणका भाव या धर्म।

भूषणेन्द्र प्रभ (सं० पु०) किन्नर राजभेद।

भूषा (सं० स्त्री०) भूष भावे अ टाप् च। १ अलंकृत करनेकी क्रिया, सजानेकी क्रिया। २ आभूषण, गहना।

भूषित (सं० त्रि०) भूष-क्त। २ अलंकृत, गहना पहने हुआ। २ सज्जित, सजाया हुआ।

भूष्णु (सं० त्रि०) भू-ग्स्नु। १ भवनशील। पर्याय—भविष्णु, भविता। २ साधुभवनशील।

भूष्य (सं० त्रि०) भूष-यत्। भूषणीय, अलङ्कार पहनाने या सजानेके योग्य।

भूसंस्कार (सं० पु०) भुवः संस्कारः ६-तत्। यज्ञ करनेसे पहले भूमिको परिष्कृत करने, नापने, रेखाएं खींचने आदि-की क्रियाएं।

भूसना (हिं० क्रि०) कुत्तोंका वोलना, भूंकना।

भूसा (हिं० पु०) तुष, भूसी।

भूसी (हिं० स्त्री०) १ भूसा। २ किसी प्रकारके अन्न या दानेके ऊपरका छिलका।

भूसीकर (हिं० पु०) अगहनके महीनेमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल सालों रह सकता है।

भूसुत (सं० पु०) भुवः पृथिव्याः सुतः। १ मङ्गलग्रह। २ वृक्ष, पेड़। ३ नरकासुर। (त्रि०) ४ जो पृथ्वीसे उत्पन्न हों।

भूसुता (सं० स्त्री०) सीता, जानकी।

भूसुर (सं० पु०) भुवि सुर इव। ब्राह्मण।

भूस्तृण (सं० क्ली०) भूलग्नं तृणं भुवस्तृणमिति वा, पारस्करादित्वात् सुट्। भूतृण, एक प्रकारकी घास।

भूस्थ (सं० त्रि०) भुवि तिष्ठतीति स्था-क। १ पृथिवी-स्थित, जमीन परका। (पु०) २ मनुष्य। ३ गण्डूपदी, केंचुआ।

भूस्पृश (सं० पु०) भुवं स्पृशतीति स्पृश-किन्। मनुष्य।

भूस्वर्ग (सं० पु०) भुवि स्वर्ग इव अमरलोक-धारणात्। सुमेरुपर्वत।

भूस्वेद (सं० पु०) घनाश्म द्वारा स्वेदविशेष। स्वेद देखो।

भृकुंश (सं० पु०) कुसि-अच् कुसो भावदोपनं पृषोदरादि त्वात् सस्य शत्वं, भ्रुवा कुशो भावप्रकाश इङ्गितज्ञापनं

यस्य, निपातनात सम्प्रसारणम्। स्त्रीवेशधारी नट-पुरुष।

भृकुंस (सं० पु०) चुरादौ पटपुटेत्यादि दण्डकोक्तः कुसिर्भासार्थः, स्त्रीवेशं धारयित्वा भ्रुवः कुसयति पुरुषत्वामिति संज्ञात्वादुकारस्य अकारः, ह्रस्वश्च वा, कुसि अच्, यद्वा भ्रुवा कुंस इङ्गितप्रकाशो यस्य निपातनात् संप्रसारणम्। स्त्रीका वेश धारण करनेवाला नट।

भृकुटी (सं० स्त्री०) कुट कौटिल्ये इति कुट-इन्, भ्रुवः कुटिः, कौटिल्यं निपातनात् वा संप्रसारणम्। भ्रूकुटी, भौंह।

भृगमालिक (सं० पु०) मृगमालिक।

भृगवाण (सं० त्रि०) १ भृगुसदृश। २ दीप्यमान।

भृगु (सं० पु०) तपसा भृज्ज्यते पच्यतपादिभिर्वेति भ्रस्ज (प्रथि भ्रादिं भ्रद्जां सम्प्रसारेणं सलोपश्च। उण् ३।२६) इति कु, सम्प्रसारणं सलोपः न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वञ्च, यद्वा भृज्जतीति क्विप, भृक् ज्वाला तया सहोत्पन्न इति उ। १ मुनिविशेष, एक मुनिका नाम। महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—पूर्वकालमें भगवान् रुद्रने वारुणिमूर्त्ति धारण कर एक यज्ञका अनुष्ठान किया। इस यज्ञको देखनेके लिए मूर्त्तिमान् तप, यज्ञ, व्रत, दीक्षा, दिक्पतियोंके साथ दिक् समुदाय, देवपत्नी, देवकन्या तथा देवजननीगण सभी प्रसन्न चित्तसे वहां पधारे। उस समय ब्रह्मा वहिर्यज्ञमें दीक्षित हो कर प्रज्वलित हुतासनमें आहुति प्रदान करते थे। अतः देवकन्याको देखते ही उनका वीर्यस्खलन हो गया। तब सूर्यने अपनेहाथसे उस वीर्यको ग्रहण कर हुताशनमें फेंक दिया। अनन्तर फिरसे भगवान् प्रजापतिका रेतःस्खलन हुआ। तब उन्होंने स्वयं उस शुक्रको स्रुव द्वारा ग्रहण कर हवनीय द्रव्यकी तरह मंत्रोच्चारण-पूर्वक अग्निमें आहुति प्रदान की।

अग्निमें ब्रह्माका वीर्य आहुत होते ही पहले उसकी शिखासे भृगु, सधूम अङ्गारसे अङ्गिरा तथा निर्धूम अङ्गारसे कविकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार भृगु प्रभृतिकी सृष्टि होनेसे वारुणीमूर्त्तिधारी महादेवने देवताओंको सम्बोधन कर कहा, 'मैंने इस यज्ञका अनुष्ठान किया है—मैं ही इसका कर्त्ता हूं। अतएव जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए वे मेरे ही पुत्र हैं।' इस पर अग्निने उत्तर दिया,—ये तीनों पुत्र मुझे ही आश्रय कर मेरे अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं, सुतरां वे मेरे ही अपत्य हैं। महादेव कदापि इनके अधिकारी नहीं हो सकते। इतना कह कर अग्नि चुप हो गई। तब भगवान् ब्रह्मा बोले, "मेरे ही वीर्यसे ये तीनों पुत्र उत्पन्न हुए हैं, अतएव ये मेरी ही सन्तान हैं। कारण शास्त्रानुसार बीज बोनेवाले ही फलभोगी होते हैं।" इस प्रकार तीनों आपसमें झगड़ने लगे। तब देवताओंने मध्यस्थ हो कर उक्त तीनों पुत्रको तीनोंमें बांट दिया। तेजस्वी भृगु महादेवके, अङ्गिरा अग्निके तथा कवि ब्रह्माके पुत्ररूपमें कल्पित हुए। अनन्तर धीरे धीरे भृगु, अङ्गिरा तथा कविके वंशजात प्रजासमूहसे जगत् परिपूर्ण हुआ है। वारुणामूर्त्तिधारी महादेवके यज्ञसे ये उत्पन्न हुए थे, अतः इनके वंशसमुदायका नाम वारुण पड़ा। किन्तु भृगुसे जो वंश उत्पन्न हुआ है, वह भार्गव नामसे प्रसिद्ध हैं। (भारत अनुशासनप० ८५ अ०)

इसी भृगुवंशमें परशुरामनेजन्मग्रहण किया। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि भृगु ब्रह्माके मानस पुत्र थे। ये दश प्रजापतियोंमेंसे एक हैं। दक्षकन्या ख्यातिके साथ इनका विवाह हुआ। इस ख्यातके गर्भसे विष्णुपत्नी लक्ष्मी तथा धाता और विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। महात्मा मेरुकी आयति और नियति नामक दो कन्याके साथ दोनोंका विवाह हुआ। उनके पुत्र मृकण्डु आर प्राण हुए। धीरे धीरे इनका वंश विस्तृत हो कर भार्गव नामसे प्रसिद्ध हुआ। भृगु धनुर्वेदविद्याके प्रवर्त्तक थे। (विष्णुपुराण) रामायणमें लिखा है,—किसी समय जब असुरोंने भृगुपत्नीका आश्रय ग्रहण किया, तब असुरोंके नाशार्थ फेंके गये विष्णुके चक्रसे भृगुपत्नीका मस्तक कट गया। इस पर भृगुने भगवान् विष्णुको शाप दिया। इस शापसे भनवान् विष्णुको रामावतारमें पत्नीवियोग-दुःख भोगना पड़ा था। इन्होंने किसी समय क्षत्रिय वीतहव्यको ब्राह्मणत्व प्रदान किया था।

भृगु सप्तर्षिमेंसे एक हैं। प्रति दिन तर्पण करनेके समय भृगुके उद्देशसे तर्पण करना चाहिए। भगवान् विष्णुने गीतामें कहा है,—मैं महर्षियोंके मध्य भृगु हूं। २ शिवका दूसरा नाम। इन्होंके वर-प्रभावसे सगर

राजाने पुत्रलाभ किया था। सगर देखो। ३ शुक्रग्रह। ४ सानु। ५ जमदग्नि। ६ अरण्यकण्टकव्याप्त गिरिपार्श्वोच्च देश। निरवलम्बन पर्वतादिके जिस स्थलसे गिरनेसे कोई अवलम्बन नहीं रहता; वही भृगुदेश है।
पर्याय—प्रपात, अतट, दरद, पतनस्थान।

भृगु—सह्याद्रिवर्णित एक राजा।

भृगु—एक प्राचीन ज्योतिर्वित्। केशवार्क, वसन्तराज आदि ज्योतिर्ग्रन्थोंमें इनका नाम आया है। भार्गव-मुहूर्त्त, भार्गवसूत्र और भृगुसंहिता नामक कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए मिलते हैं। २ आयुर्वेदज्ञ एक प्राचीन ऋषि। ३ भृगुस्मृति नामक एक धर्मशास्त्रकार।

भृगुक (सं० पु०) कूर्मचक्रके दक्षिण पार्श्वस्थित देश-भेद। (मार्कण्डेयपु० ५८ अ०)

भृगुकच्छ (सं० क्ली०) नर्मदाके उत्तरतटस्थित तीर्थक्षेत्र, आधुनिक भड़ौच जो प्राचीनकालमें एक प्रसिद्ध तीर्थ था। भरोच देखो।

भृगुकेशव (सं० पु०) भृगुस्थापितं केशवः मध्यपदलोपिक, काशीस्थित भृगुस्थापित केशवमूर्त्तिभेद।
(काशीख० ३३ अ०)

भृगुक्षेत्र—प्राचीन तीर्थविशेष। भृगुक्षेत्रमाहात्म्यमें विस्तृत विवरण लिखा है।

भृगुज (सं० पु०) भृगोर्जायते जन-ड। १ भृगुके वंशज, भार्गव। २ शुक्राचार्य।

भृगुतनय (सं० पु०) भृगोस्तनयः। भृगुतनय, शुक्राचार्य।

भृगुतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

भृगुतुङ्ग (सं० क्ली०) हिमालयकी एक चोटीका नाम। यह एक पवित्र तीर्थस्थान माना जाता है।

भृगुदेव—प्रवराध्यायके प्रणेता।

भृगुनन्दन (सं० पु०) परशुराम।

भृगुनायक (सं० पु०) परशुराम।

भृगुपति (सं० पु०) भृगूणां तद्वंशीयाणां पतिः। परशु-राम।

भृगुपथ—हिमालयस्थित केदारनाथ तीर्थके समीपका एक तीर्थ।

भृगुप्रस्रवण (सं० पु०) हिमालयसन्निहित पर्वत-विशेष।

भृगुभूमि (सं० पु०) भार्गवपुत्रभेद।

भृगुराम (सं० पु०) परशुराम देखो।

भृगुरेखा (सं० स्त्री०) विष्णुकी छाती परका वह चिह्न जो भृगुमुनिके लात मारनेसे हुआ था।

भृगुलता (सं० स्त्री०) भृगुमुनिके चरणका चिह्न जो विष्णुकी छाती पर है।

भृगुवल्ली (सं० स्त्री०) भृगुणाऽधीता वल्ली। तैत्ति-रीय उपनिषद्की तीसरी वल्ली जिसका अध्ययन भृगु-मुनिने किया था।

भृगुणास्पति (सं० पु०) भृगूणां पतिः अलुकस०। परशुराम।

भृगूपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

भृग्वङ्गिरस् (सं० पु०) अथर्ववेदके कुछ सूक्तके ऋषि।

भृग्वङ्गिरोविद् (सं० त्रि०) अथर्ववेदवित्।

भृग्वीश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

भृङ्ग (सं० क्ली०) बिभर्त्तीति भृञ् भरणे (भृञः कित् नुट् च। उण् १।१२४) इति गन्, सच कित्, नुड़ागमश्च। १ त्वच्, दारचीनी। २ अभ्रक, अवरक। (पु०) ३ भ्रमर, भौंरा। ४ कलिङ्गपक्षी, काले रंगका एक प्रसिद्ध पक्षी जो प्रायः सारे भारत, बरमा, चीन आदि देशोंमें पाया जाता है। इसे भीमराज भी कहते हैं। इसका मांस मधुर, स्निग्ध, कफ और शुक्रवर्द्धक माना गया है। ५ भृङ्गराज। ६ भृङ्गार, भंगरैया। ७ भृङ्गरोल। ८ एक प्रकारका कीड़ा। इसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि यह किसी कीड़ेके ढीलेको पकड़ कर ले आता है और उसे मिट्टीसे ढक देता है। पीछे उस पर बैठ कर और डंक मार मार कर इतनी देर तक और इतने जोर-से 'भिन्न भिन्न' शब्द करता है कि वह कीड़ा भी इसी-की तरह हो जाता है।

भृङ्गक (सं० पु०) भृङ्ग-संज्ञायां कन्। भृङ्गराजपक्षी।

भृङ्गचुल्ली (सं० स्त्री०) भृङ्गाह्वा। इसका गुण कटु, उष्ण, तिक्त, दीपन और रोचन माना गया है।

भृङ्गज (सं० क्ली०) भृङ्ग इव जायते इति जन-ड। अगुरुकाष्ठ।

भृङ्गजा (सं० स्त्री०) भृङ्गज-टाप्। भार्गी, भारङ्गी।

भृङ्गपर्णिका (सं० स्त्री०) भृङ्ग इव कार्ण्यात् भृङ्गवर्ण

पर्णमस्या इति ङीष्। स्वार्थे कन्-टाप अत इत्वञ्च इकारस्य ह्रस्वत्वं। सुक्ष्मैला, छोटी इलायची।

भृङ्गप्रिय (सं० पु०) धूलीकदम्ब।

भृङ्गप्रिया (सं० स्त्री०) भृङ्गाणां प्रिया, प्रचुरमधुत्वात्। माधवी लता।

भृङ्गबन्धु (सं० पु०) भृङ्गाणां बन्धुरिव प्रियत्वात्। १ कुन्दवृक्ष। २ कदम्बवृक्ष।

भृङ्गमारि (सं० स्त्री०) कोङ्कण-देशप्रसिद्ध केविका पुष्प-वृक्ष। इसका गुण मधुर, शीतल, दाह, पित्त, वातश्लेष्म और सर्दी नाशक माना गया है। (राजनि०)

भृङ्गमूलिका (सं० स्त्री०) भृङ्गस्य भृङ्गराजस्येव मूलमस्याः क, अजाति वचनत्वात् टाप्, कापि अत इत्वं। भृङ्गाह्वा, भ्रमरमाली।

भृङ्गमोहिन् (सं० पु०) १ चम्पक वृक्ष। २ स्वर्णचम्पक, कनकचंपा।

भृङ्गरज (सं० पु०) भृङ्गान् रञ्जयतीति अन्तर्भू तण्य-र्थाद् रञ्जो अच्, पृषोदरादित्वात् न लोपः। भृङ्गराज।

भृङ्गरजस् (सं० पु०) रजयतीति अन्तर्भू तण्यर्थात् रञ्जे (सर्वधातुभ्योऽसुन। उण् ४।१८८) ततो (रजेश्च। पा ६।४।२६) इति न लोपः ततो भृङ्गाणां रजाः रञ्जकः, अथवा भृङ्ग इव कृष्णवर्णं रजः परागोऽस्य। भृङ्गराज।

भृङ्गरा (सं० स्त्री) भृङ्गराज, भङ्गरैया।

भृङ्गराज—स्वनाम-प्रसिद्ध एक पक्षी जो कृष्णवर्ण होता है। (Dicrurus ater) इस पक्षीका वर्ण चोंचसे ले कर पूंछ तक घोर काला है। बीच बीचमें दो एक पर कुल चमकदार काले होते हैं, जिससे यह पक्षी देखनेमें सुहावना मालूम होता है। किसी किसीके दो एक सफेद पर भी देखे जाते हैं। बच्चोंके पंख और पूंछ फीकी और पंखोंके नीचेका भाग सफेद होता है। विभिन्न स्थानोंमें वासके कारण इस पक्षिजातिमें आवयविक अनेक विभिन्नता पाई जाती है। अफगा-निस्तानसे आसाम और हिमालयसे लगा कर सिंहल तक विस्तीर्ण भारतसाम्राज्यमें तथा चीन, श्याम और कोचीन चीन आदि खण्डराज्योंमें इनका वासस्थान है। यह शीतऋतुको अधिक पसन्द करता है, इसीलिए स्थान विशेषमें शीतके समय इनका भी शुभागमन हुआ करता है। यह साधारणतः १२से १२॥ इञ्च तक लम्बा होता है जिनमें पुच्छभाग लगभग ७ इञ्च है। चोंच, पैर और पंजे काले होने पर भी आंखोंके चारों तरफ ललाई होती है।

आकृतिको विभिन्नताको देख कर पक्षितत्त्वविद्दोंने इनके मध्य श्रेणीविभाग किया है। D. ater पक्षी बंगालमें—फिङ्गा भीमराज; पञ्जाबमें—जपाल, कालचित्; दाक्षिणात्यमें—कोलसा, बोजङ्ग वा बुचङ्ग; सिन्धुप्रदेशमें—कुणिछ, काल-कालचो; युक्तप्रदेशमें थमपल तेलगूमें—जति इन्ता; तामिलमें—कुड़ी कुरुम, सिंहल और तामिलमें—कुड़ी कुरवी एच; अंग्रेजीमें—Drongo Shrike नामसे परि-चित है।

कृष्णवर्ण देख कर बहुत-से तो इसे "कौओंका राजा' कहते हैं। गांवोंमें यह मैदान और बबूलके पेड़ों पर स्वच्छन्दतासे विचरण करते देखा जाता है। मैदानोंमें घूमते हुए वा पेड़ों पर बैठे बैठे ये अपनी पूंछ हिलाया करते हैं। घास पर बैठे हुए कीड़े मकोड़ोंको चट कर जाते हैं। कभी कभी एक जगह बैठ कर खाना इसे पसन्द नहीं, एक दो कीड़े खा कर झट दूसरे स्थानको उड़ जाता है।

मादा साधारणतः वैशाखसे आषाढ़ तक अण्डे देती है। पेड़ों पर घने पत्तोंकी ओटमें इनकी घोंसले छिपी रहते हैं। घोंसला बनानेमें इसके विलक्षण शिल्प मिलता है। यह लगभग ४से ले कर ५ तक अण्डे देती है, जिनमें कुछ तो सफेदसे और कुछ लाल छींट-से होते हैं।

D. longicaudatus वा Indian Ashy Drongo पक्षीको बंगलामें—नीलाफङा, लेप चामें—सहिम-फो, भूटानमें-चेचुम, तामिलमें—एराटु-बलन-कुरवी कहते हैं। ब्रह्मपुत्रके उत्तरमें राजपूताना, सिन्धु, गुजरात और हजाराकी तरफ इसका वास है। इसके अण्डे अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। इसके सिवा तेनासेरिम प्रदेशमें nigrescens सिंहल और हिमालयमें D. Caerulescens (पेट सफेद, धौली), सिंहलमें D. leucopygialis (कबूदा पणिका) तथा श्याम, ब्रह्म और कोचीनराज्यमें D. leucogenys.

(मुंह सफेद) और D. ceneraceus नामक भीमराज प्रधानतः देखनेमें आता है।

यह सुमधुर स्वरमें गान कर सकता है। श्यामा, बुलबुल और कोकिलकी तरह बहुत-से लोग भीमराजको भी पालते हैं। सिर्फ सुरीली तान सुना कर ही यह मनको मोहित नहीं करता, वल्कि अन्यान्य पक्षियोंसे लड़ कर भी यह मनुष्योंके हृदयमें आनन्द पैदा करता है। बुलबुल, मुरगा, तीतर, आदि पक्षियोंको तरह यह भी लड़नेमें पटु होता है। यह आपसमें भी लड़ता है।

भृङ्गराज (सं० पु०) नेत्ररोगाधिकारोक्त तैलौषध विशेष। प्रस्तुत प्राणाली—तिल तैल ४ पल, भृगराजका रस ४ सेर; कल्क यष्टिमधु १ पल, नियमपूर्वक इस तेलका पाक करना होगा। इस तेलकी नस लेनेसे दृष्टिशक्तिकी वृद्धि होतो और दृष्टिदोष जाता रहता है। एक मास तक इस तेलका व्यवहार करनेसे वलिपलितादि दोष भी दूर होता है।

भृङ्गराज (सं० पु०) भृङ्ग इव राजते इति भृङ्ग-राज-अच्। १ भीमराज, भंगरैया। २ पक्षिविशेष, भीमराज। ३ भ्रमर, भौंरा। ३ यज्ञभेद। ४ दारुचीनी।

भृङ्गराजक (सं० पु०) भीमराज पक्षी।

भृङ्गराजघृत (सं० पु०) क्षुद्र रोगाधिकारमें घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—घृत १ सेर, भीमराजका रस ४ सेर, कल्कार्थ मयूर पित्त १६ तोला। यथानियम इस घृतका पाक करे। सात दिन तक इस घृतकी नस लेनेसे वालोंका असमयमें पकाना बंद हो जाता है।
(भैषज्यरत्ना०)

भृङ्गराजादिचूर्ण (सं० पु०) रसायनाधिकारोक्त चूर्ण-औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—भृङ्गराजचूर्ण १ भाग, तिलतैल ॥० आध भाग और आमलको ॥० आध भाग इन सब द्रव्योंको भलीभांति चूर्ण कर एक साथ मिलावे। पीछे चीनी और गुड़के साथ सेवन करनेसे जरा तथा विविध रोगकी शान्ति होती है। (भैषज्यरत्ना०)

भृङ्गरिटि (सं० पु०) भृङ्ग इव रटति इति भृङ्ग-रट-इन्, पृषोदरादित्वादिकारागमः। १ शिव-द्वारपाल, शिवजीके द्वाररक्षक।

भृङ्गरीट (सं० पु०) भृङ्गरिटि पृषोदरादित्वात् साधुः। १ शिवद्वारपाल। २ लौह।

भृङ्गरोल (सं० पु०) भृङ्ग इव रौति, भृङ्ग-रु-बाहुलकात् ओलच् अस्य भृङ्गतुल्यशब्दत्वात्तथात्वं। कीटविशेष, एक प्रकारका कीड़ा। पर्याय—विषसृक्का, वरोल, तृणषट्-पद। इसके काटनेसे बहुत पीड़ा होती है। २५ या ३० यदि एक साथ काटे, तो मृत्यु हो जा सकती है। इसके काटे स्थान पर प्याजका रस लगानेसे बहुत फायदा होता है।

भृङ्गवल्लभ (सं० पु०) भृङ्गाणां वल्लभः प्रियः। धारा-कदम्ब, भूमिकदम्ब।

भृङ्गवल्लभा (सं० स्त्री०) भृंगाणां वल्लभा। १ भूमिजम्बु। २ तरणीपुष्प वृक्ष।

भृङ्गवृक्ष (सं० पु०) भृङ्गराजवृक्ष, भंगरैया।

भृङ्गसुहृद (सं० पु०) भृङ्गाणां सुहृद इव प्रियत्वात्। मन्दपुष्प वृक्ष।

भृङ्गसोदर (सं० पु०) भृंगाणां सोदरस्तुल्यः। केश-राज।

भृङ्गाधिप (सं० पु०) भृंगाणामधिपः। १ भृंगोंका अधिपति। २ भीमरूल।

भृङ्गानन्दा (सं० स्त्री०) भृंगाणामानन्दो, यस्याः भृङ्गाणां आनन्दा, आनन्दकरी वा। यूथिका, जूहि नामका फूल।

भृङ्गाभीष्ट (सं० पु०) भृंगाणां अभीष्टः प्रियः मधु-बाहुल्यात्। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

भृङ्गार (सं० क्ली०) भृ-धारणपोषणयोरिति (भृङ्गः-रश्रृङ्गारौ उण् ३।१३६) इति आरन् निपातनात् नुम् गुक् च वा भृंग जलमियर्त्यनेनेति भृङ्ग-ऋ-करणे घञ्। १ लवंग, लौंग। २ सुवर्ण, सोना। ३ सुवर्णनिर्मित वारि-पात्र, सोनेका बना हुआ जल पीनेका बरतन। पर्याय—कनकालुका, गुड़ूक, गड़ूक। ४ जलपात्रभेद, जल भर कर अभिषेक करनेको झारी। यह पात्र आठ प्रकारका होता है, यथा सौवर्ण, राजत भौम, ताम्र, स्फटिक, चान्दन, लौहज और शार्ङ्ग। राज्याभिषेक देखो।

भृङ्गारक (सं० पु०) भृंगार स्वार्थे कन्। भृङ्गार।

भृङ्गारि (सं० स्त्री०) भृङ्गं भृंगवद्वर्णं ऋच्छतीति ऋ-इन्। केविका पुष्प, केवड़ा।

भृङ्गारिका (सं० स्त्री०) भृङ्ग-ऋ-(कर्मण्यण्। पा ३।२।१)

इति अण् भृङ्गार-कन्-टाप् अत इत्वं। झिल्लिका कीट, झिल्ली नामका कोड़ा।

भृङ्गारी (सं० स्त्री०) भृङ्गार-गौरादित्वात् ङीष्। झिल्ली-कीट।

भृङ्गार्क (सं० पु०) भृङ्गराज-वृक्ष।

भृङ्गाह्व (सं० पु०) भृंगमाह्वयते स्पर्द्धते इति आ-ह्वे-क। १ जीवक। २ भृंगराज।

भृङ्गाह्वा (सं० स्त्री०) भृंगह्वा-स्त्रियां टाप्। भ्रमरच्छली।

भृङ्गि (सं० पु०) बिभर्त्तीति भृ-बाहुलकात् गिक् नुट् च। भृंगी, शिवजीका एक द्वारपाल।

भृङ्गिरिटि (सं० पु०) भृंगरिटि, शिवका एक पारिषद या गण।

भृङ्गी (सं० स्त्री०) भृंगि स्त्रियां ङीष्। १ अतिविषा, अतीस। २ बिलनी नामका कोड़ा। यह और कीड़ोंको भी अपने समान रूपवाला बना लेता है। ३ भौंरी। ४ सिद्धि, भांग। ५ वटवृक्ष। ६ इन्द्रगोपकीट, वीरबहूटी नामका कीड़ा।

भृङ्गी (सं० पु०) भृङ्गः भृङ्गवद्वर्णोऽस्यास्तीति इनि। १ वटवृक्ष, बड़का पेड़। (राजनि०) २ शिवजीका एक द्वारपाल। पर्याय—भृङ्गरिटि, भृंगरीट्, शल, नाड़ीदेह, अस्थिविग्रह। (भूरिप्र०)

कालिकापुराणमें शिवानुचर भृंगीके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—इन्द्रादि देवोंने तारकासुर-वधके लिए महादेवसे उमाके गर्भ और हरके औरस-से एक पुत्रकी प्रार्थना की। महादेवने उसे स्वीकार कर देवों-द्वारा प्रार्थित पुत्रके लिए उमाके साथ महासुरत क्रोड़ा प्रारम्भ की। देखते देखते ३२ वर्ष बीत गये। इस समय वसुधा निरन्तर कांप रही थी और देवगण सभी अत्यन्त आकुल थे। पश्चात् इन्द्र देवोंके साथ ब्रह्माके पास पहुंचे और बोले कि—"ब्रह्मन्! महादेवको सुरतक्रोड़ासे समस्त जगत् आकुलित हो उठा है, विशेषतः मैं अत्यन्त भयभीत हो गया हूं, कारण हरगौरीके सङ्गमसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह अवश्य ही मुझे अतिक्रम करेगा, अतएव तारकासुरसे भी बढ़ कर मुझे इस पुत्रसे भय है। आप मुझे इस महाभयसे उद्धार कीजिए।" ब्रह्मा इन्द्र और देवोंके साथ महादेवके पास गये और सब मिल कर उनका स्तव करने लगे। महादेवने देवोंके स्तवसे सन्तुष्ट हो कर उमाका सङ्ग त्याग दिया और देवोंसे आनेका कारण पूछा। इन्द्रने कहा—"आपकी महासुरत-क्रीड़ासे समस्त जगत् कांप रहा है, तमाम नद-नदियां और सागरादि उथल-पुथल हो रहे हैं। देव और दिगपालगण निरन्तर अशान्ति भोग रहे हैं। अतएव आप महामैथुन त्याग कर केवल रति मात्रका अवलम्बन कोजिए।" महादेवने सम्पूर्ण बातें सुन कर कहा—"मेरी यह महामैथुन प्रवृत्ति आप लोगोंके हितके लिए है, इसे त्याग कर रति मात्र ग्रहण करनेसे उमाके गर्भसे पुत्र नहीं होगा, इसीलिए मेरा यह उद्यम है। कुछ भी हो, आप लोगोंके प्रार्थनानुसार मैं महामैथुनका परित्याग कर रहा हूं। परन्तु आप एक काम कीजिए, मेरे इस महा मैथुन-प्रसूत तेजको धारण कर सके, ऐसे एक देवताको आदेश दीजिए।" तब देवोंने अग्निको तेज धारण करने कहा, अग्निसे स्वीकार करा लिया। तब महादेवने मैथुन-सम्बन्धी स्वकीय तेज अग्निमें छोड़ा।

अग्निमें छोड़े हुए महादेवके तेजमेंसे परमाणुद्वय-परिमित तेज गिरिसानुमें पतित हुआ, गिरनेके साथ ही उसमेंसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें एक भृङ्गसदृश कृष्ण-वर्ण था, इसलिए ब्रह्माने उसका नाम भृङ्गी रखा और दूसरा मर्दित-अञ्जन जैसा अत्यन्त कृष्णवर्ण था, उसका नाम 'महाकाल' रखा। शङ्करने उन दोनोंका प्रमथादि-गण समूह द्वारा प्रतिपालन कराया और अपर्णाने भी विशेष यत्नसे उनका पालन किया। पश्चात् महादेवने इन दोनोंको गणाधिपति बना कर द्वार पर नियुक्त किया। (कालिकापु० ४५)

वामनपुराणमें लिखा है,—अन्धकासुरके साथ जब महादेवका घोरतर युद्ध हुआ था, उस समय अन्धकने उस युद्धमें मुह्यमान हो कर महादेवका स्तव किया था। आशुतोषने स्तवसे सन्तुष्ट हो कर उन्हें वर दिया कि, "तुम पाप-विमुक्त हो कर मेरे पार्श्वचर गणपति भृङ्गी होगे।" महादेवके इस वरसे अन्धकने भृङ्गीके रूप-में जन्मग्रहण किया था। (वामनपुराण ४४, ४५ और ६७ अध्याय) मौतिकतत्त्व देखो।

भृङ्गीगृह (सं० क्ली०) भृङ्ग्याः गृहं आवासस्थानं। भृंगी नामक कीड़ेका घर।

भृङ्गीफल (सं० पु०) भृंग्याः अतिविषयोः फलमिव फलं यस्य। आम्रातकवृक्ष, अमड़ाका पेड़।

भृङ्गीमलय (सं० पु०) भारतका प्राचीन जनपद और उस देशके अधिवासी।

भृङ्गीश (सं० पु०) भृंगिणो भृंगेर्वा ईशः। महादेव, शिव।

भृङ्गिरिटि (सं० पु०) भृंगे भृंगविषये रिटति अभिलषतीति भृंगेरिट्-कर्त्तरि इ, अलुकस०। भृङ्गी।

भृङ्गेष्टा (सं० स्त्री०) भृङ्गाणामिष्टा। १ घृतकुमारी, घीकुआर। २ भार्गी, भारंगी। ३ तरुणी, युवती स्त्री। ४ काकजम्बु।

भृजायन (सं० पु०) गोत्रप्रवरभेद।

भृज्जन (सं० पु०) भृज्यते तण्डुलादयोऽस्मिन्निति भ्रस्ज् (भू-सू-धू-भ्रस्जिभ्यश्छन्दसि। उण् २।८०) इति क्युन्। अम्बरीष, मट्टीका वह बरतन जिसमें भड़भूंजा गरम बालू डाल कर दाना भूनते हैं।

भृणिटिका (सं० स्त्री०) भिरिण्टिका पृषोदरादित्वात् साधुः। श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची।

भृण्डि (सं० स्त्री०) तरंग, लहर।

भृत (सं० त्रि०) भृ-क्त। १ पुष्ट, पाला हुआ। २ पूरित, भरा हुआ। (पु०) ३ भृत्य, दास। ४ मिताक्षराके अनुसार वह दास जो बोझ ढोता हो। ऐसा दास अधम कहा गया है।

भृतक (सं० पु०) भ्रियते इति भृ-कर्मणि क्त, ततः स्वार्थे कन्, यद्वा भृतेन वेतनेन उपजीवतीति कन्। वेतनोपजीवी, वह जो वेतन ले कर काम करता हो। पर्याय—भृतिभुज्, कर्मकर, वैतनिक।

भृति (सं० स्त्री०) भ्रियतेऽनयेति भृ-क्तिन्। १ वेतन, तनख्वाह। २ मूल्य, दाम। ३ भरण पोषण, पालन पोसन करना।

"कालमानं त्रिधा ज्ञेयं चान्द्रं सौरञ्च सावनम्।
भृतिदाने सदा सौरं चान्द्रं कौसीदवृद्धिषु॥"
(शुक्रनीति)

सौर, चान्द्र और सावन ये तीन प्रकारके समय कहे गये हैं जिनमेंसे वेतन विषयमें सौर मास ही कहा गया है। सूर्यकी एक राशिसे अन्य राशि तक गमनकाल ही सौरमास है। ४ नौकरी। ५ मजदूरी।

भृतिका (सं० स्त्री०) वेतन, तनख्वाह।

भृतिभुज् (सं० पु०) भृत्या भुङ्क्ते, उपजीवतीत्यर्थः, भुज् कर्त्तरि क्विप्। वेतनोपजीवी, नौकर।

भृत्य (सं० पु०) भ्रियते इति भृ-(भृञोऽसंज्ञायाम्। पा ३।१।११२) इति क्यप् (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्। पा ६।१।७१) इति तुक्। दास, नौकर। पर्याय—परिकर्मा, परिचर, सहाय, परिचारक, प्रेष्य, उपस्थाता, सेवक, अभिषव, अनुग।

गरुणपुराणमें लिखा है कि—वेतनभोगी कर्मचारीमात्र ही भृत्य है। भृत्यके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। गुण-अवगुण पर विचार कर भृत्य रखना चाहिए। जिस प्रकार स्वर्णके घर्षण, छेदन, तापन आदिसे परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार भृत्यकी भी शास्त्रज्ञान, शील, कुल और कर्मकी परीक्षा करके उसे रखना चाहिए।

किस प्रकार गुणसम्पन्न होने पर उसे कैसा काम दिया जा सकता है, गरुड़में उसका विषय इस प्रकार आलोचित हुआ है। कुल, शील और सकलगुणयुक्त, सत्यधर्मपरायण और सुरूप व्यक्तिको राज्याध्यक्ष; मूल्य और रूपपरीक्षा करनेमें समर्थ होने पर रत्नपरीक्षक; जो बलाबलके ज्ञानमें विशेष दक्ष हों, उन्हें सेनापति; जो इंगित और आकार देख कर समस्त तत्त्वको समझ सकें तथा बलवान् प्रियदर्शन और प्रमादशून्य हों, उन्हें प्रतीहार बनाना चाहिये। जो मेधावी, वाक्पटु, प्राज्ञ, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सर्वशास्त्रद्रष्टा और साधुप्रकृति हैं, उन्हें लेखक; जो बुद्धिमान्, परचित्तोपलक्षक, क्रूर और यथोक्तवादी हों, उन्हें दूत; समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ, जितेन्द्रिय और शूरवीरको धन्याध्यक्ष; सत्यवादी, आचारपूत और शास्त्रदर्शीको सूपकार; समग्र आयुर्वेद अध्ययनकारी और प्रियदर्शन तथा उत्तम स्वभावयुक्त व्यक्तिको वैद्य; वेदवेदान्तादि सम्पूर्ण शास्त्रपारदर्शी, जप और होमपरायण तथा सर्वदा आशीर्वाद देनेमें मंगलविधायक व्यक्तिको राजपुरोहितका कार्य सौंपना उचित है। पूर्वोक्त रूप और गुणोंसे भूषित व्यक्तिको ही राजा

कार्य प्रदान करें। नियमितरूपसे उन्हें वेतन देना आवश्यक है। जो जिस योग्य हैं उन्हें उसी प्रकारका वेतन देना उचित है। कभी भी वेतनमें शठता नहीं करनी चाहिये। (गरुड़पुराण ११२ अ०)

शुक्रनीतिमें भृत्यके विषयमें इस प्रकार लिखा है—विचारके साथ भृत्यकी परीक्षा करनी चाहिए। भृत्यका केवल जाति वा कुल ही परीक्षणीय नहीं है, बल्कि उसके कर्म और स्वभावकी भी परीक्षा करना उचित है। विवाहादि कार्यों में केवल जाति कुल देखा जाता है, किन्तु भृत्यमें जाति वा कुल द्वारा श्रेष्ठत्व नहीं आता उसका एकमात्र कार्यकुशलता और स्वभावसे ही आदर हुआ करता है। भृत्यको सुशील और निरलस हो कर प्रभुका कार्य सम्पादन करना चाहिए। अपने कार्यमें जैसा प्रयत्न किया जाता है, प्रभुके कार्यमें उससे कहीं अधिक और चौगुना प्रयत्न करना आवश्यक है। भृत्यके सर्वदा परितुष्ट, मृदुभाषी, कार्यदक्ष, शुचि और दूसरेके उपकारमें कुशल और अपकारसे पराङ्मुख होना चाहिए; सत्कार्यमें अदीर्घसूत्री और असत्कार्यमें दीर्घसूत्री होना आवश्यक है, अर्थात् मालिक अगर कोई अच्छे कामके लिए कहे, तो उसे तुरत ही कर दे, और अगर किसी बुरे कामके लिए आज्ञा दे, तो उसे जितना हो सके देर करके करे।

असद्भृत्यके लक्षण।—शठ, कातर, लोभी, समक्षमें प्रियवादी, मत्त, व्यसनयुक्त, आर्त्त, घूसखोर, जुआड़ी, नास्तिक, दाम्भिक, असत्यवादी, असूयाकारी, अपमानकारक, असद्वाक्य द्वारा मर्म-पीड़क, शत्रुका सेवक और अधार्मिक, इन लक्षणोंसे युक्त भृत्य निन्दनीय है। ऐसे भृत्योंको निन्दित भृत्य कहते हैं।

भृत्यको रात्रिके शेषमें उठ कर गृह-कार्यादिकी चिन्ता करके प्रातःकृत्यादिका अनुष्ठान करना चाहिए। डेढ़ मुहूर्त्त अर्थात् लगभग तीन दण्ड समयमें ही अपना काम समाप्त कर कर्मक्षेत्रमें जाना उचित है। वहां जा कर विशेष मनोयोगके साथ प्रभुका कार्य सम्पादन करे। भृत्यको सर्वदा अनुद्धत वेशमें और प्रभुके पास प्रञ्जलि हो कर रहना चाहिए। जो जिस कार्यमें नियुक्त हों, उन्हें ध्यान पूर्वक उस कार्य-को समाप्त करके दूसरे काममें हाथ डालना चाहिए। किसी भी व्यक्ति पर असूया भृत्यके लिए विशेष अनिष्टकर है। भृत्यको उचित है कि प्रभुके रहस्य-विषयको कदापि प्रकट न करे। भृत्य यदि अप्रधान हो और अच्छी तरहसे मालिककी सेवा करे, तो समय पर कभी वह प्रधान हो सकता है; और जो प्रधान हैं, वे अपने काममें लापरवाही करनेसे समय पर अप्रधान हो जाते हैं। (शुक्र २ अ०)

अग्निपुराणमें भृत्यके कर्त्तव्यका विषय इस प्रकार लिखा है—भृत्यको शिष्यकी तरह प्रभुकी आज्ञा पालना चाहिए, कभी भी उनके आदेशका उल्लङ्घन न करे। अनुकूल प्रिय वाक्योंका प्रयोग करे, हितकर वाक्य अप्रिय होने पर भी निर्जनमें अवश्य करे। कदापि वित्तहरण वा प्रभुका अपमान न करे। मालिकके समान वेश-भूषा धारण करना भृत्यके लिए निषिद्ध है। मालिक किसी कामके लिए यदि दूसरेको आज्ञा दें, तो उसे तुरत ही वह काम खुद कर देना चाहिए। स्वामीके दिये हुए वस्त्र, अलङ्कार और रत्न आदिको सर्वदा धारण करना उचित है। भृत्य विना आज्ञाके द्वारमें प्रवेश न करे। मालिकके सामने कभी भी अयोग्य स्थानमें न बैठे। प्रभुके समक्ष जृम्भा, निष्ठीवन, हास्य, कोप, भ्रूकुटी, उद्गार आदि वर्जनीय है। शठता, नास्तिकता, क्षुद्रता, और चपलता आदि दोष राजसेवाके समय त्याग देना चाहिए। भृत्यको उचित है, कि वह सर्वदा ऐसा ही काम करे जिससे मालिक प्रसन्न रहे। उसे विरक्ति त्याग कर सर्वदा अनुरागके साथ काम करना चाहिए केवल आपत्तिकालमें मालिकके हितके लिए इसके विपरीत करना दोषावह नहीं है। कोई गुह्यविषय में आदेश पाने पर किसी प्रकारका सन्देह वा भय करना उचित नहीं। इन लक्षणोंसे युक्त भृत्य ही सद्भृत्य कहलाता है। इसके विपरीत आचरण करनेवाला कुभृत्य है। (अग्निपुराण २२१ अ०)

भृत्यता (सं० स्त्री०) भृत्यस्य भावः तल् टाप्। भृत्यका भाव या धर्म।

भृत्या (सं० स्त्री०) १ दासी। २ वेतन, तनख्वाह।

भृत्रिम (सं० त्रि०) भरणाज्जातः भृ त्रिमप्। भरणसे जात।

भृमि (सं० पु०) भ्रमति भ्राम्यति वेति भ्रम् भ्रमेः (संप्रसारणञ्च । उणा ४।१२०) इति इन् कित्, सम्प्रसारणञ्च । १ वायुविशेष, बवंडर । २ जलादि भ्रमण, पानीमें का भंवर या चक्कर । ३ वीणाविशेष, वैदिक कालकी एक प्रकारकी वीणा । (त्रि०) ४ भ्रमणशील, घूमनेवाला ।

भृम्यश्व (सं० पु०) भृमय इव अश्वाः यस्य । ऋषिभेद, एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

भृश (सं० क्ली०) भृश्यति प्राचुर्येण वर्त्तते इति भृश् क । अत्यधिक, बहुत अधिक ।

भृशक—शकवंशीय एक राजा । युक्तप्रदेशके विजनौर जिलेमें उनके नामकी अङ्कित मुद्रा पाई गई है ।

भृशङ्क्षव (सं० पु०) नासारोगभेद ।

भृशपत्रिका (सं० स्त्री०) महानीली ।

भृशत् (सं० पु० स्त्री०) पाषाण ।

भृशम् (सं० अव्य०) भृश-बाहुलकात् कमु, मान्तमव्ययम् । १ मुहु, बार बार । २ शोभन ।

भृशादि (सं० पु०) भृश-आदि करके पाणिनि-उक्त शब्द गण । यथा—भृश, शीघ्र, चपल, मन्द, पण्डित, उत्सुक, सुमनस्, दुर्मनस्, अभिमनस्, उन्मनस्, रहस्, रोहत्, वेहत्, तृपत्, शश्वत्, भ्रमत्, वेहत्, शुचिस्, शुचिवर्चस्, अन्तरवर्चस्, ओजस्, सुरजस्, अरजस् ।

भृष्ट (सं० त्रि०) भ्रस्ज-क्त । अग्नि संयोग द्वारा पक्व, भूना हुआ ।

भृष्टकार (सं० पु०) भड़भूंजा ।

भृष्टकुलत्थ (सं० पु०) भर्जित कुलत्थक, भूनी हुई कुलथी ।

भृष्टचणक (सं० पु०) भर्जित चणक, भूना हुआ चना । इसका गुण रुचिकर, वातनाशक, रक्तका दोषजनक, उष्णवीर्य, लघु, कफ और शैत्यनाशक माना गया है । (राजनि०)

भृष्टतण्डुल (सं० पु०) भर्जित तण्डुल, भूना हुआ चावल ।

भृष्टतण्डुलान्न (सं० क्ली०) भर्जित तण्डुलका अन्न, भूना हुआ चावल ।

भृष्टमत्स्य (सं० पु०) भर्जित मत्स्य, भूनी हुई मछली ।

भृष्टमांस (सं० क्ली०) घृतादि द्वारा भर्जित मांस, भूना हुआ मांस । इसका गुण विदाही तथा रक्त और वातादिदोषनाशक माना गया है ।

भृष्टमृत् (सं० स्त्री०) अग्नि भर्जन द्वारा दग्ध मृत्तिका, जली हुई मट्टी । स्त्रियां गर्भावस्थामें इस मिट्टीको बहुत पसन्द करती हैं ।

भृष्टयव (सं० पु०) भृष्टश्चासौ यवश्चेति । भर्जनविशिष्ट यव, भूना हुआ जौ ।

भृष्टान्न (सं० क्ली०) भृष्टं अन्नं । भृष्ट तण्डुल, मूढ़ी । पर्याय—कुहर, न्याय्या ।

भृष्टि (सं० स्त्री०) भ्रस्ज-भावे क्तिन् । १ भर्जन, भूनना । २ शून्यवाटिका, सूना बगीचा ।

भृष्टिमत् (सं० त्रि०) भृष्टि-अस्त्यर्थे मतुप् । १ अश्रियुक्त वज्र, वज्र अष्टाश्रियुक्त । (पु०) २ ऋषिभेद ।

भेंट (हिं० स्त्री०) १ मिलना, मुलाकात । २ उपहार, नजराना ।

भेंटना (हिं० क्रि०) १ मुलाकात करना, मिलना । २ आलिङ्गन करना, गले लगाना ।

भेंटाना हिं० क्रि०) १ मुलाकात होना, मिलना । २ किसी पदार्थ तक हाथ पहुंचाना, हाथसे छुआ जाना ।

भेंड़ (हिं० स्त्री०) भेड़ देखो ।

भेंवना (हिं० क्रि०) भिगोना, तर करना ।

भेक (सं० पु०) बिभेति इति भी (इन् भीकापाशल्यतीति ३।४३) इति कन् । जन्तुविशेष, मेढ़क, बेंग । पर्याय—मण्डूक, वर्षाभू, शालूर, प्लव, दर्दुर, वृष्टिभू, सालूर, प्लवङ्गम, व्याङ्ग, प्लवग, शल्ल, नन्दन, गूढ़वर्चा, अजिह्व, जिह्वमोहन, नन्दक, कृतालय, रेक, मण्ड, हरि, लुलुक, शालूक, कटुरव । इसके मांसका गुण सद्यबलकर, श्रम, तृष्णा, दाह, प्रमेह, कुष्ठ और छर्दिनाशक माना गया है । (राजनि०) २ कृष्णाभ्र, काला अबरक । ३ मेघ, बादल ।

भेक—स्वनाम-प्रसिद्ध उभचर जीवविशेष (Frog) मण्डूक, मेढ़क । भेकतत्त्वकी आलोचना करके प्राणितत्त्वविदोंने इसे जल और स्थलचर सरीसृप Amphibious reptiles में शामिल किया है । उनमें भी उन्होंने पुच्छहीन Anourous और सपुच्छ urodeles इस प्रकार दो भेद करके भेकजातिको प्रथमोक्त श्रेणीमें शामिल किया है ।

भारत, सिंहल, चीन, ब्रह्म, अमेरिका और यूरोपके नाना स्थानोंमें भेकजातिका वास है। उनके विभिन्न श्रेणीके नामोंका मिलना दुष्कर है। मेढ़कको फरासीसी भाषामें—Grenouille, जर्मनीमें—Frosch इटलीमें—*R*anocchia, स्पेनीमें—Rana, अंग्रेजीमें—Frog और लैटिनमें—Batrachia salicuta कहते हैं। परन्तु आकृतिगत प्रभेद इनमें सर्वत्र ही पाया जाता है।

आकृतिगत पार्थक्य और विभिन्न स्थानोंमें अस्थिसमावेशके विपर्यय पर लक्ष कर प्राणितत्त्वविदोंने भेकजातिमें तीन स्वतंत्र श्रेणियां निर्दिष्ट की हैं। उक्त तीन श्रेणियोंके श्रोणीफलककी अस्थियोंके ossa ilii और os innominata दैर्घ्य, विस्तृति और सङ्कोचावस्थासे इनका पार्थक्य निर्द्धारित हुआ करता है। १ Rana वा जलविहारी भेक हमारे देशके सुनहरे मेढ़कके (Rana palutris) समान है। इसका मुंह नुकीला, आखें करोटिके पार्श्वदेशमें ऊंची, तथा श्रोणी-सन्धानमें पिछले पैरों तक ४ सन्धिस्थान हैं। सामनेके पैर मनुष्यके हाथके समान तीन ग्रन्थियोंसे युक्त हैं तथा सामनेके पैरोंमें ४ और पीछेके पैरोंमें ५ उंगलियां हैं। पीछेके पैरोंकी उंगलियां हंसकी भांति चर्मपटह द्वारा जुड़ी हुई हैं। २ Tree Frogs वा Hyla bicolor देखनेमें कुछ कुछ बंगालके आसापा-मेढ़कके समान है। यह पेड़ों और भीतों पर चढ़ सकता है। बंगालका आसापा मेढ़क सफेद और छोटा होता है, और देखनेमें भिन्न जातीय जीव मालूम पड़ता है। दक्षिण-अमेरिकाके Hyla bicolor की Oxyrhynohus bicolor श्रोणीफलकास्थि अपेक्षाकृत छोटे आकारकी होती है। यह स्वभावतः कृशकाय और इसके पीछे और सामनेके पैरोंकी अंगुलियोंके अग्रभागमें गोलाकार मांस-पिण्ड होता है। ३ बंगालके 'कोला' श्रेणीके मेंढ़कोंमें जिनकी श्रोणीफलकास्थि छोटी (Bufo vulgaris) होती है, वह Bufo और जिनकी वह अस्थि छोटी होने पर भी प्रशस्त है, वह (Pipa monstrata) *Pipa* नामसे परिचित है।

साधारणतः भेकजातिके नीचेकी डाढ़ोंमें दांत नहीं होते। किन्तु अमेरिकामें Ceratophrys granosa शाखाके मेढ़कोंकी डाढ़ोंकी हनू अस्थियां ऐसी ऊंची होती हैं कि वे हर समय दांतोंका काम देती हैं। Bufonidae श्रेणीके मेढ़कोंके तो दांत होते ही नहीं, पर *Hy*ladactylus शाखाके मेढ़कोंके नाककी हड्डीमें तथा Sclerophrys श्रेणीके मेढ़कोंके ऊपर और नीचेके हनूमें दांत देखा जाता है। कोई चीज लीलते समय उन दांतोंसे छोटी मछलियां, पानीके अन्य कीड़े मकोड़े आदि चाब जाते हैं। कभी कभी ये जिह्वाग्र द्वारा पिपीलिका आदि पकड़ कर लील जाया करते हैं। उसके लिए चर्वणकी आवश्यकता नहीं। *P*ipa श्रेणीके और बड़े 'कोला'-मेढ़कोंका मुंह ऐसा चौड़ा होता है कि, वे आसानीसे कसेरू जानवरको लील जाते हैं। परन्तु मुख्यतः ये कीट, पतंग आदि ही भक्षण करते हैं। इनके ओंठ कोमल मांसल नहीं होते, दानों डाढ़ोंके सामनेका हिस्सा मछली और सर्पादिकी तरह उपास्थि द्वारा गठित और सूक्ष्म चर्म-द्वारा आच्छादित है। इसी कारण ये अनायास ही प्रस्तरादि कठिन पदार्थों पर बैठे हुए कीट पतंगादिको ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं।

जिह्वा ही इनके खाद्यादि आहरणकी प्रधान प्रसाधक है। अन्यान्य जन्तुओंकी तरह इसके जिह्वामूलमें हड्डी नहीं होती। नीचेकी दोनों डाढ़ोंके संयोगस्थानके गह्वरसे वह जिह्वा निकली है। जब यह मुंह बन्द किये रहता है, तब इसकी जिह्वा वायु-नलीके छिद्रके मुंह पर रहती है। परन्तु जब यह शिकार पानेकी आशासे जीभको फैलाता है, तब मालूम होता है कि मानो वह जोर लगा कर जीभको निकाल रहा है। शिकारको पकड़ कर जब वह मुंहमें ले जाता है, तब जीभको इस ढंगसे घुमाता है कि उसका निचला हिस्सा ऊपर और ऊपरका हिस्सा नीचेकी ओर चला जाता है, फिर वह जीभ मुंहमें जाने पर पूर्ववत् दिखलाई देता है। शिकार ग्रहण करते समय यह अपनी जीभको ऐसी जल्दीके साथ फैलाता और समेटता है कि पलक मारते मारते काम खत्म हो जाता है। इसकी जीभके आगे एक प्रकारका गोंद जैसा पदार्थ होता है। जीभके फैलाते ही कीटादि उसमें सट जाते हैं और फिर उन्हें वह लील लेता है।

मांसपेशियोंके संस्थानके विषयमें आलोचना करके

इतना मालूम हुआ है कि इनके लिये कूदना, तैरना और चलना फिरना विशेष उपयोगी है। पीछेके पैरोंको जड जांघें और पेटकी पेशियां कूदने और तैरनेमें सहायता देती हैं तथा सामनेके पैर उसकी रक्षामें समर्थ होते हैं। पीछेके पैरों पर जोर दे कर यह अपनी देहको उठता है और बैठते समय पहले अगले पैरोंको जमीन पर टेकता है। १० हात तक ऊंचे स्थानसे गिरने पर भी इसके अङ्ग-प्रत्यंगोंको कोई हानि नहीं पहुंचती। मेढ़कको सामको तरफ लगभग १०-१२ हाथ तक उछलते देखा गया है। वर्षा ऋतुमें हमारे देशमें दलदल जमीन और तालावोंमें मेढ़कोंकी उत्पत्ति होती है। गांवों और शहरोंके शैतान लड़के ढेले मार मार कर भेकोंको स्वभावतः तंग किया करते हैं; क्योंकि उससे मेढ़क कूदते और तैरते फिरते हैं, जिससे उन्हें मजा आता है। वास्तवमें बरसातके बादलोंसे घिरी हुई नीरव रात्रिमें बड़े बड़े 'कोला' मेढ़कोंका लगातार टिर-टिर शब्द और पानीमें जोरोंसे कूदना पथिकोंके लिए एक भयावह विषय है। उस निस्तब्ध रात्रिमें मेघ-गर्जनके साथ साथ भेकोंके शब्द गोया सचमुच ही उस स्थानमें भीतिका अनिष्टनिनाद घोषित करता है। बंगालमें तो माताएं लड़कोंको शान्त करनेके लिए 'कोला' मेढ़कका नाम ले कर उन्हें डरा दिया करती हैं।

दिनको चारों तरफ कर्मजगतकी क्रिया प्रारम्भ हो जानेसे भेकोंका गभीर शब्द स्पष्ट सुनाई नहीं देता सही, पर उनकी जलक्रीड़ा और लम्फनादि देखनेकी चीज है, सन्देह नहीं। उनकी उत्तोलनकारी मांसपेशी और अस्थिशक्तिके आधिक्य तथा निम्न देहभागके पुष्ट गठनकी उत्कर्षताके अनुसार ही कूदनेमें ये समर्थ होते हैं। आकृतिके परिमाणानुसार ये शून्य मार्गमें २० गुने और सामनेकी तरफ एक कुदानमें ५० गुने तक अधिक उछल जाते हैं।

ये श्वासनालीसे वायु खींच कर फुसफुसमें ले जाते हैं। शीतऋतुमें जब ये गड्ढोंमें छिपे रहते हैं, तब वायु ही इनके लिए विशेष आहार्यरूपमें ग्रहणीय होती है। इनको पाकस्थली अन्यान्य मांसाशी जन्तुओंके सदृश है। उदरस्थ पदार्थोंकी परिपाक-क्रियाकी वृद्धिके लिए एक स्वतन्त्र अन्त्र (अंतड़ी) है। छोटी छोटी मेढ़कियां जब तालावोंमें रह कर शैवालादि उद्भिज्ज-द्वारा प्राणधारण करती हैं, तब वह शिरा दीर्घाकार रहती है। पीछे जब वे प्रकृष्ट भेकाकार धारणपूर्वक कीटादि खाने लगती हैं, तब वह शिरा प्रायः ५ भागमेंसे ४ भाग घट जाती है। यकृतांश तीन गोलाकार पिण्डोंमें विभक्त है। उनमेंसे एकमें पित्तकोष रहता है। प्लीहा गोलाकार और छोटी हो जाती है। जननेन्द्रिय भी यकृतके बीचमें रहती है।

भेकोंकी आयु अधिक होती है। अण्डोंसे बाहर निकलने पर उन्हें बेंगची कहते हैं। बेंगचीकी पूंछ गिर जाने पर उसकी देहका पुनर्गठन होता है। उस समय छोटी छोटी मेढ़कियां इधरसे उधर कूदती फिरती हैं। उसके बाद बहुत धीरे धीरे देहकी पुष्टिके साथ उनकी आकृतिका परिवर्त्तन होते देखा जाता है। मेढ़क विना मारे अपने आप जल्दी नहीं मरता। अति वृद्धावस्थामें भी यह बहुत दिनों तक भूखों रह कर जीता है।

भेकजातिके गठनपरिवर्त्तनके तारतम्यानुसार रक्तचालन-क्रियाका भी रूपान्तर घटा करता है। बेंगची अवस्थामें मत्स्यादिकी तरह इनके भी हृत्पिण्डसे रक्तका संचालन हुआ करता है; परन्तु जब ये पूर्ण भेकरूपको प्राप्त कर लेते हैं, तब इनमें एक सम्पूर्ण दैनिक परिवर्त्तन हो जाता है। उस समय वे अपने फुसफुसकी सहायतासे श्वासक्रिया करते हैं, और बेंगची अवस्थामें जो उनके रक्त बहानेकी नाली और गह्वर था, वह भी बहुत कुछ क्षयको प्राप्त हो जाता है। इसके शरीरमें तीन प्रधानतम शिराएं होती हैं,—एकसे मस्तिष्कमें, दूसरीसे देहके निम्नभागमें और तीसरीसे कोषाकार हृत्पिण्डमें रक्त सञ्चालित होता है। इन तीनों शिराओंसे अन्यान्य शिराओंमें रक्त प्रवाहित होता है।

पशुर्का वा पञ्जरास्थिका अभाव होने पर भी इनकी श्वासक्रियामें विशेष हानि नहीं पहुंचती। यहां तक, कि ये वृद्धावस्थामें सिर्फ वायु-सेवनसे ही जीवन धारण करते हैं। वर्षाके प्रारम्भमें तालाबके आस पास नर और मादाका सङ्गम होता है। गर्भिणी मेढ़कीके पेट

फूल जानेसे उसकी श्वासक्रियामें व्याघात पहुंचता है। जब तक कि इनका फुसफुस वृद्धिको प्राप्त हो कर श्वास लेनेके काविल नहीं हो जाता, तब तक इनके गलेमें रंगीन-सा कुछ दिखाई पड़ता है। गर्भिणी एक समयमें १३से १४ तक अण्डे देती है। अण्डेमें हरे रंगकी अण्ड-राल रहती है, जो जल्दी जमती नहीं। अण्डेमेंकी राल क्रमशः भ्रूण-रूपमें परिणत और उदरभागका क्षत-चिह्न-नाभिमें पर्यवसित होता है। कभी कभी एक अण्डेमें दो जीवोंकी उत्पत्ति देखनेमें आती है और कभी दो सिर, छह पैर और दो पूंछवाले भयानक जीवकी उत्पत्ति भी देखी गई है। बेंगचींकी पूंछ छूने पर भी उससे अन्यान्य क्रियाओंमें कोई बाधा नहीं पहुंचती। ये दांतो-से शैवालादि उद्भिज्ज पदार्थोंका विश्लेषण कर सकती हैं। उस समय इनकी श्वासक्रिया भी पूर्ववत् अक्षुण्ण रहती है।

प्राणितत्त्वविद्गण इनकी श्वासशक्तिको देख कर चमत्कृत हुए हैं। स्थानीय वायवीय तापके आधिक्यके कारण इनकी श्वासक्रियामें आतिशय्य देखा जाता है। M. Delaroche ने देखा है, कि ४२° से ४७° डिग्री (F) उत्तापमें रखे हुए भेककी अपेक्षा ८०° F वायवीय उत्तापमें रखा हुआ भेक ४ गुणा अधिक आम्लजन ग्रहण करता है। पानी समेत कांचके गिलासमें तथा गहरी बहती हुई नदीमें जाल डाल कर कई मास तक मेढ़कोंको रोक कर रखा गया है, उससे मालूम हुआ कि यह ज्यादा दिनों तक जीता है। उनकी यह वायु-ग्रहण शक्ति उन्हें दीर्घ समय तक जिलाये रखती है। किसी पत्थरके छिद्र-में प्रविष्ट हो कर यदि मेढ़क किसी कारणसे निकलने न पावे, तो वहीं वह वायु खा कर जीनेके लिये मज़बूर होता है। क्रमशः वर्षों बीत जाने पर जलवायुके गुणसे वह प्रवेश-पथ प्रस्तरकी स्वाभाविक वृद्धिसे आवद्ध हो जाता है। तब उसमें वायु वा आहार्य प्रवेशके लिए किसी प्रकारका छिद्र नहीं रहता। प्राकृतिक परिवर्त्तनसे प्रस्तर-छिद्रके अवरोधको देख कर अनुमान किया जाता है, कि वह मेढ़क शताब्दियोंसे उसमें रखा हुआ था, परन्तु आश्चर्यका विषय है, कि तब भी वह जीवित और पुष्ट-देहयुक्त है। पत्थर तोड़ते समय ऐसे जीवित मेढ़क भीतर से निकलते देखे गये हैं। डा० वकलैण्डने इस बातको प्रमाणित करनेके लिये १८२५ ई०में कई एक पत्थरके गोलाकार कोष बना कर उनमें हरएकमें एक एक बड़ा मेढ़क छोड़ कर उनके मुंह बन्द कर दिये थे। ये छिद्र पहले कांच और उस पर पत्थर दे कर सिमेण्टसे मूंदे गये थे। अन्तमें उन्हें १३ महीने तक मिट्टीमें गाड़ कर रखा गया। बाद निकालने पर कई एक तो आकृतिमें पुष्ट देखे गये और कईका शारीरिक ह्रास।*

ये जल और वायुका शोषण (अर्थात् तैरते समय जलग्रहण और श्वासप्रश्वास क्रिया) जिस प्रकारसे करते हैं उसका अनुधावन करनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। ये जितना पानी पीते हैं, उसका कुछ अंश तो पचा डालते हैं और कुछ शरीरके छिद्रोंसे निकल जाता है। शरीरगत जलीय पदार्थ चर्मद्वारसे निकल जाता है, इसलिये ये अधिक उत्तापमें भी जीते रहते हैं। १०४० (F) डिग्री उत्तप्त पानीमें मेढ़क २ मिनट तक जी सकता है, पर उतनी ही गरम वायुमें यह ४ या ५ घण्टे तक जी सकता है। जिस परिमाणमें यह शरीराभ्यन्तरस्थ जलीय पदार्थको निकाल कर गात्रचर्म शीतल रख सकते हैं, तभी तक यह बाह्यताप सह कर जीवन-रक्षामें समर्थ होता है।

जीव-जगत्‌में रह कर इस क्षुद्राकार जीवने थोड़ा बहुत सभी विषयोंमें भगवच्छक्ति प्राप्त की है। वृक्षकोटर वा प्रस्तरपिण्डके भीतर निरुद्ध अवस्थामें जीवनयापन

* प्रवाद है, कि पत्थरके भीतर रखे हुए ये मेढ़क प्रलयके पूर्ववर्ती युगके थे (Antediluviantoads) डा० बकलैण्डके प्रमाण देनेसे वह भ्रम दूर हो गया है। १७१७ ई०की विज्ञान-विवरणीमें (Memoirs of the Academy of Sciences) प्रकाशित हुआ है कि एक प्राचीन एलम-वृक्षके भीतर तथा १७३१ ई०में नैण्टज् नगरके एक पुराने ओकवृक्षके भीतर एक मेढ़क बन्द था। उसके प्रवेशपथका नामोनिशान भी न था। वृक्षकी आकृति और अवस्थाको देख कर अनुमान होता था कि कमसे कम एक शताब्दी पहले वह मेढ़क वृक्षकोटरमें प्रवेश कर पीछे उसमें रह गया था।
Eng, Cyclo, Nat, Hist. Vol, I, p, 159,

एकमात्र ईश्वर कृपाके सिवा और क्या हो सकता है? योगीगण जिस प्रकार चित्तवृत्तिका निरोध करके युग-युगान्तर पर्यन्त विद्यमान रहनेमें समर्थ होते हैं, इस भेक जातिने भी उसी प्रकार किसी अपूर्व कौशलसे निरुद्ध हो कर आत्मरक्षामें सम्यक् पारदर्शिता प्राप्त की है।

ईश्वरकी अलौकिक सृष्टिमें यह जीव अद्भुत क्षमता-सम्पन्न है। उसका मस्तिष्क, स्नायविक देह तथा चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् ये पांचों इन्द्रियां अपनी अपनी अवस्थामें क्रियाशील हैं। हां, श्रवण, आघ्राण आदिकी अपेक्षा इनकी दर्शन-शक्तिका प्राखर्य अधिक देखनेमें आता है। जिस ढंगसे यह सूक्ष्मरूपसे शिकार को लक्ष्य कर उस पर कूद पड़ता है, उसे देख कर दांतों उंगली दवानी पड़ती है। दर्शनके वाद इसकी स्पर्श-शक्ति उल्लेखयोग्य है। एकमात्र ताप-सहिष्णुता ही इनके स्पर्शज्ञानका परिचय देता है।

भेकोंके शरीरमें एक प्रकारका विष विद्यमान रहता है। यह विश्वास क्या भारतीय और क्या यूरोपीय सभीमें पाया जाता है। वह रस जहां कहीं भी लग जाता है; वहीं घाव पैदा कर देता है। यह विष देहकी चमड़ी, मस्तक, कंधा और पैरोंमें तथा शरीरांशके कोष-विशेषमें मौजूद रहता है। मेढ़कको मसकनेसे वह रस जोरोंसे निकल पड़ता है।

महावंशके २०वें अध्यायमें लिखा है कि, सम्राज्ञी अशोक-पत्नीने भेक-विषसे मगधस्थ महावोधि वृक्षको दहन करनेका निश्चय किया था। लगभग ईसाके पूर्व ४थी शताब्दीसे इनके विषका प्रभाव भारतवासियों-के हृदयमें जागरुक है।

यूरोपवासी सुसभ्य जातिमात्र ही तथा ब्रह्मवासी, चीनवासी और भारतवासी निम्नश्रेणीके व्यक्ति भेकका मांस खाते हैं। दक्षिण-भारतमें यूरोपसे आई हुई ईसाई स्त्रियां प्रति शुक्रवारको भेकमांस खाती हैं। चीनदेशमें भेकमांसका ज्यादा आदर है। क्षुद्र ह्रद वा जलाशयोंके किनारे और धान्यक्षेत्रोंमें अधिकतासे मेढ़क देखे जाते हैं। चीनके लोग भेकवहुल स्थानमें जा कर उनका शिकार किया करते हैं। वे एक वंसीमें फतिंगा या छोटी मेढ़कीको लगा कर उसे तालाव वगैरहमें डालते हैं। किसी वड़े मेढ़ककी दृष्टि उस पर पड़ते ही वह उस पर झपटता है और मुंहमें ले लेता है। डोरीमें खिंचाव पड़ते ही शिकारी उसे झटकेसे खींच लेते और टोकनीमें भर कर उन्हें वाजारमें वेच आते हैं।

चीनके वासिन्दा जिस निर्दयताके साथ मेढ़कोंको हत्या करते हैं, उसे देख कर हृदयतन्त्री व्यथित हो जाती है। वे मेढ़कोंसे भरी हुई टोकरी या टव ले जा कर वाजारमें बैठते हैं और खरीददारकी रुचिके माफिक उन्हें काट कर साफ कर देते हैं। पहले वे पैनी छुरीसे उसका सिर उड़ा देते और फिर तमाम चमड़ी उधेड़ डालते हैं। इस तरह जिन्दे जानवरकी सवके सामने चमड़ी उधेड़ कर उसे तौल कर वेचा करते हैं।

फरासीसियोंमें भेकमांस उपदेय और मूल्यवान् खाद्य समझा जाता है। उसे खाद्योपयोगी करनेके लिये मेढ़कोंको वे वड़े यत्नसे पालते हैं।

हमारे देशमें भेककी उपकारिताके विषयमें कई एक प्रवाद प्रचलित हैं। विकारग्रस्त रोगीकी मृत्युसे कुछ पहले उसकी आंखोंकी ज्योति घट जानेसे उसे मृत्युका पूर्वलक्षण समझ कर घरकी स्त्रियां खपरेके सरवाका काजल आंखोंमें देती है, उस समय कभी कभी वे मेढ़कके सिरसे जरा-सा रस निकाल कर रोगीके कपाल पर लगा देती है। उनका विश्वास है, कि भेकके विषसे रोगीकी आंखोंमें पड़ी हुई ज़ाली अच्छी हो जाती है। इसके प्रयोगसे उपकार होता है सही, पर समय पर वह फलप्रद नहीं होता। रोगविशेषमें भेक-मांसका झोल खिलाया जाता है। पदार्थविद्याविदोंने भेक-शरीरमें ताड़ितशक्तिकी सञ्चालन-क्षमता स्पष्टरूपसे दिखला दी है। वाइविलमें भी फेरो राजाकी भेक-विपत्तिका उल्लेख है।

भेकजमुक्ता (सं० स्त्री०) वह मुक्ता रूप पत्थर जो मेढ़कके मस्तक पर पाया जाता है। भावप्रकाशकके मतानुसार यह मणि भुजङ्गमणि सरीखा है।

मुक्ता शब्दमें विशेष विवरण देखो।

भेकट (सं० पु०) भेक इव टलति भेक-टल ड। मत्स्य-विशेष, एक प्रकारकी मछली।

भेकनि (सं० पु०) मत्स्यविशेष। इसका गुण—मधुर, शीतल, वृष्य, श्लेष्मकर और गुरु।

भेकपर्णी (सं० स्त्री०) भेकाकृति-पर्णमस्याः ङीष्। मंडूकपर्णी।

भेकभुज् (सं० पु०) भेकं भुङ्क्ते इति भुज्-क्विप्। सर्प, सांप।

भेकमूत्र (सं० क्ली०) भेकस्य मूत्रं। भेकका मूत्र, बेंगका मूत।

भेकराज (सं० पु०) भेकानां राजा, टच् समासं। १ महाभेक, बड़ा बेंग। २ भृङ्गराज, भंगरैया।

भेकासन (सं० क्ली०) रुद्रयामलोक्त पूजाङ्ग आसनभेद। अपनी छाती पर मस्तकको रख कर दोनों पैरको कंधेके ऊपर और फिर उसके ऊपर दोनों हाथ रखो। इसीका नाम भेकासन है। इस प्रकार आसन करके इष्टदेवका ध्यान करनेसे बहुत जल्द सिद्धिलाभ होता है।

भेकी (सं० स्त्री०) भेक (जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। पा ४।१।६३) इति ङीष्। १ भेकप्रिया, मेढ़की। पर्याय—शिली, गण्डुपदी, वर्षभी। २ मण्डकपर्णीवृक्ष।

भेकुरि (सं० स्त्री०) अप्सरोरूप नक्षत्र।

भेख (हिं० पु०) वेष देखो।

भेखज (हिं० पु०) भेषज देखो।

भेज (हिं० स्त्री०) १ वह जो कुछ भेजा जाय। २ लगान। ३ विविध प्रकारके कर जो भूमि पर लगाये जाते हैं।

भेजना (हिं० क्रि०) किसी पदार्थके एक स्थानसे दूसरे स्थान तक जानेका आयोजन करना।

भेजवाना (हिं० क्रि०) भेजनेके लिए प्रेरणा करना, भेजनेका काम दूसरेसे कराना।

भेजा (हिं० पु०) १ सिरके अंदरका मज्ज। २ चन्दा, बेहरी।

भेजाबरार (हिं० पु०) एक प्रथा। इसके अनुसार देहातोंमें किसी दरिद्र या दिवालियेका देन चुकानेके लिये आसपासके लोगोंसे चन्दा लिया जाता है।

भेट (हिं० स्त्री०) भेंट देखो।

भेटना (हिं० क्रि०) १ भेंटना देखो। (पु०) २ कपासके पौधेका फल, कपासका डोडा।

भेड़ (हिं० स्त्री०) १ बकरीकी जातिका, पर आकारमें उससे कुछ मोटा एक प्रसिद्ध चौपाया। यह बहुत ही सीधा होता है और किसको किसी प्रकारका कष्ट नहीं पहुंचाता। विशेष विवरण मेष शब्दमे देखो।

भेड़ा (हिं० पु०) भेड़ जातिका नर, मेढ़ा।

भेड़—१ सह्याद्रिवर्णित एक राजा। २ एक आभिधानिक।

भेड़ागिरि—राजतरङ्गिणीवर्णित एक पर्वत। यह भेर भृण्ड नामसे जनसाधारणमें मशहूर है।

(राजतरङ्गिणी १।३५)

भेड़िया (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध जङ्गली मांसाहारी जन्तु। यह प्रायः बस्तियोंके आस पास झुण्ड बांध कर रहता है और गांवोंमेंसे भेंड़, बकरियों, मुरगों अथवा छोटे छोटे बच्चों आदिको उठा ले जाता है। यह अपने शिकारको दौड़ा कर उसका पीछा करता है और बहुत तेज दौड़नेके कारण शीघ्र ही उसको पकड़ लेता है। रातके समय यह बहुत शोर मचाता है।

भेड़ी (सं० स्त्री०) भेड़-स्त्रियां ङीष्। १ स्त्री मेष, मादा भेड़। इसका दुग्ध-गुण—लवण, स्वादु, स्निग्ध अथच उष्ण, अश्मरीनाशक, अहृद्य, तर्पण, केशका हितकर, शुक्र, पित्त और कफवर्द्धक। यह कास और वायुरोगमें हितकर है। २ निम्न भूमिके चारों ओरका बांध।

भेड़ (सं० पु०) भेड़-पृषोदरादित्वात् साधुः। मेष।

भेतरगाँव—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत एक नगर। यह रायबरेली नगरसे ६ कोस दूर कानपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां अन्नदा देवीके उत्सवपर्वमें प्रतिवर्ष एक मेला लगता है।

भेतव्य (सं० त्रि०) भी तव्य। भयार्ह, भयके योग्य।

भेत्तृ (सं० त्रि०) भिनत्तीति-भिद् तृच्। भेदकर्त्ता।

भेद (सं० पु०) भिद्-घञ्। प्राचीन राजनीतिके अनुसार शत्रुको वशमें करनेके चार उपायोंमेंसे तीसरा उपाय। साम, दान, भेद और दण्ड ये ही चार उपाय हैं। जिस उपायके द्वारा शत्रु दलमेंसे किसीको बहका कर अपने दलमें मिला लिया जाय उसीका नाम भेद है। पर्याय—उपजाप, पृथक्करण, विश्लेष।

मत्स्यपुराणमें लिखा है कि जो परस्पर विद्विष्ट, क्रुद्ध भीत और अपमानित हैं, उन्हींके प्रति भेदका प्रयोग करना चाहिये; क्योंकि वे भेदसाध्य हैं। जिस दोषसे मनुष्य भय

खाते हैं उन्हें वह दोष दिखा देना उचित है। प्रवल शत्रुके प्रति यदि भेद उत्पन्न न करा सकें, तो उन्हें पराजय करना दुःसाध्य हो जायगा। इसी कारण शत्रुके साथ भेद उत्पन्न कराना नितान्त आवश्यक है। २ अन्तर, फर्क। ३ तात्पर्य, मर्म। ४ रहस्य, भीतरी छिपा हुआ हाल। ५ प्रकार, किस्म।

भेदक (सं० त्रि०) १ विदारक, छेदनेवाला। २ रेचक, दस्तावर।

भेदकर (सं० पु०) भेदं करोतीति कृ ट, भेदस्य करः। भेदकारक, भेद करनेवाला।

भेदकारिन् (सं० त्रि०) भेदं करोति कृ-णिनि। भेदक, भेदनेवाला।

भेदकारिशयोक्ति (सं० स्त्री०) एक अर्थालङ्कार।

भेदड़ी (हिं० स्त्री०) रवड़ी।

भेदधिक्कारन्यक्कारनिरूपण—वेदान्तमतावलम्वो प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ। नरसिंहदेवने इस ग्रन्थमें रामानुजमतका खण्डन किया है।

भेदन (सं० क्ली०) भिद्यतेऽनेनेति भिद-ल्युट्। १ विदारण, छेदना। २ अमलबेतस, अमलवेत। ३ हिंगु, हींग। ४ शूकर, सूअर। (त्रि०) ५ भेदकारक, भेदनेवाला। ६ विरेचनकारक, दस्त लानेवाला।

भेदन (वसईकेला)—१ मध्यप्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन गोंड़राज्य। अभी यह सम्वलपुर जिलेके अन्तर्गत है। एक समय यहांके गोंड़-सरदारका ६० वर्गमील स्थान पर आधिपत्य था। प्रवाद है, कि सम्वलपुरके प्रथम चौहानराज वलरामदेवने प्रायः तीन शताब्दी पहले इस सम्पत्तिको शिशाराय गोंड़को प्रदान किया। उक्त शिशारायसे ही यहांके सरदार-वंशकी प्रतिष्ठा हुई। १८५७ ई०में यहांके सरदार मनोहर सिंह विद्रोही सुरेन्द्रके साथ मिल गये थे, इस कारण युद्धक्षेत्रमें वे मारे गये। पीछे उनके नावालिग पुत्र वैजनाथ गद्दी पर वैठे। वालकराजके राजत्वकालमें राजपरिवारके मध्य विशेष विशृङ्खलता उपस्थित हुई। यह देख कर वृटिश-सरकारने १८७८ ई०में इसका शासनभार अपने हाथ ले लिया।

२ उक्तराज्यका प्रधान स्थान। यह अक्षा० २१° १२´ उ० तथा देशा० ८३° ४७´ ३०″ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां धान, उड़द, तैलकर वीज और ईखको चीनीका विस्तृत कारवार है।

भेदनीय (सं० त्रि०) भिद्-अनीयर्। भेदनयोग्य, भेद करने लायक।

भेदवुद्धि (सं० स्त्री०) एकताका नाश या अभाव, फूट।

भेदभाव (सं० पु०) अन्तर, फर्क।

भेदवादिन् (सं० त्रि०) भेदं वदति वद-णिनि। १ भिन्न मतावलम्वी। २ वह जो एक ब्रह्ममें भिन्न रूपत्व वा भेदज्ञानकी कल्पना करते हैं। इसी भेदवुद्धिसे द्वैत और अद्वैत मतकी सृष्टि हुई है।

द्वैत, अद्वैत और ब्रह्म शब्द देखो।

एकमात्र वेदान्तशास्त्रमें ही ब्रह्म प्रतिपन्न हुए हैं। अलावा इसके वैशेषिक, सांख्य, पातञ्जल, चार्वाक आदि दर्शनकारगण भेदवादकी आलोचना ले कर भारी आन्दोलन कर गये हैं। वैशेषिक प्रभृति दर्शन शब्द देखो।

न्यायशास्त्रके मतसे,—वस्तु-विशेषके मध्य आपसका विभिन्नता द्योतक जो अप्रत्यक्ष ज्ञान है, वही भेदवुद्धि है। एकमें दूसरेकी प्रकृतिका अस्तित्वभाव देख कर स्वभावतः ही मनमें जो वैषम्य ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, उस वैपरीत्यका लक्ष्य कर उस विषयकी पृथकताको दूर करनेके लिये नैयायिकोंने जिन विशेष मतोंकी अवतारणा की है, उसीके आलोचना पर व्यक्तिमात्र हैं।

पुराणवर्णित ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि उपास्य-देवताविशेषमें जो भेद समझते हैं, वे ही भेदवादी हैं। देवतामें भेद माननेवालोंको विशेष निन्दनीय वतलाया गया है।

"यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत सा पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥"

(पद्मपु०)

रामानुज, कवीर और श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रवर्त्तित वैष्णव-धर्म एक होने पर भी उनमें मतभेद देखे जाते हैं। वे प्रकृत भेदवादी नहीं हैं, फिर भी दूसरी तरहसे भेदवादी हैं। संक्षेपशङ्करजय पढ़नेसे जाना जाता है कि, भास्कर भेदाभेदवादी, अभिनव गुप्त शाक्त, नीलकण्ठ भेदवादी, प्रभाकरगुरु और मण्डनमिश्र भट्टमतानुयायी थे। (संक्षेपश० ५।५०)

सभी धर्ममतमें उपासना भेदसे भेदभाव दिखलाया गया है। पौत्तलिकता, आस्तिक्यवाद और नास्तिक्य वाद उसका कारण है। मूर्त्तिगत उपासना और 'एकमेवा द्वितीय' रूप परब्रह्मकी आराधनामें भेदभाव लक्षित होता है। ईसाई, ब्राह्म आदि मूर्त्तिगत उपासनाके प्रकृष्ट विरोधी हैं, अतएव वे ही यथार्थमें पौत्तलिक हिन्दूकर्मके घोर द्वेषी हैं। बुद्धदेव इस जगत्में 'अहिंसा परमो-धर्मः' प्रचार कर गये हैं। उन्होंने जब सुना, कि राजा विम्बिसार शक्तिपूजामें छागकी बलि देते हैं, तब वे बड़े कातर हुए थे। उन्होंने हिंसाप्रवण पौत्तलिक हिन्दूधर्म-मूलमें कुठाराघात करनेकी चेष्टा की थी। यही कारण है, कि उनके मतावलम्बी बौद्धगण हिन्दूधर्मके भेदवादकी कल्पना कर गये हैं।

भेदवादिन्—भागवतपुराण टीकाके प्रणेता।

भेदसह (सं० त्रि०) भिन्न करनेमें समर्थ।

भेदित (सं० त्रि०) भिद्-णिच् कर्मणि क्त। १ भिन्न, विदारित। (पु०) २ तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका मन्त्र जो निन्दित समझा जाता है।

भेदित्व (सं० क्ली०) भेदिनो भावः त्व। भेदकका भाव या धर्म।

भेदिन् (सं० त्रि०) भेत्तुं शीलमस्येति भिद्-णिनि। १ भेदकर्त्ता, भेद करनेवाला। (पु०) २ अम्लवेतस, अमलवेत।

भेदिनी (सं० त्रि०) १ भेदकारिणी, भेद करानेवाली। (स्त्री०) २ तन्त्रके अनुसार एक प्रकारकी शक्ति। इसकी सहायतासे योगी लोग षट्चक्रको भेद सकते हैं और इस शक्तिके साधनसे बहुत श्रेष्ठ हो जाते हैं।

भेदिनीवटी (सं० स्त्री०) प्लीहा-यकृताधिकारमें प्रयोग करने वाली एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—गोक्षुर, थूहरके दूध और पीपलको एक साथ घोंट कर गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे विरेचन हो कर सब प्रकारकी प्रबल पीड़ा शान्त होती है।

भेदिया (हिं० पु०) १ भेद लेनेवाला, गुप्तचर, जासूस। २ गुप्त रहस्य जाननेवाला।

भेदिर (सं० क्ली०) भिदुर, वज्र।

भेदी (हिं० पु०) १ गुप्त हाल बतानेवाला, जासूस। २ गुप्त हाल जाननेवाला। ३ भेदिन् देखो।

भेदीसार (सं० पु०) बढ़इयोंका एक यन्त्र। इससे वे काठमें छेद करते हैं। इसका दूसरा नाम बरमा भी है।

भेदुर (सं० क्ली०) भिदुर पृषोदरादित्वात् साधुः। भिदुर, वज्र।

भेद्य (सं० त्रि०) भिद्-ण्यत्। १ भेदन करने योग्य, जो भेदा या छेदा जा सके। (पु०) २ शस्त्रों आदिकी सहायतासे किसी पीड़ित अंग या फोड़े आदिको भेदन करनेकी क्रिया। व्रणपीड़ा देखो।

भेन (हिं० स्त्री०) बहिन। इसका शुद्ध रूप प्रायः भैन है।

भेना (हिं० क्रि०) भिगोना, तर करना।

भेभम (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत छोटा और पतला बांस जो हिमालयमें होता है। इसका दूसरा नाम रिंगाल वा निगाल भी है।

भेय (सं० क्ली०) भयभीत, डरसे इधर उधर भागना।

भेयपाल (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

भेर (सं० पु०) बिभेत्यस्मादिति भी (भृजूेन्द्राग्रवज्रेति। उण् पा २।२८) इति रन्। १ पटह। २ भेरी। ३ दुन्दुभी।

भेरव—सह्याद्रिवर्णित एक राजा।

भेरवा (हिं० पु०) भारतके प्रायः सभी गर्म देशोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका खजूर। इसके पत्तोंके रेशोंसे रस्सियां बनती हैं। इसे पाछनेसे एक प्रकारकी ताड़ी भी निकलती है। इसका व्यवहार बंबई और लंकामें बहुत होता है।

भेरा—१ पञ्जाब प्रदेशके शाहपुर जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० ३१° ५५´ से ३२° ३८´ उ० तथा देशा० ७२° ४३´ से ७३° २३´ पू० के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ११७८ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसके उत्तरमें झेलम नदी और दक्षिण-पूर्वमें चनाब नदी बहती है। इस तहसीलमें १ शहर और २६४ ग्राम लगते हैं। यहांके विजभी ग्रामके समीप एक बड़ा भग्न स्तूप देखा जाता है। इसमें पञ्जाब प्रदेशके प्राचीन ग्रीक समृद्धिके अनेक निदर्शन मिलते हैं। इससे अनुमान किया जाता है, कि एक समय यह बहुत समृद्धिशाली नगर था।

२ उक्त तहसीलका प्रधान नगर। यह अक्षा० ३२°

२८° उ० तथा देशा० ७१° ५६' पू० झेलम नदीके वाएं किनारे अवस्थित है। झेलम नदीके किनारे स्थापित होनेके कारण यहांकी वाणिज्यसमृद्धिकी दिनों दिन वृद्धि देखी जाती है। नगरका प्राचीन अंश आज भी नदीतट पर देखा जाता है। मुगल-सम्राट् वावरके आक्रमणकालमें यहांके नगरवासियोंने २ लाख रुपये नगद दे कर मुगल-आक्रमणसे आत्म-सम्मानकी रक्षा की थी। पीछे वह निकटवर्त्ती पार्वतीय अधिवासियोंके द्वारा तहस नहस कर डाला गया। जोवनाथ नगरके ध्वंसावशेषको डा० कनिंहमने माकिदन-वीर अलेकसन्दरके समसामयिक ग्रीकराज्य सोफाइटिसकी राजधानी वतलाया है। १५४० ई०में किसी मुसलमान-पीरकी समाधि मसजिदके चारों ओर वर्त्तमान नगर वसाया गया। सम्राट् अकवरशाहके शासनकालमें यह एक राजस्व वसूलका केन्द्रस्थान समझा जाता था।

१७५७ ई०में अफगानराज अहमदशाहके सेनापति नूर उद्दीनने इस स्थानको लूटा और तहस नहस कर डाला। भङ्गी सरदारोंके यत्नसे यहां पुनः लोग आ कर वस गये जिससे नगरकी शोभा वढ़ गई। जवसे यह अंगरेजोंके दखलमें आया, तवसे इसकी श्रीवृद्धि हुई है। विख्यात आमेरिक-युद्धके समय यहां रुईका कारवार जोरों चलता था। आज भी घी, देशी और विलायती कपड़े, कम्वल, रेशमी, पशमीने, तलवार, छुरी, लोहे और ताम्रपात्रादि तथा चावल, चीनी और गुड़ आदिका वाणिज्य होते देखा जाता है।

भेरा (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़ जो मध्य तथा दक्षिणी भारतमें पाया जाता है। इससे लकड़ी, गोंद, रंग और तेल इत्यादि पदार्थ मिलते हैं। इसकी लकड़ी मेज, कुर्सी, खेतीके औजार और तसवीरोंके चौखटे आदि वनानेके काममें आती है, पर जलानेके कामकी नहीं होती। क्योंकि इससे धूआं ज्यादा निकलता है। इसे भीरा भी कहते हैं।

भेरि (सं० स्त्री०) विभ्यति शत्रवोऽस्या इति भी (वङ्क्र्यादयश्च। उण् ४।६६) इति क्रिन् वाहुलकात् गुणः। वृहड्ढका, वड़ा ढोल या नगारा। पर्याय—आनक, दुन्दभि, भेरी, आनकदुन्दुभि, आनकदुन्दभी।

भेरी (सं० स्त्री०) भेरि कृदिकारादिति पक्षे ङीप्। वृहड्ढका, वड़ा ढोल या नगारा।

भेरी—१ मध्यभारत एजेन्सीके वुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। भूपरिमाण ३० वर्गमील है। यहांके सरदार पुयारवंशीय राजपूत हैं। वे वृटिश सरकारके इकरारनामा और सनदके अनुसार शासन करते हैं। सामन्तराजको गोद लेनेका अधिकार है। इन्हें २५ अश्वारोही और १२५ पदाति सेना है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह वेतवा (वेत्रवती) नदीके वाएं किनारे अवस्थित है।

भेरीकार (हिं० पु०) भेरी वजानेवाला।

भेरीस्वनमहास्वना (सं० क्ली०) कुमारानुचर मातृभेद।

भेरुण्ड (सं० क्लो०) १ गर्भधारण। (त्रि०) २ भयानक।

भेरुण्डा (सं० स्त्री०) भेरुण्ड-टाप्। १ देवताविशेष। २ यक्षिणीभेद।

भेरेन—मध्यप्रदेशके सम्वलपुर जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण २० वर्गमील है।

भेल (सं० पु०) १ एक प्राचीन ऋषिका नाम। २ भेलक, वेड़ा। (त्रि०) ३ भीरु, डरपोक। ४ चञ्चल। ५ मूर्ख, वेवकूफ।

भेल—आयुर्वेद प्रचारक एक प्राचीन महर्षि। आत्रेय आदि भेलके और आप पुनर्वसुके शिष्य थे। चरकसे यह वात प्रमाणित होती है, कि भेल ऋषि-प्रणोत चिकित्साशास्त्र इसके पहले प्रचलित था।

भेलक (सं० पु० क्ली०) भेल-स्वार्थे कन्। नद्यादितरणसाधन वस्तु, नदी आदि पार करनेका वेड़ा। पर्याय—प्लव, कोल, उड़ूप, तरण, तारण, तारकण्व, तरीष। (जटाधर)

भेला (हिं० पु०) वड़ा गोल या पिण्ड।

भेली (हिं० स्त्री०) १ गुड़ या और किसी चीजकी गोल वट्टी या पिण्डी। २ गुड़।

भेलुपुरा (सं० स्त्री०) वाराणसोधामके अन्तर्गत एक गण्डग्राम।

भेश (हिं० पु०) वेष देखो।

भेष (हिं० पु०) वेष देखो।

भेषज (सं० क्ली०) भिषजो वैद्यस्येदमित्यण्; निपातनादेत्वं, वा भेषं रोगं जयतीति जि-ड। १ औषध, दवा। औषध सेवनके कालादिका विवरण भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—

प्रातःकाल ही औषध सेवनका उत्तम समय है, विशेषतः क्वाथऔषध सुबह ही खानी चाहिये। चरकादिमें औषधसेवनके ५ समय निर्दिष्ट हुए हैं, जैसे—सूर्योदयकाल, दिवाभोजनके पहले और बाद, सायंकालीन आहारके बाद, मुहुर्मुहु और रात्रिकाल।

प्रथमकाल।—पित्त और कफके प्रावल्यसे तथा विरेचन वमन और कर्षणके लिये प्रातःकालमें अन्नभोजनसे पूर्व ही औषध सेवन करना उचित है।

द्वितीयकाल।—अपान वायु कुपित होने पर भोजनके पहले औषधिका प्रयोग करना प्रशस्त है। अरुचिरोगमें नाना प्रकारके मनोहर और रुचिकारक द्रव्यमिश्रित भोज्य पदार्थके साथ औषधप्रयोग हितकर है। समान वायुके प्रकोपमें और मन्दाग्निमें भोजनके अन्दर अग्निप्रदीपक औषध देना विशेष उपकारी है। व्यानवायुके प्रकोपमें भोजनके उपरान्त औषध देनी चाहिये। हिक्का, आक्षेप और कम्प उपस्थित होने पर भोजनके पूर्व और पश्चात् औषध सेवन की जा सकती है।

तृतीयकाल।—स्वरभंग आदि रोगजनक उदानवायु कुपित होने पर सायंकालमें भोजनके प्रत्येक ग्रासके साथ औषध सेवन करना हितकर है। प्राणवायु दूषित होने पर हितकर भोजनके बाद औषधि खाना ठीक होगा।

चतुर्थकाल।—तृष्णा, वमन, हिक्का और श्वासरोग तथा गरदोषमें अन्नके साथ मुहुर्मुहुः औषध देनी चाहिये।

पंचमकाल।—लेखनक्रिया, वृंहण, तथा पचनमें रात्रिको अन्नभोजन न करा कर औषध प्रयोग करना चाहिए। अन्न खानेके पहले औषध सेवन करनेसे औषधका वीर्य प्रवल होता है इसलिए शीघ्र ही रोग नष्ट हो जाता है। परन्तु वालक, वृद्ध, युवती, स्त्री और कोमल शरीरविशिष्ट रोगियोंको आहारके पहले औषध देना ठीक नहीं, क्योंकि उससे उनका बल घटता है। अन्नके साथ औषध सेवन करनेसे वह शीघ्र पच जाता है; औषध सेवन करके उसके पचे विना ही भोजन करनेसे तथा खाये हुए भोजनके विना पचे ही औषध सेवन करनेसे व्याधिका उपशम नहीं होता, वल्कि और और रोग उत्पन्न हो जाते हैं। औषध पच जाने पर वायुका अनुलोम, शरीरकी सुस्थता, क्षुधा और तृष्णाका उद्रेक, मनकी प्रफुल्लता, शरीरका लघुत्व, इन्द्रियों की प्रसन्नता और उद्गारकी शुद्धि होती है। औषध न पचे, तो क्लान्ति, दाह, शरीरकी अवसन्नता, भ्रान्ति, मूर्च्छा, शिरोरोग, ग्लानिवोध तथा वलका ह्रास होता है।

भक्षणविधि।—देवता, गुरु और ब्राह्मणोंको प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद ले भक्तिके साथ औषध सेवन करना चाहिए। औषध सेवन करनेसे पहले गुरुजनोंको इस प्रकार आशीर्वाद देना चाहिए, कि जिस तरह ऋषियोंके लिए रसायन, देवोंके लिए अमृत और नागोंके लिए सुधा उपकारी है उसी प्रकार यह औषध तुम्हारे लिए उपकारी होवे। ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार आदि तुम्हें रोगसे मुक्त करें। पश्चात् रोगीको प्रशान्तभावसे बैठ कर आत्मीयजनोंके समक्ष औषध सेवन करना चाहिए। स्वर्ण, रौप्य वा मृण्मय पात्रमें औषध सेवन करना उचित है। (भावप्र० द्वितीय भा०)

सुश्रुतमें लिखा है—औषध संग्रह करना हो, तो भूमि और उपयुक्त कालादिका विषय देखना चाहिए।

भूमि देखो।

अष्टाङ्ग हृदयसंहितामें भेषज-संग्रहका स्थान इस प्रकार निर्दिष्ट है :—

"धन्वसाधारणे देशे समे सन्मृत्तिके शुचौ।
श्मशानचैत्यायतनश्वभ्रवल्मीकवर्जिते॥
मृदौ प्रदक्षिणजले कुशरोहिषसंस्तृते।
अफालकृष्टेऽनाक्रान्ते पादपैर्बलवत्तरैः॥
शस्यते भेषजं जातं युक्तं वर्णरसादिभिः।
जन्त्वदग्धं दवादग्धमविदग्धं च वै कृतैः॥
भूतैश्छायातपाम्बुद्यैर्यथाकालं च सेवितं।
अवगाढ़महामूलमुदीचीं दिशमाश्रितम्॥"

(अष्टाङ्गहृ० ५।६।१-४)

औषधि स्थानविशेषमें और यथासमय संगृहीत होने

पर भिषग्‌को चाहिए, कि निर्दिष्ट परिमाणके अनुसार उसे विभिन्न ओषधादिमें प्रयोग करें अथवा रोगके तारतम्यानुसार रोगीको सेवन करावें।

औषधसंग्रहका काल।—औषध संग्रह करते समय उपयुक्त काल पर लक्ष्य रखना आवश्यक है। प्रावृट्कालमें मूल, वर्षाकालमें पत्र, शरत्कालमें त्वक्, हेमन्तकालमें क्षीर, वसन्तकालमें सार और ग्रीष्मकालमें फलग्रहण करना चाहिए। परन्तु यह सर्ववादि-सम्मत नहीं है। सौम्य अर्थात् शीतल वा स्निग्ध औषध सौम्यकालमें; वर्षा, शरत् और हेमन्तको सौम्यकाल कहते हैं। रुक्ष वा तीव्र औषधियां आग्नेय ऋतुमें संग्रह करना चाहिए। क्योंकि जगत्‌के पदार्थ साधारणतः सौम्य और आग्नेय इन दो भागोंमें विभक्त है। सौम्यऋतुमें भूमिका सौम्यगुण अधिक बढ़ा रहता है, इसलिए उस समय जो जो सौम्य औषधियां उत्पन्न होती हैं, वे सौम्यगुण-विशिष्ट द्रव्य ही विशेष उपकारक हैं। इसी प्रकार आग्नेय औषधोंके सम्बन्धमें समझना चाहिए।

गोपालक, तापस, व्याध, वनचारी वा मूलाहारियोंके पास द्रव्योंकी खोज करनी चाहिए। पत्र और लवण आदि द्रव्योंके सम्पूर्ण अंश ही ग्रहण किये जा सकते हैं। इन संग्रहोंमें कालाकालका विधान नहीं है। मधु, घृत, गुड़, पीपल और विड़ङ्ग ये पुराने हों तो अच्छे। इसके अलावा और सब चीजें नयी होनी चाहिए। सरस औषधमात्र ही वीर्यवान् होती हैं इसलिये सरस द्रव्य ग्रहण करना चाहिए। सरस द्रव्यके अभावमें संवत्सरके भीतर जो द्रव्य संगृहीत हुआ है, उसीसे काम चलाना उचित है। औषधगृह पवित्र और प्रशस्त रखना चाहिए।

भेषज कषाय, मन्थ, कल्क, चूर्ण, क्वाथ और अवलेह आदि भेदोंसे नाना प्रकार है। (सुश्रुत सूत्र० ५, ६ अ०)

इनका विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखो।

ज्योतिषके अनुसार भेषजकरण और सेवन दोनों ही उत्तम दिन देख कर करना चाहिए। इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—द्व्यात्मकलग्नमें, शनि और मङ्गलवारके सिवा दूसरे वारमें; शुभचन्द्र और शुभ तिथिमें; पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, मघा, भरणी, अश्लेषा, विशाखा और आर्द्राके सिवा अन्य नक्षत्रमें; जन्मनक्षत्र और विष्टिभद्रादि रहित दिनमें भेषजकरण तथा कृत्तिका, मृगशिरा, धनिष्ठा, स्वाती, रेवती, पुष्या, श्रवणा, पुनर्वसु, चित्रा, मूला, ज्येष्ठा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, हस्ता, अनुराधा और अश्विनी नक्षत्रमें और शुभवारमें भेषज भक्षण प्रशस्त है।

(ज्योतिः-सा०)

२ जल, पानी। ३ सुख। (पु०) ४. विष्णु।

(विष्णु स०)

भेषजचन्द्र (सं० पु०) राजभेद।

भेषजागार (सं० क्ली०) भेषजस्य अगारं। औषध बनानेका घर।

भेषजाङ्ग (सं० क्ली०) भेषजस्य औषधस्य अङ्गमवयव इव। अनुपान।

भेषज्य (सं० त्रि०) स्वास्थप्रद आरोग्ययोग्य।

भेस (हिं० पु०) १ वाहरी रूप रंग और पहनावा आदि। २ वह बनावटी रूप रंग और नकली पहनावा आदि जो अपना वास्तविक रूप या परिचय छिपानेके लिये धारण किया जाय।

भेसज (हिं० स्त्री०) औषध, दवा।

भैंस (हिं० स्त्री०) १ गायकी जाति और आकार-प्रकारका पर उससे बड़ा चौपाया। लोग इसे दूधके लिये पालते हैं। इसके नरको भैंसा कहते हैं। विशेष विवरण महिष शब्दमें देखो। २ पंजाब, बंगाल तथा दक्षिण भारतकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। इसकी लंबाई तीन फुट होती है। इसका मांस खानेमें स्वादिष्ट होता है पर उसमें हड्डियां अधिक होती हैं। ३ एक प्रकारकी घास।

भैंसरोरगढ़—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर और गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २४° ५८' उ० तथा देशा० ७५° ३६' पू० भामनी और चम्बल नदीके संगमस्थान पर एक गण्डशैलके ऊपर अवस्थित है। इसके दुरारोह उत्तर पार्श्वको छोड़ कर और तीनों ही ओर नदी है। इस कारण शत्रुसेनाका दुर्ग पर चढ़ाई करना एक प्रकारसे असम्भव है। दिल्लीके पठानराज अलाउद्दीन (१२९५-१३१६ ई०) ने इस दुर्गको अधिकार किया था। हारा-

वती और मेवार नगरके वाणिज्यद्रव्यादि इसी नगर हो कर लाये जाते हैं। उदयपुर राज्यके एक प्रधान सामन्त यहां रहते और आधिपत्य करते हैं। यहांसे तीन कोस पश्चिम वरोलीका सुप्राचीन ध्वंसावशेष समूह दृष्टिगोचर होता है। इस प्राचीन नगरका नाम भद्रावती है। हूण-राजाओंके शासनकालमें इसकी यथेष्ट श्रीवृद्धि हुई थी। वर्त्तमान भैंसरोरगढ़के चारों ओर जो ध्वंसराशि और स्तूपराजि-वही उसका निदर्शन है। महात्मा टाड साहब यहांके भग्नप्राय शिवमन्दिरका अत्याश्चर्य शिल्पनैपुण्य देख गये हैं।

भैंसवाल—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह यमुना नदीके पूर्व खालके ऊपर मुजफ्फर नगरसे १३॥० कोस दूरमें अवस्थित है। इस ग्रामके ठीक मध्यस्थलमें स्थापयिता पीर घाइंवका २० फुट ऊंचा एक समाधिस्तूप है।

भैंसा (हिं० पु०) भैंस नामक पशुका नर। यह प्रायः बोझ ढोने और गाड़ियां आदि खींचनेके काममें आता है। पुराणानुसार यह यमराजका वाहन माना जाता है। महिष देखो।

भैंसाव (हिं० पु०) भैंस और भैंसेका जोड़ खाना।

भैंसासुर (हिं० पु०) महिषासुर देखो।

भैंसौरी (हिं० स्त्री०) भैंसका चमड़ा।

भैक्ष (सं० क्लो०) भिक्षाणां समूह इति भिक्षा (भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।७८) इत्यण्। १ भिक्षासमूह। २ भिक्षा मांगनेकी क्रिया। ३ भिक्षा मांगनेका भाव। ४ भिक्षा, भीख। ५ भिक्षावृत्तिपादक ग्रन्थव्याख्यान।

भैक्षचर्या (सं० स्त्री०) चर भावे क्यप् टाप्, भैक्षस्य चर्या। भिक्षाचरण, भीख मांगनेका काम।

भैक्षजीविका (सं० स्त्री०) भैक्षेण जीविका। भिक्षा द्वारा जीवनोपाय। पर्याय - पैण्डिन्य।

भैक्षभुज् (सं० त्रि०) भैक्षं भुङ्क्ते यः भुज्-क्विप्। भिक्षाशी, भिक्षान्न भोजनकारी।

भैक्षव (सं० क्ली०) भिक्षुकाणां समूहः खण्डिकादित्वात् अञ्। भिक्षुसमूह।

भैक्षवृत्ति (सं० स्त्री०) भैक्षेण वृत्तिः जीविका। १ भिक्षा द्वारा जीवनोपाय। (त्रि०) २ जिनकी भिक्षा हो उपजीविका है।

भैक्षाकुल (सं० क्ली०) अतिथिशाला, वह स्थान जहांसे बहुत-से लोगोंको भिक्षा मिलती है।

भैक्षान्न (सं० क्ली०) भैक्षं यदन्नं। भिक्षालब्ध अन्न।

भैक्षाशिन् (सं० त्रि०) भैक्षं अश्नाति अश-णिनि। भिक्षा-भोजी।

भैक्षाहार (सं० त्रि०) भिक्षालब्ध द्रव्योपजीवी।

भैक्षुक (सं० क्ली०) भिक्षुकमण्डली।

भैक्ष्य (सं० क्ली०) भिक्षाणां समूहः ष्यञ्। १ भिक्षा-समूह, भीख। २ चतुराश्रममें करने योग्य एक वृत्ति।

भैचक (हिं० वि०) विस्मित, चकित।

भैजन (हिं० वि०) भयप्रद, भय उत्पन्न करनेवाला।

भैदा (हिं० पु०) भयप्रद, डरावना।

भैदिक (सं० त्रि०) भेदं नित्यमर्हति छेदादित्वात् ठञ्। नित्यभेदनार्ह।

भैन (हिं० स्त्री०) बहिन।

भैना (हिं० स्त्री०) १ भगिनी, बहन। २ जंगई नामक पक्षी।

भैनी (हिं० स्त्री०) भगिनी, बहन।

भैने (हिं० पु०) बहिनका पुत्र, भानजा।

भैम (सं० त्रि०) भीमस्य नृपस्येदं अण्। १ भीमनृप-सम्बन्धी, भीमका। (पु०) २ राजा उग्रसेन।

भैमगव (सं० पु०) एक गोत्रका नाम।

भैमरथ (सं० पु०) भीमरथमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः। भीम-रथाधिकार द्वारा कृत ग्रन्थ।

भैमसेन्य (सं० पु०) भीमसेनस्यापत्यं कुरुत्वात् अणि प्राप्ते वार्त्तिकोक्त्या ञ्य। भीमसेनका अपत्य।

भैमायन (सं० पु० स्त्री०) भीमसेनस्यापत्यं युवा, इञन्तात् फक्। भीमका युवा अपत्य।

भैमि (सं० पु०) भीमका अपत्य।

भैमी (सं० स्त्री०) भीमेनोपासिता भीमस्य इयं वेति भीम-अण् ङीप्। १ भीमएकादशी। यह एकादशी बाल, आतुर और वृद्धको छोड़ कर और सभीको करनी चाहिये। इस एकादशीके दिन उपवास करके द्वादशीके दिन षट्-तिलाचार करनेसे सभी प्रकारका पाप जाता रहता है। तिलस्नान, तिलोद्वर्त्तन, तिलहोम, तिलोदकपान, तिलदान और तिलभोजन यही षट्-तिलाचार है। यह षट्तिला-

चरण करनेसे कभी भी अवसन्न होना नहीं पड़ता है। भीमैकादशी देखो। भीमस्य राज्ञः अपत्यं अण् ङीष। २ भीमराज-नन्दनी दमयन्ती। ३ भीमसम्बन्धिनी। ४ भीमसेन-प्रणीत व्याकरण।

भैम्यकादशी (सं० स्त्री०) एकादशी व्रतविशेष। भीमैकादशी देखो।

भैयंस (हिं० पु०) सम्पत्तिमें भाइयोंका हिस्सा, भाइयोंका अंश।

भैया (हिं० पु०) १ भ्राता, भाई। २ बराबरवालों या छोटों-के लिये संबोधन शब्द। ३ नावको पट्टी या तख्ती।

भैयाचार (हिं० पु०) भाईचारा देखो

भैयाचारी (हिं० पु०) भाईचारा देखो।

भैयादोज (हिं० स्त्री०) कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया, भाईदूज।

भैयाभट्ट—धर्मरत्नके प्रणेता, भट्टारक भट्टके पुत्र।

भैरव (सं० त्रि०) भीरोरिदं त्रासकृत्, भीरु-अण्। १ भयानक, जिससे भय हो।

"सव्येन च कटीदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः।
तद्रक्षो द्विगुणं चक्रे रुवन्तं भैरवं वरम्॥"

(भारत १।१६४।२७)

(पु०) भीर्भयङ्करो रवो यस्य। इति भीरव, ततः स्वार्थे अण्। २ शङ्कर, महादेव। (मेदिनी) ३ भयानक रस। (अमरटीका भरत) ४ नदविशेष, एक नद। (शब्दरत्ना०) ५ रागभेद, एक प्रकारका राग। यह राग ६ रागोंमेंसे एक है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

"गंगाधरःशशिकातिलकस्त्रिनेत्रः।
सर्पैर्विभूषिततनुर्गजकृत्तिवासाः॥
भास्वत्रिशूलधर एष नृमुण्डधारी।
शुभ्राम्बरो जयति भैरवरागराजः॥" (संगीतरत्ना०)

रागविरोधके मतसे इसका सरगम इस प्रकार है—

ध नि सा ऋ ग म प - : :

मतान्तरसे—

ध नि सा ऋ ग म ० : :

गायकगण इसे भैरों कहा करते हैं। ब्रह्माके मतसे इसकी पत्नियां ये हैं—मालश्री, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधुवी और पहाड़ी। भरतके मतसे—बंगाली, भैरवी, मध्यमा, सिन्धुवी, मधुमाधवी और विराटी। हनूमन्‌के मतसे—वराटी, मध्यमादि, भैरवी, सैन्धवी और बंगाली। भैरवरागके पुत्र ये हैं—देवशाक, नट, विभास, श्याम, ढोल, अजयपाल। पुत्रवधु—योगिजा, रेखव, अशिरी, रेवा, वहना और मेटियाल। इसके सखा कलंड़ा, सखी और सुहा है।

यह राग हनूमनके मतसे छः रागोंमेंसे पहला राग है, और महादेवके मुखसे निकला है। इसकी जाति उड़व है। धैवत, निषाद, षड्ज, गान्धार और मध्यम इन पांच स्वरोंके मिलने पर जो राग होता है, उसे उड़व कहते हैं। इसका ग्रह धैवत स्वर है। शरदृऋतुमें प्रातः-काल ही इसके गानेका समय है। यह आकारमें महा-देवकी भांति अर्थात् सुन्दर संन्यासी, भस्मभूषित वदन, मस्तकमें जटाभार, जटासे गङ्गाजल गिर रहा है, हाथोंमें कङ्कण भूषण, ललाट पर अर्द्धचन्द्र, त्रिनयन, सर्प द्वारा स्कन्ध और बाहुवेष्टित, भाल पर तिलक, कंधे पर हस्तिचर्म, व्याघ्रचर्म पर आसीन, गलेमें मुण्डमाला, हाथोंमें त्रिशूल, वृषभ पार्श्वदेशमें अवस्थित है, यही भैरवरागकी प्रकृत मूर्त्ति है।

इसकी रागिणियां पांच हैं—भैरवी, वैराटी, मधु-माधवी, सिन्धवी और बङ्गाली। आठ पुत्र हैं—हर्ष, तिलक, पुरीय, माधव, सूह, बलनेह, मधु और पञ्चम।

कल्लिनाथके मतसे भैरव चौथा राग है। इसकी रागिणियां छः हैं—भैरवी, गुर्जरी, भाषा, वेलावती, कर्णाटी और रगतंसा। किसीके मतसे रगतंसा स्थल-में बड़हंसी है। इस मतसे भी पुत्र पूर्वोक्त आठ ही हैं।

सोमेश्वरके मतसे रागिणी छः हैं—भैरवी, गुर्जरी, रेवा गुणकली, बङ्गाली, और बहुली। इस मतसे रागिणीके साथ इसके गानेका समय ग्रीष्मऋतु है।

भरतके मतसे इसकी रागिणी पांच हैं—मधुमाधवी, ललिता, वरारी, वाहाकली और भैरवी। पुत्र ८ हैं, यथा—देवशाख, ललित, हर्ष, विलावल, माधव, बङ्गाल, विभास और पञ्चम। भैरवरागकी ८ स्त्रियां हैं—सूहा, वेलावली, सोरठी, कुम्भारी, आन्दाही, बहुलगर्जरी, पट-मञ्जरी, मिरवी। मतान्तरसे भार्या—भैरवी, बङ्गाली, वरारी, मध्यमा, मधुमाधवी और सिन्धवी। पुत्र—

वती और मेवार नगरके वाणिज्यद्रव्यादि इसी नगर हो कर लाये जाते हैं। उदयपुर राज्यके एक प्रधान सामन्त यहां रहते और आधिपत्य करते हैं। यहांसे तीन कोस पश्चिम बरोलीका सुप्राचीन ध्वंसावशेष समूह दृष्टिगोचर होता है। इस प्राचीन नगरका नाम भद्रावती है। हूण-राजाओंके शासनकालमें इसकी यथेष्ट श्रीवृद्धि हुई थी। वर्त्तमान भैंसरोरगढ़के चारों ओर जो ध्वंसराशि और स्तूपराजि-वही उसका निदर्शन है। महात्मा टाड साहब यहांके भग्नप्राय शिवमन्दिरका अत्याश्चर्य शिल्पनैपुण्य देख गये हैं।

भैंसवाल—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह यमुना नदीके पूर्व खालके ऊपर मुजफ्फर नगरसे १३॥० कोस दूरमें अवस्थित है। इस ग्रामके ठीक मध्यस्थलमें स्थापयिता पीर घाइंवका २० फुट ऊंचा एक समाधिस्तूप है।

भैंसा (हिं० पु०) भैंस नामक पशुका नर। यह प्रायः बोझ ढोने और गाड़ियां आदि खींचनेके काममें आता है। पुराणानुसार यह यमराजका वाहन माना जाता है। महिष देखो।

भैंसाव (हिं० पु०) भैंस और भैंसेका जोड़ खाना।

भैंसासुर (हिं० पु०) महिषासुर देखो।

भैंसौरी (हिं० स्त्री०) भैंसका चमड़ा।

भैक्ष (सं० क्ली०) भिक्षाणां समूह इति भिक्षा (भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।७८) इत्यण्। १ भिक्षासमूह। २ भिक्षा मांगनेकी क्रिया। ३ भिक्षा मांगनेका भाव। ४ भिक्षा, भीख। ५ भिक्षावृत्तिपादक ग्रन्थव्याख्यान।

भैक्षचर्या (सं० स्त्री०) चर भावे क्यप् टाप्, भैक्षस्य चर्या। भिक्षाचरण, भीख मांगनेका काम।

भैक्षजीविका (सं० स्त्री०) भैक्षेण जीविका। भिक्षा द्वारा जीवनोपाय। पर्याय - पैण्डिन्य।

भैक्षभुज् (सं० त्रि०) भैक्षं भुङ्क्ते यः भुज्-क्विप्। भिक्षाशी, भिक्षान्न भोजनकारी।

भैक्षव (सं० क्ली०) भिक्षुकाणां समूहः खण्डिकादित्वात् अञ्। भिक्षुसमूह।

भैक्षवृत्ति (सं० स्त्री०) भैक्षेण वृत्तिः जीविका। १ भिक्षा द्वारा जीवनोपाय। (त्रि०) २ जिनकी भिक्षा ही उपजीविका है।

भैक्षाकुल (सं० क्ली०) अतिथिशाला, वह स्थान जहांसे बहुत-से लोगोंको भिक्षा मिलती है।

भैक्षान्न (सं० क्ली०) भैक्षं यदन्नं। भिक्षालब्ध अन्न।

भैक्षाशिन् (सं० त्रि०) भैक्षं अश्नाति अश-णिनि। भिक्षाभोजी।

भैक्षाहार (सं० त्रि०) भिक्षालब्ध द्रव्योपजीवी।

भैक्षुक (सं० क्ली०) भिक्षुकमण्डली।

भैक्ष्य (सं० क्ली०) भिक्षाणां समूहः ष्यञ्। १ भिक्षासमूह, भीख। २ चतुराश्रममें करने योग्य एक वृत्ति।

भैचक (हिं० वि०) विस्मित, चकित।

भैजन (हिं० वि०) भयप्रद, भय उत्पन्न करनेवाला।

भैदा (हिं० पु०) भयप्रद, डरावना।

भैदिक (सं० त्रि०) भेदं नित्यमर्हति छेदादित्वात् ठञ्। नित्यभेदनार्ह।

भैन (हिं० स्त्री०) वहिन।

भैना (हिं० स्त्री०) १ भगिनी, बहन। २ जंगई नामक पक्षी।

भैनी (हिं० स्त्री०) भगिनी, बहन।

भैने (हिं० पु०) वहिनका पुत्र, भानजा।

भैम (सं० त्रि०) भीमस्य नृपस्येदं अण्। १ भीमनृपसम्बन्धी, भीमका। (पु०) २ राजा उग्रसेन।

भैमगव (सं० पु०) एक गोत्रका नाम।

भैमरथ (सं० पु०) भीमरथमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः। भीमरथाधिकार द्वारा कृत ग्रन्थ।

भैमसेन्य (सं० पु०) भीमसेनस्यापत्यं कुरुत्वात् अणि प्राप्ते वार्त्तिकोक्त्या ञ्य। भीमसेनका अपत्य।

भैमायन (सं० पु० स्त्री०) भीमसेनस्यापत्यं युवा, इञन्तात् फक्। भीमका युवा अपत्य।

भैमि (सं० पु०) भीमका अपत्य।

भैमी (सं० स्त्री०) भीमेनोपासिता भीमस्य इयं वेति भीम-अण् ङीप्। १ भीमएकादशी। यह एकादशी बाल, आतुर और वृद्धको छोड़ कर और सभीको करनी चाहिये। इस एकादशीके दिन उपवास करके द्वादशीके दिन षट्-तिलाचार करनेसे सभी प्रकारका पाप जाता रहता है। तिलस्नान, तिलोद्वर्त्तन, तिलहोम, तिलोदकपान, तिलदान और तिलभोजन यही षट्-तिलाचार है। यह षट्तिला-

चरण करनेसे कभी भी अवसन्न होना नहीं पड़ता है। भीमैकादशी देखो। भीमस्य राज्ञः अपत्यं अण् ङीष। २ भीमराज-नन्दनी दमयन्ती। ३ भीमसम्बन्धिनी। ४ भीमसेन-प्रणीत व्याकरण।

भैम्यकादशी (सं० स्त्री०) एकादशी व्रतविशेष।

भीमैकादशी देखो।

भैयंस (हिं० पु०) सम्पत्तिमें भाइयोंका हिस्सा, भाइयोंका अंश।

भैया (हिं० पु०) १ भ्राता, भाई। २ बराबरवालों या छोटों-के लिये संबोधन शब्द। ३ नावकी पट्टी या तख्ती।

भैयाचार (हिं० पु०) भाईचारा देखो

भैयाचारी (हिं० पु०) भाईचारा देखो।

भैयादोज (हिं० स्त्री०) कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया, भाईदूज।

भैयाभट्ट—धर्मरत्नके प्रणेता, भट्टारक भट्टके पुत्र।

भैरव (सं० त्रि०) भीरोरिदं त्रासकृत्, भीरु-अण्। १ भयानक, जिससे भय हो।

"सव्येन च कटीदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः।
तद्रक्षो द्विगुणं चक्रे रुवन्तं भैरवं वरम्॥"

(भारत १।१६४।२७)

(पु०) भीर्भयङ्करो रवो यस्य। इति भीरव, ततः स्वार्थे अण्। २ शङ्कर, महादेव। (मेदिनी) ३ भयानक रस। (अमरटीका भरत) ४ नदविशेष, एक नद। (शब्दरत्ना०) ५ रागभेद, एक प्रकारका राग। यह राग ६ रागोंमेंसे एक है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

"गंगाधरःशशिकातिलकस्त्रिनेत्रः।
सर्पैर्विभूषिततनुर्गजकृत्तिवासाः॥
भास्वत्त्रिशूलधर एष नृमुण्डधारी।
शुभ्राम्बरो जयति भैरवरागराजः॥" (संगीतरत्ना०)

रागविरोधके मतसे इसका सरगम इस प्रकार है—

ध नि सा ऋ ग म प - : :

मतान्तरसे—

ध नि सा ऋ ग म ० : :

गायकगण इसे भैरों कहा करते हैं। ब्रह्माके मतसे इसकी पत्नियां ये हैं—मालश्री, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधुवी और पहाड़ी। भरतके मतसे—बंगाली, भैरवी, मध्यमा, सिन्धुवी, मधुमाधवी और विभाषी हनूमनके मतसे—वराटी, मध्यमादि, भैरवी, सैन्धवी और बंगाली। भैरवरागके पुत्र ये हैं—देवशाक, नट, विभास, श्याम, ढोल, अजयपाल। पुत्रवधु—योगिजा, रेखब, अशिरी, रेवा, वहना और मेटियाल। इसके सखा कलंड़ा, सखी और सुहा है।

यह राग हनूमनके मतसे छः रागोंमेंसे पहला राग है, और महादेवके मुखसे निकला है। इसकी जाति उड़व है। धैवत, निषाद, षड्ज, गान्धार और मध्यम इन पांच स्वरोंके मिलने पर जो राग होता है, उसे उड़व कहते हैं। इसका ग्रह धैवत स्वर है। शरदृतुमें प्रातः-काल ही इसके गानेका समय है। यह आकारमें महादेवकी भांति अर्थात् सुन्दर संन्यासी, भस्मभूषित वदन, मस्तकमें जटाभार, जटासे गङ्गाजल गिर रहा है, हाथोंमें कङ्कण भूषण, ललाट पर अर्द्धचन्द्र, त्रिनयन, सर्प द्वारा स्कन्ध और बाहुवेष्टित, भाल पर तिलक, कंधे पर हस्तिचर्म, व्याघ्रचर्म पर आसीन, गलेमें मुण्डमाला, हाथोंमें त्रिशूल, वृषभ पार्श्वदेशमें अवस्थित है, यही भैरवरागकी प्रकृत मूर्त्ति है।

इसकी रागिणियां पांच हैं—भैरवी, वैराटी, मधुमाधवी, सिन्धवी और बङ्गाली। आठ पुत्र हैं—हर्ष, तिलक, पुरीय, माधव, सूह, वलनेह, मधु और पञ्चम।

कल्लिनाथके मतसे भैरव चौथा राग है। इसकी रागिणियां छः हैं—भैरवी, गुर्जरी, भाषा, वेलावती, कर्णाटी और रगतंसा। किसीके मतसे रगतंसा स्थल-में बड़हंसी है। इस मतसे भी पुत्र पूर्वोक्त आठ ही हैं।

सोमेश्वरके मतसे रागिणी छः हैं—भैरवी, गुर्जरी, रेवा गुणकली, बङ्गाली, और बहुली। इस मतसे रागिणीके साथ इसके गानेका समय ग्रीष्मऋतु है।

भरतके मतसे इसकी रागिणी पांच हैं—मधुमाधवी, ललिता, वरारी, वाहाकली और भैरवी। पुत्र ८ हैं, यथा—देवशाख, ललित, हर्ष, विलावल, माधव, बङ्गाल, विभास और पञ्चम। भैरवरागकी ८ स्त्रियां हैं—सूहा, वेलावली, सोरठी, कुम्भारी, आन्दाही, बहुलगर्जरी, पट-मञ्जरी, मिरवी। मतान्तरसे भार्या—भैरवी, बङ्गाली, वराटी, मध्यमा, मधुमाधवी और सिन्धवी। पुत्र—

कोशक, अजयपाल, श्याम, खरताप, शुद्ध और ढोल। पुत्रवधू—अष्टी, रेवा, वहुला, सोहिनी रम्भेली, सूहा। किसीके मतसे सूहाकी जगह शोभा है। (नारदपु०)

गिर्जाखाँके मतसे यह ऋषभ और पञ्चमवर्जित है।

६ शिवावतार तद्गणभेद। भैरवगणकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार है,—पुराकालमें अन्धकासुरके साथ जब महादेवका घोरतर युद्ध हुआ था, तब अन्धकने महादेवके मस्तक पर पदाघात किया था, जिससे उनके मस्तकसे चार भागोंमें विभक्त हो कर रक्तधारा बहने लगी। उन्हीं शोणित-धाराओंमेंसे भैरवगणोंकी उत्पत्ति हुई। पूर्वदिशाकी रक्तधारासे हुताशन-सदृश, चन्द्रहारशोभित गलगण्ड, विद्याराज नामक एक भैरव आविर्भूत हुआ। दक्षिणदिशाकी धारासे कामराज नामक एक प्रेतमण्डित अञ्जनसदृश कृष्णवर्ण भैरव उत्पन्न हुआ। पश्चिम-धारामेंसे पत्रभूषित भैरव हुआ, जिसका वर्ण अतसी कुसुम सदृश था और नाम नागराज। उत्तर-धारासे शूलधारी भैरवकी उत्पत्ति हुई, जो देखनेमें अञ्जन-सदृश था। महादेवके क्षतज समस्त रुधिरसे एक फलभूषित भैरव उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम था लम्बितराज।

(वामनपु० ६७ अ०)

शारदीय दुर्गापूजा-पद्धतिमें ८ पूजनीय भैरवोंका उल्लेख देखनेमें आता है। इनके नाम हैं, महाभैरव, संहारभैरव, असितांगभैरव, रुरुभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, कपालभैरव और रुद्रभैरव।

(ब्रह्मवैवर्त्त प्रकृतिखण्ड ६१ अ०)

तन्त्रसारके मतसे आठ भैरव इस प्रकार हैं—असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण और संहार। (तन्त्रसार)

नन्दी, भृंगी, महाकाल और बेताल ये शिवगणाधिपति भैरव हैं। (कालिकापुराण ४४ अ०) ७ करवीरपुरके राजा चन्द्रशेखरकी रानी तारावतीके गर्भसे उत्पन्न एक पुत्र। पहले ये भृंगी थे, पीछे वानरमुख हो कर भैरव नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। विस्तृत विवरण कालिकापुराणमें ४४-४६ अध्यायमें देखो।

जिन स्थानोंमें काली तारा आदि महाविद्याएं प्रतिष्ठित हैं, वहां उनके अधिष्ठाता एक एक भैरव विद्यमान हैं।

८ दक्षिणकालिकादेवीका भैरव महाकाल। पीठ और महाविद्या देखो। ६ नागभेद। (भारत १।५७।१६) शङ्कराचार्य वटुकनाथ और भैरवने उपासनाविधिका प्रचार किया था।

भैरव (सं० पु०) ब्रह्मपुराण-वर्णित यक्षभेद।

भैरव—१ फेत्कारिणीतन्त्रके प्रणेता। २ काठकवह्निप्रयोग वा सावित्रचयनप्रयोग और कौकिली सौत्रामणिप्रयोग नामक ग्रन्थके रचयिता। ३ गोप्रदानविधि नामक ग्रंथके प्रणेता।

भैरवगङ्गा—कालिकापुराणवर्णित भैरवसरोवर तीर्थ।

भैरवझम्प—हिमालय पर्वत पर केदारनाथतीर्थके समीपवर्त्ती एक पर्वतचूड़ा।

भैरवत्रिपाठिन्—क्रमदीपिकाटिप्पनीके प्रणेता।

भैरवदत्त—ब्रह्मचन्द्रिका, भैरवदत्तार्कि और यज्ञोपवीतपद्धति नामक ग्रन्थके रचयिता। २ उड्डुदायप्रदीपके प्रणेता, हरिरामशर्माके पुत्र।

भैरवदीक्षित—एक विख्यात वैदान्तिक। ये तिलकभैरव नामसे परिचित थे। इन्होंने १७६२ ई०में आरुणकेतुकप्रयोग और १७६८ ई०में ब्रह्मसूत्रतात्पर्य-विवरण लिखा है।

भैरवदेव—तीरभुक्तिके एक राजा, पुरुषोत्तमदेवके पिता। इनको पत्नी जयादेवी द्वैतनिर्णयके प्रणेता वाचस्पतिमिश्रकी प्रतिपालिका थीं।

भैरवदैवज्ञ—मुहूर्त्तभैरवके प्रणेता विख्यात ज्योतिर्विद् गङ्गाधरके पिता। इन्होंने स्वयं पराशरपद्धति और प्रश्नभैरवकी रचना की।

भैरवभट्ट—होमपद्धतिके प्रणेता।

भैरवमस्तक (सं० पु०) तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक।

भैरवमिश्र—एक प्रसिद्ध वैयाकरण, भवदेवमिश्रके पुत्र। आप कारकटीका, गदापरिभाषेन्दुशेखर टीका, चन्द्रकलालघुशब्देन्दुशेखरटीका, चन्द्रकलाकारकचन्द्रकला-निर्णय, परिभाषावृत्ति वृहतीपरीक्षा, वैयाकरणसिद्धान्त टीका, भैरवीय-पञ्चसन्धि, शब्दरत्नटीका और भैरवमिश्रीय नामक व्याकरण ग्रन्थ लिख गये हैं।

भैरवरस (सं० पु०) उपदंश रोगनाशक रसौषधविशेष,

आतिश या गरमीकी बीमारीकी एक दवा जो रसोंसे बनाई जाती है। इसके बनानेकी विधि इस प्रकार है,—सोधा हुआ पारा १०० रत्ती और चीनी ३०० रत्ती, इनको इकट्ठा मिला कर एक लोहेके बरतनमें नीमके डण्डेसे १ पहर तक घोंटो, फिर उसे १०० रत्ती खदिरके साथ मिला कर काजलकी तरह बना लो। उसे २० गोलियां बना कर गेहूंके चूरके साथ रख दो। देह पर जब उपदंशके विषजन्य व्रण या चट्टे पूरी तरह निकल आवें तब यह औषध सेवन करना चाहिए। पहले तीन दिन तक रोज तीन गोलियां सेवन करो। चौथे दिनसे एक एक गोली रोज देनी चाहिये। १४ दिनमें ये गोलियां पूरी हो जांयगी और साथ ही रोग भी आरोग्य हो जायगा। पथ्य—चावल और कम घीका गरम अन्न। पानी पीना या पानी छूना बिलकुल ही वर्जनीय है। असह्य प्यास लगने पर ईख या दाड़िमका रस सेवन करना चाहिये। मल त्यागनेके बाद गरम पानीमें शौच करके उसी वक्त साफ कपड़ेसे पानी पोंछ लेना चाहिये। वायु, आगकी गरमी और घामसे बचना चाहिए। वर्षा या शीतऋतुमें इस औषधके सेवन करनेका उपयुक्त समय है। इसके सेवनसे यदि मुंह पर सूजन आ जाय, तो उसके लिये दूसरी औषध लेनी चाहिए। इसमें परिश्रम करना, ज्यादा चलना फिरना, भार उठाना, पढ़ना लिखना, दिनको सोना और रातको जगना बहुत ही हानिकारक है। सर्वदा कपूर आदिसे सुगन्धित पान खाते रहना चाहिए। इससे कफको नष्ट करनेवाली और पित्तके अनुकूल क्रियायें होंगी। नमक, खटाई खाना और स्त्रियोंका मुंह देखना बहुत ही अनिष्टकर है। इस प्रकार दो सप्ताह बिता कर पीछे गरम पानीसे नहा कर पथ्य लेना चाहिए। परन्तु जब तक पूर्ववत् प्रकृति न हो जाय, तब तक व्यायाम करना उचित नहीं। इन सब नियमोंका पालन करते और जितेन्द्रिय रहते हुए औषध सेवन करनेसे उपदंश और उसके निमित्तसे हुए पीड़कादि प्रशमित हो कर तेज और बलकी वृद्धि और हड्डियोंकी मजबूती होती है।

भैरवराज—दाक्षिणात्यके एक हिन्दूराजा।

भैरवशाह—नवरत्नके प्रणेता, प्रतापके पुत्र।

भैरवसिंह—एक प्राचीन राजा, नरसिंहके पुत्र। आप अनर्घराघव टीकाके प्रणेता रुचिपतिके प्रतिपालक थे।

भैरवस्थान—हिमालयस्थ शैवतीर्थभेद।

भैरवाचार्य—श्रीहर्षचरितोक्त आचार्यभेद।

भैरवाञ्जन (सं० पु०) आंखोंमें लगानेका एक प्रकारका अंजन।

भैरवी (सं० स्त्री०) भैरव-ङीप्। महाविद्या मूर्त्तिभेद, चामुण्डा।

"चामुण्डा चर्चिका चर्ममुण्डा मार्जारकर्णिका।
कर्णमोटि महागन्धा भैरवी च कपालिनी॥" (हेम)

तन्त्रसारमें भैरवीका विषय इस प्रकार लिखा है। भैरवी ये हैं, जैसे—त्रिपुरभैरवी, सम्पत्प्रदा भैरवी, कौलेश भैरवी, सकलसिद्धिदा भैरवी, भयविध्वंसिनी भैरवी, चैतन्यभैरवी, कामेश्वरी भैरवी, षट्कूटा भैरवी, नित्या भैरवी, रुद्र भैरवी, त्रिपुरबाला भैरवी, नवकूटा भैरवी और अन्नपूर्णा भैरवी।

"वियद्भृगुहुताशस्थो भौतिको विन्दुशेखरः।
वियत्तदादिकेन्द्राग्निस्थितं वामाक्षिविन्दुमत्॥
आकाश भृगुवह्निस्थो मनुः सर्गेन्दु खण्डवान्।
पञ्चकूटात्मिका विद्या वेद्या त्रिपुरभैरवी॥" (तन्त्रसार)

भैरवीके मन्त्र अनेक प्रकारके हैं, उनमेंसे त्रिपुरभैरवी आदि यथाक्रमसे मन्त्र और पूजा आदि लिखी जाती है।

'हसरैं हसकलहरीं हसरौः' इस बीजमन्त्रसे त्रिपुरभैरवीकी पूजा की जाती है। पूजाक्रम इस प्रकार है,—पहले सामान्य पूजापद्धतिक्रमसे प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्त समस्त कार्य करके मूलके लिखित मन्त्रोंसे पीठन्यास, पीठशक्तिन्यास, पीठमनुन्यासादि करके मूलपूजा करें। देवीका ध्यान इस प्रकार है—

"उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां।
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्॥
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्तारविन्दश्रियं।
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां बन्दे समन्दस्मिताम्॥"

नवोदित सहस्र भानु-किरण सदृश रक्तवर्ण क्षौमवसन पहने, गलेमें मुण्डमाला, स्तनद्वय रक्तसे लिप्त, पद्मसदृश चार करोंमें जपमाला, पुस्तक, अभयमुद्रा और

वरमुद्रा तथा कपालमें शशिकला, रक्तपद्मकी भांति श्रीविशिष्ट, तीन चक्षु, मस्तकमें रत्न किरीट और मुख पर ईषद् हास्य छटा विराज रही है। इस प्रकारसे देवी-का ध्यान करके पूजा करनी चाहिए। इस पूजामें विशेषता इतनी है, कि नैवेद्यदानके बाद बलिचतुष्टय अर्पित की जाती है। दस लाख मन्त्र जप करनेसे इस देवीका पुरश्चरण होता है। १२ हजार पलाश-पुष्पों द्वारा होम किया जाता है।

सम्पद्प्रदा भैरवी।—सम्पद्प्रदाभैरवीकी पूजादि भी त्रिपुरभैरवीके समान है। केवल प्रभेद इतना ही है, कि बीजमन्त्र 'हसरैं हसकलरीं हसरौं' है, इसी मन्त्रसे पूजाकी जाती है। ध्यान—

आताम्रार्कसहस्राभ्यां स्फुरच्चन्द्र कलाजटाम्।
किरीटरत्न विलसच्चित्रचित्रित मौक्तिकाम्॥
स्रवद्रुधिरपङ्काढ्यमुण्ड माला विराजिताम्।
नयनत्रयशोभाढ्यां पूर्णेन्दुवदनान्विताम्॥
मुक्ताहारलताराजत् पीनोन्नत घटस्तनीम्।
रक्ताम्बरपरीधानां यौवनोन्मत्त रूपिणीम्॥
पुस्तकञ्चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम्।
वरदानप्रदां नित्यां महासम्पद् प्रदांस्मरेत्॥"

इस ध्यानसे पूजाके नियमानुसार पूजा की जाती है। तीन लाख जप इस मन्त्रका पुरश्चरण है और उसका दशांश होम। अन्य तन्त्रोंमें लिखा है, कि एक लाख जप और उसका दशांश होमसे इस मन्त्रका पुरश्चरण होता है।

कौलेशभैरवी—कौलेशभैरवीकी पूजादि भी सम्पद्-प्रदाभैरवीके समान है, सिर्फ 'सहरैं सहकलरीं सहरौं' इस बीजमन्त्रसे पूजा करना विधेय है।

सकलसिद्धिदा भैरवी—इनकी भी पूजा कौलेश-भैरवीके सदृश है, केवल 'सहैं सहकलरीं सहौं' यह बीजमन्त्र-मात्र भिन्न है।

भयविध्वंसिनी भैरवी—इनकी पूजा 'हसैं हस-कलरीं हसौं' इसबीजमन्त्र द्वारा सम्पदप्रभा-भैरवीके समान की जाती है।

चैतन्यभैरवी—'सैहं सकलह्रीं सहरौः' इस बीज-मन्त्रसे पूजा करो। इनका ध्यान—

"उद्यद्भानुसहस्राभां नानालङ्कारभूषिताम्।
मुकुटाग्रलसच्चन्द्ररेखां रक्ताम्बरान्विताम्॥
पाशाङ्कुशधरां नित्यां वामहस्ते कपालिनीम्।
वरदाभयशोभाढ्यां पीनोन्नतघनस्तनीम्॥"

इस ध्यानसे पूजा की जाती है। इसका पुरश्चरण है, एक लाख जप और दस हजार होम।

कामेश्वरीभैरवी—"सैहं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मद-द्रवे हसौः' इस बीजमन्त्रसे इनकी पूजा की जाती है। ध्यान और पूजादि चैतन्यभैरवीके सदृश है।

षट्कूटाभैरवी—की पूजा 'डरल कसहैं, डरल कस हैं' इस बीजमन्त्रसे की जाती है। कोई कोई इसका पाठान्तर 'डरलकसहीं डरलकसहौः' इस प्रकार कहा करते हैं। इसका ध्यान—

"बालसूर्यप्रभां देवीं जवाकुसुम सन्निभाम्।
मुण्डमालावलीरम्यां बालसूर्य समांशुकाम्॥
सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम्।
पाशाङ्कुशौ पुस्तकञ्च तथा च जपमालिकाम्॥"

नित्याभैरवी—'हस कल रडैं, हस कलरडीं, हस कलरडौं' इस बीजमन्त्रसे षट्कूटाभैरवीके समान इन-की पूजा होगी।

रुद्रभैरवी—'हस खफ्रें हसकलरीं हसौः' यह बीज-मन्त्र है; इसी मन्त्रसे पूजा की जायगी। ध्यान—

"उद्यद्भानुसहस्राभां चन्द्रचूड़ां त्रिलोचनाम्।
नानालङ्कारसुभगां सर्ववैरिनिकृन्तनीम्॥
वमद्रुधिरमुण्डाली कलितां रक्तवाससीम्।
त्रिशूलं डमरुं खड्गं तथा खेटकमेव च॥
पिनाकञ्च शरान् देवी पाशांकुश युगं क्रमात्।
पुस्तकञ्चाक्षमालाञ्च शिवसिंहासनस्थिताम्॥"

एक लाख जप इसका पुरश्चरण है और दस हजार होम।

भुवनेश्वरी भैरवी—की पूजा 'हसैं हस कलह्रीं हसौः' इस बीजमन्त्रसे की जाती है। ध्यान—

"जवाकुसुमसङ्काशां दाड़िमीकुसुमोपमाम्।
चन्द्ररेखां जटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससीम्॥
नानालङ्कारसुभगां पीनोन्नतघनस्तनीम्।
पाशांकुशवराभीतिधायन्तीं शिवाश्रयाम्॥"

चैतन्यभैरवीकी पूजाके अनुसार ही इनकी पूजा की जाती है।

त्रिपुरबालाभैरवी—'ऐं क्लीं सौः इस मन्त्रसे त्रिपुराभैरवीकी पूजापद्धतिके अनुसार इनकी पूजा होगी। तीन लाख जप इस मन्त्रका पुरश्चरण है।

नवकूटाभैरवी—'ऐं क्लीं सौः हसकलरीं हसौः हसरं हसकलरीं हसरौं, यही वीज नवकूटाका मन्त्र है, 'हसैं हसकलह्रों हसौं' यह सर्वदोषरहित नवाक्षर मन्त्र और ह ह रैं द्रीं ह कलरं ह्रीं ह्रीं हरौं' मन्त्र, ये तीनों वीज नवकूटाके मन्त्र हैं। भैरवी-पूजा-पद्धतिके अनुसार पूजा करनी चाहिए। १ लाख जप इस मन्त्रका पुरश्चरण है।

"वद वद वाग्वादिनि हेसरीं क्लिन्ने क्लेदिनि महामोक्षं कुरु क्लीं हेसौं" यह दीपनी मन्त्र है। यह मन्त्र पहले ६ वार जप कर पश्चात् पूजादि प्रारम्भ करना चाहिए।

अन्नपूर्णा भैरवी—ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' इस विंशत्यक्षर मन्त्रसे अन्नपूर्णेश्वरीभैरवीकी आराधना की जाती है। इस मन्त्रके कामवीजको छोड़ देनेसे 'ऊँ ह्रीं श्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' यह ऊनविंशाक्षर मन्त्र होता है। इस मन्त्रका जप और पूजा करनेसे धनधान्यादि ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है। सामान्य पूजापद्धतिके नियमानुसार पूजाकी जाती है। ध्यान इस प्रकार है—

"तप्तकाञ्चनवर्णाभां बालेन्दुकृत शेखराम्।
नवरत्न प्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम् ॥
चित्रवस्त्रपरीधानां सफराक्षी त्रिलोचनाम्।
सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम् ॥
गोक्षीरधामधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनीम् ॥
प्रसन्नवदनां शम्भुं नीलकण्ठविराजितम् ॥
कपर्दिनं स्फुरत्सर्पभूषणं कुन्दसन्निभम्।
नृत्यन्तमनिशं हृष्टं दृष्टानन्दमयीं परां ॥
सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्य नितम्बिनीम्।
अन्नदानरतां नित्यां भमि श्रीभ्यामलङ्कृताम् ॥"

इस ध्यानसे यथाविधि पूजा की जाती है। इसका पुरश्चरण है एक लाख जप, उसके पश्चात् घृताक्त अन्नसे उसका दसवां अंश अर्थात् १० हजार होम। (तन्त्रसार)

२ तीर्थस्थानमें शिव और शिवाणीके जो अनुचर और अनुचारियां रहती हैं, उन्हें भैरव और भैरवी कहते हैं।

३ रागिणी-विशेष। यह रागिणी भैरव रागकी पत्नी है। किसी किसीके मतसे भैरवी मालवरागकी पत्नी है।

"धानसी मालवी चैव रामकीरी च सिन्धुड़ा।
आशावरी भैरवी च मालवस्य प्रिया इमाः॥"
(संगीतदामो०)

हनूमन्‌के मतसे यह रागिणी सम्पूर्ण जातिकी है, इसके सप्तस्वरविन्यासका भ्रम इस प्रकार है—मध्यम, पञ्चम, धैवत्, निषाद, षडज, ऋषभ और गान्धार। इसका गृह मध्यमस्वर है। शरत्‌ऋतुके प्रभातमें यह रागिणी गायी जाती है। ध्यान—

"सरोवरस्था स्फटिकस्य मन्दिरे सरोरुहैः शङ्करमर्च्चयन्ती।
तालप्रयोग प्रतिवद्धगीति गौरी तनुर्नारदभैरवीयम् ॥"
(संगीत दामो०)

रागमालाके मतसे इसका स्वरूप—अल्प वयस्का, सुरूपा, सुनेत्रा, विस्तारवदना, केश पिङ्गलवर्ण, अङ्ग अतिसुकोमल, वर्ण जवाकुसुम-सदृश, परिधान श्वेतवसन, गलेमें चम्पकमाला सुशोभित, प्रफुल्ल पद्मयुक्त, पर्वतगुहामें शिवपूजापरायण और सर्वदा मञ्जीर बजा कर गान करती हैं। कल्लिनाथ, सोमेश्वर और भरतके मतसे भी इसका स्वरूप ऐसा ही है। (सङ्गीतदा०)

यह रागिणी टोरी और बरारीके मिश्रणसे उत्पन्न हुई है। इसका सरगम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि
म प ध नि सा ऋ ग

इसका मध्यम वादी और धैवत संवादी है। (सङ्गीतरत्ना०)

भैरवी—कालिकापुराण-वर्णित पुण्यतोया नदीभेद।
(कालिकापु० १८ अ०)

भैरवीकवच—तन्त्रसारोक्त देवीमन्त्रयुक्त धारणीय कवचभेद।

भैरवीचक्र (सं० क्ली०) भैरव्याः पूजनार्थं चक्रं। १ तान्त्रिकों या वाममार्गियोंका वह समूह जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और समयोंमें भैरवीदेवीका पूजन करनेके

लिये एकत्र होता है। इसमें सब लोग एक चक्रमें बैठ कर पूजन और मद्यपान आदि करते हैं। इसमें केवल दीक्षित लोग ही सम्मिलित होते हैं और वर्णाश्रम आदिका कोई विचार नहीं रखा जाता। २ मद्यपों और अनाचारियों आदिका समूह।

भैरवीभूमि (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त भूवल-सन्निवेशकी प्रक्रियाविशेष। राजा इसके द्वारा चारों प्रकारके संग्राममें विजयी हो सकते हैं।

भैरवीयाचना (हिं० स्त्री०) पुराणानुसार वह याचना जो प्राणियोंको मरते समय उनकी शुद्धिके लिये भैरवजी देते हैं। कहते हैं, कि जब इस प्रकारकी यातनासे प्राणी सब पातकोंसे शुद्ध हो जाते हैं, तब शिवजी उसे मोक्षप्रदान करते हैं।

भैरवीशैल—हिमालयस्थित तीर्थभेद।

भैरवीय (सं० त्रि०) १ भैरवसम्बन्धीय। २ भयानक।

भैरवेन्द्र (सं० पु०) १ एक राजा। भैरवदेव देखो। २ शिशुबोधिनी सप्तपदार्थी टीकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम लक्ष्मीरमण था।

भैरवेश (सं० पु०) शिव।

भैरा (हिं० पु०) बहेड़ा देखो।

भैरू (सं० पु०) भैरव देखो।

भैरो (सं० पु० भैरव देखो।

भैरिक (सं० पु०) भेरि वाद्यकारी, दुन्दुभि बजानेवाला।

भैरी (हिं० स्त्री०) बहरी देखो।

भैली—वाराणसीके दक्षिणमें अवस्थित एक परगना। वर्त्तमान चुनारनगर और दुर्ग इसके अन्तर्भुक्त है। चुनार देखो।

भैवाद (हिं० पु०) १ भाईचारा, भाईपना। २ बिरादरी।

भैषज (सं० क्ली०) भेषजमेव संज्ञायां स्वार्थे वा अण्। १ लावक पक्षी, लवा चिड़िया। २ भेषज, औषध। १ वैद्यके शिष्य आदि।

भैषज्य (सं० क्ली०) भेष[illegible]वेति भेषज (अनन्तावसथेतिह भेषजाञ् ञ्यः। पा ५।४।[illegible]) इति ञ्यः। औषध, दवा।

भैषज्यरत्नावली—एक वैद्यकग्रन्थ। वैद्य महामहोपाध्याय गोविन्ददास विशारदने इस ग्रन्थका प्रणयन किया है। लगभग सवा सौ वर्ष हुए इस ग्रन्थका संग्रह हुआ है। ग्रन्थकारने प्रारम्भमें ऐसा लिखा है—

"नत्वा सद्भिषजां मुदे गुणवतीं गोविन्ददासोऽधुना।
नाना ग्रन्थमहोदधेर्वितनुते भैषज्यरत्नावलीम्॥
यदि प्रियतमा नस्यादवृद्धानां भिषजामियम्।
तथापि नव्या नव्यानामानुकूल्यं विधास्यति॥"

यद्यपि यह वृद्धोंको बहुत प्रिय न होगो, तथापि नव्योंको इससे विशेष अनुकूलता होगी, इसमें सन्देह नहीं। इसमें इस देशमें प्रचलित सारकौमुदी, रसेन्द्रचिन्तामणि, चक्रदत्त रसेन्द्रसारसंग्रह आदि ग्रन्थोंसे औषधियां संगृहीत की गई हैं। औषधोंकी शिक्षा प्राप्त करनी हो, तो उसके लिए भैषज्यरत्नावली ही सबसे श्रेष्ठ है। इसमें अधिकारक्रमसे औषध बनाने और सेवन करनेके नियम लिखे गये हैं। वर्त्तमान समयमें भैषज्यरत्नावली ही एकमात्र साधारण वैद्योंके लिये उपायस्वरूप है। इस संग्रहसे विशेष उपकार हुआ है।

भैषज्यराज (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

भैषज्यसमुद्गत (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

भैष्णज (सं० पु०) भिष्णजो गोत्रापत्यं गर्गादित्वात् यञ्, तस्य छात्राः अण् यलोपः। भिष्णग्गोत्रापत्य छात्रसमूह। यह शब्द बहुवचनान्त है।

भैष्णज्य (सं० पु० स्त्री०) भिष्णजो गोत्रापत्यं, गर्गादित्वात् यञ्। तद्गोत्रापत्य।

भैष्मकी (सं० स्त्री०) भीष्मकस्यस्त्रापत्यं, इञ् ङीप्। भीष्मककी कन्या रुक्मिणी।

भौं (हिं० स्त्री०) भौं भौं-का शब्द।

भोंकना (हिं० क्रि०) बरछी, तलवार या इसी प्रकारकी और कोई नुकीली चीज जोरसे धंसाना, घुसेड़ना।

भोंगरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बेल या लता।

भोंगाल (हिं० पु०) एक बड़ा भोंपा। इसका एक ओरका मुंह बहुत छोटा और दूसरी ओरका बहुत अधिक चौड़ा तथा फैला हुआ होता है। इसका छोटे मुंहवाला सिरा जब मुंहके पास रख कर कुछ बोला जाता है, तब उसका शब्द चौड़े मुंहसे निकल कर बहुत दूर तक सुनाई देता है। इसका व्यवहार प्रायः भीड़ भाड़के

समय बहुतसे लोगोंको कोई बात सुनानेके लिये होता है।

भोंचाल (हिं० पु०) भूकम्प देखो।

भोंड़ा (हिं० वि०) १ कुरूप, भद्दा। (पु०) २ जुआरकी जातिकी एक प्रकारकी घास। पशु इसे बड़े चावसे खाते हैं। इसमें एक प्रकारके दाने लगते हैं जो गरीब लोग खाते हैं।

भोंड़ापन (हिं० पु०) १ भद्दापन। २ बेहूदगी।

भोंड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी भेड़। इसकी छाती परके रोएं सफेद और बाकी सारे शरीरके रोएं काले होते हैं।

भोंतरा (हिं० वि०) कुंद धारवाला, जिसकी धार तेज न हो।

भोंदू (हिं० वि०) १ मूर्ख, बेवकूफ। २ सोधा, भोला।

भोंपू (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा। यह तुरहीकी तरहका पर बिलकुल सीधा होता है। यह फूंक कर बजाया जाता है। इसका व्यवहार प्रायः वैरागी साधु आदि करते हैं।

भोंसले—महाराष्ट्र राजन्यगणकी वंशोपाधिविशेष। जगत्-प्रसिद्ध महाराष्ट्र-केशरी छत्रपति शिवाजी, सामन्त-प्रधान रघुनाथराव और वर्त्तमान तञ्जोरके राजगण इसी भोंसले वंशके हैं। वास्तवमें देखा जाय, तो छत्र-पति शिवाजीके अभ्युत्थानसे ही इस भोंसले वंशकी ख्याति और सम्मान वर्द्धित हुआ था। प्रसिद्ध अह-मदनगर-राजवंशके अधःपतनके बाद इस भोंसलेवंशने प्रतिष्ठा प्रारम्भ किया था।

इस वंशके आदिपुरुष भोंसाजीसे ही भोंसलेवंशकी नीवं पड़ी है। उन्हींके समयसे यह विवरणो प्रकटित हुई थी, कि राजपूतानेके उदयपुर राज्यके एक राज-दायादसे भोंसाजीका जन्म हुआ। वे किसी खास कारण से दाक्षिणात्यमें वास करने लगे। उन्हींके वंशधरोंने कालांतरमें महाराष्ट्रक्षेत्रमें विजय-वैजयन्ती उड़ाई।

१५७७ ई०में मालोजी भोंसले नामक उक्त वंशके एक प्रथितनामा व्यक्तिको हम इतिहासगगन आलोकित करते पाते हैं। आप भोंसाजीके वंशधर बाबाजीके पुत्र थे। बाबाजीने फलतनके देशमुख जगपालराव नायक निम्बालकरकी बहन दीपाबाईके साथ अपने पुत्रका विवाह किया था। १५७७ ई०में ही लाखजी यादवराव-के प्रयत्नसे वे २५ वर्षकी अवस्थामें मर्त्तजा निजाम शाह-के अधीन सिलेदारके पद पर नियुक्त हुए। इस सामान्य पद पर काम करते हुए वे अपने अध्यवसाय गुणसे जनसाधारणके निकट परिचित हो उठे और क्रमशः अपनी अश्वारोही सेनाको वृद्धि करते हुए राजसरकारके विशेष प्रीतिभाजन हो गये। तब वे कई गांवके पटेल बनाये गये। १५९५ ई०में मुगल-सेनाने अहमदनगर पर आक्रमण किया, तो २य बहादुर निजाम बड़े आफतमें पड़ गये। उपायान्तर न देख उन्हें मालोजीकी अधिनायकता ग्रहण करनेको बाध्य होना पड़ा। इस युद्धमें उन्होंने महाराष्ट्र सेनापति मालोजी भोंसलेको राजाकी उपाधि और पूना एवं सुपा जागीर दे कर उन्हें विशेष सम्मानित किया। उसके बाद मालोजी सिवन और चाकन प्रदेशमें दुर्गा-ध्यक्षके पद पर नियुक्त हो कर विशेष पदमर्यादाको प्राप्त हुए। बेरुल और इलोरा नगरमें उनका निवास होता था।

इस प्रकार अहमदनगर-राजसरकारमें क्रमशः उनका महत्व प्रसारित होने लगा। १५९९ ई०में एक दिन वे होलीके त्योहार पर अपने पुत्र शाहजीको साथ ले कर अपने प्रतिपालक महाराष्ट्र-पुङ्गव लाखजी यादवरावके साथ भेंट करने गये। उन्होंने सर्वसुलक्षण पञ्चमवर्षीय बालक शाहजीको प्रीति-की निगाहसे देख कर बड़े प्रेम और स्नेहसे अपनी तीन वर्षकी कन्या जिजयाकी बगलमें बिठा दिया। बालक और बालिका दोनों एक आसन पर बैठे खेलने लगे। यह देख कौतूहल-वश यादवरावने अपनी लड़कीसे हंस कर कहा—"लल्ली, तू इसके साथ ब्याह करेगी?" यह सुन कर वहां बैठे हुए और लोग हंसने लगे, पर मालोजीने इस विवाहके प्रस्तावका गाम्भीर्यके साथ अनुमोदन किया और लाखजीसे अपने मनकी बात कही। मानि-श्रेष्ठ यादवराव और उनकी पत्नी इस प्रस्तावसे मालोजी पर बड़े विरक्त और क्रुद्ध हुए परन्तु मालोजी अपनी बातको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए विशेष चेष्टित और अविचलित रहे।

इस घटनाके बाद वे अपने निवास-स्थानमें पहुंचे। वहां भवानीदेवीकी कृपासे उन्हें बहुतसा गुप्तधन हाथ लगा और भाईके परामर्शानुसार उस धनसे उन्होंने बहुत-से देवमन्दिर और सरोवर इत्यादि बनवाने लगे, जिससे जनसाधारणमें उनका बहुत ही सम्मान होने लगा। क्रमशः उनके धनागमकी बात चारों तरफ फैल गई, परन्तु उनके कोई राजमर्यादा न होनेसे यादवरावने उनके यहां कन्या देना स्वीकार नहीं किया। उधर उन्होंने भी यादवरावके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करनेकी आशा नहीं छोड़ी।

अहमदनगर जैसे पतनशील राज्यमें अर्थ और शक्ति क्या न कर सकती थी? उन्होंने अर्थ और भुजबलसे राजाको सहज ही वशमें कर लिया। १५९९ ई०में मुगल-सेनाके साथ युद्ध करनेसे उनकी वीरत्व-गाथा चारों तरफ फैल रही थी। वे पांच-हजारी अश्व-सेनाका नायक बनाये गये और राजाकी उपाधि दी गई। साथ ही पूर्वोक्त दुर्गाधिकार और जागीरके भी वे ही मालिक हुए। तब यादवरावको कोई उज्र करनेकी गुंजाइश नहीं रही। इधर १६०४ ई०में स्वयं राजाने उन्हें कन्या व्याहनेके लिए अनुरोध किया। वे सुलतानकी बात टाल न सके और स्वीकारता दे दी। उसी वर्ष महा समारोहके साथ शाहजी और जिजियाबाईका विवाह हो गया। स्वयं सुलतानने इस विवाह-मण्डपमें उपस्थित रह कर दम्पतियोंका सम्मान बढ़ाया था।

ये शाहजी ही भारत-प्रसिद्ध महाराष्ट्रकेशरी छत्रपति शिवाजीके पिता थे। १६२७ ई०में जुन्नरके निकटवर्ती सिवनके दुर्गमें शाहजीकी पत्नी जिजियाबाईने शिवाजी-रत्नको प्रसव किया। शिवाजीके बाद उनके पुत्र शम्भाजी और पौत्र शाहूने पूना और सताराके राजछत्रकी रक्षा की थी। महाराष्ट्र, शिवाजी, शाहजी आदि शब्द देखो।

शिवाजीके अभ्युदयसे महाराष्ट्र राज-शक्तिने जैसा प्रचण्डमार्तण्ड-तेज धारण किया था, उनके स्वर्गवासके साथ ही पूर्वकी वह रश्मिमाला क्षयको प्राप्त होने लगी। शिवाजीने भोंसलेवंशको जो सुख्याति अर्जन की थी, महाराष्ट्रशक्तिके अधःपतनके साथ उसका प्रभाव अस्तमित हो गया। उस समय पार्श्वजी नामक एक महाराष्ट्र-सरदार बरार प्रदेशमें पहुंच कर महाराष्ट्रशक्तिकी पुनः प्रतिष्ठाके लिए बद्धपरिकर हुए। इसी व्यक्तिसे बरार राज्यमें भोंसले वंशकी प्रतिष्ठा हुई।

वास्तवमें पार्श्वजी भोंसलेवंशके थे या नहीं; इस विषयको ले कर घोर आन्दोलन हुआ है। सताराके निकटवर्ती स्थानमें वे एक अश्वारोही सेनापतिके पद पर नियुक्त थे। भोंसले-वंशगौरव शिवाजी-वंशका अधःपतन होने पर, उन्होंने इस वंशके विनष्ट गौरवके पुनरुद्धारके उद्देशसे इस स्थानमें भोंसलेवंशकी प्रतिष्ठा की थी।

राजा शाहुजीके राजत्वकालमें पार्श्वजीने ऊंचा सम्मान प्राप्त किया था। शाहुके कार्यमें उनका उन्नतिपथ सुविस्तृत हुआ था। दिल्लीसे लौटनेके बाद वे राजशाहुके द्वारा बरार प्रदेशके सम्पूर्ण महाराष्ट्रीय राजकर वसूल करनेके कार्यमें नियुक्त हुए। पूर्वदिशाका वन्य-विभाग भी उन्हींके अधीन रखा गया।

पार्श्वजीके भाई रघुजी भोंसले राजा शाहुके विशेष प्रियपात्र थे। राजाकी सालीके साथ विवाह करनेके कारण दोनोंमें एक प्रणय-सम्बन्ध स्थापित हो गया। पार्श्वजीकी मृत्युके बाद रघुजी ही बरार प्रदेशके राजस्व-संग्राहक हुए। १७३४ ई०में रघुजीने सेनासाहब-सूबाके पद पर नियुक्त हो कर महाराष्ट्र वाहिनीका नेतृत्व ग्रहण किया।

१७४५ ई०में इस वंशने समग्र गोण्डवाना प्रदेशमें आधिपत्य विस्तार कर लिया। १७८८ ई०में २य रघुजी पितृसिंहासन पर बैठे। १८१६ ई०में उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र पार्श्वजी सिंहासनके अधिकारी हुए। परन्तु उनका चरित्र कलुषित होनेके कारण वेङ्काजीके पुत्र मुधाजीने विशेष प्रतिवाद करके और अपना नाम अप्पा साहब रखके राजकार्यकी परिचालनाका भार स्वयं अपने हाथमें ले लिया। उनके आदेशसे १८१७ ई०में पार्श्वजी नागपुरमें गुप्तचरों द्वारा मरवा दिये गये। अब एकमात्र अप्पा साहब ही राज्यके अधिकारी रहे, इसलिए उन्हें ही नागपुरका सिंहासन दिया गया।

अप्पा साहब ऊपरसे अङ्गरेजोंके मित्र थे, परन्तु भीतर ही भीतर उन्होंने अङ्गरेजोंके साथ शत्रुता करनेमें

कसर नहीं छोड़ी । सीतवलदी और नागपुरका युद्ध इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन दोनों युद्धोंमें वे अङ्गरेजोंसे पराजित हो कर आत्मसमर्पण करने और सन्धिकी शर्तके अनुसार सम्पूर्णरूपसे अङ्गरेजोंके अधीन रहनेके लिए वाध्य हुए। १८१८ ई०में अङ्गरेजोंसे राज्य प्राप्त करके भी वे उनके विरुद्धाचारी रहे। उनको विश्वासघातकता-से नराज हो कर अङ्गरेजोंने २य रघुजीके पौत्र रघुजी-को नागपुरका राज्य समर्पित किया।

१८१८ ई०में अप्पा साहव अङ्गरेजोंकी दी हुई जागीर छोड़ कर सिख-राज्यमें भाग गये। योधपुरमें १८४० ई०को उनकी मृत्यु हुई थी।

नावालिग रघुजीके सिंहासन पर बैठने पर अङ्गरेज ही पहले पहल राजकार्यकी देखभाल करते रहे। पीछे जब राजा वालिग हो गये, तब अङ्गरेज-गवर्मेण्टने उन्हें राज्यभार दे कर सेनाका खर्च चलानेके लिए वरार-राज्यके कई एक प्रदेश अपने हाथमें रख लिये। उसके वाद १८२६ ई०में उन प्रदेशोंको पुनः राजाके हाथ सौंप कर उसके वदले वृटिश-गवर्मेण्ट देशीय सेनाके व्यय-वह-नार्थं वार्षिक ८ लाख रुपये लेने लगी। वेरार देखो।

भोइका—वम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत झलवार जिलेका एक सामन्तराज्य। यहांके सरदार अङ्गरेज और जूनागढ़के नवावको कर देते है।

भोई—वम्बई प्रदेशमें रहनेवाली एक धीवर-जाति। नदो आदिसे मछली पकड़ कर बेचना और डोली, पालकी आदि ढोना इनका जातीय काम है।

ये साधारणतः मालभोई, मराठाभोई, काचीभोई और परदेशीभोई इन चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इन चारों थोकोंमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। इसके सिवा भोकरे, चवान, डोंगरे, गुलवन्त, घाटमल, झाटे, कासीद, काठवेत, खटमाले, मडुलकर, निर्मल, सिंदे, सिंगार और तिले गोत्रके भोई लोग स्वगोत्रमें विवाह आदि नहीं करते।

इनकी आकृति, प्रकृति वेशभूषा और भाषा मराठोंके समान है। वलिष्ठ होनेसे इनमें कर्मठता विशेष पाई जाती है। स्वभावतः ये साफ सुथरे और सादगी-से रहते हैं। आतिथेयी होने पर भी इनमें मद्य पीनेकी प्रथा है, किन्तु कभी भी कमाईसे ज्यादा खर्च नहीं करते। दस वर्षसे ज्यादा उम्रके लड़के और लड़कियां अपने घर के काम-काजमें लग जाती हैं।

एकादशी आदि हिन्दुओंके पर्वदिनमें तथा दशहराके समय ये अपना काम वन्द रखते हैं। ये अपनेको मराठी कुनवियोंसे नीचा समझते हैं। धर्ममें ये विशेष आस्था रखते हैं। वहिरोवा, तुलजाभवानी और खण्डवा आदि देवताओंको ये अपना कुलदेवता समझते और आदरके साथ उनकी पूजा करते हैं। इसके अलावा स्थानीय देव-देवी और महादेव, मारुती एवं विठोवाकी पूजाके लिए भी इनमें विशेष आग्रह पाया जाता है। आलन्दी, माधी, पण्ढरपुर और तुलजापुर आदि स्थानोंमें ये कभी कभी तीर्थ-वन्दनाके लिए जाया करते हैं।

सिमगा, संवत्सरपर्व, अक्षयतृतीया, नागपञ्चमी, दश-हरा और दिवालीके दिन ये नियमानुसार उत्सव मनाते हैं। प्रत्येक सोमवार, आषाढ़ और कार्तिककी एका-दशियों तथा शिवरात्रके दिन ये उपवास करते हैं।

विवाह और श्राद्धादि कर्ममें स्थानीय ब्राह्मण इनकी याजकता करते हैं। कानफटा गुसाँई या कोई निष्ठावान् ब्राह्मणके पास जा कर ये दीक्षा ग्रहण करते हैं। उप देवता, डाइन और भविष्यवाणी पर इनको विश्वास है। भूताविष्ट व्यक्तियोंको चंगा करनेके लिए ये देव्रुषी नामक ओझाको वुलाते हैं।

वाल्यविवाह और विधवाविवाहके लिए इनके यहां कोई विरोध नहीं है। जातकर्म, चूड़ाकरण, विवाह और मृत्यु ये चारों संस्कार निम्नश्रेणीके हिन्दुओंके समान होते हैं। वच्चा पैदा होनेके वाद ५वें दिन ये षष्ठ्वाई देवीकी पूजा करते हैं। ११ दिन तक प्रसूतिके अशौच रहता है, पश्चात् १२वें दिन तक आंगनमें ५ पत्थर गाड़ कर फिरसे षष्ठी-पूजा होती है। उसके वाद वच्चेका नाम रखा जाता है। पांचवें वर्षमें वालकका चूड़ाकरण होता है और उस अवसर पर ज्ञाति कुटुम्बको भोज दिया जाता है।

विवाहके समय कन्या अपने घरमें घट स्थापन करने-के वाद गेहूंका एक आसन बनाती है, फिर उस पर एक सुपारी रख कर गणेशकी पूजा करती है। वरका

पिता आ कर पुत्र-वधूको पहरने ओढ़नेके कपड़े दे कर तथा माथे पर सिन्दूर लगा कर विवाह-कार्य सम्पन्न करता है। उसके बाद वर और कन्या पर तेल चढ़ा कर उन्हें नहलाया जाता है। १से ले कर ५ दिन तक तेल चढ़ाये जानेको रिवाज है। तदनन्तर कन्याके घरमें बने हुए एक आसन पर वर और वरके पिताको बिठाया जाता है। कन्या-पक्षकी स्त्रियां इकट्ठी हो कर उसके चारों कोनोंमें रखे हुए मिट्टोके घड़ों पर कलाव (रंगीन सूत) लपेटती रहती है। इसके बाद कन्या और वरके गठजोड़ा बांध कर उनके हाथोंमें पांच पल्लव और कुठार दे दी जाती है और फिर निकटवर्ती मारुतिके मन्दिरमें जा कर नवदम्पत्तिको मंगलकामनाके लिए पूजा की जाती है।

दुलहिनके साथ जब दूल्हा अपने घर वापस आता है, तब फिर पुरोहित आ कर प्रकृत विवाहका अनुष्ठान करता है। यहां होमके बाद पाणिग्रहण, कन्या दक्षिणा, चिकसा और झालका काम पूरा करके विवाह-कार्य समाप्त किया जाता है।

ये मृत-देहको गाड़ते हैं। पहले गरम पानीसे धो कर मुर्देको खाट पर सुलाते और सफेद कपड़ेसे ढक देते हैं। सधवा स्त्री मरने पर उसे हरा कपड़ा पहनाते हैं, फिर माथे पर सिन्दूर और फूल तथा आंखोंमें काजल दे कर उसे दाह-स्थानमें ले जाते हैं। विधवा रमणियों-को ऐसा सौभाग्य नहीं मिलता। विधवाओंको पुरुषों-की तरह नदीके किनारे समाधिस्थ किया जाता है।

ये मात्र १० दिनका अशौच मानते हैं। दसवें दिन क्षौरकर्मके बाद अशौचधारी व्यक्ति प्रेतात्माके लिए पिंड-दान देता है। प्रवाद है, कि काक यदि उस पिण्डको न ले तो समझना चाहिए कि मृत् व्यक्ति प्रेतयोनिको प्राप्त हो कर उसी स्थानमें विचरण कर रहा है। इसके लिए वे कुशका काक बना कर उससे पिण्डको छुआ देते हैं। तेरहवें दिन श्राद्धका भोज होता है। प्रति वर्ष महालयाके पक्षमें ये प्रेतात्माके लिये तर्पण किया करते हैं।

भोकरीदिगर—बम्बईप्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत सावडे तालुकका एक प्राचीन बड़ा ग्राम। यहां ओङ्कारेश्वर शिव-मन्दिर विद्यमान है। मन्दिरमें १९९६ सम्वत्‌की खोदी हुई एक शिलालिपि है। स्थानीय धर्मशाला अहल्या-बाई होलकरने बनवाई थी।

भोकसा—युक्तप्रान्तके पार्वत्य प्रदेश-वासी एक जाति। भौतिक क्रियाओंसे रोग-निराकरण करना ही इनका जातीय व्यवसाय या काम है। जातीयताके विषयमें ये अनेकांशमें निकटवर्त्ती थारुओंके समान हैं। पूर्वमें तराई और पीलीभीत जिलेके बाभरसे ले कर पश्चिममें गङ्गातीरस्थ चांदपुर तक विस्तीर्ण स्थानमें इनका वास है।

ये साधारणतः तीन स्वतन्त्र श्रेणियोंमें विभक्त हैं। रामगङ्गा और सरदारके मध्यवर्त्ती स्थानमें रहनेवाले पुरबी कहलाते हैं तथा रामगङ्गाके पश्चिम और गङ्गाके मध्यवासीगण पछिमी। गङ्गा और यमुनाके मध्यमें रहनेवालोंको ले कर एक स्वतन्त्र थोक चला है। विभिन्न श्रेणीके लोग परस्पर एक दूसरेको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं; कोई भी किसीके साथ आहार-व्यवहार या विवाह सम्बन्ध नहीं करता।

ये स्वभावतः खर्वाकार, दृढ़काय और सीधे-सादे होते हैं। देहका रंग और अङ्गोंका गठन प्रायः कृषकोंके समान होता है। आंखे छोटी, नीचेके ओठ मोटे, गरदन-की हड्डी चौड़ी, हनू विलम्बित और अधरोष्ठ गुम्फश्मश्रु-विहीन होते हैं। ऐसी मूर्त्ति देखते ही अनुमान कर लेना चाहिए कि वह भोकसा है। इनकी स्त्रियां मर्दों-जैसी दीखती हैं।

ये अपनेको परमार-वंशीय राजपूत बतलाते हैं; और इस प्रकार अपने वंशका विवरण सुनाते हैं—"धारा नगरके राजा जयदेवने अपने भाई उदयादित्यको उसके आचरणसे विरक्त हो कर घरसे निकाल दिया था। उदयादित्य अपने दलबलके साथ सारदा नदीके किनारे बनवास नगरमें आ कर रहने लगे। अपने दलके वे ही सरदार या नायक थे। इसके कुछ ही दिन बाद कुमायूं राज्यमें शत्रुकी सेना आ पहुंची। कुमायूंके राजा अपनी रक्षाके लिए सरदार उदयादित्यके शरणा-पन्न हुए। धीरे धीरे उदयादित्यकी परमार-सेनाने आ कर पार्श्ववर्त्ती आक्रमणकारी राजाओंको पराजित कर भगा दिया। राजाने परमार-सेनाकी सहायता पर खुश

हो कर कृतज्ञताके चिह्नस्वरूप उनके रहनेके लिए कई स्थान दिये। तदनुसार वे अपनी पहलेकी वास भूमिको छोड़ कर यहां आ कर वसे" परन्तु दुःखको वात है, कि यह वंशकी कथा सवके मुंहसे एक-सी सुननेमें नहीं आती। स्थानविशेषमें विभिन्न किम्वदन्तियां भी प्रसिद्ध हैं। कोई कहता है, कि वे दिल्लीसे यहां आ कर वसे हैं और कोई कहता है, कि महाराष्ट्रियों द्वारा भगाये जाने पर उन्हें यहां आ कर रहनेके लिए वाध्य होना पड़ा है। महड़ा या देहरादुनो शाखाके भोकसाओंका कहना है, कि उन्होंने देहलीके राजा सुखदेवके आमन्त्रणसे गङ्गाके उस पारसे आ कर देहरादूनमें उपनिवेश स्थापन किया था। राजाके शिकारके काममें वे जङ्गली रास्ताके परिदर्शक नियुक्त थे। पांच सात पीढ़ी हुई हैं, तवसे वे यहांके अधिवासी समझे जाते हैं।

इनमें २० गोत्र हैं, जिनमें यदुवंशी, पंवार, पुत्तंजा, राजवंशी, तुंयार, वड़गूजर, तवारी, वरहनिया, जलवार, अधोई, दुगुगिया, राठोर, नागौरिया, जलाल, उपाध्याय, चौहान और दुनवारिया नामको १७ शाखाएं प्रधान हैं तथा ढिमार, राठोर, धांगड़ा और गोली ये अप्रधान। नीचेकी तीन शाखाओंसे इस जातिके राजपूत और ब्राह्मण साङ्कर्यका परिचय पाया जाता है। ये इच्छानुसार भिन्न गोत्रोंमें शादी-व्याह कर सकते हैं। परन्तु कीलपुरी और सवना-वासी लोग थारुओंके साथ वैवाहिक सम्वन्ध करते हैं। पूर्वोक्त उदयादित्यका एक सहचरवंश है, जो भोकसाओंके भाट कहलाता है। वे जङ्गल हीमें रहते हैं। कभी कभी यजमानोंके यहां भी जाते हैं। उक्त उदयादित्यके एक कनौजिया ब्राह्मण सहचार-वंशके लोग इनका पौरोहित्य करते हैं।

देहरादून-वासी महढ़ा लोग भिन्नगोत्र होने पर भी मातृगोत्रमें दो पीढ़ीके वाद विवाह-सम्वन्ध कर लेते हैं। वहुविवाह इनके यहां निषिद्ध नहीं है। यदि किसीकी कन्या विवाहसे पहले पर पुरुषके साथ अवैध प्रणयमें आसक्त हो जोय, तो कन्याका पिता ही जातीय-सभा द्वारा दण्ड पाता है। वह प्रणयी यदि नीच वर्णका हो, तो कन्याको जातिच्युत किया जाता है; अन्यथा स्वजातिका होने पर जुरमाना देनेके वाद उसे अपनी जातिमें विवाह करनेकी अनुमति दी जाती है। परन्तु यदि वह कन्या किसी उच्चश्रेणोके पुरुषके साथ प्रणायासक्त हो, तो उसीको १०) रु० जुर्माना देना पड़ता है।

वारह वर्षसे कम उम्रके लड़केका विवाह करनेका नियम नहीं है। लड़कियोंका विवाह वड़ी होने पर ही होता है। विधवाएं 'करव' प्रथाके अनुसार विवाह कर सकती है। द्वितोय विवाहसे उत्पन्न पुत्र अपने पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी होता है। पहले विवाहसे उत्पन्न पुत्र अपने पितृव्यके अधीन रहते हैं। विधवाएं अपने देवरके साथ विवाह कर सकती हैं, परन्तु साधारणतः स्वामिके कुलको छोड़ कर दूसरोंके साथ ही विवाह करती हैं।

देहरादूनके पूर्वांशमें रहनेवाले महड़ा लोग हिन्दू-क्रिया पद्धतिके ही अनुकरणकारी हैं। उनके विवाह और श्राद्ध-कार्यमें गौड़ब्राह्मण पौरोहित्य करते हैं। अपनेको राजपूत कहने पर भी इनमें सूअर, मुरगी आदिका निन्दित मांस-भोजन और मद्यपानकी प्रथा है।

वच्चा पैदा होने पर इनके यहां विशेष कोई क्रियानुष्ठान नहीं होता। छठे दिन प्रसूति सोवरमें ही विवाई-देवीकी पूजा करती है। उस दिन आत्मीय कुटुम्वियोंको भोज दिया जाता है तथा घर वगैरह साफ किया जाता है। दूसरे दिन प्रसूति किसी ब्राह्मणके यहांसे गङ्गाजल ला कर, उसे दूसरे पानीमें मिला कर स्नान करती है। एक मास वाद वच्चेकी मुण्डनक्रिया और ज्ञाति-भोजन होता है। विधवा-विवाह करनेवालेके यदि पुत्र न हो तो वह अपनी स्त्रीकी पहलेकी सन्तानको दत्तक रख सकता है।

इनकी विवाह-प्रथा साधारण हिन्दूप्रथाके समान है। विशेषता इतनी ही है, कि ये विवाहके दिन घरके आंगनमें एक 'माड़ो' या मण्डप वनाते हैं, जिसमें नवग्रहक पूजा होती है। उसके वाद घरमें होमाग्नि जलाई जाती है, जिसके चारों तरफ नव-दम्पतिको पांच वार प्रदक्षिण करना पड़ता है।

मुर्देको ये लोग जला देते हैं। कभी कभी गङ्गाके किनारे जा कर उसकी भस्म या हड्डी गाड़ आते हैं। श्राद्धादि प्रेतकर्ममें इनका विशेष विश्वास नहीं है।

किसीके मरनेके बाद ये तेरह दिन तक रोज किसी गायको एक पिष्टक खिला कर फिर आप भोजन करते हैं। तेरहवें दिन ब्राह्मणको चावल, दाल और तैजसादि पात्र दान करके शुद्ध होते हैं। प्रेतात्माकी परितृप्तिके लिये ये प्रति वर्ष आश्विनमासमें कन्यापक्षीय कुटुम्बियोंको भोजन कराते हैं। यही इनकी श्राद्धक्रिया है।

पूरबी लोग पछांहके महड़ाओंसे अनेकांशमें भिन्न हैं। ये सत्यवादी, मद्यपायी और उपधर्मसेवी होते हैं। स्वभावतः इन्हें बुरी जगह और गन्दे घरोंमें रहना पसन्द है। इसी कारण इन्हें समय समय पर स्थान बदलने पड़ते हैं। ये खेती-बारीके सुभीतेके लिए खेतोंमें पानी देना भी नहीं जानते, यहां तक कि अपने पीनेके लिए पानीका इन्तजाम भी नहीं कर सकते। सामान्य खेती-बारीके सिवा पशु-शिकार और तालाबोंसे मछली पकड़ना इनकी उपजीविका है। इनका खान-पान और धर्म-कर्मादि अधिकांश पछांहके लोगों जैसा है।

ये विवाहादि कार्यमें भी गौड़-ब्राह्मणोंको नियुक्त करते हैं। बहुतसे तो गुरु नानक-प्रवर्तित सिख-धर्मके माननेवाले हैं। जिसने सिख धर्म स्वीकार किया है उसके बाल-बच्चे सब सिख-धर्मको ही मानते हैं। नानक-मठ, देघुरा और श्रीनगर इनके प्रधान तीर्थस्थान हैं।

देव देवियोंमें ये प्रधानतः भवानी और कालिकादेवीकी ही विशेष भक्ति करते हैं। इसके सिवा सरवार-लाखी (लाखदाता) और कालू सैयद (कालूराज) इन दोनों साधु-पुरुषोंको भी ये विशेष अनुरागके साथ पूजते हैं। डेरागाजीखां जिलेके नागहा नामक स्थानमें तथा शिवालिक पर्वतके पावलीदून नामक स्थानमें सरवार-लाखीका अस्ताना है। वहांके रहनेवाले हर एक आदमी उक्त साधु तीर्थकी पूजा करते हैं।

इन्द्रजाल या भौतिक विद्यामें ये विशेष पटुता रखते हैं। साधारण लोगोंका विश्वास है कि ये पशुका रूप धारण करके शत्रुका विनाश कर सकते है। वृक्ष चालन, मारण और स्तम्भनादि विद्यामें विशेष पारदर्शी देख कर राजा सुदर्शन शाहने इन्हें समूल नष्ट करनेकी विशेष कोशिश की थी। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए एक दिन राजाने इन्हें निमन्त्रण दिया था और कहा कि 'यदि तुम लोग आ कर मेरे अभीष्टकी सिद्धि कर सकोगे तो तुम्हें यथोचित पुरस्कार दिया जायगा।' तदनुसार ये अपने अपने ग्रन्थ ले कर दरबारमें पहुंचे। राजाने इन्हें हाथ पैर बांध कर नदीमें फेंक देनेका आदेश दिया। राजाके आदेशानुसार यन्त्र और ग्रन्थादि समेत नदीमें फेंक दिये जानके कारण इनके विद्याका गौरव जाता रहा।

भोकार (हिं० स्त्री०) जोर जोरसे रोना।

भोक्तव्य (सं० त्रि०) भुज-कर्त्तरि-तव्य। १ भोजनीय, खाने लायक। २ कर्मजन्य अनुभवनीय। शुभ वा अशुभ प्रारब्ध कैसा भी क्यों न हो, उसका अवश्य भोग करना होगा।

भोक्ता (सं० त्रि०) भोक्तृ देखो।

भोक्तृ (सं० त्रि०) भुज्-कर्त्तरि-तृच्। १ भोजनकर्त्ता, खानेवाला। स्नानके बाद विशुद्ध शुक्ल वस्त्र पहन कर, हाथ पांव धो कर आत्मीय बन्धुबान्धवके साथ भोजन करना चाहिये। भोजन देखो। २ सुख दुःखादिका भोगकर्त्ता, सुख और दुःखादिका भोग करनेवाला। न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्मा ही भोक्ता हैं अर्थात् सुख और दुःखादिका भोग जीवात्माके ही होते हैं। सांख्यके मतानुसार उपचारक्रममें पुरुष-भोक्ता और प्रकृत पक्षमें प्रकृति ही भोक्ती है। (पु०) भुङ्क्ते जीवरूपेणेति, भुनक्ति, पालयतीति वा भुज्-तृच्। ३ विष्णु। ४ भर्त्ता, पति। ५ एक प्रकारका प्रेत।

भोक्तृत्व (सं० क्ली०) भोक्तृर्भावः त्व। भोक्ताका भाव या धर्म।

भोक्तृशक्ति (सं० स्त्री०) बुद्धि।

भोग (सं० पु०) भुज्यतेऽसौ भुज्-घञ्। १ सुख, आराम। २ दुःख, तकलीफ। ३ सुख-दुःखादिका अनुभव। ४ स्त्री आदिकी भृति, रखेली स्त्रियोंका वेतन। आदि शब्दसे हाथी, घोड़ा, लुहार आदिका वेतन भी समझा जाता है। ५ भाटकमात्र, भाड़ा, किराया। ६ सर्प, सांप। ७ सांपका फण। (अमर) ८ धन, दौलत। "हिरण्मयसुतभोग" (ऋक् ३।३४।९) 'हिरण्मयं सुवर्णमयं भोगं धन' (सायण) ६ पालन। १० अभ्यवहार। (मेदिनी) ११ भोजन। १२ देह। १३ मान। (शब्दरत्ना०) १४ पुण्यपाप-जनन-योग्य काल।

"अतीतानागतो भोगो नाड्यः पञ्चदश स्मृतः ।"

(तिथितत्त्व)

सुख-दुःखादिके अनुभावका नाम भोग है। सांख्य-दर्शनमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—"चिदवसानो भोगः" (सांख्यसू० १।१०४) प्रमाज्ञान पुरुषाश्रित होने पर भी पुरुषके विकार वा परिमाण नहीं होता। चित् अर्थात् चैतन्य पुरुषका स्वरूप, उसमें बुद्धिवृत्तिका अवसान अर्थात् प्रतिविम्ब-पात होना ही भोग है। प्रकृति और पुरुषके संयोगसे जब संसार होता है, तभी उपचार-वश पुरुषके भोग हुआ करता है। प्रमेय वस्तु और तदाकार मनोवृत्ति द्वारा पुरुषमें प्रतिविम्बरूपमें भासता है। शास्त्रोंमें इसीको भोग कहा गया है। प्रतिविम्बके द्वारा विम्बका अणुमात्र भी विकृत नहीं होता। जैसे एकके पैदा किये हुए अन्नमें दूसरेका भोग सिद्ध होता है, उसी प्रकार बुद्धि-कृत कर्ममें अकर्तृ-पुरुषके भी भोग हुआ करता है।

पुरुषके भोग होता है—पुरुष भोग करता है, यह बात अविवेक-वशतः उपचरित हुआ करता है। पुरुष कर्म करता है, इसलिए पुरुष ही फलाफल भोग करता है, यह अनुभव भी अविवेक-वश हुआ करता है। वस्तुतः पुरुष अकर्तृस्वभाव है। बुद्धि ही कर्तृधर्मवत्ती है, उसके अविवेकसे पुरुषमें आरोपित भोग अङ्गीकृत हुआ करता है। परन्तु वास्तवमें विवेचना-पूर्वक देखा जाय तो भोग पुरुषके नहीं होता, प्रकृति ही एकमात्र भोक्त्री है। (सांख्यद०)

पातञ्जलदर्शनमें लिखा है,—भोगमें परिणाम-दुःख, ताप-दुःख और संस्कार-दुःख भरा हुआ है।

"परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वमेव दुःखंविवेकिनः" (पातञ्जलद० २।१५)

मोहान्ध वा अविवेकी लोग उसके परिणामको न समझ कर भोगके लिए ही लालायित होते हैं, किन्तु जो समझ चुके हैं प्रत्यक्ष कर चुके हैं, वे कभी भी उसके पास नहीं जाते। अविवेकी उसको दुःख समझते हैं। जो परिणाम, ताप और संस्कार-दुःखमें फंसा हुआ है, वह केवल मनका विकारमात्र है। जो केवल सत्त्वंगुणके कलुष परिणामके सिवा और कुछ भी नहीं है, वह सुख नहीं, बल्कि सुखनामक दुःख है। जरा ध्यानसे विचार करनेसे यह बात स्पष्ट मालूम हो जाती है, कि भोगमें सुख नहीं है, प्रत्येक भोगके साथ साथ परिणाम-दुःख, ताप-दुःख और संस्कार-दुःख भोगना पड़ता है। इसके लिए एक उदाहरण देना काफी होगा; कोई आदमी दिव्याङ्गनासे संयुक्त हुआ, उस समय उसके जो मनोविकार पैदा हुआ, उसीको उसने सुख माना ; जब तक मनोविकार रहा तभी तक सुख मालूम हुआ, परन्तु उसके दूसरे ही क्षणमें दुःखका दुःख ही रह गया। उस कार्यके करनेमें जो आयु क्षय हुई, उसके लिये प्रकारान्तरसे दूसरा एक दुःख हुआ। और भी देखो, वह मनोविकार वा सुख भी स्थायी नहीं रहा, शीघ्र ही नष्ट हो गया। सुख नहीं रहा, नष्ट हो गया, यह सोच कर और भी एक प्रकारका दुःख हुआ। उस मनोविकारको अत्यल्प कालके लिये सुख मान लिया था, उसके प्रभावसे दूसरे दिन फिर उसीके पानेके लिये लालायित होनेसे और एक प्रकारका दुःख हुआ। भोगको वृद्धि करनेसे रोग होता है, अतः भोगके साथ रोग-भय भी है। अत्यन्त भोग करनेसे रोग होगा ही होगा, उसमें भी दुःख है। अतएव प्रत्येक भोगका परिणाम दुःखमय है, यह कहना विलकुल ठीक और सत्य है। जरा-सा विचार कर देखनेसे यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है, कि भोगका परिणाम दुःखमय हो है। यही परिणामदुःख है। वर्त्तमानकालमें अर्थात् भोगकालमें सैकड़ों दुःख हुआ करते हैं। कहीं यह नष्ट न हो जाय, किस तरह यह स्थायी हो सकता है, कैसे उसे बढ़ाया जा सकता है इत्यादि चिन्ताएं आ कर उपस्थित होती हैं। इसके सिवा उसकी आनुषङ्गिक विविध पापमनोवृत्तियां अर्थात् राग, द्वेष और क्रोध आदि उदित हो कर भीतरमें विविध भविष्यत्-दुःखके वीज अंकुरित करते रहते हैं। अतएव इसे स्थिर सिद्धान्त समझना चाहिए कि सुखभोगके साथ साथ ही विविध ताप वा दुःख भोगने पड़ते हैं। इस विषयमें और भी एक विशेष बात है, वह यह कि सुख-भोग करनेके साथ ही चित्तमें उसका संस्कार आवद्ध हो जाता है। इसीलिये पूर्वानुभूत सुखके तुल्य-रूप सुख भोग करनेकी इच्छा होती है। जब तक वह

नहीं मिलता, तब तक चित्त व्याकुल रहता है। अतएव सुखभोगका संस्कार भी दुखजनक है। भोग क्या है? विवेचना करके देखनेसे मालूम होगा कि भोग एक प्रकारका मानसिक विकारमात्र है और कुछ नहीं। सुतरां क्षणपरिणामी सत्त्व, रजः और तमोगुणके क्षणिक परिणामरूप क्षणभंगुर भोगमात्र ही दुःख है। इन सब कारणोंसे अर्थात् प्रत्येक भोगमें परिणाम, ताप और संस्कार ये त्रिविध दुःख होनेके कारण तथा परस्पर विरोधी गुणपरिणाम विद्यमान रहनेसे योगी और विवेकीके लिए सभी दुःख है। कभी भी वे उसे सुख नहीं मानते। जो भी शुभ वा अशुभ कर्म पूर्वमें अनुष्ठित हुए हैं, उसका भोग नहीं होनेसे वह किसी भी प्रकार नष्ट नहीं होगा। इस प्रकारसे कर्म करना चाहिए जिसमें संस्कार न हो। संस्कार वासना वा अदृष्ट जनमने पर भोग करना ही पड़ता है। किसी प्रकार योग वा यत्न द्वारा उसे नष्ट नहीं किया जा सकता।

(पातञ्जलदर्शन)

१६ पुर। 'नव यदस्य नवतिञ्च भोगान्' (ऋक् ५।२९।६) 'भोगान् पुराणि' (सायण) १७ भूमि आदिका भोग। ज़मीन-जायदाद वगैरह अपने दखलमें रहे तो उसे भी भोग कहते हैं। (व्यवहारतत्त्व) १८ विभत्रभेद। १६ व्यूह-भेद। भोगव्यूह पाँच प्रकारका होता है।

(कामन्दकी १९।५८)

२० रवि आदिका राशिस्थिति-काल। रवि आदि ग्रह एक राशिसे दूसरी राशिमें जब तक गमन नहीं करते, उतना समय उस राशिका भोगकाल है।

भोग—देवमन्दिरादिमें देवताके उपभोगके लिए चढ़ाया हुआ नैवेद्य आदि। देवदेवियोंके लिए प्रदान किया हुआ अन्नादिको भोग कहते हैं। साधारणतः देवीदेवताओंके सामने भोग रखा जाता है। देवताओंके दिव्य चक्षुओंसे भोग दर्शन करनेके वाद, वह प्रसाद कहलाता है। प्रसिद्ध पुरीधामके जगन्नाथदेवके भोगके लिए जहाँ अन्नव्यञ्जनादि रखे जाते हैं, वह स्थान भोगमण्डप नामसे प्रसिद्ध है। भोगके समय पण्डा लोग नारायणकी भोगमूर्त्ति चारों तरफ घुमाया करते हैं। उस मूर्त्तिको वे पृथक् स्थानमें रखते कभी भी क्षेत्र नहीं ले जाते।

तामिलदेशमें नववर्षके प्रथम दिनमें एक उत्सव और इन्द्रपूजा होती है। साधारण लोग उससे आनन्द उपभोग करते हैं, इसलिए वह दिनभोगी पण्डितवाई नामसे प्रसिद्ध है।

भोगक (सं० त्रि०) भोग संज्ञायां कन्। भोग-कालीन।

भोगगुह (सं० क्ली०) वह धन जो सम्भोगार्थ वेश्याको दिया जाता है।

भोगगृह (सं० क्ली०) भोगाथ गृहं। वासगृह, रहनेका घर।

भोगग्राम (सं० पु०) प्राचीन ग्रामभेद।

भोगत्व (सं० क्ली०) भोगस्य भावः त्व। भोगका भाव या धर्म।

भोगदा (सं० स्त्री०) शक्तिगणभेद।

भोगदावाड़ी—वङ्गालके रंगपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यहां शस्यादिका अच्छा वाणिज्य चलता है।

भोगदेव (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

भोगदेह (सं० पु०) भोगहेतुको भोगसाधको वा देहः। स्वर्ग वा नरक-भोगके लिए सूक्ष्म देह। देहके विना भोग नहीं होता, इसलिए पाप या पुण्य भोगके लिए एक देह हुआ करती है, उसीको 'भोगदेह' कहते हैं।

"कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात् परम्।
प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते॥" (श्राद्धतत्त्व)

मनुष्य सपिण्डीकरणके वाद प्रेतदेह त्याग कर भोगदेहको प्राप्त होता है। एक वर्ष वाद सपिण्डीकरण है, इसलिए एक ही वर्ष वाद भोगदेह हुआ करती है। यदि किसीके संवत्सरमें ही अपकर्ष सपिण्डीकरण हो, तो उससे उसके वर्षके भीतर भोगदेह होगी या नहीं? यह प्रश्न जरा ध्यानसे विचार करनेसे उक्त श्लोकसे ही हल हो जाता है। सपिण्डीकरणके वाद भोगदेह होगी, इतना कह देनेसे ही काम चल जाता है, क्योंकि सपिण्डीकरण प्रायः संवत्सरके वाद ही हुआ करता है; 'संवत्सरात् परं' इस पदके देनेकी कोई आवश्यकता न थी। इससे समझना चाहिए, कि वर्षके भीतर सपिण्डीकरण होने पर भी, जब तक वर्ष समाप्त न हो जाय, तब तक भोगदेह नहीं होगी। एक वत्सर वीत गया है, सपिण्डीकरण भी नहीं हुआ है, तो उसके भी

भोगदेह नहीं होगी। जब तक कि सपिण्डीकरण नहीं होता, तब तक भोगदेह नहीं होगी, प्रेतदेह रहेगी ऐसा ही शास्त्र-प्रणेताओंका मत है

जीव जो बार बार षाट्कौषिक शरीर ग्रहण करता और बारबार उसे छोड़ता है, वही जीवका इह और परलोक-सञ्चरण है। दृश्यमान स्थूल शरीर शास्त्रीयभाषामें षाट्कौशिक कहलाता है। षाट्कौशिक शरीर शुक्र और शोणितके परिणामसे उत्पन्न है। सूक्ष्म शरीर वैसा नहीं है। सूक्ष्म-शरीर अन्तःकरण अर्थात् बुद्धीन्द्रिय-निचयकी समष्टि है वा उनके द्वारा रचित है इसीलिए वह अत्यन्त सूक्ष्म है। वह अछेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अक्लेद्य है। अतएव नरकादि भोगके समय यह ज्वलदग्निमें भस्म नहीं होती, पानीमें नहीं डूबती और न इस देहकी किसी प्रकार विकृति ही होती है। हां, केवल यन्त्रणाका अनुभव हुआ करता है।

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० प्रकृति खं०)

वृद्धाङ्गुष्ठ जो जीव पुरुष है वही भोगदेह धारण करके स्वर्ग वा नरकादि भोग करता है। इस शरीरमें किसी एक विषयका निरन्तर ध्यान करके शरीर त्यागनेसे वह किसी न किसी समय पुनरुदित होता है। वह उदयका बीज है, अनुष्ठित ज्ञानकर्मका संस्कार है। वह संस्कार सूक्ष्म शरीरमें रहता है और बादमें उसीके बलसे उद्बुद्ध होता है। स्थित संस्कार उद्बुद्ध होनेसे स्मरण और प्रत्यभिज्ञान नामक ज्ञान उत्पन्न होता है। उसके साथ मनोभाव और अवस्थाका भी परिवर्त्तन होता है। इहजन्ममें जो जन्मान्तरीय संस्कारोंका उद्बोध होता है, वह इहलोकमें स्वभाव और प्रकृति इत्यादि कहलाता है मरण-समयमें स्थूल-देह पड़ी रहती है, परन्तु उस देहके अर्जित संस्कार सूक्ष्म-शरीरमें विद्यमान रहते हैं, वृथा नष्ट नहीं होते। इसीलिए मृत्युके बाद उस देहके अर्जित ज्ञान और कर्म अर्थात् धर्माधर्मादि अपने अभिनव अवस्थाको उपस्थापित किये रहते हैं।

जीवने समस्त जीवनमें जो कार्य किये हैं, जैसा ध्यान किया है, मृत्यु-समय उसीके अनुरूप एक नूतन परिवर्त्तन, एक नूतन भावना उपस्थित होती है। शास्त्रीय भाषामें उसे भावनामय शरीर कहते हैं।

"योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयान्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥" (स्मृति)

भावनामय देहका दूसरा नाम आतिवाहिक है। आतिवाहक देह थोड़े दिनों तक रहती है, उसके बाद पूर्व प्रज्ञाके अनुसार षाट्कौषिक भोगदेह उत्पन्न हुआ करती है, कोई तो मानव-देह पाता है, कोई तिर्य्यग्देह और कोई देवदेह। पुण्याधिक्य होनेसे पुण्य शरीर अर्थात् दिव्यादि शरीर, पापाधिक्य होनेसे तिर्य्यक्शरीर और पापपुण्यका बल बराबर होनेसे मानवशरीर उत्पन्न होता है। जब तक स्थूल शरीर उत्पन्न नहीं होता तब तक भावनामय शरीरमें अर्थात् आतिवाहिक भावदेहमें सुख दुःखका भोग करता रहेगा। वह भोग स्वप्नभोगकी तरह अस्पष्ट है।

चैतन्य-विम्बित सूक्ष्मदेह अर्थात् जीवात्मा षाट्कौषिक शरीरसे निकल कर पहले आतिवाहिक शरीरमें 'आकाशस्थो निरालम्बो वायुभूतो निराश्रयः' हो कर रहता है। पीछे यथासमय वह जन्म ग्रहण करता है। जो अत्यन्त पापाचारी हैं, वे मरणके बाद इस पृथ्वीमें आतिवाहिक शरीरमें कुछ दिन रह कर पीछे तमःप्रधान वृक्षलतादि जड़ शरीर धारण करते हैं। जो ऋषि तपस्वी और ज्ञानी हैं, वे देवयानके मार्गसे ऊद्ध्र्वलोकमें और क्रमशः ब्रह्मलोकमें जन्मग्रहण करते हैं। जो सत्कर्मनिष्ठ हैं, वे पितृयाणके मार्गसे उद्ध्र्वगामी हो कर पितृलोकमें उत्पन्न होते हैं। अनन्त सुखभोग करनेके बाद वे पुनः पितृयाण पथके व्युत्क्रमसे इहलोकमें अवतरण कर क्रमानुसार मानव शरीर प्राप्त करते हैं (सांख्यद०)

साधारणतः इतना कहा जा सकता है, कि जिस देहमें सुख, दुःख वा नरकका भोग होता है, वही भोगदेह है। स्थूल देहसे सुख दुःखका भोग होता है, इसलिए उसे भी भोगदेह कहा जा सकता है। मृत्यु शब्द देखो।

भोगना (हिं० क्रि०) १ सुख दुःख या शुभाशुभ कर्मफलों का अनुभव करना, भुगतना। २ सहन करना, सहना। ३ स्त्री प्रसंग करना।

भोगनाथ (सं० पु०) सायणाचार्यके भाई एक पण्डित। इनके पिताका नाम मायण था।

भोगनीपुर—१ युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एक

तहसील। यह अक्षा० २६° ५´ से २६° २५´ उ० तथा देशा० ७९° ३१´ से ८०° २´ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ३३८ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें मूसा नामका एक शहर और ३६८ ग्राम लगते हैं। तहसीलके दक्षिण यमुना नदी बह गई है।

२ उक्त विभागका प्रधान नगर और विचार सदर। यह कानपुरसे २०॥ कोस दूर कालपी राजपथके ऊपर अवस्थित है। करीब चार सौ वर्ष हुए, भोगचांद नामक एक कायस्थ इस नगरको बसा गये हैं। आज भी उनके वंशधर इस स्थानका भोग करते आ रहे हैं। स्थानीय भोगसागर नामक विस्तीर्ण जलाशय उन्हीं भोगचांदकी कीर्त्ति है।

भोगपति (सं० पु०) १ भोगके अधिपति। २ किसी नगर या प्रान्त आदिका प्रधान शासक या अधिकारी।

भोगपात्र (सं० क्ली०) भोगस्य पात्रं। वह पात्र जिसमें देवताके उपभोग नैवेद्यादि रखे जाते हैं।

भोगपाल (सं० पु०) भोगं भोगसाधनमश्वादिकं पालयतीति भोग-पालि-अण्। १ अश्वरक्षक। (त्रि०) २ भोगरक्षक।

भोगपिशाचिका (सं० स्त्री०) भोगे पिशाचिका इव तद्वद्-तृप्तत्वात्। क्षुधा, भूख।

भोगपुर—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां बहुत-से प्राचीन मन्दिरादिका ध्वंसावशेष है।

भोगप्रस्थ (सं० पु०) १ उत्तरस्थित देशभेद। (वृहत्-संहिता १४ अ०) २ उस देशके अधिवासी।

भोगबन्धक (सं० पु०) बंधक या रेहन रखनेका एक प्रकार। इसमें उधार लिये हुए रुपयेका ब्याज नहीं दिया जाता। उस ब्याजके बदलेमें रुपया उधार देनेवालेको रेहन रखी हुई भूमि या मकान आदि भोग करने अथवा किराए आदि पर चलानेका अधिकार प्राप्त होता है।

भोगभट्ट (सं० पु०) १ योधपुरके प्रतिहारवंशीय एक राजा। ये ब्राह्मणकुमार हरिचंद्रके औरस और भद्रा-नाम्नी एक क्षत्रियकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। २ शार्ङ्गधर-पद्धतिधृत एक कवि।

भोगभूमि (सं० स्त्री०) भोगार्थैव भूमिः न कर्मार्था। सुखस्थान, वह स्थान जहां सिर्फ भोग ही होता है, कर्म नहीं होता, भारतवर्षके अतिरिक्त वर्ष।

भोगभृतक (सं० पु०) वह जो केवल वेतनके लिये काम करे।

भोगमण्डप (सं० क्ली०) १ वह स्थान जो देवादिके उप-भोग्य द्रव्यादि प्रस्तुत करनेके योग्य हो।

भोगमोक्षप्रदा (सं० स्त्री०) १ सुख और मोक्षप्रदायिनी। २ गङ्गा। ३ भैरवीभेद।

भोगराय—बालेश्वर जिलेके सन्निकटस्थ एक बड़ा बांध। यह सुवर्णरेखा नदीके मुहानेके समीप है। पहले मराठों-ने बाढ़को रोकनेके लिये नदीके किनारे यह बांध बन-वाया था। पीछे वृटिश-सरकारने जनताकी भलाईके लिये १८७० ई०में इसके पश्चाद्भागमें एक दूसरा बांध बनवा दिया।

भोगलदाई (हिं० स्त्री०) खेतमें कपासका सबसे बड़ा पौधा। इसके आस पास बैठ कर देहाती लोग उसकी पूजा करते हैं।

भोगलाभ (सं० पु०) सुखभोगादि प्राप्ति।

भोगलिप्सा (सं० स्त्री०) व्यसन, लत।

भोगलियाल (डिं० स्त्री०) कटारी नामका शस्त्र।

भोगली (हिं० स्त्री०) १ छोटी नली, पुपली। २ नाकमें पहननेका लौंग। ३ कानमें पहननेका एक प्रकारका गहना। इसे टेटका या तरकी भी कहते हैं। ४ एक प्रकारका सलमा जो चपटे तार या बादलेका बना होता है। इससे दोनों किनारोंके बीचकी जंजीर बनाई जाती है।

भोगवत् (सं० त्रि०) भोगः फणः कायं वा भृत्वा अस्त्यस्येति, भोग-मतुप्, मस्य च वत्वं। १ सर्प, सांप। २ नास्य। ३ गान, गोत। (त्रि०) ४ भोगविशिष्ट।

भोगवती (सं० स्त्री०) भौगवत् स्त्रियां ङीन् (शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। पा ४।१।७३) १ पातालगङ्गा। २ नाग-पुरी, नागोंके रहनेका स्थान। ३ नागपत्नी, नागोंकी स्त्री। ४ नदीभेद, महाभारतके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। ५ गङ्गा। ६ तीर्थभेद, पुराणानुसार एक तीर्थका नाम। ७ कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी

एक मातृकाका नाम। ८ सह्याद्रिपर्वतके वालाघाट पर्वत से निकली हुई एक नदी।

भोगवर्द्धन (सं० पु०) देशभेद।

भोगवर्मन (सं० पु०) १ मौखरि-राजवंशके एक राजा। २ राजा शूरसेनके पुत्र। इनकी माता भोगदेवी नेपाल-राज अंशुवर्माकी वहिन थीं।

भोगवस्तु (सं० क्ली०) उपभोग्य द्रव्य, नैवेद्य सामिग्री।

भोगवान् (सं० पु०) भोगवत् देखो।

भोगवाना (हिं० क्रि०) भोगनेमें दूसरेको प्रवृत्त करना, भोग कराना।

भोगविलास (सं० पु०) आमोद प्रमोद, सुख चैन।

भोगसद्मन् (सं० क्ली०) भोगार्थं उपभोगार्थं सद्म। १ वासगृह। २ अन्तःपुर।

भोगसेन (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

भोगस्थान (सं० क्ली०) भोगार्थं स्थानं। भोगभूमि। २ सुखदुःखादि भोगात्मक शरीर। ३ रमणी-गेह।

भोगस्वामिन् (सं० पु०) एक शास्त्रवित् पण्डित। भुज-ङ्गिका नामक स्थानमें इनका वास था।

भोगाई—आसामप्रदेशके गारोपहाड़से निकली हुई एक छोटी नदी। क्रमशः पश्चिमकी ओर वह कर यह ब्रह्मपुत्र नदीमें मिल गई है।

भोगादित्य—एक प्राचीन हिन्दू राजा।

भोगाना (हिं० क्रि०) भोगनेमें दूसरेको प्रवृत्त करना, भोग कराना।

भोगान्तराय (सं० पु०) वह अन्तराय जिसका उदय होने-से मनुष्यके भोगोंकी प्राप्तिमें विघ्न पड़ता है।

भोगारमन्दर—पञ्जाव प्रदेशके हजारा जिलान्तर्गत एक पार्वतीय उपत्यका। यह अक्षा० ३४° ३०´ से ३४° ४८´ १५´´ उ० तथा देशा० ७३°१४´ १५´´ से ७३° २४´ ३०´´ पू०-के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ७७४१८ एकड़ है जिनमेंसे ७॥ हजार एकड़ जमीनमें खेतीवारी होती है। इस स्थानका प्राकृतिक सौन्दर्य अतीव मनोहर है। चारों ओर झाऊके जंगल हैं। अधिवासिगण गो-महिषादिका लालन पालन करके उन्हींके द्वारा अपना गुजारा चलाते हैं। ग्रीष्मऋतुमें यह स्थान वहुत ही मनोरम दीखता है किंतु यहां जाड़ा वहुत पड़ता है। गुजर और स्वातीगण यहांके प्रधान अधिवासी हैं।

भोगायतन (सं० क्ली०) भोगस्य आयतनम्। स्थूलदेह। इस स्थूलदेहमें सुख दुःखादिका भोग होता है, इसीसे इसको भोगायतन कहते हैं।

भोगार्ह (सं० क्ली०) भोगमर्हति अर्ह-अण्, उपपदस०। १ धान्य। (त्रि०) २ भोग्यवस्तु मात्र।

भोगार्ह्य (सं० क्ली०) भोगाय अर्ह्यते इति अर्ह (ऋहलो-र्ण्यत्। पा ३।१।१२४) इति ण्यत्। धान्य, धान।

भोगावली (सं० स्त्री०) भोगानां आवली श्रेणिर्यस्यां। १ स्तुतिपाठककी स्तुति। २ नागपुरी, नागोंके रहनेका स्थान। ३ स्तुतिपाठक। ४ भोगश्रेणी। ५ स्तुति।

भोगावास (सं० पु०) आवसत्यस्मिन् आ वस-अधिकरणे घञ्, भोगार्थो वा आवासः। वासगृह।

भोगिक (सं० पु०) भोगे अश्वभोगे नियुक्त इति भोग वाहुलकात् ठन्। अश्वरक्षक।

भोगिकान्त (सं० पु०) भोगिनां कान्तः प्रियः। वायु, हवा।

भोगिगन्धिका (सं० स्त्री०) भोगिनः सर्पस्येव गन्धो यस्याः कप्, टापि अत इत्वं। १ सर्पगन्धा वृक्ष। २ लघुमंगुष्ठ वृक्ष।

भोगिन् (सं० पु०) भोगी देखो।

भोगिनी (सं० स्त्री०) भोगिन्-स्त्रियां ङीष्। १ राजाका उपपत्नी, राजाकी रखेली स्त्री।

भोगिभुज् (सं० पु०) भोगिनं सर्पं भुङ्क्ते भुज्-क्विप्। मयूर, मोर।

भोगिवर्मन्—काश्मीर देशीय एक कवि।

भोगिवल्लभ (सं० क्ली०) भोगिनां वल्लभं प्रियम्। चंदन।

भोगी (सं० पु०) भोगोऽस्यास्तीति भोग-इनि। १ सर्प, सांप। २ नृप, राजा। ३ नापित, हज्जाम। ४ अश्लेषा नक्षत्र। ५ शेषनाग। ६ भोगनेवाला, वह जो भोगता हो। ७ जमींदार। (त्रि०) ८ सुखी। ९ इन्द्रियोंका सुख चाहनेवाला। १० भुगतनेवाला। ११ विषयासक्त। १२ आनन्द करनेवाला, विलासी। १३ विषयी, व्यसनी। १४ खानेवाला।

भोगीन (सं० पु०) १ इन्द्रिय-सुखनिरत वा उदरसर्वस्व व्यक्ति। २ राजा वा राजपुत्र। ३ ग्रामपति। ४ नापित।

भोगीन्द्र (सं० पु०) भोगिना मिन्द्रः । १ अनन्तदेव । २ पातञ्जलिका एक नाम ।

भोगीश (सं० पु०) भोगिनामीशः । अनन्तदेव ।

भोगेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद ।

भोग्य (सं० क्ली०) भुज्-ण्यत् । १ धन । २ धान्य । ३ भोगवन्धक । (त्रि०) ४ भोगने योग्य, काममें लाने लायक । ५ जिसका भोग किया जाय । ६ खाद्य ।

भोग्यतिथि (सं० स्त्री०) तिथि आदिका भोगयोग्य-काल ।

भोग्यत्व (सं० क्ली०) भोगस्य भावः त्व । भोग्यका धर्म वा भाव ।

भोग्यभूमि (सं० स्त्री०) १ विलासकी भूमि, आनन्दका स्थान । २ वह भूमि जिसमें किए हुए पाप-पुण्योंसे सुख दुःख प्राप्त हो, मर्त्यलोक ।

भोग्या (सं० स्त्री०) भोग्य-टाप् । १ वेश्या । २ भोगके योग्य भूमि ।

भोचन—बम्बईप्रदेशके कच्छसामन्त राज्यका एक नगर ।

भोज (सं० पु०) भोजस्येदमिति भोज (तस्येदं । पा ४।३।१२०) इत्यण्, अणो लोपः । १ स्वनामख्यात देश, भोजपुर । २ धारानगरके एक राजा, भोजराज । भोजराज देखो । ३ चन्द्रवंशियोंके एक वंशका नाम । ४ पुराणानुसार शान्तिदेवीके गर्भसे उत्पन्न वसुदेवके एक पुत्रका नाम । ५ महाभारतके अनुसार राजा द्रह्यु के एक पुत्र-का नाम । ६ श्रीकृष्णके सखा एक ग्वालका नाम ।

भोज—१ प्राचीन जनपदविशेष और उस देशके अधिवासी । २ कच्छके अन्तर्गत स्थानभेद । अभी यह स्थान भुज और यहांके अधिवासी भोजदे कहलाते हैं ।

भोज—१ एक आभिधानिक । २ आयुर्वेदशास्त्रकार कोई पण्डित । आप वृद्धभोज नामसे जनसाधारणमें परिचित थे । ३ हेमचन्द्रधृत एक प्रसिद्ध वैयाकरण । ४ द्रव्यानुयोग तर्कणटीका नामक श्वेताम्बर जैनियोंका साम्प्रदायिक ग्रन्थ ।

भोज—१ गुहिलवंशीय एक राजा, वाप्पाके पौत्र । २ कन्नौजके एक राजा । ३ राजा सिलहनके पुत्र । ये राज्यसे निकाले जाने पर दरद राज्यमें गये और वहां दरदोंकी सहायतासे काश्मीर सिंहासन पर बैठनेकी चेष्टा करने लगे । (राजतर० ८।२७०६) ४ कोल्हापुरके शिलहर-वंशीय दो राजा । ये दोनों क्रमशः १०९८ और ११६० ई०में विद्यमान थे । ६ सह्याद्रिवर्णित तीन राजा । (सह्या० ३१।२६, ४३ और ३२।४)

भोज (हिं० पु०) १ बहुतसे लोगोंका एक साथ बैठ कर खाना पीना, जेवनार । भोज्यपदार्थ, खानेकी चीज । ३ ज्वार और भाँगके योगसे बनी हुई एक प्रकारकी शराब । यह शराब विशेषतः पूनेकी ओर मिलती है ।

भोजक (सं० त्रि०) भोजयति भुज् णिच्-ण्वुल् । १ भोजन बनानेवाला । भुज् ण्वुल । २ भोजनकर्त्ता, खानेवाला । ३ भोग करनेवाला, भोगी । ४ विलासी, ऐयाश । (पु०) ५ विप्रभेद । भोजकब्राह्मण देखो ।

भोजक—जैनपुरोहित ।

भोजकट (सं० पु०) १ भोजदेश । (क्ली०) २ रुक्मिनिर्मित पुर । ३ एक प्राचीन जनपद । यह प्राचीन वाकाटक राज्यके अन्तर्भुक्त था ।

भोजकटीय (सं० त्रि०) भोजकटे भवः, भोजकट-छ । भोजकटदेशोद्भव ।

भोजकब्राह्मण—भारतमें आये हुए एक प्रकारके शाकद्वीपीय ब्राह्मण । मग नामसे भी इनकी प्रसिद्धि है । किस प्रकार इनकी उत्पत्ति हुई ? इस सम्बन्धमें कोई एक पौराणिक उपाख्यान मिलते हैं । भविष्य-पुराणमें ११७वें अध्यायमें इस प्रकार लिखा है,—

"सूर्यदेवने अरुणको सम्बोधन करके कहा—'महामति महीपति प्रियव्रत-तनय शाकद्वीपके अधीश्वर थे । उन्होंने अपने राज्यमें मेरी प्रतिमूर्ति प्रतिष्ठित करनेके लिए पहले एक विमानप्रतिम परम रमणीय शिलामय गृह निर्माण करके; फिर उसमें एक सर्वसुलक्षण-युक्त हैम-प्रतिमा संस्थापित की । धर्मपरायण नरपति यथाविधि सुन्दर गृह और हेममयी प्रतिमा निर्माण कर इस प्रकार चिन्ता करने लगे, कि मैंने यह सर्वोत्तम गृह और रमणीय हैम-प्रतिमा तो बनवा ली, पर इसमें भगवान् सूर्यदेवको प्रतिष्ठापित कौन करेगा ? इस प्रकार चिन्ता करते हुए राजा आखिर मेरे शरणमें आये । मैंने नरपतिकी अचला भक्ति देख कर उसी क्षण उनके सामने आविर्भूत हो कर कहा, 'राजेन्द्र ! तुम किस लिए और किस विषयकी चिन्ता

कर रहे हो। तुम्हारी चिन्ताका कारण क्या है? मुझसे कहो। मैं तुम्हारी सब इच्छा पूरी करूंगा। राजन्! तुम निश्चय समझना, कि तुम्हारा कार्य अत्यन्त दुस्साध्य हो, तो भी मेरे द्वारा वह अवश्य ही हो जायगा।'

'हे खग! मेरे इस प्रकार कहने पर राजाने मुझसे कहा--हे देवदेव! मैं इस द्वीपमें आपकी प्रतिमूर्त्ति स्थापित करनेके लिए एक गृह और प्रतिमा बनवाई है; परन्तु किस व्यक्तिके द्वारा मैं उसकी प्रतिष्ठा कराऊं, कुछ समझमें नहीं आता। इस द्वीपमें यद्यपि बहुसंख्यक क्षत्रियादि तीनों वर्णोंके मनुष्य वास करते हैं परन्तु उनमेंसे कोई भी उस मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा वा अर्चना करनेको राजी नहीं होता और न इस स्थानमें कोई ब्राह्मण ही है। अतएव हे जगन्नाथ! मैं इसी कारणसे अत्यन्त चिन्तित हुआ हूं, आप मुझे कोई उपाय बतलाइए।

'हे वैनतेय! मैंने राजाके इस कथनको सुन कर उनसे कहा, कि हे राजन्! तुमने जो बातें कहीं हैं, वे सब सत्य हैं, इस द्वोपके रहनेवाले क्षत्रियादि त्रिवर्णको मेरी प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठा वा अर्चना करनेका अधिकार नहीं है। अतएव तुम्हारे मङ्गलके लिए मैं शीघ्र ही मग नामके अनुपम ब्राह्मणकी सृष्टि करता हूं। हे खगसत्तम! मैं नरवरको यह बात कह कर उनकी कार्यसिद्धिके लिए कुछ देर विचारता रहा। चिन्तामें निविष्ट होने पर सहसा मेरे शरीरसे ८ महाबल ब्राह्मण प्रादुर्भूत हुए। वे ब्राह्मण कुन्देन्दुके समान अत्यन्त शुभ्रकान्ति थे, काषाय वसन पहने हुए थे, हाथोंमें करण्ड और कमल शोभित था और सभी साङ्गोपनिषद् चतुर्वेदके पाठमें निरत थे। हे खग! उस समय मेरे शरीरसे निकले हुए उन आठों ब्राह्मणोंमें दो मेरे ललाटसे, दो पैरोंसे, दो वक्षस्थलसे, और दो चरणोंसे उत्पन्न हुए थे। उत्पन्न होनेके साथ ही उन्होंने प्रणाम कर पिता कहके मुझे सम्मानित किया और कहा, हे तात! जगत्पते! आपने किस लिए हम लोगोंको अपनी देहसे पैदा किया है? आप आदेश दीजिये, हम सब उसका पालन करेंगे। हम सब आपके पुत्र हैं और निःसन्देह आप हमारे पिता हैं।'

इस पर मैंने कहा, हे पुत्रगण! यह जो प्रियव्रत-तनय शाकद्वीपमें राज्य कर रहे हैं, तुम लोग उनका आदेश पालन करो। मैंने अपने शरीरसे उत्पन्न ब्राह्मणों-को इतना कह कर राजाकी तरफ दृष्टिपात किया और कहा, राजन्! ये सर्वोत्तम ब्राह्मणगण तुम्हारे लिए अर्चनीय हैं और ये ही मेरी मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा करेंगे। तुमने जो मेरा प्रतिविम्ब और मन्दिर बनवाया है, उसे इन ब्राह्मणोंके हाथ सौंप दो; ये ही मेरी प्रतिष्ठा और पूजादि किया करेंगे। तुम धन-धान्य-गृहक्षेत्रादि जो कुछ भी चीज इन भोजक-ब्राह्मणोंको दो उन्हें फिर वापस न लेना। ये भोजकब्राह्मण ही मेरी पूजा करनेके एकमात्र अधिकारी हैं। इसलिये तुम मेरे लिए ग्राम-नगरादि जो कुछ दान करोगे, उन सबोंमें इन भोजकब्राह्मण के सिवा अन्य किसीका भी अधिकार न रहेगा। हे पतग! राजाने मेरे कथनानुसार सब काम किये थे।

'सूर्यने कहा, भोजकगण सर्वदा सदाचारमें निरत रह कर काय-मन-वाक्यसे मेरी ही आज्ञा पालन करेंगे। वे प्रथमतः वेदाध्ययन, फिर दार परिग्रह करेंगे। प्रात-दिन त्रिसन्ध्या स्नान करके दिवारात्रमें पांच बार मेरी पूजा करेंगे। मेरे सिवा उनके और कोई उपास्य-देवता न होगा। भोजकगण देवता, ब्राह्मण और वेदवाक्यकी निन्दा, अन्नादिनिवेदन करके एकाकी भोजन, शूद्रगृहमें गमन करके शूद्रान्न ग्रहण वा उनके उच्छिष्टका स्पर्शन इत्यादि निषिद्ध कार्योंका सावधानीसे परित्याग करेंगे। मेरे लिए चढ़ाया गया नैवेद्य ही उनकी परम वृत्ति निरूपित हुई है। अभोज्य भोजन नहीं करेंगे और प्रातदिन मुझे ही भोजन करायेंगे, इन दो कारणोंसे ये 'भोजक' और मगध्यानमें निरत होनेसे 'मगध' नामसे प्रसिद्ध होंगे। ये यत्न-पूर्वक पवित्र अव्यङ्ग धारण करेंगे। जो व्यक्ति अव्यङ्गहीन हो कर मेरी पूजा करेगा, उस पर मैं कभी भी प्रसन्न न होऊंगा और उसका वंश लोप हो जायगा।'

भविष्यपुराणमें अन्यत्र (१३९ अ०) मग-ब्राह्मणकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है,—

'गौरमुखने कहा था, देवी निक्षुभा सूर्यके शापसे मानसीका शरीर पाया था। मिहिरगोत्रमें ऋजिश्वा नामक एक श्रेष्ठ ऋषि थे। निक्षुभाने उन्हींके यहां

कन्यारूपमें जन्मग्रहण किया। यह कन्या जगत्‌में हावनी नामसे प्रसिद्ध थी। निक्षुभाने पिताके आदेशानुसार विधिपूर्वक अग्निदेवके साथ विहार करती रहीं। एक दिन सूर्यदेव उन्हें देख कर कामातुर हो उठे। सूर्यदेव उनके रूप-लावण्य पर मोहित हो कर उन्हें पानेके लिए चिंता करने लगे। पश्चात् उन्होंने अग्निका रूप धारण करके निक्षुभाको बनमें ले जा कर उनके साथ विहार किया। अग्नि इस घटनासे बड़े ही क्रुद्ध हुए। उन्होंने निक्षुभाका हाथ पकड़ कर कहा, 'निक्षुभे! तुमने देव-विधिके विरुद्ध चल कर मुझे लङ्घन किया है; इस कारण मेरे औरससे तुम्हारे अब पुत्र नहीं होगा। इस गर्भसे उत्पन्न पुत्र 'मग' नामसे और मग-वंशकी कीर्त्तिके कारण 'जरशस्त्र' नामसे प्रसिद्ध होगा। मग-गण अग्निजातीय, द्विजातिगण सोमजातीय और भोजकगण आदित्यजातीय हैं। ये सभी श्रेष्ठ हैं। अग्निरूपी भगवान् सूर्यदेव इतना कह कर अन्तर्धान हो गये।

'अनन्तर महर्षि ऋजिश्वाने ध्यान योगसे अपनी कन्या निक्षुभाके गर्भसे प्रजा-सृष्टिके विषयको जान लिया और क्रोधमें आ कर उन्होंने अभिशाप दिया कि उस गर्भसे उत्पन्न सन्तान अपूज्य और पतित समझी जायगी। कन्याने पिताके शापको सुन कर उनसे बहुत अनुनय-विनय किया, परन्तु ऋजिश्वा किसी प्रकार भी प्रसन्न न हुए। तब मुनि-कन्याने निरुपाय हो कर सूर्यदेवसे ही अपने पुत्रकी शाप-मुक्तिके लिए प्रार्थना की। सूर्य हावनीके कातरवाक्यसे करुणार्द्र हुए। उन्होंने उसी समय अग्निका रूप धारण करके ऋषि-कन्याके सामने आ कर कहा, 'अयि साधुशीले! यह देखो, अपने पिता ऋजिश्वाको, ये अपने तपके प्रभावसे परमैश्वर्यके अधिश्वर हुए हैं। ये सर्व विषयोंसे वीतराग हो कर प्रतिनियत धर्माचरणमें प्रवृत्त हुए हैं। इसलिए मुझमें इतनी शक्ति नहीं, कि मैं इन जैसे अमोघवाक्य तेजस्वी पुरुषके वाक्यको अन्यथा कर सकूं। परन्तु हां, मैं अब कार्यानुरोधसे तुम्हें और एक योग्य पुत्र प्रदान करता हूं। मेरी कृपासे तुम्हारा यह पुत्र वेदविद्यामें पारदर्शी होगा और इसकी वंश-परम्परा जगत्‌में विलक्षण प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी। इनके वंशधर वशिष्ठादि ब्रह्मवादी महात्माओंको मेरा ही अंश समझना। वे निरन्तर मुझमें ही अनुरक्त हो कर मेरा ही नाम गाया करेंगे। प्रतिदिन तपस्यामें निरत हो कर मेरा ही ध्यान और पूजा करेंगे। इस प्रकार मेरे प्रति उनकी ऐकान्तिक भक्ति होनेसे मैं उन श्मश्रु और अव्यङ्गधारी वीरकालयाजी ब्राह्मणों पर प्रसन्न हो कर अन्तमें उन्हें अपने अङ्गमें आश्रय दूंगा। जो दाहिने हाथमें पूर्णक और बांये हाथमें वर्शमा धारण करके, पतिदान द्वारा वदन मण्डल ढक कर, शुद्धभावसे मद्गतचित्तसे वाग्यत हो कर भोजन करेंगे तथा जो व्याकुल चित्तसे विधि उल्लङ्घन करके भी मेरी पूजामें निरत रहेंगे, वे स्वर्गसे विच्युत वा क्लान्त होने पर भी मेरे प्रसादसे सूर्यके पास ही विहार कर सकेंगे। तुम निश्चय समझना, मैंने जैसा कहा है, तुम्हारे पुत्र वैसे ही होंगे। वे भूतलमें मग-वंशमें उत्पन्न हो कर सम्पूर्ण वेद विद्याका अध्ययन करके महापुरुष नामसे प्रसिद्ध होंगे।' भास्कर निक्षुभा देवीको इस प्रकार आश्वासन दे कर उसी समय अन्तर्धान हो गये और देवी भी अत्यन्त पुलकित हुई। इस प्रकार भोजकोंकी बादमें उत्पत्ति हुई है। ये आदित्य और नैक्षुभ नामसे प्रसिद्ध हो कर लोकमें पूजित हुए हैं।

भविष्यपुराणमें एक जगह १४० वें अध्यायमें ऐसा भी लिखा है,—नारदने कहा, कृष्ण-नन्दन! मैं तुमको मग-ब्राह्मणोंका चरित सुनाता हूं, सो सुनो। ये मग-ब्राह्मण वेद-विद्यामें पारदर्शी हैं और इनमें अधिकांश क्रियाकाण्डमें रत हैं। ये विपरीत-क्रमसे वेदाध्यन करते थे, इसलिए मग और मगु दोनों नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। भगवान् ब्रह्मा, तपोधन ऋषि और पवित्र-मूर्त्ति सूर्य ये सभी कूर्च धारण करते हैं इसलिए मगगण भी अपने पास दीर्घ कूर्च रखा करते हैं। नियम-स्थित ऋषिगण मौनावस्थामें रहते हैं, इस कारण ये भी मौनी हो कर भोजनादि करते हैं। इस प्रकार शाकद्वीपीय प्रायः सभी ब्राह्मण मुनिवृत्तिका पालन करते हैं। इसलिए सिद्धिके अभिलाषी समस्त मगुओंको चाहिए, कि वे मौन-पूर्वक भोजन करें। मगुगण वचको ही सूर्य और वचकोही कारणरूपमें जान कर प्रतिदिन उन्हींकी अर्चना करते हैं। इनके वचार्चा नामसे प्रसिद्ध होनेका

यही कारण है। ये भोज-कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इस कारण ये भोजक कहलाये। ब्राह्मणोंके जैसे ऋक्, साम, यजु और अथर्व नामसे चार वेद हैं, वैसे इनके भी विद्, विश्वरद, विदाद और आङ्गिरस नामसे चार वेद प्रसिद्ध हैं। इन चारों वेदोंको पूर्वकालमें स्वयं प्रजापतिने मगोंके लिए व्यक्त किया था। मगगण वेदाध्ययन करते हैं, इसलिए उन्हें वेदज्ञ कहा जाता है। सर्व प्राणियोंके लिए प्रीतिकर गेय नामका एक महानाग है। यह महानाग सूर्य-किरणके साथ अपने निर्मोकको छोड़ता है जो अमाहक नामसे प्रसिद्ध है। मग लोग प्रतिदिन अस्त्र-मन्त्र उच्चारणपूर्वक इस अमाहकको वन्दना करते हैं। जैसे पूजाके समय द्विजगण पुष्पमाल्य दान करते हैं, वैसे ही मगगण पूजाके समय अमाहक दान करते हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणोंमें संस्कारादि समस्त कार्योंमें दर्भ की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इनमें भी आवश्यकीय यागयज्ञादिमें पवित्र वर्श्माकी जरूरत पड़ती है। शाकद्वीपके मग बहुधा वर्श्मा द्वारा ही पूजा करते हैं। जो सूर्यकी पूजामें निरत हो कर शौचाचार पूर्वक सर्वदा सूर्यमन्त्रका जप करते हैं, उन पर सूर्यदेव अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं। मगगण प्रतिदिन जिस वेदमन्त्रका पाठ करते हैं, वही उनके यहां सावित्री मन्त्र माना गया है। परन्तु हे यदुश्रेष्ठ! हमारे यहां सावित्री-मन्त्र वैसा नहीं है। हम लोग व्याहृतिपूर्वक सावित्री उच्चारण करते हैं। शाकद्वीपीय ब्राह्मण मौनावलम्बी हो कर अमाहक द्वारा ही स्वर्गगति प्राप्त करते हैं। ये कदापि मृत वा रजस्वला स्त्रीका स्पर्श नहीं करते। जैसे ब्राह्मणगण यागयज्ञादिमें मन्त्र द्वारा संस्कृत सुराको पान करनेसे दूषित नहीं होते, वैसे ही मद्य इनके लिये पानीय हुआ करता है। इस मद्यको विधिपूर्वक मन्त्रसंस्कृत करके पान करनेके कारण ये प्रकृत मद्यपानके दोषी नहीं होते। शाकद्वीपीयगण इसे हविः समझते हैं। जैसे ब्राह्मणोंका अग्निहोत्र प्रसिद्ध है, वैसे ही इनके लिए 'अचषु' नामसे अध्वरहोत्र विहित है। ये सिद्धिकी कामनासे प्रतिदिन त्रिसन्ध्या दिवाकरको पञ्चप्रकार धूप दान करते हैं, इत्यादि।

फिर १३९वें अध्यायमें लिखा है कि शाकद्वीपीय ब्राह्मण सूर्यके तेजसे विश्वकर्मा द्वारा सृष्ट हुए हैं।

इस प्रकार शाकद्वीपी ब्राह्मणोंके विषयमें हम एक ही भविष्यपुराणमें कई प्रकारके प्रमाण पाते हैं। १म तो यह कि सूर्यके स्व-शरीरसे निःसृत और शाकद्वीपाधिपति द्वारा प्रतिष्ठित सूर्यपूजामें नियुक्त आठ व्यक्ति, २य विश्वकर्मा द्वारा सूर्यशरीरसे निर्मित एक श्रेणी, ३य अग्निजातीय, ४र्थ सोमजातीय और ५म भोजक वा आदित्यजातीय। इन पांचों प्रकारके ब्राह्मणोंमें सूर्यशरीरसे उत्पन्न आठ ब्राह्मण ही सर्वश्रेष्ठ हैं और वे ही सम्भवतः अन्यत्र विश्वकर्मा द्वारा निर्मित कहे गये हैं, क्योंकि विश्वकर्माने ही सूर्यकी देह छील कर नाना खण्डोंमें विभक्त कर दी थी। सम्भव है, इसी कारणसे ब्राह्मणगण सूर्यांशसम्भव कहे गये हैं। ये ही शाकद्वीपके आदिब्राह्मण समझे जाते हैं। इसी ब्राह्मणवंशमें सम्भवतः ऋजिश्वा ऋषिकी उत्पत्ति हुई थी। ग्रीक ऐतिहासिक दिओदोरसके विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि पूर्वकालमें शाकद्वीपमें 'अरि-अस्प' नामकी एक श्रेणी वास करती थी। हम इस श्रेणीको 'आर्याश्व' समझते थे। संस्कृत 'ऋजु' धातु और ग्रीक 'अरि' एकार्थबोधक है। ऐसी दशामें ऋजिश्वाके वंशधर हो सम्भवतः ग्रीक ग्रंथकारों द्वारा 'अरिअस्पा' कहलाये।

हमने प्रैयव्रतराज द्वारा सूर्यप्रतिष्ठाका प्रसङ्ग जो पहले उद्धृत किया है, उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि अति प्राचीनकालमें शाकद्वीपमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये तीन ही वर्ण थे, ब्राह्मण नहीं थे। शाकद्वीपके राजाके आवाहनसे सम्भवतः अन्य देशसे प्रथमतः आठ ब्राह्मण आये और वे सूर्यकी सेवामें नियुक्त किये गये तथा उन्होंने ही अपनेको शाकद्वीप-वासियोंकी विशेष भक्तिश्रद्धाके कारण 'सौर' वा सूर्यपुत्र कह कर अपना परिचय दिया। प्राचीन ग्रीक भौगोलिक और ऐतिहासिकोंने भी लिखा है, कि शाकद्वीपवासी वीरोंने नाना देश अधिकार कर पूर्वकालमें सौरमतियों (Sauromatian)-को अरक्षेसके तीर पर प्रतिष्ठित किया था। पूर्वोक्त सौर वा सूर्यपुत्र ही सम्भवतः 'सौरमतीय' नामसे प्रसिद्ध हुए थे।

कालान्तरमें इन्हीं सौरमतियोंका प्रभाव रूससे इजिप्त तक विस्तृत हुआ था। अवस्था और विश्वासके

अनुसार उनमें भी कई एक सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई थी। सम्प्रदायिकताके प्रभावसे भविष्यमें उनमें भी परस्पर संघर्ष हुआ था। सम्भवतः उसीके फलसे अग्निकुल, सोमकुल और सूर्यकुल ये त्रिकुल कल्पित हुए हैं।

भविष्यपुराणसे और भी ज्ञात होता है, कि अग्निकुल, सूर्यकुल और सोमकुल इन तीन कुलोंके होनेसे पहले ऋषि ऋजिश्वा 'मिहिर' गोत्रके थे। ब्राह्मणोंमें उनके आदिपुरुषसे ही 'गोत्र' प्रवर्त्तित हुआ करता है। इसलिये ऋजिश्वा ऋषि मिहिर वा सूर्यवंशीय ही थे, ऐसा मालूम होता है।

पाश्चात्य शब्दशास्त्रविदोंका कहना है, कि वैदिक 'मित्र' और आवस्तिक 'मिथ्र'से ही 'मिहिर' शब्दकी उत्पत्ति हुई है।¶ बड़े आश्चर्यकी बात है, कि महाभारतादि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें 'मिहिर' शब्द सूर्यके नामान्तररूपमें व्यवहृत होने पर भी किसी भी वेदमें 'मिहिर' शब्दका उल्लेख नहीं है।

भोजकोंका वेद और विभिन्न कुलोंकी उत्पत्ति।

वेद सर्वादिम ग्रन्थ है। किसी भी जातिका आदितत्त्व जाननेके लिए पहले उस जातिके वेद वा आदि ग्रन्थका आश्रय लेना होता है। भविष्य पुराणोक्त श्लोकोंके आधार पर मालूम हुआ है, कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके भी चार वेद थे, उनका नाम था विद, विश्वरद, विदाद्व और आङ्गिरस। परन्तु इन चारों वेदोंमेंसे भारतमें केवल आङ्गिरस वा अथर्ववेदका ही सन्धान मिलता है, अन्य वेदोंका चिह्न तक नहीं मिलता। बहुत-से प्रमाण इस बातके मिले हैं, कि शाकद्वीपके ब्राह्मण ही पूर्वतन पारस्य-सम्राटोंका पौरोहित्य करते थे; इस कारण पारस्यदेशमें शाकद्वीपीय वेदोंका होना सम्भव और अनुसन्धेय है।

पारस्यके मग-पुरोहितोंके प्राचीनतम अवस्ता शास्त्रकी आलोचना करके हम उक्त वेदचतुष्टयोंका कुछ कुछ अनुसन्धान पाते हैं। अवस्ता ग्रन्थोंके प्रसिद्ध समालोचक हाग साहब बहुत गवेषणाके बाद इस निर्णय पर पहुंचे हैं—

"अवस्ता शब्दका मूल आविस्ताक है। वि = पह्लवी भाषामें आप। आवस्तिक 'विस्त्' = विद् धातुसे उत्पन्न। वेद कहनेसे जिसका बोध होता है, अविस्त (अवस्ता) कहनेसे भी उसीका बोध होता है।*

हिन्दू-शास्त्रानुसार सर्वादि कालमें एकमात्र वेद ही था, वही तीन मतान्तरमें चार भागोंमें विभक्त हुआ है। अधिकतः यही सम्भव है, कि शाकद्वीपीय सौर और अग्नि-पूजकोंका ऐसा ही कोई वेद था, भाषाविपर्ययसे वही 'अविस्त' नामसे प्रसिद्ध हुआ। भारतीय वेदकी अनेक शाखायें लुप्त होने पर भी अब भी चार वेद पाये जाते हैं, किन्तु मगोंका वह सुप्राचीन वेद वा 'अविस्त' ग्रन्थका अधिकांश ही लुप्त हो गया है।† अब षोड़शांशका एकांश भी है या नहीं, इसमें सन्देह है। जो है, उसमें हम शाकद्वीपीय चतुर्वेदका इस प्रकार आभास पाते हैं—

१ विद—यही सम्भवतः अविस्त शास्त्रका आदि नाम है। किसीका मत है, कि यह आवस्तिक यश्न है।

२ विश्वरद—अभी विस्परद (Visparad) नामसे प्रसिद्ध है।

३ विदाद्व—मूल नाम 'वक्देव-दाद्' है और अब 'वंदीदाद' नामसे प्रसिद्ध है।

४ आङ्गिरस—भारतमें अथर्वाङ्गिरस वा अथर्ववेदके नामसे ही विख्यात है। परन्तु यह नाम अब पारसिक मगोंके प्राचीनतम ग्रन्थमें नहीं मिलता। अवस्ताके यश्न-ग्रन्थमें (४३।१५) 'अंग्र' वा अङ्गिराके प्रति भक्ति-प्रदर्शन और उनकी स्तुतिका प्रसङ्ग है। 'आथर्वण' शब्द भी अवस्तामें 'आथ्रव' रूपमें कहा गया है। आवस्तिक आथ्रव शब्दका अर्थ है अग्नि-पुरोहित। ऋग्वेदके मतसे अथर्वाने ही सर्वप्रथम अग्नि उत्पन्न की थी। मुण्डक उपनिषद्के मतसे उन्हींने पहले ब्रह्मविद्या प्राप्त कर पीछे अङ्गिराको सिखाई थी। अथर्वा और अङ्गिराने उक्त वेद प्रकाश किया था, इसलिए उसका नाम अथर्वाङ्गिरस वा ब्रह्मवेद है। यह वेद आर्यजातिका एक प्राचीन ग्रन्थ होने पर भी शतपथ ब्राह्मण (४।६।७।१), छान्दोग्योपनिषद् (४।१।७।१) और मनुसंहिता

¶ Haug's Parsis, p, 202, 273

* Haug's Essays on the Parsis, p, 121,

† अथर्ववेदमें विद शब्दका उल्लेख है—"सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा।" (अथर्ववेद १९।२२।१८)

(१।२३)-में केवल ऋक्, यजुः और साम इन तीन ही वेदोंका प्राधान्य स्वीकार किया गया है ; अथर्ववेद नहीं लिया गया। इसलिए बहुतोंकी धारणा है, कि अथर्ववेद म्लेच्छोंका वेद है, अतः पूर्व कालमें ब्राह्मणगण इसका आदर नहीं करते थे। वास्तवमें अथर्ववेदको म्लेच्छोंका नहीं कहा जा सकता। पाणिनि और महाभारतादि ग्रन्थोंमें अथर्ववेदका आर्यवेदत्व स्थिर हुआ है ; परन्तु शान्तिक, पौष्टिक और अभिचारादि कर्म इसमें विशेषतासे प्रतिपादित हुए हैं, इसलिए यह वेद यज्ञमें अनुपयुक्त माना गया है। इसके सिवा इसमें व्रात्यकी प्रशंसा देखी जाती है। ब्राह्मणादि वर्णत्रय यथा-समय उपनीत न होने पर व्रात्य समझे जाते हैं। मन्वादि संहितामें व्रात्य निन्दित कहे गये हैं, किन्तु अथर्ववेदका १५वां काण्ड विद्वान् व्रात्योंकी प्रशंसासे भर पड़ा है। इत्यादि कारणोंसे अथर्ववेदको कुछ विशेषता रक्षित हुई है। इधर आवस्तिक यष्त समूह और वन्दीदादके बहुत अंशोंके साथ अथर्ववेदका यथेष्ट सौसादृश्य पाया जाता है। भविष्यपुराणमें भी अथर्वाङ्गिरसको सौरवेद कहा गया है।

ऊपर भविष्यपुराणकी उक्ति उद्धृत करके दिखाया गया है, कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण विपर्ययक्रमसे वेदोच्चारण करते थे। इस क्रमविपर्ययसे ही सम्भवतः शाकद्वीपीय वेद इस देशके वेदोंसे भिन्न समझा गया था। हम यास्कके निरुक्तमें पाते हैं कि, पूर्व कालमें कम्बोजमें (वर्त्तमान फारसके निकटवर्ती) वैदिक संस्कृत भाषा प्रचलित थी। बहुत सम्भव है, कि फारसके उत्तरांशमें अक्सास नदीके किनारे (शाकद्वीपमें) आर्योंमें बहुत पूर्वकालमें किसी समय सुप्राचीन वैदिक भाषा ही प्रचलित थी और उसी भाषा में शाकद्वीपीय वेद प्रचारित हुए थे।

शाकद्वीपीय अग्नि-पूजकोंके हजारों शास्त्र विलुप्त हुए हैं, माना, पर अब तो आदिम आवस्तिक भाषामें उसका जो अति सामान्य निदर्शन मिलता है, उसीसे शाकद्वीपीय वेदका कुछ कुछ आभास पाया गया है। परन्तु उन आदि ग्रन्थोंने अपना प्राचीनत्व बहुत-कुछ खो दिया है। अब जो अवस्ताशास्त्र मिलता है, वह मजदधर्म वा जरथुस्त्र-मतका परिपोषकग्रन्थ है। भविष्यपुराणमें उसका स्थान है। पाश्चात्य पुरातत्त्वविदोंकी तरह आलोचना करनेसे निःसन्देह कहा जा सकता है कि, मजद-धर्मके अभ्युदयसे बहुत पहले मित्र वा सौरधर्म प्रचलित था। उस सौरधर्मसे ही मजद धर्मकी उत्पत्ति है। मजद-धर्मके माहात्म्य प्रचारार्थ जो मन्त्र वा स्तव रचे गये थे, उनमें यश्नकी गाथा ही सबसे प्राचीन है। इस गाथामें उस प्राचीनतम मित्रधर्मका आभास पाया जाता है*। परन्तु गाथाकार मित्रके स्थान पर मजद्वा (वरुण)-को विठानेमें अग्रसर थे। हमने जगतके आदिग्रन्थ ऋक्-संहितामें मित्रावरुण अर्थात् सूर्य और वरुण देवताकी उपासना देखी है। शाकद्वीपीयगण केवल मित्रकी उपासनामें अनुरक्त हुए थे और अन्यान्य देवताओंको मित्रके अधीन वा उनसे उत्पन्न समझते थे। परन्तु जरथुस्त्र मित्रके स्थानमें उन्होंने अहुरमज्द् (असुरमेधा) वा वरुणको विठाया था। उनके मतसे असुरमेधा ही सर्व शक्तिमान और सर्वदेवासुरेश्वर है। उन्हींसे मङ्गलमय जगत्की सृष्टि हुई है। वे सत्स्वरूप हैं और जो कुछ भी असत् है, वह सब अंग्रमैन्युकी सृष्टि है। इस द्वैतवाद-के लिए उन्होंने जो मत प्रचार किया है, उसे पाश्चात्य विद्वानोंने एकेश्वरवाद माना है।

जरथुस्त्रने अपने मत प्रचारके लिए अपने पूर्व पुरुषोंके ग्राह्य वेदको ग्रहण किया था; परन्तु उसमें अपने मतका प्रचार कर पूर्वमतको दवा दिया है। यदि अविस्ताका अधिकांश विलुप्त न होता, तो प्राचीन शाकद्वीपीय सौरधर्मका कुछ परिचय मिल जाता। अलेकसन्दर द्वारा पारसिकोंके समस्त प्राचीन शास्त्र भस्ममें

---

* अवस्ता शास्त्रके गाथा-अंशके अनुवादक मि० मिल साहबने लिखा है—' as the mithra-worship undoubtedly existed previously to the Gathik period and fall into neglect at the Gathic period, it might be said that the greatly later inscriptions represent Mazda-worship as it existed among the ancestors of Zarathustrians in a pre-Gathic ageeven Vedicage." *Max Muller's Sacrod Books of the East, Vol XXX1,* p: XXX,

परिणत हो जानेसे, पारसिक पुरोहितोंका श्रुतिकी सहायतासे उसका बहुत थोड़ा हो उद्धार हुआ है। जिन्होंने अवस्ताशास्त्रक कुछ अंशका उद्धार किया है, वे सभी मजद् वा जरथुस्त्रमतावलम्बी हैं। ऐसी दशामें उन्होंने अपने अभिप्रेत जरथुस्त्रोय मत और उसके परिपोषक प्राचीन मन्त्रोंके संग्रह करनेकी कोशिश की होगी, इसमें सन्देह ही क्या ? अतएव यह निश्चय है, कि अवस्तामें शाकद्वीपीय वैद्यके नामके सिवा तथा गाथासे सौरोंके थोड़े बहुत आचारव्यवहारके सिवा और कुछ नहीं मिल सकता।

अब देखना चाहिए, कि शाकद्वीपियोंके ध्वंसावशिष्ट वेद अर्थात् अवस्ता और इस देशके वेदपुराणादिसे आदि आर्यसमाजका कैसा परिचय मिलता है।

भारतीय वेद और अवस्ताकी गाथाकी* आलोचना करनेसे यह बात हृदयङ्गम होती है; कि अति प्राचीनकालमें वैदिक ऋषि वा आर्यगण अति शीतप्रधान देशमें वास करते थे। कवि वा सोम-पुरोहितगण उनके अग्रणी थे, वृत्रहा (इन्द्र), मित्र (सूर्य), वरुण, अग्नि आदि उनके उपास्य थे। उस सुप्राचीन कविवंशमें असुर-गुरु काव्य उशनाका (शुक्राचार्यका) आविर्भाव हुआ था। उस आदिवासस्थानका नाम ऋग्वेदमें 'प्रत्नौकस्' अवस्तामें 'ऐर्जनवापज़ा' अर्थात् आर्यावास और भविष्यपुराणमें 'आर्यदेश' कहा गया है। बहुत खोजके बाद निश्चय किया गया है कि, वेदोक्त 'सरपस्' वा आर्यभूमि प्राचीन ईरानके अन्तर्गत वर्त्तमान सरीकुल नामक ह्रदके किनारेकी पुण्यभूमि थी। मध्य-एशियाके सर्वोच्च भूभागमें पामीर (वैदिक, आवस्तिक और पौराणिक ग्रन्थोक्त)-में यह स्थान अवस्थित है। अवस्तामें 'हरोवेरेजइति' अर्थात् सरस्वती नामसे भी उक्त स्थानका उल्लेख है। सरसप् वा सरीकुल ह्रद ही पुराणोंमें विन्दूसर नामसे वर्णित हुआ है और इस विन्दुसरसे ही सरस्वती, गङ्गा, इक्षु, वक्षु आदिकी उत्पत्ति है। सरस्वती, गङ्गा आदिके उत्पत्ति-स्थान विन्दुसरके निकटवर्त्ती चिरतुषारावृतमें आर्योंका आदिवास था। देव और असुर-पूजकगण पहले वहां विना किसी प्रकार विवादके वास करते थे। तब भी देवासुरके आसन भिन्न भिन्न निर्दिष्ट नहीं हुए थे। यहां तक, कि ऋग्वेदमें भी असुर उपाधिसे भूषित इन्द्र (ऋक् १।५४।३), वरुण (ऋक् १।२४।१४), अग्नि (ऋक् ४।२।५, ७।२।६); सविता (ऋक् १।३५।७), रुद्र वा शिव (५।४२।११) आदि देवोंके स्तोत्र पाये जाते हैं। तब भी वैदिक आर्योंके हृदयमें 'असुर' हेय नहीं समझे जाते थे, देव और असुर पूजक लोग ही एक समझे जाते थे।

अनेक पुराणोंमें यह बात लिखी है कि—उक्त विन्दुसरसे ही इक्षु वा वंक्षुनदी निकल कर उत्तरसागरमें जा मिली हैं। महाभारतमें यह नदी शाकद्वीपमें प्रवाहित चक्षुःवर्द्धिनिका नामसे प्रसिद्ध हैं और अभी Oxus नामसे सर्वत्र परिचित है। अधिकतः यही सम्भव है, कि उक्त चक्षुनदीमें हो कर वैदिक आर्योंकी एक शाखा शाकद्वीपमें गई थी और वहांके राजाओंके पौरोहित्य-कार्यमें नियुक्त हो कर उन्होंने महासम्मान प्राप्त किया था। ये सूर्यभक्तगण 'श्रोष' वा देवदूत नामसे प्रसिद्ध हुए थे। अवस्ता और भविष्यपुराण (७६।१८)में श्रोषोंकी प्रशंसा है*। उस समय भी मग-पुरोहित जरथुस्त्र (भविष्यपुराणीय जरशस्त्र) नामक ऋषिदौहित्रका जन्म नहीं हुआ था।

इधर पवित्र आर्यावासमें अग्निपूजक मघवाके साथ इन्द्रपूजक आर्योंके संघर्षका सूत्रपात हो रहा था। ऋग्वेदसे मालूम होता है, कि इन्द्रने (इन्द्रपूजक आर्य) कवासख नामक मघवाको स्थानच्युत किया था। (ऋक् ५।३४।३) और अग्निपूजक मगोंके आदि यज्ञग्रंथमें लिखा है, कि 'जरथुस्त्रने पूर्वकालमें मगोंको स्वर्गराज्यमें

---

* प्राचीन गाथा पर शाकद्वीपियोंका यथेष्ट अनुराग था, भविष्यपुराणमें उसका प्रमाण मिलता है—

"यस्मिन् गाथां प्रगायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
सत्राजिते महाबाहौ कृष्णधात्रीं समाश्रिते ॥
यावत् सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति।
सत्राजितन्तु तत् सर्वं क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥"
(भविष्यपु० ११९।९-१०)

* भविष्यपुराणमें कार्त्तिकेय 'श्रोष' वा 'स्रोष' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। (भविष्यपु० १४२।२४)

प्रतिष्ठित किया था।' (यश्न ५१।१५) ये जरथुस्त्र अवस्ताशास्त्रके प्रचारक स्पितम जरथुस्त्र न थे, उनके पूर्वपुरुष थे। अवस्तामें लिखा है, कि 'जरथुस्त्रने अहुर मजदावसे* भेंट की थी और उन्होंने ही अग्निपूजाका प्रवर्त्तन किया था। सम्भवतः ये ही वेदोक्त मघवा और आवस्तिक मगव वा मगुओंके आचार्य्य वा नेता हुए थे। वैदिक आर्योंके साथ विरोध हो जानेके कारण वे जन्मस्थानको छोड़ कर चले गये थे और वैदिक ऋषि वा उनके वंशधरगण शीतप्रधान उत्तर भारतमें आ कर उपस्थित हुए थे। दोनों दल एक पिताकी सन्तान और एक स्थानमें उत्पन्न होने पर भी स्थान और मतभेदके साथ परस्परमें दारुण विद्वेषाग्नि जल उठी थी। इसीलिये हम परवर्त्तीकालमें वेदपुराणादिमें असुर प्रभावसे देवके पराजयके प्रसङ्गमें असुरनिन्दा और उससे परवर्त्ती अवस्ताशास्त्रमें यथेष्ट देवनिन्दा देखते हैं। यहां तक, कि पुराणादिके 'असुर' शब्दसे जैसा एक देवद्वेषी जघन्य भावका बोध होता है, वैसे ही अवस्तामें भी 'दएव' या 'देव' शब्दसे भूत वा उपदेवतारूप निकृष्टयोनित्वका भाव झलकता है।

देवोपासक और असुरोपासकके संग्रामको ही वेदके ब्राह्मण और पुराणादि ग्रंथोंमें देवासुरका युद्ध कहा गया है†। आर्यजाति असुरको जब देवेश्वर जान कर पूजा करती थी, उसी समय यजुर्वेदीय 'गायत्री आसुरी', 'उष्णिक् आसुरी', 'पंक्ति आसुरी' आदि छन्दोंकी सृष्टि हुई थी। इधर अवस्ताके यश्नमें भी वे छन्द पाये गए हैं‡। इससे भी बहुत-तेरे अनुमान करते हैं, कि देवासुरपूजकोंके एकत्र रहते समय वेदका अधिकांश भाग प्रकाशित हुआ था और उस प्राचीन कालमें अवस्ताकी भी कोई कोई प्राचीन गाथा रची जा चुकी थी। कोई कोई आर्य्य ऋषि उस समय शाकद्वीपमें पहुंच चुके थे, इसलिए वे इस विद्वेषाग्निको साथ न ले जा सके थे। यही कारण है, कि शाकद्वीपियोंके विवरणमें देव-विद्वेष देखनेमें नहीं आता। वे जिस धर्म और मतको साथ ले गये थे, वह अवस्ताशास्त्रकी गाथाओंमें पाया जाता है। उन गाथाओंके रचयितागण ही सम्भवतः कवि वा श्रोष नामसे स्तुत हुए हैं। जरथुस्त्रने जिस मतका प्रचार किया था उसमें सूर्यदेवका प्राधान्य स्वीकृत नहीं हुआ; अवस्तामें मित्र (सूर्य) एक मध्यम देव माने गये हैं, परन्तु ऋग्वेदकी भांति अवस्ताकी आदि गाथामें मिथ्र (मित्र)-का श्रेष्ठत्व लक्षित होता है, जो सौर कवियोंकी उक्ति है। मिहिरयष्तमें उस पूर्व श्रुतिका चिह्नमात्र रक्षित हुआ है।

भविष्यपुराणमें अग्निकुल, सोमकुल और सूर्य्यकुल इन तीन कुलोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें जो उपाख्यान वर्णित है, वह कुछ कुछ रूपक और साथ ही ऐतिहासिक मालूम पड़ता है। शाकद्वीपीय ऋषि मिहिरगोत्र ऋषिश्वाका अग्निपूजामें अनुराग मालूम देता है, इसीलिए हावनी वा आहवनीयाग्नि उनकी कन्यारूपमें वर्णित है। यहां तक कि उन्होंने सूर्य्यदेवकी उपभोग्य सामग्री अग्निदेवको अर्पण करनेमें भी इतस्ततः नहीं किया, जब कि उनके वंशीयोंने इसका अनुमोदन नहीं किया, बल्कि उनके प्रदर्शित मार्गमें सौरोंने जारजत्वका आरोप तक कर डाला है। सम्भवतः ऋषि ऋजिश्वाने जो अग्निपूजाका बीज बोया है, उसीके फलसे जरथुस्त्र वा जरशस्त्रकी उत्पत्ति हुई है। परन्तु शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंने मूल पर दोष न दे कर फल पर दोषारोपण किया। तात्पर्य यह कि, अग्निपूजा उनके पूर्वपुरुषोंसे ही प्रवर्त्तित होने पर भी वह उनका पुरुषार्थ नहीं है, पुरुषार्थ सिद्धिका उपाय सूर्यपूजा ही है।

हम ऋग्वेदमें देखते हैं, कि अग्निपूजक लोग 'मघवा' नामसे प्रसिद्ध थे। शाकद्वीपमें यह नाम 'मगव' 'मगु' और 'मग' इस प्रकार कई तरहसे प्रसिद्ध था, प्राचीन ग्रन्थ अवस्ता और भविष्यपुराणसे यह बात स्पष्ट प्रमाणित हो जाती है। जो आठ श्रेष्ठ व्यक्ति शाकद्वीपमें जा कर सूर्यपूजामें नियुक्त हुए थे, वे भी पहले अग्निपूजक

---

* अहुरमज्दाव संस्कृत भाषामें 'असुरमेधा' है। शाकद्वीपाधिपति भी पुराणोंमें 'मेधातिथि' नामसे वर्णित हुए हैं। इन मेधातिथिके साथ पूर्वोक्त मेधाका क्या कोई रूपक सम्बन्ध है? भविष्यपुराणमें (७५।१३) नारद भी 'मेधाःपुत्र'-के नामसे कहे गये हैं।

† ऐतरेय-ब्राह्मणमें (१।२३) यज्ञके प्रसंगमें देवासुरकी युद्धकथा विस्तृतरूपसे वर्णित है।

‡ Hang's Essays on Parsis p. 271

'मग' नामसे ही प्रसिद्ध थे। सौर वा सूर्यपूजाके अनुरागी होने पर भी उनका आदि नाम कोई भी न छोड़ सके थे। परन्तु जब जरथुस्त्रने अग्निपूजाके प्रचारके लिए सूर्यदेवका श्रेष्ठत्व अस्वीकार किया, तब उसी समय सौर मगोंके हृदयमें दारुण विद्वेषाग्नि जल उठी। ईरानके सभी अग्निपूजकगण शाकद्वीप-कुलोद्भव जरथुस्त्रके अनुयायी हो गये। परंतु तूरानके सौर ब्राह्मणगण अपने इष्टदेवकी अवमानना न सह सके। जरशस्त्रके द्वारा शाकद्वीपीय कीर्त्ति बहुत देशोंमें घोषित होने पर भी वे स्वयं शाकद्वीपके सौरगणोंके समक्ष पातित्य दोषसे दूषित समझे गये। एक वंश होने पर भी वे जरशस्त्रके वंशीय वा उनके अनुयायियों अग्निपुरोहितोंको 'अग्निजात्य' अर्थात् 'अग्निकुल कहते थे और अपनेको 'आदित्यजात्य'* या सूर्यवंशीय। सोमयाजी वैदिक आर्यगण, जिन्होंने भारतवर्षमें आधिपत्य विस्तार किया था और उनके वंशीय जिन्होंने ईरान और तूरानमें प्रधानतः सोमयागमें समय विताया था, सौरोंके द्वारा सोमजात्य सोमकुलके कहे जाते थे। भविष्यपुराणमें उन तीनों कुलोंका उल्लेख पाते हैं।

अग्निके सर्वप्रधान आचार्य वा पुरोहित ही जरथुस्त्र नामसे प्रसिद्ध हुए थे। बहुतसे राजा और सम्पत्तिशाली व्यक्तियोंने उन महापुरोहितका शिष्यत्व ग्रहण किया था और तो क्या, किसी किसी जगह जरथुस्त्रके धर्मके साथ राजनैतिक शासन भी प्रवर्त्तित हुआ था। इस समय शाकद्वीपीय सौरगण क्रमशः हतमान और हीन बल हुए जा रहे थे। अन्तमें स्पितम जरथुस्त्रके अभ्युदयसे और पुरातन अग्निपूजाके साथ मजद्-धर्म वा एकेश्वरवादका प्रचार होनेसे ईरान और तूराणमें युगान्तर उपस्थित हुआ था। छोटेसे ले कर बड़े तक सब इस नवधर्मके अनुगामी हुए थे और थोड़े ही समयके अन्दर एकेश्वरवादमूलक अग्निपूजन ईरानसाम्राज्यका राजकीय धर्म घोषित हुआ। इस समय मित्रधर्म लुप्त प्राय हो गया था; जिन जिन स्थानोंमें जरथुस्त्रका प्रभाव था, उन उन स्थानोंसे सौर ब्राह्मणगण भगा दिये गए थे। सम्भवतः इसी समय कुछ भक्त सौर ब्राह्मणोंने भारतमें आ कर आश्रय लिया था और उन्हींकी कोशिशसे सौरधर्म भारतमें प्रचलित हुआ था।

लिदीयवासी प्रसिद्ध और प्राचीन ग्रीक-पण्डित जानथोसने ४७० खृष्ट-पूर्वमें लिखा है कि, जरथुस्त्र ट्रय-युद्धसे लगभग ६०० वर्ष पहले आविर्भूत हुए थे। आरिष्टटल् और यूडोक्ससने प्लेटोके ६००० वर्ष पहले जरथुस्त्रका समय निरूपण किया है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्लिनिका मत है, कि ट्रय-युद्धके ५०० वर्ष पहले जरथुस्त्र आविर्भूत हुए थे। इधर वाविलोनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक बेरोसस् लिखते हैं कि, जरथुस्त्र किसी समय वाविलोनके अधीश्वर हुए थे और उनके वंशने वहां २२०० खृष्ट-पूर्वसे २००० खृष्ट पूर्व तक राज्य किया था।

हम पहले लिख चुके हैं कि, जरथुस्त्र एक ही नहीं हुए हैं, बल्कि कई हुए हैं। सम्भवतः भिन्न भिन्न जरथुस्त्रोंके आविर्भूत होनेसे अग्निपूजक मगोंमें भिन्न भिन्न काल अवधारित हुए थे। इसीलिए शायद एकका समय स्थिर करनेमें भिन्न भिन्न यवन पण्डितोंने भिन्न भिन्न मत प्रकट किये हैं। उनमें प्रसिद्ध ऐतिहासिक बेरोसस्का मत ठीक समझा गया। उनके मतानुसार प्रसिद्ध मगाधिपति जरथुस्त्र अबसे करीब ४१३२ वर्ष पहलेके आदमी मालूम होते हैं। आदि जरथुस्त्र वा जरशस्त्र उनसे भी पहलेके हैं।

स्पितम जरथुस्त्रके समयमें मगोंमें जो सदाचार, रीतिनीति, विश्वास और धर्ममत प्रचलित थे, वे सब एकबारगी त्याग न सके थे। उस प्राचीन भित्ति पर उन्होंने अपना नव विधान स्थापित किया था, इसीलिए हम शाकद्वीपीय मगोंके आचार-व्यवहार और पूजापद्धतिकी बहुतसी बातें जरथुस्त्र द्वारा प्रचारित अवस्तामें भी पाते हैं। उन्होंने जिस भाषामें अवस्ता शास्त्रका प्रचार किया था, उसका अब निदर्शन भी नहीं मिलता। उस भाषाके साथ हमारी वैदिक भाषाका सादृश्य था। इस कारण पाश्चात्य पण्डितोंमेंसे बहुतोंका कहना है, कि अवस्ताकी आदिभाषा वेदकी सहायताके विना नहीं समझी जा सकती। और अवस्ता कहनेसे जिन्दभाषाके जिस भाष्यका बोध होता है, वह भी बिना संस्कृत जाने सहजमें नहीं समझमें

* ये ही भोजक नामसे प्रसिद्ध थे।

आता*। इस मामूली तौर पर निश्चय किया जा सकता है कि, मध्य एशिया वा पञ्चनदवासी प्राचीनतम आर्यऋषियोंने जिस भाषामें 'वेद' प्रकाश किया था, उसी भाषामें शाकद्वीपोय भी श्रुतिवद्ध हुए थे और उसीके सारसंग्रहका छिन्ननिदर्शन अवस्ताके प्राचीन अंशमें पाया जाता है।

अवस्ताशास्त्र आलोचना करके निश्चय किया गया है, कि अवस्ताकी भाषा किसी समय भी फारस या ईरानकी भाषा नहीं समझी गई थी और न इसका ही कुछ संधान मिलता है, कि वह किसी दिन फारसमें प्रचलित थी या नहीं। फारसमें जब अवस्ता शास्त्र प्रचलित हुआ तब साधारण लोग पह्लवी भाषामें अवस्ताका अनुवाद पढ़ते थे। इसीलिए अवस्ताके सभी आदिग्रन्थ पह्लवी अक्षरोंमें लिखे पाये जाते हैं।

अवस्ताका भाष्य ज़िन्द जिस भाषामें रचा गया है, उसका कुछ निदर्शन उत्तर मद्र (Media) और कास्पीयसागरके तीर पर मिलता है। इस पर यह कहा जा सकता है, कि भारतमें जैसे किसी समय संस्कृत कथित भाषारूपमें प्रचलित थी, उसी प्रकार शाकद्वीपमें भी किसीसमय 'ज़िन्द' भाषा बोली जाती थी। यहांकी तरह उनके भी वेद सुप्राचीन वैदिक भाषामें ही ग्रथित थे, क्रमविपर्यय और उच्चारणभेदसे कालांतरमें भारतीय वेदोंसे जो उसका पार्थक्य हो गया है, उसका कुछ निदर्शन हम अवस्तामें पाते हैं*।

किसी किसी पुराविद्का कहना है कि, मगाचार्य जरथुस्त्रने मिदीय वा उत्तर-मद्रमें जन्मग्रहण किया था और एकेश्वरवादका प्रवर्त्तन भी। इस उत्तरमद्रमें बहुत पूर्वकालसे ही आर्यसंस्रव संघटित हुए थे; ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मण (८।१४)में इसका प्रमाण मिलता है। इस ऐतरेयब्राह्मणसे ही मालूम होता है कि, वहां पर वैदिक यज्ञादि अनुष्ठित होते थे†।

उत्तर-मद्र शाकद्वीपके अन्तर्गत था, पारस्यके अन्तर्गत नहीं। उत्तरमद्रके शाकद्वीपीय ब्राह्मण-वंशमें ही जरथुस्त्रका जन्म हुआ था। वेदव्यासने जिस प्रकार नाना वेद-मन्त्रोंको संग्रह कर उन्हें भिन्न भिन्न नामोंसे प्रचारित किया था, शाकद्वीपमें जरथुस्त्रने भी उसी प्रकार पूर्वतन मन्त्रोंका एकत्र संग्रह कर आवश्यकतानुसार अपना सत् और असत्-रूप द्वैतवाद भी उसके साथ चला दिया था। जैसे यहां एक ही वेदको नाना शाखाएं हो गई थीं, उसी प्रकार शाकद्वीपमें भी पूर्वमें श्रोष वा श्वसदों तथा जरथुस्त्रके प्रभावसे बहुत-सी शाखाएं फैल गई थीं, इसमें सन्देह नहीं। अवस्ता शास्त्रको अलोचना करके अध्यापक डर्मे-एं टने लिखा है,—

'That the Avesta contains two series of documents, the one from the Magi of Ragha, and the other from the *Magi* of Artopatene," Zend-Avesta, intro, p. XXII.) कुछ भी हो, पहले सर्वसाधारणका विश्वास था कि अवस्ता पारसिक मगोंका आदि शास्त्र है। अब वह सन्देह दूर हो गया†।

भारतमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका आगमन।

अब यह देखना है, कि किस कारण और किस समयमें शाकद्वीपीय ब्राह्मण भारतमें आये? इस विषयको ले कर भविष्यपुराणमें ऐसा उपाख्यान मिलता है,—

---

* The Zend *Avasta* translated by G. Darmesteter (in the Sacred Books of the East, vol. vi, p. xxvi.

† 'तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदाः उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्याय तेऽभिषिच्यन्ते। विराडित्येतान् अभिषिक्तान् आचक्षते।" (ऐतरेयब्रा० ८।१४) हिमवान्के उस पार उत्तर दिशामें उत्तरकुरु और उत्तरमद्र नामके दो देश हैं, वहांके आदमी वैराज्यमें अभिषेक करते हैं। इस प्रकारसे जो अभिषिक्त होते हैं, उन्हें विराड् कहते हैं।

† "We are now able to understand how it was that the sacred books of Persia was written in a non-Persian dialect, it had been written in the language of its composers, the Magi, who were not *P*ersains. Between the priests and the people there was not only a difference of calling, but also a difference of race, as the sacerdotal caste came from a non-Persian province" (Sacred *Books* of the East. Vol, iv, p, xvi.)

'द्वादश आदित्योंमें एकमत विष्णु हैं। इन विष्णुके औरससे जाम्बवतीके गर्भसे अनुपम रूपवान् साम्बने जन्म-ग्रहण किया। साम्ब युवावस्थामें इतने रूपगर्वित हो गये, कि फिर वे किसी की तरफ देखते भी न थे। एक दिन दुर्वासा ऋषि द्वारकामें घूमने आये। साम्बने उनकी रुक्ष, शुष्क और कृशमूर्त्तिका देख कर मुंह सिकोड़ा था, जिससे दुर्वासाने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर 'तेरे कोढ़ होगा' ऐसा अभिसम्पात दिया और चले गये।

कुछ दिन बाद नारद द्वारकापुर पहुंचे। किसी बातचीतके प्रसङ्गमें उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा कि, स्त्रियोंका विश्वास नहीं करना चाहिए और तो क्या, आपकी महिषियां भी रूपवान् पर-पुरुषको देख कर लोभमें पड़ जाती हैं। श्रीकृष्णने नारदकी बात पर विश्वास नहीं किया, इसलिए नारद फिर एक दिन आये। इस समय कृष्णकी महिषियां मद्यके नशेमें चूर हो कर रैवतशेखरमें जलक्रीड़ा कर रही थीं। उसी समय नारद साम्बको ले कर वहां पहुंचे। मद्यपानसे रमणियां आपेसे बाहर हो रही थीं। रुक्मिणी, सत्यभामा और जाम्बवतीके सिवा और सभी रमणियां चञ्चल हो उठीं, पद्मपत्रमें उनका रेतःस्खलित हो गया। नारदने श्रीकृष्णको दिखा दिया। तब द्वारकानाथने उन रमणियोंको सम्बोधन करके कहा, 'जब पुत्र स्थानीयका मुंह देख कर तुम लोभको वशमें नहीं रख सकती, तो इस पापसे तुम सब दस्युयोंके हाथ पड़ेंगी और साम्बसे भी कहा, कि तुम्हारे जिस रूपको देख कर तुम्हारी माताओंका जो चित्तचाञ्चल्य हुआ है, तुम्हारा वह रूप कुष्ठरोगसे पीड़ित होगा।

साम्बको कुष्ठरोगसे पीड़ित होना पड़ा, ऋषि-वाक्य भी पूरा हो गया। साम्ब बड़े कष्टमें पड़े और आखिर उन्होंने नारदकी शरण ली। बड़े करुण-स्वरसे नारदसे बोले—'हे मेधाके पुत्र! मुझ पर प्रसन्न होवें, मेरे आरोग्य होनेका उपाय बतलाइये।' इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पुषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण और मित्र ये द्वादश आदित्य हैं।

नारदके उपदेशसे साम्ब इन बारह आदित्योंमेंसे मित्रकी तपस्यामें निरत हुए। उससे मित्रदेव प्रसन्न हुए। मित्रके अनुग्रहसे साम्बका रोग दूर हो गया। जहां साम्बने मित्रकी उपासना की थी, वह स्थान मित्रवनके नामसे प्रसिद्ध हुआ था। साम्बने वहां मित्रदेवकी साङ्गोपाङ्ग मूर्त्ति बनाई थी। जब मित्र नामक सूर्यमूर्त्ति बन चुकी, तब साम्ब बड़ी समस्यामें पड़े कि किससे तो इनकी प्रतिष्ठा करावें और किससे पौरोहित्य? नारदने कहा—"लोभी देवल ब्राह्मणोंसे सूर्यको पूजा नहीं हो सकती। देवस्व ग्रहण करके पीछे कहीं पतित न हो जाय, इस डरसे सद्ब्राह्मण भी इसो कामके लिए तयार न होंगे। तुम अपने कुल पुरोहितसे उपयुक्त ब्राह्मण ठीक कर लो।' साम्बने कुल-पुरोहित गौरमुखके पास जा कर यह बात कही। गौरमुखने कहा, "सूर्य-पूजा और सूर्योद्देशसे दान किया हुआ द्रव्य जिन्हें लेनेका अधिकार हो, ऐसे ब्राह्मण यहां नहीं हैं। शाकद्वीपमें निक्षुभाके गर्भजात सूर्यपुत्रगण हैं, वे ही सूर्यपूजाके अधिकारी हैं परन्तु कैसे उन्हें ला सकते हो, यह मैं नहीं कह सकता। सूर्यदेव ही कह सकते हैं।' तब साम्बने सूर्यका आश्रय लिया। सूर्यदेवने साम्बको दर्शन दे कर कहा, "जम्बु द्वीपके बाद शाकद्वीप है, उस शाकद्वीपमें मेरे अंशसे उत्पन्न मग, मसग, मानस और मन्दग ये चार जातियां वास करती हैं। मेरे अंशको ले कर विश्वकर्माने उन्हें बनाया है। उनमें मग नामक ब्राह्मण ही हमारी पूजाके अधिकारी हैं; तुम उन मगोंको मेरी पूजाके लिए शीघ्र ही शाकद्वीपसे यहां ले आओ। तुम मेरी बात मानो, कुछ भी इतस्ततः मत करो। शीघ्र ही गरुड़ पर चढ़ कर उन्हें लानेके लिए शाकद्वीपकी तरफ चल ही दो।' भगवान् दिवाकरके कहनेके साथ ही जाम्बवतीनन्दन साम्ब उनकी आज्ञा सिरोधार्य कर तुरत ही द्वारका पहुंचे। वहां अपने पिता श्रीकृष्णसे भास्करके दर्शन लाभादिकी समस्त घटनाका वर्णन करके पितृ-प्रदत्त गरुड़ पर सवार हो शाकद्वीपकी तरफ चल दिये। वे गरुड़की सहायतासे बहुत ही जल्द शाकद्वीप पहुंचे। वहां जा कर देखा, कि बहुसंख्यक तेजस्वी मगब्राह्मणगण धूप दीपादि विविध उपचारोंसे सर्वदा प्रखरकर प्रभाकरकी पूजामें निरत हैं। जाम्बवतीतनय उन सूर्य-सेवक ब्राह्मणोंके दर्शन करके हृष्टचित्तसे भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार, प्रदक्षिण, अनामय प्रश्न और भूयसी प्रशंसा

करके बोले—"हे द्विजेन्द्रगण! आप सब कोई विशुद्ध भावसे भगवान् मरीचिमालीकी उपासना करनेमें लगे हुए हैं। मैं आप लोगोंके पास ही आया हूं। मेरा नाम साम्ब है और मेरे पिताका विष्णु। मैंने चन्द्रभागा नदीके तट पर भगवान् सूर्यदेवकी प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठित की है। सूर्यदेवने स्वयं ही मुझे भेजा है। अतएव आप लोग अब विलम्ब न करें। भगवान्‌का पूजाकार्य निर्वाह करनेके लिए शीघ्र आप लोग मेरे साथ चलें" इस पर मगोंने कहा—"हे साम्ब! तुमने जो कहा सो ठीक है। क्योंकि कुछ समय पहले भगवान् दिवाकर स्वयं आ कर हम लोगोंके समक्ष यह बात प्रगट कर गये हैं। इसलिये हम अब देर नहीं कर सकते। यहां जो हमारे १८ कुल हैं, सभी तुम्हारे साथ चलेंगे।'

मगोंके स्वीकार करने पर साम्बने यत्नपूर्वक उन्हें गरुड़ पर बिठाया और तुरत ही वे अभीष्ट स्थान पर पहुंच गये। सूर्यदेव इससे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा—"साम्ब तुम जिन्हें शाकद्वीपसे यहां लाये हो, वे प्रशान्त हृदय शान्तिप्रद मग ब्राह्मण ही विधिके अनुसार मेरी पूजा कर सकते हैं। अतएव हे यदुवंशावतंस! तुम अब निश्चिन्त होओ, मेरी पूजाके विषयमें भविष्यमें तुम्हें कोई चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं।"

इस प्रकार साम्बने शाकद्वीपसे मगब्राह्ममणोंको ला कर चन्द्रभागा नदीके किनारे एक मनोरम पुरी बनवाई। वह पुरी बादमें साम्बपुर नामसे प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने इस पुरके भीतर दिवाकरकी मूर्त्ति स्थापित करके उनकी पूजाके लिए विविध धनरत्नादि रख दिये और भोजकोंको उन सबका अधिकारी बना दिया। सदाचारी मग-गण वेदविहित कर्मानुष्ठानसे सूर्यदेवकी पूजा करने लगे। साम्ब भी निश्चिन्त और सन्तुष्ट हुए। वे फिर सूर्यसे वर प्राप्त करके कृतकृत्य-मनसे उन्हें और मगोंको प्रणाम कर द्वारका चले गये। साम्ब द्वारा प्रतिष्ठित मग लोग तभीसे सूर्यपूजामें निरत हो कर यहां वास करने लगे और धीरे धीरे बहुत-सी भोजकन्याओंका उन्होंने पाणिग्रहण भी किया। सूर्यने (किसी समय) कहा था, 'साम्ब! ये भोजकगण मग नामसे परिचित और मेरे बड़े प्रिय होंगे। इनमें मन्दग नामके जो आठ शूद्र हैं, वे भी मेरे परिचारक हैं।" साम्बने यह सुन कर उन्हें प्रणाम किया और शाकद्वीपसे आये हुए उन मगोंका यथेष्ट सम्मान किया। मगोंमें जो दश ब्राह्मण थे, उन्होंने दस भोजकन्याओंसे और बाकीके आठ जो शूद्र थे, आठ दासकन्याओंसे विवाह किया था। उनमेंसे जो ब्राह्मणके औरस और भोजकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए, वे ही मग (भोजक) नामसे प्रसिद्ध हुए और जो शूद्रके औरसऔर दासकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए, वे मन्दग कहलाये। ये मन्दग शूद्र लोग उस समय सूर्यके परिचारक हो कर पुत्रादिके साथ साम्बके बसाये हुए पुरमें वास करने लगे तथा मग-ब्राह्मण भी अव्यङ्गादि धारण करके नाना प्रकार वैदिक मन्त्रों द्वारा सूर्य पूजामें निरत हो कर वहां वास करने लगे।

भविष्यपुराणके जैसा साम्बपुराणमें भी लिखा है, कि साम्बने मित्रवनमें सूर्यकी आराधना की थी और गरुड़ पर चढ़ कर शाकद्वीपी ब्राह्मणोंको यहां लाये थे।

दोनों पुराणोंके अनुसार चन्द्रभागा नदी तट पर मित्रवन है और भी मालूम होता है, कि वहां साम्बने अपने नाम पर साम्बपुर बसाया था। यह 'साम्बपुर' शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका आदि उपनिवेश है। पञ्जावके प्रसिद्ध मुलतान शहरको ही बहुतोंने प्राचीन साम्बपुर मान लिया है। ईसाकी ७वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक यूएनचुवङ्गने 'मूल-साम्बपुर'के (मू-लो-सन्-फू-लो) नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है, उसके बाद 'मूलस्थानपुर' तथा उससे 'मुलतान' नाम पड़ा है। भविष्यपुराणसे ज्ञात होता है कि साम्बने यहां सुवर्णका मन्दिर और उसमें सुवर्णकी सूर्यमूर्त्ति प्रतिष्ठित की थी। ईसाकी ७वीं शताब्दीमें प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग यहांकी सुवर्णमयी सूर्यमूर्त्ति देख गये थे। उसके बाद आबूरिहांनने ईसाकी १०वीं शताब्दीमें भी यहांकी प्रसिद्ध सूर्यमूर्त्तिका उल्लेख किया है, परन्तु उस समय वह मूर्त्ति काष्ठमयी थी*। उनके समयमें इस स्थानका और एक नाम था 'आद्य स्थान'। अरबी भौगोलिकोंने

* Al Beruni's *India*, translated by E, Sachau, Vol 1 p, 121.

भी 'सुवर्ण-मन्दिर'-के नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है।† ।

माकिदन-वीर अलेकज़न्दरने जिस समय पञ्जावमें पदार्पण किया था, उस समय उन्होंने यहां हर (Hercules) और मगेश (Bacchus) वा सूर्य मूर्त्तिकी पूजा देखी थी । स्ट्राबोने मेगेस्थिनिसकी जिक्र छेड़ कर लिखा है कि, भारतके नीचे भूभागके लोग हरकी पूजा करते और पार्वतीय भूभागके लोग मगेशकी । इस-से आभास पाया जाता है, कि अलेकसन्दरके समयमें (ईसाके पहलेकी ३री शताब्दीमें) सूर्य-प्रतिमाकी पूजा प्रचलित हुई थी और मित्र-पुरोहित शाकद्वीपीय मग-ब्राह्मण भी पञ्जावमें मौजूद थे। अलेकजन्दरके बादके यवन और शक राजाओंके सिक्के में भी हमने मित्र-मूर्त्ति देखी है । पूर्व-कालमें शकराजाओंमें बहुतसे मित्रो-पासक थे और मग-ब्राह्मण उनके पुरोहित थे परन्तु यवन राजाओंके सिक्कोंमें मित्र कहांसे आये ? अधिकतः यही सम्भव है, कि उनके बहुत पहले ही पञ्जावमें मित्रपूजा सर्वत्र प्रचलित थी, यवन राजाओंने भी जनसाधारणके अनुवर्त्ती हो कर उस मित्रपूजाके चिह्नकी रक्षा की थी।

अलेकजन्दरके आनेसे बहुत पहले पञ्जाब और पश्चिम-भारतमें शाकोंका अभ्युदय हुआ था। भारतवर्ष देखो। और साथ ही शाकोंके साथ मग-पुरोहितोंका प्राधान्य भी बढाया था।

प्राचीन शिलालेखोंकी सहायतासे राजस्थान-इति-हासके लेखक टाड साहबने सिद्ध किया है, कि शक-राज-पूतोंके साथ यादवोंका वैवाहिक सम्बन्ध हुआ था। इधर भविष्यपुराणसे भी मालूम होता है कि, आदित्य-जातीय मग-ब्राह्मणगणोंके यादव या भोजकन्याका पाणि-ग्रहण करनेके कारण, उनकी सन्तति 'भोजक' नामसे प्रसिद्ध हुई। दाक्षिणात्यसे मिले हुए प्राचीन शिला-लेखोंको आलोचना करनेसे मालूम होता है कि, भोज और महाभोज नामक पराक्रान्त सामन्त राजगण दाक्षि णात्यके नाना स्थानोंमें आधिपत्य करते थे, तथा कोई कोई 'परमसौर' कहलाये थे। यह भी असम्भव नहीं कि, उनके सौरपुरोहितगण 'भोजक' नामसे प्रसिद्ध हुए थे। भोजकोंका आदि नाम 'मग' ही था और जरथुस्त्रके मतानुवर्ती अग्निपुरोहित ही 'मग' नामसे प्रसिद्ध थे। शेषोक्त अग्निपुरोहितोंके साथ भी बहुत दिनोंसे भारतवासियोंका संस्रव था और पूर्वकालमें कोई कोई भारतवासी भी जरथुस्त्रधर्ममें दीक्षित हुए थे, जिनमें वैओ पण्डित, जेसल पण्डित और उनके भाई गोपाल पण्डितका नाम सुना जाता है। * उन्होंने अवस्ता-ग्रन्थ-का संस्कृत भाषामें प्रचार करनेका प्रयत्न किया था, पर यह नहीं कह सकते कि उनका उद्देश कहां तक सफल हुआ था। नेरिओसिंहने यश्नका संस्कृत अनुवाद प्रकट करके उनका उद्देश सिद्ध किया था । अधिकतः यही सम्भव है, कि मज्दपूजक मगोंसे मित्र-पूजक मगोंने स्वातन्त्र्य रक्षाके लिये मग नामके बदले 'भोजक' नाम ग्रहण किया था।

आगमनकाल और उसका कारण।

भविष्यपुराण, साम्बपुराण और ब्रह्मयामलसे भी मालूम होता है कि, शाकद्वीपीय ब्राह्मण श्रीकृष्णके आवि-र्भावके समय साम्बमन्दिरमें उपस्थित हुए थे। राज-तरङ्गिणी और वराह-मिहिरकी वृहत्संहिताके अनुसार, ६५३ कलि-गताब्दमें अर्थात् अबसे ४३५० वर्ष पहले कुरुपाण्डवका जन्म हुआ था और उसी समयमें श्रीकृष्णका आविर्भाव। यह बात महाभारत और पुराणों-के पढ़नेवालोंसे छिपी नहीं है। पहले ही हमने आभास दिया है कि जरथुस्त्रके अभ्युदयसे मित्र पूजाकी अवनति हुई थी, तथा मज्द-पूजाके प्रचारके साथ साथ मित्र-पूजक मग लोग निगृहीत हो कर भारतमें आये थे। बैबिलनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक बेरोससका मत उद्धृत करके भी दिखाया है कि ईसाके जन्मसे दो हजार दो सौ वर्ष पहले (अर्थात् अबसे ४१३० वर्ष पहले बाबेरुके राजा जरथुस्त्र आविर्भूत हुए थे । उनसे बहुत पहले आदि जरथुस्त्र होते हैं। अब यवन और भारतीय ग्रन्थोंको आलोचनासे मालूम होता है कि, जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण भारतभूमिमें अपूर्व गोताधर्मका प्रचार कर रहे

† Cunningham's Ancient Geography of India p, 233.

* Zend Avesta, par Anquetil du Perron, tome 11, 132.

थे, उसी समय पारस्य और शाकद्वीपमें मगाचार्य जरथुस्त्र मज़्द-धर्मके प्रचारमें लगे हुए थे। जिस समय गीताके निष्काम धर्मको सुनाकर आर्यावर्त्तमें नवयुग प्रवर्तित हुआ था, करीब करीब उसी समय शाकद्वीप और फारसमें जरथुस्त्रने एकेश्वरवाद का प्रचार करके भारी आन्दोलन खड़ा कर दिया था। उस धर्म-संग्राममें सुप्राचीन मित्र-धर्मके पराजित होने पर मज़्दधर्मका अभ्युत्थान हुआ। यह संघर्ष सिर्फ इष्ट-देवताको ले कर नहीं हुआ, वल्कि जरथुस्त्र सामाजिक संस्कारमें भी अग्रसर हुए थे, जिसमें प्रधान संस्कार था अन्त्येष्टि क्रिया। पहले ज़मानेमें शाकद्वीपी लोग शवको जलाते या समाधिस्थ करते थे, पर जरथुस्त्रने प्रचार किया कि जलानेसे अग्नि और समाधिसे पृथ्वी अपवित्र होती है, इसलिए ये दोनों कार्य बन्द कर देने चाहिए। उनके नियमानुसार मृत देहको किसी स्थानमें फेंक देना ही ठिक है। परंतु जिन्होंने मज़्द-धर्म स्वीकार नहीं किया था, वे (मित्र-पूजक लोग) शवदेहको मिट्टी पर फेंकना पापकार्य्य समझते थे। इधर जनता जरथुस्त्रके पक्षपाती हो गई थी। भविष्यपुराणमें लिखा है कि, साम्ब जब ब्राह्मण लानेके लिए शाकद्वीपको गये थे, उस समय वहां सिर्फ १८ घर कुलीनोंके थे। इस वर्णनको यदि रूपक समझा जाय, तो इतना कहा जा सकता है, कि सिर्फ १८ घर कुलीन अर्थात् पूर्वमतावलम्बियोंके थे और वाकी सबोंने जरथुस्त्र का मत स्वीकार कर लिया था। भविष्यपुराणके कथानुसार, ये ही १८ कुल भारतमें आये थे। परन्तु ब्रह्मयामलके मतसे, सब नहीं आये थे, सिर्फ ८ ब्राह्मण आये थे। कुछ भी हो, उक्त विवरणसे मामूली तौर पर इतना समझमें आता है कि करीब चार हजार वर्ष हुए जब शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण मुलतान आये थे। यही नगर भारतमें शाकद्वीपियोंका 'आद्यस्थान' है और इसीलिए पहले 'मूलस्थान' फिर मुलतान इसका नाम पड़ा होगा।

नाम और गोत्र।

ब्रह्मयामलमें लिखा है,—मार्कण्ड, माण्डव, गर्ग, पराशर, भृगु, सनातन, अङ्गिरा और जह्नु ये आठ मुनि शाकद्वीपमें थे। उनके पुत्रगण प्रतिदिन ग्रहचालना करते थे। देवदेव श्रीकृष्णके आदेशसे गरुड़ जब उन्हें वहांसे ले आये तब उन्होंने साम्बपुरमें प्रवेश किया। उनके नाम इस प्रकार थे—वराह, सोम, ईशान, शान्ति, भृगु, धनञ्जय, दनु और वसुन्धर। ये आठों ही ब्राह्मण ग्रहदान लेते थे। ग्रहदान लेनेके कारण इनका नाम 'ग्रहविप्र' पड़ गया। वराह, सूर्य और वृहस्पतिका दान ग्रहण करते थे; सोम सोमका, ईशान मङ्गलका, शांति बुधका, भृगु शुक्रका, धनञ्जय शनिका, दनु राहुका और वराह केतुका दान ग्रहण करते थे। उनमें वराह काश्यप-गोत्रीय थे, सोम कौशिक, ईशान, गौतम, शान्ति वात्स्य, भृगु, भरद्वाज, धनञ्जय पराशर, दनु शाण्डिल्य और वसुंधर मौद्गल्यगोत्रीय थे।*

आचार-व्यवहार।

भारतमें आ कर वास, यादवकन्याके साथ विवाह और भारतवासियोंके साथ घनिष्ठताके कारण शाकद्वीपियोंका आचार-व्यवहार भारतीयोंके सदृश हो गया था। यहां तक कि कई पीढ़ियोंके वाद सूर्यपूजा और तदुपयोगी अनुष्ठानादिके सिवा अन्य किसी समयमें उनका शाकद्वीपी भाव नहीं मालूम होता था।

सूर्यपूजाके समय दर्भके वदले वर्श्म (आवस्तिक वेरेश्मा¶) और अव्यङ्ग (ज़िन्दभाषामें ऐव्यांहन) धारण+,

---

* इस देशके शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के कुलग्रन्थमें भी आठ ब्राह्मणों के आगमनकी कथा लिखी हुई है।

¶ बम्बईप्रदेशके अग्निपूजक पारसी पुरोहितगण अभी इसे Barsom कहते हैं। अवस्ताशास्त्रके जानकार मि० हौग कहते हैं, कि—

'A bundle of twigs (beresma nowadays barsom) which are tied togather by means of reed. Without these implements, which are evidently the remnants of sacrifices agreeing to a cartain extent with those of the Brahmans, no Ijashne can be performed by the priest Haug's parsis. p. 140

+ The aiwyaanhanem is the girdle or tie with which the Barsom is to be tied together. It is prepared from a leaflet of a date palm, which

पूजाके समय मित्र-भक्तके पत्तिजाल वा पतिदानसे मुखाच्छादन, पूजामें सर्पनिर्मोक व्यवहार, श्रोष (आवस्तिक 'स्रोष')की पूजा, श्वसतों (आवस्तिक 'सोष्यन्त' अर्थात् अग्निपुरोहित')के प्रति भक्ति, इत्यादि अनुष्ठानोंमें वही आदि शाकद्वीपीय प्रथा ज्योंकी त्यों मौजूद थो। विशेषतः भविष्यपुराणसे भी मालूम होता है, कि भारतवासियोंके अध्वरहोत्रका तरह शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके लिए 'अचषु' नामक होत्र अवश्य प्रतिपाल्य समझा जाता था। वर्त्तमान अग्निपूजक पारसी पुरोहित लोग 'इजष्ने' नामक जिस यज्ञको करते हैं, उसीका अवस्तामें 'अचष्न' और भविष्यपुराणमें 'अचषु' नामसे वर्णन है।* भविष्यपुराणसे मालूम होता है, कि सूर्यके साथ उनकी पत्नी निक्षभा वा हावनीकी पूजा की जाती है। इन हावनीकी बात अवस्तामें भी कही गई है। अग्निपुरोहितोंके आदि कृत्यका नाम भी हावनो था¶। इसके सिवा और सब पूजाङ्ग तथा विधिव्यवस्था सारी भारतीय आर्योंके समान थी। परन्तु वर्त्तमान शाकद्वीपी ब्राह्मणोंमें अब यह विशेषत्व ढूंढे भी नहीं मिलता। यह कहना शाकद्वीपीय अत्युक्ति नहीं, कि शाकद्वीपीय प्रथा एक प्रकारसे लुप्त हो गई है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका जो विशेषत्व दिखलाया गया है, उसके साथ पारसिक अग्निपूजकोंके भूजाङ्गका सादृश्य होनेसे यह न समझ लेना चाहिए, कि वम्बईप्रदेश वासी पारसिक और शाकद्वीपीगण एक ही सम्प्रदायके हैं। बंबई प्रदेशके अग्निपूजकगण जरथुस्त्र-मतावलम्बी थे और उनके पूर्वपुरुषगण ईसाकी दशवीं शताब्दीमें मुसलमानोंके अत्याचारसे भारतमें भाग आये थे¶। परन्तु सौर शाकद्वीपीगण जरथुस्त्रके विरुद्धवादी थे तथा हजारों वर्ष पहले भारतमें आये थे *। शाकद्वीपकी अति प्राचीन प्रथाएं दोनों संप्रदायोंमें प्रचलित होनेसे दोनों एक ही मालूम देते हैं परन्तु फिर भी यह मानना पड़ेगा कि दोनों सम्प्रदायोंमें बहुत पूर्वकालसे ही कोई संबन्ध नहीं रहा है।

भारतमें शाकद्वीपियोंका वंश-विस्तार।

आदित्यकी उपासना भारतमें वैदिक युगसे प्रचलित है। परन्तु शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके आगमनसे पहले सूर्यकी प्रतिमा नहीं बनाई जाती थी, न इस देवताकी मूर्त्तिविशेषकी पूजा ही होती थी। मित्रके प्रतिमूर्त्तिका बनना और उसकी पूजाका प्रचार; ये दोनों ही शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका प्रधान लक्ष्य था। उनकी कोशिशसे हजारों वर्ष पहले सम्पूर्ण सभ्य-जगतमें मित्रपूजा प्रचलित हुई थी। भारतमें जहां कहीं जितनी भी सूर्यकी मूर्त्तियां प्रतिष्ठित हुई हैं, उन सबको प्रतिष्ठा इन शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके प्रभाव वा प्रादुर्भावसे ही हुई है।

मुलतानमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका आदि उपनिवेश होने पर भो पञ्जावके अन्तर्गत शाकल नामक स्थानमें बहुपूर्वकालसे उनका वास था। सम्भवतः इसीलिए वह स्थान 'शाकल' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। अब भी भारतमें सर्वत्र ही शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण अपनेको 'शाकल द्विज' कहते हैं। किसी समय शाकलद्वीपीयगण भारतमें बहुत स्थानोंमें विस्तृत और गणनीय हुए थे, इस बातका आभास ब्रह्मजामलसे मिलता है। ब्रह्मजामलके १४वें अध्यायमें लिखा है—

शरद्वोपमें वदाग्नि, शाकद्वीपमें सिद्ध, भूमध्यमें

is cut from the tree by priest after he has poured consecrated water over his hand, the knife the leaflet." Haug's Parsis, p. 396. भविष्यपुराणमें 'अव्य'गोत्पत्ति' नामका एक स्वतन्त्र अध्याय ही है।

* यह 'अचषु' होत्रकी प्रक्रिया Haug's Essay on Parsis. p. 443-447 में देखना चाहिए।

¶ इनके पुरोहित 'दस्तुर' नामसे प्रसिद्ध हैं। दस्तुर लोग अधिकांशमें हमारे यहांके ब्राह्मणोंके समान हैं। उनके उपनयनादि संस्कार होते हैं। एकमात्र पुरोहितवंशके सिवा दस्तुर लोग अन्य वंशमें विवाह सम्बन्ध नहीं कर सकते और न पुरोहित वंशके सिवा अन्य पौरोहित्य ही कर सकता है।

* भविष्यपुराण, साम्बपुराण और गृहयामलमें शाकद्वीपसे साम्बपुरमें जो ब्राह्मणागमनका प्रसंग है, उसे कल्पित उपाख्यान कह कर उड़ाया नहीं जा सकता। पुराणोंके सिवा शाकद्वीपी ब्राह्मणोंमें भी ओरसे यह किम्वदन्ति चली आ रही है। यहां तक कि हजार वर्ष पहले के शिलालेखमें भी यह विवरण पाया गया है। देखो वंगलाका "वंगेर-जातीय इतिहास" ब्राह्मणकांड ४ थांश।

ब्रह्मचारी, द्वारकापुरमें दैवज्ञ, द्राविड़ और मैथिलमें ग्रहविप्र, धर्माङ्गदेशमें धर्मवक्ता, पञ्चालमें शास्त्री, सारस्वत-प्रदेशमें शुभमुख, गान्धारमें चित्रखण्डित, तिरहुतमें तिथिवित्, नाटकाचलमें (कामरूपमें) ऋक्ष-सूचक, रुद्रालयमें ज्योतिषी, ब्रह्मदेशमें विधिकारक, वभ्राटमें योगवेत्ता, नेपालमें देवपूजक, राढ़देशमें उपाध्याय, गयामें तन्त्रधारक, कलिङ्गमें जान और गौड़देशमें आचार्य नामसे प्रसिद्ध हैं ।

ग्रीक-राजदूत मेगास्थनीजने पाटलिपुत्रमें रहते हुए उस प्रान्तमें पार्वत्य-भूभागमें सूर्यपूजा देखी थी । प्राचीन पालि-ग्रंथमें भी पाया जाता है, कि बुद्धदेवके समयमें ज्योतिषी शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण विशेष प्रवल थे । ब्रह्मजालसूत्र नामक पालिग्रंथमें बुद्धदेव उन ब्राह्मणोंकी निन्दा करते पाये जाते हैं । इससे इस बातकी सम्भावना होती है, कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण बुद्धप्रचारित धर्मके विरुद्धवादी थे इसीलिए बौद्धोंके सूत्र-ग्रंथमें दैवज्ञ ब्राह्मणोंकी विशेष निन्दा पाई जाती है ।

पहले शाकराजगण भारतमें आ कर बुद्धके माहात्म्यको सुन कर बौद्धधर्ममें दिक्षित हुए थे, परन्तु अपने अपने पितृपुरुषानुष्ठित सुप्राचीन मित्रपूजाको छोड़नेके लिए कोई भी तयार न हुए थे, उनके सिक्कोंमें मित्रपूजाका निदर्शन मौजूद है* । शाकराजाओंके सिक्कों पर मित्र 'मिहिर' नामसे उत्कीर्ण है† । यह मित्रपूजा उस समय एकमात्र शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके पौरोहित्यमें ही सम्पन्न होती थी । इसलिए शाकराजगण बौद्धमतावलम्बी होने पर भी, उनके पुरोहित शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका प्रभाव एकबारगी विलुप्त नहीं हुआ था । अधिकतः यही सम्भव है, कि इन शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके प्रभावसे ही परवर्त्ती समयमें लगभग सभी शकराजाओंने हिंदूधर्म ग्रहण किया था और गो-ब्राह्मणके कट्टर भक्त हो गये थे । यदि ऐसा न होता तो उषवदात जैसे एक विशुद्ध शकाधिप अपनेको गो-ब्राह्मणभक्त कहनेमें गौरव नहीं समझते* ।

मित्रभक्त शाकद्वीपीय ब्राह्मण लोग 'मित्र' और 'मिहिर' उपाधिका व्यवहार करते थे । प्राचीन शिलालेख और प्राचीन ज्योतिग्रंन्थोंमें इस बातका प्रमाण मिलता है । किसी किसी पुराणमें शुङ्ग और उनके बादके काण्वायन राजा 'द्विज' कहलाये हैं । प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहाम साहबने शकराज वासुदेवको काण्वायनवंशीय प्रथम राजा सिद्ध किया है और फ्लिट साहबने, जो कि पुरातत्त्वविद् हैं, काण्वायनवंशीय ३य राजा नारायणको 'तुषार' वंशीय बताया है† । ऐसी दशामें ये काण्वायन ही शाकद्वीपी द्विज सिद्ध होते हैं । 'शुङ्गमित्र'के नामसे किसी प्राचीन जैन-ग्रन्थमें भी इन कावर्णन है । इन शुङ्ग और काण्वायनोंमें बहुतोंकी 'मित्र' उपाधि पाई जाती है । सम्भवतः मित्रभक्त शुङ्ग और कण्वायनोंके समय ही शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका प्रभाव भारत व्यापी हुआ था । उसके बाद अन्ध्रराजाओंने प्रवल हो कर काण्वायन-राज्यका ग्रास किया और बहुकाल शकोंके साथ संग्राममें लिप्त रहने पर भी अन्तमें वे शकराजाओंके साथ वैवाहिक सम्बन्धमें आवद्ध हुए थे । इस लिए शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंको इससे फायदाके सिवा नुकसान नहीं हुआ ।

शक राजाओंका प्रभाव भारतमें बहुत विस्तृत हुआ था और बहुत समय तक रहा था, यह पहले ही कहा जा चुका है¶ । वे शक राजा प्रधानतः 'मित्र' नामक सूर्यभक्त थे, इसलिए उनका 'मैत्रक' नाम भी पड़ा था । वलभीराजोंके ताम्रलेखोंमें मैत्रकगण 'अतुलवलसम्पन्न' कहलाये हैं, और ईसाकी ५वीं शताब्दीमें इन मैत्रकोंको सग्रांममें पराजित करके ही सुराष्ट्रके वलभीराजवंशके स्थापयिता

* Indian Antiquary 1888 p. 91.

† ये मित्र-पूजक लोग 'मिहिर' 'मिहिरकुल' वा 'मिहिरगोत्र' भी समझे जाते थे । अब भी जरथुस्त्र मतावलम्बी बहुतसे पारसी-पुरोहितवंश मिहिर उपाधि धारण करते हैं, जिनके पूर्वपुरुषगण मिहिरके उपासक थे ।

* अवस्ताके यश्नमें अषवदात नामके एक ऋषिका उल्लेख है । उसीके अनुकरणसे यह उषवदात नाम हुआ होगा ।

† Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum vol. III, p. 279.

¶ भारतवर्ष शब्द देखो ।

सेनापति भट्टार्कका सौभाग्य उदित हुआ था। उनके वंशधर महाराज धरपट्ट 'परमादित्यभक्त' के नामसे प्रसिद्ध हुए* और तो क्या, सम्राट् हर्षवर्द्धनके पितामह आदित्य-वर्द्धन और प्रपितामह राज्यवर्द्धन दोनोंने ही अपने ताम्रलेखमें 'परमादित्यभक्त' उपाधिका व्यवहार किया है।

ईसाकी ५वीं शताब्दीमें मैत्रक शकोंका प्रभाव विलुप्त होने पर भी उस समय शकोंकी हूण नामकी एक शाखा भारतमें अपना प्रभाव विस्तार कर रही थी। उनके अभ्युदयसे गुप्तसाम्राज्य कंप उठा था। गुप्त-सम्राट् स्कन्धगुप्तकी शिलालिपिसे मालूम होता है, कि वे हूणोंके प्रभावको दमन करनेके लिए बद्धपरिकर हुए थे। उनके समयमें भी देखा जाता है कि, इन्दौर और मगधमें सूर्यमन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। सभी हूण 'मिहर' वा सूर्यभक्त थे। उनके प्रधान अधिपतिने तोरमानके पुत्र 'मिहिरकुल'के नामसे अपना परिचय दिया है। इस मिहिरकुलके प्रभावसे गुप्तसाम्राज्य चूर्ण विचूर्ण हो गया था। अन्तमें भारतके समस्त राजाओंने मिल कर मिहिरकुलका निपात किया था। इस मिहिरकुलने अपने नामानुसार 'मिहिरेश्वर' नामक एक वृहत् सूर्यमन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी।

हमें भविष्यपुराणमें शाकद्वीपोय ब्राह्मणोंका 'मिहिर-गोत्र' मिला है। फिर हूण-राजा मिहिरकुलके बाद शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंमें बहुतोंकी 'मिहिर' उपाधि देखी जाती है, जिनमें बोधगयाके वसुमिहिर‡ और भारतके सर्वप्रधान ज्योतिर्विद वराहमिहिरका नाम उल्लेखयोग्य है। जिन मालवके राजा यशोवर्म्माने मिहिरकुलको पराजित करके 'विक्रमादित्य' की उपाधि अर्जन की थी, बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि, वराहमिहिरने उन्हींकी सभाको आलोकित किया था और फिर यशोवर्माके सहयोगी मिहिरकुल-हन्ता गुप्त-सम्राट् बालादित्य मगधके 'मित्र' उपाधिधारी भोजक (शाकद्वीपी) ब्राह्मणोंको सम्मानित करके मगधको सूर्यसेवाके लिए भूमिदान की थी। हमें वृहत्संहितासे पता लगता है, कि वराहमिहिरके समयमें भी सूर्यपूजा एकमात्र शाकद्वीपी ब्राह्मणोंके ही अधिकारमें थी। वराहमिहिरने लिखा है—

विष्णुके पूजक भागवत हैं, सूर्यके पूजक मग, शिवके भस्मधारी द्विज, मातृगणके मातृमण्डलविद ब्राह्मण, ब्रह्माके विप्र, सर्वहित शान्तमना बुद्धके शाक्यब्राह्मण और जिनोंके उपासक दिगम्बर लोग हैं। इस प्रकार जो जो जिन-जिन देवोंके उपासक हैं उन्हें अपने नियमानुसार अपने अपने देवोंकी पूजा करनो चाहिए। (वृहत्संहिता ४०।१६)

वराहमिहिरके बहुत पीछे ईसाकी १०वीं सदीमें आवूरिहानने भारतमें एकमात्र शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंको सूर्यपूजाका अधिकारी पाया था।

शिलालेखोंकी सहायतासे विदित होता है कि, अबसे १४०० वर्ष पहले मगधमें शाकद्वीपीय भोजक विप्र पुरुषानुक्रमसे सूर्य पूजाके अधिकारी थे। शाहाबाद जिलेके देववरणार्क ग्रामसे प्राप्त मगध राज २य जीवितगुप्तके शिलालेखमें लिखा है कि, देववरुणार्क ग्राममें अति प्राचीनकालसे भोजक विप्रोंका वास था। यहांके वरुणार्क नामक सूर्यदेवकी सेवाके व्यय-निर्वाहके लिए मगध-पति बालादित्य देवने भोजक सूर्यमित्रको यह ग्राम दानमें दिया था। गुप्तराजका अधिकार लुप्त होने पर उस प्रान्त पर वर्मभूपालोंका अधिकार हो गया। उन लोगोंने भी भोजक विप्रोंके देवस्वमें हस्तक्षेप नहीं किया; प्रत्युत समय समय पर इस ग्रामको ब्रह्मोत्तर समझ कर भोजकोंको माफ कर दिया था। उनमेंसे महाराज सर्ववर्माने पहले पहल भोजक हंसमित्रको गांव दिया था। उनके बाद भोजक ऋषिमित्रने अवन्तिवर्मासे प्राप्त किया। इसी प्रकार मगध-राज २य जीवितगुप्तने भी भोजक दुर्द्धरमित्रको उक्त गांव दिया था*।

* Fleet's Inscriptions of the Gupta kings, Vol, 111 p, 168

‡ R, Mitra's Buddha Gaya, p. 185.

* २य जीवितगुप्तका शिलालेख ईसाकी ७वीं सदीमें खुदा हुआ है। उसके अन्तमें लिखा है—"विज्ञापित श्रीवरुणावासि भट्टारक प्रतिबद्ध-भोजक-सूर्यमित्रेया उपरिलिखित...ग्रामादिसंयुत परमेश्वर श्रीबालादित्यदेवेन स्वशासनेन भगवच्छ्री-वरुणवासी भट्टारक...परिवाहक...भोजकहंसमित्रस्य समापत्या यथाकाला-ध्यासिभिश्च एव परमेश्वर श्रीसर्ववर्म...भोजक ऋषिमित्र-यतक एव

मगधमें भोजक वा मग ब्राह्मणोंका प्रभाव क्रमशः वृद्धिको प्राप्त हो रहा था। ईसाकी १०वीं शताब्दीमें यहां मान-राजवंश प्रबल हो उठा। शाकद्वीपी ब्राह्मणोंने इन मान-राजाओंसे भी सम्मान पाया था। उनमेंसे कोई शास्त्री, कोई सभा-पण्डित, कोई प्राड्विवाक आदि राजकीय उच्च पदों पर नियुक्त हुए थे। गया जिलेके अन्तर्गत गोविन्दपुर ग्रामसे १०५९ शकाब्दकी खुदी हुई एक शिलालिपि मिली है, उसमें मान राजवंश और शाकद्वीपीय किसी प्रसिद्ध पण्डितवंशका परिचय दिया गया है।

धीरे धीरे शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण समग्र भारतमें नाना शाखाओंमें विभक्त हो गये थे। कृष्णदासरचित मगव्यक्ति नामक ग्रन्थसे ज्ञात होता है कि, शाकद्वीपी विप्रगण विभिन्न स्थानोंमें वासके कारण २४ पुर, १२ आदित्य, १२ मण्डल और ७ अर्क इन ५५ शाखाओंमें विभक्त हुए थे। मगव्यक्तिके विवरणसे मालूम होता है कि, उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें निजामराज्य, पश्चिममें पञ्जाब और पूर्वमें गौड़ और उत्कल तक प्रायः सर्वत्र शाकद्वीपीय भोजक विप्र फैल गये थे। जिन जिन स्थानोंमें पूर्वकालसे सूर्य मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी, उन उन नगरों वा ग्रामोंके नामानुसार 'आर' या पुर, मण्डल, आदित्य और अर्क नामकी विभिन्न शाखाएं कल्पित हुई थीं। मगव्यक्तिमें जिन सप्तार्कोंका उल्लेख है, उनमेंसे वरुणार्क भी एक है। इस स्थानसे प्राप्त ७वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण शिलालेखसे भोजक विप्रोंका जो परिचय मिला है, वह पहले ही लिखा जा चुका है। काशीखण्डमें लोलार्कके परिचयमें और साम्बपुराणमें कोनार्कके माहात्म्य प्रसङ्गमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके आगमनकी बात विस्तृतरूपसे लिखी है। ईसाकी ११वीं सदीके प्रारम्भमें आबूरिहानने साम्बपुराणका उल्लेख किया था। ऐसी दशामें ईसाकी ११वीं सदीसे भी बहुत पहले उत्कलमें शाकद्वीपी ब्राह्मणोंका आना सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं। कोणार्क देखो।

वंगालमें भोजकब्राह्मणोंका आगमन।

गौड़में किस समय शाकद्वीपीय ग्रहविप्र आये थे इस बातका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है, कोई वास्तविक प्रमाण नहीं मिलता। कृष्णदासके मगव्यक्तिमें पुण्ड्रार्क और तदन्तर्गत पुण्डरीकार्कका प्रसङ्ग पाया जाता है। जिस समय गौड़की राजधानी पुण्ड्र वा पुण्ड्रवर्द्धनमें थी, पुण्ड्रवर्द्धनके उस समृद्धिकालमें ही सम्भवतः यहां शाकद्वीपी ब्राह्मणोंका आगमन हुआ था। राजतरङ्गिणीसे भी हमें ईसाकी ८वीं सदीमें, गौड़ाधिप जयन्तके अधिकारकालमें, पुण्ड्रवर्द्धनकी यथेष्ट समृद्धिका परिचय मिलता है। पाल राजाओंके समयमें भी पुण्ड्रवर्द्धनकी समृद्धि यथेष्ट थी। राजावल्लालसेनके गौड़नगरमें ईसाके १२वीं सदीके प्रारम्भमें राजधानी स्थापन करने पर पुण्ड्रवर्द्धनकी समृद्धि विलुप्त हो गई। ऐसी स्थितिमें अनुमान होता है कि, राजा वल्लालसेनके बहुत पहले ही शाकद्वीपी विप्र पौण्ड्रवर्द्धनमें पहुंच गये थे। वे यहांके पुण्डार्क नामक सूर्यमूर्त्तिकी सेवामें नियुक्त रह कर सम्भवतः 'पुण्डार्का' नामकी एक पृथक् शाखामें शामिल हुए थे। ये 'पुण्डार्क' शाखावाले गौड़के प्रथम शाकद्वीपी द्विज मालूम होते हैं। पुण्ड्रार्कोंको हम मामूली तौर पर वारेन्द्र शाकद्वीपी समझ सकते हैं, परन्तु दुःखका विषय है, कि इस वारेन्द्रश्रेणीके ग्रहविप्रोंके आदि कुलका परिचय देनेवाला ऐसा कोई ग्रन्थ ही नहीं मिलता, जिससे हम इस पर जोर दे सकें।

राढ़ीय और नदीयावङ्ग-समाजके ग्रहविप्रोंके कुछ कुल-ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं, उनसे हमें बङ्गीय शाकद्वीपी ब्राह्मणोंका कुछ कुछ परिचय मिलता है।

राढ़ीय बालि-समाजके ग्रहविप्रोंकी कुल-पञ्जिकामें लिखा है—शाकद्वीपमें मार्कण्ड, माण्डव्य, गर्ग, पराशर, भृगु, सनातन, अङ्गिरा और जह्नु ये आठ मुनि थे। उनके वंशधर महाशक्तिके प्रभावसे प्रति दिन ग्रह-चालना करते थे। ग्रह-सम्बन्धी दानग्रहण करनेसे वे ग्रहविप्र कहलाये। गरुड़ शाकद्वीपमें जा कर उन्हें ले आये, जिनके नाम इस प्रकार थे—वसह, सोम, ईशान, शान्ति, शुक्र, धनञ्जय,

परमेश्वर श्रीमदवन्तिवर्मणा पूर्वदत्तकमवलम्ब्य...एवं महाराजाधिराज परमेश्वर...शासनदानेन भोजक दुर्द्धरमित्रस्यानुमोदित...तेन भुज्यते।" (Fleet's *Inscriptions of the Gupta kings*, p, 217.)

दनु और वसुन्धर ये आठों ही ग्रहविप्र थे, जिनमें बराह काश्यपगोत्री, सोम घृतकौशिक, ईशान गौतमगोत्र शान्ति वात्स्यगोत्री, भृगु (शुक्र) भरद्वाज, धनञ्जय पराशर, दनु शाण्डिल्य और वसुन्धर मौद्गल्य गोत्री थे। इन आठोंके वंशधर पृथु, नृसिंह, विष्णु, लोकनाथ, जनार्दन, केशव, कृत्तिवास, नारायण, दण्डपाणि और महानन्द ये दश व्यक्ति मध्यदेशसे गौड़देशमें आये। इनकी उपाधियां वृहज्ज्योषी, काशपटि, ओझा, आचार्य, घटक, पाठक, मिश्र, उपाध्याय, जमदग्नि और आलम्यान थीं। इनमेंके वृहज्ज्योषीके काश्यपगोत्रको ले कर तथा कशपटिके घृतकौशिक, ओझाके गौतम, आचार्यके मौद्गल्य, घटकके भरद्वाज, पाठकके वात्स्य, मिश्रके शाण्डिल्य, उपाध्यायके पराशर, जामदग्न्य और आल्यमानको ले कर दश जनोंके दश गोत्र प्रसिद्ध हुए। राढ़ीय ग्रहविप्र इन्हीं दश व्यक्तियोंकी सन्तान हैं।

(राढ़ीय शाकलदी०)

नदिया-वङ्गसमाजकी कुलपञ्जिकामें भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके नाम और उनके आगमनके कारण इस प्रकार लिखे हैं :—

'फूल और फलोंसे परिपूर्ण नाना वृक्षोंसे शोभित रमणीय सरयू नदीके तट पर वेदवेदाङ्गके पारगामी नाना शास्त्रोंमें कुशल जपयज्ञपरायण ब्राह्मणगण वास करते थे। किसी समय गौड़देशाधीश्वर नृपतिश्रेष्ठ धर्मात्मा शशाङ्क ग्रहवैगुण्यके कारण रोगमें पड़ और कष्ट पाने लगे। वैद्योंके अच्छी तरह चिकित्सा करने पर भी उन्हें शांति न मिली जिससे उन्होंने स्वस्त्ययन करनेको निश्चय किया। राजाके आदेशानुसार मन्त्रियों द्वारा प्रेरित दूतगण सरयूके तट पर जा कर कुछ ब्राह्मणोंको ले आये।

'विष्णु, सनातन, सुयज्ञ, शङ्कर, देवधर, सुशर्मा, वासुदेव, प्रजापति, चतुर्भुज, लोकेश चक्रपाणि और माधव ये दश ब्राह्मण गौड़देशके राजा शशाङ्क द्वारा बुलाये जाने पर गौड़मण्डलमें आये। राजाने उन महात्मा विप्रोंके ग्रहज्ञानको जान कर उन्हें अपने भवनमें बुलाया और ग्रहयज्ञ कराया। ग्रहयज्ञमें जिन्होंने भाग लिया था, उनके गोत्र इस प्रकार हैं—विष्णुका काश्यप, सनातनका कौशिक, सुयज्ञका वात्स्य, वासुदेवका शाण्डिल्य, सुशर्माका मौद्गल्य, देवधरका पराशर, शङ्करका गौतमगोत्र, चतुर्भुजका जामदग्नि, चक्रपाणिका गर्ग और माधवका आल्यमान। सुशर्मा तन्त्रधारके कार्यमें, प्रजापति होतृकार्यमें, विष्णु-ब्रह्मकर्ममें और शंकर सदस्यकर्ममें, सूर्यके जपकर्ममें सुयज्ञ नियुक्त हुए। चन्द्रके जपकर्ममें सनातन, मङ्गलके जपमें चतुर्भुज, बुधके जपमें चक्रपाणि, वृहस्पतिके जपमें देवधर, शुक्रके जपमें लोकेश और राहुकेतुके जपकर्ममें सधीवर माधव गौड़ेश्वर द्वारा नियोजित हुए। ये भूदेवगण यथाविधि राजाके ग्रहयज्ञको सम्पन्न कर राजाके आदेशसे परिवार-सहित गौड़देशमें ही रहने लगे। उनके ज्योतिःशास्त्रपरायण पुत्रगण ग्रहोंका दान ग्रहण करनेके कारण ग्रहविप्र कहलाये। स्थान-भेदसे इनमें कई समाज हो गये हैं। उपाध्याय, पाठक, आचार्य, मिश्र, वृहज्ज्योषी और दीक्षित ये उनकी वंशोपाधियां हैं।'

(उमेशचन्द्र शर्माधृत महादेवकारिका)

इससे मालूम होता है, कि गौड़देशीय शशाङ्क नृपति किसी समय रोगसे पीड़ित हुए थे। रोगसे छुटकारा पानेके लिए उन्होंने सरयू-तीरसे कई ब्राह्मण बुला कर उनसे यज्ञ कराया। उन्हींकी सन्तान गौड़देशमें बसी और ग्रहविप्र या आचार्य नामसे प्रसिद्ध हुई।

वालि वा मध्यराढ-समाज और नदीया-वङ्गसमाजके कुलग्रन्थसे ज्ञात होता है कि, पूर्वोक्त समाजके आदिपुरुषगण मध्य-प्रदेशसे राढ़देशमें आये थे और शेषोक्त समाजके पूर्वपुरुष गौड़के राजा शशांककी सभामें ग्रहयज्ञके लिए बुलाये गये थे। उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्यगिरि, विनशन वा सरस्वतीके अन्तर्धान-प्रदेशसे पूर्वमें तथा प्रयागके पश्चिममें मध्यदेश अवस्थित है। (मनुसं०) सरयू-तीर इस सीमाके बाहर है। इसलिए दोनों समाजोंके पूर्वपुरुष विभिन्न स्थानोंसे आये प्रतीत होते हैं। दोनों समाजके कुल-ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे भी यही मालूम होता है कि, दोनों ही समाज विभिन्न शाखाओंसे उत्पन्न और विभिन्न समयमें गौड़में आये थे। दैवज्ञ, ग्रहविप्र, कोणार्क, शाकद्वीपी आदि शब्द देखो।

भोजक—जैन पुरोहित।

भोजकवि—१ चरखारीके रहनेवाले एक भाट-कवि। इनका जन्म सम्वत् १९०१में हुआ था। इनका दूसरा नाम था विहारीलाल वन्दीजन। ये चरखारीके महाराज रतनसिंहके दरवारी-कवि थे। इनकी कविता असाधारण होती थी। इनका बनाया 'भोजभूषण' और 'रसविलास' ग्रंथ उत्तम हैं। ये शरफो नामकी एक वेश्या पर आशक्त थे।

२ एक ब्राह्मण-कवि। इनका जन्म सं० १७८१में हुआ था। इनकी 'मिश्र' की उपाधि थी। ये महाराव बुद्ध बून्दीके दरवारमें रहते थे। इनका बनाया 'मिश्रशृङ्गार' नामक एक ग्रन्थ है।

भोजखेरि—मध्यभारतके इन्दोर राज्यान्तर्गत एक ठाकुरात-सम्पत्ति।

भोजदुहितृ (सं० स्त्री०) भोजस्य दुहिता। भोजपुत्री, भोजकन्या।

भोजदेव (सं० पु०) भोजो देव इव। भोजराज।

भोजराज देखो।

भोजदेव—कच्छके एक राजा, भारमल्लके पुत्र। आप धर्मप्रदीप नामक धर्मग्रन्थ बना गये हैं।

भोजदेव—१ कन्नोज राज रामभद्रदेवके पुत्र। आदिवराह उनकी पदवी थी। २ महोदयाधिपति महेन्द्रपालदेवके पुत्र। ३ जयशलमीरके एक महारावल। ४ परमारराज सिन्धुराजके पुत्र। ये मालव और गोपगिरिके अधिपति थे। अपने बाहुबलसे इन्होंने महाराजाधिराजकी उपाधि अर्जन की थी। ये प्रसिद्ध भौगोलिक आल्वारुणीके समसामयिक थे। ५ एक प्रतिहार राजा नागभट्टके पुत्र। ६ शिलालिपि-वर्णित एक प्राचीन हिन्दूराज।

भोजराज देखो।

भोजदेश—प्राचीन कीकट-राज्यके अन्तर्गत देशभेद। यहां एक समय व्याघ्रेश्वर शिवमन्दिर प्रतिष्ठित था।

भोजन (सं० क्ली०) भुज्-ल्युट्। (ल्युट् च। पा ३।३।११५) भक्षण, कठिन पदार्थोंका गलेसे निगलना। पर्याय—जग्ध, जेमन, लेप, आहार, निघस, न्याद, जमन, विघस, अभ्यवहार, प्रत्यवसान, अशन, स्वदन, निगर। (राजनि०)

यह स्थूल शरीर अन्नाधार पर ही अवलम्बित है। यह भोजन मिलनेसे पुष्ट और न मिलनेसे क्षीण होता रहता है। धर्मशास्त्र अथवा वैद्यक इन दोनोंमें ही भोजनके विषयकी आलोचना प्रत्यालोचना देखी जाती है। भावप्रकाशमें लिखा है,—

"शरीरे जायते नित्यं वांछा नृणाञ्चतुर्विधा।
बुभुक्षा च पिपासा च सुषुप्सा च रतस्पृहा॥
भोजनेच्छाविघातात् स्यादंगमर्दोऽरुचिः श्रमः।
तन्द्रालोचन दौर्व्वल्यं धातुदाहो बलक्षयः॥"

(भावप्रकाश)

प्रत्येक मनुष्यको स्वभावतः नित्य चार प्रकारकी अभिलाषा उदित होती है। जैसे,—भोजनेच्छा, पानेच्छा, निद्राभिलाष और कामकामना। किन्तु इन सब इच्छाओंको रोक कर भूखके समय भोजन न करनेसे आलस, अरुचि, थकावट, तन्द्रा, नेत्रोंकी दुर्वलता, रसरक्तादि धातुओंकी जीर्णता तथा बलकी हानि होती है। प्यास लगने पर पानी न पीनेसे तालू और कण्ठ सूख जाता है। साथ ही श्रवणेन्द्रियमें रुकावट पैदा हो जाती, रक्त सूखने लगता तथा हृदयमें दर्द उत्पन्न हो जाता है। इसी तरह निद्राको रोक देनेसे भोजन की हुई वस्तुका ठीक तरहसे परिपाक नहीं होता। सिवा इसके तन्द्रा आदि कई दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे जलानेके लिये कोई चीज न मिलने पर आग स्वयं मन्द पड़ जाती उसी तरह जठराग्निको भी भोग्य-वस्तु प्राप्त न होनेसे वह मन्द पड़ जाती है। जिसे हम मन्दाग्निका रोग कहते हैं। जठराग्नि पहले भोजन की हुई वस्तुको पचाती है, जब उसको कुछ नहीं मिलता, तब वह शरीरके कफ आदि दोषोंको तथा इसके बाद रसरक्तादि धातुओंको जलाने लगती है। इसके बाद वह अन्तमें प्राणवायु तकको भी जला डालती है। इसलिये भोजन प्रीतिउत्पादक, बलकारक, शरीररक्षक और स्मरणशक्ति, परमायु, वीर्य्य, वर्ण आदिको बढ़ानेवाला है।

"यथोक्त गुणसम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम्।
विचार्य दोष कालादीन् कालयोरुभयोरपि॥
सायं प्रातो मनुष्याणाम् शानं श्रुतिरोधितम्।
नान्तराभोजनं कुर्य्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥

यामभध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत्।

याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद् बलक्षयः॥ (भावप्र०)

मनुष्यको चाहिए कि, वह नियमतः जैसा कि शास्त्रों-में कहा गया है, दोषकाल आदि और प्रातःसन्ध्याका विचार कर भोजन करे। अग्निहोत्रियोंके दैनिक हवन-विधिकी तरह मनुष्यको भी सवेरे और रात्रिको एक पहर बाद और दूसरे पहरके भीतर भोजन कर लेना चाहिए। सिवा इस समयके अन्य समयमें भोजन करना मना है। अतः एक पहरके भीतर तथा दोपहरके बाद दिन या रातके समय भोजन न करना चाहिए। क्योंकि एक पहर-के भीतर भोजन कर लेनेसे रसकी उत्पत्ति तथा दूसरे पहर बिता कर भोजन करनेसे वीर्यकी हानि होती है।

वैद्यक मतसे दिनको नौ बजेके बाद और बारह बजे-के भीतर तथा रातको भी नौ बजेके बाद तथा बारह बजेके भीतर भोजन करना युक्तिसङ्गत है। किन्तु धर्म-शास्त्रमें इस समयका कुछ व्यतिक्रम देखा जाता है।

"यामभध्ये न भोक्तव्यं त्रियामन्तु न लङ्घयेत्।

याममध्ये रसस्तिष्ठेत् त्रियामे तु रसक्षयः॥

प्रागुक्त दक्षवचनात् तत्रापि पञ्चमयामार्द्धो मुख्यकालः॥"

(आह्निकतत्त्व)

सारांश यह है, कि पहले पहरके भीतर कभी भोजन करना उचित नहीं। फिर तीसरा पहर भी बिता कर भोजन करना विधिसंगत नहीं। अतएव पञ्चम यामार्द्ध ही भोजनके लिये उपयुक्त समय है। बारह बजेके बाद डेढ़ बजेके भीतरवाले समयको पञ्चमयामार्द्ध कहते हैं। आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र दोनोंने नौ बजेके पहले भोजन करनेको मना किया है। वैद्यक मतसे नौ बजेके बाद बारह बजेके पहले और धर्मशास्त्र मतसे बारह बजेके बाद डेढ़ बजेके भीतर भोजन करनेको कहा गया है।

कुछ आदमियोंका कहना है, कि जिस समय मल और दोषका परिपाक हो कर भूख उत्पन्न हो, वही भोजन करनेका उपयुक्त समय है।

"क्षुत् सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च।

काले वा यदि वाकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः॥"

(भावप्रकाश)

रसदोष-मलका परिपाक हो जाने पर, मलमूत्रादिका वेग होना, शरीरका हलकापन बोध होना, पिपासा और भूखका उदय होना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। जब ऐसे लक्षण दिखाई दें तो समझना चाहिये, भोजन किया हुआ पदार्थ उत्तमरूपसे जीर्ण हो गया है। मनुष्य-को चाहिये, कि वह भोजन और मलमूत्र-त्यागको क्रिया नित्य सम्पादन करता रहे। क्योंकि इन दोनों कार्य्योंसे ही शरीरको अति वृद्धि होती है। किन्तु यह दोनों काम एकान्तमें करना चाहिये। क्योंकि खुले स्थानमें बैठ कर भोजन करने या मलमूत्र त्याग करनेसे श्रीहानि होती है।

भोजनके समय शुभाशुभ दृष्टि—आहार करते समय पितामाता, सुहृद, चिकित्सक, रसोइयां, हंस, मयूर, सारस और चकोर पक्षीकी दृष्टि शुभ है। दरिद्र व्यक्ति, खोटे मनुष्य, भूखे मनुष्य, पापी, रोगी, पाषण्डो, कुत्ते, मुर्गे आदिकी दृष्टि अशुभ है।

सुवर्ण-पात्रमें भोजन करनेसे त्रिदोषका नाश होता तथा दर्शन शक्ति बढ़ती है। चांदीके पात्रमें भोजन करना आंखके लिए परम लाभदायक है। सिवा इसके इससे पित्त, कफ और वायुका नाश होता है। कांसेके बरतनमें भोजन करनेसे बुद्धि बढ़ती है, साथ ही भोजनमें रुचि बढ़ती तथा रक्त-पित्त शान्त होता है। पीतलके पात्रमें खानेसे वायुकी वृद्धि होती, रुक्ष, उष्ण, कृमि तथा कफका नाश होता है। भोजनके लिये लौह और कांचका वर्त्तन सिद्धिदायक, बलकारक तथा रोगनाशक है। पत्थर और मिट्टीके बरतनमें खानेसे रुचि बढ़ती, अग्नि तेज होती तथा विष और पापका नाश होता है। स्फटिक तथा वैदूर्यमणिका बना बरतन शीतल तथा पवित्र है।

"ताम्रपात्रे न भुञ्जीत भिन्न कांस्ये मलाविले।

पलाशे पद्मपत्रेषु गृही भुक्त्वेन्द वञ्चरेत्॥" (आह्निकतत्त्व)

धर्म-सिद्धान्तके अनुसार ताम्र या तांबेके वर्त्तन तथा टूटे फूटे बर्त्तनमें भोजन नहीं करना चाहिये। कांसेके बर्त्तनमें केवल वही मनुष्य भोजन करे, जो उसमें नित्य करता आता हो। दूसरा उसमें भोजन न करे।

"अर्कपात्रे तथा पृष्ठे आयसे ताम्र भाजने।

करे कर्पटके चैव भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत्॥"

"पृष्ठे—कदली पत्रादि पृष्ठे"

गृहस्थको पलासके पत्तेमें तथा पद्मपत्र (पुरइनो) में भोजन करना विलकुल निषिद्ध है। गृहस्थ यदि आकके पत्ते, तांबे और लोहेके वरतनमें और कदलीपत्रको पीठ पर भोजन करे, तो उसे चान्द्रायण व्रत करना होता है।

"तैजसानां मणीनाञ्च सर्वस्याश्ममयस्य च।
भस्मनाद्भिर्मुदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः॥"

(आह्निकतत्त्व)

सोना, चांदी, पत्थर, शङ्ख और स्फटिकके वने वरतनमें भोजन करना उत्तम है। ये सव पात्र अपवित्र होने पर राख तथा जलसे मल देने पर पवित्र हो जाते हैं।

गोवरसे लीप-पोत कर समभूमिमें मण्डलरेखा खींच कर उस पर भोजनका पात्र रख भोजन करना चाहिये। यह मण्डल ब्राह्मणको चौकोन, क्षत्रियको त्रिकोण, वैश्यको गोलाकार और शूद्रोंको अर्द्ध चन्द्राकार खींचना चाहिये। जो लोग मण्डल न वना कर भोजन कर लेते हैं, उनका भोज्य-पदार्थ यक्ष-राक्षस वलपूर्वक हरण कर लिया करते हैं।

"आसने पादमारोप्य यो भुङ्क्ते ब्राह्मणः क्वचित।
मुखेन चान्नमश्नाति तुल्यं गोमांस भक्षणैः॥"

(आह्निकतत्त्व)

भोजनके समय ब्राह्मणको धरती पर पैर रख कर भोजन करना चाहिये। आसन पर पैर रख कर भोजन करनेसे वह भोजन गो-मांस-भक्षण-तुल्य हो जाता है।

दोनों पैर धो कर और भूमिमें रख कर पूर्वकी ओर मुंह कर ब्राह्मणको भोजन करना चाहिये।

"आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत प्राङ्मुखश्चासने शुचौः।
पादाभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा पादेनैकेन वा पुनः॥"

(आह्निकतत्त्व)

जो कुछ भोजन किया जाये वह अपने इष्टदेवको अर्पण कर भोजन करना शास्त्रसङ्गत है।

पैर फैला कर भोजन करना मना है। भोजन करनेके पहले अन्नको देख प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद नीचेके मन्त्रसे प्रार्थना करना चाहिये।

"अन्नं दृष्ट्वा प्रणम्यादौ प्राञ्जलिः प्रार्थयेत्ततः।
अस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति भक्त्याथ वन्दयेत्॥"

(आह्निकतत्त्व)

भोजनके समय वैठने पर पहले नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय इन पांचों वाह्य वस्तुओंको पृथ्वीमें अन्न दे कर पीछे भोजन करना चाहिये।

"नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः।
वहिस्था वायवः पञ्च तेषांभूमौ प्रदीयते॥"

(आह्निकतत्त्व)

मौन हो कर भोजन करना चाहिए। पूर्व ओर मुख कर भोजन करनेसे आयु; दक्षिण ओर मुंह कर भोजन करनेसे यशः और प्रत्यङ्मुख भोजन करनेसे श्रीवृद्धि या धनकी वृद्धि होती है। उत्तर ओर मुख कर भोजन करना उचित नहीं है। दक्षिण मुख हो कर वह व्यक्ति भोजन न करे जिसका पिता-माता जीवित हों। कुछ लोगोंका कहना है, कि केवल पिता जीवित रहनेसे ही दक्षिण ओर मुख कर भोजन न खाना चाहिये, माताके सम्वन्धमें कोई नियम नहीं है। किन्तु माता और पिता दोनोंके ही जीवित रहनेसे दक्षिण मुंहका भोजन निषेध है। भोजनसे पहले दोनों हाथ दोनों पैर और मुंह खूव धो कर भोजन करना चाहिये। इसको पञ्चार्द्र कहते हैं, जैसे—

"पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्य्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः।
हस्तौ पादौ तथैवास्यमेषुपञ्चार्द्रता यता॥"

वैद्यक शास्त्रमें लिखा है कि, सवसे पहले नमकीन तथा अदरखवाली वस्तु ही भोजन करना चाहिए। ये हितजनक, अग्निवर्द्धक, रुचिकर और जिह्वा तथा कण्ठशोधक हैं। इसके सम्वन्धमें कुछ लोग कहते हैं, कि नमक पित्तजनक, अदरख और कटुरस भोजन पित्तजनक है, भूखे मनुष्यका पित्त स्वाभाविक रूपसे ही वढ़ा रहता है। ऐसी दशामें नमकीन और अदरख मिश्रित भोजन कैसे युक्तिसंगत हो सकता है? इसकी मीमांसा इस तरह लिखी हुई है, कि आयुर्वेदमें कहे हुए लवणके स्थानमें सैन्धव और चन्दनके स्थानमें रक्तचन्दन आदिका वोध होता है। सैन्धव या नमक त्रिदोषनाशक, इसलिये पित्तवर्द्धक नहीं है। 'द्रव्यगुण'में लिखा है, सैन्धव, नमक, मधुररस, अग्निप्रदीपक पाचक, ल

चिकना, रुचिकर, शीतवीर्य, शुक्रवर्द्धक, सूक्ष्म नेत्र सुखकर और त्रिदोषनाशक है। अदरख कटुरस होने पर भी पित्तवर्द्धक नहीं है और विपाक होने पर मधुर हो जाता है। अतएव भोजनसे पहले नमक या नमकीन वस्तु तथा अदरख या अदरखकी वनी वस्तु भोजन करना चाहिये। ये विशेष उपकारक हैं।

भोजनसे पहले दृष्टिदोष-निवारणके लिये ब्रह्मा आदिका स्मरण करना चाहिये, अर्थात् भोजनके पहले ऐसा समझना चाहिए कि भोजनकी सामग्री, ब्रह्मा, भोजनके छः रस विष्णु तथा भोजन करनेवाले शङ्कर हैं। यह याद कर लेने पर भोजन करनेसे दृष्टिदोष नहीं होता। अञ्जनिसुत महावीरका नाम स्मरण करनेसे भो नेत्रविकार नहीं होता।

"अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।
इति सञ्चिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते॥
अञ्जनागर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्।
दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्॥"

(भावप्रकाश)

भोजनके समय सबसे पहले रसोंमें मधुररस, इसके बाद खट्टे और चरपरे पदार्थ, नमकीन चीजें, फिर कड़वी, इसके उपरान्त तीता और कषाय रसयुक्त वस्तु भोजन करना चाहिये। भोजनके पूर्व दाड़िम या अनार खाना युक्तिसंगत वतलाया गया है, किन्तु केला या ककड़ी फल भोजनसे पहले कभी भोजन न करना चाहिये। कमलकी डण्डी, ईख या कन्द यदि खाना हो, तो भोजनके पहले खा लेना चाहिये, भोजनके वाद नहीं।

गुरुपाक भोजन जैसे पुरि सोहारी आदि भूना हुआ अन्न तथा चिउड़ा आदि भोजन कर लेनेके बाद कभी भोजन न करना चाहिये। यदि परम आवश्यकता हुई, तो बहुत थोड़ा भोजन कर सकते हैं।

भोजन करते समय पहले घी आदि गुरुपाक या कठिन पदार्थ भोजन करना चाहिये। आहारके अन्तमें दही, दूध, आदि द्रव पीना अच्छा है। इस नियमके साथ भोजन करनेसे वल और स्वास्थ्य स्थिर रहता है। भोजनको सामग्रियोंमें इच्छापूर्वक एकके बाद दूसरी चीज रुचिके अनुसार खानी चाहिये।

स्वादु और रुचिकर भोजन मनको आनन्ददायक, बलकारक,पुष्ट, उत्साह तथा परमायुवर्द्धक है; अरुचिकर भोजन इनके विपरीत गुणवाला होता है। अतिशय उष्ण अन्न बलनाशक है। वासी भोजन तथा सूखा हुआ भोजन ठीक नहीं। इसलिए भोजन ऐसा ही करना चाहिये जो न अधिक ठण्डा हो और न अधिक गर्म।

बहुत तेजीसे भोजन करनेसे भोजनकी वस्तुका गुण और दोष जानना कठिन हो जाता है। देरसे भोजनकी सामग्री ठण्डी तथा स्वादुहीन हो जाती है। इसीलिए बहुत जल्दसे तथा बहुत देरसे भोजन करना उचित नहीं।

भोजनमें तीन प्रकारके गुरुद्रव्य होते हैं:—मात्रागुरु, स्वभावसे गुरु, और संस्कारसे हो गुरु, ये तीन प्रकारके द्रव्य गुरुपाक होते हैं। मन्दाग्निवाले मनुष्य इन तीनों प्रकारके भोजनको त्याग करेंगे। इनमेंसे मात्रामें गुरु मूंग आदि अन्न हैं जो अधिक परिमाणमें भोजन करनेसे गुरु हो जाते हैं। किन्तु उड़द आदि अन्न स्वभावसे गुरुपाक हैं और फिर विविध प्रकारकी चीजोंके साथ मिल जानेसे यह और गुरुपाक हो जाते हैं।

आहारीय द्रव्य छः तरहका होता है। चूसनेवाला, पीनेवाला, चाटनेवाला भोजन और चवानेवाला। ये क्रमसे गुरु हैं। चूसनेवाली चीजें,—ईख, अनार आदि। पीनेवाली—पानी, चीनीका शरबत आदि। चाटनेवाली चीजें—मधु आदि। गीली तथा गाढ़ी भोजनकी वस्तुएं भात, दाल आदि। भक्ष्यवस्तु लड्डू पेड़ा आदि जो ग्रास ग्रास खाया जाता है। चबानेवाली चीजोंमें चना चबेना तथा चिउड़ा आदि है। गुरु और लघुकर, रुचि और तृप्तिके अनुसार ही भोजन करना चाहिये। उड़दकी बनी चीजोंको आधी मात्रामें भोजन करना चाहिये और ऐसे ही आटे मैदेकी चीजोंको भी। मूंग आदिकी वनी चीजें स्वाभाविक ही लघु हैं, उन्हें पूर्ण मात्रामें भोजन करना चाहिये। पीनेवाली तरल चीजें और तक्र आदि अधिक मात्रामें मिश्रित भात आदि प्रयोजित होने पर भी उन्हें गुरु नहीं कह सकते। इसीलिये पीनेवाली वस्तुएं सब तरहसे लघु गुणान्वित हैं।

पीनेवाली और लेह्य वस्तु—दोनों ही क्रमसे गुरु

हो सकती हैं। किन्तु अधिक गुरु चबानेवाली ईख वस्तु है। इसलिये पीनेवाली चीजें सबकी अपेक्षा लघुगुणान्वित हैं। तरल-द्रव्यमिश्रित सूखी चीज भी उत्तमरूपसे परिपाक होती है। किन्तु तरल पदार्थके विना मिलाये सूखी चीज भोजन करनेसे उसका उत्तम-रूपसे परिपाक नहीं होता। क्योंकि तरलताके विना वह भोजन कर लेने पर भी पिण्डीका आकार धारण कर लेता है। सूखी चीज चिंउड़ा आदि, दूध, मछली एक साथ भोजन कर लेने पर तथा चना चबेना आदि वस्तुएं जठराग्निको मन्द कर देती है।

ठीक समय पर अधिक मात्रामें भोजन कर लेने पर अथवा अ-समयमें अधिक या कम भोजन करनेको ही 'विषमाशन' कहते हैं। अधिक अन्न भोजन करने पर आलस्य, सामर्थ्य रहते हुए भी अनुत्साह, शरीरमें भारी-पन, पेटका कड़ा हो जाना तथा गड़ गड़ शब्द करना आदि लक्षण दिखाई हैं। मात्रासे कम अन्नभोजन करने-से शरीर कृश तथा बलक्षय होता है। भूख न लगने पर भी अन्नभोजन कर लेने पर सामर्थ्य-विहीन बना देता है और शिरमें दर्द, कभी कभी तो हैजा आदि रोग भी हो जाते हैं। भूख मार कर भोजन करनेसे जठराग्नि वायु द्वारा ताड़ित हो कर भोज्य-वस्तुको देरसे परिपाक करती है और फिर दूसरी वार भोजनकी रुचि नहीं होती।

भोजनके समय पेटके चार भागमें दो भाग अन्नसे भरना चाहिये, एक भाग पानीसे और एक भाग वायुके सञ्चालित होनेके लिये खाली रखना उचित है। इस तरह भोजन करने पर भोज्य वस्तुके परिपाक होनेमें देर नहीं होती।

आहारीय पदार्थोंके रससे पहले (रसनेन्द्रिय) जीभ तृप्त होती है, पर पीछे वारम्वार आहार करने पर आस्वाद नहीं आता। फलतः थोड़ी देर वाद कुछ जल पी लेना उचित है। क्योंकि पानी पीनेसे जीभ धुल जाती और रसास्वाद मिलने लगता है। बीच बीचमें जलपान करनेसे अन्नका परिपाक भी उत्तमरूपसे होता है। अत्यन्त जल पीनेसे अन्नका ठीक तरहसे परिपाक नहीं होता, फिर भोजनके साथ बिलकुल जल न पीनेसे भी पाचनक्रियामें गड़बड़ी हो जाती है। इसीसे वृद्ध-चाणक्यने कहा है,—'भोजनस्यामृतवारि'। इसलिये भोजनके समय जठराग्निको जगानेके लिये बीच बीच-में थोड़ा थोड़ा पानी पी लेना युक्तिसंगत है। भोजनसे पहले जल पी लेनेसे शरीर कृश तथा मन्दाग्नि उत्पन्न हो जाती है। भोजनके बीचमें जल पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होती है। भोजनके पीछे जल पान करनेसे शरीर स्थूल हो जाता और कफकी वृद्धि होती है। वाग्भटमें भी लिखा है,—भोजनके मध्यमें जल पीनेसे शरीर स्थूल अथवा कृश नहीं होता, वह समभावमें दृढ़ रहता है।

पिपासित व्यक्तिके लिये भोजन तथा क्षुधातुर व्यक्तिके लिये पानी—ये दोनों ही हानिकारक हैं, क्योंकि भूखे मनुष्यके जल पी लेनेसे जलोदर रोग तथा पिपासित मनुष्यके अन्न खा लेनेसे गुल्मरोग या प्लीहा आदि उदररोग हो जाते हैं।

कुछ लोग ऐसा प्रश्न कर बैठते हैं, कि नीतिज्ञ पुरुष भी भोजनके अन्तमें दूध पी लिया करते हैं सो यह कैसे युक्तिसंगत हो सकता है? क्योंकि भोजनका समय तीन भागोंमें विभक्त है। इनमें पहला भाग वायुका, दूसरा भाग पित्तका और तीसरा कफका प्रकोपकाल है। इसीलिये भोजन करनेके समय तन्मन हो कर पहले मधुर-रसयुक्त द्रव्य, भोजनके मध्यमें खट्टी और नमकीन चीजें और अन्तमें कड़वे और तिक्त पदार्थ भोजन करनेकी विधि है। भोजन करते समय पहले मधुररस भोजन करने से भोजन करनेवाले मनुष्यको वायु और पित्त प्रशमित हो जाता है। भोजनके बीचमें खट्टे नमकीन आदि पदार्थों-के खानेसे पाचन करनेवाली अग्निकी वृद्धि होती है और भोजनके अन्तमें कड़वी और तिक्त तथा कषाययुक्त पदार्थ भोजन करनेसे कफ नष्ट हो जाता है। अब यह संशय होता है कि, भोजनका अन्त काल कफके प्रकोपका समय है। अतः कफके प्रकोप-समयमें कफ बढानेवाला दूध किस तरह भोजन-संगत हो सकता है? इसका उत्तर यह है, कि मनुष्य अन्न पानी जो सब द्रव्य पदार्थ भोजन करते हैं, उनके दोषको दूध भोजनके अन्तमें पीने-से प्रशमित करता है। ब्रह्मपुराणमें भी कहा गया है, कि भोजनके वाद दूध पीना उचित है। किन्तु भोजनके

अन्तमें दही पीना बिलकुल मना है। नमकीन, खट्टा, कड़वा, गर्म और जो सब विदाही द्रव्य भोजन किया जाता है आहारान्तमें दूध पान करनेसे वे सब दोष शान्त हो जाते हैं। इसलिये भोजनके अन्तमें दुग्धपान युक्तियुक्त है। अतएव समझना होगा, कि भोजनके बाद दुग्धभोजनजनित वृद्धित कफ नमकीन, खट्टा और कटु आदि भोजन-जनितवर्द्धित पित्तको विनष्ट करता है। अतः पित्त विनष्ट हो जाने पर कफ बढ़ानेवाली शक्तिका ह्रास हो जाता है। इसलिये कफ बढ़ नहीं सकता। इस कारण अग्निमान्द्य आदि रोग उत्पन्न नहीं होते। इसलिये भोजनके बाद दुग्धपान अवश्य कर्त्तव्य है।

मनुष्यको चाहिये, कि वह भोजन कर चुकनेके बाद दन्त-छिद्रोंमें लगे हुए अन्न-कणको तृणखण्ड द्वारा निकाल डाले। इसके बाद जलसे अच्छी तरह कुल्ली कर मुखको साफ कर ले। ऐसा न करनेसे दांतोंमें सटा अन्न सड़ जाता और उससे बदबू निकलने लगती है। कुल्ला कर लेने पर दोनों नेत्रोंको भी जलसे धो डालना चाहिए। इससे नेत्रोंको बड़ा लाभ पहुंचता है। इसके बाद नित्य भोजन उत्तमरूपसे पच जानेके लिये अगस्त्यादि महात्माओंका नाम इस तरह स्मरण करना चाहियेः—विष्णु आत्मा हैं, विष्णु अन्न हैं और विष्णु परिपाक करनेवाले हैं, इसलिए विष्णु मेरे किये हुए भोज्य पदार्थको उत्तररूपसे परिपाक करें। अगस्ति, अग्नि और बडवानल ये सब मेरे किये हुए भोजनको ठीकसे पचावें और मुझे परिपाक सुखसे सुखी बना कर मेरे शरीरको निरोग रखें।

अङ्गारक, अगस्त्य, वैश्वानर, सूर्य और अश्विनीकुमार इन पांच नामोंका प्रत्येक दिन भोजनके बाद स्मरण करना चाहिये। क्योंकि इन नामोंके स्मरण करनेसे भोजन किया हुआ पदार्थ शीघ्र ही परिपाक होता है। इन नामोंके स्मरण करते हुए पेट पर हाथ फेरना चाहिए। भोजनके बाद तुरत ही सो जाना उचित नहीं। क्योंकि ऐसा करनेसे जठराग्नि मन्द पड़ जाती है और कफ कुपित हो जाता है। भोजनके बाद पान खाना भी विशेष उपकारक है। (भावप्रकाश)

स्मृतिमें लिखा है, कि भोजनके बाद बैठ कर बायें हाथसे पेट पर हाथ फेरना चाहिये। मन्त्र यह है,—

"ॐ अग्निराप्याययत्वन्नं पार्थिवं पवनेरितः।
दत्तावकाशो नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम्॥
अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च।
भवत्वेतत् परिणतो ममास्त्व व्याहितं सुखम्॥
प्राणापानसमानानामुदान व्यान योस्तथा।
अन्नं तुष्टिकरञ्चास्तु ममास्त्वव्याहतं सुखम्॥
अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं ममान्नं जरयत्वशेषम्।
सुखं ममै तत् परिणामसम्भवं यच्छत्वरोगं मम चास्तु देहे॥
विष्णुः समस्तेन्द्रियदेहदेहि प्रधानभूतो भगवान् यथैकः।
सत्येन तेनान्नमशेषमेतहदारोग्यदं मे परिणाममेतु॥
विष्णुरत्ता तथैवान्नं परिणामश्च वै यथा।
सत्येन तेन मद्भुक्तं जीर्य्यत्वन्नमिदं तथा॥"

यही मन्त्र पाठ कर सौ कदम टहलना चाहिये। इसके बाद बाईं करवट जरा लेट जाना चाहिये। इसके बाद पान खाना चाहिये।

भोजनके दोषसे अग्निमान्द्य हो कर नाना तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। इसीलिए भोजनके सम्बन्धमें शास्त्रमें भोजनके त्रिविध दोष वर्णित हैं;—दृष्टद्वारक, अदृष्टद्वारक और दृष्टादृष्टद्वारक। मछली खानेके बाद दूध पीना दृष्टद्वारक स्मृतिमें जो वर्जित है, वह अदृष्टद्वारक तथा स्मृति और आयुर्वेद दोनोंमें वर्जित है वह दृष्टादृष्टद्वारक है। ये तीनों निषिद्ध भोजन कभी न करना चाहिए। इन्हीं तीनोंके कारण शरीरमें कई तरहके रोग हो जाते हैं। अतएव भोजनके प्रति विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। (आह्निकतत्त्व)

सुश्रुतमें भोजनके सम्बन्धमें लिखा है,—मधुररस पहले, लवणरस मध्यमें और अन्यान्य रस अंतमें भोजन करना चाहिये। पहले अनार, इसके बाद पानीय-पदार्थ तथा इसके उपरान्त भोज्य पदार्थ भोजन करना चाहिए। कुछ लोग इसके विपरीत कहते हैं। उनका कहना है,—गाढ़ पदार्थ सबसे पहले भोजन करना चाहिये। भोजनके प्रारम्भमें हो या मध्यमें या अन्तमें, फलोंमें स्वास्थ्यवर्द्धक तथा दोषनाशक फल आंवला ही भोजन करना चाहिये। मृणाल वा कमलकी डंडी, शालू, कन्द,

ऊख आदि भोजन करनेसे पहले ही खा लेना या चौभ लेना चाहिये। भोजनके बाद कभी न भोजन करना चाहिये।

भूखे मनुष्य ठीक समय पर उच्च आसन पर सम-भावसे बैठ कर भोजनके परिमाण आदिका विचार कर अपने स्वभावके अनुसार स्निग्ध, द्रव्य, प्रधान, लघु और उष्ण-द्रव्य जल्द-जल्द भोजन करना चाहिए। इस तरह ठीक समय पर भोजन करनेसे तृप्ति होती है और भोजन करनेवाले मनुष्यको पीड़ादायक नहीं होता लघु पदार्थ शीघ्र ही परिपाक हो जाता है। जल्द भोजन करनेसे भोज्य-पदाथ एक साथ ही परिपाक होता। हैं। दोषशून्य प्रधान भोजन सहज ही पच जाता हैं। नियमतः किया हुआ भोजन धातुओंको बराबर भाग विभाजित करता है। जिन ऋतुओंमें रात बड़ी होती है, उन ऋतुओंमें ऋतुदोषको मिटानेवाली चीजोंका नित्य प्रातःकाल सेवन करना चाहिये। फिर जिन ऋतुओंमें दिन बड़े होते हैं, उन दिनोंमें तत्कालिक वस्तुओंको नित्य अपराह्नमें भोजन करना चाहिये। जिस ऋतुमें दिन-रात बराबर होती हैं, उस ऋतुमें अहोरात्र बराबर भागोंमे बांट कर ठीक समय पर भोजन करना चाहिये। भूख न रहने पर या भूख मर जाने पर कभी भोजन नहीं करना चाहिये। नियमित समय पर भोजन करना उत्तम है। भूख न रहने पर भोजन कर लेने पर शरीरमें कई तरहके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि उस समय शरीर हलका नहीं रहता और तो क्या, मृत्यु तक हो जा सकती है। भूख बीत जाने पर जठराग्नि वायुसे भरी रहती है। अतएव उस समय भोजन करनेसे भोज्य-अन्न कठिनतासे परिपाक होता है। फिर दूसरी बार भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती। अल्प भोजन करनेसे सन्तोष नहीं होता और बलक्षय होता है। अधिक खा लेने पर शरीर आलसी, भारी और सुस्त हो जाता है। अतएव दिन रातका समय और दोषादिका विभाग कर दोषशून्य गुण सम्पन्न सुन्दर परिपक्व भोजन करना चाहिये।

निःसार, दोषयुक्त, जूठा करंड-पथर, धूली धूसर तथा बासी अन्न कभी भी भोजन न करना चाहिये। अधिक सिद्ध तथा कच्चा अन्न और अत्यन्त गर्म तथा अधकचा भोजन करना वर्जित है। ठण्डे भोजनको फिर गर्म कर भोजन करना और भी हानिकारक है भोजनके बीच बीचमें तथा भोजनके शेषमें पानी पी लेना हानिकारक नहीं है।

भोजन करने पर भोजन करनेका श्रम जब तक विदूरित न हो, तब तक राजाकी तरह बैठा रहना चाहिये। इसके बाद सौ कदम चल कर बाईं करवट लेटना उचित है। भोजनोपरान्त अभिलषित शब्द सुनना, स्पर्श करना और रूप-रस-गन्धका सेवन करना अत्युत्तम है। अप्रिय कर्णकटु शब्द सुनना या अस्पर्श आदिका छूना और अपवित्र अन्न भोजन करनेसे या भोजनके बाद अधिक हसनेसे कै हो जानेका डर रहता है। इसलिये उपयुक्त कार्य नहीं होने चाहिये। गीले वा पानीय पदार्थ अधिक और अन्न कम भोजन कर बैठना या सोना न चाहिये। भोजनके बाद आग तापना, तैरना, सवारी पर चढ़ कर घूमना फिरना उचित नहीं। एक बार केवल एक रस वा एक साथ ही कई रसोंका भोजन करना युक्तिसंगत नहीं। एक बार भोजन करके जब तक वह उचित रूपसे पच न जाये तब तक फिर भोजन न करना चाहिये। उलटी खट्टी डकारें आना, हियका जलना तथा जी मिचलाना अपरिपक्वताका द्योतक है। अतः ऐसी दशामें दुबारा भोजन करनेसे अग्निमान्द्य हो जाता है। उड़द आदिके बने बरे आदि गरीष्ठ भोजन तथा अधिक भोजन न करना चाहिये। मिष्टान्न भोजन नहीं करना चाहिये, या थोड़ा-सा खा कर दूने तीगुने जल न पी लेना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे भी अग्नि मन्द पड़ जाती है।

गुरुपाक भोजन थोड़ा ही खाना हितकर है। किन्तु लघुपाक भोजन पेट भर खाया जा सकता है। अत्यन्त द्रव पदार्थ कितना ही भोजन कर लेने पर भी गुरुपाक नहीं होता।

पिण्डी या असम्यकरूपसे थकावट रहने पर भोजन करनेसे अन्नवाही नलिकामें पित्त जमा रहने पर या अन्य किसी 'विदाही' अन्नका भोजन करने पर अन्न विदग्ध हो जाता है। सूखा, जला हुआ, कठोर अन्न भोजन करने

पर अग्निका नाश होता है। कच्चा, जला और विदग्ध अन्न वात, पित्त और कफके साथ अजीर्ण रोग उत्पन्न करता है। बहुत अधिक जलपान करनेसे, असमयमें भोजन करनेसे, मलमूत्रका वेग रोकनेसे, समय पर न सोनेसे, लघु और स्वाभाविक अन्न भोजन करनेसे भी उचितरूपसे परिपाक नहीं होता।

हिताहितका विचार कर जो भोजन किया जाता है उसको समशन कहते हैं। अधिक हो या थोड़ा हो, अ-समय परका भोजन विषमाशन तथा एक बारका किया हुआ भोजन अच्छी तरहसे परिपाक न होने पर भी भोजन करना अध्यशन कहलाता है। समशन, विषमाशन और अध्यशन ये तीनों अहिताचार द्वारा जीवन क्षय होता है अथवा नाना प्रकारकी पीड़ायें उत्पन्न होती हैं। अन्न विदग्ध होने पर शीतल जल पीनेसे वह परिपाक होता है। शीतलता द्वारा पित्तका नाश होता है तथा अन्न कुछ पच कर नीचेकी ओर जाता है। भोजन करते ही यदि हृदय, कण्ठ और गला जलने लगे तो अदरख, छोटी हरें तथा छोटी हरेंकी बुकनी या चूर्ण मधुके साथ मिला कर चाटना चाहिये। ऐसा करनेसे विशेष उपकार होगा। (सुश्रुत)

भोजनसे उत्पन्न अजीर्ण होने पर रोगाधिकारमें लिखे हुए नियमानुसार औषध सेवन करना उपयुक्त होगा। अजीर्ण देखो। शास्त्रमें भोजनके सम्बन्धमें विशेष रुकावटें हैं। क्योंकि केवल भोजनसे भी मनुष्यका स्वभाव बदल जाता है। विष्णुपुराणमें भोजनके सम्बन्धमें यों लिखा है—

"स्नातो यथावत् कृत्वा च देवर्षि पितृ तर्पणम्।
प्रशस्त रत्नपाणिस्तु भुञ्जीत प्रयतो गृही॥"

(विष्णुपुराण ३।११।७४)

गृहस्थको स्नानके बाद यथाविधि देवर्षि तथा पितृतर्पण करना उचित है। इसके बाद रत्नकी अंगूठी पहन कर भोजन करना चाहिये। पहले अतिथि, ब्राह्मण, गुरु और अपने आश्रित व्यक्तियोंको भोजन करा कर सबसे पीछे आप भोजन करे। भोजन करते समय हाथ मुंह धो कर उत्तर या पूर्वकी ओर मुंह कर भोजन करना उत्तम है। भोजनके समय उल्टङ्ग तथा उदास होना उचित नहीं। विदिङ्मुख अर्थात् दो कोनों के बीचकी दिशाकी ओर मुख करके न बैठना चाहिये। पहले अन्नको जल द्वारा वेष्टित करना चाहिये। निन्दित या बुरे आदमीके लाये हुए भोजन और जो अधकच्चा तथा अशुद्ध है, ऐसा भोजन न खाना चाहिये। अन्नका कुछ भाग शिष्य तथा भूखे मनुष्यको दे कर विशुद्धपात्र में भोजन करना उचित है। तिपाई पर थाली रख कर, बुरे और तंग स्थानमें या असमयमें भोजन करना उचित नहीं। अन्नका अग्रभाग अग्निको दिये विना भोजन न करना चाहिये। फल, मांस और शाकसब्जी—ये सब सूख जाने पर अभोज्य हैं। बासी अन्न कभी भी न खाना चाहिये। सूखा बेर और सूखा पकान्न कभी न भोजन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको मधु, दधि, खट्टा, घृत और सत्तूके सिवा कोई भी वस्तु निःशेषरूपसे न खा लेनी चाहिये। तन्मय हो कर भोजन करना चाहिये। पहले कटु तीत, बीचमें नमकीन और खट्टे तथा अन्तमें मीठे पदार्थ खाने चाहियें। जो मनुष्य पहले द्रव पदार्थ बीचमें कठिन और अन्तमें फिर द्रव पदार्थ चीजें खाते हैं, उनके शरीरका बल नहीं घटता तथा उनका स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता है। इसी तरह नियमसे अनिन्दित भोजन करना आवश्यक है। प्राणादि पञ्चवायुकी तुष्टिके लिये भोजन करते समय मौनावलम्बी रहना चाहिये। जो पदार्थ भोजन कर लिया गया, उसकी निन्दा करना सर्वथा वर्जित है। भोजनके प्रथम पांच ग्रासमें महामौनी होना चाहिये और तो क्या हुङ्कार आदि भी करे। भोजनके अन्तमें आचमन कर पूर्व या उत्तर मुंह हो कर दोनों हाथोंको ऊपरसे धो डालना चाहिये। इसके बाद फिरसे आचमन करना उचित है।

भोजनके बाद बैठ कर यह प्रार्थना करे, कि वायु द्वारा वर्द्धित अग्नि आकाश द्वारा दत्तावकाश मेरे अन्नको पचावें। अन्न पच जानेके बाद इसी अन्नसे मेरे शरीरके पार्थिव परिपुष्ट हो कर मेरे सुखकी वृद्धि हो। यह अन्न प्राण, अपान, समान, उदान, और व्यान इन पांचों प्राणोंको पुष्ट करके मेरे स्वास्थ्यको बढ़ावे।

गृहस्थको प्रतिदिन स्वेच्छानुसार अन्न पृथ्वी पर

अशेष प्राणियोंको दे कर इस तरह चिंता करनी चाहिये,— देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिंह, यक्ष उरग, दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष और अन्यान्य जो सब जीव मेरे अन्नके इच्छुक हैं और चीटियां, कीड़े, पतङ्ग आदि जो कर्मबंधनमें आवद्ध हैं और भूखे हैं, मैं उन लोगोंके लिये यह अन्न पृथ्वी पर छोड़ता हूं। इससे सभी परितृप्त और सुखी हों। जिनके माता, पिता और बंधु नहीं हैं और भोजन तय्यार करनेका कोई उपाय नहीं है तथा तय्यार करनेके लिये अन्न भी नहीं है, मैं उनकी तृप्तिके लिये पृथ्वी पर अन्न छोड़ता हूं। वे इस अन्न द्वारा तृप्त तथा हर्षान्वित हों। निखिल जीव, यह अन्न और मैं, सभी विष्णुस्वरूप हैं। क्योंकि विष्णुके सिवा जगत्में और कुछ नहीं है। मैं समस्त जीव स्वरूप हूं इसीलिये मैंने समूचे प्राणियोंकी तृप्तिके लिये अन्न प्रदान किया। अव सभी सन्तोष लाभ करें। गृहस्थको चाहिये, वह इसी तरह मन्त्र पाठ कर श्रद्धाके साथ भूतोंके उपकारके लिये पृथ्वीमें अन्न दें। क्योंकि गृहस्थ ही सभी आश्रमों तथा प्राणियोंका आश्रयस्थल है। इसके बाद कुत्ता, चाण्डाल, पशुपक्षी, पापी और अपात्र मनुष्यको तृप्तिके लिये भी पृथ्वी पर अन्न छोड़ना अत्यावश्यक है।

इन सब कामोंके वाद गृहस्थको भोजन करना चाहिये। (विष्णुपुराण ३।११ अध्याय) प्रायः सभी पुराणोंमें भोजनके सम्बन्धमें विस्तृत रूपसे वर्णित है। स्थानाभावसे अधिक वर्णन नहीं दिया जा सका।

भोजनमें वर्जित वस्तुएं—

"ताम्रपात्रे पयः पानमुच्छिष्टे घृतभोजनम्।
दुग्धे च लवणं दद्यात् सद्यो गोमांसभक्षणम्॥
यः शूद्रेण समाहूतो भोजनं कुरुते द्विजः।
सुरापश्च स विज्ञेयः सर्वधर्मवहिष्कृतः॥
स्नानं रजकतीर्थेषु भोजनं गणिकालये।
शयनं पूर्वपादे च ब्रह्महत्या दिने दिने॥"

(कर्मलोचन)

तांबेके वरतनमें दूध पीने, जूठमें घी और दूधमें नमक खानेसे गोमांसभक्षणका पातक लगता है। जो ब्राह्मण शूद्र द्वारा आमन्त्रित हो भोजन करता है, वह सुरापानका दोषी वन सब धर्मोंसे वहिष्कृत होता है। रजक तीर्थस्थान या 'धोवीघाट' पर स्नान करने या वेश्याके यहां भोजन करने पर और पूर्वकी ओर पैर फैला कर सोने पर उसे नित्य ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

अन्नप्राशन शब्द देखो।

भोजनके तीन भेद हैं,—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

सात्त्विक भोजन—जिस आहारसे आयु, सत्त्व, वल, आरोग्य, उत्साह, सुख और प्रीति उत्पन्न हो और रस तथा स्नेहयुक्त, दीर्घकालका स्थायी रहनेवाला मनोहर भोजनको सात्विक भोजन कहते हैं।

राजसिक भोजन—वहुत कड़वा, वहुत खट्टा, अधिक नमकीन, वहुत गर्म, वहुत तेज, विदाही तथा रोग और शोकको वढ़ानेवाला भोजन राजसिक भोजन कहा जाता है।

तामसिक भोजन—तैयार होनेके वाद सूखा, वासी, जूठा, गन्धयुक्त भोजनको तामसिक भोजन कहते हैं। ये तीन प्रकारके भोजन सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रकृतिवाले लोगोंके लिये क्रमसे प्रिय हैं।

सात्त्विक प्रकृतिवाले पुरुष तामसिक भोजन करते करते तामसिक प्रकृतिवाले वन जाते हैं। इसलिये जो पुरुष इहलौकिक और पारलौकिक कल्याणकी कामना करते हैं; उनको सदा भोजनके प्रति सतर्क रहना चाहिये। भगवान् मनुने भी कहा है—

"आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति॥"

आलस्य और अन्नदोषसे ही मनुष्य अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं। इसलिये प्रत्येक बुद्धिमान्का कर्त्तव्य है, कि वे अपने भोजनके प्रति विशेष दृष्टि रखें।

भोजनकाल (सं० पु०) भोजनस्य कालः। भोजनका समय।

भोजनगर (सं० क्ली०) भोजस्य नगरं। भोजदेशस्थित नगर, धारापुर।

भोजनत्याग (सं० पु०) भोजनस्य त्यागः ६-तत्। भोजन-परित्याग, भोजन छोड़ कर उठ जाना। एक पंक्तिमें भोजन करनेवालोंमें यदि कोई उठ जाय तो उस पंक्तिके सभी लोगोंको भोजन त्याग करना ही विधेय है।

(स्मृति)

पर अग्निका नाश होता है। कच्चा, जला और विष्टब्ध अन्न वात, पित्त और कफके साथ अजीर्ण रोग उत्पन्न करता है। बहुत अधिक जलपान करनेसे, असमयमें भोजन करनेसे, मलमूत्रका बेग रोकनेसे, समय पर न सोनेसे, लघु और स्वाभाविक अन्न भोजन करनेसे भी उचितरूपसे परिपाक नहीं होता।

हिताहितका विचार कर जो भोजन किया जाता है उसको समशन कहते हैं। अधिक हो या थोड़ा हो, अ-समय परका भोजन विषमाशन तथा एक बारका किया हुआ भोजन अच्छी तरहसे परिपाक न होने पर भी भोजन करना अध्यशन कहलाता है। समशन, विषमाशन और अध्यशन ये तीनों अहिताचार द्वारा जीवन क्षय होता है अथवा नाना प्रकारकी पीड़ायें उत्पन्न होती हैं। अन्न विदग्ध होने पर शीतल जल पीनेसे वह परिपाक होता है। शीतलता द्वारा पित्तका नाश होता है तथा अन्न कुछ पच कर नीचेकी ओर जाता है। भोजन करते ही यदि हृदय, कण्ठ और गला जलने लगे तो अदरख, छोटी हर्रे तथा छोटी हर्रेकी बुकनी या चूर्ण मधुके साथ मिला कर चाटना चाहिये। ऐसा करनेसे विशेष उपकार होगा। (सुश्रुत)

भोजनसे उत्पन्न अजीर्ण होने पर रोगाधिकारमें लिखे हुए नियमानुसार औषध सेवन करना उपयुक्त होगा। अजीर्ण देखो। शास्त्रमें भोजनके सम्बन्धमें विशेष रुकावटें हैं। क्योंकि केवल भोजनसे भी मनुष्यका स्वभाव बदल जाता है। विष्णुपुराणमें भोजनके सम्बन्धमें यों लिखा है—

"स्नातो यथावत् कृत्वा च देवर्षि पितृ तर्पणम्।
प्रशस्त रत्नपाणिस्तु भुञ्जीत प्रयतो गृही॥"

(विष्णुपुराण ३।११।७४)

गृहस्थको स्नानके बाद यथाविधि देवर्षि तथा पितृ-तर्पण करना उचित है। इसके बाद रत्नकी अंगूठी पहन कर भोजन करना चाहिये। पहले अतिथि, ब्राह्मण, गुरु और अपने आश्रित व्यक्तियोंको भोजन करा कर सबसे पीछे आप भोजन करे। भोजन करते समय हाथ मुंह धो कर उत्तर या पूर्वको ओर मुंह कर भोजन करना उत्तम है। भोजनके समय उत्कण्ठ तथा उदास होना उचित नहीं। विदिङ्मुख अर्थात् दो कोनों के बीचकी दिशाकी ओर मुख करके न बैठना चाहिये। पहले अन्नको जल द्वारा वेष्टित करना चाहिये। निन्दित या बुरे आदमीके लाये हुए भोजन और जो अधकचा तथा अशुद्ध है, ऐसा भोजन न खाना चाहिये। अन्नका कुछ भाग शिष्य तथा भूखे मनुष्यको दे कर विशुद्धपात्र में भोजन करना उचित है। तिपाई पर थाली रख कर, बुरे और तंग स्थानमें या असमयमें भोजन करना उचित नहीं। अन्नका अग्रभाग अग्निको दिये विना भोजन न करना चाहिये। फल, मांस और शाकसब्जी—ये सब सूख जाने पर अभोज्य हैं। बासी अन्न कभी भी न खाना चाहिये। सूखा बेर और सूखा पक्वान्न कभी न भोजन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको मधु, दधि, खट्टा, घृत और सत्तूके सिवा कोई भी वस्तु निःशेषरूपसे न खा लेनी चाहिये। तन्मय हो कर भोजन करना चाहिये। पहले कटु तीत, बीचमें नमकीन और खट्टे तथा अन्तमें मीठे पदार्थ खाने चाहिये। जो मनुष्य पहले द्रव पदार्थ बीचमें कठिन और अन्तमें फिर द्रव पदार्थ चीजें खाते हैं, उनके शरीरका बल नहीं घटता तथा उनका स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता है। इसी तरह नियमसे अनिन्दित भोजन करना आवश्यक है। प्राणादि पञ्चवायुकी तुष्टिके लिये भोजन करते समय मौनावलम्बी रहना चाहिये। जो पदार्थ भोजन कर लिया गया, उसकी निन्दा करना सर्वथा वर्जित है। भोजनके प्रथम पांच ग्रासमें महामौनी होना चाहिये और तो क्या हुङ्कार आदि भी करे। भोजनके अन्तमें आचमन कर पूर्व या उत्तर मुंह हो कर दोनों हाथोंको ऊपरसे धो डालना चाहिये। इसके बाद फिरसे आचमन करना उचित है।

भोजनके बाद बैठ कर यह प्रार्थना करे, कि वायु द्वारा वर्द्धित अग्नि आकाश द्वारा दत्तावकाश मेरे अन्नको पचावें। अन्न पच जानेके बाद इसी अन्न-से मेरे शरीरके पार्थिव परिपुष्ट हो कर मेरे सुखकी वृद्धि हो। यह अन्न प्राण, अपान, समान, उदान, और व्यान इन पांचों प्राणोंको पुष्ट करके मेरे स्वास्थ्यको बढ़ावे।

गृहस्थको प्रतिदिन स्वेच्छानुसार अन्न पृथ्वी पर

अशेष प्राणियोंको दे कर इस तरह चिंता करनी चाहिये,—देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिह, यक्ष उरग, दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष और अन्यान्य जो सब जीव मेरे अन्नके इच्छुक हैं और चीटियां, कीड़े, पतङ्ग आदि जो कर्मबंधनमें आवद्ध हैं और भूखे हैं, मैं उन लोगोंके लिये यह अन्न पृथ्वी पर छोड़ता हूं। इससे सभी परितृप्त और सुखी हों। जिनके माता, पिता और बंधु नहीं हैं और भोजन तय्यार करनेका कोई उपाय नहीं है तथा तय्यार करनेके लिये अन्न भी नहीं है, मैं उनकी तृप्तिके लिये पृथ्वी पर अन्न छोड़ता हूं। वे इस अन्न द्वारा तृप्त तथा हर्षान्वित हों। निखिल जीव, यह अन्न और मैं, सभी विष्णुस्वरूप हैं। क्योंकि विष्णुके सिवा जगत्में और कुछ नहीं है। मैं समस्त जीव स्वरूप हूं इसीलिये मैंने समूचे प्राणियोंकी तृप्तिके लिये अन्न प्रदान किया। अब सभी सन्तोष लाभ करें। गृहस्थको चाहिये, वह इसी तरह मन्त्र पाठ कर श्रद्धाके साथ भूतोंके उपकारके लिये पृथ्वीमें अन्न दें। क्योंकि गृहस्थ ही सभी आश्रमों तथा प्राणियोंका आश्रयस्थल है। इसके बाद कुत्ता, चाण्डाल, पशुपक्षी, पापी और अपात्र मनुष्यको तृप्तिके लिये भी पृथ्वी पर अन्न छोड़ना अत्यावश्यक है।

इन सब कामोंके बाद गृहस्थको भोजन करना चाहिये। (विष्णुपुराण ३।११ अध्याय) प्रायः सभी पुराणोंमें भोजनके सम्बन्धमें विस्तृत रूपसे वर्णित है। स्थानाभावसे अधिक वर्णन नहीं दिया जा सका।

भोजनमें वर्जित वस्तुएं—

"ताम्रपात्रे पयः पानमुच्छिष्टे घृतभोजनम्।
दुग्धे च लवणं दद्यात् सद्यो गोमांसभक्षणम्॥
यः शूद्रेण समाहूतो भोजनं कुरुते द्विजः।
सुरापश्च स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥
स्नानं रजकतीर्थेषु भोजनं गणिकालये।
शयनं पूर्वपादे च ब्रह्महत्या दिने दिने॥"

(कर्मलोचन)

तांबेके बरतनमें दूध पीने, जूठमें घी और दूधमें नमक खानेसे गोमांसभक्षणका पातक लगता है। जो ब्राह्मण शूद्र द्वारा आमन्त्रित हो भोजन करता है, वह सुरापानका दोषी बन सब धर्मोंसे बहिष्कृत होता है। रजक तीर्थस्थान या 'धोबीघाट' पर स्नान करने या वेश्याके यहां भोजन करने पर और पूर्वकी ओर पैर फैला कर सोने पर उसे नित्य ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

अन्नप्राशन शब्द देखो।

भोजनके तीन भेद हैं,—सात्विक, राजसिक और तामसिक।

सात्विक भोजन—जिस आहारसे आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, उत्साह, सुख और प्रीति उत्पन्न हो और रस तथा स्नेहयुक्त, दीर्घकालका स्थायी रहनेवाला मनोहर भोजनको सात्विक भोजन कहते हैं।

राजसिक भोजन—बहुत कड़वा, बहुत खट्टा, अधिक नमकीन, बहुत गर्म, बहुत तेज, विदाही तथा रोग और शोकको बढ़ानेवाला भोजन राजसिक भोजन कहा जाता है।

तामसिक भोजन—तैयार होनेके बाद सूखा, वासी, जूठा, गन्धयुक्त भोजनको तामसिक भोजन कहते हैं। ये तीन प्रकारके भोजन सात्विक, राजसिक और तामसिक प्रकृतिवाले लोगोंके लिये क्रमसे प्रिय हैं।

सात्त्विक प्रकृतिवाले पुरुष तामसिक भोजन करते करते तामसिक प्रकृतिवाले बन जाते हैं। इसलिये जो पुरुष इहलौकिक और पारलौकिक कल्याणकी कामना करते हैं, उनको सदा भोजनके प्रति सतर्क रहना चाहिये। भगवान् मनुने भी कहा है—

"आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति॥"

आलस्य और अन्नदोषसे ही मनुष्य अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं। इसलिये प्रत्येक बुद्धिमान्का कर्त्तव्य है, कि वे अपने भोजनके प्रति विशेष दृष्टि रखें।

भोजनकाल (सं० पु०) भोजनस्य कालः। भोजनका समय।

भोजनगर (सं० क्लो०) भोजस्य नगरं। भोजदेशस्थित नगर, धारापुर।

भोजनत्याग (सं० पु०) भोजनस्य त्यागः ६-तत्। भोजनपरित्याग, भोजन छोड़ कर उठ जाना। एक पंक्तिमें भोजन करनेवालोंमें यदि कोई उठ जाय तो उस पंक्तिके सभी लोगोंको भोजन त्याग करना ही विधेय है।

(स्मृति)

भोजनपात्र (सं० क्ली०) भोजनस्य पात्रं। भक्ष्यद्रव्याधार, वह पात्र जिसमें भोजन किया जाता है।
भोजन देखो।

भोजनभट्ट (हिं० पु०) वह जो बहुत अधिक खाता हो, पेटू।

भोजनभाण्ड (सं० क्ली०) भोजनस्य भाण्डं। भोजनका भाण्ड, भोजनपात्र।

भोजनरेन्द्र (सं० पु०) १ काश्मीरके एक राजा। (राजतर० ७।२५९) २ भोजराज।

भोजनवृत्ति (सं० स्त्री०) १ भोजन-व्यवसाय। २ खाद्य।

भोजनवेला (सं० स्त्री०) भोजनस्य वेला। भोजनकाल, खानेका समय।

भोजनव्यग्र (सं० पु०) भोजने व्यग्रः। भोजनविषयमें व्यग्र, पेटू।

भोजनशाला (सं० स्त्री०) पाकशाला, रसोईघर।

भोजनाच्छादन (सं० पु०) अन्न वस्त्र, खाना कपड़ा।

भोजनाधिकार (सं० पु०) भोजने अधिकारः। भोजन-विषयमें अधिकार।

भोजनानन्द—अद्वैतदर्पणटीकाके रचयिता।

भोजनार्ह (सं० क्ली०) शालिधान्य।

भोजनालय (सं० पु०) पाकशाला, रसोईघर।

भोजनीय (सं० त्रि०) भुज्-अनीयर्। भोजनयोग्य, खाने लायक।

भोजनृपति (सं० पु०) भोजदेव। भोजराज देखो।

भोजपति (सं० पु०) भोजानां भोजवंशीयानां पतिः। १ कंसराज। २ भोजराज, भोजदेशाधिपति।

भोजपत्र (हिं० पु०) एक प्रकारका मझोले आकारका वृक्ष। भूर्जपत्र देखो।

भोजपरीक्षक (सं० पु०) रसोईकी परीक्षा करनेवाला।

भोजपुर (सं० क्ली०) भोजस्य भोजराजस्य पुरम्। १ स्वनाम-ख्यात-देश, राजा भोजका नगर। २ प्राचीन मगधके अन्तर्गत देशभेद। प्रवाद है, कि जरासन्धकी राजधानी राजगृहमें आते समय श्रीकृष्णने यहां पदार्पण किया था। यहांके अधिवासियोंकी भाषा भोजपुरी कहलाती है जो मागधी प्राकृतसे बिलकुल स्वतन्त्र है।

भोजपुर—मध्यभारतके भूपाल राज्यका एक ग्राम। यह अक्षा० २३° ६' उ० तथा देशा० ७०° ३८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या २३७ है।

भोजपुर—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८° ५७' उ० तथा देशा० ७८° ५२' पू० मुरादाबाद नगरसे ४ कोस उत्तरमें अवस्थित है।

२ बङ्गालके शाहाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ३५' ८" उ० तथा देशा० ८४° ६' ४८" पू०के मध्य अवस्थित है।

३ बम्बईप्रदेशके नासिक जिलान्तर्गत एक नगर। यहांके गिरिदुर्गमें खण्डोवाका गुहा-मन्दिर विद्यमान है।

भोजपुरिया (हिं० पु०) १ भोजपुरका निवासी, भोजपुरका रहनेवाला। (वि०) २ भोजपुर संबंधी, भोजपुरका।

भोजपुरी (सं० स्त्री०) १ भोजराजकी राजधानी। २ भोज-पुरकी भाषा। (पु०) ३ भोजपुरका निवासी। (वि०) ४ भोजपुर संबंधी, भोजपुरका।

भोजभद्र—विदर्भके राजा। आपका जन्म ईसवी सन्‌के ५६ वर्ष पहले हुआ था। आपने नागार्जुनकी वक्तृता और धर्मव्याख्या सुन कर बौद्धधर्म ग्रहण किया था।

भोजयितृ (सं० त्रि०) भुज्-णिच् कर्त्तरि तृच्। भोजन-कारयिता, भोजन करानेवाला।

भोजयितव्य (सं० त्रि०) भुज्-णिच् तव्य। भोजन करानेके योग्य।

भोजराज—कान्यकुब्ज आधुनिक नाम कन्नौजके एक विख्यात राजा। ये महाराजाधिराज राम-भद्रदेवके पुत्र थे। प्राचीन समयमें एक बार समग्र उत्तर-भारत इन्हीं महाराजाधिराजके अधिकारमें था। राजतरङ्गिणीसे मालूम होता है, कि एक समय इन्होंने काश्मीर तक अधिकार स्थापित किया था। महोवा, ग्वालियर और देवगढ़के शिलालेखोंसे मालूम होता है, कि इन्होंने ८६२ से ८८३ ई० तक राज्य किया था। इनकी उपाधि थी आदिवराह। इसी नाम आदिवराहसे मुद्रा भी उसी समय प्रचलित होती थी यह बात सीयडीनीके शिलालेखसे प्रकट होता है। इनके पुत्र तथा उत्तरा-धिकारी महाराजधिराज महेन्द्रपाल थे।

भोजराज—मालवाके परमारवंशी एक सुप्रसिद्ध राजा। यह राजा विद्वानोंसे पूजित होता था। इसका

नाम धाराधीश्वर प्रसिद्ध था। कीर्त्तिकौमुदी, सुकृत संकीर्त्तन, मेरुतुङ्गके प्रवन्धचिन्तामणि और वल्लाल पण्डितके भोजप्रबंधसे विद्योत्साही भोजराजका कुछ कुछ परिचय मिलता है।

भोजप्रबंधमें लिखा है—धारा नाम्नी नगरीमें सिंधुल नामका एक राजा और सावित्रि नामकी उसकी एक रानी थी। बुढ़ापेमें राजाको एक लड़का उत्पन्न हुआ। इसी लड़केका नाम भोज हुआ। जिस समय राजा सिंधुलका अंतिम काल उपस्थित हुआ, उस समय भोजकी उम्र कुल पांच वर्ष की थी। पांच वर्षके इस वालकको किस तरह राज्यभार सौंपा जाये, राजा इसीकी चिन्तामें मग्न था। अन्तमें उसने निश्चय किया, कि राज-काजका भार मुञ्जको ही देना चाहिये। यदि राजा ऐसा नहीं करता तो सम्भव था, कि मुञ्ज-राज्यके लोभमें वालक भोजको मार डालता।

उपर्युक्त भोजप्रबन्धमें मुञ्जको सिंधुलका सहोदर छोटा भाई वताया गया है किन्तु पद्मगुप्तके नवसाहसाङ्क चरितमें लिखा है—

दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रामदत्त यां वाक्पतिराज देवः।
तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराजः॥

(नवसाहसाङ्कचरित ११६)

इससे साफ मालूम होता है, कि मुञ्ज वाक्पति सिन्धुराजका सहोदर बड़ा भाई था। उसके मरनेके बाद सिन्धुराजको राज्य मिला। इन राजाओंकी राजसभाके पद्मगुप्त राजकवि था। इस राज-कविका दोनों राजाओं द्वारा बड़ा सम्मान होता था। यहां इस कविकी बात पर ही विश्वास करना पड़ता है।

उदयपुर तथा नागपुरके भोजके ताम्रशासन तथा नवसाहसाङ्कचरितमें 'सिन्धुराज' नाम रहने पर भी भोजप्रबन्ध, प्रवन्धचिन्तामणि इत्यादि ग्रन्थोंमें राजा भोजका ही नाम दिखाई देता है। राजा भोजकी दो उपाधियां थीं,—नवसाहसाङ्क और कुमारनारायण। यह बात पद्मगुप्तके लिखे नवसाहसाङ्कचरितके पढ़नेसे स्पष्ट जानी जाती है।

मेरुतुङ्गने प्रवन्धचिन्तामणिमें लिखा है, कि सिन्धुल बड़ा ही वदमाश था। इसीसे मुञ्ज वाक्पतिको उस पर कठोर शासन करना पड़ता था। एक वार सिंधुलसे तङ्ग आ कर मुञ्जने उसे देशसे निकाल दिया था। उस समय सिंधुल गुजरातके कासहृदके समीप रहने लगा था। यह स्थान अहमदावादके करीब कासिन्द्र पालड़ी नामसे विख्यात है। कुछ दिनोंके वाद वह मालवा लौट आया था। मालवा लौटने पर मुञ्जवाक्पतिने अपने भाईका आदर किया। परन्तु उसका स्वभाव अव तक भी नहीं वदला। सिंधुलकी आंखें निकाल ली गईं और वह जेलखानेमें डाल दिया गया। इसी जेलखानेमें ही भोजराजका जन्म हुआ था। एक दिन एक ज्योतिषिने कहा था, कि यह लड़का एक दिन तुम्हारे राज्यका अपहारक होगा। यह बात सुन मुञ्ज बहुत चिन्तित हुए और तुरंत ही भोजको मार डालनेका हुक्म दे दिया। इस समय राजा भोज कुछ सयाने थे और कुछ पढ़ा लिखा भी था। राजाका हुक्म सुन कर उसने एक श्लोक वनाया और उसे राजाके पास भेज दिया। राजाने श्लोक पढ़ कर अपना विचार वदल दिया। इसके बाद ही भोज युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

भोजप्रबन्धमें यह कहानी दूसरे ढङ्गसे ही लिखी गई है। उसमें लिखा है,—"मुञ्ज राजा हुआ सही परंतु वह सदा चिंतित रहा करता था। सोचने लगा कि अंतमें जव भोज ही राजा होगा तव मेरे जीनेसे क्या लाभ? खूब सोच विचार कर इसने बङ्गालके राजवत्स राजको लिवा लानेके लिये अपने अंगरक्षकको भेजा। महावल वत्सराज धाराधीश्वरके यहां आया। परस्पर परामर्श हो चुकनेके वाद वत्सराजने भोजराजके मार डालनेका भार अपने ऊपर लिया। वत्सराजने भोजको पाठशालासे बुला महामायाके मन्दिरमें ले गया। महामायाके सामने भोजको बलि चढ़ा देना उसका उद्देश्य था। यहां भोजराजने वरगदके दो पत्ते तोड़ लिये। भोजने एक चाकूसे अपने जंघेको चीर डाला और रक्तसे उन पत्तों पर कुछ लिख उसने वत्सराजको दिया और कहा, महोदय! इन पत्तोंका आप राजाको दे दीजियेगा। यह कहकर वह मरनेके लिये तय्यार हुआ। इस समय उसके मुखकी कांति चमकने लगी उसके मुखकी कांति देख वत्सराजके छोटे भाईने अपने

बड़े भाईसे कहा, 'भाई ! मरनेके साथ संसारसे मनुष्यके साथ यदि कुछ जाता है, तो वह केवल धर्म है। पिता हों या माता या पुत्रकलत्र कोई भी मृतव्यक्तिके साथ नहीं जाता। यह सब इसी संसारके नातेदार हैं। मृत आत्माका यदि कोई साथी है, तो केवल वह धर्म है, दूसरा कोई नहीं। तुम्हारा हृदय वज्रके समान है। देखो, मृत्यु जाति, उम्र, रूप आदि हरण कर लेती है किंतु धर्मको हरण कर नहीं सकती। यह जान सुन कर भी तुम्हें भय नहीं होता।' छोटे भाईकी यह बात सुन कर वत्सराजको वैराग्य उत्पन्न हो गया। फिर उनको भोजके प्रति तलवार उठानेकी हिम्मत न हुई। वल्कि उसने आदरके साथ भोजको अपने वासस्थानमें छिपा रखा और चतुर शिल्पियों द्वारा भोजकी आकृतिका एक मुण्ड खून-से तर वतर कर राजाको दिखला दिया। भतीजेका मृत मुण्ड देख कर राजाका हृदय कांप उठा। उसने वत्स-राजसे पूछा, कि बताओ कि मरनेके पूर्व मेरे भतीजेने मुझसे कहनेके लिये तुमको कुछ कहा था? वत्सराजने कहा—"महाराज ! उसने मुंहसे तो कुछ न कहा परन्तु इन पत्तोंको मुझे आपको देनेके लिये दिये हैं, सो लीजिये। राजाने पत्रको हाथमें ले लिया। वत्सराजके हाथसे उन पत्तोंको ले कर राजा पढ़ने लगा—

"मान्धातेति महीपतिः कृतयुगेऽलङ्कारभूतो गतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः॥
अन्ये चापि युधिष्ठिर प्रभृतयो यावद्भवान् भूपते।
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति॥"

इन पत्तों पर लिखे श्लोकोंके पढ़ते ही राजा मूर्छित हुए। फिर होशमें आ उसने भोजके लिये बहुत रोया गाया। अन्तमें उसने भोजका वियोग न सह सकनेके कारण आत्महत्या कर लेनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। समूचे राज्यमें कुहराम मच गया। दूसरे दिन राजा दरवारमें आया। आज उसके प्राणत्याग करनेका दिन था। कुछ क्षणके वाद दरवारमें एक कापालिक आ पहुंचा। उसने कहा,—महाराज ! आप क्यों शोका-कुल हो रहे हैं। आपके भतीजेको मैं जीवित कर ला सकता हूं। आप श्मशानमें मेरी कही हुई सामग्री भेजिये। कापालिकके कहनेके मुताबिक श्मशानमें होमकी सामग्री भेज दी गई। कुछ देरके बाद वह कापालिक भोजको साथमें ले कर राजसभामें गया। यह कापा-लिक आदिका भेजना, होम आदिका आडम्बर केवल वत्सराजकी चालें थीं। जीवित कुमारको आते हुए देख कर मुञ्जको अपार आनन्द हुआ। बुड्ढे मुञ्ज फिर राजसिंहासन पर बैठ न सके। यथासम्भव शीघ्र भोज-को राजपाटका भार अर्पण कर आप अपनी रानीके साथ जङ्गलकी ओर चले। (भोजप्रबन्ध)

इन लेखोंमें मुञ्जके बाद भोजके राजा होनेकी बात यद्यपि दिखाई देती है, तथापि यह यथार्थ या सम्भव मालूम नहीं होती। क्योंकि पद्मगुप्तके नवसाहसाङ्क-चरितमें तात्कालिक जिन सब बातोंका उल्लेख है इस प्रबन्धमें ठीक उसका विपरीत है। पहले ही कहा गया है, कि कवि पद्मगुप्त, मुञ्ज-वाक्पति और उसके छोटे भाईने सिन्धुराजकी सभाको सुशोभित किया था। इस कविने लिखा है, "वाक्पति राज्य-भार सिन्धुराजके हाथ सुपुर्द कर अम्बिकापुर चले गये थे। (११।९८) सिन्धु-राजने कोशलाधिपति, वागड़, लाट और मुरलोंको जीता था। (१०-१८-२०) सिवा इसके सिन्धुराजने रत्नवतीके राजा वज्रांकुशको मार कर स्वर्णकमलके साथ नागराज-कन्या शशिप्रभाको हर लाया था। रत्नवती नर्मदासे ५५ कोस दूर पर अवस्थित है। उदयपुर प्रशस्तिमें लिखा है, कि सिन्धुराजने हूण राजाको भी हराया था।

सिन्धुराजका बड़ा भाई मुञ्ज-वाक्पति कब मरा और सिन्धुराज कब राजा हुआ, इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। मेरुतुङ्गने लिखा है, कि प्रधान मन्त्री रुद्रादित्यकी सलाहसे वाक्पतिराजने तैलप पर चढ़ाई की थी। गोदा-वरी पार कर जब वह तैलपके राज्यमें पहुंचे, तब तैलपने उसको गिरफ्तार कर उसे कैद कर लिया। बहुत दिनों तक जेलमें रहनेके बाद उसने जेलखानेसे भागने-की चेष्टा की और पकड़े जाने पर वह मार डाला गया। चालुक्यराज द्वितीय तैलपके शिलालेखोंमें भी मुञ्जवाक्-पतिकी पराजयको बात लिखी है। अमितगति-शुभा-सित रत्नसन्दोहग्रंथके उपसंहारमें लिखा है, कि १०५० विक्रमाब्द तदनुसार सन् ९९३ और ९४ ई०में मुञ्जके राजत्वकालमें ही इस ग्रंथकी रचना हुई। इधर चालुक्य

वंशपरिचयसे मालूम होता है, कि दूसरे तैलपका ९१९ शकाब्द या सन् ९९७-९८ ई०में देहान्त हुआ था। ऐसी दशामें सन् ९९५से ९९७ तक वाक्‌पतिकी मृत्यु और सिन्धुराजके सिंहासनलाभका समय माना जा सकता है।

सिन्धुराजके विक्रम तथा बहुतेरे देशों पर अधिकार स्थापित करनेकी वातोंको पढ़ कर यह अनुमान किया जा सकता है, कि सात आठ वर्ष तक ही उसका राज्य था।

कविवर पद्मगुप्तने सिन्धुराजके पराक्रम और राज्य-समृद्धिकी बहुतसी वातोंका प्रकट किया; परन्तु भोजराजका नाम तक भी उसने उल्लेख नहीं किया है, सम्भव है और खूब सम्भव है, कि उस समय तक भोजराजका जन्म ही न हुआ हो, अथवा जन्म हुआ हो और वालक रहनेके कारण उसके नामोल्लेख करनेकी उसे कोई आवश्यकता न दिखाई दी हो।

उदयपुरकी प्रशस्तिमें भोजके शौर्य्य, वीर्य तथा प्रताप और विद्वत्ताका परिचय मिलता है, इस प्रशस्तिमें लिखा है—"कविराज भोजकी मैं क्या प्रशंसा करूं? उसने जो साधन या विधान किया है या जो लिखा है या वह जितना जानते हैं, उतना कौन जान सकता है? चेदिराज इन्द्ररथ, तोगगल और भीम आदि कर्णाट, लाट, गुजरातके राजा और तुर्क-मुसलमान जिसके नौकरसे पराजित हुए थे, जिसके मौलशूरगण एक एक महारथी थे, जिसकी सैन्यसंख्या अगणित थी; जिसने केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सुण्डी, काल, अनल और रुद्र आदि देवालयोंको स्थापित किया था, उसने यथार्थ ही 'जगती' नामकी रक्षा की थी।

कल्याणके चालुक्यराज तीसरे जयसिंहके ९४१ शकाब्द तदनुसार सन १०१९-२०में लिखे शिलालेखोंसे पता चलता है, कि भोजराजने कर्णाट पर चढ़ाई की थी। किन्तु इस शिलालेखमें राजा भोजके हार जानेकी भी बात लिखी है। प्रायः १०११ ई०में यह युद्ध हुआ था। प्रबन्धचिन्तामणिमें भी लिखा है, कि गुजरातके राजा चौलुक्यभीमके साथ (सन् १०२१-६३ ई०) राजा भोजका युद्ध हुआ था। मेरुतुङ्गने लिखा है कि, "जब भीम सिंधुको जीतनेमें लगे थे, उसी समय राजा भोजने कुलचन्द्र नामके एक दिगम्बरजैनीको आदिलवाड़में सैन्यके साथ युद्ध करनेके लिए भेजा था।

राजधानी पर कब्जा हो गया। फिर कुलचन्द्र विजय पत्र ले कर उज्जैन लौट आया। महाकवि विलहणने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक एक ऐतिहासिक काव्यमें लिखा है, कि विक्रमाङ्कके पिता दूसरे सोमेश्वरने (सन् १०४९से १०६८ और ६९ ई०) शीघ्रतापूर्वक धारानगरी पर अधिकार कर लिया। राजा भोजको वाध्य हो कर भागना पड़ा था (१।९१-९४)

भोजकन्या भानुमतीके साथ विक्रमादित्यका विवाह होनेका प्रवाद प्रचलित है। बहुतोंका ख्याल है, कि यह विवाद भोजराजके पराजित होनेके बाद हुआ था।

सुलतान महमूदकी सोमनाथ मन्दिरको चढ़ाई इतिहासमें प्रसिद्ध है। परमशैव भोजराजने उस मन्दिरकी रक्षाके लिये महमूदके साथ घोर युद्ध किया था। लेखोंमें इसी युद्धको मुसलमानोंके साथ भोजके युद्धका वर्णन आया है।

भोजराज पराक्रमी देवभक्त और पराक्रान्त राजा तो था ही, सिवा इसके वह सुकवि भी था। यह अपने पिता और बड़े चाचासे कहीं बढ़ कर कवि हो गया था। कवि ही नहीं वरं महापण्डित और विद्वानोंका पृष्ठपोषक भी था। भोजप्रबोधमें दिखाई देता है, कि सैकड़ों विद्वान् राजा भोजकी सभाको शोभा बढ़ाते थे। भोजराज कविता सुन कर प्रत्येक श्लोकके लिये एक एक कविको एक एक लाख दीनार या तात्कालिक मुद्रा प्रदान करता था। उसकी सभामें रामदेव, हरिवंश, शङ्कर, कलिङ्गकर्पूर, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल, तारेन्द्र, लक्ष्मीधर, रामेश्वर आदि कवि तथा विद्वानोंके सिवा कितनी ही कवि और विदुषी स्त्रियां भी थीं। इन स्त्रियोंमें सीता ही प्रधाना थी। भोजप्रवन्धके लेखकने लिखा है, भोजकी प्रधान रानी लीलावती भी बड़ी विदुषी थी। यादव सिंघनके समयके शिलालेखोंको पढ़ कर हमें मालूम होता है, कि सुप्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्यके वृद्ध पिता भास्करभट्टने भोजराज द्वारा विद्यापतिकी उपाधि प्राप्त की थी।

भोजराजकी सभामें ज्योतिष, काव्य, धर्मशास्त्र, दर्शन अलङ्कार आदि सभी शास्त्रोंकी आलोचना प्रत्यालोचना होती थी। वहांके बहुतेरे विद्वानोंका विश्वास है, कि इस भोजराजकी सभामें सर्व शास्त्रों पर कितने ही भाष्य-निबन्धादिकी रचना हुई थी। उनमें कामधेनु ग्रन्थ ही प्रधान है। अब तक भी महाराजाधिराज भोजके रचे सरस्वतीकण्ठाभरण, राजमार्त्तण्ड नामके योगसूत्र-भाष्य, राजमार्त्तण्ड, राजमृगाङ्ककरण और विद्वज्जन-वल्लभ नामक ज्योतिषशास्त्र, समराङ्गण नामक वास्तु-शास्त्र और शृङ्गारमञ्जरी कथा नामक खण्डकाव्य आदि बहुतेरे ग्रन्थ मिलते हैं।

सिवा इसके भोजराजके नामसे निम्न लिखित ग्रन्थ प्रचलित हैं,—आदित्यप्रतापसिद्धान्त (ज्योतिष), आयुर्वेदसर्वस्व (वैद्यक), चम्पूरामायण, चारुचर्य्या (धर्मशास्त्र), तत्त्वप्रकाश (शैव), नाममालिका (कोष), युक्तिकल्पतरु, विद्याविनोद (काव्य)-विद्वज्जनवल्लभ प्रश्नचिन्तामणि, विश्रान्तविद्याविनोद (वैद्यक), व्यवहारसमुच्चय (धर्मशास्त्र), शब्दानुशासन, शालिहोत, शिवदत्तरत्नकलिका, समराङ्गण सूत्रधार, सिद्धांत-संग्रह (शैव) और सुभाषितप्रबंध आदि। कितने ही विद्वानोंका ख्याल है, कि उपर्युक्त ग्रंथ समूह राजा भोजकी सभाके विद्वानोंके रचे हुए हैं।

केवल बहुतेरे ग्रंथ ही राजा भोजके नामसे प्रचलित नहीं वरं तात्कालिक कितने ही विद्वान् अपने-अपने रचित ग्रंथोंमें भोजका मत अथवा श्लोकोंको उद्धृत कर उसका नाम चिरस्मरणीय कर गये हैं। इनमें शूलपाणि, दशबल, अल्लाड़नाथ और स्मार्त्त रघुनन्दन द्वारा भोजराज निबंध-कारके रूपमें भावप्रकाश और माधवके रुग्विनिश्चयमें वैद्यक ग्रंथकाररूपमें केशवार्क द्वारा ज्योतिषशास्त्रकाररूप में और स्वामी, सायण और महीप द्वारा अभिधान रच-यिता और वैयाकरणरूपमें और चित्तप, देवश्वर, विनायक क्षीरसरस्वतीकुटुम्बदुहिता आदि कवियों द्वारा कवि-रूपमें प्रशंसित हो गया है। प्रसिद्ध दार्शनिक वाचस्पति मिश्र अपने तत्त्वकौमुदी ग्रंथमें 'भोजराजवार्त्तिक' कह कर भोजराजकी प्रशंसा की है।

वल्लोलपण्डितके सिवा मेरुतुङ्ग आचार्य, राज-वल्लभ, वत्सराज वल्लभ, मुनिसुन्दरशिष्य, शुभशील आदि पण्डितोंने भोजप्रबंध लिख कर भोजराजकी चरित्रगाथा गाया है। इन सब लेखोंमें भोजराजकी कीर्त्ति तथा माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित होने पर भी ऐतिहासिकोंके सामने इन सब ग्रंथोंका कुछ विशेष मूल्य नहीं है।

उदयपुर, नागपुर और वड़नगरकी प्रशस्तियोंको, कीर्त्तिकौमुदी, सुकृत संकीर्त्तन और प्रबंधचिंतामणि-की आलोचना करने पर मालूम होता है, कि चेदिराज कर्ण और गुजरातके राजा चौलुक्यभीमके एक साथ आक्रमण करने पर भोजराज मारा गया था और धारा नगरी शत्रुओंके हाथ आ गई थी। उदयपुरकी प्रशस्ति-में लिखा है, कि भोजराजका योग्य पुत्र उदयादित्यने अपने पिताके खोये हुए नष्ट गौरव और नष्टराज्यलक्ष्मी-को पुनः प्राप्त किया था। प्रायः १०१० ई०से १०४२ ई० तक भोजराजने धारानगरी और मालवाका शासन किया था। कितने ही लोगोंका विश्वास है, कि यही भोज भोजविद्याका प्रवर्त्तक है।

भोजराजचौरकवि—शार्ङ्गधरपद्धतिधृत एक कवि। चौर-कविकृत पद्यावली उक्त ग्रंथमें उद्धृत है।

भोजराय—बूंदीके शासनकर्त्ता। ये सम्राट् अक-बरशाहके राजत्वकालके बीसवें वर्षमें इस पद पर आसीन हुए। इनके पिता राय सुरजन हाड़ा चितोर-राजके अधीन रणस्तम्भगढ़के सामन्त थे। अकबरशाहके चित्तोर पर चढ़ाई करने पर रणस्तम्भगढ़ इनके हाथ लगा। तभीसे पिता-पुत्र मुगलसम्राट्की आश्रय-भिक्षा करनेको बाध्य हुए। दोनों ही वीर और योद्धा थे। भोजराय उड़ीसाके अफगान युद्धमें मानसिंहके और दाक्षिणात्यके मुगल अभियानमें शेख अबुल फजलके सहकारीरूपमें गये थे।

इन्होंने मानसिंहके पुत्र जगत्सिंहके साथ अपनी कन्याको ब्याहा था। जहांगीरने पितृसिंहासन पर अधि-ष्ठित हो कर इस कन्याका पाणिग्रहण करना चाहा, किंतु मुगलोंको कन्या देनेसे भोजराय बिलकुल इनकार चले गये। इस पर जहांगीर बड़े बिगड़े और इसका प्रति-शोध लेनेके लिये तैयार हो गये। इस समय भोजराय

काबुलमें थे। जब उनको इस बातका पता लगा, तब १०१६ हिजरीमें उन्होंने आत्महत्या कर ली। दूसरे वर्ष उनकी दौहित्रीके साथ सम्राट् जहांगीरका शुभविवाह सम्पन्न हुआ।

भोजराजीय (सं० लि०) भोजराज सम्बन्धीय।

भोजवदर—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेल-वाड़ जिलान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार गायकवाड़राज और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं।

भोजवर्मन्—कालञ्जरके चन्देल्लवंशीय एक सुप्रसिद्ध राजा। चन्द्रात्रेय-राजवंश देखो।

भोजबाजी—ऐन्द्रजालिक क्रीड़ा। व्यायाम आदिमें चतुर और कौतुकनिपुण मनुष्य अपने अत्याश्चर्यजनक क्रीड़ाओं द्वारा जो रहस्यपूर्ण तमाशादि दिखाते हैं, उसीको भोज-बाजी या इन्द्रजाल खेल कहते हैं। जो काम सहजमें होनेवाला नहीं, उसको बातकी बातमें कर दिखाना उसका कौशल्य है। ऐसी ही उनको शिक्षा दी जाती है, जिससे वह असम्भवको सम्भव कर दिखाते हैं। जैसे सूतेको रेशम बना देना, एकाएक बहुत सांपों-का दृश्य, रुपये हाथसे गायब कर देना, या मट्टीसे रुपया बना देना, कोयलेको होराके रूपमें दिखाना, अपनो जीभको छेद देना, हत्या, पुनः जोवनदान, एकाएक नदी तय्यार कर दिखा देना इत्यादि तमाशे सहज हीमें दिखला सकते हैं। अवश्य ही यह मानना होगा, कि मृत-सञ्जीवनोविद्याके बिना जाने कोई मनुष्य किसो मृत शरीरमें प्राणवायुका सञ्चार कर सकता है। अङ्गरेजोंके इस तरहके कठोर शासनमें कभी भी क्रीड़ादिखलानेमें नर हत्या नहीं हो सकती। किन्तु जादू-गर जो क्रीड़ा कौतुक दिखलाते हैं, वह केवल नजर-बन्दीका कारण है। नजर बांधनेमें वह बहुत निपुण होते हैं।

फिर हम जरूर कहेंगे, कि वेद, पुराण और डामर तन्त्रोंमें इस तरहके कई मन्त्र देखे जाते हैं, जिससे बहुत असम्भवकी बात असम्भव होने पर भी सम्भव हो सकती है। इन सब कामोंमें द्रव्यगुण ही प्रधान आधार है और कितने ही कामोंमें मन्त्र आदिको भी जरूरत होती है और कितने ही कामोंके लिये केवल अभ्यासकी जरूरत है। किन्तु प्रायः सब कामोंमें उत्तम गुरुकी दीक्षाकी परम आवश्यकता है। अन्यथा पुस्तकोंमें लिखे मन्त्रोंका कुछ भी प्रभाव नहीं हो सकता। जिस प्रक्रिया द्वारा मन्त्र सिद्ध करनेका नियम है, उसी प्रक्रियासे सिद्ध करना आवश्यक है।

यह भोजबाजीगर अंग्रेज जगलर (Juggler) या बाजीगरोंसे बहुत मिलते जुलते हैं। इनके बाजोकरके कामोंमें अधिक मन्त्र तन्त्रोंकी आवश्यकता नहीं होती। अभ्यास ही उनका मूलमन्त्र है। इनका कहना है, कि जैसे A. B. या क, ख, से अभ्यास कर अंग्रेजी हिन्दी भाषामें पारंगत हो सकते हैं उसी तरह अभ्याससे ही एक छोटे सांपसे ले कर 'थुथूर' मोटे मोटे वा 'गेहुअन' या करैत आदि विषैले सांप तक पकड़नेमें समर्थ हुआ जा सकता है। अभ्याससे फुर्ती हाथ चला कर दूसरे एक हाथका रुपया गायब कर दूसरे हाथमें ले सकते और नेत्रके कोनमें तीन इञ्चका शलाका घुसेड़ सकते हैं इत्यादि।

हमारे देशमे आजकल भोजबाजीगर जो तमाशे दिख-लाते हैं, उसमें द्रव्यगुण, मन्त्र, व्यायाम तथा क्रीड़ा कौतुकको कार्यकुशलता अधिक देखी जाती है। कभी कभी तो वे निराधार रस्सी पर अपना बोझ रख (Rope-Dancing) आकाश मार्गमें आते जाते हैं। कभी दोनों हाथ नीचे टेक कर और पैरोंको आकाशमें खड़ा कर यानी शिर नीचे और पैर ऊपर कर हाथोंके बलसे मोर (Pea-cock)की तरह चलते हैं। कभी कभी द्रव्योंके गुण दिखा कर अपनेको अभ्यास नैपुण्यका परिचय देते हैं। जैसे कपड़ेमें चावल रख कर उसको भूज देना, आमकी गुठली जमीनमें रोप तुरन्त पौधेको अंकुरित करना और पौधा और वृक्ष उत्पन्न कर फल पैदा करा देना या जलमें कमलकी सृष्टि कर देना इत्यादि जिन चीजोंसे यह कीड़ादि बनाया जाता है, उसको भोजबाजी कहते हैं। भोजविद्या देखो।

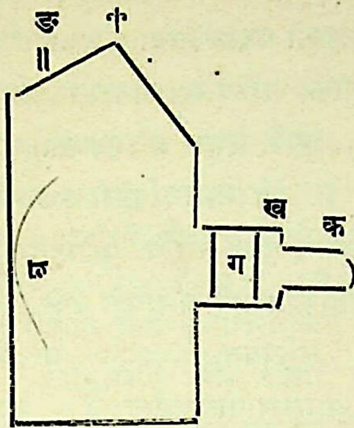
बाजीगर इसी खेलको भानुमतीका पेटारा कहा करते हैं। लोगोंका अनुमान है, कि राजा भोजकी कन्या भानुमतीने इस 'बाजी' या खेलको उत्पन्न किया था। साधारणका विश्वास है, कि वे मन्त्र द्वारा तुंबड़ी बजा कर लोगोंकी दृष्टिको बांध देते हैं। खेलके प्रारम्भ में वे लाग लाग भेलकी लाग मामीकी माकी खेल देख यह पद कई बार पुनः पुनः उच्चारण करते हैं। यह तुमड़ी खेल रुचिकर तथा आश्चर्य्यजनक है।

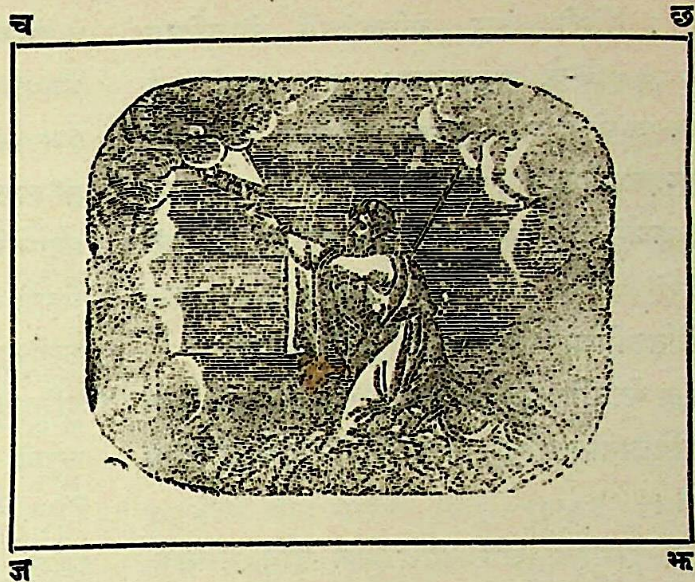
भोजविद्या—ऐन्द्रजालिकविद्या, जादूगरी। बहुतोंका विश्वास है, कि भारत-प्रसिद्ध भोजराजने इस कुहक-विद्याका प्रवर्त्तन किया है। इसीलिए इस अघटन-घटना-पटु विज्ञानका नाम उनके नामानुसार प्रसिद्ध हुआ है। प्रवाद है, कि विद्यानुरागी भोजराजने इस अपूर्व माया विद्याकी उन्नतिके लिए विशेष प्रयत्न किया था। उन्हींके आश्वास और आश्रयमें इस विद्याकी विशेष उन्नति देख कर पण्डित-मण्डली उसकी उन्नति-के लिए बद्धपरिकर हुई थी। उसीका फल है कि, अथर्व-वेद, पुराण और तन्त्रादिसे अभिचार मन्त्रोंको उद्धृत कर उसे एक स्वतन्त्र विज्ञान वा विद्यारूपमें परिणत कर दिया गया है। मारण, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन, रोगनिवारण, भूतप्रसाधन, आकर्षण, मोहन, विद्वेषण आदि नैसर्गिक क्रियाकाण्ड इसी विद्याके अन्तर्गत कर दिया गया है। किस प्रकार और किस रूपमें वह सम्भव हो सकता है इसका समावेश निर्णय करना इस विद्याका प्रधान उद्देश्य है। किस द्रव्यमें क्या गुण है और दूसरे किस द्रव्यके साथ उसे मिलानेसे रासाय-निक प्रयोगसे क्या फल हो सकता है, इस बातके सम-न्वय साधन द्वारा जो अत्याश्चर्य गुण-परम्परा उपलब्ध होती है, उसीका नाम भोजविद्या है।

एक किम्वदंती है, कि राजा भोज द्वारा प्रवर्त्तित इस अद्भुत कला-विद्यामें उनकी रूपगुणवती कन्या विक्रमा-दित्यकी पत्नी भानुमती विशेष पारदर्शिनी थीं। भानुमतीकी इन क्रीड़ा कुशलताकी कहानी सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह भी प्रसिद्ध है कि, भानुमतीने एक दिन अपनी जादू-विद्यासे प्रान्तर समुद्रकी सृष्टि कर विक्रमादित्यकी गति रोक दी थी। 'बत्तीस सिंहासन' नामकी पुस्तकमें बत्तीस पुतलियोंके जो कथन हैं, वह भोजविद्या-कुश-लताका निदर्शनमात्र है।

यह भोजविद्या अधिकांशमें अङ्गरेजी मैजिक (*Magic*) सदृश है। फिलहाल हमारे देशमें भोज-विद्याकी जैसी सङ्कीर्ण अर्थोत्पत्ति हुआ करती है, अङ्गरेजी *Magic* शब्दसे भी वैसा ही अर्थका बोध होता है। 'भोजविद्या' कहनेसे जैसे अब सिर्फ भौतिक क्रीड़ा कौशली बाजीगरोंके कार्य्यमात्रका बोध होता है, वैसे ही अङ्गरेजीमें magic कहनेसे अब छायाबाजी समझमें आती है।

पहले पहल कागज पर प्रतिमूर्त्ति काट कर उसीसे छायाबाजी दिखलाई जाती थी। पहले एक अंधेरी कोठरीके एक कोनेमें बत्ती रख कर कपड़ेसे उसे इस तरह घेर दो, जिससे वह आलोकान्धकारसे विच्छिन हो जाय। पीछे उस अंधकार गृहांशमें दर्शक मण्डलो-को विठा कर, आलोकभागसे कपड़ेके पास कागजका जैसा चित्र दिखलाया जायगा, उसकी सुस्पष्ट छाया भींगे कपड़ पर पड़ेगी। उस चित्रको जितना ही आलोकके पास ले जाओगे, छाया उतनी ही बड़ी दीखेगी। पीछे जब (magiclantern) भौतिक-प्रदीप-का आविष्कार हुआ, तब इस क्षुद्रतर भोजविद्याकी और भी उन्नति हो गई। यह आलोकदण्ड इस तरकीब से बनाया गया है, कि उसकी आलोक-रश्मि सिर्फ एक ही छिद्रसे निकलती है। उस छिद्रके मुंह पर एक मोटे पेटका कांच रहता है। उसके अधिश्रयण (Focus) स्थानमें आलोक-किरणोंका समूह एकत्रित हो कर ऐसे विस्तृतरूपमें फैलता है, कि जिससे उसके अन्दरके काँच पर खींची हुई चित्रावली दर्शक-मण्डलीके सामने स्पष्टरूपसे और बड़े आकारमें प्रति भासित होती रहती है।





ऊपर भौतिक-प्रदीपका चित्र दिया जाता है। 'क' से 'ख' तकका स्थान एक गोलाकार नल है। 'क' के मुंह पर पूर्वकथित मोटे-पेटका कांच है, 'ग' मार्गचित्र-प्रसारणका स्थान है। 'घ' प्रदीपके अन्दरकी वत्ती है, 'घ'के पीछे जो ऐसा है वह दीप्ति-प्रसाधक (Reflector) है और 'ङ' धुआं निकलनेका मार्ग है। च, छ, झ, भीगे कपड़े पर पड़ा हुआ अक्स या चित्र है।

इस भौतिक छाया-प्रदर्शिनी द्वारा जो चित्र दिखलाए जाते हैं वे कांच पर नाना वर्णोंमें चित्रित और ऐसे शिल्प-नैपुण्यपूर्ण होते हैं, कि लोग उसकी छायाको देख कर यही समझने लगते हैं जैसे वह सजीव चित्र हो। भौतिकप्रदीपके 'क' चिह्नके अधिश्रयण स्थानमें आलोकमाला संयुक्त होने पर 'ग' मार्गमें प्रविष्ट चित्र साफ-साफ दिखलाई देता है। अधिश्रयण ठीक करनेके लिए नलको घटाया बढ़ाया जा सकता है।

अब जो सीनोमा या वायस्कोप (Bioscope) नामकी चित्र-प्रदर्शिनी निकली है, वह भी एक प्रकारकी भौतिक छायबाजी ही है। इसके सिवा भोजवाजीकी तरह फिलहाल अंग्रेजी magic शब्दसे और एक प्रकारकी खेल दिखाया जाता है। इसकी क्रियाओंमें ऐन्द्रजालिक खेलोंकी तरह हाथ चलानेका अभ्यास करना पड़ता है। विना एक शिक्षक सहयोगीके यह काम करना असम्भव है। ताशके खेलमें उनकी सजावट जैसी आश्चर्य-जनक है, उसी प्रकार सजधज और आड़म्बरमें ही अंग्रेजीप्रथासे magic दिखलाई जाती है। दूसरेका रूमाल ले कर सबके सामने फाड़ते समय उसे इस ढंगसे दुबका लेना पड़ेगा कि किसीको उसका आभास भी न हो। पीछे अपने रूमालको फाड़ कर उसे आगमें जला दो और दर्शकका रूमाल अपने सहकारीको दे कर उसे एक फ्रेममें अच्छी तरह रखवा लो। फिर यथासमय उस फ्रेमको दर्शकोंके सामने रंगमञ्च पर रक्खो। इधर एक बन्दूकमें उस फटे जले रूमालको भर कर उसका घोड़ा दाब दो। यह बंदूक भी मामूली नहीं होती, बल्कि खेलके लिए विशेष ढंगसे बनाई जाती है। बन्दूककी उस नलीके बगलमें वैसी ही एक दूसरी नली रहती है, जिसमें वह फटा हुआ रूमाल इस तरकीबसे रखा जाता है, कि घोड़ा दावने पर आवाज तो होती है, पर रूमाल नहीं निकलता। दर्शकोंको इसका कुछ भी पता नहीं रहता। फिर फ्रेम खोल कर दिखलाते हैं। इसलिए यह सजानेकी कुशलताका परिचयमात्र है। इसी प्रकार वे और भी बहुतसे अनैसर्गिक खेल दिखलाते हैं, अत्यन्त आश्चर्यकारी और हास्योद्दीपक होते हैं। Mesmerism द्वारा ज्ञानहरण करके वे मुंहसे भूतावेशकी तरह अभूतपूर्व वाक्योंका उद्भावना अथवा Ventriloquism रूप विभिन्न स्वर-विन्याससे भूतप्रेतादि योनियोंकी अवतारणा

और उनके साथ नाना विषयकी वार्त्तालाप करते हैं। जिसे हम अधिकांशमें भोजविद्या वा Magical Art-के अनुसाररूप कह सकते हैं, परंतु पहलेके अंग्रेजी साहित्य या बाईविल धर्मग्रंथमें Magic शब्दका जैसा प्रयोग देखनेमें आता है, वह इस से स्वतन्त्र अर्थमें ही व्यवहृत हुआ है। उक्त ग्रंथमें उपदेवता (Evil spirits) या प्रेतात्मा पर शक्ति-सञ्चारक ज्ञानको भौतिकविद्या कहा गया है। Balaam और Rab mag आदि भोजविद्याके विशारद थे। पूर्वतन ईसाई, कल्दीय वैविलोनीय, इज़िप्टीय आदि लोग भोजविद्यामें अभ्यस्त थे।

पूर्वतन इस्राइल और मिश्रदेशके लोग भौतिकविद्यामें पारदर्शी थे, यह बात बाइबिलके पढ़नेसे मालूम हो जाती है (Exod. vii, 11) हेङ्गष्टेनवर्गने लिखा है—'इजिप्टीय पुरातत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि उस देशमें भोजविद्या-विशारदोंकी एक श्रेणी रहती थी। वे प्रायः दो प्रकारके कार्य करते थे। देवमन्दिरोंमें उपासना और आराधना तथा भोजविद्या रूपविज्ञानकी परिचर्या। जो इस विद्यामें पारदर्शी होते थे वे सर्वत्र संन्यासीकी तरह पूजित और सम्मानित होते थे। बहुधा वे भविष्यद्वक्ताकी तरह देवोपदेश सुना दिया करते और कभी कभी पवित्र मन्त्रोंको पढ़ कर रोगीके मनमें ऐसी भक्तिका उद्रेक करा देते थे, कि उससे बहुत ही जल्दी उसका रोग दूर हो जाता था। ये लोग साधारण ज्ञानके परे अर्थात् पूर्णमात्रामें दिव्यज्ञान प्राप्त थे। ये साधुहृदय महात्मा लोग ज्ञानयोगसे मनुष्यके ज्ञानके परेकी वस्तुओंको भी देख सकते थे। उसको इस मैजिक (magic) विद्याको दूरदर्शिता और बहुज्ञान सञ्चयका फल कहा जा सकता है। अथवा यों कहना चाहिए, कि वे योगबलसे अलोक-सामान्य वस्तुओंको साधारणके समक्ष रख दिया करते थे।

हमारे देशमें मृत्युमुखमें पड़े हुए कठिन रोगग्रस्त व्यक्तिकी रोग-शान्तिके लिए जैसे ग्रहशान्ति, नारायणको तुलसीदान और स्वस्त्ययनादिकी व्यवस्था है, ईसाइयोंमें भी वैसी ही व्यवस्था थी। पूर्वोक्त ज्ञानी पुरोहितगण, चिकित्सकोंकी व्यवस्थाके साथ-साथ पवित्र मन्त्र पढ़ कर रोग दूर करनेकी कोशिश करते थे। कभी वे रोगीके शरीरगत सामुद्रिक चिह्नकी पर्यालोचना और ग्रहादिकी परिचालना करके रोगीकी साध्यासाध्यताका निरूपण कर दिया करते थे। इसके सिवा वे स्वप्नादिका भी फलाफल बता देते थे। जब कभी किसी स्थानमें महामारी आदि फैलती दिखाई देती, तो ये पुरोहितगण अपनी-अपनी अभ्यस्त भौतिकविद्याके प्रभावसे उसे दूर करनेका प्रयत्न करते थे। लूसियन Lucian ग्रन्थमें 'इज़िप्टीय' भोजविद्याका आभास पाया जाता है। उक्त ग्रन्थमें लिखा है, 'इजिप्टीय' भोजविद्या-पारदर्शी एक मेम्फीने २३ वर्ष तक पाताललोकमें वास करके आइसिस (Isis)-के पास भोजविद्या सीखी।

इज़िप्ट और बैबिलन राज्य किसी समय भोजविद्याविशारद पुरोहितोंका केन्द्र था। उसके बाद यहूदियोंने इस विद्याका अभ्यास किया। उन्होंने भी मन्त्रों द्वारा प्रेतात्माका आह्वान, भूतादिकी अवतारणा और उसके प्रतिषेध तथा सलोमनके नामसे मन्त्रोच्चारण कर रोग दूर करना प्रारम्भ किया। जेसेफासकी विवरणी पढ़नेसे इस विषयका सविस्तार इतिवृत्त ज्ञात हो जाता है।

'सेफेर टोल्दाथ् जेसू' नामक ग्रन्थमें ईसामसीहकी अलौकिक क्रियावलीके अभिनय सम्बन्धमें इस प्रकार एक उपाख्यान दिया गया है,—डेविड्ने जेरुसलेमके पवित्र मन्दिरको नींव डालते समय एक पत्थर पर विश्वपाताके ज्ञानका द्योतक एक मन्त्र अङ्कित देखा। बादमें कहीं कुतूहल-परवश अज्ञ युवकगण उस मन्त्रको पा कर अत्यद्भुत कार्य (Miracles) करके जगत्का महा अमङ्गल न कर बैठें, इस ख्यालसे उन्होंने उस मंत्रको गर्भगृहके पीठस्थानमें रख दिया। अन्य कोई उस मंत्रको न पढ़ सकें, इसलिए तत्कालीन साधुचेता मनीषियोंने उस पवित्र पीठ (Holy of the Holus) प्रवेशद्वार पर दो सिंहमूर्त्तियां स्थापित कर दीं। प्रवाद है, कि यदि कोई व्यक्ति मन्दिरमें प्रवेश कर उस मंत्र द्वारा ज्ञानचक्षु प्राप्त करके मंदिरके बाहर आना चाहता, तो वे दोनों सिंह विकट गर्जन करते जिससे वह उस मंत्रको वहांका वहीं भूल जाता। एक दिन स्वयं ईसामसीहने अपनी अलौकिक भोजविद्या और मंत्रादिके प्रभावसे

पुरोहितोंसे छिप कर उस मंत्रका उद्घाटन किया और उसे एक पार्चमेण्ट कागज पर लिख लाये। पीछे अपने शरीरके चमड़ेको छेद कर उसमें उस लेखनीको घुसा दिया। मंदिरसे बाहर आते समय सिंहके गर्जनसे वे उस मंत्रको भूल गये, परन्तु उनके शरीरके अन्दरकी लिपिने उन्हें फिर उस ज्ञानालोक-में ला कर रख दिया। उस मंत्रके प्रभावसे हो उन्होंने अलौकिक कार्य सम्पादन किये थे।

ईसामसीह और ईसाई साधुगण जिन अलौकिक क्रियाओंका सम्पादन कर गये हैं, उनमेंसे किसी किसीमें भोजविद्याका आभास पाया जाता है। प्राचीन हिदेन लोग तथा पिथागोरस आदि ग्रीक दार्शनिकगण भोज-विद्याका अभ्यास रखते थे। इफेसस् एक भोजविद्या-विशारद थे। (Acts, Xix. 9) उनके शक्ति सञ्चारक गुप्त-लिपियुक्त कवचके धारण करनेसे लोगोंको विशेष लाभ पहुंचता है। स्वयं ईसामसीहने अपनी शिष्य-मण्डलीके लिए कई एक भोजविद्या सम्बन्धी निवन्ध लिखे थे। सेलसस् आदिने लिखा है कि, हमारे त्राण-कर्त्ताने इज़िप्टसे भोजविद्या सीखो थी। पहले यह भोज-विद्या सर्वसाधारणकी आदरणीय वस्तु थो। ज्ञानवान् व्यक्तिमात्र तथा दार्शनिकगण प्राकृतिक घटनाओंके समन्वय, ग्रहादिके संस्थान और उनके सञ्चार-जन्य सुखदुःखादिके अनुभवकी आलोचना करते थे। वे भौतिक जगत्‌की क्रियाओंको लक्ष्य करके उसीके अनुशीलनकारी हो गये थे। यह भौतिकविद्या उस समय magic नाम-से कही जाती थी। उसके वाद वह तोन श्रेणियोंमें विभक्त हो गई—१ Natural वा स्वाभाविक—पार्थिव पदार्थोंके सहयोगसे अपूर्व घटनाओंका समन्वय-साधन; २ planetary वा ग्रहविषयक—ग्रह-विशेषकी सञ्चार-शक्ति और ग्रहादिमें अवस्थित प्रेतात्माओंका मनुष्यके कार्यादि पर कैसा प्रभाव हो सकता है, उसका निर्णय और प्रतिकार; ३ Diabolical वा भूतविद्या—मन्त्र द्वारा भूतादिका आवाहन और उनके द्वारा अलौकिक क्रियाओं-का सम्पादन। इसके सिवा पूर्वोक्त Miracle (अघटन-घटन) और Oracle of Dilphi-की भांतिकी ऐशिक-शक्ति द्वारा कथित भावी-वाक्योंका कुछ अंश भी भोज-विद्यामें परिस्फुट हैं।

अब मालूम होता है, कि हमारे देशकी भोजविद्या और यूरोपीय Magic एक ही विज्ञान है। जो विद्या हमारे देशमें बहु प्राचीनकालसे प्रवर्त्तित हो कर वादमें भोजविद्या कहलाई, वही विद्या ईसाके जन्मके वहुत पहले इजिप्ट, ग्रीस, वैविलौन और काल्दीय राज्यमें विस्तृति प्राप्त करके Magic वा भौतिकविद्याके नामसे प्रथित हुई है।

आलोचना करके देखने पर मालूम होता है, कि यह विद्या पहले एक स्थानमें विस्तृति और उन्नति प्राप्त करके पीछे विभिन्न देशवासियों द्वारा गृहीत हुई है। पुराणोंकी खोज करनेसे विदित होता है, कि शाकद्वीप-वासी भोजकब्राह्मण ग्रहादि चालना, सूर्य-पूजा, स्तव और स्वस्त्ययनादि द्वारा रोग-शान्ति आदि अलौकिक कार्य सम्पादनमें समर्थ थे। साम्बको कुष्ठरोगसे मुक्ति भोजकों द्वारा ही हुई थी। भोजकगण भौतिकविद्या जानते थे, इसमें सन्देह नहीं। भोजकब्राह्मण देखो।

जिन शाकद्वीपी ग्रहविप्रोंने भारतमें आ कर भोजक-संज्ञा प्राप्त की थी, उन्हींकी अन्यतम शाखा मग वा मगि नामसे फारस और मिड़िया राज्यमें बहु पूर्वकालसे पौरोहित्यका कार्य्य करते थे। ऐतिहासिक गवेषणासे ज्ञात हुआ है कि, ये मगब्राह्मणगण उस प्राचीन युगमें वहुतर शास्त्रोंकी आलोचना करते थे। मगि (Magi) ब्राह्मणोंकी यशःख्याति सुदूर तक विस्तृत थी उनके द्वारा उद्भावित और अभ्यस्त गोप्य ग्रहविद्या कालान्तरमें जनसाधारणकी आलोचनाका विषय हो गया था। इस मगविद्याकी आलोचना करनेवाली जनता क्रमशः एक दार्शनिक सम्प्रदायरूपमें गठित हो गई थी। आकाशस्थ ग्रहोंके वलावलका पर्य्यवेक्षण करना ही उनकी शिक्षाका उद्देश था। यह सम्प्रदाय मगीय (Magians) नाम-से प्रसिद्ध था। उस समय ज्ञान-चर्चामें उनके समान उन्नत और कोई भी जाति नहीं थी। मिडियावासी महात्मा दानियल दरायुस द्वारा काल्दीय और वैविलौन-को ज्ञानी-मण्डलीके अध्यक्ष वनाये गये थे। वे उस समय ग्रहविद्यातत्पर दार्शनिक सम्प्रदायमें श्रेष्ठ व्यक्ति थे। सावियान्‌सम्प्रदायके अभ्युदयमें क्रमशः मगीय-सम्प्रदायका लोप हो रहा था। पश्चात् दरायुस

विस्तास्पके राज्यकालमें जरथुस्त्रके अभ्युदयसे पुनः मगी-सम्प्रदायका प्रसार वृद्धिगत हुआ। स्वयं राजा दरायुसने इस मगीय धर्मकी पोषकता की थी। अवस्ता ही उनका प्रधान धर्मशास्त्र था। पारस्य वा फारस देखो।

महम्मद द्वारा इसलामधर्मका प्रचार होने पर मगिधर्मकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। अभी तक फारसमें गवर (Guebres) और भारतमें पारसी (Par ees) इन दो सम्प्रदायोंको भग्नशाखाएं वर्त्तमान हैं, परन्तु अब ये अपने पूर्व-पुरुषों द्वारा उद्भावित भौतिकविद्याका अनुशीलन नहीं करते बल्कि निरीह भावसे रहते हैं।

मग-पुरोहितों द्वारा उद्भावित यह विद्या उनके वंशधरों द्वारा अनाहत और परित्यक्त होने पर भी भारत वा यूरोपमें वह वृथा अपव्ययित नहीं हुई। शाकद्वीपवासी मग-पुरोहितोंको यह ग्रहज्ञानविद्या भारतमें लाये हुए भोजकब्राह्मणोंके नामानुसार भोजविद्या कहाई और वही पश्चिम-एशिया तथा यूरोपखण्डमें मगोंके नामानुसार मगीय विद्या Magianism वा Magic नामसे प्रसिद्ध हुई।

यह प्रवादोक्त भोजराजकी विद्या नहीं है। जिन शाकद्वीपी भोजकोंने अपनी भोजविद्याके प्रभावसे साम्बके कुष्ठरोगको दूर कर दिया था। उनके वंशधरगण भारतमें भोजविद्याकी उन्नतिके लिए आलोचनापूर्वक जिन गूढ़ तत्त्वोंका उद्भावन कर गए हैं, उनका पर्यवेक्षण करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। उस एक ही ग्रहाचार्योंकी पश्चिम देशाभिमुखी शाखाने पश्चिम-एशियाके काल्दीय, बैबिलौन, इजिप्ट आदि देशोंमें अपनी अपनी मगीयविद्याका विस्तार किया था। प्राचीन ग्रन्थादिसे इस बातका विशेष प्रमाण पाया जाता है।

हिन्दू पुराणोंमें भोजविद्याका जैसा परिचय है, ग्रीक पुरातत्त्व और बाइबिल ग्रन्थमें भी उसका काफी निदर्शन पाया जाता है। मारीचका मायामय हरिण, मायारूप सीता-वध, कालनेमिका माया-आश्रम, श्रीकृष्णका गोवर्द्धन-धारण और कालीयदमन तथा हर्किउलिस और इडलिससके वीरत्वकी कथा, इन सबको कोई कोई भोजविद्या प्रसूत समझते हैं।

यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है, कि पार्थिव पदार्थ, ग्रह और भूतयोनिके आवाहन (चण्डुनामान) को ले कर यूरोपियोंकी Magic विद्या संगठित हुई थी। हमारे देशमें भी उक्त तीन विषयोंको ले कर भोजविद्याकी पुष्टि हुई है। अब हम इस देशकी भोजविद्या वा इन्द्रजालमें कौन कौनसे विषय आलोचित हुए हैं तथा उनके द्वारा कौन कौनसे गुण प्राप्त किये जा सकते हैं, इस विषयकी आलोचना करते हैं।

भोजविद्यामें शान्तिकर्म, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण ये षट्कर्म ही प्रधान हैं। जिस कर्म द्वारा रोग, कुकृत्या और ग्रहादि दोष शान्त होते हैं, उसे शान्तिकर्म और जिससे प्राणिगण वशीभूत होते हैं, उसे वशीकरण कहते हैं। जिस प्रक्रियासे प्राणीकी प्रवृत्ति रुकती है, उसका नाम है स्तम्भन, जिससे परस्पर प्रणयी व्यक्तियोंका प्रणय भञ्जन होता है, उसे कहते हैं विद्वेषण; जिस कर्म द्वारा किसी व्यक्तिको अपने देशादिसे भ्रष्ट किया जा सकता है, उसे उच्चाटन और जिससे प्राणियोंका विनाश किया जाता है, उसे मारण कहते हैं। इस सब कार्योंमें देवता, दिक् और कालादिको समझ कर कार्य करनेसे सफलता प्राप्त होती है।

शान्ति-कार्यकी देवी रति है, वशीकरणकी वाणी, स्तम्भनकी रमा, उच्चाटनकी दुर्गा और मारणकी देवी भद्रकाली है। कर्मकी आदिमें यथाक्रमसे इन देवियोंकी विधिवत् पूजा करके कार्यारम्भ करना चाहिए।

उसके बाद दिङ्नियमका पालन करना उचित है। जिस दिशामें जो कार्य प्रशस्त है, उस कार्यकी उसी दिशामें करना चाहिए। यथा—शान्तिकर्ममें ईशान-दिशा, वशीकरणमें उत्तरदिशा, स्तम्भनमें पूर्वदिशा, विद्वेषणमें नैर्ऋत, उच्चाटनमें वायु और मारणमें अग्निदिशा प्रशस्त है। सूर्योदयसे दश-दश दण्डके अन्तरमें दिन और रात्रिको वसन्तादि छह ऋतु हुआ करती हैं, अर्थात् सूर्योदयके बाद प्रथम दश दण्ड तक वसन्त ऋतु, उसके बाद ग्रीष्म, फिर दश दण्ड वर्षा, दश दण्ड शरत्, दश दण्ड हेमन्त और शेष दश दण्डमें शिशिर ऋतु होती है। मतान्तरमें ऐसा भी है, कि दिवसका पूर्वभाग वसन्त है, मध्याह्न भाग ग्रीष्म, अपराह्न वर्षा, प्रदोष शिशिर, मध्यरात्रि शरत् और उषा हेमन्त। ऋयार्थीकी इस प्रकारसे

समय निरूपण करके षट्कर्म सम्पादन करना चाहिए।

हेमन्त ऋतुमें शान्तिकार्य, वसन्तमें वशीकरण, शिशिरमें स्तम्भन, ग्रीष्ममें विद्वेषण, वर्षामें उच्चाटन और शरत् ऋतुमें मारण कार्यका अनुष्ठान करना विधेय है। इसके अतिरिक्त तिथि, वार और नक्षत्रादिका भी ध्यान रखना चाहिए। द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी तिथिमें तथा बुध, वृहस्पति, शुक्र और सोमवार-में शान्तिकर्म करना प्रशस्त है। वृहस्पति अथवा सोम-वार-युक्त षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, नवमी, अष्टमी अथवा दशमी तिथिमें पुष्टिकर्म करना उचित है। जिस कर्मसे धनजनादिकी वृद्धि होती है, उसे पुष्टिकर्म कहते हैं। दशमी, एकादशी, अमावस्या, नवमी वा प्रतिपद् तिथिमें तथा रवि अथवा शुक्रवारमें आकर्षण कार्य करना चाहिए। विद्वेषण कार्यमें शनि अथवा रविवार युक्त पूर्णिमा तिथि ही प्रशस्त है। षष्ठी, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिमें तथा शनिवारमें उच्चाटन कार्य प्रशस्त है। विशे-षतः प्रदोष समयमें ही उच्चाटन कार्य करना चाहिए। कृष्णपक्षीय चतुर्दशी, अष्टमी अथवा अमावस्या तिथिमें तथा शनि मङ्गल वा रविवारको मारण कार्य किया जाता है। बुध अथवा सोमवारको तथा पञ्चमी, दशमी अथवा पूर्णिमा तिथिमें स्तम्भन कार्य विधेय है।

शुभग्रहके उदयमें शान्ति पुष्टि आदि शुभ कर्म तथा अशुभ ग्रहके उदयमें अशुभ कार्य करने चाहिए। विद्वे-षण और उच्चाटन आदि क्रूर कार्य रविवार, रिक्ता तिथि-में तथा मारणकार्य मृत्युयोगमें किया जाता है।

अव किस-किस नक्षत्रमें कौन कौनसे कार्य करनेसे कार्य सिद्धि होती हैं, यह वात कही जाती है। स्तम्भन, मोहन और वशीकरण ये त्रिविध कर्म माहेन्द्र और वारुणके मध्यगत नक्षत्रमें प्रारम्भ करनेसे सिद्धि होती है। ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा और रोहिणी नक्षत्र माहेन्द्रमण्डलस्थित होता है और उत्तर भाद्रपद, मूला, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और अश्लेषा नक्षत्र वारुणमण्डल मध्यगत इन नक्षत्रोंमें जो कार्य किये जाते हैं, उन कार्मों-में सफलता मिला करती है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें भी उक्त कार्य अनुष्ठित होने पर सिद्धी होती है।

विद्वेषण और उच्चाटन कर्म वह्नि और वायुमण्डल स्थित नक्षत्रमें होता है। स्वाती, हस्ता, मृगशिरा, चित्रा, उत्तरफाल्गुनी, पुष्या और पुनर्वसु वह्निमण्डल मध्य-स्थित नक्षत्र है। तथा अश्विनी, भरणी, आर्द्रा, धनिष्ठा, श्रवणा, मघा, विशाखा कृत्तिका, पूर्वफाल्गुनी और रेवती नक्षत्र वायुमण्डल मध्यस्थित है। इन नक्षत्रोंमें पूर्वोक्त कार्य यथायथ सम्पन्न होने पर वह सिद्धिप्रद हुआ करते हैं।

पहले जैसे तिथि और नक्षत्रकी बातें लिखी गई हैं, उसी प्रकारके लग्न और कालमानके निर्देशसे इन कार्यों-का अनुष्ठान करना उचित है। दिवसका पूर्वभाग, जैसे वसन्त कहा गया है, वशीकरणके लिए प्रशस्त काल है। मध्यभाग विद्वेषण और उच्चाटनके लिए शेषभाग शान्ति और पुष्टिकर्मके लिए तथा सायंकाल मारणकर्मके लिए उत्तम है। सिंह वा वृश्चिक लग्नमें स्तम्भन, कर्कट वा तुला लग्नमें विद्वेषण और उच्चाटन, मेष, कन्या, धनु वा मीन लग्नमें वशीकरण, शान्ति और पुष्टिकर्म करना चाहिए। मारण, उच्चाटन और शत्रु-निराकरणादि कर्म भी मेष, कन्या, धनु और मीन लग्नमें प्रशस्त है। इसके वाद उक्त षट्कर्मके भूतोदयको देखना चाहिए। जल-तत्त्वके उदयमें शान्तिकर्म, वह्नितत्त्वके उदयमें वशीकरण, पृथ्वीतत्त्वके उदयमें स्तम्भन, आकशतत्त्वके उदयमें विद्वेषण, वायुतत्त्वके उदयमें उच्चाटन और पृथ्वी अथवा वह्नितत्त्वके उदयमें मारणकार्य करना चाहिए। इस प्रकार तत्त्वोदयका विचार करके कार्य करना उचित है। परन्तु शत्रुभय वा अन्य किसी प्रकारका महाभय उप-स्थित होने पर उसके निवारणार्थ कालाकालका विचार नहीं करना चाहिए। जब कभी ऐसी विपत्ति उपस्थित हो, तभी उसकी शान्ति करनी चाहिए।

इन छह प्रकारके कर्म साधनके लिए देवताविशेषकी आराधना करनेकी वात पहले ही कही जा चुकी है। वशीकरण, क्षोभाण और आकर्षण कार्यमें रक्तवर्ण देवी-की चिन्ता करनी चाहिए। विष-निवारण, शान्तिकरण और पुष्टि-कार्यमें श्वेतवर्ण, स्तम्भनमें पीतवर्ण, उच्चाटनमें धूम्रवर्ण, उन्मादकरणमें रक्तवर्ण तथा मारणकार्यमें कृष्ण-वर्ण देवीका ध्यान करना चाहिए। इसके सिवा कार्य-कालमें गमन, उत्थान और उपवेशनादि अवस्थान की भी

चिता करनेकी विधि है। मारणकार्यमें देवीकी उत्थानावस्थामें चिता करनी चाहिए। उच्चाटनमें सुप्त और अन्यान्य कार्योंमें उपविष्ट अवस्थामें ध्यान किया जाता है। सात्त्विक कार्यमें उपविष्ट और श्वेतवर्ण, राजसकार्यमें पीत, रक्त अथवा श्यामवर्ण तथा तामस कार्यमें यानमार्ग स्थित और कृष्णवर्णका ध्यान होता है। मोक्षकामी व्यक्तिको सात्त्विक कार्य्य करना उचित है। राज्याभिलाषी व्यक्ति राजस कार्य्य कर सकता है। शत्रुनाश और सर्व्व रोग-निवारण तथा सर्व्व प्रकारके उपद्रवोंको शांत करनेके लिए तामस कार्य्य करना उचित है।

उपर्युक्त कर्मोंके साधनके लिए एक एक मन्त्र हैं। कर्म विशेषके मंत्रमें हूं, फट्, वौषट् और नमः इत्यादि शब्दोंका प्रयोग कहा गया है। बन्धन, उच्चाटन और विद्वेषण कार्य्यमें 'हुं' मन्त्र जपना पड़ता है। छेदनमें फट्, ग्रह दृष्टि निवारणके लिए हुं फट्, पुष्टिकार्य्य और शान्तिकरणके लिए वौषट् तथा अग्निकार्य्यमें अर्थात् होमादिमें स्वाहा मन्त्रसे कार्य्य करना चाहिए।

सर्व्व प्रकारकी पूजाओंमें नमस् शब्दका प्रयोग ही विधिविहित है। शान्ति और पुष्टिकार्य्यमें स्वाहा, वशीकरणमें स्वधा, विद्वेषणमें वौषट् आकर्षणमें हुं, उच्चाटनमें वौषट् और मारणमें फट् मंत्रका जप किया जाता है। इसके सिवा वशीकरण, आकर्षण और ज्वर संताप निवारणके स्वाहा, क्रोध निवारन, शांतिकार्य्य और प्रीतिवर्द्धनमें नमः, सम्मोहन, उद्दीपन, पुष्टिकार्य्य और मृत्युनिवारणकार्य्यमें वौषट् अन्धीकरणमें वौषट् तथा मंत्रोद्दीपन और लाभालाभ कार्य्यमें भी वौषट् मंत्रका स्मरण करना चाहिए।

इस मंत्रके साधारणतः दो भेद हैं, योजन और पल्लव जिस मंत्रकी आदिमें नाम रहता है उसे पल्लव कहते हैं और जिसके अन्तमें नाम होता है उसे योजन। मारण, संसाह, ग्रहभूतादि निवारण, उच्चाटन और विद्वेषण कार्य्यमें पल्लव मन्त्र ही प्रशस्त होता है तथा शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, प्रायश्चित्त, मोहन, स्तम्भन, उच्चाटन और विद्वेषण कार्य्यमें योजन मंत्र। नामके आदि मध्य वा अन्तमें मन्त्र हो, तो वह रोधमंत्र है। अभिमुखीकरण, सर्वरोग-निवारण, ज्वरग्रह-विषपीड़ादि शान्ति और सम्मोहन कार्य्यमें रोधमंत्र कार्यकारी होता है। जिसमें नामके एक एक अक्षरके बाद मंत्र रहता है, उसे संपुट मंत्र कहते हैं। इस मंत्रसे कीलक कार्य होता है। स्तम्भन, मृत्यु-निवारण और रक्षादि कार्य इससे अच्छे होते हैं। मन्त्रके दो दो अक्षर और साध्य नामके दो दो अक्षर क्रमशः पढ़नेसे सविदर्भ मन्त्र होता है, जो वशीकरण, आकर्षण और पुष्टिकार्यमें प्रशस्त है।

इन मन्त्रोंका पन्द्रह अधिष्ठात्री देवियाँ निर्दिष्ट हैं—रुद्र, मङ्गल, गरुड़, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर, पिशाच, भूत, दैत्य, इन्द्र, सिद्ध, विद्याधर और असुर। मंत्रोंके वर्ण और संख्याके भेदसे विभिन्न नाम हुए हैं। एकाक्षर मन्त्र—कर्त्तरी, द्वयक्षर मन्त्र—सूची, त्र्यक्षर मन्त्र—मुद्गर, चतुरक्षर मन्त्र—मुषल, पञ्चाक्षर मन्त्र—क्रूर, षड़क्षर मन्त्र—शृङ्खल, सप्ताक्षर मंत्र—क्रकच, अष्टाक्षर मंत्र—शूल, नवाक्षर मंत्र—वज्र, दशाक्षर मंत्र—शक्ति, एकादशाक्षर मंत्र— परशु, द्वादशाक्षर मंत्र—चक्र, त्रयोदशाक्षर मन्त्र—कुलिश, चतुर्दशाक्षर मंत्र—नाराच, पञ्चदशाक्षर मंत्र—भुषुण्डी और षोड़शाक्षर मंत्र—पद्म नामसे कहा जाता है। अब, इन षोड़श प्रकारके मंत्रोंमें कौन किस कार्य्यमें प्रशस्त है यही दिखलाया जाता है। मंत्रच्छेदनमें कर्त्तरी, भेदकार्य्यमें सूची, भञ्जनमें मुद्गर, क्षोभणमें मुषल, बन्धनमें शृङ्खल, छेदनमें क्रकचा, घातकार्य्यमें शूल, स्तम्भनमें वज्र, बंधनमें शक्ति, विद्वेषणमें परशु, सर्वकार्य्यमें चक्र, उन्मादकरणमें कुलिश, सैन्यभेदमें नाराच, मारणमें भुषुण्डी और शांति पुष्टि आदि कार्योंमें पद्ममन्त्र प्रशस्त हैं। इन सब शान्त्यादि कर्मोंको वामाचार विरोधी समझना चाहिए।

मंत्रोंमें लिङ्गभेद भी है, जैसे पुं, स्त्री और नपुंसक। जिस मंत्रके अंतमें स्वाहा शब्द है वह स्त्री-संज्ञक है। मनः शब्द-युक्त मंत्र नपुंसक तथा हुं फट् शब्द-सहित मंत्र पुरुष नामसे कहा गया है। वशीकरण और शांति आदि अभिचार-कार्योंमें पुरुष मंत्र, क्षुद्र क्रियादिके विनाशके लिए स्त्रीमंत्र तथा अन्यत्र नपुंसक मंत्र काममें लाना चाहिए। इसके सिवा मंत्रके दो भेद और हैं, आग्नेय और सौम्य। मंत्रके अंतमें ओं शब्द हो तो वह

आग्नेय मंत्र है। इन्दु और अमृताक्षर-युक्त मंत्रको सौम्य कहते हैं। आग्नेय मंत्रके अंतमें नमः शब्द हो तो सौम्य और सौम्यमंत्र पल्लवित हो तो आग्नेय कहलायेगा। वाम नासामें श्वास वहनेके समय मंत्रकी निद्रावस्था है और दक्षिण नासासे श्वास लेते समय जाग्रत अवस्था। मंत्रके निद्राकालमें जप करनेसे वह जप फलप्रद नहीं होता। दक्षिण नासामें श्वास वहनकालमें आग्नेय मंत्र तथा वाम नासामें श्वास वहनकालमें सौम्य मंत्र प्रबुद्ध रहता है। दोनों नाड़ियोंमें वहनकालमें सभी मंत्र प्रबुद्ध रहते हैं। प्रबुद्ध मंत्रसे किया हुआ जप सिद्ध होता है।

इन षट्कर्मोंके अनुष्ठान-कालमें विभिन्न आसन कहे गये हैं। पुष्टिकर्ममें पद्मासन, शान्तिकार्यमें स्वस्तिकासन, आकर्षण और विद्वेषणमें कुक्कुटासन, उच्चाटनमें अर्द्ध स्वस्तिकासन, मारण और स्तम्भनमें विकटासन तथा वशीकरणमें भद्रासन ही प्रशस्त है। वशीकरणमें मेषचर्म, आकर्षणमें व्याघ्रचर्म, उच्चाटनमें उष्ट्रचर्म, विद्वेषणमें घोटकचर्म, मारणकार्यमें महिषचर्म, मोक्षसाधनमें गजचर्म तथा समस्त कर्ममें रक्तवर्ण कम्बलासन पर बैठ कर कार्य करना चाहिए। अनन्तर शांति-कार्यमें पद्ममुद्रा, वशीकरणमें पाशमुद्रा, स्तम्भनमें गदामुद्रा, विद्वेषणमें मुषलमुद्रा, उच्चाटनमें वज्रमुद्रा तथा मारणमें खड्ग मुद्राका विन्यास कर कार्य करना उचित है। इसके प्रत्येक कर्ममें पृथक् पृथक् कुण्ड बनानेको विधि है। विद्वेष-कार्यमें त्रिकोण कुण्ड बनाया जाता है। वह कुण्ड एक हातका होना चाहिए। शत्रुपक्षके उच्चाटनके लिए नैर्ऋत कोणमें तथा देवोच्चाटनके लिए मण्डपके वायुकोणमें कुण्डका मुख रखा जाता है।

शत्रुतापन कार्यमें योनिकुण्ड ही प्रशस्त है। मण्डपके अग्निकोणमें यह कुण्ड बनाया जाता है। शत्रु-मारणमें मण्डपके दक्षिणमें अर्द्धचन्द्र कुण्ड करो। शत्रुके रोगवर्द्धनके लिए मण्डपके नैर्ऋत कोणमें त्रिकोण कुण्ड करके कार्य करो। विद्वेषण कार्यमें अग्निकोणमें पूर्णचन्द्र सदृश अथवा चतुरस्र कुण्ड बना कर कार्य करना उचित है। चतुरस्र कुण्डमें वशीकरण, त्रिकोण कुण्डमें आकर्षण, स्तम्भन और उच्चाटन तथा षट्कोण कुण्डमें मारणकार्य किया जाता है।

पुष्टिकार्यमें मण्डपको उत्तर दिशा, शांतिकर्ममें पश्चिमदिशा, उच्चाटनकर्ममें वायुकोण तथा मारणकर्ममें दक्षिण दिशामें कुण्ड बनाना उत्तम है। अभिचारकर्ममें कुण्डके परिमाणमें न्यूनाधिकता होने पर कोई विशेष दोष नहीं माना जाता, परन्तु कार्यकालमें उनको सर्व सुलक्षणान्वित करके कर्म करना चाहिए।

अथर्ववेदविद् एक परमज्ञानी ब्राह्मणको बहुत धन और नाना रत्नभूषणादिसे संतुष्ट करके विधानानुसार वरण करो। ब्राह्मणको व्रती हो कर उत्सव और यत्नके साथ सर्व प्रकार रक्षा-विधान करके कृतीकी हितकामनाके लिए मरणकार्यका अनुष्ठान करना चाहिए। अभिचारकार्यमें वित्तकी शठता न करनी चाहिए। यदि अर्थ-व्ययकी शठताके कारण कार्यका किसी प्रकारसे अङ्गभङ्ग हो जाय, तो कर्मकर्ताके पुत्र, आयु, धन और यशका नाश होता है। देश-रक्षाके लिए अभिचार करनेसे राजा वा कर्मकर्त्ता पापके भागी नहीं होते। नीचे उदाहरणस्वरूप संक्षेपमें कुछ मंत्र दिये जाते हैं,—अथर्वणोक्त ज्वरशांतिमंत्र अगस्त्य ऋषिरनुष्टुप्छन्दः कालिका देवता जरस्य सद्यः शान्त्यर्थे विनियोगः। ॐ कुवेरन्ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दिमावहन्। ज्वरं मृत्युभयं घोरं ज्वरं नाशयते ध्रुवम्।

ॐ कुवेरन्ते मुखं रौद्रं इत्यादि मंत्रको सहस्र वा दश सहस्र वार जप कर आम्रपत्र द्वारा होम करनेसे निश्चय ही ज्वर-शांत होता है।

'ओं नमो भगवति मृतसञ्जीवनि अमुकस्य शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रका जप करनेसे सब प्रकारके उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। हारीतमें ज्वर शांतिके लिए बहुत-से मंत्र लिखे हैं, उक्त ग्रंथके ज्वरहारावलिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

'ओं ह्रों क्रों ठः ठः भो भो ज्वर श्रृणु श्रृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चतुराहिकं साप्ताहिकं मासिकं आर्द्धमासिकं वार्षिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहुर्त्तिकं नैमेषिकं अट अट भट भट हुं फट् अमुकस्य ज्वरं हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा।'

ओं अद्य त्यादि अमुकगोत्रस्य अमुकस्य उत्पन्नज्वर-

क्षयाय तन्नक्षत्राय एष रचितपुत्तलकवलिनमः। इत्युत्सृज्य निमज्जयित्वा उत्तरस्यां दिशि पुत्तलकविसर्जनं कर्त्तव्यम् ।'

पहले ओं ह्रीं क्लीं इत्यादि मंत्रसे वलिप्रदान करो। ज्वरायुक्त व्यक्तिकी नव मुष्टि परिमित तन्दुलोंसे वलि पिण्ड पाक किया जाता है। उसके बाद तण्डुल-चूर्ण द्वारा एक ज्वरको मूर्त्ति बना कर उसे हल्दीसे रंगो और उसके चारों तरफ हरिद्राक्त चार ध्वजाएं लगा कर हरिद्रा-रसपूर्ण चार पुटपात्र स्थापन कर उससे उस पुत्तलिकाको गन्धपुष्प द्वारा भूषित करके वलिप्रदान पूर्वक विसर्जन करो। इस प्रकार तीन दिन वलि प्रदान करने पर ज्वरकी शांति होती है। ज्वर-मूर्त्ति उत्सर्ग करके उत्तर दिशामें विसर्जन की जाती है। गर्गादिमें यही प्रथा भिन्न रूपमें वर्णन की गई है। वाहुल्य-भयसे यहां उन्हें उद्धृत न कर सके।

मृतसञ्जीवनी मन्त्र—'ह्रौं ओं जुं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्वकं यजामहे। सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतां ह्रौं ओं जुं सः।

शूलरोग-प्रतिकार,—ओमद्येत्यादि अमुक गोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणः शूलरोगप्रतिकारकामनया ओं मिढ़ुष्टमः इत्यादि पिनाकं विभ्रदागाहि इत्यन्तं मन्त्रं सहस्रं अयुतं लक्षं वा जपमहं करिष्यामि इति संकल्प्य शिवलिङ्गं त्र्यम्वकविधानेन संपूज्य इमं मन्त्रं जपेत्। 'ॐ मिढ़ुष्टमः शिवतमः शिवोनः सुमना भव परमे व्रक्ष आयुधन्निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकं विभ्रदागहि।' इति जप्त्वा दक्षिणां कुर्यात्।

गर्भंजननोपाय,—'ॐ मुक्तापाशाविपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः। मुक्तसर्वभयाद् गर्भ ह्येहि मारीच स्वाहा।' इस मन्त्रसे जलको आठ वार अभिमन्त्रण करके गर्भिणीको दो, इससे सुखपूर्वक प्रसव होगा।

निगड़वन्धन,—'ॐ नमऋते निऋते तिग्मतेजो यन्मयं विव्रंता वन्धकेयं यमेन दत्तं तस्यसंविदानोत्तमेनाके अधिरोहयैनं। अस्य निगड़भञ्जनमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषि निऋतिर्देवता त्रिष्टुप् छन्दो वन्धनादि व्यसनपरिहारार्थे विनियोगः।' अयुत जपसे निगड़ादि स्खलन होता है।

वृष्टिकरण,—'ॐ पुष्करावर्त्तकैर्मेघैः प्लावयन्तं वसुन्धरां। विद्युद्गर्जित-सन्नद्धतोयात्मानं नमाम्यहं। यस्य केशेषु जीमूतो नद्यः समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः इति ध्यात्वा वाह्य वरुणमुपचारैः पूजयित्वा मूलमन्त्रं जपेत्। प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुपछन्दो वरुणदेवता एतद्राज्यमभिवाप्य सुवृष्ट्यर्थं जपे विनियोगः। मन्त्रस्तु वँ गुरुमुखाज्ज्ञेयः नाभिमात्रजले स्थित्वा जपेन्मन्त्रं प्रसन्नधीः। वहुसहस्रं जपेन्मन्त्रं त्रिदिनं व्याप्य यत्नत अथवा षट्सहस्र जपेन्मन्त्रं तदा वृष्टिर्भवेद् ध्रुवम्।

इन सव कार्यों के अभ्यासके लिए एक गुरुकी सहायता आवश्यक है। गुरु द्वारा मंत्र संज्ञाका यथार्थ मर्म समझे विना कर्मकर्त्ता किसी भी कार्यको सुलभतासे नहीं कर सकता। ये कार्य इतने गुह्य हैं, कि ग्रंथसे उसका प्रकृष्ट परिचय मिलना दुष्कर ही नहीं, विड़म्वनामात्र है।

अव मन्त्रांशको छोड़ कर पार्थिव पदार्थों के समन्वय गुण कहे जाते हैं। कई पदार्थों के संमिश्रणसे ऐसी एक अभावनीय वस्तुका उद्भावन होता है, कि जिसकी गुणावलो भौतिककाण्डसे उत्पन्न मालूम देगी। यूरोपमें किसी समय एक दार्शनिक सम्प्रदायकी काफी प्रतिष्ठा थी। उन लोगोंने द्रव्यगुणसे अन्यान्य धातुओंको सोना चांदी वना डालनेकी कोशिश की। उनकी निकाली हुई उस किमीयविद्या (Alchymy)-से कालांतरमें रसायन विज्ञानकी उत्पत्ति हुई है।

हमारे देशके भोजविद्या-विद्गण इस द्रव्यगुणका अन्वेषण करते करते एक अभिनव विद्यामें जा पहुंचे, जो हमारे यहां भोजविद्याके नामसे प्रसिद्ध है। नीचे द्रव्यादिके संमिश्रण गुणसे वशीकरणादिके विषयमें जो कुछ फल पाया गया है, उसीका वर्णन किया जाता है।

वशीकरण।

वशीकरण-विज्ञानसे पुरुष और स्त्री दोनोंको वशीभूत किया जा सकता है। लज्जालु लता, अपामार्गकी जटा, वहेड़ा, अपराजिता और चाण्डालीलताको इकट्ठा करके दूधके साथ कर्दमवत् पीसो। पीछे उस कर्दमको एक पट्टवस्त्र पर लेपन कर उससे वर्त्तिका वनाओ। फिर उसे पद्मनालमें के सूतसे वेष्टन करो और एकरंगकी गायके

दूधसे बने हुए घीमें उस वर्त्तिकाको भिगो लो। अनंत-चतुर्दशीकी रातको भैरवकी पूजा करके उस वर्त्तिकाको जला कर उसके धुआंसे काजल पारो। उस काजलसे स्त्री, पुरुष यहां तक कि जिसको चाहो उसको वशीभूत किया जा सकता है।

मंत्र द्वारा भी वशीकरण होता है। साधक 'ॐ ह्रीं मोहनि स्वाहा' इस मंत्रके जपमें सिद्ध होने पर चन्दन, पुष्प, वस्त्र अथवा किसी भी प्रकारका उत्तम फल, उक्त मंत्रसे एक सौ आठ वार अभिमंत्रित करके जिस किसीके भी हाथमें देगा वही उसके वशीभूत हो जायगा।

'ओं चिटि चिटि चाण्डालि महाचाण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा' इस मन्त्रका सात दिन तक जप करनेसे राजाको भी वशमें किया जा सकता है। ताड़पत्रमें इस मन्त्रको लिख कर उस ताड़पत्रको दुग्धमिश्रित जलमें डाल कर पाक करो। उस मन्त्रमें जिसका नाम रहेगा, वह व्यक्ति अवश्य ही वशीभूत होगा, मतान्तर ऐसा भी है, कि विल्व-कण्टक द्वारा ताड़पत्र पर मन्त्र लिख कर दुग्धके साथ पाक करके तीन दिन तक उसे कर्दममें गाड़ रखो उसके वाद उसे निकाल कर दुर्गोत्सव मण्डप के द्वार पर गाड़ दो। ऐसा करनेसे अवश्य ही वशीकरण होता है। षट्कर्मदीपिका, क्रियोड्डीश, शावर और उड्डीश आदि ग्रन्थोंमें मन्त्र और प्रक्रियाकी बहुतायत देखी जाती है।

स्त्रियोंको वश करनेके लिए द्रव्यसङ्गके गुणागुण नीचे लिखे जाते हैं। रविवारको काले धतूरेके फूल, लता-शाखा, पत्ते और जड़को पीसो। पीछे उसके साथ कपूर, कुंकुम और गोरोचन मिला कर कपाल पर उसका तिलक लगाओ। उस तिलकको देखते ही हर एक स्त्री तुम्हारे वशमें आ जायगी। १ चिताभस्म, वच, कुड़ और तगर-पुष्पको इकट्ठा करके किसी स्त्रीके माथे पर लगानेसे वह उसी समय वशीभूत होगी। २ जिह्वामल, दन्तमल और नाशामलको ताम्बूलके साथ खिला देनेसे भी स्त्री वशमें हो जाती है। ३ ब्रह्मदण्डी और चिताभस्मको कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री पर क्यों न फेंके वह स्त्री अवश्य ही उस पुरुषके वशमें हो जायगी। ४ ताम्बूलके रसमें हरताल और मनःशिला पीस कर मङ्गलवारके दिन ललाट पर उसका तिलक लगानेसे देखने-मात्रसे स्त्री वशीभूत होगी। ६ गायके दांत और मनुष्यके दांतको एकत्र तेलके साथ पीस कर कपाल पर उसका तिलक लगानेसे कान्ता अपने प्रणयीके अत्यन्त वशमें आ जायगी। ७ यवचूर्ण, हरिद्रा, गोमूत्र, घृत और श्वेत सर्षप इनको एकत्र पीस कर मुंह पर मलनेसे पद्मकी भांति मुंहकी कांति होती है और वह पुरुष स्त्रियोंका और राजकुलका प्रियपात्र होता है। ८ गोरोचन और पद्मपत्र पीस कर कपाल पर उसका तिलक लगानेसे स्त्री वशीभूत होती है। ९ मालती पुष्प ले कर पट्टसूत्रसे उसकी वर्त्तिका वना कर अण्डीके तेलसे प्रदीप जलाओ। उस पर शुक्रवारके दिन नृकरोटीमें काजल पार कर उस काजलको आंखमें लगानेसे उसे जो कोई भी स्त्री देखेगी वही उसके वशमें हो जायगी। १० 'ॐ नमः कामाख्यादेवि अमुकी मे वंशकरी स्वाहा, इस मंत्रको १०८ वार जपनेसे सिद्धि होती है।

सिद्धनागार्जुन-कक्षपुटमें स्त्रियोंको वश करनेके उपाय लिखे हैं। 'ॐ नमो महायक्षिणि पतिं मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रका १०८ वार जप करो, सिद्ध होने पर विधानानुसार क्रियाएं सम्पन्न करो, इससे पति वशमें हो जायंगे।

इनके सिवा और भी असंख्य मुष्टियोग कहे गये हैं, जिन्हें अश्लीलताके कारण छोड़ देते हैं। अब राज-वशीकरणका उपाय वतलाया जाता है।

१ कुंकुम, रक्तचन्दन, कर्पूर और तुलसीपत्र इनको एकत्र गायके दूधके साथ पीस कर कपाल पर उसका तिलक धारण करनेसे राजाको भी वश किया जा सकता है। २ हाथमें श्वेत वेड़ेलाकी जड़ वाँधनेसे राजाका प्रियपात्र बन जा सकता है तथा हरताल, अश्वगंधा, कपूर और मनःशिला इनको बकरीके दूधमें पीस कर उसका तिलक लगानेसे भी राजा वशमें हो जाते हैं। ३ पुष्यानक्षत्रमें श्वेत बेंडलाकी जड़ ला कर उसे कर्पूर और तुलसीपत्रके साथ पीस कर वस्त्र पर लेपन-पूर्वोक्त अपराजिता बीजके तैलसे वर्त्तिका बनाओ। रातको शुचि अवस्थामें उस वर्त्तिकाको

जला कर उस पर काजल पारो। उस काजलको आंखोंमें लगानेसे राजा वशीभूत होते हैं। पुष्यानक्षत्रमें अपामार्गका बीज ला कर उसे खाद्य वा पानीय द्रव्यके साथ राजाको सेवन करा देनेसे भी फल दिखाई देता है। इन सब कार्योंमें 'ओं नमो भास्कराय त्रिलोकात्मने अमुक महीपति मे वशी कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रका १०८ बार जप करके उसमें सिद्धि पाना आवश्यक है।

ब्रह्मदण्डी, वच और कुड़ इन्हें इकट्ठे पीस कर ताम्बूलके साथ जिसे भी दिया जायगा वह व्यक्ति वशमें आ जायगा। वटकी जड़ पानीमें घिस कर विभूति मिला कर ललाट पर तिलक लगानेसे सब ही वशीभूत होते हैं। पुष्यानक्षत्रमें फिर जड़ उखाड़ कर सात बार मंत्र पढ़ कर उसे हाथमें रखनेसे कार्य-सिद्धि होती है। अपामार्गकी जड़ कपिलाके दूधके साथ पीस कर तिलक लगानेसे अथवा उसकी जड़को छायामें सुखा कर, बादमें उसके चूर्णको ताम्बूलके साथ खिलाया जाय, तो त्रिजगत् वशीभूत हो सकता है। गोरोचन और अपामार्गकी जड़, अथवा यज्ञडुम्बुरकी जड़ पीस कर उसका तिलक लगानेसे भी फल होता है। देवदानी और श्वेत सर्षपको एकत्र पीस कर गुटिका बनाओ, गुटिकाको मुंहमें डालने तथा कुंकुम, तगरकाष्ठ, कुड़, हरताल और मनःशिला इनको अनामिकाके रक्तमें मिला कर तिलक लगानेसे कोई भी वशमें हो सकता है। गोरोचना, पद्मपत्र, प्रियंगु और रक्तचन्दन इन्हें एकत्र पीस कर उसका नेत्रोंमें अञ्जन करने तथा श्वेत कूंचकी छायामें सुखा कर कपिला गायके दूधमें मिला कर उसका तिलक देनेसे कार्योद्धार होता है। श्वेत दूर्वाको कपिला गायके दूधमें मिला कर शरीरमें लेपन करनेसे अथवा सफेद अकवनकी छायामें सूखी हुई जड़को कपिलाके दूधमें माड़ कर तिलक लगानेसे कार्य निष्फल नहीं होता। विल्वपत्र और मातुलङ्गको बकरीके दूधमें पीस कर तथा घृतकुमारीके मूल और भांगके बीज इन्हें एकत्र पीस कर उसका तिलक करनेसे वशकार्य सफल होता है। हरताल, अश्वगन्धा, सिंदूर और कदलीवृक्षके रसको एकत्र माड़ कर तिलक लगानेसे; अपामार्गके बीज बकरीके दूधके साथ पीस कर शरीर पर लेपन करनेसे; हरताल और तुलसीपत्र पीस कर कपिलाके दूधके साथ मिला कर उसका तिलक देनेसे तथा अश्वगंधा और मनःशिलाको आँवलेके रसमें भावना दे कर उसका तिलक करनेसे सर्वलोक वशीभूत होताहै। इन सबोंमें 'ओं नमः सर्वलोकवशङ्कराय कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रको १०० बार जप कर सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए।

स्तम्भन।

मेढ़ककी चर्बीको रक्त घृतकुमारीके रसमें पीस कर सर्वाङ्ग शरीरमें लेपन करनेसे अग्नि स्तम्भन होता है, अर्थात् उस व्यक्तिका शरीर अग्निसे दग्ध नहीं होता। सफेद अकवनको रक्त-घृतकुमारीके रसमें पीस कर शरीरमें लगानेसे अग्नितोप दूर होता है। कदलीवृक्षके रस और रक्तवस्त्रको घृतकुमारीके रसमें एकत्र मिश्रित कर शरीरमें लेपनेसे अग्निदग्ध नहीं होता। मेढ़ककी चर्बी और कपूर दोनोंको एक साथ मिला कर शरीरमें लगानेसे अग्निका उत्ताप नहीं लग सकता। घृतकुमारीके मूल और कदलीवृक्षके मूलको एकत्र पीस कर शरीरमें उसका प्रलेप देनेसे अग्नि दग्ध होनेकी सम्भावना नहीं। पिप्पली, मिर्च और सोंठ तीनोंको एक साथ मिला कर चबानेसे जलता हुआ अंगार खाया जा सकता है। शर्करा और घृतको पी कर सोंठ चबानेसे मुखमें तप्त लौह यदि रखा जाय, तो भी मुख नहीं जलता। 'ॐ नमो अग्निरूपाय मम शरीरे स्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रको एक सौ आठ बार जप कर सिद्धि होनेसे अग्निस्तम्भनकार्यमें प्रवृत्त होना चाहिए।

चर्मकारके कुण्डकी अर्थात् चमार जहां चमड़ेको भिगो रखता है वहांकी मट्टीको मादा चटक पक्षीके रक्तसे युक्त कर जिसके सामने फेंका जाय, उसीका आसन स्तम्भित होगा अर्थात् वह व्यक्ति जहां रहेगा वहांसे दूसरी जगह नहीं जा सकता।

एक मनुष्य-मस्तककी खोपड़ीमें मट्टी रख कर उसमें सफेद घुंघचीका बीज वपन करो और प्रतिदिन उसे दूधसे सींचते रहो। बादमें उस बीजसे निकले हुए पौधेकी शाखा, मूल वा काण्ड जिसके सामने फेंकोगे, उसमें फिर दूसरी जगह जानेकी शक्ति न रह जायगी।

इन सब कार्यों में प्रवृत्त होनेसे पहले 'ओं नमो दिगम्बराय अमुकासनस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा' एक सौ आठ बार जप द्वारा इस मंत्रसे सिद्धि लाभ करनी होती है।

पेचककी विष्ठाको छायामें सुखा कर उसे पानके साथ किसीको खिलानेसे उसकी बुद्धि स्तम्भन हो रहती है। सफेद सरसोंको भृङ्गराजके रसमें भावना दे कर उसे अच्छी तरह पीस लो, बादमें कपाल पर तिलक धारण करो, बुद्धिस्तम्भन होगा। सफेद बहेड़े और अपामार्गके मूलको लौहपात्रमें खरल कर जिसके कपाल पर तिलक दोगे, उसकी बुद्धि स्तम्भन होगी। 'ओं नमो भगवते शत्रूणां बुद्धिं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा' इस मंत्रको जप कर सिद्ध होनेसे बुद्धिस्तम्भनकार्य सिद्ध होता है।

रविवारको पुष्यानक्षत्रमें सफेद अपराजिताके मूलको संग्रह कर मुख और मस्तक पर रखनेसे शत्रु द्वारा फेंके गये अस्त्रसे उसका कोई अपकार नहीं होता। जातीवृक्षके मूलको मुखमें रखनेसे बाघ, राजा और शत्रुका भय नहीं रहता।

सुदर्शनाके मूलको हाथमें और केतकीमूलको मस्तकमें बांधनेसे अस्त्रस्तम्भन होता है। तालमूलको मुखमें और खजूरके मूलको हाथमें धारण करनेसे खड्गस्तम्भन होता है। सुदर्शना, खजूर और केतकी तीनोंके मूलको चूर कर घीके साथ पान करनेसे शत्रुका अस्त्र स्तम्भित हो जाता है। पुष्यानक्षत्रमें अपामार्गके मूलको संग्रह कर शरीरमें लेपन करनेसे तथा मुखमें खर्जूरमूल, कटिमें केतकीमूल और बाहुमें अकवनका मूल धारण करनेसे सब प्रकारके अस्त्र स्तम्भित हो जाते हैं। रविवारको पुष्यानक्षत्रमें सफेद घुंघचीकी लताका मूल उखाड़ कर जिस व्यक्तिके हाथमें दोगे उसे फिर अस्त्रका भय नहीं रहता। रविवारको कोमल विल्वपत्र संग्रह कर उसे पद्ममृणालके साथ एकत्र पीस कर अङ्गमें प्रलेप देनेसे अस्त्र स्तम्भित होता है। 'ओं अहो कुम्भकर्ण महाराक्षस नैकषगर्भसम्भूत परसैन्यस्तम्भने महाभगवान् स्वाहा' इन मंत्रसे एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध होनेसे शत्रुस्तम्भन कार्य करना उचित है।

'ओं नमो विकरालरूपाय महाबलाय पराक्रमाय अमुकस्य भुजबलं बन्धयं बन्धय दृष्टिं स्तम्भय स्तम्भय पातय पातय महीगे हूँ।' एक सौ आठ बार इस मंत्रजप द्वारा सिद्ध हो कर सफेद अपराजिताके बीजसे तेल निकाले। पीछे उस तेलको किसी बरतनमें रख कर उसमें विष, भल्लातकका तेल। अफीम, धतूरे बीजका चूर, तालका रस, गंधक और मैनसिल मिलावे। बादमें पांच रत्तीकी गोली बनावे। उस गोलीका अस्त्रमें प्रलेप देनेसे उस अस्त्र द्वारा युद्धस्थानमें शत्रुका अस्त्र खण्ड खण्ड हो जाता है। उस अस्त्रके देखते ही शत्रु भयभीत हो भाग जाते हैं।

'ओ नमः कालरात्रि त्रिशूलधारिणी मम शत्रुसैन्यस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा' एक सौ आठ बार इस मंत्रजप द्वारा सिद्ध हो कर सफेद घुंघचीके फलको श्मशानमें गाड़ दे। पीछे उसके ऊपर एक खण्ड पत्थर रख कर रौद्री, माहेश्वरी, वाराह, नारसिंही, वैष्णवी, कौमारी, महालक्ष्मी और ब्राह्मी इन अष्ट योगिनीकी अर्चना करे तथा गणपति, बटुक और क्षेत्रपालकी अलग अलग पूजा करे। अनन्तर बलिदान दे कर मांस और मद्य द्वारा उन सब देवताओंकी फिरसे पूजा करनेसे शत्रुसेना स्तम्भित होती है।

'ओं नमो भयङ्कराय खड्गधारिणे मम शत्रुसैन्यं पलायिनं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रजपसे सिद्ध हो कर मङ्गलवारको काक और पेचक पक्षी पकड़े। बादमें भोजपत्रमें गोरोचन द्वारा उक्त मन्त्र लिख उसके गलेमें बांध उड़ा दे। ज्यों ही वे दोनों पक्षी शत्रुके सामने पहुंचेंगे, त्यों ही शत्रुसेना छत्रभङ्ग हो कर भाग जायगी तथा राजा, प्रजा और गजाश्वादि वाहकगण पक्षीको देखते ही भयभीत हो जायेंगे।

श्मशानसे भस्म ला कर उससे एक मट्टीके बरतनके मध्यभागको लेप दे। अनन्तर उसके ऊपर उक्त मन्त्रके साथ शत्रुका नाम लिख कर एक नीला तागा उस बरतनमें बांध दे। पीछे उसे जमीनमें गाड़ कर ऊपरसे एक खण्ड पत्थर दबा दे। यह योगशत्रुस्तम्भनमें बहुत काम करता है।

गोशालाके चारों तरफ ऊंटकी हड्डी गाड़ देनेसे गोमेहषादि स्तम्भित होंगे अथवा ऊंटके लोम जिस किसी पशु पर फेंकोगे, वही पशु स्तम्भित हो जायगा।

रजस्वला स्त्रीके वस्त्रको गोरोचनके साथ शत्रुका

नाम उच्चारण करते हुए किसी एक घड़ेमें रख छोड़ो। इससे शत्रु स्तम्भित होता है।

दो खण्ड ईंटको श्मशानके अङ्गारसंपुटमें रख कर किसी निर्जन अरण्यमें रखनेसे मेघस्तम्भन होता है।

वृहतीके मूल और यष्टिमधुको एक साथ पीस कर नस लेनेसे निद्रा स्तम्भित होती है।

पञ्चाङ्गुल परिमित क्षीरिवृक्ष (अश्वत्थ वटादि)-के कीलकको नाव पर फेंकनेसे उसी समय वह नाव स्तम्भित हो जायगी।

'ओं नमो भगवते रुद्राय जलं स्तम्भय स्तम्भय ठः ठः ठः' इस मन्त्रको एक सौ आठ बार जप कर पद्मकाष्ठचूर्णको कूप और पुष्करिणी आदिमें फेंकनेसे जलस्तम्भन होता है।

'ओं गर्भं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा' एक सौ आठ बार इस मन्त्र जप द्वारा सिद्ध हो कर ऋतुस्नानके बाद अंडीके बीज खा कर धतूरेका मूल कटिमें बांधनेसे गर्भस्तम्भन होता है।

मतान्तरसे स्तम्भन, मोहन और वशीकरणादिका विषय लिखा जाता है।

भूमिकुष्माण्ड और वटके मूलको जलसे पीस कर विभूतिके साथ कपालमें तिलक लगावे। ऐसे व्यक्तिको देखते ही त्रिलोक वशीभूत हो जाता है।

पुष्यानक्षत्रमें पुनर्नवाके मूल और रुद्रदन्तीके मूलको उखाड़ कर उसके साथ जौके बीजको हाथमें बांधे। बांधते समय 'ओं ऐं पुरं क्षोभय भगवति गम्भीरय ब्लुं स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर दे। यह प्रक्रिया करनेके पहले उक्त मन्त्र बीस हजार बार जप कर सिद्ध हो लेना होगा। इस साधना द्वारा साधक सर्वत्र पूजित होते हैं।

वातोत्क्षिप्त पत्र, मञ्जिष्ठा, अर्जुनवृक्ष और तगरकाष्ठ इनका बराबर बराबर भाग जिसे खिलाओगे अथवा जिसके शरीरमें स्पर्श कराओगे वह व्यक्ति अवश्य वशीभूत होगा।

पुष्यानक्षत्रमें कण्टकारी (भटकटैया) मूल उखाड़ कर कटिमें बांधनेसे वह व्यक्ति सबोंका प्रियपात्र बन जाता है तथा कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको रातको श्मशानस्थित महानील वृक्षके मूलको उखाड़ कर नरतैल द्वारा अञ्जन करनेसे जगत् वशीभूत किया जा सकता है। श्मशानजात महानील वृक्षके मूलको निज शुक्रके साथ पीस कर अञ्जन करनेसे जिसको चाहो, वशीभूत कर सकते हो। जो उक्त मूलको हाथमें बांधता है, वह सबोंका प्यारा होता है।

पुष्यानक्षत्रमें इड़ा-नाड़ी वहनके समय ब्रह्मदण्डीका मूल उखाड़ कर जिस किसीको खिलाया जायगा, वह वशीभूत होगा। पेचकके हृदय, घृतकुमारी और गोरोचन इनका समान भाग ले कर आँखमें अञ्जन करनेसे त्रिभुवनको वश्य किया जा सकता है। 'ओं नमो महायक्षिणी अमुक मे वशमानाय स्वाहा।' इस मन्त्रको दश हजार बार जप करके पूर्वोक्त सभी प्रक्रिया करनी होती है।

कुल मन्त्रोंकी जपसंख्या अलग अलग दी गई है। जिस मन्त्रकी जितनी संख्या कही गई है उस मंत्रका उतनी ही संख्यामें जप करना चाहिये। फिर जहां कोई संख्या निर्णीत नहीं है वहां एक अयुत अर्थात् दश हजार जप करनेकी विधि है।

मृगशिरानक्षत्रमें लाल कनेरकी जड़ उखाड़ कर उसकी नौ उँगलीकी कील बनावो। पीछे उसे 'ओं ऐं स्वाहा' इस मंत्रके द्वारा सात बार अभिमंत्रित करके जिसका नाम उल्लेख करते हुए जमीन खोदोगे वह मनुष्य अवश्य वशीभूत हो जायगा। 'ओं ऐं स्वाहा' यह मन्त्र पहले दश हजार बार जप कर सिद्ध हो जानेके बाद कार्यमें हाथ डालना होगा।

अपामार्गके मूलकी कील सात बार अभिमन्त्रित करके जिसके घरमें फेंकी जायगी, वही व्यक्ति वशीभूत होगा। 'ओं मदनकामदेवाय फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध हो ले, तब काममें हाथ डाले। अपामार्गके मूलका कपालमें तिलक लगानेसे वशीकरण होता है।

किसी कपड़ेमें स्वयम्भु कुसुम बांध कर उसे तिमुहाने रास्ते पर शनिवार वा मङ्गलवारको जलावे। पीछे उस वस्त्रदग्ध भस्मका 'ओं नमो भैरवीतरे आज्ञाकाले कमल मुखे राजमोहनि प्रजावशीकरणे स्त्रीपुरुषरञ्जनि लोकवश्य

मोहिनि मे सोऽहं ओं गुरुप्रसादेन' इस मंत्रसे कपाल पर तिलक लगावे। इससे दूसरेकी बात तो दूर रहे, राजा भी वशीभूत हो जाते हैं। कृष्णपक्षीय चतुर्दशीकी रातको ईषालाङ्गलिया वृक्षके मूल, नरतैल, मधु और हरिताल ये सब द्रव्य एकत्र कर कपालमें लगानेसे सभी मनुष्य वशीभूत किये जा सकते हैं।

'ओं अश्वकर्णेश्वरि दुर्बले आइकेशिक जटाकलापे ढकार फेत्कारिणि स्वाहा' इस मंत्रसे कामिनीवृक्षके मूल और हरितालको एकत्र पीस कर गोली बनावे। वह गोली मुंहमें रख कर जिससे जो मांगोगे वह उसी समय दे देगा। वटपत्र और मयूरशिखासमान भाग ले कर तिलक करनेसे सभी लोक वशीभूत होते हैं। कृष्णअपराजिता, भृङ्गराजके मूल, गोरोचन, विजवन्द और श्वेत अपराजिताके मूलको एक साथ पीस कर कुमारीकन्याके हाथमें लेपन करे। पीछे उस लिप्तवस्त्रको जलके साथ घर्षण कर तिलक करनेसे सर्वलोक वशीभूत होगा। लाल कनेरके पुष्प, कुट, सफेद सरसों, सफेद अकवनका मूल, तगर, सफेद घुंघची और गोपालकर्कटीके मूल इन्हें पुष्यानक्षत्रयुक्त कृष्णपक्षीय अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथिको एकत्र पीस कर तिलक लगावे। इससे सभी मनुष्य वशीभूत किये जा सकते हैं।

'ओं नमो वरजालिनी सर्वलोकवशङ्करी स्वाहा' इस मंत्रको १०८ बार जप कर सिद्ध हो ले। पीछे अपामार्गके मूल और गोरोचनाको एकत्र पोस कर कपालमें तिलक लगानेसे भी जगत् वशीभूत किया जा सकता है।

पेचकका चक्षु ला कर उसमें गोरोचन मिला दे। पीछे वह जिस व्यक्तिको जलके साथ खाने दिया जायगा वही व्यक्ति वशीभूत होगा।

पेचकके दो कान और चटक पक्षीके चक्षु इन्हें एक साथ चूर्ण करे। पीछे उस चूर्णका कपालमें तिलक लगावे, जगत् वशीभूत हो जायगा। फिर वह चूर जिसी व्यक्तिको उसके भक्ष्यद्रव्य और जलके साथ खिलाने अथवा गंधद्रव्य और पुष्पके साथ सुंघनेसे अथवा किसीके मस्तक पर रखनेसे वह उसी समय वशी- हो जायगा। 'ओं ह्री हूं ह्रीं त्र: हें: फट् नमः' यह मन्त्र हजार बार जप कर पेचकके मांस, कुंकुम, अगुरु, रक्तचन्दन और गोरोचन इनके बराबर बराबर भागको एक साथ पीस कर खिलाने अथवा फलके साथ पिलानेसे त्रिजगत् वशीभूत होता है। इससे स्त्री और पुरुष दोनों ही वशीभूत हो जाते हैं।

पूर्व दिन उपवास रह कर गोपालककर्टीके मूलको उखाड़ो। पीछे उत्तराभिमुखी हो कर उस मूलको ऊखलमें कूटो। वह चूर जितना होगा उतना ही त्रिकटु अर्थात् मिर्चा, पीपल और सोंठ ले कर बकरीके दूधमें पोसो। बाद छायामें सुखा कर गोली बनाओ। अनन्तर उस गोलीको रक्तचन्दनके साथ घोंट कर अपनी उंगलीमें लगा करके जिसका स्पर्श करोगे वही वशीभूत होगा। अथवा उस गोलीको समान भाग देवदारु और श्वेतचन्दनके साथ जलमें पीस कर जिसके अंगमें लगाया जायगा वही वशीभूत होगा। 'ओं नमः शची इन्द्राणी सर्ववशङ्करी सर्वार्थसाधिनी स्वाहा' यह मन्त्र हजार बार जप कर उक्त गोली और गोरोचनको जलमें पीस कर कपालमें तिलक लगानेसे सभी जगह जयलाभ होगा।

कृष्णपक्षीय चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथिमें उपवास रह कर देवताको बलि दे। पीछे विजवन्दका मूल उखाड़ कर उसे चूर्ण करे। वह चूर्ण पानके साथ मिला कर जिसे खानेको दोगे, वही वशीभूत होगा। विजबंद और गोरोचनको एक साथ पीस कर तिलक लगाने तथा मैनसिल और विजवन्दको पीस कर अञ्जन देनेसे समस्त लोक वशीभूत हो सकता है। विजवन्दके मूलका सात दिन तक पानके साथ प्रयोग करनेसे राजा भी वशीभूत होते हैं, 'ओं नमो भगवति मातङ्गेश्वरी सर्वमुखरञ्जनि सर्वेषां महामाये मातङ्गि कुमारिके लेपे लघु लघु वशं कुरु स्वाहा' इस मन्त्रको जप कर निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा कार्यकी सिद्धि करनी होती है। विजवन्दके मूलचूर्णको मस्तक पर रखनेसे सभी मनुष्य वशीभूत होते हैं तथा उस मूलको मुखमें डाल कर अथवा कटिमें बांध कर जिस नारीकी कामना करे, वही उसके वशीभूता हो जाती है।

श्मशानके अङ्गार और शृगालके रक्तको एकत्र कर जिसके मस्तक पर फेंका जायगा वही वशीभूत होगा। मयूरके पित्त, गोरम्भा, जातिपुष्प और गोरोचन इन्हें

एकत्र कर कुमारी द्वारा पिसवावे। पीछे उसको स्पर्श वा पान करनेसे त्रिजगत् वश किया जा सकता है। चंद्रग्रहणकालमें सफेद अपराजिताका मूल उखाड़ कर उसका अञ्जन करने अथवा तिलक लगानेसे सर्वलोक वश्य होता है। कटकरञ्जका मूल मुखमें रखनेसे लोग वशीभूत होता, प्रातवादी मूक बन जाता अथवा कहीं भाग जाता है। कृष्णपक्षीय चतुर्दशी तिथिमें सफेद घुंघचीका मूल उखाड़ कर पानके साथ जिसे खिलाओगे, वही मनुष्य वशीभूत हो जायगा। मैनसिल, गोरोचन और सफेद अपराजिताके मूलको जलके साथ पीस कर कपाल पर तिलक लगानेसे जिसके साथ बात चीत की जायगी, वही वश हो जाता है।

स्वर्णवेष्टित श्वेत अपराजिताके मूलको मूद्रामें रख कर जो व्यक्ति धारण करेगा, उसके वाक्यसे सभी वशीभूत हो जायंगे। 'ओं वज्रकिरणे शिवे रक्ष रक्ष भगवति ममादि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा।' सहस्र वार इस मन्त्र-जप द्वारा सिद्ध हो श्वेतअपराजिताके मूलको चबा कर उसका तिलक लगावे। नर अथवा नारी जो कोई उस तिलकको देखेगा वही वशीभूत हो जायगा।

पुष्यानक्षत्रयुक्त कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको साधक उपवास रह कर पुष्प, धूप, बलि और घृतप्रदीप प्रदानपूर्वक 'ओं श्वेतवर्णे सितपर्वतवासिनी अप्रतिहते मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा।' इस मन्त्रको १०८ वार जपे। पीछे सफेद घुंघचीके फल और उस जगहकी मिट्टी ले कर उस फलको घृत द्वारा लेपन करे। अनन्तर उसके बीज और मट्टीको एक उत्तम नये बरतनमें रख कर कृष्णपक्षीय चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथिमें जमीनके अन्दर गाड़ दे। पीछे जब तक उस बीजसे पौधे उग कर उसमें फल न लगे, तब तक 'ओं श्वेतवर्णे सितवासिनि श्वेतपर्वतनिवासिनी सर्वकार्याणि कुरु कुरु अप्रतिहते नमो नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे जल सींचते रहे फल लग जानेसे फिरसे शुचिपूर्वक उपवासी हो धूपादि उपहार प्रदानपूर्वक 'ओं श्वेतहृदयाय नमः। ओं पद्ममुखे शिरसे स्वाहा। ओं नमः सर्वज्ञानमये शिखायै वषट्। ओं नमः सर्वशक्तिमत्यै कवचाय हुं। ओं नमः नेत्रत्रयाय वौषट् 'ओं परमन्त्रभेदने अस्त्राय फट्। सर्वाण्यङ्गानि ओं नमोऽस्त्वादिनि' इत्यादि मन्त्रसे न्यास करे; पीछे 'ओं नमो भगवति ह्रीं श्वेतवासे नमो नमः स्वाहा' इस मंत्रको पढ़ कर उस सफेद घुंघचीके मूलको उखाड़े। बाद वशीकरण प्रक्रियामें प्रवृत्त होनेके पहले 'ओं नमो भगवति' इत्यादि मन्त्रका दश हजार वार जप तथा घृतमिश्रित तिल और श्वेत दूर्वा द्वारा सहस्र वार होम करना होगा। उक्त श्वेत घुंघचोके मूल और श्वेतचन्दनको पीस कर अथवा मधुके साथ घिस कर शरीरमें लगानेसे सभी वशीभूत होते हैं।

मैनसिल पूर्वोक्त प्रकारके श्वेतगुञ्जा (घुंघची)के मूल और श्वेत चन्दनको पीस कर कपाल पर तिलक लगानेसे सभी वशीभूत होते हैं। पूर्वरूपसे श्वेत गुञ्जाके मूल, श्वेत सर्षप और प्रियंगु इनका समान समान भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे उस चूर्णको 'ओम् नमः श्वेतपाले सर्वलोकवशङ्करि दुष्टान् वशं कुरु कुरु मे वशमानय स्वाहा' एक सौ आठ वार इस मंत्रजपसे सिद्ध हो कर जिसके मस्तक पर फेंकोगे वही वशीभूत होगा।

अङ्कुसके मूल, प्रियंगु, कुट, इलायची, नागकेशर और श्वेतसर्षप इन्हें एकत्र कर जिसके अङ्गमें धूप प्रदान करोगे वही वशीभूत होगा। 'ओं कामिनि माधवि माधवि नमः' इस मन्त्रसे धूपको सौ वार अभिमंत्रित कर लेना होगा। उक्त मंत्रसे सौ वार अभिमंत्रित करके एक पुष्प जिसके हाथमें दिया जायगा, वही वशीभूत होता है। अथवा उक्त मंत्रसे अन्नको अभिमंत्रित करके जिसका नामोल्लेख करते हुए प्रतिदिन सात ग्रासके हिसाबसे सात दिन तक भोजन करेगा, वह व्यक्ति अवश्य ही वशीभूत होगा। 'ओं कटं कटे घोर रूपिणि ठः ठः' इस मंत्रको उक्त प्रक्रियाके पहले हजार वार जप कर कार्य्य करनेसे कार्य्यकी सिद्धि होती है।

'ओं घण्टा कर्णाय नमः।' इस मंत्रको दश हजार जपनेके बाद फिर उस मन्त्रसे पत्थरके एक टुकड़ेको अभिमंत्रित करे। अनन्तर उसे ग्राम अथवा पुरीके मध्य फेंक दे अथवा उस ग्रामके किसी वृक्षमें उस पत्थरसे आघात करें, तो उस ग्रामकी जिस किसी वस्तु की इच्छा करेगा, वही प्राप्त होगी।

'ओं जम्भे स्वाहा।' साधक इस मंत्रको दो लाख वार

जप कर घृताक्त गुग्गुल द्वारा बीस हजार होम करे, तो देवी सौभाग्य प्रदान करती है तथा साधक जो स्पर्श करेगा वह उसी समय वशीभूत हो जायगा।

'ओं महायक्षसेनाधिपतये माणिभद्राय अप्रार्थितमन्नं देहि स्वाहा' इस यक्षमंत्रसे क्षीरीवृक्षमें (जिस वृक्षसे दूध निकलता हो) सात बार ताड़न और इक्कीस बार अभिमंत्रित करे तथा उस वृक्षकी एक लकड़ी दाहिनी हाथमें रखे तो अप्रार्थित अन्न भी लाभ होता है।

'ओं नमो भूतनाथाय यं भूपाल वशं कुरु कुरु भुवनक्षोभक सर्वलोकान् क्षोभय क्षोभय स्कें ब्लीं ब्लीं ब्लुं स्वाहा।' रक्तवस्त्र पहन कर यह मंत्र दश हजार बार जप करनेसे सभी नरनारी क्षोभित होती हैं।

'ओं ऐं अमुकं रञ्जय ह्रीं स्वाहा।' इस मंत्रको दश हजार बार जप कर शर्करा, मधु और दुग्धमिश्रित पद्मकेशर द्वारा एक हजार होम करनेसे सभी लोक वशीभूत किया जा सकता है। जो कोई व्यक्ति उसे देखेगा उसे संतोष उत्पन्न होगा।

'ओं उच्छिष्टचाण्डालि वाग्वादिनि राजमोहनि प्रजामोहन स्त्रीमोहन आन् आन् वेवे वायु वायु उच्छिष्टचाण्डालि सत्यावादिनि की शक्ति फुरै।' साधक निर्जन स्थानमें बैठ कर उच्छिष्ट मुखसे इस मंत्रको दश हजार बार जपे। बाद उस मन्त्र द्वारा किसी द्रव्यका स्मरण करनेसे वह उसी समय सामने आ जाता है।

'ओं नमो भूतनाथाय समस्तभुवनभूतानि साधय हुं।' इस मंत्रका जप करनेसे महादेव प्रसन्न होते हैं और साधक जिसका स्मरण करेंगे, वह उसी समय वशीभूत हो जायगा।

'ओं क्लीं सः अमुकं मे वशं कुरु कुरु स्वाहा।' इस मंत्रको दश हजार बार जपे तथा कुंकुम, रक्तचन्दन, गोरोचन और कर्पूर इन सब द्रव्योंका बराबर बराबर भाग ले कर गायके दूधके साथ मिलावे। पीछे उक्त मन्त्र द्वारा सात बार अभिमन्त्रित करके ललाट पर तिलक लगावे। इससे राजा वशीभूत होते हैं।

'ओं सुदर्शनाय हुं फट् स्वाहा।' इस मन्त्रको हजार बार जप कर हस्तानक्षत्रमें पिठवनका मूल उखाड़ कर हाथमें धारण करो। इससे राजद्वारमें पूजनीय होता है तथा विवादमें जय होती है।

मञ्जिष्ठा, कुंकुम, यमानी, घृतकुमारी, चिताकी भस्म और शरीरका रक्त इन सब द्रव्योंको एकत्र कर अपने शुक्र द्वारा भावना दो। पीछे पुष्यानक्षत्रमें गोली बनाओ। यह गोली जिसे खिलाई अथवा जलके साथ मिला कर पिलाई जायगी वह निश्चय ही वशीभूत हो जायगा। उक्त गोली राजाको स्पर्श करानेसे चण्ड-मन्त्रके प्रभावसे राजा भी वशीभूत होते हैं।

'ओं ह्रीं रक्तचामुण्डे कुरु कुरु अमुकं मे वशमानय स्वाहा' इस मन्त्रबलसे चन्द्रग्रहणके समय उखाड़ी हुई श्वेतअपराजिताकी जड़ अपने मालिकको खिलानेसे वे वशीभूत हो जायेंगे। उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा अथवा उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें सवेरे अश्वत्थवृक्षका मूल उखाड़ कर हाथमें धारण करनेसे राजदरबारमें जयलाभ होता है। भरणीनक्षत्रमें आम्रवृक्षके मूल और पूर्वफल्गुनी नक्षत्रमें दाड़िमके मूलको उखाड़ कर हाथमें पहननेसे देवराज इन्द्र भी वशीभूत होते हैं। अश्लेषा नक्षत्रमें नागकेशरके मूलको उखाड़ कर हाथमें बांधनेसे राजा वशीभूत होते हैं। कटु तैल द्वारा रक्तचन्दन और श्वेत सर्षपका सहस्र होम करनेसे तथा रातको अपने घरमें छागरक्तके साथ सर्षप द्वारा सहस्र होम करनेसे राजा निश्चय ही वशीभूत होते हैं।

परवादिजय।

पुष्यानक्षत्रमें गोजिह्वा और अपामार्गके मूलको उखाड़ कर मुखमें अथवा मस्तक पर धारण करनेसे विवादमें जयलाभ होता है। अगहनकी पूर्णिमाको अपामार्गका मूल उखाड़ कर बाहु अथवा मस्तक पर धारण करनेसे विवादमें जयी हो सकते हैं। उक्त मूलको शिखामें बांधनेसे बन्धनसे छुटकारा मिलता है। नटिया सागके मूलको चांदीके कवचमें भर कर मुखमें रखनेसे विवादी व्यक्ति मूक होता है अर्थात् कहीं भाग जाता है। कृष्णा चतुर्दशीको रातको श्मशानजात महानीलिवृक्षके मूलको ला कर हाथमें धारण करनेसे विवादमें जयी होता है। सफेद घुंघची वृक्षके मूलको मुखमें रखनेसे दुष्ट व्यक्तिके वाक्य रोध होता है। चण्डमन्त्र द्वारा ही ये सब कार्य करने होते हैं। 'ओं नमो भस्मि जय धूलि धूसरि अरणि जय वागध्यं यन्तु स्वाहा' जिस व्यक्तिके मस्तक पर

हाथ रख कर तीन दिन शामको इस मन्त्रका जप किया जायगा, वह विवादमें जयलाभ करता है।

दुर्वृत्त दमन।

शुक्लपक्षमें पुष्यानक्षत्रको गुञ्जका मूल उखाड़ कर मस्तक वा शय्या पर रखनेसे चोरका भय जाता रहता है। अश्लेषा नक्षत्रमें आमलकी वृक्षके मूलको उखाड़ कर हाथमें धारण करनेसे चोर, वाघ और राजाका भय नहीं रहता। आर्द्रानक्षत्रमें वाँसकी जड़ उखाड़ कर कानमें वांधनेसे निःसन्देह विवादमें शत्रुकी हार होती है। आकोंड़ फलके तेलके साथ अमराफलचूर्ण मिला कर हाथीके शरीरमें लगानेसे मतवाला हाथी वशीभूत हो जाता है। हस्ता नक्षत्रमें छूछूंदरको मार कर उसका चूर्ण करे। पीछे उक्त चूर्ण द्वारा शरीरलेपन करनेसे हाथी उसे देखते ही सिर झुकाये भागता है। विल्वपुष्प और छूछूंदरको एक साथ पीस कर अङ्गमें लगानेसे हाथी जान ले कर भागता है। अपामार्गके मूलको वाहु और मस्तक पर धारण करनेसे दुष्ट हाथी तथा समरादिका भय जाता रहता है। श्वेतअपराजिताके मूलको हाथमें वांधनेसे हाथीका भय निवारण किया जाता है तथा श्वेत वृहतीके मूलसे व्याघ्रभय नहीं रहता।

'ओं चित्त चित्तलो वृच्छे आवे कुरु कुरु कुरुजि पुच्छ ड़ोलोके ऽसे चले तरिं मुहि भावे गौरिकार्त्त महादेव वृणजाल आहावाधीं पूताकिजे महारा उत्तराजे इह तु भूमि छर्दजे तारितैप्युंनूघरु कोजै विवाह जपै सा पुटाले भुजै मोविहिस्काल' ये ऽनुमण्डकी आज्ञा।' इस मन्त्र द्वारा अपने शरीरसे एक बुंद रक्त निकाल कर वाघके शरीर पर फेंकनेसे वाघ दूर भाग जाता है। किसी ग्राममें, नगरमें वा वनमें यदि कोई वाघ उपद्रव मचावे, तो इस मन्त्रको हजार वार जप कर एक शूकरको पोसे। पीछे इस मन्त्र प्रभावसे वाघ स्वयं उस जगह पर आ शूकर खा जायगा और उस स्थानको सदाके लिये छोड़ देगा।

वशीकरणप्रकार।

कबूतरके चक्षु और हृदय तथा निज देहरक्त, गोरोचन और जिह्वाके मलको एकत्र कर अञ्जन लगानेसे स्त्री वशीभूत होती है। गोरोचन, चिताभस्म, नरतैल और निज शुक्रको एकत्र पीस कर जिस रमणीको दिया जायगा वह वशीभूत होती है। चिताभस्म, चर्बी, कुट, तगरकाष्ठ और कुंकुम इनका वरावर वरावर भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे उस चूर्णको स्त्रीके मस्तक वा पुरुषके पद पर निक्षेप करे, तो वह रमणी वा पुरुष जिन्दगी भर वशीकारका दास होता है। तीस चना, सोलह इन्द्रजौ, गोदन्त और नरदन्त इन्हें तेलके साथ पीस कर ललाट पर तिलक लगानेसे रमणीमात्र ही वशभूता होती है। सोहागा, यष्टिमधु, गोरोचन, चिताभस्म और काकजिह्वा, वरावर वरावर भाग ले कर मधुके साथ मिलावे। पीछे उसका तिलक धारण करनेसे तथा पुष्यानक्षत्रमें काले धतूरेके फूल, भरणीनक्षत्रमें फल, मूलानक्षत्रमें पत्रको तोड़ कर कुंकुम गोरोचन और कपूरके साथ अच्छी तरह पीस कर तिलक लगानेसे जिसको चाहो वशीभूत कर सकते हो। काकजङ्घा, वच, कुट, विल्वपत्र, कुंकुम और अपने रक्तको एक साथ मिला कर कपाल पर तिलक लगानेसे रमणी मात्र वशीभूत होती है।

काकजङ्घा, वच, कुट, शुक्र और शोणित इन्हें एकत्र कर जिस स्त्रीको खिलाओगे वह ऐसी वशीभूत हो जायगी कि, उस पुरुषके मरनेके बाद वह श्मशान जा कर रोयेगी। चटक पक्षीका मस्तक, उतना ही श्वेत अकवनका मूल, मञ्जिष्ठा और खदिर जिसे खिलाया जायगा वही वशीभूत होता है। सांपकी केंचुल, अनारकी लकड़ी और अण्डीका तेल, इनका वरावर वरावर भाग ले कर धूप प्रदान करनेसे रमणी वशीभूत होती है। अश्विनीनक्षत्रमें पलाशवृक्षके फूलको संग्रह कर हाथमें वांधनेसे नारी तुरत वशीभूत हो जाती हैं। यज्ञडुमरके मलको मृगशिरा नक्षत्रमें उखाड़ कर अपने हाथमें बांधो। पीछे उसका जिसके अङ्गमें स्पर्श कराओगे वही कामिनी वशीभूत होगी। धनिष्ठानक्षत्रमें शिरीषवृक्षके मूल, अश्विनी नक्षत्रमें पलाशमूल और स्वाति नक्षत्रमें धातकीवृक्षके मूलको उखाड़ कर हाथमें बांधनेसे स्त्रीगण वशीभूत होती हैं। रेवती नक्षत्रमें वटकी कौड़ीको संग्रह कर हाथमें बांधनेसे तथा मूलनक्षत्रमें वदरीमूलको उखाड़ कर स्त्रियोंको खिलानेसे वह अवश्य वशीभूत होगी। स्वातीमें कुन्दवृक्षके मूलको घिस कर स्त्रियोंकी पीठमें

लगा देनेसे तथा अगहनकी पूर्णिमाको अपामार्गके वीज उखाड़ कर स्त्रियोंको खिलानेसे वह वशीभूत होती है। ये दोनों कार्य चण्डमन्त्रसे सिद्ध हो कर करने होंगे।

सफेद घुंघचीके मूल और पञ्चमल अर्थात् दन्त, जिह्वा, कर्ण, नासा और चक्षुके मलको एकत्र कर यदि स्त्रीको खिला सके, तो वह निश्चय ही वशीभूता होगी। 'ओं नमः क्षिप्रं अमुकीं मे वशमानय हुं फट् स्वाहा।' सवेरे दांतको साफ कर अभिलषित रमणीका नामोल्लेख करते हुए इस मन्त्रसे सप्तगण्डूष जलको सात वार अभिमन्त्रित करके पान करनेसे वह स्त्री वशीभूत हो जाती है। नागकेशरके पुष्प, प्रियंगु, तगरकाष्ठ, पद्मकेशर, वच और जटामांसी इन्हें एक साथ चूर कर जो व्यक्ति 'ओं मूलि मूलि महामूली रक्ष रक्ष सर्वासां क्षेवयेभ्यः परेभ्यः स्वाहा।' इस मन्त्रका पाठ करते हुए उक्त चूर्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप लगावेगा, उसे कामदेवके सदृश जान कर रमणियां उसके वश हो जाती हैं।

'ओं नमः सवायै नमः सवान्यै च अमुकीं मे वशमानय स्वाहा।' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित सुराके साथ जिह्वा, दन्त, नाशा और कर्णमल अथवा 'ओं नमो वाचाट पथ पथ हिटि द्रावहि स्वाहा।' इस मन्त्रसे सात वार अभिमन्त्रित करके विजवन्दका मूल खिलानेसे स्त्री वशीभूत होती हैं।

अपामार्गवृक्षके मध्यभागके चार अंगुल परिमित काष्ठको 'ओं द्राविणी स्वाहा ओं हमिले स्वाहा' इस मन्त्रसे सात वार अभिमन्त्रित करके वेश्याके घर फेंकनेसे वह उसके अधीन हो जाती है। पेचकके चक्षु और मांस, रक्तचन्दन, गोरोचन, कुंकुम, मत्स्यतैल इन्हें एकत्र कर तथा 'ओं ह्रों ह्रों प्लूं प्लं फट् नमः' इस मन्त्र द्वारा अपने शरीरमें अभ्यङ्ग करनेसे स्त्री वशीभूत होती हैं। गिरगिटके दाहिने पैरको मुखमें रख कर रतिक्रिया करनेसे रमणी वशमें आ जाती है। गिरगिटके वाम नेत्रको मधु और तेलके साथ अञ्जन देनेसे जिस स्त्रीके प्रति दृष्टिपात किया जायगा वही वशीभूत होगी। 'ओं आनन्द ब्रह्म स्वाहा ओं ह्रीं क्लीं प्लां कालि कपालि स्वाहा' मन्त्र द्वारा उक्त प्रक्रिया करनी होती है।

'ओं पूजिताय स्वाहा' मन्त्रसे सिद्ध हो कर गिरगिटके दाहिने चक्षुको कांजी और मधुके साथ मिला कर अञ्जन लगा कर 'ओं नमः कामदेवाय सहकल सहदश, सहयम सहालिमे वह्ने धूनन जनं मम दर्शनं उत्कण्ठितं कुरु कुरु दक्ष दण्डधर कुसुमं वाणेन हन हन स्वाहा।' इस मन्त्रको तीन शाम तक सौ सौ वार जप करे। सात दिन तक ऐसा करनेसे नारी उसे देखते ही वशीभूता हो जाती है। रातको कामाक्रान्तचित्तसे जिसका नामोल्लेख करते हुए 'ओं स ह्वल्लीं वल्लीं करवल्लीं कामपिशाच अमुकीं कामं ग्राहय स्वप्नेन ममरूपेण नखैर्विदारय द्रावय स्वेदेन बन्धय श्री फट्।' इस मंत्रका जप करोगे वह निश्चय ही वशमें आ जायगी। लवण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत अथवा सर्षप, लवण, दुग्ध, और घृत ले कर सात दिन होम करनेसे रूपगर्विता नारी भी वशीभूत होती है। महानिम्बके पुष्पके साथ प्रति दिन घृत द्वारा 'ओं ह्रीं चामुण्डे तुरु तुरु अमुकीं मे वशमानय स्वाहा।' इस मन्त्रसे सात दिन होम करनेसे कार्यको सिद्धि होती है। मनुष्य-मस्तकके मध्यभागको गर्दभके मस्तिष्कसे भर कर भृङ्गराजके रसमें सात दिन भावना दे। अनन्तर रुईकी वत्ती वना कर उस मज्जापात्रमें दे प्रदीप वाले। शनिवारको उस प्रदीपको शिखासे मनुष्यकी खोपड़ीमें घिस कर काजल वनावे। पीछे उस काजलको आंखमें लगा कर जिस औरतके प्रति नजर उठाओगे वही वशीभूता और अनुगामिनी होती है।

मैनसिल, हरिताल, स्वीयवीर्य, आकोंड़ फलका तेल, हस्तिगण्डका मद इन सबको एक साथ मिला कर कपाल पर तिलक लगानेसे रमणी सहजमें वशीभूत होती है। मैनसिल, प्रियङ्गु, नागकेशर और गोरोचन इन्हें एक साथ मिला कर आंखमें अंजन देनेसे कामिनी वशमें आती हैं। प्रियंगु, वच, तेजपत्र, गोरोचन, रसाञ्जन और रक्तचन्दन द्वारा प्रस्तुत अञ्जनको आंखमें लगा कर जिस किसी स्त्रीके प्रति दृष्टिपात करोगे, वही वशीभूता होगी। सोमराजी और अकवनके मूलको कटिमें बांधनेसे स्त्री-पुरुष दोनों ही वशीभूत होते हैं। कृष्णपक्षकी अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथिको उखाड़ा हुआ पीले धतूरेका मूल, कुट और देवदारु इनके बराबर बराबर भागको

एक साथ चूर करके, पीछे उसे स्त्री अथवा पुरुषके मस्तक पर फेंकनेसे वशीकरण होता है।

जलके साथ आमलकीके मूलको घिस कर आंखमें लगाने अथवा कपालमें तिलक धारण करनेसे स्त्री वा पुरुष वशीभूत होता है। गोपालककर्कटीके मूलको पुष्यानक्षत्र-में नंगी अवस्थामें उखाड़ कर उसके साथ मिर्च, पिप्पली और सोंठ मिलावे। पीछे गायके दूधमें उसे पीस कर गोली बनावे। उस गोलीको रक्तचन्दनके साथ मिला कर तिलक करनेसे स्त्रीगण वशीभूत होती हैं। स्वाती-नक्षत्रमें वर्वटीके मूल और अनुराधानक्षत्रमें वदरीके मूल-को उखाड़ कर हाथमें बांधनेसे फललाभ होता है। ऊर्द्ध्व-पुष्पी, अधःपुष्पी, लज्जावती और अपराजिताके पुष्पको सात दिन तक निज शुक्रमें भावना दे कर जिह्वामल, नासामल, कर्णमल और दन्तमलके साथ मिलावे। उसे किसी स्त्रीको भक्ष्यद्रव्यके साथ खिलाने वा जलके साथ पिलानेसे रमणी वशमें आ जाती है। श्वेत अकवन, लाङ्गलिया, वच, लज्जावतीमूल इन्हें चूर कर कुत्तीके दूधके साथ मिलावे। पीछे उसे धतूरेके फलमें रख कर किसी औरतको खिलानेसे इच्छानुरूप फल प्राप्त होता है।

सप्तवार जलाञ्जलि प्रदानपूर्वक 'ओं विश्वावसुर्नाम गन्धर्वः कन्यकानामधिपतिः सुरूपां सालङ्कारां देहि मे नमस्तस्मै विश्वावसवे स्वाहा।' यह मन्त्र एक मास तक जपनेसे अभिलषित कन्या प्राप्त होती है।

स्तम्भन-प्रकार।

हल्दी अथवा हरताल द्वारा भोजपत्रके ऊपर अभि-लषित व्यक्तिके मूर्त्तिरूप चन्द्र लिख कर उसे हरिद्वर्ण सूत्र द्वारा वेष्टनपूर्वक किसी शिलामें बांध रखनेसे गति स्तम्भन होता है। चर्मकार और रजकके कुण्डमेंसे मैल-को ला कर उसे चाण्डाल-पत्नीके ऋतुवासमें बांध रखो। उस पोटलीको जिसके सामने रखोगे उसमें फिर उठने-की शक्ति नहीं रहती।

जहां पर गाय, भैंस, मेष, घोड़े और हाथी रहते हैं। उसके चारों कोनेमें ऊंटकी हड्डी गाड़ देनेसे उक्त गो-महिषादिकी गति स्तम्भन हो जाती है।

मनुष्यकी खोपड़ीमें पीली मिट्टी रख कर कृष्णपक्षीय चतुर्दशीकी रातको उसमें सफेद घुंघचीका बीज बोओ और तीन दिन तक वहां जागते रहो तथा प्रतिदिन जल-से उसे सींचो। अनन्तर 'ओं गुरुभ्यो नमः। ओं वज्राय नमः। ओं वज्रकिरणे शिवे रक्ष रक्ष भवेद्गाधि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रसे पूजा और जप कर उक्त बीजोत्पन्न वृक्षसे शाखा और लताको तोड़ लो। पीछे शुभ नक्षत्रमें उसे अभिमन्त्रित कर जिसके आसनके तले रखोगे वही व्यक्ति स्तम्भित होगा। हल्दीके रससे तालपत्रमें पद्म और 'ओं सहचात्र दशायि अमुकस्य मुखं स्तम्भय स्वाहा'। यह मन्त्र लिख कर उसे चबूतरेके मध्य गाड़ देनेसे स्तम्भन होता है। भोजपत्रमें कुंकुम द्वारा शत्रुके नामके साथ एक पद्म अङ्कित करो। पीछे उस भोजपत्रको नीले तागे-से लपेट दो, शत्रु उसी समय स्तम्भित हो जायगा। भृङ्ग-राज, अपामार्ग, सर्षप, विजवन्द, वच और कण्टकारी-का रस निकाल कर लोहेके बरतनमें रखो। दो दिन बाद उसका तिलक लगानेसे शत्रुकी बुद्धि स्तम्भन होती है। नदीमें पैठ कर 'ओं नमो भगवते विश्वामित्राय नमः सर्व-मुखिभ्यां विश्वामित्राय विश्वामित्रोद्दापयति शक्त्या आगच्छतु।' मंत्र द्वारा जिसके नामसे सौ बार तर्पण किये जायेंगे, उसका मुख स्तम्भित हो जाता है।

'ओं नमो ब्रह्मवेशरि रक्ष रक्ष ठः ठः' इस मन्त्रको पढ़ते हुए सात छोटे छोटे पत्थरके टुकड़ोंको उठा ले। इनमेंसे तीनको कमरमें बांधने तथा चारको मुट्ठी-में रखनेसे चोरकी गति स्तम्भ होती है।

आकोंड़का फल, विजवन्द, कण्टकारी, सर्पाक्षी, अपामार्गका मूल, कृष्णापराजिता, शिवजटा, नील, सोना-पाठा और श्वेत अपराजिता इनके मूलको रविवार पुष्या-नक्षत्रमें उखाड़ कर मुख वा मस्तक पर धारण करनेसे शत्रुका अस्त्र स्तम्भित होता है तथा इसके द्वारा अग्नि, मूषिक, व्याघ्र, राजा, चोर और शत्रुका भय जाता रहता है। सफेद घुंघचीके मूलको उत्तर-भाद्रनक्षत्रमें उत्तर-मुखी हो उखाड़ कर मुखमें धारण करनेसे शत्रुपक्षका वाण स्तम्भन होता है। शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिको अपामार्ग, घृतकुमारी और विजवंदके मूल उखाड़ एक साथ पीस कर गोली बनावे। उस गोलीको मस्तक वा बाहुमें धारण करनेसे शत्रुका भय दूर होता है। गोजिह्वा,

हठली, द्राक्षा, वट, श्वेतअपराजिता, कृष्णअपराजिता, हस्तिकर्णी और श्वेतकण्टकारी इन सब पौधोंके मूलको रविवार पुष्यानक्षत्रमें उखाड़ कर कदलीवृक्षके सूत्रसे लपेट दे। पीछे उसे हाथमें कङ्कण वत धारण करने तथा अकवन, रुद्रजटा, श्वेता, शरपुङ्खा और श्वेतगुञ्ज नामक पौधोंके मूलको रविवार पुष्यानक्षत्रमें संग्रह कर मुखमें रखनेसे रणक्षेत्रमें शत्रु स्तम्भित हो रहते हैं। गंभारी अथवा दन्तीमूलको रविवार पुष्यानक्षत्रमें उखाड़ कर तण्डुलोदकके साथ पोसे। अनन्तर तीन दिन उसे पीनेसे शत्रुभय जाता रहता है।

केतकीवृक्षके मूलको मस्तक और नेत्रमें, तालमूलीको मुखमें तथा खजूरके मूलको चरण और हृदयमें धारण करनेसे शत्रुवर्गका खड्ग स्तम्भित होता है। उक्त तीनों प्रकारके मूलको चूर कर घीके साथ पान करनेसे जीवन भर उसे किसी प्रकारका हथियार चोट नहीं पहुंचा सकता।

रविवार पुष्यानक्षत्रमें शिरीषवृक्षके मूलको उखाड़ कर जलमें पीसे। उस जलमेंसे आधा अर्द्धक भोजन करने पर और आधा भोजन कर चुकने पर पी ले। इस प्रकार जब तक उस औषधका सेवन किया जायगा, तब तक उसका शरीर अस्त्रसे विद्ध नहीं हो सकता। उक्त मूल यदि किसी मेढ़के गलेमें बांध दिया जाय, तो वह खड्गसे भी नहीं कट सकता। पुष्यानक्षत्रमें आकन्दवृक्षके मूलको उखाड़ कर एक कौड़ीमें भर दे। पीछे उस कौड़ीको किसी पके फलमें रख कर मुखमें डालनेसे शत्रुका शस्त्र-स्तम्भन होता है।

सूर्यग्रहणकालमें मन्त्रपाठपूर्वक शरपुङ्खके मूलको उखाड़े और उसे मुखमें डाल कर मौनी हो कर रहे। वह व्यक्ति कभी भी शत्रुखड्गसे विद्ध नहीं हो सकता। 'ओं कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्रपाठपूर्वक मूल, पत्र और शाखाके साथ अपराजिताको लताको चूर करो। पीछे उसे तेलमें पका कर शरीरमें लगानेसे अस्त्र भय नहीं रहता। गिरगिटके बाएं पैरको हरितालसे लेप कर उसे ताम्रके बने हुए कवचमें भर दो। उस कवचको मुखमें रखनेसे शत्रुको सहजमें जीत सकते हो। यह कार्य 'ओं चामुण्डे भयचारिणि स्वाहा' मन्त्रसे करना होता है।

'ओं अहो कुम्भकर्ण महाराक्षस केशीगर्भसम्भूत परसैन्यभञ्जन महारुद्रो भगवान् आज्ञा अग्निं स्तम्भय ठः ठः' दश हजार इस मन्त्र-जप द्वारा सिद्ध हो कर हीरा, सोना, अबरक, चाँदी, पारा और गन्धक इनको बराबर बराबर भागको जंबीरी नीबूके रसमें खरल कर गोली बनावे। पीछे किसी बंध्या वा जीववत्सा रमणी द्वारा यज्ञडुमरके बीज, कपासके बीज और सरसोंको पिसवा कर उसमें उक्त गोली रख दे। अनन्तर सात बार गजपुट द्वारा दग्ध कर उस गोलीको मुहमें रखनेसे शत्रुस्तम्भन होता है। तरह तरहके रोग और जरा मृत्युमें भी यह गोली विशेष उपकारी है।

"ओं तप्ता तप्ता अङ्गारि मे भयमथ बन्धकुमारी मूह्य सिद्धि शालायासलं सद्वशौ गौरी महादेवकी आज्ञा ओं नमोयकय तुज लुली रुतिकामी कुजले वले प्रज्वले प्रमातु चण्डे श्रीमहादेवकी आज्ञा पावे पायुशले। ओं अग्नीघतीकाधरै घयोसै गल हजुवाजु मायापेत्तकी ये स्वास्थियो हनूमन्तजले य प्रज्वले जुदजे जुड़मे वेष्ट ईश्वर महादेवकी पूजा वावेपाल पुशालाहु अग्नि ज्वलन्ती मैंधरी जलट्टनी दित्योहु मुहु मैवैश्वानरुधा मवियो देये नारायणा शायु सो अग्नि उपाइकदौ हरिमै युहुं जुज्जुजायोच्छन्द दलीवद्धि बुद्धि बुज्जीवीजले प्रज्वले इं कामिले आज्ञया पूजा पापुटाले श्रीसूर्यकी आज्ञा। अहो सूर्य आवादावी दिदोमुज्जा याज्जाहौ कायाम महत्यारुद अग्निवुण्ड ब्रह्माण्ड ज्वालां त्रपुर आणौ पाणि, लिरेपला आनिदे वैश्वानर नाय मे द्विद्विनी धारा धाकेश पूष्म रोजी महामदी। ओं गुरु मदिशा दुकुकल्का महादुर्गं विहन्ति।

इस महेशमन्त्र, हनूमन्त्र, नारायणमंत्र, सूर्यमंत्र और ब्रह्मांत्रको दश हजार बार जप कर जलती हुई आगमें प्रवेश करनेसे आग उसे दग्ध नहीं कर सकती। उक्त मंत्र एक सौ आठ बार जप करते हुए श्वेत परण्डदण्डको अभिमंत्रित कर उसमें फेंक दे। पीछे अग्निस्तम्भन मंत्र जप कर निर्भयचित्तसे मंत्रपाठ करते हुए अग्निकुण्डमें प्रवेश करो, अग्नि कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकती।

घृतकुमारी और ओलको एक साथ पीस कर यदि हथेलीमें लेप दो और ऊपरसे जलता हुआ अंगार वा

लोहा रख छोड़ो, तो हाथ कुछ भी नहीं जलेगा। अकवनके मूलको घीके साथ पीस कर हाथमें लगानेसे आग जरा भी नुकसान न पहुंचा सकती। पेचक, मेढ़क, मेढ़े की चर्बी अथवा मेढ़ककी चर्बी और नीमकी छाल इन्हें एकत्र पीस कर शरीरमें लगानेसे नहीं जलेगा। उक्त दोनों योगमें 'ओं नमो भगवति चन्द्रकान्ते शुभे व्याघ्रचर्मनिवासिनी चलमाणि स्वाहा।' यह मंत्र बतलाया गया है। मेढ़ककी चर्बीके साथ नीमको छाल पीस कर शरीरमें लगानेसे अग्नि स्तम्भन होती है। स्त्रीपुष्प, गदहेका मूत और बगलेकी चर्बी इन्हें एक साथ पका कर शरीरमें लगानेसे तप्त लोहा भी उसका शरीर नहीं जला सकता। जोंक, अकवनका मूल और शैवालकुसुम इन तीनोंको बेंगकी चर्बीके साथ पोस कर जिस अंगमें लेपन करोगे वह अंग नहीं जलेगा। 'ओं अग्निबलवन्ती मैघरी मलीयै हनूमैवेश्वन रथमिजौ गौरी महेश्वर साधु।' मन्त्रोच्चारणपूर्वक घृतकुमारी और तैल इन्हें एक साथ पीस कर हाथमें लेपनेसे जलता हुआ लोहा भी कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। 'ओं नमो भगवति चन्द्रकान्ते शत व्याघ्रचर्म परिनद्धवसने चमालय स्वाहा।' मंत्रसे मेढ़कका चर्बी और जोंक एकत्र पोस कर विलेपन करनेसे अग्नि स्तम्भन होती है।

मेढ़ककी चर्बीके साथ उद्भ्रान्तपत्र, विल्वपत्र एरण्डपत्र और निम्बपत्र इन्हें धोमी आंचमें पका कर पादप्रलेपन करनेसे प्रज्वलित अङ्गारके ऊपर भ्रमण किया जा सकता है। 'ओं नमो भगवते चंद्ररूपाय विकलां त्विहन्ति तत्क्रमस्तम्भत्वन चन्द्ररूपेण अग्निपुत्र वरं कट्ट ठः ठः।' मंत्रसे जौके पौधेको मेढ़ककी चर्बीके साथ पोस कर गोली बनावे। पीछे उस गोलीको अग्निमें डाल कर अग्निमें प्रवेश करनेसे शरीरमें ताप नहीं लगेगा। गिरगिटके बायें पैर और बायें हाथको मोमसे तथा गिरगिटके बाएं पैरको पारेके साथ मर्दन करके पानके पत्तेसे लपेट कर मुखमें रखनेसे अग्निका तेज लुप्त हो जाता है। उक्त दोनों कार्य 'ओं अमृताय ईड़ पिङ्गले स्वाहा' मन्त्रसे करने होते हैं। भृङ्गराज, कदलीमूल और बेंगकी चर्बी इन्हें धोमी आंचमें पका कर पादतलमें प्रलेप देनेसे विना कुशके अग्निमें चल सकते हो। 'ओं वज्रकिरणे अमृतं कुरु कुरु स्वाहा।' मंत्रसे सफेद घुंघचीका रस सर्वाङ्गमें विलेपन करके जलते हुए अंगारमें पैर रखो, तो पैर नहीं जलेगा।' 'ओं हिमाचलस्योत्तरे भागे मरीचोनाम राक्षसः तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुताशं स्तम्भयामि स्वाहा।' यह मन्त्र गृहदाहके समय सात बार जाप जप कर भूमि पर ताड़न करनेसे अति प्रचण्ड अग्नि भी बुझ जाती है। गायके लोम, जलशूक और बेंगकी चर्बी एकत्र पीस कर किसी कपडेमें तमाम लगा देनेसे वह नहीं जलेगा। अंडी और शिरीषके पत्तोंके रसको पका कर मस्तक पर लगावे और नरतैलाक्त एक खण्ड कम्बल मस्तक पर रखे। पीछे उस कम्बलके ऊपर अग्नि रखनेसे मस्तक नहीं जलेगा।

तिलतैलाक्त सूत्र द्वारा बन्धन कर एक कांसेके बरतनमें यदि दूध और चावलकी खीर पकावे, तो वह सूत्र नहीं जलेगा। अधिकन्तु उक्त खीर खानेसे कमलारोग आराम होता है। भोजपत्र अथवा कदलीपत्रको पुड़िया बना कर उसमें तेल डाल दो। पीछे तेल और गोबरसे बाहरी भाग लेप कर उस पुड़ियाके मुख पर एक सच्छिद्र बरतन रखो। अनन्तर चूल्हेके ऊपर उसे रख कर रसोई पका सकते हो, बरतन नहीं जलेगा। एक वार्त्तकीको कांजोसे भिगोए हुए सूतसे लपेट कर आगमें जलाओ, तो वार्त्तकी ही जलेगा सूत ज्योंका त्यों रहेगा। घृतकुमारीके रस द्वारा सूतमें सात बार भावना दे कर योगपट्ट अर्थात् योगियोंका वस्त्र बनाओ, वह अग्निमें नहीं जलेगा।

सूअरके दूधमें सूतको भिगो कर यज्ञोपवीत प्रस्तुत करनेसे वह नहीं जलता, 'ओं नमो महामाये वह्नि रक्ष स्वाहा' मन्त्रसे सफेद घुंघचीके मूलको अभिमन्त्रित कर अग्निमें डाल दो। पीछे अग्निमें रसोई करनेसे एक महीनेमें भी चावल सिद्ध नहीं होगा। उक्त मन्त्रसे पहले मिर्च और पिप्पलका चूर्ण चबा कर पीछे जलता हुआ अंगार चबाओ तो मुख नहीं जलेगा। तुलसी अथवा शाल्मलीकी लकड़ीके अंगारको गदहेके मूतसे सिंचन कर उक्त अंगारको फिरसे प्रक्षालन करनेसे उससे कोई भी कार्य नहीं होता।

'ओं नमो भगवते जलं स्तम्भय वः पः' मन्त्रसे पद्मक

नामक द्रव्य ला कर बहुत महीन चूर करो, उसे पुष्करिणी, कूप और दीर्घिकाके जलमें फेंक देनेसे जलस्तम्भन होता है। सभी प्रकारके जलस्तम्भन कार्यमें यही प्रयोग करना होता है। 'ओं नमो भगवते रुद्राय वलस्य दिद्रच कलहप्रिये कलहंसाध्वनि तद्वो हि स्वाहा' इस मन्त्रसे वकपुष्पका निर्यास और भैंसका दूध पी कर जो व्यक्ति भैंसका मक्खन खाता है, उसे जल और अग्निका डर नहीं रहता। जो व्यक्ति 'ओं अवये उद स्वाहा' मन्त्रोचारणपूर्वक गिरगिटके दाहिने पैरको त्रिलौहसे वेष्टन कर मुखमें रखता है, वह समुद्रमें भी नहीं डूब सकता। पुष्यानक्षत्रमें सफेद घुंघचीके मूलको कुसुम्भपुष्पके रसमें पीस कर एक खण्ड वस्त्र रंगावे। पीछे उस वस्त्रको शरीरमें लपेट कर जब तक चाहे अथाह जलमें रह सकता है, जलमग्न नहीं होता। पूर्वोक्त गुञ्जा मन्त्रसे गुञ्जामूल उखाड़ना होता है। अलाबूचूर्ण और पक्व घोषाफल इन्हें एक साथ पीस कर उंगली भर मोटा एक टुकड़े चमड़ेमें लेप दो, पीछे उस चमड़ेको सुखा लो। अनन्तर उस चमड़े पर बैठ कर नदी वा ह्रद आदि पार कर सकते हो, डूबनेका भय विलकुल नहीं रहता। घोषाफल और अलाबूको एकत्र पीस कर पादुका निर्माण करके गोसांपके चमड़ेसे उसे लपेट दो। उस पादुका पर बैठ कर जलके ऊपर विचारण कर सकते हो।

घोषाफलचूर्णको रातमें पुष्करिणी, कूप और दीर्घिका आदि जलाशयमें फेंक देनेसे जल स्तम्भित होता है। उक्त जलमें लवण डालनेसे जलस्तम्भन निवारित होता है। 'ओं नमो भगवते रुद्राय जलं स्तम्भय स्तम्भय वः वः व वः ठः ठः ठः।' इस मन्त्रसे मिट्टीका घड़ा बना कर उसमें घोषाफलके चूर्णका उंगली भर मोटा लेप दो पीछे प्रलेपके सूख जाने पर उसे जलसे भर दो। कुछ समय बाद उस घड़ेके फूट जाने पर उसमेंका जल पूर्ववत रहेगा, विचलित नहीं होगा।

मकर, शृगाल और बेजीकी चर्बी तथा जलसपके मस्तकको हरिणके तेलमें पका कर नाक और कानमें प्रलेप देनेसे बहुत समय विना कष्टके जलमें रह सकते हो। लाल धतूरेका मूल और उसका फल, घुंघचीका मूल, मकड़ा और छुछुंदर इन्हें एक साथ पीस कर अस्त्रमें लेप दे। पीछे उस अस्त्रसे लाल धतूरेका फल काटे, तो शत्रुसेना विनष्ट होती है। हलाहल विष, स्थावर विष, विच्छू, छुछुंदर, गिरगिट, कृष्णसर्प, नेवलेका मस्तक, षड्विन्दु कोट, करवीफल, मदनफल इन सब द्रव्योंके चूरको ऊंटके दूधमें एक साथ पीसनेसे राजशत्रु विनाश होता है। कृष्णसर्पका मस्तक आठ, उतना ही चितामूल, दोनोंके बराबर हलाहल विष, हरिताल ४ पल, पद्मकाष्ठ तीन पल, पलाश फल १६ पल, लाङ्गलिया ३ पल और नागकेशर ३ पल इन्हें एकत्र चूर्ण कर गदहेके दूधमें पोसे। किसी हथियारमें उसका लेप चढ़ा कर शत्रुको स्पर्श करानेसे उसका अवश्य नाश होता है। उक्त द्रव्योंके चूर्णको जलाशयादिमें डालनेसे उसका जल ऐसा दूषित हो जाता है, कि पीनेके लायक नहीं रहता, जो कोई वह जल पीता है, उसकी मृत्यु अवश्य होगी।

मोहन।

कृष्णसर्प और भैंसके रक्तमें चूनकी भावना दे कर उसमें जड़ समेत कृष्ण-धतूरेके पोधेको मिला दो। बाद उसका धूप देनेसे मनुष्यको मोहित किया जा सकता है। गुड़, करञ्जवीज और धूनका चूर इन्हें एक साथ पीस कर पिलाने अथवा धूप देनेसे मोहन होता है। हथनी और भैंसके खूरका मल ले कर उसका अपामार्गके फलके साथ धूप देने तथा विष, धतूरेका फल, मूल, पत्र, पुष्प, छाल तथा भैंसका रक्त, पिप्पली और गुग्गुल इन्हें एकत्र कर रातको धूप देनेसे मनुष्य मोहित होता है। मुर्गोंका डिम्ब और मस्तक, प्रियंगु, हरताल, वच, धतूरा और चिताकाष्ठ इन सब द्रव्योंका धूप प्रस्तुत कर किसो व्यक्तिके शरीरमें देनेसे वह मोहित हो जाता है। प्रियंगु, विष, धतूरेका मूल और मयूरकी विष्ठा बराबर बराबर भाग ले कर अथवा गोरोक्षककँटी, चिता, मनःशिला, चूण, लाङ्गलिया, अपमार्गको जटा इनके समान भागका धूप प्रस्तुत करनेसे मनुष्यमात्रको ही मोहित किया जा सकता है। छुछुंदर, सर्पमुण्ड, वृश्चिकका कण्टक और हरिताल इन्हें एकत्र कर धूप देनेसे मनुष्यमात्र ही मोहित होते हैं।

घूनका चूर, विष, कुंदरू मोहिनो (त्रिपुरमाली-

पुष्प) पिप्पली, गोरक्षकर्कटी, धतूरेका बीज, सरसों, मैनफल, लाल कनेर बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे अकवनके फल रुईसे वत्ती बना कर उसमें उक्त चूर्ण मिला दे। बादमें कुसुम्भ-सूत्र द्वारा माथाबीजमें उसे बांध रखे। अनन्तर धतूरेके पत्तोंके रसमें सात बार भावना दे कर उसे सुखा ले। पीछे जलसर्पकी चर्बीसे वह बत्ती लेप कर प्रदीप बाले। जो व्यक्ति दूरसे उस द्वीपकी रोशनी देखेगा, वह अवश्य महित होगा।

उच्चाटन।

एक शिवलिङ्ग बना कर उसमें ब्रह्मदण्डी और चिता भस्मका प्रलेप दे तथा उसके साथ सफेद सरसों मिला कर शनिवारकी रातको जिसके घरमें फेंकोगे, वह उच्चाटन होगा। सफेद सरसों और विल्वपत्रको एकत्र कर जिसके घरमें गाड़ दोगे, उसका उच्चाटन होगा।

दूध, सक्कड़ और आकोंड़का फल इन्हें एक साथ मिला कर मोहित व्यक्तिको पिलानेसे स्वास्थ्य लाभ करता है। सोया घृत, दुग्ध और श्वेत अकवनका मूल एकत्र पान करने तथा गव्य घृत और धूपको मिला कर उसका धूंआं लेनेसे मोहित व्यक्ति चैतन्य लाभ करता।

रविवारकी रातको घरमें कौवेका पंख गाड़ने, पेचककी विष्ठा और सफेद सरसोंके चूरको शरीर पर फेंकने और मङ्गलवारकी रातको घरके भीतर पेचकका पङ्ख गाड़नेसे उच्चाटन होता है। 'ओं नमो भगवते रुद्राय दंष्ट्राकरालाय अमुकं सपुत्रवान्धवैः सह हन हन दह दह पच पच शीघ्रं उच्चाटय उच्चाटय हुं फट् स्वाहा ठं ठः।' एक सौ आठ बार इस मन्त्रको जप कर सिद्ध होनेसे उच्चाटन-कार्यमें हाथ डालना चाहिये।

उक्त मंत्रका पाठ करते हुए काक और पेचकका पंख ले कर जिसके नामसे १०८ बार होम किया जायगा, उसका उच्चाटन होता है। कबूतरकी चर्बीसे ले कर मंत्रोच्चारण करते हुए उस व्यक्तिके घरमें फेंकने अथवा चार अंगुल परिमिति मनुष्यकी हड्डीको उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके शत्रुके घरमें गाड़ देनेसे उच्चाटन होता है। मध्याह्नकालमें जहां गदहा लेटता है वहांकी उत्तर तरफकी धूलको उत्तराभिमुखी हो मन्त्रोच्चारण करते हुए वाम हाथसे उठा कर जिसके घरमें फेंका जायगा वही उच्चाटित होता है।

गृहद्वार पर गुञ्जाके मूलको अथवा मूला नक्षत्रमें खदिरकाष्ठके मूलको शत्रुके दरवाजे पर गाड़नेसे उच्चाटन होता है। आमलकी फलके चूर्णको आकोंड़ फलके तेलमें भावना दे कर मस्तक पर लेपने और बादमें स्नान और दुग्धपान करनेसे उच्चाटन दोषकी शांति होती है। ब्रह्मदण्डी, चिताभस्म, बिल्लीकी हड्डी, सूअरका मांस और कछुएका सिर सबका बराबर बराबर भाग ले कर मनुष्यकी खोपड़ीमें रख जिसके घरमें गाड़ आवोगे, वह परिवार सहित उच्चाटित होता है। नरमांस, शूकरमांस, गृध्रिनीकी अस्थि, विष, गोका पाद, महिषीका पाद और पेचकका पंख इन्हें एक साथ मिला कर शत्रुके घरमें गाड़नेसे तथा ब्रह्मदण्डी, चिन्ताभस्म, चितावृक्षका मूल, रक्त, विष, शूकरका रोम, तितलौको और निम्बबीज इन्हें एकत्र कर शत्रुके नामसे सात दिन तक होम करे, तो शत्रु उच्चाटित होता है। पूर्वोक्त गुञ्जादियोगसे 'ओं नम भगवते उड्डामरेश्वराय उच्छादय उच्छादय उच्चाटय उच्चाटय हन हन ठः ठः' इस मन्त्रसे कार्य करना होगा।

रविवारको काकपक्ष ले कर सांपके केंचुल द्वारा उसे लपेट दे। ऊपरसे कुसुम्भ सूत्र द्वारा पुनः पुनः वेष्टन करे। अनन्तर निम्बपत्रमें शत्रुका नाम लिख कर उसे भी उसमें चिपका दे। बादमें ऊपरसे यथाक्रम चिताभस्म और मृत् व्यक्तिका वस्त्र ढक दे। इस प्रकार बार बार वेष्टितद्रव्य जिसके दरवाजे पर गाड़ा जायगा, वही उच्चाटित होता है।

रविवारको गृध्रिनीके चर्बी, काककी चर्बी, चिताकी लकड़ी और सरसों एकत्र कर ग्रामके वहिर्भागमें दग्ध करके उसकी भस्म ले ले। उस भस्मको शत्रुके मस्तक पर फेंकनेसे शत्रुका उच्चाटन होता है। शरीरमें गोबर लेप कर स्नान करनेसे उक्त दोषकी शान्ति होती है। एक गिरगिटको मार कर उसे स्नान और सफेद वस्त्र पहना कर पूजा करे। पीछे हत्याजन्य रोदन करना उचित है। इसके बाद चाण्डालगृहके निकटस्थ काककी चर्बी ला कर श्मशानकी अग्नि द्वारा उक्त दोनों वस्तु जला दे। उस भस्मको कपड़ेमें बांध कर जिसके घरमें फेंका जायगा, वह बंधुबांधव समेत उच्चाटित होता है। निम्बवृक्षस्थित काककी चर्बीको ब्रह्मदण्डीके साथ दग्ध कर उसकी भस्म

संग्रह करे। पीछे ब्राह्मण, चाण्डाल और म्लेच्छकी चिता-भस्मको ले कर भूमधूच्छिष्ट (मोम)-के साथ चार गोली बनावे। नदीके जलमें अथवा शत्रुके मस्तक पर उस गोलीको फेंकनेसे शत्रुका उच्चाटन होता है। 'ओं नमो भगवते उड्डामरेश्वराय द्रंष्ट्राकरालाय कपिलरूपाय अमुकं सपुत्रपशुवान्धवं हन हन दह दह मथ मथ शीघ्रमुच्चाटय हुं फट् ठः ठः।' मन्त्रसे उक्त दोनों योग करने होते हैं।

मारण।

चतुर्दशी तिथिको काककी चर्वी दग्ध कर उस भस्मको एक उंगलीसे उठा ले। पीछे 'ओं नमो भगवते रुद्राय मारय मारय नमः स्वाहा।' इस मन्त्रको पढ़ते हुए उक्त भस्म शत्रुके मस्तक पर अथवा शत्रुके घरमें फेंकनेसे शत्रु वा उसका कुल नाश होता है। अश्विनीनक्षत्रमें चार अंगुल परिमित घोड़ेकी हड्डीको 'ओं सुरे सुरे स्वाहा।' मन्त्रो-च्चारणपूर्वक शत्रुके घरमें गाड़नेसे शत्रुके कुटुम्ववर्गका विनाश होता है। एक अंगुल परिमित सांपको हड्डीको 'ओं जय विजयति स्वाहा।' मंत्रसे सात वार अभिमन्त्रित करके अश्लेषानक्षत्रमें शत्रुके घर पर फेंक देनेसे शत्रुकी सभी संतान विनष्ट होती है।

नीवूका बोज, षड़विन्दु नामक कोट, शूकसिम्बिफलका रोम, हिंगु और विजवन्दका फल इनका वरावर वरावर भाग ले कर चूर्ण करे और उस चूर्णको शत्रुके शय्या और आसनादिके नीचे रख दे। इससे शत्रुके सर्वाङ्गमें चित्ता-सा पड़ जायगा और दश दिनके अन्दर उसकी मृत्यु होगी। तिल, कुमुद, रक्तचन्दन, कुट और मुरगेका पित्त प्रत्येक आठ तोला ले कर अच्छी तरह पीसे। बादमें वह शरीरमें लगानेसे पूर्वोक्त स्फोटकादिका प्रतिकार होता है।

एक स्वर्णकेश (पार्वतीय जन्तुविशेष)-को पकड़ कर उसके मस्तक पर शत्रुका गात्रमल रख दे और ऊपरसे रक्तसूत्र द्वारा वेष्टन करे। पीछे भल्लातक फलके साथ उसको मिट्टीमें गाड़ देनेसे शत्रुका मरण होता है। जलसेक द्वारा उस भल्लातक बीजसे वृक्ष उत्पन्न होने पर शत्रुकी जीवनरक्षा हो सकती है। शत्रुके स्नान और मूत्रत्यागकी मिट्टीको सांपके मुखमें डाल कर उसे काले तागेसे लपेट दे। पीछे राहमें औंधेमुंह करके उसे गाड़ देनेसे शत्रुका मरण अनिवार्य है, किन्तु उसे उठा लेनेसे दोषकी शान्ति होती है।

केंकड़ेके बाईं ओरके नीचेका दाँत ले कर वाणका फल तथा गोशिराकी रज्जु बनावे। अनन्तर मिट्टी द्वारा शत्रुकी प्रतिमूर्त्ति गढ़ कर उक्त धनुर्वाण ले 'ओं नमो भगवते रुद्राय यमरूपिणे कालं संशयावर्त्ते संहारे शत्रुं अमुकं हन हन धुन धुन पाचय घातय हुं फट् ठः ठः ठः' इस मन्त्रको पढ़ते हुए उक्त मूर्त्तिको छेद डाले। ऐसा करनेसे शत्रुकी उसी समय मृत्यु हो जाती है।

गोसर्पकी पूंछ, गिरगिटका मस्तक, इन्द्रगोपकोट, वांसको जड़, हाथोका मूत और हड्डी तथा हलाहल विष इनका वरावर वरावर भाग ले कर नरमूत्रके साथ पीसे। पीछे शत्रुके शरीरमें उसे स्पर्श करानेसे चिते-से निकल आते हैं और अन्तमें उसकी मृत्यु आ जाती है।

मङ्गलवार भरणी नक्षत्रमें मृतव्यक्तिका भस्म ले कर शत्रुविष्ठाके साथ मिलावे। पीछे उसे एक ढकनमें रख कर दूसरे ढकनसे ऊपरसे ढक दे। जितने दिनोंमें उस ढकनमें-का पुरीष सूख जायगा, उतने दिनोंमें शत्रुकी मृत्यु होती है। श्वेतअपराजिताका मूल, कुट, लवण, विष तथा शशक, शूकर, मयूर और गोसोंप इनका पित्त और महानिम्बका पत्र इन्हें एकत्र कर सात दिन तक होम करनेसे महाशत्रुका भी निपात होता है। 'ओं नमो भगवते उड्डामरेश्वराय मम शत्रुं गृह्न गृह्न स्वाहा इस मन्त्रसे कार्य करना होता है।

रक्तकरवीर काष्ठ द्वारा निर्मित वाण, कुक्कुटास्थि निर्मित धनु और मृतव्यक्तिके केश द्वारा रज्जु बनावे। पीछे सिन्दूर द्वारा त्रिकोणाकार सप्तमण्डल बना कर उनमेंसे एकमें शत्रुके नामसे कुक्कुट स्थापना करे। अनन्तर १से ले कर ६ठे मण्डलमें धनुषकी पूजा करके 'ओं हस्त्युख गगुम कुखुगुम कुखुकमलुगु रुसमालुल गगात् अरितानि मारमारुहीना तु सिन्धु वीरुचा नारसिंहवीर प्रचण्डकाण्ड काण्डकी शक्ति लेलेले जिसिलाको लिशुगुलि सुच्छु प्रयाति सुच्छाइत्' इस मन्त्रसे

उक्त कुक्कुटको पूर्वकल्पित धनु द्वारा वेध डाले। ऐसा करनेसे दूरस्थ शत्रुका भी नाश होता है।

विद्वेषण।

काक, पेचक, गर्दभ और घोटकका मस्तक किसीके घरमें गाड़ देनेसे उस घरमें हमेशा कलह होता है। ब्रह्मदण्डोके मूल और काकपक्षीके मस्तकको सात दिन तक जातीपुष्पके रसमें भावना दे कर उसके साथ मयूर-पुच्छ और सांपकी केंचुलको मिला कर धूप देनेसे विद्वेष उत्पन्न होता है। मूषिक, विड़ाल, ब्राह्मण और संन्यासी इनके रोम ले कर धूप देनेसे पति पत्नी और पिता पुत्रमें विद्वेष भाव हो जाता है। पेचकको जिह्वाको भूमिकुष्माण्डके रसमें भावना दे कर धूप देनेसे भ्रातृ-विरोध होता है।

सोमवारके दिन अधःपुष्पी वृक्षको सूतसे लपेट कर आमन्त्रण कर रखो। मङ्गलवारको वह वृक्ष उखाड़ कर दो खण्ड कर डालो, जिस स्त्रीका नाम ले कर वह वृक्ष नदीमें फेंकोगे वह स्त्री अवश्य ही पतिका त्याग करेगी।

भैंस और बकरेकी चर्बी तथा घीको एकत्र कर प्रदीप बाले और उस प्रदीपकी शिखासे कज्जल बनावे। पीछे उस कज्जलको आंखमें लगा कर जिसकी ओर दृष्टिपात करोगे, उसमें एक दूसरेके मध्य विद्वेषभाव उत्पन्न होगा। पलासकी सूखी लकड़ीको आरेसे छेद कर चूर्ण करो। पीछे वह चूर्ण जिन दो व्यक्तिके मध्य फेंकोगे, उन्हींमें कलह पैदा होगा।

जिन दो व्यक्तियोंके बीच विद्वेष खड़ा करना हो, उनको पादधूलि, मार्जार और इन्दुरकी विष्ठा ले कर दो पुत्तलिका बनावे। पीछे उस पुत्तलिकाके ऊपर एक सौ बार मन्त्रपाठ कर उसे एक खण्ड नील वस्त्र द्वारा लपेट रखे। ऐसा करनेसे भ्रातृ-गणमें और पितापुत्रमें विरोध पैदा होता है। सर्पदण्ड, बिल्लीका लोम और चिताभस्म ले कर गोली बनावे। जिनका नाम ले कर उस गोलीको मन्त्रपाठ करते हुए उद्यानमें गाड़ आवोगे, उनमें तत्क्षणात् विद्वेष पैदा होता है बिल्लीके लोम और कृष्ण सर्पकी केंचुलका तथा कुक्कुर-के लोम और मार्जारके नखका धूप देनेसे विद्वेष खड़ा होता है। मयूरकी विष्ठा और सांपके दांतको एकत्र कर अथवा हाथीके दांत और सिंहके दांतको मक्खनके साथ पीस कर जिस जिस व्यक्तिके कपाल पर टीका लगावोगे, उनमें अवश्य विरोध उत्पन्न होगा। घोड़े और भैंसेके लोमको एकत्र कर धूप देनेसे विद्वेष होता है। सीजका कांटा जिसके दरवाजे पर गाड़ा जायगा उसके घरमें रोज कलह हुआ करता है। 'ओं नमो नारायणाय अमुकं अमुकेन् सह विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा।' इस मन्त्र-से होम और जपसिद्धि करके विद्वेषण कार्य करने होते हैं।

आकर्षण।

कृष्ण धतूरेके पत्तोंके रस और गोरोचन द्वारा कर-वीरमूलकी लेखनोसे भोजपत्र पर 'ओं नम आदिपुरु-षाय अमुक आकर्षणं कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्रोच्चारण करते हुए नाम लिख कर जलते हुए खैरकी लकड़ीके अंगारमें तापित करो। वह व्यक्ति यदि सौ योजन दूर भी रहे, तो भी वह आकृष्ट हो आयेगा।

अनामिकाके रक्त द्वारा मन्त्रके साथ जिसका नाम भोजपत्र पर लिख कर मधुके मध्य रखोगे, वह व्यक्ति आकृष्ट होगा।

मृतमनुष्यको खोपड़ीमें जिसका नाम उक्त मन्त्र द्वारा लिख कर तीन शाम तक खैरकी लकड़ीकी आग पर तापित करोगे, वह व्यक्ति अवश्य आकृष्ट होगा। शेषोक्त दोनों कार्यमें पूर्वोक्त मन्त्र प्रयोज्य है। १०८ बार मन्त्र-जपसे कार्यकी सिद्धि होती है।

गुरुदत्त अपने इष्टमन्त्रको १० हजार बार जप कर आकर्षण कार्यमें हाथ डालना चाहिये। पहले आकर्षणीय व्यक्तिका स्मरण कर देवताका रूप ध्यान करे। पीछे आकर्षणीय व्यक्तिके गलेमें पाश और मस्तक पर ज्वलित अंकुश ध्यानमें रखते हुए तीनों शाम 'ओं ह्रीं रक्त-चामुण्डे तुरु तुरु अमुकीं आकर्षय ह्रीं स्वाहा।' यह मन्त्र दश हजार बार जपे। इस प्रकार इक्कीस दिन ध्यान और मन्त्रका जाप करनेसे त्रिभुवन भी आकर्षित किया जा सकता है।

रक्तवस्त्रमें लाक्षारस और रक्तचन्दन द्वारा यन्त्रको अङ्कित कर उस मन्त्रके ऊपर देवताकी पूजा करे। अनन्तर उस यन्त्रको वृक्षके मूलमें गाड़ कर प्रतिदिन

तीनों वक्त तण्डुलोदक द्वारा सिंचन करे। तीन सप्ताहके बाद निगड़बद्धा नारी भी आकृष्ट होती है।

अश्लेषानक्षत्रमें अर्जुन-वृक्षका मूल उखाड़ कर वकरीके मूतमें पीसे। पीछे वह औषध जिसके मस्तक पर फेंकी जायगी वह आकृष्ट होगा।

जोंक और कृष्णसर्पको मार कर पहले धूपमें अच्छी तरह सुखा कर बादमें चूर्ण करे अनन्तर जंबीरी नीबूकी लकड़ीकी आगसे उस चूर्ण द्वारा धूप देनेसे आकर्षण होता है। जिसे आकर्षण करना होगा, उसके वामपाद-स्थित मिट्टी और गिरगिटके रक्त दोनोंको मिला कर एक प्रतिमूर्त्तिके वक्षःस्थल पर गिरगिटके रक्त द्वारा आकर्षणीय व्यक्तिका नाम लिखे। इसके बाद उस प्रतिमूर्त्तिको मूत्रस्थानमें गाड़ कर उसके ऊपर पेशाव कर दे। इससे जो रमणी सात योजन दूर रहेगी, वह भी आकृष्ट होगी। इसमें भी मंत्रसिद्ध होना आवश्यक है।

रतिकार्य्यमें निरत दो भ्रमरको ला कर अलग अलग दग्ध करे। पीछे उस विभक्त जलराशिको दो कपड़ेके टुकड़ेमें अलग अलग बांध रखे। एक पोटलीको किसी बकरीके सींगमें बांध कर छोड़ दे और दूसरी पोटलीको अपने हाथमें रखे। वह बकरी जिसके निकट पहुंचेगी, वही व्यक्ति आकृष्ट हो कर आयेगा। यदि इससे भी कार्य्य सिद्ध न हो, तो फिरसे बकरीके सींगमें दूसरी पोटली बांध दे अथवा उस पोटलीमें-की भस्मको अभिलषित कामनीके मस्तक पर फेंके। 'ओं कृष्णवर्त्ताय स्वाहा।' इस मंत्रको दश हज़ार बार जपे तथा भस्मराशिको उक्त मंत्रसे अभिमंत्रित करे।

अलावा इसके आकर्षण-विषयमें और भी बहुतसे योग कहे गये हैं। विस्तार हो जानेके भयसे तथा प्रक्रियाकी कठिनता देख कर उनका उल्लेख नहीं किया गया।

निधिदर्शन।

शिरीषवृक्षका मूल, बल्कल, पत्र, फल और पुष्प इन्हें कटुतैलमें पका कर उसके साथ विष, धतूरेका वीज, करवीरका मूल, बल्कल, पत्र, पुष्प और फल तथा श्वेत-गुञ्जा, ऊंटकी विष्ठा, गन्धक और मैनसिल इन्हें एकत्र कर जहां धनरत्नादि रहता हो वहां धूप दे तथा 'ओं नमो विघ्नविनाशाय निधिग्रहणं कुरु कुरु स्वाहा।' इस मन्त्रका जप करे। इससे निधिस्थानसे राक्षस, वेताल, भूत, देव, दानव और सर्पादि भाग जाता है अनायास ही निधि हाथ लगती है।

वन्ध्या-गर्भधारण।

एक पलाशपत्रको किसी गर्भिणीके दूधसे भिगो कर ऋतुस्नानके बाद ७ दिन तक सेवन करानेसे वन्ध्यानारी पुत्र प्रसव करती है। इस समय उस रमणीका पथ्य है—दूध, शालिधान्यका भात और मूंगकी दाल। औषधसेवन कालमें उसे उद्वेग, भय और शोकका वर्जन कर देना चाहिये।

एक रुद्राक्ष और दो तोला सर्पाक्षी इन्हें एकवर्णा गायके दूधमें पीस कर खिलानेसे वन्ध्यानारी पुत्रवती होती है। कदम्बका पत्र और श्वेतवृहतीका मूल बराबर बराबर भाग ले कर बकरीके दूध अथवा गोक्षुरवीज या सम्हालूके रसमें पीस कर तीन या पांच रात पान करानेसे निश्चय ही पुत्र लाभ होता है।

मृतवत्सापुत्रकी जीवन-रक्षा।

ककोड़वृक्षके मूलको कदलीरसमें पीस कर ऋतुकालमें सात दिन तक सेवन करनेसे दीर्घजीवी पुत्र लाभ होता है। शुभनक्षत्रमें अपामार्गके मूल और लक्ष्मणामूलको उखाड़ कर एकवर्णा गाभीके दूधमें पीसे। पीछे उसका पान करानेसे वह स्त्री दीर्घजीवि पुत्र प्रसव करती है।

अनाहार।

गिरगिटका हृदय और मज्जा तथा करञ्जवीज इकट्ठे पीस कर गोली बनावे। पीछे उस गोलीको त्रिलौह मध्यगत करके मुखमें धारण करनेसे भूख प्यास कुछ भी नहीं लगती। पानके वीजको बकरीके दूध अथवा अपामार्गके वीजके साथ पीस कर घृत और दूधके साथ खीर पकावे। वह खीर खा कर बारह दिन यों ही रह सकता है। कोकिलाक्षाका वीज, सिन्धिवीज, तुलसीवीज और पानकी लताका मूल इनके बराबर बाबर भागको बकरीके दूधमें पीस कर गोली बनावे। उस गोलीको सबेरे खानेसे भूख और प्यास बन्द हो जाती है।

पद्मवीज, अपामार्गका वीज, तुलसीवीज और आमलकी

बीज इकट्ठे पीस कर गोली बनावे। गोली खानेके बाद दूध पी लेनेसे भूख-प्यास जाती रहती है।

अत्याहार।

धातकी पत्र और मिश्री १ पल ले कर घृतके साथ भक्षण करे, तो मनुष्य भीमसेनकी तरह भोजन करता है। जो मनुष्य कुत्तेके दांतको कटिमें बांधता है उसका अहार पहलेसे दूना तीगुना बढ़ जाता है। गिरगिटके अधरको शिखास्थानमें धारण करनेसे मनुष्य पवननन्दनके समान भोजन कर सकता है।

केशरञ्जन।

अपराजिताके फूलको अंडी तेलमें पका कर बालोंमें लगानेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं। हरीतकी, आमलकी और विजवंद तथा लौहचूर्ण इकट्ठे जलमें पीस कर उसे उतने ही तेलमें मिलावे और धीमी आंचमें पाक करे। पाककालमें तेलके बराबर भृङ्गराजका रस डाल कर जब तक वह रस सूख न जाय, तब तक पाक करते रहे। जब देखो, कि सिर्फ तेल बच गया तब उसे स्निग्ध पात्रमें डाल कर मिट्टीमें गाड़ रखो। एक मास बीत जाने पर उसे बाहर निकालो और केलेके रसमें मिला कर बालोंमें लगावो। अनन्तर सात दिन त्रिफलाके साथ और सात दिन रुद्रजटाके साथ उस तेलको बालोंमें लगानेसे तीन सप्ताहके अन्दर बाल भौंरेके समान काले हो जायंगे।

काकोलीके पत्र और मूल, पीतझिण्टी और केतकीके मूलको छायामें सुखा कर भृङ्गराज और त्रिफलाके रसमें मिला कर तेलमें डाल दे। पीछे उस तेलको लौहपात्रस्थ करके मिट्टीमें गाड़ रखे। एक मासके बाद वह तेल बालोंमें लगानेसे काशाकुसुमके सदृश काले हो जाते हैं।

केशपतन।

घोषाफलके बीजसे निकाला हुआ तेल जहां पर लगाया जायगा, वहां फिर बाल नहीं होते। आमलकी, पलाशबीज, विड़ङ्ग, चिता, शतमूली, गोक्षुर और हरीतकी इन सब द्रव्योंको मधु, शर्करा और घृतके साथ चाटे तथा सबेरे बिछावन परसे उठ कर फिरसे उस औषधका सेवन करे, वृद्ध, कुष्ठ, जीर्ण और बलहीन व्यक्ति भी तरुण हो जाता है।

भूतग्रह-निवारण।

रातको शिरीषवृक्षके पत्र और पुष्पको संग्रह कर पेचककी विष्ठा, ऊंटके रोम, कुक्कुरकी विष्ठा, विड़ालकी विष्ठा गोमय, गन्धक और श्वेतगुञ्जा इकट्ठे तेलके साथ पाक करे। इस तेलका धूप देते हुए 'ओं नमः श्मशानवासिने भूतादिपालन कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्रका जप करे। यह धूप देखते ही भूतादि दोष जाता रहता है तथा राक्षस, भूत, बेताल, पिशाच, देव, दानव, डाकिनी और प्रेतनी डरके मारे भाग जाती हैं।

ग्रहदोष-पीड़ा-निवारण।

अकवनका मूल, धतूरेका बीज, अपामार्गका मूल, दूर्वामूल, वटमूल, शमीमूल, आम्रपत्र और उडुम्बरके पत्र इन्हें एकत्र कर दूध और घृतके साथ मिट्टीके बरतनमें रख छोड़े। पीछे चावल, चना, मूंग, गेहूं, तिल, गोमूत्र, सफेद सरसों, कुश और चन्दन मिला कर शनिवारकी शामको अश्वत्थमूलमें गाड़ दे 'ओं नमो भास्कराय अमुकस्य सर्वग्रहाणां पीड़ानाशनं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रका जप कर कार्य करनेसे ग्रहदोष शान्ति तथा दारिद्र्यदोष और महापातक नाश होती है। जिस व्यक्तिकी भलाईके लिये यह कार्य किया जाता है, वह चिरजीवी होता है।

सर्पभय-निवारण।

शयनकालमें मुनिराज अगस्तको बारम्बार प्रणाम कर शयन करनेसे सर्पभय नहीं रहता। रविवार पुष्यानक्षत्रमें गुलञ्चका मूल उखाड़ कर उसकी माला गलेमें धारण करनेसे सांप स्पर्श नहीं कर सकता। श्वेत करवी और बिल्वमूल हाथमें रहनेसे सांपका बिलकुल भय नहीं।

सिंहव्याघ्रादि-भयनाशन।

सामनेमें सिंह देख कर 'ओं नमः अग्निरूपाय ह्रीं नमः' इस मन्त्रको बार बार जपनेसे सिंह भाग जाता है। पुष्यानक्षत्रयुक्त रविवारको सफेद अकवनका मूल दाहिने हाथमें बांधनेसे सिंहका भय नहीं रहता। शुभनक्षत्रमें बांधनेसे व्याघ्रका भय नहीं होता है। अपामार्गके मूलको शुभनक्षत्रमें कान पर रखनेसे बिच्छूका भय नहीं रहता।

अग्नि-भय-निवारण।

"उत्तरस्याञ्च दिग्भागे मारीचोनाम राक्षसः। तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुतोवह्निः स्तम्भः स्वाहा।" इस मन्त्रको सात बार पढ़ कर सात अञ्जलि जल अग्निमें डाल देनेसे अग्नि बुझ जाती है। रविवारको श्वेत करवीकी जड़ उखाड़ कर दाहिने हाथमें धारण करनेसे भी अग्नि-भय दूर होता है।

व्याधि-जनन।

विल्वकाष्ठसे एक करण्डक और निम्बकाष्ठसे उसका एक ढक्कन वना कर उसमें शत्रुकी प्रतिमूर्त्ति चित्त करके रक्खो। उसके बाद शत्रुकी प्राणप्रतिष्ठा करके वक्षःस्थलमें मोमवत्ती रक्खो। फिर उस वत्तीको जला कर शत्रुकी मूर्त्तिको कण्टक द्वारा विद्ध करके उस कण्टकको मिट्टीमें गाड़ दो। इससे शत्रु शीघ्र ही रोगग्रस्त हो जायगा।

भिलावा, श्वेतमुञ्जा और मकड़ीका जाल, इनको इकट्ठा पीस कर रातको किसीके भी अङ्ग पर छोड़ दो, उसके कोढ़ हो जायगा। कृष्णपक्षीय अष्टमी तिथिको भृङ्गराजकी जड़ उखाड़ कर जिसे किसीको पिलाई वा खिलाई जायगी, उसके ज्वरातिसार रोग हो जायगा। अश्वगन्धकी जड़ खानेसे यह रोग दूर हो सकता है।

शत्रुके चवाये हुए ताम्बूल और दन्तकाष्ठको सर्पके मुंहमें डाल देनेसे वह रोगग्रस्त हो जायगा। इसी तरह शत्रुके मूत्र-स्थानकी मिट्टी काले सांपके मुंहमें डाल कर काले धागेसे सर्पका मस्तक बाँध देनेसे शत्रुका मूत्र रुक जाता है। गोंखरी, सोंठ, शूकरका मल और श्वेतगुञ्जाकी जड़, इनको इकट्ठा कर पाकस्थानमें गाड़ देनेसे पाकशालाके पाकपात्र फट जाते हैं। जलपूर्ण पात्रमें गन्धक-चूर्ण डाल कर उस जलको पौधोंपर छोड़ा जाय, तो पौधे आदि नष्ट हो जाते हैं।

षण्डीकरण।

मनुष्य जिस स्थान पर पेशाव करता है, उस स्थानमें काले बिच्छूका कांटा गाड़ देनेसे वह मनुष्य षण्डत्वको प्राप्त होता है। हल्दी और षड्विन्दुकीट चूर्ण कर छागमूत्रमें भावना दो, उस चूर्णको जिसे खिलाया जायगा या जिसके आसन पर फेंक दिया जायगा, वह व्यक्ति क्लीव हो जायगा। तिल और गोखरूके चूर्णको दूध और मधुके साथ चाटनेसे उक्त दोष नष्ट हो जाते हैं।

वाजीकरण।

आमकी छालको पानीसे भरे घड़ेमें रख कर उसे कपड़ेसे ढक दो। दूसरे दिन सुवह दूधके साथ उस औषधका सेवन करनेसे मनुष्य कामदेवके सदृश हो जाता है तथा उसके शरीरमें धातु-वृद्धि हो कर वल वढ़ाती है। है। घृतकुमारीकी जड़ दूधके साथ पीस कर खानेसे वलकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि और धातु उत्पन्न होती है। रविवारको नहा-धो कर शुद्धता-पूर्वक मंजीठ लो और उसे छायामें सुखाओ। उसका चूर्ण, अश्वगंधा, तालमूली, गोंखरू और भांगके बीज इनको समान भागसे पीस कर एक रंगकी गायके दूधके साथ सेवन करनेसे धातु पुष्ट होती है। अभिमन्त्रित गुलञ्चमूल रविवारको उखाड़ कर शक्करके साथ खानेसे मनुष्य बलशाली होता है।

भोजविद्याका रहस्य।

भोजविद्यामें विशेष पारदर्शी होनेके लिए इष्टमन्त्र-दीक्षा, साधना और सिद्धिलाभकी आवश्यकता है। योग विशेषमें निर्द्धारित संख्यानुसार जप करके उस विषयमें निगूढ़ मर्म उद्घाटन-पूर्वक कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिए। जिस व्यक्तिको जपकी सिद्धि नहीं हुई है, उसके कार्यमें वैसी सफलता नहीं होती जैसी कि होनी चाहिए। ऊपर जिन विषयोंका वर्णन किया गया है, वह द्रव्यगुण और दैववल-साध्य है। दैववलसे वलीयान् न हो, तो मनुष्य अपनी सामान्य शक्ति और बुद्धिसे कदापि सफलता नहीं पा सकता। जिन ग्रह और देवतत्त्वदर्शी भोजकोंने इस साम्प्रदायिक तत्त्वावलीकी आलोचना की है, उन्हें भी दिव्यचक्षुके प्रभावसे भोजविद्या-विषयक योगविशेषके सम्पादन करनेमें देवशक्तिका आभास प्राप्त हुआ था। यही कारण है, कि वे प्रत्येक कार्यमें देवशक्तिके मौलिकत्वको स्वीकार कर गये हैं।

जैसे मनुष्यादि जीव-शरीर ग्रह-नक्षत्रादिकी शक्तिसञ्चारके कारण सुख दुःखादिका अनुभव करते हैं, उसी प्रकार उद्भिज्जगत्में भी नक्षत्रादिके समावेशके कारण उत्कर्षापकर्षता हुआ करती है। बाँसके पेड़ पर स्वातीनक्षत्रका पानी गिरनेसे जैसे वंशलोचनकी उत्पत्ति

होती है, उसी प्रकार किसी किसी वृक्षमें विशिष्ट दिन और विशिष्ट नक्षत्रके आवेशसे गुणाधिक्य देखा जाता है। यही कारण है, कि पूर्वतन वेद और ग्रहविद् ब्राह्मण-गण उत्कृष्ट फल-प्राप्तिकी आशासे वृक्ष-विशेष पर ग्रह-नक्षत्रादिके सञ्चारको लक्ष्यमें रख उसके गुण और बल-का निर्द्धारण कर लेते थे।

पार्थिव पदार्थके विशेषतः उद्भिज्जादिके गुणागुणका निर्णय जिस प्रकार ग्रहबल-सापेक्ष है, उसी प्रकार इन्द्र-जालादि भौतिक क्रियाएं भी द्रव्यबल और यक्षिणी साधन रूप आधिदैविक और आधिभौतिक ज्ञानाधिबलका अपेक्षा रखती हैं। इन्द्रजाल और उसकी सहगामी रासायनिक क्रियावलीमें जो भौतिक रहस्य हैं, उसके द्वारोद्घाटनके लिए आलोचना-परायण हो कर उस विद्वन् मण्डलीने यक्षिणी-साधन और इष्टमन्त्रकी सिद्धि करनेके लिए व्यवस्था दी है। क्योंकि मनुष्य मन्त्र-सिद्धि द्वारा दैव-शक्ति विना प्राप्त किये कदापि कोई अलौकिक कार्य नहीं कर सकता। दत्तात्रेय तन्त्रके बारहवें पटलमें योगिनी-साधनका विषय कहा गया है। उनमेंसे उदाहरण स्वरूप दो एक बातें उद्धृत की जाती हैं:—

यज्ञडुम्बर वृक्ष पर चढ़ कर 'ओं ह्रीं श्रीसारदायै नमः' इस मन्त्रको दस हजार बार जपनेसे ग्रन्थसिद्धि होती है और साधकको चौदह विद्याएं प्राप्त हुआ करती है।

श्वेतगुञ्जा वृक्षके पादमूलमें बैठ कर स्थिर चित्तसे 'ओं जगन्मात्रे नमः' इस मन्त्रका दस हजार बार जप करनेसे यक्षिणी सिद्ध होती है और वाञ्छित फल प्रदान करती है। (दत्तात्रेयतन्त्र, १२।१० और १२)

रसायन।

गोमूत्र, हरताल, गन्धक और मनःशिला इनको समान भागसे अच्छी तरह पीस और सुखा कर शुद्ध स्थानमें रखो। पीछे ग्यारह दिन बीत जाने पर धूप, दीप और नैवेद्यादि नाना उपचारोंसे यक्षिणीकी पूजा करो। फिर 'ओं नमो हरिहराय रसायनं सिद्धिं कुरु कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रको १० हजार बार जपो। सिद्धि होने पर उन पिसी हुई चीजोंकी गोली-सी बना कर कपड़ेमें लपेट कर उस पर मिट्टी लपेटो। फिर उसे किसी गड्ढेमें पलाश-काष्ठ पर रक्खो और ऊपरसे पलाशकाष्ठ ढक कर, उस पर आठ पहर तक अग्नि जलाओ। उसके बाद उस भस्मको उठा कर रख दो। अनन्तर किसी ताम्र-पात्रको आगमें अच्छी तरह गरम करके (लाल हो जाने पर) उसमें एक चुटकी भस्म डाल देनेसे उसी समय वह तांबेका पात्र स्वर्णमय हो जायगा। इस रसायन-प्रक्रियाके करनेसे पहले किसी सिद्धक्षेत्रमें बैठ कर एक लाख गायत्री जप करना चाहिए, अन्यथा कार्य-सिद्धि नहीं होगी।

घोड़के खुर तथा मूषिक और बककी अस्थिसे ताम्रको अच्छी तरह गलाया जा सकता है। स्वयम्भू-कुसुम द्वारा पारेकी भस्म अच्छी तरह बनाई जा सकती है। यथार्थमें पारेकी भस्म हुई या नहीं, इस बातकी परीक्षा करनी हो, तो एक रत्ती पारद भस्मको गलित ताम्रमें डाल दो, अगर वह उसी समय सोना हो जाय, तो समझ लो ठीक है।

अदृश्यकरण।

बेड़ेलाका मूल और ताल-पञ्चाङ्ग अर्थात् ताड़वृक्ष-की जड़, छाल, फल, फूल और पत्र इनको एकत्र करके सोनेके तावीजमें भर कर उसे धारण करनेसे, जो आदमी उस व्यक्तिको देखेगा, उसकी दृष्टि बन्द हो जायगी। वचको सात दिन तक अंकुलीतैलमें रख कर त्रिलौह वेष्टनपूर्वक गुटिका बनाओ। उस गुटिकाको मुंहमें रखनेसे उस व्यक्तिको कोई भी न देख सकेगा। साधक-को चाहिये, कि हरताल, काली भैंसका दूध और अंकुल तैल इकट्ठा करके शरीर पर मालिस करे, फिर वह किसीके दृष्टिमें न आयेगा। उहरकरञ्जबीजके तेलमें सफेद सेमरकी रुईकी बत्ती डाल कर उसे जलाओ। उसकी लौसे सिद्ध-पत्र पर काजल पार कर उसे आंखमें लगानेसे अदृश्य हुआ जा सकता है।

वृक्षोत्पत्तिकरण।

मयूरको एक सप्ताह तक मयूरशिखाका चूर्ण खिला कर हाथमें लेपन करसे हाथमें नाना प्रकारकी चीजें दीखने लगती हैं। अङ्कोलीके बीजको चूर्ण करके एक सप्ताह तक तिलके तेलमें भावना दे कर सुखाओ। पश्चात् उसे बार बार पीसो और सुखाओ। फिर उसमें तेल

निकालो। यह अङ्कोली तैलके नामसे प्रसिद्ध है। इससे किसी भी वृक्षको अभिषिक्त करनेसे उसी समय उसमें फल उत्पन्न हो जायंगे। जलज अथवा स्थलज किसी भी वीजचूर्णको अङ्कोलीतैलमें मिला कर जल या स्थलमें डाल देनेसे उसी समय उस वृक्षमें फलपुष्पादि लग जायंगे। सर्जवृक्षके रसमें पलीता भिगो कर तेलमें डाल कर जलाओ, फिर उसे पानीमें फेंक दो वह बुझेगा नहीं।

पादुका-साधन।

एक हलके-से काठके टुकड़ेको गुञ्जापिष्टसे लेपन कर पानीमें बहा दो, फिर उस बहते हुए काठ पर तैरो, डुबेगा नहीं। अङ्कोलीतैल और श्वेतसर्षपको पीस कर हाथ-पैरों या ऊंटके चमड़ेसे बनी हुई अपनी पादुका पर उसका लेप करनेसे वह उसे पहन कर बहुत दूर तक चल सकता है। निशिन्दावृक्षकी जड़, कबूतरकी बीट, पलाशके बीज, लाल अकवनादि फल और पेचकके हृदयको ठंढे पानीमें पीस कर उससे पादलेपन करनेसे सौ योजन भ्रमण किया जा सकता है।

भिन्न-रूप-दर्शन।

सहंजनके बीजका तेल, कबूतरकी बीट शूकरकी वसा और अपामार्गकी जड़, इन्हें समभागमें पेषण करके कपाल पर तिलक लगानेसे पञ्चवदन-विशिष्ट दीखोगे। कृष्ण-चतुर्दशीकी रात्रिके मयूरके मुंहमें वामनहाटीके बीज और काली मिट्टी इकट्ठी मिला कर उसे मट्टीमें गाड़ रखनेसे उस बीजसे प्रस्तुत रज्जु द्वारा किसी पुरुषको बांधनेसे वह मयूर जैसा दीखने लगेगा। स्त्रीकी खोपड़ीमें रक्त-गुञ्जाकी बीज रख कर उसे मिट्टीमें गाड़ देनेसे जो वृक्ष उत्पन्न होगा, उसका फल मुंहमें रखनेसे वह स्त्री-सदृश दिखाई देगा। हरताल और मनःशिलाका चूर्ण, इनको अङ्कोलीतैलके साथ मिला कर मुंह या मस्तकमें लेपन करनेसे वह अग्निपुञ्जके समान दीखने लगेगा।

भोजबाजी।

छोटे छोटे कौतुक।—वारिमक्षिकाके साथ जल पीनेसे अधोवायु निःसृत होती है। नदीकी शैवालको जला कर उसे भैंसके दूधके दहीके साथ माड़ कर एक पहर तक रख दो, मेढ़क पैदा हो जायगा। मत्स्यके पित्तके साथ मत्स्यडिम्ब रख दो, मछली उत्पन्न हो जायगी। अगस्त्यपुष्पके रसमें अञ्जन घस कर आंखमें लगाओ, दिनमें आसमानके तारे दीखने लगेंगे। मेढ़कका तेल आंख पर मलनेसे रातको सर्प और दिनको नक्षत्र दिखाई देंगे। क्षीरीवृक्षके दूधको भावना दे कर उसकी बत्ती बनानेसे वह पानीमें जलती रहती है।

सर्प बनाना।—काली अरईकी कलगी १, श्वेतविम्बाकी जड़ १, जवा पुष्प २, लाल शाकका डंठल १ और दण्डोत्पल १ लो। काली अरई और जड़ इन दोनोंके ऊपर लाल शाकके टुकड़े-टुकड़े करके रखो, ऊपरसे एक कपड़ा ढक कर "ॐ सिद्धिः स्वयं देवी काराकाम्, आ देवी हंसरात, आई देवी हुहुङ्कारे, इसी क्षणसे जीव सञ्चारे, ॐ भोलि सर्प वल वल स्वाहा। चल सर्प महाभारसे तुम्हें चलाया देवीके वरसे, ब्रह्माण्डगिरिकी आज्ञा।" इस मन्त्रको १००८ वार जप करनेसे अमावस्यामें सर्पोत्पत्ति होती है।

भ्रम-दर्शन।—मङ्गलवारको कपासके बीजको सर्पके मुंहमें डाल कर जमीनमें गाड़ दो। उस बीजसे उत्पन्न वृक्षकी रुईसे बत्ती बना कर अण्डीके तेलसे प्रदीप जलाओ। रातको जिस घरमें यह प्रदीप रहेगा, उस घरमें चारों ओर सर्प ही सर्प दिखाई देंगे। इसी प्रकार बिच्छूके मुंहमें बीज डाल कर उपर्युक्त प्रकारकी क्रिया करनेसे रातको बिच्छू ही बिच्छू दिखाई देने लगेंगे। अण्डीका तेल, शमीपुष्प, सर्पकी केंचुली और मेढ़ककी चरबी, इनको इकट्ठा करके रातको प्रदीप जलानेसे सर्वत्र सर्प ही सर्प नजर आयेंगे।

वृहस्पतिवारको हाथीके मुंहमें तथा रविवारको घोड़के मुंहमें अङ्कोलीबीज डाल कर पीछे उसे मिट्टीमें गाड़ कर पानी सींचो। उससे जो वृक्ष उत्पन्न होगा, उसके फलके बीजको त्रिलौहसे वेष्टन करके मुंहमें धारण करनेसे वह पराक्रमशाली हस्ती या अश्व हो सकता है। इसी तरह बैल, सिंह, मयूर, कुक्कुर इत्यादि स्थलज तथा मगर मच्छ इत्यादि जलज प्राणियोंकी मूर्त्ति धारण की जा सकती है।

कृकलासके रक्तसे दर्पणका अर्द्धभाग लेपन करके पर्वतादि उच्च स्थानमें चढ़ कर उस दर्पणको आंखों पर

रख कर चन्द्र वा सूर्यके चारों तरफ देखनेसे सूर्य या चन्द्रग्रहण दिखलाई पड़ेगा।

हमारे देशके ऐन्द्रजालिकगण तथा यूरोपीय वर्त्तमान मेजिसियन लोग जो खेल दिखलाते हैं, उनकी नैपुण्य और कौशल इतना सफाईको लिये हुए हैं, कि देखनेसे एक साथ आश्चर्य और कुतूहल होने लगता है। आम्र-वृक्षके फलादिकी उत्पत्ति-क्रिया नीचे लिखी जाती है।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि साज-सरंजाम ही ऐन्द्रजालिक क्रियाकी मुख्य चीज है। आम्रवृक्ष दिखलानेके पहले आम्र-मुकुल और फल, कच्चे और पक्के फल संग्रह कर लेने चाहिए। यथासमय फल और कुकुलादिकी निखालिस मधुमें डुबो कर रख दो। इससे वे फलादि १ वर्ष ज्योंके त्यों बने रहेंगे। मैजिक दिख-लानेके लिए एक विशेष वस्त्रगृह बनाया जाता है, जिस-के सामने और भीतर भी काले परदे पड़े रहते हैं। पीछे-के परदेकी ओटमें मैजिक दिखलानेका सामान रखा रहता है। उसमें एक आमकी गुठली, एक नया पौधा और एक मय टहनियों और पत्तोंके आमका पेड़ छिपा रहता है। दिखलाते समय पहले तो बाजे-आजेका आड-म्बर करना चाहिए। पीछे लोगोंके मनमें विश्वास पैदा करनेके लिए मंत्र आदि करना चाहिए जैसा माने। मन्त्रके प्रभावसे ही भौतिक क्रियाएं हो रही हों। उस-के बाद मिट्टीसे भरे हुए गमलेमें आमकी गुठली गाड़ दो और दर्शकोंसे कह दो, कि अब इसका पौधा बनाते हैं। फिर उसे काले कपड़ेसे ढक कर पीछेकी ओर रख दो। थोड़ी देर तक बाजा बजाते रहो, इतनेमें सहकारी व्यक्ति उसमें बीज सहित पौधा गाड़ देगा। फिर परदा हटा कर दिखला दो, कि यह पौधा बन गया। इसी तरह और भी लीच् आदिके खेल दिखाये जाते हैं। असलमें सिवा हाथकी सफाईके और इसमें कुछ भी नहीं है। हां, सफाई ऐसी वैसी नहीं होनी चाहिये। इसके लिए वर्षों अभ्यासकी आवश्यकता है।

भानुमती-कथित आम्रवृक्षकी उत्पत्ति (इन्द्रजाल-ग्रन्थमें) अन्य प्रकार है :—स्नूही (मनसा) वृक्षके दूधमें पके आमकी गुठलीको इक्कीस बार डुबो कर इक्कीस ही बार सुखाओ। खेल दिखलाते समय उस सूखी हुई गुठलीको मिट्टीमें गाड़ कर थोड़ा पानी छिड़को। २॥ दण्ड बाद उससे अंकुर, पत्ते, टहनियां आदि सहित आमका पौधा पैदा हो जायगा।

हाथमें अंगारा रखना।—अण्डीके पेड़के रसमें धतूरे-के बीज, हर्रेके बीज और अङ्कोली इन्हें एक साथ पीस कर हाथमें मलनेसे आगसे हाथ नहीं जलता, जलता अंगारा हाथमें रखा जा सकता है। इसी प्रकार सम्भारी, नमक, कतीला, अफीम, फिटकरी, पारा और कुम्कु-टाण्डके छिलकाको सिरकाके साथ अच्छी तरह पीस कर हाथमें रखनेसे भी हाथ नहीं जलता।

पानीमें आग जलाना।—क्षीरिकावृक्षके दुग्धमें भावितवर्त्तिकाको जला कर पानीमें छोड़ दो, जलती रहेगी। इसी प्रकार जलता हुआ कपूर भी पानीमें छोड़ देने पर जलता रहता है।

अंधेरे घरमें उजाला।—एक लोहेके चमचेमें गन्धक गला कर, जलना कम होने पर, उसमें ताम्रचूर्ण छोड़ देनेसे अंधेरे घरमें उजाला हो जाता है।

विना आगके रांधना।—नीचेके पात्रमें आध सेर सद्योदग्ध चूर्ण रख कर उसमें उतना ही पानी डाल कर ऊपरके पात्रमें चावल डाल दो, शीघ्र ही वह उबलने लगेगा।

कपड़े आदि जलाना।—कागज या कपड़े पर 'स्पिरिट' डाल कर उसे आग पर रखनेसे उसकी स्पिरिट मात्र जल जाती है, कागज या कपड़े नहीं जलती।

कांटेदार पौधा चबाना।—जम्बूपत्रका चर्वण करके उसका रस मुंहमें रखो ; फिर कांटेदार पौधा चबा डालो, कुछ न होगा।

कांच चबाना।—पतले कांचको आगमें जला कर अदरकके रसमें बुझा लो, फिर उसे मुंहमें डाल कर चबाओ, कुछ भी न होगा।

हाथमें गरम तेलका डालना।—हाथकी हथेली और डालियोंमें अच्छी तरह पानी और नमक मलो। पीछे तेलमें भीगी हुई बती जला कर उससे जलता हुआ तेल हथेली पर टपकाते रहो, जलेगा नहीं। परन्तु उससे पहले दोनों हथेलियोंको अच्छी तरह रगड़ लेना जरूरी है।

अग्निउत्पादन।—क्लारेट-आफ्-पटाशके चूर्णमें चीनी मिला कर गन्धकद्रावक डाल देनेसे आग जल उठती है। एक भाग चीनी और तीन भाग फिटकरीको एकत्र मिला कर सुखाओ। पीछे एक लोहे या पत्थरके बरतन-में भर कर उसे आगमें जलाओ। जब उस बरतनमेंसे नीली लौ निकलने लगे, तब उसे आग परसे उठा लो। उस मिश्रित द्रव्यको खुली जगहमें रख दो, हवा लगते ही वह अपने आप जलने लगेगा। एक कागजके टुकड़ेको तारपीन तेलमें डुबो कर उसे क्लोरिन वाष्प पर थामनेसे उसी समय कागज जलने लगेगा।

कागजके बरतनमें रांधना—पहले कागजका ठोंगा बना कर उसमें थोड़ा-सा साफ तेल डाल कर चूल्हे पर रख दो। उसमेंका तेल जब खौलने लगे, तब उसमें बेंगन डाल कर मजेमें भूंज लो।

मुंहमें बिजलीका प्रकाश।—ओठ और सामनेके दांतोंके बीचमें एक जस्तेका टुकड़ा रख कर जिह्वाग्रस्थ गिन्नीका सोना उसमें छुआ देनेसे मुंहमें बिजली जैसा प्रकाश दिखाई देगा।

आगका खम्भा।—कांचके गिलासमें आधा हिस्सा प्रस्फुरक उसमें पांच हिस्सा पानी डालो। उसके बाद उसमें दानेदार जस्ता १ भाग और तीव्र गन्धकाम्ल ३ भाग मिला दो उसमेंसे उज्ज्वल बिम्बके आकारमें वाष्प उठती रहेगी। एक कांचके पात्रको भर कर उसमें फस्-फरेट आफ लाइम एक बूंद छोड़ देनेसे पानी ऊपर फस्फोरेटेड् हाइड्रोजन वाष्पका बिम्ब उठेगा। उसमें हवा लगते ही आग जलने लगेगी।

आगका झरना।—एक कांचके पात्रमें ५ या ६ औन्स पानी रख कर उसमें १ औंस गन्धकाम्ल और ग्रान्यूलेटेड जिङ्क और दो टुकड़े प्रस्फुरकके डाल दो। थोड़ी देरमें तमाम पानी आलोकमय हो जायगा।

पानीमें आगका पहाड़।—बारूद, सोरा और फूल-गन्धक प्रत्येकका ३ औन्स हिस्सा ले कर अच्छी तरह पीसो। बादमें उसे कपड़ेमें छान कर एक पोष्टबोर्ड या कागजकी गोलाकार थैलीमें भर कर उसका मुंह बन्द कर-के पानीमें छोड़ दो जब तक वह मिश्रित द्रव्य थैलीके अन्दर रहेगी, तब तक वह पानीके भीतर जलती रहेगी।

जलती कड़ाहीसे चिड़िया उड़ाना।—आटेकी एक थाली या डिब्बा बना उसमें एक छोटी-सी चिड़िया रख दो। श्वास-प्रश्वासके लिए ऊपर एक नली-सी बना देनी चाहिए, नहीं तो वह मर जायगी। पीछे उस डिब्बे-के चारों तरफ घृतकुमारीका गोंद अच्छी तरह लगा दो। फिर आटेका बड़ा डिब्बा बना कर उसमें घृतकुमारीका गोंद लगाओ और पहलेवाले डिब्बाको उसके अन्दर रख कर मोड़ दो। उसके बाद उस डब्बेकी ऊपरकी नलीमें डोरा बांध कर उसे खौलती हुई घीकी कड़ाहीमें सीधा सेकते रहो। फिर उसे उठा कर तोड़ डालनेसे चिड़िया उड़ जायगी।

बरफमें अग्नि उत्पन्न करना।—आतिशी शीशेके आकारका निर्मल, वायुबुद्बुद-रहित एक बर्फके टुकड़े-को सूर्य-किरणके सामने बारूदके ऊपर रखनेसे तत्क्षणात् वह जलने लगेगा।

गुप्त-लिपि।—दूध, नीबू, पलाण्डु आदिके रससे सफेद कागज पर लिखनेका विषय लिखो। पढ़ते समय उस पर आगकी गरमी देनेसे अक्षर साफ पढ़े जा सकेंगे। माजू-फलको तोड़ कर उसे एक दण्ड तक पानीमें भिगो कर उससे नाम लिखो। सूखने पर अक्षर अदृश्य रहेंगे। पढ़ते समय उस पर तूतियेका पानी डाल कर पढ़ो, साफ पढ़नेमें आवेगा।

फूलोंका रंग बदलना।—गन्धकके धूएं पर लाल फूल रखनेसे वह सफेद-सा हो जाता है, पीछे फिर उसे पानीमें भिगा देनेसे लाल हो जाता है।

कृत्रिम भूकम्प और आग्नेयगिरि—गन्धकचूर्ण २ सेर और फौलादका चूर २ सेर इन्हें पानीसे अच्छी तरह मिला कर गाड़ दो, ८ से १२ घंटेके भीतर भूकम्प हो जायगा। यदि वायु उत्तप्त हो, तो जमीन फूलती या फट जाती है और उसमेंसे आगकी लौ धुआँ और धूल उड़ती है।

कांचके गिलाससे शिला उठाना।—एक चौरस पत्थरके टुकड़े पर सूजीका लेप करो, फिर जलते हुए प्रदीपकी लौ पर एक कांचका गिलास औंधा दो गिलास-का भीतरी भाग अच्छी तरह गरम हो जाने पर शीघ्र ही उसे सूजीके लेप पर जमा कर बिठा दो। यह ख्याल रखना चाहिए, कि गिलासकी गरम वाष्प जरा भी निकलने

न पावे और न बाहरकी ठंडी हवा उसमें घुसने पावे। जब वह गिलास ठंडा हो जाय, तो उसे पकड़ कर उठाओ, साथमें पत्थर भी उठ आयेगा।

ऊपर जो कुछ भोजवाजीका प्रकरण लिखा गया है, वह अंग्रेजी मैजिक और देशीय बाजीगरोंकी भोजवाजीसे संगृहीत है। भोजवाजी या Magic और देशीय भोजबाजी दोनों एक ही प्रथामें अन्यान्य उपायों द्वारा संशोधित हुई हैं।

अंग्रेजी मैजिक या Black Art उक्त भोजवाजीसे पृथक् है। वह बहुत अंशोंमें मारण उच्चाटनादि इन्द्रजाल वा भोजविद्याके अनुरूप है। *Mr.* Sibily लिखित फलित-ज्योतिष विषयक ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम होता है, कि किसी समय यूरोपमें इस मैजिक-विद्याका बहुत प्रचार था। भूतसाधन, कवच, चक्र और यन्त्र चिह्नादि धारण द्वारा उपदेवताओंका प्रभाव वा आवेश दूर करना आदि भौतिकतत्त्व (*Black Art*) के विषय वहांके मगीय विद्या-विशारदों (Magicians) द्वारा विशेषरूपसे आलोचित होते थे। प्रसिद्ध अंग्रेज-भूतत्त्वविद् Edward kelly और उनके सहयोगी Dr, Dee-ने किस पद्धतिसे इन्द्रजाल और भौतिकतत्त्वकी अलोचना की है, यह बात उनके ग्रन्थ पढ़नेसे ही मालूम पड़ सकती है।

विशेष विवरणके लिये 'भौतिकविद्या' देखो।

भोजाधिप (सं० पु०) भोजस्य अधिपः। कंसराज।

भोजान्ता (सं० स्त्री०) नदीभेद।

भोजिक (सं० पु०) ब्राह्मणभेद।

भोजिन् (सं० त्रि०) भुज-णिनि। भोजनकर्त्ता खानेवाला।

भोजी (सं० पु०) भोजिन् देखो।

भोजेश (सं० पु०) १ भोजराज। २ कंस।

भोज्य (सं० त्रि०) भुज्यते इति भुज-कर्मणि ण्यत् (भोज्यं भक्ष्ये। पा ७।३।६९) इति निपातनात् न कुत्वं। भोजन योग्य, खाने लायक।

"भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराः स्त्रियः।
विभवो दानशक्तिश्च नात्यल्पतपसः फलम्।"

(चाणक्यशतक ५१)

भावप्रकाशके मतसे पेय इत्यादि आहार छः प्रकारका है। इनमेंसे 'भोज्यं भक्तसूपादि' भात और व्यञ्जनादिका नाम ही भोज्य है।

"आहारं षड्विधं चुष्यं पेयं लेह्यं तथैव च।
भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्व्यां गुरु विद्यात् यथोत्तरम्" ॥ (भावप्र०)

२ श्राद्धानुकल्पमें पितरोंकी तृप्तिके लिये देय अन्नादि स्त्रियोंको पार्वणश्राद्धके अधिकार नहीं है। अतः उन्हें उस श्राद्धके बदलेमें भोज्योत्सर्ग करना चाहिये। पुरुष जहां पर श्राद्ध नहीं कर सकते, वहां उन्हें भी भोज्योत्सर्ग करना चाहिये। पितृ वा दैवकार्यका भोज्योत्सर्ग कर्त्तव्य है। पिता और माताके आकृत्यके समय षोड़स वा अन्न जल दानके बाद तदनुकल्प भोज्योत्सर्ग करना होता है।

श्राद्धतत्त्वमें भोज्यदानकी कर्त्तव्यता इस प्रकार लिखी है, 'ओं अद्यामुके मासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुरमुकदेवशर्मणः एकोऽद्दिष्टविधिकसाम्वत्सरिकश्राद्धवासरे अमुकगोत्रस्य पितुरमुकदेवशर्मणः अक्षयस्वर्गकामः सघृतसोपकरणमान्न-भोज्यमर्चितं श्रीविष्णुदैवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददानि, ततो दक्षिणा, ततः कृतैतत् सघृतसवस्त्रोपकरणामान्न-भोज्यदानकर्माच्छिद्रमस्तु।' (श्राद्धतत्त्व) भोज्य विशुद्ध ब्राह्मणको दान करना चाहिये।

भोज्यकाल (सं० पु०) भोज्यस्य भोज्यदानस्य कालः। भोज्यदानका समय।

भोज्यता (सं० स्त्री०) भोजस्य भावः तल्-टाप्। भोज्यका भाव या धर्म।

भोज्यमय (सं० त्रि०) खाद्यपूर्ण।

भोज्यसम्भव (सं० पु०) सम्भवत्यस्मादिति सम्भव उत्पत्तिकारणं, भोज्यं सम्भवोऽस्य। शरीरस्थित रसधातु, शरीरका वह धातु जो भोजन उत्पन्न होता हो।

भोज्या (सं० स्त्री०) १ भोजन योग्या। २ भोजवंशीय राजकन्या।

भोज्योष्ण (सं० त्रि०) उष्ण खाद्यद्रव्य।

भोट (हिं० पु०) १ भूटानदेश। २ एक प्रकारका बड़ा पत्थर। यह प्रायः २॥ इञ्च ५ फुट मोटा और १॥ फुट चौड़ा होता है।

भोट—भोटदेश (तिब्बत)-वासी जातिविशेष। ये साधारणतः

शस्त्रादिके आघातसे, हैज़ासे, आगसे जल जानेसे, महारोग तथा पापरोगसे, डाकुओंके हाथसे मर जाय, जिसका संस्कार न हुआ हो उसकी मृत्यु हो जानेसे, आचरणहीन व्यक्तिको मरने पर वृषोत्सर्गादि क्रिया और मासिक पिण्डादि लुप्त करनेवाले मृत आत्माको, जो शूद्र द्विजोंको अग्नि, तृण, काष्ठ और घृत आदि अपहरण कर ले उसके, तथा पर्वत परसे गिर, रजस्वला आदि दोषसे मरने, जमीन पर मरनेसे या एकान्तमें मृत्यु होनेसे, विष्णु-नामसे वंचित मृत्यु होनेसे, सूतकादि रहनेसे तथा अन्यान्य अपमृत्युओंसे मनुष्य प्रेतयोनि पाता है। इसके सिवा जो ब्राह्मणों तथा देव और गुरुकी वस्तुओंकी चोरी करता है, जो कन्या बेचता है, जो विना अपराधके माता, बहिन, स्त्री, पुत्रवधू और कन्याका परित्याग करता है; न्यासापहारी, मित्रद्रोही, परस्त्री-गामी, विश्वास-घातक, गो-हत्याकारी, मद्य पीनेवाला, गुरु-पत्निसे सम्भोग करनेवाला, कुलका मार्ग छोड़नेवाला, सदा झूठ बोलनेवाला, सुवर्ण और भूमि हरण करनेवाला ये सब मनुष्य भी मृत्युके बाद प्रेत हुआ करते हैं। इसके उपरान्त यह भी लिखा है कि जो तापसी, स्वगोत्री और अगम्या स्त्रीके साथ सम्भोग करते हैं, वे महाप्रेत होते हैं। (गरुड उ० खं०)

गरुड़पुराणके उत्तरखण्ड (अध्याय ३०)-में प्रेतकी एक और विशेषता लिखी है—

'जो ब्राह्मण भूखे रह कर मर जाते हैं, जो हिंसक जन्तुओंके चोटसे मरते हैं और जो गलेमें फांसी लगा कर मरते हैं, एकाएक कठोर चोटसे मरनेवाला, बाघ, अग्नि और विष अथवा हैज़ासे मरनेवाला, आत्मघाती, गिरनेसे, बन्धनसे, जलमें डूबनेसे, म्लेच्छके हाथसे, कूदनेसे, महारोग अथवा स्त्रीके पापसे या चाण्डाल, जल, सर्प रजस्वला, अपवित्र रजकादि अछूतोंके छू देनेसे जो मनुष्य मरता है, वह नरकभोग कर चुकनेके बाद प्रेत या भूत होता है।

प्रेतके लिये श्राद्ध करनेकी जरूरत है। यदि श्राद्ध आदि क्रिया नहीं हो, तो उस प्रेतकी पिशाचकी-सी गति होती है। फिर जिसके सन्तान आदि नहीं हैं; वे सौ वर्ष तक घोरतर नरक भोग कर यमदूत हुआ करते हैं।

पद्मोत्तरखण्डमें लिखा है, सत्ताईस युग तक दारुण नरक यातना भोग करनेके बाद पिशाच होता है।

प्रेत शब्द देखो।

पिशाचोंका रूप अत्यन्त विवर, फिर भी कराल दीनभावापन्न और भीतिप्रद, आंखें भीतरको धसी हुई पोली, केश उलटे हुए, शरीर काला, पतली जिह्वा, बड़े बड़े होंठ, लम्बी जांघ और बाहु, सूखा मुंह और रूप यमदूतोंकी तरहका होता है।

गरुड़पुराणके अनुसार प्रेत अपने कर्म्मोंके अनुसार वायुरूप शरीर युक्त और अत्यन्त क्षुधातुर होता है। फिर दूसरी जगह लिखा है, भूतगण दिग्वासी होते हैं।

"पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिशि वासिनः।"

(प्रेतकल्प ५।३५)

एक प्रेत अपने रूपका वर्णन इस प्रकार करता है:—

"हतवाक्या वयं सर्वे नष्टसंज्ञा विचेतसः।
न जानीमो दिशं तात विदिशं चातिदुःखिताः॥
गच्छामः कुत्र वै मूढ़ाः पिशाचाः कर्मजा वयं।
न माता न पितास्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः॥
प्राप्ताः स्म सहसा तद्वै दुःखोद्वेगसमाकुलम्॥"

(प्रेतकल्प १२ अध्याय)

हम लोग सभी मूक हैं, बोल नहीं सकते, नाम भी नहीं है और चेतना-रहित हैं, हमें दिशाओंका भी कुछ ज्ञान नहीं, इसीसे हम लोग बड़े दुःखसे जीवन बिता रहे हैं। हम लोग मूढ़ हैं और अपने कार्योंके द्वारा पिशाचयोनिमें आये हैं। हम लोगोंके न पिता हैं और न माता, अपने कर्मके अनुसार ही यह दुःख भोग रहे हैं।

गरुड़पुराणमें और भी लिखा है—

"कलौ प्रेतत्वमाप्नोति तार्क्ष्याशुद्धक्रियापरः।
कृतादौ द्वापरं यावन्नप्रेतो नैव पीड़नम्॥" (१०।१७)

कलिकालमें अशुद्धक्रियाशील मनुष्यगण प्रेतत्वको प्राप्त होते हैं। किन्तु सत्य, त्रेता और द्वापरमें न प्रेत होते थे और न प्रेत-पीड़ा ही होती थी।

प्रेतका विचरण-स्थान।

जो कोई प्रेतयोनि पाता है, वह कहां रहता है? प्रेतलोकसे छूट कर कहां जाता तथा किस तरह पाप भोगता है। प्रेत चौरासी लाख नरकोंका भोग करता

है ? वहां रात दिन सहस्रों प्रहरी उनकी रक्षा करते हैं। इस तरह पहरेमें रह कर वे किस तरह नरकसे बाहर निकल कर पृथ्वी पर विचरण करते हैं ? इसका उत्तर भी गरुड़पुराणमें ही लिखा है,—

'दूसरेका धन अपहरण करनेवाला, और परस्त्री-गामी मनुष्य मरने पर भूत होकर विना शरीरके ही विचरण करता है। ऐसे भूत या प्रेत भूख प्याससे व्याकुल रहा करते हैं। वन्दीगृह छोड़ कर पशु जैसे घूम कर मर जाता है, प्रेत भी उसी तरह अपने सहोदरोंका वध कर स्वयं ध्वंस हो जाते हैं। ये पितृमार्गका उच्छेद करने-वाले और पितृ-द्वारको रोकनेवाले होते हैं। डाकू जैसे पथिकोंका धन लूट लिया करते हैं, उसी तरह प्रेत भी पितृभागको ग्ररण किया करते हैं। यह सुयोग पाकर अपने घरमें आकर मलमूत्र त्याग करनेके स्थानमें वास करते हैं। वहां रहकर रोगी और दुःखी लोगोंके प्रति दृष्टिपात किया करते हैं। जूठा फेंकनेकी जगहमें आकर किसीको एक दिन वाद कर और किसीको कभी ज्वर चढ़ा दिया करते हैं। ये भूत जातिसे रक्षित होकर जूठे पानी और अन्नको खाया करते हैं। प्रेत अपने कुलको वहुत दुःख देते हैं, मौका पाने पर औरोंको भी तंग करते हैं। जीवितकालमें जिसके साथ उसका विशेष स्नेह रहता है, प्रेत उसीको अधिक दुःख दिया करते हैं।

(गरुड़पुराण प्रेतकल्प)

प्रेतांश होने पर मनुष्यमें कैसे लक्षण दिखाई देते हैं, इसके सम्बन्धमें भी गरुड़पुराणमें लिखा है—'प्रेतों-से किसीको सुख और किसीको दुःख हुआ करता है। किसीके प्रेतसे पुत्र उत्पन्न होता, और किसी-का पुत्र मर भी जाता है। किसीके नसीवमें कभी पुत्र लाभ होता ही नहीं। भाई भाईमें विरोध, सन्तान हो हो कर मर जाना, पशुओंकी मृत्यु, द्रव्यनाशजनित कष्ट, प्रकृतिके विपरीत कार्य, अकस्मात् विपत्तिका आना, नास्तिकता आ जाना, व्रतलोप, घमण्ड, नित्य कलह, माता पिताकी हिंसा, देव-निन्दा, अच्छे ब्राह्मणोंकी निन्दा, हत्याका दोष, नित्यकर्म और जप तप न करना, दूसरेका धन अपहरण करना, तीर्थमें जाकर परायेसे आसक्त होना, नित्यक्रियाको छोड़ देना, धर्मकर्ममें अनिच्छा होना, अच्छे समयमें खेतीको हानि हो जाना, सद्व्यवहारका न होना, सबसे कलह करना, पथमें चलने पर वायुमण्डलसे कष्ट पाना, हीन जातिके साथ मित्रता, नीच कर्मोंमें प्रवृत्ति, अधर्ममें रुचि, व्यसनोंमें धनका अपव्यय, कार्यके आरम्भमें हानि, चोर, राजा और अग्नि द्वारा अनिष्ट होना, महारोगोंकी उत्पत्ति, अपने शरीर या अपनी पत्नीकी पीड़ा, श्रुतिस्मृति, पुराण और धर्म-कर्ममें मानसिकविरक्ति, सदा अभावका होना, देवका तीर्थ और द्विजातियोंको सुहृदयतासे न देखना, प्रत्यक्ष या पीछे देव ब्राह्मणोंका दोष वर्णन करना, स्त्रीका गर्भपात, मासिक-धर्मका न होना, वालकोंकी मृत्यु, भार्य्याके साथ विरोध, शुद्धरूपसे वार्षिक श्राद्ध न करना, कलह, व्याघात, पुत्रों-के साथ शत्रुसदृश वर्त्ताव करना, प्रीति और सुखका अभाव, सदा घरकी कलह, भोजनके समय क्रोधित हो जाना, परायेसे द्रोह करना, पिताकी आज्ञा न मानना, अपनी पत्नीके साथ सहवास न करना और दूसरी स्त्रियोंके साथ सहवास करना आदि सभी काम प्रेतांश-के लक्षण हैं। क्रियाविहीन, जीवितावस्थामें दुष्टोंका साथ, मरने पर वृषोत्सर्गादिका न होना, (सांढ़का न दागा जाना) अकाल मृत्यु, भूतकी दाह क्रियादिका लोप होना यह सब प्रेत-लीला है।

प्रेतावेश।

गरुड़पुराणमें प्रेतावेशके लक्षण इस तरह लिखे हैं; 'प्रेत पिशाचयोनि प्राप्त कर जो काम करते हैं, उनके स्वरूप और चिह्नका वर्णन करते हैं,—ये विना शरीरके होते हैं और भूख प्याससे जर्ज्जरित हो कर वायुवेगसे अपने अपने घरोंमें प्रवेश करते हैं और अपने व्यक्तियोंको चिह्नोंसे पहचानते हैं। हाथी, घोड़े, बैल अथवा कुरूप मुख वना कर अपने पुत्र, भार्या और भाइयोंके पास जाते हैं। जो एकाएक सोतेसे उठकर करवट बदलता है अथवा आत्माकी विपरीतता देखता है, वह मनुष्य प्रेत-से दुःख पाता है। यदि कोई अपनेको बंधा तथा हर तरहके वन्धनसे बंधा हुआ समझे, स्वप्नमें अन्न, मांगे, और अपने आप पाप करता है, स्वप्नमें जो अपना या भोजनके वाद दूसरेका अन्न लेकर भागता है और तृष्णा-तुर व्यक्तियोंका जल पान कर लेता है, स्वप्नमें अपनेको बैल

परचढ़ता देखे, अथवा वृक्षके साथ जो चले, कूद कर जो आकाशमें चढ़ना चाहे, भूखे रह तीर्थमें जाय, जो अपनी भार्या, पुत्र, भाई, पति और प्रभुको जीवित रहते ही मृत्यु अवस्थामें देखे, उस मनुष्यको प्रेतका अंश जरूर समझना चाहिये। स्वप्नमें भूख और प्याससे दुःखी हो, जो जल और अन्नकी आकांक्षा करता हो, उसके भी भूतावेश समझना चाहिये, ऐसी अवस्थामें तीर्थमें जाकर पिण्डदानादि करना चाहिये। प्रेताविद्ध व्यक्ति स्वप्नमें देखता है, कि उसका पिता, पुत्र, भ्राता, स्त्री, सभी घरसे बाहर जा रहे हैं।

हमारे वैद्यकशास्त्रमें भी भूत तथा भूतावेशका विस्तार रूपसे वर्णन है, यहां संक्षेपमें लिखते हैं,—

"गुह्यानागतविज्ञानमनवस्था सहिष्णुता।
क्रिया वाह्यमानुषी यस्मिन् स ग्रहः परिकीर्त्यते॥
असङ्ख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपतयास्तु ये।
व्यज्यन्ते विविधाकारा भिद्यान्ते ते तथाष्टधा॥"

जो प्राणी गुह्य और अनागत-विज्ञान यानी किसी तरहसे भी जो नहीं देखते और जिनके रहनेका कोई नियत स्थान नहीं तथा जिनका कार्य सदा अमानुषिक हुआ करता है, उनको ही भूत या ग्रह कहते हैं। ग्रह-गण और ग्रहाधिपति असंख्य हैं और इनके आकार भी नाना तरहके हैं। यह सभी जगह आठ श्रेणियोंमें बांटे गये हैं। जैसे—

"देवास्तथा शत्रुगणाश्च तेषां गन्धर्वयक्षाःपितरो भुजङ्गाः।
रक्षांसि या चापि पिशाचजातिरेषोऽष्टधा देवगणाग्रहाख्यः॥"

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पितृग्रह प्रेत), भुजङ्ग, राक्षस और पिशाच ये आठ प्रकारके भूत या ग्रह मनुष्योंको तंग किया करते हैं। इनकी साधारण संज्ञा देवग्रह है।

उक्त आठ प्रकारके भूताधिष्ठित व्यक्तियोंके लक्षण अलग अलग हैं। जिसके प्रति देवग्रहका आभास होता है वह व्यक्ति सन्तुष्ट, शुद्ध, गन्धमाल्य-प्रिय, तन्द्रा-हीन, असम्बन्ध-संस्कृत-भाषी, तेजस्वी, स्थिरनेत्र, वरदाता होता और उसमें ब्रह्मतेज दिखाई देता है।

जिसके प्रति दानवोंका आवेश होगा, उसके शरीरमें पसीना निकलता रहता है तथा वह द्विज, गुरु और देवताके दोष कहता रहता है और उसकी आखें टेढ़ी होती हैं, निर्भय हो जाता और इधर उधर ताकता रहता और अन्नपानादिसे असंतुष्ट और दुष्टात्मा हो जाता है।

गन्धर्व-ग्रहसे पीड़ित मनुष्य सन्तुष्ट चित्त, उपवन या उद्यान-सेवी, अपने काममें मस्त और गीत तथा गन्ध-माल्यप्रिय होता है। यह कभी नृत्य करता, कभी हंसता और कभी मनोरम और प्रिय वचन बोलता है।

यक्षग्रहके वशीभूत मनुष्यकी आंखें लाल रंगकी हो जाती हैं, यह व्यक्ति फीका लाल रंगके कपड़े पहनने-वाले व्यक्तिसे प्रेम करता है और गम्भीर्यशील, तीक्ष्ण बुद्धि, सहिष्णु और तेजस्वी होता है। थोड़ा बोलता और जो कुछ बोलता प्रिय बोलता है और कहता रहता है कि किसको मैं क्या दूं?

"प्रेतेभ्यो विसृजति संस्तरेषु पिण्डान्
शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः।
मांसेप्सुस्तिलगुड़पायसाभि काम-
स्तुद्भक्तोभवति पितृग्रहाभिभूतः॥"

जिस मनुष्य पर प्रेतावास होता है, वह दाहिने कंधे पर चद्दर डालकर कुशा लेकर मृतव्यक्तिको पिण्डदान करता और गंभीरचित्त, मांसलिप्सु, तिल, गुड़ और पायसाभिलाषी होता है।

जो मनुष्य भुजङ्गम-ग्रहसे पीड़ित होता है, वे कदा-चित् सर्पकी तरह भूमि पर चलता है और जीव द्वारा ओठोंको चाटता रहता है और बहुत सोनेवाला तथा गुड़, मधु और क्षीर-भोजी होता है। राक्षस-ग्रहाभिभूत मनुष्य मांस, रक्त, विविध मद्य-विकार-लिप्सु, निर्लज्ज, अति निष्ठुर, अति वीर, क्रोधशील, विपुल बलशाली, निशा-विहारी और अपवित्र रहा करता है।

"उद्धस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी
दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथातिलोलः।
बह्वाशी विजनहिमाम्बुरात्रिसेवी
व्याचेष्टं भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः॥"

पिशाच-ग्रहसे अभिभूत व्यक्ति ऊर्द्ध्व-हस्तयुक्त कृश (पतला-दुबला), कठोर-हृदय, बकवादी, मैला-कुचैला, अपवित्र, अत्यन्त चञ्चल और बहुत खोनेवाला होता है; तथा एकान्त स्थान, ओस, जल और रात्रि-सेवी तथा

चेष्टा-रहित हो कर भ्रमण करता और रोया करता है।

"देवग्रहः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि।
गन्धर्वः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ॥" इत्यादि।

मनुष्यके शरीरमें पूर्णिमाके दिन देवग्रह, प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्याके समय असुर, अष्टमीको गन्धर्व, प्रतिपदाको यक्ष, कृष्णपक्षमें पितृग्रह, पञ्चमीको भुजङ्गम, रातको राक्षस और चतुर्दशीको पिशाच प्रवेश करता है। जैसे दर्प आदि स्वच्छ वस्तुओंमें छाया, प्राणि-शरीरमें शीतोष्णता, सूर्यकान्तमणिमें सूर्यकिरण और देहमें प्राण प्रवेश करता है, वैसे ही ग्रह अदर्शित-रूपसे मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करता है।

"तपांसि तीव्राणि तथैव दानं व्रतानि धर्मो नियमश्च सत्यम्।
गुणास्तथाष्टावपि तेषु नित्या व्यस्ताः समस्ताश्च यथा प्रभावम्॥"

तीव्र तपस्या, दान, व्रत, धर्मनियम, सत्यवादिता और आठ प्रकारके गुण उनके नित्यधर्म हैं। किसी किसी ग्रहमें यह सभी गुण होते हैं, और किसी ग्रहमें इन गुणोंमें कमी भी रहती है। यह बात ग्रहोंके प्रभावके अनुसार जानी जाती है।

"तेषां ग्रहाणां परिचारका ये कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः।
असृग्वसामांसभुजाः सुभीमा निशाविहाराश्च तमाविशन्ति॥"

पूर्व-कथित ग्रहोंमें किसीके पास करोड़, किसीके पास सहस्र और किसीके पास दश हजार सेवक रहते हैं। ये सभी परिचारकरक्त, मांस, और वसा भक्षण किया करते हैं। इनका रूप भयंकर है और ये रातको विहार या विचरण किया करते हैं। ये ही परिचारक भूत या चुड़ैलके नामसे कभी कभी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश कर उन्हें तंग किया करते हैं।

उपर्युक्त ग्रहोंमें जो देवोंमें सम्मिलित हैं, देवोंके संगसे उनका आचरण देव सदृश्य हो गया है। अतएव ये सब 'ग्रह'-के नामसे पुकारे जाते हैं। इनको देवताकी तरह पूजा तथा प्रणाम करना चाहिये। देवताओंसे जैसे वरकी प्रार्थना की जाती है, वैसे ही इनसे भी वरकी याचना करनी चाहिये। गृहदेवता या गृहदेवियां जैसे शुद्धाचारयुक्त हैं, वैसे ये भी शील और शुद्धाचारसम्पन्न हैं।

ग्रहपीड़ित मनुष्योंकी चिकित्सा नियमपूर्वक जप और होम करना है। ग्रहशान्तिके लिये लाल रंगका गन्ध युक्त पुष्पहार और सब तरहके आहारीय द्रव्यकी वलि देनी चाहिये। यही भूतोत्पातके शमन करनेका सामान्य साधन है। वस्त्र, मद्य, मांस, क्षीर, रुधिर आदि चीजें, ग्रहोंके अनुरूप, दे कर उनको सन्तुष्ट करना चाहिये। जिस जिस दिन, जिस जिस समय ग्रह मनुष्योंके शररीमें प्रवेश करते हैं, उसी उसी दिन तथा उसी उसी समय भूतोत्पातकी शान्तिके लिये ग्रहोंकी पूजा करना आवश्यक है। देवालयमें अग्निकी स्थापना कर होम और देवोंको वलि देना चाहिये। कुशा, अरवा चावल, आटा, घृत, छाता और खीर आदि चीजें गामोंके चवतरों पर दान करना चाहिये। चौराहे पर या भयङ्कर वनमें राक्षसोंको वलि देना चाहिये।

शास्त्रोंमें कहे हुए मन्त्रसे भूतोंकी वलि देना आवश्यक है। केवल वलि द्वारा ही भूतका उत्पात शान्त नहीं होता, उसकी दवा भी करनी चाहिये।

औषध—वकरी, भालू, सेहिया, पेचक (उल्लू) इनके चमड़े और बाल तथा हिंगू और वकरीका मूत्र, इन सब वस्तुओंको इकट्ठा कर धूंआर देनेसे ग्रहदोषकी शान्ति होती है। गजपिप्पलीका मूल, शोंठ, मिर्च, पिप्पल, आंवला और सरसों, ये सब चीजें इकट्ठी कर गो, सर्प, बिल्ली और भालू-पित्तमें भावना देना चाहिये। ये दवा सूंघने, देहमें मालिश कराने तथा भूताधिष्ठान निराकृत करनेके लिये वड़ा हितकर है।

गदहा, घोड़ा, उल्लू, हाथीका बच्चा, कुत्ता, सियार, (शृगाल), गृध्रिनी, काग और सूअर, इन सब जन्तुओंकी विष्ठा (मल) वकरीके मूतमें पीस कर तेलमें पकाना चाहिये। यह तेल भूत लगे हुए मनुष्योंके लिये वड़ा ही हितकर है। सिरीसका बीज, लहसुन, शोंठ, सफेद सरसों, वच, मजीठ, हल्दी, ये सब वस्तुएं कूट कर चूर्ण वना कर वकरीके मूतमें मिला दो और उसकी वत्ती वना लो इस वत्तीको छायामें सुखा कर इसका अञ्जन आंखमें लगानेसे भूतका आवेश दूर हो जाता है। करञ्जकी जड़, पिप्पल, मिर्च और शोंठ, त्रिकटु, सोनामूल, बेलकी जड़, हल्दी और दारुहल्दी; ये सब चीजें एकत्र कूट कर वत्ती वना लेनी चाहिये। इस वत्तीसे काजल तयार कर आंखमें लगानेसे भूत भाग जाता है।

जो भूत अन्य देवताओं और उपचारोंसे नहीं भागते, वे इस अञ्जनसे भाग जाते हैं। सैन्धत्र (नमक सेंधा) त्रिकटु (पीपल, मिर्च और शोंठ) हिङ्गु, हरितकी (छोटी हर्रे) और वच, इन सब चीजोंको कूट कर बकरीके मूत तथा मछलीके पित्तमें अच्छी तरह पीस कर वत्ती बनाने पर इससे काजल तय्यार करे और आंखमें यह काजल करनेसे भूत भाग जाता है। पूराना घी, लहसुन, हिङ्गु, सफेद सरसों, वच, सादी दूव, अजलोमी, शेफालिका शिवजटा, सेमलवृक्ष, लवङ्ग, कर्णविषाणिका, शूकशिम्बी, छोटी हर्र, कांकड़ाशिङ्गी, मोहनवल्ली, आकन्दमूल, त्रिकटु, लताञ्जन, स्रोतोऽञ्जन, अर्जुनवृक्ष नैपाली, हरताल, सादी सरसों और सिंह, शेर, चीता, भालू, बिल्ली, घोड़ा, गो, कुत्ता, भेड़, गो-सर्प, ऊँट, न्योला और सेहिया इनकी विष्ठा (मल), चमड़ा, बाल, भेजा, मूत्र, रक्त, पित्त और नख,—इन सब वस्तुओं द्वारा तेल और घी पका कर सुंघाने और खिलाने तथा अञ्जन करनेसे भूत भागता है।

उपर्युक्त औषधियोंका अञ्जन बनानेके लिए सबको पीस डालना चाहिये, और वटिका बना लेना चाहिये, इसी वटिकाको घिस कर आंखमें अञ्जन लगाना चाहिए। खाने और सेवन करनेके लिये क्वाथ बना कर खाना और सेवन करना चाहिये। शरीरमें लगानेके लिये इन्हें पीस कर शरीरमें मलना चाहिये, इससे पका तेल और घी सेवन करनेसे शीघ्र ही भूत भागता है। भूतको दूर करनेके लिये किसी तरहकी अयोग्य औषधियोंका प्रयोग न करना चाहिए, देव-ग्रहकी तरह इसकी शान्ति करनी चाहिये। मकानके जिस कमरेमें गृह-देवता हों उसी कमरेमें यह शान्ति कराना चाहिये। पिशाच-प्रतिक्रियाके सिवा कभी भी कोई प्रतिकूल आचरण करना उचित नहीं। भूताधिष्ठानके प्रतिकूल आचरण करनेसे भूत उस मनुष्यको तथा वैद्यको बहुत तंग करता है। और तो क्या, कभी कभी दोनोंकी जान खतरेमें पड़ जाती है। अतएव वैद्यको सावधान होकर हिताहितका ध्यान रख कर कार्य करना उचित है। (वैद्यक)

पहले जिन सब भूतोंके उत्पातका वर्णन कर चुके हैं, वह अधिक उम्रके पुरुषोंके लिये है। इसके सिवा बालकों पर आक्रमण करनेवाले कई ग्रह और हैं। सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें नौ प्रकारके ग्रहोंका उल्लेख है। इनके नाम इस तरह हैं:—स्कन्द, स्कन्दापस्माद, शकुनि, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका और नैगमेश इसके सिवा अनेक वैद्यक ग्रन्थमें भूतरूपिणी नन्दना, सुनन्दा, मुखमण्डिका, कटपूतना, शकुनिका, शुष्करेवती, अर्यका, भूसूतिका, निर्ऋता, पिलिपिटिका और कामुका इन ग्यारह माताओंके उपद्रवोंकी बात भी लिखी है।

धात्री या नौकरनीकी असावधानता तथा माताके पहलेके किये हुए अपकार तथा मङ्गलाचारके न होनेसे तथा शुद्धि न रखनेके कारण ही बालकोंको भूतकी हवा लग जाती है। बालकको भूतकी हवा लग जानेसे वह कभी भयसे चिहुक उठता है, तथा चमक उठता है और कभी बालक हंसता या रोने लगता है। पूजाके लिये भूत बालकोंकी प्रतिहिंसा किया करते हैं। भूतोंको बलि देनेसे वे संतुष्ट होते हैं। फिर बालक भी आरोग्य हो जाते हैं।

नवग्रह और बालग्रह देखो।

पुराण और तन्त्रोक्त भूत।

उपर्युक्त भूतोंके सिवा पुराण, विशेषतः तन्त्रशास्त्रमें भी नाना भूत प्रेतोंका वर्णन दिखाई देता है। इनमें भैरव ही प्रधान हैं। अग्निपुराणके ३२२वें अध्यायमें शाकिनी, क्षेत्रपाल और वैतालकी चर्चा है। स्कन्दपुराण दक्षखण्डमें दक्षयज्ञ विनाशके लिये डाकिनी आदिकी उत्पत्तिकी बात लिखी हुई है। किन्तु प्राचीन पुराणोंमें इन सब भूत-भूतनियोंका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। तान्त्रिकताके प्रभावसे भूतका विश्वास भी दृढ़तर होता गया साथ ही भूत भूतनियोंकी असंख्य मूर्त्तियोंकी कल्पना होने लगी। पुराणोंमें गणपति या गणेश ही भूतोंके मालिक बतलाये गये हैं। स्कन्दपुराणके ब्रह्मखण्डमें भूत गणपति मन्दिरके द्वारपालरूपसे पुकारे गये हैं। (अध्याय ११) किन्तु तन्त्रशास्त्रमें भैरवी ही भूतोंमें श्रेष्ठ गिनी जाती हैं। देवताओंके अनुसार इनकी भी पूजाका विधिविधान लिखा हुआ है। पीछे तान्त्रिकगण निम्नश्रेणीकी भूत-पूजामें भी विशेष रत होने लगे। इसीलिये शारदा तिलकमें बटुकभैरवके साथ

डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी और मालिनी तथा इनकी सन्तानोंकी पूजाभी दृष्टिगोचर होती है।

दुर्गोत्सवके समय यह भूत-भूतनी दुर्गादेवीकी सहचरीरूपसे भी पूजा पाया करती हैं।

शाकिनी, हाकिनी आदिकी मूर्त्ति या सूरत किस तरहकी है, यह तन्त्रमें स्पष्टरूपसे वर्णित नहीं है। किन्तु इसका आभास जरूर मिलता है कि उनकी मूर्त्ति अत्यंत भयङ्कर है। भैरवतन्त्रमें छिन्नमस्ता, वामपार्श्वस्थ डाकिनी, दक्षिणी वर्णिनीका रूप इस तरह वर्णित है।

वर्णिनीका रूप—वहुत लाल, फिर भी सुन्दर, पीले रङ्गके वाल, नग्न शरीर, वायें हाथमें मुर्देकी खोपड़ी और दाहिने हाथमें कटार, गलेमें सांपका जनेऊ, मुखमें चमक मानो अग्निकी तरह जल रही हो, शरीर छोटा और हाड़की माला आदि आभूषणोंसे ढका, किन्तु उम्र केवल वारह वर्षकी है।

डाकिनीका रूप वड़ा भयङ्कर होता है। देखनेसे मालूम होता है कि कहांका प्रलयकालीन सूर्य उदय हो गया; माथेमें जटा, मानो विजली चमकती हो, आंखें तीन, दशन पंक्ति वगुलेकी पांखकी तरह सफेद, किन्तु मुखविवर कैसा है—अति प्रचण्ड और विकट मुख, स्तन या पयोधर वहुत पतले किन्तु लम्वे, पीले वाल, लकलक जीभ, मुण्डमालासे भूषित, वायें हाथमें चौड़ी और दाहिने हाथमें कटार, कैसा भयप्रद रूप है! चौड़ीसे छिन्नमस्ताके गलेसे गिरते हुए रक्तको पी रही है।

हिन्दूशास्त्रमें यह साफ लिखा हुआ है कि भूतांश होनेसे ऐसा न समझना चाहिये कि भूत मनुष्योंके हृदयमें आश्रय ग्रहण करते हैं। क्योंकि भूत मनुष्योंके साथ वसोवास नहीं कर सकता, अथवा कभी मनुष्य शरीरमें प्रवेश नहीं करता। जो भूतविद्याको नहीं जानते वही ऐसा कहा करते हैं। इस देशके कितने ही लोगोंका ऐसा ख्याल है, कि भूतकी दृष्टि पड़ने पर अथवा भूतकी हवा लगने पर भूतावेश हुआ करता है।

भूतको दूर करना।

भूतकी हवा लगने पर ऐसे कई तरहके मन्त्र और यन्त्र हैं, जिनके द्वारा भूत भगाये जाते हैं। किस तरह भूतकी हवा लगी, इसका निवटारा उसके लक्षण देखनेसे किया जा सकता है जिस मनुष्यको भूत लगा हो। जैसे अग्निपुराणमें लिखा है—"यक्षांशो भूषणप्रियः"

"गन्धर्वांशोऽति गीतादिभीमांशो राक्षसांशकः।
दैत्यांशः स्याद् युद्धकार्य्यो मानी विद्याधरांशकः॥
पिशाचांशो मलाक्रान्तो मन्त्रं दद्यान्निरीक्षय च।"

भूतावेशमें यक्षांश रहने पर मनुष्य आभूषण-प्रिय, गन्धर्वांशमें गाने वजानेका शौकीन, राक्षसांश रहने पर राक्षस-प्रकृति, दैत्यांश रहने पर युद्धकी प्रकृति, विद्याधरके अंशमें अत्यन्त गर्वयुक्त और पिशाचांशमें मनुष्य म्लेच्छ-भावापन्न हो जाता है। यह सब देख, सुन कर मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये।

गरुड़पुराणमें प्रेतसे छूटनेका उपाय इस तरह लिखा है,—सुवर्णकी मूर्त्ति वनाना, उसे सब तरहके गहनेसे भूषित करना, यह मूर्त्ति पीले वस्त्रोंसे ढकी रहनी चाहिये और अगरुचन्दनसे चर्चित कर तथा तिलक आदि कर नारायणकी देवमूर्त्तिकी कल्पना करनी चाहिये। पीछे इसी मूर्त्तिको विविध प्रकारके जलसे अभिषिक्त कर प्रतिष्ठा तथा पूर्वकी ओर श्रीधरका, दक्षिणमें मधुसूदन, पश्चिममें वामन, उत्तरमें गदाधर और वीचमें ब्रह्मा और महेश्वरकी पूजा करनी होगी पीछे इस मूर्त्तिकी प्रदक्षिण कर अग्निमें देवताओंके लिये तथा घृत, दधि और क्षीर द्वारा विश्वदेवताओंके लिये तर्पण करना चाहिये। इसके वाद स्नान कर विनीत भाव और शान्तचित्तसे जपमें मग्न हो कर पहले नारायणकी विधिवत् और्द्धदेहिक क्रियासम्पन्न करनी होती है। विनीत भावसे और क्रोध-लोभशून्य हो कर कार्य आरम्भ करना चाहिये। सव तरहकेश्राद्ध हो जाने पर वृषोत्सर्ग किया जाता है। इसके वाद सत्रह ब्राह्मणोंको अन्न, पादुका, अंगुठी, रत्न, पात्र, आसन और भोग्य पदार्थ प्रदान करना चाहिये। प्रेतके मङ्गलके लिये अन्नजल पूर्ण कलस और शय्या घट आदि दान करना चाहिये। अन्तमें नारायणके नामसे सम्पूट कर मन्त्रोच्चारण करना चाहिये।

विधिपूर्वक इस तरह कार्य्य करनेसे हाथोहाथ शुभ फल प्राप्त होता।

उड्डीश, डामर, शावर आदि बहुतेरे ग्रन्थोंमें भूत झाड़नेके मन्त्र, यन्त्र, चक्र, कवच (तावीज) औषध तेल, बत्ती, अञ्जन, नस्य आदि बहुतेरे उपाय बतलाये गये हैं। नीचे दो एक प्रक्रियाओंका उल्लेख करेंगे।

बन्धन मन्त्र—भूत झाड़े जानेसे पहले ओझा धरती बांधते हैं, (अमर) बंधनका यह मन्त्र है—'ॐ अइई क्लीं पुरु पुरु सिद्धेश्वरि अवतर स्वाहा। ॐ दशाङ्गुलि भिन्दलि विरुन्तहारी भैरुन्त भैरवी विप्राराणी, रोणावन्ध, मुष्टिवन्ध, कृत्यवन्ध, रुद्रवन्ध, भैरववन्ध, ग्रहवन्ध, प्रेतवन्ध, भूतवन्ध, राक्षसवन्ध, कङ्कालवन्ध, वैतालवन्ध, पातालवन्ध, आकाशवन्ध, पूर्व-पश्चिम उत्तर-दक्षिण सर्वदिशावन्ध, वे आच कह कह इस इस अवतर, अवतर अवतर दशाविप्राराणी दशांगुली शतास्त्रवन्धिनी वन्धासि फट स्वाहा।"

उपर्युक्त मन्त्र द्वारा चारों ओर रेखा खींच कर उसके बीचमें बैठ जाने पर भूतोंका उपद्रव नहीं होता।

'हूं हूं अमिनिया मच्चीवन्ध, निमिनाघपते नमानिकं स्वाहा" इस मन्त्रसे डाकिनी बांधी जाती है। डाकिनीका मुण्ड बांधनेके लिये "ॐ मरालं सरालं करे ॐ स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ना चाहिये।

भूतको दमन करनेके लिए यह मन्त्र है—"ॐ ह्रीं कुरु कुरु स्वाहा" इस मन्त्रसे डाकिनी और राक्षस भागता है।

"ॐ नमो भगवते महानीलोत्पल नल-जाम्बुवत्-वालि-सुग्रीवाङ्गद-हनुमन्तसहिताय वज्रहस्तेन शाकिनीनां हन हन दम दम मारय मारय भेदय भेदय छेदय छेदय सर्वदोषाद्य आकर्षय ओं ह्रीं ह्रों हूं फट् स्वाहा" इस मंत्रसे शाकिनी-दमन होता है। "ॐ अघोरे अघोरेश्वरे घोरमुखि चामुण्डे उर्द्ध्वकेशि ह्रीं ह्रीं हुं स्वाहा" इस मंत्रको पढ़ सरसों मारना चाहिये।

झाड़नेवाला मंत्र,—

"तेलिनीके तेलका पसार चौरासी सहस्र डाकिनीका तेल, इस तेलका भार मैंने तेल पढ़ दिया, अमुकके अंगमें अमुकका भार। आड़दलशूले यक्षा यक्षिणी दैत्य दैत्यानी, भूता भूती प्रेता प्रेती दानवा दानवी निशाचौरा, सूचीमुखा गाभूरडलवम् वारहभइया लाड़ी भोगाई चामी पिशाची अमुकके अङ्गमें घाउ कालखाउ कालिका खाउ, 'ह्रीं फट् स्वाहा' सिद्धि गुरुचरण राढ़की कालिका चण्डीको आज्ञा॥" यह मंत्र पढ़ कर सरसोंका तेल पढ़ कर मारे तब भूत भाग जायगा। इसी तरह कई मंत्र और भी हैं।

जल पढ़नेका मंत्र,—

"ॐ आं क्रीं हूं मार हस्त गां ह्रीं कारे समस्त दोषान् हर हर विगर विगर हुं फट् स्वाहा" इस मन्त्रसे जल परोर कर भूतसे सताये हुए मनुष्यको पिला देना चाहिये और कुछ उसकी देह पर भी छींट देना चाहिये। उस समय कच्चे नीमको पत्तोंका धूंआ देना चाहिए। ऐसा करनेसे दैत्यदानवादि भाग जाते हैं।

भूत शान्तिकी दवा—(१) सादा अपराजित्की जड़, चालनीके जलसे पीस कर उसका नस लेनेसे भूत छोड़ कर भाग जाता है। (२) मिर्चके साथ वक फूल रख कर सूंघिये। (३) सांपका केंचुल, हिंगु, नीम-पत्ती, यव और सादा सरसों एक साथ पीस कर उसकी मालिश करना चाहिये। (४) गोरोचन, मिर्च, पीपल, नमक और शहदमें मिला कर उसका अञ्जन बना कर आंखमें लगाना चाहिए। वच, त्रिकटु (पिपली, मिर्च, सोंठ) डहरकरञ्ज, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, कण्टकारी (सादा), शिरीश, हल्दी, दारु हल्दी, मजीठ, त्रिफला (हर्र, वहेड़ा, आंवला) और नीम गोमूत्रमें पीस कर नस लेना चाहिए और शरीरमें मालिश करना, स्नान करना और उसके द्वारा गात्र मार्जन करना चाहिये। इत्यादि तरह तरहके उद्योगसे भी भूत भागता है।

भूतके भयसे वचनेके लिये कितने ओझा यन्त्र दिया करते हैं। यहां एक यन्त्रके चित्रका उल्लेख करते हैं। दो वृत्त खींच कर उसमें चार मायावीज लिखना चाहिये। उसके वहिर्भागमें दो चौकोन खींच कर यह परहनेसे फिर डाकिनी आदिका कुछ भय नहीं रह जाता और तो क्या, इससे मृत्वत्सा रोग दूर हो कर स्त्रियोंको पुत्र उत्पन्न होता है।

कवच—भूत-प्रेत आदिका भय भगानेके लिये तरह तरहके कवच या तावीज भी हैं; ऐसी तावीजें भोजपत्र पर लिखी जाती है। इन कवचोंमें नृसिंहकवच ही सबसे उत्तम कवच है। कितने ही लोगोंका विश्वास है कि

कवच विशुद्ध तथा साधु और फकीर द्वारा दिये जाने पर उसके पहननेसे मनुष्यको भूत, प्रेत, पिशाच दैत्य, दानव आदिका स्पर्श नहीं हो सकता है। कवच देखते ही सब भाग जाते हैं। और तो क्या, इस कवचसे मृतवत्सा तथा काकवन्ध्या आदि जन्मवन्ध्याओंके भी पुत्र हुआ करता है। भोजपत्र पर श्लोकादि लिख कर इस नृसिंहकवचको धारण करनेसे पहले पञ्चगव्यसे शुद्ध और उसकी पूजा कर लेनी चाहिये। जैसे;—

नारदका कथन।

अथ नृसिंहकवचं। ॐ नमो नृसिंहाय॥
इन्द्रादिदेववृन्देश तातेश्वर जगत्पते।
महाविष्णोर्नृसिंहस्य कवचं ब्रूहि मे प्रभो।
यस्य प्रपठनाद्विद्वान् त्रैलोक्यविजयी भवेत्।

ब्रह्माका कथन।

शृणु नारद वक्ष्यामि पुत्रश्रेष्ठ तपोधन।
कवचं नरसिंहस्य त्रैलोक्यविजयाभिधम्॥
यस्य प्रपठनाद्वाग्मी त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
स्रष्टाहं जगतां वत्स पठानाद्धारणाद्यतः॥
लक्ष्मीर्जगत्त्रयं पाति संहर्त्ता च महेश्वरः।
पठनाद्धारनाद्देवा वभूवुश्च दिगीश्वराः॥
ब्रह्ममन्त्रमयं वक्ष्ये भूतादिविनिवारकम्।
यस्य प्रसादाद्दुर्वासास्त्रैलोक्यविजयी मुनिः॥
पठनाद्धारणाद् यस्य शान्तश्च क्रोधभैरवः।
त्रैलोक्यविजयस्यापि कवचस्य प्रजापतिः॥
ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री नृसिंहो देवता विभुः।
क्ष्रौं बीजं मे शिरः पातु चन्द्रवर्णो महामनुः॥
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्व्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मन्त्रराजः सुरद्रुमः।
कण्ठं पातु ध्रुवं क्ष्रौं हृद्भगवते चक्षुषी मम॥
नरसिंहाय ज्वालामालिने पातु मस्तकं।
दीप्त दंष्ट्राय तथाग्निनेत्राय च नासिकां॥
सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशाय च सर्व्वज्वरविनाशाय दह दह पच पच द्वयं।
रक्ष रक्ष वर्म्म चास्त्र स्वाहा पातु मुखं मम॥
तारादिरामचन्द्राय नमः पायाद्गुदं मम।
क्लीं पायात् पार्श्वयुग्मञ्च तारो नाम पदं ततः॥
नारायणाय पार्श्वञ्च आं ह्रीं क्रों क्ष्रौं ञ्च हुं फट्।
षडक्षरः कटिं पातु ॐ नमो भगवते पदं॥
वासुदेवाय पृष्ठं क्लीं कृष्णाय क्लीं उरुद्वयम्।
क्लीं कृष्णाय सदा पातु जानुनी च मनुत्तमः॥
क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः पायात् पदद्वयम्।
क्ष्रौं नृसिंहाय क्ष्रौंच सर्व्वाङ्गं मे सदावतु॥
इति ते कवचं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्।
तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचितः॥
गुरुपूजां विधायाथ गृह्णीयात् कवचं ततः।
सर्वपुण्ययुतो भूत्वा सर्वसिद्धियुतो भवेत्॥
शतमष्टोत्तरञ्चापि पुरश्चर्य्याविधि स्मृतः।
हवनादीन् दशांशेन कृत्वा तत् साधकोत्तमः॥
ततस्तु सिद्धकवचः पुण्यात्मा मदनोपमः।
स्पर्द्धामुद्धूय भवने लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः॥
अपि वर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात्।
भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद् यदि॥
कण्ठे वा दक्षिणे वाहौ नरसिंहो भवेत् स्वयम्।
योषिद्वामभुजे चैव पुरुषो दक्षिणे करे॥
विभृयात् कवचं पुण्यं सर्वसिद्धियुतो भवेत्।
काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत्॥
जन्मवन्ध्या नष्टपुत्रा बहुपुत्रवती भवेत्।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥
त्रैलोक्य क्षोभयत्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
भूतप्रेताः पिशाचाश्च राक्षसा दानवाश्च ये॥
तं दृष्ट्वा प्रपलायन्ते देशाद्देशान्तरं ध्रुवम्।
यस्मिन् गृहे च कवचं ग्रामे वा यदि तिष्ठति॥
तं देशन्तु परित्यज्य प्रयान्ति चातिदूरतः॥"

इसके सिवा भूतके शान्तिके लिये वा भूतोंके भयसे वचनेके लिये विविध प्रकारके स्तोत्र भी देखे जाते हैं। इन स्तोत्रोंमें वटुकभैरवस्तोत्र और विपरीत-प्रत्याङ्गिरा-स्तोत्र प्रधान है। भूत पिशाचकी शान्तिके लिये वनदुर्गा, द्वादश दानव (बारह भाई) और रणयक्षिणीकी पूजाकी व्यवस्था भी है।

वनदुर्गाकी पूजा।

पवित्र स्थानमें एक वेदी बना कर उसके चारों ओर केलेका खम्भा गाड़ना चाहिये। तमालपत्र पर आठ

कमलोंको मण्डलाकार रख कर उस पर सिन्दूरसे विभूषित घटकी स्थापना करनी चाहिये। पहले शुद्धासन पर बैठ हाथमें कुश ले आचमन कर स्वस्तिवाचन कर यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

"सूर्य्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा।
पवनो दिकपतिर्भूमिराकाशं खचरामराः॥
ब्राह्मं शासनमास्थाय कल्पध्यमिह सन्निधिम्।"

इसके बाद फल फूल और जलपूर्ण ताम्रपत्र ले विष्णुरोमद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्म्मा वनदुर्गाप्रीतिकामः कृष्णकुमारादिसहित वनदुर्गादेवी-पूजनमहं करिष्ये।" इसी तरह सङ्कल्प कर अपनी शाखाके कहे हुए सूक्त पाठ करना चाहिये, पीछे आसन शुद्ध कर नीचे लिखे मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

"ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥"

इस मन्त्रसे भूतापसरण कर सामान्यर्घ्य स्थापन पूर्वक 'गों हृदयाय नमः' इत्यादि क्रमसे अङ्गन्यासादि करना चाहिये। इसके बाद "खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं" इत्यादि मन्त्रसे गणपतिका ध्यान और बाहरीपूजा कर "एकदन्तं" इत्यादि मन्त्रसे प्रणाम करना उचित है। और शिवादि पञ्चदेवता, आदित्यादि नवग्रह, इन्द्रादि दश दिक्पाल, मत्स्यादि दश अवतार, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, गङ्गा, यमुना, लक्ष्मी और सरस्वतीदेवीके नामसे पहले 'ॐ' और नामके अन्तमें नमः जोड़ कर पाद्यादि द्वारा पूजा और नमस्कार करना चाहिये। भूतशुद्धि और प्राणायाम कर ऋष्यादिन्यास और कराङ्गन्यास कर गुरुपंक्ति नमस्कार कर कूर्ममुद्राक्रमसे फूल हाथमें ले कर इस तरह ध्यान करना चाहिये—

"ॐ देवीं दानवमातरं निजमदाघूर्णनमहालोचनाम्।
दंष्ट्राभीममुखीं जटालिविलसन्मलीं कपालस्रजाम्॥
वन्दे लोकभयङ्करीं घनरुचिं नागेन्द्रहारोज्ज्वलां
सर्पाबद्धनितम्बबिम्बविपुलां बाणान् धनुर्बिभ्रतीम्।"

इसका ध्यान कर अपने शिरमें फूल छुआ कर मानसोपचारसे पूजा, विशेषतः अर्घ्य दान, पीठपूजा, पुनः अङ्गन्यास कराङ्गन्यासादि कर फिर ध्यान करना चाहिये और घड़ेमें फूल डाल कर देवीका आह्वान करना उचित है।

'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा' इस मन्त्रसे आसन, 'ॐ ह्रीं वनदुर्गाय नमः' इत्यादि क्रमसे षोडशोपचार द्वारा यथासम्भव पूजा कर प्रणाम करना चाहिये। इसके अनन्तर 'ॐ क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः' इस मन्त्रसे पाद्यादि द्वारा पूजा करना चाहिये। पीछे न्यासादि कर यथाविधि 'द्वादशदानव' बारहभइया और उनकी बहन रणयक्षिणीकी पूजा करनी चाहिये।

द्वादशदानव ये हैं—कृष्णकुमार, पुष्पकुमार, रूपकुमार, हरिपागल, मधुभाङ्गर, रूपमाली, गाभूण्डलन मोचरासिंह, निशाचौर, सूचीमुख, महामल्लिक और वलिभद्र।

कृष्णकुमारका ध्यान—

"ॐ कृष्णवर्णं महाकायं खड्गखट्वाङ्गधारिणं।
श्वेताश्ववाहनं दैत्यं रक्तमाल्यानुलेपनम्॥
स्मेरास्यं सुन्दरस्कन्धं पिङ्गाक्षं पिंगकेशकम्।
वन्दे कृष्णकुमारञ्च भयदं पीतवाससम्॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ कां कीं कूं कैं कौं कः कृष्णकुमाराय नमः।'

पुष्पकुमारका ध्यान—

"ॐ पुष्पहस्तं महाकायं पुष्पचापकरं परम्।
पुष्पमालाधरं कान्तं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥
रक्ताश्ववाहनं क्रूरं रक्तास्यं रक्तवाससम्।
तप्तकाञ्चनवर्णाभं वन्दे पुष्पकुमारकम्॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ पुष्पाय पुष्पहस्ताय स्वाहा। ॐ पुष्पकुमाराय नमः।"

रूपकुमारका ध्यान—

"ॐ वन्दे काञ्चनवर्णाभं द्विभुजं शूलहस्तकम्।
सुन्दरात् सुन्दरं कान्तं नानापुष्पविहारिणं॥
रक्तनेत्रं रक्तवस्त्रं रक्तमाल्यानुलेपनम्।
ध्यात्वैवं पूजयेद्धीमान् दैत्यं रूपकुमारकम्॥"

पूजाका मन्त्र—'रूपकुमाराय नमः।'

हरिपागलका ध्यान—

"ॐ उन्मत्तवेशं करपङ्कजाभ्यां धृतं लगुडं परशुं सपाशम्।
आघूर्णितं निजमदैः स्खलितं सुकान्तं यजेन्महान्तं
हरिपागलाख्यं॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ ह्रीं हुँ हरिपागलाय नमः।'

मधुभांगरका ध्यान—

"ॐ रक्तास्यनेत्रं पिशुनस्यभावं सदा जयन्तं परिपूर्णवक्त्रम्।
आघूर्णितं निजमदैः स्खलिताग्रपादं ध्यायेत् सुदैत्यं मधुभांगराख्यम्॥"

मधुभांगरकी पूजाका मन्त्र—'ॐ मां मां मीं मीं मौं मः मधुभांगराय नमः।'

रूपमालीका ध्यान—

"रूपमालाधरं श्वेतं रुक्मवस्त्रं चतुर्भुजम्।
शूलवज्रशरांश्चापं धारिणं सुमनोहरम्॥
कृष्णाश्ववाहनं कान्तं कुमारं रूपधारिणम्।
दीर्घहस्तं दीर्घकायं पाशखट्वांगधारिणम्॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ रां हुं फट् रूपमालिने नमः।'

गाभूरडलनका ध्यान—

"ॐ दीर्घहस्तं दीर्घकायं पाशखट्वाङ्गधारिणम्।
कृष्णवर्णं रक्तनेत्रं लम्बकर्णं कृशोदरम्॥
रक्तवस्त्रधरं क्रूरं रक्तगन्धानुलेपनम्।
गाभूरडलनं वन्दे सर्वलोकभयङ्करम्॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ गाभूरडलनाय नमः।'

मोचरासिंहका ध्यान—

"ॐ रक्तांगनेत्रो भयदो जनानां शूलं सपाशं करपङ्कजेन।
रक्तास्यहस्तः पिशुनस्वभावः सदा जराभीममुखो विभाति॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ मां मोचरासिंहाय नमः।'

निशाचौरका ध्यान—

"ॐ कृष्णवर्णं रक्तनेत्रं निशाचौरं भयानकम्।
शक्तिहस्तं दीर्घजङ्घं विकटास्यं दिगम्बरम्॥
करालवदनं भीमं शुष्कदेहं कृशोदरम्।
ध्यायेत् सदा क्रोधयुतं घण्टाघर्घवादिनं॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ नां नीं निशाचौराय नमः।'

सूचीमुखका ध्यान—

"दीर्घास्यनेत्रः पिशुनस्वभावः सदा कृशांगो भयदो जनानाम्।
सुरंगवक्त्रो विरसः प्रमादी खट्वांगहस्तो विमुखो वभासे॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ सां हुं सूचीमुखाय नमः।'

महामल्लिकका ध्यान—

"ॐ विशालनेत्रः परिपूर्णवक्त्रो
रक्तैःसमांसैर्भयदो जनानाम्।
करालदंष्ट्रः कमलासनस्थः कदम्बमाली कुटिलः कृशांगः॥
श्रीमन्महामल्लिक एष भाति गोमायुरावी द्विभुजो जटौघः।
खट्वांगधारी नृकपालमाली शार्दूलचर्म्मावृतसर्वगात्रः॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ मां महामल्लिकाय नमः।'

बलिभद्रका ध्यान—

"ॐ कृष्णांगवक्त्रः स्फटिकांगयष्टिः सक्रोधनेत्रः कपिलाक्षकेशः।
खट्वांगहस्तः खरगृध्ररावी स बलिभद्रः पशुसिंहकायः॥"

रणयक्षिणीका ध्यान—

"ॐ दीर्घांगी दीर्घनेत्रा गुरुकुचयुगला घोरदंष्ट्रा कराला।
रक्ताक्षी कृष्णवर्णा रुधिरचषकहस्ता मुण्डमालावृतांगी॥
घण्टाखट्वांगपाशं करयुगविधृता द्वीपचर्म्मापिनद्धा।
नित्यं मांसास्थिभक्षा चलतुरगगता यक्षिणी दीर्घवक्त्रा॥"

पूजाका मन्त्र—'ॐ ह्रीं ह्रीं रणयक्षिण्यै नमः।'

पञ्चोपचारसे पूजा, यथाशक्ति प्राणायाम, बलिदान, होम और दक्षिणा दे कर पूजा खतम करनी चाहिये।

पहले इस देशमें जैसे ओझा थे, वैसे अब इस समय नहीं दिखाई देते। पहलेके ओझा डाइनोंको तथा भूतोंको प्रत्यक्ष नचा देते थे। पाश्चात्य हवाके लगने तथा उत्तरोत्तर योग्य गुरुके अभावमें इस विद्याका ज्ञान प्रायः लोप हो रहा है। बालकपनमें हमने जैसे गुणी ओझा देखे हैं, उसका अब नाममात्र सुनाई देता है।

तिब्बतमें भूतविद्या।

तिब्बत और चीनमें वहांके लोग भूतसे बहुत डरते हैं। उनके धर्मग्रन्थोंमें ३६ तरहके भूत प्रेतोंका उल्लेख है।

हिन्दुओंकी तरह तिब्बतके लोग भी मनुष्यके मरने पर प्रेतकी प्राप्ति स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है, कि यमलोक और नरकमें तथा राजगृहीके निकट सितवनमें भूतप्रेतोंका लोक विद्यमान है। इहलोकमें जो अर्थलोलुप, कृपण, परधनहरण करनेवाले तथा पेटू होते हैं, वही मरने पर भूत प्रेत हो भूख प्याससे व्याकुल हुआ करते हैं। हिन्दुओंमें जैसे पिण्डदानादि और श्राद्ध करनेसे प्रेतोंके तृप्त होनेका विश्वास है, उसी तरह तिब्बतवालोंका भी विश्वास है। महालयाके दिन जैसे हिन्दू-पितरों तथा प्रेतोंकी तृप्तिके लिये पिण्ड तर्पण आदि किया करते हैं, उसी तरह तिब्बतीय भी याजकों द्वारा उत्तम भोजन और पानीय द्रव्य प्रेतोंके सन्तुष्टिके लिये

प्रदान किया करते हैं। उन लोगोंका विश्वास है कि इस दिन (महालयाके दिन) उत्तम उत्तम भोजन और पानीय द्रव्य प्रदान करनेसे प्रेत मुक्त हो कर स्वर्ग जाते है।

प्रेतरानी हारिती।

हिन्दू तन्त्रमें भूत-शान्तिके लिये जैसे रणयक्षिणी-की पूजाका विधान है, वैसे ही बौद्धोंके रत्नकूटसूत्रमें हारिती नामकी एक यक्षिणीकी भी पूजाका विधान दिखाई देता है। यह यक्षिणी भूखे प्रेतोंकी रानी है। इसका भी प्रज्वलित मुखमण्डल और ५०० सन्तानें हैं। हारिती अपनी सन्तानोंको जीवित शिशु पकड़ कर खिलाती थी। एक दिन बुद्धमहामुद्गल-पुत्र हारितीके घर गये। उन्होंने यक्षिणीके पुत्र शिशु पिङ्गलको अपने कमण्डलुमें छिपा लिया। अपने शिशुको न देख हारिती छटपटाने लगी। अन्तमें वह सर्वज्ञ महामुद्गल-पुत्रके समीप जा कर शिशुके लिये रोने लगी। तब बुद्धने कहा,—बड़े ही आश्चर्यका विषय है, अपनी ५०० सन्तानों-के साथ वर्षमें कितनी ही मानव-सन्तानोंको खा जाती हो, तब तुम्हें जरा भी कष्ट नहीं होता, किंतु आज इतनी संतानोंके रहते हुए भी तुम्हारा एक लड़का खो गया तो तुम्हे इतना कष्ट हुआ है और तुम बार बार रो रही हो। इस समय हारितीने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं अपने इस प्रियतम पुत्रको पाऊंगी तो फिर कभी मनुष्यके शिशुको नहीं खाऊंगी। तब बौद्धने यक्षिणीके पुत्र पिङ्गलको प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा, प्रत्येक बौद्धयति तुम्हारे लिये भोजन करते समय एक एक ग्रास निकाल देंगे।

नेपाल, तिब्बत, चीन आदि स्थानोंमें बौद्धमन्दिरके दर-वाजे पर हारितीकी मूर्त्ति रहती है। इसकी पूजा करनेसे भूत-प्रेतकी कोई आशङ्का या डर नहीं रहता।

डाकिनी और मातृका।

तिब्बतीय बौद्धशास्त्रोंमें नाना नाथ (गों-पो), कई तरहकी डाकिनी (स्कृखो-मा) और माताओंका उल्लेख है। एक एक डाकिनी एक एक नाथ या डाकिनीकी स्त्री है। नाथ भी महाकालीकी एक सेनानी है। डाकिनियोंमें सिंहकी गरदनवाली डाकिनी प्रधान है। लास्या (गेग्-मो-मा), माला (प्रें-वा-मा), गीता (लुमा), नृत्या (गरमा), पुष्पा (मे-तोग-मा) धूपा, (दुग-पोसमा) दीपा (नेङ्ग-सल-मा) और गंधा (द्रिचा-मा) ये आठ माताएं हैं। इनके सिवा हयग्रीव (तम्-दिन) और महाकाल बहुत करके भूतोंका राजा कह कर पूजा जाता है। भूतोंमें प्रेत (यि-द्व-वग्), कुम्भाण्ड (ग्रुल्-बुम), पिशाच (सा-जा), भूत (ब्युं-पो), पूतना (श्रुल-पो) कटपूतना (लूस्-श्रूल-पो), उन्माद (म्यो-येद), स्कन्द (क्येम-येद्), अपस्मार (ब्रजेद-येद्), यक्ष (ग्नोव-शेन), रक्षः (स्त्रिन् पो) रेवती (नम्-ग्रु-हि-दोन्), शकुनी (व्यहि-दोन्), ब्रह्मराक्षस (ब्रम्-जेहि-स्त्रिन-पो) प्रभृति बहुतेरे अप-देवताओंके उत्पातकी बातें भी वे स्वीकार करते हैं।

सिद्ध।

इस देशमें जैसे ओझा हैं, तिब्बतमें भी उसी तरहके 'ग्रु ब्-चेन्' या सिद्ध है। यहांके ओझा उतने सम्मानकी दृष्टिसे नहीं देखे जाते हैं, किन्तु तिब्बतमें सिद्ध बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। प्रत्येक लामाके एक एक सिद्ध सहायक या सहचर रहते हैं। भूत पिशाच सिद्ध और भूतोंके साथ इनका विशेष सम्बन्ध रहनेसे लोग इनसे डरते तथा इनकी भक्ति करते हैं। अधिकांश सिद्धमूर्त्ति दिगम्बर और उनके लंबे बाल रहते हैं। अब तक जितने सिद्ध हो चुके हैं, उनमें पद्मसम्भव ही प्रधान थे। ये ही लामा मतके प्रवर्तक हैं, पद्मसम्भवके सिवा शर्वरा (सा-प-रि-पा), राहुलभद्र या शरभ (सरे-ह-पा), मत्स्योदर (लू-ई-पा), ललितवज्र, कृष्णा-चार्य या कालाचारी (नग्-पो-स्योद्-पा), तिलोपा और नारो भी प्रधान थे। तिलोपा और नारो अधिक दिनके सिद्ध नहीं। ये सब सिद्ध भूतोंके छुड़ाने तथा अलौकिक काण्ड करनेमें कुशल थे।

भौतिक नाच और चड़क।

तिब्बतके भौतिक नाचकी (Devil dance) बात बहुतोंने सुनी होगी। प्रायः यह उत्सव वर्षमें एक बार हुआ करता है। भूटान, सिकिम, लादाख, हिमिस आदि जगहों-में इस उत्सवमें लामा साथ दिया करते हैं। यह उत्सव कहीं 'लो-सि-स्कु-रिं' और कहीं चोड़ या चोड़ग नामसे प्रसिद्ध है। यह चोड़ग-उत्सव वर्षमें जब चार दिन बाकी रहते हैं, तब आरम्भ होता है। उत्सवके आरम्भमें दूर

दूरके लोग आकर इसमें सम्मिलित होते हैं। किसी बड़े मठके सामनेके मैदानमें मण्डप तय्यार होता है। तिब्बतीय लामाओंमें यही सबसे बड़ा उत्सव है। इस उत्सवका उद्देश्य यह है कि लामा इस उत्सवको करके वहांके जनसाधारणको यह दिखाते हैं कि वे भूत-पिशाचके स्वाभाविक उपद्रवोंसे बचाते रहते हैं। इस समय वे देवी, नाथ, धर्मराज, हयग्रीव, क्षेत्रपाल, महाकाल, जिनमित्र, डाकिराज आदि तरह तरहकी मूर्त्तियोंके साथ रणक्षेत्रमें अभिनय किया करते हैं। इस देशमें रामलीलाके समय तरह-तरहके नकाब मुंह पर डाल कर विकट मूर्त्ति दिखाते हैं, उसी तरह लामा भी नकाब मुंह पर डाल कर विकट मूर्त्ति बनाया करते हैं और दर्शकोंसे भय-भक्ति आकर्षित किया करते हैं। इसी चोड़ या चोड़गको भारतमें चड़क कहते हैं। बंगालमें आजकल चड़क या 'गाजन' यहांके डोम चण्डाल आदि जाति ही विशेषरूपसे गाया करती है। ये नीच जातीय होने पर भी यज्ञोपवीत धारण कर सन्यास ग्रहण कर हिन्दुओंके भी प्रियपात्र होते रहते हैं। इस चड़क उत्सवका हमारे हिन्दूशास्त्रमें कहीं जिक्र तक नहीं आया है। यह बौद्धकाण्ड है। जब यहां बौद्धोंका प्राधान्य था, तब तिब्बतीय लामाओंकी तरह इस देशके श्रमण ही यह उत्सव करते थे। क्योंकि उस समयके बौद्ध राजा इसे बड़े चावसे देखा करते थे। श्रमण रङ्ग विरङ्ग साजोंसे सुसज्जित हो तरह तरहका अभिनय किया करते थे, जैसे लामा आज कल करते हैं। यहां भी महासमारोहसे धर्मराज और महाकालकी पूजा होती थी। तिब्बतमें अब तक भी उसका नमूना विद्यमान है। यह स्पष्ट है कि बङ्गालकी चड़क पूजा या स्वांग और अन्यान्य घटनायें उसी प्राचीन बौद्ध उत्सवोंकी रही सही स्मृतिमात्र हैं। यहां चड़क-पूजामें जो कृत्य किये जाते हैं, वे सभी और पूर्णरूपसे तिब्बतमें देखे जाते हैं। यहां चड़क-पूजाके पुजारी संन्यासी भूतनाथ और भूतका रूप धारण कर नाचते कूदते हैं, किन्तु तिब्बतमें ऐसा नहीं होता। केवल निर्द्धारित उत्सवके मण्डप या पण्डालमें ही वे ऐसा कर सकते हैं। तिब्बतमें राजासे ले कर रङ्क तक अपने स्थानोंमें बैठ यह उत्सव बड़े चावसे देखा करते हैं। तिब्बतीयोंका विश्वास है कि इस उत्सवके भीषण बाजाके शब्दोंसे भूत देशसे भाग जाते हैं। यहां चड़कमें संन्यासियोंका प्रचण्ड ताण्डव नृत्य होता है। तिब्बती लोगोंमें भी यह नाच प्रचलित है। वे इसे 'मरे भूतका नाच' कहा करते हैं।*

भूतोंकी शान्ति।

हिन्दुओंके समान तिब्बत, चीन, जापान, ब्रह्म, श्याम आदि सब देशोंके बौद्ध-समाजमें भूत-शान्ति या भूतके भयसे बचनेके लिये विविध प्रकारके यन्त्र, तावीज आदि पहनते तथा व्यवहार करते हैं।

हिन्दुओंमें जैसे भूतोंके भय दूर करनेके लिये एकान्त स्थानमें या वनमें जा कर पुष्कर आदिकी शान्तिकी व्यवस्था है, उसी तरह उपर्युक्त देशोंके बौद्धोंमें भी यह बातें दिखी जाती हैं। इन सब अनुष्ठानोंमें वे हिन्दुओंकी तरह "ओं नमो तथागत अभिक्षित समय श्रीहुम् नमः चन्द्रवज्रक्रोध अमृत हुम् फट्" जैसे कितने ही तान्त्रिक मन्त्र उच्चारण करते रहते हैं।

मुसलमानोंका विश्वास।

सभी जगहके मुसलमान जिन्द या भूतोंमें विश्वास करते हैं। आबू हुरायरीकी लिखी हुई सुराईबुखारी नामक पुस्तकमें लिखा है,—ईश्वरने जैसे क्षिति और अप (जल)-से हमारी सृष्टि की है उसी तरह जिन्द भी मरिज यानी तेज और वायुसे उत्पन्न हुए हैं। जिन्द जहन्नममें रहते हैं, यह अपने इच्छानुसार हर तरहके रूप धारण कर सकते हैं, किन्तु दिखाई नहीं देते। कुछ लोग कहा करते हैं कि जिन्दोंकी देह होती है; किन्तु दिखाई नहीं देते, इसीसे वे जिन्द या अन्तर्यामी कहलाते हैं। जैसे बाबा आदम तथा हवा मानव-जातिके माता पिता हैं उसी तरह 'जान' और 'मरिजा' जिन्दोंके माता पिता हैं। स्वभाव, आकार और भाषामें जिन्द मनुष्योंसे बिलकुल पृथक् हैं। इनमें जो सत्कार्य करते हैं, वे 'जिन्द' और

* Waddell's Buddhism in Tibet. (p. 528) नामक पुस्तकमें भूतोंके नाचके चित्र देखने चाहिये।

जो सदा असत् और अन्यान्यपूर्ण कार्य करते हैं, वे 'शैतान' कहलाते हैं। जिन्द कभी मनुष्योंकी बुराई नहीं करना चाहते; किन्तु ओझाओंके मन्त्रसे मनुष्योंकी बुराई करने पर तय्यार हो जाते हैं। ये अस्थिभुक् और वायुभुक् हैं। जिन्दोंमें जो ईश्वरके अत्यन्त प्रिय हैं, वे हूरा नामसे प्रसिद्ध हैं। जानके पुत्र सुमास, सुमासके पुत्र तार्णुस, और उनके पुत्र हुलियानुस हैं। इसी हुलियानुसके पुत्रका नाम शैतान है। यह महाक्रूर तथा मानवसे द्वेष करनेवाला है।

तफ़सिर इ-बैंजावी नामक कुरानकी टीकामें और तवारीख-ई-रौजत्-उस-सफा नामक पुस्तकमें है कि शैतान जिन्दके पुत्र होने पर ईश्वरने दया कर जिब्राइल, मिकाइल, इस्राइल आदि देवदूतोंकी तरह उसे आजाइल यानी पतित देवदूतकी उपाधि प्रदान की। बाबा आदमके सामने सर नीचा न करने तथा ईश्वरकी आज्ञाको उल्लङ्घन करने पर शैतान ईबलिस् अर्थात् दयाका पात्र न बन सका। शैतान-के चार खलीफा हैं—(१) अलिकाका पुत्र मलिका, (२) जनूसका पुत्र हामूस, (३) बल्लावतका पुत्र मरलुत, (४) यासिफका पुत्र युसूफ। शैतानकी स्त्रीका नाम अब्बा है। उसके पुत्र नौ हैं,—(१) जलवायसून (२) वासिन, (३) आवान, (४) हफ्फन, (५) मरा, (६) लाकिस, (७) मसबूत, (८) दासिम, (९) दलहान।

(१) जलवायसून—अपने नौकरोंके साथ बाजारमें रहता है। बाज़ारमें जितने बुरे काम होते हैं, उसीके द्वारा होते रहते हैं। (२) वासिन—इसके द्वारा दुःख और दुश्चिन्ता परिचालित होती है। (३) आवान—राजाओंके दरबारी हैं। (४) इफ्फान—मद्यपायी लोगोंके उत्साह देनेवाला है। (५) मरा—नाच गानका नायक है। (६) लाकिस—अग्नि-पूजकोंका राजा है। (७) मसबूत—हरकारोंका मालिक है। (८) दासिम्—घरका मालिक है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह रसोई घरका मालिक है। जो बहुत दूर घूम कर घरमें आते हैं और आ कर ईश्वर (खुदा) का नाम नहीं लेते, अथवा भोजन करते समय बिस्मिल्ला नहीं कहते, यह सब दासिमकी चेष्टा है। (९) दलहान—नमाजके स्थानमें या भोज नालयमें रहता है। उत्तम काममें तरह तरहका विघ्न किया करता है।

उपर्युक्त नौ शैतान मनुष्योंके घोर शत्रु हैं। ये मनुष्योंको पापमें फँसानेकी चेष्टा किया करते हैं।

जिन्दोंका राजा मल्लिक गतसान हैं, काफपर्वत पर रहता है। [illegible] २ लाख कुटुम्बीजन रहते हैं। पश्चिमांशमें उसका दामाद अबदुल रहमन ३३००० सेवकोंके साथ राज करता है।

जिन्दोंके राजाओंकी पदवियां अलग अलग हैं। मुसलमान होनेसे 'नुस्', जैसे—तारनुस, हुलियानुस, अग्निपूजक होनेसे 'दुस', जैसे,—सिदुस; यहूदी होनेसे नास्, जैसे—जतुनास् और हिन्दू होनेसे 'तस्', जैसे—नकतस्। हिन्दू होने पर भी नकतस्ने शिस् नामक पैगम्बरके कार्यमें नियुक्त हो कर मुसलमान-धर्म ग्रहण कर लिया है।

मुसलमान जिन्द या भूतोंमें कितने ही इजाम् भी हैं। उनके नाम हैं—आबूफर्द्दा, मसूर, दरबाग, कलिस और आबूमालिक।

तफसीर इ-कबीर नामक ग्रन्थमें लिखा है,—जिन्द चार तरहके होते हैं, (१) फलकिउ—आकाशमें विचरण करनेवाला, (२) कुनबिउ (उत्तरके केन्द्रमें जिसका वास हो), (३) ब्रह्मिउ (मर्त्यलोकमें रहनेवाला) और (४) फर्दुसीड (स्वर्गवासी)।

'तफसीर-ई-नियाबिड' नामक पुस्तकमें लिखा है,—जिन्दके बारह दल होते हैं, जिनमें ६ दल रूम (टर्की) राज्य—यूनान (ग्रीस) यूरोप (फिरङ्ग) रूस, बाबल और सह्नतानदेशमें तथा (६) दल मग (काल-मकोंका देश) मगग (शाकद्वीप) तथा नौव (निउबिया), जङ्गबर (जाञ्जीबर), हिन्द (हिन्दुस्थान) और सिन्ध (सिन्धु)-प्रदेशमें वास करते हैं। इन सब जिन्दोंका रूप ९ का १० भाग हवाका और १ का १० भाग मांसका है।

मुसलमान भी भूतकी शान्तिके लिये या भूत भगानेके लिये नाना प्रकारके मंत्र, तंत्र, चक्र, कवच, तावीज, पलीता आदिका व्यवहार करते हैं। यन्त्र और चक्र आदि विविध रंगोंसे गोमयसे और कोयलेसे लिखा करते हैं। भूत लगे हुए मनुष्यको यन्त्रों या चक्रोंके बीचमें बैठा कर मन्त्र पढ़ा करते हैं। उन चक्रों तथा यन्त्रोंके चारों ओर ताड़ी और कई तरहके मद्य भी रखते हैं।

उसके चारों तरफ फल, फूल, पान, सुपारी भी रखते हैं। कुछ लोग तो एक भेड़की हत्या कर उसका मुण्ड भी उसके निकट रहते हैं। उससे निकले हुए रक्तकी धारा [illegible] हैं। उस पर दीवर रख कर अभिमन्त्रित किया हुआ पलीता जलाते हैं। कुछ लोग भेड़की जगह मुर्गी ही मारा करते हैं। जिससे यह सब काम नहीं होता, वे भूत लगे हुए आदमीके हाथमें उसके वदले दो तीन रुपये रख देते हैं, इसके वाद झाड़नेवाला अरबी मंत्र पढ़ता हुआ चित्कार किया करता तथा हाथ मांजा करता है। उस समयका अङ्ग-परिचालन देखने लायक होता है।

मंत्र—"आजमतो आलेकुम, फथनु फथनु, हव्विवायका, हव्विवायका आलमीन आलमीन, सक्किका, आकाइसन् आकाइसन, वल्लिसन् वलिसन्, तलिसन् तलिसन्, सुरदन सुरदन, कहलन कहलन, महलन् महलन्, सखिवन् सखिवन्, सदिदन् सदियन्, नविथन् नविथन्, वायहके खातिमाइ सुलेमान विन दाऊद (आली हिम् मुस् सलम) ओभायरू, मिन् जानायविल, मसारायकाय, वल्मगराय वायवो मिन् जानेविल इ, मन्ने वल् इ सर रो।'

अन्तमें झाड़नेवाला रोगीसे पूछता है कि तुमको कोई नशा तथा अङ्गका टूटना होता है या नहीं? सरमें दर्द या मनमें किसी तरहका भय सञ्चार तो नहीं होता या पीछेसे उसका सर पकड़ कर कोई दूसरा तो नहीं हिलाता? भूत लगे मनुष्यकी अवस्था देख कर ओझा जान जाते हैं, कि भूतने शरीर छोड़ा या नहीं। मनुष्योंके शरीरमें भूत डाला जाता तथा शरीरसे भूत भगाया भी जाता है। अरबी और फारसी तथा हिन्दीमें लिखे विविध प्रकारके ग्रंथोंमें भूत भगानेके लिये मन्त्र मुसलमान ओझाओंके पास हैं। ये इनसे सीखे भी जा सकते हैं।

कुछ शैतान ऐसे हैं जो मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करने पर उसके शरीरको दो एक सप्ताहके लिये अचल या गुमसुम बना देते हैं। वह उस समय कोई बात ही नहीं करता। किसीके साथ बातचीत नहीं करता। ऐसे भूतको पकड़नेके लिये ओझा कुरानमेंसे—"इन्नूमा आमराहु, इजा आरादशैम अन् इउ कुल्ला लहु कुन्-फुई आयकुना क सुभान ल्लजी वे एउद्दे हिल् मल्लकुतो कुल्ल शैन व इल्लउ तुर्जायना" यह आयत तीन वार पढ़ता है।

कभी कभी मुसलमान ओझे भूत लगनेवाले व्यक्तिके कानमें यह कहते हैं—"या सम्मिओ तस्मम्माता विस् सम्मे वस् सम्मे कि सम्मे सभूका या सम्मिओ" यह मन्त्र जोरोंसे फूंकते हैं।

जब भूत अच्छी तरह आसन जमा कर बैठ जाता है, तब उस भूताविष्ट व्यक्तिका रूप प्रचण्ड हो जाता है। कभी वड़ा पलीता ले कर चिराग जलाता, कभी जलते हुए पलीतेको मुंहमें डाल कर बुझा देता है। कोई तो मुर्गीका शरीर दांतोंसे काट कर ताजा रक्त पीता है। जब वह अर्थशून्य वातें वकता रहता है, तब ओझा उस भूतका नाम, निशान, धाम, वंधा या खुला, और कब वह जाना चाहता है तथा उस व्यक्तिके शरीरको वह क्या करना चाहता है, इत्यादि बातें पूछ लेता है। भूत यदि उचित उत्तर दे तो अच्छा ही है, उत्तर नहीं देने पर ओझा जोर जोरसे मन्त्र पढ़ने लगता है। उसे मारता भी है। अन्तमें भूत सभी बातें उचितरूपसे बतानेको बाध्य होता है। भूतको पहचान लेने पर ओझा वारंवार यह पूछने लगता है, कि तुम क्या ले कर यहांसे जाओगे। इस पर भूत जो चीज मांगता है, उसको एक वरतनमें रख उस वरतनको ओझा मन्त्र पढ़ कर भूत लगे हुए मनुष्यके शरीर पर फेरता है। इसके बाद उस चीजको किसी वृक्षके नीचे तथा नदी किनारे ले जा कर प्रेतके लिये गाड़ देते हैं या ब्राह्मणों वा याचकोंको दे देते हैं।

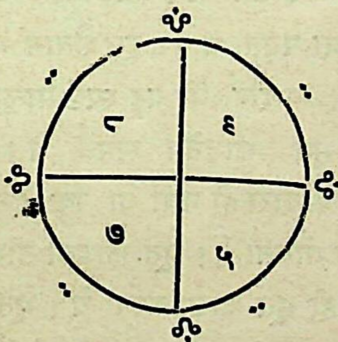
इस पर ओझा भूतको भाग जानेको कहता है और कहता है, कि तुम यहांसे चले जाओ और फटे जूते तथा सर पर पत्थर ले जाओ। इत्यादि।

इसी समय वह मनुष्य जिसको भूत लगा रहता है। वह वड़े जोरोंसे भागता है। कभी कभी तो ४ या ५ मनका पत्थर ले कर भागता है और जब कहीं गिर पड़ता है, तब भूत उसके शरीरसे निकल जाता है। किन्तु ओझा उसकी चोटी पकड़े हुए उसके साथ ही जाता है और जब वह गिर जता है, तब छोड़ता है। गिरते ही प्रायः वह मनुष्य बेहोश हो जाता है। इस

समय ओझा कुरानकी "आयत उल कुरसी" इत्यादि पढ़ता है। इसके साथ ही लोहेका चिमटा या गज जमीनमें ठोंकता रहता है। ज्यों हो यह मनुष्य जमीन पर गिरता है त्यों ही [illegible] एक वोतलमें वन्द कर देते हैं। लोगोंका विश्वास है कि ऐसा करनेसे भूत सदाके लिये कैद हो जाता है। पीछे वोतलको मट्टीमें गाड़ देते हैं। ऐसा करनेसे भूत फिर नहीं आता।

भूतके चले जाने पर वह मनुष्य होश संभालता है। इसके वाद उसका मुंह और आंखें अच्छी तरह धुलवा दी जाती हैं। फिर ओझा "आत्मख् आतमख् तन्माख तन्माख, तर्सिहिं कल कस्मसे कानहु जस्माल-लातिन् सफरिन् ओटिक ओटिक" यह मन्त्र तीन वार पढ़ता है फिर "लाहोवल वो लाकुव्‌-वता इल्ला विल्ला हिल् आलि उल् आजिम्" इस मन्त्रसे पानी पढ़ कर पीनेको देते हैं। यह जल पीते ही वह मनुष्य कुछ स्वस्थ होता है। इसके वाद उसकी वांहमें या गलेमें भूत-शान्तिका तावीज या कवच वांध दिया जाता है।* मुसलमान जिस तरहके मन्त्र और चक्रका व्यवहार करते हैं, उनका चित्र नीचे दिया जाता है,—

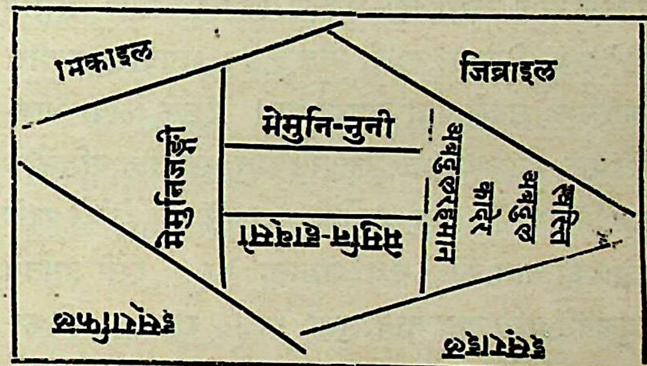
भौतिक चक्र।



भूत नष्ट करनेवाला यन्त्र।

२	४	६	८
८	६	४	२
४	२	८	६
६	८	२	४

दूसरा एक चक्र।



भूताविष्ट शब्दमें चक्र देखो।

पाश्चात्य देश-वासियोंका विश्वास।

प्राचीनकालमें यूनानी तथा रूमी लोग जगत्‌के अन्यान्य लोगोंकी तरह जिन्द और शैतानमें विश्वास करते थे। इन लोगोंका यही विश्वास था कि जिन्द या देवग्रहगण मनुष्यका मङ्गल और भूत प्रेत या शैतान मनुष्योंका अनिष्ट या बुराई करते रहते हैं।

सुग्रह।—मुसलमानोंके यहां जिन्द, यूनानियों और यहूदिओंके यहां एञ्जिल या देवदूत कह कर पुकारे जाते हैं। यहूदियोंके तालमूद नामक प्रधान धर्मशास्त्रमें लिखा है कि नित्य ही एञ्जिलकी पैदाइश होती है और उत्पन्न होते ही वे भगवान्‌का गुण गान कर अपनी इहलीला संवरण कर देते हैं। फिर कहीं कहींके एञ्जिल जड़जोव और विराट्‌काय हैं। और तो क्या, सौ वर्षमें जितना लम्वा

* तफसीर-इ-कवीर, जवाहर-इ-खमसा, सुराई-बुखारी आदि ग्रंथोंमें विशेष विवरण देख सकते हैं।

सफर किया जायगा, किसी किसी फरिश्तेका उतना ही लम्बा शरीर है। कोई जलसे, कोई हवासे, कोई अग्निसे उत्पन्न हुआ है। यहूदियोंके धर्म-ग्रंथमें लिखा है कि [illegible] उत्पन्न किया था। दूसरे लोगोंका कहना है कि सृष्टिके पांच दिन बाद फरिश्तेकी पैदाइश हुई। सृष्टिके कार्यमें किसीने भगवान्को सलाह दी थी और किसीने मना भी किया था। बाइबिलमें लिखा है, भगवान्के मुंहसे निकले हुए प्रत्येक शब्दसे एक फरिश्ता उत्पन्न हुआ था। (Psalm *XXXIII* 6,)

रावियोंके ग्रन्थमें सत्तर फरिश्तोंका उल्लेख है ; बावल नगरके बनाते समय ये ७० फरिश्ते ७० जातियोंके इष्ट-देवताके नामसे विख्यात हुए थे। इनमें कितने ही ज्योतिःमय देव-दूत हैं और कितने ही काले-कलूटे पिशाच। जगत्के सारे पदार्थ, तृण आदिमें एक एक फरिश्ता 'मासाल-इष्ट-देव या क्षेत्रपाल-रूपसे मौजूद है। भगवान्ने इनमेंसे इस्राइलको सबसे बड़ा बनाया था। इसके सिवा आकतरी-एल, मेतात्रोन और सौदालकोन इन तीन फरिश्तोंके नाम मिलते हैं। हिब्रु जातिके बाबुलमें कैद होनेसे पहले फरिश्तेका नाम कोई नहीं जानता था। इसी जातिमें बाबुलनमें फरिश्तेका नाम सुना था। रफायल, मिकायल, जबरियल और उरिमल, इन कई फरिश्तोंके नाम उनकी पुस्तकोंमें मिलते हैं। बाइबिलके नये विधानमें सिर्फ मेकायल और जबरियलकी बात विशेष-रूपसे वर्णित है।

यूरोपवासी अब फरिश्ता शब्दसे ईश्वर-दूतका अनुमान करते हैं, किन्तु प्राचीन यूनानी तथा रूमी जिन्द और अपदेवता समझते थे।

बाइबिलमें लिखा है कि पहले फरिश्ते प्रायः सभी सच्चरित्र और इमानदार थे। उस समय वे ईश्वरके साथ स्वर्गमें रहते थे। किन्तु पीछे लोग लोभ और मोहके वशवर्त्ती हो कर पापके भागी हुए। साथ ही स्वर्गसे भी पतित हुए। साधु-स्वभाव सदाके लिये विलुप्त हुआ। भयानक भाव धारण कर पापपङ्कमें लिप्त हुए। वे सब पापको पुण्य और पुण्यको पाप समझने लगे। हिंसा, द्वेष, पापप्रवृत्ति भयङ्कर कोपने उनके हृदय साम्राज्य पर अधिकार किया। इसीलिये बाइबेलमें वे 'Evil angel" वा "Unclean spirit" कहे गये हैं। इनके मालिक शैतान हैं। वे सब मनुष्य-शरीर पर अपनी शक्तिका दुरुपयोग किया करते हैं। बाइबिलमें यह भी लिखा है, कि शैतान भूतोंके नाश करनेके लिये ही ईशाका जन्म हुआ था।

यहूदियोंके धर्म-ग्रन्थ तालमुदमें यह लिखा है,—"इन भूतोंके उत्पातके मारे कोई मनुष्य टिक नहीं सकता। मनुष्य संख्यासे उनकी संख्या अत्यधिक है। जैसे कि खेत या बागके चारों ओर कांटा और झाड़ियोंसे घेर दिया जाता है, उसी तरह मानव समाजके चारों ओर भूतोंका वास रहता है। यदि आप भूतलीला देखना चाहते हैं, तो कुम्हारके आवेकी राख चालनीसे अपने विछौनेके चारों ओर छीट रखिये। सवेरे उठ कर आप देखेंगे कि उस पर कुत्तेका पद-चिन्ह अङ्कित हुआ है। यदि आप अपनी आंखोंसे भूत देखना चाहते हैं तो काली बिल्लीकी जरायु लेकर आगमें जला दिजिये, पीछे उसको पीस कर उसका किञ्चिन्मात्र आंखमें लगा दीजिये, फिर आपको अनायास ही भूत दिखाई देगा।

भूत झाड़ना।

पहले यूरोपकी प्रायः सारी जातियां भूत मानती तथा भूत झड़वाया करती थीं। रूमियों तथा यूनानियोंके पादड़ियोंमें भूत छुड़ानेका गुण अब भी दिखाई देता है। पहले किसी व्यक्तिको खृष्टीय-धर्मकी दीक्षा देते समय वहांके पोप भूत झाड़ लेते थे। दीक्षा ग्रहण करनेवालेको यह स्वीकार करना पड़ता था कि हम शैतान भूत पिशाचको नहीं मानते। बाइबिलमें यह स्पष्ट मालूम होता है कि ईसामसीह भूत झाड़नेमें समर्थ थे। और तो क्या, लोगोंको विश्वास हो गया था कि ईसामसीहका नाम लेते ही भूत भागता है। भूत झाड़ना तीसरी शताब्दी तक था। पादरी ही भूत झाड़ा करते थे। भूत झड़वानेके पहले और पीछे भूत लगे हुए मनुष्यको कई नियमोंका पालन करना पड़ता था। जैसे—उपवास स्तोत्रपाठ, घुटने टेक कर प्रणाम करना, सर पर हाथ फेरना, जूता खुलवाना, कपड़े बदलवाना, पश्चिम-मुख बैठना, त्रितयका Trinity नाम ले कर दीक्षा लेनेवाले व्यक्तिके माथे पर दो तीन बार फूंक मारना। ईसामसीहके जन्मके पहलेसे

तीसरी शताब्दी तक पादरी या पूजारी ही भूत झाड़ते थे। ई० ३री शताब्दीके बाद इस कार्यके लिये अलग कर्म-चारी नियुक्त किये गये। रोमो खृष्टानोंकी आनुष्ठानिक पद्धतिमें (Rituale Romanum) प्रायः तीस पन्नोंमें भूत छुड़ानेकी प्रक्रिया लिखी है। पागलपन और भूता-वेशमें कुछ प्रभेद है। इसके बारेमें पद्धति-ग्रन्थमें इस तरह लिखा है,—

'जिसको भूत लगता है, वह अंटसंट बकता, और सब समझता है। जो अद्भुत बात मनुष्य नहीं जानता वह उसके मुंहसे निकल पडती है। जब उपर्युक्त चिह्न दिखाई दे, तो समझना चाहिये कि भूतका अंश जरूर है।' इस देशमें जैसे ओझा, मुसलमानोंमें सयने, तिब्ब-तियोंमें सिद्ध भूत झाड़ते हैं, वैसे ही रोम-साम्राज्यके खृष्टानोंमें Exorcist भूत उतारनेका काम करते हैं। हमारे देशकी तरह वहां भी भूतका नाम धाम आदि पूछते हैं। भूत झाड़नेके लिये गिरजेके एक कोनेमें उसे घुटने टेक कर बैठनेको कहते हैं और क्रूशसे झाड़ते हैं। इसके बाद उसके माथे पर पवित्र जलका छींटा दिया जाता है। इसके बाद तरह तरहके मन्त्र स्तोत्र पाठ किया करते हैं। पीछे भूतका नाम पूछते हैं। इसके बाद भूत छुड़ानेका मन्त्र पढते हैं, जिसका तात्पर्य इस तरह है—

"*I* exorcise thee, unclean spirit, in the name of Jesus Christ, tremble, *O* Satan thou enemy of the faith, thou foe of mankind. who has brought death into the world ; who hast deprived men of life, and hast rebelled against Justice ; thou seducer of mankind, thou root of all evil, thou source of avarice. discord and envy"

यदि इन सब बातोंसे भी भूत भागना नहीं चाहता, तो झाड़नेवाले भूतोंके प्रति कठोरता आरंभ करते हैं और भयङ्कर आवाजके साथ क्रूशसे मारते हैं। इस तरह तीन चार घण्टे भूत उतारनेमें लग जाते हैं। किन्तु अन्तमें भूत भाग जाता है।

हिन्दुओंमें जैसे ओझा जलको मन्त्रपूत कर उससे देह बांधते, घर बांधते तथा स्थान बांधते हैं, रोमी भी वैसे हो किया करते हैं। भूत छुड़ानेके समय वे पेटर नाष्टर (Pater *N*oster) और आवेमरिया (Ave *Maria*)-का नाम लिया करते हैं।

यूनानी दूसरी तरहसे भूत झाड़ते हैं। जिस मनुष्य-को भूत लगता है, उसको यूनानी एक खूंटेसे बांध देते हैं। गिर्जाकी पोशाक पहन कर कई याजक उसके पास पहुंचते हैं। प्राय छः घण्टे तक वे बाइबिलके अंश (Gospels) पढ़ते रहते हैं। इनको एक दिन पहले उपवास करना पड़ता है। दूसरे दिन भी उपवासी हो कर भूत झाड़ना पड़ता है। तीसरे दिन यह पाठ खतम होता है। पाठ करते समय भूताविष्ट मनुष्य भग-वान्‌को मानव जाति पर क्रोध प्रकट कर तरह तरहकी बेहूदी बातें बोला करता है; किन्तु भूत झाड़नेवाले इस-की जरा भी परवाह नहीं करते। जब पाठ करते हैं, तब यह बड़ी विशुद्धता रखते हैं, उच्चारणमें एक भी भूल नहीं हो सकती। पाठ खतम होने पर शुद्धाचारी गुणी याजक आ कर बासिल (St *Basil*) नामक एक सिद्धका मन्त्रपाठ सुन भूत चकित हो जाता है। उस समय झाड़नेवाला भूतको कठोरताके साथ गाली दिया करता है। भयभीत हो कर भूतको भागना पड़ता है। भूतके छोड़ते ही वह मनुष्य बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ता है।

अब भी रोमी ओझा दिखाई देते हैं। प्रत्येक समाज-में एक एक ओझा एक एक कर्मचारीकी तरह नियत किये गये हैं

उपसंहार।

ऊपर सभ्य-समाजका विश्वास और अनुष्ठान लिखा गया है। किन्तु सभ्य-समाजकी अपेक्षा असभ्य जंगली जातियोंमें ही भूतका भय अत्यधिक है। भूतोंके भयसे बचनेके लिये वे तरह तरहके उपाय किया करते हैं। इस देशमें भूतचतुर्दशीके दिन भूत निवारण और भूत भगाने के लिये अपामार्गकी शाखाका चारों ओर घुमाना और चौदह तरहके शाकका भक्षण करना, आग जला कर गांवका प्रदक्षिणा करना आदि जैसी शास्त्रीय बातें दिखाई देती हैं, वैसी दक्षिणकी असभ्य जातियोंमें भी है। एक दिन

कुछ लोग एकत्र हो कर संध्या समय आग जला कर बड़ा कोलाहल कर भूत भगाया करते हैं।

कोल, भील आदि शब्दोंमें असभ्य जातिका विश्वास देखना चाहिये।

भौतिकसृष्टि (सं० स्त्री०) आठ प्रकारकी देवयोनि, पांच प्रकारकी तिर्यग्योनि और मनुष्ययोनि, इन सबकी सृष्टि।

भौती (सं० स्त्री०) भूतानां भूतयोनीनामियमिति भूत-अण्, ङीप्, तस्यां भूतानामधिकारित्वविद्यमानत्वात्तथात्वं। रात्रि।

भौंतो (हिं० स्त्री०) एक बालिश्त लंबी और पतली लकड़ी जिसकी सहायतासे तानेका चरखा घुमाते हैं।

भौत्य (सं० पु०) भूतेरपत्यं पुमान्, भूति-अपत्यार्थे ष्यञ्। भूतिमुनिकेपुत्र, चौदहवें मनु।

भूति मुनिके औरससे भौत्य नामक मनु पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। इस मन्वन्तरमें चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक ये पांच देवगण आविर्भूत होंगे। शुचिको इस मन्वन्तरमें इन्द्रत्व-पद प्राप्त होगा। वे अन्यान्य इन्द्रोंकी तरह सभी गुणोंसे अलंकृत थे। अग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधवशत्रु और अजित ये सात सप्तर्षि तथा गुरु, गभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, स्त्रीमानी, प्रवीर, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी और सुबल, ये उनके पुत्र हैं। (मार्कण्डेयपु० १०० अ०) मनु देखो।

भौनकवि—नरहरिवंशी एक वन्दी। इनका जन्म-सम्वत् १८८१में हुआ था। वेती जिला रायबरेलीमें इनका वासस्थान था। ये महान् कवि शृङ्गाररसके वर्णनमें बड़े सत्कवि और सिद्धहस्त लेखक थे। इनका 'शृङ्गाररत्नाकर' ग्रंथ अत्युत्तम है। दयाल-कवि इन्हींके पुत्र थे।

भौम (सं० पु०) भूमेरपत्यं भूमि-शिवादित्वात् अण्। १ मङ्गलग्रह। २ नरकराज। ३ अम्बर। ४ रक्तपुनर्णवा। ५ आसनभेद। ६ वह केतु या पुच्छल तारा जो दिव्य और अन्तरिक्षके परे हो। (त्रि०) ७ भूमिसम्बन्धी, भूमिका। ८ भूमिसे उत्पन्न।

भौमदेव (सं० पु०) ललितविस्तरके अनुसार प्राचीनकालकी एक प्रकारकी लिपि।

भौमचार (सं० त्रि०) ज्योतिषोक्त मङ्गलग्रहका सञ्चार विशेष। मानव-प्रकृतिमें जो सब परिवर्त्तन होता है वह मङ्गलके प्रकोपसे ही होता है।

भौमजल (सं० क्ली०) भूमि-अण्, भौमं जलं। भूमिसम्बन्धी जल।

भौमजल तीन प्रकारका है,—जाङ्गल, आनूप और साधारण। जो देश अल्प जल और अल्प वृक्षसे भरा है और जहां रक्तपित्तका प्रकोप है, उसे जाङ्गलदेश और वहांके जलको जाङ्गलजल; जिस देशमें जल बहुत मिलता, जहां वृक्ष भी काफी हैं और जहां अकसर वातश्लेष्म रोगका प्रकोप देखा जाता है उसे आनूपदेश और वहांके जलको आनूपजल तथा जहां आनूप और जाङ्गल दोनों ही देशके लक्षण दिखाई देते हैं उसे साधारण देश और वहांके जलको साधारण जल कहते हैं।

जाङ्गलजल—रूक्ष, लवणरस, लघु, पित्तघ्न, अग्निवर्द्धक कफकारक, हितकर और अनेक प्रकारके विकारका उत्पादक है। आनूपजल—अभिष्यन्दी, मधुररस, स्निग्ध, गाढ़, गुरु, अग्निवर्द्धक, कफकारक, हृदयग्राही और बहुविकारजनक है। साधारण जल—मधुररस, अग्निप्रदीपक, शीतल, लघु, तृप्तिकारक, रुचिकर और पिपासा, दाह तथा त्रिदोषनाशक माना गया है।

भौमन (सं० पु०) आदिसर्गे भवतीति भू-कर्त्तरि मन्, भूमा ब्रह्मा, तस्यापत्यं अण्; मनन्तत्वात् न टेर्लोपः। विश्वकर्मा।

भौमपाल—ग्वालियरके कच्छवाह-वंशीय एक राजा।

भौमप्रदोष (सं० पु०) वह प्रदोष जो मङ्गलवारको पड़े। इस प्रदोषका माहात्म्य साधारण प्रदोषको अपेक्षा कुछ विशेष माना जाता है।

भौमरत्न (सं० क्ली०) भूमौ जातं, भूमि-अण्, तादृशं रत्नं। प्रवाल, मूंगा।

भौमराशि (सं० स्त्री०) मेष और वृषकी राशियां।

भौमवती (सं० स्त्री०) भौमासुरकी स्त्रीका नाम।

भौमवार (सं० स्त्री०) मङ्गलवार।

भौमासुर (सं० पु०) नरकासुर नामका असुर। नरकासुर देखो।

भौमिक (सं० त्रि०) भूमिमधिकरोतीति यः भूमि-ठन्। १ भूम्याधिकारी; जमींदार। २ भूमिस्थित। ३ भूमिसम्बन्धीय।

भौमी (सं० स्त्री०) भूम्यां जाता भूमि-अण्, स्त्रीत्वात् ङीष्। सीता।

भौमेन्द्रपाल—ग्वालियरके कच्छवाहवंशीय एक राजा।

भौर (सं० पु०) भूरिका गोत्रापत्य।

भौरिक (सं० पु०) भूरिसुवर्णमधिकरोतीति ठक्। कनकाध्यक्ष।

भौरिकि (सं० पु० स्त्री०) भूरिकस्य ऋषेरपत्यमिञ्। भूरिक ऋषिका गोत्रापत्य।

भौरिकादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्दगण, यथा— भौरिकि, भौलिकि, चौपयत, चेटयत, काणेय, वाणिजक, वालिकाज्य, सैकयत, वैकयत।

भौलिकि (सं० पु० स्त्री०) भौरिकि वाहुलकात् रस्य ल। भौरिकि देखो।

भौलिङ्ग (सं० पु० स्त्री०) भूलिङ्गस्य खगभेदस्यापत्यं अण्। १ भूलिङ्ग खगापत्य। २ राजपूतानाके अरावली पर्वत और मरुभूमि-मध्यवर्त्ती स्थानभेद।

भौलिया (हिं० स्त्री०) वजरेकी तरहकी पर उससे कुछ छोटी एक प्रकारकी नाव जो ऊपरसे ढकी रहती है।

भौवन (सं० त्रि०) भुवन-सम्बन्धीय।

भौवनायन (सं० पु०) भुवनका गोत्रापत्य।

भौवादिक (सं० पु०) भ्वादौ गते पठितः ठक्। भ्वादिगणमें पठित धातु।

भौवायन (सं० त्रि०) भुव नामक अग्निका अपत्य।

भौसा (हिं० पु०) १ भीड़भाड़, जनसमूह। २ हो हुल्लड़, गड़वड़।

भ्रंगारी (हिं० पु०) झींगुर।

भ्रंगी (हिं० पु०) एक प्रकारका गुंजार करनेवाला पतिंगा।

भ्रंश (सं० पु०) भ्रन्श-भावे घञ्। १ अधःपतन, नीचे गिरना। २ नाश, ध्वंस। ३ भागना। (त्रि०) ४ भ्रष्ट, खराव।

भ्रंशकला (सं० अव्य०) हिंसा।

भ्रंशथु (सं० पु०) भ्रंश अथुच्। भ्रंश, अधःपतन।

भ्रंशन (सं० त्रि०) अधःपतन।

भ्रंशिन् (सं० त्रि०) भ्रंश-इनि। भ्रंशयुक्त, नाशविशिष्ट।

भ्रकुंश (सं० पु०) भ्रुवा कुंसो भाषणं यस्य, पृषोदरादित्वात् साधुः। स्त्री-वेशधारी नर्त्तकपुरुष, वह नाचनेवाला पुरुष जो स्त्रीका वेष धर कर नाचता हो।

भ्रकुंस (सं० पु०) भ्रुवा कुंसो भाषणं शोभा यस्य वासः; "भ्रकुंसादिनामकारो भवतीति वक्तव्य" इति वार्त्तिकोक्त्या उकारस्यात्वं। स्त्रीवेशधारी नर्त्तकपुरुष। पर्याय—भ्रुकुंस, भ्रूकुंश, भ्रूकुंश, भ्रकुंश।

भ्रकुटि (सं० स्त्री०) भ्रुवोः कुटिः कौटिल्यं "भ्रुकुंसादीनामकारो भवतीति वक्तव्यं" इति वार्त्तिकोक्त्या उकारस्यात्वं। १ क्रोधादि द्वारा भ्रूका कौटिल्य, क्रोधके मारे भौंहका सिकुड़ना। २ भृकुटी, भौंह।

भ्रत (हिं० पु०) दास, सेवक।

भद्रु (हिं० पु०) हाथी।

भ्रम (सं० पु०) भ्रमु अनवस्थाने इति घः। १ मिथ्याज्ञान। पर्याय—भ्रान्ति, मिथ्यामति। (अमर)

न्याय मतसे अप्रमादोषका नाम भ्रम है। एक प्रकारकी वस्तुमें दूसरी तरहकी वस्तुका ज्ञान होना भ्रम कहलाता है। जिसमें जो गुणदोष नहीं हैं और उसमें उन गुणदोषोंका देखना ही भ्रम कहलाता है। जैसे, पण्डितको मूर्ख और पाखण्डीको विद्वान् जान लेना। रस्सीको सांप और सांपको रस्सी समझ लेना भ्रम है।

दर्शन आदि शास्त्रोंमें भ्रमकी उत्पत्ति तथा निवृत्तिका कारण और अवान्तरभेदका भी निर्णय किया गया है। सांख्य और वेदान्तका कहना है,—भ्रमज्ञान स्वयं मिथ्या है, परन्तु उसका फल सत्य है। जैसे,—रस्सीमें सर्पज्ञान होनेसे भय और शरीर कम्पित हो जाता है, तृष्णातुर मनुष्य मृगतृष्णाके भ्रममें पड़ कर इधर उधर दौड़ा करता है। यद्यपि भ्रममात्र ही असद्वस्तु-अवगाही है, तथापि उसका कुछ न कुछ फल अवश्य है। अर्थात् इससे जीवके निवृत्ति प्रवृति उत्पन्न होती रहती है। खोजने पर पता लगता है कि भ्रमके भिन्न-भिन्न प्रभाव हैं और फल भी पृथक् पृथक् हैं। यह जान कर शास्त्रकारोंने भ्रमज्ञानकी कई श्रेणियोंकी कल्पनायें की हैं। पहले सोपाधिक और निरुपाधिक इसके दो प्रकार हैं, इसके वाद संवादी, विसंपवादी, आहार्य और औपाधिक तथा आहार्य्य ये चार प्रकार बताये गये हैं।

सोपाधिकभ्रम।—यदि दो या इससे अधिक वस्तु एक जगह रहती हो, और एक जगह रहनेसे एक वस्तुका गुण या रंग दूसरी वस्तुमें आ गया हो, तो जिस वस्तुका गुण दूसरी वस्तुमें आया है, उस वस्तुको उपाधि और जिसमें गुण आया हो, उसको उपहित कहते हैं। जब 'उपर्युक्त प्रकारसे उपाधिके संगसे एक तरहके स्वभावकी वस्तुमें दूसरी तरहका स्वभाव दिखाई दे, तो उसे सोपाधिकभ्रम जानना होगा। जैसे—स्फटिकका स्वभाव स्वच्छ है और रंग सादा है, किन्तु कभी कभी रंगीन चीजोंके साथ रहनेसे यह लोहित तथा पीले रंगकी दिखाई देता है। स्फटिकमें रक्तवर्णकी प्रतीति सोपाधिकभ्रम है।

निरुपाधिकभ्रम।—जब किसी तरहसे भी मिश्रित होनेकी सम्भावना नहीं है फिर भी एक वस्तुका अन्य वस्तु हो जाना निरुपाधिभ्रम कहा जाता है। जैसे नीला-आकाश है, किन्तु इसका कोई रंग नहीं; फिर भी यह गाढ़ा नीला दिखाई देता है। आकाशका नील रंग होनेका जो भ्रम होता है, वह निरुपाधिभ्रम है।

संवादी और विसंवादीभ्रम।—यह जानी हुई बात है कि जिसको किसी बातका भ्रम हो गया है, उसको उस बातमें कोई सफलता नहीं मिल सकती। किन्तु कभी कभी भ्रमज्ञानसे भी फल होता है। जिस भ्रमज्ञानसे कुछ फल होता है, उस भ्रमका नाम संवादी है और जिस भ्रमसे कुछ फल नहीं होता उसे विसंवादी कहते हैं। प्रायः लोगोंको विसंवादीभ्रम ही अधिक होता है। विसंवादीभ्रम कभी कभी हुआ करता है।

मान लो, किसी एक मनुष्यको दूरसे कुहासेको देख कर धूएंका भ्रम हो गया। इसके बाद उसको यह ज्ञान हुआ कि जहां धूआं है वहां अग्निका होना आवश्यक है, क्योंकि बिना अग्निके धुआं दिखाई ही नहीं देता। यह समझ अग्निके लिये वहां गया और वहां धूआं न होने पर भी अग्नि प्राप्त हो जाय, तो उस मनुष्यको जो भ्रम हुआ वह संवादीभ्रम है। यदि वहां अग्नि नहीं मिलती तो उस भ्रमको विसंवादीभ्रम कहते। यही भ्रम अधिक हुआ करता है। अथवा दो मनुष्योंको दो प्रकाश देख कर एकको दीपका, दूसरेको मणिका भ्रम हुआ। जब वे लेने गये तो जिसको मणिका भ्रम हुआ उसे मणि मिल जाय, तो संवादीभ्रम और दूसरेको विसंवादीभ्रम हुआ समझो।

"दूरे प्रभाद्वयं दृष्ट्वा मणि बुद्ध्याभिधावतोः।
प्रभायां मणिबुद्धिस्तु मिथ्याज्ञानं द्वयोरपि॥
न लभ्यते मणिर्दीपप्रभां प्रत्याभिधावता।
प्रभायां धावताऽवश्यं लभ्यते च मणिर्मणेः॥"

आहार्य और औपाधिक आहार्यभ्रम।—चेष्टा करके एक तरहकी वस्तुओंमें दूसरी वस्तुओंका ज्ञान सम्पादन करना आहार्यभ्रम कहलाता है। यदि उपाधि अवलम्बनसे यह कार्य सम्पादित किया गया हो तो वह उपाधिक आहार्य-भ्रम होगा। चन्द्र एक वस्तु है; किन्तु आंखको उंगलीसे कुछ बन्द करके देखनेसे कई दिखाई देते हैं। छोटी वस्तुको मेग्निफाइङ्ग (Magnifing glass)-से देखने पर बड़े आकारमें देख सकते हो या बड़ी वस्तुको कांच द्वारा छोटी देखना आहार्यभ्रम कहलायेगा।

ऐन्द्रियिकज्ञान हो या यौक्तिकज्ञान, चाहे औपदेशिकज्ञान हो, सभी ज्ञानोंके भीतर कहे गये सैकड़ों भ्रम छिपे पड़े हुए हैं। जितने दिन तक यह भ्रम मिट नहीं जाते तब तक मोक्षकी आशा करना मृगतृष्णाके समान है।

भ्रम उत्पन्न होनेका कारण और उसके निवारणका उपाय—भ्रमोत्पत्तिके तीन कारण हैं, दोष, सम्प्रयोग और संस्कार। इनमें दोष कई तरहके हैं निमित्तगत कालगत और देशगत। इन्द्रियें जो प्रत्यक्षकी जननी हैं, उनमें दोष हो जाना, यह निमित्तगत दोष है। नेत्र प्रत्यक्ष देखनेवाले हैं। उन नेत्रोंमें यदि पित्तदोष उत्पन्न हो, तो अधिक उजली वस्तु भी पीली दिखाई देती है। सन्ध्या समयमें धुंधलापन देखना काल-दोष और दूरका निकट तथा निकटका दूर देखना देश-गत दोष है।

सम्प्रयोग।—सम्प्रयोग शब्दका अर्थ यहां ऐसा समझना होगा कि जिस वस्तुमें भ्रम पैदा हो, उस वस्तुका समूचा न दिखाई देना अर्थात् उसके किञ्चितांश पर ही प्रकाश पड़ना।

संस्कार।—संस्कार शब्दसे यहां सदृश वस्तुका स्मरण

समझना होगा। किसी मतमें ऐसा कहा गया है, कि संस्कारके बदले सादृश्य ही भ्रमोत्पत्तिका कारण है। उस मतका अभिप्राय यह है कि जो वस्तु दूसरी वस्तुसे मिलती-जुलती नहीं यानी दूसरी वस्तुसे सादृश्य न होने पर किसी वस्तुमें भ्रम उत्पन्न नहीं होता। रस्सीमें सर्पका भ्रम होता है; किन्तु किसी चौकोन वस्तुमें सर्पका भ्रम नहीं हो सकता। अतएव यह निश्चय है कि किसी सादृश्यवान् वस्तुमें ही दोष या सम्प्रयोगवश भ्रम उत्पन्न होता है।

एक जगह बहुत लोग एकत्र हैं, सन्ध्या समीप है, ऐसे समय उनमें एकाएक मनुष्य 'वह चांदी है' कह कर वहांसे दौड़ा। अन्यान्य मनुष्योंने देखा कि जिस चीजके लिये वह मनुष्य दौड़ा है, वह चांदी नहीं वरन् सीपका टुकड़ा है। उसकी चमकसे ही उस दौड़े हुए मनुष्यको चांदीका भ्रम हुआ है। उस व्यक्तिके चांदीके भ्रमकी तरह अन्यान्य पदार्थोंमें भ्रमकी बात समझना चाहिये। जिस समय सीपके टुकड़ेमें चांदीका भ्रम हुआ था, उस समय उसके समुदितज्ञान बिलकुल न था। पहले सीपके टुकड़ेमें दृष्टि निक्षेपके बाद किसी वस्तुके आकारका ज्ञान, उसके बाद चांदीका ज्ञान हुआ। उसमें 'वह' इत्याकारका ज्ञान तथा उसके अनुरूप वाक्य और उसकी संलग्नताके रूपमें चांदीका ज्ञान या उसके अनुरूप वाक्य एक अभिन्न संसर्गसे उत्पन्न हुआ था। दृष्टि जब सीपके टुकड़ेकी ओर गई थी तब उस देखे हुए पदार्थके सर्वांशका ग्रहण नहीं किया। उसकी बाहरी चमकको ही उसने ग्रहण किया था और केवल उस चमकके ग्रहण करनेसे उस वस्तुका ज्ञान हो आया, जो हृदयमें बहुत दिनोंसे बैठी थी; यानी चांदी तो स्मृतिपथमें पहलेसे अपना घर बना चुकी थी, झट उस चमकीली वस्तुको देखते ही उस (चांदी) का भ्रम हो गया। वह स्मरणात्मक चांदीका ज्ञान 'यह' सम्मुग्ध (पहले उत्पन्न होनेवाले भ्रमज्ञानको सम्मुग्ध कहते हैं) ज्ञानके साथ मिल जानेका कारण यह है कि प्रायः सभी तरहके ज्ञान किसी भी वस्तुके बाह्य-विशेषणको ही पहले ग्रहण करते हैं पीछे विशेषण विशेष्यरूपमें समा जाता है। इसीसे उस मनुष्यने सीपके टुकड़े की चमक यानी उस वस्तुके विशेषणको ग्रहण कर उसके विशेष्यकी जगह पर एक कल्पित विशेष्य चांदीका संयोग किया था, पीछे इसका विलोप हो गया और असली विशेष्य सीपका टुकड़ा दृष्टिगत हुआ। चमकीले सीपके टुकडेकी जगह उसका ज्ञान न हो कर चमकदार चांदीका ज्ञान हुआ था। इसीलिये यह झूठ ज्ञान था। एक आहार्य्यभ्रमको छोड़ कर प्रायः सभी तरहके भ्रमोंकी यही प्रणाली है। इस प्रणालीके अनुसार सब जगह एक भावापन्न वस्तु दूसरी भावापन्न वस्तुके रूपमें दिखाई दिया करती है। ऐसे भ्रमोंका ध्वंसोपाय केवल उसका समुचित-परिदर्शन है। यानी जिस वस्तुमें भ्रम उत्पन्न हुआ है, उस पर सम्पूर्णरूपसे जब तक प्रकाश नहीं पड़ता तब तक उस भ्रमका लोप नहीं होता। सांख्यदर्शनमें इस तरहका भ्रम 'अन्यथा-ख्याति' कहा गया है।

शङ्कराचार्यका कहना है कि भ्रमोत्पत्तिका मूल अज्ञान है। अज्ञान अनिर्वचनीय तथा दोष-स्थानीय है। दोषस्थानीय अज्ञानका स्वभाव यह है कि यदि किसी वस्तुके सर्वांश या किञ्चिदंश पर उसका अधिकार हो जाता है, तो वह दोष उस वस्तुमें उसी वस्तुके सदृश कोई दूसरी उसके विपरीत वस्तु उत्पन्न कर देगा। सीपके टुकड़ेके कुछ अंश पर अधिकार होने पर अज्ञानने चांदीकी सृष्टि की थी। केवल एक अज्ञानका ही ऐसा भाव नहीं है, अन्य वस्तुएं भी दोष, दुष्ट होने पर विपरीत वस्तुको उत्पन्न करती हैं। दावानलसे जला हुआ बेंतका बीज बेंतका अंकुर उत्पन्न न कर कदली (केला) वृक्षको उत्पादन करता है। दोष क्या कर सकता है और क्या नहीं, यह कोई नहीं कह सकता। दोषके कारण ही सैकड़ों तरहकी वस्तुओंकी सृष्टि होती रहती है।

मीमांसकोंका कहना है कि ज्ञान मात्रही सत्य अर्थात् सद्वस्तु-विषयक है। संसारमें कोई झूठी वस्तु नहीं और न कोई असत्य ज्ञान ही है। सीपके टुकड़ेमें चांदी दिखाई देना केवल प्रवाद ही है। उस समय उस सीपमें सीपका और चांदीका ही ज्ञान हुआ था। दोष और सम्प्रयोग घटनावलीसे उन दोनों ज्ञानका पार्थक्य नहीं

हुआ, केवल इतना ही फर्क है। दोनों ज्ञानोंमें पार्थक्य न होने पर भी भ्रमकी उत्पत्ति होती है। संसारमें कहे अनुसार भ्रमके सिवा झूठी वस्तुका ग्रहण मिथ्या ज्ञानात्मक भ्रम नहीं है। जो हो, भ्रमप्रणालीमें पार्थक्य रहते हुए भी भ्रमके अस्तित्वमें प्रायः सभी एकमत देखे जाते हैं।

निर्दिष्ट लक्षणान्वित भ्रमके कई अवान्तर भेद हैं। उन प्रभेदोंके पृथक् पृथक् नाम भी हैं। जैसे,—सादि-अध्यास और अनादिअध्यास है। इन दोनोंके अवान्तर प्रभेद तदात्म्याध्यास और संसर्गाध्यास है। सारूप्य प्राप्त जो अध्यास है, वह तदात्म्याध्यास। जो सम्बन्ध-मात्रका अध्यास है, वह संसर्गाध्यास है। लोहा और अग्नि दोनों एकमें मिल कर एक रूप हो जाते हैं। यहां लोहेमें अग्निका अध्यास है। जिस अध्यासके वलसे मनुष्य लोहेको जला देता है, उसी अध्यासको तदात्म्याध्यास कहते हैं। शरीरमें किसी तरहकी पीड़ा उपस्थित होने पर मनुष्य 'मैं मरा' 'प्राण गये' आदि कह कर जो दुःख प्रकट करता है, वह तदात्म्याध्यासका ही फल है। मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, इत्यादि स्थलोंमें पुत्र और स्त्रीमें वास्तविक आत्मत्व या अपनापन न रहने पर भी आत्म-संबन्ध अध्यास किया जाता है। अतएव संसर्गाध्यास-की महिमा है। जगत्‌में जितने तरहके अध्यास-प्रभेद हैं, प्रायः सभी वाह्यपदार्थोंकी तरह अध्यात्म पदार्थमें विद्यमान हैं। कभी हम इन्द्रियोंके साथ एकीभूत हो कर कहते हैं,—मैं करता हूं, मैं अंधा हूं, मैं लंगड़ा हूं इत्यादि किन्तु यथार्थमें अंधापन आदि धर्म हममें नहीं है। कभी कभी हम इस दृश्य शरीरमें आत्मत्व आरोपित करते हैं, मैं मोटा हूं, मैं पतला हूं, इत्यादि। मैं जो हूं उसमें न मोटापन है और पतलापन ही है। मोटापन तथा पतलापन शरीरसे सम्बन्ध रखता है, आत्मासे नहीं। हम किस प्रकारके हैं, यह कोई नहीं जानता। यदि हम जानते, तो हमारा व्यवहार आ-जीवन एक समान ही चलता, किन्तु ऐसा नहीं होता, वह प्रतिक्षण वदला रहता है।

यह सभी अध्यास कभी एक साथ मिल कर प्रकाशित होते हैं, कभी केवल सम्बन्ध सूचित करते हैं। वाह्य-जगत्‌में और आत्मराज्यमें उपर्युक्त लक्षणसम्पन्न अनेक अध्यास विराजमान हैं, मनुष्य यह जान कर भी जान नहीं सकता। कभी कभी वाह्य अध्यासकी निवृत्ति हो जाती है सही, किंतु किसीका अध्यासत्मिक अध्यासकी निवृत्ति होते नहीं देखी गई।

अध्यास-निवृत्तिका उपाय क्या है? कपिल आदि दार्शनिकोंने इसके उत्तरमें अधिकरणका स्वरूप देखना भ्रम-निवृत्तिका उपाय कहा है। जिस जगह भ्रम होता है या जिस वस्तुमें भ्रम होता है, उसके यथार्थ रूपका ज्ञान होते ही उस भ्रमका विनाश होता है। वस्तुके स्वरूप देखनेका उपाय है विशेष दर्शन। विशेष दर्शन एक जगह एक तरहका नहीं अर्थात् स्थलविशेषसे यह कई तरहका है। कहीं वारम्वार दर्शन, कहीं उपर्युक्त परीक्षा प्रयोग, जिसके द्वारा दोषकी उत्पति होती है, सम्प्रयोग विदरित हो जाता है, वही परीक्षा शब्दका अभिधेय है। उस परीक्षाके प्रयुक्त होते ही दोषादिका लोप हो जाता है, और इसके वाद सत्यज्ञानका आविर्भाव होता है। दोषादिसे हम उत्तीर्ण हुए कि नहीं, इसकी परीक्षा नही है। न होनेका कारण यह है कि यथार्थ ज्ञान प्राप्त होने पर वहां यथार्थ ज्ञान ही दोषादिसे पार होनेकी गवाही देता है।

बुद्धि सत्य-पक्षपाती है।—'तत्त्व पक्षपातो हि धियां स्वभावः' बुद्धिका खिंचाव सत्यकी है। बुद्धिके इसी गुणके कारण भ्रमनिवृत्तिके वाद 'अव ज्ञान हुआ' 'मालूम हो गया' आदि चित्तमें स्फूर्त्ति उत्पन्न होती है तथा इससे आत्माकी परितृप्ति होती है।

अध्यासनिवृत्तिके और भी कई नियम हैं। जैसे,—गुप्त भ्रम, प्रकटित भ्रम या ऐन्द्रियक भ्रम। भ्रम युक्ति तथा उपदेशसे नहीं दूर होता। प्रकटितभ्रमके लिये साक्षात्कार हो आवश्यक है। दिग्भ्रम जिनको होता है, उनको लाख उपदेश दो या नाना युक्ति तर्कसे सम-झाओ, किन्तु उससे उनका भ्रम दूर नहीं होता। औप-देशिक भ्रम होने पर उपदेश या युक्तिसे निवारण हो सकता है। हमारे आध्यात्मिक वहुतेरे भ्रम हुआ करते हैं, उन सव भ्रमोंको दूर करनेके लिये शास्त्रोंमें श्रवण, मनन, निदिध्यासन नामक विशेष दर्शनोंके उपदेश भरे पड़े हैं। अनादिकालके आध्यात्मिकभ्रम दूर करनेके

लिए साक्षात्कार, युक्ति और उपदेश, तीनों प्रकारकी परीक्षाओंके प्रयोगकी आवश्यकता होता है। केवल एक-से इस आध्यात्मिक भ्रमके दूर होनेकी सम्भावना नहीं है। श्रवण और मनन ये दोनों औपदेशिक उपाय हैं। निदिध्यासन प्रत्यक्ष श्रेणीका है। जैसे भीतरके रोग दुःखसुखादि अपने मनके अनुभव करनेकी चीज है, वैसे ही आत्मा भी साधनसे संस्कृत मनका ज्ञातव्य है। मन अत्यन्त निर्मल होनेसे उस पर आत्माका यथार्थ प्रतिबिम्ब पड़ता है, अर्थात् उसी समय अपना अनध्यस्तरूप दिखाई देता है, इसके पहले नहीं।

सत्यके अधिकारसे असत्य या भ्रमका अधिकार हो अधिक विस्तृत है। भ्रान्ति पद पद पर सम्भव है किन्तु सत्य कभी कभी। प्रति क्षण जीवकी दृष्टिमें श्रवणादि प्रत्यक्ष और मनकी कल्पित युक्ति द्वारा अज्ञातरूपसे सौ सौ भ्रान्ति प्रवेश कर रही है। मनुष्य देख कर भी देख नहीं पाता, जान कर भी समझ नहीं सकता, यह भ्रान्तिका विशेष गुण है। भ्रम-विज्ञान अत्यन्त दुरावगाह है। जादूगरोंका जादू, ऐन्द्रजालिक तमाशा आदि सभी भ्रान्तिके मूलसूत्रसे उत्पन्न हुए हैं।

जितने प्रकारके बनावटी या सच्ची भ्रान्ति हैं, उन सभोंके मूलमें दोष, सम्प्रयोग तथा दुष्टसंस्कार इन तीनोंका रहना अनिवार्य है।

"अति दूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्यात् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च ॥"

(सांख्यका० ७)

निम्न लिखित भी कईएक भ्रमके कारण हैं,—अधिक दूर, अत्यन्त निकट, इन्द्रिय-वैगुण्य, मनकी अस्थिरता, सूक्ष्मता, व्यवधान, अविभव और समानाभिहार। इन सब बन्धनोंसे छूटने पर भ्रम नहीं होता, आकाशका उड़ता हुआ पक्षी बहुत दूर निकल जाने पर इन नेत्रोंसे दिखाई नहीं देता। आंखोंका काजल या अञ्जन तथा नाक अति निकट रहनेके कारण दिखाई नहीं देती। आंखोंकी पुतली या इन्द्रियमें किसी तरहकी चोट लगने पर ज्ञानको भी चोट लगती है। उन्मना या विमना अवस्था में भी दृष्टिज्ञान नहीं रहता। परमाणु बहुत सूक्ष्म होनेकी वजहसे दिखाई नहीं देता। सूर्यके प्रकाशमें तारे परिव्याप्त रहते हैं, इससे दिनको तारे और ग्रह आदि दिखाई नहीं देते। एकजातीय दो वस्तुओंके एकत्र होने पर एकका अदर्शन हो जाता है, काठमें अग्नि है, दूधमें दही और घी है सही, किन्तु जब तक मनुष्य द्वारा जलाया या मथा नहीं जाता तब तक दिखाई नहीं देता। ये सब बातें देख यह भ्रमका कारण कहा जाता है। (सांख्यदर्शन)

भाषापरिच्छेदमें इसका लक्षण है,—"अतस्मिन् तद्ग्रहः" प्रभा और ज्ञान देखो। अवस्तुमें वस्तु ग्रहणका नाम भ्रम है। (त्रि०) २ भ्रमणशील।

"अधभ्रमस्त उर्व्विया विभाति" (ऋक् ६।६।४) 'भ्रमः भ्रमणशीलः' (सायण)। ३ रोगविशेष। इसका लक्षण,—

"मूर्च्छा पित्ततमः प्रोया रजःपित्तानिलाद भ्रमः।
चक्रवद् भ्रमतो गात्रं भूमौ पतति सर्वदा ॥
भ्रमरोग इति ज्ञेयो रजःपित्तानिलात्मकः ॥"

(माधवनिदान)

पित्त और तमोगुणकी अधिकतासे मूर्च्छाकी है तथा पित्त, वायु और रजोगुणकी अधिकतासे भ्रमरोगकी उत्पत्ति होती है। इससे शरीर चाककी तरह घूमता रहता है और मनुष्य इस रोगसे जमीन पर गिर पड़ता है।

इसकी चिकित्सा यह है—भ्रम-निवारणके लिये 'दुरालभाका क्वाथ या हरीतकीका क्वाथ घीके साथ पीना चाहिये। आंवलाके रसमें घी मिला कर पीनेसे भ्रमरोग मिट जाता है। सोंठ, पीपल, शतमूली और हरीतकी प्रत्येक १ पल और गुड़ ६ पल, इन औषधियोंसे मोदक तय्यार कर सेवन करनेसे भ्रम मिट जाता है। दुरालभाके क्वाथके साथ घृत और मारित ताम्र एकत्र कर पान करनेसे भ्रम शीघ्र ही दूर होता है। (भावप्र० मूर्च्छाधिकार)

३ मुर्च्छा। ४ खोदनेका हथियार (त्रिका०) ५ जलनिकलनेवाली मोरी। ६ कुम्हारका चाक।

भ्रमकारो (हिं० वि०) भ्रम उत्पन्न करनेवाला, शकमें डालनेवाला।

भ्रमण (सं० क्ली०) भ्रम-भावे ल्युट्। १ गमनविशेष, घूमना फिरना। २ आना जाना। ३ यात्रा, सफर। ४ मंडल, चक्कर।

भ्रमणी (सं० स्त्री०) भ्राम्यत्यनयेति भ्रम-करणे ल्युट्, ङीप्।

१ कारण्डिका, सैर या मनोविनोदके लिये चलना । २ जलौका, जोंक ।

भ्रमणीय (सं० त्रि०) भ्रम-अनीयर् । भ्रमार्ह, घूमने या चलने फिरनेवाला ।

भ्रमत्कुटी (सं० स्त्री०) भ्रमन्ती चलन्ती कुटी क्षुद्रगृहमिव । तृणादिच्छत्र । पर्याय—कावारी, जङ्गलकुटी ।

भ्रमत्व (सं० क्ली०) भ्रमस्य भावः त्व । भ्रमका भाव या धर्म ।

भ्रमना (हिं० क्रि०) १ धोखा खाना, भूल करना ।

भ्रममूलक (सं० त्रि०) जिसका आविर्भाव भ्रमके कारण हुआ हो।

भ्रमर (सं० पु०) भ्रमति प्रतिकुसुमं (अर्तिक मीत्यादिना । उण् ३ ।१३२) इति अर् वा भ्राम्यन् सन् रौति पृषोदरादित्वात् साधुः । कीटविशेष । पर्य्याय—मधुव्रत, मधुकर, मधुलिट्, मधुप, अलि, द्विरेफ, पुष्पलिह्, भृङ्ग, षट्पद, अली, कलालाप, शिलीमुख, पुष्पन्धय, मधुकृत, द्विप, भसर, चञ्चरीक, सुकाण्डी मधुलोलुप, इन्दिन्दिर, मधुमारक, मधुपर, लम्ब, पुष्पकीट, मधुसूदन, भृङ्गराज, मधुलेटिन्, रेणुवास । (शब्दरत्नाकर)

स्वनाम प्रसिद्ध कीटविशेष । यह देखनेमें कुछ नीलापन लिये काला है । इसका कालापन तथा मधुलोलुपता देख कर प्राचीन कवि इसको कृष्णसे तुलना करते हैं । कहीं कहीं तो वे रसास्वादी सुप्रेमीको भी काला भ्रमर कहनेमें नहीं चूकते । काव्यसंसारमें इसीसे इसका इतना आदर है ।

जिस भ्रमर या भौंराके रूप और उसके गुञ्जनसे कवि गण मोहित हुए थे, वह क्या नीलकृष्ण भ्रमर कीट था अथवा मौहारकी तरहका और कोई कीड़ा ।

सदासे हम दो तरहके हो भ्रमर देखते आते हैं । (१) नीलकृष्णवर्ण बड़े आकारका कीड़ा । यह छः पैरवाला है, किन्तु मक्खियोंकी तरह वारीक पर रहने पर भी उसके ऊपर एक चिकना और कठिन आवरण लगा रहता है । एक पुष्पका मधु लेकर जब दूसरे पुष्प पर जाना चाहता है तब यह पहले उस कठिन आवरणको ही खोलता है । इसके पंख फैला कर उड़ जाता है । इसका भन-भन शब्द विशेष आनन्दप्रद नहीं । इसका डंक विच्छूके डंककी तरह कष्टप्रद होता है । इनके काटे हुए स्थान पर पियाजका रस मल देनेसे बड़ा लाभ होता है ।

मधुमक्खियोंकी तरह इनको छात्ता तय्यार करते नहीं देखा गया है । ये पुष्पसे मधुसञ्चित करते हैं सही; किन्तु मधुछाता नहीं बनाते । साधारणतः आमके पेड़में जो छिद्र या खोखला रहता है, उसीमें यह रहते देखे जाते हैं । फिर गृहस्थोंके घर सूखे बांसोंके टुकड़ोंमें भी यह देखे जाते हैं । इनके सिवा सुन्दर पके हुए आमके फलमें इस जातिके छोटे भौंरे भी देखे जाते हैं । ये उसमें समा जाते हैं, जिसका कुछ भी चिह्न दिखाई नहीं देता ; मानों आमके फलमेंसे ही इनको उत्पत्ति हो गई हो । किन्तु आमके छिलका उतारते ही वह दिखाई देता है । (२) भृङ्गराज या छोटा भौंरा—इसका सब अङ्ग काला होने पर भी पूंछ पर पीले रंगका एक दाग दिखाई देता है । इनके डंसने पर वह स्थान जलने लगता है । एक साथ ही बीस या पचीस भंवरोंके काटने पर मनुष्यकी मृत्यु भी हो सकती है । ये मधुछाता तैयार कर पुत्रोत्पादन करते हैं । इनके दिये अण्डेसे मछलियां भी पकड़ी जाती हैं । पहले कहे हुए भौरोंकी तरह पंखके ऊपरका कठोर और चिकना आवरण इनमें नहीं होता । वृन्दावनचारी वनमाली भ्रमरकृष्ण थे और नायिका-उपभोगमें पुष्पके साथ गोपियोंकी तुलना देख प्राचीन कवियोंने इसकी कृष्णके साथ तुलना की है । २ कामुक । (मेदिनी)

भ्रमर—चम्पाअरण्यके अन्तर्गत एक देश ।

भ्रमरक (सं० पु०) भ्रमर इवेति भ्रमर (इवे प्रतिकृतौ । पा ५।३।९६) इति कन् । १ ललाटलम्बित चूर्णकुन्तल, माथे पर लटकनेवाले बाल । २ भृङ्ग । ३ बालमूषिक । ४ अम्बुभ्रम । ५ वेधनयन्त्रविशेष ।

भ्रमरकरण्डक (सं० पु०) क्षुद्रकीटविशेष । चोर इसके मध्य भ्रमरकीट भर देते हैं और चोरी करनेके समय उस कीटको छोड़ देते है, जिससे घरके दीपक बुझ जाते हैं ।

भ्रमरकीट (सं० पु०) भ्रमर इव कीटः । कीटविशेष ।

भ्रमरकुण्ड (सं० क्ली०) कामरूपमें नीलपर्वतस्थ पुष्पतोया नदीविशेष ।

भ्रमरच्छली (सं० स्त्री०) भ्रमरान् छलयतीति छलि-अच्, गौरादित्वात् ङीष्। लताविशेष। इसके पत्ते बादामके पत्तोंके समान होते हैं। इसमें बहुत पतली पतली फलियां लगती हैं। इसकी लकड़ी सफेद रंगकी और बहुत बढ़िया होती है और प्रायः तलवारकी म्यान बनानेके काममें आती है। वैद्यकमें यह चरपरी, गरम, कड़वी, रुचिकारक, अग्निदीपक और सर्वदोषनाशक मानी जाती है।

भ्रमरदेव—एक प्राचीन कवि।

भ्रमरपदक (सं० क्ली०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति पादमें १२ अक्षर होते हैं।

भ्रमरप्रिय (सं० पु०) भ्रमरस्य प्रियः। धाराकदम्ब।

भ्रमरमाली (सं० स्त्री०) भ्रमरान् मारयति गन्धोत्कर्षेण व्याकुलयतीति भृ-णिच् अण् गौरादित्वात् ङीष्। मालवदेशप्रसिद्ध पुष्पवृक्षविशेष। इसमें सुन्दर और सुगंधि फल लगते हैं। पर्याय—भ्रमरादि, भृङ्गमारी, मांसपुष्पिका, कुष्ठादि, भ्रमरी, यष्टिलता। इसका गुण—तिक्त, पित्त, श्लेष्म और ज्वरनाशक, शोथ, कण्डूति, कुष्ठ, व्रणदोष और त्रिदोषनाशक।

भ्रमरवर—उत्कलाधिप राजा कपिलेन्द्रदेवकी उपाधि। कपिलेन्द्रदेव देखो।

भ्रमरविलासिता (सं० स्त्री०) एक वृत्तका नाम। इसके प्रति पादमें ११ अक्षर रहते हैं।

भ्रमरहस्त (सं० पु०) नाटकके चौदह प्रकारके हस्तविन्यासोंमें-से एक प्रकारका हस्तविन्यास।

भ्रमरा (सं० स्त्री०) भ्रमर-अजादित्वात् टाप्। भ्रमरच्छली।

भ्रमरातिथि (सं० पु०) भ्रमरः अतिथिरभ्यागतो यस्य। चम्पकवृक्ष, चम्पाका पेड़।

भ्रमरानन्द (सं० पु०) मधुबाहुल्यात् भ्रमराणां आनन्दो यस्मात् सः। २ बकुल, मौलसरी। २ अतिमुक्तक। ३ रक्ताम्लान।

भ्रमरालक (सं० पु०) भ्रमर इव अलति भूषयतीति अल-ण्वुल्। ललाटस्थित चूर्णकुन्तल, माथे पर लटकनेवाले बाल।

भ्रमरालम्ब (सं० पु०) भूतृण।

भ्रमरावली (सं० स्त्री०) १ एक वृत्तका नाम। इसे नलिनी या मनहरण भी कहते हैं। इसके प्रत्येक पादमें पांच सगण होते हैं। २ भंवरोंकी श्रेणी।

भ्रमरी (सं० स्त्री०) भ्रमर-ङीप्। १ जतुका, जतु नामकी लता, पुत्रदात्री। २ मिरगीरोग। ३ पार्वती। ४ भौंरेकी मादा, भौंरी।

भ्रमरेष्ट (सं० पु०) भ्रमराणामिष्टः। श्योणाकभेद।

भ्रमरेष्टा (सं० स्त्री०) भ्रमराणामिष्टा। १ भार्गी, भारंगी। २ भूमिजम्बू, भुईं जामुन।

भ्रमरोत्सवा (सं० स्त्री०) भ्रमराणां उत्सवः प्रमोदो यस्यां। माधवी।

भ्रमवात (सं० पु०) आकाशका वह वायुमण्डल जो सर्वदा घूमा करता है।

भ्रमात्मक (सं० त्रि०) जिससे अथवा जिसके सम्बन्धमें भ्रम उत्पन्न होता हो।

भ्रमासक्त (सं० पु०) भ्रमे भ्रमणे आसक्तः युक्तः। १ शस्त्रमार्जक, वह जो हथियार साफ करता हो। (त्रि०) २ भ्रमान्वित।

भ्रमि (सं० त्रि०) भ्रम-बाहुलकात् इ। भ्रमण। पर्याय—भ्रम, भ्रमी। २ मण्डलाकार गति। ३ मण्डलाकार सैन्यरचना। ४ घूर्णजल, भंवरी। ५ कुलालचक्र, कुम्हारका चक्र। ६ मूर्च्छा।

भ्रमिका (सं० स्त्री०) धातुकीपुष्प।

भ्रमिन् (सं० त्रि०) भ्रमो विद्यतेऽस्येति इनि। १ भ्रमविशिष्ट। जिसे भ्रम हुआ हो। २ चकित, भौचक।

भ्रमित (सं० त्रि०) १ जिसे भ्रम हुआ हो, शङ्कित। २ घूमता हुआ।

भ्रमितनेत्र (सं० त्रि०) ऐंचाताना।

भ्रमी (सं० स्त्री०) १ भ्रमण, घूमना, फिरना। २ चक्कर लगाना, फेरी देना। ३ सेनाकी वह रचना जिसमें सैनिक मण्डल बांध कर खड़े होते हैं। ४ तेज बहते हुए पानीमें-का भौंर, नांद।

भ्रशिमन् (सं० पु०) भृशस्य भावः, अतिशये वा इमनिच्, ऋतो रः। १ भृशत्व। २ अतिशय भृश।

भ्रशिष्ठ (सं० त्रि०) भृशस्य अतिशयः अतिशये इष्ठन्। अतिशय भृश।

भ्रष्ट (सं० त्रि०) भ्रश-कर्त्तरि-क्त। १ च्युत, पतित। २ जो खराब हो गया हो, बहुत बिगड़ा हुआ। ३ दूषित, जिसमें कोई दोष आ गया हो। ४ दुराचारी। जिसका आचरण खराब हो गया हो।

भ्रष्टा (सं० स्त्री०) पुंश्चली, छिनाल।

भ्राज (सं० क्ली०) सामभेद। यह साम गवानयन सत्रमें विषुव नामक प्रधान दिनमें गाया जाता था।

भ्राजक (सं० क्ली०) वैद्यकके अनुसार त्वचामें रहनेवाला पित्त। तैलमर्दन, अवगाहन, आलेपन आदि क्रिया द्वारा जो सब स्नेह शरीरमें लगा रहता है, उसका परिपाक भ्राजक पित्त द्वारा ही होता है। पित्त देखो। २ दीप्तिशील।

भ्राजथु (सं० पु०) भ्रस्ज् अथुच्। १ दीप्ति। २ सौन्दर्य।

भ्राजद्वृष्टि (सं० त्रि०) २ शाणित अस्त्र, शान चढ़ाया हुआ हथियार। २ मरुद्भेद।

भ्राजन (सं० क्ली०) दीपन, चमक दमक।

भ्राजस् (सं० क्ली०) तेज, दीप्ति।

भ्राजस्वत् (सं० त्रि०) भ्राजस्-मतुप्-मस्य वः। दीप्तियुक्त, शोभायमान।

भ्राजिन् (सं० त्रि०) भ्राज-अस्त्यर्थे इनि। दीप्तियुक्त, शोभायमान।

भ्राजिर (सं० पु०) पुराणानुसार भौत्य-मन्वन्तरके एक देवता। (मार्क०पु० १०० अ०)

भ्राजिष्णु (सं० त्रि०) भ्राज्-इष्णुच्। १ अलङ्कारादि द्वारा दीप्तियुक्त। (पु०) २ विष्णु।

भ्राजिष्णुता (सं० स्त्री०) भ्राजिष्णुका भाव या धर्म, दीप्तिशीलत्व।

भ्राता (सं० पु०) सहोदर, सगा भाई। भ्रातृ देखो।

भ्रातुष्पुत्र (सं० पु०) भ्रातुः पुत्रः षष्ठ्यां अलुक्। भ्राताका पुत्र, भतीजा।

भ्रातुष्पुत्री (सं० स्त्री०) भ्राताकी कन्या, भतीजी।

भ्रातृ (सं० पु०) भ्राजते इति भ्राज (नप्तृ नेष्टृत्वष्टृ होत्रिति। उण् २।९६) इति तृण, निपातनात् साधुः। भाई, सहोदर। पर्याय—सहोदर, समानोदर्य, सोदर्य, सगर्भ, सहज, सोदर।

ज्येष्ठ भ्राता पितृतुल्य हैं, पिताकी मृत्युके बाद वे कनिष्ठ भ्राताओंके प्रतिपालक होते हैं।

"ज्येष्ठो भ्राता पितृतुल्यो मृते पितरि शौनक।
सर्वेषां स पिता हि स्यात् सर्वेषामनुपालकः॥
कनिष्ठस्तेषु सर्वेषु समत्वेनानुवर्त्तते।
समोपमोगजीवेषु तथैव तनयस्तथा॥"

(गरुड़पु० ११४ अ०)

ज्येष्ठ भाईकी स्त्री माताके समान है, इस कारण माताके समान उनकी भक्ति करना उचित है। उन्हें हरण करनेसे मातृहरणके समान पातक और सैकड़ों ब्रह्महत्याके समान पाप होता है।

"भ्रातृजायापहारी च मातृगामी भवेन्नरः।
ब्रह्महत्यासहस्रञ्च लभते नात्र संशयः॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिखं० ५३ अ०)

पिताकी मृत्युके बाद भाई भाई भिन्न होनेसे उनके धर्मकी वृद्धि होती है।

"भ्रातॄणां जीवतोः पित्रोः सहवासो विधीयते।
तदभावे विभक्तानां धर्मस्तेषां विवर्द्धते॥
भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा।
स निर्भाज्यः स्वकादंशात् किंचिद्दत्त्वोपजीवनम्॥"

(व्यास)

पितृसम्पत्तिके जितने भाई अधिकारी हैं उन्हें बराबर बराबर हिस्सा मिलना चाहिये।

भ्रातृक (सं० त्रि०) भ्रातुरागत इति भ्रातृ (ऋतष्ठञ्। पा ४।३।७८) इति ठञ्। भ्रातासे आगत धनादि, वह धन आदि जो भाईसे मिलता हो।

भ्रातृज (सं० पु०) भ्रातुः सहोदरात् जायते इति जन-(पञ्चम्यामजातौ। पा ३।२।९८) इति ड। भ्राताका अपत्य, भाईका लड़का। पर्याय—भ्रातृव्य, भ्रातृ-पुत्र।

भ्रातृजाया (सं० स्त्री०) भ्रातुर्जाया ६ तत्। भ्रातृभार्या, भाभी। पर्याय—प्रजावती।

भ्रातृत्व (सं० क्ली०) भ्रातुर्भावः त्व। भ्राताका भाव या धर्म।

भ्रातृद्वितीया (सं० स्त्री०) भ्रातृमङ्गलार्था भ्रातृभोजनार्था वा द्वितीया, मध्यपदलोपि कर्मधा०। यमद्वितीया, कार्त्तिक शुक्लद्वितीया। इस दिन यम और चित्रगुप्तकी पूजा करनी होती है। दिनमानको ८ से भाग दे कर उसके पांचवें भागमें अर्थात् १२ से १॥ के भीतर यह पूजा की जाती

है। तिथि यदि दोनों दिन पञ्चमयामव्यापिनी हो, तो युग्मादर-वशतः दूसरे दिन यह कार्य करना होगा।

"यमञ्च चित्रगुप्तञ्च यमदूतांश्च पूजयेत्।
अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः॥"
(निर्णयसिन्धु)

यमद्वितीयाके दिन यम, चित्रगुप्त और यमदूतोंकी पूजा करके यमको अर्घ्य देना चाहिए।

कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वितीयाको यमुनाने यमकी निजगृहमें पूजा करके भोजन किया था, इस कारण इसका नाम यमद्वितीया हुआ है। इस दिन अपने घरमें भोजन नहीं करना चाहिये। इस दिन बहनके हाथसे भोजन करना और बहनको नाना प्रकारको दान-सामग्री तथा स्वर्णालङ्कार आदि देने चाहिए। इस प्रकार-का कार्य अशेष मङ्गलजनक माना गया है।

यदि सगी बहन न हो, तो चचेरी, मौसेरी आदि बहनके हाथसे भोजन करना विधेय है।*

ब्राह्मणपुराणमें लिखा है—जो नारी इस तिथिमें ताम्बूलादि द्वारा भाईकी पूजा करती है, उसे फिर वैधव्य-यन्त्रणाका भोग नहीं करना होता। जो ऐसा नहीं करती हैं, उसके भाईको आयु क्षय होती है।

"या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ।
अर्चयेचापि ताम्बुलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात्॥
भ्रातुरायुःक्षयो राजन्! न भवेत्तत्र कर्हिचित्॥"
(निर्णयसिन्धुधृत ब्रह्माण्डपुराण)

कृत्यतत्त्वमें इसकी पूजाका विधान इस प्रकार लिखा है। यमद्वितीयाके दिन प्रातःकालमें प्रातःकृत्यादि करके निम्नोक्त रूपसे स्वस्तिवाचन और संकल्प करना चाहिये। संकल्प, यथा—"ओं तत्सदित्युच्चार्य अद्ये-त्यादि अमुकगोत्रः अमुक देवशर्मा स्वरक्षणकामः यमादि-पूजनमहं करिष्ये।" इस प्रकार संकल्प करके शालग्राम शिला वा घटादिमें पूजाके विधानानुसार पूजा करे। पीछे इस मन्त्रसे अर्घ्य देवें।

मन्त्र—"एह्येहि मार्त्तण्डज पाशहस्त यमांन्तकालोकधरामरेश।
भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते॥"

'इदमर्घ्यं यमाय नमः।' पूजाके बाद इस मन्त्रसे प्रणाम करना होगा।

"धर्मराजनमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज।
पाहिमां किङ्करैः सार्द्धं सूर्यपुत्र नमोऽस्तु ते॥"

पीछे चित्रगुप्त और यमदूतोंको पूजा करके यमुनाकी पूजा करनी होती है।

"यमस्वसर्नमस्तेऽस्तु यमुने लोकपूजिते।
वरदा भव मे नित्यं सूर्यपुत्रि नमोऽस्तुते॥"

इस मन्त्रसे यमुनाको प्रणाम कर, पीछे दक्षिणा-अच्छिद्रावधारणादि करके पूजा शेष करनी होगी।

इस दिन बहन भाईके भोजनकालमें अन्नादि दे कर इस मन्त्रका पाठ करे,—

"भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम्।
प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः॥" (कृत्यतत्त्व)

बहन अगर बड़ी हो तो 'तवानुजाताहं'की जगह 'तवाग्रजाताहं' मन्त्र कहे।

कहीं कहीं देशकी प्रथानुसार बहन प्रतिपदके दिन भाईके कपालमें तिलक लगाती और द्वितीयाके दिन भाईको भोजन कराती है। प्रतिपदामें तिलकके विषय का उल्लेख किसी भी शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता।

भ्रातृपत्नी (सं० स्त्री०) भ्राता पतिर्यस्या इति भ्रातुः पत्नीति वा 'ऋन्नेभ्यो ङीप्, इति ङीप्, ततः 'नित्यं सपन्त्यादिषु' इति नान्तादेशः। भ्रातृजाया, भाभी।

भ्रातृपुत्र (सं० पु० स्त्री०) भ्रातुः पुत्रः। भ्रातृज, भतीजा।

भ्रातृबल (सं० त्रि०) भ्राता अस्त्यस्य बलच्। १ भ्रातृयुक्त। (क्ली०) २ भ्राताका बल।

भ्रातृवधू (सं० स्त्री०) भ्रातुः-वधू। भ्रातृजाया, भाभी।

भ्रातृभगिनी (सं० स्त्री०) भ्राता और भगिनी, भाई और बहन।

भ्रातृभाव (सं० पु०) भ्रातुर्भावः। पैदा हुए बालक-का लग्न पर्यन्त तृतीय भाव। इस भावको भ्रातृ-स्थान कहते हैं। ज्योतिष मतसे भ्राताके शुभा-शुभको चिन्ता इसी भावसे की जाती है। यह भाव शुभ होनेसे भ्रातृभाव शुभ होता है, अशुभ होनेसे यह भाव अशुभ समझना चाहिये।

* "कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर।
यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्च्चितः॥"

इसके सम्बन्धमें ज्योतिषशास्त्रमें जो बातें कही गई है, उनकी संक्षेपमें आलोचना कर देखना चाहिए।

"भ्रातृस्थानं पञ्चमञ्च नवमेकादश सप्तमम्।
तत्सदीशदशायाञ्च भ्रातृलाभो भवेन्नृणाम्॥
भ्रातृस्थानेशतद्दर्शितद्भावस्थद्युचारिणाम्॥
मध्ये बलसमे तस्य दशा सोदरवृद्धिदा॥" (पारिजात)

लग्नस्थानसे तीसरा, पांचवां, सातवां, नौवां या ग्यारहवां स्थान भ्रातृस्थान कहलाता है। इन सब स्थानोंके स्वामी ग्रहोंके दशाभोगकालमें जातकके भाईका जन्म होता है। इनमें भाईके स्थानके स्वामी, भाईके स्थानको देखने और भ्रातृभावापन्न ग्रहोंमें जो बलवान् होते हैं, उन्हींके दशाभोगके समय भाईका जन्म होता है।

बहुभ्रातृ-सुखयोग—यदि वृहस्पति और तीसरे घरके स्वामी अपने घरमें यानी तीसरे स्थानमें ही हों, तो उत्पन्न हुए बालकसे सुख प्राप्त होता है। शुभग्रहके साथ तीसरे घरमें स्वामी यदि लग्नस्थानमें चौथे, सातवें और दशवें घरमें हों, अथवा शुभक्षेत्रमें रह कर शुभनवांशगत हों, तो उस लड़केके कई भाई होते हैं। तीसरे घरके स्वामी या भ्रातृकारक ग्रह शुभयुक्त और शुभ-दृष्ट होने पर अथवा भातृभावराशि पूर्णबल रहने पर बहुत भाई होते हैं। सातवें यदि मङ्गल हो, आठवें शुक्र और नौवें रवि होने पर सहोदर अल्पायु होते हैं। किन्तु भ्रातृस्थानमें शुभग्रहके योग और दृष्टि रहने पर सहोदर दीर्घायु होते हैं। तीसरे स्थानमें पापग्रहके योग और दृष्टि रहने पर भ्राताको हानि होगी।

"षष्टे च भवने भौमः सप्तमे राहुसम्भवः।
अष्टमे च यदा सौरिर्भ्राता तस्य न जीवति॥
विलग्नस्थो यदा जीवो धने सौरिर्यदा भवेत्।
राहुश्च सहजस्थाने भ्राता तस्य न जीवति॥" (पारिजात)

छठवें मङ्गल, सातवें राहु और आठवें शनि रहने पर भ्राता जीवित नहीं रहता। लग्नमें वृहस्पति दूसरे शनि और तीसरे राहु रहने पर भ्राताका नाश होता है, भ्रातृभावसे केंद्र और त्रिकोण स्थानमें पापग्रह रहने पर भ्राताका नाश होता है और शुभग्रह रहने पर भाईकी वृद्धि होती है और शुभाशुभ-ग्रह रहने पर शुभाशुभ फल हुआ करता है।

तीसरे घरमें रवि हो और उसको पापग्रह देखता हो, तो ज्येष्ठ भ्राता तथा पाप-दृष्ट शनि भी तीसरे स्थानमें हो तो, उसके बाद पैदा हुआ भाई और मङ्गल तीसरे स्थानमें रहनेसे उसके बाद पैदा हुए सभी भाइयोंका विनाश होता है। इससे सम्बन्धमें एक और विशेषता है कि रवि तीसरे स्थानमें रहनेसे बड़ा भाई, शनि रहनेसे छोटा भाई और मङ्गलके रहनेसे छोटे बड़े सभी भाइयोंका विनाश होता है। इसमें पाप और शुभग्रहोंके देखनेको कोई बात नहीं। तीसरे घरके स्वामी और भ्रातृकारक ग्रह नीच घरोंमें या नीच नवांश घरमें, पापक्षेत्रमें पापसंयुक्त या क्रूर षष्ठांशगत होने और तृतीय घरके स्वामी और भ्रातृकारक ग्रहपाप मध्यगत होनेसे भ्राताका नाश हुआ करता है।

भ्रातृहीन योग—तीसरे घरका स्वामी चंद्र यदि छठे, आठवें या बारहवें हो तो उसके बाद उसका कोई भाई नहीं पैदा होता। तीसरे और चौथे घरके स्वामी चौथेमें रहनेसे उसके भाई न होनेकी ही आशङ्का है, किंतु उपयुक्त तीसरे और चौथे घरके स्वामीके साथ मङ्गल हो, तो उक्त फल नहीं होता। तीसरे घरमें शनिका रहना भ्रातृनाश करनेवाला है। तीसरे घरमें यदि राहु हो तो उसके भाईकी वृद्धि होगी।

बड़े और छोटे भाईकी संख्या निर्देश—कुण्डलीके लग्नस्थानसे ग्यारहवें और बारहवें स्थानके ग्रह-संख्याको गिन कर बड़े भाईकी और दूसरे तथा तीसरे ग्रहकी संख्यासे छोटे भाईकी संख्या बतानी चाहिये। तीसरे घरके स्वामी, भाईको बढ़ानेवाला, भाईका स्थान देनेवाला और भाईका स्थानयुक्त ग्रह—इनमें जो ग्रह बलवान् हो उसी ग्रह-संख्या द्वारा भाईकी संख्या बतानी चाहिये। उक्त चार तरहके ग्रह यदि नीचेके शत्रुगृहमें अथवा पापाक्रान्त या अस्तगतादि दोषसे मूढ़भावापन्न हो, तो उसके, भाईका नाश होता है और सबके बलवान् होने पर भाई दीर्घजीवी होते हैं। उक्त चार तरहके ग्रहोंमें यदि आधे बलवान् और आधे बलहीन हों, तो जितने भाई होंगे उसके आधे जीवित रह सकेंगे। इस तरह यह ठीक करना होता है, कि कितने भाई जीवित रहेंगे। उक्त चार तरहके ग्रह स्त्री-ग्रह हो कर बुरे स्थानमें हों, तो उससे छोटे भाईयोंकी संख्या कम होती है। तीसरे घरके

स्वामी यदि नवांशमें हों, तो भी उस नवांशकी ग्रहसंख्यासे भी भाईकी संख्या बतलाई जा सकती है। सूक्ष्मतः विचार करनेसे तीसरे घरका स्वामी, भाई उत्पन्न करनेवाला, भ्रातृस्थानको देखनेवाला और भ्राताके स्थानमें स्थिर, इन चारों ग्रहोंकी स्फुट गणना कर स्फुटराशि आदिका जोड़ करना होगा। उसके नवांशकी संख्यासे भाईकी संख्या स्थिर करनी चाहिये। इनमें यदि किसी ग्रहके नीचराशि-अंश या शत्रु नवांश हो, तो उक्त फल पूर्ण नहीं होता। और यदि उच्चराशि-अंश हो तो उक्त फलसे दूना फल होता है। इन चारों ग्रहोंकी अपनी-अपनी दशा और अन्तर्दशा भोगके समय उनकी अनुकूलता तथा प्रतिकूलताके अनुसार भाईके शुभाशुभका विचार करना होगा।

अन्य मतसे भाईकी संख्याका निरूपण—मङ्गलके अष्टवर्ग-चक्रमें मङ्गलस्थित राशिके तृतीय स्थानमें जितनी फल रेखायें होंगी, उतने ही भाई होंगे। किन्तु उस मङ्गलका तीसरा स्थान मङ्गलके नीचगृह या शत्रुगृह होने पर उक्त फल नहीं होगा। भाई आदिको संख्या निरूपणके विविध स्थल आने पर वलवान् ग्रहसे भी फलकी कल्पना करनी होगी।

भ्रातृभावका स्वामी और भ्राताका एक ग्रह, इन दोनोंमें जो ग्रह वलवान् होगा, उसी ग्रहसे भ्रातृसंख्या बतलानी होगी।

भाई-बहन—यदि तीसरे घरका स्वामी ओजो राशिमें हो अर्थात् पुं ग्रहके क्षेत्रमें पुं ग्रह यदि देखता हो या पुं ग्रहके साथ हो तो भ्राता और तीसरे घरका स्वामी युग्म राशिमें हो पर अथवा चन्द्र या शुक्र उनको देखें या उनके साथ ही हों, तो बहन होती है।

सुखी और दीर्घायु भाईका योग—केन्द्रमें या त्रिकोणमें तीसरे घरका स्वामी शुभग्रहके घरमें हो, या शुभ ग्रहसे देखा जाता हो, या उसके साथ ही मौजूद हो तो उसका भाई सदा सुखी और लम्बी आयुवाला होता है। इस भाईसे वियोग नहीं होता।

माताके गर्भमें ही भाईके नाशका योग—शनिके तीसरे रहने पर माताके गर्भमें दो भाईयोंका नाश होता है।

बृहस्पति, शुक्र या बुध तीसरे रहने पर तीन भ्राता उत्पन्न होते हैं। उक्त ग्रह पापग्रहोंसे देखे जाने पर या पाप ग्रहोंके साथ रहने पर दो भाईयोंकी मृत्यु होती है। लग्न-स्थान या मङ्गलसे तीसरे शनि और नवें बुध रहने पर या मङ्गलसे तीसरे राहु स्थित हो और शुभग्रह उसे देखता हो या शुभग्रहके साथ हो, तो तीन बहिनोंका नाश होता है और उत्पन्न हुए लड़केको भुजा और पेटमें बहुतेरे चिह्न देखे जाते हैं। तीसरे घरमें बुध, चन्द्र तीसरे घरके स्वामीके साथ और भ्राता देनेवाला ग्रह शनिके साथ रहने पर बड़ी बहन, एक छोटा भाई और तीसरे भाईका नाश होगा। यदि तीसरा पति नीचस्थ और भ्रातृकारक राहुके साथ हो, तो तीन बड़े भाई होते हैं तथा छोटाभाई और बहन नहीं होती। केन्द्रके तीसरे घरके स्वामीके नवें और पांचवें स्थानस्थित भ्रातृकाग्रह बृहस्पतिके साथ उच्च स्थानमें रहने पर सहोदर होते हैं। इन बारहोंमें पहला, तीसरा, चौथा, सातवां, नवां और बारहवां भ्राता तथा इस योगमें उत्पन्न होनेवाला बालक मर जाता है। बाकी पांच भाई बड़ी आयुवाले होते हैं। इन बारह सहोदरोंके छः यमज होते हैं। बृहस्पति या चन्द्रके युक्त मङ्गल व्ययपतिके साथ हो कर तीसरे स्थान पर होनेसे ७ सहोदर होते हैं। इनमें दोकी मृत्यु हो जाती है। यदि लग्नके स्वामी और तीसरे घरके स्वामी आपसमें शत्रु या मित्र हों, तो छोटे भाईसे शत्रुता या मित्रता हुआ करती है। जिस-जिस भावपतिके साथ लग्नपतिकी शत्रुता और मित्रता होती है उसी-उसी भावसे ही शत्रुता और मित्रता होती है।

भाईके वियोग होनेका योग—वलहीन लग्नके स्वामी और तीसरे घरके स्वामी अथवा भ्राता होनेवाला ग्रह आपसमें शत्रु बन कर तीसरे या कष्टकर स्थानमें जाने पर उसी ग्रहकी दशामें और अन्तर्दशामें भ्राताके साथ झगड़ा तकरार और वियोग तथा उसके लिये धनका अपव्यय तथा भाईकी मृत्यु होती है।

भ्राताकी मृत्युका निरूपण—लग्नके स्वामीके स्फुट राशि आदिको छोड़ जो बाकी बचेगा उसी राशि-अंश आदिसे जो नक्षत्र हो, उस नक्षत्रमें यदि शनि आजाय तो भाईकी मृत्यु हो जाती है। लग्नके स्वामीके स्फुटसे

दशवें घरके स्वामी और मङ्गलके स्फुटको छोड़ जो बाकी बचेगा उस राशि-अंश पर या लग्नस्फुट, सहजस्फुट, दशमस्फुट और मङ्गलस्फुटको जोड़ देने पर जो जो लब्ध होगा उस स्फुटांशमें यदि शनि आ जाय, तो भ्राताकी मृत्यु होती है। ये चार स्फुटांश निर्दिष्ट नक्षत्र घटित जिस ग्रहकी दशा निरूपित होगी उस ग्रहकी दशा और अन्तर्दशामें भ्राताको सुख-सम्पद प्राप्त होता है। मङ्गलके स्फुटसे राहुस्फुटको छोड़ कर और राहुस्फुटसे मङ्गल-स्फुटको निकाल कर जो बाकी बचेगा, उस राशि-अंशसे पांचवें और नवें घरके स्वामीके उतने ही अङ्ग अंश पर वृहस्पतिके आने पर भ्राताकी मृत्यु होती है।

तीसरे गृहके स्वामी रविके साथ हो, तो बालक धीर होता है। चन्द्रके साथ रहने पर मानसिक धैर्य्यशाली, मङ्गलके साथ रहने पर दुष्ट, जड़, क्रोधी, बुधके साथ रहने पर सच्चे स्वभाव, वृहस्पतिके साथ रहनेसे धीरता गुण-युक्त और सर्वशास्त्र जाननेवाला, शुक्रके साथ रहने पर कामातुर, विलासी और कलहमें पटु, शनिके साथ रहनेसे जड़, राहुयुक्त होनेसे डरपोक और केतुके साथ होने पर पीड़ादायक होता है।

बलवान तीसरे घरके स्वामी शुभषड्वर्गमें स्थित होने-से सच्चे स्वभावका बालक होता है और तीसरे घरके स्वामीके नीचस्थ, विनष्ट, शत्रु-क्षेत्रगत वा पापग्रह-युक्त होनेसे बालक असात्विक होता है। भ्रातृभावमें रवि आदि नवग्रह हों तो निम्न-लिखित फल होता है। रविके भ्रातृस्थानमें रहने पर लड़का बलवान्, प्रतापी, विक्रमशाली, सहोदरसे भयभीत, तीर्थ-पर्य्यटक और युद्धमें शत्रु विजयी तथा राजाका अति प्रियपात्र हुआ करता है। दूसरे मतसे, रवि तीसरे रहने पर सहोदरकी मृत्यु और दूसरे ग्रह द्वारा रिपुनाश, धनवान्, स्त्री-सुखपूर्ण गुणवान्, धैर्यशील, प्रियजनका हितचिन्तक और सहनशील हुआ करता है। पूर्णचन्द्रके तीसरे भावमें रहने पर बालक अपने बाहुबलसे धन उपार्जन करता तथा सुन्दर उत्तमा पत्नी प्राप्त करता है। वह बालक दयाशील और अनेक नौकरोंके साथ तथा सहो-दरोंसे सुखी होकर विशेष सुखसे जीवन बिताता है। पापक्षेत्रगत तृतीय भावस्थ क्षीणचन्द्र बालककी बहिनका नाश करता है। शुभक्षेत्र-गत तृतीय भावा-पन्न पूर्णचन्द्र सुन्दर बहिनें देनेवाला होता है। जातका-भरणके मतसे चन्द्रके तीसरे रहने पर बालक हिंसक, घमंडी, कंजूस, कम बुद्धिवाला, भाईयोंके आश्रयमें रहनेवाला, निर्दय और रोगशून्य होता है।

मङ्गल तीसरे स्थानमें रहनेसे बालक अपने बाहुबल-से कमानेवाला, भाईके लिये दुःखी और तपश्चरणमें विफल हुआ करता है। उच्चस्थानका मङ्गल तीसरे भावा-पन्न होनेसे बालक खेतीके धनसे सौभाग्यशाली और विलासी होता है तथा नीचस्थानमें या शत्रुके घर रहनेसे धन-सुख-विहीन और निन्दित घरमें रहनेवाला होता है।

बुधके तीसरे भावमें रहने पर बणिकोंसे मित्रता और उत्पन्न हुआ बालक वाणिज्य वृत्तिवाला होता है और अपने बुद्धिबलसे अत्यन्त निरंकुश व्यक्तिको भी अपने अधीन कर लेता है। यह बहुत विनीत होता है। यह बालक बहुत भाईवाला तथा उनके आश्रयमें रहते हुए यौवनकालमें सम्पत्ति-सुखके सम्भोगमें बहुत लव-लीन रहता और वृद्धावस्थामें संसार-त्यागी हो कर धर्ममें रत होता है। पापग्रहोंके साथ और अस्तगत बुधके तीसरे रहनेसे बहिनकी हानि होती है और शुभ-ग्रहोंके साथ शुभ ग्रहोंके देखे जाने पर तथा उदित रहने पर भ्राता और बहिनके लिये शुभ हुआ करता है।

वृहस्पतिके तीसरे भावमें रहने पर बालक छोटा परा-क्रमहीन और निर्बल होता है। किन्तु यह बालक भाई-के सुखसे सुखी, कृतघ्न और मित्र द्वारा सम्मानित तथा उपकृत होने पर भी उनके प्रत्युपकारकी इच्छा नहीं करता। भोग्योदय होने पर भी इसको उतना धन नहीं मिलता। यह बालक सुजनता-रहित, कंजूस, पुत्र-कलत्र-सुखसे वञ्चित, धनवान होने पर भी निर्द्धन तथा अग्निमान्द्य रोगसे पीड़ित और अधिक कुटुम्बवाला होता है।

शुक्रके तीसरे भावमें रहने पर बालक स्त्री-प्रेमी और मित्र-रहित होता है। इसको स्त्री अल्प-प्रसूता मिलेगी, इससे सन्तान-सुखकी लालसा पूर्ण नहीं होगी। यह बालक डरपोक और क्रूर स्वभावका, धन रहने पर भी खर्च

करनेमें कञ्जूस; पतला, दुबला, कामी साधुओंसे द्वेष करनेवाला और रूपवती वहिनवाला होता है।

शनिके तीसरे भावमें रहने पर बालकका हृदय गर्म होता है अर्थात् यह बालक सदा मानसिक सन्ताप भोगा करता है। यह बालक विशेष उद्योगी होता है। इसका भाग्योदय कभी भी निर्विघ्न नहीं होता। यह बालक अग्रशोची, अति दुर्मुख, राजद्वारमें सम्मानित, सवारी पर चलेनेवाला, गांवमें श्रेष्ठ, पराक्रमशील, बहुत लोगोंका पालन करनेवाला, भाईके दुःखसे दुःखित, विदेशवासी, नीचोंका संग-साथ रखनेवाला और अधर्मी होता है तथा इसकी भुजामें रोग रहता है।

राहुके तीसरे भावमें रहने पर बालक बाहुबलशाली और मल्लयुद्ध-विद्यामें निपुण होता है। इसका भाई नहीं जीता ; यदि जीता भी है, तो अङ्गभङ्ग हो कर। यह बालक धनवान, वीरभावापन्न, स्त्री-पुत्र और मित्रादिके सुखसे सुखी होता है। दूसरे गृहरिष्ट कुछ नुकसान नहीं पहुंचाते। राहुतुङ्गी होने पर इसके पास हाथी घोड़े और बहुतेरे नौकर चाकर हुआ करते हैं।

केतुके तीसरे भावापन्न होने पर बालक शत्रुनाश करता है। इस बालकके धन, भोग, विवाद, ऐश्वर्य और तेज अधिकतासे बढ़ता है। उसके मित्रोंका नाश या उसके मित्र रोगपीड़ित रहते हैं। उसको सर्वदा भय, विकलता और चिन्तासे चिन्तित होना पड़ता है। इसके हाथमें रोग, सुन्दर स्त्रीसे सम्भोग करनेवाला, मानसिक दुःखसे दुःखित और मित्रसम्बन्धीय दुःखसे सदा दुःखी रहता है।

यदि तीसरे घरमें पापग्रह हो और वह उसीमें रहता हो तो उसके सहोदर भाई नहीं उत्पन्न होते। इसके विपरीत होनेसे विपरीत फल भी होता है, यानी तीसरे घरमें यदि शुभग्रह हो ,उसमें शुभग्रहोंका ही वास हो, तो उसके कई सहोदर भाई होते हैं। यही भ्रातृस्थान शुभग्रहोंका घर हो और उसमें सभी शुभग्रह रहते हों या इस घरको शुभग्रह देखते हों, तो भी सहोदरोंकी बढ़ती ही रहती है। किन्तु पापग्रह तथा शुभग्रहका मिलान होनेसे शुभाशुभ फल भी हुआ करता है।

तीसरे घरके जितने भी नवांश चन्द्र और मङ्गल द्वारा देखे जाते हैं, उतने ही भ्राता और वहिनें होती हैं। किन्तु इन चन्द्र और मङ्गलके शुभाशुभ ग्रहके दृष्टिके अनुसार फल जानना होगा। यदि शनि शरीरस्थानमें रहे और मङ्गल उसको देखता हो, तो उसके सभी सहोदर मर जाते हैं। यदि यह शरीरमें स्थित शनि, वृहस्पति और शुक्र द्वारा देखा जाता हो, तो निश्चय ही सहोदरोंका मङ्गल होता है। शरीरस्थित शनिको यदि मङ्गल या बुध देखता हो, तो सब सहोदरोंका नाश हो जाता है।

यदि तीसरा घर चन्द्रका क्षेत्र हो, और यदि मङ्गल देखता रहे तो उसके सभी भाई रोगी होते हैं। यदि रवि अपने घरमें हो, और यह घर यदि धर्मस्थान हो, तो सहोदरके जीनेमें संशय होता है। किन्तु एक भाई दीर्घजीवी तथा राजतुल्य होता है। यदि तीसरे भावमें चन्द्र हो, वह चन्द्र किसी पाप ग्रहसे तीसरा न हो और उस पर किसी शुभग्रहकी दृष्टि न पड़ती हो, तो उसकी माताकी मृत्यु होती है। यदि तीसरे घरमें रवि हो तो बड़े भाईकी, शनि हो तो छोटे भाईकी मृत्यु होती है और मङ्गल हो तो बड़े छोटे दोनों भाइयोंकी मृत्यु हो जाती है।

ज्योतिष पण्डित भाईके स्थानमें सहोदर, नौकर, अनुजीवी और पराक्रमका विचार किया करते हैं।

(जातकाभरण, कल्पतरु, वृहज्जातकादि)

भ्रातृमत् (सं० त्रि०) भ्राता विद्यतेऽस्य मतुप्। भ्रातृयुक्त।

भ्रातृव्य (सं० पु०) भ्रातुरपत्यमिति (भ्रातुर्व्यच। पा ४।१।१४४) व्यत्। भ्रातृपुत्र, भतीजा।

भ्रातृश्वशुर (सं० पु०) पत्युर्ज्येष्ठभ्राता श्वशुर इव पूज्यत्वात्। पतिका बड़ा भाई, जेठ। पर्याय—श्वशुरक। भ्रातुः श्वशुरः। २ भ्रातृपत्नीका पिता, भाभीका बाप।

भ्रात्र (सं० क्ली०) भ्रातुरिदं, शिवादित्वादण्। भ्रातृसम्बन्धी।

भ्रात्रीय (सं०.पु०) भ्रातुरपत्यं पुमानिति भ्रातृ (भ्रातुर्व्यच। पा ४।१।१४४) इत्यत्र चकाराच्छश्च इति काशिकोक्तेः छ। १ भ्रातृपुत्र, भतीजा। (त्रि०) २ भ्रातृसम्बन्धी।

भ्रान्त (सं० त्रि०) भ्रम-कर्त्तरि-क्त (अनुनासिकस्येति। पा

६।४।१५) इति दीर्घः। १ भ्रान्तिविशिष्ट, जिसे भ्रान्ति या भ्रम हुआ हो। २ व्याकुल, घबराया हुआ। ३ उन्मत्त। ४ घुमाया हुआ। (पु०) ५ भ्रमण, घूमना फिरना। ५ घूर्णायमान। ६ मत्तहस्ती, मस्त हाथी। ७ राजधुस्तुर, राज-धतूरा। ८ तलवारके हर हाथोंमें-से एक। इसके द्वारा दूसरेके चलाये हुए शस्त्रको व्यर्थ किया जाता है।

भ्रान्तापह्नुति (सं० स्त्री०) एक काव्यालङ्कार। इसमें किसी भ्रान्तिको दूर करनेके लिये सत्य वस्तुका वर्णन होता है।

भ्रान्ति (सं० स्त्री०) भ्रम-क्तिन् (अनुनासिकस्य किज्-झलोःक्ङिति। पा ६।४।१५) इति दीर्घः। १ भ्रम, धोखा। २ संशय, सन्देह। ३ भ्रमण। ४ पागलपन। ५ आवर्त्त, भंवरी। ६ भूलचूक। ७ मोह, प्रमाद। ८ एक प्रकारका काव्यालङ्कार। इसमें किसी वस्तुको दूसरी वस्तुके साथ उसको सामानता देख कर भ्रमसे उसे दूसरी ही वस्तु समझ लेना वर्णित होता है।

भ्रान्तिमत् (सं० त्रि०) भ्रान्तिरस्त्यस्य मतुप्, मस्य व। १ भ्रमज्ञानयुक्त। (पु०) २ अर्थालङ्कारभेद।

इसका लक्षण—

"साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान प्रतिभोत्थिता।"

(साहित्यद० १०।६८१)

साम्यविषयमें एक वस्तुमें अन्य वस्तुका ज्ञान होनेसे यह अलङ्कार होता है, परन्तु यह ज्ञानप्रतिभावलसे उत्पन्न होना चाहिये।

भ्रान्तिहर (सं० पु०) भ्रान्तिं हरतीति हृ-कर्त्तरि पचाद्यच्। १ मन्त्री। मन्त्रणा द्वारा भ्रान्ति दूर होती है, इसीसे मन्त्रीको भ्रान्तिहर कहते हैं। (त्रि०) २ भ्रमनाशक।

भ्राम (सं० त्रि०) भ्रम-कर्त्तरि ज्वलादित्वात् ण। १ भ्रमयुक्त। (पु०) २ सह्याद्रिवर्णित एक राजा।

भ्रामक (सं० पु०) भ्रामयति भ्रमं जनयतीति भ्रम-णिच, (ण्वुलतृचौ। पा ३।१।१३३) इति ण्वुल्। १ शृगाल, गीदड़। २ सूर्यावर्त्त। ३ प्रस्तरभेद, चुंबक पत्थर। ४ कान्तिलोहा। (त्रि०) ५ भ्रममें डालनेवाला, बहकानेवाला। ६ सन्देह उत्पन्न करनेवाला। ७ चक्कर दिलानेवाला, सन्देह उत्पन्न करनेवाला। ८ धूर्त्त, चालबाज।

भ्रामर (सं० क्ली०) भ्रमरैः कृतं सम्भृतमिति भ्रमर (क्षुद्राभ्रमर वटरपादपादञ्। पा ४।३।११९) इति अञ्। १ मधु, शहद। इसका गुण—रक्तपित्तनाशक, मूत्रजाड्यकर, गुरु, स्वादुपाक, अभिष्यन्दी। मधु देखो। २ नृत्यविशेष, एक प्रकारका नाच। इसमें बहुतसे लोग मंडल बना कर नाचते हैं। पर्याय—रास, मण्डलनृत्य, हल्लीश। ३ प्रस्तरविशेष, चुम्बक पत्थर। ४ अपस्माररोग। ५ दोहेका दूसरा भेद। इसमें २१ गुरु और ६ लघु मात्राएं होती हैं। (त्रि०) ६ भ्रमरसम्बन्धी, भ्रमरका।

भ्रामरिन् (सं० त्रि०) भ्रमरं भ्रमरस्येव घूर्णनवत्त्वात् रूपमस्य, इनि। अपस्मार-रोगयुक्त, जिसे अपस्मार रोग हुआ हो।

भ्रामरी (सं० स्त्री०) भ्रमरस्यायं भ्रामरो भ्रमरवद् वर्णः सोऽस्या अस्तीति, अर्शआद्यच् ङीप्। १ पार्वती। भगवतीने कहा था,—अरुणाक्ष नामक महासुरके विघ्न उत्पादन करने पर, मैं जगत्की शान्तिके लिये षट्पद-विशिष्ट भ्रमरमूर्त्ति धारण कर उस महासुरका संहार करूंगी। इस कारण मेरा नाम भ्रामरी होगा। २ पुत्रदात्री-लता।

भ्राश्य (सं० क्ली०) आयुध, हथियार।

भ्राष्ट्र (सं० क्ली०) भ्रस्ज-ष्ट्रन्। १ आकाश। २ पात्रविशेष, वह बरतन जिसमें भड़भूंजे अनाज रख कर भूनते हैं।

भ्राष्ट्रकि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

भ्राष्ट्रज (सं० त्रि०) भूना हुआ।

भ्राष्ट्रवती (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

भ्राष्ट्रेय (सं० पु०) वंश या जातिभेद।

भ्रास्त्रिक (सं० पु०) शरीरकी एक नाड़ीका नाम।

भ्रूकुंस (सं० पु०) भ्रुवः कुंस्यति एरच्, प्रत्ययः, ह्रस्वश्च वा। स्त्री-वेशधारी नर्त्तक पुरुष, वह जो स्त्रीका वेशधारण करके नाचता हो।

भ्रूकुटी (सं० स्त्री०) भ्रुवं कुटिकौटिल्यमिति षष्ठीसमासः, 'अभ्रूकुमसादीना' मिति वा ह्रस्वः। १ क्रोधादि द्वारा भ्रूकौटिल्य, क्रोधके मारे भौंह चढ़ाना। २ भृकुटी, भौंह।

भ्रूकुटीमुख (सं० क्ली०) १ भ्रूभङ्गियुक्त मुख। २ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप।

इस दिन अरुणोदयकालमें यथाविधि सङ्कल्प करके बेर और अकवनके सात सात पत्ते सिर पर रख कर निम्नोक्त मन्त्रसे गङ्गा-स्नान करे। मन्त्र—

"यद्‌यजन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु।
तन्मे रोगंच शोकंच माकरी हन्तु सप्तमी॥"

मकरसप्तमीमें स्नान करनेसे सप्तजन्म-कृत पाप और रोग-शोक जाता रहता है। स्नानके बाद सात बेरके फल और सात अकवनके पत्तों द्वारा श्रीसूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। अर्घ्यमन्त्र—

"ओं जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके।
सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते रविमण्डले॥"

इसके बाद प्रणाम करना चाहिये। प्रणाम मन्त्र—

"ओं सप्तसप्तिवह प्रीत सप्तलोकप्रदीपन।
सप्तम्यां हि नमस्तुभ्यं नमोऽनन्ताय वेधसे॥"

(कृत्यतत्त्व)

मकरा (हिं० पु०) १ मड़ुवा नामक अन्न। २ भूरे रंगका एक कीड़ा। यह दीवारों और पेड़ों पर जाला बना कर रहता है। इसकी टांगें बड़ी बड़ी होती हैं। ३ हलवाइयों-की एक प्रकारकी घड़िया या चौघड़िया। यह सेव बनानेके काम आता है। इसका आकार चौकी-सा होता है जिसमें चालनीकी तरह छेदवाला लोहेका एक पात्र जुड़ा होता है। इसी पात्रमें घोला हुआ बेसन भर कर ऊपरसे एक हातसे दवाते हैं जिससे नीचे सेव बन कर गिरते जाते हैं।

मकराकर (सं० पु०) मकराणामाकरः ६-तत्। समुद्र।

मकराकार (सं० पु०) मकरस्येवाकारो यस्य। १ षड्-ग्रन्थ, कण्टककरञ्ज। (त्रि०) २ मकर या मछलीके आकारका।

मकराकृत (सं० त्रि०) मकर या मछलीके आकार-वाला।

मकराक्ष (सं० पु०) खरका पुत्र और रावणका भतीजा। कुम्भ और निकुम्भके मारे जाने पर यह रावणके कहनेसे युद्धमें गया था और रामके द्वारा मारा गया था।

मकराङ्क (सं० पु०) मकरस्तदाकारोऽङ्कश्चिह्नं यस्य। १ कामदेव। मकराऽङ्कोऽस्य। २ समुद्र। ३ मनुभेद।

मकरानन (सं० पु०) शिवानुचर-भेद, शिवके एक अनु-चरका नाम।

मकराना—राजपूतानेका एक प्रदेश। यहांका संगमरमर बहुत प्रसिद्ध होता है।

मकरायण (सं० त्रि०) मकर-सम्बन्धीय।

मकराराई (हिं० स्त्री०) काली राई।

मकरालय (सं० पु०) आलीयतेऽस्मिन्निति आलयः, मकराणामालयः। समुद्र।

मकरावास (सं० पु०) मकरस्य आवासः। समुद्र।

मकराश्व (सं० पु०) मकर पर सवार होनेवाला, वरुण।

मकरासन (सं० क्ली०) रुद्रयामलोक्त पूजाङ्ग आसनभेद। तान्त्रिकोंका एक आसन जिसमें हाथ और पैर पीठकी ओर कर लिये जाते हैं।

मकरिन् (सं० पु०) मकरोऽस्यास्तीति इनि। १ समुद्र। २ सन्निपात ज्वरविशेष।

मकरिका (सं० स्त्री०) मकराकार पत्रावली।

मकरिकापत्र (सं० पु०) मछलीके आकारका बना हुआ चन्दनका चिह्न। इसे प्राचीन कालमें स्त्रियां अपनी कन-पटियों पर बनाती थीं।

मकरी (सं० स्त्री०) १ मगरकी मादा, मगरनी। २ एक प्रकारका वैदिकगीत। ३ चक्कीमें लगी हुई एक लकड़ी। यह करीव करीव आठ अंगुलकी होती है और किल्लेकी नोंक पर रख कर तथा इसके दोनों सिरों पर जोती लगा कर जुएसे बांधी रहती है। इस जोतीमें दोनों ओर छोटी २ लकड़ियां लगी होती हैं। उन लकड़ियोंके घुमानेसे ऊपर का पाट आवश्यकतानुसार ऊपर उठाया या नीचे गिराया जा सकता है। जब इसे ऊपरको ओर करते हैं, तब चक्कीके ऊपरका पाट भी कुछ ऊपर उठ जाता है जिससे आटा कुछ मोटा और हरदरा होने लगता है। जब इसे घुमा कर कुछ नीचे करते हैं, तब आटा महीन होने लगता है। ४ जहाजमें फर्श या खंभों आदिमें लगा हुआ लकड़ी या लोहेका चौकोर टुकड़ा। इसके अगले दोनों भाग अंकुसके आकारके होते हैं और उनमें रस्सा आदि बांध कर फंसा देते हैं।

मकरीपत्र (सं० क्ली०) मकरिकापत्र देखो।

मकरीप्रस्थ (सं० पु०) मकर्या उपलक्षितः प्रस्थः। मकरी सम्बन्धीय प्रस्थ।

मकरीलेखा (सं० स्त्री०) चित्रभेद।

मकरूह (फा० वि०) १ अपवित्र, नापाक। २ घृणित, जिसे देख कर घृणा उत्पन्न हो।

मकरेड़ा (हिं० पु०) ज्वार या मक्केका डंठल।

मकरौरा (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा कीड़ा। यह अकसर आमके दरख्तों पर चिपठा रहता है।

मकलई (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गोंद जो आदनसे बम्बईमें आता है। यह सफेद या लाली लिये पीले रंगका होता है और इसके गोल गोल दाने होते हैं। मकालिया नामक बन्दरगाहसे आनेके कारण इसे मकलई कहते हैं।

मकवन्—पश्चिम वङ्गवासी एक पहाड़ी जाति।

मकष्ट (सं० पु०) ऋषिभेद।

मकसद (अ० पु०) १ मनोरथ, मनोकामना। २ अभिप्राय, तात्पर्य।

मकसूद (अ० वि०) १ उद्दिष्ट, अभिप्रेत। (पु०) २ अभिप्राय, मतलब। ३ मनोरथ।

मकां (फा० पु०) गृह, घर।

मकाई (हिं० स्त्री०) बड़ी जुन्हरी, ज्वार।

मकान (फा० पु०) १ गृह, घर। २ निवासस्थान, रहनेकी जगह।

मकाम (फा० पु०) मुकाम देखो।

मकार (सं० पु०) म-स्वरूपे कार। १ म-स्वरूपवर्ण। मकारादिवर्णे आद्यक्षरेऽस्त्यस्य अच्। २ मद्य, मांस, मत्स्य, मैथुन और मुद्रारूप मकारादि वर्णयुक्त तन्त्रोक्त पदार्थपञ्चक।

मकु (हिं० अव्य०) १ चाहे। २ वरन्, बलिक। ३ कदाचित, शायद।

मकुआ (हिं० पु०) बाजरेके पत्तोंका एक रोग।

मकुट (सं० क्ली०) मङ्क्तेऽनेनेति मकि-भूषणे बाहुलकात् उट्, आगमशास्त्रस्यानित्यत्वात् न नुम्। मुकुट, शिरोभूषण। मुकुट देखो।

मकुति (सं० स्त्री०) मकि उति, पृषोदरादित्वात् साधुः। शूद्रशासन।

मकुना (हिं० पु०) १ वह नर हाथी जिसके दांत न हों अथवा छोटे दांत हों। २ बिना मूछोंका मनुष्य।

मकुनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कचौड़ी जो आटेके भीतर बेसन या चनेकी पीठी भर कर बनाई जाती है। २ एक प्रकारकी बाटी या लिट्टी। यह चनेका बेसन और गेहूं का आटा एकमें मिला कर उसमें नमक, मेथी, मंगरैला आदि मिला कर बाटीकी भांति भूभलमें बनाई जाती है।

मकुन्दपुर—विहार नदी-तीरवर्ती एक प्राचीन गण्ड ग्राम। यहां आज भी पूर्व-समृद्धिके अनेक निदर्शन इधर उधर पड़े नजर आते हैं। प्रवाद है, कि राजा मकुन्द वा मुचुकुन्दने इस नगरकी प्रतिष्ठा की थी। उनकी पत्नी रानी रूपमतीकी बनाई हुई रूपसागर नामक दिग्गी आज भी विद्यमान है। उसके चारों ओर सीढ़ियां लगी हुई है, किनारे पर कई एक शैव और विष्णुमन्दिर प्रतिष्ठित हैं। अभी भी अष्टभुज प्रभृति विभिन्न शिवमूर्त्ति, गणेश, पार्वती अष्टशक्ति, नवग्रह, गरुड़ासन, विष्णु और कल्की अवतार नारायणमूर्त्ति प्रभृति नाना स्थानोंमें पड़ी हुई हैं। यहांके भास्कर शिल्प पर लक्ष्य करके प्रत्नतत्वविद्गण इन्हें ६वीं शताब्दीके पहलेका बना हुआ अनुमान करते हैं।

एतद्भिन्न यहां एक दुर्गवेष्टित राजप्रासाद नजर आता है। उसकी दीवार खाई और प्राकारादि उतने सुदृढ़ और दुर्भेद्य नहीं हैं। उनके अनेकांश वर्त्तमान ढंग पर बने हुए हैं। कहते हैं, कि स्थानीय शेष हिन्दूराजाके दीवानने उक्त दुर्ग बनवाया था।

मकुर (सं० पु०) मङ्क्यते इति मकि- (मकुरदर्दुरौ। उण् १।४१) इति उरच्। १ कुलालदण्ड, कुम्हारका डंडा जिससे वह चाक घुमाता है। ३ दर्पण, शीशा। ४ मुकुल, कली। ५ बकुलवृक्ष, मौलसिरी।

मकुल (सं० पु० क्ली०) मङ्क्यते भूषयति वृक्षं मकि-बाहुलकादुलच्। १ बकुल, मौलसिरी। २ मुकुलकली।

मकुलक (सं० पु०) दण्डीवृक्ष।

मकुष्टक (सं० पु०) मकि-भूषायां-उ, पृषोदरादित्वात् साधु मकुः। मकुं भूषां स्तकति प्रतिहन्तीतिस्तक-पचाद्यच्। वनजात मुद्ग, मोठ नामक अन्न। पर्याय—मयष्ट, वनमुद्ग, क्रमीलक, अमृत, अरण्यमुद्ग, वल्लीमुद्ग। गुण—कषाय, मधुर; रक्तपित्त, ज्वर और दाहनाशक, पथ्य, रुचिकर और सर्वदोष जयकारक। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—वातवर्द्धक, ग्राहक, कफ-पित्तनाशक, लघु, वमननाशक, क्रमिवर्द्धक और ज्वरनाशक।

मकुष्ठ (सं० पु०) मङ्कते मङ्क्यते इति वा वाहुलकात् उ. मकुः तिष्ठतीति स्था-क स्थ, मकुश्चासौ स्थश्चेति (पूर्व-पदादिति। पा ८।३।१०६) इति षत्वं। १ व्रीहिभेद, एक प्रकारका धान। २ वनमुद्ग, मोठ नामक अन्न। (त्रि०) ३ मन्थर, मट्ठर।

मकुष्ठक (सं० पु०) मकुष्ठ-स्वार्थे कन्। वनमुद्ग, मोठ नामक अन्न।

मकूलक (सं० पु०) मकि-मण्डने पिच्छादित्वादुलच्, बाहुलकादनुषङ्गलोपः, स्वार्थे कन्। मुकूलक, दन्ती-वृक्ष।

मकूनी (हिं० स्त्री०) मकुनी देखो।

मकूला (अ० पु०) १ कहावत, कहनूत। २ वचन, कथन।

मकेरा (हिं० पु०) वह खेत जिसमें ज्वार या बाजरा बोया जाता है।

मकेरुक (सं० पु०) कृमिरोग, चरकके अनुसार एक प्रकारका रोग। इसमें मलके साथ कोड़े निकलते हैं।

मको (हिं० स्त्री०) मकोय देखो।

मकोइचा (हिं० पु०) मकोई देखो।

मकोइचा (हिं० वि०) मकोयके रंगके समान, ललाईको लिये पीला।

मकोई (हिं० स्त्री०) जंगली मकोय जिसमें कांटे होते हैं।

मकोड़ा (हिं० पु०) कोई छोटा कोड़ा।

मकोय (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका क्षुप। इसके पत्ते गोलाई लिये लम्बोतरे होते हैं। इसमें सफेद रंगके छोटे फूल लगते हैं। फलके विचारसे यह क्षुप दो प्रकारका होता है। एकमें लाल रंगके और दूसरेमें काले रंग-के बहुत छोटे छोटे फल लगते हैं। इसकी पत्तियों और फलोंका व्यवहार ओषधिके रूपमें होता है। इसे कावेया भी कहते हैं। २ इस क्षुपका फल। ३ एक प्रकारका कंटीला पौधा। यह प्रायः सीधा ऊपरकी ओर उठता है। सुपारीके आकारके इसमें फल लगते हैं। जब ये फल पकते हैं, तब कुछ ललाई लिये पीले रंगके होते हैं। ये फल एक प्रकारके पतले पत्तोंके आवरणमें बंद रहते हैं। फल खट-मिट्ठा होता है और उसमें एक प्रकारका अम्ल होता है जिसके कारण वह पाचक होता है। ४ इस पौधेका फल, रसभरी।

मकोसल (हिं० पु०) एक प्रकारका ऊंचा वृक्ष जो सर्वदा हरा-भरा रहता है। इसकी लकड़ी अन्दरसे लाल और बहुत कड़ो तथा दृढ़ होती है। यह इमारतके काममें आती है। आसाममें इससे नावें भी बनाई जाती हैं।

मकोहा (हिं० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका कीड़ा। यह करीब करीब एक इञ्च लंबा होता है। यह प्रायः अनावृष्टिके समय होता है और फसलको बहुत हानि पहुंचाता है।

मक्कर (हिं० पु०) १ छल, कपट। २ नखरा।]

मक्कल्ल (सं० पु०) मक्कं गमनं आत्यन्तिकगतिं मरणं लाति आदत्ते योजयतीति ला-क, पृषोदरादित्वात् लका-रागमे साधुः। एक प्रकारका स्त्री-रोग। इसमें प्रसवके अनन्तर प्रसूता स्त्रीकी नाभिके नीचे, पसलीमें, मूत्राशयमें वा उसके ऊपर वायुकी एक गांठ-सी पड़ जाती है और पीड़ा होती है। इस रोगमें पक्वाशय फूल जाता है और मूत्र रुक जाता है।

मक्का—मुसलमानोंका पवित्र और सर्वप्रधान प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र। अरबके हेजाज-वंशीय राजाओंकी राजधानी। यह अक्षा० २१° ३०´ उ० तथा देशा० ४° २०´ पू०में अव-स्थित है। इस नगरमें इसलाम-धर्मके सुविख्यात वीर महम्मदका जन्म हुआ था। महम्मदके अभ्युत्थानके बहुत पहलेसे हो ग्रन्थोंमें इस नगरकी प्रसिद्धि पाई जाती है।

लोहितसागरके किनारेसे पैंतीस कोसकी दूरी पर पहाड़ी भूमिमें मुसलमानोंका यह पवित्र तीर्थ मक्का नगर विद्यमान है। नगरकी जड़ पहाड़ी चौरस भूमिमें स्थापित होने पर भी उसके निकटके पहाड़ोंमें कितने ही मकान दिखाई देते हैं। नगरके चारों ओर २०० से ४०० फीट ऊंची पहाड़ी चहारदीवारी है, यहां एक भी वृक्ष लतादि दिखाई नहीं देती।

तीर्थके यात्रियोंके सुभीतेके लिये यहांके पथ बड़े चौड़े बनाये गये हैं। दोनों ओरके घर पत्थरके बने हुए दिखाई देते हैं। इसकी निर्माण-प्रणाली बहुत कुछ पश्चिमी सभ्यताके अनुसार ही है। पथ चौड़े होने पर भी उस पर पत्थर नहीं जोड़े गये हैं। गर्मीके दिनोंमें चलने तथा उत्तप्त वायुसे परिचालित बालूकी छीटोंसे मनुष्यको जैसा दुःख होता है, वैसे ही बरसात

काचड़का दुःख भी भोगना पड़ता है। हजके समय जानेवाले मुसाफिरोंकी इतनी भीड़ मक्काकी गलियोंमें दिखाई देती है कि जिसकी हद नहीं। शायद ही ऐसी भीड़ और कभी दिखाई देती हो।

यहां जलकी बड़ी कमी रहती है। कुएं आदिका जल सब तुनखरा है यानी समुद्रके जलकी तरह लवणाक्त है। केवल मक्काकी मसजिदके पास ही 'जमजम' नामका एक कुआं है, जिसका जल स्वादु-विहीन होने पर भी लोग पीते हैं। सिवा इसके साधारण लोगोंके पानी पीनेके लिये कहीं कहीं तो वर्षाका जल सञ्चित किया जाता है और आरफत पहाड़से एक नल निकाल कर मक्केमें जल लाया जाता है। यह आरफत पहाड़ मक्केसे ६-७ घण्टेकी राह है।

नगरके दो स्थानोंमें यह नल खोला जाता है। इसके सिवा नलके भीतर ही से कहीं कहीं फव्वारा हैं। इन फव्वारोंसे जलकी पतली धारा निकलती रहती है। प्रत्येक फव्वारेके पास नगर राजकर्मचारी रहता है। वह गुलामों या पानी ढोनेवाले भिस्तियोंसे प्रत्येक मसकके लिये कुछ कर वसूल किया करता है। नगरके धनी मनुष्योंके सिवा अन्य साधारण लोगोंके मकानोंमें किराये पर उठानेके लिये भी कमरे बनाये जाते हैं। ये मकान एकसे चार मञ्जिल तक बनाये जाते हैं। इनकी बनावट अत्यन्त सुन्दर है। इनमें अपने रहनेके बाद जो कमरे बचते हैं, उनको लोग यात्रियोंके लिये सुसज्जित कर रखते हैं, उसमें यात्रियोंके व्यवहारोपयोगी वस्तुओंका संग्रह रहता है। पासमें ही रसोई घर भी रहता है। मकान-मालिकोंको यात्रियोंसे जो किराया मिल जाता है, उससे ही उनका वर्ष दिन तक निर्वाह हो जाता है। साधारण अट्टालिकाओंमें पांच नगरके राजाकी हैं, दो विद्यालय हैं और मुख्य मसजिद।

पहले ही कहा जा चुका है कि, समूचा नगर पहाड़ी भूमिमें बसा हुआ है। यूनानके पुराने यूनानी महम्मद साहबके जन्मसे बहुत पहले भी लोग इस स्थानके बारेमें जानते थे। वे इसे मकवरा कहते थे।

नगरके आस पास किसी तरहकी फसल पैदा नहीं होती। वहांके रहनेवाले दूसरे देशसे आये अन्न-वस्त्रसे ही अपना गुजारा करते हैं। नगरकी रक्षाके लिये नगरके समीप ही एक किला बना हुआ है।

इस समय नगरके आधेसे अधिक मकान खाली पड़े हैं। इससे यहांकी जनसंख्या भी कम हो गई है। महम्मदके पूर्वपुरुष हुसैनने इस नगरकी बहुत उन्नति की थी। वे सीरिया आदि देशोंसे हर वर्ष नाना प्रकारकी बेचनेकी चीजें मक्केमें लाते थे।

महम्मदके मरनेके बाद उनके वारिसोंने खलीफाकी पदवी धारण की। इन्होंने निकटके कई राज्यों पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमा लिया और उन राज्योंमें इसलाम धर्मका प्रचार कर मक्काका प्राधान्य स्थापित किया। महम्मदके दूसरे उत्तराधिकारी ओमरने मिस्रराज्यके अलेकजेण्ड्रिया नगरके पुस्तकालयमें आग लगा कर विधर्मीकी विद्वेषिताका चिरकलङ्कका टीका लगा लिया था।

खलीफा वंशके अधःपतनके बाद मक्काकी राजधानी तुर्कोंके हाथ लगी। उसी समयसे यह मक्का तुर्कोंके अधीन है। मक्कामें कावा या परमेश्वरका आलय नामक साधना-मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। कुछ आदमी इसे वेइतुल्लाका प्रसाद या एलहारम भी कहते हैं। यह कावा चौकोन है। इसके चारों ओर स्तम्भ लगे हुए हैं। पूर्व ओर चार चार और बाकी सब ओर तीन तीन स्तम्भ या खम्भे लगे हुए हैं। ये खम्भे आपसमें जुटे हुए हैं। चार चार खम्भों पर एक एक बुर्ज बना हुआ है। वहां जानेवाले मुसाफिरोंसे मालूम हुआ है कि उसमें साढ़े चार सौ ले कर पांच सौ तक खम्भे लगे हुए हैं और १५२ बुर्ज मौजूद है।

यह कावा जमीनसे नीचे दिखाई देता है। इसमें प्रवेश करनेके सात दरवाजे हैं। हर एक दरवाजेके समीप नीचे उतरनेके लिये सुन्दर सीढ़ियां बनी हुई हैं। इन सीढ़ियांसे धीरे धीरे मसजिदके फर्शको पार कर तब 'कावा' में जाना पड़ता है। धर्म-मन्दिरके ठीक बीचमें कावा मौजूद है। यह अन्दाज ४४ फीट लम्बा, ३५ फीट चौड़ा और ४० फीट ऊंचा है। नीचे लगे हुए पायेदार खम्भों पर छत पाटी हुई है। इसके भीतर सैकड़ों झाड़ फानूस लटके दिखाई देते हैं।

काबाके सम्बन्धमें वहांके लोगोंका कहना है कि, इब्राहिमने खुदाकी आज्ञासे इसे बनाया था। यही उनका उपासना मन्दिर था। दूसरे लोगोंका कहना है, कि सृष्टि-रचनाके दो हजार वर्ष पहले स्वर्गमें या बहिश्तमें यह बना था, किन्तु बाबा आदमने इसे इस धरती पर ला कर इस की स्थापना की। इस बातकी सचाई साबित करनेके लिये ये जो कहानी कहते हैं, उसको हम यहां लिख देते हैं:—

"जगत्के आदि सृष्टिकर्त्ता बाबा आदम और हवा ईश्वर (खुदा)-की आज्ञाकी अवहेलना करनेके कारण धरती पर गिरा दिये गये। इनमें एक बाबा आदम लङ्कामें किसी पहाड़ पर गिरे और हवा अरबमें। बाबा आदम हवासे विलग हो कर बहुत दुःखित हुए। उनकी चञ्चलता और विकलता इतनी बढ़ी कि उन्होंने हवासे मिलनेके लिये ईश्वरसे वन्दना करने लगे। ईश्वरने उनको अपने किये अपराधके दण्ड भोगते हुए दुःखित देख 'जिब्राइल' नामक दूतको उनके पास भेजा। दो सौ वर्षके बाद जिब्राइलकी मददसे अराफत पहाड़ पर हवा और बाबा आदमका सम्मिलन हुआ। इसके बाद ईश्वरसे बाबा आदमने उपासना-मन्दिर बनानेके लिये प्रार्थना की। आदम पर खुश हो कर ईश्वरने अपने कई कारीगरोंको मेघ-मन्दिर तय्यार करनेके लिये भेजा। वही काबा आज अरबमें मौजूद दिखाई देता है। बाबा आदम इस मन्दिरकी सात बार परिक्रमा करते थे। उनकी मृत्युके बाद यह मन्दिर फिर स्वर्गमें चला गया। इसके बाद उन्हीं आदमके लड़के शेखने पत्थर और गिलावेके संयोगसे एक मन्दिर तय्यार किया। यह भी महाप्रलयमें नष्ट हो गया।

"बहुत दिनोंके बाद इब्राहिमकी स्त्री हेगर और पुत्र इस्माइल अपने मालिक द्वारा देशसे निकाल दिये गये। ये दोनों घूमते घामते चले जा रहे थे। प्याससे ये मृतप्राय हो रहे थे। ऐसे समय एक देवदूतने मेघ-मन्दिरके निकटके उस 'जिमजिम' कुएंको दिखा दिया। ये दोनों वहीं रह कर थकावट दूर करने लगे। कुछ ही समय बाद 'अमलिकत' वंशके दो आदमी अपने भगे हुए ऊंटको खोजते खोजते वहां आ निकले। घूमते घूमते यह बहुत थक गये थे और जोरके प्यासे थे। 'जमजम' कुंआ देख कर उन दोनोंको जानमें जान आई। कुंएका जल पी कर शान्त होने पर इस्माइल और उसकी माता से उनका परिचय हुआ। इस्माइल और हेगरकी सहकारितासे उन दोनों आदमियोंने मक्काशरीफको बनाया। कुछ दिनोंके बाद ईश्वरकी आज्ञासे इस्माइलने काबाको बनवाया। इस्मायलने इसके बनानेमें अपने पितासे बहुत मदद ली थी। इस्माइल जिस पत्थर पर खड़े हो कर काबाकी चहारदीवारीकी ईंट जोड़ते थे, वह पत्थर आज भी वहां रखा हुआ है। दीन ईमानके माननेवाले मुसलमान इस पत्थर पर इस्माइलके पैरोंका निशान देख सकते हैं, किन्तु दुःखका विषय है कि इब्राहिम तथा उनके पुत्र इस्माइलके पदचिह्नित वह पत्थर काबाकी तरह सम्मानित नहीं होता।"

दूसरे लोग कहते हैं, कि इब्राहिम और इस्माइल काबाको बना रहे थे, कि 'जिब्राइल' नामक एक स्वर्गीय दूतने उन लोगोंको पत्थरका टुकड़ा दिया। इस पत्थरके टुकड़ेके विषयमें एक दन्तकथा सुनाई देती है,— "जब बाबा आदम स्वर्गमें थे, तब उनके शरीर-रक्षकके रूपमें एक देवदूत नियुक्त था। धीरे धीरे पापकर्मोंमें रत हो कर उसके परिणाम-स्वरूप ईश्वर द्वारा दण्डित हो कर पत्थर बन गया। इब्राहिम तथा इस्माइलने इस पत्थरको आदरके साथ काबेमें रखा। यह गिरी हुई हालतमें शुभ्रवर्ण उज्ज्वल दीप्तिमान् मणि था। धीरे धीरे पापियोंके कर-स्पर्शसे यह काला हो गया है।"

काबाके चारों ओर चांदी मढ़ी हुई है। इसकी एक कोठरीमें दो खम्भे लगे हुए हैं। इन खम्भों पर श्रेणीबद्ध सोनेके चिराग जला करते हैं। काबाके निकट ही ३२ चोबोंकी एक चाँदनी है। इन सब चोबोंमें सात साथ चिराग जलते हैं। रातको यह काबा अपूर्व शोभा धारण करता है। काबाका निचला हिस्सा तथा छतको छोड़ कर सभी हिस्से हर साल काली किमखाबसे ढक दिये जाते हैं। हजके उत्सवके समय ये कपड़े तुर्क राजाओं द्वारा मिस्र राजधानी कायरोमें तय्यार होते हैं। इसके सिवा दीवारों तथा खम्भोंमें भी रङ्गीन मारकीन लपेटी हुई है। तुर्क-

राजाओंकी जब गद्दीन शीनी होती है, तब इन खम्भोंका कपड़ा बदला जाता है। ठीक चौकोन आंगनमें काबा-मन्दिर कपड़ेसे ढका हुआ है, इसलामी यात्रियोंके हृदयमें इसे देख कर स्वभावतः भक्तिकी धारा बहने लगती है। उस एकान्त देवालयमें देवका रहना निश्चय जान धार्म्मिक मुसलमानोंके हृदयमें ईश्वर-प्रेमका तूफान उठने लगता है। इस पर जब मृदुमन्द वायुके झकोरोंसे इसका काला कपड़ा हिल जाता है, तब मुसलमान-यात्रियोंको ईश्वरका न होनेका सन्देह तिल भर भी नहीं रह जाता। धार्म्मिक मुसलमान अपने अन्ध-विश्वासके कारण कहा करते हैं, काबाकी रक्षाके लिये कितने ही देवदूत नियुक्त किये गये हैं, उन्हींके कारण सदा काबाका कपड़ा उड़ा करता या हिलता रहता है। लगभग ७० हजार देवदूत काबाकी रक्षा करते हैं। कयामतके दिन जब ईश्वरकी बुलाहट होगी, तब ये देवदूत इस काबाको स्वर्ग (वहिश्त)-में ले जायेंगे।

इसलामधर्मी यात्रिगण काबामें पहुंच कर अपना सर मुड़वा देते हैं। इसके बाद 'जमजमा' कुएंका जल उनको भरपेट पिलाया जाता है। उसके बाद वह काबाकी प्रदक्षिणा करते हैं और काबाका काला वस्त्र चूमते हैं। ऐसा करनेसे उनका पाप छूट जाता है और न करनेसे पापसे मुक्त होनेकी कोई सम्भावना नहीं।

महम्मदके जन्मसे पहले इस काबामें यात्रियोंको नङ्गा हो कर (दिगम्बर-रूपमें) प्रवेश करना पड़ता था। महम्मदने ही इस कुरीतिको निकाल बाहर किया था। अब भी जब यात्री जाते हैं, तो काबाके निकट अपने सब कपड़े उतार देते हैं और नङ्गे हो जाते हैं, लज्जा बचानेके लिये कमरमें एक लगोंटी बांध लेते हैं। इसी हालतमें एक बार सुप्रसिद्ध खलीफा हारुन्-अल-रसीद अपनी बेगमके साथ बगदादसे पैदल चल कर मक्का आये थे। चलते चलते जब थक गये तब राहमें अपने-आप कालीन और गलीचे बिछा गये।

अलसफी, अलहनीफा, मालिक आदि मुसलमान लेखकोंने जो बातें लिखी हैं, उनसे मालूम होता है, कि शक्तिशाली प्रत्येक मुसलमानका मक्का जाना अवश्य कर्त्तव्य है। इन लेखकोंने अपनी विवरणीमें ऐसा लिखा है, कि धनी मानी मुसलमान मुसलमानिन सभीको मक्का जाना चाहिये।

सन् १५०३ ई०में लोडोभिको, सन् १६७८ ई०में जोसेप-पिट, सन् १८१४ ई०में जान लूई बुर्खार्ड, सन् १७५३ ई०में लेफ्टनण्ट रिचार्ड बर्टन, सन् १८७७-७८ ई०में, हाफिजके अनुवादक हर्मन बिकनेल और टी० एफ० कीन आदि खृष्टान पादरी भी केवल देखने-सुननेके लिये अरब पहुंचे थे। इन लोगोंका कहना है कि मक्कामें कभी कभी ४० हजारसे अधिक लाखों तककी भीड़ हो जाती थी।

लोग कहा करते हैं कि, मुसलमान मक्केमें दूसरे धर्मवालोंको नहीं जाने देते। जिनको काबा देखनेकी इच्छा है, उनको अपना धर्म त्याग कर मुसलमान बनना पड़ेगा। यह बात वास्तविक सत्य है। स्वयं बिगनेल साहबको कायरोसे मुसलमान बन कर मक्का आना पड़ा था। अरबी भाषासे अनभिज्ञ नाविक युवक कीन अपना नाम अबदुल महम्मद रख कर मक्कामें जाना चाहते थे। किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि यह नाम मुसलमान नहीं रख सकते, तब उन्होंने महम्मद अमीन नाम रख कर मक्का प्रवेश कर सके थे।

मक्का-मन्दिरके बीचमें एक बेदी पर 'कुरान'-की एक प्रति रखी हुई है। यह ग्रन्थ मुसलमानोंके लिये परम-माननीय ग्रन्थ है। सिवा इसके अरबी भाषामें लिख कर कविताओंको सात तख्तियां लटकाई गई हैं। इन सबोंका नाम है,—'मुआलकत'।

इस मन्दिरके सामने दूसरा भी एक मन्दिर दिखाई देता है। इसके बाद ही प्रसिद्ध जमजम कुंआ है। यह दोनों विशाल अट्टालिकाओंसे घिरे हुए हैं। इनके चारों कोने पर चार बड़े बड़े खम्भे खड़े किये गये हैं। इसके कुछ ही दूर पर एक चहारदीवारी है, जो सब मन्दिरोंको घेरे हुए हैं। मुसलमानोंके लिये ये सब स्थान बड़े ही पवित्र और रमणीक हैं। प्रत्येक मुसलमानका विश्वास है कि, यह स्थान स्वर्ग या बहिश्त है। मुसलमानोंमें कई फिरके हैं। इनमें मत-पार्थक्यके कारण एक बार काबाके काले पत्थरको तहस-नहस करनेके लिये देवविरोधी मिस्रके राजाने अपनी सेना भेजी थी, किन्तु

भगवान्‌की कृपासे इस पत्थरकी रक्षा हुई। उसी समयसे धातुकी चहारदीवारी लगी हुई है। यह जमीनसे ४ फीट ६ इञ्च ऊंचा है।

हरएक वर्ष हजके समय एक महोत्सव होता है। इस अवसर पर एक मेला लगता है, जिसमें भारत, इंगलैण्ड, चीन, जापान आदि देशोंसे चीजें बिकने आती हैं। इस समय इतनी भीड़ होती है कि लोगोंको स्वच्छ जलके लिये बड़ी कठिनाई होती है। वहांके नगर-मालिक या शरीफ इन यात्रियोंके कष्टों पर जरा भी ध्यान नहीं देते थे। यह देख विख्यात खलीफा हारुन्-अल-रसीदकी बेगम जोबेइदाने आराफत पहाड़से वह जलका नल, जिसका वर्णन ऊपरमें किया गया है, बैठा कर मक्का शरीफके जलका कष्ट दूर किया था।

उत्सवके दिन वहांके पूजारी एक ऊंट पर चढ़ कर कावाकी प्रदक्षिणा करते हैं। साथ ही आप लोगोंको धर्मसम्बन्धीय व्याख्यान भी सुनाते हैं। इसलाम-धर्मके प्रवर्त्तक महम्मदने अपनी बीमारीकी हालतमें ऊंट पर चढ़ कर इस मन्दिरकी परिक्रमा की थी। तभीसे यह प्रथा चली आती है। जिस पहाड़ पर इब्राहिमने प्राण त्याग किया था, उसको आराफा या सत्यलोक कहते हैं।

पहले कह आये हैं कि, इस्माइल और उसकी माताकी पिपासा शान्त होनेसे उसी कुएं के पास बस्ती होने लगी। उसी समयसे यह मक्का नगर आबाद होने लगा था। उस मरु-प्रान्तमें एकमात्र जमजम कुआं था। इसलिये इसका विशेष आदर था। अन्तमें पत्थरकी एक चहारदीवारीसे घेर दिया गया था। इस कुएं के सिवा उस प्रान्तमें चार छः कोस तक कोई जलाशय दिखाई नहीं देता।

मक्काके अधिवासियोंमें अधिकांश अरबके मुसलमान हैं। इनके सिवा दूसरे देशके भी मुसलमानोंकी वहां बस्ती देखी जाती है। जो मुसलमान मसजिद-उन्-नवावी या जियारातको देख जाते हैं, वे हाजीके नामसे पुकारे जाते हैं। वहांके सब स्थानोंमें कावा जियारात और मसजिद-उल-हारम ही प्रधान हैं। मुसलमानोंकी धार्मिक पुस्तकोंमें मक्काके कोई २६ नाम दिखाई देते हैं। जैसे,—उम-एल-कोरा, बलाद-एल-अमीन आदि।

भारतमें विशेषतः बङ्गालमें यह कहा जाता है कि मक्कामें मक्केश्वर महादेवका शिवलिङ्ग मौजूद है। * इसलाम-धर्मके प्रवर्त्तक महम्मद साहबके पहले वहां जब अग्नि-पूजकोंका दौरादौर था, तब भारतवासी हिन्दू वाणिज्य तथा तीर्थयात्राके लिये मक्का जाते थे। जब वहां मुसलमानोंका प्राधान्य हुआ तब हिन्दू द्वेषी मुसलमानोंने उनका आना जाना रोक दिया। कहते हैं कि, हिन्दुओंके मक्केश्वरको मक्काकी मसजिदमें छिपा दिया था। आज कावामें रखे काले पत्थरको ही लोग मक्केश्वर समझते हैं।

लोगोंसे सुना जाता है, कि शिवरात्रिको यदि कोई धार्मिक हिन्दू बेलपत्र तथा गङ्गाजल चढ़ा दे, तो राजा हो जायगा। इस दिन मन्दिरसे 'बम बम' की अवाज सुनाई देती है। वास्तवमें हवामें उड़ते हुए कावाके वस्त्रोंसे ऐसा ही शब्द हुआ करता है।

मक्कार (अ० वि०) मकर करनेवाला, छली।

मक्कारी (अ० स्त्री०) छल, धोखेबाजी।

मक्कुल (सं० क्ली०) मक्क-उलच्। शिलाजतु, सिलाजीत।

मक्कोल (सं० क्ली०) मक्क बाहुलकात् ओल। खटिका, खड़िया।

मक्खन (हिं० पु०) दूधमेंकी, विशेषतः गौ या भैंसके दूधमेंकी, वह चरबी या सार-भाग जो दही या मट्ठेको मथने पर अथवा और कुछ विशिष्ट क्रियाओंसे निकाला जाता है और जिसे तपानेसे घी बनता है।

विशेष विवरण नवनीत शब्दमें देखो।

---

* यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि, जब हिन्दुओंका प्राधान्य था, तब औपनिवेशिक वणिकगण या अन्य हिन्दुओं द्वारा यह शिवलिंग स्थापित हुआ था। जब म्लेच्छों के प्राधान्यमें तुर्कोंके राज्यमें हिन्दू-मन्दिर विद्यमान हैं तब अरबमें क्यों नहीं रहेगा ? सम्भवतः हिन्दुओंसे द्वेष करनेवाले मुसलमानोंने इस मक्केश्वर मूर्त्तिको कावामें छिपा रखा था और हिन्दुओंको वहां न जाने देनेका इन्तजाम किया था।

राजाओंकी जब गद्दीन शीनी होती है, तब इन खम्भोंका कपड़ा बदला जाता है। ठीक चौकोन आंगनमें काबा-मन्दिर कपड़ेसे ढका हुआ है, इसलामी यात्रियोंके हृदयमें इसे देख कर स्वभावतः भक्तिकी धारा बहने लगती है। उस एकान्त देवालयमें देवका रहना निश्चय जान धार्मिक मुसलमानोंके हृदयमें ईश्वर-प्रेमका तूफान उठने लगता है। इस पर जब मृदुमन्द वायुके झकोरोंसे इसका काला कपड़ा हिल जाता है, तब मुसलमान-यात्रियोंको ईश्वरका न होनेका सन्देह तिल भर भी नहीं रह जाता। धार्मिक मुसलमान अपने अन्ध-विश्वासके कारण कहा करते हैं, काबाको रक्षाके लिये कितने ही देवदूत नियुक्त किये गये हैं, उन्हींके कारण सदा काबाका कपड़ा उड़ा करता या हिलता रहता है। लगभग ७० हजार देवदूत काबाकी रक्षा करते हैं। कयामतके दिन जब ईश्वरकी बुलाहट होगी, तब ये देवदूत इस काबाको स्वर्ग (वहिश्त)-में ले जायेंगे।

इसलामधर्मी यात्रिगण काबामें पहुंच कर अपना सर मुड़वा देते है। इसके बाद 'जमजमा' कुएंका जल उनको भरपेट पिलाया जाता है। उसके बाद वह काबाकी प्रदक्षिणा करते हैं और काबाका काला वस्त्र चूमते हैं। ऐसा करनेसे उनका पाप छूट जाता है और न करनेसे पापसे मुक्त होनेकी कोई सम्भावना नहीं।

महम्मदके जन्मसे पहले इस काबामें यात्रियोंको नङ्गा हो कर (दिगम्बर-रूपमें) प्रवेश करना पड़ता था। महम्मदने ही इस कुरीतिको निकाल बाहर किया था। अब भी जब यात्री जाते हैं, तो काबाके निकट अपने सब कपड़े उतार देते हैं और नङ्गे हो जाते हैं, लज्जा बचानेके लिये कमरमें एक लगोंटी बांध लेते हैं। इसी हालतमें एक बार सुप्रसिद्ध खलीफा हारुन-अल-रसीद अपनी बेगमके साथ बगदादसे पैदल चल कर मक्का आये थे। चलते चलते जब थक गये तब राहमें अपने-आप कालीन और गलीचे बिछ गये।

अलसफी, अलहनीफा, मालिक आदि मुसलमान लेखकोंने जो बातें लिखी हैं, उनसे मालूम होता है, कि शक्तिशाली प्रत्येक मुसलमानका मक्का जाना अवश्य कर्त्तव्य है। इन लेखकोंने अपनी विवरणीमें ऐसा लिखा है, कि धनी मानी मुसलमान मुसलमानिन सभीको मक्का जाना चाहिये।

सन् १५०३ ई०में लोडोभिको, सन् १६७८ ई०में जोसेफ पिट, सन् १८१४ ई०में जान लूई बुर्खार्ड, सन् १८५३ ई०में लेफ्टनण्ट रिचार्ड बर्टन, सन् १८७७-७८ ई०में, हाफिजके अनुवादक हर्मन बिकनेल और टी० एफ० कीन आदि खृष्टान पादरी भी केवल देखने-सुननेके लिये अरब पहुंचे थे। इन लोगोंका कहना है कि मक्कामें कभी कभी ४० हजारसे अधिक लाखों तककी भीड़ हो जाती थी।

लोग कहा करते हैं कि, मुसलमान मक्केमें दूसरे धर्मवालोंको नहीं जाने देते। जिनको काबा देखनेकी इच्छा है, उनको अपना धर्म त्याग कर मुसलमान बनना पड़ेगा। यह बात वास्तविक सत्य है। स्वयं बिगनेल साहबको कायरोसे मुसलमान बन कर मक्का आना पड़ा था। अरबी भाषासे अनभिज्ञ नाविक युवक कीन अपना नाम अबदुल महम्मद रख कर मक्कामें जाना चाहते थे। किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि यह नाम मुसलमान नहीं रख सकते, तब उन्होंने महम्मद अमीन नाम रख कर मक्का प्रवेश कर सके थे।

मक्का-मन्दिरके बीचमें एक बेदी पर 'कुरान'-की एक प्रति रखी हुई है। यह ग्रन्थ मुसलमानोंके लिये परम-माननीय ग्रन्थ है। सिवा इसके अरबी भाषामें लिख कर कविताओंकी सात तख्तियां लटकाई गई हैं। इन सबोंका नाम है,—'मुआलकत'।

इस मन्दिरके सामने दूसरा भी एक मन्दिर दिखाई देता है। इसके बाद ही प्रसिद्ध जमजम कुंआ है। यह दोनों विशाल अट्टालिकाओंसे घिरे हुए हैं। इनके चारों कोने पर चार बड़े बड़े खम्भे खड़े किये गये हैं। इसके कुछ ही दूर पर एक चहारदीवारी है, जो सब मन्दिरोंको घेरे हुए हैं। मुसलमानोंके लिये ये सब स्थान बड़े ही पवित्र और रमणीक हैं। प्रत्येक मुसलमानका विश्वास है कि, यह स्थान स्वर्ग या बहिश्त है। मुसलमानोंमें कई फिरके हैं। इनमें मत-पार्थक्यके कारण एक बार काबाके काले पत्थरको तहस-नहस करनेके लिये देवविरोधी मिस्रके राजाने अपनी सेना भेजी थी, किन्तु

भगवान्‌की कृपासे इस पत्थरकी रक्षा हुई। उसी समयसे धातुकी चहारदीवारी लगी हुई है। यह जमीनसे ४ फीट ६ इञ्च ऊंचा है।

हरएक वर्ष हजके समय एक महोत्सव होता है। इस अवसर पर एक मेला लगता है, जिसमें भारत, इंगलैण्ड, चीन, जापान आदि देशोंसे चीजें बिकने आती हैं। इस समय इतनी भीड़ होती है कि लोगोंको स्वच्छ जलके लिये बड़ी कठिनाई होती है। वहांके नगर-मालिक या शरीफ इन यात्रियोंके कष्टों पर जरा भी ध्यान नहीं देते थे। यह देख विख्यात खलीफा हारुन्-अल-रसीदकी बेगम जोबेइदाने आराफत पहाड़से वह जलका नल, जिसका वर्णन ऊपरमें किया गया है, बैठा कर मक्का शरीफके जलका कष्ट दूर किया था।

उत्सवके दिन वहांके पूजारी एक ऊंट पर चढ़ कर काबाकी प्रदक्षिणा करते हैं। साथ ही आप लोगोंको धर्मसम्बन्धीय व्याख्यान भी सुनाते हैं। इसलाम-धर्मके प्रवर्त्तक महम्मदने अपनी बीमारीकी हालतमें ऊंट पर चढ़ कर इस मन्दिरकी परिक्रमा की थी। तभीसे यह प्रथा चली आती है। जिस पहाड़ पर इब्राहिमने प्राण त्याग किया था, उसको आराफा या सत्यलोक कहते हैं।

पहले कह आये हैं कि, इस्माइल और उसकी माताकी पिपासा शान्त होनेसे उसी कुएंके पास बस्ती होने लगी। उसी समयसे यह मक्का नगर आबाद होने लगा था। उस मरु-प्रान्तमें एकमात्र जमजम कुआं था। इसलिये इसका विशेष आदर था। अन्तमें पत्थरकी एक चहारदीवारीसे घेर दिया गया था। इस कुएंके सिवा उस प्रान्तमें चार छः कोस तक कोई जलाशय दिखाई नहीं देता।

मक्काके अधिवासियोंमें अधिकांश अरबके मुसलमान हैं। इनके सिवा दूसरे देशके भी मुसलमानोंकी वहां बस्ती देखी जाती है। जो मुसलमान मसजिद-उन्-नवाबी या जियारातको देख जाते हैं, वे हाजीके नामसे पुकारे जाते हैं। वहांके सब स्थानोंमें काबा जियारात और मसजिद-उल-हारम ही प्रधान हैं। मुसलमानोंकी धार्मिक पुस्तकोंमें मक्काके कोई २६ नाम दिखाई देते हैं। जैसे,—उम-एल-कोरा, बलाद्-एल-अमीन आदि।

भारतमें विशेषतः बङ्गालमें यह कहा जाता है कि मक्कामें मक्केश्वर महादेवका शिवलिङ्ग मौजूद है।* इसलाम-धर्मके प्रवर्त्तक महम्मद साहबके पहले वहां जब अग्नि-पूजकोंका दौरादौर था, तब भारतवासी हिन्दू बाणिज्य तथा तीर्थयात्राके लिये मक्का जाते थे। जब वहां मुसलमानोंका प्राधान्य हुआ तब हिन्दू द्वेषी मुसलमानोंने उनका आना जाना रोक दिया। कहते हैं कि, हिन्दुओंके मक्केश्वरको मक्काकी मसजिदमें छिपा दिया था। आज काबामें रखे काले पत्थरको ही लोग मक्केश्वर समझते हैं।

लोगोंसे सुना जाता है, कि शिवरात्रिको यदि कोई धार्मिक हिन्दू बेलपत्र तथा गङ्गाजल चढ़ा दे, तो राजा हो जायगा। इस दिन मन्दिरसे 'बम बम' की अवाज सुनाई देती है। वास्तवमें हवामें उड़ते हुए काबाके वस्त्रोंसे ऐसा ही शब्द हुआ करता है।

मक्कार (अ० वि०) मकर करनेवाला, छली।

मक्कारी (अ० स्त्री०) छल, धोखेबाजी।

मक्कुल (सं० क्ली०) मक्क-उलच्। शिलाजतु, सिलाजीत।

मक्कोल (सं० क्ली०) मक्क बाहुलकात् ओल। खटिका, खड़िया।

मक्खन (हिं० पु०) दूधमेंकी, विशेषतः गौ या भैंसके दूधमेंकी, वह चरबी या सार-भाग जो दही या मट्ठेको मथने पर अथवा और कुछ विशिष्ट क्रियाओंसे निकाला जाता है और जिसे तपानेसे घी बनता है।

विशेष विवरण नवनीत शब्दमें देखो।

---

* यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि, जब हिन्दुओंका प्राधान्य था, तब औपनिवेशिक वणिकगण या अन्य हिन्दुओं द्वारा यह शिवलिंग स्थापित हुआ था। जब म्लेच्छों के प्राधान्यमें तुर्कोंके राज्यमें हिन्दू-मन्दिर विद्यमान हैं तब अरबमें क्यों नहीं रहेगा? सम्भवतः हिन्दुओंसे द्वेष करनेवाले मुसलमानोंने इस मक्केश्वर मूर्त्तिको काबामें छिपा रखा था और हिन्दुओंको वहां न जाने देनेका इन्तजाम किया था।

मक्खा (हिं० पु०) १ बड़ी जातिकी मक्खी। २ नर-मक्खी।

मक्खी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा जो प्रायः सारे संसारमें पाया जाता है। यह साधारणतः घरों और मैदानोंमें सब जगह उड़ती फिरती है। इसके छः पैर और दो पर होते हैं। मक्षिका देखो।

मक्खीचूस (हिं० पु०) घी आदिमें पड़ी हुई मक्खी तकको चूस लेनेवाला व्यक्ति, भारी कंजूस।

मक्खीमार (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बहुत छोटा जानवर। यह प्रायः मक्खियाँ मार मार कर खाया करता है। २ एक प्रकारकी छड़ी। इसके सिरे पर चमड़ा लगा होता है और जिसकी सहायतासे लोग प्रायः मक्खियां उड़ाते हैं। ३ बहुत ही घृणित व्यक्ति।

मक्खीलेट (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी जाली। इसमें बहुत छोटी छोटी बूंटियाँ होती हैं।

मक्दूर (अ० पु०) १ सामर्थ्य, ताकत। २ वश, काबू ३ समाई, गुंजाइश। ४ दौलत, धन।

मक्सी (हिं० पु०) १ वह सब्जा घोड़ा जिस पर काले फूलके दाग हों। २ बिलकुल काले रंगका घोड़ा।

मक्बुल मालिक—दिल्लीश्वर महम्मद इब्न तुगलकका एक सहकारी सेनापति। मालिक कबीरकी मृत्यु होनेके बाद इसने १३५० ई०में दिल्लीश्वरके प्रतिनिधि नियुक्त हो कर राज्यशासन किया। पीछे वजीरके पद पर बैठ कर १३६० ई०में इस लोकसे चल बसा।

मकराई—मध्यप्रदेशके होशङ्गावाद जिलान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। भूपरिमाण २१५ वर्गमील है। पहले कालीभीत और चर्वा विभाग इसके अन्तर्गत रहनेके कारण राज्यसीमा भी बढ़ी चढ़ी थी। पीछे पेशवा और सिन्देराजने इसके अनेक अंश दखल कर लिये। यहांके सरदार गोंड़ जातिके हैं। ये लोग राजाको किसी प्रकारका कर नहीं देते, सम्पूर्णरूपसे अंगरेजोंके आज्ञाधीन हैं। दीवानी, फौजदारी और राजकीय कार्यावली सामन्तके ही हाथ है। ज्येष्ठ पुत्रको ही गद्दी मिलती है। गेहूं, चना, चावल, गोंद और महुआ, यहांका प्रधान पण्यद्रव्य है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४ उ० तथा देशा० ७७° ७′ ३०″ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां एक गिरिदुर्गके मध्य राजप्रासाद अवस्थित है।

मक्ष (सं० पु०) मक्ष-घञ्। १ स्वदोषाच्छादन, अपने दोषको छिपाना। २ क्रोध, गुस्सा। ३ समूह, ढेर।

मक्षवीर्य (सं० पु०) मक्षं निविड़ं वीर्यमस्य प्रियालवृक्ष, पियार नामका पेड़।

मक्षिका (सं० स्त्री०) मशति शब्दायते इति मश-(हनिमशिभ्यां सिकन्। उण् ४।५३) १ कीटविशेष, साधारण मक्खी। पर्याय—मक्षीका, भन्त, माचिका, गन्धलोलुपा, पतङ्गिका, पत्तिका, अमृतोत्पन्ना, वमनीया, पलङ्कषा, निला, वर्वणा। (अमर) मक्खी प्रायः कूड़े करकच और सड़े गले पदार्थों पर बैठती, उन्हींको खाती और उन्हीं पर बहुतसे अंडे देती है। इन अंडोंमेंसे बहुधा एक ही दिनमें एक प्रकारका ढोला निकालता है। यह ढोला विना सिर पैरका होता है और दो सप्ताहमें पूरा बढ़ जाता है। बादमें किसी सूखे स्थानमें पहुंच कर अपना रूप परिवर्त्तित करने लगता है। प्रायः १०-१२ दिनमें वह साधारण मक्खीका रूप धारण कर लेता है और इधर उधर उड़ने लगता है। मक्खीके पैरोंमेंसे एक प्रकारका तरल और लसदार पदार्थ निकलता है जिसके कारण वह चिकनीसे चिकनी चीज पर पेट ऊपर और पीठ नीचे करके भी चल सकती है। २ शहदकी मक्खी।

मक्षिकामल (सं० क्ली०) मक्षिकाणां मधुमक्षिकाणां मलम्। सिक्थ, मोम।

मक्षिकासन (सं० क्ली०) मक्षिकाण्यामासनम्। मधुमक्षिकाका आसन, शहदकी मक्खीका छत्ता।

मक्षीका (सं० स्त्री०) मक्षिका पृषोदरादित्वात् दीर्घः। मक्षिका, मक्खी।

मक्षु (सं० क्ली०) मक्ष-उन्। १ शीघ्र। (त्रि०) २ शीघ्रगतियुक्त।

मकसूदाबाद—बङ्गालकी मुसलमान-राजधानी, मुर्शिदाबादका एक नाम।

मकसूदनगढ़—मध्यभारतकी भूपाल एजेन्सीके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। यह ग्वालियरके शासनाधीन है। भूपरिमाण ८१ वर्गमील है। यहांके सरदार खिचि-वंशीय राजपूत हैं। १८८० ई०में यह राज्य

अंगरेजोंकी देख-रेखमें आया। सामन्तकी उपाधि राजा है। यहांकी जनसंख्या १५ हजारके लगभग है। राजस्व ३७०००) रु० है।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ४´उ० तथा देशा० ७७° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारके लगभग है। यहांका किला १७३० ई०में रघुगढ़के राजा विक्रमादित्यने बनवाया था। शहरमें स्कूल, अस्पताल, कारागार और सरकारी डाकघर है।

मख (सं० पु०) मखन्ति गच्छन्ति देवा अत्र ति मख सर्पणे (हलश्च। पा ३।३।१२७) इति घञ्, संज्ञापूर्वकत्वात् न वृद्धिः वा पुसीति, घ। याग, यज्ञ।

मखक्रिया (सं० स्त्री०) मखस्य क्रिया। यज्ञ-विषयक कार्य।

मखघ्न (सं० त्रि०) मखं हन्ति हन टक्। यज्ञनाशक।

मखजन (अ० पु०) भण्डार, कोष।

मखतल (हिं० पु०) काला रेशम।

मखतूली (हिं० वि०) काले रेशमका, काले रेशमका बना हुआ।

मखत्राता (सं० पु०) त्रायतेरक्षतीति कर्त्तरि तृच्, मखस्य त्राता, विश्वामित्रमखरक्षणात्तथात्वं। १ रामचन्द्र। इन्होंने विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की थी। (त्रि०) २ यज्ञरक्षक, यज्ञकी रक्षा करनेवाला।

मखदूम (अ० पु०) १ वह जिसकी सेवा की जाय। २ स्वामी, मालिक। (वि०) ३ पूज्य, सेवाके योग्य।

मखद्विष् (सं० पु०) मखाय द्वेष्टि द्विष्-क्विप्। राक्षस। २ यज्ञद्वेषिमात्र।

मखद्वेषी (सं० पु०) यज्ञविघ्नकारी राक्षस।

मखधारी (हिं० पु०) यज्ञ करनेवाला, वह जो यज्ञ करता हो।

मखन (हिं० पु०) मक्खन देखो।

मखनपुर—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एकगण्ड-ग्राम। यह अक्षा० २६°५४´ उ० तथा देशा० ३०° १´ २०´´ उ० कानपुरसे फतेगढ़ जानेके रास्ते पर पड़ता है। यहां कादर नामक एक मुसलमान साधुका समाधिमन्दिर विद्यमान है। होलीउत्सवमें यहां एक मेला लगता है। इस मेलेमें सैकड़ों घोड़े गाय बिकनेको आती है और अनेक तीर्थयात्री भी इकट्ठे होते हैं। २ मैनपुरी जिलेका फिरोजाबादके निकटवर्ती एक ग्राम।

मखना (हिं० पु०) मकुना देखो।

मखनाथ (सं० पु०) यज्ञके स्वामी, विष्णु।

मखनिया (हिं० पु०) १ मक्खन बनाने या बेचनेवाला। (वि०) २ जिसमेंसे मक्खन निकाल लिया गया हो।

मखनी (हिं० स्त्री०) मध्यभारतकी नदियोंमें मिलनेवाली एक मछली। यह प्रायः एक बिलश्त लंबी होती है।

मखप्रभु (सं० क्ली०) वृहत्सोमलता।

मखमय (सं० पु०) मख स्व-रूपे मयट्। यज्ञस्वरूप विष्णु।

मखमल (अ० स्त्री०) १ एक प्रकारका बहुत बढ़िया रेशमी कपड़ा। यह एक ओरसे रूखा और दूसरी ओरसे बहुत चिकना और अत्यन्त कोमल होता है। २ एक प्रकारकी रंगीन दरी। इसके बीचो-बीच एक गोल चंदोआ बना रहता है।

मखमली (अ० वि०) मखमलका बना हुआ। २ मखमलकी तरहका, मखमलका-सा।

मखमित्र (सं० पु०) विष्णु।

मखराज (सं० पु०) यज्ञोंमें श्रेष्ठ, राजसूय यज्ञ।

मखलूक (अ० पु०) ईश्वरकी सृष्टि, परमेश्वरके बनाये हुए प्राणी आदि।

मखवत् (सं० त्रि०) मख-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। यज्ञयुक्त, यज्ञ करनेवाला।

मखवल्क्य (सं० पु०) याज्ञवल्क्य।

मखवह्नि (सं० पु०) मखस्य वह्नि मखाराध्यो वह्निरिति यावत्। यज्ञाग्नि।

मखशाला (सं० स्त्री०) यज्ञशाला, यज्ञ करनेका स्थान।

मखसूस (अ० वि०) जो किसी विशेष कार्यके लिये अलग कर दिया गया हो, खास तौर पर अलग किया हुआ।

मखस्वामी—द्राह्यायणसूत्र-भाष्यके प्रणेता। रुद्रास्कन्दने इनका नामोल्लेख किया है।

मखस्वामी (सं० पु०) यज्ञके स्वामी, विष्णु।

मखांशभाज् (सं० त्रि०) मखांशंभजते भज-ण्वि। यज्ञांशभोजी, यज्ञका हिस्सा खानेवाला।

मखाग्नि (सं० पु०) मखसंस्कृतः अग्निः। यज्ञाग्नि। वह अग्नि जो यज्ञमें होमादिके लिये स्थापित की जाती है। पर्याय—मखानल, महावीर।

मखाना (हिं० पु०) तालमखाना देखो।

मखान्न (सं० क्ली०) मखे मखकाले भोज्यमन्न। खाद्यवोजभेद, तालमखाना। पर्याय—पद्मवीजाभ। यह तालमें उत्पन्न होता और पद्मवीजके समान होता है। तालमखाना देखो। २ यज्ञीय अन्न।

मखालय (सं० पु०) यज्ञशाला।

मखासुहृद् (सं० पु०) मखस्य दक्षयज्ञस्य असुहृत् शत्रु नाशक इत्यर्थः। शिव। इन्होंने दक्षयज्ञ विनाश किया था। इसीसे इनका मखासुहृत् नाम पड़ा।

मखी—अयोध्या प्रदेशके उनाव जिलान्तर्गत एक नगर। यह उनाव नगरसे ४॥ कोस उत्तरमें अवस्थित है। प्रायः हजार वर्ष पहले मखी नामक किसी लोध-सरदारने इसे बसाया था। उन्हींके नामानुसार यह स्थान आज भी मखीनगर नामसे चला आ रहा है। चार शताब्दी पहले मैनपुरीपति राजा ईश्वरसिंहने लोधोंको परास्त कर यह स्थान दखल किया। तभीसे यह स्थान उन्हींके वंशधरोंके अधिकारमें चला आ रहा है।

मखेश (सं० पु०) राजसूययज्ञ।

मखोना (हिं० पु०) एक प्रकारका कपड़ा।

मखदुम अब्दुल रहमान—एक मुसलमान साधु। सिन्धु प्रदेशके शिकारपुर जिलेमें इनका समाधिमन्दिर विद्यमान है।

मखदुम फजलशाह करेशी—एक मुसलमान साधु। ये पीर फजलशाह नामसे प्रसिद्ध थे। सिन्धुप्रदेशस्थ इनके समाधिमन्दिरमें जो शिलाफलक उत्कीर्ण है उससे जाना जाता है, कि इनका हि० १२६६ जेलहज्जमें इनका देहान्त हुआ।

मखदुमनूह—एक मुसलमानी तीर्थ। यह सिन्धुप्रदेशके हालनगरमें अवस्थित है। पीर महम्मद जोमनने १२०५ हिजरीमें मखदुमनूहका मन्दिर बनाया। मखदुम् मीर महम्मदके स्मरणार्थ यहां १२१० हिजरीमें पुनः एक समाधिमन्दिर और १२२२ हिजरीमें एक मसजिद बनाई गई।

मखदुम जहानिया—एक मुसलमान साधु। कन्नोज नगरमें इनके स्मरणार्थ एक समाधिमन्दिर और मसजिद निर्मित है। मसजिदमें ८८१ हिजरीकी लिखी हुई जो शिलालिपि है, उससे जाना जाता है कि सैयद जलाल मखदुम् जहानिया उक्त समयके पहले विद्यमान थे। मसजिदका बहुत कुछ अंश हिन्दू-मन्दिरका अंशविशेष ले कर बनाया गया है। इसमें अनेक हिन्दूमूर्त्ति और ११६३ सम्वत्में उत्कीर्ण शिलालिपि देखी जाती है।

मग (हिं० पु०) १ राह, रास्ता। २ मगददेश। मगध देखो। ३ एक प्रकारके शाकद्वीपी ब्राह्मण। भोजक ब्राह्मण और मगी देखो। ४ मगधका निवासी। ५ पिपुलीमूल।

मग (मघ)—आराकानवासी जातिविशेष। जातियोंके जानकारोंका विश्वास है कि, यह इण्डोचीन सम्मिलित जातिके हैं। इस मग जातिकी कई श्रेणियां हैं। जैसे,—मारमगरी, भूंइयामग, वरुआमग, राजवंशी मग, मार्मा या मैम-मा मग, रोयाङ्ग मग और थोङ्गोथा या जुमिया मग इत्यादि।

इस समय इनकी सात श्रेणियोंमें तीन ही श्रेणियां बन गई हैं। पहली श्रेणीमें केवल 'जुमिया' दूसरीमें मार्म्मा, म्यामा, रोयाङ्ग या रखियाङ्ग और तीसरी श्रेणीमें मारमुग्री या राजवंशी, वरुआ और भुंइया मग हैं; मग जाति स्थानविशेषके कारण ही इन सात या तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। अबसे बहुत पहले यह जाति चट्टग्राम तथा आराकान आदि पहाड़ी देशोंकी आदिम जाति कहलाती थी। धीरे धीरे जुमिया और रोयाङ्गगण चट्टग्रामके समतल मैदानमें आ कर बस गये हैं। इस से यह इस समय कुछ उन्नत हो गये हैं। इन जातियोंके लोगोंका प्राकृतिक गठन सुदृढ़ और मजबूत है। इनका चेहरे पर चीनियोंकी तरह झलक दिखाई देती है, इनके क्षीण चौड़े और चपटे मुख, उच्च तथा फैले हुए गाल, नाक मोटी और चिपटी, आंखें लाल लाल और छोटी छोटी देख कर मोगलियोंका स्मरण आता है। यह कहना कठिन है कि, यथार्थमें इनकी उत्पत्ति किस जातिसे है। साधारणतः पहाड़ी जातियोंमें जैसा

रूप रंग देखा जाता है, वैसा ही इनका रूप रंग दिखाई दिखाई देता है। फिर ब्रह्मदेशके समीप होनेसे इनमें जलवायुके प्रभावसे यह अलगाव दिखाई देता है। मरमगरो या राजवंशी मगोंकी उत्पत्ति और नामोंके सम्बन्धमें कुछ आदमियोंका कहना है, कि बङ्गालका पूर्वी प्रान्त, नोआखाली और चट्टग्रामके आदिम अधिवासी तथा छोटो जातियोंके साथ ब्रह्मवासियोंका विवाह संस्कार होनेसे एक सङ्कर-जाति उत्पन्न हुई है। फिर कुछ लोग कहते हैं, कि मगधके राजाका यहां राज्य था। इसी समय मगधियोंकी यहां अधिकता हुई थी। उसी समयसे इस जातिका नाम मग हुआ।

आराकानके राजवंश निश्चय ही विहार-राजवंश-सम्भूत मालूम होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उस समय वहां हिन्दुओंका आवास था। ब्रह्ममें बौद्ध-धर्म प्रचार करने तथा समुद्रके किनारे वाणिज्य व्यवसायके लिये कितने ही बङ्गाली तथा विहारी जा कर चट्टग्राम तथा इसके निकटके स्थानोंमें बस गये। आसाम कूचविहार आदि प्रान्तोंमें जैसे युक्तप्रदेशवासी राजवंशो आदि कई श्रेणीके मनुष्योंका वास था, वैसे ही आराकानके प्रान्तोंमें इनका विस्तार हुआ। इन्हीं लोगों-मेंसे ही किसीने वहांकी आदिम जातियोंसे विवाह कर लिया होगा, उसीसे इन जातियोंकी सृष्टि हुई है।

मगोंके तीन जातियों या श्रेणियोंमें चौबीस गोत्र हैं। वंशके ये नाम नदियोंके नामसे ही कल्पित किये गये हैं। यहांके लोग ममेरी बहनसे भी विवाह कर सकते हैं।

मारमगरी जाति बाल-विवाहको विशेष पक्षपाती है। किन्तु सामाजिकतामें दूसरी जातिसे उन्नत देखी जाती है। फलतः उपयुक्त वरको कन्या समर्पण करनेमें जरा भी देर नहीं करती। मार्म्मा या चोङ्गचा जाति सयाने लड़कोंका विवाह अधिक पसन्द करती है। इन लोगोंमें विवाहसे पूर्व भी वर-कन्यामें प्रेम उत्पन्न करनेके लिये उनके एक साथ रहनेका भी आयोजन कर देते हैं। किन्तु साधारणतः इनके विवाहकी प्रथा अन्य जातियोंसे पृथक् है।

१७ या १८ वर्षका बालक विवाहके लिये उपयुक्त है। पुत्रके पिता अपने पुत्रका विवाहके लिये उपयुक्त कन्याकी तलाश करता है। पात्री ठीक होने पर वरका पिता अपने या अपने किसी खास व्यक्तिको भेज कर विवाह पक्का करता है। कन्या पक्षके घर जानेसे पहले कन्याके अभिभावकको बुला कर हाथ जोड़ कर प्रणाम कर 'ओगोत्सा' शब्द उच्चारण करना पड़ता है। इस शब्दका अर्थ यह है, आपके तीर पर एक नाव आ कर लगी है, आप उसको बाधेंगे या छोड़ देंगे। इस पर यदि कन्या-पक्षसे सन्तोषजनक उत्तर मिलता है, तब उसके घरमें प्रवेश करते हैं, नहीं तो उलटे पांव उनको लौट आना पड़ता है। घरमें जा कर वह पूछता है,—"इस घरके खूंटे तो मजबूत हैं?" इसके उत्तरमें यही शब्द मिले, कि 'हां मजबूत हैं', तब तो विवाहकी बात चलाई जाती है।

विवाह-सम्बन्ध पक्का हो जाने पर वह लौट आता और वरके अभिभावकसे कहता है। इसके बाद इस विवाहके फलाफलको देखनेके लिये बड़ी उत्सुकतासे कन्या तथा वर-पक्षके अभिभावक एकान्तमें एक मुर्गाका वध करते हैं और उसकी जीभ काट कर विवाहका शुभाशुभ निर्णय करते हैं। वर-कन्या या घरके कोई व्यक्ति भी इस फलाफलको नहीं जान सकता। उस रातको वरका अभिभावक कन्याके घर सो जाता है और उस रातको जो वह स्वप्न देखता है, उस पर भी इस विवाह-सम्बन्धके फलाफलका विचार हुआ करता है। यदि मङ्गलजनक हुआ, तो वरका अभिभावक कन्याके पिताके सामने सर नीचा करके बैठता है और आते समय अंगूठी तथा कुरता वस्त्र आदि पुरस्कार दे आता है।

इसके बाद ज्योतिषी बुला कर ग्रहकी देख-भाल करते हैं। इसी समयसे दोनों पक्षसे विवाहकी तैयारी होने लगती है। शूकर, मद्य, चावल, मसाले आदि तरह तरहकी चीजें एकत्र कर विवाह-भोज हुआ करता है। विवाहके दो दिन पहले ही यह अपने कुटुम्बोंको निमन्त्रण भेजा करते हैं। कुटुम्बवाले सभी एक एक मुर्गी भेज देते हैं। जो मुर्गी नहीं भेज सकते, वह पैसा भी भेज सकते हैं।

विवाहके दिन रातको वरात (जिसमें स्त्री पुरुष दोनों रहते हैं) कन्याके घर आती है। यह इस दिन नाना रंगके रंगरूप वना कर वाजेके साथ आते हैं। वरात जब कन्याके ग्राममें पहुंचती है, तव कन्या पक्षीय स्त्रियां पहले वांससे रोकती हैं और सौभाग्यवृद्धिके लिये वरको शरावका एक प्याला देती हैं। यह प्याला वर मुंहसे छुआ कर फेंक देता है। यदि कन्या-पक्षीय स्त्रियां मजवूत होती हैं, तव वरातको तीन चार जगह रोकती हैं।

विवाहके पहले वरात आ कर कन्या-पक्षीय ग्रामसे कुछ दूर पर ही विश्राम करनेके लिये ठहर जाता है। ठहरनेका स्थान वांससे घिरा रहता है और लतापल्लव-से सुसज्जित रहता है। इसी तरह एक चांदनीके भीतर अलग भोजनका प्रवन्ध होता। ग्रामवासी यहां ही वर देखनेके लिये आते हैं और तरह तरहके खेल तमाशे किया करते हैं। कन्याके घरमें भी इसी तरहकी चांदनीमें स्वजन कुटुम्बके लोग एकत्र होते हैं, इनके वीच कन्या वैठा दी जाती है। इस समय गांवके छोकड़े आ कर दोनों पक्षके लोगोंको तंग करने लगते हैं। दिनमें ही इस तरहका आमोद-प्रमोद हुआ करता है। रातको किसी तरहका कोई खेल तमाशा या उपद्रव नहीं हुआ करता।

सन्ध्या हो जाने पर वरको कन्याके घर ले जाते हैं। जब वर कन्याके घर पहुंचता है तव नाना प्रकारके वाजे वज उठते हैं। इसके वाद वर-कन्याको मण्डपमें ला कर एक सूतसे उन्हें छेद देते हैं। इसके वाद 'फुङ्गी' पुरोहित आ कर मन्त्रोच्चारण करते और वर कन्याको सात ग्रास भात खिलाते हैं। इसके वाद कन्याका वायां हाथ पकड़ कर वरके दाहने हाथमें रखते हैं और मन्त्रोच्चारण-पूर्वक विवाह-कार्य्य सम्पन्न करते हैं। इसके वाद वर कन्याका हाथ पकड़ कर वहां खड़े गुरुजनोंको प्रणाम कर अपने स्थानमें वैठ जाते हैं। नियम-पूर्वक गंठ-वन्धनके वाद उपस्थित जन-मण्डली शक्ति अनुसार पुरस्कार देती है। इसके वाद आमोद-प्रमोद नाच-गानेमें दिन वितते हैं।

मगोंमें कन्याको पण देनेकी प्रथा है। थोङ्गचा तथा मार्म्मा ३०) रुपये और धनवान् मार्म्मा लोग ६०) रुपये पण कर दिया करते हैं। वरके हाथमें कन्याका हाथ रख कर कन्यादान तथा सिन्दूर-दान ही विवाह-वन्धनका मूल कारण हैं। मार्मा थोङ्गचोंके अनुसार विवाह-कार्य सम्पन्न करते है। इनमें सिन्दूर-दानको प्रथा नहीं है। विवाहके वाद सात दिन तक सात सात वार वर कन्याको एक थालीमें भोजन करना पड़ता है। इनके भोजनसे जो जूठा वचता है, वह एक हण्डीमें रखते जाते हैं। किन्तु एक साथ सोते नहीं, इन सात दिनों तक वरको नदी पार नहीं करना होता। आठवें दिन हण्डीके कीड़े देख कर विवाहके शुभाशुभ-का विचार हुआ करता है।

वहु-विवाह और विधवा-विवाह भी इनमें प्रचलित है। अवस्थानुसार ये दो या दोसे अधिक पत्नो रख सकते हैं। किन्तु पहली पत्नी ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ और आदरणीय होती है। विधवायें अपनी इच्छाके अनुसार अपना वर चुन लेती हैं। इस विधवा-विवाहमें किसी क्रियाकी अवश्यकता नहीं होती। व्यभिचार तथा अन-वरत झगडा तकरार होते रहने पर पञ्चायतके आज्ञा-नुसार विवाह सम्वन्ध विच्छेद भी हो सकता है। पीछे इसका विवरण लिख कर वहांके मजिष्ट्रेटको देना होता है। छोड़ी हुई स्त्री विधवाकी तरह विवाह कर सकती है।

हीनयन मतसे मग (Southern School) वौद्धधर्मावलम्बी है। वे तिव्वतीय वौद्धोंको यथार्थ धर्माचारी नहीं कहते। थोङ्गचा आदि पहाड़ी जातियों-में अव भी उपदेवता आदिकी पूजा होती देखी जाती है। वे गाय, भैंस, भेड़ तथा शूकरोंकी वलि पर्वत तथा नदी आदिकी पूजामें दिया करते हैं और चावल, फल, फूल, नैवेद्य आदि भी चढ़ाया करते हैं। मारमगरी-लोग वहांके हिन्दुओंका ही अनुकरण करते हैं। इस समय इनकी अधिकांश पूजाविधि तान्त्रिक ही हुआ करती है। सिवा इसके यह शिव और दुर्गाको पूजामें अधिक भक्ति दिखाते हैं।

यह वौद्ध फुङ्गी तथा रावलियोंको अपना पुरोहित मानते हुए भी ब्राह्मणोंसे राग-द्वेष या असद्भाव

नहीं रखते। विवाह आदि शुभकार्योंके दिन नियत करने तथा शिव आदिकी पूजामें ब्राह्मणोंकी सहायता लिया करते हैं। थोङ्गत्रोंमें एकमात्र घरकी बुढ़िया ही व्रतक्रियादिकी अधिकारिणी है। इस कार्यमें वह बुढ़िया ही उस यज्ञकी पुरोहित हैं ऐसी वृद्धा स्त्रियां 'लेदांमा' कही जाती हैं।

मग अपने मृत-देहको जला दिया करते हैं। जब कोई मनुष्य मर जाता है, तब उसके घर और कुटुम्बके लोग एकत्र हो कर अन्त्येष्टि-क्रियाके लिये गाजे बाजे का प्रबन्ध करते हैं। स्त्रियां रोती रहती है, किन्तु पुरुष मृतकके अन्त्येष्टि-कार्य्यमें लगे रहते हैं। लकड़ी बटोर कर वांसकी रथी तय्यार कर मृतकको श्मशान-घाट ले जाते हैं। धनी और स्त्रियोंको चार पहियेकी गाड़ी पर श्मशान ले जाते हैं। मृत्युके बाद जलानेमें २४ घण्टा समय लग जाता है। पहले गेरुआ वस्त्रधारी पुरोहित शिष्योंके साथ हाथमें पंखा ले कर श्मशान पहुंचते हैं। इसके बाद घरके दो-दो व्यक्ति कपड़े और भोजन-सामग्री ले कर मृतके पास आते हैं। बाद शवको उठा कर उसके कुटुम्बके लोग, उसके बाद, गांवकी स्त्रियां आती हैं। इसके बाद सब क्रियायें हिन्दूमतसे ही होती हैं। जलानेके बाद स्नान कर लोग मृतकके घर लौट आते हैं और भोजन आदि करते हैं। यदि घरके मालिककी मृत्यु हुई हो, तो दरवाजेकी सीढीके पहले चढ़ावको काट डालते है और पीछेसे दीवार काट कर भीतर प्रवेश करते हैं।

पुरोहित या किसी धनी व्यक्तिके मरने पर उस मृत-देहको बड़े यत्नसे रक्षा करते हैं। पीछे अवस्थाके अनुसार अन्त्येष्टिका पूर्ण रूपसे आयोजन हो जाने पर उस रक्षित मृत देहको जलाते हैं। प्रायः १ली वैशाखको ही ऐसी रक्षित मृत देहोंके जलानेका कार्य हुआ करता है। इस तरह मृत-देह रक्षित रखनेके लिये वांससे घेर कर एक पैगोडा या मठ निर्माण करते हैं। इस मठको नाना तरहके रंग बिरंगे कागजोंसे सुसज्जित करते हैं। कभी कभी इस मठमें शवदेह लानेके पहले वांसका धनुष बना कर तीर छोड़ा करते हैं। इस समय कभी कभी स्त्री पुरुष, कभी-कभी अविवाहित स्त्री-पुरुष और विवाहित स्त्री-पुरुषका हंसी-मजाकमें स्त्रीका युद्ध (Tug of war) होता है। सात दिनके बाद प्रेतकी शान्तिके लिये पुरोहित मृतकके घर भोजन किया करते हैं। आठवें दिन वे पिण्ड-दानकी तरह भोजन दानादिका आयोजन करते हैं, फिर इसी दिन वे वार्षिक-श्राद्ध भी किया करते हैं।

इसमें अधिकांश हिन्दू या बौद्ध होने पर भी यह जाति सामाजिक अवस्थामें उन्नत नहीं दिखाई देती। सच्चे हिन्दू उनके हाथका छुआ पानी नहीं पीते। ये गो, शूकर, मुर्गा मांस, सब तरहकी मछलियां मोटे मोटे चूहे आदिको भी खाया करते हैं। स्त्री पुरुष दोनों ही मद्य सेवन करते हैं। थोङ्गचागण अपनी प्रथाके अनुसार खेती-बारीका काम किया करते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने हाथमें एक दवा रखता है।

शिक्षित वरुआ मग कहते हैं कि, हम ही यथार्थ राजवंशी हैं। क्योंकि वह मगधके किसी राजाके वंशजात हैं। मुसलमानोंके आक्रमणोंको सहन न कर सकने पर यह चटगांवकी तरफ भाग आये थे। इन्हींके वंशज मग नामसे परिचित हैं। दूसरी एक कहानीसे मालूम होता है कि, वे वहांके प्रतापशाली बौद्धधर्मी राजाके वंशधर हैं।

आराकानके बौद्धोंने उनको महरामगरी नाम दिया था और उन्हें गुलामोंकी तरह घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। पहाड़ी बौद्ध मग इन्हें भूंइयां-मग कहते हैं।

वरुआ मगोंमें साधारणतः तीन उपाधियां दिखाई देती हैं। सभी वरुआ पदवी धारण करते हैं। इनके पूर्वजोंने अपने सुन्दर कामोंसे मुत्सुद्दी और चौधुरीकी उपाधि प्राप्त की थी। ये उपाधियां इनमें आज भी विद्यमान है।

वरुआ एक शङ्कर-जाति मालूम होती है। क्योंकि उनमें निम्नश्रेणीके हिन्दुओं, मुसलमानों, पहाड़ी और पुत्त गालोंका रक्त दिखाई देता है। इस समय वे हिन्दुओंकी तरह ही अपना क्रिया-कलाप करते हैं। वे दुर्गा और काली मूर्त्तिके सामने बकरे और भेड़ आदिकी बलि दिया करते हैं। आधुनिक वायुमण्डलके अनुसार सुधार-प्रेमी हो कर बलि आदिकी प्रथा उठा देने

पर भी वे निम्न देव-देवीकी पूजामें बहुत श्रद्धा रखते हैं—(१) शनिग्रहकी पूजा, (२) अश्विनीकुमारकी पूजा या कात्यायनी-व्रत, जिसमें कार्त्तिक मासकी १ले दिनसे व्रतानुष्ठान करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है, (३) ज्वाला-कुमारी या विसूचिका (हैजे)-की अधिष्ठात्री देवी, (४) दुर्गापूजा, (५) लक्ष्मीपूजा, (६) बारवारी काली पूजा, (किसी दुर्भिक्षके समय यह पूजा हुआ करती है), (७) सत्यनारायण या सत्यपीर पूजा, (८) ईश्वराली व्रत या सूर्य्यपूजा (९) सरस्वती-पूजा।

शनिपूजामें ज्योतिषी पौरोहित्य करते हैं। रावली या ठाकुर उपाधि-प्राप्त पुरोहित इस कार्यमें पुरोहिती नहीं करते। क्योंकि यह बौद्ध-धर्मके विरुद्ध बात है। ज्वालाकुमारी और काली पूजामें वे कोई मूर्त्ति नहीं बनाते, किन्तु देवीकी सन्तुष्टिके लिये बकरे और भेडे, आदि पशुओंकी बलि दिया करते हैं। कभी कभी वे हिन्दू-मन्दिरमें जाकर काली-मूर्त्तिके सामने बकरे आदि-की बलि दिया करते हैं। अन्यान्य देवीदेवताओंकी पूजामें घटस्थापनादि ही करते हैं। सिवा इसके मगधेश्वरीकी पूजामें भी वे बकरेकी बली चढ़ाया करते हैं।

प्रत्येक गांवमें मगधेश्वरीकी पूजाके लिये नियत स्थान है। इस समय शिक्षित बरुओंने मूर्त्ति आदिका विसर्जन कर बौद्ध-धर्मके विस्तारमें मन लगाया है। वे हरि-सङ्कीर्त्तनके रूपमें ढोलक और झाल बजा बजा कर बुद्ध-सङ्कीर्त्तन करने लगे हैं। इनके बौद्ध पुरोहित ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया करते हैं। यह मस्तक मुण्डन कराते और पीले रंगका वस्त्र पहनते हैं. इनके परिधेयवस्त्र ६० खण्डोंमें ग्रथित होते हैं। वे नित्य १२ बजेसे पहले पान तथा तम्बाकूके सिवा और कुछ नहीं खाते। प्रति वर्ष आषाढ़ी पूर्णिमा तक शय्या साफ न करके यों ही सोया करते हैं।

बरुआ मग दीक्षाके समय एक सप्ताह तक संयम करते हैं। कभी-कभी तो गुरु-गृहमें वर्ष दिन तक ब्रह्मचर्य-पूर्वक बिता देते हैं। पीछे पीला वस्त्र त्याग कर गार्हस्थ जीवन आरम्भ कर विवाह-बन्धनमें बंध जाते हैं। इस समय वे 'लौठक' कहे जाते हैं। रावली (पुरोहित) अपने घर न रह कर भजनालयमें रहा करते हैं, उनके भजनालयका नाम 'कियां' है। प्रत्येक ग्राम-वासियोंके खर्चसे एक-एक 'कियां' या भजनालय तयार होता है।

रावली पुरोहितोंमें चार श्रेणियां दिखाई देती हैं—१ महाथेरो (महास्थविर), २ कामथेरो (काम-स्थविर), ३ पञ्जयस (उपसम्पद), ४ मइसाङ्ग या 'शमनेर' रह गुरुसे शिक्षा प्राप्त कर या शास्त्रअनुशीलन कर और ज्ञानोन्नति कर मनुष्य क्रमशः महाथेरो पद पाते हैं।

बरुओंके कई प्रसिद्ध देवमन्दिर हैं। इन सब मन्दिरों-में माघीपूर्णिमा तथा विषुव-संक्रांतिके दिन बड़ा मेला लगता है। वहांके हिन्दू और मुसलमान वहां चिराग जला दिया करते हैं। नीचे थाना, ग्राम, देवमूर्त्ति और उत्सव लिखे जते हैं,—

थाना	ग्राम	देवता	त्योहार दिन
पटिया	बोगाहरा	बूढ़ागोसाईं	माघीपूर्णिमा
„	चक्रशाला	फराचीन,	चैत्रसंक्रान्ति
„	उनाइनपुर	बुद्धपद	फाल्गुणीपूर्णिमा
राउजान	पहाड़तली	महामुनि, शाक्यमुनि और चइन्दामुनि	चैत्रसंक्रान्ति
पटिया	अहल्या	सत्यसिंह	वैशाखीपूर्णिमा
राउजान	दांना	चूलमणि	माघीपूर्णिमा

पहाड़तलीके तीन मन्दिरोंमें शाक्यबुद्धकी बड़ी बड़ी मूर्त्तियां स्थापित की गई हैं। इनमें एक मूर्त्ति माणिकचेरीके सामन्त राजाने और दूसरी दो मूर्त्तियां बरुआ कुलके कालीचरण मुत्सद्दी और मोहनसिंह सूबे-दारने तय्यार कराई है। साधारण लोगोंका विश्वास है कि चक्रशालामें बुद्धका आगमन हुआ था। इसीलिये कितने ही फराचीन तीर्थमें बुद्धपद दर्शनके लिये आया करते हैं। कुछ लोग चन्द्रनाथ शैल पर भी सीताकुण्डके बुद्धपद-दर्शनके लिये आते हैं। दूसरे तीर्थ सभी अपेक्षाकृत आधुनिक समयके हैं।

माघीपूर्णिमा और विषुवसंक्रांति उनके लिये विशेष पुण्यका समय है। इसी समय बरुआ-मग दीक्षा लिया करते हैं। श्रीपञ्चमीके दिन यह सरस्वतीपूजा

किया करते हैं। इसी दिन सात वर्षकी वालिकाओंका कर्णवेध होता है।

वरुओंकी विवाह प्रथा प्रायः पूर्वोक्त रूप ही है। फिर भी इनके विवाहमें हिन्दूपन बहुत दिखाई देता है।

इनमें कन्याको वरके घर ला कर उसका विवाह कर दिया जाता है। विवाहके समय पुरोहितके पञ्चशील तथा मङ्गलपाठ करने पर वरकन्या उसकी पुनरावृत्ति करते हैं। कन्या दानके समय सदा स्त्रियां हर्षध्वनि किया करती हैं। पुत्रवती विधवा दूसरा विवाह नहीं करती।

अधिक उम्रके मृतकको जलाते और छोटे-छोटे बच्चोंको मिट्टीमें गाड़ दिया करते हैं। धनी मृतकको जिस गाड़ीमें सुला कर श्मशान ले जाते हैं, उस गाड़ीको हंसोंका रथ कहते हैं। उक्त रथके दोनों मुख हंसकी आकृतिके होते हैं।

यह रथ खींचे जानेके पहले इसमें दोनों ओर रस्सी बांधी जाती है। इकट्ठे हुए गाँवके लोग दो दल हो कर दोनों ओरसे रथ खींचते हैं। इसमें एक दल यमदूत तथा एक दल विष्णुदूत कहलाता है। दोनों दलोंमें खैंचातानी होनेके बाद विष्णुदूतोंकी ही जय-प्राप्ति होती है। इसके बाद शवदेहको उत्तरकी ओर ले जा कर श्मशानमें चिता पर सुलाते हैं। मुखमें अग्नि देते समय भी पञ्चशील मन्त्र तथा मङ्गलसूत्र पाठ किया जाता है। साधारण मनुष्योंको एक ही जगह जलाते हैं। किन्तु धनी और पुरोहितोंके जलानेके बाद वहां एक 'जादी' या समाधि-मन्दिर बनाया जाता है। अतएव अन्य धनी व्यक्तिको बाध्य हो कर दूसरी जगह जलाना पड़ता है। मृत्युके सात दिन बाद श्राद्ध और पीछे पिण्डदान और १५ दिनके बाद जाति-कुटुम्बका भोज होता है। प्रथम वर्ष वे प्रत्येक मासमें श्राद्ध करते हैं। किन्तु दूसरे वर्षसे वार्षिक-श्राद्ध किया करते हैं।

धनी मनुष्योंकी चिता पर समाधि-मन्दिर बनवाया जाता है। इसको 'जादी' कहते हैं। मन्दिरमें किसी शुभ दिनको वे मृत व्यक्तिको प्रेतात्माकी तृप्तिके लिये कुछ भोजनकी चीज रख आते हैं। गर्भिणी स्त्रीकी मृत्यु विशेष रूपसे अमङ्गल-सूचक है। उनका विश्वास है कि इस तरह गर्भिणीकी मृत्यु होने पर मृत आत्मा भूत-प्रेतकी योनि प्राप्त करती है। इनकी आत्माकी सङ्गतिके लिये वे गयामें पिण्डदान किया करते हैं।

गर्भिणीको जलानेसे पहले उसका पेट चीर कर गर्भस्थ बालकको निकाल लिया करते हैं। इस भ्रूण शिशुको मिट्टीमें गाड़ कर तब पीछे उस स्त्रीको जलाते हैं।

भूतयोनिमें उनका दृढ़ विश्वास है। किसीकी अस्वाभाविक रूपसे मृत्यु होने पर उसकी आत्मा प्रेतयोनि प्राप्त करती है। 'ओझा' मन्त्रों द्वारा भूतोंको हटाया करते हैं।

विसूचिका (हैजा), चेचक आदि रोगोंका प्रादुर्भाव होने पर वे ज्वालाकुमारी तथा शीतलादेवीकी पूजा करते हैं। कभी-कभी बुद्ध-सङ्कीर्त्तन तथा रक्षा-काली की भी पूजा किया करते हैं। गाय आदि पशुओंको बीमारी होने पर सत्यनारायणकी पूजा किया करते हैं।

वे अधिकतर कृषि, पुलिसका काम और सूखी मछलियोंका विक्रय तथा रसोईका काम कर अपना जीवन-निर्वाह किया करते हैं। कुछ लोग शिक्षा प्राप्त कर क्लर्की आदि भी करते हैं। बूढ़ी स्त्रियां और कुछ वृद्ध व्यक्ति औषधोपचार तथा चिकित्सा आदि किया करते हैं। इनमें एलोपैथिक चिकित्सा भी देखी जाती है।

इनके पुरुष और स्त्री हिन्दुओंकी तरह धोती और साड़ी पोशाक पहना करते हैं। कभी-कभी स्त्रियोंको वस्त्र और ओढ़नीका व्यवहार करते भी देखा जाता है। स्त्रियां अलङ्कार आभूषणादि बहुत पसन्द करती हैं। बाजू तथा नथियाके सिवा जड़ाऊ गहने भी पहनना पसन्द करती है। इस समय ये अपना नाम बङ्गाली ढंगके धरने लगे हैं। इनमें दो एक आराकानी नाम भी देखे जाते हैं।

मगज़ (अ० पु०) १ मस्तिष्क, दिमाग। २ गूदा, गरी।

मगजचट (हिं० पु०) वह जो बहुत बकता हो, बकवादी।

मगजचट्टी (हिं० स्त्री०) बकवाद, बकबक।

मगजपच्ची (हिं० स्त्री०) किसी कामके लिये बहुत दिमाग लड़ाना, सिर खपाना।

मगजी (हिं० स्त्री०) कपड़ेके किनारे पर लगी हुई पतली गोट।

मगण (सं० पु०) कविताके आठ गणोंमेंसे एक। इसमें

३ गुरुवर्ण होते हैं। इसका छन्दके आदिमें आना शुभ माना जाता है। कहते हैं, कि इसका देवता पृथ्वी है और यह लक्ष्मीदाता है।

मगद (हिं० पु०) मूंगके आटे और घीसे बनाई हुई एक प्रकारकी मिठाई।

मगदर (हिं० पु०) मगदल देखो।

मगदल (हिं० पु०) एक प्रकारका लड्डू। यह मूंग वा उड़दके सत्तूमें चीनी मिला कर घीमें फेंट कर बनाया जाता है।

मगदा (हिं० पु०) मार्ग-प्रदर्शक, रास्ता दिखलानेवाला।

मगदी—महिसुरके बंगलोर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १२° ५०´ से १३° १२´ उ० तथा देशा० ७७° ४´ से ७७° २७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३५६ वर्गमील और जनसंख्या ६५ हजारके करीब है। इसमें इसी नामका १ शहर और ३६४ ग्राम लगते हैं। इसके दक्षिण-पूर्व भागमें अर्कवली नदी बहती है। स्थानीय सावन-दुर्ग और भैरव-दुर्ग नामक दोनों गिरिशिखर बहु प्राचीनकालसे ही दुर्ग द्वारा सुरक्षित थे। चोल-राजवंश, विजयनगर-राजगण और गौड़ सरदारोंने क्रमानुसार इस सम्पत्तिका भोग किया था।

२ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षा० १२° ५७´ २०´´ उ० तथा देशा० ७७° १६´ १०´´ पू०के मध्य अवस्थित है। ११३६ ई०में किसी चोलराजने इस नगरकी प्रतिष्ठा की थी। १६वीं शताब्दीमें बङ्गलूरके गौड़ सरदार हम्मड़िकम्पे गौड़ने इस नगरको जीत कर यहां अपने रहने योग्य एक प्रासाद बनवाया था। १७२८ ई०में महिसुरके हिन्दू राजा गौड़-सरदारको पराजित और बन्दी कर श्रीरङ्गपत्तन ले गये और उन्होंने वहां अपनी शासन-सीमा फैलाई। नगरके उत्तरमें गण्डशैलके ढालू देश पर एक दुर्ग है। किम्पे गौड़ द्वारा प्रतिष्ठित सोमेश्वर आज भी भग्नावस्थामें विद्यमान है।

मगध (सं० पु०) मगि-अज् पृषोदरादित्वात् साधुः, मगं दोष दधाति धा-क, वा कण्ड्वादि मगध-अच्। प्राचीन जन पदका भेद। महाभारतमें लिखा है,—इस देशके अधिवासी बड़े इशारेबाज थे।

"इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोशलाः।
अर्द्धोक्ताः कुरुपाञ्चालाः शाल्याः कृतस्नानुशासनाः॥"

(भारत ८।४५।४८)

वर्त्तमान विहार प्रदेश मगध नामसे विख्यात था। ऋग्वेदमें इसको 'कीकट' कहा गया है अथर्ववेदमें मगध नाम विद्यमान है। भगवान मनुके समयमें यहां तीर्थ-यात्राके सिवा आना मना था।

इसकी सबसे प्राचीन नगरीका नाम गिरिव्रज था। कुशात्मज वसुने इस नगरीकी स्थापना की थी। यह स्थान गङ्गा और सोनभद्रके सङ्गम-स्थानके निकट बसा हुआ था। गिरिव्रज देखो। राजा जरासन्धने इस नगरीको अपनी राजधानी बनाया था।

जरासन्धके बाद उनके उत्तराधिकारी बार्हद्रथोंने बहुत दिनों तक गिरिव्रजका राजत्व किया। इसके बाद इस पर शुनकवंशियोंका अधिकार १२८ वर्ष तक रहा। इसके उपरान्त शैशुनागवंशका ३६० वर्ष तक यहां राजत्व था। इसी वंशके बिंबिसार राजाके शासनकालमें बुद्धदेवका आविर्भाव हुआ। उनके विशुद्ध उपदेशको सुन कर मगधके राजा बिंबि-सार विमुग्ध हुए। उनके पुत्रने बौद्धधर्म ग्रहण किया। उस समय बिंबिसारकी राजधानी राजगृह थी। यह गिरिव्रजके निकट ही था। राजगृह देखो। नन्दवंशके समय पाटलिपुत्र राजधानी थी। पाटलिपुत्र देखो।

पुराणोंके अनुसार नन्दवंश १०० वर्ष, उसके बाद मौर्य्यवंश १३७ वर्ष, फिर ११० वर्ष शुङ्गवंश, उसके बाद कण्व वंशने ४५ वर्ष राज्य किया था।

जिस समय प्रसिद्ध वीर अलेकसन्दर या सिकन्दर ने भारतके पञ्जाब पर आक्रमण किया था, उस समय यह मगध 'प्राच्य' (Prasii) राज्य कहलाता था और इसकी धन-दौलतकी चर्चा संसार भरमें फैल गई थी। यह सुन कर ही मगधको जीत लेनेके लिये सिकन्दरकी मुंहसे पानी टपक पड़ा था। इसीलिये उन्होंने भारत पर चढ़ाई कर दी थी। किन्तु अपनी फौजकी इच्छा स्वदेश लौटनेकी थी इससे वहां तक पहुंच न सके।

अलेकसन्दर और प्रियदर्शी देखो।

गुप्तवंशीय राजाओंने भी मगधका राजत्व किया

था। पुष्पपुरमें उनकी राजधानी थी। ई० सन् ४ से ६ शताब्दी तक इसका शासनदण्ड उनके हाथमें था। हूणराजा तोरमाण और पीछे मालवाके राजा यशोधर्मके अद्भुत तेजसे गुप्तवंशका अन्त हुआ था। कान्यकुब्ज या कन्नौजके सम्राट् हर्षवर्द्धनके समयमें मगधमें माधवगुप्त मित्र बन कर राज्य करते थे। किन्तु जब हर्षवर्द्धनका देहावसान हुआ, तब माधव गुप्तके पुत्र आदित्यसेन सम्राट् हुए। किन्तु इसके बाद ही मगध-राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया। पश्चिमका राजत्र मौखरि तथा पूर्वका राजत्र गुप्तवंशके हाथ आया; किन्तु ये दोनों सामान्य राजाकी तरह राज्य करने लगे। इसके बाद ८वीं शताब्दीमें गौड़ आदिशूरका अभ्युदय हुआ। मगध इनकी ही अधीनतामें आ गया। किन्तु इनकी अधीनतामें यह बहुत दिनों तक टिक न सका। इन्हींके राजत्वकालमें पालवंशके पहले राजा गोपालने प्रजाकी सहायतासे मगध पर अधिकार जमाया। इसी समयसे मगध विहार नामसे प्रसिद्ध हुआ। बारहवीं शताब्दी तक पालवंशने विहार पर राज्य किया था। पालवंशके अन्तिम राजा गोविन्द पालके बाद बल्लालसेनने विहार पर अधिकार किया था। इनके पुत्र लक्ष्मणसेनके हाथसे ही विहार मुसलमानोंके हाथमें गया। मुसलमानोंके राजत्वके पहले मानवंशीय राजाओंने मगधमें जगह जगह राज्य किया था। इन राजाओंके यहां शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका प्राधान्य था। यह उस समयके शिलालेखसे मालूम होता है। विहार देखो।

मगधमें हिन्दुओंका प्रधान तीर्थ गयाक्षेत्र है। बुद्धके आविर्भाव होनेसे पहले यहां हिन्दुओंका प्राबल्य था। बुद्ध भगवान् तथा उनके शिष्योंके उद्योगसे यहां बौद्ध-धर्मका प्रचार हुआ। यद्यपि नन्दवंशीय राजा तथा उनके पीछेके चन्द्रगुप्त हिन्दू तथा जैनधर्मके पक्षपाती थे, तथापि मौर्य्यवंशीय सम्राट् अशोकके समय बौद्धधर्म राजधर्मके रूपमें यहां विद्यमान था। फिर अशोकके पुत्र दशरथके समय यहां जैनधर्मका कुछ आदर हुआ। गुप्त-वंशीय राजाओंके समय वैदिक-धर्मका फिर प्रचार हुआ था; सम्राट् समुद्रगुप्त अश्वमेधयज्ञ इस बातका समर्थन कर गये हैं। गुप्त राजाओंके समयमें यहां सौर-धर्म भी था। पाल-राजाओंके समय यहां बौद्धधर्मने प्रधानता पाई थी। इन्हींके समयमें विहार या मगधमें बौद्ध-यतियोंके लिये नालन्द नामक विश्वविद्यालय स्थापित हुआ था। मुसलमानोंने आकर भी इस बौद्ध-प्रभावको देखा था और इन्हींके कारण यहांसे बौद्ध-धर्मका लोप हुआ।

मगधमें गया, पुन-पुन नदी, च्यवनका आश्रम और राजगृह वन, आदि पवित्र तथा पुण्य-स्थान हैं। इसी-लिये इनका हिन्दू, बौद्ध तथा जैनी आदर करते आ रहे हैं।

"कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या पुनःपुनः।
च्यवनाश्रमं पुण्यं पुण्यं राजगृहं वनम्।"

मुसलमानोंने मगध पर अधिकार जमा कर इसके प्रसिद्ध नगर राजगृहमें ही अपना स्थान जमाया। इससे यह एक मुसलमानोंका भी तीर्थ होगा। आज भी मुसल-मान वहां मकदूम-दर्शनके लिये जाया करते हैं।

राजगृह शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

भविष्य-ब्रह्मखण्ड नामक पौराणिक ग्रन्थमें लिखा है कि, मगधकी उत्तरी सीमा पर गण्डकी नदी बहती है, जहां हरिहरनाथ विराजमान हैं। दक्षिण विहारकी बगलमें शिव नदी है, पश्चिममें चारल गांव। यह गांव भोजदेशके सीमा पर मौजूद है। पूर्व-सीमा पर गङ्गा तथा दक्षिणांशमें सूर्यपुर मौजूद है। कलिमें यहांके मनुष्य आचार हीन होंगे। शाकद्वीपी ब्राह्मण कृष्ण-पुत्र शाम्बका कुष्ठरोग आराम करनेको मगधमें आकर बस गये थे। ये लोग आयुर्वेदज्ञ थे तथा सर्वसाधारण इनका आदर-मान करते थे। जीविका-निर्वाहके लिये ये लोग नाना देशोंमें तितर-बितर हो गये। ये लोग अगहन सुदी अष्टमीको सूर्यनारायणका व्रत करते हैं। इस जातिके सिवा कुरमी जातिकी बस्ती अधिक है। ये क्षार तय्यार किया करते हैं। मगधमें चना आदि रब्बी अन्न बहुत पैदा होता है।

कलिकालमें कुछ दिनों तक मुसलमानोंका प्राधान्य रहेगा। इसके बाद समुद्रग्रामी अग्निवर्ण जाति आ कर मगध पर कब्जा करेगी। इनके उद्योगसे गङ्गाके किनारे कितनी ही अट्टालिकायें तय्यार होंगी।

मगधमें प्रायः तीन हजार ग्राम हैं, इनमें सात ही मुख्य हैं—पांच पूर्वमें सात पश्चिममें आठ दक्षिणमें और सात उत्तरमें। इनमें गङ्गाके दक्षिण किनारे नीलकण्ठ-विराजित वैकुण्ठ, फुल्कार, गण्डकीके किनारे सरस, गङ्गाके समीप जाफर, कसार, विजयपुर, सेरपुर, नत्रोनावाद, तरला, चिफुला, साहाज, फुल्लारो, लौह-वन्धन, चिराय, गुणया शृङ्गिया, नरहन, रामपुर, हाजीपुर, भगु, गन्धार और लालगञ्ज है। मगधको राजधानीका नाम पाटलिपुत्र है।

यह कहनेकी अवश्यकता नहीं कि आज भी पटना या पाटलीपुत्र मगधमें विद्यमान है और सबसे श्रेष्ठ नगर है। पाटलीपुत्र देखो।

(२) मगध देशके रहनेवाले मनुष्य। (३) पीपलामूल (वैद्यकनि०)

मगधजा (सं० स्त्री०) पिप्पली।

मगधजाफल (सं० क्ली०) पिप्पली।

मगधा (सं० स्त्री०) मगधस्तन्नामा देश उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्या इति 'अर्श-आदिभ्योऽच्' स्त्रियां टाप्। पिप्पली।

मगधीय (सं० त्रि०) मगधे भवः गहादित्वात् छ। मगधदेशोद्भव।

मगधेश (सं० पु०) मगधदेशका राजा, जरासन्ध।

मगधेश्वर (सं० पु०) मगधस्य तदाख्यदेशस्य ईश्वरः। १ जरासन्ध राजा। २ मगधदेशके अधिपतिमात्र।

मगधोद्भवा (सं० स्त्री०) मगधे उद्भवो यस्याः। १ पिप्पली। (त्रि०) २ मगधदेशजात, मगधदेशमें होनेवाला।

मगमा (हिं० पु०) कागज बनानेमें उसके लिये तैयार किये हुए गूदेको धोनेकी क्रिया।

मगर—नेपालका योद्धृ-सम्प्रदाय वा जातिभेद। ये लोग अपनेको हिन्दू बतलाते हैं, सही, पर आज भी बहुतेरे तिब्वतीय भाषाका व्यवहार करते हैं और तिब्बतीय रस्म-रिवाज तथा लामाके उपदेश पर विश्वास रखते हैं। इनकी आकृति प्रकृति भी उन्हींसे मिलती जुलती है। पर हां, नेपालमें शेष सभी जातिके साथ ये स्थानीय भाषामें ही बोलचाल करते हैं। तिब्बतीय भाषाका व्यवहार करने पर भी सभी भारतीय अक्षरोंमें लिखना पढ़ना सीखते हैं, ब्राह्मणको अपना पुरोहित बनाते और गो-मांस छूते तक नहीं हैं। ये लोग पहले सिक्किममें रहते थे, वहांसे लेपचा जाति द्वारा मेची और कुशी-नगरके पश्चिममें, फिर वहांसे लिम्बू जाति द्वारा पश्चिममें अरुण और दुदकुशीके उस पार भगा दिये गये। अभी कालीनदीके दोनों किनारे पर इन लोगोंका वास है। इन लोगोंमें १२ थोक हैं, अपने थोकमें वैवाहिक आदान-प्रदान नहीं चलता।

मगर (हिं० पु०) १ घड़ियाल नामक प्रसिद्ध जलजन्तु। २ मीन, मछली। ३ एक प्रकारका गहना जो मछलीके आकारका होता और कानमें पहना जाता है। (अव्य) ४ लेकिन, परन्तु।

मगरतलाव—कराची जिलेका उष्ण प्रस्रवण युक्त एक बड़ा सरोवर। मुसलमानोंके यहां यह 'मगरपीर' वा 'पीर मङ्ग' नामसे मशहूर है। यह कराचीसे प्रायः साढ़े तीन कोस उत्तरमें अवस्थित है। इसकी लम्बाई १५० गज और चौड़ाई प्रायः ८० गज होगी। इसमें दो सौसे अधिक मगर रहते हैं, इसी कारण इसका मगरतलाव नाम पड़ा है। स्थानीय लोगोंका विश्वास है कि महिषको छोड़ कर और सभी जीव इन मगरोंका खाद्य है। सरोवरके किनारे जीवहत्या करनेसे ये सब मगर झुंडके झुंड आते और उसे खाते हैं। इस समय ये आपसमें खूब लड़ते झगड़ते हैं। मांस खा लेने पर वे सबके सब जलमें अन्तर्हित हो जाते हैं।

सरोवरके किनारे पीरमङ्गकी मसजिद है। सिन्धु प्रदेशवासी हिन्दू-मुसलमान मात्र ही इस पीरकी भक्ति करते हैं। बहुतोंका विश्वास है कि यहां शवको दफनानेसे भारी पुण्य होता है। इस कारण प्रतिवर्ष सैकड़ों मनुष्य यहां पर दफनाने आते हैं।

मगरधर (हिं० पु०) समुद्र।

मगरब (अ० पु०) पश्चिम।

मगरबाँस (हिं० पु०) कोङ्कन और पश्चिमीघाटमें आधिकतासे होनेवाला एक प्रकारका कँटीदार बाँस।

मगरमच्छ (हिं० पु०) १ मगर या घड़ियाल नामक प्रसिद्ध जलजन्तु। २ बड़ी मछली।

मगरा—बङ्गालके हुगली जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२° ५६' उ० तथा देशा० ८८° २२' पू० मगरा-खाल पर अवस्थित है। जनसंख्या लगभग एक सौ है। यहां ईष्ट-इण्डिया-रेलवेका एक स्टेशन है। स्थानीय उत्पन्न द्रव्यके वाणिज्यके लिये यह स्थान बहुत मशहूर है। यहांकी बालू घर बनानेमें विशेष उपयोगी है। और यह 'मगराकी बालू' नामसे मशहूर है।

मगराहाट—बङ्गालके २४ परगने जिलेका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २२° १५' उ० तथा देशा० ८८° २३' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या साढ़े चार सौके करीब है। यहां ई. बी. आर. रेलवेका एक स्टेशन है। यहां चर्च-मिशनरी सोसाइटीका एक गिर्जाघर है।

मगरूर (अ० वि०) अभिमानी, घमंडी।

मगरूरी (हिं० स्त्री०) अभिमान, घमंड।

मगेरा (हिं० पु०) नदीका ऐसा किनारा जिसमें बालूके साथ कुछ मिट्टी मिली हो और जो जोतने बोनेके योग्य हो गया हो।

मगरोसन (अ० स्त्री०) नसवार, सुंघनी।

मगल (सं० पु०) गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषिभेद।

(प्रवराध्याय)

मगलीपरंड (हिं० पु०) रतनजोत भागवेरंडा।

मजलूब (फा० पु०) १ चौबीस शोभाओंमेंसे एक। (वि०) २ पराजित, जो जीत लिया गया हो।

मगस (हिं० पु०) १ पेरे हुए ऊंखोंकी सीठी, छोई। २ शाकद्वीपकी एक प्राचीन योद्धाजातिका नाम।

मगसिर (हिं० पु०) अगहन मास।

मगह (हिं० पु०) मगधदेश।

मगहपति (हिं० पु०) मगधदेशका राजा, जरासन्ध।

मगही (हिं० वि०) १ मगध-सम्बन्धी, मगधदेशका। २ मगहमें उत्पन्न। (पु०) ३ एक तरहका पान।

मगानन्द—पञ्जाबप्रदेशके सिरमूर राज्यस्थ शिवालिक पर्वतका एक गिरिसङ्कट। यह अक्षा० ३०° ३२' उ० देशा० ७७° १६' पू०के मध्य विस्तृत है। १८१५ ई०के गुरखा-युद्धके समय इस गिरिसङ्कटके पार्श्ववर्त्ती नाहन नामक स्थानमें अङ्गरेजी-सेनाने छावनी डाली थी।

मगी—आर्य, शक, बाह्लिक, पारस्य, असिरिय आदि जाति- के पुरोहित 'मग' वा 'मगी' कहलाते हैं। ये लोग सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि, जल और वायुकी पूजा करते थे। हिरोदोतसने इन्हें पर्वतके ऊपर, जूपिटर वा इन्द्रकी उपासना करते भी देखा था। वे लिख गये हैं, कि असुरों (Assyrians)-से इन्होंने वीणापाणि (*Venus*) और वरुण (Uranus)-की उपासना करना सीखा है।

स्ट्राबोने लिखा है कि, पारसिक पुरोहित पूजाके लिये किसी देव-प्रतिमा वा वेदीका निर्माण नहीं करते थे। वे जूपिटर-रूपमें द्यौ और 'मिथ्र' नामसे सूर्यकी उपासना करते थे। कोई कोई कार्त्तिककी पूजा भी करता था। मिथ्र (वैदिक मित्र) देव ही इस सम्प्रदायके कुलदेवता हैं। जरथुस्त्र या जोरोअष्टरने इस मित्र-पूजाकी अधिकांश रीति-नीतिको बदल कर अग्निपूजाका प्रचार किया। इस पर आदि मित्रपूजकों-के साथ उनका विवाद खड़ा हुआ। किन्तु आखिर जरथुस्त्रकी ही जय हुई थी, बहुत थोड़े मनुष्य आदि मित्र-पूजाके पक्षपाती थे, वे भी अन्तमें जन्मभूमि परित्याग करनेको वाध्य हुए। भोजकब्राह्मण देखो।

जब बाबिलनके सिंहासन पर मिदीयवंश बैठा, उस समय प्रायः ई० सन्से २२३४ वर्ष पहले काल्दीयामें अग्निपूजक मगी लोगोंका मत प्रवर्त्तित हुआ था, जिसे बहुतसे जरथुस्त्र-मतका ही संस्कार समझते थे। इस मतमें पञ्चभूतकी उपासना ही प्रधान थी तथा अग्निदेव ही उपासनाके मूल थे।

इस देशमें जिस प्रकार याजनक्रियामें ब्राह्मणको छोड़ कर और किसी जातिको याजन-क्रिया करानेका अधिकार नहीं है, अग्निपूजक मगी लोगोंका अधिकार भी उसी प्रकार था। कोई भी भक्त या उपासक इन मग-पुरोहितोंकी सहायताके विना कोई देवकार्य नहीं कर सकता था। बलि, होम, मन्त्रपाठ आदि सभी अनुष्ठान एकमात्र पुरोहित ही करते थे। राजासे ले कर प्रजा तक सभी द्रव्यादिको वहां पहुंचाते और दर्शक रूपमें उनका क्रियाकाण्ड देखते थे। पारस्यपति दरायुस्ने इन अग्निपूजकोंको बहुत सताया था। अर्त्तक्षत्र (Artaxerxes Longomanus)-के समय उन्होंने अधिपतियोंको अपने मतमें दीक्षित किया था। प्रसिद्ध

ऐतिहासिक रालिनसन अध्यापक वेष्टरगार्ड मगोधर्मकी उत्पत्ति जरथुस्त्र मतसे बिलकुल विभिन्न बतलाते हैं। पारस्य और भोजकब्राह्मण देखो।

मगु (सं० पु०) शाकद्वीपवासी ब्राह्मण। मग देखो।

मगुन्दी (सं० स्त्री०) मगुन्दी नामक पिशाचीविशेष। (अथर्व २।१४।२)

मगोर (हिं० स्त्री०) सांगीकी तरहकी एक प्रकारकी मछली, यह विना छिलकेकी और कुछ लम्बी लिये काले रंगकी होती है। यह डंक मारती है।

मगोरी—बम्बईप्रदेशके महिकान्था विभागके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त-राज्य। यहांके सामन्त राठोर-वंशीय राजपूत हैं। ये ईडरके राजाको वार्षिक ६०) रु० कर देते हैं।

मग्ज (अ० पु०) १ मस्तिष्क, दिमाग। २ किसी फल-के वीजकी गरी, गूदा।

मग्जरोशन (फा० स्त्री०) नास, सुंघनी।

मग्न (सं० त्रि०) मस्ज्-क्त (ओदितश्च । पा ८।२।४५) इति निष्ठा तकारस्य नत्वं (स्कोःसंयोगाद्योरन्ते च। पा ८।२।२९) इति सलोपः, चोः कुत्वञ्च। १ स्नात, डुवा हुआ। २ तन्मय, लीन। ३ प्रसन्न हर्षित। ४ मदमस्त, नशे आदिमें चूर। ५ नीचेकी ओर गिरा या ढलका हुआ, जो उन्नत न हो। (पु०) ६ एक पर्वतका नाम।

मघ (सं० पु०) मघि-अच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ द्वीपविशेष, पुराणानुसार एक द्वीपका नाम जिसमें म्लेच्छ रहते हैं। २ देशविशेष, मघ नामक म्लेच्छोंका स्थान। (क्ली०) २ पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल। ४ धन, सम्पत्ति। ५ पुरष्कार, इनाम। ६ मगब्राह्मण। शाकद्वीप और भोजकब्राह्मण देखो।

मघई (हिं० वि०) मगही देखो।

मघर—युक्तप्रदेशके बस्ती जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६° ४५' उ० तथा देशा० ८३° ८' पू० गोरख-पुरसे फैजाबाद जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जन-संख्या तीन हजारके लगभग है। यहां अनेक प्राचीनत्व-के निदर्शन पाये जाते हैं। किंवदन्ती है कि, कपिलवस्तु महानगरीके ध्वंस होनेके बाद, बौद्धयतिगण इस नगरमें आ कर बसे थे।

आमी नदीके दाहिने किनारे नगरके पूर्व भागमें प्रसिद्ध हिन्दू और मुसलमान पूजित धर्म-प्रवर्त्तक कबीर का समाधिस्तम्भ विद्यमाम है। १४५० ई०में बिजली खान्ने इस रौजाको बनवाया था। पीछे १५६७ ई०में नवाब फिदाई खांने इसका संस्कार कराया। इसके कुछ दक्षिण कबीरके उद्देशसे स्थापित एक हिन्दू-तीर्थ और मसजिद है। दूर दूर स्थानके हिन्दू इस कबीर तीर्थमें आते हैं।

नगरके मध्यभागमें १७वीं सदीके मुसलमान शासन-कर्त्ता काजी खलील-उर-रहमानका समाधि-मन्दिर विद्यमान है। इसके ठीक पश्चिममें एक दुर्गका ध्वंसाव-शेष नजर आता है, जो मघर-राजवंशकी कीर्त्ति समझा जाता है। एतद्भिन्न इस दुर्गके चारों ओर तथा वहांसे ले कर कबीर-रौजाके समीप तकके विस्तृत स्थानमें बहुतसे इष्टक-स्तूप विस्तृत हैं।

मघरसे एक कोस दक्षिण-पश्चिममें शोषरताल नामक दिघीके पूर्वी किनारे पर महास्थान डिही नामक विस्तृत ध्वंसावशेष पड़ा है। उस ध्वंसराशिके ऊपर शीर्षाराव ग्राम बसा हुआ है। इस ग्रामसे चार सौ फुट पूर्व एक इष्टक-निर्मित स्तूप देखा जाता है। कहते हैं, कि बुद्ध-देवने यहां पर मस्तक मुण्डन कराया था। उस महा-स्मृतिकी रक्षाके लिये पीछे वहां पर एक स्तूप बनाया गया है। उक्त स्तूपसे ३ सौ फुट उत्तर-पूर्वमें ५० फुट परिधिका एक दूसरा बड़ा स्तूप खड़ा है, जहां पर बुद्धदेवने छन्दकसे विदाई ली थी। वहां पर सम्राट् अशोकने एक स्तूप बनवा दिया है। इस ध्वंस स्तूपसे ३७० फुट उत्तरमें एक और भी इष्टक-स्तूप नजर आता है। इस स्थान पर शाक्यबुद्धने राज-परिच्छदका त्याग किया था। उस घटनाको चिरस्मरणीय करनेके लिये वहां जो स्तूप बनाया, वही वर्त्तमान स्तूपमें प्रदर्शित होता है। इस स्तूपसे भी ५५० फुट दक्षिण-पूर्वमें पैठान डिहि नामक विस्तीर्ण स्तूप दण्डायमान है, जो बौद्ध-विहार माना जाता है। मघर नगरसे ३ कोस उत्तरमें कोप नामक ग्राममें कोपेश्वर शिवमन्दिर और कुछ ध्वंसावशेष विद्यमान है।

मघवत् (सं० पु०) मघवत् (मघवा बहुलं। पा ६।४।१२८)

इति पक्षे तृ आदेशः, ऋ इत्। १ इन्द्र। २ दनुके एक पुत्र-का नाम।

मघवती (सं० स्त्री०) इन्द्राणी।

मघवन् (सं० पु०) मह्यते पूज्यते इति मह पूजायां (श्वन्नुक्षन् पूषन् प्लीहन्निति। उण् २।१५८) निपातनात् ह्रस्य घ, अवुगागमश्च। १ इन्द्र। २ जैनोंके बारह चक्र-वर्त्तियोंमेंसे एक। ३ पुराणानुसार सातवें द्वापरके व्यासका नाम। ४ पुराणानुसार एक राक्षसका नाम।

मघवा (सं० पु०) मघवान देखो।

मघवाजित् (सं० पु०, रावणका बड़ा लड़का इन्द्रजित्। इसने इन्द्रको जीत लिया था। इसका दूसरा नाम मेघ-नाद भी है।

मघवान् (हिं० पु०) इन्द्र।

मघवाप्रस्थ (सं० पु०) इन्द्रप्रस्थ नामक प्राचीन नगर।

मघवारिपु (हिं० पु०) इन्द्रका शत्रु, मेघनाद।

मघा (सं० स्त्री०) मह-घ, ह्रस्य घत्वं। औषधविशेष एक प्रकारकी दवा। २ अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे दसवां नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिपति पितृगण हैं। यह नक्षत्र अधोमुखगण है।

"मूलाश्लेषा कृत्तिका च विशाखा भरणी तथा।
मघा पूर्वात्रयञ्चैव अधोमुखगणाः स्मृतः॥"
(जातकाभरण)

मघानक्षत्रमें जन्म होनेसे देवारिगण होता है। शत-पद चक्रानुसार नामकरण करनेमें प्रथमादि पादमें म, मि, मु, मे, ये चार अक्षर आदिमें होंगे। अर्थात् प्रथम पादमें म, द्वितीयमें मि, तृतीयमें मु और चतुर्थपादमें मे इस प्रकार आद्यक्षर होगा।

मघानक्षत्रमें जन्म होनेसे सिंहराशि होती है। इस नक्षत्रका प्रथम तीन दण्ड गण्ड है। इस दण्डमें यदि कोई जन्म ले, तो उसका परित्याग करना विधेय है।

"सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते।" (कोष्ठीप्र०)

मघानक्षत्रमें जन्म लेनेसे जातबालक विवादशील, सिंहविक्रम, सुन्दरलोचन-सम्पन्न, प्रतापशील, अल्प-सन्ततियुक्त, वनिता-विरोधी, अल्पधन और विद्यासम्पन्न तथा राजसेवक होता है।

मघानक्षत्र मूसकजातीय है। इसकी आकृति हलके सदृश तथा पञ्चतारकायुक्त है।

अष्टोत्तरीके मतसे—मघा पूर्वफल्गुनी और उत्तर-फल्गुनी नक्षत्रमें जन्म लेनेसे मङ्गलकी दशा जाननी होगी। इस दशाका परिमाण ८ वर्ष है, प्रति नक्षत्रमें २ वर्ष और ८ मास है। प्रति नक्षत्रके पाद ८ मास तथा प्रतिदण्डमें १६ दिन और प्रतिदण्डमें १६ पल होता है।

विंशोत्तरीके मतसे—मघानक्षत्रमें जन्म होनेसे केतुकी दशामें जन्म होता है। इस दशाका भोगकाल ७ वर्ष है।

मघानक्षत्रमें यात्रा नहीं करनी चाहिये, करनेसे मृत्यु होती है। यदि इस नक्षत्रमें व्याधि हो, तो रोगीकी मृत्यु अवश्यम्भावी है, ऐसा जानना चाहिये।

"मघाभरणीहस्तेषु मूले वा ज्वरितोऽपिवे।
मृत्युमाप्नुते सोऽपि नात्र कार्या विचारणा।"
(हारीत २ स्था० ४ अ०)

यह शब्द बहुवचनान्त भी देखनेमें आता है।

"कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दोः करे रविः।
यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते।" (तिथितत्त्व)

मघात्रयोदशी (सं० स्त्री०) मघादशम नक्षत्र मघायुक्ता त्रयोदशी मध्यपदलोपि कर्मधा०। मघानक्षत्रयुक्त, भाद्र-मासकी कृष्णत्रयोदशी। इस त्रयोदशीमें पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। यह श्राद्ध मधु और पायस द्वारा करना होता है।

"प्रोष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीं।
प्राप्य श्राद्धं हि कर्त्तव्यं मधुना पायसेन च॥
यत् किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम्।
तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च" ॥ (तिथितत्त्व)

मधुपायस द्वारा करनेमें असमर्थ हो, तो मधुयुक्त जिस किसी विहित द्रव्य द्वारा श्राद्ध करे।

यह श्राद्ध सबोंको करना चाहिये। इस श्राद्धमें शूद्र-का भी अधिकार है।

"मघायुक्ता च तत्रापि शस्ता राजंस्त्रयोदशी।
तत्राक्षयं भवेत् श्राद्धं मधुना पायसेन च॥"

अत्र यत् श्राद्धं तन्मधुयोगेन वा अक्षयं भवेत्, अतएव मनुवचने यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रमित्यनेन मधुमात्रमुक्तं अतोऽत्र सुतरां शूद्रस्याकारः।" (तिथितत्त्व)

मधु और पायस द्वारा श्राद्ध करनेसे वह अक्षय

होता है। पुत्रवान् व्यक्ति इस त्रयोदशीमें जो श्राद्ध करें, उसमें पिण्ड न दें, श्राद्धके नियमानुसार श्राद्ध करें।

"भोजङ्गीं तिथिमात्साघ यावच्चन्द्रार्कसङ्गमम्।
तथा पिमहती पूजा कर्त्तव्या पितृदैवते।
मृत्ते पिण्डप्रदानन्तु ज्येष्ठपुत्री विवर्ज्जयेत्।"

पितृदैवते मृत्ते मघायांः—

"पिण्डनिर्वापरहितं यक्तु श्राद्धं विधीयते।
स्वधावाचनलोपोऽत्र विकिरस्तु न लुप्यते।
अत्रयं दक्षिणास्वस्ति सौमनस्य यथास्त्विति॥" (तिथितत्त्व)

मघाना (हिं० पु०) एक प्रकारकी बरसाती घास। मकड़ा देखो।

मघाभाव (सं० पु०) मघायां भवः। १ शुक्रग्रह। (त्रि०) २ मघानक्षत्रमें जातमात्र।

मघाभू (सं० पु०) मघायां मघासमीपस्थ-पूर्वफल्गुन्यां भवतीति भू-क्विप्। शुक्राचार्य।

मघारना (हिं० क्रि०) आगामी वर्षाऋतुमें धान बोनेके लिये माघके महीनेमें हल चलाना।

मघियाना—पञ्जावप्रदेशके झङ्ग जिलान्तर्गत एक नगर और विचार सदर। यह अक्षा० ३१° १६′ ४०″ उ० तथा देशा० ७२° २०′ ५५″ पू०के मध्य अवस्थित है। पार्श्ववर्त्ती झङ्ग नगरमें जाने आनेके लिये एक पक्की सड़क गई है। दोनों ही नगर एक म्युनिस्पलिटोके अधीन है।

इस नगरसे प्रायः १॥ कोसकी दूरी पर चन्द्रभागा नदी बहती है। ग्रीष्म-ऋतुमें इस नदोकी खरोरा शाखा जलसे परिपूर्ण हो कर नगरके पार्श्व हो कर प्रवाहित होती है। इस समय नदी-तीरवर्त्ती घाट और वृक्षकी शोभा देखते ही बन आती है।

चन्द्रभागा नदीके बालुकामय उपत्यका-देशका परित्याग कर एक अधित्यका भूमिके प्रान्तदेशमें मघियाना नगर स्थापित है। यहां जबसे विचार सदर प्रतिष्ठित हुआ है, तभीसे झङ्ग नगरकी पूर्वसमृद्धिका बहुत कुछ ह्रास हो गया है। अभी कन्धार आदि अफगान नगरका सभी काम काज इसी नगरमें होता है। साबुन, अश्वसज्जा और पीतलके बरतनके लिये यह स्थान बहुत मशहूर है।

मघेरा—युक्तप्रदेशके मथुरा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २७° ३४′ उ० तथा देशा० ७७° ३७′ पू०के मध्य अवस्थित है।

मघी (सं० स्त्री०) मघा तदाख्यनक्षत्रं उत्पत्तिकारणतयाऽस्त्यस्या इति मघा-अर्श-आदित्वादच्, गौरादित्वात् ङीष्। धान्यभेद, आउस नामका धान।

मघोनी (सं० स्त्री०) मघोनः पत्नीति मघवन् स्त्रियां ङीष्। वकारस्य च सम्प्रसारणम्। इन्द्राणी।

मङ्कलक (सं० पु०) १ ऋषिभेद। २ यज्ञभेद।

मङ्कसर—सिलेबिस् द्वीपवासी जातिविशेष। यूरोपीयोंके निकट इस जातिके लोग मकसर (Macassar) कहलाते हैं। उक्त द्वीपके दक्षिण-पश्चिम उपद्वीपभागमें इनका वास है। १५२५ ई०में जब पुर्त्तगीजोंने पहले पहल इस द्वीपमें पदार्पण किया, तब उन्होंने इस जातिको लिखित और कथित भाषामें उन्नत देखा था। उस समय इनकी भाषानुयामी वर्णमाला भी प्रचलित थी। इन्होंने बुगी जातिको परास्त कर द्वीपपुञ्जवासी जनसाधारणके नयन आकृष्ट किये थे।

द्वीपवासियोंमेंसे ये लोग ही पहले पहल इस्लाम-धर्ममें दीक्षित हुए। पुर्त्तगीजोंके आगमनकालमें भी ये इस्लाम धर्म-सेवी थे। किन्तु उसके ८० वर्ष पीछे अर्थात् १६०६ ई०के मध्य यव और मलयवासी मिशनरियोंकी सहायतासे ये लोग ईसलाम-धर्ममें दीक्षित हुए। ओलन्दाजोंके साथ विवादमें लिप्त होनेके बाद इन्होंने १६६६ ई०में पराजित हो कर ओलन्दाजोंकी वश्यता स्वीकार की।

मङ्कसर जातिकी वास-भूमि कभी कभी मङ्कसरद्वीप कहलाती है। जहां ओलन्दाजोंने रटार्डम नगर और दुर्ग स्थापन किया, वह भी मङ्कसर कहलाता है।

मङ्कसर नगर एक प्रसिद्ध बन्दरगाह गिना जाता है। ओलन्दाज नाविकोंके शुभागमनसे ही यहांके वाणिज्यकी वृद्धि हुई। स्थानीय द्वीपपुञ्ज, न्युगिनी, अष्ट्रेलिया, चीन और सुमात्रा आदि स्थानोंके साथ यहांका वाणिज्य चलता है। १७४७ ई०में ओलन्दाज गवर्मेण्टके महसूल उठा देने पर वहांके वाणिज्यकी उन्नति हुई है।

मङ्कि (सं० पु०) मकि-इन्। धनेच्छु वणिक्भेद।

मङ्किल (सं० पु०) दावाग्नि ।

मङ्कु (सं० पु०) मकि-उन् । सञ्चलदुगतिक, चलद्गति-विशिष्ट ।

मङ्कुर (सं० पु०) मङ्कयति भूषयतीति मकि-बाहुलकादु-रच् । मुकुर, दर्पण ।

मङ्खन (सं० क्ली०) मङ्ख-ल्युट् । जङ्घात्राण ।

मङ्क्षु (सं० अव्य०) मखि-उन्, पृषोदरादित्वात् खस्य क्षत्वं । १ भृशार्थ । २ शैघ्र्य ।

मङ्क्तृ (सं० त्रि०) मज्जति स्नाति इति मस्ज-तृच् (मस्जिनशोर्झलि । पा ७।१।६०) इति-नुम् । स्नान-कर्त्ता ।

मङ्ग—पार्वतीय जातिविशेष । इस जातिके लोग किरात जातिके अन्तर्भुक्त हैं । किरात देखो ।

मङ्ग (सं० पु०) मङ्गति सर्पतीति मगि-अच् । नौका-का शिरोभाग नावका अगला हिस्सा ।

मङ्गमपेट्ट—दाक्षिणात्यके निजामराज्यके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० १८° १३´ उ० तथा देशा० ८०° ३५´ पू०के मध्य गोदावरी नदोके दाहिने किनारे अवस्थित है । नगरके चारों ओर पत्थरके स्तम्भ सुशोभित है । बहुतसे लोग इन स्तम्भोंको देखने यहां आते हैं । अलावा इस-के एक मट्टोका किला इसके प्राचीनत्वका परिचय देता है ।

मङ्गराज—निघण्टुके प्रणेता ।

मङ्गरूल—बरारराज्यके वासिम जिलान्तर्गत एक तालुक । यह अक्षा० २०°४´ से २०°८०´ उ० तथा देशा० ७७° ६´ से ७७°४२´ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ६३० वर्ग-मील और जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है । इसमें मङ्ग-रूल नामक एक शहर और २०२ ग्राम लगते है ।

मङ्गरूल—बरारराज्यके अमरावती जिलान्तर्गत एक नगर । यहां हिन्दूकी संख्या अधिक है । यह अक्षा० २०° ३६´ उ० तथा देशा० ७७° ५२´ पू०के मध्य विस्तृत है । जन-संख्या ६५८८ है ।

मङ्गरूलपीर—बरारराज्यके वासिम जिलान्तर्गत एक नगर और मङ्गरूल तालुकका सदर । यह अक्षा० २०° १६´ उ० तथा देशा० ७७° २४´ २०´´ पू०के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या ५७६३ है । यहां बादर उद्दीन साहब और सुनाम साहब नामक दो मुसलमान पीरके समाधि-मन्दिर रहनेके कारण शहरका 'मङ्गरूल पीर' नाम पड़ा है । अलावा इसके यहां और भी कितने ही दरगाह तथा मसजिद हैं ।

मङ्गरोता—पञ्जाब प्रदेशके डेरागाजी खां जिलेके अन्तर्गत सानगढ़ तहसीलका एक नगर । यह सानगढ़ गिरि-सङ्कटके मुख पर प्रवाहित सानगढ़ स्रोतस्विनोके किनारे अवस्थित है । यहां अश्वारोही और पदातिक सेना-रक्षाके लिये एक दुर्ग है ।

मङ्गरोल—बम्बईप्रदेशके सौराष्ट्रप्रान्त वा काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत जूनागढ़ सामान्तराज्यका एक नगर और समुद्रतोरवर्त्ती बन्दर । यह अक्षा० २१° ८´ उ० तथा देशा० ७०° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है । जन-संख्या प्रायः १५०१६ है ।

बहुत प्राचीनकालसे ही इस नगरका वाणिज्य-व्यव-साय जोरों चला आ रहा था । भौगोलिक टलेमी *Monoglossum* शब्दमें इस बन्दरका उल्लेख कर गये हैं । यहांकी मसजिद काठियावाड़ विभागके मध्य सर्वोत्कृष्ट है । मसजिदगात्रमें उत्कीर्ण शिलाफलकसे इसका निर्माणकाल १३८३ ई० माना जाता है ।

यह नगर किसी मुसलमान-सरदारकी सम्पत्ति है । सरदार जनसाधारणमें मङ्गरोलके शेख नामसे प्रसिद्ध है । ये जूनागढ़के नवाबको वार्षिक ११५००) रु० कर देते हैं । यहां हस्तिदन्त और चन्दनकाष्ठका कारुकार्ययुक्त बकस तैयार होता है । यहां पर स्थानीय लोगोंका निर्मित एक ६० फुट ऊंचा आलोक-भवन है । यह भवन बन्दरगाहसे प्रायः ४ सौ गज दूर पड़ता है । प्रायः ८ मील दूरवर्त्ती समुद्रवक्षसे उसकी आलोकरश्मि नजर आती है ।

मङ्गरोल—राजपूतानेके कोटाराज्यके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २५° २०´ उ० तथा देशा० ७०° ३१´ पू० बान-गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित है । १८२१ ई०की पहली अक्तूबरको कोटाराज महाराव किशोरसिंहके साथ राजमन्त्री जालिमसिंहका युद्ध छिड़ा । इस युद्धमें अंग-रेजोंने जालिमसिंहकी सहायता की थी । युद्धमें राज-भ्राता पृथ्वीसिंह और अंगरेजोंकी ओरसे कई सेनापति

आहत हुए। यही नगरी उनके रणरङ्गकी अभिनयभूमि थी। अंगरेज-सेनापतियोंके स्मरणार्थ यहां स्मृतिस्तम्भ बनाया गया है।

मङ्गल—पञ्जाबके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० ३१° १८' से ३१° २२' उ० तथा देशा० ७६° ५५' से ७७° १' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ हजारके करीब है। पहले यह राज्य कहलूरके सरदारके अधीन था। पीछे १८१५ ई०में गुरखाओंको राज्यसे निकाल भगाने पर यह स्वाधीन राज्यरूपमें गिना जाने लगा। यहांके राणा अत्रिवंशीय राजपूत हैं। इस वंशने पहले मारवाड़ प्रदेशसे यहां पर आ कर राज्य स्थापन किया। ब्रिटिश सरकारको वार्षिक ७०) रु० कर देते हैं।

मङ्गल—चित्तोराधिप खूमानके पुत्र। कहते हैं कि वृद्ध पिताको मार कर ये राजगद्दी पर बैठे थे, इसीलिये राज्य-सुखका भोग अधिक दिन तक न कर सके। इस अन्याय-आचरणसे विरक्त हो कर सभी सामन्तोंने मिल कर इन्हें राज्यसे मार भगाया। निरुपाय मङ्गलदेश-वहिष्कृत हो उत्तरमरु प्रदेशमें चले गये और वहां एक राज्य बसाया। उनके वंशधरगण 'माङ्गलीय गिह्लाट' कहलाते थे।

मङ्गल—एक प्राचीन कवि। जन साधारणमें ये साधु विल्वमङ्गल नामसे प्रसिद्ध थे। बिल्वमंगल देखो।

मङ्गल (सं० क्लो०) मङ्गति हितार्थं सर्पति मङ्गति दुरदृष्टमनेनास्माद्वेति मगि (मङ्गेरलच्। उण् ५।३०) १ अभिप्रेतार्थसिद्धि। अभीष्ट विषयकी सिद्धिका नाम मंगल है। (त्रि०) २ मंगलविशिष्ट। पर्याय—भावुक, भव्य, भविक, कल्याण, शुभ, क्षेम, प्रशस्त, भद्र, स्वश्रेयस, शिव, अरिष्ट, कुशल, विष्ट, मद्र, शस्त। (शब्दरत्नावली) ३ सर्वार्थरक्षण। (मेदिनी)

मङ्गलके लक्षण;—

"प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम्।
एतद्धि मंगलं प्रोक्तं ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥"

(एकादशीत०)

प्रतिदिन प्रशस्त कर्मोंका आचरण तथा अप्रशस्त कार्य्योंका त्याग ही मंगलपद वाचक है।

मंगलसूचक वस्तुएं—ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें लिखा है,—"जलसे भरा घड़ा, ब्राह्मण, वेश्या, सूखा अन्न, पेनक, दही, घी, मधु, लावा, फूल, दूब, गर्म चावल, शर्करा, बैल, हाथी, घोड़ा, जलती हुई अग्नि, सोना, फूस (पर्ण), तरह तरहके पके फल, पतिपुत्रवती स्त्री, प्रदीप, उत्तम मणि, मुक्ता, पुष्पमाला, सद्योमांस और चन्दन ये ही सब वस्तुएं मंगल-सूचक है।

बायें सियार, नेवला, शवदेह, और दक्षिणमें राजहंस, मयूर (मोर), खञ्जन (खड़लिच), कोयल, कबूतर, शङ्खचिल, चक्रवाक (चकई चकवा), कृष्णसार, चमरी, श्वेतचामर (सफेद चंवर), सवत्सा धेनु (बछड़े-वाली गाय) और ध्वजापताका, तरह तरहके बाजे, मङ्गलध्वनि हरिसङ्कीर्त्तन, घण्टे और शङ्खका शब्द, इत्यादि भी मंगल शब्द हैं। इन्हीं सब वस्तुओंको देख या इनका स्मरण कर मनुष्योंको यात्रा करनी चाहिए यह सब वस्तुएं यात्राके लिये मंगलकारक हैं।

और भी लिखा है कि, बायें शव, शिव, भरा घड़ा, नेवला पतिपुत्रवती शृंगार-की हुई स्त्री, साध्वी और सती स्त्री, सादे फूल, माला, अन्न, खञ्जन, और दाहनी ओर जलती हुई अग्नि, विप्र, बैल या सांढ़, हाथी, बछड़े वाली गाय, सफेद घोड़ा, राजहंस, वेश्या, फूलकी माला, पताका, दही, दूध, मणि, सोना, चांदी, मुक्ता, माणिक्य सद्योमांस या ताजा मांस, चन्दन, मधु, घृत, कृष्णसार, फल, लावा, स्निग्धान्न (चिकने अन्न), दर्पण, सादा कमल, कमलवन, शङ्खचिल, कोरक, खट्वास (मार्ज्जार) या बिल्ली, पहाड़, मेघ, मयूर (मोर), शुक (तोता), सारस, शङ्ख, कोयल और बाजा, ये सब देख कर यात्रा करनेसे मनुष्यको चारों ओर मङ्गल ही मङ्गल दिखाई देता है।

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० श्रीकृष्णजन्म ७० अ०)

"लोकेऽस्मिन् मंगलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः।
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः॥
एतानि सततं पश्येन्न मस्येदर्च्चयेत्ततः।
प्रदक्षिणान्तु कुर्वीत तथा चायुर्न हीयते॥"

(मत्स्यसूक्त महातन्त्र ४३ पटल)

ब्राह्मण, गौ, आग, सोना, सूर्य, जल और राजा ये ही आठ वस्तुएं इस संसारमें मङ्गल कही जाती हैं

इन्हीं सब वस्तुओंकी पूजा अर्चा करनेसे आयु बढ़ती तथा कई तरहके मङ्गल होते हैं।

जातिभेदसे कुशल-मङ्गल इस तरह पूछना चाहिये,—

"ब्राह्मणान् कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम्।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च॥"

(कूर्मपुराण उपवि० ११ अ०)

ब्राह्मणसे मङ्गल पूछने पर कुशल, क्षत्रिय और मित्र-से अनामाय, वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्यताकी बात पूछनी चाहिये।

(पु०) ३ ग्रहविशेष, मङ्गलग्रह। पर्याय—अङ्गारक, भौम, कुज, वक्र, महीसुत, वर्द्धार्चि, लोहिताङ्ग, खोन्मुख, ऋणान्तक, और क्रूरदिक्, आवनेय आदि।

। (ज्योतिस्तत्व)

इसका रक्त-गौरमिश्रित रंग है और दक्षिण दिशा है। यह ग्रह पुरुष, क्षत्रियजाति, सामवेदी, तमोगुणी, तिक्त-रसका चखनेवाला है। इसकी राशि मेष है। यह प्रबाल और अवन्तिदेशका राजा है। इसका वाहन भेड़ा है, चार अंगुलका शरीर, लाल माला और कपड़ा पहनता है। यह भरद्वाज मुनिका पुत्र है। इसकी चार भुजायें हैं, माला, वर्छा, वर, अभय, और जटाधारी। सूर्यके सामने हो रहता है, इसके इष्टदेवके कार्त्तिकेय और प्रत्यधिदेवता पृथ्वी है। यह ग्रह पित्तप्रकृतिका है। युवा, क्रूर स्वभावका, वनचारी, मध्याह्नकालमें प्रबल हो जाता है, गैरिक धातुओंका स्वामी, भूमिचारी, किञ्चित् अङ्गहीन, कटुरसप्रिय, ताम्रवर्ण तथा लाल वस्तुओंका स्वामी है। (ग्रहयोगतत्त्व और लघुजात०)

इसके जन्मका विवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें जो लिखा है, वह इस तरह है;—

एक बार सवसहा वसुमती भगवान् विष्णुके प्रकाशित रूपको देख कर काम पीड़ित हुई। इसके बाद वह एक युवतीका रूप धारण कर विष्णुके शय्याकी ओर अग्रसर हुई। विष्णुने उनकी इच्छा जान कर उनका तरह तरहका श्रृङ्गार किया। इसके बाद ही पृथ्वी मूर्च्छित हो गई। विष्णु भगवानने ऐसी दशामें पृथ्वीसे सहवास कर गर्भाधान किया और वहांसे चले गये। ठीक इसी समय उर्वशी नामकी एक अप्सरा उधरसे ही जा रही थी। उर्वशीने पृथ्वीको जगा कर उनसे मूर्च्छा आनेका कारण पूछा। पृथ्वीने उससे सब वृत्तान्त कहा। उन्होंने यह भी कहा कि, विष्णु भगवान्के वीर्य्य-क्षेप करनेसे मेरी यह अवस्था हुई है। विष्णुने मूंगाके आकारका पृथ्वीमें वीर्य वपन किया था। इससे शीघ्र ही प्रवाल या मूंगेकी तरह एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। यह पुत्र तेजमें सूर्य्यके समान दीप्तिवान् हुआ। फिर समय पा कर यही मङ्गलके नामसे विख्यात हुआ।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ६ अ०)

पद्मपुराणमें लिखा है—"पूर्व समयमें विष्णु भगवान् एक वार पृथ्वी पर घूम रहे थे, ऐसे समय उनके शरीर-से पसीनेका एक बूंद पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस बूंद-से लोहितवर्णका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पृथ्वीने इस पुत्रका स्नेहपूर्वक लालन पालन किया। पीछे यहां ब्रह्माके उद्देश्यसे कठोर तपस्या कर ग्रहोंमें स्थान पाया। (पद्मपुराण स्वर्गख० ११ अ०)

मत्स्यपुराणमें लिखा है, पूर्व समयमें दक्षके यज्ञको ध्वंस करनेके लिये क्रोधित शङ्करके ललाटसे एक श्वेद-बिन्दु पृथ्वी पर गिरा। इसी बिन्दुसे बहु वक्राकार और अनेक नेत्रोंवाला, भयङ्कर एक मनुष्य पैदा हुआ। यह मनुष्य वीरभद्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं वीरभद्र द्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस होनेके बाद महादेवने उनसे कहा, तुमने अद्भुतकार्य्य किया है। अब मनुष्योंके ध्वंस करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा नाम अङ्गारक रखा गया। तुम ग्रहोंमें अग्रगामी होगे। जो मनुष्य चौथके दिन तुम्हारी पूजा करेगा, उनको आरोग्यता, कान्ति और ऐश्वर्य्य प्राप्त होगा।

(मत्स्यपु० अङ्गारकव्रत ६८ अ०)

काशीखण्डमें मङ्गलकी उत्पत्ति दूसरी ही तरहसे लिखी हुई है:—प्राचीनकालमें दाक्षायणीके वियोगमें अत्यन्त दुःखी हो महादेवने उग्र तपस्याका अवलम्बन किया। उस समयमें उनके ललाटसे एक श्वेदबिन्दु जमीन पर गिरा। उसीसे शीघ्र ही एक लोहिताङ्ग पुत्र उत्पन्न हुआ। पृथ्वीने धात्रीरूपसे इसका लालन पालन किया। इसीलिये इनका नाम महीसुत हुआ। इसके बाद यही महीसुत श्रीकाशीधाममें अङ्गार-

केश्वर नामक महादेवजीका एक लिङ्ग स्थापित कर धीरे धीरे तपस्यामें प्रवृत्त हुए। वह अङ्गारकेश्वर लिङ्ग कम्बलाश्वतर नामक दो नागोंके उत्तरभागमें अवस्थित है।

जितने दिनोंतक उनकी देहसे जलते हुए अङ्गारेके समान तेज प्रगट नहीं हुआ, तब तक वह महात्मा तपस्यामें निरत रहे। तपस्या करते समय ही उनके देहसे अंगारे के सदृश्य तेज प्रकट हुआ था। इसीसे इनका नाम अंगारक पड़ा। महादेव भगवान्‌ने उनकी इस कठोर तपस्याको देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सन्तुष्ट हो कर उनको महत्‌ग्रहका पद दिया। यही मङ्गललोक है।

मंगलवार, चौथको उत्तरवाहिनी गंगामें स्नान कर भक्तिके साथ अङ्गारकेश्वरको प्रणाम करनेसे ग्रह-शान्ति होती है। इस दिनको ग्रहणका योग होता है। गणेश-का जन्म दिन होनेसे यह पर्वका दिन माना जाता है। इस दिन गणनाथकी पूजा करनेसे विघ्नोंका नाश होता है। काशीके अंगारकेश्वरके भक्त मृत्युपरान्त अंगारक लोकको भेजे जाते हैं। (काशीखण्ड १७४-२१)

बामनपुराणमें लिखा है,—पहले जमानेमें जब महादेव-ने अन्धकासुरका विनाश किया था, तब उसके मुंहसे श्वेतविन्दु जमीन पर गिर पड़ा। इसी श्वेतविन्दुसे ही अग्निपुञ्जप्रभ एक बालक उत्पन्न हुआ। इस बालकने उत्पन्न होते ही अत्यन्त पिपासित हो अन्धकासुरके रक्तको पान कर लिया। इसके पीछे महादेवने उसे ग्रहोंमें उच्चस्थान तथा संसारके शुभाशुभका भार अर्पण किया। इसीका नाम मङ्गल हुआ।

(वामनपुराण ६७ अ०)

नवग्रहस्तोत्रमें इसका स्तव इस तरह लिखा हुआ है—

"धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तञ्चलोहिताङ्गं नमाम्यहम्॥"

(नवग्रहस्तोत्र)

मंगलग्रहके अवस्थानके अनुसार मानव ऋण ग्रस्त तथा मानवका ऋण चुका करता है। मङ्गल ही एकमात्र मुक्त करनेवाला है। ऋणग्रस्त मनुष्योंको मङ्गलका स्तव भक्तिपूर्वक करना चाहिये। स्तव इस तरह है,—

"मंगलो भूमिपुत्रश्च ऋणहन्ता धनप्रदः।
स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्माविरोधकः॥
रोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः।
धरात्मजः कुजो भौमा भूमिजो भूमिनन्दनः॥
अंगारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः।
वृष्टिकर्त्ता च हर्त्ता च सर्वकामफलप्रदः॥
एतानि कुजनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
ऋणं न जायते तस्य धनमाप्नोति पुष्कलम्॥
रक्तपुष्पैश्च गन्धैश्च धूपदीपादिभिस्तथा।
मंगलं पूजायेद्भक्त्या मंगलेऽहनि सर्वदा॥
ऋणरेखाः प्रकर्त्तव्या अंगारेण सदा बुधैः।
प्रोञ्छयेद्वामपादेन त्रयं तस्य विनश्यति॥
मंगलाय नमस्तुभ्यं नमस्ते ऋणहारिणे।
पुत्रपौत्रप्रदाते च मंगलाय नमोनमः॥
ऋणार्थे त्वत्प्रपन्नोऽहम ऋणं कुरु मे विभो।
एतत् कृत्वा न सन्देहो ऋणं हत्वा धनी भवेत्॥"

(स्कन्दपुराण)

तनु आदि द्वादशभावोंमें यदिमङ्गलग्रह हो, तो निम्न-लिखित फल होता है,—

जन्मलग्नमें मङ्गल रहनेसे कुब्जादि रोगग्रस्त होता है। उसकी नाभि उच्च और उसके शरीरका कोई बीचला भाग विकृत होगा। यह मनुष्य निन्दनीय है।

दूसरे लोगोंका मत है—लग्नका मङ्गल मनुष्यको बाल्य अवस्थामें दांत और उदर रोगसे पिड़ित करता है और वह मनुष्य कृशाङ्ग, काला रूप, खल और सदा श्लेष्मयुक्त होगा। उसका मन सदा चञ्चल रहेगा। यह नीचोंकी सेवा तथा फटा और मैला कुचैला कपड़ा पहननेवाला और सभी सुखोंसे वञ्चित रहेगा।

धनस्थानमें मङ्गल हो तो वह कृषिजीवी, व्यापारी और प्रवासी होता है। दूसरा मत है,—जन्म-के समय यदि मङ्गल धन स्थानमें हो, तो धातु द्रव्यके विषयमें निपुण, विवाद-परायण, प्रवास करनेवाला, अल्प धनी, भग्नपित्त, जुआड़ी, सहनशील, खेतीवारी करने-वाला, खरीदने बेचनेवाला, लोभी, सदा अल्प सुख भोगनेवाला होगा।

यदि मङ्गल सहोदरके स्थानमें रहे, तो उस आमीद-के भ्राताका विनाश होता है या यों कहिये कि उसके भाईको मार डालता है, किन्तु यही मङ्गल ऊँचे घरमें बैठे हों तो वही मनुष्य दीर्घजीवी और राजा होता है। भूमि-सम्बन्धीय चीजोंके द्वारा धन-दौलत प्राप्त होती और यही मङ्गल यदि नीच घरमें बैठा हो तो निर्धन तथा असुखी बना देता है।

मङ्गल यदि मित्रके स्थानमें बैठा हो तो वह मनुष्य सदा मिट्टीके कामोंसे अपनी जीविका चलाता है और विदेश, मिट्टीके घरमें, पङ्कमय घरमें ही वास करता है।

दूसरा मत—बालकके जन्मकालमें यदि मङ्गल मित्रस्थानमें बैठा हो तो उस मनुष्यकी बुद्धि, जड़, और धनहीन, कुटिल, पतला-दुबला, श्लेष्मयुक्त, काला, चंचल, नीचोंकी सेवा करनेवाला, मैला-कुचैला, फटे वस्त्र पहनने-वाला और सदा पापकर्ममें लिप्त रहनेवाला होता है। जन्मके समय यदि मङ्गल पुत्रके स्थानमें रहता है तो पुत्रहीन, धनहीन और दुःखभोगी बना देता है। यही पुत्रस्थान मङ्गलका अपना घर हो या तुङ्गस्थान हो, तो निन्दित पुत्र जीवित रहेगा।

जन्मकालमें मङ्गल शत्रुगृहमें बैठा हो, या अपनी नीच राशिमें रहे, शत्रुस्थानमें रहे तो उस लड़कीकी मृत्यु हो जाती है। यदि किसी राजाका ऐसा पुत्र हो, तो वह तत्काल ही राज्य-भ्रष्ट करता है। नीच या शत्रुराशि-गत नहीं रहनेसे केवल छठवें स्थानमें रहनेसे उस बालकको राजा बनाता है।

शयनभावमें मङ्गल रहनेसे वह मनुष्य लम्पट, कृपण, अत्यन्त क्रोधी, अत्यन्त निपुण और पण्डित हुआ करता है। यदि शयनभावका मङ्गल पञ्चम स्थानमें रहे तो प्रथम सन्तानका नाश करनेवाला होता है और सातवें स्थानमें रहनेवाला मङ्गल पहली स्त्री धर्मपत्नीका वियोग करता है। यही मङ्गल यदि शत्रुक्षेत्रमें रह कर शत्रु द्वारा देखा जाता हो तो उसका हाथ या कान कट जाता है। किन्तु यही मङ्गल यदि शनि राहुके साथ हो, तो उसका मस्तक कट जाता है। शयनभावमें बैठा मङ्गल लग्नमें रहने पर मानवको नाना प्रकारके रोगोंसे पीड़ित करता है और अन्तमें कोढ़ी हो कर मरता है।

यदि मङ्गल उपवेशन भावमें हो तो मानव अधम, धनवान्, क्रूरकर्म करनेवाला, निष्ठुर, जातिविहीन, पाप-परायण, महारोगी, दरिद्र और किसीके वशमें न रहेगा। यदि उपवेशन भावमें मङ्गल लग्नमें हो तो यह सब काम जरूर होंगे। यह उपवेशन भावमें नवें और दशवें स्थानमें रहनेसे धन, पुत्र, स्त्री, सभीका विनाश होता है। फिर, कई मित्र और शुभ ग्रहके साथ मिल कर रहे तो, उन सबोंके बलके अनुसार इसका विपरीत फल भी होता है।

नेत्रपाणि-भावमें रहनेवाला मङ्गल यदि लग्नमें बैठा हो, तो वह मनुष्यको नेत्रविहीन, स्त्रीपुत्रधन रहित दरिद्र बनाता है। यही भाव मङ्गललग्नके सिवा अन्य स्थानोंमें हो तो वह सर्व सुख और पुत्र स्त्री और धनलाभ करनेवाला होता है। किन्तु गांठोंमें दर्द जरूर रहेगा और बाघ, सांप और अग्नि जलका सदा भय रहता है। दूसरे और सातवें स्थानमें रहे तो वह मनुष्य-को भूमिजीवी, धनहीन और पत्नीका नाश करनेवाला होता है।

प्रकाशन भावमें मङ्गलके रहने पर धनवान्, क्षणिक सुख-युक्त, बाईं आँखमें फूली और वह ऊँचे स्थानसे गिरनेवाला होगा, इसमें जरा भी संशय नहीं। इसी भावका मङ्गल सर्व पुत्रोंका नाश करनेवाला होता है। यही सातवें स्थानमें रहने पर स्त्रीका नाश कर देता है और पापग्रहोंके साथ रहने पर जिस स्थानमें रहेगा वह जातियुक्त हो कर रहेगा।

मङ्गल यदि गमनेच्छा भावमें रहे तो मनुष्य प्रकाश करनेवाला, गुह्यरोगयुक्त, निर्धनी और बुरे काम करने-वाला होता है। मङ्गल गमनभावमें रहनेसे विदेशमें रहनेवाला, सदा दुःखी, दाद या कोढ़से पीड़ित रहनेवाला होता है। पित्तशूलसे पीड़ित, अत्यन्त तेजस्वी, गाठोंमें दर्द, जल्दबाज, धीर, स्त्रैण, बकवादी, नेत्रहीन, शिर और दांतका रोगी होता है। किञ्चित त्वग्दोषका दोषी भी होता है।

गमन भावका मङ्गल यदि लग्नमें रहे तो यह सब फल होगा, किन्तु अन्य भावमें रहेगा तो यह सब फल नहीं होगा, वरं हर तरहके धनसे धनवान् महादक्ष और

राजपुत्र होगा, किन्तु उसकी देह सदा जड़ीभूत रहेगी और बहुत सुखका भोग करनेवाला होता है।

मङ्गल यदि समास्थितभावमें रहे तो वह मनुष्य धार्मिक, बहुत धनवान्, गुणवान, बहुत दानी और शिरका रोगी होता है। यही मङ्गल यदि नवें और पांचवेंमें हो, तो धर्महीन, इसके धर्ममें पद पद पर विघ्न हुआ करता है। पाचवें और बारहवेंमें रहने पर पुत्रोंका नाश करता है।

मङ्गल आगमनभावमें रहे तो कर्णरोग, पित्तशूल तथा नोचप्रकृति और धनवान् होता है। इसी तरह भोजनभावमें रहनेसे मांसलोभी, क्षुद्राकृति, अतिक्रोधी, उत्साही और धनी; नृत्यलिप्साभावमें रहनेसे धनवान्, दाता, भोक्ता और सर्वदा सुखी; कौतुकभावमें रहनेसे सन्तान-पण्डित, नाना धनयुक्त, द्विपत्नीक और बहुकन्यायुक्त, निद्राभावमें रहनेसे मूर्ख, धनहीन अतिक्रोधी और नाराधम होता है। (सङ्केतकौमुदी)

इसी तरह शयनादि द्वादश भावोंका फल निकाल लेना चाहिये। इसके सिवा लज्जादि षड्भाव, और दीप्तादि दश भावोंको देखना चाहिए। अष्टोत्तरीके मतसे मघा, पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनी नक्षत्रमें जन्म होनेसे मङ्गलकी दशा होती है। इस दशाका परिमाण ८ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें २ वर्ष ८ मास, प्रति नक्षत्रके पादमें ८ मास और प्रति दण्डमें १६ दिन तथा प्रति पलमें १६ दण्ड होंगे। इस दशामें मित्रके साथ कलह, अग्निदाह और शारीरिक पीड़ा आदि अनेक अमङ्गल होते हैं।

विंशोत्तरीके मतसे मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्रमें मंगलकी दशा होती है। इस दशाका भोगकाल ७ वर्ष है। विशेष विवरण 'दशा' शब्दमें देखो।

ज्योतिषमें गोचरफल इस प्रकार लिखा है—मङ्गल जन्मराशिस्थ होने पर शत्रुभय, द्वितीयमें धनक्षय, तृतीयमें कार्यसिद्धि चतुर्थमें भूमिलाभ, पञ्चममें शत्रुवृद्धि, षष्ठमें धन-लाभ, सप्तममें शोक, अष्टममें अस्त्राघात वा रक्तमोक्षण, नवममें कार्यहानि, दशममें सुख्याति, एकादशमें सर्व प्रकार सुख और क्लेश होता है।

मङ्गलग्रहअशुभ हो तो प्रवाल, गेहूं, मसूर, वृष, अरुणवर्ण वृक्ष, गुड़, स्वर्ण, लाल वस्त्र, करवी पुष्प और ताम्र ग्रहाचार्यको दान देना चाहिए।

अब यूरोपीय ज्योतिर्विदोंके स्थिर किये हुए मतानुसार मङ्गलग्रहका विषय लिखते हैं:—

मङ्गलग्रहका मध्यकर्ण (Mean distance from the sun) = १'५२३६६१, मान्यकर्ण = १'३८१६०२५, दीर्घकर्ण = १'६६५७७९५ है। उत्केन्द्रत्व (Eccentricity) = '०९३२५२८, नाक्षत्रिक परिभ्रमण दिन = ६८६'९७९४५६१, क्रान्तिवृत्तके पूर्णावर्त्तन दिन (Synodical Revolution in days) = ७७९'८३६ है। भौमग्रहके वार्षिक नीचोच्चका खेट = ३३३·६°३८'४", उसका वार्षिक विवर्त्तन = +१५·४६" है। क्षेपपातका द्रघिमांश = ४८°१६'१८", उसका वार्षिक विवर्त्तन = २५'२२", कक्षावृत्तका वक्रता = १°५१'५'७", वार्षिक विवर्त्तन = ·०१ है। दैनिक मध्यगति (Mean daily motion) = ३१'२६'७", संकोचन = १ का ५० दैनिक आवर्त्तन २४ घण्टा ३७ मिनट २२ सेकेण्ड। व्यास = ४०७० मील जड़मान = '१३२४, घनत्व = '९७२, मध्याकर्षण = ·४९ है। आकर्षण-जन्य १ सेकेण्डमें आनुमानिक पतनशक्ति = ७०९ है। नीचोच्चका आलोकपात = '५२४, मन्दोच्चका आलोकपात = ३६० है।

इसके अनुसार ६८६'९७९ दिनमें मङ्गलकी वार्षिक गति निर्णीत होती है। पृथिवीकी तरह मङ्गलके भी विषुवरेखाके कक्षावृत्तमें १८°४२' अपवलयित (Oblique to the plain of its axis) है। उस अपवलन या चक्रविन्यासके कारण मङ्गलमें भी भूपृष्ठकी तरह विभिन्न समयोंमें विभिन्न ऋतुओंका आविर्भाव होता रहता है। खोजसे मालूम हुआ है कि पृथिवी और मङ्गलग्रहके बीचका आकाश बहुत थोड़ा ही है। पृथिवी और मङ्गलग्रह प्रायः समगुण-विशिष्ट है।

मनुष्यकी दृष्टिमें मङ्गलग्रह मटमैला लाल नक्षत्रकी भांति दीखता है। परन्तु वास्तवमें उस गोल पिण्डको पृथ्वीकी तरह धनधान्य-पूर्ण एक महीमण्डल कहा जा सकता है। उसमें भी मनुष्यादिका वास है। उसके अन्तर्गत सरल बातोंको देख कर ज्योतिर्विद्गण अनुमान करते हैं कि, यहां स्वभावचक्र नदियोंकी संख्या

बहुत कम है, वहांके अधिवासियोंके सुभीतेके लिए सीधी जल-नालियां कटी हुई हैं। इसके सिवा उन्होंने और भी अनेकानेक आलौकिक घटनाओंका आविष्कार किया है। ज्योतिर्विद्गण मङ्गललोक-वासियोंके क्रियाकलापोंका निरीक्षण कर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये हैं।

मङ्गलकोट—बंगालके वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह अक्षा० २३° ३१′ उ० तथा देशा० ८७° ३६′ ३०″ पू०के मध्य अवस्थित है। इस ग्रामकी प्रसिद्धिका विषय वृहन्नीलतन्त्रमें आया है।

मङ्गलगिरि—मन्द्राजप्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत गण्टूर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १६° २६′ उ० तथा देशा० ८०° ३४′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या आठ हजारके लगभग है। यहां नरसिंहस्वामी (विष्णु मूर्त्ति)-के पर्वतगात्र-खोदित दो प्राचीन मन्दिर विद्यमानहैं, जो दक्षिण भारतमें तीर्थक्षेत्र समझे जाते हैं। मन्दिरगात्रमें बहुत सी शिलालिपियां उत्कीर्ण देखी जाती हैं। पहला दो खनवाला मन्दिर बहुत प्राचीन है। दूसरा अपेक्षाकृत आधुनिक है। उसके सामनेवाले गोपुरका कारुकार्य अतीव मनोहर है। १८३२ ई०के दुर्भिक्षके समय यहां एक बहुत लम्बा चौड़ा चहबच्चा बनाया गया था। मंगलगिरि माहात्म्यमें इस तीर्थका विषय लिखा है।

मङ्गलचण्डिका (सं० स्त्री०) मंगला मंगलदायिका चासौ चण्डिका चेति, वा सृष्टौ मंगला, प्रलये चण्डिका अथवा मङ्गले चण्डिका दक्षाः। मंगलचण्डी, दुर्गा।

कालिकापुराणमें लिखा है,—ललितकान्तादेवी ही मंगलचण्डी हैं। इनके दो हाथ हैं, एक हाथमें वर और दूसरेमें अभय है। वर्ण इनका गौर है, रक्तपद्म पर बैठी हुई हैं, कानमें रक्तकुण्डल है, सर्वदा हास्य-मुखा हैं, रक्तकौषेय वस्त्र पहने हुई हैं और नव-यौवनसम्पन्ना हैं। अष्टमी और नवमी तिथिमें तथा मंगलवारमें मङ्गलकी कामनासे पट, प्रतिमा या घटकी स्थापना करके इनकी पूजा करनी होती है। इस नियमसे पूजा करनेसे लाभ होता है। शनि और मंगलवारमें यदि कृष्णाष्टमी वा अभीष्ट कृष्णचतुर्दशी पड़े, तो वह दिन अतिशय पुण्यतर है; इस दिन मंगलचण्डीकी पूजा विशेष कल्याणकर मानी गई है। मंगलवारमें शुक्ला चतुर्थी होनेसे वह अक्षया तिथि होती है। इस-दिन पूजा करनेसे अक्षयफल होता है। (तिथितत्त्व)

इनकी नाम-निरुक्ति, यथा—

"सृष्टौ मंगलरूपा च संहारे कोपनिरूपिणी।
तेन मंगलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्त्तिता॥"

(भागवत)

यह देवी सृष्टिकालमें मंगलरूप और संहारकालमें भयङ्कर रूप धारण करती हैं, इसीसे इनका नाम मंगल-चण्डी पड़ा है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस देवीकी पूजादिका विषय लिखा है। ये ही मूल-प्रकृति और ईश्वरी हैं। त्रिपुर वधके लिये महादेवने ही पहले पहल इन्हींकी पूजा की थी, पीछे मर्त्यलोकमें भी इस पूजाका प्रचार हुआ। ये सर्वदा मंगलविधान करती हैं, इसीसे इनका नाम मंगल-चण्डी है।

"दक्षायां वर्त्तते चण्डी कल्याणेषु च मंगलम्।
मंगलेषु च या दक्षा सा च मंगलचण्डिका॥
पूज्यायां वर्त्तते चण्डी मंगलेऽपि महीसुतः।
मंगलाभीष्टदेवी या सा वा मंगलचण्डिका॥"

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० प्रकृतिखं० ४१ अ०)

पूजाका मन्त्र—

'ओं, ह्रीं, श्रीं, क्लीं, सर्वपूज्ये देवि मंगलचण्डिके हुं हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है।

निम्नोक्त ध्यान-मन्त्रसे मंगलचण्डीकी पूजा करनी चाहिये। यथा—

"देवीं षोड़शवर्षीयां शश्वत् सुस्थिरयौवनाम्।
सर्वरूपगुणाढ्याञ्च कोमलांगी मनोहराम्॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥
बिम्बोष्ठी सुदतीं शुद्धां शश्वत् पद्मनिभाननाम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुनीलोत्पललोचनाम्॥
जगद्धात्रीञ्च दात्रीञ्च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम्।
संसारसागरे घोरे पोतरूपांवरां भजे॥"

ध्यानके अन्तमें पूजाके विधानानुसार पूजा करके

राजपुत्र होगा, किन्तु उसकी देह सदा जड़ीभूत रहेगी और बहुत सुखका भोग करनेवाला होता है।

मङ्गल यदि समास्थितभावमें रहे तो वह मनुष्य धार्मिक, बहुत धनवान्, गुणवान, बहुत दानी और शिरका रोगी होता है। यही मङ्गल यदि नवें और पांचवें में हो, तो धर्महीन, इसके धर्ममें पद पद पर विघ्न हुआ करता है। पाचवें और बारहवेंमें रहने पर पुत्रोंका नाश करता है।

मङ्गल आगमनभावमें रहे तो कर्णरोग, पित्तशूल तथा नोचप्रकृति और धनवान् होता है। इसी तरह भोजनभावमें रहनेसे मांसलोमी, क्षुद्राकृति, अतिक्रोधी, उत्साही और धनी; नृत्यलिप्साभावमें रहनेसे धनवान्, दाता, भोक्ता और सर्वदा सुखी; कौतुकभावमें रहनेसे सन्तान-पण्डित, नाना धनयुक्त, द्विपत्नीक और बहुकन्या-युक्त, निद्राभावमें रहनेसे मूर्ख, धनहीन अतिक्रोधी और नाराधम होता है। (सङ्केतकौमुदी)

इसी तरह शयनादि द्वादश भावोंका फल निकाल लेना चाहिये। इसके सिवा लज्जादि षड्भाव, और दीप्तादि दश भावोंको देखना चाहिए। अष्टोत्तरीके मतसे मघा, पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनी नक्षत्रमें जन्म होनेसे मङ्गलकी दशा होती है। इस दशाका परिमाण ८ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें २ वर्ष ८ मास, प्रति नक्षत्रके पादमें ८ मास और प्रति दण्डमें १६ दिन तथा प्रति पलमें १६ दण्ड होंगे। इस दशामें मित्रके साथ कलह, अग्निदाह और शारीरिक पीड़ा आदि अनेक अमङ्गल होते हैं।

विंशोत्तरीके मतसे मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्रमें मंगलकी दशा होती है। इस दशाका भोगकाल ७ वर्ष है। विशेष विवरण 'दशा' शब्दमें देखो।

ज्योतिषमें गोचरफल इस प्रकार लिखा है—मङ्गल जन्मराशिस्थ होने पर शत्रुभय, द्वितीयमें धनक्षय, तृतीयमें कार्यसिद्धि चतुर्थमें भूमिलाभ, पञ्चममें शत्रुवृद्धि, षष्ठमें धन-लाभ, सप्तममें शोक, अष्टममें अस्त्राघात वा रक्तमोक्षण, नवममें कार्यहानि, दशममें सुख्याति, एकादशमें सर्व प्रकार सुख और क्लेश होता है।

मङ्गलग्रहअशुभ हो तो प्रवाल, गेहूं, मसूर, उड़द, अरुणवर्ण वृक्ष, गुड़, स्वर्ण, लाल वस्त्र, करवी पुष्प और ताम्र ग्रहाचार्यको दान देना चाहिए।

अब यूरोपीय ज्योतिर्विदोंके स्थिर किये हुए मतानुसार मङ्गलग्रहका विषय लिखते हैं:—

मङ्गलग्रहका मध्यकर्ण (Mean distance from the sun)=१·५२३६९१, मान्यकर्ण=१·३८१६०२५, दीर्घकर्ण=१·६६५७७६५ है। उत्केन्द्रत्व (Eccentricity)=·०९३२५२८, नाक्षत्रिक परिभ्रमण दिन= ६८६·९७९४५६१, क्रान्तिवृत्तके पूर्णावर्त्तन दिन (Synodical Revolution in days)=७७९·८३६ है। भौमग्रहके वार्षिक नीचोच्चका खेट=३३३·६°३८'४", उसका वार्षिक विवर्त्तन= +१५·४६" है। क्षेपपातका द्रधिमांश=४८°१६'१८", उसका वार्षिक विवर्त्तन=२५'२२", कक्षावृत्तका वक्रता=१°५१'५'७", वार्षिक विवर्त्तन= ·०१ है। दैनिक मध्यगति (Mean daily motion)= ३१'२६'७", संकोचन=१ का ५० दैनिक आवर्त्तन २४ घण्टा ३७ मिनट २२ सेकेण्ड। व्यास=४०७० मील जड़मान=·१३२४, घनत्व=·९७२, मध्याकर्षण=·४६ है। आकर्षण-जन्य १ सेकेण्डमें आनुमानिक पतनशक्ति=७०६ है। नीचोच्चका आलोकपात=·५२४, मन्दोच्चका आलोकपात=३६० है।

इसके अनुसार ६८६·९७९ दिनमें मङ्गलकी वार्षिक गति निर्णीत होती है। पृथिवीकी तरह मङ्गलके भी विषुवरेखाके कक्षावृत्तमें १८°४२' अपवलयित (Oblique to the plain of its axis) है। उस अपवलन या चक्रविन्यासके कारण मङ्गलमें भी भूपृष्ठकी तरह विभिन्न समयोंमें विभिन्न ऋतुओंका आविर्भाव होता रहता है। खोजसे मालूम हुआ है कि पृथिवी और मङ्गलग्रहके बीचका आकाश बहुत थोड़ा ही है। पृथिवी और मङ्गलग्रह प्रायः समगुण-विशिष्ट है।

मनुष्यकी दृष्टिमें मङ्गलग्रह मटमैला लाल नक्षत्रकी भांति दीखता है। परन्तु वास्तवमें उस गोल पिण्डको पृथ्वीकी तरह धनधान्य-पूर्ण एक महीमण्डल कहा जा सकता है। उसमें भी मनुष्यादिका वास है। उसके अन्तर्गत सरल खातोंको देख कर ज्योतिर्विद्गण अनुमान करते हैं कि, यहां स्वभाववक्र नदियोंकी संख्या

बहुत कम है, वहांके अधिवासियोंके सुभीतेके लिए सीधी जल-नालियां कटी हुई हैं। इसके सिवा उन्होंने और भी अनेकानेक आलौकिक घटनाओंका आविष्कार किया है। ज्योतिर्विद्गण मङ्गललोक-वासियोंके क्रियाकलापोंका निरीक्षण कर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये हैं।

मङ्गलकोट—बंगालके वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह अक्षा० २३° ३१´ उ० तथा देशा० ८७° ३६´ ३०″ पू०के मध्य अवस्थित है। इस ग्रामकी प्रसिद्धिका विषय बृहन्नीलतन्त्रमें आया है।

मङ्गलगिरि—मन्द्राजप्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत गण्टूर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १६° २६´ उ० तथा देशा० ८०° ३४´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या आठ हजारके लगभग है। यहां नरसिंहस्वामी (विष्णु मूर्त्ति)-के पर्वतगात्र-खोदित दो प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं, जो दक्षिण भारतमें तीर्थक्षेत्र समझे जाते हैं। मन्दिरगात्रमें बहुत सी शिलालिपियां उत्कीर्ण देखी जाती हैं। पहला दो खनवाला मन्दिर बहुत प्राचीन है। दूसरा अपेक्षाकृत आधुनिक है। उसके सामनेवाले गोपुरका कारुकार्य अतीव मनोहर है। १८३२ ई०के दुर्भिक्षके समय यहां एक बहुत लम्बा चौड़ा चहबच्चा बनाया गया था। मंगलगिरि माहात्म्यमें इस तीर्थका विषय लिखा है।

मङ्गलचण्डिका (सं० स्त्री०) मंगला मंगलदायिका चासौ चण्डिका चेति, वा सृष्टौ मंगला, प्रलये चण्डिका अथवा मङ्गले चण्डिका दक्षाः। मंगलचण्डी, दुर्गा।

कालिकापुराणमें लिखा है,—ललितकान्तादेवी ही मंगलचण्डी हैं। इनके दो हाथ हैं, एक हाथमें वर और दूसरेमें अभय है। वर्ण इनका गौर है, रक्तपद्म पर बैठी हुई हैं, कानमें रक्तकुण्डल है, सर्वदा हास्यमुखी हैं, रक्तकौषेय वस्त्र पहने हुई हैं और नवयौवनसम्पन्ना हैं। अष्टमी और नवमी तिथिमें तथा मंगलवारमें मङ्गलकी कामनासे पट, प्रतिमा या घटकी स्थापना करके इनकी पूजा करनी होती है। इस नियमसे पूजा करनेसे लाभ होता है। शनि और मंगलवारमें यदि कृष्णाष्टमी वा अभीष्ट कृष्णचतुर्दशी पड़े, तो वह दिन अतिशय पुण्यतर है; इस दिन मंगलचण्डीकी पूजा विशेष कल्याणकर मानी गई है। मंगलवारमें शुक्ला चतुर्थी होनेसे वह अक्षया तिथि होती है। इस-दिन पूजा करनेसे अक्षयफल होता है। (तिथितत्त्व)

इनकी नाम-निरुक्ति, यथा—

"सृष्टौ मंगलरूपा च संहारे कोपनिरूपिणी।
तेन मंगलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्त्तिता॥"

(भागवत)

यह देवी सृष्टिकालमें मंगलरूप और संहारकालमें भयङ्कर रूप धारण करती हैं, इसीसे इनका नाम मंगलचण्डी पड़ा है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस देवीकी पूजादिका विषय लिखा है। ये ही मूल-प्रकृति और ईश्वरी हैं। त्रिपुर वधके लिये महादेवने ही पहले पहल इन्हींकी पूजा की थी, पीछे मर्त्त्यलोकमें भी इस पूजाका प्रचार हुआ। ये सर्वदा मंगलविधान करती हैं, इसीसे इनका नाम मंगलचण्डी है।

"दक्षायां वर्त्तते चण्डी कल्याणेषु च मंगलम्।
मंगलेषु च या दक्षा सा च मंगलचण्डिका॥
पूज्यायां वर्त्तते चण्डी मंगलेऽपि महीसुतः।
मंगलाभीष्टदेवी या सा वा मंगलचण्डिका॥"

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० प्रकृतिखं० ४१ अ०)

पूजाका मन्त्र—

'ओं, ह्रीं, श्रीं, क्लीं, सर्वपूज्ये देवि मंगलचण्डिके हुं हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है।

निम्नोक्त ध्यान-मन्त्रसे मंगलचण्डीकी पूजा करनी चाहिये। यथा—

"देवीं षोड़शवर्षीयां शश्वत् सुस्थिरयौवनाम्।
सर्वरूपगुणाढ्याञ्च कोमलांगी मनोहराम्॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥
विम्बोष्ठी सुदतीं शुद्धां शश्वत् पद्मनिभाननाम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुनीलोत्पललोचनाम्॥
जगद्धात्रीञ्च दात्रीञ्च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम्।
संसारसागरे घोरे पोतरूपांवरां भजे॥"

ध्यानके मन्त्रमें पूजाके विधानानुसार पूजा करके

निम्नोक्त स्तव पाठ करना होता है। इस पूजामें छागादि बलि और नानाविध उपचार देना आवश्यक है। स्तव यथा—

श्रीशङ्कर उवाच।

"रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मंगलचण्डिके।
हारिकेविपदां राशि हर्षमंगलदायिके॥
हर्षमंगलदक्षे च हर्षमंगलचण्डिके।
शुभे मंगलदक्षे च शुभे मंगलचण्डिके॥
मंगले मंगलार्थे च सर्वमंगलमंगले।
सतां मंगलदे देवि सर्वेषां मंगलालये॥
पूज्ये मंगलवारे च मंगलाभीष्टदेवते।
पूज्ये मंगलभूपस्य मनुवंशस्य सन्ततम्॥
मंगलाधिष्ठातृदेवि मंगलानाञ्च मंगले।
संसारमंगलाधारे मोक्षमंगलदायिनि॥
सारे च मंगलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम्।
प्रति मंगलवारे च पूज्ये च मंगलप्रदे॥
स्तोत्रेणानेन शम्भुश्चस्तुत्वा मंगलचण्डिकाम्।
प्रतिमंगलवारे च पजां कृत्वा गतः शिवः॥
देव्याश्च मंगलं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
तन्मंगलं भवेत् शश्वन्न भवेत्तदमंगलम्॥"

इस मङ्गलचण्डीकी पूजा पहले शिवने, पीछे मंगलग्रहने, उनके बाद वंशीय मङ्गलराजाने और सबसे पीछे देववालाओंने की थी। अनन्तर वह मंगलाकांक्षी मनुष्य-समाजमें प्रचारित हुई है। मंगल लाभ करनेमें यह व्रत सर्वोत्तम है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिखण्ड मंगल चण्डिकोपाख्यानके ४१वें अध्यायमें इस पूजाका विस्तृत विवरण लिखा है, विस्तार होनेके भयसे यहां पर कुल नहीं लिखा गया।

२ विष्णु। ३ एक वार, मंगलवार। ४ प्रशस्त।

मङ्गलच्छाय (सं० पु०) मंगला प्रशस्ता छाया यस्य। वटवृक्ष, वड़का पेड़।

मङ्गलतुर्य (सं० क्ली०) मंगलार्थं तूर्यं। मंगलकार्यके लिये तूर्यध्वनि, शुभकामके लिये नगाड़े आदि बजाना।

मङ्गलदै—आसामप्रदेशके दरंग जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २६° १२´ से २६° ५०´ उ० तथा देशा० ९१° ४२´ से ९२° २७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२४५ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें मंगलदै नामक एक शहर और ७८३ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त जिलेका एक सदर। यह अक्षा० २६° २७´ उ० तथा देशा० ९२° २´ पू०के मध्य ब्रह्मपुत्र नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। अभी यह नगर उन्नत दशामें है। यहांसे ४॥ कोस दूर रङ्गाभट्टी घाटमें ष्टीमर लगता है। शहरमें वाणिज्य-व्यवसाय अच्छा चलता है।

मङ्गलध्वनि (सं० पु०) मंगल शब्द, विवाहकालका मंगलजनक शब्द।

मङ्गलनीराजन (सं० क्ली०) मंगलं मंगलकरं मंगलाय वा नीराजनं। ब्राह्ममुहूर्त्तमें कर्त्तव्य भगवदारात्रिक। ब्राह्ममुहूर्त्तमें नारायणकी जो आरती की जाती है उसे मंगल-आरती वा मंगलनीराजन कहते हैं। यह आरती अति शुभकर और पापनाशक है।

"पठित्वाथ प्रियान् श्लोकान् महावादित्रनिःस्वनैः।
प्रभोर्नीराजनं कुर्यान्मंगलाख्यं जगद्धितम्॥"

(हरिभक्तिवि० ३ अ०)

मङ्गलपत्र (सं० क्ली०) मांगलिक पत्र, कवचादि।

मङ्गल पाण्डे—एक सिपाही सैनिक। १८५७ ई०के गदरमें यह अंगरेजी ३४ संख्यक देशीय पदातिदलमें प्राइभेटका काम करता था। जब कारतूस आदिकी बात छिड़ी, तब इस उद्धत सिपाहीने बारकपुरमें रह कर अंगरेज सेनापति वाफ (Lieutenant Bough) और एक सर्जन मेजरको गोलीसे उड़ा दिया। पीछे इसने स्वजाति सिपाहियोंको अंगरेजोंके विरुद्ध तलवार उठानेके लिये उभाड़ा। अंगरेजी सेनानिवासके मध्य रह कर तथा जातीयताको रक्षाके लिये मंगलपाण्डे अपने जीवनको हथेली पर रखता हुआ अंगरेजोंके विरुद्ध खड़ा हो गया था। पीछे विद्रोह शान्त होने पर इसे फांसीकी सजा हुई।

मङ्गलपाठक (सं० पु०) पठतीति पठ-ण्वुल्, मंगलस्य पाठकः। वन्दीजनकी वह श्रेणी जो राजाओंकी स्तुति आदि करता हो।

मङ्गलपात्र (सं० क्ली०) माङ्गलिक द्रव्य-पूर्ण पात्र।

मङ्गलपुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

मङ्गलपुष्प (सं० क्ली०) मङ्गलकार्यमें व्यवहृत पुष्प, वह पुष्पमाला जो शुभकार्यमें काम लाई जाती है।

मङ्गलप्रतिसर (सं० पु०) मङ्गलसूत्र, वह सूत्र जिससे कवच बांधा जाता है।

मङ्गलप्रद (सं० त्रि०) मङ्गलं प्रददातीति प्र-दा (आतश्चोपसर्गे। पा ३।१।१३६) इति क। १ मङ्गलदाता, मङ्गल करनेवाला।

मङ्गलप्रदा (सं० स्त्री०) १ हरिद्रा, हल्दी। २ शमीवृक्ष।

मङ्गलप्रस्थ (सं० पु०) भारतवर्षीय एक पर्वत। (भागवत ५।१६।१६)

मङ्गलवचस् (सं० क्ली०) मङ्गलजनक वाक्य, माङ्गलिक वाक्य।

मङ्गलवत् (सं० त्रि०) मंगलमत्स्य मतुप्, मस्य व। मङ्गलयुक्त, मंगलविशिष्ट।

मङ्गलवाद (सं० पु०) आशीर्वाद, आशीष।

मङ्गलवादिन् (सं० त्रि०) मंगल वदति वद णिनि। १ मंगल विषय बोलनेवाला। २ मंगलवादयुक्त।

मङ्गलवाद्य (सं० क्ली०) मंगलार्थं वाद्यः। मागलसूचक वाद्य, वह बाजा जो शुभ अवसर पर बजाया जाता है।

मङ्गलवार (सं० पु०) मंगलस्य मंगलग्रहस्य वारः। रवि आदि सात वारोंमें तीसरा वार जो सोमवारके उपरान्त और बुधवारके पहले पड़ता है। यह वार अशुभवार है। इस वारमें कोई शुभकर्म नहीं करना चाहिये। इस वारमें जन्म होनेसे उग्र, प्रतापशाली, राजमन्त्री, युद्धप्रिय, क्रूरभाषी, क्रुद्ध, सत्त्वगुणविशिष्ट और चोरोंका नेता होता है।

"उग्रः प्रतापी क्षितिपालमन्त्री रणप्रियो वक्रवचः सरोषं।
सत्त्वान्वितः शूरगणप्रणेता कुजस्यवारे प्रभवो मनुष्य ॥"
(कोष्ठीप्रदीप)

मङ्गलवृषभ (सं० पु०) लक्षणकान्त वृषभ। अच्छे लक्षणोंका बैल जिसे घर पर रखनेसे श्रीवृद्धि होती है।

मङ्गलराज—दाक्षिणात्यके चालुक्य-राजवंशीय एक हिन्दू-राजा।

मङ्गलशब्द (सं० पु०) मंगलजनक शब्द, मंगलध्वनि।

मङ्गलशंसन (सं० क्ली०) शुभसंसूचन।

मङ्गलशंसिन् (सं० त्रि०) शुभवादी, शुभसूचक।

मङ्गलसिंह—युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह फैजाबाद नगरसे ४॥० कोस बाएं किनारे अवस्थित है। नगरमें कोई प्रत्नतत्त्वका निदर्शन नहीं रहने पर भी पार्श्ववर्त्ती सिरहिर, पर्णानन्दपति, उर्फदरा, कवरीशरेपाल, सगैया, नचियावान, इधोना, चांदपुर, कादिपुर, गोड़ा और तोलापति उर्फजैतपु, आदि ग्रामोंमें बहुत-से इष्टकस्तूप पड़े हैं। वे सब स्तम्भ भरराजाओंकी प्रचीन कीर्त्ति समझे जाते हैं।

धौरहरा ग्रामके वहिर्भागमें लखनऊके नवाब आसफउद्दौलाका बनाया हुआ एक सुन्दर द्वारपथ तथा एक प्राचीन शिवमन्दिरका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। आलावा इसके हाजीपुर ग्राममें पीर खाजा हसनकी मसजिद, सोनाहाग्राममें सैयद सलारमसाउदका समाधि-मन्दिर, रोनाही ग्राममें औलिया साहिद और मकनसाहिद नामक साधुका समाधिस्तम्भ तथा मसजिद, पीरनगर ग्राममें एक मसजिद, कोट सरावग ग्राममें पांचभैया मसजिद और गञ्ज-इ-सहियान, मुमताज नगरमें १०२५ हिजरीकी मुमताज खां द्वारा निर्मित कङ्कर-मसजिद, ताजपुरमें जमाल खांका मकवाड़ा और भग्न-दुर्ग तथा भावनगर और धौली-अङ्करान नामक ग्रामका ध्वंसावशिष्ट दुर्गादि उल्लेख योग्य है।

मङ्गलसमान् (सं० क्ली०) सामभेद।

मङ्गलसूत्र (सं० क्ली०) मंगलमयसूत्र, वह तागा जो किसी देवताके प्रसाद रूपमें किसी शुभ अवसर पर कलाईमें बाँधा जाता है।

मङ्गलस्नान (सं० क्ली०) मंगलार्थ स्नानं। वह स्नान जो मंगलकी कामनासे अथवा किसी शुभ अवसर पर किया जाता है। संक्रान्तिमें सर्वोषधि आदि द्वारा जो स्नान किया जाता है उसे मंगलस्नान करते हैं।

मङ्गला (सं० स्त्री०) मंगलमस्या अस्तीति मंगल अर्श अद्यच, टाप्। १ पार्वती। २ शुक्लदूर्वा, सफेद दूब। ३ पतिव्रता स्त्री। ४ एक प्रकारका करंज। ५ हरिद्रा, हल्दी। ६ नीली दूब।

मङ्गला—गुजरातप्रदेशमें प्रवाहित नदी।

मङ्गलागुरु (सं० क्ली०) मंगलञ्च तत् अगुरु चेति नित्यकर्मधारयः। चार प्रकारके अगुरुमेंसे एक।

मङ्गलाचरण (सं० क्ली०) मङ्गलस्य आचरणं। मङ्गल-जनक कार्यका आचरण। शुभकार्यके पहले मंगला चरण करना आवश्यक है। पहले मंगला चरण करके कार्यमें लग जानेसे उसका अमंगल दूर होता है और बहुत जल्द कार्यको सिद्धि होती है। यही कारण है, कि ग्रन्थके प्रारम्भमें सभी कवि देवोद्देशसे मंगलचरण कहते हैं। सांख्यदर्शनमें लिखा है—

"मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ॥"
(सांख्यद० ५।१)

शिष्टाचार, फल दर्शन और श्रुति इन तीनोंसे प्रमाणित होता है, कि ग्रन्थारम्भमें मंगलाचरण करना अवश्य कर्त्तव्य है। नव्य नैयायिकोंका कहना है, कि कोई अवश्यकता नहीं। कादम्बी आदि ग्रन्थोंमें मंगलाचरण रहने पर भी उस ग्रन्थकी परिसमाप्ति नहीं हुई तथा बहुतसे ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें मंगलाचरण नहीं रहने पर भी वे निर्विघ्नपूर्वक समाप्त हो गये हैं। अतएव मंगलाचरणकी कोई आवश्यकता नहीं देखी जाती। प्राचीन नैयायिक लोग इसके उत्तरमें कहते है, कि ग्रन्थ समाप्तिके प्रति मंगलाचरण ही जो एकमात्र कारण है, सो नहीं पर हां, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है, कि मंगलाचरणके फलसे अनिष्ट ध्वंस हो कर शुभ होता है किन्तु बलवत् प्रतिबन्धक रहनेसे कार्यमें विघ्न होता है। इसी कारण जो नव्य नैयायिकगण मंगलाचरणकी आवश्यकता नहीं समझते, यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता अतएव मंगलाचरण अवश्य कर्त्तव्य है।

सांख्य दर्शनमें जो लिखा है, वह बिलकुल ठीक है, कारण श्रुतिमें मंगलाचरणका उपदेश है, साधुगण उसे करते हैं और फल भी अवश्य पाते हैं। अतएव मंगलाचरण करना अवश्य कर्त्तव्य है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

मङ्गचार (सं० पु०) मङ्गलाथ आचारः। वह आचरण जो मंगलके लिये किया जाता है, मंगलाचरण।

मङ्गलातोद्य (सं० क्ली०) मंगालतूर्य, मंगलावाद्य।

मङ्गलादेशवृत्त (सं० पु०) वह जो मंगलादिका उपदेश करके जीविका-निर्वाह करता हो, ज्योतिषी। ये लोग निन्दित बतलाये गये हैं।

"उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा।
मंगलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह ॥"
(मनु ९।२५८)

मङ्गलापत्त—मल्लभूमिके अन्तर्गत एक एक छोटा जनपद। यह वकद्वीपसे ४ कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहां राजा विनायक राज्य करते थे।

मङ्गलामुखी (हिं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

मङ्गलायन (सं० त्रि०) मंगलं अयनं गतियस्यं। १ मंगलगतियुक्त। (क्ली०) २ मंगलगति।

मङ्गलारम्भ (सं० पु०) मंगलस्य आरम्भः ६-तत्। मंगलजनक कार्यका आरम्भ, गणेश।

मङ्गलार्जुन—एक प्राचीन कवि।

मङ्गलालम्भन (सं० क्ली०) मंगलजनक द्रव्यविशेषका स्पर्श।

मङ्गलालय (सं० पु०) मंगलस्य आलयः। १ मंगलावास। २ नारायण।

मङ्गलावट (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

मङ्गलाव्रत (सं० क्ली०) १ व्रतभेद, उमाव्रत। (पु०) २ शिव।

मङ्गलाह्निक (सं० त्रि०) मंगलके लिये प्रात्यहिक अनुष्ठेय कार्य।

मङ्गलीय (सं० त्रि०) मंगल-छ। मंगलसम्बन्धीय।

मङ्गलीश—चालुक्यवंशीय एक राजा। ये मंगलराज वा मंगलीश्वर नामसे प्रसिद्ध थे।

मङ्गलूर—१ मन्द्राजके कनाड़ा जिलेके अन्तर्गत एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १२° ४८' से १३° १३' उ० तथा देशा० ७° ४७' से ७५° १७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६८० वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखके करीब है। इसमें एक शहर और २४३ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका प्रधान शहर। यह अक्षा० १२° ५२' उ० तथा देशा० ७४° ५१' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ४५ हजार है जिनमेंसे हिन्दूकी ही संख्या अधिक है।

१६वीं शताब्दीमें यह नगर पुर्त्तगीजोंके द्वारा तीन वार लूटा गया था। पीछे १६४० ई०में वेदनूर राजाओंने यहां दुर्गादि बनवा कर राज्यशासन किया। १७६३ ई०में वेदनूरराजवंश हैदरअलीसे परास्त हुए। तभीसे

शहरमें हैदरकी नौ सेनाका अड्डा बनाया गया। १७६८ ई०में अङ्गरेजी सेनाने इस पर दखल जमाया। १७८३ ई०-में यहां पर अङ्गरेजोंके साथ टीपूकी सेनाका घमसान युद्ध हुआ। १७८४ ई०में टीपू सुलतानने फिरसे इसको अपने कब्जेमें कर लिया। १७९९ ई०में यह फिर अङ्गरेजोंके हाथ लगा। तभीसे उन्हींके दखलमें चला आ रहा है। १८३७ ई०में कुर्गविद्रोहके समय गौड़ जातिने इस नगरको जला कर तहस-नहस कर डाला।

यह नगर मनोहर दृश्योंसे परिपूर्ण है, सर्वत्र परिस्कार परिच्छन्न है तथा वाणिज्य-समृद्धिसे विशेष उन्नत दशा-में है। मालाबार उपकूलके प्रसिद्ध नारिकेल-निकुञ्जके मध्य यह नगर नेत्रावती और गुपूर-प्रवाहित-नदीके मुहाने पर अवस्थित है। इस बन्दर वा नगरमें जहाज प्रवेश नहीं कर सकता। पर अरबदेशीय बगाला नामक जहाज सहजमें पण्यद्रव्य ले कर आ जा सकता है। नदी-के मुहानेसे तीन पाव दूर एक आलोक-भवन है जो केवल बन्दर दिखलानेके लिये बनाया गया है।

यहां मंगलादेवीका प्राचीन मन्दिर अवस्थित है। इसी देवीके नामानुसार इस स्थानका नामकरण हुआ है। एतद्भिन्न यहां गणेश और हनुमानके प्राचीन मन्दिर देखे जाते हैं। स्थलपुराणमें उक्त तीनों ही मन्दिरका माहात्म्य गाया गया है। मंगलूरसे १॥ कोस उत्तर गुपूर नदीके किनारे एक दुर्ग अवस्थित है, जो 'सुलतानका किला' नामसे मशहूर है। टीपू सुलतानने इस दुर्गको बनवाया था।

यहां ईसा-धर्म प्रचारके लिये विभिन्न ईसाइयोंका गिरजा है। १८८० ई०में सेण्ट अलोसियस कालेज जेसुरमिशन द्वारा स्थापित हुआ है। उक्त कालेजके अलावा एक सरकारी कालेज, दो म्युनिसिपल अस्पताल और दो प्राइभेट कुष्ठाश्रम हैं।

मङ्गलेश्वरतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थभेद। इस तीर्थमें स्नान करनेसे सभी पाप जाते रहते हैं।

मङ्गलौर—युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ४८' उ० और देशा० ७७° ५३' पू०के मध्य रूरकीसे ६ मील दक्षिणमें अवस्थित है। प्रवाद है कि राजा मंगलसेन नामक महाराज विक्रमादित्यके किसी राजपूत सामन्तने इस नगरको बसाया था। ६८३ हिजरीमें सुलतान गयासुद्दीन बलबनकी बनाई हुई शाह विलायतकी मसजिद यहाँकी सर्वप्राचीन कीर्त्ति है। इसके अलावा मंगलराज द्वारा निर्मित एक भग्न-दुर्गका भी निदर्शन पाया जाता है।

मङ्गल्य (सं० त्रि०) मंगलाय साधु, मंगल-यत्। १ शिवकर, मंगलजनक। २ रुचिर, सुन्दर। ३ साधु। (पु०) ४ त्रायमाणलता। ५ अश्वत्थ, पीपल। ६ बिल्व, बेल। ७ मसूरक, मसूर। ८ जीवक। ९ नारिकेल, नारियल। १० कपित्थ, कैथ। ११ रीठाकरञ्ज। १२ जीव नामक शाक। १३ दधि, दही। १४ चन्दन। १५ मंगलागुरु। १६ स्वर्ण, सोना। १७ सिन्दूर।

मङ्गल्यक (सं० पु०) मंगल्य-संज्ञायां कन्, यद्वा मंगलस्य मंगलग्रहस्य प्रिय इति यत्, ततः स्वार्थे कन्। बड़ी मसूर।

मङ्गल्यकुसुमा (सं० स्त्री०) मंगल्यानि कुसुमानि यस्याः। शङ्खपुष्पी।

मङ्गल्यदन्त (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

मङ्गल्यनामधेया (सं० स्त्री०) मंगलं मंगलजनकं नाम-धेयं यस्याः। जीवन्ती।

मङ्गल्यवस्तु (सं० क्लो०) मंगल्यं वस्तु। दर्पणादि मंगल-जनक पदार्थ।

मङ्गल्या (सं० स्त्री०) मंगलाय साधुरिति यत् टाप्। १ मल्लिका गन्धयुक्त गुरु, एक प्रकारका अगुरु जिसमें चमेलीकी-सी गन्ध होती है। २ शमी। ३ अधःपुष्पी। ४ मिसी, जटामांसी। ५ शुक्लवचा, सफेद वच। ६ रोचना। ७ प्रियंगु। ८ शङ्खपुष्पी। ९ माषपर्णी। १० जीवन्ती। ११ ऋद्धि। १२ वचा। १३ हरिद्रा, हलदी। १४ चीता नामक गन्ध-द्रव्य। १५ दूर्वा, दूब। १६ दुर्गा।

मङ्गाई—नदीभेद।

मङ्गापुर—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत चन्द्रगिरि तालुकका एक नगर। कल्याण वेङ्कटेश्वर स्वामीके प्राचीन मन्दिरके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। मन्दिरका गोपुर नानाशिल्पोंसे परिपूर्ण है।

मङ्गिनी (सं० स्त्री०) मंगो नौशिरस्तदस्या अस्तीति इनि ङीप् च। नौका, नाव।

मङ्गु खान—एक मुगल-सरदार। इन्होंने दिल्लीश्वरके सुल-

तान अलाउद्दीनके शासनकालमें सिन्धुप्रदेश पर आक्रमण कर उच्च दुर्गको अधिकार किया था।

मङ्गुएडी—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां सिद्धलिंग और कलमेश्वरके काले पत्थरके बने हुए दो प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं। प्रत्येक मन्दिरमें एक एक शिलालिपि देखी जाती है।

मङ्गुष (सं० पु०) नृपभेद। तस्यापत्यं कुर्वादित्वात् ण्य। मंगुष्य, मंगुषका अपत्य।

मङ्गोड़—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक दुर्ग सुरक्षित नगर। यह अक्षा० २ं ६६ं उ० तथा देशा० ७८ं६ं पू०में पर्वतके नीचे अवस्थित है। यहां १८४३ ई०-की २९वीं दिसम्बरको अंगरेजी सेनाके साथ मरहठोंका गहरी मुठभेड़ हुई थी। युद्धमें मरहठा-सेना हार खा कर नौ दो ग्यारह हो गई।

मङ्गोल—मध्य-एशिया और उसके पूर्वकी बसनेवाली एक जाति। इनका रंग पीला, नाक चिपटी और चेहरा चौड़ा होता है। संसारके मनुष्योंके जो प्रधान चार वर्ग किये गये हैं, उनमें एक मंगोल भी है। इसके अन्तर्गत नेपाल, तिब्बत, चीन, जपान आदिके निवासी माने जाते हैं। आजसे छः सात सौ वर्ष पहले इस जातिके लोगोंने एशियाके बहुत बड़े और यूरोपके कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था।

मङ्क्षण (सं० क्ली०) मंक्षत्यनेनेति मंक्ष-ल्युट्। जङ्घात्राण।

मङ्क्षु (सं० अव्य०) मज्जतीति मस्ज बहुलवचनात् सुः (पा ७।१।६०) १ द्रुत, तेजीसे। २ अत्यन्त, बहुत।

मङ्क्षण (सं० क्ली०) मंक्षण पृषोदरादित्वात् साधुः। जङ्घात्राण।

मचक (हिं० स्त्री०) दबाव, बोझ।

मचकचातनी (सं० स्त्री०) गुल्मभेद।

मचकना (हिं० क्रि०) किसी पदार्थको, विशेषतः लकड़ी आदिके बने पदार्थको, इस प्रकार जोरसे दबाना कि उससे मच-मच शब्द निकले।

मचका (हिं० पु०) १ झोंका, धक्का। २ झूलेकी पेंग।

मचना (हिं० क्रि०) १ किसी ऐसे कार्यका प्रचलित होना जिसमें कुछ शोर-गुल हो। २ फैलना, छा जाना।

मचरंग (हिं० पु०) किलकिला पक्षी।

मचक्रुक (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक यक्षका नाम। २ कुरुक्षेत्रके पासका एक पवित्र स्थान जिसकी रक्षा उक्त यक्ष करता है।

मचर्चिका (सं० स्त्री०) मं शम्भुं चर्च्चतीवेति चर्च्चा-ण्वुल्, टाप् अत इत्वं। १ प्रशस्त, उत्तमता। (त्रि०) २ सर्वश्रेष्ठ, जो सबसे उत्तम हो।

मचल (हिं० स्त्री०) मचलनेकी क्रिया या भाव।

मचलना (हिं० क्रि०) किसी चीजको लेने अथवा न देनेके लिये जिद करना, हठ करना।

मचला (हिं० वि०) अनजान बननेवाला, जो बोलनेके अवसर पर जान बूझ कर चुप रहे।

मचलाना (हिं० क्रि०) १ कै मालूम होना, ओकाई आना। २ किसीको मचलनेमें प्रवृत्त करना।

मचवरम्—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत अमलापुर तालुकका एक प्राचीन नगर। यहां वाणिज्यकी उतनी उन्नति नहीं देखी जाती।

मचवा (हिं० पु०) १ खाट, पलंग। २ खटिया या चौकीका पावा। ३ नाव, किश्ती।

मचान (हिं० स्त्री०) १ चार खम्भों पर बांसका टट्टर बांध कर बनाया हुआ स्थान। इस स्थान पर बैठ कर शिकार खेलते वा खेतकी रखवाली करते हैं। २ दीया रखनेकी टिकठी, दीवट।

मचाना (हिं० क्रि०) ऐसा कार्य आरम्भ करना जिसमें हुल्लड़ हो।

मचामच (हिं० स्त्री०) किसी पदार्थको दबानेसे होनेवाला मचमच शब्द, दुमचनेका शब्द।

मचारि (माचाड़ि)—राजपुतानेके अलवर-राज्यके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २७ं १५ं उ० तथा देशा० ७६ं ४०ं पू०के मध्य अवस्थित है। यहां सम्राट् शेरशाहके प्रसिद्ध वजीर हीमूका प्रासाद था। मुगल-सम्राट् अकबरशाहके सेनादलके बहुत चेष्टा करने पर यह स्थान उनके अन्तर्भुक्त हुआ। १६६१ ई० तक यहां अलवर-राजवंशधर राव कल्याणसिंहके पुत्र राव आनन्दसिंहने अपना शासन विस्तार किया था। इसी नगरमें ही उनकी राजधानी थी। १७७५ ई०में अलवर-

दुर्ग अंगरेजोंके दखलमें आने पर यह स्थान श्रीभ्रष्ट हो गया है।

मर्चादा—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके दलासा पर्वतप्रान्तस्थित एक गण्डग्राम। यहां १८६१ ई०के दिसम्बर मासमें वघेल-विद्रोही सरदार मणिक और अंगरेजी सेनाके साथ घोरतर युद्ध हुआ था, जिसमें कप्तान हेवर्ट और ला-टुच मृत्युके करालमुखमें पतित हुए थे। उक्त दोनों सेनानीकी कब्र पर स्मृतिस्तम्भ रक्षित हैं। उसके बीस कोस दक्षिण-पश्चिम राजकोट-गिर्जामें इस युद्धके सम्बन्धमें एक शिलाफलक मौजूद है।

मचिया (हिं० स्त्री०) ऊंचे पायोंकी एक आदमीके बैठनेयोग्य छोटी चारपाई।

मचीदा—१ मध्यप्रदेशके सम्वलपुर जिलान्तर्गत एक सामन्त-राज्य। भूपरिमाण १० वर्गमील है।

२ उक्त सामन्त-राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ४६' उ० तथा देशा० ८३° ३८' पू०के मध्य अवस्थित है। यहांके सर्दार-उपाधिधारी जमींदार गौड़वंशीय हैं। पहले वे लोग बड़ा अत्याचार करते थे, पर आजकल शान्त हैं।

मचीवारा—पञ्जाब प्रदेशके लुधियाना जिलान्तर्गत एक नगर तथा सिमराला तहसीलका सदर। यह अक्षा० ३०° ५५' उ० तथा देशा० ७६° १२' पू०के मध्य शतद्रु-नदीके किनारे अवस्थित है। महाभारतमें इस प्राचीन नगर-समृद्धिका उल्लेख पाया जाता है, किन्तु आज कल इसकी वाणिज्य-समृद्धिका बहुत कुछ ह्रास हो गया है। यहां दो प्राचीन मसजिदें और बहुतसे हिन्दू तीर्थ तथा सिखोंका परम पवित्र एक 'गुरुवाड़ा' विद्यमान है।

मचेरो (हिं० स्त्री०) वह लकड़ी जो बैलोंके जुएके नीचे रहती है।

मचोला (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा जो बंगालकी खाड़ी दलदलोंमें होता है। इससे सुहागा बनता है।

मच्छ (सं० पु०) १ बड़ी मछली। २ दोहेके सोलहवें भेदका नाम। इसमें ७ गुरु और ३४ लघु मात्राएं होती हैं।

मच्छअसवारी (हिं० पु०) कामदेव, मदन।

मच्छघातिनी (हिं० स्त्री०) मछली फँसानेका लम्बा, कांटा।

मच्छड़ (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध छोटा पतिंगा। यह वर्षा और ग्रीष्म-ऋतुमें गरम देशोंमें तथा केवल ग्रीष्म ऋतुमें कुछ ठंढे देशोंमें पाया जाता है।

विशेष विवरण मशक शब्दमें देखो।

मच्छर (हिं० पु०) १ मच्छड़ देखो। २ क्रोध, गुस्सा।

मच्छरिया (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बुलबुल। २ २ मछली देखो।

मच्छसीमा (हिं० स्त्री०) भूमि सम्बन्धी, झगड़ोंका वह निबटारा जो किसी नदी आदिको सीमा मान कर किया जाता है।

मच्छी (हिं० स्त्री०) मछली देखो।

मच्छीकांटा (हिं० पु०) एक प्रकारकी सिलाई। इसमें सींए जानेवाले टुकड़ोंके बीचमें एक प्रकारकी पतली जाली-सी बन जाती है। २ कालीनमें एक प्रकारकी जालीदार बेल।

मच्छीमार (हिं० पु०) मल्लाह, धीवर।

मच्छेन्द्र—नेपालस्थित बौद्ध और हिन्दूपूजित देवताविशेष।

नेपाल और मत्स्येन्द्रनाथ देखो।

मच्छेन्द्रगढ़—बम्बई प्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। १६७६ ई०में महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीने यह दुर्ग बनवाया था। यहां मत्स्येन्द्रनाथका एक प्राचीन मन्दिर देखा जाता है। पासके ग्रामवासी एक भक्त इस देवताकी पूजाके लिये यहां उपस्थित हुए थे। उनके वंशधरगण अब तक भी इस देव-मन्दिरकी सेवा करते हैं। प्रति वर्ष यहां एक मेला लगता है।

प्रतिनिधिवंशने १८१० ई० तक इस दुर्गको अपने अधिकारमें किया था। बाद उसके बापू गोखलेने इस दुर्गको जीता और पेशवाको इसका शासन करने दिया। १८१८ ई०के बाद यह अङ्गरेजोंके हाथ आया।

मच्छेन्द्रयात्रा—नेपालराज्यमें मच्छेन्द्रनाथ देवके पूजोपलक्षमें अनुष्ठित उत्सवभेद। नेपाल देखो।

मछलन्दपुर (मसलन्दपुर)—बङ्गालके चौबीस परगनाके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां आस-पासके गांवोंके खरीदने बेचनेके लिये एक हाट लगती है।

रेलवे स्टेशन रहनेके कारण यहांके वाणिज्यमें विशेष सुविधा होती है। यहींसे वसीरहाट जाने आनेकी सुविधा है।

मछलागांव—अयोध्या प्रदेशके गोंडा जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। करुयानाथ महादेवका मन्दिर रहनेके कारण यह स्थान विख्यात है। यहां शिवरात्रिके उपलक्षमें बहुत मनुष्योंका समागम होता है।

मछली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका जीव जो सदा जलमें रहता है। विशेष विवरण मत्स्य शब्दमें देखो। २ मछलीके आकारका कोई पदार्थ। ३ मछलीके आकारका बना हुआ सोने, चांदी आदिका लटकन जो प्रायः कुछ गहनोंमें लगाया जाता है।

मछलीगोता (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेंच।

मछलीडंड (हिं० पु०) एक प्रकारका डंड। इसमें दोनों हाथ जमीन पर पास पास रख कर छाती और कोहनी-को जमीनसे ऊपर करते हुए मछलीके समान उछलते हैं। इसमें पंजोंको नीचे जमीन पर पटकनेसे आवाज होती है।

मछलीदार (हिं० पु०) दरीकी एक प्रकारकी बुनावट।

मछलीपत्तन—मद्रासप्रदेशके अन्तर्गत भारतोपकूलवर्त्ती एक प्रधान नगर और वन्दर। यह अक्षा० १६° ११' उ० तथा देशा० ८१° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरकी पूर्वतन वाणिज्य-समृद्धि बहुत दूर यूरोप तक फैली हुई थी। ग्रीक-भौगोलिकोंने इस वन्दरको Mæsolia शब्दमें उल्लेख किया है। अलावा इसके बहुतोंका अनुमान है, कि इस वन्दरमें पहले समुद्रज मत्स्य (मछली) का कारवार था, इसी कारण इस स्थानका 'मछलीपत्तन' नाम पड़ा।

करमण्डल उपकूलमें इस नगरकी रक्षाके लिये जो दुर्ग है, उससे डेढ़ कोस पर समुद्रके किनारे मछलीवन्दर नामकी देशीय लोगोंकी एक वस्ती है। इसीके नामसे समूचे वन्दरका नाम 'वन्दर' हुआ है। १८६५ ई० में इस दुर्गसे सेनादल इधर उधर चला गया है, इसलिये यह दुर्ग अभी टूटे फूटे खंडहरोंमें पड़ा है। इसके पास ही प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथलिक खृष्टानका एक गिर्जा है। उत्तर-पश्चिमकी ओर ऊंचे स्थान पर यूरोपियोंका एक मकान देखा जाता है। यहां अभी भी एक फरासीसियोंकी कोठी है। वर्षाकालमें और सब स्थान जलमग्न हो जाता है। १८६४ ई०में भीषण भूकम्प होनेसे यहांका बहुत-सा स्थान टूट गया था।

दाक्षिणात्यके मध्य यह सबसे श्रेष्ठ वन्दर है। कोकनद (काकनाडा) और वैज़वाड़ासे नाव द्वारा वाणिज्यकी आमदनी रफ्तनी होनेसे यहांका प्रभाव बहुत कुछ खर्व हो गया है।

इस स्थानमें हिन्दूशासनके प्राधान्यका कोई भी निदर्शन नहीं देखा जाता। १४०० ई०में सिंहलस्थ अरवी वणिकोंने दाक्षिणात्य आक्रमणके समय इस स्थानमें वाणिज्यकी उपयोगिता देख कर यहां वाणिज्य-वन्दर स्थापन किया था। १४२५ ई०में कर्णाटक-राजने दाक्षिणात्यके वाह्मणी-राजाओंके साथ युद्धमें मुसलमानी सेनाकी सहायता मिलनेसे उन लोगोंकी उपासनाके लिये यहां एक मसजिद बनानेकी आज्ञा दी। १४७६ ई०में वाह्मणी-राज २य महम्मद मछलीपत्तनके अधिकारी हुए। बाद उसके उड़िष्याराजवंशके अभ्युत्थानमें वाह्मणी-राजवंश हीनवल हो गया और यह वन्दर उन लोगोंके अधिकारभुक्त हुआ। क्रमशः जब गजपतिवंशका प्रभाव दब गया तब गोलकुंडा-पति सुलतान कुतब शाह-ने यहांका आधिपत्य पाया। इस समयसे प्रायः ५० वर्ष तक यह गोलकुंडा-राजके अधिकारमें रहा। तभीसे यहांकी वाणिज्यसमृद्धिकी दिन प्रतिदिन उन्नति होती गई। गोलकुंडा-राजवंशके राजत्वकालमें अंगरेज आदि यूरोपीय वणिकोंने यहां प्रवेश किया और वाणिज्य-की उन्नति और विस्तारमें विशेष मनोयोग दिया।

यथार्थमें करमण्डल-कूलस्थ मछलीपत्तन ही अंगरेजों-का प्रथम उपनिवेश कहा जाता है। जब पुलिकटमें वाणिज्य-कोठी बनानेमें व्यर्थमनोरथ हुए, तब अंगरेजोंने 'ग्लोब' पोतके अध्यक्ष कैप्टेन हिपानकी सहायतासे यहां १६११ ई०में एजेन्सी खोली। यही अंगरेज इष्ट इण्डिया कम्पनीकी '७म भारतयात्रा' नामसे प्रसिद्ध है। इसके बाद १६२२ ई०में अंगरेज-वणिकगण ओलन्दाज वणिकों द्वारा स्पाइस आइलेण्ड और पुलिकटसे विताड़ित हो कर मछलीपत्तन आये और यहीं उन्होंने कोठी बनाई।

१६२८ ई०में वे सब इस स्थानसे विताड़ित हुए। इसके चार वर्ष बाद गोलकुण्डा-राजके फरमानमें उन्होंने फिर इस बन्दरमें प्रवेश किया। उसे अंगरेजी इतिहासमें 'गोल्डन-फरमान' कहा गया है।

ओलन्दाजके बाद अंगरेज वणिकगण इस स्थानमें वाणिज्यकार्यकी परिचालना करने लगे। उसके बाद १६६८ ई०में फारसी वणिक् वाणिज्यमें हिस्सा लेनेके लिये यहां तक आये। १६८६ ई०में गोलकुण्डा-राजके साथ मनमुटाव हुआ और अंगरेजोंको वाणिज्य-रहित करनेकी आज्ञा दी तथा ओलन्दाजोंने नगरमें अपना स्वत्त्व जमा कर अंगरेज-वणिकोंको वहांसे विताड़ित किया। किन्तु उनका यह मनोरथ सुसिद्ध नहीं होने पाया। उसके तीन वर्ष बाद सम्राट् औरङ्गजेबके सेनापति जुलफिकार खांने यहां आकर यहांकी कोठी लूटी। १६८० ई०में अंगरेजगण मुगल-सम्राट्के फरमानके अनुसार मछलीपत्तनके पूर्ण अधिकारी हुए। इसके बाद कर्णाटक युद्ध तक यहां किसी तरहका गोलमाल नहीं हुआ।

१७५० ई०में निजामने यह नगर और आस-पासके स्थान फरासीसियोंको अर्पण किये। १७५६ ई०से लेकर १७५९ ई० तकके लिए अंगरेजोंको इस बन्दरसे अधिकारच्युत किया गया। शेषोक्त वर्षमें अंगरेज-सेनापति फर्डने जबरदस्ती यह दुर्ग अपने अधिकारमें कर लिया। १७६६ ई०में सारा उत्तर-सरकार अंगरेजोंके हाथ लगा।

भारतीय सूती कपड़ोंको उत्कृष्टता पर मुग्ध हो कर अंगरेज-वणिकोंने लाभकी आशासे पहले यहां आ कर कोठी खोली। बहुत पहलेसे ही स्थानीय छींटकी प्रसिद्धि बहुत दूर तक फैली हुई थी। उसकी उत्कृष्टता पर मुग्ध होकर सुदूर यूरोप, पारस्य, अफ्रिका, ब्रह्म और भारतीय द्वीपपुञ्ज-वासियोंका मन आकृष्ट हुआ था। वे लोग आदर और आग्रहसे वह छींट लेने लगे। अभी भी यहांके जुलाहों द्वारा प्रस्तुत प्रसिद्ध 'माटापोलम' वस्त्र तथा तौलिया, टेबल-क्लाथ आदि उत्कृष्ट सूती कपड़ोंकी विदेशमें रफ्तनी होती है।

यह स्थान तेलगू राज्यमें खृष्टधर्म प्रचारका केन्द्र-स्थल माना गया है। खृष्टधर्मके प्रभावसे यहां शिक्षाकी विशेष उन्नति हुई है तथा बहुतसे लोग अंगरेजों द्वारा पालित होते हैं। १६४ ई०के भीषण भूकम्प और बाढ़ * से यह नगर सम्पूर्णरूपसे ध्वंस हो गया था, उसी समयसे यहांकी वाणिज्य-समृद्धिका भी ह्रास हो गया है। एतद्भिन्न मद्रासमें रेलपथ विस्तार होने तथा सिकेन्दराबादसे रंगून शहरमें सेना नहीं जाने आनेसे १८६५ ई०में यहांका दुर्ग छोड़ दिया गया।

मछलीबन्दर—मद्रास प्रदेशके कृष्णा जिलाके अन्तर्गत एक तहसील। मछलीपत्तन देखो।

मछलीमार (हिं० पु०) मछली मारनेवाला, धीवर।

मछलीशहर—१ युक्तप्रदेशके जौनपुर जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २५° ३०' से लेकर २५° ५५' उ० तथा देशा० ८२° ७' से लेकर ८२° २८' पू०में गोमती नदीके किनार अवस्थित है। घिसवा, मुङ्गरा, बादशाहपुर और गरवारा परगना इसी तहसीलमें है।

२ उक्त जिलाका एक नगर और उसी नामके तहसीलका विचार-सदर। यह अक्षा० २५° ४०' उ० तथा देशा० ८२° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरका प्राचीन नाम घिसवा है। प्रवाद है कि, एक भर-सर्दार यहां राजत्व करता था। वह अपने ही नाम पर यह स्थान स्थापित कर गया। नगरका भाग दलदलसे आच्छन्न है। वर्षा ऋतुमें बाढ़से सब स्थान जलमग्न हो जाता है और मछलियां खूब हो जाती हैं, इसीलिये इस स्थानका नाम 'मछलीशहर' पड़ा है। राजपूतोंने पहले भर जातिको यहांसे भगा दिया, बाद वे भी मुसलमानों द्वारा विताड़ित हुए।

मछवा (हिं० पु०) १ वह नाव जिस पर बैठ कर मछलीका अधिकार किया जाता है। २ मल्लाह, धीवर।

मछुआ (हिं० पु०) मछली मारनेवाला, धीवर।

मछुवा (हिं० पु०) मछुआ देखो।

मछेह (हिं० पु०) शहदका छत्ता।

मछोतर (हिं० पु०) मछलीके आकारका, मछलीका वह

* इस भूकम्पमें मछलीपत्तनके सब गृहादि उड़ गये तथा असंख्य मनुष्य बाढ़में बह गये। मछलीपत्तनकी इस दुर्दशाके बारेमें मि० गर्डन मेकेंजी विशदरूपसे लिख गये हैं।

टुकड़ा जिसकी सहायतासे हरिसमें हल जुड़ा रहता है।

मछरेता—१ अयोध्याप्रदेशके सीतापुर जिलेका मिश्रिख तहसीलके अन्तर्गत एक परगना। राजा टोडरमल इस स्थानको एक स्वतन्त्र परगनामें निर्दिष्ट कर गये हैं। उस समय केशरीसिंह नामक एक अहवल-राज यहांके अधीश्वर थे। इस सामान्त-राजके विना अपराधके अपने कायस्थ-कुलोद्भव दीवानको हत्या करनेसे सम्राट् अकबर शाह दीवानके दो लड़कोंको इसकी क्षतिपूर्ण करनेके लिये यह सम्पत्ति उनके हवाले की। उन लोगोंकी मृत्युके बाद यह सम्पत्ति कई एक छोटी छोटी जमींदारियोंमें बट गई। अभी ६६ गांव राजपूत, १० कायस्थ, २ ब्राह्मण, ६॥ वैरागीके तथा ७॥ गांव मुसलमान जमीदारोंके अधिकारमें हैं।

२ उक्त तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २७° २५´ उ० तथा देशा० ८०° ४१´ पू०के मध्य गोमती नदीके किनारे अवस्थित है। यहां एक प्राचीन दुर्ग और हरिद्वारतीर्थ नामक पुण्यसलिला एक दीर्घिका विद्यमान है।

मजकूर (फा० वि०) जिसका उल्लेख या चर्चा पहले हो चुकी हो, जिक्र किया हुआ।

मजकूर-ए-बाला (फा० वि०) पूर्वोक्त, ऊपर कहा हुआ।

मजकूरात (फा० पु०) शामिलात देहात अराजीका लगान जो गांवके खर्चमें आता है।

मजकूरी (फा० पु०) १ ताल्लुकेदार। २ वह जमीन जिसका बटवारा न हो सके और जो सर्वसाधारणके लिये छोड़ दी गई हो। ३ चपरासी। ४ बिना वेतनका चपरासी। ५ वह मनुष्य जिसे चपरासी अपनी ओरसे अपने सम्मन आदिकी तामीलके लिये रख लेते हैं।

मजकुरीतालुक—मुसलमान नवाबोंके समय छोटे छोटे परगने या भूसम्पत्तिका स्वतन्त्र वन्दोवस्त विशेष। इस मजकूरी या मतफरोका तालुकमें भिरोल, मण्डलघाट, चूनाखाली, आसदनगर (मुर्शिदाबाद), जहांगीरपुर, कागमारी, शिलबाड़ी, ताहिरपुर, चांदलाइ, संतोष, सातसइका, महम्मदअमोनपुर, पुखुरिया आदि प्रधान है। इसके अलावा ६८ हुजूरी तालुकदार (जो खालसा सिरिस्तामें राज-कर दाखिल करते थे), अन्य छोटे महल और राजमहल आदि सायरात इसीमें है।

मजदूरी (फा० स्त्री०) १ मजदूरका काम। २ जीविकानिर्वाहके लिये किया जानेवाला कोई मोटा और परिश्रमका कामकाज। ३ पारिश्रमिक, वह धन जो किसीको कोई नियत कार्य करने पर मिले। ४ बोझ ढोने या और कोई छोटा-मोटा काम करनेका पुरस्कार।

मजःफरहुसेन—'जाम-इ-जहान्-नामा' नामक ग्रन्थके प्रणेता एक मुसलमान पंडित। ये हकीम गुलाम महम्मद्के पुत्र तथा हकीम महम्मद कासिमके पौत्र थे। इनके पूर्वपुरुष बड़े प्रसिद्ध थे। गुलाम महम्मदने सम्राट् फर्रुखसियरको शिक्षा देनेके कारण प्रभूत सम्पत्ति उपार्जन की थी।

ये यूसुफी उर्फमें महावत खां नामसे भी जनसाधारणमें परिचित थे। इनका जन्म १७०६ ई०में औरङ्गाबादमें हुआ था। अत्यन्त शैशवावस्थामें ही इन्होंने अपनी प्रतिभाका परिचय दिया था। सातवें वर्षमें ही ये कुरान समाप्त कर फारसी भाषा पढ़ने लगे। इसके बाद पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें व्याकरण, न्याय, अलंकार विज्ञान और आयुर्वेदशास्त्र अध्ययनमें सफलीभूत हुए। विज्ञानशास्त्रमें इन्होंने विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त की थी। आयुर्वेदशास्त्रमें इनका ऐसा ज्ञान था कि इनके शिक्षक भी समय समय पर चमत्कृत हो जाते थे। कुछ दिन बाद ही ये दिल्लीश्वरके यहां चिकित्सकके पद पर नियुक्त हुए। इनकी रची बहुत-सी पुस्तकें मिलती हैं। इन्होंने पूर्वतन महापुरुषोंकी जीवनियां और अलौकिक घटनासमूह तथा प्राचीन कवियोंकी जीवनी और उनके रचित काव्यादि संग्रह किये। यह महाग्रन्थ १७६६ से ६७ ई० तक पांच भागोंमें समाप्त हुआ।

मजनूं (अ० पु०) १ पागल, दीवाना। २ आशिक, प्रेमी। अति दुर्बल मनुष्य, बहुत दुबला पतला आदमी। ४ एक प्रकारका वृक्ष। इसकी शाखाएं झुकी हुई होती हैं। इसे 'बेद मजनूं' भी कहते हैं।

मजनूँ—प्रसिद्ध लैला-मजनू नामक फारसीकाव्यके नायक। इनका प्रकृत नाम था कायस। सामन्त-कन्या लैलाके प्रेममें फंस ये एकप्रकारसे पागल ही हो गये थे। जब

इन्हें यह खबर लगी कि लैला किसी दूसरेके साथ ब्याही जायगी तब ये हताश हो गये और घर छोड़ दिया। इसीलिये ये 'मजनूँ' (उन्माद) के नामसे प्रसिद्ध हैं। आजकल यह 'लैला-मजनू' नाटक रंगमंच पर खेला जाता है।

मजनू खाँ—सम्राट् अकबर शाहका एक सेनापति। इसने १५०७ ई०में कालञ्जर-दुर्ग अधिकार किया था।

मजबूत (अ० वि०) १ पुष्ट, दृढ़। २ अटल, अचल। ३ बलवान्, सबल।

मजबूती (हिं० स्त्री०) १ दृढ़ता, मजबूतका भाव। २ बल, ताकत। ३ साहस, हिम्मत।

मजबूर (अ० वि०) विवश, लाचार।

मजबूरन (फा० क्रि-वि०) विवश हो कर, लाचारीसे।

मजबूरी (अ० स्त्री०) असमर्थता, लाचारी।

मजमा (अ० पु०) बहुतसे लोगोंका एक स्थानमें जमाव, जमघट।

मजमुआ (अ० वि०) १ संगृहीत, इकट्ठा किया हुआ। (पु०) २ एक ही प्रकारकी बहुतसी चीजोंका समूह, खजाना। ३ एक प्रकारका इत्र। यह कई इत्रोंको एकमें मिला कर बनता है। यह प्रायः जमा हुआ होता है।

मजमून (अ० पु०) १ विषय, जिस पर कुछ कहा या लिखा जाय। २ लेख।

मजरिया (फा० वि०) प्रवर्त्तित, जो जारी हो।

मजरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका झाड़। इसके डंठलोंसे टोकरे बनाये जाते हैं। यह सिंध और पंजाबमें अधिकता से होता है।

मजरूआ (फा० वि०) जोता और बोआ हुआ।

मजरूह (अ० वि०) घायल, जखमी।

मजल (फा० स्त्री०) मंजिल, पड़ाव।

मजलिस (अ० स्त्री०) १ बहुतसे लोगोंकी बैठनेकी जगह, वह साथ जहां बहुतसे मनुष्य एकत्र हों। २ सभा, समाज। ३ नाच-रंगका स्थान, महफिल।

मजलिसी (अ० पु०) १ निमन्त्रित व्यक्ति, नेवता दे कर मजलिसमें बुलाया हुआ मनुष्य। (वि०) २ मजलिस सम्बन्धी, मजलिसका। ३ सबको प्रसन्न करनेवाला, जो मजलिसमें रहने योग्य हो।

मज़लूम (अ० वि०) अत्याचार पीड़ित, जिस पर ज़ुल्म हुआ हो।

मज़हब (अ० पु०) धार्मिक सम्प्रदाय, मत।

मजहबी (अ० वि०) १ किसी धार्मिक मत या संप्रदाय-से सम्बन्ध रखनेवाला। (पु०) २ भंगी-सिक्ख, मेहतर-सिक्ख।

मजा (फा० पु०) १ स्वाद, लज्जत। २ आनन्द, सुख। ३ दिल्लगी, मज़ाक।

मज़ाक (अ० पु०) १ हँसी, ठट्ठा। २ प्रवृत्ति, रुचि।

मज़ाकन (अ० क्रि-वि०) हँसी-दिल्लगीके तौर पर, मजाकसे।

मजाकिया (हिं० क्रि-वि०) मजाकन देखो।

मजाज (फा० पु०) १ गर्व, अभिमान। २ मिजाज देखो।

मजाज़ (अ० वि०) १ कृत्रिम, बनावटी। २ कल्पित, माना हुआ।

मजार (अ० पु०) २ समाधि, मकबरा। २ कब्र।

मजाल (अ० स्त्री०) सामर्थ्य, शक्ति।

मजिथिया—पञ्जाब प्रदेशके अमृतसर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३१°५'३०" उ० तथा देश० ७५°१' पू०में अमृतसर नगरसे ५ कोस पर अवस्थित है। मधुजाट नामक एक जाट-सर्दारने इस नगरकी प्रतिष्ठा की थी। उनके वंशधर मजिथिया सर्दारोंका महाराज रणजित-सिंहके समय खूब खातिर थी। दोनों नगरमें ही सरदारों-की वासभूमि है।

मजिद खाँ—दाक्षिणात्यके सावनूर दुर्गके एक पठान शासनकर्त्ता। ये १७२१ ई०में पिता अबदुल गफूर खाँकी मृत्युके बाद पितृ-सम्पत्तिके अधिकारी हुए। राज्याभिषेकके समय ये दाक्षिणात्यके तत्कालीन मुगल-शासनकर्त्ता निजामकी आज्ञाकी अवहेला करनेके कारण मुगलके शत्रु हो गये। बादमें जब मुगल सेनाने सावनूर दुर्ग पर चढ़ाई की, तब ये डर कर निजामके शरणापन्न हुए। १७२०-३० ई०की कोल्हापुर-सताराकी लड़ाईमें इनके कोल्हापुर-राजके पक्षावलम्बन करने पर पुरस्कार-स्वरूप बेलगांवके पूर्व और दक्षिणका कुछ अंश इन्हें

मिला। १७३० ई०में निजामने इन्हें दाक्षिणात्यका सहकारी शासनकर्त्ता चुन कर बेलगांव-दुर्गका आधिपत्य प्रदान किया। उसके बाद ये सुन्दा, कनाड़ा और बदनूर प्रदेश अधिकार कर उन्हें इन्होंने अपने राज्यमें मिला लिया।

इस प्रकार जयोल्लाससे गर्वित हो कर १७४६ ई०में इन्होंने कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदीके मध्यवर्त्ती स्थान भी महाराष्ट्रोंसे ले लिया।

इस पर पेशवा बाजीरावने क्रुद्ध हो कर उनके विरुद्ध सेना भेजी। १७४७ ई०की सन्धिके अनुसार मजिद खाँको प्रायः ३६ जिले छोड़ देने पड़े। सिर्फ बांकापुर, तोरगल और आजमनगर-दुर्ग तथा डुबली, हांगल आदि १२ जिले इनके पास बचे।

१७४८ ई०में निज़ाम-उल-मुल्कका देहान्त होने पर हैदराबादके सिंहासनके लिये उनके पुत्र नासिरजंग और पौत्र मुज़ःफरजंगमें विवाद खड़ा हुआ। इस विवादमें फरासीसी-सेनाने मुज़ःफरजंगको तथा अङ्गरेजी और मजिद-परिचालित सेनाने नासिरको सहायता दी, किन्तु नासिरके आचरणसे विरक्त हो कर उन्होंने मुगलोंका साथ छोड़ दिया।

मजिद खां बुद्धिमान, साहसी और वीरचेता थे। लड़ाईमें इनका हृदय जरा भी विचलित नहीं होता था। दाक्षिणात्यमें अङ्गरेज, फरासीसी और महाराष्ट्र-विप्लवके समय इन्होंने अदम्य साहसके साथ राजकार्य किया था। आज भी दाक्षिणात्यमें जनसाधारणके मुखसे इनकी वीरता और बुद्धिमत्ताका परिचय मिलता है। इन्होंने नई-हुबिली नगरीकी स्थापना की थी।

मजिष्टर (सं० पु०) मजिस्ट्रेट देखो।

मजिस्ट्रेट (अं० पु०) फौजदारी अदालतके अफसर। ये बृटिश भारतके प्रायः जिलेके माल-विभागके प्रधान अधिकारी भी होते हैं।

मजिस्ट्रेटी (अं० स्त्री०) १ मजिस्ट्रेटका कार्य या पद। २ मजिस्ट्रेटकी अदालत।

मजीठ (हिं० स्त्री०) समस्त भारतवर्षके पहाड़ी देशोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी लता। इसकी सूखी जड़ और डंठलोंको पानीमें उबाल कर एक प्रकारका उत्कृष्ट लाल या गुलनार रंग तैयार किया जाता है। इस रंगसे सूती और रेशमी कपड़े रंगे जाते हैं।

विशेष विवरण मञ्जिष्ठा शब्दमें देखो।

मजीठी (हिं० स्त्री०) १ वह रस्सी जो जुआठेमें बंधी रहती है, जोत। २ रुई ओटनेकी चर्खीमें लगी हुई बीचबीचकी लकड़ी। यह हमेशा घूमती है जिससे रुईमेंसे बिनौले अलग होते हैं।

मजीरा (हिं० पु०) कांसेकी बनी हुई छोटी छोटी कटोरियोंकी जोड़ी। इन कटोरियोंके बीचमें छेद होता है। छेदोंमें डोरा पिरो कर उसीकी सहायतासे एक कटोरीसे दूसरी पर चोट दे कर संगीतके साथ ताल देते हैं।

मजूमदार—बादशाही अमलमें जो व्यक्ति राजस्व-सम्बन्धीय कागजात रखते थे वे मजूमदार कहलाते थे।

मजूर (हिं० वि०) मजदूर देखो।

मजूरा (हि० पु०) मजदूर देखो।

मजूरी (हि० स्त्री०) मजदूरी देखो।

मजेठी (हिं० स्त्री०) सूत कातनेके चर्खेकी एक लकड़ी। यह नीचेसे उन दोनों डंडोंको जोड़े रहती है जिनमें पहिया या चक्कर लगा होता है।

मजेदार (फा० वि०) १ स्वादिष्ट, जायकेदार। २ अच्छा, बढ़िया। ३ जिससे आनन्द आता हो।

मजेदारी (फा० स्त्री०) १ स्वाद। २ आनन्द, मजा।

मज्जकृत् (सं० क्ली०) मज्जानं करोतीति कृ क्विप् तुगागमश्च। अस्थि, हड्डी।

मज्जगतज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर।

मज्जदमनी (सं० स्त्री०) वन्ध्या कर्कोटकी, बांझ ककोड़ी।

मज्जन् (सं० पु०) मज्जति जस्थिष्वति (मस्ज श्वन् उक्षन् पूषन् प्लीहन् क्लेदन् स्थेहन् मूर्द्धन मज्जन्नित्यादिन। उण् १।१५८) इति कनिन् निपात्यते च। १ वृक्षादिका उत्तम सारभाग। २ अस्थिमध्यस्थित स्नेहविशेष, हड्डीमेंकी मज्जा। पर्याय—शुक्रकर, अस्थिस्नेह, अस्थिसम्भव, अस्थिसार, भेजस, बीज,अस्थिज, जोवन, देहसार। सुश्रुतमें लिखा है कि, बड़ी हड्डीके भीतरका मेद ही मज्जा कहलाता है। यदि यह मोटी हड्डीके भीतर हो, तो भी उसे मज्जा ही कहेंगे।

सभी प्राणियोंके हृदयमें जो पतली हड्डी है, उसीमें मेद रहता है।

"स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यन्तरे स्थितः।"

(भावप्र०)

इसका गुण बल, शुक्र, रस, श्लेष्म, मेद और मज्जावर्द्धक है। हमलोग जो कुछ खाते हैं, उसका सारांश परिणत हो कर रसरूपमें उत्पन्न होता है तथा असारांश मल और मूत्ररूपमें बाहर निकलता है। पीछे उस रससे शोणित, शोणितसे मांस, मांससे अस्थि और अस्थिसे मज्जाकी उत्पत्ति होती है।

मज्जन (सं० क्ली०) मस्ज ल्युट्। १ स्नान, नहाना। २ मज्जा।

मज्जन (सं० पु०) स्कन्दानुचर मातृभेद।

मज्जफल (सं० क्ली०) माजूफल, सागरगोटा।

मज्जयितृ (सं० त्रि०) मस्ज-णिच्, तृच्। मज्जनकारी।

मज्जर (सं० पु०) तृणविशेष, एक प्रकारकी घास।

मज्जस् (सं० क्ली०) मज्जा।

मज्जसमुद्भव (सं० क्ली०) मज्जा समुद्भव उत्पत्तिस्थानं यस्य। शुक्र। मज्जासे शुक्रकी उत्पत्ति होती है।

मज्जा (सं० स्त्री०) मज्जतीति मस्ज अच्, अजादित्वात् टाप्। अस्थिसार, नलोकी हड्डीके भीतरका गूदा। यह बहुत कोमल और चिकना होता है। इसका गुण—वातनाशक, बल, पित्त और कफप्रद, मांस-सा गन्धयुक्त, वृंहण और बलकर माना गया है।

मज्जाज (सं० पु०) मज्जाया जायते इति जन-ड। भूमिज गुग्गुल।

मज्जामेह (सं० पु०) प्रमेहभेद, मज्जागत प्रमेह।

मज्जारजस् (सं० पु०) गुग्गुल।

मज्जारस (सं० पु०) मज्जाया रसः। १ शुक्र, वीर्य। २ सप्तला, सातला।

मज्जावहस्रोत (सं० पु०) मज्जा धातुवाहक नाड़ी।

मज्जासार (सं० क्ली०) मज्जायां सारो यस्य। जातीफल।

मज्जिका (सं० स्त्री०) १ लक्षणाकन्द। २ बक-स्त्री, मादा बगला।

मज्जूक (सं० लि०) १ मज्जनशील। (पु०) २ मंडूक, मेढ़क।

मज्जूखाँ—एक विद्रोहि-दलपति। १८५८ ई०के गदरमें इसने अपनेको मुरादाबादका नवाब बतला कर विघोषित कर दिया था और कुछ समय तक शासनकार्य भी चलाया था। सिंहासन पर बैठ कर अंगरेजोंके धन लूटने और उन्हें मार डालनेके लिये जनसाधारणको उभाड़ा था। उसी सालकी १०वीं अप्रिलको जेनरल जोन्सने दलबलके साथ मुरादाबाद आ कर इसे पुत्र सहित पकड़ा और मार डाला।

मज्जूषा (सं० स्त्री०) मज्जन्ति द्रव्याण्यत्र, मस्ज उक्षन् टाप्, निपातनात् साधुः। मंजूषा, छोटा पिटारा।

मज् मन् (सं० क्ली०) मस्ज मनिन् पृषोदरादित्वात् साधुः। बल, ताकत।

मझगाँव—युक्तप्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह निघासनसे ८ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां धनुर्द्धारीनाथके मर्मरपत्थर-निर्मित एक प्रतिमूर्त्ति है। इसे बहुतेरे तिब्बतीय बौद्ध-मूर्त्ति समझते हैं।

मझगांव—युक्तप्रदेशके बांदा जिलान्तर्गत माऊ तहसीलका एक नगर। यह राजापुर नामसे भी मशहूर है और यमुना नदीके दाहिने किनारे बसा हुआ है। यहां रामायणप्रणेता साधक कवि तुलसीदासका वासभवन था। सम्राट् अकबर शाहके समयके अनेक प्राचीन हिन्दू-मन्दिर इस स्थानकी प्राचीन समृद्धि सूचित करते हैं। उन सब मन्दिरोंमें सोमेश्वरका मन्दिर ही सबसे प्रधान है।

राजापुर देखो।

मझधार (हिं० स्त्री०) १ नदीकी मध्य धारा, बीच धारा। २ किसी कामका मध्य।

मझरासिंगड़ी (हिं० स्त्री०) बैलोंकी एक जाति।

मझला (हिं० वि०) मध्यका, बीचका।

मझवार—युक्तप्रदेशमें रहनेवाली एक आदिम जाति। मिर्जापुरके दक्षिणस्थ पर्वतोंके आस पास इस जातिका अधिक वास देखा जाता है। पर्वत परके जंगलोंको जला कर कृषिकार्य द्वारा अपना निर्वाह करना इनकी प्रधान जीविका है।

जातितत्त्वविद्गण इनको पार्वतीय गोंड़ जातिकी अन्यतम शाखा बतलाते हैं। यह मजबूत और बलवान् होते हैं। इनका मुख चिपटा, कपाल धंसा हुआ, नाक छोटी,

नाकके छेद बड़े, होठ मोटे और लम्बे तथा घूटने निग्रो जातिके जैसे और उन्हींके जैसे काले होते है। ये नंगे ही रहते हैं, कुछ लोग लज्जा-निवारणके लिये कौपीनकी तरह कटिमें वस्त्र लपेट लेते हैं। जिन्होंने नगरके पास रह कर सभ्यता सीखी है केवल वे ही निम्नश्रेणीके मनुष्यके जैसे कपड़े पहनते हैं।

मिर्जापुरी मझवार या मांझियोंके मध्य पोइया, तेकमा, मराई, वइका और ओलकू ये पांच स्वतन्त्र थोक हैं। कहते हैं, कि ये लोग जब्बलपुरके पश्चिमदिग्वर्त्ती पर्वतमाला तथा नर्मदा और सोनकी उत्पत्ति भूमिसे आ कर यहां बस गये हैं। ये पश्चिम विन्ध्य और कैमूर गिरिमालाके पांचों गढ़ोंको अपनी आदिम वासभूमि बतलाते हैं और साथ साथ यह भी कहते हैं कि, उक्त पांच श्रेणीके पूर्वपुरुष पांच भाई थे और भिन्न भिन्न गिरिदुर्गमें राजत्व करते थे। इस प्रकार मराइ मण्डलगढ़, मर्पची सम्बलपुरके अन्तर्गत सारणगढ़, नेताम सोणागढ़, सरोता गाढ़ागढ़, कोरचो फुलझरगढ़, उररे झंचनगढ़, ओमा मरुया-गढ़, पोरत रायगढ़, पोइया पाटनगढ़, करियाम खैरागढ़, पोसाम उज्जयिनीगढ़, तेकाम लाञ्जिगढ़ और अरमू चांद-गढ़से आये हैं। पूर्वोक्त दुर्गमें इन लोगोंका वास हो सकता है, लेकिन कोरामोंका वास-स्थान विलारोगढ़, मारकामका दन्तगढ़, कुशरोका मोहरगढ़, अरमोरका चिनविलगढ़ तथा अरपत्तियोंका सैदागढ़ आदि स्थान निर्णय करना कठिन है।

प्रायः दश पीढ़ोसे ये लोग आदि वासभूमिका परित्याग कर मिर्जापुरके दुधि और सिंरौली परगनेमें तथा सरगुजा सामन्तराज्यमें आ कर बस गये हैं। इन लोगोंका कहना है, कि अयोध्याधिपति रामचन्द्रने जब जनक-राजभवनमें महादेवका धनुष तोड़ा तब वह धनुष चार खण्डोंमें विभक्त हुआ। उनमेंसे एक खंण्ड नर्मदानदी-के किनारे गिरा था इसलिये यह स्थान इनका तीर्थ-स्थान माना जाता है। अब भी समय समय पर ये लोग इस तीर्थमें जाते हैं।

ये अपने थोकमें विवाह नहीं करते, लेकिन ममेरा, चचेरा, फुफेरा और मौसेरा आदि विवाहमें निषेध नहीं मानते हैं। बहुतोंमें गोंड़-प्रथाके जैसा भाईके लड़के और लड़कीमें विवाह होता है। सरोताओंको निकृष्ट समझ कर पोइयागण उन लोगोंके साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं करते।

दूरदेशवासी होने पर भी सधर्माचारी मांझिगण पर-स्परमें पुत्र-कन्या प्रदानमें कुण्ठित नहीं होते हैं। साधा-रणतः ये लोग एक ही शादी करते हैं, किन्तु स्त्री यदि वन्ध्यादि दोषयुक्त हो जाय तो ये दूसरी शादी भी कर सकते हैं। उच्चश्रेणी अथवा धनशाली मांझिगण बहु-पत्नी रखनेमें अपना गौरव समझते हैं।

स्वामी अपनी स्त्रीको अपने ही साथ रखते हैं। स्त्रियोंके मध्य ज्येष्ठा सर्वापेक्षा माननीया और गृहकर्त्रीरूपमें विवेचित होती हैं। यहां तक, कि जातीय सभामें भी वे सम्मान पाती हैं। विवाहके पहले बालिकाओंकी स्वाधीनता कुछ अधिक होती है। वे गौं चराती तथा गांव गांवमें भ्रमण कर अपने जातिवर्गोंमें अपना परिचय देती हैं। इस तरह स्वेच्छाविहारिणी हो कर यदि वे किसी पुरुषके प्रेममें आसक्त हो जांय, तो उन्हें जातोय सभासे किसी विशेष प्रकारको सजा नहीं मिलती है। कन्याकी इस निन्दनीय आसक्तिके लिये उनके पिता अथवा समय समय पर उनके उपपतिको समाजकी मन-स्तुष्टिके लिये भोज देना पड़ता है और तब विवाह होता है। किन्तु यदि युवती कन्यां किसी अन्य जाति-के पुरुषसे फंस जाय, तो वह जातिसे निकाल बाहर कर दी जाती है तथा उस उपपतिके सहवासमें रह कर अपना गुजारा करती है।

इन लोगोंमें बाल्यविवाह प्रचलित है। किन्तु बालक और बालिकाका यथाक्रम सोलह और बारह वर्षमें ही विवाह दिया जाता है। गोंड़ जातिसे इनकी विवाह-प्रथा एकदम स्वतन्त्र है। विवाहकी बात पक्की करनेके लिये पूर्णिमाकी रात्रि ही प्रशस्त है।

विवाहके समय ये लोग कन्याके मामाकी स्त्रीको वस्त्रादि उपढ़ौकन देते हैं तथा वरका मामा अपने भागिनेयको यौतुक-स्वरूप रुपये देता है। विवाह हो जाने पर वरकर्त्ता अपने सालेको गाय या भैंस उप-हारमें देता है। इसको ये लोग मामाकी 'विदाई' कहते हैं।

इन लोगोंमें व्यवस्था देनेकी भी प्रथा है। वर-वधू-को जब लाने जाते हैं तो पहले उजला वस्त्र पहनते हैं, रंगा हुआ वस्त्र पहनना ऐसे शुभकार्यमें निषेध है। यात्रा-के पहले माता पुत्रको वरण करती है जो 'परछन' कहलाता है। ये लोग पालकी आदि पर चढ़ कर कन्याके घर नहीं जाते, ऐसा करनेसे जातिच्युति होती है। ये विवाहमें कन्याको हँसुली और बाजू देते हैं।

भूत भगानेके लिये इनकी विशेष ख्याति है। अपेक्षा-कृत उच्च मझवारोंके मध्य ब्राह्मण ही इनके शुभलग्नका विचार करते हैं किन्तु किसी काममें ब्राह्मण पौरोहित्य नहीं करते।

विवाहमें सिन्दूर-दानके बाद सब काम समाप्त होने पर वर और कन्या भीतर घरमें लिवाई जाती है जिसको 'कोहवर' या 'वासर घर' कहते हैं। इसमें केवल वर और कन्या रहती हैं, दूसरा कोई इस घरमें नहीं जा सकता। कन्याका भाई घरके द्वारको बन्द किये रहता है। जिनको नव दम्पति देखनेकी अभिलाषा होती है वे वर और कन्या-यात्रिगणको कुछ दे कर ही देखने पाते हैं।

द्विरागमनके बाद इनका 'पाकस्पर्श' होता है। नव-विवाहिता कुलवधू अपने हाथसे रसोई बना कर स्वजाति-वर्गको खिलाती है।

एतद्भिन्न दरिद्रके लिये 'वीणा' विवाह और विधवाके लिये 'सगाई' विवाह भी चलता है। वीणा-विवाह-प्रथा बहुत कुछ अहमद-देशीय 'घर-जमाई' प्रथासे मिलता जुलता है, किन्तु इस विवाहमें जामाताको कुछ दिन तक अपने भावी ससुरालमें काम करना पड़ता है।

सगाई-विवाहमें देवरको ही विवाह करना सर्ववादि-सम्मत है; किन्तु यदि देवरको भौजाईसे विवाह करना नापसन्द हो, तो वह रमणी दूसरेसे विवाह कर सकती है।

विवाहके पश्चात् यदि स्वामी उन्माद, ध्वजभङ्ग या निरुद्देश हो जाय, तो रमणी दूसरेको अपना पति बना सकती है, किन्तु इस अवस्थामें भी देवरको विवाह करना ही नियम है।

सगाईके समय विधवा रमणीके पूर्व विवाह-प्रदत्त कन्यापण नये स्वामीको लौटा देना पड़ता है। औरस-जात पुत्र पितृधनका अधिकारी होता है। जबलों पिता जीवित रहते हैं तबलों कोई भी सम्पत्तिको बांट नहीं सकता। पिताकी मृत्यु होनेके बाद यह अपना अपना हिस्सा ले कर स्वतन्त्र स्थानमें रहता है। विवाहिता पत्नीके गर्भजात और रक्षिता रमणीके गर्भजात सन्तान पितृजातिको प्राप्त होती हैं, किन्तु अवैध जात सन्तान अपनी श्रेणीमें एक साथ भोजन नहीं कर सकती।

जातपुत्री कोई विधवा रमणी यदि स्वजातिमें विवाह करे, तो उसका पुत्र पितृबन्धुओंके साथ एकत्र वास कर सकता है और पितृ-सम्पत्तिका अधिकारी होता है; किंतु यदि यह रमणी स्ववंश-बहिर्भूत किसी दूसरे व्यक्तिसे विवाह करे, तो उसका पूर्वस्वामिके धन पर भी अधिकार नहीं रहता, वरन् वह पुत्र अपने पूर्वपिताके धनका अधिकारी होता है। किन्तु कहीं कहीं यही पुत्र दोनों पिताके ही धनका अधिकारी होते देखा जाता है। विधवा रमणी स्वामीकी सम्पत्तिको बरबाद नहीं कर सकती, लेकिन वे अपने भरण-पोषणका दावा कर सकती हैं।

विधवाके लिये दोनों स्वामिजात सन्तान हीसे मान है। उनमें भी कोई तारतम्य नहीं दिखाई पड़ता। पिताके धनके एकमात्र पुत्रगण ही उत्तराधिकारी होते हैं। सिर्फ ज्येष्ठ पुत्र ही सम्पत्तिके समान भागका दशांश अधिक पाता है। पुत्र नहीं होने पर परिवारके भ्राता या भ्रातृपुत्रगण और बड़े या छोटे चचा सम्पत्ति-के अधिकारी होते हैं, किंतु इन सबोंको मृत व्यक्तिकी विधवा पत्नीका भरण-पोषण करना ही होगा। उसका चालचलन खराब होने पर वह घरसे निकाल दी जाती हैं। कन्या विवाह पर्यन्त बपौती धनकी अंशभागिनी होती है। उसको तब तक जीवन-यात्रा और विवाह-व्यय पितृसम्पत्तिसे निर्वाह करना होता है। पिताके मर जानेके बाद जातपुत्र बपौती धनका हकदार नहीं हो सकता, तब यदि पिता मृत्युके समय अपनी पत्नीके गर्भजातको लिख जाय, तो उसको सम्पत्ति-लाभकी आशा रहती है। गृहत्यागी व्यक्तिको धनमें कुछ भी इख्तियार नहीं रहता।

पुत्रहीन व्यक्ति दत्तक ले सकता है लेकिन दौहित्रके जीवित रहने पर किसीको दत्तक लेनेकी क्षमता नहीं है : इस दत्तक ग्रहणके सम्बन्धमें इनमें बहुत-से नियम हैं जिनमें निम्नलिखित ही प्रधान हैं,—

१। प्रथम दत्तक जीवित रहनेसे द्वितीय दत्तक नहीं ले सकते।

२। अविवाहिता, अन्ध, लंगड़ा, अपत्नीक और संन्यासी दत्तक ग्रहण नहीं कर सकते।

३। पुत्रहीन विधवा स्त्रीको दत्तक लेनेका अधिकार नहीं। वह अपनी सम्पत्ति किसी निकट आत्मीयको दे सकती है। किन्तु उत्तराधिकारियोंकी रायसे विधवा रमणी दत्तक ले सकती है।

४। ज्येष्ठ पुत्रको दत्तक देनेका नियम नहीं है। अविवाहित पुत्रमात्रको ही दत्तक दिया जा सकता है लेकिन कन्याको नहीं। भ्रातृ सम्पर्कीय किसी निकटात्मीयके पुत्रको दत्तक लेना चाहिये। गृहीता और दत्तक दोनों ही एक श्रेणी या थोकभुक्त होगा।

यदि किसी व्यक्तिके दत्तक लेनेके बाद पुत्र उत्पन्न हो, तो उसके दोनों ही पुत्रको पितृसम्पत्तिका समान अंश मिलेगा। बीणा-विवाहमें जिस लड़केको घर-जमाई रखा जाता है वह भी एक प्रकारका दत्तक-सा है। प्रायः तीन वर्ष तक वह भावी स्वसुरके यहां रह कर पुत्रके ऐसा सब काम करता है। बाद उसके कन्याके पिता अपनी लड़कीसे उसका विवाह करा देते हैं। इस विवाहका कुल खर्च कन्याके पिताको ही देना पड़ता है। विवाहके बाद इस लड़केसे कोई काम नहीं करा सकते और न उसको स्वसुरकी सम्पत्ति पर कुछ अधिकार ही रहता है।

प्रसूतिके गर्भावस्थामें कोई संस्कार नहीं रहता। पूर्वमुखी हो कर रमणीको सन्तान प्रसव करना होता है। चमारी आती है और जातवालककी नाभी काट कर बाहर मैदानमें गाड़ देती है। छः दिनमें छठि (षष्ठी) पूजा होती है। इस दिन प्रसूति और जातवालकको स्नान करा कर शुद्ध कराया जाता है।

बरही अर्थात् बारह दिनमें जातवालकका मुण्डन होता है। बालककी पीसी या ज्येष्ठ बहनको ही प्रसूतिकागृह साफ करना होता है।

शवदेहको खुले मैदानमें ले जाते हैं और मृतके मुखमें पिण्ड देकर जलाते हैं और कोई गाड़ भी देते हैं। दाहके बाद ये मृतकी अस्थि ले कर गंगामें फेंक देते हैं। तीसरे दिन गृहस्थ पुरुष बाल कटाते और चौथे दिन श्राद्धका भोज होता है। दशवें दिन अशौचान्त होने पर जातिवर्ग एकत्रित हो कर सिरके बाल, दाढ़ी और मूँछ कटवाते हैं।

शवदाहके बाद घर लौटते हैं और उसी रातको खानेकी चीज रास्तेमें फेक देते हैं। कारण, इनका विश्वास है, कि प्रेतात्मा उसी रास्तेमें विचरण करती है। पुत्र उत्पन्न होने पर पातारि आ कर कहता है, कि इस पुत्ररूपमें तुम्हारे पूर्वपुरुषके अमुक व्यक्तिने जन्म लिया है, तब वे उसी मृत व्यक्तिके नामानुसार जातपुत्रका नामकरण करते हैं। गौके बछड़ा देने पर जब वह दूध नहीं पीता, तो उसके प्रतिकारके लिये ओझा बुलवाया जाता है। ओझा आ कर कहता है, कि इस बछड़ेके रूपमें तुम्हारे पिताने जन्मग्रहण किया है। यह सुन कर ये लोग बछड़ेको बड़े यत्नसे रखते हैं, और कभी भी उसे हलमें नहीं जोतते।

मृत व्यक्तिकी यादगारीमें ये कभी भी स्मृतिस्तम्भ नहीं रखते। आजकल बहुतसे उन्नत माझी हिन्दूके आचार-व्यवहारका अनुकरण करते हैं।

इनके 'पातारिगण' बहुत कुछ गोंड़ जातिके 'प्रधान'-के समतुल्य हैं। वे एकत्र हो ब्राह्मण और महाब्राह्मणका काम करते हैं। मझवारगण महादेव, बुड़ा, देवी, लिंगो और दिह नामक देव तथा देवी और देवहारिणी आदि देवमूर्त्तिकी उपासना करते हैं। अलावा इसके ये लोग भूत, नाग और मुसलमान फकीर आदिकी भी पूजा करते हैं।

'करम्' नृत्य ही इनमें परम पवित्र है। स्त्री-पुरुष सभी अपने अपने आंगनमें एकत्र हो कर एक करम वृक्षकी शाखाके चारों ओर नाचते हैं। एक तरफ पुरुष ढोल बजाते और स्त्रियां तान भरती हैं। इस करम-नृत्यमें सभी शराब पीते हैं।

धेनो माझिगण वाराणसी, प्रयाग, विन्ध्याचल, अमरकंटक आदि स्थानोंमें तीर्थ करनेके लिये जाते हैं। काशीमें गंगास्नान तथा सोननदीमें स्नान ये बड़ा ही पुण्यजनक मानते हैं। ग्रहण आदिमें स्नान और पौष संक्रान्तिका खिचड़ी पार्वण इनका प्रधान त्योहार है। गो, ब्राह्मण और गंगाजलमें इनको विशेष भक्ति है। जब कभी कसम खानी पड़ती है, तब ब्राह्मणके पैर, गोपुच्छ अथवा गंगाजल स्पर्शसे ही शपथका निबटेरा होता है। कभी कभी अग्निमें कूद अथवा गंगामें जा कर ये लोग अपने दिव्यकी सार्थकता दिखाते हैं। इसके सिवा अन्यान्य अशिक्षित असभ्य जातिकी नाईं डाइन, भूतावेश, स्वप्नफल तथा कृषिकार्यमें दैव या भौतिक शक्तिसञ्चार होनेसे इनकी अवस्था विलक्षण हो जाती है। तनिक भी शंका होने पर किसी एक छोटे काममें भी उपदेवतादिकी शान्तिके विना ये छुटकारा नहीं पाते।

स्त्रियां आभूषण पहनना खूब पसन्द करती हैं। चोली नहीं पननेसे शरीरकी शोभा नहीं होती। उनका विश्वास है, कि जो चोली नहीं पहनती उनको ईश्वर स्वर्गमें स्थान नहीं देते हैं। बहुत सी स्त्रियां गलेमें शीतलादेवीके मूर्त्ति-अंकित पदक पहनती हैं।

मझावन—वाराणसी विभागके वस्ती जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह मोक्षवन नामसे प्रसिद्ध है। यहां बौद्धप्रधानताके समय विहारादि प्रतिष्ठित हुए थे।

मझिया (हिं० स्त्री०) लकड़ोकी वह पट्टियां जो गाड़ीके पेंदेमें लगी रहती हैं।

मझियाना (हिं० क्रि०) मध्यमें हो कर आना, बीचसे हो कर निकलना।

मझुआ (हिं० पु०) हाथमें पहननेकी एक प्रकारकी चूड़ी जो पछेलाके बाद होती है।

मझेरा—युक्तप्रदेशके मुजफ्फर नगर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां मुसलमानोंकी अनेक कब्र विद्यमान हैं। इनमेंसे सैयद महम्मद खाँ द्वारा ६७२ हिजरीमें निर्मित सैयद शाह और उनकी माका समाधि-मन्दिर प्रधान है। यह कब्र सबसे सुन्दर है। पहले सैयद् महम्मदने अपनी कब्रके लिये यह मकबारा बनवाया था, पर दुर्भाग्यवशतः उनके जीते-जी प्रियतमा पत्नीका प्राण-वियोग हो जानेसे उन्हें इस समाधि-मन्दिरमें स्थान दिया गया। (२) सैयद महम्मद खां का श्वेतमर्मर निर्मित समाधिमन्दिर। यह ६८२ हिजरीमें बनवाया गया था। (३) मराण सैयद हुसेनका १००० हि०का बना हुआ समाधि-मन्दिर। (४) सैयद उमार नुरका समाधिमन्दिर और (५) अष्टकोण प्रस्तरस्तूप उल्लेखयोग्य है। शेषोक्त स्तूप सैयद महम्मद खाँके पिताका बनाया हुआ है।

मझेरू (हिं० पु०) जुलाहोंके ऊड़ी नामक औजारके बीचकी लकड़ी।

मझेला (हिं० पु०) १ चमारोंका एक बिलश्त लम्बा एक प्रकारका औजार। इससे जूतेका तला सिया जाता है। २ लोहेका एक औजार। इसमें लकड़ीका दस्ता लगा रहता है। यह चमड़े परका खुरखुरापन दूर करनेके काममें आता है।

मझोला (हिं० वि०) १ मझला, बीचका। २ मध्यम आकारका, जो आकारके विचारसे न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा।

मझोली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बैलगाड़ी। २ टेकुरीकी तरहका एक औजार। इससे जूतेकी नोक सी जाती है।

मझौरा—युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत अकबरपुर तहसीलका एक परगना। यहां पर बैजपुर नामके समीप मधा और विश्वी नामक दो छोटी नदियोंका संगम हुआ है। यह स्थान महापुण्यजनक है। प्रतिवर्ष यहां एक बड़ा मेला लगता है। इस समय उक्त संगममें स्नान करनेके लिये अनेक तीर्थयात्री जुटते हैं। संगमके बाद उक्त दोनों नदियां तोस नामसे बहती हैं। यहां अनेक प्राचीन कीर्त्ति नजर आती हैं।

मझौली-सालिमपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत देवरिया तहसीलके दो बड़े बड़े ग्राम। यह छोटी गण्डकके दोनों किनारे अवस्थित हैं। मझौलीमें हिन्दू और सालिमपुरमें मुसलमान रहते हैं। गण्डकतीरवर्त्ती मझौली राजाओंका प्रासाद अवस्थित है। इस समृद्ध वंशने बहुकालकी शासन-विशृङ्खलामें प्रचुर सम्पत्ति खो दी है। अभी बृटिश सरकारकी कृपासे सालिमपुर दिन-पर-दिन उन्नति कर रहा है। राजप्रासाद और

दुर्गको छोड़ कर मझौलीमें चार प्राचीन शिव-मन्दिर हैं। यहांसे एक कोस दक्षिण-पूर्व कुण्डिलपुर ग्राममें एक प्राचीनदुर्गका ध्वंसावशेष नजर आता है।

मञ्च (सं० पु०) मञ्चति उच्चोभवतीति मचि घञ्। १ खट्वा, खाट। २ खाटकी बुनी हुई बैठनेकी छोटी पीढ़ी, मँचिया। ३ ऊँचा बना हुआ मंडल। इस पर बैठ कर सर्वसाधारणके सामने किसी प्रकारका कार्य्य किया जाता है।

मञ्चक (सं० पु०) मञ्च-स्वार्थे कन्। १ खट्वा, खटिया। २ इन्द्रकोष, मचान। ३ उच्च मण्डप।

मञ्चकपत्नी (सं० स्त्री०) सुरपत्नीलता।

मञ्चकाश्रय (सं० पु०) मञ्चकः खट्वादिराश्रयो यस्य। मत्कुण, खटमल।

मञ्चकासुर (सं० पु०) असुरभेद।

मञ्चनआचार्य—आश्वलायनश्रौत सूत्र-प्रयोग - दीपिकाके प्रणेता।

मञ्चमण्डप (सं० पु०) मञ्चो मण्डप इव। शस्यरक्षार्थ कुटीर, खेतोंमें बनी हुई वह मचान जिस पर खेतिहर लोग बैठ कर पशुओं आदिसे खेतोंकी रक्षा करते हैं।

मञ्चल—मन्द्राज प्रदेशके बेल्लरी जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह अदौनीसे १० कोस उत्तर अवस्थित है। यहांका रामलिङ्गस्वामी और मन्चाल चेल्लम मन्दिर सबसे प्राचीन है। राघवेन्द्राचारीके मन्दिरमें एक शिला-फलक नजर आता है, उपरोक्त दोनों मन्दिरका माहात्म्य स्थलपुराणमें कीर्त्तित हुआ है। प्रायः ३ सौ वर्षका प्राचीन एक संन्यासीका समाधि मन्दिर जनसाधारणके निकट पवित्र समझा जाता है। बहुतों तीर्थयात्री इसके दर्शनमें आते हैं।

मञ्छड़—बम्बई प्रदेशके कराची जिलान्तर्गत शेहरान उप-विभागका एक ह्रद। यह अक्षा० २६°२२´से २६°२८´ उ० तथा देशा० ६७°३७´से ६७°४७´ पूर्वके मध्य अवस्थित है। आरल और नारा नामकी दो नदी इसमें गिरती है जिससे इसकी शोभा देखते बनती है। वर्षाके समय इसका प्रसार २० मील लम्बा और १० मील चौड़ा होता है। वर्षाके बाद पानीके हट जानेसे वहां अच्छी फसल लगती है। ह्रदका बिचला भाग बहुत गहरा है। उसमें तरह तरहकी मछली रहती है। शीतकालमें प्रस्फुटित पद्मशोभित ह्रदकी शोभा अतीव मनोहर है।

मञ्चिकरा—मन्द्राजप्रदेशके त्रिवांकुड़ राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ९°२६´ उ० तथा देशा० ७६°३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां स्थानीय जातद्रव्यका विस्तृत वाणिज्य होता है।

मञ्जर (सं० क्ली०) मञ्जयति दीप्यते इति मनज-अर्। १ मुक्ता, मोती। २ तिलकवृक्ष, तिलका पौधा। ३ वल्ली, नागवल्ली।

मञ्जराबाद—महिसुर राज्यके हुसेन जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १२°४०´ से १३°३´ उ० तथा देशा० ७५°३३´से ७५°५७´पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३८ वर्गमील और जनसंख्या ६० हजारके करीब है। इसमें सकलेशपुर नामक एक शहर और २७७ ग्राम लगते हैं।

पश्चिमघाट पर्वतमालाका वनविभाग ले कर यह सम्पत्ति संगठित है। इसका प्राचीन नाम बलम है। १४वीं शताब्दीमें विजयनगरके राजाओंने नगरकी आबादी बढ़ाई। उन्होंने पाटेल सरदारोंके हाथ इस स्थान का शासनभार सौंपा। १६वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक उन्होंने यहांका शासन किया था। १७९९ ई०में अंगरेजोंसे श्रीरङ्गपत्तन जीते जानेके बाद उस वंशके शेष राजा वेङ्कटाद्रिनायकने अपनी राज्यसीमा बढ़ानेकी चेष्टा की। इसके दो वर्ष बाद वे अंगरेजोंसे पकड़े और मारे गये। यहांके प्रायः सभी अधिवासिगण वीरचेता हैं। सभी बन्दूक और तलवारका व्यवहार करते हैं। मञ्जराबाद पर्वतमालाका प्राकृतिक दृश्य अतीव मनोहर है।

मञ्जरि (सं० स्त्री०) १ छोटे पौधे या लता आदिका नया निकला हुआ कल्ला, कोंपल। २ कुछ विशेष वृक्षों या पौधोंमें फूलों या फलोंके स्थानमें एक सीकेमें लगे हुए बहुतसे दानोंका समूह।

मञ्जरिका (सं० स्त्री०) मंजरी।

मञ्जरित (सं० त्रि०) मञ्जर-तारकादित्वादितच्। १ अंकुरित। २ मुकुलित।

मञ्जरी (सं० स्त्री०) मञ्जरि-कृदिकारादिति पक्षे ङीष्। १ मुक्ता, मोती। २ तिलवृक्ष, तिलका पेड़। ३ लता। ४ मञ्जरि। मञ्जरि देखो। ५ तुलसी। ६ छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति पादमें १४ अक्षर करके रहते हैं।

मञ्जरीक (सं० पु०) १ गन्ध-तुलसी। २ मुक्ता, मोती। ३ तिलकवृक्ष, तिलका पौधा। ४ तुलसी। ५ वेतसलता, बेंत। ६ अशोकका वृक्ष।

मञ्जरीनम्र (सं० पु०) मञ्जर्यां मञ्जर्यवस्थायामपि नम्रः। वेतसवृक्ष, बेंत।

मञ्जा (सं० स्त्री०) मजि पचाद्यच, टाप्। १ छागी, बकरी। २ मंजरी।

मञ्जि (सं० पु०) मंजि-इन्। मञ्जरी देखो।

मञ्जिका (सं० स्त्री०) मञ्जयतीति मञ्ज-ण्वुल्, टाप् अत इत्वञ्च। वेश्या, रंडी।

मञ्जिफला (सं० स्त्री०) मञ्जिमञ्जरी फलेऽस्याः। कदली, केला।

मञ्जिरा--वरार प्रदेशके इलिचपुर जिलेके अन्तर्गत मेघघाट विभागका एक प्राचीन ग्राम। इसके सामनेमें जो पर्वत है उसमें गुहामन्दिर और बौद्ध-सङ्घारामादि देखे जाते हैं। अलावा इसके यहां स्तम्भादि अनेक प्राचीन कीर्त्तियां दिखाई देती हैं। सन्निकटवर्त्ती अधित्यकामें एक प्रस्रवण है।

मञ्जिष्ठा (सं० स्त्री०) अतिशयेनेयं मञ्जिमती, मंजिमती-इष्ठ-मतुप्। स्वनामख्यात रक्तवर्ण लताविशेष, मजीठ। यह समस्त भारतके पहाड़ी प्रदेशोंमें पाई जाती है। हिमालय पहाड़के ८ हजार फुट ऊँचे स्थानमें तथा यवद्वीप, जापान और अफ्रिका तकके विस्तृत स्थानमें यह लता देखी जाती है। इसके रेशेंमें नाना भेषज गुण हैं। इसका सूखी जड़ और डंठलोंको पानीमें उबाल कर एक प्रकारकाबढ़िया लाल या गुलनार रंग तैयार किया जाता है जो सूती और रेशमी कपड़े रंगनेके काममें आता है।

इसका संस्कृत पर्याय—विकसा, जिङ्गी, समङ्गा, कालमेषिका, मण्डूकपर्णी, भण्डीरी, भण्डी, योजनवल्ली, कालमेषी, काला, जिङ्गि, भण्डिरी, भण्डिका, भण्डि, हरिणी, रक्ता, गौरी, योजनवल्लिका, वप्रा, रोहिणी, चित्रलता, चित्रा, चित्रांगी, जननी, विजया, मञ्जुषा, रक्तयष्टिका, क्षत्रिणी, रागाढ्या, काल भाण्डिका, अरुणा, ज्वरहन्त्री, छत्रा, नागकुमारिका, भण्डीरलतिका, रागाङ्गी वस्त्रभूषणा।

पहले ही कहा जा चुका है, कि इसकी जड़ और डंठलसे रंग बनता है। पहले जड़ और डंठलको अच्छी तरह सुखा कर चूर्ण कर ले, पीछे उस चूर्णको जलमें दे कर कड़ी आंचमें उबाले। जल जब लाल हो जाय, तब उसे पक्का रंग करनेके लिये उसमें फिटकरी डाल दे।

हकोमी चिकित्साशास्त्र और वैद्यक ग्रन्थमें इसकी गुणावली लिखी है। पक्षाघात, कमला, मूत्रकृच्छ्, रजःकृच्छ् और क्षतरोगमें यह विशेष उपकारी है। मंजिष्ठा, यष्टिमधुकी जड़ और आमाती इन्हें एक साथ पीस कर टूटी हुई हड्डी पर लगानेसे सूजन दब जाती है। इसका भिगोया हुआ जल वा क्वाथ जरायुस्राव, मस्तिष्क विकृति आदि रोगोंमें विशेष फलप्रद है।

इसका गुण—मधुर, कषाय, उष्ण, गुरु, व्रण, मेह, ज्वर, श्लेष्म, विष और नेत्ररोगनाशक है। यह मञ्जिष्ठा चार प्रकारकी है,—चोल, योजनी, कौन्ती और सिंहली। (राजनि०); कुष्ठ, स्वरभंग और शोथनाशक तथा वर्णाग्निकारक (राजव०)

मञ्जिष्ठामेह (सं० पु०) पित्तज प्रमेहभेद, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका प्रमेह। इसमें मजीठके पानीके समान मूत्र होता है।

मञ्जिष्ठाद्यघृत (सं० क्ली०) शारीरव्रणाधिकारोक्त घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली,—मञ्जिष्ठ, चन्दन और मूर्वा-इन सब द्रव्योंको पीस कर घृतके साथ पाक करनेसे यह प्रस्तुत होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकारकी अग्निसे जल गया हो, तो इस घृतका प्रलेप होनेसे बहुत जल्द आराम हो जाता है।

मञ्जिष्ठाद्यतैल (सं० क्ली०) तैलौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तैल ४ सेर, कल्कार्थ मञ्जिष्ठा, रक्तचन्दन, मुगरामूल कुल मिला कर १ सेर, पाकार्थ जल १६ सेर, इस तेलका लेप देनेसे अग्निदग्ध क्षत बहुत जल्द प्रशमित होता है। (भैषज्यरत्ना० सद्योव्रणा०)

२ क्षुद्ररोगाधिकारोक्त तैलौषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल, आध शराव, कल्कार्थ मंजिष्ठा, मधुकपुष्प, लाक्षा, मातुलंगमूल, यष्टिमधु २ तोला और बकरीका दूध १ शराव। तैलपाकके नियमानुसार इस तैलका पाक करना होगा। यह तेल लगानेसे नीलिका और पीड़का आदि रोग जाते रहते हैं।

मञ्जिष्ठाराग (सं० पु०) मञ्जिष्ठेव रागः। साहित्यदर्पणोक्त पूर्वरागभेद। नीली, कुसुम्भ और मञ्जिष्ठा नामक तीन प्रकारका पूर्वराग है। इनमें जो अनुराग नष्ट नहीं होता तथा अत्यन्त शोभित होता है उसे मञ्जिष्ठाराग कहते हैं।

मञ्जी (सं० स्त्री०) मञ्जयति दीप्यते इति मंजि-इन्, कृदिकारादिति ङीष्। मञ्जरी।

मञ्जीर (सं० पु० क्ली०) मंजति मधुरं शब्दायते इति मन्ज-ध्वनौ वाहुलकात् ईरन्। १ नूपुर, घुंघरू। २ मन्थानदण्डरज्जुबन्धनार्थ स्तम्भ, वह स्तम्भ जिसमें मथानीका डंडा बंधा रहता है। पर्याय—विष्कम्भ, कुटर। ३ एक प्राचीन कवि। २ पश्चिम वंगवासी पार्वतीय जातिविशेष। ३ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रति चरणमें १३ अक्षर करके रहते हैं।

मञ्जीरक (सं० पु०) मंजीर इव कायति शब्दायते कै-क। नूपुरध्वनितुल्य ध्वनियुक्त, घुंघरूके समान जिसमें शब्द हो।

मञ्जीरा (सं० स्त्री०) नदीभेद।

मञ्जु (सं० त्रि०) मंजतीति मञ्ज-ध्वनौ सौत्रधातुः (मृगय्वादयश्च। उण् १।३८) इति कु। मनोज्ञ, सुन्दर।

मञ्जुकुल (सं० पु०) एक बौद्धयति।

मञ्जुकेशी (सं० पु०) मंजवो मनोहराः केशाः सन्त्यस्य इनि। १ श्रीकृष्ण। (त्रि०) २ सुन्दरकेशविशिष्ट।

मञ्जुगमन (सं० त्रि०) मञ्जु मनोहरं गमनं यस्य। सुन्दर गामी, जिसकी अच्छी चाल हो।

मञ्जुगमना (सं० स्त्री०) हंसी।

मञ्जुगर्त्त (सं० पु०) नेपाल राज्यका प्राचीन नाम।

मञ्जुगीति (सं० स्त्री०) सुमधुर गीत, बढ़िया गान।

मञ्जुघोष (सं० पु०) मंजुर्मनोहरो घोषः शब्दः यस्य। १ पूर्वजिनभेद। २ तान्त्रिकोंके एक उपास्य देवताका नाम। कहते हैं, कि इनका पूजन करनेसे मूर्खता दूर होती है। तन्त्रसारमें पूजाका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं दिया गया।

इसका ध्यान—

"शशधरमिव शुभ्रं खड्गपुस्तांग पाणि
सुरुचिरमतिशान्तं पंचचूड़ः कुमारम्।
पृथुतरवरमुख्यं पद्मपत्रायताक्षं
कुमतिदहनदक्षं मंजुघोषं नमामि (तन्त्रसार)

मञ्जुघोष—एक बौद्धाचार्य। आप बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये चीन देश गये थे। प्रवाद है, कि इन महात्माने चीन राज्यसे नेपालमें चीनदेशवासी बौद्धों को ले जा कर उपनिवेश बसाया था। इन्होंने ही नेपाल-उपत्यका-गह्वरको भेद कर सञ्चित जलराशिको बाहर निकाला और उस देशको वासोपयोगी बना दिया था। नेपालमें ज्योतीरूप आदि बुद्धमन्दिरका स्थापन और धर्माकरको नेपाल राजसिंहासन पर स्थापन, ये दोनों इन्हींको कीर्त्ति है। नेपालमें आज महायान मतावलम्बिगण बड़े सम्मानके साथ इनका पूजन करते हैं। वज्रसूची ग्रन्थके प्रारम्भमें 'ओं नमो मञ्जुनाथाय, जगद्गुरुं मञ्जुघोषं नत्वा वाक्काय चेतसा, इत्यादि लिखा हुआ देखा जाता है। नेपाल देखो।

मञ्जुघोषा (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम।

मञ्जुदेव—चीनदेशस्थ मंजुश्री पर्वतके एक राजा। स्वयम्भूपुराणमें लिखा है,—वे वरदा और मोक्षदा नामक अपनी दो पत्नियोंके साथ स्वयम्भूक्षेत्रके दर्शनको गये। राजाने नेपालके ह्रदको कुम्भीरोंसे भरा देख अपने अस्त्रसे उपत्यका भूमि भेद डाली। यथाक्रम कपोतल, गन्धवती, मृगस्थली, गोकर्ण, वरय और इन्द्रावती आदि उपत्यकाका दक्षिण देश उत्खात हो गया था। पीछे उन्होंने पद्मगिरिके ऊपरवाले ह्रदको काट डाला जो परम पवित्र उपच्छन्द पीठ कहलाता है। यहां खगानना देवीका मन्दिर अवस्थित है।

मञ्जुदेव (सं० पु०) मञ्जुघोष, मंजुश्री।

मञ्जुनन्दी—एक प्राचीन कवि, जीवनागके पुत्र।

* इस पर्वतका प्राचीन नाम है पञ्चशीर्षशैल। उसका एक एक शृङ्ग यथाक्रम हीरक, इन्द्रनील, मरकत, माणिक्य और वैदुर्यमणिमण्डित है। बहुतेरे इस पर्वतको आसामके अन्तर्गत मानते हैं।

मञ्जुनाथ—नेपालप्रसिद्ध बौद्धाचार्यभेद। ये मञ्जुघोष और मंजुश्री नामसे भी प्रसिद्ध थे

मञ्जुनाशी (सं० त्रि०) १ वह सुन्दरी रमणी जिसके रूपसे दूसरी रमणीका रूप फीका पड़ जाय। २ दुर्गाका एक नाम। ३ इन्द्राणीका एक नाम।

मञ्जुनेत्र (सं० त्रि०) १ सुन्दर चक्षुविशिष्ट, सुन्दर आंखवाला। (पु०) २ सुन्दर नेत्र।

मञ्जुपत्तन (सं० क्ली०) मञ्जुश्री-प्रतिष्ठित नगरभेद।

मञ्जुपाठक (सं० पु०) मञ्जु मनोहरं पठतीति पठ-ण्वुल्। १ शुकपक्षी, तोता। (त्रि०) २ सुन्दर पाठकर्त्ता, अच्छी तरह पढ़नेवाला।

मञ्जुप्राण (सं० पु०) मञ्जवः प्राणाः यस्य, सर्वव्यापकतया महाप्राणत्वादस्य तथात्वं। ब्रह्मा।

मञ्जुभट्ट—अमरकोषटीकाके प्रणेता।

मञ्जुभद्र (सं० पु०) मञ्जु मनोहरं भद्रं मङ्गलं यस्य। जिनविशेष। पर्याय—मञ्जुश्री, ज्ञानदर्पण, मञ्जुघोष, कुमार, अष्टार चक्रवान्, स्थिरचक्र, वज्रधर, प्रज्ञाकाय, वादिवाट्, नीलोत्पली, महाराज, नील, शार्दूल-वाहन, धियाम्पति, पूर्वजिन, खड्गी, दन्ती, विभूषण, बालव्रत, पञ्चचीर, सिंहकेलि, शिखाधर, वागीश्वर। (त्रिका०)

मञ्जुभाषिन् (सं० पु०) मञ्जु भाषते भाष-णिनि। १ सुन्दरभाषी, वह जो अच्छी तरह बोलते हों। २ छन्दोभेद। इस छन्दके प्रतिचरणमें १३ अक्षर रहते हैं।

मञ्जुल (सं० क्ली०) मञ्जु-मञ्जुत्वमस्त्यस्येति (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) इति लच्। १ जलाञ्चल, नदी या तालावका किनारा। २ निकुञ्ज। ३ जलरङ्कपक्षी। ४ शवल, चोता। ५ हरिणभेद। ६ अञ्जीरवृक्ष। (त्रि०) ७ सुन्दर, मनोहर।

मञ्जुला (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

मञ्जुवज्र—बौद्धदेवताभेद।

मञ्जुवादिन् (सं० स्त्री०) मञ्जु मनोहरं वदति वद-णिनि। मनोहर वाक्ययुक्त, मीठा वचन बोलनेवाला।

मञ्जुश्री (सं० पु०) मञ्जुर्मनोहराः श्रीः शोभा यस्य। मञ्जुघोष।

मञ्जुश्री—१ स्वयम्भु-पुराण-वर्णित चीनदेशान्तर्गत एक पर्वत। २ प्रसिद्ध बौद्धाचार्य मञ्जुघोष। ये भारतवर्षसे बौद्धधर्म प्रचारके लिये चीनराज्य तक गये थे। वहांसे लौट कर वे अपने शिष्योंके साथ नेपाल उपत्यकामें बस गये। नेपाल, मञ्जुघोष और मञ्जुदेव देखो।

आर्यगण्डव्यूह, परमार्थनामसङ्गीत, सद्धर्मपुण्डरीक, सुगतावदान, सुप्रभात स्तव आदि ग्रन्थोंमें इनका माहात्म्य, स्तव और पूजाविधि वर्णित है।

प्रत्नतत्त्वविदोंका अनुमान है, कि शिष्यमण्डलसे परिवृत हो बौद्धाचार्य मञ्जुश्रीने आसाम प्रदेशके अन्तर्गत पञ्चशीर्ष-पर्वतसे नेपालराज्यमें जा कर उपनिवेश बसाया था।

मञ्जुश्रीकीर्त्ति—भोटदेशीय एक बौद्ध लामा।

मञ्जुश्रीप्रतिष्ठा—बौद्धोंकी धारणीविशेष।

मञ्जुहासिन् (सं० त्रि०) मञ्जु-मनोहरं हसति हस-णिनि। मधुर हास्ययुक्त।

मञ्जुहासिनी (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें १३ अक्षर करके रहते हैं।

मञ्जुषा (सं० स्त्री०) मञ्जुषा पृषोदरादित्वात् साधुः। मञ्जुषा, पिटारी।

मञ्जुसौरभ (सं० क्ली०) छन्दोभेद।

मञ्जुस्वर (सं० पु०) मञ्जुघोष, मञ्जुश्री।

मञ्जूषा (सं० स्त्री०) मज्जति द्रव्यमस्मिन्, (मसजे नुम्च। उण् ४।७७) इति मस्ज ऊषन्, नुम्च सच अचोऽन्त्यात् परः, ततो जश्त्वश्चुत्वे मध्य-मस्य लोपात् साधुः। १ पिटक, पिटारी। २ पाषाण, पत्थर। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

मञ्जेरी—मन्द्राजप्रदेशके मालाबार जिलान्तर्गत एरणाड़ उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० ११° ७' उ० तथा देशा० ७६° ७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ४००० है। यहां १८४९ ई०में मोप्पिलाओंका जो विद्रोह हुआ था उसमें उन्होंने विशेष निष्ठुरताका परिचय दिया था। उन्होंने उद्धत हो कर अंगरेज-सेनापतिके साथ देशीय सेनादलको भी मार डाला। पीछे बहुत-सी यूरोपीय सेनाकी सहायतासे उनका अच्छी तरह दमन किया गया था। यहां प्राचीनतत्त्वके अनेक निदर्शन पाये जाते हैं। इनमेंसे कई एक गुहामन्दिर और मूक्कुन्न मन्दिरमें खोदी हुई १६५१ ई०की शिलालिपि उल्लेखयोग्य है।

मञ्छनपुर—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलान्तर्गत एक

तहसील। यह यमुनाके किनारे अक्षा० २५° १७´ से २५° ३२´ उ० तथा देशा० ८०° ६´ से ८१° ३२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७२ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके क़रीब है। इसमें मञ्छनपुर नामक एक शहर और २६६ ग्राम लगते हैं।

मञ्छनपुरपट्टा—इलाहाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ३१´ १२´´ उ० तथा देशा० ८१° २५´ १२´´ पू०-के मध्य अवस्थित है। यहां मुसलमानोंकी ज्यादा संख्या है। प्रति सोमवार और शुक्रवारको यहां हाट लगती है।

मट (हिं० पु०) मट्टीका बड़ा पात्र। इसमें दूध दही रहता है।

मटक (हिं० स्त्री०) १ गति, चाल। २ मटकनेकी क्रिया या भाव।

मटकना (हिं० क्रि०) १ अंग हिलाते हुए चलना, लचक कर नखरेसे चलना। २ लौटना, फिरना। ३ अंगों अर्थात् नेत्र, भृकुटी, उंगली आदिका इस प्रकार संचालन होना जिसमें कुछ लचक या नखरा जान पड़े।

मटका (हिं० पु०) मट्टीका बना हुआ एक प्रकारका बड़ा घड़ा। इसमें अन्न, पानी इत्यादि रखा जाता है।

मटकाना (हिं० क्रि०) १ नखरेके साथ अंगोंका संचालन करना, चमकाना। २ दूसरेको मटकनेमें प्रवृत्त करना।

मटकी (हिं० स्त्री०) १ छोटा मटका, कमोरी। २ मटकाने-का भाव, मटक।

मटकाला (हिं० वि०) मटकनेवाला, नखरेमें हिलने डोलने वाला।

मटकौअल (हिं० स्त्री०) मटकानेकी क्रिया या भाव, मटक।

मटखौरा (हिं० पु०) एक प्रकारका ऐबी हाथी।

मटची (सं० स्त्री०) मटनं मटःमट-अवसादे भावे अप्, मटः चीयते प्राचीयते एभिरिति मट-चि, बाहुलकात् ति, मटचि, ततः कृदिकारादिति पक्षे ङीष्। सर्वेषामवसादकत्वाद-स्यास्तथात्वं। १ रक्तवर्ण क्षुद्रपक्षिविशेष, लालरंगकी एक छोटी चिड़िया। २ पाषाणवृष्टि, ओला।

मटना (हिं० पु०) कानपुर और बरेलीके जिलोंमें पैदा होनेवाली एक प्रकारकी ईख।

मटमँगरा (हिं० पु०) विवाहके पहलेकी एक रीति। इसमें किसी शुभ दिन वर या वधूके घरकी स्त्रियां गाती बजाती हुई गांवके बाहर मिट्टी लेने जाती हैं और उस मिट्टीसे कुछ विशिष्ट अवसरोंके लिये गोलियां आदि बनाती हैं।

मटमैला (हिं० वि०) मट्टीके रंगका, धूलिया।

मटर (हिं० पु०) एक प्रकारका मोटा अन्न। यह वर्षा या शरद् ऋतुमें भारतके प्रायः सभी भागोंमें बोया जाता है। इसके लिये अच्छी जोताई और खादकी आवश्य-कता होती है। इसमें एक प्रकारकी लम्बी फलियाँ लगती हैं जिन्हें छीमी कहते हैं। इसमें छीमियोंके अन्दर गोल दाने रहते हैं जिन्हें मटर कहते हैं। शुरूमें ये दाने बहुत ही मीठे और स्वादिष्ट होते हैं और प्रायः तरकारी आदि-के काममें आते हैं। जब फलियां पक जाती हैं, तब उनके दानोंसे दाल बनाई जाती है। कहीं कहीं रोटीके लिये इसका आटा भी पीसते हैं तथा इसका सत्तू भी खाते हैं। इसकी पत्तियां और डंठल पशुओंके चारेके लिये बहुत उपयोगी होते हैं। इसके दो भेद हैं, एक दुबिया और दूसरा काबुली मटर। इसका गुण मधुर, स्वादिष्ट, शीतल, पित्तनाशक, रुचिकारक, वातकारक, पुष्टिजनक, मलको निकालनेवाला और रक्तविकारको दूर करनेवाला माना गया है।

मटरगश्त (हिं० स्त्री० पु०) १ धीरे धीरे घूमना, टहलना। २ सैरसपाटा।

मटरबोर (हिं० पु०) मटरके बराबर घुंघरू जो पाजेब आदिमें लगते हैं।

मटराला (हिं० पु०) जौके साथ मिला हुआ मटर।

मटलनी (हिं० स्त्री०) मिट्टीका कच्चा बरतन।

मटस्फटि (सं० पु०) मटं अवसादं स्फटति निराकरोति स्फट-इ। दर्पारम्भ, अभिमानका शुरू होना।

मटा (हिं० पु०) एक प्रकारका लाल च्यूंटा। इसके झुण्ड आमके पेड़ों पर रहा करते हैं।

मटिआना (हिं० क्रि०) १ अशुद्ध बरतन आदिमें मट्टी मल कर उसे साफ करना। २ मट्टीसे ढांकना। ३ टालनेके हेतु किसी बातको सुन कर भी उसका कुछ जवाब न देना, सुनी अनसुनी करना।

मटिया (हिं० स्त्री०) १ मट्टी। २ मृतशरीर, लाश। (वि०) ३ मिट्टीका-सा, मटमैला। (पु०) ४ एक प्रकारका लटोरा पक्षी। इसका दूसरा नाम कजला भी है।

मटियामसान (हिं० वि०) नष्टप्राय, गया बीता।

मटियामेट (हिं० वि०) मलियामेट देखो।

मटियार (हिं० पु०) वह क्षेत्र जिसमें चिकनी मट्टी अधिक हो।

मटियाला (हिं० वि०) मटमैला देखो।

मटीला (हिं० वि०) मटमैला देखो।

मटुका (हिं० पु०) मटका देखो।

मटुकिया (हिं० स्त्री०) मटकी देखो।

मट्ट (सं० क्लो०) मठति वसत्यत्रेति मठ-अप्, पृषोदरादित्वात्‌टागमें साधुः। गृहका शिरोभाग, छत।

मट्टक (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

मट्टी (हिं० स्त्री०) मिट्टी देखो।

मट्ठा (हिं० पु०) तक्र, छाछ।

मठ (सं० पु०) मठन्ति वसन्ति छात्रादयोऽत्र मठ-अल्। १ छात्रादि निलय, वह स्थान जहां विद्या पढ़नेके लिये छात्र आदि रहते हों। २ वह मकान जिसमें एक महन्तको अधीनतामें बहुतसे साधु आदि रहते हों। ३ देवगृह, मन्दिर। जो मठकी प्रतिष्ठा करते हैं, अन्तकालमें उन्हें स्वर्गको प्राप्ति होती है। मठप्रतिष्ठा शुभ दिनमें करनी चाहिये, अकाल वा निन्दित दिनमें नहीं। जिस दिन मठकी प्रतिष्ठा करनी होगी, उस दिन पहले वृद्धिश्राद्ध करके पीछे प्रतिष्ठाकार्य करना होगा। प्रतिष्ठाकार्यका संकल्प इस प्रकार है :—

"ओं अद्यामुके मासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा एतत्तृणकाष्ठादिमयवेश्मपरमाणुसमसंख्यवर्षसहस्रावच्छिन्नस्वर्गलोकमहितत्वकामः श्रीविष्णुप्रीतिकामः विष्णुलोक प्राप्तिकामो वा मठप्रतिष्ठामहं करिष्ये।"

इस प्रकार संकल्प करके प्रतिष्ठाके नियमानुसार प्रतिष्ठा करे। इस प्रतिष्ठाका विस्तृत विवरण अष्टाविंशतितत्त्व स्मृतिके मतप्रतिष्ठातत्त्वमें लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल उद्धृत नहीं किया गया।

मठ—धर्माचारी संसारत्यागो, संन्यासियोंका आवास-स्थान। संसारलिप्सासे विच्छिन्न हो कर मनुष्य जिस स्थान पर आ ब्रह्मचर्यावलम्बन करते हुए शास्त्राध्ययन करते हैं उसे मठ (Monastery) और मठावासको ब्रह्मचर्य (Monastic life) कहते हैं। बौद्धसम्प्रदायका मठ विहार वा सङ्घाराम कहलाता है। साधारणतः मठमें छात्र वा ब्रह्मचारो संन्यासियोंके रहने योग्य कितने घर, तद्धर्मावलम्बियोंके इष्टदेवमन्दिर, तन्मत-प्रवर्त्तककी समाधि वा तन्मावलम्बी किसो आचार्यकी गद्दी तथा धर्मशाला और अभ्यागत पथिक वा संन्यासियोंके रहने योग्य कितने घर रहते हैं। अतिथियोंको मठके खर्चसे भोजन दिया जाता है। प्रत्येक मठके खर्चा वर्चाके लिये कुछ निष्कर जमीन दी हुई रहती है। अलावा इसके भक्तमण्डलीसे प्रतिदिन जो जो उपहार दिया जाता है, उसीसे मठ-वासियोंका खर्चा पुसा जाता है। मठके अध्यक्षको महन्त कहते हैं।

हिन्दुओंके वैष्णव, शाक्त, शैव आदि विभिन्न सम्प्रदायके विभिन्न मठ हैं। श्रीक्षेत्रमें ऐसे आठ विभिन्न मठ स्थापित हैं। भारतका ज्योषी मठ और ब्रह्मराज्यका क्यौङ्गमठ प्राचीन वैष्णव और बौद्धमठका निदर्शन स्वरूप है।

पहले इजिप्तवासी ईसाइयोंके मध्य मठावास कल्पित हुआ था। पीछे महात्मा एन्थनि और पालने लोहित सागरके किनारे मठकी स्थापना की। इसके बाद यूरोपके प्रायः प्रत्येक देशमें ही मठ स्थापित हुआ है। मठवासो ब्रह्मचारी विवाह नहीं कर सकते। किसी किसी सम्प्रदायमें विवाह किया भी जाता है।

२ पक्वखाद्यवस्तुविशेष, एक प्रकारका व्यञ्जन। प्रस्तुत प्रणाली—गेहूंके चूरको अच्छी तरह जलमें पीस कर वटिकाकार प्रस्तुत करे। पीछे उसमें इलायची, लवङ्ग, और कर्पूरादि मिला कर घीमें भन ले और तब ऊपरसे चीनीका रस डाल दे। इस प्रकार जो व्यञ्जन बनता है उसीका नाम मठ है। इसका गुण—वृंहण, वृष्य, वलकर, सुमधुर, गुरु, पित्त और वायुनाशक तथा रुचिकर माना गया है। (भावप्रकाश)

मठग्राम—सह्याद्रिके समीपमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। (सह्याद्रि ३१।२९)

मठधारी (हिं० पु०) वह साधु या महन्त जिसके अधिकारमें कई मठ हों।

मठपति—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलावासी जातिविशेष। ये लोग स्वभावतः अपरिष्कार हैं। अपरिच्छिन्न स्थानमें रहते हुए भी स्वास्थ्यरक्षाकी ओर इनका विशेष ध्यान रहता है। सभी बलिष्ठ और दृढ़गठनके हैं। कृषि-कार्य और गो-महिषादि पालन इनकी प्रधान उपजीविका है। ये लोग लिङ्गायत हैं, कोई भी मद्य मांस नहीं खाता।

वासभवनके चारों ओर कदर्य्य होने पर भी ये लोग अपना अपना अङ्गसौष्ठव करना चाहते हैं। दूसरी निकृष्ट जातिकी तरह ये अपना शरीर और कपड़ा कभी मैला नहीं रखते। स्त्री-पुरुष दोनों ही अलङ्कारप्रिय हैं। ये बलिष्ठ, कर्मपटु, सबल और विनयी होते हैं। लिङ्गायतोंकी परिचर्या इनके जीवनका एक प्रधान कर्म है।

लिङ्गायतोंके विवाहमें ये लोग निमन्त्रितोंका आदर-सत्कार करते हैं। लिङ्गायतकी मृत्यु पर ये शवका समस्त अङ्ग जलसे धो कर मुखमें विभूति लगा देते हैं। पीछे कब्रिस्तान जा कर फिरसे शवका मुख धो डालते और तब दफनाते हैं। वहांका कार्य शेष हो जाने पर ये पुरोहितके पैर धो कर घर लौटते हैं।

बाल्य विवाह, विधवा-विवाह और बहु-विवाह इनमें प्रचलित देखा जाता है। ये लोग सभी हिन्दू-पर्वको मानते हैं। तोतड़स्वामी इनके मन्त्रदाता गुरु हैं।

मठर (सं० पु०) मन्यते मनुतेऽववुध्यते मन (वचिमनिभ्यां चिच्च। उण् ५।३०) इति अरश्चित् ठश्चान्तादेशः। १ मुनिविशेष। २ शौण्ड, वह जो मद्य पी कर मतवाला हुआ हो।

मठरना (हिं० पु०) सोनारों तथा कसगरोंका एक औजार। यह छोटे हथौड़ेकी तरहका होता है। इसका व्यवहार उस समय होता है जिस समय हलकी चोट देनेका काम पड़ता है।

मठरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी मिठाई। इसका दूसरा नाम टिकिया भी है। २ मट्ठी देखो।

मठवार—मध्यभारतके भूपावर एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्त-राज्य। भूपरिमाण १४० वर्गमील है। यह राज्य पर्वत और जङ्गलसे परिपूर्ण है। यहां भीलसा और भील जातिके लोग रहते हैं।

मठाधिपति (सं० पु०) मठस्य अधिपतिः। मठका अध्यक्ष।

मठाधीश (सं० पु०) १ मठका प्रधान कार्यकर्त्ता। २ मठमें रहनेवाला प्रधान साधु या महन्त।

मठान (हिं० पु०) मठरना देखो।

मठापतन (सं० क्ली०) मठ, संघाराम।

मठिया (हिं० स्त्री०) १ छोटा कुटी या मठ। २ फूलधातुकी बनी हुई चूड़ियां। नीच जातिकी स्त्रियां ऐसी चूड़ियोंको पहनती हैं। ये एक एक बांहमें २०-२५ तक होती हैं और कोहनीसे कलाई तक पहनी जाती हैं। कोहनीके पास जो चूड़ी रहती है वह सबसे बड़ी होती है और उसके उपरान्तकी चूड़ियां क्रमशः छोटी होती जाती हैं।

मठी (हिं० स्त्री०) १ छोटा मठ। २ मठका अधिकारी, मठका महन्त।

मठुलिया (हिं० स्त्री०) १ टिकिया या मठरी नामकी मिठाई। २ मट्ठी देखो।

मठोर (हिं० स्त्री०) १ दही मथने या मट्ठा रखनेकी मटकी। यह साधारण मटकियोंसे कुछ बड़ी होती है। २ नील बनानेकी नांद, नीलका माठ।

मठोरना (हिं० स्त्री०) १ किसी लकड़ीको खरादनेके लिये रंदा लगा कर ठीक करना। २ मठरना नामक हथौड़ेसे धीरे धीरे चोट लगा कर गहने आदि ठीक करना।

मठौरा (हिं० पु०) एक प्रकारका रंदा। इससे लकड़ी रंद कर खरादने आदिके योग्य करते हैं।

मड़ई (हिं० वि०) १ छोटा मण्डप। २ पर्णशाला, कुटिया।

मड़क (सं० पु०) मण्डयति भूषयति क्षेत्रमिति मड़ि। (क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि। उण् २।३२) इति क्वुन्, पृषोदरादित्वात् न लोपः। शस्यभेद, मड़ुआ।

मड़कशिरा—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यहां मड़कशिरा तालुककी सदर कचहरी है। प्रवाद है, कि रत्नगिरि सरजिप्प रायप्पराज नामक किसी

सामन्तने १५२० ई०में वनको काट कर यह नगर बसाया। उनका बनवाया हुआ यहां एक आञ्जनेयका मन्दिर है। १७२८ ई०में मरहठोंने इस स्थानको दखल किया तथा मुरारीरावने एक दुर्ग और राजप्रासाद बनवा कर नगरकी शोभा बढ़ाई। १७६२ ई०में मुसलमानोंने इसे आक्रमण कर जीत लिया; किन्तु दो ही वर्षके अन्दर मरहठोंने उन्हें फिरसे मार भगाया। १७७४ ई०से लगा कर १७६६ ई० तक यह स्थान टोपू सुलतानके अधिकारमें रहा। पीछे टोपू सुलतानको पराजयके बाद यह अंगरेजोंके हाथ लगा। यहांके चोलराज-मन्दिरमें ३ शिलालिपि देखी जाती हैं।

मड़मड़ाना (हिं० क्रि०) मरमराना देखो।

मड़राना (हिं० क्रि०) मँडराना देखो।

मड़ला (हिं० पु०) अनाज रखनेकी छोटी कोठरी।

मड़वा (हिं० पु०) मण्डप देखो।

मड़वारविलाकम्—मन्द्राज प्रदेशके श्रीविल्लिपुत्तुर तालुकका एक गण्ड ग्राम। यहांका सुवृहत् और सुप्राचीन शिवमन्दिर बहुत मशहूर है। गोपुरका कारुकार्य मनको मोहता है। मन्दिरगात्रमें बहुत-सी शिलालिपियां नजर आती हैं। स्थलपुराणमें इस देवतीर्थका माहात्म्य गाया गया है।

मड़वारी (हिं० पु०) मारवाड़ी देखो।

मड़हा (हिं० वि०) १ मांड़ खानेवाला। (पु०) २ मट्टी या घास फूस आदिका बना हुआ छोटा घर। ३ भुना हुआ चना।

मड़ाड़ (हिं० पु०) छोटा कच्चा तालाव या गड्ढ़ा।

मड़ियार (हिं० पु०) मारवाड़में रहनेवाली क्षत्रियोंकी एक जाति।

मड़ुआ (हिं० पु०) १ बाजरेकी जातिका एक प्रकारका कदन्न। यह बहु प्राचीनकालसे भारतमें बोया जाता है और अब तक बहुतसे स्थानोंमें जंगली दशामें भी मिलता है। यह वर्षाऋतुमें खाद दी हुई भूमिमें कभी ज्वारके साथ और कभी कभी अकेला बोया जाता है। अधिक वर्षासे इसकी फसलको हानी पहुंचती है। यदि इसकी फसल तैयार होने पर भी खेतोंमें रहने दो जाय तो विशेष हानि नहीं होती। फसल काटनेके बाद इसके दाने बर्षों तक रखे जा सकते हैं और इसी कारण दुर्भिक्ष कालमें गरीबोंके लिये इसका बहुत अधिक उपयोग होता है। इसे पीस कर आटा भी बनाते हैं। चावलों आदिके साथ इसे उबाल कर खाते भी हैं। इससे एक प्रकारको शराब बनती है। यह कसैला, कड़ुआ, हलका, तृप्तिकारक, बलवर्द्धक, त्रिदोषनाशक और रक्तदोषको दूर करनेवाला माना गया है। २ एक प्रकारका पक्षी।

मड़ैया (हिं० स्त्री०) १ छोटा मण्डप। २ पर्णशाला, कुटी। ३ मिट्टीका बनाया हुआ छोटा घर।

मड़ोड़ (हिं० स्त्री०) मरोड़ देखो।

मड़ोड़ी (हिं० स्त्री०) लोहेकी छोटी पेंचदार कंटिया।

मढ़ (हिं० पु०) १ मठ देखो। (वि०) २ जो जल्दी हटानेसे भी न हटे, अड़ कर बैठनेवाला।

मढ़ना (हिं० क्रि०) १ आवेष्टित करना, चारों ओरसे घेर लेना। २ बाजेके मुंह पर बजानेके लिये चमड़ा लगाना। ३ बलपूर्वक किसी पर आरोपित करना, किसीके गले लगाना।

मढ़रोपुत्र शकसेन—दाक्षिणात्यके एक राजा। शक और सातवाहन-राजवंश देखो।

मढ़वाना (हिं० क्रि०) मढ़नेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको मढ़नेमें प्रवृत्त करना।

मढ़ा—युक्तप्रदेशके देहरादून जिलान्तर्गत एक नगर। यह यमुना-तीरवर्त्ती कलसी नगरसे १२॥ कोस दूर पड़ता है। यहांके प्राचीन मन्दिरादि और ध्वंसावशेष समूह प्रत्नतत्त्वविदोंकी विशेष आदरकी सामग्री है। मन्दिरोंमेंसे लक्षा मन्दिर ही सबसे प्राचीन है। आलोचना करनेसे मालूम हुआ है, कि इस मन्दिरके उपकरण किसी सुप्राचीन ध्वंसावशेषसे लिये गये हैं। उसमें जो एक शिलालिपि है उससे जाना जाता है, कि जालन्धर-राज चन्द्रगुप्तकी पत्नी ईश्वरा मन्दिरका निर्माण कर गई हैं। राजकुमारी ईश्वरा सिंहपुरराज भास्करकी कन्या और कपिलवर्द्धन-राजकन्या जयावलोकी गर्भसम्भूता थीं। उस शिलालेखमें सिंहपुर-राजवंशके ग्यारह राजाओंके नाम लिखे हुए हैं। सिंहपुर देखो।

मढ़ा (हिं० पु०) मिट्टीका बना हुआ छोटा घर।

मढ़ी—बम्बईप्रदेशके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यहां हिन्दू मुसलमान-पूजित शाहरमजान, महिसवार वा कानहोवाकी दरगाह प्रतिष्ठित रहनेसे यह एक पवित्र तीर्थरूपमें गिना जाता है। नाना स्थानोंसे हिन्दू और मुसलमान इस तीर्थमें आते हैं।

इस दरगाहके तथा आस पासके कुछ मन्दिरोंको छोड़ कर पर्वतके ऊपर कई हिन्दू-राजाओं और सामन्तोंका वास-भवन देखा जाता है। दरगाहके भीतरकी रमजानकी कब्र एक बड़ी अट्टालिका है। यहांसे कुछ नीचे जाने पर रमजानका साधनगृह पड़ता है। १७३० ई०में पिलाजी गायकवाड़ द्वारा निर्मित वर्त्तमान इनामदार और मुजावरके पूर्वपुरुषका समाधि मन्दिर देखा जाता है। उक्त समाधि-मन्दिरमें पिलाजी गायकवाड़ और महामान्य चिमनाजी सामन्तकी नामयुक्त एक शिलालिपि है। दक्षिण पूर्वमें शिवाजीके पौत्र शाहराज-निर्मित (१७३१ ई०) वारद्वारी है। कहते हैं, कि माता येशुबाईके साथ जब वे मुगलशिविरमें बन्दी हुए, तब उनकी माताने पुत्रके निरापद लौटनेको कामना कर वारद्वारी बनानेकी मनशा की थी। शाहुके प्रासादके समीप और दरगाह-प्रवेशके सामने नगरखाना अवस्थित है। उसकी छत परसे पैठान नगर तक दृष्टिगोचर होता है। बासिमके विख्यात जमींदार कान्हूजी नायकने १७८० ई०में यह नगरखाना बनवाया था। महाराष्ट्र-सरदार मोरे दरगाहके चारों ओर प्राचीर और दो प्रवेशद्वार तथा अहमदनगरके विख्यात खोजा वणिक् ख्वाजा सरीफा एक दूसरा गेट बनवा गये हैं। बीजापुरके राजाने इसके चारों पार्श्वको फर्श पक्केको बनवा दी थी। कोलाबरके भाऊ साहब अंग्रियाने यहां चांदी और पीतलका घोटक प्रदान किया है।

हिन्दुओंके मध्य प्रवाद है, कि रमजानका पूर्व नाम कनहोवा था। वे १३५० ई०में पैठान नगर पधारे। यहां सादत् अली नामक किसी मुसलमानने इन्हें इस्लामधर्ममें दीक्षित किया। दीक्षाके बाद उनका नाम शाह रमजान पड़ा। एक दिन वे 'महिसवार' मत्स्य पर चढ़ कर गोदावरी पार कर गये थे। तभीसे मुसलमान-समाजमें ये पीरशाह रमजान महिसवार नामसे प्रसिद्ध हुए।

प्रति वर्ष फाल्गुनी कृष्णा पञ्चमी तिथिको इनके उद्देशसे एक मेला लगता है। कहते हैं, कि समाधिक्षेत्रके समीप एक निर्दिष्ट स्थान पर चढ़ कर बहुतसे भक्त पर्वत परसे कूद पड़े थे, पर पीरकी कृपासे उन्हें जरा भी चोट न आई। दरगाहके खर्च बर्चके लिये सम्राट् शाह आलम ७५० बीघा निष्कर जमीन और महाराष्ट्रराज शाहु मड़िग्राम दान कर गये थे। किन्तु दुःखका विषय है, कि उक्त ग्रामके चतुर्थांशको छोड़ कर एक कौड़ी भी दरगाहके खर्च बर्चके लिये अभी निर्दिष्ट नहीं है।

मढ़ो (हिं० स्त्री०) १ छोटा मठ। २ छोटा देवालय। ३ पर्णशाला, झोंपड़ी। ४ छोटा घर। ५ छोटा मण्डप।

मढ़ैया (हिं० स्त्री०) १ मढ़ी देखो। (पु०) २ मढ़नेवाला।

मणि (सं० पु० स्त्री०) मण (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) इति इन्। १ अश्मजाति, प्रस्तरभेद। २ बहुमूल्य रत्न, जवाहिर। जैसे,—हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि। यह चक्षुका हितकर, शीतल, लेखन, विषदूषक, पवित्राकारक, पापनाशक और श्रीवर्द्धक माना गया है। मणिके मध्य कौस्तुभ ही श्रेष्ठ है।

भूगर्भनिहित बहुमूल्य प्रस्तर ही मणि कहलाता है। इसकी गिनती रत्नविशेषमें की जाती है। साधारणतः इन सब पत्थरोंमें वज्र वा हीरक, मरकत वा पन्ना, पद्मराग वा चूनी, मौक्तिक वा मुक्ता, इन्द्रनील वा नीलम, वैदुर्य वा लशुनिया, गोमोक, विद्रुम वा प्रवाल और पुष्पराग वा पोखराग नामक नौ रत्न ही प्रधान हैं। एतद्भिन्न अग्निपुराणके २४वें अध्यायमें महानील, गन्धशस्य, चन्द्रकान्त सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक, कर्केतन, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, सौगन्धिक, गञ्ज, शङ्ख, गोमेद, रुधिराख्य, भल्लातक, धूली, तुत्थक, सीस, पीलु, गिरिव्रज, भुजङ्गमणि, वज्रमणि, टिट्टिभ, पिण्ड, भ्रामर, उत्पल, भीष्म आदि अनेक प्रकारके रत्नोंका उल्लेख है। राजाको चाहिये कि वे जयकार्यमें ये सब मणि धारण करें। जाति और गुणकी परीक्षा करके विशुद्ध गुणयुक्त मणि धारण करना अथवा धनागारमें रखना उचित है। विशुद्ध रत्न मानवके शरीरमें अशेष सुख प्रदान करता है।

यहां तक कि कोई कोई रत्न धारण करनेसे रोगनाश और अदृष्ट लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं।

जो मणि कुदिन और कुलग्नमें उत्पन्न होती है वे हो दोषान्वित समझी जाती हैं। वे दोषपूर्ण रत्न धारण करनेसे शरीरमें व्याधिरूप नाना अमङ्गल होता है। इसी कारण रत्न परीक्षक द्वारा पहले रत्नकी आकृति, वर्ण और दोषगुणादिकी परीक्षा करा लेनी चाहिये। अलावा इसके प्रत्येक मणिके ही तारतम्यानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातित्व कल्पित होता है। इन सबकी पुनः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्णवर्ण छाया विभेद से हो परीक्षा होती है।

भारत-भूमि मणिका आकर कह कर चिरप्रसिद्ध है। पृथ्वी पर ऐसा दुर्मूल्य कोई भी रत्न नहीं जो एक न एक दिन भारतमें संगृहीत हुआ हो। भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरियाके मुकुटका प्रसिद्ध 'कोहिनूर' हीरा, पारस्यशाहके छः लाख रुपयेकी तथा मङ्कटके इमामकी ३ लाख रुपये मोलकी मुक्ता और टावर्नियर-वर्णित विजापुरराजका ५० रत्ती परिमिति माणिक सभी भारतीय रत्न हैं। प्राचीन वेदशास्त्र, रामायण और महाभारत तथा नाटकादिमें मणिका उल्लेख मिलता है। स्वयं नारायण कौस्तुभ मणि धारण करते हैं। श्रीकृष्ण कर्तृक जाम्ववान् पराजय और स्यमन्तक अपहरण पुराणमें लिपिवद्ध है। स्यमन्तक-मणिहरणके आन्दोलनमें श्रीकृष्णके प्रति वृथा कलङ्कारोप किया गया था। पीछे श्रीकृष्णने उसका अपनोदन किया। आज भी हम लोगोंके देशमें जो भाद्रमासके नष्ट चन्द्रमाको देखते हैं वे अपनेको वृथा कलङ्कभागी होनेके भयसे स्यमन्तकहरणकी कथाका उल्लेख करते हुए शान्तिजल धारण करते हैं। उसका मन्त्र इस प्रकार है—

"सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्ववता हतः।
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥"

फारसमें बहुकालसे मणिका आदर था। फिनिकीय वणिक्‌गण ग्रीस और मिश्रराज्यमें मणि ले जाया करते थे। इजिप्तके धनी लोग पहले मस्तक पर मणिका मुकुट और हाथमें उसकी अंगूठी पहनते थे। ईसाजन्मके पांच सदी पहले हेलेनिक-मठके प्रतिष्ठाता ओनोमाक्रिटस तथा हेरोदोतस, प्लेटो, अरिष्टटल आदि मरकतादि मणिगुणका उल्लेख कर गये हैं। आलेकसन्दर मणिमय अलङ्कार पहनते थे।

इजिप्त और ग्रीस-राज्य रोम-साम्राज्यभुक्त होनेके बाद लूटके मालसे रोम-राजभण्डार मणिपूर्ण हो गया था सीजर और क्लियोपेट्रा मणि धारण करते थे। ईसाइयोंके वारह धर्ममतके वक्ता (Twelve Apostles) वारह रत्नरूपमें कहे जाते हैं।

१। पिटार—जास्पर।
२। एण्ड्र—सेफायर—नीला।
३। जन—एमारालड—पन्ना।
४। जेमस्—केलसोडोनी—पुलक।
५। फिलिप—सार्डोनिक—वैंगनी स्फटिक।
६। वार्थोलोमियो—कर्णेलियन—रुधिराख्य।
७। मथियस—खृसोलाइट—उज्ज्वल कर्केतन।
८। टामस—वेरिल—कर्कतन।
९। जेम्स दि इयङ्गर—टोपज—पोखराज।
१०। थदेउस्—खृसोफ्रेज—सब्ज स्फटिक।
११। मेथिओ—एमेथिष्ट।
१२। सिमेउन—हायासिन्थ—गोमेद।

६३० ई०में सेभिलके धर्मयाजक सिभोरसने मणिके सम्बन्धमें लिखा है, कि इससे स्वास्थ्य, धन, कान्ति, मान्य, शुभादृष्ट और शक्ति (क्षमता) प्राप्त होती है। वर्षके किस मासमें कौन मणि धारण करनेसे कैसा शुभफल होता है नीचे उसकी एक तालिका दी जाती है।

जनवरी—जासिन्थ वा गार्णेट—गोमेद वा पुलक।
फरवरी—एमेथिष्ट।
मार्च—ब्लड्ष्टोन वा जासपर।
अप्रिल—सेफायर—नीला।
मई—एगेट—अकीक।
जून—एमारेल्ड—पन्ना।
जुलाई—ओनिक्स—लाल दागवाला हेर्काक।
अगस्त—कर्णेलियन—रुधिराख्य।
सितम्बर—खृसोलाइट—कर्कतन मणि।
अक्तूवर—वेरिल वा एकोयामेरिन।

नवम्बर—टोपज—पुष्पराज।
दिसम्बर—रुबि—माणिक।

बहुतेरे मणिका अलौकिक गुण स्मरण करके उसे धारण करना नहीं चाहते। फ्रान्सकी सम्राज्ञी इयुजिन्-ने कभी भी मूल्यवान् पत्थर धारण नहीं किया। पर भारत-सम्राज्ञी विक्टोरिया मणि धारण करना बहुत पसन्द करती थीं। उन्होंने अपनी कन्याओंके विवाहकालमें ओपल और हीरकमण्डित अलङ्कार यौतुकमें दिये थे।

अभी यूरोपके राजन्य और धनवान् व्यक्तियोंमें विवाहके समय अपनी प्रणयिनीको स्वनामाङ्कित मणि-मण्डित अंगूठी देनेकी प्रथा प्रचलित देखी जाती है। अङ्गरेजी वर्णमालाके क्रमानुसार कितने स्वच्छ और अस्वच्छ प्रस्तर मणिके नाम हैं। अंगूठीके ऊपर किसीका भी नाम सन्निवेशित करनेमें मणियोंका आदि-अक्षर ले कर नाम संगठन करना होता है। हम लोगोंके भूतपूर्व भारत सम्राट् एडवर्डका नाम था 'Bertie'। उन्होंने विवाहकालमें अपनी प्रणयिनी राजकुमारी अलेकजन्द्राको Beryl, *E*merald, Ruby, Turquoise, Jacinth और *E*merald एक दूसरेके बाद बैठा कर नामका परिचय दिया था।

जिस प्रकार गज, सर्प, शम्बूक आदि जीवदेहसे मुक्ता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार स्थानविशेषमें शङ्ख, शुक्ति, भेक और सर्पके मस्तकसे भी मणिकी उत्पत्ति कथा सुनी जाती है। अरब देशके जंगली जन्तुविशेष (Cervicebra)की देहमें बेजोअर (Bezoar) नामक पत्थर पाया जाता है। बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंमें तथा टिम्बरलेक, कप्तान सर एडवर्ड, वेलकर आदिके भ्रमण-वृत्तान्तसे इस बातकी सार्थकता मालूम होती है। किन्तु यह कहां तक सत्य है, उसका कोई सिद्धान्त नहीं किया जाता।

पहले ही कहा जा चुका है, कि हीरकादि मणि पृथ्वीसे निकलती है। जिस प्रकार युगान्तर प्रोथित वनराजि किसी अभावनीय कारणसे कोयलेमें रूपान्तरित होती है अथवा मृत्तिका-राशि जलवायुके गुणसे पर्वतमें परिणत होती है उसी प्रकार किसी अनैसर्गिक हेतु वशतः भूगर्भस्थ पदार्थ मणिमें परिणत होते हैं। मिट्टी और वेणु (बांस) नामक उद्भिद् पदार्थमें पत्थर पाया जाता है। इन सब पत्थरोंमें जो उत्कृष्ट है वही रत्न है और अवशिष्ट सामान्य पत्थर मात्र है। स्फटिक (Quartz) और भीष्मरत्नकी (Rock crystals) मणि-में गिनती होने पर भी कम मोल होनेके कारण उपरत्नमें उसकी गणना की गई है। स्फटिकके वर्ण-विभेदानुसार अङ्गरेजोमें विभिन्न नाम हैं।

सिंहल, भारत, ब्रेजिल, अष्ट्रेलिया, कालिफोनिया, साइबिरिया और दक्षिण अफ्रिकाको मणि और मुक्ताका आकर कहनेमें कोई अत्युक्त नहीं। समुद्रगर्भमें मुक्ता और भूगर्भमें मणि पाई जाती है, यही प्रसिद्धि है।

विस्तृत विवरण हीरकादि शब्दमें देखो।

ऊपर जिन सब प्रस्तरादिका उल्लेख किया गया उनकी भाषा और नामसे वर्त्तमान मणिकार (जौहरी) अवगत नहीं हैं। उन्होंने प्रचलित मूल्यवान् प्रस्तरादि-का जो नाम बतलाया है वह इस प्रकार है—

१ हीरा कमान, हीरा ओलन्दाजी, हीरा परब। २ चूनी कड़ा, चूनी नरम, श्यामखेत् (श्यामदेशजात), चूनी माणिक। ३ पन्ना पुरातन और नूतन खान। ४ पोकराज। ५ तुरमुनि। ६ नीला। ७ लेशुनिया। ८ सोनेला। ९ गोमेदक। १० ओपेल। ११ संशेडाण। १२ शंगेशन। १३ हेकिक। १४ नीरेष्टोन। १५ जवरजत्। १६ सुलेमानी १७ गोरी। १८ पीटोनिया। १९ दाने चीनी। २० धनेला। २१ पीरोजा। २२ गोदन्ता। २३ एमनी। २४ करकेतक्। २५ लाजवरत्। २६ मूगा। २७ हस्तल इत्यादि।

३ अजाका कण्ठस्थित स्तन, बकरीके गलेकी थैली। ४ लिङ्गाग्र, पुरुषेन्द्रियका अगला भाग। ५ योनिका अगला भाग। ६ नागविशेष, एक नागका नाम। ७ अलिञ्जर, घड़ा। ८ मणिबन्ध। ९ मुनिभेद।

मणिक (सं० क्ली०) मणिरेवेति मणि (यावादिभ्यः कन्। पा ५।४।२९) इति स्वार्थे कन्। अलिञ्जर, मिट्टीका घड़ा।

मणिकण्ठ (सं० पु०) चासपक्षी।

मणिकण्ठ—एक प्राचीन वैयाकरण। आप कारकखण्डन,

कारकखण्डनमण्डन, कारकविचार और न्यायरत्न नामक ग्रन्थ लिख गये हैं ।

मणिकर्ण (सं० पु०) कामरूपस्थित शिवलिङ्गभेद । भस्मकूटके ईसानकोणमें मणिकूट नामक एक महागिरि है। इस गिरि पर स्वयं महादेव मणिकर्ण नामक लिङ्गरूपमें अवस्थान करते हैं ।

"भस्मकूटस्य चेशान्यां मणिकूटो महागिरिः।
मणिकर्णो नाम हरस्तत्र तिष्ठति लिङ्गकः ॥
स सद्योजातरूपस्तु मणिकर्ण इतीरितः ।
सद्योजातस्य मन्त्रेण पूजितव्यः सदा शिवः ॥"

(कालिकापु० ८१ अ०)

मणिकर्णिका (सं० स्त्री०) कर्णे भवा इति कर्ण (कर्ण ललाटात् कनलङ्कारे। पा ४।३।६५) इति कन्, टाप्। काशीस्थित तीर्थविशेष । इसका उत्पत्ति-विवरण काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

"त्वदीयास्यास्य तपसो महोपचयदर्शनात् ।
यन्मयान्दोलितो मौलिरहि श्रवणभूषणः ॥
तदान्दोलनतः कर्णात् पपात मणिकर्णिका ।
मणिभिः खचिता रम्या ततोऽस्तु मणिकर्णिका ॥"

(काशीखण्ड २६ अ०)

महादेवने विष्णुसे कहा था, "हे विष्णो ! तुम्हारा घोर तपस्या देख कर मैं बहुत घबड़ा गया। इस कारण मैंने अपना सिर डुलाया जिससे मेरे कर्णसे विचित्र मणिसमूहखचित मणिकर्णिका नामक कर्णभूषण यहां पर गिर पड़ा। इसी कारण इसका नाम मणिकर्णिका पड़ा है। हे विष्णो ! तुमने अपने चक्र द्वारा खनन किया है; इसीसे इसका नाम चक्रपुष्करिणी हुआ है। किन्तु आज मेरी मणिकर्णिकाके गिरनेसे यह स्थान आजसे मणिकर्णिका नामसे विख्यात होगा।"

मणिकर्णिकामें स्नान करनेसे अनन्त पुण्यलाभ होता है। समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्यलाभ होता है मणिकर्णिकामें सिर्फ एक बार मज्जन-स्नान करनेसे वही पुण्य प्राप्त होता है। जो व्यक्ति मृत्तिका, गोमय और कुशादि तथा स्वशाखोक्त वारुण-मन्त्र, दूर्वा और अपामार्ग इत्यादि पदार्थ द्वारा श्रद्धापूर्वक इस मणिकर्णिकामें स्नान करते हैं उन्हें सब तीर्थ-स्नान तथा सब प्रकारके दान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। यदि कोई अश्रद्धापूर्वक भी यथाविधान मणिकर्णिकामें स्नान करे, तो भी उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

मणिकर्णिकामें श्रद्धापूर्वक यथोक्तविधानसे स्नान करके तिल, कुश और यव आदि द्वारा देव और पितृ-तर्पण करनेसे सब प्रकारके यज्ञका फललाभ होता है। श्रद्धापूर्वक मणिकर्णिकामें स्नान और तर्पण करके अभीष्ट मन्त्रका जप करनेसे सभी मन्त्रजपका फल प्राप्त होता है। मणिकर्णिकामें स्नान कर विश्वेश्वरके दर्शन करनेसे सभी यज्ञादिका फल होता है। (काशीखं० २६ अ०)

विशेष विवरण काशी शब्दमें देखो।

२ मणिमय कर्णभूषण।

मणिकर्णीश्वर (सं० पु०) मणिकर्ण्या मणिकर्ण्या वा ईश्वरः। काशीस्थित शिवलिङ्गविशेष।

काशीमें लिखा है—काशीयात्रीगण मत्स्योदरीमें स्नानादि करके पहले ओङ्कारेश्वरका दर्शन करे। पीछे त्रिविष्टप, महादेव, कृत्तिवास, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदारेश्वर, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर, विश्वकर्मेश्वर और मणिकर्णीश्वरकी पूजा करना विधेय है। इस प्रकार पर्यायक्रमसे दर्शनादि करना ही उचित है। इच्छानुसार एकके बाद दूसरा नियमभङ्ग करके दर्शनादि करनेसे फलकी हानि होती है।

मणिकर्णेश्वर (सं० पु०) मणिकर्णस्तदाख्य ईश्वरः। कामरूपस्थित शिवलिङ्गविशेष।

'सर्वतीर्थजले स्नात्वा स्पृष्ट्वा चन्द्रं सवासवं।
मणिकर्णेश्वरं दृष्ट्वा मुक्तिर्मस्माचलं गते ॥"

(कालिकापु० ८१ अ०)

मणिकाच (सं० पु०) काचविशेष।

मणिकानन (सं० क्ली०) मणीनां काननमिव बहुमणिधारणादस्य तथात्वं। १ कण्ठ, गला। २ रत्नवन।

मणिकार (सं० पु०) मणि करोतीति कृ-अण्। १ मणिनिर्मित अलङ्कारादि कर्त्ता, जौहरी। पर्याय—वैकटिक। २ न्यायचिन्तामणिकर्त्ता।

मणिकुट्टिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद।

मणिकुण्ड—प्राचीन तीर्थभेद। (नृसिंहपुराण)

मणिकुसुम (सं० पु०) जिनभेद ।

मणिकूट (सं० पु०) मणयः मणिमयानि कूटानि शिखराणि यस्य । कामरूपस्थित एक पर्वत । भस्मकूटके ईशान कोनमें मणिकूट नामक एक महागिरि है। मणिकूट और गन्धमादन पर्वतके मध्य लोहित्य नदी बहती है। इस मणिकूट पर्वत पर स्वयं विष्णु हयग्रीवमूर्त्ति धारण कर अवस्थान करते हैं तथा महादेव भी मणिकर्ण नामसे लिङ्गरूपमें विद्यमान हैं।

"भस्मकूटस्य चैशान्यां मणिकूटो महागिरिः ।
मणिकर्णो नाम हरस्तत्र तिष्ठति लिंगकः ॥"
(कालिकापु० ८१ अ०)

"मणिकूटस्याथ गिरेर्गन्धमादनकस्य च ।
मध्ये स्रवति लोहित्यो ब्रह्मपुत्रः समास्थितः ॥
मणिकूटाचले विष्णुर्हयग्रीव स्वरूपधृक् ।
स च व्याम प्रमाणेन ह्स्तारेखैव संस्थितः ॥"
(कालिकापु० ८० अ०)

मणिकृत (सं० पु०) मणि मणिनिर्मितमलङ्कारं करोतीति कृ क्विप् तुक् च । मणिकार, जौहरी ।

मणिकेतु (सं० पु०) केतुभेद, वृहत्संहिताके अनुसार एक बहुत छोटा पुच्छल तारा । इसकी पूंछ दूध-सी सफेद मानी गई है। यह केतु पश्चिममें उगता है और केवल एक पहर दिखाई देता है।

मणिखनि (सं० पु०) मणीनां खनिः। मणिका आकर, मणिकी खान ।

मणिगुण (सं० पु०) एक वर्णिक वृत्त । इसके प्रत्येक चरणमें चार नगण और एक सगण होता है। इसका दूसरा नाम 'शशिकला' और 'शरभ' भी है।

मणिगुणनिकर (सं० पु०) छन्दोभेद । इस छन्दके प्रति चरणमें १५ अक्षर करके रहते हैं । पहलेसे ले कर चौदह अक्षर गुरु और शेष सभी लघु होते हैं। दो, छः, आठ और सात पर यति है।

मणिग्राम—विन्ध्यागिरिपार्श्ववर्त्ती पर्णाशा नदीके किनारे अवस्थित एक प्राचीन ग्राम ।

मणिग्रीव (सं० पु०) मणयो ग्रीवायां कन्धरायां यस्य । १ कुवेरके एक पुत्रका नाम । (त्रि०) २ रत्नकन्धर ।

मणिचूड़ (सं० पु०) १ एक विद्याधर । २ साकेतनगरीके एक राजा ।

मणिचूड़ावदनमें लिखा है—साकेतराज ब्रह्मदत्तके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस बालकके शिर पर सूर्यके समान ज्योतिः सम्पन्न एक मुकुटको देख कर राजाने पुत्रका नाम मणिचूड़ वा रत्नचूड़ रखा । राजा मणिचूड़ने पितृ-सिंहासन पर बैठ कर अपनी न्यायपरता और प्रजावत्सलताका परिचय दिया था । उस समय हिमालयकी किसी गुहामें एक साधु रहते थे । एक दिन वे विचरणकालमें पद्मदलके ऊपर स्थापित एक असामान्य रूपलावण्यवती कुमारीको देख कर उसे अपने वासगृहमें ले आये। योगिवरने उस कन्याका नाम पद्मावती रखा। वह कन्या मुनिके आश्रममें रह कर दिन-दिन शशिकला की तरह बढ़ने लगी। पीछे मुनिश्रेष्ठने उसे मणिचूड़ राजाके हाथ सौंपा। पद्मावतीके गर्भसे राजाके पद्मोत्तर नामक एक उत्पन्न हुआ।

पुत्रके साथ सुखपूर्वक राज्यशासन करते हुए राजाने एक महायज्ञका अनुष्ठान किया । यज्ञकालमें उन्होंने राजकोष खोल दिया था। राजाकी दानशीलताकी परीक्षा करनेके लिये देवराज इन्द्र राक्षसरूपमें राजाके समीप उपस्थित हुए और नररक्तपानकी इच्छा प्रगट की। प्रार्थीकी आकांक्षा पूर्ण करनेमें पुण्यानुष्ठानके समय नरहत्यारूप पापपङ्कमें निमज्जित होना पड़ेगा, यह सोच कर राजाने अपने गलेको काट राक्षससे कहा, 'मेरे गलेसे निकले हुए रक्तको पी कर अपनी प्यास बुझाओ।' इसके बाद उस राक्षसके पुनः रक्तपानकी इच्छा प्रगट करने पर राजाने अपनी देहको उन्हें समर्पण किया। राजाके ऐसे दान पर प्रसन्न हो कर देवराजने अपनी मूर्त्ति धारण की और राजाको सम्बोधन कर कहा, 'हे राजन्! मैं तुम्हारे आचरणसे चमत्कृत हो गया, तुम दीर्घजीवन लाभ करकेससागरा धरणीश्वर हो जा। अभी तुम और क्या चाहते हो, कहो, तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण करता हूं।' यह सुन कर राजाने बुद्ध होनेके लिये प्रार्थना की, क्योंकि वह मनुष्यका मुक्तिसाधक हो सकता है।' वर पा कर सार्थक जीवन हो महाराज मणिचूड़ने अपना धनरत्नादि ब्राह्मणोंको दान कर दिया। यहां तक कि उन्होंने इस समय अपनी स्त्री और पुत्रका भी त्याग कर दिया था।

राजाके दान पर प्रलुब्ध हो कर दुष्प्रसव नामक एक राजाने उनसे मस्तककी मणि मांगनेके लिये पांच ब्राह्मण को भेजा। राजाने प्रसन्न वदनसे अपने मस्तकसे उस मणिको उखाड़ कर दे दिया। किन्तु दैव-प्रसादसे उसके मस्तकमें फिरसे मणि उत्पन्न हो गई। उक्त ग्रन्थमें लिखा है—बुद्धदेवने कहा है, कि पूर्व जन्ममें वे मणिचूड़ थे। इस मणि प्राप्तिका कारण यों है,—

यह मणिचूड़ राजा अरुणके पुत्र थे। राजा अरुणने शिखबुद्धकी समाधिके ऊपर हीरक-खचित स्तूप बनवा दिया था। उनके पुत्रने उस स्तूपके शिखर पर निज मुकुट और मणि-मण्डित एक स्वर्णच्छत्र प्रदान किया। इसी कार्यके लिये वे दूसरे जन्ममें मणिचूड़ हुए थे।

मणिच्छिद्रा (सं० स्त्री०) मणेरिवच्छिद्रमस्याः। १ मेधानामक औषध। २ ऋषभाख्य औषध। ३ महामेदा।

मणिजला (सं० स्त्री०) मणिप्रचूरं जलमस्याः। नदीभेद।

मणित (सं० क्ली०) मण् भावे क्त। मैथुनकालीन वाक्य, वह वार्त्तालाप जो स्त्री-प्रसंगके समय किया जाय। पर्याय—रतकुजित।

मणितारक (सं० पु०) मणेरिव दीप्तिमती तारका यस्य। सारस पक्षी।

मणित्थ (सं० पु०) एक प्राचीन ज्योतिर्विद्। वराहमिहिर और केशवार्कने इनका नामोल्लेख किया है। ताजकमणित्थ, ताजिकग्रन्थ और सारावली नामक कई ग्रन्थ इनके वनाये हुए मिलते हैं। इनका ग्रीक नाम Manetho है।

मणिदर (सं० पु०) एक यक्षपति।

मणिदर्पण (सं० क्ली०) मणिविमण्डित दर्पण।

(राजत ४।५६४)

मणिदोष (सं० पु०) रत्नादिका दोष। परीक्षकगण रत्न-परीक्षा द्वारा उस दोषका निर्णय करते हैं।

मणिद्वीप (सं० पु०) पुराणानुसार रत्नोंका बना हुआ एक द्वीप। यह क्षीरसागरमें है और त्रिपुरसुन्दरीदेवीका निवासस्थान माना जाता है।

मणिधनु (सं० पु०) १ मणिखचित धनु। २ राजपुत्रभेद।

मणिधनुस् (सं० क्ली०) रामधनु।

मणिधर (सं० पु०) सर्प, सांप।

मणिनन्दपण्डित—व्यवहार-महोदय नामक ज्योतिःशास्त्रके रचयिता।

मणिनाग (सं० पु०) नागभेद।

मणिपद्म (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

मणिपर्वत (सं० पु०) मणीनां पर्वतः। गिरिविशेष।

मणिपालिन् (सं० त्रि०) मणिं पालयति पालि-इनि। मणिपालक।

मणिपुच्छी (सं० स्त्री०) मणि-रिव पुच्छं यस्याः ङीष्। मणितुल्यपुच्छयुता स्त्री।

मणिपुर (सं० क्ली०) तन्त्रके अनुसार छः चक्रोंमेंसे तीसरा चक्र। यह पद्म नाभिदेशमें अवस्थित है। यह तेजोमय, विद्युतके समान आभायुक्त, नीले रङ्गका, दश दलोंवाला और शिवका निवासस्थान माना जाता है। कहते हैं, कि यदि इस पर ध्यान लगाया जा सके, तो सब विषयोंका ज्ञान हो जाता है। यह भी कहते हैं, कि इस पर "ड"से "फ" तक अक्षर लिखे हैं।

इस पद्मके ऊपर सुदुर्लभ महापद्म अवस्थित है।

"एतत् पद्मस्योद्र्ध्वदेशे महापद्मं सुदुर्लभम्।
दश पत्रं नीलवर्णं सजलं घोररूपकम्॥"

(निर्वाणतन्त्र ६ प०)

इस पद्ममें देवतीर्थ और पद्मकुण्ड सरोवर है। मुक्तिकामी व्यक्ति इस तीर्थमें स्नान करते हैं।

"मणिपुरे देवतीर्थं पद्मकुण्डं सरोवरम्।
तत्र श्रीकामनातीर्थे स्नाति यो मुक्तिमिच्छति"।

(रुद्रयामल)

२ स्वनामख्यात पुरभेद।

(भारत १।११८।२३) कलिङ्ग देखो।

मणिपुर—उत्तर-पूर्व भारतसीमा पर अवस्थित एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २३° ५०´ से २५° ४१´ उ० तथा देशा० ९३° २´ से ९४° ४७´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ८४५६ वर्गमील है।

इसके उत्तरमें नागापहाड़ और नागजातिका निवास पार्वत्य वनविभाग; पश्चिममें कछाड़ जिला; पूर्व-उत्तरमें

ब्रह्म और दक्षिणमें लुसाई, कुकी और सूती नामक वन्य जातिकी निवास-भूमि है।

जो दुर्गम पार्वत्यप्रदेश आसाम, कछाड़, ब्रह्म और चट्टग्राम तक विस्तृत है, उसी पार्वत्य भूभागकी उपत्यका-के ऊपर मणिपुर राज्य बसा हुआ है।

मणिपुरमें गिरिमाला उत्तर और दक्षिणकी ओर फैली हुई है। उत्तरांशकी ऊँचाई अधिक है। यहां तक कि मणिपुरकी उपत्यकासे चार दिनका रास्ता तै करने पर समुद्रपृष्ठसे प्रायः ८००० फुट ऊँची गिरिमाला देखी जाती है। गिरिमाला प्रायः सर्वत्र असमतल और कोणाकार शृङ्गयुक्त होने पर भी उपत्यकाके समीप बहुत कुछ समतल और चौरस देखी जाती है।

उपत्यकाके ऊपर लोगताक् ह्रद सम्मुख और दक्षिण-भागमें फैला हुआ है। इस ह्रदके दक्षिण पहाड़के किनारे तक सभी भूभाग अकर्षित और तृणजङ्गलसे परि-पूर्ण है। उत्तर और पूर्वांशमें कुछ ग्राम देखे जाते हैं। उससे भी उत्तर मणिपुर-राजधानी अवस्थित है। उत्तर और पश्चिमसे अनेक नदियाँ आ कर लोगताक्-ह्रदमें गिरी हैं। इनमेंसे एक नदी मणिपुरकी राजधानीके भीतर हो कर बह गई है।

मणिपुरकी ओर जो पत्थर पाया जाता है वह बालू पत्थर और स्लेटका ही एक भेद है। कूबो उपत्यका-की ओर हरणब्लेण्ड और लौहप्रस्तर यथेष्ट पाया जाता है। मणिपुरके उत्तरांशमें जो पत्थर मिलता है, वह खूब कठिन और ठोस है। इसमें दानेदार (Granite) पत्थर भी देखा जाता है। मणिपुरके उत्तर-पूर्व कोयले पाये जाते हैं, पर वे उतने अच्छे नहीं होते। राज-धानीसे प्रायः ७ कोस उत्तर-पूर्व उपत्यकाके ऊपर लवणकूप है। उस लवणसे ही मणिपुर-वासियोंका अभाव दूर होता है।

मणिपुरराज्यमें लोगताक ह्रद ही प्रधान जलाशय है। इसका आकार बहुत बड़ा होने पर भी प्रति वर्ष इसका आयतन घटता जाता है। भूतत्त्वविदोंका विश्वास है, कि पूर्वकालमें मणिपुर एक वृहत् ह्रदाकारमें परिणत था। धीरे धीरे वह जलराशि घटती घटती वर्त्तमान लोगताक-ह्रदमें परिणत हो गई है। जलराशिका दूसरा अंश उपत्यकाके नाना स्थानोंमें आज भी विकीर्ण है।

यहांकी उपत्यका पर उतनी नदियां नहीं हैं। मणि-पुर और कछाड़के पहाड़के मध्य जो सब नदियां बहती है उनमें जीरो, मुकरू, बराक, परूङ्ग, लेङ्गरा और लेइमिताक प्रधान हैं। जोरो नदी ही अंगरेजी राज्य-सीमासे मणि-पुरको पृथक् करती है। इसका जल बहुत स्वच्छ है। बराक नदी ही सबसे बड़ी है। इसमें मुकरू, परूङ्ग और तिपाई नदी आ कर मिलती है। ग्रीष्मकालमें सभी नदीयोंका जल सूख जाता है।

मणिपुर पहाड़ पर नागेश्वर, जारूल, तुन, देवदारु और सुन्दरीवृक्ष पाया जाता है। इन वृक्षोंकी लकड़ी बहुतसे कामोंमें आती है। उत्तरांशमें यथेष्ट बांस देखा जाता है।

यहांकी अधित्यकामें तरह-तरहके अनाज और तर-कारी पाई जाती है। धान ही यहांका प्रधान अनाज है और मणिपुर-वासियोंका प्रधान खाद्य है।

उपत्यका पर जंगलोपशु उतने नहीं देखे जाते, किन्तु पहाड़के अञ्चलमें बहुसंख्यक दलबद्ध हाथी, बाघ, चीता, वनबिलाव और भालू देखे जाते हैं। यहां नाना जातिके हरिण मिलते हैं जिनमेंसे शाम्भर हरिण विशेष प्रसिद्ध है। दक्षिण और पूर्वांशमें पहाड़ पर ही केवल गैंड़े, जंगली भैंस और जंगली गाय देखी जाती है। जंगली सूअर, खरगोस, उल्लू और लांगूर नामक एक श्रेणीका बन्दर नाना स्थानोंमें विचरण करता है। साधारण पक्षीयोंका अभाव नहीं है। पर्वतके उच्च शृङ्ग पर एक प्रकारका बड़ा काला बाज पक्षी देखा जाता है।

मणिपुरमें वैसा विषधर सर्प नहीं है, पर दक्षिणाञ्चल जंगलमें वृहदाकार पहाड़ी बोड़ा देखा जाता है। अन्यान्य स्थानोंमें भी नाना जातिके छोटे बड़े सर्प हैं, किन्तु वे विशेष अनिष्टकर नहीं हैं। परन्तु तङ्गलेई नामक सर्पसे मणिपुरवासी बहुत डरते हैं।

इतिहास।—किसी किसीका विश्वास है, कि महा-भारतमें जिस मणिपुरका उल्लेख है, जहां अर्जुनके साथ उनके पुत्र बभ्रुवाहनने युद्ध किया था, यह वही मणिपुर है। किन्तु इस भ्रान्तविश्वासके मूलमें जरा भी सत्यता

नहीं है। वास्तविक महाभारतीय मणिपुरका वर्त्तमान अवस्थान निर्णय करनेमें बहुतेरे भूलमें पड़ गये हैं। प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहम साहबने मध्यप्रदेशके अन्तर्गत रतनपुरके उत्तर अवस्थित मणिपुरको ही चेदि-राज्यकी प्राचीन राजधानी और महाभारतीय मणिपुर बतलाया है। फिर कोई कोई मन्द्राजके निकटवर्त्ती माहलापुरको प्राचीन मणिपुर कहते हैं। डाकृर अपार्ट-ने दाक्षिणात्यके मदुरासे ७॥ मील पूर्वमें अवस्थित वर्त्तमान मणलूर ग्रामको महाभारतीय मणिपुर स्थिर किया है। फिर अयोध्या प्रदेशके सीतापुर जिलेमें प्रवाद है, कि सीतापुरसे १३ कोस दक्षिण मनुआ नामक एक बड़ा ग्राम है। यही ग्राम प्राचीन मणिपुर है। यहां अर्जुन-के साथ बभ्रुवाहनका युद्ध हुआ था।

उपरोक्त कोई भी मणिपुर महाभारतके समय नहीं था। आधुनिक अलीक प्रवादसे नाना मतकी सृष्टि हुई है।

महाभारतसे जाना जाता है, कि मणिपुरमें कलिङ्गा-धिप चित्राङ्गदाके पिताकी राजधानी थी और वह समुद्र-के किनारे अवस्थित था। (भारत १।२१६ अ०)

किन्तु ऊपर जिन सब मणिपुरका उल्लेख किया गया है उनमें कोई भी कभी कलिङ्गराज्यके अन्तर्गत नहीं था। हमने कलिङ्ग शब्दमें यह दिखलाया है, कि वर्त्तमान गञ्जाम् जिलेके चिकाकोलके निकट जो मनकुर बन्दर है वही कलिङ्गराजधानी महाभारतीय मणिपुर है। कलिङ्ग देखो।

वर्त्तमान मणिपुर राज्य कुछ दिन पहले मणिपुर नाम-से प्रसिद्ध नहीं था। ब्रह्मोंके इतिहाससे जाना जाता है, कि यह स्थान पहले काशी वा काठि नामसे बजता था। आज भी ब्रह्मवासिगण कसेस वा कठे नामसे ही इस स्थानका उल्लेख करते हैं। पामहेबा नामक एक नागराज १७१४ ई०में यहांके राजा हुए और हिन्दूधर्म ग्रहण करके उन्होंने अपनी राजधानीका नाम मणिपुर रखा।

वास्तविक मणिपुर और मणिपुरियोंका प्राचीन इति-हास नितान्त अस्पष्ट है। मणिपुरियोंका चेहरा देखने-से ही वे मोङ्गलीयसे मालूम होते हैं, उसके साथ साथ जो आर्यरक्त मिश्रित हुआ है, उसमें भी सन्देह नहीं। पोङ्गके सानराजके सामन्तरूपमें पहले इसी राज्यका उल्लेख मिलता है। पोंगाधिप कोम्बाने यहांके मणि-पुरी सरदारको अपने प्रिय सामन्तरूपमें प्रथम राजटीका प्रदान की थी। इसके बाद इतिहासमें इस भूभागका कोई उल्लेख नहीं है। १७१४ ई०में नागा सरदार पाम-हेबा यहांके राजा हुए। उनके हिन्दू-धर्म ग्रहण करनेके साथ उनका नाम हुआ गरीब नवाज। उनकी प्रजाने भी हिन्दूधर्म ग्रहण किया था।

गरीब नवाजने कई बार ब्रह्मराज्य पर आक्रमण किया था। उनकी मृत्युके बाद ब्रह्मसेना मणिपुर पर चढ़ आई। मणिपुरपति जयसिंहने वृटिश गवर्मेण्टको सहा-यता पहुंचाई थी। इस उपलक्षमें १७६२ ई०को मणि-पुर-पतिके साथ अंगरेज-राजकी एक सन्धि स्थापित हुई। मणिपुरकी सहायताके लिये सेना भेजी गई थी सही, पर वे पीछे लौटा ली गई। १८२४ ई०में अंगरेजों-के साथ जब ब्रह्मराजका युद्ध छिड़ा तब ब्रह्मसेनाने कछाड़, आसाम और मणिपुर पर चढ़ाई कर दी। उस समय मणिपुरपति गम्भीरसिंहने वृटिश गवर्मेण्टसे सहा-यता मांगी। इस बार वृटिश गवर्मेण्टने मणिपुरपतिकी सहायतार्थ एक दल सिपाही और कुछ गोलन्दाज सेना कछाड़में भेजी तथा अंगरेज-सेनानायकके अधीन शिक्षित मणिपुरी सेनादल संगठित हुआ। ब्रह्मसेना मणिपुरसे निकाली गई और उसके साथ साथ कुबो उपत्यकासे ले कर निंथि नदी तीर तक मणिपुर राज्यकी पूर्वी सीमामें मिला लिया गया। यहां सान जाति आ कर बस गई। १८२६ ई०में ब्रह्मराजके साथ अंग रेज गवर्मेण्टको सन्धि स्थापित हुई। इस समय मणि-पुर स्वाधीन राज्य समझा जाने लगा। १८३४ ई०में गम्भीरसिंहकी मृत्यु हुई। उनके मृत्युकाल तक मणि-पुर शान्तिमय और समृद्धिशाली था।

गम्भीरसिंहके मृत्युकालमें उनके पुत्र चन्द्रकीर्त्तिकी अवस्था सिर्फ एक वर्षकी थी। उनके चचा (गरीब नवाजके प्रपौत्र) नरसिंह राज्यके अभिभावक नियुक्त हुए। १८३४ ई०में बृटिश गवर्मेण्टने ब्रह्मराजको कुबो उपत्यका छोड़ दी। इसके बदलेमें मणिपुरराज वार्षिक

६३७०) रु० देनेका सहमत हुए। इस समय मणिपुरराज्यकी नूतन सीमा कायम की गई। १८३५ ई०में मणिपुरराज्य-का परस्पर संस्रव जाननेके लिये एक पालिटिकल एजेण्ट नियुक्त हुए। १८४४ ई०में नरसिंहके प्राणसंहारका षड़-यन्त्र प्रगट हो गया। राजमाता उस षड्यन्त्रमें शामिल थीं, इस कारण वह पुत्रको ले कर कछाड़ भाग आई। अभी नरसिंह ही प्रकृत राजा हुए। १८५० ई० (अपने मृत्युकाल) तक वे राजा रहे।

नरसिंहकी मृत्युके बाद उनके भाई देवेन्द्रसिंह वृटिश गवर्मेण्टसे मणिपुरके अधिपति बनाये गये। किन्तु तीन मास गुजरते न गुजरते प्रकृत उत्तराधिकारी चन्द्र-कीर्त्ति दलबलके साथ मणिपुर आ धमके। देवेन्द्रसिंह कछाड़ भाग गये। अब चन्द्रकीर्त्ति ही राजा हुए। १८५१ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने उन्हें भी मणिपुरका राजा स्वीकार किया।

चन्द्रकीर्त्ति निश्चिन्त हो कर राज्यभोग नहीं कर सके, वैमात्रोंके साथ गृहविवादमें वे हमेशा उलझे रहते थे। किन्तु बहु षड़यन्त्र और नाना कौशलका अव-लम्बन करने पर भी कोई भी चन्द्रकीर्त्तिको सिंहासन-च्युत न कर सके। १८७९ ई०में नागा-युद्धकालमें चंद्र-कीर्त्तिने अंगरेजोंकी यथेष्ट सहायता की थी। नागोंने जब अंगरेजोंके कोहिमादुर्ग पर आक्रमण किया उस समय चन्द्रकीर्त्तिने सेना भेज कर अंगरेजोंका बड़ा उपकार किया था। इसी कारण वृटिश गवर्मेण्टने उन्हें के. सी. एस. आई, की उपाधिसे भूषित किया।

१८८६ ई०में चन्द्रकीर्त्तिकी मृत्यु हुई। उनके दो स्त्री थीं जिनके गर्भसे ९ पुत्र उत्पन्न हुए, एक पक्षमें शूरचन्द्र आदि पांच और दूसरेमें कुलचन्द्र, टीकेन्द्रजित् आदि चार। शूरचन्द्र ही पहले पैतृक सिंहासन पर बैठे थे, किन्तु १८९० ई०में वैमात्रोंके डरसे वे राज्य छोड़ कर अङ्गरेजोंके आश्रयमें कलकत्ता आये। उधर कुलचन्द्र नाममात्रको राजा और टीकेन्द्रजित सेनापति हुए, किन्तु यथार्थमें टीकेंद्रजित् राज्यके सर्वमयकर्त्ता थे। कुलचंद्रको भी वृटिश गवर्मेण्टने राजा स्वीकार किया।

इधर शूरचंद्रने कलकत्तेमें बड़े लाटके निकट पुनः राज्य पानेकी आशासे दरखास्त पेश की। बड़े लाटने उन्हें कोई आशा दी या नहीं, कह नहीं सकते। किंतु आसामके चीफ कमिश्नर क्विन्टन साहब बड़े लाटके साथ परामर्श करनेके लिये कलकत्ते आये थे। उन्होंने कलकत्तेसे लौट कर एक दल गुरखा-सेनादलके साथ मणिपुरकी यात्रा कर दी।

क्विन्टनने पालिटिकल एजेण्टके प्रासादमें एक दरबार बैठाया। बड़े लाटने सेनापति टीकेंद्रजित्को बंदी करनेका हुकम दिया है, यह बात मणिपुरमें तमाम फैल गई। पीछे वे भी बन्दी न हो जांय इस भयसे कुलचंद्र दरबारमें उपस्थित नहीं हुए। क्विन्टनने टीकेंद्रजित्को बन्दी कर भेज देनेके लिये कुलचंद्रको कहला भेजा। इस समय टीकेंद्रजित्का यथेष्ट प्रभाव था, उनसे कुलचंद्र डरा करते थे। अतः वे चीफ कमिश्नरका आदेश पालन न कर सके।

क्विन्टनके आदेशसे कर्नल स्कीन्ने गुरखा सेना ले कर राजभवन पर चढ़ाई कर दी। मणिपुरी सेना पहलेसे ही तयार थी। बहु संख्यक मणिपुरीके निकट अल्प संख्यक अङ्गरेजी सेना सहजमें परास्त हुई। पालि-टिकल एजेण्टका भी प्रासाद लूटा गया और अङ्गरेज-राजपुरुषगण बन्दी हुए।

यह संवाद शीघ्र ही कलकत्ता पहुंचा; तीन ओरसे वृटिशसेनाने प्रबल वेगसे मणिपुरको जा घेरा। वह भीमवेग मणिपुरी न सह सके। कुलचन्द्र और टीकेंद्रजित् बन्दी हुए। अंगरेजराजने मणिपुर राजवंशीय एक बालकको सिंहासन पर बिठाया। वे अभी नाममात्रको राजा हैं और भूतपूर्व राजमहिलागण पथकी भिखा-रिणी।

पथघाट।—कछाड़से मणिपुर पर्यंत एक प्रशस्त पथ है। १८४२ ई०में ब्रह्म-समर शेष होनेके बाद अंगरेज गवर्मेण्टने भविष्यत् सेनाचालना और यातायातकी सुविधाके लिये इस पथको बनवाया था। १८६५ ई० तक वह पथ अंगरेजोंकी देखरेखमें रहा, पीछे मणिपुर-राजके हाथ दे दिया गया।

व्यवसाय वाणिज्य।—मणिपुरका बहिर्वाणिज्य अधिक नहीं है। जलपथ नहीं रहनेके कारण वाणिज्यद्रव्यकी

विदेशमें रफ्तनी नहीं होती। वहिर्वाणिज्य सुचारुरूपसे चल सके ऐसा स्थलपथ भी नहीं है। अन्तर्वाणिज्य जितना चलना चाहिये था, उतना नहीं है। यहांसे टट्टूघोड़ा, कपड़ा, रेशम, बेंत, मोम, चायका बीज, हाथीका दांत और रबर दूर दूर देशोंमें भेजा जाता है।

जाति और धर्म।—मणिपुर अभी हिन्दूका राज्य है। हिन्दूके मध्य जातिभेद है। सुनते हैं, कि मणिपुरी हिंदू ८ जातिमें विभक्त हैं, किंतु क्षत्रियोंकी ही संख्या और सम्मान अधिक है। यहांके नागा आदि पहाड़ी लोगोंका पहाड़ी धर्म है, किन्तु वे भी अनेकांशमें हिन्दू हैं, सभी देवदेवीकी पूजा करते हैं।

आचार-व्यवहार।—सम्भ्रान्त हिन्दू सम्प्रदायका आचार-व्यवहार हिन्दूके जैसा विशुद्ध है। मणिपुरमें स्त्री-स्वाधीनता है। किन्तु यह स्वाधीनता अपेक्षाकृत नीच सम्प्रदायमें ही अधिक देखी जाती है।

राजस्व।—मणिपुरराज्यका राजस्व ज्यादा नहीं है। भारत और ब्रह्मकी रौप्यमुद्रा भी मणिपुरमें चलती है। धान चावलमें ही बहुतेरे राजस्व चुकाते हैं, किन्तु आजकल मुद्राका भी प्रचार हो गया है।

अदालत।—मणिपुरमें दो बड़ी अदालत हैं, एक साधारण, दूसरी सामरिक। साधारण विचारालयमें साधारण प्रजाका मामला मुकदमा होता है। इसका नाम चिरप है। चिरप वा साधारण विचारालयमें १३ प्रवीण विचारपति रहते हैं, सभी राजाके नियोजित हैं।

सामरिक विचारालयमें ८ प्रवीण विचारपति बैठते हैं, सभी उच्चपदस्थ सेनापति हैं। इस अदालतमें शुद्ध सैनिकोंका ही विचार होता है।

सैन्य-सामन्त।—मणिपुर छोटा राज्य है। निज मणिपुर उपत्यकामें १ लाख ३९ हजारसे अधिक लोगोंका वास नहीं है। पहाड़ी जंगली आदि मिला कर ढाई लाखके करीब होगा। मणिपुर चारों ओर पर्वत प्राचीरसे घिरा है; पथघाट अधिक नहीं है। यहां कुल मिला कर ५।६ हजार पदाति सेना, ५०० गोलन्दाज वा कमानीसेना और ५०० करीब सौआर सेना है। अलावा इसके ७००के करीब कुकिपलटन भी है।

मणिपुष्पक (सं० पु०) सहदेवके शंखका नाम।

मणिप्रदीप (सं० पु०) मणिमयः प्रदीपः। मणिमय-प्रदीप। (भागवत ४।९।६२)

मणिप्रभा (सं० स्त्री०) छन्दोभेद।

मणिबन्ध (सं० पु०) मणिर्बध्यते यत्र, अधिकरणे घञ्। १ प्रकोष्ठ और पाणिका सन्धिस्थान, कलाई। पर्याय—मणि, करग्रन्थि, करग्रन्थिक। २ सैन्धव लवणाकार पर्वतभेद। ३ एक नवाक्षरीवृत्त। इसके प्रति चरणमें भगण, मगण और सगण होते हैं।

मणिबन्धन (सं० क्ली०) करग्रन्थि, कलाई।

मणिबीज (सं० पु०) मणिरिव दर्शनीयं बीजं यस्य। दाड़िम्ववृक्ष, अनार।

मणिबेगम—बङ्गालके नवाब मीरजाफरकी प्रधाना महिषी। सिराज-उद्दौलाके विवाहके समय बड़ा धूमधाम हुआ था, उसी समय बहुत-सी नर्त्तकी पश्चिमसे मुर्शिदाबाद आई थीं जिनमेंसे मणिबेगम और बब्बुबेगम यही दो रूप और गुणमें श्रेष्ठ थीं। मीरजाफरने इन दोनोंको अपने अन्तःपुरमें रखा था। मणिबेगमके रूप-सौन्दर्य और बुद्धिमत्ता पर मीरजाफर आसक्त हो गये। उनके बङ्गालके नवाब होने पर यही मणिबेगम उनकी प्रधाना बेगम हुई।

इस मणिबेगमके गर्भसे मीरजाफरके कई एक पुत्र थे। उनमेंसे नजम-उद्दौला और सहफ-उद्दौला कुछ दिनके लिये नवाब हुए थे।

नजम-उद्दौलाकी मृत्यु होनेके बाद उनका सोलह वर्षका भाई तख्त पर बैठा और उनकी माता मणिबेगमके हाथ ही राज्यका कुल भार रहा। नवाब मीरजाफरका गुप्त धन उनके हाथ लगा इसलिये उनका प्रताप भी बढ़ गया। १७७० ई०में चेचकसे सहफ-उद्दौलाकी मृत्यु होने पर बब्बुबेगमका गर्भजात (मीरजाफरका चतुर्थ पुत्र) मुबारक-उद्दौला बारह वर्षकी उम्रमें नवाब हुआ। उसकी विमाता मणिबेगम ही एकमात्र उसकी अभिभाविका हुई। इसी समय नन्दकुमारके पुत्र गुरुदास 'राजा गौड़पत'की उपाधि धारण कर नवाबके दीवान हुए। बाद उसके नन्दकुमारकी फांसी एवं मणिबेगम और राजागुरुदास अपने अपने पदसे च्युत हुए। एक एक कर

अङ्गरेज-कम्पनीने नवावोंका सब अधिकार हड़प किया। मणिवेगमने भी अङ्गरेज-कम्पनीसे वार वार लाञ्छित हो कर अन्तमें सुरधामको सिधारी।

मणिभद्र (सं० पु०) मणिषु भद्रः, यद्वा मणिभिर्भद्रमस्य, मणिमुक्तादि धनाधिक्यादस्य तथात्वं। १ जिनोंके मध्य पूर्व यक्षविशेष। पर्याय—जम्भल, पूर्वयक्ष, जलेन्द्र। २ शिवजीके एक प्रधान गणका नाम। ३ एक प्राचीन कवि। शुभाषितावली ग्रन्थमें इनको कविता उद्धृत हुई है।

मणिभद्रक (सं० पु०) १ जातिविशेष। २ नागभेद।

मणिभव (सं० पु०) ध्यानी बुद्धभेद।

मणिभावर (सं० पु०) सारस पक्षी।

मणिभित्ति (सं० स्त्री०) १ रत्नादिके ऊपर निर्मित भित्ति। २ अनन्त नागका घर।

मणिभू (सं० स्त्री०) मणीनां भूः, भूमिः आकरः। मणिभूमि, वह खान जिसमेंसे रत्न आदि निकलते हों।

मणिभूमि (सं० स्त्री०) मणीनां भूमिः आकरः मणिमयी भूमिरिति वा। १ रत्नको खान। २ पुराणानुसार हिमालयके एक तोर्थका नाम। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें इसका माहात्म्य वर्णित है। (हिमवत् ८।१०१)

मणिभूमिका (सं० स्त्री०) कृत्रिम पुत्तिका, बनावटो कन्या।

मणिमङ्गल—मन्द्राजप्रदेशके चेङ्गलपट जिलान्तर्गत एक अति प्राचोन ग्राम और प्रत्नतत्त्वानुसन्धायीका द्रष्टव्य स्थान। यहां गोपुरयुक्त एक सुन्दर और प्राचीन मन्दिर है। उसको आकृति बहुत कुछ महावलिपुरके सहदेवरथसे मिलती जुलती है। इसी ढंग पर बौद्ध-चैत्यगुहा बनाई गई है।

मणिमञ्जरी (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें १९ अक्षर करके रहते हैं।

मणिमण्डन—दाक्षिणात्यके एक राजा, गोपतिके पुत्र।

मणिमण्डप (सं० पु०) मणिमयः मण्डपः। रत्नमय गृह।

मणिमत् (सं० त्रि०) मणिरस्तीति मतुप्। मणिविशिष्ट, रत्नभूषित। (पु०) २ नागविशेष। ३ राक्षसविशेष, कुबेरका सखा। ४ पश्चिमस्थित देशभेद। स्त्रियां ङोष्। ५ पुरभेद। (भारत ३।९९।४)

मणिमध्य (सं० क्लो०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें ६ अक्षर करके रहते हैं।

मणिमन्थ (सं० क्लो०) मणिरिव मथ्यते इति मणिमन्थ-कर्मणि, घञ्। १ सैन्धव लवण। २ पर्वतविशेष।

मणिमय (सं० त्रि०) मणि स्वरूपे मयट्। मणि स्वरूप।

मणिमहेश (सं० पु०) तीर्थक्षेत्रभेद।

मणिमाजरा—पञ्जावप्रदेशके अम्बाला जिलेका एक नगर। यह अम्बाला शहरसे २३ मील उत्तर पर्वतके पाददेशके निकट अवस्थित है।

सिख अभ्युदयके पहलेका इस नगरका कोई उल्लेख नहीं मिलता। मुगल-साम्राज्यके अधःपतनके समय १७६२ ई०में गरीवदास नामक एक सिख-सरदारने ८४ ग्राम दखल कर मणिमाजरामें प्रधान अड्डा किया। उनके पिता मुसलमानोंके अधीन उक्त ८४ ग्रामोंके तहसोलदार थे। गरोवदासने पोछे पिञ्जौर दुर्ग जीत कर अपना अधिकार बढ़ाया। पतियालाके राजाने थोड़े दिनोंके अन्दर उक्त दुर्ग उनसे छोन लिया। गरीवके बड़े लड़के गोपालसिंहने १८०९ और पोछे १८१४ ई०में गुर्खा-युद्धके समय वृटिश गवर्मेण्टको खासी मदद पहुंचाई थी। इस प्रत्युपकारमें उन्हें राजाकी उपाधि मिली थी। १८१६ ई०में उनकी मृत्यु हुई। इस वंशके शेष राजा भगवान्दास वार्षिक प्रायः तीस हजार रुपये जागीरका भोग किया करते थे। उनकी मृत्युके बाद सारी सम्पत्ति वृटिश सरकारने जप्त कर ली।

मणिमाजराके समीप मनसादेवीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। देवीके सामने प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला लगता है जिससे यहांके राजाको यथेष्ट आय होती है।

मणिमाला (सं० स्त्री०) मणि-निर्मिता माला शाकपार्थिवादिवत्समासः। १ हार, मणियोंकी माला। २ दीप्ति, चमक। ३ लक्ष्मी। ४ दन्तक्षतविशेष। ५ छन्दोभेद, बारह अक्षरोंका एक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, यगण, तगण, यगण होते हैं।

मणिमिश्र—१ एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने न्यायरत्नकी रचना की। २ वृत्तदर्पणके प्रणेता।

मणिमुक्ता (सं० स्त्री०) नदीभेद।

मणिमेखल (सं० त्रि०) रत्नहारविमण्डित, मणिमुक्तासे सजा हुआ।

मणिमेघ (सं० पु०) १ पर्वतभेद। २ भारतके दक्षिण-भागमें अवस्थित जनपदभेद। (मार्कण्डेयपु० ५८ अ०)

मणियार—युक्तप्रदेशके बलिया जिलान्तर्गत बांसडीह तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २५° १६´ उ० तथा देशा० ८४° ११´ पू० गोगरा नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या साढ़े नौ हजारके करीब है। पहले यहाँ जमींदारोंके बड़े बड़े मकान थे जो अभी तहस नहस हो गये हैं। जिले भरमें यही स्थान शस्य-विक्रयको प्रधान हाट है। चीनो और कपड़ेका साधारण व्यवसाय चलता है।

मणयारी—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह लोरमी पहाड़से निकल कर ७० मील रास्ता तै कर शिवनाथमें गिरती है।

मणिरङ्ग—काश्मीरराज्यका एक गिरिसङ्कट। यह अक्षा० ३१° ५६´ उ० तथा देशा० ७८° २४´ पू०के मध्य अवस्थित है। कुनावरसे चिरतुषारावृत दारवङ्ग नदीके उत्पत्ति-स्थान तक यह गिरिसङ्कट समुद्रपृष्ठसे प्रायः १५ हजार फुट ऊँचा होगा। वर्षभरमें चार मास यह रास्ता बंद रहता है।

मणिरत (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद।

मणिरत्न (सं० क्ली०) हीरा, जवाहिर।

मणिरत्नमय (सं० त्रि०) नाना रत्नयुक्त।

मणिरत्नवत् (सं० त्रि०) मणिरत्न सदृश।

मणिरथ (सं० पु०) १ मणिमय रथ। २ बोधिसत्त्व-भेद।

मणिराग (सं० क्ली०) मणेरिव रागः वर्णो उज्ज्वल्यमस्य। १ हिंगुल, शिंगरफ। २ मणिका वर्ण।

मणिराज (सं० पु०) मणीनां राजा, राजाऽसखिभ्यष्टच् इति टच्। मणीन्द्र, श्रेष्ठमणि।

मणिराम—इस नामके अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेखयोग्य हैं। १ गुणरत्नमाला नामक वैद्यक ग्रन्थकार। २ भक्तिलहरी के प्रणेता। ३ वृत्त रत्नावलीके रचयिता। ४ श्लोक संग्रहकार। ५ नीलकण्ठके पुत्र। इन्होंने १७५८ ई०में ऋतुसंहारचन्द्रिका लिखी। ६ एक प्रसिद्ध टीकाकार, रामचन्द्रके पुत्र और जयरामके पौत्र। आप कादम्बर्य्यर्थसार और भामिनीविलासटीका लिख गये हैं।

मणिरामदीक्षित—एक विख्यात स्मार्त्त पण्डित, गङ्गाराम-के पुत्र और शिवदत्त शर्माके पौत्र। इन्होंने राजा अनूपसिंहके कहनेसे अनूपविलास वा धर्माम्बुधि नामक धर्मशास्त्र, अनूप व्यवहारसागर नामक ज्योतिःशास्त्र तथा आचाररत्न, समयरत्न और कृतिवत्सर नामक कई ग्रन्थ लिखे हैं।

मणिरामपुर—हुगली जिलेका एक नगर। यह बारकपुरके निकट अवस्थित है। यहां अङ्गरेजी विद्यालय है।

मणिरोग (सं० पु०) पुरुषेन्द्रियका एक रोग। इसमें लिङ्गके अग्रभागका चमड़ा उसके मस्तक पर चिपक जाता है और मूत्रमार्ग कुछ चौड़ा हो कर उसमेंसे मूत्र-की महीन धारा गिरती है।

मणिरोहिनी—नेपालके स्वयम्भुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ।

मणिल (सं० त्रि०) मणि-सिध्मादित्वादस्त्यर्थे लच्। मणियुक्त।

मणिलिङ्गेश्वर—स्वयम्भुक्षेत्रमें अष्ट वीतराग लोगोंको सुख-समृद्धिके वर्द्धनार्थ जो अवस्थान करते हैं उनमेंसे यह मणिलिङ्गेश्वर एक है।

मणिव (सं० पु०) मणि-अस्त्यर्थे व। नागभेद।

मणिवणिक—नवद्वीप कृष्णनगर आदि स्थानवासी जातिविशेष। पहले यह जाति अनेक स्थानोंमें 'मणि-वणिक' नामसे परिचित थी और जहौरीका काम करती थी। धीरे धीरे इन लोगोंने दूसरा व्यवसाय पकड़ लिया। ये लोग हिन्दू हैं, आचार-व्यवहार नवशाखोंके जैसा है। नवशाखके साथ इनका हुक्का पानी चलता है।

अभी इस जातिके लोग अपना पूर्व व्यवसाय छोड़ कर लाखका व्यवसाय करने लग गये हैं। लाखसे ये दो भिन्न भिन्न पदार्थ निकालते हैं, एक लाक्षारस और दूसरा जतु। लाक्षारस गाढ़ा लोहितवर्ण है। स्त्रियां लाखकी चूड़ियां बनाती हैं। इस व्यवसायमें थोड़ी पूंजीकी जरूरत पड़ती है पर अधिक मुनाफा देख कर और और लोग भी इस व्यवसायको करने लग गये हैं।

ये लोग होली दुर्गोत्सवादि हिन्दू पर्वोंका यथारीति पालन करते हैं। नवशाखयाजक ब्राह्मण इसके पुरोहित होते हैं।

शान्तिपुर, बागनापाड़ा आदि ग्रामोंके गोस्वामिगण ही इस जातिके दीक्षागुरु हैं। यह जाति प्रधानतः वैष्णव और शाक्त सम्प्रदाय-अवलम्बी है। दोनों ही सम्प्रदाय पूजा, आह्निक, मालासेवा आदि हिन्दूधर्माचरित क्रियाकलापका अनुष्ठान करते हैं।

मणिवाल (सं० पु०) मणिरिव शुद्धत्वात् वालः केशोऽस्य। अश्विदैवत्य पशुभेद।

मणिवाहन (सं० पु०) नृपभेद। (भारत १।६३ अ०)

मणिवोज (सं० पु०) दाड़िमवृक्ष, अनारका पेड़।

मणिश्टङ्ग (सं० पु०) मणिमयः श्टङ्गः। मणिमय श्टङ्ग।

मणिशैल (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम जो मन्दराचलके पूर्वमें है।

मणिश्याम (सं० पु०) इन्द्रनीलमणि, नीलम।

मणिसर (सं० पु०) मणिभिः स्रियते गम्यते ग्रथ्यते इति भावः, सृ-कर्मणि अप्। मुक्ताहार, मोतियोंकी माला।

मणिसूत्र (सं० क्ली०) मुक्तामाला।

मणिसोपान (सं० क्ली०) मणिमय सोपान, रत्नकी सीढ़ी।

मणिस्कन्ध (सं० पु०) नागभेद। (भारत १।५७ अ०)

मणिस्तम्भ (सं० पु०) मणिमयः स्तम्भः। मणिमय स्तम्भ, मणिका बना हुआ खम्भा।

मणिस्रज् (सं० स्त्री०) मणिमाला।

मणिहर्म्य (सं० क्ली०) मणिमय हर्म्य, मणिका घर।

मणिहार—युक्तप्रदेशकी जातिविशेष। टीन आदि बरतनमें कांच बैठा कर अलङ्कारादि प्रस्तुत करना ही उनका जातीय व्यवसाय है। ये लोग मणिकार अर्थात् हीरकादि मूल्यवान् पत्थरको जड़ कर जो अलङ्कारादि प्रस्तुत करते हैं उनके अनुकरणजीवी होनेके कारण इस नामको प्राप्त हुए हैं। ये लोग चूड़ीहारसे बिलकुल विभिन्न हैं, किन्तु इनमें कोई कोई चूड़ी भी बना कर अपना गुजारा चलाता है। मुसलमान और हिन्दूके भेदसे यह जाति दो सम्प्रदायमें विभक्त है। मुसलमान लोग सभी सुन्नी हैं, गाजीमीयां और पांचपीरको अपना उपास्य मानते हैं। ज्यैष्ठमासके प्रथम रविवार और सबे बरातके दिन ये लोग उक्त दोनों पीरोंकी पूजा बड़े ठाटबाटसे करते हैं। मुसलमान मणिहार १३० थोकोंमें विभक्त हैं।

हिन्दू सम्प्रदायके मणिहार हिन्दू देवदेवियोंकी पूजा करते हैं। इनमें अयोध्यावासी, अङ्गरखां, वैसवार, वरुकरवार, बड़गुजर, चौहान, हाड़िया, जगरहार, जुरिया, खाट्वास, लोखेरी, मणिहार, मथुरिया, रामानन्दी, रेवगा, सागर, सनावर, शीसगढ़ और तन्वर नामक १६ थोक प्रचलित हैं।

मणिहारी—विहार और उड़िसाके पूर्णिया जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २५° २०' उ० तथा देशा० ८७° ३७' पू० गङ्गाके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या चार हजारके करीब है।

मणी (सं० स्त्री०) मणी-कृदिकारादिति पक्षे ङीष्। मणि।

मणीचक (सं० क्ली०) मणीं चकते प्रतिहन्ति दीप्त्या इति चक अच्। १ चक्रकान्त नामक मणि। २ पुराणानुसार शाकद्वीपके एक वर्षका नाम। ३ एक प्रकारका पक्षी।

मणीवक (सं० क्ली०) मणीव संज्ञायां कन्, वा मणीव कायति कै-क। पुष्प, फूल।

मणीवती (सं० स्त्री०) मणि अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वः मणेरिकारस्य दीर्घः ततो ङीष्। मणियुक्त नदीभेद।

मणीश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

मण्टपी (सं० स्त्री०) मण्टं उन्मादं पाति रक्षतीति मण्ठपाक-जातौ संज्ञायां वा ङीष्। क्षुद्रोपादक।

मण्टि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

मण्डूर (सं० क्ली०) माण्डूर, लोहकीट।

मण्ठ (सं० पु०) मण्ठते इति मठि-अच्। वटकविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका मैदेका बना हुआ पकवान।

प्रस्तुत प्रणाली—पहले मैदेको घीसे मल कर पीछे अल्प जल द्वारा फिरसे अच्छी तरह गूंधे। बादमें वटक प्रस्तुत करे और बिना जलके घीमें पकावे। अनन्तर इलायची, लवङ्ग, कपूर और मरिचादि द्वारा सुगंधित करके घीसे छुवा दे। पांच मिनटके बाद उसे बाहर

निकाल ले। इसीका नाम मण्ठ है। इसका गुण शरीरका उपचयकारक, शुक्रवर्द्धक, बलकर, सुमिष्ट, गुरु, पित्तघ्न, वायुनाशक, रुचिजनक और प्रबलाग्नि व्यक्तिके पक्षमें अत्यन्त उपकारक माना गया है। मैदे, चीनी और घीसे इस प्रकार जो कोई भी खाद्य बनाया जाता है वह भी मण्डकी तरह उपकारक है।

मण्ड (सं० पु० क्ली०) मन्यते ज्ञायतेऽनेन अन्नादिकमिति मन-(क्रमन्तात् डः। उण् १।११३) इति ड। १ अन्न और और दधि आदिका अग्ररस। २ सार। ३ पिच्छ। (पु०) मण्डयति क्षेत्रं भूषयति मड़ि अच्। ४ एरण्ड-वृक्ष, अण्डो। ५ शाकभेद, एक प्रकारका साग। ६ मस्तु, दहीका पानी। ७ भूषा, सजावट। ८ दर्दुर, मेढ़क। ९ भक्तादि-भव रस, मांड़। इसका लक्षण—

"तण्डुलानां सुसिद्धानां चतुर्दशगुणे जले।
रसः सिक्थैर्विरहितो मण्ड इत्यभिधीयते॥" (भावप्र०)

चौदह गुण जलमें चावलको सुसिद्ध करना होगा। जब अच्छी तरह सिद्ध हो जाय, तब अन्नको छान कर रसको बाहर निकाल दे। इसी रसका नाम मांड़ है। यह अतिशय लघुपाक है। इसमें सोंठ और सैन्धव डाल कर सेवन करना होता है। इसका गुण ग्राही, लघु, शीतल, दीपन, धातुसाम्यकृत, ज्वरनाशक, बलकर, पित्त, श्लेष्म और श्रमनाशक माना गया है।

"मण्डः ग्राही लघुः शीतो दीपनो धातुसाम्यकृत्।
ज्वरघ्नस्तर्पणो बल्यः पित्तश्लेष्म श्रमापहः॥" (भावप्र०)

राजवल्लभके-मतसे मण्डगुण—क्षुधावृद्धिकर, वस्ति-शोधक, प्राणप्रद, शोणितवर्द्धक, ज्वर, कफ, पित्त और वायुनाशक।

मण्डमें लाजमण्ड (खलीका मांड़) सबसे लघु है। इसका गुण—अग्निजनक, दाह, तृष्णा और ज्वरातीसार-नाशक, अशेष दोष और आमपाचक।

भृष्टयवका मण्डगुण—हृद्य, पित्तश्लेष्म और वायु-नाशक, अग्निवृद्धिकर, शूल और आनाहरोगमें विशेष-उपकारक, अग्निवर्द्धक और परिपाचक। (राजव०)

हारीतसंहिताके मण्डवर्गमें मण्ड-गुणका विषय इस प्रकार लिखा है।

धान्य-मण्डगुण—पित्त और श्रमनाशक, वायुवर्द्धक, रक्तशोधक, ग्राही, सन्दीपन और अश्मरीरोगनाशक। युगन्ध। (यावनाल या जुआर) मण्डगुण—श्लेष्म और वायुवर्द्धक, पित्तनाशक, मूत्रवर्द्धक और ग्राहक। रक्त-शालि-मण्डगुण—मधुर, ग्राही, शीतल, प्रमेह और अश्मरी-रोगनाशक, वायु और पित्तवर्द्धक। श्वेत तण्डुल-मण्ड-गुण—मधुर, शीतल, कुछ श्लेष्मकर, शोषनाशक, अश्मरी और मेहरोगमें विशेष उपकारक और वायुवर्द्धक। यव-मण्डगुण—कषाय, ग्राही और विपाकी। गोधूम-मण्डगुण—कषाय, ग्राहक और पाचक, मधुर और पित्त-नाशक। कोद्रव-मण्डगुण—ग्लानि और मूर्च्छाकर तथा लघु। क्षुद्रधान्यमण्डगुण—वायुवर्द्धक, पित्तकारक, श्लीपद, गुल्म और प्रतिश्याय आदि रोगजनक, ग्लानि, मूर्च्छाकर और लघु।

(हारीत १म स्थान ९० अध्याय मण्डवर्ग)

ज्वरादि रोगमें रोगीके बहुत दुर्बल होने पर पहले मांड देना उचित है। सभी प्रकारके मांडोंमें लाज (खील)-का मांड़ ही विशेष उपकारी बतलाया गया है। केवल शूलरोगमें जौका मांड़ फायदामंद है।

मण्डक (सं० पु०) मण्डेन कृतः इति मण्ड संज्ञायां कन्। १ पिष्टकविशेष, मैदेकी एक प्रकारकी रोटी, मांड़ा। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पहले सफेद गेहूंको कूट कर सुखा ले। पीछे उसे जांतेमें पीस कर छान ले। इसका नाम समेत या मैदा है। अब उस मैदेको जलमें गूंध कर करीब आध आध पावकी लोई बनावे। अनन्तर लोई-को बेल कर धीमी आंचमें पकावे। इसीका नाम मांड़ा है। यह मांडा दूध, घी, गुड़ या सुसिद्ध मांस आदिके साथ खानेमें बड़ी रुचि होती है। इसका गुण शरीरका उपचयकारक, शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिकर, मधुर, विपाक, हृदय-ग्राही और त्रिदोषनाशक माना गया है। २ माधवीलता। ३ गीताङ्गविशेष, गीतका एक अङ्ग। इसके भी फिर छः भेद हैं, यथा—जलप्रिय, कलाप कमल, सुन्दर, मङ्गल और वल्लभ।

मण्डन (सं० क्ली०) मण्ड्यतेऽनेन इति मड़ि भूषे करणे ल्युट्। १ भूषण, गहना। २ शृङ्गार करना, सजाना। ३ प्रसिद्ध मीमांसकभेद, मण्डनमिश्र। ४ युक्त आदि दे कर किसी कथन या सिद्धान्तका पुष्टीकरण, प्रमाण आदि द्वारा कोई मत सिद्ध करना।

मण्डनकवि—उपसर्गमण्डन, कविकल्पद्रुमस्कन्ध, सारस्वतमण्डन आदि व्याकरण सम्बन्धीय संस्कृत ग्रन्थकार।

मण्डनगढ़—बम्बई प्रदेशके रत्नगिरिजिलेके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह वाणकोट समुद्रखाड़ीसे ६ कोस देशाभ्यन्तरमें मण्डनगढ़गिरीके ऊपर अवस्थित है। इस गिरिदुर्गके अलावा मण्डनगढ़पर्वत पर पारकोट और जाम्ब नामक और भी दो दुर्ग हैं। कहते हैं, कि उक्त तीनों दुर्गमें मण्डनगढ़ महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी द्वारा, पारकोट हवसी द्वारा और जाम्ब अङ्ग्रिया द्वारा स्थापित हुआ था। किन्तु उनके गठनकार्यकी पर्यालोचना करनेसे वे और भी बहुत पुराने मालूम होते हैं।

मण्डनमिश्र—शङ्कराचार्यके समसामयिक एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक। ये अनेक शिष्योंको ले कर गृहस्थ धर्ममें अनुरक्त थे। शङ्करविजयमें लिखा है, कि शङ्कराचार्य इन्हें परास्त करनेके लिये एक दिन इनके दरवाजेके सामने जा खड़े हो गये।

वहां कुछ दासियां खड़ी थीं। शङ्कराचार्यने उनसे पूछा 'क्या बतला सकती हो, मण्डनमिश्रका मकान कौन है?' उत्तरमें उन लोगोंने कहा, "जीवेश्वरका ऐक्य और भेदाभेद, शब्दान्तसत्प्रत्ययधातुपद, स्नानादि विप्रोचित कर्त्तव्य धर्म, मन्वादि राजविधान, जैनोक्ति, कापालिक, भैरव, शैव, गणेश, विष्णु, सूर्य आदि विभिन्न मतवादीकी उक्ति, आकर्षण उच्चाटनादि सिद्ध मन्त्र तथा जिसके द्वार परकी सूखी पत्तियां स्पष्ट बोल सकती हैं, वही मण्डनमिश्रका मकान है।" शङ्कराचार्यको पता लग गया, कि यही मण्डनमिश्रका मकान है। बाद वे दरवाजे पर गये, पर दरवाजा बंद था। उन्होंने प्राणायामके प्रभावसे शून्यमार्ग हो कर मण्डनके गृहमें प्रवेश किया। उस समय मण्डनमिश्र शालग्राम और विश्वदेवोंका सङ्कल्प करके स्वागत वाक्यसे दर्भाक्षतप्रोक्षण कर रहे थे। शङ्कराचार्यके दोनों पैरों पर उनकी दृष्टि पड़ गई। पीछे उनका सर्वाङ्ग शरीर देख कर वे आग बबूले हो गये और दो चार कटु वचन बोले। उस समय एक व्यास उसी जगह खड़े थे, उन्होंने मण्डनमिश्रसे कहा, 'ये सामान्य व्यक्ति नहीं हैं, पाद्य द्वारा इनकी पूजा करो।' मण्डनने भी वैसा ही किया। 'तुम्हारे साथ शास्त्रीय तर्क करने आया हूं,' कह कर शङ्करने अपना अभिप्राय प्रकट किया। यथाविधि पितृकर्म समाप्त और भोजन करनेके बाद मण्डन शास्त्रालाप करनेके लिये शङ्करके सामने खड़े हो गये। शर्त्त यह ठहरी, कि यदि तर्कमें मण्डन परास्त हों, तो वे संन्यास हो जांय और यदि शङ्कर परास्त हों, तो वे संन्यासधर्मका परित्याग कर गृही बन जांय। मण्डनमिश्रकी पत्नी साक्षात् सरस्वती स्वरूपा सरसवाणी मध्यस्था हुईं। घोरतर तर्क चलने लगा। आखिर सरल वाणीने सतिसे कहा, 'नाथ' आपकी ही हार हुई अब आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये।" उसी समय मण्डनमिश्रने शङ्करके चरणोंकी वन्दना कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया और उनके उपदेशसे वे संन्यासधर्म ग्रहण कर उत्तरकी ओर चल दिये। (शङ्करविजय ५६) संन्यास ग्रहणके बाद मण्डनमिश्र विश्वरूप और सुरेश्वराचार्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

संन्यासग्रहणके पहले इन्होंने आपस्तम्बीय मण्डनकारिका, भावनाविवेक और काशीमोक्षनिर्णयकी रचना की। संन्यासग्रहणके बाद ये तैत्तिरीयश्रुतिवार्त्तिक, नैष्कर्म्यसिद्धि, पञ्चीकरणवार्त्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्वार्त्तिक ब्रह्मसिद्धि, ब्रह्मसूत्रभाष्यवार्त्तिक, मानसोल्लास वा दक्षिणा मूर्त्तिस्तोत्रवार्त्तिक, लघुवार्त्तिक, वार्त्तिकसार और वार्त्तिकसारसंग्रह आदि ग्रंथ लिख कर दार्शनिक जगतमें प्रसिद्धि लाभ कर गये हैं।

मण्डनमिश्रसाहित्यरसपोषिन्—एक विख्यात शाब्दिक। आप नानार्थशब्दानुशासन नामसे संस्कृत अभिधान रच गये हैं।

मण्डनसूत्रधार—एक प्रसिद्ध वास्तुशास्त्रवित्। इनके पिताका नाम श्रीक्षेत्र था। ये मेवाड़पति राणाकुम्भके आश्रयमें रहते थे। उन्हींके उत्साहसे इन्होंने राजवल्लभमण्डन नामसे एक वृहत् संस्कृत वास्तुशास्त्र, देवतामूर्त्तिप्रकरण, प्रासादमण्डन और रूपमण्डन नामक वास्तुशास्त्र सम्बन्धीय कई छोटे छोटे ग्रंथ लिखे हैं।

मण्डप (सं० पु० क्ली०) मडि-भावे घञ्, मण्ड, मण्ड' पाति पा-क्। १ जनविश्राम स्थान, ऐसा स्थान जहां बहुतसे लोग धूप, वर्षा आदिसे बचते हुए बैठ सकें। २ बहुतसे आदमियोंके बैठनेयोग्य चारों ओरसे खुला

पर ऊपरसे छाया हुआ स्थान । ३ किसी उत्सव या समारोहके लिये बांस, फूस आदिसे छा कर बनाया हुआ स्थान । जैसे,—यज्ञ-मण्डप, विवाह-मण्डप। ४ देवमन्दिरके ऊपरका गोल या गावदुम हिस्सा। ५ शामियाना, चँदोवा। ६ देवादि-दत्त वेश्म। जैसे, चण्डी-मण्डप, दुर्गा-मण्डप आदि। मण्डप शब्दका साधारण अर्थ है गृह। देवताके उद्देश्यसे जो घर बनाया जाता है, उसे देवगृह वा देव-मण्डप कहते हैं।

मठ, सङ्घाराम, मन्दिरादिके सामने उच्च वेदीकी तरह जो चतुष्कोण भूमिभाग रहता है, वही मण्डप कहलाता है। ऐसा स्थान प्रायः पटे हुए चबूतरेके रूपमें होता जिसके ऊपर खम्भों पर टिकी छत या छाजन होती है। किसी किसी देवमन्दिरके मण्डपका कार्य ऐसा शिल्प-चातुर्यमय रहता है, कि उसे लिख कर व्यक्त नहीं कर सकते।

मण्डपमें एकमात्र पवित्र वस्तु ही रखनी चाहिये। हिन्दू देवमन्दिरादिके सम्मुखस्थ मण्डपमें साधुगण बैठ कर पूजा-होमादि करते हैं तथा कभी कभी देवोपभोग्य द्रव्यादि वहां रख कर देवताके उद्देशसे चढ़ाये जाते हैं।

बौद्धमठ वा विहार-संलग्न मण्डपमें केवलमात्र यतियोंके पाठयोग्य पवित्र शास्त्रग्रन्थ रखे रहते हैं। श्रमण वा बौद्ध भिक्षुगण मण्डपमें बैठ कर सबके सामने शास्त्रग्रन्थका पाठ करते हैं। सिंहल, ब्रह्म आदि देशोंमें यह मण्डप प्रायः पागोडाके आकारमें बना होता है। उसकी छतके ऊपरी तल पर कुछ छोटे छोटे घर रहते हैं। प्रत्येक तलका घर क्रमशः निम्न तलके घरसे छोटा होता है। इसीसे चूड़ादेश सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर हो कर उच्चचूड़ पागोडा मन्दिरमें परिणत होता है। इस मण्डपगृहके प्रथम तलके मध्यभागमें जो उच्च स्थान होता है, वही प्रकृत मण्डप वा वेदी है। उस वेदीके ऊपर बैठ कर पुरोहित शास्त्रालाप करते हैं तथा धर्मतत्त्वानुसन्धित्सु व्यक्तिगण चारों ओर चटाई पर बैठ कर धर्मविषयक वक्तृता सुनते हैं। सिंहलदेशमें पूर्णिमाकी रातको मण्डपमें बैठ कर शास्त्रपाठ करना एक उत्सव समझा जाता है।

शास्त्रालोचनाके अलावा मण्डपमें एक और भी नये ढंगकी क्रीड़ा होती है। सिंहलमें कभी कभी नारियलके पत्तों आदिसे एक गोलक धंधाकी तरह निकुञ्ज बनाया जाता है। प्रवेशपथसे निकुञ्जके भीतर आनेमें अनेक जटिलपथ अतिक्रम कर आने होते हैं। कभी कभी उस पथमें जगह जगह दाग काट कर अपदेवताओंका वासस्थान निर्देश कर देते हैं। सबसे आखिरवाले घरमें बुद्धका वासभवन वा अवस्थान-मण्डप निरूपित होता है। बौद्धगण सभी विघ्न-बाधाओंको अतिक्रम कर उस बुद्धमण्डपमें आनेमें विशेष आग्रह और उत्साह दिखलाते हैं तथा एक एक अपग्रहको अधिकार-सीमाको पार कर वे धीरे धीरे बुद्धमण्डपमें अग्रसर होते हैं। मण्डपकी सीमा उल्लङ्घन करके ही वे मूर्च्छा वा दशाको प्राप्त होते हैं। ऐसा करनेका उद्देश्य यह है, कि बुद्धको प्राप्त करनेमें अनेक विघ्न-बाधाओंको अतिक्रम और कष्ट स्वीकार करना आवश्यक है।

अपराजिता-पृच्छा नामक वास्तुशास्त्रके पचीसवें सूत्रमें मण्डपके लक्षण-सम्बन्धमें जो लिखा है संक्षेपमें उसका वर्णन नीचे दिया जाता है। प्रासाद निर्माणके विषयमें जो प्रमाण उल्लिखित हुआ है, साधारणतः मण्डप भी उसीके अनुसार बनवाना चाहिये। यदि उससे भी बड़ा बनवाना हो, तो प्रासादप्रमाणके एक पादसे आरम्भ कर द्विगुण पर्यन्त अधिक किया जा सकता है, किन्तु इससे बड़ा करना निषिद्ध है।

वासुदेव-प्रमुख पण्डितोंने मण्डपके पांच सात प्रकारके प्रमाण-सूत्र उल्लेख किये हैं। किन्तु अन्यान्य वास्तुवेदियोंके मतसे मण्डपको प्रासादके समान अथवा उससे एक पाद अधिक बनवाना उचित है। इसका उच्छ्रय पांच हाथसे अधिक यथासम्भव करना होगा। स्थानान्तरमें नौ, दश, ग्यारह, बारह और तेरह हाथ इसका उच्छ्रय निर्दिष्ट हुआ है। मण्डपमें एक घंटा लटका देनेका नियम है। प्रासादकी तरह मण्डप भी अपने अपने वासभवनके सामने ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठभावमें बनवाना उचित है।

एतद्भिन्न अपराजिता-पृच्छाके २६वें सूत्रमें भगवान् उशना कर्त्तृक वर्द्धमान, स्वस्तिक, गरुड़, सुरनन्दक, सर्वतोभद्र, कैलास, इन्द्रनील और रत्नोद्भव नामक आठ

प्रकारके मण्डपका विषय उल्लिखित हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे उसके भेदादिका वर्णन यहां पर नहीं किया गया।

मण्ड' पिवति पा-क। (त्रि०) ७ मण्डपायी, जो माँड़ पीता हो।

मण्डपक्षेत्र (सं० क्ली०) पवित्र स्थान।

मण्डपपुर—माण्डुका प्राचीन नाम। माण्डु देखो।

मण्डपा (सं० स्त्री०) मण्डप-टाप्। निष्पापी, बोड़ा।

मण्डपारोह (सं० पु०) मुखालि, एक प्रकारका मीठा कंद।

मण्डपिका (सं० स्त्री०) छोटा मण्डप।

मण्डपी (सं० स्त्री०) छोटा मण्डप, मढी।

मण्डपूल (सं० क्ली०) घुटने तकका बूट जूता।

मण्डमय (सं० त्रि०) मण्डस्वरूपे मयट। मण्डस्वरूप।

मण्डयन्त (सं० पु०) मण्डयति भूषयतोति मड़ि (तॄभूवहिवसि भासिसाधिगड़िमण्डिजिनन्दिभ्यश्च। उण् ३।१२८) इति झच्, स च कित्। १ अन्न, अनाज। २ बधूसङ्घ। ३ नट। ४ अलङ्कार।

मण्डयन्ती (सं० स्त्री०) मण्डयतीति मड़ि-झच्, स्त्रियां ङीप्। योषित्, नारी।

मण्डर (सं० त्रि०) मड़ि-अरन्। भूषण।

मण्डरी (सं० स्त्री०) मण्डयति भूषयति मड़ि-अरन्, स्त्रियां ङीष्। घुघु'री।

मण्डल (सं० क्ली०) मण्डयति भूषयतीति मड़ि (कलस्तृपश्च। उण् १।१०६) इति कल। १ चन्द्र और सूर्यका वहिर्वेष्टन, चन्द्रमा वा सूर्यके चारों ओर पड़नेवाला घेरा जिसे सूर्यमण्डल कहते हैं। २ चन्द्र और सूर्यका उत्पातज रश्मिमण्डल। पर्याय—परिवेश, परिधि, उपसूर्यक। ३ चक्रवाल, चक्रके आकारका घेरा। ४ मण्डलाकार दिक्समूह, चारों दिशाओंका घेरा जो गोल दिखाई देता है। ५ वृत्ताकार या अण्डाकार विस्तार, गोला। ६ एक प्रकारका कुष्ठ रोग। इसमें शरीरमें चकत्तेसे पड़ जाते हैं। ७ द्वादश राजमण्डल, बारह राज्योंका समूह। ८ चालीस योजन लंबा और बीस योजन चौड़ा भूमिखण्ड। ९ किसी वस्तुका वह गोल भाग जो अपनी दृष्टिके सम्मुख हो। १० समाज, समूह। ११ एक प्रकारका व्यूह, सेनाकी वृत्ताकार स्थिति। १२ एक प्रकार का सर्प। १३ एक प्रकारका गन्धद्रव्य, व्याघ्रनखी। १४ शरीरकी आठ संधियोंमेंसे एक। १५ कुक्कुर, कुत्ता। १६ ग्रहके घूमनेको कक्षा। १७ गेंद। १८ कोई गोल दाग, चिह्न। १९ ऋग्वेदका एक खण्ड। २० चक्र, पहिया। २१ नखाखात। २२ धन्वीके स्थानपञ्चकके अन्तर्गत स्थिति विशेष। २३ बिम्ब, छाया। २४ रेशमके ऊपर जरीका काम किया हुआ एक प्रकारका कपड़ा। गुजराती इसका पगड़ीमें व्यवहार करते हैं। २४ वह घेरा जो खानेके समय भोजनपात्रके चारों तरफ किया जाता है। भोजनके समय भोजनपात्रके नीचे मण्डल बनाना उचित है। जो बिना मण्डल बनाये भोजन करते हैं, उनका अन्न राक्षसादि नष्ट कर डालता है।

"यातुधानाः पिशाचाश्च असुरा राक्षसास्तथा।
घ्नन्ति केवलमन्नस्य मण्डलस्य विवर्ज्जनात्॥
आदित्या वसवो रुद्रा ब्रह्मा चैव पितामहः।
मण्डलान्युपजीवन्ति तस्मात् कुर्वन्ति मण्डलम्"॥

(अग्निपु० आह्निकतपोनामाध्याय)

यह मण्डल ब्राह्मण चतुष्कोणमें, क्षत्रिय त्रिकोणमें, वैश्य द्विकोणमें और शूद्र वर्त्तु लाकारमें बनावे।

विशेष विवरण भोजन शब्दमें देखो।

कृत्रिम मण्डलका विधान देवीपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—चार हाथसे आरम्भ करके सौ हाथ तक मण्डल होगा, इससे अधिक नहीं। यह मण्डल १२ प्रकारका है। यथा—विमल, विजय, रुद्र, विमान, शुभद, शिव, वर्द्धमान, दैव, लताक्ष, कामदायक, रुचक और स्वस्तिकाख्य। ये सब मण्डल पांच वर्णके चूरसे बनावे। शुक्लसे ले कर हरित पर्यन्त सभी चूरसे सुशोभन करना कर्त्तव्य है। शालि, षष्टिक, कुसुम्भ, हरिद्रा और हरित्पत्र ये सब चूर होने चाहिये।

मण्डलस्थान सम, गोमयोपलिप्त, चन्दन, अगुरु, कर्पूरचूर्ण और धूप द्वारा अधिवासित करना होगा। मण्डलभूभाग पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण ओर समान रहे। सूत्रपातमें स्वस्तिक और मत्स्यादि रेखा हो, बीचमें अष्टदल पद्म रहे। उसके सभी द्वार

समसूत्र हों, पद्मकर्णिका और केशर द्वारा उज्ज्वल रहे। अवशिष्ट भागमें स्वस्तिक चिह्न और कह्लार नामक जलज पुष्पविशेषका चित्र हो। दाहिने हाथकी मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठांगुलीके योगसे इच्छानुसार पञ्चवर्ण-विन्यास करना होगा। चूर्णविन्यासके समय उँगलियों-का अग्रभाग नीचेकी ओर रहे। इसमें सभी रेखाएँ समान और अविच्छिन्न रहनी चाहिये। अंगुष्ठ-पर्वकी अपेक्षा रेखाको स्थूल न बनावे। परस्पर मिलित, विषम, अधिक स्थूल, विच्छिन्न, कृशरावृत्त, प्रान्तविसर्पी वा ह्रस्व मण्डल कदापि न बनावे।

संसक्तरेखमण्डलमें कलह, वक्ररेखमण्डलमें युद्ध, अति स्थूलरेखमण्डलमें व्याधि, मिश्रित रेखामें पीड़ा, विन्दुयुक्त रेखामें शत्रु-भीति, कृशरेखामें अर्थहानि, विच्छिन्न रेखामें मृत्यु और नानाविध अशुभ होता है। जो व्यक्ति मण्डलका विषय जाने विना मण्डल तैयार करते हैं, उन्हें पूर्वोक्त सभी प्रकारके दोष होते हैं। चतुष्कोण और चतुर्द्वार मण्डल बनावें। मण्डलके प्रमाणानुसार द्वार और पद्म बनाना होगा। हाथसे कम और चार हाथसे अधिक परिमाणका मण्डल न बनावे। मण्डल पूर्वद्वारी होनेसे प्रताप, आयुर्वृद्धि, श्री और धर्मादि शुभ होता है। उत्तरद्वारी मण्डल भी शुभकर है। स्वयं शिवजीने पहले पहल यह मण्डल प्रस्तुत किया था। इस मण्डलमें सभी देवता अवस्थान करते हैं। यही कारण है, कि मण्डल प्रस्तुत करके उसके ऊपर घटस्थापन पूर्वक पूजा की जाती हैं। मण्डलमें पूजा करनेसे सभी देवता पूजित होते हैं।

प्रथम मण्डलमें विघ्नेश्वरयुक्त शिव और द्वितीय मण्डलमें गणेशयुक्त शिवादिकी पूजा करनी होती है।

देवीपुराणमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुल उद्धृत नहीं किया गया। तन्त्रसार और अन्यान्य तन्त्रमें सर्वतोभद्रमण्डल आदि करके बहुतों मण्डलका उल्लेख है। पूजादि देव-कार्यमें ही मण्डल बनानेकी व्यवस्था देखी जाती है। अरब, मिश्र आदि देशोंमें भी दैवज्ञगण शुभाशुभ जाननेके लिये इस प्रकारका मण्डप बनाया करते थे। मुसलमानोंका कहना है, कि ओसमान इस मण्डलविद्यामें विशेष पारदर्शी थे। लेन साहबने यह विद्या यूरोपमें प्रचार करनेकी चेष्टा की थी, पर उपयुक्त गुणी न मिलने पर वे कृतकार्य न हो सके। यही कारण है, कि यूरोपमें इसका आदर नहीं है। प्रधानको बङ्गालमें २५ ग्रामके (Headman) मण्डल कहते हैं। दाक्षिणात्यमें पाटेलका और पश्चिममें मकद्दमका जैसा अधिकार है बङ्गालमें मण्डलोंका भी एक समय वैसा ही अधिकार था। उनके अधीन बहुतसे कर्मचारी रहते थे जिनमेंसे पटोआर वा तहसीलदार और चौकीदार प्रधान था।

मण्डलक (सं० क्ली०) मण्डल-स्वार्थे कन्। १ विम्ब, छाया। २ कुष्ठभेद, एक प्रकारका कोढ़ रोग। ३ दर्पण। ४ मण्डलाकार व्यूह। (पु०) ५ कुक्कुर, कुत्ता।

मण्डलकराजन् (सं० पु०) मण्डलाधीश्वर।

मण्डलकार्मुक (सं० त्रि०) मण्डलाकार धनुःशाली।

मण्डलघाट—हवड़ाके दक्षिणमें अवस्थित एक प्रधान परगना। यह रूपनारायण और दामोदर नदीके मध्य अवस्थित है।

मण्डलचिह्न (सं० क्ली०) मण्डलाकार चिह्न।

मण्डलनृत्य (सं० क्ली०) मण्डलेन मण्डलाकारेण प्रवर्त्तित नृत्यमिति नित्यसमासः। मंडलाकार नृत्य, वृत्तकी परिधिके रूपमें घूमते हुए नाचना।

मण्डलपत्रिका (सं० स्त्री०) मण्डलं मण्डलाकारं पत्रं यस्यां कन् टाप्, अत इत्वं। रक्त पुनर्णवा, लाल गदह-पूरना।

मण्डलपुच्छक (सं० पु०) कीटभेद। सुश्रुतमें लिखा है, कि यह कीट प्राणनाशक है। इसके काटनेसे सांपका-सा विष चढ़ता है। क्षार वा अग्नि द्वारा दग्ध स्थान जैसा हो जाता है काटा हुआ स्थान भी वैसा ही देखनेमें लगता है। इसमें रक्त, पीत, कृष्ण और अरुण वर्णकी आभा देखी जाती है। ज्वर, अङ्गमर्द, रोमाञ्च, वेदना, वमन, अतीसार, तृष्णा, दाह, मोह, कम्प और हिक्का आदि उपद्रव होते हैं। इसके काटनेसे यथाविधान प्रतीकार करना आवश्यक है (सुश्रुत कीटकल्प ८ अ०)

मण्डलपुर—युक्तप्रदेशके सहारानपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। इसके पास ही 'सुघ' नामक एक प्राचीन

ग्रामका भग्नावशेष देखा जाता है। उक्त दोनों ग्राम ले कर प्राचीन श्रुघ्न नगर संगठित था। फिरोजशाह तुगलक के समय इसकी प्राचीन कीर्त्ति और समृद्धि बिलकुल विलुप्त हो गई।

मण्डलपुरन्दर—एक विख्यात जैन-साधु। ये १६वीं शताब्दीमें विजयनगराधिप कृष्णराजके समयमें विद्यमान थे। इन्होंने अमरकोषके आदर्श पर 'सौदामिनीनिघण्ट' नामक एक देशीय अभिधान पद्यमें प्रकाशित किया।

मण्डला—मध्यप्रदेशके जब्बलपुर विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २२´ १२´से २३´२३´ उ० तथा देशा० ७६´ ५८´से ८१´ ५४´पू०के मध्य अवस्थित है। यह चीफ कमिश्नर द्वारा परिचालित होता है। भूपरिमाण ५०५४ वर्गमील है। मण्डलानगरमें इसका विचार-सदर है।

प्राकृतिक सौन्दर्यसे विभूषित होने पर भी इस स्थानका विजन वनप्रदेश जनसाधारणके भीतिप्रद है। वनमाला-से समाच्छन्न अधित्यकाभूमि और निर्झरिणी परिप्लावित उपत्यकामें दुर्द्धर्ष गोंड़ जातिका वास है और साथ साथ बाघ, भालू आदि भयावह हिंस्रजन्तुसे परिपूर्ण इस स्थानकी भीषणता दुगुनी बढ़ गई है। इस निर्जन स्थानमें प्रवासी पथिक जिधर नजर उठाते हैं उधर ही जनशून्य और वनपूर्ण अधित्यकाभूमि दिखाई पड़ती है। कहीं कहीं झरने आदिके बहनेसे उपत्यका और भी शोभामयी हो गई है तथा सुदूरविस्तृत दीर्घ तृणविराजित प्रांतर प्रदेशमें वायुसे आन्दोलित तृणवल्ली दूरसे हरिद्वर्ण ऊर्मिमालाशोभी समुद्रके जैसी मालूम पड़ती हैं। इसके बीच बीचमें खण्ड खण्ड वनसमूह सागरवक्षमें बहता हुआ पोतसदृश मालूम होता है।

कहीं नदीको सैकतभूमिमें श्यामल शस्यमण्डित उर्वरक्षेत्र विराजमान है जिसके मध्यस्थलमें उपवनसमूह जनसाधारणकी वासभूमिका परिचय देता है। दक्षिण भागका पार्वत्य प्रदेश स्फटिकाकार, दानेदार ग्रेनाइट और पथलचूनसे पूर्ण है। अलावा इसके कहीं कहीं कपास होनेवाली काली मिट्टीसे पूर्ण जमीन और सहार नामक बालुकामय मरूभूमि विस्तीर्ण है। यहां बहुत-सी छोटी छोटी नदियां मेकल पर्वतसे निकल कर नर्मदामें मिल गई हैं जिससे नर्मदा नदी बड़े वेगसे बह चली है। इस पर्वतसे और भी पश्चिममें बञ्जार और हालोन आदि असंख्य जलधारा नदीमें गिरती है।

नदियोंके पार्वतीय गड्ढे गहरे होनेके कारण उनके जलसे खेतीबारीमें कुछ विशेष सुविधा नहीं है। केवल मण्डला नगरके दक्षिण और पूर्व नर्मदासे मैंसाघाट तक विस्तृत 'हरवेली' भूमि कुछ उर्वरा है। यहां नर्मदाकी खंजर और बेणगङ्गाकी थानवर शाखा बहती है। इन दो नदियोंके बीचकी अधित्यकामें बहुत-सी समृद्धिशाली गोंड़ जातिकी बस्ती है। प्रत्येक बस्तीमें छोटा छोटा जंगल है। नगरके पश्चिम एक बड़ा वन है, जिसमें बाघ आदि हिंस्रजन्तु रहते हैं। इस कारण यह स्थान बड़ा ही खौफनाक है। वर्षाकालमें जब संचित जलकी धारा बड़े वेगसे पर्वतोंको छेदती हुई नर्मदामें गिरती है तब उसका दृश्य अतीव मनोरम लगता है।

पूर्वोक्त मेकल पर्वतका चौरिया दादरशृङ्ग ३४८० फीट ऊंचा है। शृङ्गके सामने ६ मील चौड़ी एक अधित्यकाभूमि है। इस स्थानकी आबहवा बड़ी अच्छी है। स्थानीय सभी पर्वतशृङ्ग महादेव द्वारा रक्षित हैं, ऐसा प्रवाद है।

रामनगर-मन्दिरके शिलालेखोंसे इस स्थानके प्राचीन राजवंशका परिचय इस प्रकार मिलता है। यादवराय नामक एक राजपूतने स्वप्न देख कर सर्वी पाठक नामक एक साधुचेता ब्राह्मणका परामर्श ग्रहण किया। उक्त ब्राह्मण के आदेशसे यादवरायने गोंड़राज-नागदेवके यहां नौकरीके लिये प्रार्थना की। राजाने युवक यादवरायके मनोहर रूप और वीरवपु देख कर उन्हें सेनाविभागमें नियुक्त किया। क्रमशः उनके वीर्यबलने राजा नागदेवकी आंखों पर एकाएक आधिपत्य जमा लिया। किसी कारणसे युवक यादव पर खुश हो कर राजाने अपनी कन्याका उनके साथ विवाह कर दिया। राज्यमें उनकी प्रतिपत्ति दिन पर दिन बढ़ती ही गई। राजा नागदेव मरनेके समय अपने जामाता यादवरायको ही उत्तराधिकारी बना गये थे।

नागदेवकी मृत्युके बाद जब यादवराय राजसिंहासन पर बैठे तब उन्होंने उस विज्ञ विप्रवरको अपना

मन्त्री बनाया। मन्त्रीकी तीक्ष्णबुद्धि और उनकी तेजस्वितासे मण्डलाराज्य समृद्धिशाली हो गया था। यथार्थमें एकमात्र यादवरायसे ही मण्डलामें गोंड़ राज्यकी राजधानी स्थापित हुई। उक्त यादवरायके ज्येष्ठपुत्रके वंशधरोंने यहां ३५८ ई० से ले कर १७८१ ई० महाराष्ट्र-युद्ध तक राज्य-शासन किया था। द्वितीय पुत्रके वंशधरगण इतने दिनों तक मन्त्रित्व और राजकार्यादि देखते थे। ६३८ ई०से उक्त वंशके दशवें राजा गोपाल शाह कर्तृक मण्डला राज्य (गोंड़वन) गोण्डवाना राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ। गोपाल शाहकी मृत्युके बाद समस्त राज्य गर्हा-मण्डला या गढ़मण्डल नामसे विख्यात हुआ।

गोपाल शाहके बाद ३८वीं पीढ़ीमें राजा संग्राम शाह हुए। इन्हीं विख्यात पुरुषने गढ़मण्डलराज्यको उस समय विशेष शक्ति और समृद्धिशाली बनाया था। १५३० ई०में मृत्युके पहले उन्होंने ५२ गढ़ या प्रदेश अधिकार किये। वर्त्तमान मण्डला, जब्बलपुर, दामो, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी, हुसङ्गाबाद और समग्र भूपालराज्य उन्हींके कब्जेमें था।

१५६४ ई०में मुगलसम्राट् अकबर शाहके प्रतिनिधि आसफ खाँने गङ्गातीरवर्त्ती काड़ा-माणिकपुरमें रह कर बहुत-सी सेनाके साथ गोण्डवानाराज्य पर चढ़ाई कर दी। इस समय दरिद्र जननी दलपत शाहकी विधवा पत्नी रानी दुर्गावती नाबालिगीमें राज्यशासन करती थी। मुगलोंकी चढ़ाईसे वह जरा भी न डरी और वीर की पोशाक पहनी। गोण्डवाना-सेनादलने वीर-रमणी दुर्गावतीकी अधिनायकता स्वीकार की। धीरे धीरे रमणी-वाहिनी मुगलोंके सामने जा धमकी। जब्बलपुर जिलेके सिंगौड़के पास गोंड़ सेनाने हार खाई और रानी-कोई उपाय न देख गढ़की ओर लौटी। यहां भी जब मुगलसेनाने आक्रमण करना न छोड़ा तब इन्होंने मंडला-में आश्रय लिया। मण्डलाका दुर्गम गिरिसङ्कट अतिक्रम कर मुगलसेना नगरमें न घुस सके, इस आशंकासे रानी स्वयं सेनादल ले कर गिरिपथकी रक्षामें लग गई। पहले दिनकी लड़ाईमें रानी दुर्गावतीने बहुत-सी मुगलसेनाको विपर्यस्त किया। आसफ खां परास्त होने पर भी भग्न-मनोरथ न हुए। दूसरे दिन उन्होंने कमानवाही सेनाओं-को ले कर रानी दुर्गावती पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें रानी आहत तो हुईं पर उनकी वीरत्ववह्नि उस समय भी निर्वापित न हुई। वे आघातकी उपेक्षा कर हिन्दू-गौरवकी रक्षाके लिये प्रचण्ड विक्रमसे रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुईं। इस समय सहसा उनके सेनादलके पीछे नदी जलसे उमड़ आई जो पहले एकदम सूखी थी। गोंड़-सेना मुगलयुद्धमें असमर्थ हो कर इसी नदीसे भाग जायगी यह सोच मुगलयोद्धा फूले न समाये, किन्तु वे नदीको स्फीत होते देख चुप हो बैठे, प्राणकी आशा सबोंकी जाती रही। सामने मुगलसेना मूषलधारसे गोलावर्षण कर रही है, पीछेसे कलकल नादसे नदीका जल बढ़ कर सेना पर चढ़ाई कर रहा है, इस प्रकार दोनों संकटमें पड़ कर गोंड़सेना छत्रभंग हो गई। रानी दुर्गावती किसी तौरसे सेनाको वशमें न ला सकी। इधर मुगलवाहिनी छत्रभंग सेनादल पर टूट पड़ते देख वह डर गईं तथा बादमें मुगलोंके हाथ बन्दी और लाञ्छित न होना पड़े, ऐसा सोच उन्होंने तुरत अपने पीलवानकी कमरसे छुरी ले ली और क्षण भरमें अपने कोमलहृदयमें घुसेड़ दी। उनकी यह वीरोचित मृत्यु इतिहासमें ज्वलन्त अक्षरोंमें वर्णित है। इस प्रकार वे अपने कर्ममय जीवनको वीरत्व मुकुटमें शोभित कर गई हैं।

युद्धमें जयी हो मुगल-सेनापति आसफ खाँके बहुत धनरत्न तथा हजारसे अधिक हाथी हाथ लगे। उनके लौट जानेके बाद राजा चन्द्र शाहके अभिषेकके लिये सम्राट् अकबरशाहका आज्ञापत्र लाना पड़ा जिसमें उन्हें नज़राना-स्वरूप दश प्रदेश देने पड़े। उसी समय यह भूपालराज्यमें परिणत हुआ।

राजा चन्द्र शाहके समयसे गढ़मण्डलाके सामन्तोंने दिल्लीश्वरकी अधीनता स्वीकार की। उनकी दो पीढ़ी-के बाद बुन्देला-आक्रमण और युद्ध तथा राजवंशधरोंमें सिंहासन-अधिकारके लिये परस्परमें विवाद खड़ा हुआ और भिन्न देशीय राजाओंको सहायता लेनेसे क्रमशः गोण्डवानाराज्य क्षय होने लगा। सुतरां १७३१ ई०में महाराज शाहके सिंहासन पर बैठनेके समय राज्यह्रास

हो कर सिर्फ २६ प्रदेश बच रहे। इसी समयसे मण्डलाके कृषिकार्यकी उन्नतिका सूत्रपात हुआ। राजा हृदय शाहके समय बहुतसे लोदी यहां आ कर बस गये तथा उन्हींकी चेष्टासे अनेक स्थान हराभरा दिखाई पड़ने लगा।

१७४२ ई०में पेशवाने गोण्डवाना पर आक्रमण किया। युद्धमें महाराज शाह पराजित और निहत हुए। उसके बाद पेशवाने उनके नावालिग पुत्र शिवराज शाह को सिंहासन पर बिठाया। बात यह ठहरी, कि शिवराज शाह महाराष्ट्र-सरकारको प्रतिवर्ष चार लाख रुपये देंगे। इस युद्धमें जब्बलपुरके पूर्ववर्त्ती सभी स्थान ध्वंस हो गया, मण्डलाकी वह क्षति आज भी पूरी न होने पाई है। अनन्तर नागपुरराज और पेशवाने गोण्डवानाराजके बहुतसे प्रदेश अपने अपने अधिकारमें कर लिये। शक्तिहीन होने पर भी गोंडराज सागरके महाराष्ट्र-सरदारके करतलगत न हुआ। सागर-सरदार पेशवाके प्रतिनिधि रूपमें कार्य करते थे। अन्तमें १७८१ ई०में उस सुप्राचीन राजवंशके शेष रा[illegible] महाराष्ट्रके कोपसे राज्यच्युत हुए तथा उनका अधि[illegible]प्रदेश सागरराज्यके अन्तर्भुक्त हुआ।

प्रायः १८ वर्ष तक सागरके सामन्तोंने यहां शासन किया। उनमेंसे एकमात्र सरदार वासुदेव पण्डित ही मण्डलामें स्मृतिचिह्न रख गये हैं। इस महापुरुषने आर्थिक और कायिक परिश्रमसे मण्डलाकी बहुत-सी नष्ट कीर्त्तिका उद्धार किया, किन्तु बहुत दिनों तक घरके झगड़े और पिण्डारी दस्युदलके विप्लवसे यह पुनः पूर्वावस्थाको प्राप्त हुआ।

१७९९ ई०में यह स्थान नागपुरके भोंसलेवंशके अधिकारमें था। पिण्डारी दस्यु-दलके हाथसे परित्राण पानेके लिये नागपुरराजाओंने मंडला दुर्गको सुरक्षित किया। पिंडारियोंने स्वच्छन्द भावसे मंडलाके पार्श्ववर्त्ती स्थानको लूटा था; किंतु वे कभी भी मंडलामें प्रवेश न कर सके।

१८१८ ई०में अन्तिम महाराष्ट्र-युद्धके बाद मंडला अङ्गरेजोंके हाथ सौंपा गया, किंतु दुर्गाभ्यन्तरस्थ मराठी सेनाने अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण नहीं किया। अन्तमें अङ्गरेज-सेनापतिने मार्शल (General Marshall) १८१८ ई०की २४वीं मार्चको बलपूर्वक दुर्ग पर अधिकार किया। दूसरे वर्ष भयानक दुर्भिक्ष और चेचकसे यहांके बहुसंख्यक मनुष्योंकी अकाल मृत्यु हुई। १८५७ ई०के सिपाहीविद्रोहके समय रामगढ़-शाहपुर और सोहागपुरके सरदारगण अङ्गरेजोंके विरुद्ध उठ खड़े हुए। विद्रोह दमनके बाद राज्यमें शान्ति छा जाने पर रामगढ़ और शाहपुरराज्य अङ्गरेजोंके खास तहसीलभुक्त हुआ तथा सोहागपुर रेवाराजको दिया गया। दूसरे वर्ष पुनः विद्रोहकी सूचना हुई किन्तु थोड़े ही समयमें मेल हो गया। उस समयसे अङ्गरेजोंके अधिकारमें आज तक कोई विभ्राट घटना नहीं घटी है।

यहांके अधिवासिगण प्रायः गोंड और कोल जातीय हैं। इनमें अनेक उन्नत व्यक्ति देखे जाते हैं। इन लोगोंका व्यवसाय वाणिज्य और कृषि तथा प्रधान कार्य शिल्प और युद्धविद्या है। यहां रुई बहुतायतसे उपजती है; किन्तु स्थानीय मनुष्य उत्तमरूपसे कपड़ा बीनना नहीं जानते अधिवासियोंके पहिननेके लिये यहां एक प्रकारका मोटा कपड़ा तयार हो कर बिक्री होता है। अलावा इसके मोराई विभागके खनिज लोहेसे ये लोग कुठार आदि बनाते हैं।

गोंड़ और कोल आदि शब्द देखो।

२ उक्त जिलेका दक्षिणपश्चिम उपविभाग। भू-परिमाण २०४२ वर्गमील है।

३ उक्त जिलेका विचारसदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ३५' ६" उ० तथा देशा० ८०° २४' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे १७७० फुट ऊंचा नर्मदा नदीके किनारे अवस्थित है। नगरके चारों ओर नर्मदा नदी बहती है। नदीकी बलुई जमीनकी अपूर्व शोभा देख कर गढ़मण्डलके ५७वें राजा नरेन्द्रशाहने यहां राज्य स्थापन किया। उन्हींकी कोशिशसे नदीके किनारे एक दुर्ग और उसके बीचमें राजप्रासाद बनवाया गया था। १७३९ ई०में पेशवा बालाजी बाजीरावने जब्बलपुरसे आ कर इस दुर्ग पर अपनी गोटी जमाई। उसी समयसे दुर्गके जब्बलपुर द्वारका 'फते दरवाजा' नाम पड़ा है। महाराष्ट्रोंने दुर्गका [illegible] चौर, परिखा, बुर्ज और द्वार पथादि

द्वारा शोभित कर एक प्रकार दुर्भेद्य कर दिया था। १८१८ ई०में अंगरेज-सेनापतिने मार्शल गोलावर्षण कर दुर्गको अधिकार किया। यहां नदोके किनारे १६८०से १८५८ ई०के मध्य निर्मित ३७ देवमन्दिर नजर आते हैं। मन्दिरमेंकी शिलालिपियां उन उन मन्दिरोंका निर्माणकाल बताती हैं।

मण्डलाकार (सं० त्रि०) गोल।

मण्डलाग्र (सं० पु०) मण्डलं गोलाकारं अग्रं यस्य। सुश्रुतोक्त बीस प्रकारके शस्त्रोंमेंसे एक शस्त्र। यह चोर-फाड़के काममें आता है।

मण्डलाद्दै—मध्य प्रदेशके सिवनी जिलान्तर्गत एक गण्ड-शैल। वह सिवनी नगरसे १० कोस उत्तर-पूर्वमें अव-स्थित है। इसकी ऊँचाई प्रायः २५०० फुट है।

मण्डलाधिप (सं० पु०) मण्डलस्य अधिपः। मण्डलेश्वर, नृपभेद। जिसके चार योजन तक भूमिभाग है, उन्हें राजा और जिन्हें इससे सौ गुणा अधिक भूसम्पत्ति है, उन्हें मण्डलाधिप कहते हैं।

"चतुर्योजनपर्यन्तो ह्यधिकारो नृपस्य च।
यो राजा तच्छतगुणः स एव मण्डलेश्वरः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्त पु० जन्मख० ८६ अ०)

मण्डलाना—पञ्जाब प्रदेशके रोहतक जिलेके गोहना तह-सीलके अन्तर्गत एक नगर। यह गोहना नगरसे छः मील दूर पानीपत जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां निकटवर्त्ती ग्रामोंके उत्पन्न द्रव्य बिकने आते हैं।

मण्डलायित (सं० क्ली०) मण्डलवत्चरितमिति मण्डल-क्यङ्, दीर्घ, मण्डलाय नामधातु क्त। वर्त्तुल, गोलाकार।

मण्डलाधीश (सं० पु०) मण्डलस्य अधीशः। मण्ड लेश्वर। पर्याय—मध्यम।

मण्डलिक—गिरनर या जूनागढ़के चूड़ासमा राजवंशीय-गण रावमण्डलिक कहलाते हैं। यह मण्डलिकवंश बहु प्राचीन है। इस वंशकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें एक किम्बदन्ती इस प्रकार प्रचलित है—

प्राचीनकालमें सौराष्ट्रके राजवंश वनस्थलीमें रहते थे। यहांसे वर्त्तमान जूनागढ़ पांच कोसके फासले पर है। पहले यह विस्तीर्ण स्थान जंगलसे परिपूर्ण था। एक दिन एक लकड़हारा लकड़ीकी तलाशमें जंगल आया और एक योगीको ध्यानमग्न देखा। वहां पत्थरकी बनी हुई एक प्राचीन अट्टालिका देख उस लकड़-हारेने योगिवरसे पूछा, 'प्रभो! इस अट्टालिकाके बनाने-वाले कौन हैं तथा इस स्थानका क्या नाम है?' उत्तरमें योगोके जूना नाम बतलाने पर लकड़हारा घर लौटा और सौराष्ट्रराजसे कुल बातें कह सुनाईं। इस पर राजाने जंगलको काट डालनेका हुकुम दे दिया। वनभूमिके परिष्कृत होने पर दुर्ग दिखाई देने लगा। दुर्गके प्रति-ष्ठाताका नाम मालूम न होनेके कारण ऋषिके कथनानु-सार राजाने उस दुर्गका जूनागढ़ नाम रखा और उसका जीर्णसंस्कार करनेका संकल्प किया। परवर्त्ती राजाओंमें-से एकका नाम मण्डलिक था। तदनुसार तत्परवर्त्ती राजन्यगण 'रावमण्डलिक' उ...धसे भूषित हुए।*

राजवंशावलीमें लिखा है, कि मण्डलिक-राजोंने १६ वीं सदी तक यहां वंशानुक्रमसे राज्य किया था। किंतु किसी भी इतिहासमें इस बातका उल्लेख नहीं है। शिला-लिपि आदिकी सहायतासे इस राजवंशकी जो तालिका पाई गई है वह इस प्रकार है—

राय चूड़ाचांदके पौत्र राय गारियोके प्रपौत्र राय दयाससे जूनागढ़में चूड़ासमावंशकी ख्याति फैली है। राजा दयास पत्तनराजके साथ युद्धमें ८७४ सम्वत्को मारे गये। उनके लड़के नवघन किसी अहीरसे पाले-पोसे गये थे। इन्होंने सिन्धुप्रदेश पर आक्रमण कर सुम्रराज हम्बोरको परास्त किया। उनके लड़के राजा खङ्गारने वनथलीके अहीर-सरदारको युद्धमें हराया और आप ९४१ ई०में अनहिलवाड़राजसे कासराड़-युद्धमें मारे गये। पीछे उनके लड़के मूलराजने अनहिलवाड़में शासन किया था। मूलराजके लड़के २य नवघनके

* जूनागढ़के ईसाजन्मके पहले प्रसिद्धि लाभ करने पर भी यहांके राजवंशकी उतनी ख्याति नहीं थी। मण्डलिक राजाओं-के परवर्त्तीकालमें स्वाधीन होने पर भी वे पूर्ववर्त्ती किसी समय किसी राजचक्रवर्त्तीके अधीन सामन्तराज रूपमें राज्यशासन करते थे। बहुतेरे मण्डलाधिप-अर्थसे 'मण्डलिक' वंशोपाधिकी कल्पना करते हैं। तारीख-ई-अलफी आदि मुसलमानी इतिहासमें इस राजवंशका प्राचीनत्व स्वीकृत है, पर बीच बीचमें यहां मुसलमान-राजाओंने शासन किया था।

राज्यशासन करनेके बाद उनके लड़के मण्डलिक राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने गुजरात-पति भीमदेवके साथ मिल कर १०८० संवत्में गजनीपति महमूदके विरुद्ध युद्ध किया। मण्डलिकके बाद पुत्र परम्परासे हमीरदेव, विजयपाल और ३य नवघनने राज्य किया। राजा ३य नवघन उमेताराजको अपने काबूमें लाये थे।

अनन्तर राजा २य खङ्गार राजसिंहासन बैठे। ये अनहिलवाड़पति-जयसिंह सिद्धराजके युद्धमें मारे गये। इसके बाद २य मण्डलिकने ११ वर्ष, आलनसिंहने १४ वर्ष, गणेशने ५ वर्ष, ४र्थ नवघनने ६ वर्ष, ३य खङ्गारने ४६ वर्ष, मण्डलिकने २२ वर्ष और ५म नवघनने राज्य किया था। नवघनके बाद राजा महीपालदेवने ३४ वर्ष शासन किया। आप सोमनाथपत्तनमें एक मन्दिर बनवा गये हैं। १२७८ ई०में ४र्थ खङ्गार सिंहासन पर बैठे। सोमनाथ-मन्दिरका संस्कार और दिउ-अधिकार उनके जीवनकी प्रधान घटना है। इन्हींके राजत्वकालमें मुसलमान सेनापति शामस खांने जूनागढ़ पर अधिकार जमाया। कुछ वर्ष मुसलमानी आधिपत्यकाके बाद १३३३ ई०में जूनागढ़ पुनः मण्डलिक-राजवंशके हाथ लगा। उसी साल ४र्थ खङ्गारके पुत्र जयसिंहदेव राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। पीछे यथाक्रम मोकलसिंह (१३४४ ई०) मुगलदेव (१३५६ ई०) महीपालदेव (१३७१ ई०), ४र्थ मण्डलिक (१३७६ ई०) और २य जयसिंहदेव (१३९३ ई०) राजा हुए। १४११ ई०में गुर्जरपति मुजफ्फर खांने इन्हें परास्त किया।

१४१२ ई०में ५म खङ्गार सिंहासन पर बैठे। अहमदशाहके साथ इनका संग्राम हुआ। १४३२ ई०में राव ५म मण्डलिक जूनागढ़के तख्त पर आसीन हुए। इन्होंने १४७१ ई०में महमूद बिगाड़ाकी अधीनता स्वीकार कर अपनी जानकी रिहाई पाई।

अहमदाबाद-राजाओंसे पराजित हो कर चूड़ासमा राजाओंने एक सदी तक जागीरदार सामन्तरूपमें राज्य-शासन किया था। उन राजकुमारोंके नाम नीचे दिये जाते हैं,—

१४७२ ई०में ५म मण्डलिक भ्राता भूपत् प्रथम जागीरदार ठहराये गये। उनके पुत्र ६ठे खङ्गार १५०३ ई०में और खङ्गारके पुत्र ६ठे नवघन १५२४ ई०में पितृसिंहासन पर बैठे। १५५१ ई०में श्रीसिंह जागीरदार हुए। इस समय सम्राट् अकबरशाहने गुजरात पर आक्रमण किया। अनन्तर १५८५—१६७६ ई० तक ७म खङ्गारने जागीरदारीका भोग किया था।

मण्डलित (सं० त्रि०) मण्डलान्वित, गोल किया हुआ।

मण्डलिन् (सं० पु०) मण्डलं कुण्डलं कुण्डलाकारेण शरीरवेष्टनमस्यास्तीति मण्डल-इनि। १ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप सुश्रुतमें लिखा है, कि सर्प पांच श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इनमेंसे मण्डली द्वितीय श्रेणीका है। जो सब सर्प विविध प्रकारके मण्डलाकारसे चित्रित, स्थूल और मन्दगामी तथा दीप्तसूर्यकी तरह आभाविशिष्ट हैं, उन्हें मण्डली सर्प कहते हैं। इस जातिके सर्प ये सब हैं—

आदर्शमण्डल, श्वेतमण्डल, रक्तमण्डल, चित्रमण्डल, पृषत, रोध्रपुष्प, मिलिन्दक, गोनस, वृद्धगोनस, पनस, महापनस, वेणुपत्रक, शिशुक, मदन, पालिहिर, पिंगल, तन्तुक, पुष्प, पाण्डु, षड़ंगो, अग्निक, वभ्रु, कषाय, कलुष, पारावत, हस्ताभरण, चित्रक और एणीपद।

सभी प्रकारके सर्पविषका वेग सात प्रकारका है। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु हैं। विष शरीरमें प्रवेश करके पहले रसधातुको दूषित करता है। इस धातुके दूषित होनेसे रक्तधातु दूषित होता है, इस प्रकार धीरे धीरे सातों धातु दूषित हो जाते हैं। इस प्रकार एक एक धातु दूषित करनेको विषका एक एक वेग कहते हैं।

मण्डलीके विषके प्रथम वेगमें शोणित दूषित हो कर अत्यन्त शीतल हो जाता है। सारे शरीरमें जलन होती है और शरीर पीला पड़ जाता है। द्वितीय वेगमें मांस दूषित हो कर शरीर अत्यन्त पीतवर्ण हो जाता है, जलन देती है और काटा हुआ स्थान सूज जाता है। तृतीय वेगमें मेद दूषित होता है तथा तत्प्रयुक्त दृष्टिस्थिर, तृष्णा दृष्टस्थानमें क्लेद और घर्म आदि उपद्रव होते हैं। चतुर्थवेगमें विष कोष्ठदेशमें प्रवेश कर ज्वर उत्पन्न करता है। पञ्चम वेगमें सारे शरीरमें जलन होती है।

षष्ठ वेग मज्जामें प्रवेश और ग्रहणीको दूषित करता है। इससे शरीरके गौरव, अतिसार और हृदयकी पीड़ा और मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं। सप्तम वेग शुक्रके मध्य प्रवेश कर व्यान वायुको अत्यन्त कुपित करता है तथा लोमकूप आदि सूक्ष्म द्वारसे कफ निकलता, पृष्ठ-भङ्ग होता, सभी इन्द्रियोंका कार्य शिथिल हो जाता, राल और स्वेद बहुत निकलता तथा श्वासरोध होता है। (सुश्रुत कल्प स्था० ४ अ०) विशेष विवरण सर्प शब्दमें देखो।

२ विड़ाल, बिल्ली। ३ नेवलेका जातिका बिल्लीकी तरहका एक जन्तु। इसे बंगालमें खटाश और युक्तप्रान्तमें कहीं कहीं सेंधुवार कहते हैं। ४ वटवृक्ष। ५ गोनश सर्प। ६ सूर्य।

मण्डली (सं० स्त्री०) मण्डलमस्त्यस्या इति अर्श आदित्वादच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ दूर्वा, दूब। २ गुड़ूची। ३ गोष्ठी, समूह।

मण्डलीक (सं० पु०) एक मण्डल या बारह राजाओंका अधिपति।

मण्डलेश (सं० पु०) मण्डलस्य ईशः। एक मंडल या १२ राजाओंका अधिपति।

मण्डलेश्वर (सं० पु०) मण्डलेश देखो।

मण्डलेश्वर—मध्यभारतके इन्दोर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° ११´ उ० तथा देशा० ७५° ४२´ पू० नर्मदाके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजारके करीब है। माऊसे अशीरगढ़ आनेमें इसी स्थान हो कर जाना पड़ता है। नगर और उसके चारों ओरकी जमीन समुद्रपृष्ठसे ६५० फुट ऊंची है। यहां पर नर्मदाका व्यास प्रायः ५ सौ गज होगा। वसन्तकाल छोड़ कर अन्य किसी भी समय यहांसे नाव द्वारा नदी पार नहीं कर सकते। नगर चारों ओर मट्टीकी दीवारसे घिरा है। उसके मध्यभागमें एक किला है। एक समय उस किलेमें अङ्गरेजी सेना रहती थी। इन्दोरके अंगरेज रेसिडेण्टके राजकीय सहकारी (Political Assistant) इस दुर्गमें रह कर अङ्गरेजाधिकृत निमारप्रदेश तथा अङ्गरेजोंके हाथ समर्पित होलकर राजके कुछ प्रदेशोंका शासन करते थे। १८६७ ई०में अङ्गरेजराजने होलकर-राजके दाक्षिणात्य विभागके कुछ छोटे राज्योंके बदलेमें उन्हें मण्डलेश्वर छोड़ दिया। अभी इस नगरसे होलकरका अधिकृत निमारप्रदेश शासित होता है। उक्त दुर्ग अभी कारागारमें रूपान्तरित हुआ है। कर्णेल किटिङ्ग इस नगरकी बहुत कुछ उन्नति कर गये हैं।

मण्डहारक (सं० पु०) मण्डं हरति आहरति गृह्णातीति हृ (ण्वुल्-तृचौ। पा ३।१।१३३) सुरासम्पादनार्थं मंडग्रहणादस्य तथात्वं। शौण्डिक, कलवार।

मण्डा (सं० स्त्री०) मंडः कारणत्वेनास्ति अस्या इति अर्श आदिभ्योऽच्। १ सुरा। २ आमलकी।

मण्डिक (सं० पु०) भारतका पूर्वांशवर्त्ती जनपदभेद। (महाभारत वन० २५३ अ०)

मण्डित (सं० त्रि०) मड़ि-कर्मणि-क्त। १ भूषित, सजाया हुआ। २ आच्छादित, छाया हुआ। ३ पूरित भरा हुआ। (पु०) ४ बौद्धगणाधिपविशेष।

मण्डी—पञ्जावप्रदेशके अन्तगत एक सामान्तराज्य। यह अक्षा० ३१° २३´ से ३२° २४´ उ० तथा देशा० ७६° ४०´ से ७७° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें छोटा बाङ्गाहल, पूर्वमें नागू पहाड़, दक्षिणमें सुकेत और पश्चिममें काङ्गड़ा जिला है। यह राज्य ५४ मील लंबा और ३३ मील चौड़ा है। भू-परिमाण १२०० वर्ग-मील है।

यह राज्य पर्वतकी अधित्यकाभूमिमें अवस्थित है। इसके दोनों ही पार्श्वमें उच्च गिरिश्रेणी हैं। उसका गोघरका धार नामक शृङ्ग ७००० फुट और सिकेन्दरका-धार ६३५० फुट ऊँचा है। किन्तु और सभी जगह उसकी ऊंचाई ५ हजार फुटसे अधिक नहीं होगी। यह स्थान समधिक उर्वरा है। वन्यविभागमें शिकारोपयोगी नाना जन्तु और पक्षी हैं। अधिवासिगण स्वभावतः ही बलिष्ठ हैं।

यहांके सामन्तगण बङ्गालके सेनराजवंशीय हैं, किन्तु अभी वे अपनेको चन्द्रवंशीय राजपूत बतलाते हैं। सुकेत-राज्यके किसी राजवंशधरने मण्डीमें आ कर राज्य स्थापन किया। तभीसे वे मण्डियाल कहलाने लगे। राजाकी उपाधि सेन है और उनके स्वसम्पर्कीय अपरापर राज-पुरुषोंकी उपाधि सिंह।

राजा बाहुसेन नामक एक सुकेत राजभ्राताने अपने

बड़े भाईके साथ कलह करके भ्रातृराज्यका परित्याग किया और १२वीं सदीके शेष भागमें अपने अदृष्टको परीक्षाके लिये घरसे निकल पड़े। वे पहले कुलूराज्यमें और पीछे मङ्गलोरमें जा ठहरे। यहां एक समय उनके ११वीं पीढ़ाके पूर्वजोंका वास था। उक्त वंशके राजा वाणो * सकोराधिपतिको मार कर सफोर-सिंहासन पर बैठे। वहांसे वाणो वितस्ता-तीरवर्त्ती भीन् नगरमें अपना प्रासाद और राजधानी उठा ले गये। यह भीन-नगर वर्त्तमान मण्डीनगरसे ४ मील उत्तरमें अवस्थित है। अन्तमें बाहुसेनसे १९वीं पीढ़ी नीचे राजा अजवर सेनने १५२७ ई०में मण्डीनगरको बसाया था। इन्हींसे मण्डीमें प्रकृत सामन्तराज्य प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद सुकेत और मण्डीवंशमें लगातार युद्धविग्रहादि होने लगा।

१७वीं शताब्दीके शेष भागमें १०म सिख गुरु गोविन्दसिंह मण्डीको देखने आये। उनकी आगमन-वार्त्ता सिख-इतिहासमें अलौकिक बतलाई गई है। प्रवाद है, कि गुरुगोविन्द सिंह कुलूराजसे लौह-पिञ्जरमें आवद्ध हुए। वे अपने योगवलसे उस लौह-पिञ्जरको मण्डीमें उड़ा लाये। राजा ईश्वरीसिंहके राज्यकालमें (१७७९-१८२६) मण्डीराज्य यथाक्रम कटोचराज, गुरखा और लाहोरपति रणजितसिंहके अधीन रहा। १८४० ई० तक मण्डीराजने लाहोर-दरबारमें कर दिया था। पीछे सेनापति मेनचुराने महाराज खड्गसिंहके लिये मण्डी अधिकार किया। इस युद्धमें कमालगढ़ दुर्ग जीतनेमें सिख सेनाको बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। आखिरमें राजाने कोई उपाय न देख लाहोरराजके निकट आत्मसमर्पण किया। किन्तु लाहोरराजकी अर्थलोभी दुराकाङ्क्षा देख कर उन्होंने अङ्गरेजोंकी शरण ली। सोब्राउन युद्धके बाद अङ्गरेजोंके साथ उनका अच्छा सद्भाव हो गया। १८४६ ई०में लाहोरकी सन्धिके बाद यह राज्य वृटिश सरकारके हाथ लगा। वृटिशराजने पुनः यह राज्य वर्त्तमान राजाके पिताको समर्पण किया। शर्त्त यह ठहरी, कि राजा अपने खर्चसे स्वराज्यमें पथ विस्तार करेंगे तथा वाणिज्यकी आमदनी रफ्तनीका कोई शुल्क ग्रहण न कर सकेंगे। १८५१ ई०में बलवीरकी मृत्युके बाद उनके लड़के विजयसेन जिनकी उमर सिर्फ चार वर्ष की थी, राज्याधिकारी हुए। उनकी नाबालिगी तक वजीरने राजकार्य्य अच्छी तरह चलाया। १८६६ ई०में बालिग हो कर वे इस धराधामको छोड़ परलोकको सिधारे। पीछे उनके जारज पुत्र भवानीसेन उत्तराधिकारी बनाये गये। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। वृटिश सरकारसे इन्हें ११ तोपोंकी सलामी मिलती है।

इस राज्यमें मंडी नामक १ शहर और १४६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या दो लाखके करीब है। राज्यकी आय चार लाखसे ऊपर है। एक लाख रुपये वृटिश सरकारको करमें देने पड़ते हैं। विद्याशिक्षामें यह राज्य बहुत पीछा पड़ा हुआ है। अभी कुल मिला कर बारह स्कूल हैं। स्कूलके अलावा King Edward vii नामक एक अस्पताल भी है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० ३१° ४३´ उ० तथा देशा० ७६° ५८´ पू० पठानकोटसे १३ मील और शिमलासे ८८ मील दूर पड़ता है। जनसंख्या आठ हजारसे ऊपर है। १५२७ ई०में मंडीके राजा अजबरसेनने इसे बसाया। शहरमें सुन्दर कारुकार्य्यविशिष्ट देवालय तथा अन्यान्य भवन है। यहांकी नदीके ऊपर 'एम्प्रस' नामक एक पुल है। शहरमें एङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक अस्पताल है।

मण्डीयान—अयोध्याप्रदेशके लखनऊ जिलान्तर्गत एक नगर। यहां पहले लखनऊके नवाबकी सेना रहती थी। अयोध्याके छठे नवाब सादत अली खांने इस नगरको बसाया। सिपाहीविद्रोहके समय यहां कम्पनीकी सेना रखी गई थी। अभी वह मकान टूट फूट गया है, केवल दो एक प्रवेशद्वार और उसके भीतरमेंके धर्ममन्दिरका अंश दृष्टिगोचर होता है। अभी इसके चारों ओर धानकी खेती होती है।

* प्रवाद है, कि वाणवृक्षके नीचे जन्म होनेके कारण ये जनसाधारणमें वाणो नामसे प्रसिद्ध हुए। उनकी माता जब पूर्णगर्भा थीं, तब पार्श्ववर्त्ती किसी राजाके अत्याचारसे रानीमाताको राज्य छोड़ कर भागना पड़ा था। राहमें ही वाणका जन्म हुआ था।

अभी इस नगरकी पूर्वश्री जाति रहीं। यह अभी गण्डग्राममें परिणत हो गया है। कहते हैं, कि पहले यहां बहुत विस्तृत जंगल था। उस जंगलमें मण्डल नामक एक ऋषि रहते थे। उन्हींके नामानुसार नगरका नामकरण हुआ था।

पहले यहां भर जातिका वास था। पीछे सैयद सलार सेनापति मालिक आदमने उन्हें मार भगाया। तभीसे यह नगर शखोंके दखलमें रहा। उन्होंने यहां प्रायः १५० वर्ष राज्य किया था। अनन्तर मौलीके रक्षेला-चौहान वंशीय राजा राजसिंहने शेखवंशका मूलोच्छेद करके यह स्थान अपने ब्राह्मण और कायस्थ कर्मचारियों-को ब्रह्मोत्तर और महायाणमें दान कर दिया। आज भी शेखोंके स्मृतिस्वरूप यहां प्रतिवर्ष सैयद सलारके उद्देश-से एक मेला लगता है।

मण्डीलक (सं० क्ली०) गोधूमचूर्णसे प्रस्तुत पिष्टक-भेद।

मण्डु (सं० पु०) ऋषिभेद।

मण्डूक (सं० पु०) मण्डयति भूषयति जलाशयमिति मड़ि-(शलिमण्डिभ्यामूकण्। उण् ४।४२) इति ऊकण्। १ भेक, मेढ़क। भेक देखो। २ शोणक, सोनापाठा। ३ मुनिविशेष। ४ प्राचीनकालका एक बाजा। ५ एक प्रकारका नृत्य। ६ घोड़ेकी एक जाति। ७ दोहा छन्द-का पांचवां भेद। इसमें १८ गुरु और १२ लघु अक्षर होते हैं। ८ रुद्रतालके ग्यारह भेदोंमेंसे एक।

मण्डूकपर्ण (सं० पु०) मण्डूकाकृति पर्णमस्य। श्योणाक वृक्ष।

मण्डूकपर्णी (सं० स्त्री०) मण्डूकपर्ण, गौरादित्वात् ङीष्। १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ ब्राह्मी, ब्राह्मी बूटी। ३ आदित्यभक्ता। ४ ओषधिविशेष। पर्याय—भेकी, मण्डूकी, मूलपर्णी, मण्डूकपर्णिका। गुण—लघु, स्वादु-पाक, शीतल। ५ महौषधि।

मण्डूकमातृ (सं० स्त्री०) मण्डूकस्य मातेव, मण्डूक-पोषकत्वादस्यास्तथात्वं। १ ब्राह्मी बूटी। २ भेकमाता, मेढ़ककी मां।

मण्डूकसरस (सं० क्ली०) मण्डूक प्रचुरं सरः जातौ अच् समासान्तः। सरोवरभेद।

मण्डूका (सं० स्त्री०) मण्डूक-स्त्रियां टाप्। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

मण्डूकालुक—ब्रह्मखण्डवर्णित स्वर्गदेशके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। (भ० ब्रह्मखण्ड ५७ अ०)

मण्डूकी (सं० स्त्री०) मण्डूक-स्त्रियां ङीष्। १ आदित्य-भक्ता। २ ब्राह्मी। ३ क्षुपविशेष। ४ धृष्टयोषित, निर्लज्ज औरत।

मण्डूकेश—फल्गुके किनारे अवस्थित शिवलिङ्गभेद। शिवपुराणके मतमें इस लिङ्गके दर्शन करनेसे सर्वसिद्धि लाभ होती है। (शिवपु० ज्ञानस० ३८ अ०)

मण्डूर (सं० पु० क्ली०) मड़ि ऊरच्। १ लौहमल, गलाए हुए लोहेकी मल। पर्याय—शिङ्घाण, सिंहान, सिंहाण। (अमर और भरत)

मण्डूरको शोध कर व्यवहार किया जाता है। बिना शोधा हुआ मण्डूर बहुत हानिकारक है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि गलाए हुए लोहेके मलका नाम मण्डूर है। पर्याय—लौह, सिंहाणिका, किट्ट और सिंहाण। इसमें लोहेका ही गुण माना है।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसके शोधनका विषय इस प्रकार लिखा है,—लोहेमें जो सब गुण हैं वही सब गुणलौह मण्डूरमें भी है। सौ वर्षसे ऊपरका मण्डूर उत्तम, ८० वर्षका मध्यम और ६० वर्षसे ऊपरका मण्डूर अधम माना गया है। ये तीन प्रकारके मण्डूर औषधके काममें लाये जा सकते हैं। इससे कमका मण्डूर विषसदृश है। बहेड़ेकी लकड़ीमें जला कर सात बार गोमूत्रमें डालनेसे मंडूर शुद्ध हो जाता है। इसके सेवनसे ज्वर, प्लीहा, कमला आदि रोग जाते रहते हैं। मण्डूरसे मुण्ड-लौह दशगुण, मुण्डसे तीक्ष्ण लौह भी दश गुण, मुण्डसे कान्तलौह लक्षगुण फलप्रद है। (रसेन्द्रसार०)

विशेष विवरण लौह शब्दमें देखो।

मण्डूरवज्रवटक (सं० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली-पीपल, उसका मूल, चई, चितामूल, सोंठ, मिर्च, देवदारु, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, विड़ङ्ग और मोथा प्रत्येक २४ तोला, कुल मिला कर जितना हो उससे दो गुणा मण्डूर मिला कर अष्टगुण गोमूत्रमें पाक करे। गाढ़ा होने पर दो तोले भरकी गोली बनावे। अनुपान

मट्ठा है। इसके सेवनसे पाण्डु, मन्दाग्नि, अरुचि, अर्श, ग्रहणी दोष, ऊरुस्तम्भ, कृमि, प्लीहा, आनाह और गलरोग आराम होता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह पाण्डुरोगाधिकार)

मण्डोद (सं० पु०) सह्याद्रिखंड वर्णित सप्तसागरमेंसे एक। (सह्या० २।४१)

मण्डोदक (सं० क्ली०) मण्ड इव उदकमस्य, मण्डमिश्रितमुदकमत्रेति वा। १ चित्रराग। २ विचित्रवर्ण। ३ आतर्पण।

मत् (सं० अव्य०) अनहमहं मद्भवतीति, अस्मच्छब्दात् च्वि प्रत्यये कृते तल्लुकि अस्मद् शब्दस्य मदादेशः। पहले जो आमित्व नहीं था, पीछे वही आमित्वभाव, पहले मैं जो नहीं था, वही मैं।

मतंगा (हिं० पु०) बङ्गाल और बरमामें मिलनेवाला एक प्रकारका बांस। इसके पोर लंबे और सुदृढ़ होते हैं। इसको दीमक नहीं खाती।

मतंगी (हिं० पु०) हाथीका सवार।

मत (सं० क्ली०) मन्-भावे क्त। १ सम्मत, राय। पर्याय—छन्द, अभिप्राय, आकुत, भाव, आशय। २ धर्म, पन्थ। ३ भाव, आशय। ४ ज्ञान। ५ पूजा। (त्रि०) ६ पूजित, जिसकी पूजा की गई हो। ७ कुत्सित, खराब। (क्रि० वि०) ८ निषेधवाचक शब्द, नहीं।

मतक (सं० त्रि०) मतः-समीकृतः तत्समीप इत्यर्थे चतुरर्थ्यादित्वात् क। १ जहां पर भूमि समीकृतकी गई है उसके समीप। २ मत देखो।

मतक—आसामप्रदेशके लखिमपुर जिलेका एक जनपद। यह ब्रह्मपुत्रके दाहिने और बाएं किनारे अवस्थित है। इसकी पूर्वी सीमा पर सिंपो पहाड़ और दक्षिणमें बूढ़ीदहिङ्ग नदी है। आहम राजाओंके समय यह स्थान बहुत उन्नत दशामें था। उस समय यहां पर आहम जातिकी ही मतक वा मोयामरिया नामक एक श्रेणीका वास था और वे सभी वैष्णवधर्मावलम्बी थे। आदमराजोंने उन्हें दुर्गापूजामें दीक्षित करनेकी अनेक वार चेष्टा की थी जिससे वे सबके सब बागी हो गये थे। राजा गौरीनाथके समय व लोग निम्न आसाम तक चढ़ आये थे। आखिर वृटिश सेनाकी सहायतासे गौरीनाथने उन्हें मार भगाया था। युद्धमें मतकोंने फिर दूसरी बार स्वाधीनता अवलम्बन की और अपनेमेंसे किसी एकको सरदार बना कर 'बड़े सेनापति' उसकी उपाधि दी। १८१५ ई०में ब्रह्मसेनाके आसामसे विताड़ित होने पर वृटिश गवर्मेण्टने मतक-सरदारको एक सामन्त बनाया था। किन्तु १८३९ ई०में उनको मृत्यु होने पर उनके उत्तराधिकारीके साथ वृटिशगवर्मेंटका सद्भाव नहीं रहा। इस कारण कुल स्थान वृटिशसरकारके हाथ लगा। अभी मतकराज्य नहीं है, केवल कुछ मौजा उनके अधीन रह गया है।

मतङ्ग (सं० पु०) माद्यति माद्यत्यनेन वेति मद् अङ्गच्, दस्य त। १ मेघ, बादल। २ मुनिभेद। ३ दानवभेद। ४ राजर्षिभेद, एक ऋषिका नाम जो शबरीके गुरु थे। अनुशासन पर्वमें लिखा है, कि ये एक नापितके वीर्यसे एक ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। किसी समय युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे पूछा था, 'क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किस कार्य द्वारा ब्राह्मणत्व लाभ कर सकता है? तपस्या, सत्कार्य और शास्त्रज्ञान इनमेंसे कौन क्षत्रियादि तीनों वर्णके लिये ब्राह्मणत्वलाभमें उपयोगी है? कृपा कर सविस्तार कह सुनाइये।'

उत्तरमें भीष्मने कहा, धर्मराज! क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको ब्राह्मणत्वलाभ होना बहुत कठिन है। ब्राह्मणत्व सबसे श्रेष्ठ है। उसके लिये लाखों वर्ण तक अनेक जन्म धारण करके तपस्या करनी पड़ती है। तुम्हें एक पुराना इतिहास कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो, सब संशय दूर हो जायगा।

"पूर्वकालमें एक ब्राह्मण-स्त्रीके गर्भ और शूद्रके वीर्यसे एक बालक उत्पन्न हुआ। पुत्रका नाम था मतङ्ग। मतङ्ग सर्वगुणसम्पन्न थे। ब्राह्मणने मतङ्गको अपना ही औरसजात समझ कर उसके जातकर्मादि सभी संस्कार किये। एक दिन ब्राह्मणने मतङ्गसे कहा, 'मैं एक यज्ञका अनुष्ठान करूंगा, तुम यज्ञीय सभी द्रव्य ले आवो। मतङ्ग एक तेज गधेके रथ पर सवार हो पिताके लिये यज्ञकी सामग्री लाने चल दिये। किन्तु जिस राहसे उन्हें जाना था उस राहसे गधा न जा कर किसी दूसरे राहसे जाने लगा। इस पर क्रोधमें आ कर मतङ्गने उसकी नाक पर दो चार कोड़े जमाये। उस गधेकी माता गधी

पुत्रकी नाक पर सख्त चोट लगी है, देख कर करुण-भावसे बोली, 'वत्स ! दुःखित मत होना, वह चाण्डाल है, इस कारण निष्ठुर है, ब्राह्मण कभी भी निष्ठुर नहीं हो सकते। ब्राह्मण जगत्के मित्र हैं। वे सभी भूतोंके आहार्यदाता और शासनकर्त्ता हैं। यह निर्दय हृदय जैसे वीर्य्यसे उत्पन्न हुआ है, वैसा ही कार्य करता है।'

गधीका यह कर्कश वाक्य सुन कर मतङ्गने उससे पूछा, 'कल्याणि ! मेरी जननी किस प्रकार दूषिता हैं जिससे मैं चण्डाल हो गया हूं तथा जिस कारण मेरा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है छल कपट छोड़ कर साफ साफ मुझसे कहो, डरो मत।' इस पर गधी बोली, 'तुम कामोन्मत्ता ब्राह्मणीके गर्भसे नापितके वीर्य्यसे उत्पन्न हुए हो, इसी कारण तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है और तुम चण्डाल हो गये हो।

अनन्तर मतङ्गने घर आ कर पितासे सब समाचार कहे और ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेके लिये घोर तपस्या करने लगे। इनकी तपस्यासे देवगण डर गये। इन्द्र बार बार आ कर इन्हें वरका प्रलोभन देने लगे, पर मतङ्ग ब्राह्मणत्वके सिवा और कोई वर लेनेको राजी न हुए। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। एक दिन इन्द्रने पुनः आ कर उनसे कहा, 'वत्स ! ब्राह्मण्य नितान्त दुर्लभ है। तुम कितनी ही चेष्टा क्यों न करो, ब्राह्मणत्व नहीं पा सकते हो। जीव तिर्यक योनिसे मनुष्यत्व लाभ करके पहले पुक्कश वा चण्डालयोनिमें उत्पन्न होता है, सहस्र वर्ष उस निकृष्ट योनिमें परिभ्रमण कर शूद्रत्व लाभ करता है। पीछे तीस हजार वर्ष बीत जाने पर वैश्यत्व, उसके बाद एक लाख अस्सी हजार वर्षके बाद क्षत्रियत्व और क्षत्रियत्वलाभके एक सौ अस्सी लाख वर्षके बाद पतित ब्राह्मणत्व लाभ होता है। अनन्तर उस पतित ब्राह्मणकुलमें दो सौ साठ करोड़ वर्ष परिभ्रमण कर अस्त्र-जीवि-ब्राह्मणकुलमें जन्म होता है। इसके बाद विशुद्ध ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। अतएव तुम ब्राह्मण भिन्न कोई और वर मांगो उसे मैं देता हूं। ब्राह्मण्य तुम्हारे लिये दुर्लभ है।

मतङ्गको जब ब्राह्मणत्वलाभकी आशा न रही तब उन्होंने हताश हो इन्द्रसे कहा, 'देवराज ! अब मुझे ऐसा पक्षी बना दीजिये, जिसको सभी वर्णवाले पूजा करें ; मैं जहां चाहूं, वहां जा सकूं और मेरी कीर्त्ति अक्षय हो।' इन्द्रने उन्हें यही वर दिया और वे छन्दोदेवके नामसे प्रसिद्ध हुए। कुछ दिनोंके उपरान्त उन्होंने शरीरत्याग कर उत्तम गति प्राप्त की।"

(भारत अनुशासनप० २६-३० अ०)

मतङ्गज (सं० पु०) मतङ्गः मेघ-इव जायते तदाख्य मुनेर्जातो वा जन-ड। हस्ती, हाथी।

मतङ्गतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

मतङ्गदेश—कामरूपके वह्निकोणमें अवस्थित जनपदभेद।

मतङ्गव्यापी (सं० स्त्री०) तीर्थभेद।

(भारत अनुशा० ३० अ०)

मतङ्गाश्रम—गया जिलेके फल्गुनदीके बाएं किनारे अवस्थित पुण्यस्थान। (महाभा० २।३१।२) भविष्य ब्रह्मखण्डके मतसे यही दण्डकारण्य है।

मतन (मर्त्तन वा मार्त्तण्ड)—काश्मीरराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन भग्न देवालय। यह अक्षा० ३३° ४२' उ० तथा देशा० ७५° २१' पू०के मध्य अवस्थित है। राजतरङ्गिणीमें यह रामपुर स्वामीके नामसे वर्णित है। इसीके समीप एक समय एक जनाकीर्ण बड़ा नगर था। यह मन्दिर मार्त्तण्ड वा सूर्य्यके उद्देश्यसे उत्सृष्ट है। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमके मतसे ३७० ई०में यह मन्दिर बनाया गया है, किन्तु गठन-प्रणाली देखनेसे उससे भी पुराना मालूम होता है। बहुतोंका विश्वास है, कि काश्मीरके मध्य अभी जो सब प्राचीन कीर्त्तियां वर्त्तमान हैं उनमेंसे यही सर्वप्राचीन है। केवल प्राचीन ही नहीं, वरन् शिल्पनैपुण्यमें भी यह काश्मीरमें बेजोड़का है। यहांका प्राकृतिक दृश्य ऐसा चमत्कार है, कि कोई कोई यूरोपीय भ्रमणकारी इस स्थानको देख कर मुक्तकण्ठसे कह गये हैं, कि ऐसी सुन्दर प्राकृतिक शोभा संसारमें और कहीं भी नहीं है।

यहांके लोगोंका विश्वास है, कि यह मन्दिर पाण्डु-वंशकी कीर्त्ति है। मन्दिर खूब ऊंचा है। इसके दो पार्श्व मुखशाली और चार पार्श्व चतुरस्र स्तम्भसे मण्डित है। समस्त मन्दिर-भूमिकी लम्बाई २२० और चौड़ाई १४२ फुट होगी। वर्त्तमान भग्न मन्दिरके मध्य

कसौटीकी बनी हुई बड़ी बड़ी देवमूर्त्तियां और विचित्र शिल्पखचित स्तम्भश्रेणी विराजित हैं। मन्दिरके पास ही एक प्रसिद्ध प्रस्रवण है।

मतलब (अ० पु०) १ तात्पर्य्य, अभिप्राय। २ अर्थ, मानी। ३ अपना हित, निजका लाभ। ४ सम्बन्ध, वास्ता। ५ उद्देश्य, विचार।

मतलबी (अ० वि०) स्वार्थी, खुदगरज।

मतल्लिका (सं० स्त्री०) मतं मतिमलति भूषयति ण्वुल् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ प्रशस्त, उमदा। २ छन्दोभेद।

मतवाला (हिं० पु०) १ उन्मत्त, पागल। २ मदमस्त, नशे आदिके कारण मस्त। ३ जिसे अभिमान हो, व्यर्थ अहंकार करनेवाला। (पु०) ४ वह भारी पत्थर जो किले या पहाड़ परसे नीचेके शत्रुओंको मारनेके लिये लुढ़काया जाता है। ५ कागजका बना हुआ एक प्रकारका गावदुमा खिलौना। इसके नीचेका भाग मिट्टी आदि भरी होनेके कारण भारी होता है। जब यह फेंका जाता है, तब सदा खड़ा ही रहता है, जमीन पर लोटता नहीं।

मतानुज्ञा (सं० स्त्री०) न्यायदर्शनोक्त निग्रहस्थानभेद। न्याय दर्शनमें जो सोलह पदार्थ माने गये हैं, निग्रह उनमेंसे एक है। इस निग्रह स्थानके भी फिर २२ प्रकार हैं। इसमें अपने पक्षके दोष पर विचार न करके बार बार विपक्षीके पक्षके दोषका ही उल्लेख किया जाता है।

मतानुयायी (सं० पु०) किसीके मतके अनुसार आचरण करनेवाला, किसीके मतको माननेवाला।

मतारी—सिन्धुप्रदेशमें हैदराबाद जिलेके अन्तर्गत हाला उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २५° ३६´ उ० तथा देशा० ६८° २६´ पू० हाला शहरसे २० मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या ६६०८ है। यहां तहसीलदारकी सदर कचहरी, धर्मशाला, सरकारी स्कूल और थाना है। नाना प्रकारके शस्य, तेलहन बीज, रूई, चीनी और कपड़ेका व्यवसाय होता है। प्रवाद है, १३२१ ई०में यह बसाया गया है। यहां सौ वर्षकी प्राचीन एक सुन्दर जुम्मा मसजिद और उसके पास दो साधुकी कब्र हैं। प्रतिवर्ष आश्विन-मासमें मसजिदके सामने मेला लगता है। इस मेलेमें दूर दूर देशके मुसलमान आते हैं।

मतावलम्बी (सं० पु०) किसी एक मत, सिद्धान्त या सम्प्रदाय आदिका अवलम्बन करनेवाला। जैसे—बौद्ध-मतावलम्बी।

मति (सं० स्त्री०) मन्यतेऽनयेति इति मन-क्तिन्। १ बुद्धि, समझ। शुभ अशुभके भेदसे बुद्धि दो प्रकारकी है। बुद्धि देखो। २ इच्छा, ख्वाहिश। ३ स्मृति। ४ आर्य। ५ शाकभेद। (त्रि०) ६ मेधावी, बुद्धिमान्।

गरुड़पुराणमें मतिकर औषधका विषय इस प्रकार लिखा है,—पाठा, दो प्रकारका जीरा, कुष्ठ, अश्वगन्धा, अजमोदा, वच, त्रिकटु और लवण इन सब द्रव्योंको अच्छी तरह पीस कर ब्राह्मीशाकके रसमें भावना दें। पीछे उस चूर्णका घृत और मधुके साथ सेवन करे, तो मति वा बुद्धि बढ़ती है।

"पाठा द्वे जीरके कुष्ठमश्वगन्धाज मोदकम्।
वचा त्रिकटुकञ्चैव लवणं चूर्णमुत्तमम्॥"

मतिकर्मन (सं० क्ली०) १ बुद्धिकार्य, समझका काम। २ मानसिक कार्य, दिमागका काम।

मतिगति (सं० स्त्री०) १ मनोभाव। २ चिन्ताका भाव।

मतिगर्भ (सं० त्रि०) बुद्धिमान्, चतुर।

मतिचित्र (सं० पु०) अश्वघोषका नामान्तर।

मतिच्छन्न (सं० क्ली०) भ्रष्टबुद्धि, कुमति।

मतिदर्शन (सं० क्ली०) वह शक्ति जिसके अनुसार दूसरेकी योग्यता या भावोंका पता लगता है।

मतिदा (सं० स्त्री०) मतिं ददातीति दा-क, स्त्रियां-टाप्। १ ज्योतिष्मती लता। २ शिमड़ी क्षुप, सेमल। (त्रि०) ३ मतिदाता, बुद्धिदाता।

मतिध्वज (सं० पु०) शाक्यपण्डितका भतीजा।

मतिनार (सं० पु०) नृपभेद।

मतिनिश्चय (सं० पु०) बुद्धिकी निश्चयता, मतिकी स्थिरता।

मतिपुर—चीनपरिव्राजक यूएनचुवंग-वर्णित एक प्राचीन जनपद। बहुतसे पुराविदोंका कहना है, कि रोहिलखण्डमें बिजनोरके निकट जो मड़ावर नगर है, वही प्राचीन मतिपुरकी राजधानी है। शायद मेगास्थिनिज

यहांके अधिवासियोंका 'मखई' नामसे उल्लेख कर गये हैं।

यूएनचुवंगने लिखा है,—यहांके राजा शूद्र जातिके हैं, बौद्धधर्ममें उनका विश्वास नहीं है, उनके समयमें यहां २० सङ्घाराम थे जिनमें ८०० श्रमण रहते थे। वे सभी श्रमण सर्वास्तिवादी थे। सङ्घारामके अलावा यहां और भी ५० देव-मन्दिर थे।

मतिपुर राजधानीसे प्रायः आध कोस दक्षिण एक छोटा सङ्घाराम था जहां रह कर आचार्यने गुणप्रभतत्त्व-विभङ्गशास्त्र प्रणयन किया।

मतिपूर्व (सं० अव्य०) बुद्धिपूर्वक, सोच विचार कर।

मतिभेद (सं० पु०) मतेर्भेदः। बुद्धिकी भिन्नता।

मतिभ्रंश (सं० पु०) १ बुद्धिनाश। २ उन्मादरोग, पागलपन।

मतिभ्रम (सं० पु०) मतेर्बुद्धेर्भ्रमः। बुद्धिभ्रंश। पर्याय—भ्रम, मिथ्यामति, भ्रान्ति। अज्ञान ही एकमात्र मतिभ्रमका कारण है।

मतिभ्रान्ति (सं० स्त्री०) मतेर्बुद्धेर्भ्रान्तिः। बुद्धिभ्रंश, बुद्धिनाश।

मतिमत् (सं० त्रि०) मतिर्विद्यतेऽस्य मतुप्। १ बुद्धिमान्, विचारवान्। (पु०) २ शिव।

मतिमन्त (सं० त्रि०) मतिमत् देखो।

मतिमान (सं० त्रि०) बुद्धिमान्, विचारवान्।

मतिरत्नमुनि—एक विख्यात जैन पण्डित, क्षमामेरुके शिष्य और मतिसागरके प्रशिष्य। इन्होंने भुजनगरमें १५१७ ई०को कुमारसम्भवको एक अवचूरि प्रणयन की।

मतिराज—एक प्राचीन संस्कृत कवि। सदुक्तिकर्णामृत-में इनकी कविता उद्धृत हुई है।

मतिल (सं० पु०) राजभेद।

मतिवर्द्धन (सं० पु०) एक विख्यात टीकाकार। १७वीं शताब्दीमें ये जीवित थे।

मतिविद् (सं० त्रि०) मतिविद्-क्विप्। मतिमान्, बुद्धिमान्।

मतिविभ्रम (सं० पु०) मतेर्विभ्रमोऽत्र। १ उन्माद-रोग, पागलपन। २ बुद्धिभ्रंश, बुद्धिनाश।

मतिशालिन् (सं० त्रि०) मत्या शालते णिनि। मेधावी, बुद्धिमान्।

मतिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरयमेषामतिशयेन, मतिमान् वेति मतिमत्-इष्ठन् मतुपो लोपः। अतिशय बुद्धिमान्।

मतियस् (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन् मतिमान्। मति-ईयसुन्। मतुपो लोपः। अतिशय बुद्धिमान्।

मतीरा (सं० पु०) तरबूज, कलींदा।

मतीश्वर (सं० पु०) विश्वकर्माका एक नाम।

मतीरु (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा।

मतुथ (सं० त्रि०) १ मतगाथक। (ऋक् ६।७।१५) २ मेधावी, बुद्धिमान्।

मतौन्ध—युक्तप्रदेशके बंदा जिलान्तगत एक नगर। यहां अङ्गरेजी स्कूल, थाना, डाकघर और बाजार है। प्रति सोम और बृहस्पतिको यहां हाट लगती है। प्रवाद है, कि यहां राजा छत्रशालके साथ बहुतसे जैनगुरुका युद्ध हुआ था। सिपाहीविद्रोहके समय यहांके जमींदार मुरली बाबूने कुछ अङ्गरेजोंको आश्रय दिया था, इसी प्रत्युपकारमें उन्हें यह भू-सम्पति मिली है।

मत्क (सं० पु०) माद्यतीति मद-क्विप्, ततः स्वार्थे कन्। १ मत्कुण, खटमल। (त्रि०) २ मत्संबंधी।

मत्कुण (सं० पु०) माद्यतीति मद-क्विप्, कुणति इति कुण-क, ततः मश्चासौ कुणश्चेति। १ कीटविशेष, खटमल। पर्याय—रक्तपायी, रक्ताक्त, मञ्चकाश्रय, उद्दंश। (राजनि०) २ निर्विषाण हस्ती, विना दांतके हाथी। ३ निःश्मश्रु पुरुष, विना मूंछके आदमी। ४ नारिकेल, नारियल।

मत्कुणा (सं० स्त्री०) अजातलोम भग।

मत्कुणारि (सं० पु०) मत्कुणस्य अरिः, मत्कुणनाशक-त्वादस्य तथात्वं। १ इन्द्राशन, भंग। २ शनवृक्ष, पटसनका पौधा।

मत्कुणिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद।

मत्कृत (सं० त्रि०) मया कृतं ३ तत्पु०, अस्मत्शब्दस्य मदादेशः। मुझसे किया गया।

मत्त (सं० पु०) माद्यतीति मद-कर्त्तरि क्त। क्षरन् मत्त हस्ती, वह हाथी जिसके मस्तकसे मद बहता हो। पर्याय—प्रभिन्न, गर्जित, मतङ्ग, क्षरन्मद। २ धुस्तूर, धतूरा। ३ कोकिल, कोयल। ४ महिष, भैंस। (त्रि०) ५ मस्त। ६ मतवाला। ७ उन्मत्त, पागल। ८ प्रसन्न, खुश।

मत्तकाल (सं० पु०) लाटदेशका एक अधिपति।

मत्तकाशिनी (सं० स्त्री०) मत्त इव क्षीव इव कसति गच्छति मत्तकासिनी कस-गतौ ग्रहादित्वात्‌ णिनि-ङीप्‌। उत्तमा नारी, अच्छी औरत।

मत्तकीश (सं० पु०) मत्तः सन्‌ कीशो वानर इव। हस्ती, हाथी।

मत्तगचन्द (सं० पु०) सवैया छन्दका एक भेद। इसके प्रत्येक चरणमें ७ मगण और २ गुरु होते हैं। इसका दूसरा नाम मालती और इन्दव भी है।

मत्तगामिनी (सं० स्त्री०) मत्त इव गच्छति गम-णिनि-ङीप्‌। १ उत्तमा नारी, अच्छी औरत। (त्रि०) २ उन्मत्तकी तरह गमनशील, पागलकी तरह इधर उधर घूमना।

मत्तता (सं० स्त्री०) मत्त होनेका भाव, मतवालापन।

मत्तताई (हिं० स्त्री०) मस्ती, मतवालापन।

मत्तनाग (सं० पु०) मत्तः नागः कर्मधा०। मदोन्मत्त हस्ती, मतवाला हाथी।

मत्तमयूर (सं० पु०) मत्तो मयूरो यस्मात्‌। १ मेघको देख कर उन्मत्त होनेवाला मयूर। २ मेघ, बादल। ३ छन्दोभेद, पन्द्रह अक्षरोंका एक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें मगण, तगण, यगण और मगण होते हैं।

मत्तमयूरक (सं० पु०) योद्धृजातिभेद, प्राचीनकालकी एक योद्धाजातिका नाम।

मत्तमयूरनाथ—एक प्रसिद्ध शैवाचार्य। इनका असल नाम पुरन्दर था। ये आमर्दकतीर्थके शिष्य थे। वर्त्तमान ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत रणोद और उसके निकटवर्त्ती मत्तमयूर नामक एक प्राचीन स्थानमें १०वीं शताब्दीको अवन्तिवर्मा नामक एक राजा राज्य करते थे। रणोद और बिलहरि नामक स्थानसे आविष्कृत शिलालिपिसे जाना जाता है, कि अवन्तिवर्माने आचार्यपुरन्दरकी असामान्य क्षमताका परिचय पा कर उपेन्द्रपुर नगरसे उन्हें निमन्त्रण किया और पीछे वे उनसे शैवधर्ममें दीक्षित हुए। पुरन्दने मत्तमयूर और रणिपद्र नामक स्थानमें दो शैवमठ स्थापन किये थे। मत्तमयूरमें वे मठाधिपति और प्रधान शैवाचार्य थे, इस कारण लोग इन्हें मत्तमयूरनाथ भी कहा करते थे।

मत्तमातङ्गलीलाकर (सं० पु०) एक दण्डक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें ६ रगण होते हैं। जिस दण्डकमें ६ से अधिक रगण होते हैं, वह भी इसी नामसे पुकारा जाता है। केशवदासने ८ ही रगणके छन्दका नाम मत्तमातङ्गलीलाकर लिखा है।

मत्तर (सं० पु०) अस्मत्‌शब्दाद्‌ डतरप्‌ प्रत्ययः, मदादेशश्च। मुझसे वा अपनेसे अधिक।

मत्तवारण (सं० क्ली०) मत्तं वारयतीति वृ-णिच्‌-ण्वुल्‌। १ प्रासादवीथिका वरण्ड, मकानके आगेका दालान वा बरामदा। २ प्राङ्गणवारण, आँगनके ऊपरकी छत। ३ पूगचूर्ण, सुपारीका चूर। ४ अपाश्रय, क्षेत्रसंन्यास। ५ मत्तहस्ती, मतवाला हाथी।

मत्तविलासिनी (सं० क्ली०) छन्दोभेद।

मत्तसमक (सं० पु०) चौपाई छन्दका एक भेद। इसमें नवीं मात्रा अवश्य लघु होती है।

मत्ता (सं० स्त्री०) माद्यति मादयतीति अन्तर्भूतण्यर्थान्मद-धातोः क्त, स्त्रियां टाप्‌। १ मदिरा, शराब। २ बारह अक्षरोंका एक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें मगण, भगण, सगण और एक गुरु होता है तथा ४, ६ पर यति होती है।

मत्ताक्रीड़ा (सं० स्त्री०) छन्दोभेद, तेईस अक्षरोंका एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें दो मगण, एक तगण, चार नगण और अन्तमें एक लघु और एक गुरु अक्षर होता है।

मत्तालम्ब (सं० पु०) आलम्ब्यते असावित्यालम्बः। आलम्ब-कर्मणि घञ्‌, मत्तस्यालम्बः आश्रयः। प्राङ्गणावरण, आँगनके ऊपरकी छत।

मत्तेभगमना (सं० स्त्री०) मत्तेभस्य गमनमिव गमनं यस्याः। स्त्रीविशेष, वह औरत जिसकी चाल मतवाले हाथीके समान हो।

मत्तेवविक्रीड़ित (सं० क्ली०) छन्दोभेद। इसके प्रत्येक चरणमें २१ अक्षर करके रहते हैं।

मत्था (हिं० पु०) १ ललाट, माथा। २ सिर, मूँड़। ३ किसी पदार्थका अगला या ऊपरी भाग।

मत्‌ विन-लिन्‌—एक चीन देशीय प्रसिद्ध पण्डित और चीन-महाकोषके सम्पादक। उस महाग्रन्थमें 'वन-हिन-खुं-की' अर्थात्‌ प्राचीन इतिहासकी गभीर आलोचना नामक

दुष्प्राप्य ग्रन्थका अनुवाद दिया गया है और भारतवर्षके अनेक ऐतिहासिक तत्त्व वर्णित हैं।

मत्य (सं० क्ली०) मतं ज्ञानं तस्य करणमिति मत (मतजनहलात्करणजल्पकर्षेषु। पा ४।४।९७) इति यत्। १ कृष्टक्षेत्रका समीकरणादि साधनफलक। २ दात्रादिको मुष्टि, बेंट, मूठ।

मत्स (सं० पु०) माद्यतीति मद्-बाहुलकात् सन्। मत्स्य, मछली।

मत्सगण्ड (सं० पु०) मत्सानां गण्डोऽत्र, पृषोदरादित्वात् साधुः,। व्यञ्जनविशेष, एक प्रकारकी पकी मछली। पर्याय—गलग्रह।

मत्सर (सं० पु०) माद्यते इति मद् (कृ-धृमादिभ्यः कित। उण् ३।७३) इति सरन्, सच कित्, यद्वा मदा सरतीति। १ किसीका सुख या विभव न देख सकना, डाह, जलन। २ क्रोध, गुस्सा। ३ आत्माधिकारविशेष, वह जो सबको अपनी निंदा करते देख कर अपने आपको धिक्कारता हो। (त्रि०) ४ कृपण, कंजूस। ५ मत्सरपूर्ण, डाह करनेवाला।

मत्सरता (सं० स्त्री०) मत्सरयुक्त होनेका भाव, डाह।

मत्सरवत् (सं० त्रि०) मत्सर-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। मत्सरयुक्त, डाह करनेवाला।

मत्सरिन् (सं० त्रि०) मत्सरोऽन्यशुभद्वेषोऽस्त्यस्येति मत्सर-इनि। अन्य शुभद्वेष्टा, दूसरोंसे डाह रखनेवाला। पर्याय—कर्णजप, दुर्जन, पिशुन, सूचक, नोच, द्विजिह्व, खल। जो मनुष्य मत्सरपरायण हैं वे नरकभोगके बाद कीटयोनिको प्राप्त होते हैं।

"परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी।" (मनु २।२०१)

मत्सह—राजमहलसे ५ कोस पूर्वमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। इस ग्रामसे हो कर मानासह राजमहल गये थे।

मत्स्य (सं० पु० स्त्री०) माद्यति लोका अनेनेति मद (ऋतन्यञ्जीति। उण् ४।२) इति स्यन्। स्वनामख्यात जलजन्तु, मछली। पर्याय—पृथुरोमा, झष, मीन, वैसारिण, अण्डज, विसार, शल्कली, शकली, झस, आत्माशी संवर, मूक, जलेशय, कण्टकी, शल्की, मच्छ, अनिमिष, शृङ्गी। इसका गुण—बृंहण, गुरु, शुक्रवर्द्धक, बलकर, स्निग्ध, उष्ण, मधुर, कफपित्तकर, दीप्ताग्निके पक्षमें हितकर, वातरोगनाशक। बड़ी मछलीका गुण—गुरु, शुकल, मलवर्द्धक। छोटी मछली—लघु, ग्राही, ग्रहणीरोगमें हितकर। काली मछली—लघु, स्निग्ध, वातघ्न और अग्निदीपन। सड़ी मछली—दोषवर्द्धक; सूखी मछली—विष्टम्भी; नमकमें रखी हुई मछली—कफपित्तकर, सारक; सामुद्रिक मछली—लघु, वृष्य, मधुर और स्वल्पमलकारक। (राजनि०)

सुश्रुतमें लिखा है,—मछली दो प्रकारकी है, नादेय और सामुद्र अर्थात् नदीजात और समुद्रजात। रोहित, पाठीन, पाटला, राजीव, वर्मि, गोमत्स्य, कृष्णमत्स्य, वागुञार, मुरल, सहस्रदंष्ट्र आदि मछलियां नदीजात हैं। इनका गुण—मधुर, गुरुपाक और वायुनाशक, रक्त-पित्तकर, उष्ण, वृष्य, स्निग्ध और अल्प तेजस्कर माना गया है।

सरोवर और तड़ागकी मछली स्निग्धकर और मधुररसविशिष्ट होती है। महाह्रदकी मछली बलकारक है। थोड़े जलमें रहनेवाली मछली बलकर नहीं होती।

तिमि, तिमिङ्गिल, कुलिश, पाकमत्स्य, निरालक, नन्दिवारलक, मकर, गर्गरक, चन्द्रक, महामीन और राजीव आदि सामुद्र मत्स्य हैं। ये सब गुरुपाक, स्निग्ध, मधुर, अल्प पित्तवृद्धिकर, उष्ण, वायुनाशक, वृष्य, तेजस्कर और श्लेष्मवर्द्धक माने गये हैं। सामुद्रिक मछली मांस खाती है, इसीसे वे विशेष बलकर हैं।

पोखरे और कूपकी मछली वायुनाशक होनेके कारण सामुद्रिक मछलीसे अधिक गुणविशिष्ट है। तालाबकी मछली स्निग्ध, लघुपाक और स्वादिष्ट होती है, इस कारण इनमें कूपकी मछलीसे ज्यादा गुण है। नदीकी मछली मुख और पुच्छको संचालन करती हुई पानीमें तैरती है, इस कारण उनका बिचला भाग गुरुपाक होता है। सरोवर और तड़ागकी मछलियोंका शिर बहु लघु होता है। सरोवरकी मछलीका निचला भाग गुरुपाक और ऊपरका भाग लघु जानना चाहिये।

इनमेंसे सूखी, सड़ी, रोगी, विषाक्त, सर्प द्वारा हत, विषलिप्त, अस्त्रादि द्वारा विद्ध, जीर्ण, कृष, बाल और अपनी अपनी प्रकृतिको विपरीताचारी मछली अभक्ष्य हैं। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४५ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि हेमन्तकालमें कूपकी मछली, शिशिरकालमें सरोवरकी मछली, वसन्तकालमें

नादकी मछली, ग्रीष्मकालमें छोटे जलाशयकी मछली; वर्षाकालमें तड़ागकी मछली खाना उचित नहीं है।

कूप की मछली—शुक्र, मूत्र, कुष्ठ और कफवर्द्धक; सरोवरकी मछली—मधुररस, स्निग्ध, बलकारक तथा वायु और पित्तनाशक; नादकी मछली—शरीरका अपचयकारक, गुरु और वायुनाशक, रक्तपित्तजनक, शुक्रवर्द्धक, स्निग्ध, उष्ण वीर्य और मलकी अल्पताकारक। छोटे जलाशयकी मछली—पित्तकारक, स्निग्ध, मधुररस, लघु और शीतवीर्य। तड़ागकी मछली—गुरु, शुक्रवर्द्धक, शीतवीर्य, बल और मूत्रजनक। निर्झरकी मछली—तड़ागकी मछलीके समान गुणकारक, अधिक बल, परमायु, बुद्धि और दृष्टिजनक।

छोटी मछलीका गुण—मधुररस, त्रिदोषनाशक, लघुपाक, रुचिकारक और बलजनक। ये सब मछलियां सब प्रकारसे हितकर हैं। बहुत छोटी मछलीका गुण—पुंस्त्वनाशक, रुचिजनक तथा कास और वायुनाशक। मछलीके अंडेका गुण—अत्यन्त शुक्रवर्द्धक, स्निग्ध, पुष्टिकारक, लघु, कफ, मेद, मल और ग्लानिजनक तथा प्रमेहजनक। सूखी मछलीका गुण—दुष्पाच्य, मलवर्द्धक और बलकररहित। भुनी मछली—श्रेष्ठ गुणदायक, पुष्टिकर और बलवर्द्धक। (भावप्र०)

मछलियोंमें रोहित और मद्गुर (मुंगरी) सबसे श्रेष्ठ हैं। "कफ पित्तकरा मत्स्या रोहितं मद्गुरं विना।" (स्मृति) रोहित, मद्गुरको छोड़ कर शेष सभी मछली कफ और पित्तवर्द्धक है।

नरसिंहपुराणमें मछलीको उत्पत्तिका कारण इस प्रकार लिखा है,—मित्र और वरुण ये दो देवता एक दिन यथेच्छ विचरण कर रहे थे। इसी समय सखियोंके साथ उर्वशी एक सरोवरमें जलक्रीड़ा कर रही थी। मित्रावरुण सखियोंके साथ उस वाराङ्गणाको देख कर अत्यन्त मोहित हो पड़े। उन सखियोंके सुन्दर गीत, हाव, भाव और कटाक्ष द्वारा दोनों देवता इतने पीड़ित हुए, कि उनका रेतःस्खलन हो गया। वह रेत कमल, स्थल और जल इन तीन स्थानोंमें जा गिरा। पद्म पर गिरे हुए रेतसे वशिष्ठ, स्थलसे अगस्त्य और जो रेत जलमें गिरा था उससे मछलीकी उत्पत्ति हुई।

(नरसिंहपु० ६ अ०)

मनुमें मछली खाना निषिद्ध बतलाया है,—

"यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते।
मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मात् मत्स्यान् विवर्ज्जयेत्॥"

(मनु ५।१५ अ०)

मछली खानेवाला मांस खानेवालेके समान है, इसलिये उसका परित्याग करे। मनुमें फिर दूसरी जगह लिखा है, कि दैव और पैत्र कर्म रोहित और पाठीनादि मत्स्य द्वारा करने होंगे। अर्थात् दैव और पैत्र कर्ममें देवता और पितरोंके उद्देशसे मत्स्य भोजन निषिद्ध नहीं है।

"पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः।
राजीवान् सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः॥"

(मनु ५।१६)

इस श्लोकके भाष्यकार मेधातिथि और गोविन्दराजका मत है, कि केवल दैव और पैत्रकर्ममें रोहित और पाठीन मत्स्य भोजन करे, अन्य समयमें नहीं। किन्तु अन्य समयमें दैनन्दिन भोजनमें राजीव सिंहतुण्डादि मत्स्य भोजन निषिद्ध नहीं है। किन्तु मेधातिथि और गोविन्दराजका यह मत युक्तिसंगत नहीं है। कारण, केवल रोहित और पाठीन मत्स्यका हव्यकव्यमें प्रयोग करे, अन्य समयमें भोजन न करे, इसका कोई प्रमाण नहीं है। अन्य मुनियोंने पाठीन, रोहित और राजीव आदि मत्स्योंको एक-सा बतलाया है। अतः हव्यकव्य भिन्न अन्य समयमें भी उनके मतसे ये सब मत्स्यभोजन निषिद्ध नहीं है।

अतएव यह स्थिर हुआ, कि मत्स्यभोजन निषिद्ध नहीं है। इसका मतलब यह नहीं, कि सभी मत्स्य भोजनीय हैं। मन्वादिके मतसे—पाठीन, रोहित, राजीव, सिंहतुण्ड और सशल्क अर्थात् जिनके शल्क हैं, वही सब मत्स्य खाने लायक नहीं हैं। यथा—

"शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मांसभेदान्निबोध मे।
नादेयं तिक्तकमठं पशुशृङ्गिणमेव च॥
गोमीनं चक्रशकुलं बड़ालं राघवं तथा।
वामीनं चलकर्पीञ्च सचक्रं चेङ्गमेव च॥
मुखिलञ्चानिरुद्धञ्च गाङ्गेयानि विवर्जयेत्॥"

(मत्स्यसूक्त महातन्त्र)

नादेय मत्स्य, तिक्त कमठ, पशुशृङ्गीन, गोमीन,

चक्रशकुल, वड़ाल, राघव, वामीन, चलकर्ण, सचक्र, चेङ्ग, भूविल, अनिरुद्ध और गाङ्गेय अर्थात् गङ्गाको मछली, ये सब मत्स्यभोजन निषिद्ध हैं।

रविवारको मछली नहीं खाना चाहिये, यदि कोई खाय, तो सप्तजन्म कोढ़ी और दरिद्र होता है। तिथितत्त्वमें लिखा है, कि रविवारमें मछली खानेसे सात जन्म अपुत्रक होता है। कहनेका तात्पर्य यह, कि रविवारको मत्स्यभोजन प्रत्यवायजनक है। इसलिये सभोको उस दिन मत्स्यका परित्याग करना उचित है। कार्त्तिकमासमें भी मत्स्यभोजन नहीं करना चाहिये, विशेषतः कार्त्तिक मासकी शुक्ला एकादशीसे ले कर पूर्णिमा तक पांच दिन वकपञ्चक है, अर्थात् इन दिनों वक भी मछली नहीं खाता है। अतएव इन पांच दिनोंमें मत्स्यभोजन विशेष निषिद्ध है। कार्त्तिक मासमें भी यदि कोई मत्स्यभोजन करना चाहे, तो उन्हें भी उक्त पांच दिनोंका परित्याग करना आवश्यक है।

माघ और वैशाख मासमें हविष्य और ब्रह्मचर्यका विधान देखनेमें आता है। ब्रह्मचारीके लिये मत्स्यभोजन निषिद्ध है, सुतरां माघ और वैशाख इन दो महीनोंमें भी मछली खाना मना है। जन्मदिनमें मछली नहीं खानी चाहिये। जन्मदिनका अर्थ है, जन्मतिथि। कार्त्तिक मासमें जो मत्स्यभोजन निषिद्ध बतलाया गया है; उससे सौर और चान्द्र दोनों ही कार्त्तिक समझना चाहिये। कारण, एकादशीसे पूर्णिमा पर्यन्त चान्द्र कार्त्तिक है। ये पांच दिन विशेष निषिद्ध होनेके कारण सौर और चान्द्र दोनों ही समझने होंगे।

जो शैव हैं, उन्हें भी मत्स्यभोजन न करना चाहिये। शिवजी मत्स्य और मांसरत व्यक्तिसे दूर रहते हैं।

"क मद्यं क शिवे भक्तिः क मांसं कशिवार्चनम्।
मत्स्यमांसरतानां वै दूरे तिष्ठति शङ्करः॥"

(काशीखण्ड)

विन्ध्यपर्वतके पश्चिम भागमें जो रहते हैं, वे मत्स्यभक्षण करनेसे पतित होते हैं।

"विन्ध्यस्य पश्चिमे भागे मत्स्यभुक् पतितो नरः।"

(स्मृति)

प्रायश्चित्तविवेकमें मत्स्यभोजनके प्रायश्चित्तका विषय इस प्रकार लिखा है—

यदि कोई इच्छापूर्वक मत्स्यभक्षण करे तो उसे तीन दिन उपवास करना चाहिये, इससे उसके पापकी शान्ति होती है। किन्तु अज्ञानपूर्वक भोजनमें उसका आधा अर्थात् एक दिवारात्र और एक दिवामात्र उपवास करना चाहिये।

"कामतो मत्स्यभक्षणप्रायश्चित्तं—
मत्स्यांस्तु कामतो जग्धा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्।
अज्ञानतस्तदर्द्धं॥" (प्रायश्चित्तवि०)

इस मत्स्यभक्षणका जो प्रायश्चित्त कहा गया है, उसे निषिद्ध मत्स्यभोजन-सम्बन्धमें जानना चाहिये। कारण मन्वादिमें मत्स्यभोजनकी व्यवस्था है, शास्त्रव्यवस्थापित विषयका प्रायश्चित्त विधान होनेसे शास्त्रमें विरोध होता है, अतएव यह व्यवस्था निषिद्ध मत्स्यविषयमें जाननी चाहिये।

मत्स्यादि जो कोई वस्तु खानी होगी, उसे पहले अभीष्ट देवताको चढ़ा कर खावे। कारण अनिवेदित कोई भी वस्तु न खानी चाहिये।

"अनिवेद्य न भोक्तव्यं मत्स्यं मासञ्च यद्भवेत्।
अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्॥"

(आह्निकतत्त्व)

प्रेतोद्देशसे जो सब श्राद्ध किये जाते हैं उनमें मत्स्य देना कर्त्तव्य है। आद्यश्राद्ध और मासिकश्राद्धको प्रेतश्राद्ध कहते है। सपिण्डीकरणके पहले प्रेतत्त्व दूर नहीं होता, अतः इस समय तक जो श्राद्ध किया जाता है वही प्रेतश्राद्ध है। यह आमिष द्वारा कर्त्तव्य है। सपिण्डीकरणके बाद फिर आमिष द्वारा श्राद्ध न करे।

"प्रेतश्राद्धमें मत्स्यदानविधि—
"सपिण्डीकरणं यावत् प्रेतश्राद्धन्तु षोड़शम्।
पक्वान्नेनैव कर्त्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः॥"

(श्राद्धतत्त्व)

विधवाकी मृत्यु होने पर प्रेतश्राद्धमें आमिष देना उचित है। इसका कोई विशेष शास्त्रीय प्रमाण नहीं मिलता, यह लोकाचारमात्र है।

मत्स्यतत्त्व शब्दमें मत्स्यजातिका विस्तृत विवरण देखो।

२ विराटदेश। देश विशेषमें यह शब्द बहु वचनान्त

नादकी मछली, ग्रीष्मकालमें छोटे जलाशयकी मछली, वर्षाकालमें तड़ागकी मछली खाना उचित नहीं है।

कूपँकी मछली—शुक्र, मूत्र, कुष्ठ और कफवर्द्धक ; सरोवरकी मछली—मधुररस, स्निग्ध, बलकारक तथा वायु और पित्तनाशक ; नादकी मछली—शरीरका अपचयकारक, गुरु और वायुनाशक, रक्तपित्तजनक, शुक्रवर्द्धक, स्निग्ध, उष्ण वीर्य और मलकी अल्पताकारक। छोटे जलाशयकी मछली—पित्तकारक, स्निग्ध, मधुररस, लघु और शीतवीर्य। तड़ागकी मछली—गुरु, शुक्रवर्द्धक, शीतवीर्य, बल और मूत्रजनक। निर्झरकी मछली—तड़ागकी मछलीके समान गुणकारक, अधिक बल, परमायु, बुद्धि और दृष्टिजनक।

छोटी मछलीका गुण—मधुररस, त्रिदोषनाशक, लघुपाक, रुचिकारक और बलजनक। ये सब मछलियां सब प्रकारसे हितकर हैं। बहुत छोटी मछलीका गुण—पुंस्त्वनाशक, रुचिजनक तथा कास और वायुनाशक। मछलीके अंडेका गुण—अत्यन्त शुक्रवर्द्धक, स्निग्ध, पुष्टिकारक, लघु, कफ, मेद, मल और ग्लानिजनक तथा प्रमेहजनक। सूखी मछलीका गुण—दुष्पाच्य, मलवर्द्धक और बलकररहित। भुनी मछली—श्रेष्ठ गुणदायक, पुष्टिकर और बलवर्द्धक। (भावप्र०)

मछलियोंमें रोहित और मद्गुर (मुंगरी) सबसे श्रेष्ठ हैं। "कफ पित्तकरा मत्स्या रोहितं मद्गुरं विना।" (स्मृति) रोहित, मद्गुरको छोड़ कर शेष सभी मछली कफ और पित्तवर्द्धक है।

नरसिंहपुराणमें मछलीकी उत्पत्तिका कारण इस प्रकार लिखा है,—मित्र और वरुण ये दो देवता एक दिन यथेच्छ विचरण कर रहे थे। इसी समय सखियोंके साथ उर्वशी एक सरोवरमें जलक्रीड़ा कर रही थी। मित्रावरुण सखियोंके साथ उस वाराङ्गणाको देख कर अत्यन्त मोहित हो पड़े। उन सखियोंके सुन्दर गीत, हाव, भाव और कटाक्ष द्वारा दोनों देवता इतने पीड़ित हुए, कि उनका रेतःस्खलन हो गया। वह रेत कमल, स्थल और जल इन तीन स्थानोंमें जा गिरा। पद्म पर गिरे हुए रेतसे वशिष्ठ, स्थलसे अगस्त्य और जो रेत जलमें गिरा था उससे मछलीकी उत्पत्ति हुई।

(नरसिंहपु० ६ अ०)

मनुमें मछली खाना निषिद्ध बतलाया है,—

"यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते।
मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मात् मत्स्यान् विवर्ज्जयेत्॥"

(मनु ५।१५ अ०)

मछली खानेवाला मांस खानेवालेके समान है, इसलिये उसका परित्याग करे। मनुमें फिर दूसरी जगह लिखा है, कि दैव और पैत्र कर्म रोहित और पाठीनादि मत्स्य द्वारा करने होंगे। अर्थात् दैव और पैत्र कर्ममें देवता और पितरोंके उद्देशसे मत्स्य भोजन निषिद्ध नहीं है।

"पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः।
राजीवान् सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः॥"

(मनु ५।१६)

इस श्लोकके भाष्यकार मेधातिथि और गोविन्दराजका मत है, कि केवल दैव और पैत्रकर्ममें रोहित और पाठीन मत्स्य भोजन करे, अन्य समयमें नहीं। किन्तु अन्य समयमें दैनन्दिन भोजनमें राजीव सिंहतुण्डादि मत्स्य भोजन निषिद्ध नहीं है। किन्तु मेधातिथि और गोविन्दराजका यह मत युक्तिसंगत नहीं है। कारण, केवल रोहित और पाठीन मत्स्यका हव्यकव्यमें प्रयोग करे, अन्य समयमें भोजन न करे, इसका कोई प्रमाण नहीं है। अन्य मुनियोंने पाठीन, रोहित और राजीव आदि मत्स्योंको एक-सा बतलाया है। अतः हव्यकव्य भिन्न अन्य समयमें भी उनके मतसे ये सब मत्स्यभोजन निषिद्ध नहीं है।

अतएव यह स्थिर हुआ, कि मत्स्यभोजन निषिद्ध नहीं है। इसका मतलब यह नहीं, कि सभी मत्स्य भोजनीय हैं। मन्वादिके मतसे—पाठीन, रोहित, राजीव, सिंहतुण्ड और सशल्क अर्थात् जिनके शल्क हैं, वही सब मत्स्य खाने लायक नहीं हैं। यथा—

"शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मांसभेदान्निबोध मे।
नादेयं तिक्तकमठं पशुश्रृङ्गिणमेव च॥
गोमीनं चक्रशकुलं बड़ाली राघवं तथा।
बामीनं चलकर्णञ्च सचक्रं चेङ्गमेव च॥
भुविलञ्चानिरुद्धञ्च गांगेयानि विवर्जयेत्॥"

(मत्स्यसूक्त महातन्त्र)

नादेय मत्स्य, तिक्त कमठ, पशुश्रृङ्गीन, गोमीन,

चक्रशकुंल, वड़ाल, राघव, वामीन, चलकर्ण, सचक्र, चेङ्ग, भूविल, अनिरुद्ध और गाङ्गेय अर्थात् गङ्गाकी मछली, ये सव मत्स्यभोजन निषिद्ध हैं।

रविवारको मछली नहीं खानी चाहिये, यदि कोई खाय, तो सप्तजन्म कोढ़ी और दरिद्र होता है। तिथितत्त्वमें लिखा है, कि रविवारमें मछली खानेसे सात जन्म अपुत्रक होता है। कहनेका तात्पर्य यह, कि रविवारको मत्स्यभोजन प्रत्यवायजनक है। इसलिये सभोको उस दिन मत्स्यका परित्याग करना उचित है। कार्त्तिकमासमें भी मत्स्यभोजन नहीं करना चाहिये, विशेषतः कार्त्तिक मासकी शुक्ला एकादशीसे ले कर पूर्णिमा तक पांच दिन वकपञ्चक है, अर्थात् इन दिनों वक भी मछली नहीं खाता है। अतएव इन पांच दिनोंमें मत्स्यभोजन विशेष निषिद्ध है। कार्त्तिक मासमें भी यदि कोई मत्स्यभोजन करना चाहे, तो उन्हें भी उक्त पांच दिनोंका परित्याग करना आवश्यक है।

माघ और वैशाख मासमें हविष्य और ब्रह्मचर्यका विधान देखनेमें आता है। ब्रह्मचारीके लिये मत्स्यभोजन निषिद्ध है, सुतरां माघ और वैशाख इन दो महीनोंमें भी मछली खाना मना है। जन्मदिनमें मछली नहीं खानी चाहिये। जन्मदिनका अर्थ है, जन्मतिथि। कार्त्तिक मासमें जो मत्स्यभोजन निषिद्ध वतलाया गया है; उससे सौर और चान्द्र दोनों ही कार्त्तिक समझना चाहिये। कारण, एकादशीसे पूर्णिमा पर्यन्त चान्द्र कार्त्तिक है। ये पांच दिन विशेष निषिद्ध होनेके कारण सौर और चान्द्र दोनों ही समझने होंगे।

जो शैव हैं, उन्हें भी मत्स्यभोजन न करना चाहिये। शिवजी मत्स्य और मांसरत व्यक्तिसे दूर रहते हैं।

"क मद्यं क शिवे भक्तिः क मांसं कशिवार्चनम्।
मत्स्यमांसरतानां वै दूरे तिष्ठति शङ्करः॥"

(काशीखण्ड)

विन्ध्यपर्वतके पश्चिम भागमें जो रहते हैं, वे मत्स्यभक्षण करनेसे पतित होते हैं।

"विन्ध्यस्य पश्चिमे भागे मत्स्यभुक् पतितो नरः।"

(स्मृति)

प्रायश्चित्तविवेकमें मत्स्यभोजनके प्रायश्चित्तका विषय इस प्रकार लिखा है—

यदि कोई इच्छापूर्वक मत्स्यभक्षण करे तो उसे तीन दिन उपवास करना चाहिये, इससे उसके पापकी शान्ति होती है। किन्तु अज्ञानपूर्वक भोजनमें उसका आधा अर्थात् एक दिवारात्र और एक दिवामात्र उपवास करना चाहिये।

"कामतो मत्स्यभक्षणप्रायश्चित्तं—
मत्स्यांस्तु कामतो जग्धा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्।
अज्ञानतस्तदर्द्धं॥" (प्रायश्चित्तवि०)

इस मत्स्यभक्षणका जो प्रायश्चित्त कहा गया है, उसे निषिद्ध मत्स्यभोजन-सम्बन्धमें जानना चाहिये। कारण मन्वादिमें मत्स्यभोजनकी व्यवस्था है, शास्त्रव्यवस्थापित विषयका प्रायश्चित्त विधान होनेसे शास्त्रमें विरोध होता है, अतएव यह व्यवस्था निषिद्ध मत्स्यविषयमें जाननी चाहिये।

मत्स्यादि जो कोई वस्तु खानी होगी, उसे पहले अभीष्ट देवताको चढ़ा कर खावे। कारण अनिवेदित कोई भी वस्तु न खानी चाहिये।

"अनिवेद्य न भोक्तव्यं मत्स्यं मासञ्च यद्भवेत्।
अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्॥"

(आह्निकतत्त्व)

प्रेतोद्देशसे जो सव श्राद्ध किये जाते हैं उनमें मत्स्य देना कर्त्तव्य है। आद्यश्राद्ध और मासिकश्राद्धको प्रेतश्राद्ध कहते है। सपिण्डीकरणके पहले प्रेतत्व दूर नहीं होता, अतः इस समय तक जो श्राद्ध किया जाता है वही प्रेतश्राद्ध है। यह आमिष द्वारा कर्त्तव्य है। सपिण्डीकरणके वाद फिर आमिष द्वारा श्राद्ध न करे।

"प्रेतश्राद्धमें मत्स्यदानविधि—
"सपिण्डीकरणं यावत् प्रेतश्राद्धन्तु षोड़शम्।
पक्वान्नेनैव कर्त्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः॥"

(श्राद्धतत्त्व)

विधवाकी मृत्यु होने पर प्रेतश्राद्धमें आमिष देना उचित है। इसका कोई विशेष शास्त्रीय प्रमाण नहीं मिलता, यह लोकाचारमात्र है।

मत्स्यतत्त्व शब्दमें मत्स्यजातिका विस्तृत विवरण देखो।

२ विराटदेश। देश विशेषमें यह शब्द वहु वचनान्त

है। विराट देखो। यह देश राजपूतानेमें अवस्थित है। दिनाजपुरमें एक जङ्गल है जिसे बहुतेरे मत्स्य देश बतलाते हैं। किन्तु यह स्थान प्राचीन विराटराज्य मत्स्य नहीं है। ३ नारायण। ४ द्वादश राशि, मीनराशि।

"मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणम्"
(जोतिस्तत्त्व)

५ अष्टादशपुराणके अन्तर्गत एक पुराण। यह पुराण महापुराण है। भगवान् विष्णुने मत्स्यरूपमें अवतार ले कर इस पुराणका उपदेश दिया था, इसीसे इसका मत्स्यपुराण नाम रखा गया है।

"पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः।
मत्स्यं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥"
(मत्स्यपु० १ अ०) पुराण देखो।

६ भगवान् विष्णुके दश अवतारोंमेंसे पहला अवतार। भगवानविष्णु पहले पहल मत्स्यरूपमें अवतीर्ण हुए। शथपथब्राह्मणमें इसका आदि प्रसङ्ग देखा जाता है। मनु देखो।

महाभारतमें लिखा है,—

पुराकालमें विवस्वानके पुत्र प्रजापतिके समान मनु नामक एक महर्षि अति प्रतापशाली राजा थे। उन्होंने तपस्यादि द्वारा पितृ-पितामहको विशेषरूपसे अतिक्रम किया। उन्होंने विशाल वदरीमें एक पैर पर खड़े, हाथोंको ऊपर उठाये और औंधमुंह हो अनिमेषनेत्रसे अयुत वर्ष तक घोर तपस्या की। पीछे एक दिन वे चिरिणी नदीके किनारे जटाधारी हो आर्द्रवस्त्रसे तपस्या कर रहे थे, इसी समय एक मछलीने वहां आ कर उनसे कहा, 'भगवन्! मैं छोटी मछली हूं, बड़ी मछलीसे डर गई हूं, अतएव आप मुझे उनसे बचाइये। विशेषतः मीनजातिमें बहुत दिनोंसे यह रीति चली आ रही है, कि बलवान् मत्स्य दुर्बल मत्स्यको सदा भक्षण करते हैं। अतः मैं संकटमें हूं, आप मुझे बचाइये। इस समय यदि आप मेरा उपकार करेंगे, तो मैं भी किसी समय इसका प्रत्युपकार करूंगी।' वैवस्वत मनुने मछलीको बात सुन कर उसे जलसे बाहर निकाला और एक घड़ेमें रख दिया। वह मनुके स्नेहसे दिनों दिन उसीमें बढ़ने लगी। वे उसे पुत्रके समान देखते थे। कुछ दिनके बाद वह मछली इतनी बढ़ गई कि उस घड़ेमें उसकी गुंजाइश न रही। अनन्तर उस मछलीने मनुको देख कर पुनः उनसे कहा, 'भगवन्! आप मेरे लिये अभी कोई दूसरा उत्तम स्थान ढूंढ़िये।' इस पर मनुने उसे घड़ेमेंसे निकाल कर एक तालाबमें रख छोड़ा। उस तालाबकी लम्बाई दो योजन और चौड़ाई एक योजन थी। धीरे धीरे वह मछली इतनी बढ़ी कि उसमें भी उसका अँटान न हुआ। अनन्तर मछलीने फिर मनुसे कहा, 'पितः! आप मुझे गङ्गामें ले चलिये। मैं वहीं पर रहूंगी, इस तालाबमें भी गुंजाइश नहीं है। आपने मेरे लिये बहुत कुछ किया, आपके ही स्नेहसे मैं इस प्रकार बढ़ी, अभी आप जो अच्छा समझें वही करें। मनुने मछलीको बात सुन कर उसे वहांसे निकाल गङ्गामें फेंक दिया। वहां भी कुछ दिन रह कर उसने एक दिन मनुसे कहा, 'प्रभो मेरा शरीर बहुत बढ़ गया, यहां तक कि अङ्गचालना भी नहीं कर सकती हूं। अतएव आप मुझ पर दया कीजिये और मुझे एक समुद्रमें उठा ले चलिये।' पीछे मनुने उसे गङ्गामेंसे निकाल कर समुद्रमें छोड़ दिया। इस प्रकाण्ड मत्स्यको ढो कर ले जानेमें मनुको जरा भी क्लेश न हुआ। कारण, इसका भार अभिलाषानुरूप ही था तथा उसका स्पर्श और गन्ध सुखकर थी।

मछलीने समुद्रमें निक्षिप्त होते ही मुसकरा कर मनुसे कहा, 'भगवन्! आपने मेरी बड़ी रक्षा की है, अतएव उपयुक्त समय आने पर आपको जो कुछ करना होगा उसे मैं कहती हूं, ध्यान दे कर सुनिये। प्रलयकाल निकटवर्त्ती है, इस पृथ्वीका स्थावर जङ्गम प्रभृति सभी पदार्थ बहुत जल्द प्रलयसलिलमें डूब जायंगे। क्या स्थावर, क्या जङ्गम, क्या चेतन सबोंका भीषण काल पहुंच गया है, अतएव आपके लिये जो विशेष हितकर है उसे मैं आपको कहे देती हूं। आप एक रस्सी लगी हुई एक मजबूत नाव बनवाइये। उस नाव पर आप सप्तर्षिके साथ बैठ जाइये। पहले द्विजोंने जिन सब बीजोंकी बात कही थी आप उन सब बीजोंको संग्रह कर उस नाव पर रख विभागक्रमसे रक्षा कीजिये। पीछे आप नाव पर बैठ कर मेरी प्रतीक्षा करेंगे। उस समय मैं श्रृङ्गयुक्त हो कर आऊंगा।

शृङ्ग देखते ही आप मुझे पहचान जायंगे। मैंने जैसा कहा वैसा ही करेंगे। क्योंकि, आप मेरे विना ऐसे अर्णवसे उत्तीर्ण नहीं हो सकेंगे। मेरी बात पर आप किसी प्रकार शंका नहीं करेंगे। पीछे मनु और मत्स्य परस्पर अनुज्ञात हो कर यथाभिलषित स्थानको चल दिये।

तदनन्तर मनुको मत्स्यने जैसा कहा था तदनुसार वे सब प्रकारके बीज ले कर नाव पर सवार हुए। बादमें वे मत्स्यकी चिन्तना करने लगे। इस समय मत्स्य उनकी चिन्तासे अवगत हो शृङ्गरूपमें उसी समय वहां पहुंच गया। मनुने पर्वतके समान ऊंचे मत्स्यके शृङ्गमें नावकी रस्सी बांध दी। नाव तरङ्गके वलसे हिलने डोलने लगी। रस्सीमें बंधा हुआ वह मत्स्य नाव पर बैठे हुए मनु आदिकी रक्षा करनेके लिये उस नावको लवणजलमें खींचने लगा। वह नाव ऐसे भवार्णवके मध्य प्रचण्ड वायुसे सञ्चालित हो मत्त चपला स्त्रीकी तरह घूमने लगी। उस समय भूमि वा दिक्-विदिक् कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। अन्तरीक्ष और द्यु लोक सभी जगमग्न हो गये थे। जगत्के इस प्रकार जलाकीर्ण होनेसे केवल मत्स्य, मनु और सप्तऋषि नजर आते थे। इस प्रकार उस मत्स्यने निरलस हो कई वर्षों तक उस नावको वैसे जलसमुद्रमें आकर्षण किया। अन्तमें हिमालय गिरिका जो श्रेष्ठ शृङ्ग है उसीके समीप नाव खींच कर ले गया। पीछे उस मत्स्यने कुछ मुसकरा कर ऋषियोंसे कहा, 'आप लोग इस हिमालय शृङ्गमें नावको बांध दीजिये, देरी मत कीजिये। ऋषियोंने तुरत मत्स्यके कथनानुसार हिमालय-शृङ्गमें नावको बांध दिया। आज भी हिमालयका वह शृङ्ग नौबन्धन नामसे प्रसिद्ध है।

अब मत्स्यने उन ऋषियोंसे कहा, 'मैं ही स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हूं। मैंने मत्स्यरूप धारण कर इस महाभयसे तुम लोगोंकी रक्षा की। अभी मनु सुरासुर मानव प्रभृति सब प्रकारकी प्रजा क्या जड़, क्या चेतन सबोंको सृष्टि करेंगे। इनके तीव्र तपोबलसे प्रजासृष्टि-विषयमें प्रतिभा होगी तथा मेरे प्रसादसे ये प्रजासृष्टिविषयमें मोहको प्राप्त नहीं होंगे। इतना कह कर वह मत्स्य अन्तर्द्धान हो गया।

अनन्तर वैवस्वत मनुने प्रजा सृष्टिकी मनशासे कठोर तपस्याका अनुष्ठान किया और उसीके प्रतिभाबलसे सबोंकी सृष्टि की। इसी प्रकार भगवान् विष्णु मत्स्यरूपमें अवतीर्ण हुए थे। (भारत वनपर्व १८७ अ०)

मत्स्यपुराणमें इस अवतारका विषय इस प्रकार लिखा है—पुराकालमें मनु नामक एक राजा अपने पुत्रको राज्य भार सौंप कठोर तपस्या करने चले गये। दश हजार वर्ष बीत जाने पर ब्रह्मा एक दिन वहां आये और उनसे वर मांगनेको कहा। इस पर उन्होंने वर मांगा कि, जब प्रलयकाल उपस्थित होगा, तब मैं ही एकमात्र चराचर जगतको रक्षाके लिये यानस्वरूप होऊं। ब्रह्मा 'तथास्तु' कह कर अन्तर्हित हो गये।

एक दिन मनु आश्रममें पितृतर्पण कर रहे थे। इसी समय एक मत्स्य उनके हाथके ऊपर कूद पड़ा। मनुने दयापरवश हो उसे एक जलपात्रमें रखा। धीरे धीरे वह मत्स्य बढ़ने लगा। मनुने भी उसे पूर्वोक्त क्रमसे समुद्रमें फेंक दिया। समुद्रमें निक्षिप्त होने पर मत्स्यने मनुसे कहा, 'प्रलय बीत जाने पर तुम चराचर जगत्की सृष्टि करोगे और प्रजापति नामसे प्रसिद्ध होगे। मैं ही भगवान् विष्णु हूं और मत्स्यरूपमें अवतीर्ण हो कर तुम्हारी रक्षा की।' (मत्स्यपु० १ अ०)

भागवतमें लिखा है, एक दिन शुकदेवने राजा परीक्षितसे कहा था, 'राजन्! भगवान् विष्णु गो, विप्र, देवता साधु, धर्म और अर्थको रक्षा करनेके लिये देह धारण करते हैं। वे वायुकी तरह सभी उत्कृष्ट भूतोंमें भ्रमण करते हैं, पर स्वयं वे निकृष्ट वा उत्कृष्ट नहीं होते, कारण वे गुणविशिष्ट नहीं हैं। राजन्! कल्पके अन्तमें जब ब्रह्मा निद्रावशीभूत हुए तब प्रलयकाल उपस्थित हुआ। उस प्रलयकालमें भूः आदि सभी लोक समुद्रजलमें मग्न हो गये। कालवशतः जब विधाता सो कर उठे तब सभी वेद उनके मुखसे निकल कर सामने गिर पड़े। हयग्रीव उन सब वेदोंको चुरा ले गया। भगवान् विष्णुको जब यह मालूम हुआ, तब उन्होंने उन वेदके उद्धारकेलिये मत्स्यरूप धारण किया।

इस समय सत्यव्रत नामक एक नारायणपरायण महर्षि जलमें बैठ कर तपस्या करते थे। यही सत्यव्रत

इस कल्पमें विवस्वानके पुत्र श्राद्धदेव नामसे विख्यात हो विष्णु कर्त्तृक मनुके पद पर स्थापित हुए थे।

सत्यव्रत एक दिन कृतमाला नदीमें तर्पण कर रहे थे। इसी समय उनकी अञ्जलिमें एक मछली उछल कर आई। राजाने उसे नदीमें फेंक दिया, इस पर मछलीने बड़े दीनवाक्यमें राजासे कहा, 'हे दीनवत्सल! मैं दुर्वल हूं, अपने संहारक मकर-कुम्भीरादिसे मैं डर गई हूं, इस कारण आपका आश्रय लिया था। आपने मुझे नदीमें क्यों फेंक दिया? सत्यव्रतके प्रति अनुग्रह दिखलानेके लिये नारायणने मत्स्यरूप धारण किया था, किन्तु सत्यव्रतको यह कुछ भी मालूम नहीं। मछलीकी बात परराजाके हृदयमें दया उपजी और वे उसे कलसीमें रख कर आश्रममें ले गये।

एक ही रातमें वह मत्स्य इतना बढ़ा कि कलसीमें उसे जगह न मिली। तब उसने राजासे कहा, 'कलसीमें मेरे रहनेको गुंजाइश नहीं, इसलिये आप मुझे ऐसे विस्तृत स्थानमें छोड़ आइये जहां मैं स्वच्छन्दतासे वास कर सकूं।' इस पर राजाने कलसीसे उसे निकाल कर मणिकच्छजलमें छोड़ दिया। मुहूर्त्त भरमें वह तीन हाथ बढ़ गया और राजासे कहा, 'राजन्! इस मणिकच्छजलमें भी मेरे रहने लायक जगह नहीं, सो किसी दूसरे विस्तृत स्थानमें दे आइये, क्योंकि मैंने आपकी शरण ली है।

राजा सत्यव्रतने मणिकच्छसे उस मत्स्यको निकाल कर एक सरोवरमें छोड़ दिया। सरोवरमें उसका आकार बहुत बड़ा हो गया और वहां भी रहनेका ठौर न मिला। तब उसने राजासे कहा, 'राजन्! मैं जलवासी हूं, किन्तु इस सरोवरका जल मुझे सुख नहीं पहुंचा सकता। आपने मेरी रक्षाका भार लिया है, सो मुझे एक वृहत् ह्रदमें स्थान दीजिये, जहां मैं सुखसे रह सकूं।' मत्स्यकी बात सुन कर राजाने उसे एक अक्षयजल जलाशयमें फेंक दिया। जब वहां भी उसे काफी स्थान न मिला, तब राजा समुद्रमें छोड़ आनेको उद्यत हुए। इस समय वह मत्स्य बोला, 'राजन्! समुद्रमें अधिक बलशाली मत्स्य रहते हैं, मुझे वे सब मार डालेंगे, अतः वहां मत छोड़िये।

उस बड़े मधुरभाषी मत्स्यके इस प्रकार अनुनय-वाक्य कहने पर सत्यव्रतने कहा, 'मत्स्यरूपमें आप हम लोगोंको मोहित करते हैं। बतलाइये आप कौन हैं? हम लोगोंने ऐसा वीर्यशाली जलचर न कहीं देखा है और न सुना ही है। आपने एक दिनमें शत योजन विस्तृत सरोवरको अतिक्रम किया, आप सचमुच साक्षात् भगवान् हरि हैं—भूतोंके कल्याणके लिये इस जलचर रूपको धारण किया है। हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको प्रणाम करता हूं। विभो! आप सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्त्ता हैं और मेरे जैसे विपद्ग्रस्त भक्तजनके मुख्य आत्मा और आश्रय हैं। आप लीलास्वरूप जो जो अवतार धारण करते हैं, वह सभी प्राणियोंकी समृद्धिका कारण है। आपने किस उद्देश्यसे इस मत्स्यरूपको धारण किया है, उसे मैं जानना चाहता हूं।' राजा सत्यव्रतके इस प्रकार विविध स्तुति करने पर मत्स्यरूपी विष्णु भगवान्‌ने कहा, 'हे अरिन्दम! आजसे ले कर सात दिनके भीतर त्रैलोक्य प्रलय-जलधिजलमें निमग्न होगा। त्रैलोक्य जब प्रलयजलमें निमग्न हो जायगा, उस समय मैं एक बड़ी नाव तुम्हारे निकट भेजूंगा। तुम सभी ओषधि, छोटे और बड़े बीज तथा सभी प्राणीको ले कर सप्तर्षियोंके साथ उस नाव पर चढ़ जाना। पीछे तुम ऋषियोंके ब्रह्म-तेजोबलसे आलोकहीन एकमात्र सागरमें सुस्थिर चित्तसे भ्रमण करोगे। जब प्रचण्ड वायु नावको आन्दोलित करने लगेगी, तब मैं स्वयं वहां पहुंच जाऊंगा। तुम महासर्प द्वारा उस नावको मेरे शृङ्गमें बांध देना। मैं ऋषियोंके तथा तुम्हारे साथ नावको खींच कर जब तक ब्रह्माकी नींद नहीं टूटेगी, तब तक समुद्रमें विचरण करूंगा और परब्रह्मविषयक तत्त्वोपदेश देता रहूंगा।' इतना कह कर मत्स्यरूपी विष्णु अन्तर्हित हो गये। विष्णु भगवान् जितने दिनोंके लिये कह गये राजा उतने दिन प्रतीक्षा करने लगे।

अनन्तर एक दिन राजा सत्यव्रतने देखा, कि चारों ओरसे घटा घिर आई, मूषलाधारमें वर्षा होने लगी और चारों ओरसे पृथ्वी प्लावित हो गई। भगवान्‌ने जैसा कहा था तदनुसार एक बड़ी नाव उनके सामने उपस्थित

हुई। राजा सभी वृक्षादि और प्राणियोंको ले कर ऋषियोंके साथ उस नाव पर चढ़ गये। मुनियोंने प्रसन्न हो कर कहा, 'इस समय एक मात्र भगवान् विष्णु ही बेड़ा पार लगायेंगे।'

अनन्तर राजा जब भगवान्की चिन्तना करने लगे, उस समय महासागरके मध्य एक शृङ्गधारी अयुत योजन विस्तृत स्वर्णमय मत्स्य दिखाई दिया। राजा संतुष्ट हो कर उस मत्स्यके शृङ्गमें सर्परज्जु द्वारा नाव बांध कर मधुसूदनका स्तव इस प्रकार करने लगे, "अविद्या द्वारा जिनका आत्मज्ञान आच्छन्न है। सुतरां अविद्यामूल संसाराश्रममें जो क्लेश पाते हैं वे इस संसारमें जिनके अनुग्रहसे पुनः अपने अपने कर्मबन्धनको मोचन कर जिनकी सेवा द्वारा सुखेच्छा परित्याग करनेमें समर्थ होते हैं, आप वही मुक्तिप्रद परमगुरु हो कर हम लोगोंकी हृदयग्रन्थिको छेदन कीजिये। जिस प्रकार चांदी अग्निस्पर्शसे निर्मल हो जाती है और तब अपने वर्णको लाभ करती है, उसी प्रकार पुरुष जिनकी सेवा करके मेरे मलस्वरूप अज्ञानको परित्याग और स्वरूपको उपार्जन करते हैं, वही ईश्वर आप मेरे गुरु होवें। मैंने ज्ञानलाभके लिये आपकी शरण ली है। भगवन्! परमार्थ प्रकाशक वाक्य द्वारा हृदयसम्भूत ग्रन्थिरूप अहङ्कारादिको छेदन कीजिये।

राजाके इस प्रकार स्तव करने पर भगवान्ने सागर-सलिलमें विहार करते हुए राजर्षि सत्यव्रतको तत्त्वोपदेश और सांख्ययोग क्रियासमन्वित दिव्य-पुराण तथा आत्मज्ञानका उपदेश दिया।

राजाने ऋषियोंके साथ नाव पर बैठ कर भगवान्के मुखसे संशयहीन आत्मतत्त्व और सनातन वेद श्रवण किया।

अनन्तर प्रलयकाल बीतने पर विष्णुने हयग्रीवका संहार कर ब्रह्माको वेद प्रत्यर्पण किया। ज्ञान विज्ञान सम्पन्न राजा सत्यव्रत विष्णुके प्रसादसे वैवस्वत मनु नामसे प्रसिद्ध हुए। इनकी पूजादिका विषय मेरुतन्त्रमें इस प्रकार लिखा है,—

यह अवतार सत्ययुगमें हुआ है। इनका रूप—नाभिका अधोदेश रोहितमत्स्यके सदृश तथा आकार मनुष्याकार, वर्ण घनश्याम। चारों हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म। मस्तक शृङ्गि-मत्स्य तुल्य, वक्षःस्थल पर लक्ष्मीविराजित, सर्वाङ्गमें पद्मका चिह्न और सुन्दर लोचनयुक्त।

"नाभ्यधोरोहितसम आकण्ठञ्च नराकृतिः।
घनश्यामश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः॥
शृंगिमत्स्यनिभो मूर्द्धा लक्ष्मीवक्षोविराजितः।
पद्मचिह्नितसर्वांगः सुन्दरश्चारु लोचनः॥"

(मेरुतन्त्र २६ अ०)

मत्स्यरूपी विष्णुका द्वादश अक्षर मन्त्र, 'ओं नमो भगवते मं मत्स्याय' इस मन्त्रसे मत्स्यदेवकी पूजा करनी होती है। वैशाख, कार्त्तिक, माघ और अग्रहायण मासमें इनकी पूजा करनेसे अभीष्ट सिद्ध होता है।

हयशीर्षपञ्चरात्रमें मत्स्यावतार मूर्त्तिका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—मत्स्यमूर्त्ति छत्तीस उंगली लम्बी होनी चाहिये। इस पुच्छदेशका मान लम्बाईका अष्टमांश रहे। इसे कुछ वक्र भावमें बनवाना चाहिये। मूर्त्ति विवृतानन रोदिताकृतिकी होगी। इस प्रकार विधिके अनुसार निर्माणकार्य शेष हो जाने पर इसके आपाद-मस्तककी नारायणरूपमें कल्पना कर यदि कोई मनुष्य एक मत्स्य भी यथाविधि स्थापन करे, तो उसे सर्वज्ञत्वलाभ होता तथा उसकी सभी विपद् दूर होती है।

यदि कोई सुवर्णका मत्स्य बना कर श्रोत्रीय ब्राह्मणको दान करे, तो उसे पृथ्वीदानका फल होता है। मत्स्यपुराणमें इसकी दानविधि लिखी है।

६ शिलाभेद। ब्रह्मपुराणके मतसे जो शिला तीन विन्दुयुक्त काञ्चनवर्ण और दीर्घाकार होती है, वही मत्स्याख्य शिला है। इस शिलाकी अर्चना करनेसे भुक्ति और मुक्ति लाभ होती है। कहीं कहीं काञ्चनवर्णकी जगह कांस्यवर्णका भी उल्लेख है।

पद्मपुराणके मतसे मत्स्यादि तीनों शिला श्यामवर्ण, द्विचक्र और सुचिह्नित हैं। इन तीनों शिलाके दर्शन करनेसे सब प्रकारकी कामना पूरी होती है। इस पुराणमें मत्स्यमूर्त्ति शिलाको कांचवर्णका बतलाया है।

ब्रह्माण्डपुराणके मतसे—जो शिला दीर्घ, द्वार और चक्रमें चिह्नित होती है, जिसका एक चक्र पुच्छभागमें

दाहिनी ओर शकटाकृति और बाईं ओर रेखा देखी जाती है, वही मत्स्यमूर्त्ति है। यह मूर्त्ति शुभप्रद है।

पुराणसंग्रहके मतसे—तीन विन्दु और शङ्ख-चक्र-पद्म चिह्नित दीर्घाकार दक्षिणास्य शिलाचक्र ही मत्स्य-चक्र है।

मत्स्यसूक्तके मतसे—मत्स्याकृति दीर्घाकार और मस्तक पर चिह्नयुक्त चक्र ही मत्स्यचक्र वा मत्स्यमूर्त्ति शिला है।

तन्त्रके मतसे मत्स्य पञ्च मकारका तृतीय मकार है।

"प्रथमन्तु भवेन्मद्यं मांसञ्चैव द्वितीयकम्।
मत्स्यञ्चैव तृतीयं स्यान्मुद्रा चैव चतुर्थिका।
पञ्चमं मैथुनं विद्यात् पञ्चैते नामतः स्मृताः॥"
(प्राणतोषिणी)

कुलार्णवतन्त्रके पांचवें खण्डके १७वें पटलमें मत्स्य शब्दकी व्युत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—माया, मल प्रभृतिका प्रशमन, मोक्षमार्गका निरूपण और आठ प्रकारके दुःखोंका नाश होता है, इसीसे इसका नाम मत्स्य हुआ है।

मत्स्यक (सं० पु०) मत्स्य स्वल्पार्थे कन्। क्षुद्र मत्स्य, छोटी मछली।

मत्स्यकरण्डिका (सं० स्त्री०) मत्स्यास्य करण्डिकेव। मत्स्यरक्षण पात्र, मछली रखनेका बरतन।

मत्स्यगन्धा (सं० स्त्री०) मत्स्यस्येव गन्धो यस्याः, छान्दसादित्वादित्वाभावः। १ लाङ्गलीवृक्ष, जलपीपल। २ व्यास-माता सत्यवतीका एक नाम। महाभारतमें इसका विवरण इस प्रकार आया है,—

उपरिचर नामक एक धर्मिष्ठ राजा थे। उनका दूसरा नाम वसु था। राजाने बड़ी कठोर तपस्या की थी। इनकी उग्र तपस्यासे देवराज इन्द्र डर गये। इन्द्रके कहनेसे इन्होंने तपस्या करनी छोड़ दी। तदनन्तर इन्द्रने सन्तोष देनेके लिये इन्हें स्फटिकमय आकाशगामी रथ और वैजयन्तीकी माला दी। वसुके पांच पुत्र थे। उन्हीं पांच पुत्रोंके नाम पर इन्होंने देश और राजधानी बसाई थी।

महामति वसुराज जब इन्द्रके दिये हुए स्फटिकमय विमान पर चढ़ कर आकाशमार्गसे विचरण करते थे, उस समय अप्सराएं आ कर इनकी सेवा करती थीं। रथ पर बैठ कर आकाशमार्गसे विचरण करनेके कारण उनका नाम उपरिचर हुआ। उनकी राजधानीके समीप शुक्तिमती नामको एक नदी बहती थी, कोलाहल नामक एक सचेतन पर्वतने कामोपहत हो कर उसकी गति रोक दी। इस पर राजा वसु बड़े विगड़े और कोलाहल पर्वतको एक ऐसी लात जमाई कि उसमें छेद हो गया। पीछे उसी छेदमेंसे शुक्तिमति नदी निकल पड़ी। कोलाहल पर्वतके सङ्गमसे उस नदीके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। नदीने राजाका बहुत उपकार माना और दोनों सन्तान उन्हें दे दीं। राजाने उस नदीपुत्रको सेनापति और गिरिका नामकी कन्याको रानी बनाया।

एक दिन गिरिका ऋतुस्नाता हो कर गर्भधारणकी कामनासे राजाके पास गई, पर उस दिन वसुके पितरोंने प्रसन्न हो कर उन्हें आखेट करनेका आदेश दिया था, राजाने उनका आदेश उल्लङ्घन करना अच्छा नहीं समझा और उसी समय वे आखेटको चल दिये, इस प्रकार गिरिकाको अभिलाषा पूरी न हुई। लेकिन वे सकाम चित्त थे, चलते चलते असामान्यरूप यौवनसम्पन्या गिरिकाकी याद आ जाती थी। एक तो वसन्तकाल, दूसरे काननमें तरह तरहके पुष्प विकशित और कोकिलका कूजन, इससे वे मन्मथ वशवर्त्ती हो कर एक अशोक वृक्षके नीचे बैठ रहे। वहां पर उनका रेतःपात हो गया। राजा उस स्खलित रेतको एक वृक्षके पत्तेमें रख कर सोचने लगे, किस प्रकार यह रेत गिरिकाके पास भेजा जाय जिससे उसका ऋतु व्यर्थ न निकले, क्योंकि यह रेत अव्यर्थ है। बहुत देर तक सोचनेके बाद राजाने उस शुक्रका संस्कार करके समीपवर्त्ती शीघ्रगामी एक श्येनपक्षीसे कहा, 'सौम्य! तुम मेरा एक काम करो, वह यह कि इस शुक्रको ले कर मेरी स्त्री गिरिके पास अन्तःपुरमें पहुंचा दो। क्योंकि वह आज ऋतुस्नाता है।' इस पर वेगवान् श्येन उस शुक्रको अपनी चोंचमें ले कर आकाशमार्गसे उड़ा, पर मार्गमें किसी दूसरे पक्षीसे आक्रान्त होनेके कारण वह रेत यमुनाजलमें गिर पड़ा। अद्रिका नामकी एक अप्सरा

ब्रह्माके शापसे मत्सी हो कर जमुना जलमें रहती थी। रेतःके यमुनाजलमें गिरते ही उसने पी लिया। उस मत्सीके गर्भ रहा। पीछे दशवें महीनेमें मछुओंने उस मत्सीको पकड़ कर राजा वसुको अर्पण किया। उसके पेटमें एक पुत्र और एक कन्या पाई गई। राजाने उन दोनोंमेंसे बालकको ग्रहण किया। वही मत्स्यजात बालक पीछे मत्स्य नामसे प्रसिद्ध राजा हुए थे।

अप्सरा थोड़े ही समयके अन्दर शाप-विमुक्ता हुई। कारण, पहले जब वह शापभ्रष्टा हो मीनयोनिमें पतित हुई थी, तब भगवान्ने कहा था, 'दो मानव प्रसव करनेसे ही तुम्हारा शाप मोचन होगा।'

इधर राजा वसुने मत्स्यगन्धवती मत्स्यगर्भजात कन्याको धीवरके हाथ सौंप दिया और कहा, 'यह कन्या तुम्हारी दुहिता होगी।' कन्या धीवरके घरमें पाली पोसी गई थी और उसके शरीरमें मत्स्यकी गन्ध थी, इस कारण उसका नाम मत्स्यगन्धा पड़ा।

यह कन्या मछुएके घरमें पालित हो कर नाव खेनेका काम किया करती थी। एक दिन पराशर तीर्थ-यात्राके लिये अनेक देशोंमें घूमते फिरते यमुना नदीके तीर पर उपस्थित हुए। नदी पार करानेको पराशरने धीवरसे कहा। धीवरने अपनी कन्या मत्स्य-गन्धाको इस कामके लिये नियुक्त किया। नदीके बीचमें नावके पहुंचने पर पराशर कामातुर हुए और उससे बोले 'कल्याणि! मेरा मनोरथ पूर्ण करो।' इस पर कन्याने कहा, 'भगवन्! देखिए, नदीके दोनों किनारे ऋषिगण हैं वे हम लोगोंको देख रहे हैं, अतएव अभी किस प्रकार हम लोगोंका सङ्गम हो सकता है। इस प्रकार मत्स्यगन्धाके आपत्ति करने पर महर्षिने तपोबलसे वहां कोहरा फैला दिया जिससे तमाम अन्धकार ही अन्धकार छा गया।

अनन्तर महर्षि द्वारा किये गये कोहरेको देख कर मत्स्यगन्धाने विस्मिता और लज्जाभिभूता हो ऋषिसे कहा, 'भगवन्! मैं पितृवशवर्त्तिनी कन्या हूं, मेरा विवाह नहीं हुआ है, आपके साथ सङ्गम करनेसे मेरा कन्याभाव दूषित होगा। कन्याभावके दूषित होनेसे किस प्रकार मैं घर जाऊंगी। अतएव आपसे निवेदन है, कि आप इसे भलीभांति सोचें और जो अच्छा हो वही करनेका मुझे आदेश करें।" मत्स्यगन्धाके इस प्रकार कहने पर ऋषि प्रसन्न हुए और बोले, 'मेरे सहयोगसे तुम्हारा कन्याभाव दूषित नहीं होगा। हे भीरु! अभी तुम अभिलषित वरके लिये प्रार्थना करो, मैं देनेको तैयार हूं।' इस पर मत्स्यगन्धाने पहले अपने शरीरमें उत्तम सौगन्धके लिये प्रार्थना की। महर्षिने तथास्तु कह कर उसका मनोरथ पूर्ण किया। अनन्तर मत्स्यगन्धाने ऋषिके प्रभावसे ऋतुमती और प्रार्थित-वरलाभसे सन्तुष्ट हो कर अद्भुतकर्मा पराशर ऋषिके साथ विहार किया। उसी दिनसे मत्स्यगन्धाका दूसरा नाम गन्धवती पड़ा। मानवगण एक योजन दूरसे भी उसके शरीरकी गन्ध ग्रहण करते थे, इस कारण उसका दूसरा नाम योजनगन्धा भी था। पीछे गन्धवती सत्यवती नामसे प्रसिद्ध हुई।

मत्स्यगन्धा इस प्रकार उत्तम वर पा कर बड़ी प्रसन्न हुई और पराशरकी अभिलाषा पूरी की। इसी सङ्गमसे वेदव्यासकी उत्पत्ति हुई। इनका जन्म द्वीपमें हुआ था, इस कारण ये द्वैपायन नामसे भी प्रसिद्ध हैं। द्वैपायन जन्म लेते ही माताकी आज्ञासे तपस्याके लिये वनमें चले गये। वन जानेके समय द्वैपायन अपनी मातासे कहते गये कि जब कभी तुम मेरा स्मरण करोगी तभी मैं पहुंच जाऊंगा। विशेष विवरण वेदव्यास शब्दमें देखो।

भीष्मने पिताका प्रियकार्य करनेकी इच्छासे मत्स्य-गन्धाका विवाह उनके साथ होने दिया। पीछे शान्तनुके औरस और मत्स्यगन्धाके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

(भारत आदिपर्व ६३ अध्याय) शान्तनु और भीष्म देखो।

२ हवुषा, हौहवेर। ३ मत्स्याक्षी, सोमलता। ४ लाङ्गली वृक्ष, जलपीपल।

मत्स्यघण्ट (सं० पु०) मत्स्यानां घण्टः विमिश्रणं यत्र। स्वनामख्यात मत्स्यव्यञ्जन विशेष, मछलीका घंट।

मत्स्यघात (सं० पु०) मत्स्यस्य घातः हननं। मत्स्य-हनन, मछली पकड़ना।

मत्स्यघातिन् (सं० त्रि०) मत्स्यं हन्तुं शीलमस्य हन

णिनि। मत्स्यजीवी, जो मछली पकड़ कर जीवन-धारण करता हो, मछुवा।

मत्स्यजाल (सं० क्लो०) मत्स्य-धारणार्थं जालं, शाक-पार्थिववत् समासः। मछली पकड़नेका जाल।

मत्स्यजीवी (सं० पु०) मत्स्येन-मत्स्यविक्रयादिना जीवति जीव-णिनि। निषादजाति, मछुवा।

मत्स्यण्डिका (सं० स्त्री०) मदं मधुररसं स्यन्दते इति स्यन्द-ण्वुल्-टाप्, अत इत्वं, पृषोदरादित्वात् साधुः। शर्कराविशेष, मिसरी।

मत्स्यण्डी (सं० स्त्री०) खण्डविकार, मिसरी। यह वैद्यकमें स्निग्ध, धातुवर्द्धक, मुखप्रिय, वलकारक, दस्तावर, हलको, तृप्तिकारी, सब प्रकारके रोगोंको शान्त-करनेवाली और रक्त पित्तको नष्ट करनेवाली मानी गई है।

मत्स्यतत्त्व—जलजप्राणिविशेष मत्स्य नामसे प्रसिद्ध हैं, जिसके द्वारा इन प्राणियोंका तत्त्व जाना जाता है, उसे मत्स्यतत्त्व कहते हैं। पाश्चात्य प्राणितत्त्वविदोंके मतसे मत्स्य Pisces श्रेणीके अन्तर्भुक्त है। बोलचालमें इसे मछली कहते हैं। मत्स्य हो जगत्का आदि जीव माना गया है। पुराणमें लिखा है, कि स्वयं भगवान् नारायण मीनरूपमें इस धराधाममें पहले पहल अवतीर्ण हुए थे। मीनरूपमें भगवान्ने पहले पहल अवतार लिया था, इस कारण मीनको जगत्का आदि जीव कहनेमें जरा भी संदेह नहीं होता। क्योंकि भूतत्त्वकी आलोचना द्वारा जाना गया है, कि पृथ्वीकी प्रथमावस्थामें मत्स्य एकमात्र जीव विद्यमान था। विज्ञानविद्गण उसीको मत्स्ययुग (Age of Fishes)की कल्पना कर गये हैं। सुतरां भगवान्के प्रथमावतारको मीन नामसे उल्लेख करना किसी प्रकार असङ्गत नहीं है। फिर भी विशेष बात यह है, कि उस समय जिन सब मत्स्यजातीय जीवने जन्मग्रहण किया था, वे निःसन्देह जलज अवतार माने जा सकते हैं। वह विराट देह और विशाल आयतन मत्स्य आज भी भूगर्भनिहित अस्थिपञ्जरसे प्रमाणित होता है।

पृथिवी शब्दमें 'इक्थियोसरस' 'प्लिओसेरस' आदि जिन सब वृहदाकार मत्स्यजातीय जीवोंका उल्लेख किया गया है, वह वर्त्तमान युगके वृहदाकार तिमि मत्स्य (perm whale वा Physeter Macrocephalus)-की अपेक्षा वहुत बड़ा था। पृथिवी देखो।

अभी कालमाहात्म्यसे मत्स्यजातिकी वहुत अवनति हुई है। पृथिवीके नाना स्थानोंमें अर्थात् लवणमय समुद्र तथा सुमिष्ट जलपूर्ण नदी, ह्रद, तड़ाग वा पुष्करिणी आदिमें विभिन्न आकृति और प्रकृतिके अनेक मत्स्य उत्पन्न हुए हैं। भारतवर्षमें जो सब मत्स्य अधिक संख्यामें पाये जाते हैं, साइवेरिया वा अमेरिकामें उस जातिके मत्स्यका विलकुल अभाव देखा जाता है। अमेरिकामें जो मत्स्य हैं, यूरोपके स्थानविशेषमें उनका चिह्नमात्र भी नहीं है। मत्स्यजातिका ऐसा स्थानविक्षेप (migration) सम्भवतः जलसंयोगवशतः अथवा मत्स्यप्रिय लोगोंके द्वारा ही हुआ होगा। मत्स्यका ऐसा स्वभाव है, कि वे ग्रीष्मकालमें दूसरी जगह जा कर रहना पसन्द करते हैं। फिर Seal, Salmon आदि मत्स्य शीतप्रधान देशमें ही उत्पन्न होते हैं। वे हिममण्डलजात जीव कहलाते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि मछलियोंके रहनेके लिये विशेष विशेष स्थान निर्दिष्ट हैं। कोई मछली तड़ागमें, कोई ह्रदमें, कोई नदीमें और कोई समुद्रमें उत्पन्न होती है। दक्षिण-अमेरिकाकी नदीविशेषमें ऐसा एक जाइन मत्स्य पाया जाता है, कि उसे स्पर्श करते ही घोड़ा तक कम्पितकलेवरसे प्राणत्याग करता है। उस स्थानको छोड़ कर पृथ्वीमें और कहीं भी वैसा मत्स्य नहीं देखा जाता। भूमध्यसागरमें चार प्रकारके मत्स्य हैं जिन्हें स्पर्श करते ही शरीर कांप उठता है, किन्तु उनसे प्राण जानेका भय नहीं रहता। हाङ्गर ग्रीष्ममण्डलमें वास करता है, सम वा हिममण्डलमें उसका विलकुल प्रचार नहीं है। किन्तु सर्प, कुम्भीर आदि जीवोंके लिये स्वतंत्र नियम देखा जाता है। कोई कोई मत्स्य ऋतुभेदमें स्थान परिवर्त्तन करता है। इलिस (Hilsa) वा साड् (Shad) और तपस्वी (Mango-fish) मत्स्य भारत-समुद्रमें वास करता है। केवल अण्ड-प्रसवकालमें ही वे निर्मल सुमिष्टसलिला नदीमें प्रवेश करते हैं तथा अभिमत स्थानमें अंडे दे कर पूर्वतन वासभूमि समुद्रमें लौट आते हैं। उक्त दोनों प्रकारकी मछलियां जब

समुद्रको छोड़ कर अन्य नदीमें जाती हैं, उस समय उनका मांस वहुत स्वादिष्ट होता है। अन्यथा समुद्रके लवण-जलमें उनके मांसमें कोई विशेष स्वाद नहीं रहता। इस प्रकार हिमसमुद्रवासी हेरिंग नामकी मछली प्रतिवर्ष एक वार दल बांध कर सममण्डलके समुद्रमें अंडे देने आती है। पीछे प्रसवकार्य शेष कर पुनः स्वस्थानको लौट जाती है। अपरापर बहुतसे मत्स्य इस प्रकार समय समय पर एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाते हैं। इस श्रेणीके मत्स्योंका मत्स्यतत्त्वविदोंने Migratory Fish नाम रखा है। एतद्भिन्न एक देशस्थायी वा Non-Migratory नामक एक दूसरी श्रेणीकी मछली देखी जाती है। वे एकमात्र प्रसवकालमें ही सुविधाजनक किसी दूसरे स्थानमें जो वहांसे करीव ही रहता है जाती हैं। साधारणतः पहाड़ी मछलियोंमें यह नियम देखा जाता है। ये अंडे देनेके समय अपेक्षाकृत गहरे जलसे छिछले स्थानमें जाती हैं। अन्तमें वे उपयुक्त स्थानमें अंडे दे कर पुनः अपने पूर्व स्थान गभीर जलमें आती हैं। इस समय मत्स्यजीविगण उन्हें पकड़नेके लिये तेज धारकी ओर जाल फैला रखते हैं। मछलियां निम्नाभिमुखी प्रपात-गतिसे आ कर उस जालमें फंस जाती हैं। अंडे देनेके वाद वे सब मछलियां खानेमें स्वादिष्ट नहीं होतीं। उनके मांसमें कोई स्वाद नहीं रहता और वे वहुत ही कृश दिखाई देती हैं।

मत्स्यजातिका वाह्य और आभ्यन्तरिक निदर्शनका लक्ष्य और आलोचना करके मत्स्यवित् पण्डितोंने जो स्थिर किया है, नीचे उसका संक्षिप्त विवरण देते हैं। उन्होंने इस जातिके जीवको जीवसङ्घके अन्तर्गत अस्थ्याधार देह (*Vertibrata*) जीवमें शामिल किया है। उक्त श्रेणीके मत्स्य (*Pisces*) अण्डज माने गये हैं।

मत्स्योंके मध्य फिर १० विशिष्ट विभाग देखे जाते हैं। यथा—१ निर्हृदयक (Leptocardia) अर्थात् जिनके हृदय नहीं है, वे शोणित और शिरा समूहके सङ्कोचनसे परिचालित होते हैं। इस श्रेणीमें एकमात्र आम्फिय-क्सस् लान्सिओलेटस जाति देखी जाती है। २ चक्रतुण्डी (Cyccostomata) अर्थात् जिनका मुख चक्रकी तरह मण्डलाकार है। लाम्प्रिजातीय मत्स्य इस श्रेणीमें गिना जा सकता है। ३ क्लोमतुण्डी (Physostomata) अर्थात् जिनका शरीरस्थित वायुक्लोम मुखके साथ संलग्न रहता है। इस जातिके मत्स्योंके डैनेमें अस्थि शलाका नहीं रहती अथवा पृष्ठके परके अग्रभागमें सिर्फ एक शलाका रहती है। ४ निःशलाक (*Anacanthena*) अर्थात् जिनके डैनेमें शलाका रहती ही नहीं तथा वायुक्लोम भी मुखके साथ संलग्न नहीं रहता, अपर गलेकी अस्थि पृथक् रहती है। ५ संक्लृप्तकण्ठास्थिक (Pharyngognatha) अर्थात् जिनके गलेकी हड्डियां एकत्र संलग्न हो कर एक खण्ड हो जाती हैं। ६ कण्टकपक्षक (Acanthoptera) अर्थात् जिनके डैनेके पुरोभागमें एक वा उससे अधिक अस्थिशलाका रहती है। इनके गलेकी हड्डियां अलग अलग रहती हैं कभी भी एकत्र संक्लृप्त नहीं होतीं एवं ऊपरके गलफड़े संचालित हो सकते हैं इस श्रेणीके सभी मत्स्योंके वायुक्लोम नहीं होते। किसी किसीमें वायुक्लोम देखा जाता है। ७ गुच्छित-कर्णकूपक (Lophobranchiata) अर्थात् जिनके कर्णकूपकी सभी शलाकाएं गुच्छेमें फैली रहती हैं। इनके कर्णकूपका आवरण बड़ा होता है, किन्तु वह चमड़ेसे इस प्रकार ढंका रहता है, कि उसमेंसे जल निकलनेके लिये सिर्फ एक छोटा छेद अवशिष्ट रहता है। ८ अचलोर्द्ध्वमाड़िक (Plectognatha) अर्थात् जिनके ऊपरके गलफड़े मस्तकके साथ इस प्रकार संलग्न रहते, कि वे किसी तरह नहीं हिलते डोलते। इस श्रेणीके मत्स्यका मस्तक अस्थिमण्डित रहता है, किन्तु शरीरके अधिकांश स्थानोंमें उपास्थि (छोटी छोटी हड्डियां) हैं। ९ उपास्थि-बहुल (Selachia) अर्थात् जिनकी देहका अधिकांश उपास्थिमय है, देह अति सूक्ष्म शल्क वा केवल चमड़ेसे आवृत रहती है। १० चिक्कणशल्की (Ganoidae) और अस्थिमय है।

एतद्भिन्न मत्स्य नामसे प्रसिद्ध जीवोंके अन्तर्गत कितने जलज जीव मत्स्यजातिमें गिने जाते हैं। इसमेंसे झींगा मछली ही प्रधान है। समुद्रज कटल-फिस (Cuttle fish) नामधारी मत्स्यजाति त्वगा-

धारदेह (Molluscae)- जीव श्रेणीके अन्तर्गत हैं। ये सब शिरःपदो (Cephalopada) अर्थात् मस्तक-संलग्न पद तथा एक कोष्ठोके हैं। इन सब जीवोंकी देह एक कोष्ठविशिष्ट चूर्णमय आधारसे परिपूर्ण है। ये जल-में रह कर मेघकी तरह धूम उगलती हैं और पीछे आप उसमें छिप रहती हैं। प्रशान्त महासागरमें इस जातिकी मछलियोंका वास है। ये कभी कभी समुद्रपृष्ठसे इतना ऊंचा ऊपर उठती है, कि जहाजके डेक पर आ गिरती है। इनके शरीरसे Sepia नामक एक प्रकारका रङ्ग निकलता है जो चित्रकर्म (Water-colour paintings)में व्यवहृत होता है।

अंशुशिरालदेह (Radiate) जीवोंके मध्य कण्टक-देही (Echinodermata अर्थात् जिनके शरीर पर कांटे रहते है) ष्टार फिस (Star fish) मत्स्य जातिमें गिनी जाती है। इस तारक मत्स्यश्रेणोका Uraster violaceus देखनेमें वैंगनी रंगका होता है। एतद्भिन्न इस श्रेणोमें Goniaster equestris, Astropecten spinulosus और Astrophyton verrucosum आदि कई प्रकारके प्रभेद देखे जाते हैं। इनमेंसे प्रथमोक्त दो जाति पञ्चपलयुक्त तारकाकृति तथा शेषोक्त भी पञ्चपलयुक्त होती हैं। इनके शरीरके ऊपर कांटेकी तरह रोंगटे खड़े होते हैं जिन्हें एक वार काटने पर फिर निकल पड़ते हैं। कभी कभी कटा हुआ एक पल फिर बढ़ कर ऐसा लम्बा हो जाता है, कि वह एक धूमकेतुके जैसा दीखता है। क्योंकि उसका एक पल लम्बमान पुच्छाकारमें परिणत और दूसरा चार पल समभावमें रहता है। अंडेसे हो इनके बच्चे पैदा होते हैं। जाति भेदसे लाल वा जर्द अंडे देखे जाते है। गर्भिणी अपने शरीरके भीतर एक गड्ढेके मध्य अंडे देती हैं। जहां अंडे रहते हैं वह स्थान कुल गोलाकारमें शरीरसे उठा रहता है। सिर्फ ग्यारह दिन गर्भभार सह कर गर्भिणी अंडे देती हैं। बच्चे अण्डेको फोड़ कर जब बाहर निकलते हैं, तब उनकी आकृति विभिन्न रहती है। पीछे वे पितामाताकी आकृतिको प्राप्त होते हैं। इनका मांस विषाक्त होता है।

पहले हो कहा जा चुका है, कि मत्स्य अस्थ्याधारदेह जीवश्रेणीके अन्तभुक्त है। समस्त अस्थियोंके मध्य मत्स्यका मेरुदण्ड ही प्रधान है। वह मेरुदण्ड बहुत सी छोटी छोटी हड्डियोंका बना हुआ रहता है। मनुष्यके मेरुदण्डकी तरह यह भी Spinal chord द्वारा इस प्रकार दृढ़संवद्ध है, कि मत्स्यगण इच्छानुसार अपने शरीरको वक्र कर सकते हैं और उससे शरीरमें कोई हानि नहीं पहुंचती। इस दण्डके मध्य और पृष्ठमें मज्जा रहनेके कारण जीवदेहमें चेतनाशक्तिका संचार होता है। दण्डके एकाग्रमें करोटी संस्थापित है, वही ज्ञानेन्द्रिय मस्तिष्कका आधार है। वह मस्तिष्क मनुष्य-के शरीरमें अपेक्षाकृत बहुत और मत्स्यादि जीवमें थोड़ा होता है। मस्तिष्कके परिमाणानुसार जीवदेहमें ज्ञानका वैषम्य हुआ करता है। मेरुदण्डका अपरांश क्रमशः सूक्ष्म हो कर लागूंलरूपमें परिणत होता है। मनुष्यदेहमें भी वह सूक्ष्मात्र है, किन्तु वह देहके मध्य हो आवृत है। किसी किसी जलज जीवकी पूंछ ही एकमात्र गातका उपाय है। पूंछके नहीं रहनेसे वे किसी प्रकार जोवननिर्वाह नहीं कर सकते थे। तिमि नामक समुद्रज मत्स्य ही उसका प्रकृष्ट निदर्शन है। अन्यान्य मत्स्योंके तैरने आदिके लिये पूंछके बदलेमें डैने होते हैं, किन्तु इस स्थूलदेही तिमि मत्स्यकी पूंछ ही एकमात्र जीवनाधार है।

अवस्थ्याधार-जीवदेहके साधारणतः मध्यभागमें अस्थि, अस्थिके ऊपर मांस, मांसके ऊपर त्वक् और त्वक्के ऊपर केश, लोम, शल्क वा पक्षावरण रहते हैं। मत्स्यजातिका शल्क ही प्रधान आवरण है; किन्तु किसी किसी मत्स्यमें उस नियमका भी व्यतिक्रम देखा जाता है। मछलाके दांत और दाढ़ होती हैं। किसी किसी निकृष्ट मछलीके दाढ़ नहीं होती, किन्तु दांत होते हैं।

मछलियां जलचर हैं। वे जलमें रह कर फुसफुस द्वारा श्वासकर्म अनायाससेनिर्वाह नहीं कर सकती हैं, इस कारण विधाताने उन्हें फुसफुसके बदलेमें एक दूसरा यन्त्र दिया है। उस यन्त्रका नाम है कर्णकूपी। उस यन्त्रके द्वारा वे समुद्रमें भी आसानीसे श्वास आदि ले सकती हैं। इस कारण वे वायुपूर्ण जलको मुखमें ले कर कर्णकूपीके मध्य हो कर संचालित कर देती हैं

इसीसे उनका श्वासग्रहण कार्य सुसम्पन्न होता है। मछलियां वायुके आक्सिजन (Oxygen) द्वारा ही जीती हैं, यदि उन्हें आक्सिजन न मिले तो वे क्षण भर भी नहीं ठहर सकतीं। कोई मछली ऐसी भी है जो वायुमिश्रित जलका आक्सिजन ग्रहण करती है और कोई जलसे ऊपर उठ कर श्वास लेती है। इससे उनके शरीरमें जो आक्सिजन प्रविष्ट होता है, उससे ये स्वच्छन्दतापूर्वक प्राणधारण कर सकती हैं। एतद्भिन्न कोई कोई मछली जलके ऊपर बहती हुई आक्सिजन ग्रहण करती है। उनके पृष्ठ, शल्क और त्वक् जगत्कर्त्ता द्वारा इस प्रकार बनाये गये हैं, कि उन्हींसे वे यथेष्ट परिमाणमें आक्सिजन ग्रहण कर सकती हैं।

यथार्थमें मत्स्यजातिको जलग्राहक (Water breathers) कहते हैं। किन्तु उस जलमें ओतप्रोतभावसे आक्सिजन मिला रहता है। वे जलग्रहण कर जलसे आक्सिजनमात्र ग्रहण करती हैं, अवशिष्ट जल कान हो कर बह जाता है। ऐसा नहीं होनेसे Cyprininae और Siluridae श्रेणीकी मछली जो कभी भी गभीर जलको छोड़ कर ऊपरकी ओर नहीं उठती, प्राणधारण नहीं कर सकती थी। इस श्रेणीकी एक एक मछलीको कांचके गोल बरतनमें रख कर परीक्षा की गई है। मछली रखनेके बाद पात्रस्थ जलके ऊपरी तलसे कुछ नीचे एक सूक्ष्मपटहको (diaphram) दृढभावमें आवद्ध करने पर भी नीचेकी मछली वायुस्पृष्ट जलतलके आक्सिजनके विना जीवनधारण कर सकती है, पर उनके गलफड़े (gills)-को यदि किसी तरह सूक्ष्म अथच दृढ़ रज्जु द्वाराबांध दिया जाय, तो वह क्षण भर भी श्वास नहीं ले सकती है और मर जाती हैं।

कुछ मछली ऐसी भी है जो जल सेवनकालमें वायुग्रहण करने पर भी कीचड़के जलसे उनके जीवनमें जरा भी हानि नहीं पहुंचती। मंगुरी, गरई, गैंची आदि मछलियां कीचड़में अच्छी तरह रह सकती हैं। ऐसा देखा गया है, कि पुष्करिणीका सभी जल धूपसे सूख कर कीचड़की परत पर पपड़ी पड़ गई है। किन्तु उस पपड़ीके निम्नस्थ कीचड़में गड्ढा बना कर श्रृङ्गी, मंगुरी आदि मछलियां अपने मुखमेंसे निकली हुई लालके मध्य सुख-पूर्वक पड़ी हुई हैं। ये विना आक्सिजनके बहुत दिन जीवित रह सकती हैं। उन्हें जलसे आक्सिजन लेनेकी जरूरत नहीं पड़ती, वे आवश्यकतानुसार शून्यसे वायुग्रहण करती हैं। एक कांचके बरतनमें वा छोटे चहबच्चेमें टेंगरा और मँगुरी मछलीको रख कर श्वासक्रियाकी पृथकताका जब लक्ष्य किया गया तब देखा गया, कि टेंगरा मछली अपने गलफड़ेसे जलगर्भस्थ वायु ग्रहण करती है और मँगुरी स्वेच्छावशतः निश्चेष्ट पड़ी हुई है। वह बीच बीचमें ऊपरकी ओर उठ कर बुद्बुदाकारमें अपने शरीरकी वाष्पको विकीर्ण कर पुनः शून्यदेशसे नूतन आक्सिजन वायु लेती हुई नीचेकी ओर जाती है।

साधारणतः मीठे जलमें जो मछली उत्पन्न होती है वही खाने लायक है। स्थानभेदसे मत्स्यादिकी आकृतिमें भी वैलक्षण्य देखा जाता है। सिंहल, दक्षिण-भारत और सिन्धुप्रदेशमें कहीं कहीं लोग मछली जलाशय आदिसे पकड़ लाते और तब खाते हैं, मरी हुई मछली नहीं खाते। इन सब मछलियोंमें रोहित, मँगुरी और शिंगी मछली उत्कृष्ट और बलकारक है। रोगीको पुष्टिके लिये इसके जूसका सेवन कराया जाता है। श्रृङ्गी मछली दीर्घजीवी है। कहते हैं, कि उसकी पूंछ काट डालने पर भी वह नहीं मरती।

समुद्रके लवणजलमें भी कुछ मछलियां पाई जाती हैं, पर उनका मांस उतना स्वादिष्ट नहीं होता। अलावा इसके समुद्रमें और भी अनेक प्रकारकी मछली रहती है जिनके विषयकी आलोचना करनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। इनमेंसे लाल मछली, उड़नेवाली मछली ही उल्लेखयोग्य है।

समुद्रगर्भमें जो उड़नेवाली मछली है, उसे बहुतेरे जानते होंगे। वह मछली जलमें स्वच्छन्दपूर्वक तैर सकती है, किन्तु कभी कभी बलवान् जलज जीव कर्तृक आक्रान्त होने पर वह आततायीके हाथसे रक्षा पानेके लिये जलसे उछल कर शून्यमार्गमें पक्षी आदिकी तरह विचरण करती है। जब तक उसके डैने भिंगे रहते हैं तभी तक वह शून्यमार्गमें ठहर सकती है। धूप और वायुसे जब डैनेका जल सूख जाता है, तब डैनेमें उड़नेकी

शक्ति नहीं रहती और वह फिर जलमें गिर पड़ती है।

इस उड़नेवाली मत्स्य जातिको अंगरेजीमें Sea-horse (Hippocampus) कहते हैं। इनके भी फिर तीन भिन्न भिन्न थोक हैं। Trigla gurnardus—इनका मुखविवर वाघके जैसा होता है। कंधेके दोनों पार्श्वमें खड्गके समान तेज धारवाली छोटी छोटी हड्डियां उठी रहती हैं। इनके pectoral और Ventral दोनों ही डैने उड़नेमें सहायता पहुंचाते हैं।

Triglà lucerna—इनके मुखमें एक प्रकारका जलीय पदार्थ रहता है। रातको जब ये मुख खोले रहती हैं उस समय उस आलोकको देखते ही जलज कीटादि उस ओर आते और उनके मुँहमें फंस जाते हैं। रातको जलका परित्याग कर जब ये शून्य मार्गमें विचरण करती हैं, तब दूरसे वह मुखालोक उल्का (Shooting stars)-की तरह मालूम होता है।

Pegasus Volans—वा ड्रागणमुखी उड़नेवाली मछली। इनका प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्ग ग्रीक-पुराणोक्त ड्रागण (Dragon) नामक जीवके जैसा है। अंगरेजीमें इसे Flying-horse कहते हैं।

एतद्भिन्न स्थानविशेषमें और भी कई प्रकारको अद्भुत मत्स्यजातिका निदर्शन पाया जाता है। उनके गठन और कार्यादि साधारण मत्स्यजातिसे बहुत विभिन्न है। ये सभी हिंस्र जन्तुकी तरह शिकार पकड़ कर अपना पेट भरते हैं। व्याघ्रादिकी तरह इनकी समुद्रज हिंस्र प्राणिमें गिनती है। नीचे दृष्टान्तस्वरूप थोड़े के नाम उद्धृत किये गये हैं :—

१। मध्य-अमेरिका जात 'हसर' (Doras costata) मत्स्य। जलाभाव होने पर यह उत्तप्त सूर्यरश्मिमें भी बहुत दिन जी सकता है। कभी कभी जलकी तलाशमें यह डैनेका सहायतासे जमीन पर घूमता है और निकटवर्त्ती किसी स्थानमें जल नहीं पानेसे गीली मट्टीमें गड्ढा बना कर रहता है।

२। रेमोरा वा Sucking fish—इसके शिरकी खोपड़ी पर एक थालके जैसा चिपटा चक्र रहता है। उस चक्रके मध्य एक मेरुदण्ड और कुछ पञ्जरवत् अस्थि देखी जाती हैं। वह चक्र ऐसे कौशलसे बना हुआ है, कि वह किसी जहाज वा वृहत् मत्स्यके तलदेशमें अटकाया जा सकता है। जब वे शिकारको निकलते हैं, तब उक्त प्रकारसे अपने शरीरको दूसरेके शरीरमें लगा कर निरापदसे चलते हैं। प्राचीन लोगोंका विश्वास है, कि यह रेमोरा मत्स्य पहले अपने मस्तक पर जहाजको अटकाये रखता था। प्लिनिका वृत्तान्त पढ़नेसे पता लगता है, कि एकटियमके युद्धमें आराटोनीके जंगी-जहाजको रेमोरा मत्स्यने रोक रखा था जिससे अगष्टसकी जीत हुई थी। उन्होंने और भी कहा है, कि समुद्रगर्भस्थ अत्याश्चर्य सभी विषयोंमें यही मत्स्य प्रधानतम है। यदि किसी तरह यह जहाजको अटका रखे, तो तूफान आदि उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता है।

३। रे (Ray) मत्स्य—यह शैवालके मध्य छिपा रहता है और शिकारको नजदीकमें पानेसे उस पर झटसे चढ़ बैठता और निगल जाता है।

४। एपिबुलस (Epibulus)—यह भी छिपे हुए स्थानमें रह कर शिकारकी बाट जोहता है। मछलीके छोटे बच्चेको देखते ही पकड़ कर खा जाता है।

५। एङ्गलर (Angler)—इनके ओष्ठाग्रमें कुछ कड़ी कड़ी मूंछें निकली रहती हैं। उन मूंछोंके अग्रभागमें बहुत छोटा मांसपिण्ड रहता है। यह भी छोटी छोटी मछलीको पकड़ कर खाता है।

६। स्कर्पिणा (Scorpaena)—यह बड़ा ही क्रूर होता है। यहां तक कि, अपनेसे २० गुणा बड़े मत्स्यको भी चीर डालता है।

७। चेलमन (Chelmons)—यह कीड़े मकोड़ेको खा कर अपना पेट भरता है। जलके ऊपर पत्र वा शाखाओं पर बैठे हुए पतंग आदिको देखनेसे ही वह अपनी नलाकार सूक्ष्म नाकको आगे बढ़ाता और उस पतंगको खींच लाता है।

८। आर्चरमत्स्य (Archer-Fish)—यह भी उसी प्रकार शिकारसे अपना जीवन धारण करता है। यवद्वीपके निकट साधारणतः इस जातिका मत्स्य देखनेमें आता है।

फिर भी कितने मत्स्य ऐसे हैं जो स्वभावतः निरीह

होते हैं। जगदीश्वरने उनकी रक्षाके लिये शरीरमें कांटे, खड्ग आदि यथास्थानमें सन्निवेशित किये हैं। कोई कोई मत्स्य ऐसा है जिसके सभी छिलकोंमें कांटे देखे जाते हैं। किसीके डैनेके कांटेका अग्रभाग इतना तेज होता है, कि असावधानवशतः उन्हें हाथसे पकड़नेसे हाथ घायल हो जाता है।

समुद्रज मत्स्यके मध्य हेरिं, सार्डिन, एङ्कभि, सामन और तुनी मत्स्य यूरोपवासी जनसाधारणके खाद्य हैं। फरासीराज १४वें लुई जब मार्सेल वन्दर देखने आये थे, तब उन्होंने तुनीका मांस बड़ी रुचिसे खाया था। एतद्भिन्न काड (Cod वा Morrhua vulgaris) नामक एक और प्रकारका सामुद्रिक मत्स्य है। इसके यकृत-को पीसनेसे एक प्रकारका तेल निकलता है। चिकित्सा-विज्ञानमें इस तेलको विशेष उपकारी और पुष्टिप्रद बत-लाया गया है। श्वास, कास और स्नायविक दुर्बलता-में Cod-liver oil विशेष फलदायक है। काडमत्स्यके यकृतको पीसनेसे पहले जो तेल निकलता है, वही औष-धार्थमें व्यवहृत होता है। दूसरी बारका निकाला हुआ तेल काला होता और रोशनी जलानेके काममें आता है। यूरोपमें काडमत्स्य और हेरिंग-मत्स्य पकड़नेके लिये विस्तृत कारवार है। न्युफाउण्डलैण्ड-वासी काडमत्स्यको पकड़ कर पहले उसके पेटको फाड़ डालते हैं, पीछे यकृत् निकाल कर उसे एक बरतनमें रखते हैं। बादमें उसका मेरुदण्ड काट कर दोनों पार्श्वके मांसको बांसकी पट्टियों पर रख कर सुखाते हैं। अनन्तर उसे बाजारमें अधिक मोल पर बेचते हैं। हेरिं मत्स्यको भी उसी प्रकार जहाज पर रखनेके बाद चीर फाड़ डालते हैं। पीछे पित्तादि निकृष्ट अंशको अलग कर अवशिष्ट मत्स्यको लवणसे ढके रखते हैं। कभी कभी वह मत्स्य धूपमें सिक्त कर (Smoked) रखा जाता है। हेरिं मत्स्यको सिद्ध कर जो तेल निकालते हैं, उसे परिष्कार करनेके बाद बाजारमें बेचते हैं। तेल निकालनेके बाद कड़ाहमें जो अवशिष्ट मांस-पिण्ड (tangrum) रहता है, वह भूमिमें खाद देनेके लिये व्यवहृत होता है।

एतद्भिन्न बृहदाकार मत्स्यके मध्य डलफिन (Dol-Phin) जनसाधारणका आदरणीय है। इङ्गलैण्डराज ३य, ५म और ७म हेनरी तथा रानी एलिजावेथ इसके मांस-को बहुत पसन्द करती थीं। उत्तर-महासागरमें नर-हाल (Norwhal) नामक तिमिमत्स्यकी तरह एक प्रकारका मत्स्य है। उसके ऊपरवाले होठमें गैंड़ेकी तरह दो खड्ग देखे जाते हैं। वह कमसे कम ३० फुट लम्बा होता है। पहले हस्ति-दन्तके समान श्वेतवर्णके इस दन्तको unicorn नामक अद्भुत जीवके कपाल पर सजाते थे।

हिममण्डलके बरफावृत समुद्रजलमें सील (Seal) नामक एक प्रकारका जीव देखनेमें आता है जो बहुत कुछ चतुष्पद पशुके समान होता है। मत्स्य, कर्कट आदि जलज जीव इसके एकमात्र आहार्य हैं। ये बहुत देर तक जलमें रह कर और देर तक वायु सेवन करके दिन बिताते हैं। इसी कारण इनकी गिनती मत्स्य-श्रेणीमें की गई है। इनके चार डैने होते, शरीर कठिन और बहुत रोओंसे ढका रहता है। जनसाधारण इनका मांस खाते हैं और चमड़ेसे पहननेके कपड़े और जूते बनाते हैं। सीलके चमड़ेसे एक अंगरखा बनानेमें हजारसे ज्यादा रुपया लगता है। कारण अङ्गरखेके उपयोगी सीलमत्स्य प्रायः मिलता ही नहीं। धीवरगण इस सीलजातिको सामुद्रिक व्याघ्र या गो-वत्स (Sea-Wolf वा Sea-calf कहते हैं।

मत्स्यगण साधारणतः जलमेंके छोटे छोटे कीड़े मकोड़े, मत्स्य, शैवाल आदि खाकर जीविकानिर्वाह करते हैं। गर्भिणी अण्डे देनेके समय नर-मत्स्यके पीछे पीछे चलती है और ज्यों ही दो एक अंडे गर्भस्थानसे बाहर निकलते हैं त्यों ही नर-मत्स्य उन्हें निगल जाते हैं। इस कारण मादा स्वभावतः अंडे देनेके समय नर मत्स्य-का साथ छोड़ कर वैसे जलाशयमें चली जाती हैं जहां बड़े बड़े मत्स्यका रहना सम्भव नहीं है। वहां अंडे दे कर वह फिर अपने पूर्वजलाशयको लौट आती हैं। अंडे धूप और वायुके तापसे धीरे धीरे अपने आकारमें पलट जाते हैं। उन अण्डोंके बच्चोंकी रक्षा करनेके लिये धीवर तथा चीन-देशवासी मत्स्य व्यवसायिगण विभिन्न उपायका अवलम्बन करते हैं।

बङ्गालके धीवरोंकी तरह चीनवासिगण नदीतीरसे अण्डोंको ला कर उसे फोड़नेकी कोशिश करते हैं। पीछे जब वे फूटने पर आते हैं तब उन्हें बाजारमें ले जा कर बेचते हैं। चीनदेशके धीवरोंमें भी मत्स्य-डिम्ब बेचनेका व्यवसाय चलता है। वे नदीके किनारे वा जलके ऊपरी भागसे सद्यःप्रसूत गोंदके समान डिम्बको संग्रह कर नदी पार्श्ववर्त्ती किसी गड्ढेमें रख देते हैं। दूसरे मत्स्य आ कर उन्हें नष्ट न कर दे, इसी भयसे गड्ढेका मुंह बंद कर देते हैं। चीन-वासियोंका डिम्ब-रक्षण वा पालन-प्रथा स्वतन्त्र है। वे हंस, मुर्गी आदि पक्षि-डिम्बको छेद कर उसके भीतरकी राल और कुसुमको निकाल कर फेंक डालते हैं। पीछे उसके मध्य सद्यःप्रसूत गोंदके समान मत्स्यडिम्ब भर कर छिद्र-पथको बंद कर देते हैं। अनन्तर उसे मुर्गी वा हंसके रहनेके स्थानमें सेवनेके लिये रख आते हैं। इस प्रकार अंडेमेंके डिम्ब कुछ दिन बाद उत्तप्त हो जाने पर वे उस अंडेको सूर्योत्तापित पावजलमें फोड़ देते हैं। ऐसा करनेसे बच्चे बाहर निकल पड़ते हैं। जब तक वे बच्चे जलाशयमें फेंकने लायक नहीं होते तब तक उसी पात्रमें रहने देते हैं।

हिन्दूलोग मत्स्यको एक पवित्र जीव मानते हैं। स्वयं भगवान्‌ने मत्स्यरूपमें अवतार लिया था। मत्स्यावतारमें उन्होंने पृथ्वीका भार हरण करके मनुरूपी मनुष्यकी महाप्रलयकालमें रक्षा की थी। बहुतोंका विश्वास है, कि भगवान्‌ने उस समय शृङ्गि-मत्स्यका रूप धारण किया था। इस प्रकार बहुतसे धर्मप्राण हिन्दू शृङ्गि-मत्स्य नहीं खाते। श्राद्धादि प्रेतकर्ममें भी मत्स्योत्सर्गकी व्यवस्था देखी जाती है। एतद्भिन्न सभी प्रकारकी शक्तिपूजामें मत्स्यभोगका विधान है। कहीं कहीं देवोद्देशसे अथवा ब्राह्मणको मत्स्यपूर्ण पुष्करिणीदान प्रकल्पित हुआ है। कोटा-राज्यमें कन्हाई (श्रीकृष्ण)-के उद्देशसे प्रदत्त इस प्रकारकी कई पुष्करिणीकी कथा महात्मा टाडके उपाख्यानमें लिखी है। प्रायः सभी प्रकारके शुभ कर्ममें माङ्गलिक निदर्शन-स्वरूप मत्स्य और दधि दिया जाता है। यात्राकालमें मत्स्यदर्शन शुभफल-प्रद माना गया है।

बहुतोंने मत्स्यवृष्टिका हाल सुना होगा। कई बार वृष्टिपतनकालमें इस प्रकारका मत्स्यपात हो गया है। १८२४ ई०में भारत-साम्राज्ञीके १४वें संख्यक सेना-दलमें कूचके समय मत्स्यवृष्टि हुई थी। १८२६ ई०के जुलाई मासमें मुरादाबादमें भीषण तूफानके समय मत्स्यपात हुआ था। १८३० ई०की १६वीं फरवरीको ढाका जिलेकी नकुलहाटा कोठीमें सामान्य वृष्टिके साथ साथ मृत-मत्स्य गिरा था। १८५३ ई०की १६वीं और १७वीं मईको फतेपुर जिलेमें यमुनासे एक कोस दूर मत्स्यपात हुआ। इस समय डेढ़ सेर वजनका एक एक मत्स्य गिरा था। १८३५ ई०के मई मासमें इलाहाबाद नगरमें तथा १८३६ ई०के २०वीं सितम्बरको कलकत्तासे १० कोस दक्षिण सुन्दरवनमें मत्स्यवृष्टि हुई थी। १८५० ई०की २५वीं जुलाईको काठियाबाड़के अन्तर्गत राजकोट नगरमें भीषण तूफान और वृष्टिके समय तथा १८५२ ई०की ३री अगस्तको पूना शहरके सेना-निवासमें मत्स्यपात हुआ था। एतद्भिन्न ५० वर्ष पहले कलकत्तेके उत्तरवर्त्ती वराहनगर अञ्चलमें और सिंहलद्वीपके कलम्बो दुर्गके समीप मत्स्यवृष्टि हुई थी।*

वैदेशिक वाणिज्यके अलावा मछलीसे देशका एक और भी भारी उपकार होता है। इससे जमीनकी उत्तम खाद बनती है जिससे जमीन बहुत उपजाऊ होती है। झींगा मछलीके छिलके और मिट्टीको मिला कर गाड़ रखनेसे उत्तम खाद तैयार होती है। छोटी इलायची, लवङ्ग, दारचीनी आदि गरम मसालेकी खेतीमें मछलीकी खाद आवश्यक है। चीनवासिगण फूलके बगीचोंमें मछलीकी खादसे वृक्षोंको मजबूत और हरा भरा रखते हैं।

अतल समुद्रगर्भसे ले कर हिमालयके उच्च वृक्ष पर्यन्त पृथ्वीके सभी स्थानोंमें मछली पाई जाती है। तिब्बत देशके १४ हजार फुट ऊंचे परके ह्रदादिमें भी मछलीका अभाव नहीं है। यह सुदूर विस्तृत मत्स्यजाति भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न नामसे पुकारी जाती है,—संस्कृत—मत्स्य, मीन ; हिन्दी—मछली, बङ्गला—माछ ; तलगू—छपु ; तामिल—मीन ; अंगरेजी—Fish

* Sir J. E. Tennant's Sketches, p. 942-4

दिनेमार और स्वीस--Fisk, जर्मन--*Fisch*, फरासी--*Poisson*; ओलन्दाज--Visschen, ग्रीक--Ichthus, हिब्रु--Dag; इटाली--*Pesce*; लाटिन--*Pisces*; पोलिश--Rybi; पुर्त्तगीज--*Piexes*, रूसिया--Rub; स्पेन--*Pescados*; अरब--समकत्, पारस्य--महि; ब्रह्म--अन्-ग्ना; मलय--इकन् इत्यादि।

मत्स्यद्वादशी (सं० स्त्री०) अगहनसुदी द्वादशी। इस दिन मछली खाना एकदम निषिद्ध है।

मत्स्यद्वीप (सं० पु०) मत्स्यप्रधानो द्वीपः शाकपार्थिवादित्वात् समासः। पुराणानुसार एक द्वीपका नाम।

मत्स्यधानी (सं० स्त्री०) मत्स्या धीयन्ते यत्रेति मत्स्य-धाञ्-ल्युट् ङीप्। मछली रखनेका बरतन।

मत्स्यनाथ (सं० पु०) मत्स्येन्द्रनाथ। मत्स्येन्द देखो।

मत्स्यनारी (सं० स्त्री०) १ सत्यवतीका एक नाम। २ आधी मछली और आधी आकृतिकी नारीमूर्त्ति।

मत्स्यनाशक (सं० पु०) १ कुरर पक्षी, करांकुल। (त्रि०) २ मछली पकड़नेवाला।

मत्स्यनाशन (सं० पु०) कुरर पक्षी, करांकुल।

मत्स्यनी (हिं० स्त्री०) पांच प्रकारकी सीमाओंमेंसे एक सीमा। यह नदी या जलाशय आदिके द्वारा निर्धारित होती है।

मत्स्यपित्त (सं० क्ली०) मत्स्यस्य पित्तम्। मछलीका पित्त।

मत्स्यपित्ता (सं० स्त्री०) कटुरोहिनी, कटकी।

मत्स्यपुटपाक (सं० पु०) पुट द्वारा मछली पकानेका एक भेद।

मत्स्यपुराण (सं० क्ली०) अठारह महापुराणोंमेंसे एक पुराण। विशेष विवरण पुराण शब्दमें देखो।

मत्स्यबन्ध (सं० पु०) मीनघातक, धीवर।

मत्स्यबन्धक (सं० त्रि०) मत्स्यान् बध्नाति बन्ध ण्वुल्। १ धीवर। (पु०) २ सङ्कर जातिभेद, धीवरकी जाति।

मत्स्यबन्धन (सं० पु०) मछली पकड़नेकी वंशी।

मत्स्यबन्धिन् (सं० पु०) मत्स्यान् बद्धुं धर्त्तुं शीलमस्य मत्स्यबन्ध इनि। धीवर-जाति, मछुआ।

मत्स्यबन्धिनी (सं० स्त्री०) मत्स्यबन्धिन् स्त्रियां ङीप्। १ मत्स्याधानी। २ धीवरकी स्त्री।

मत्स्यमुद्रा (सं० स्त्री०) सभी पूजाओंमें होनेवाली तान्त्रिकोंकी एक मुद्रा। इसमें दाहिने हाथके पिछले भाग पर बाएं हाथकी हथेली रख कर अंगूठा हिलाते हैं। यह मुद्रा अभीष्ट सिद्ध करनेवाली मानी जाती है। इसे कूर्म मुद्रा भी कहते हैं।

मत्स्यरङ्क (सं० पु०) मत्स्यरङ्ग पृषोदरादित्वात् साधुः। मत्स्य रंग पक्षी।

मत्स्यरङ्ग (सं० पु०) मत्स्यान रङ्गति भक्षणार्थ तत् समीपं गच्छतीति मत्स्य-रगि अच्। एक प्रकारका पक्षी।

मत्स्यराज (सं० पु०) मत्स्येषु राजा श्रेष्ठः, समासान्त-टच्। १ रोहित मत्स्य, रोहू मछली। २ विराट-राज।

मत्स्यविद् (सं० त्रि०) १ कटकी। (पु०) २ मत्स्य-तत्त्वविद्।

मत्स्यवेधन (सं० पु०) मत्स्यो विध्यतेऽनेनेति मत्स्य-विध करणे ल्युट्, मत्स्यानां वेधनमिति वा। मछली पकड़नेकी वंशी।

मत्स्यवेधनी (सं० स्त्री०) मत्स्यवेधन-ङीप्। २ मद्गु-पक्षी। २ वड़िश, मछली फंसानेकी वंशी।

मत्स्यशकल (सं० क्ली०) मछलीका चमड़ा।

मत्स्यसंघात (सं० पु०) मछलीकी झांक।

मत्स्यसगन्धी (सं० त्रि०) मत्स्यगन्धयुक्त।

मत्स्यसन्तानिक (सं० पु०) मत्स्यानां सन्तानिकोऽत्र। मत्स्यव्यञ्जनविशेष। मछलीमें लवण, अदरखका रस और वेशन आदि मिला कर कडुए तेलके साथ आगमें पका कर यह बनाया जाता है।

मत्स्यसूक्त (सं० क्ली०) एक प्रसिद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ। किसी किसीके मतसे यह ग्रन्थ हलायुधका रचा है किन्तु ग्रन्थमें उसका कुछ भी आभास नहीं मिलता।

मत्स्यहन् (सं० पु०) मत्स्यं हन्ति हन-क्विप्। मत्स्य-हन्ता, धीवर।

मत्स्या (सं० स्त्री०) कटुकी।

मत्स्याक्षक (सं० पु०) सोमलता।

मत्स्याक्षी (सं० स्त्री०) मत्स्यानां अक्षीणीव अक्षीणि पुष्परूपाणि चक्षूंषि यस्याः। मत्स्याक्षि (बहुव्रीहौ सकथ्यक्ष्णोः

स्वागांत् षच्। पा ५।४।७३) इति षच् ङीप् च। १ ब्राह्मी बूटी। २ सोमलता। ३ गाडर दूब। ४ मत्सादनी, जलपीपल।

मत्स्याङ्गी (सं० स्त्री०) मत्स्यानां अङ्गमिव अङ्गं यस्याः। हिलमोचिका।

मत्स्याद (सं० पु०) मत्स्यं अत्ति अद्-घञ्। मत्स्य-भक्षक, मछली खानेवाला।

मत्स्यादनी (सं० स्त्री०) मत्स्यैरद्यते इति मत्स्य-अद-ल्युट्, गौरादित्वात् ङीष्। १ जलपिप्पली, जलपीपल। २ मत्स्याक्षी।

मत्स्यावतार (सं० पु०) मत्स्यरूपी भगवान्‌का एक अवतार। मत्स्य शब्द देखो।

मत्स्याशन (सं० पु०) मत्स्यान् अश्नातीति मत्स्य-अश ल्यु। १ मत्स्यरंग पक्षी। (त्रि०) २ मत्स्यभक्षक, मछली खानेवाला।

मत्स्यासन (सं० क्ली०) तान्त्रिकोंके अनुसार योगका एक आसन। (रुद्रयामल)

मत्स्यासुर (सं० पु०) पुराणानुसार एक असुरका नाम।

मत्स्यी (सं० स्त्री०) स्त्री-जातिकी मछली।

मत्स्येन्द्रनाथ—एक विख्यात साधु और हठयोगी। ये गोरक्षनाथके गुरु थे। नेपालमें ये पद्म-पाणि बोधि-सत्वके अवतार माने जाते हैं। प्रवाद है, कि ८वीं शताब्दीमें ये नेपाल पधारे थे।

मत्स्येश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

मत्स्योदरिन् (सं० पु०) विराट, मत्स्यराज।

मत्स्योदरी (सं० स्त्री०) मत्स्यस्य उदरं उत्पत्तिस्थानं यस्याः; मत्स्य गर्भे जातत्वादस्यास्तथात्वं। १ व्यास माता, सत्यवती, मत्स्यगन्धा। २ काशीस्थित तीर्थविशेष। इस तीर्थका विषय काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है,—गणाधिप और गणनिचयने कैलास पर्वतसे काशी आ कर काशीके चारों ओर एक शैल-दुर्ग बनवाया। दुर्गके चारों ओर गहरी खाई खोदी गई और उसे मत्स्योदरीके जलसे भर दिया। यह मत्स्योदरी तीर्थ बहिः और अन्तश्चारित्वरूपमें दो भागोंमें बंट गया है। गङ्गाजलके साथ मिलनेके कारण यह तीर्थ पवित्र है। अन्तःसलिला हो कर गङ्गा जब इस तीर्थमें आ कर मिलती है उस समय यह मत्स्योदरी तीर्थ अति पवित्र हो जाता है। उस समय यहां सौ कोटि सूर्य और चन्द्रग्रहण-तुल्य पुण्यकाल उपस्थित होता है। गङ्गा और मत्स्योदरीके साथ स्थिति-निबन्धन समस्त लिङ्ग, समस्त पर्व और समस्त तीर्थ वहां उप-स्थित रहते हैं। किसी भी समय इस तीर्थमें स्नान कर पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करनेसे सब पाप दूर होते हैं तथा उसे फिर जन्मग्रहण नहीं करना पड़ता। जब गङ्गाका जल चारों ओर फैल जाता है, उस समय यह अविमुक्त क्षेत्र मत्स्याकार धारण करता है। देवगण कहते हैं, कि अनेक तीर्थोंमें स्नान और विपुल तपस्या निरर्थक है। कारण, एक मत्स्योदरीमें स्नान करनेसे सभी फल लाभ होता है, यहां तक कि मुक्ति तक भी होती है।

स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें अनेक तीर्थ हैं, पर वे मत्स्योदरी तीर्थके कोटि अंशके भी समान नहीं हैं। कैलासवासी गणपति स्वयं यहां आ कर इस महातीर्थ-का निर्माण कर गये हैं। गन्धमादन पर्वत भूर्भुवःसंज्ञक लिङ्ग यहां आ कर गणपतिके पूर्व ओर अवस्थान करते हैं। उनके दर्शन करनेसे पुण्यवान् मानवगण भूलोक आदिके ऊर्द्ध्वलोकमें दिव्यभोगभागी हो बहु काल वास करते हैं। भोगवतीके साथ भगवान् हाटकेश्वर सप्त पाताल भेद कर यहां आविर्भूत हुए हैं तथा शेष और वासुकि आदि नागोंने मणि, माणिक्य और रत्ननिचय द्वारा उनके वृहत् प्रासादको बनवा दिया है। यह लिङ्ग स्वर्णमय तथा रत्न द्वारा खचित है। (काशीख० ६९ अ०)

मत्स्योपजीवी (सं० पु०) मत्स्येन मत्स्यधारणविक्रया-दिना उपजीवति उप-जीव-णिनि। धीवर, मल्लाह।

मथन (सं० पु०) मथ्यते इति मथ-भावे ल्युट्। १ मथने-का भाव या क्रिया, बिलोना। २ गनियारी नामक वृक्ष। ३ एक अस्त्रका नाम। (त्रि०) मथनेवाला।

मथना (हिं० क्रि०) १ किसी तरल पदार्थको लकड़ी आदिसे वेगपूर्वक हिलाना वा चलाना, रिड़कना। २ चला कर मिलाना। ३ नष्ट करना, ध्वस्त करना। ४ घूम घूम कर पता लगाना। ५ किसी कार्यको बार बार करना। (पु०) ६ मथानी, रई।

मथनाचल (सं० पु०) पर्वतभेद, मन्दर पर्वत।

मथनी (हिं० स्त्री०) १ वह मटका जिसमें दही मथा जाता है। २ मथनेकी क्रिया। ३ मथानी देखो।

मथवाह (हिं० पु०) पीलवान्, महावत।

मथा (सं० स्त्री०) वैदिक निधन मन्त्रभेद।

मथात (सं० क्ली०) साममेद।

मथानी (हिं० स्त्री०) काठका बना हुआ एक प्रकारका दंड। इससे दहीसे मथ कर मक्खन निकाला जाता है। यह दो भागोंमें विभक्त है—एक खोरिया वा सिरा और दूसरा डंडी। खोरिया प्रायः गोल, चिपटी और एक ओर सम तथा दूसरी ओर उन्नतोदर होती है। इसके किनारे पर कटाव होता है और जिस ओर समतल रहता है उधर बीचमें डेढ़ दो हाथ लम्बी डंडी जड़ी रहती है। मथते समय खुरिया दहीके भीतर डाल कर डंडा खंभेकी चूलमें लपेट कर रस्सीसे केवल हाथोंसे बट बट कर घुमाते हैं, इससे दही क्षुब्ध हो जाता है। थोड़ा-सा पानी डालने पर और मथनेसे नैनू वा मक्खन मट्ठे के ऊपर उतर आता है जिसे मथानीसे समेट कर अलग इकट्ठा करते हैं।

मथित (सं० क्ली०) मथ-क्त। १ निर्जल मट्ठा। इसका गुण—कफ पित्तनाशक, रुचिकर, धातुपुष्टिदायक। (त्रि० २ आलोड़ित, घोल कर भलीभांति मिलाया हुआ। ३ मथा हुआ।

मथी (सं० त्रि०) १ मथनेवाला। (पु०) २ मथानी।

मथुरा (सं० स्त्री०) मथ्यते पापराशिर्यया इति मथ- (मन्दि-वाशीत्यादि। उण् १।३९) इति उरच्। तीर्थभेद, स्वनामख्यात पुरी। पर्याय—मधुपघ्न, मधुपुरी मथुरा। (शब्दरत्ना०)

नामोत्पत्ति।—सभी पुराणोंमें मथुराका उल्लेख है, किन्तु मथुराकी उत्पत्ति-कथा केवल रामायण और हरिवंशमें पाई जाती है। रामायणमें लिखा है, कि लोला-के बड़े लड़के मधुदैत्यने महादेवको प्रसन्न करके एक अपूर्व शूल-प्राप्त किया। महादेवने उसे वर दिया था, कि शूल जब तक तुम्हारे पुत्रके हाथमें रहेगा, तब तक चराचरके मध्य कोई भी उसे बध नहीं कर सकेगा। इस अद्भुत वरको पा कर मधुने एक सुप्रभ पुरका निर्माण किया। यथासमय उसकी पत्नी कुम्भनसी-के गर्भसे लवणदैत्य उत्पन्न हुआ। लवण नितान्त दुर्विनीत और अवाध्य निकला, इस कारण मधु उसे शिव-दत्त शूल अर्पण कर वरुणालयको चल दिया। क्रमशः लवणके दौरात्म्यसे तपोवनवासी ऋषिगण तंग तंग आ गये। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके पास जा कर अपना दुखड़ा रोया। शत्रुघ्न रामका आदेश पा कर लवणका वध करने चले। शत्रुघ्नके वीरत्व और कौशलसे लवण मारा गया। देवगण बड़े प्रसन्न हुए और शत्रुघ्नको वर देनेके लिये उपस्थित हुए। शत्रुघ्नने वर माँगा, कि यह देवनिर्मित मधुपुरी मधुरा शीघ्र ही राजधानी होवे। देवताओंने प्रसन्न हो कर वही वर दिया और कहा, कि यह पुरी शूरसेना नामसे प्रसिद्ध होगी। (उत्तरकाण्ड ८३ अ०) अब शत्रुघ्नने पौरजानपाद स्थापन किया। बारह वर्षके भीतर यह स्थान शूरसेनोंका देश कहलाने लगा। यहांके सभी क्षेत हरे भरे हो गये। वासव (इन्द्र) यथासमय वारि वर्षण करने लगे। वीर पुरुषगण शत्रुघ्नके बाहुबलसे सुरक्षित हो रोगरहित हुए। अभी मधुपुर यमुनाके किनारे अर्द्धचन्द्रके समान शोभा पाने लगा। सुरम्य हर्म्यराजिसे उसकी सुन्दरता और भी खिल गई। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धीरे धीरे बस गये। पहले लवण दैत्यने जो सब प्रासाद बनवाये थे, अभी शत्रुघ्नने उन्हें सुधाधवलित और चित्रकार्य द्वारा अलंकृत कर उनकी सुन्दरताको और भी बढ़ा दिया। वणिकोंने दूर दूर देशोंसे आ कर विविध वाणिज्य वस्तु क्रय-विक्रय द्वारा नगरके गौरवको बढ़ाया।

रामायणके उक्त प्रमाणसे जाना जाता है, कि उत्तर-काण्डके रचनाकालमें भी यह स्थान मथुरा नामसे प्रसिद्ध नहीं था, उस समय यह मधुपुरी और मधुरा कहलाता था।

महाभारत और प्रायः सभी पुराणोंमें मथुराका नाम आया है। अधिक सम्भव है, कि रामायणोक्त मधुपुरी वा मधुरा नगरी ही एक समय मथुरा कहलाती थी।

वर्त्तमान प्रत्नतत्त्वविदोंका कहना है, कि मथुरा शहर से दक्षिण-पश्चिममें 'महोली' नामका जो छोटा ग्राम है वही आदिम राजा मधुदैत्यका मधुपुरी नगर था। पीछे

आर्यराज शत्रुघ्नने जिस पुरीका निर्माण किया, वह वर्त्तमान भूतेश्वर-मन्दिर और तन्निकटवर्त्ती कटरा ग्राममें अवस्थित था। धीरे धीरे वह सभी ध्वंस हो गया, अन्तमें यमुना-दुर्ग-शोभित वर्त्तमान शहर ही मथुरा नामसे प्रसिद्ध हुआ। किन्तु उनका मत समीचीन प्रतीत नहीं होता। क्योंकि, उद्धृत रामायणके वचनोंसे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि जहां मधु दैत्यने पुरनिर्माण किया था तथा जहां उनके पुत्र लवणने बहुतसे भवन बनवाये थे वहीं पर रामानुज शत्रुघ्नने शूरसेनोंकी राजधानी मथुरा नगरी बसाई थी। वह नगरी यमुनातीर तक विस्तृत और विशेष समृद्धिशाली थी। इस प्रकार कटरा नामक स्थानके निकट जो प्रथम आर्य मथुरानगरी स्थापित हुई थी, वह असल मथुरा प्रतीत नहीं होती। शूरसेनोंकी उन्नतिके साथ साथ यादवोंने पूर्वस्थानसे कुछ ऊपर राजधानी बसाई थी, वही पुराण-इतिहासमें 'मथुरा' नामसे प्रसिद्ध है। इस मथुराकी समृद्धिके साथ साथ सुप्राचीन मधुपुरी वा मथुरा नगरीका परित्याग किया गया तथा वह स्थान 'मधुवन' नामसे विख्यात हुआ।

यादव-राजधानी मधुरापुरी यथासमय सुविस्तृत हो कर मथुरामण्डलमें परिणत हुई। मनुसंहिता और पाश्चात्य ऐतिहासिक प्लिनि आरियन आदिके ग्रन्थोंमें यह मथुरामण्डल शूरसेन नामसे वर्णित है तथा इसका अधिकांश वर्त्तमान मथुरा जिलेके अन्तर्गत है।

यह जिला युक्तप्रदेशके आगरा विभागके अन्तर्गत है और अक्षा० २७° १४' से २७° ५८' उ० तथा देशा० ७७° ७१' से ७८° १३' पू०के मध्य पड़ता है। भूपरिमाण १४४५ वर्गमील है। इसके उत्तर पञ्जाब जिला और अलीगढ़; पूर्वमें अलीगढ़ और खटा, दक्षिणमें आगरा और पश्चिममें भरतपुर राज्य है। यमुनाके दक्षिण कूलस्थ मथुरा नगरही इसका सदर है। १८०३ ई०में अङ्गरेजाधिकारके बादसे लगायत १८३२ ई० तक इस जिलेका शासनकार्य आगरा और सैदाबादसे सम्पादित होता था। पीछे अरि, महार, कोशी, सादाबाद, जलेश्वर-माट, लोहझील और महावन नामक ८ तहसील ले कर मथुरा जिला संगठित हुआ। तभीसे जिलेका सभी राजकीय कार्य मथुरा सदरसे ही होता है।

यह स्थान बहु प्राचीन है। पुराण-प्रसङ्गमें इसी स्थानको कृष्ण-बलरामका लीलाक्षेत्र बतलाया है। ऐतिहासिक-जगत्में मथुराका माहात्म्य बहुत दूर तक फैला हुआ था। बौद्ध, हिन्दू और मुसलमानकी प्रधानताके समय यह स्थान विशेष समृद्धिशाली होनेके कारण लोगोंका इस ओर ध्यान दौड़ गया था। केवल श्रीकृष्णका लीलाक्षेत्र होनेके कारण ही जो यह पवित्र तीर्थरूपमें गिना गया है सो नहीं; २री या ३री शताब्दीमें यहां कितने बौद्ध विहार और संघाराम प्रतिष्ठित होनेसे स्थानका माहात्म्य तात्कालीन बौद्ध-जगत्में फैल गया था। यही कारण है, कि हम लोग प्राचीन भौगोलिक टलेमीके "Modoura of the gods" तथा आरियन और प्लिनिके Methora शब्दमें मथुराका उल्लेख पाते हैं।

धीर-प्रवाहा यमुना नदी इस जिलेको दो भागोंमें बांटती है। यमुना छोड़ कर और दूसरी नदी जिले भरमें नहीं है। वर्षाके आरम्भमें ही यमुनाका ऐश्वर्य बढ़ जाता है। उस समय यह सूर्यकन्या यमुना प्रबल वेगसे कल कल शब्द करती हुई सब दिशाओंमें फैल जाती है। इस समय यमुनातीरवर्त्ती मथुरा और वृन्दावनतीर्थधामकी शोभाका पारावार नहीं। सौन्दर्य प्रिय मानव यमुनाकी अतुल शोभा देखने तथा तीर्थ करनेकी मनशासे श्रीकृष्णकी लीलाभूमि वृन्दारण्यमें आते हैं। मेघमालाके सदृश घोर कृष्णवर्ण यमुनावक्ष वायु हिल्लोलसे आन्दोलित और उच्छलित हो कर जैसा सुहावना दीखता है वह जयदेव आदि भक्तकवियोंकी काव्यगीतिमें सुस्पष्ट और सरल भाषामें वर्णित है।

वृन्दावन देखो।

मथुरा नगरके पार्श्व हो कर जो यमुना बह गई है उसका भी दृश्य अतीव मनोरम है। उसके बहुतसे घाट श्रीकृष्णकी लीलाभूमि समझ कर एक एक तीर्थमें गिने गये हैं। आगे चल कर यमुना प्रवाहसे बहुतसे खात ह्रदाकारमें बन गये हैं। उन सब छोटे छोटे ह्रदोंमें प्रायः सभी समय जल रहता है। स्थानीय खेती बारीके लिये वह विशेष उपकारी है। वर्षाऋतुके बाद जब यमुना सूख कर एक छोटी स्रोतस्विनीका आकार धारण करती

है तब उसके दोनों किनारे विस्तृत बालुकामय चर पड़ जाता है। उन चरोंको पार कर खेतोंमें पानी लाना बहुत कठिन हो जाता है। शीतकालमें उस चर भूमिमें तरबूज आदिकी खेती होती है।

जिलेका सर्वत्र प्रायः समतल है। केवल दक्षिण-पश्चिम कोणके भरतपुर-सीमान्तप्रदेशमें चून-पत्थरकी गण्डशैलश्रेणी देखी जाती है। वह शैलश्रेणी पार्श्ववर्त्ती समतलभूमिसे २५० फुट और समुद्रपृष्ठसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर ५५६ फुटसे उत्तर-पश्चिममें ५२० फुट तक ऊंची चली गई है।

जिलेके पूर्वभागमें माट, महावन और सैदाबाद तहसील है। गङ्गा और यमुनाके अन्तर्वेदके मध्यमें अवस्थित होनेके कारण यह विभाग स्वभावतः ही बहुत उर्वरा है।

यमुनाके दूसरे किनारे पश्चिम भूभागमें जलके अभावसे काफी फसल नहीं लगती। यहांकी कोशी, छाता और मथुरा तहसील स्वभाव-सौन्दर्यसे पूर्ण नहीं होने पर भी पौराणिक देवमाहात्म्य तथा प्राचीन ध्वंसावशेष समूहमें इनका उल्लेख आया है। वे सब देव-चरित्र और पूर्वतन कीर्त्ति देखने लायक हैं।

भगवानके अवतार श्रीकृष्ण और बलरामकी लीला-भूमि होने पर भी इस पवित्र क्षेत्रमें वैसी कोई अलौकिक कीर्त्ति नहीं देखी जाती। कहीं कहीं ऐसी कीर्त्ति है जो सिर्फ प्राचीन क्रियाकलापकी स्मृतिको घोषणा करती है। आज भी मथुराधाममें श्रीकृष्णका जन्मस्थान, वसुदेव और देवकीका कारागृह, कंसराजका दुर्ग प्रभृति स्थान दिखलाया जाता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि वर्षाके बाद मथुरा वा वृन्दावन-क्षेत्रकी शोभा उतनी नहीं रहती। प्रायः आठ मास तक यमुनाका कलेवर सूख कर एक स्रोतस्विनीके समान हो जाता है। किन्तु वर्षाके चार मास तक यमुनाका वक्ष जलसे प्लावित रहता है, तब स्थानीय सौन्दर्य सौ गुणा बढ़ जाता है। तीर्थयात्रिगण प्रायः वर्षा ऋतुमें ही यहां आते हैं। बहुतसे यात्री तीर्थकामनासे ८४ वनोंका परिभ्रमण करते हैं।

यमुनावक्ष जलप्लावित होनेके साथ ही साथ स्थानीय ह्रद और पार्वतीय स्रोतस्विनी पूर्ण कलेवरको धारण करती है तथा मरुप्राय गण्डशैल, बालुकामय प्रान्तर-समूह और हरिद्वर्णवृक्ष शस्यादि तथा फल पुष्पोंसे पूर्ण हो कर पृथ्वीको हरा भरा बना देते हैं।

कृषिजीवि अधिवासि-सम्प्रदाय छोटे छोटे ग्रामोंमें न बस कर अपेक्षाकृत सुरक्षित बड़े बड़े ग्रामोंमें वास करते हैं। इस प्रकार सैकड़ों मनुष्यके एक बड़े ग्राममें वास करनेके कई कारण हैं। प्रायः यमुना प्लावित समग्र भूमिभागका जल कुछ लवणाक्त हो जाता है। इस कारण सुमिष्ट जलके लोभसे वे एक साथ आ कर बस गये हैं अथवा उन सब स्थानोंको श्रीकृष्णकी लीला-भूमि समझ कर अधिकार कर बैठे हैं। प्रधान जाट और महाराष्ट्र-विप्लवसे आत्मरक्षा करना ही उनके एकत्र वास-का कारण हो सकता है। मथुरा तहसील छोड़ कर पश्चिम विभागके सभी स्थानोंमें जलका अभाव है। आगरा नहर काटी जानेसे कृषिकार्यमें बहुत सुविधा हो गई है।

एकमात्र यमुना और आगरा नहरमें पण्यद्रव्यवाही नावें आ जा सकती हैं। किन्तु मथुरासे आछनेरा और मथुरा-हातरस तक रेलपथ हो जानेसे यहांके वाणिज्य और तीर्थयात्रियोंके पक्षमें बहुत सुभीता हो गया है। जलपथसे वाणिज्यकी सुविधाके लिये मूल आगरा नहर-से एक ८ मील लम्बी नहर मथुरा नगर तक काट कर निकाली गई है। रुई, लवण, चावल, चीनी, तमाकू और मसाला यहांका प्रधान वाणिज्य द्रव्य है।

लोह-झिल नामक विस्तीर्ण जलराशि वर्षा कालमें ह्रदाकारमें परिणत हो कर दीर्घायतनको प्राप्त होती है। किन्तु शीत और ग्रीष्मऋतुमें उसका आयतन लम्बाईमें २॥ और चौड़ाईमें १॥ मील रहता है।

इस जिलेका अधिकांश स्थान वनमय और गोचारण-भूमि है। वन्य-विभागमें जलाने लायक लकडीके अलावा और कोई अच्छी लकड़ी नहीं मिलती। कहीं कहीं शस्य क्षेत्र और उपवन दृष्टिगोचर होता है। यहांके वृक्षादिका फल, छिलका और बीज औषध, रंग वा भोजन कार्यमें व्यवहृत होता है। जिलेके पश्चिम बासना और नन्दगांव नामक स्थानमें एक तरहका पत्थर और मथुरामें कंकड़ पाया जाता है। यहांके घर प्रायः पत्थरके बने हैं, कहीं कहीं मट्टीके भी घर देखे जाते हैं।

मथुराका पुरातत्त्व।

मथुराका आदि इतिहास नितान्त अस्पष्ट है। रामायणसे मालूम होता है, कि शत्रुघ्नने लवणदैत्यका वध कर मधुपुरमें शूरसेनोंको बसाया था, शूरसेनोंके बास होनेके कारण वह विस्तृत जनपद शूरसेन कहलाता था। मनुसंहितामें मधुपुर वा मथुराका कोई उल्लेख तो नहीं है, पर इस शूरसेन-जनपदको ब्रह्मर्षियोंके अन्तर्गत बतलाया गया है।

शत्रुघ्नके वंशधरोंने यहां कुछ समय राज्य किया था, किंतु उनके वंशलोपके बाद शूरसेनोंने प्रबल हो कर राज्य पर अधिकार जमाया। भागवतादि पुराण पढ़नेसे मालूम होता है, कि यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने इसी शूरसेनवंशमें जन्मग्रहण किया था। उनके पूर्वपुरुषगण यहांका शासन करते थे। पीछे कंसने कुछ समयके लिये इसे अपने दखलमें कर लिया और यमुनाके किनारे मथुरामें राजधानी बसाई। शायद उसी समय मथुरानगरीका नाम तमाम प्रसिद्ध रहा होगा। श्रीकृष्णने कंसको मार कर उनके पिता उग्रसेनको पुनः मथुरा राज्यमें अभिषिक्त किया। पीछे जरासन्धके भयसे भी कृष्णने जब मथुराका त्याग कर द्वारकापुरीमें आश्रय लिया उस समय भी यह स्थान शूरसेनोंके हाथसे च्युत नहीं हुआ था। मेगास्थनिजका वर्णन देख कर आरियनने लिखा है, कि मेथोरा (Methora) और क्लिसोबोरा (Clisobora) शूरसेनोंकी इन दो प्रधान नगरी हो कर यमुना नदी बहती है। पाश्चात्य वर्णित 'मेथोरा' और 'क्लिसोबोरा' मथुरा और कृष्णपुरका वैदेशिक उच्चारण है। ४थी शताब्दीमें मथुरा और कृष्णपुर जगद्विख्यात था तथा यहां शूरसेनगण राज्य करते थे, उसका आभास मिलता है। फिर प्लिनिने लिखा है, कि वे दो प्रसिद्ध नगरी पालिबोथ्रा अर्थात् पाटलिपुत्र-राज्यके अन्तर्गत थीं। अधिक सम्भव है, कि मौर्यराज चन्द्रगुप्तके समयमें सुप्राचीन शूरसेन राज्य पाटलिपुत्रमें शामिल था। यथार्थमें मथुरा मण्डल श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण अतिपूर्व कालसे केवल हिन्दुओंका ही पुण्यक्षेत्र समझा जाता है सो नहीं, जैन और बौद्ध लोग भी इसे पुण्यभूमि समझ कर आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। जैनोंके १९वें तीर्थङ्कर मल्लिनाथ और २१वें तीर्थङ्कर नमीनाथने मथुरामें जन्म और ज्ञानलाभ किया था। इस कारण धार्मिक जैनोंके निकट मथुराकी प्रत्येक धूलिकणा तक पवित्र समझी जाती है। प्रत्नतत्त्वविदोंके यत्नसे मथुराके अनेक स्थानोंको खोद कर जो सब प्राचीन कीर्त्तियां निकाली गई हैं उनका अधिकांश जैन है। उनमें जो शिलालिपि उत्कीर्ण है उससे मालूम होता है, कि नाना श्रेणीके जैन मथुरामें तीर्थ करने आते थे और वे नाना देवकीर्त्तिकी प्रतिष्ठा कर गये हैं। जैनरमणियोंके भी स्वार्थत्यागका परिचय पाया जाता है। मथुरामें १ली शताब्दीकी एक जैनलिपि पाई गई है। उसमें लिखा है, कि कुमारमित्रा नामक एक साध्वी पतिकी मृत्युके बाद प्रव्रज्या ग्रहण कर शिष्य कुमारभट्टिकी उपदेशदात्री हुई थीं। ऐसा प्रमाण दूसरी जगह नहीं मिलता, इस कारण यहां उसका उल्लेख किया गया।

जैनोंके साथ यहां बौद्धकीर्त्ति भी प्रतिष्ठित हुई थी। उपगुप्त सम्राट् अशोकके समसामयिक थे। मथुरामें बुद्धशिष्योंका अधिष्ठान होने पर भी इन उपगुप्तके समय ईसा-जन्मको ४थी शताब्दीसे ही मथुरामें बौद्धधर्मने प्रवेश किया था। मथुरासे जो प्राचीनतम बौद्धलिपि आविष्कृत हुई है वह बहुत कुछ अशोकलिपिके समान है। इसके द्वारा उस समयके बौद्धधर्मप्रवेशका आभास पाया जाता है।

ईसा-जन्मके २री शताब्दीके शेष भागमें मथुरामें शकाधिपत्य फैला। मथुराके सभी शकक्षत्रपगण मित्रोपासक वा सौर थे। उनके समयमें मथुरामें सौरगणका प्रभाव और सूर्यपूजाका विशेष प्रचार हुआ। उस समयकी प्रतिष्ठित भग्न सूर्यमूर्त्ति मथुराकी पुराकीर्त्तिके ध्वंससे निकली है। परवर्त्तिकालमें इन शक राजाओंमें कोई शैव, कोई शाक्त और कोई बौद्ध हुए थे। मथुराके बौद्धशकाधिपोंके मध्य कनिष्कका नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है।

भारतवर्ष देखो।

शकप्रभावके खर्व होने पर मथुरामण्डल ब्राह्मणभक्त गुप्तसम्राट्के अधिकारभुक्त हुआ। ६ठी शताब्दीमें गुप्तसाम्राज्य ध्वंस होने पर शूरसेनोंने फिरसे स्वाधीनता अवलम्बन कर अपनेमेंसे एकको राजपद पर अभिषिक्त

किया। ७वीं शताब्दीके प्रथम भागमें जब चीनपरिव्राजक यूएनचुवंग मथुरामें आये उस समय भी उन्होंने यहां स्थानीय स्वाधीन राजा देखा था।

महावनसे राजा अजयपालदेवकी १२०७ सम्वत् (११५० ई०)-में उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है, कि उस समय भी मथुरामण्डल यदुवंशीय शूरसेनराजके अधिकारमें था। वर्षों राज्यभोग करनेके बाद शूरसेनराजवंशधरोंने महम्मद घोरीके हाथ मथुराराज्य सुपुर्द किया। बीचमें एक बार हिन्दू-अधिकार स्थापित होने पर भी मथुरा नगरी अलाउद्दीन खिलजीके समयसे सदाके लिये हिन्दूके हाथसे जाती रही। पीछे बृटिश-अधिकारमें आनेके पहले तक यह मुसलमानोंके ही अधिकारमें रहा। इस प्रकार हिन्दू, जैन और बौद्ध आदि विभिन्न सम्प्रदायकी प्रधानताके लिये ही मथुरामें नाना साम्प्रदायिक-कीर्त्ति प्रतिष्ठित हुई थी।

पहले ही कहा जा चुका है, कि बौद्ध-प्रधानताके समय मथुरामण्डलमें बौद्धधर्मका प्रचार-केन्द्र स्थापित हुआ था। उस समय इस पवित्रक्षेत्रमें असंख्य कीर्त्ति, धर्मपीठ और स्मृतिस्तूप (Relics) प्रतिष्ठित हुए। यहां बौद्धप्रभाव बहुत दिनोंसे अक्षुण्ण था। भारतीय तीर्थयात्रिगणोंको छोड़ कर सुदूर चीनदेशसे परिव्राजक फाहियन्ने ४०० ई०को भारतमें पदार्पण किया। तिब्बतसे काश्मीर, काबुल, कन्धार और पञ्जाब अतिक्रम कर बौद्धतत्त्वके लुप्त शास्त्रोंका उद्धार करनेकी मनशासे वे पहले पहल बौद्धोंके प्रधान अड्डा मध्यदेशान्तर्गत मथुराधामको ही गये। यहां वे एक मास ठहरे थे। उनका वृत्तान्त पढ़नेसे मालूम होता है, कि उस समय भी यहां संघाराम और बिहारादि प्रतिष्ठित थे। उनमेंसे उन्होंने बहुतोंके प्राचीनत्वका निदर्शन-स्वरूप दाताका निर्दिष्ट ताम्रफल देखा था। उन सब मठादिमें प्रायः ३ हजार बौद्धयति रह कर शास्त्रालोचना करते थे। पतद्भिन्न वे ६ स्मृतिस्तूपका उल्लेख कर गये हैं जिनमेंसे धर्माचार्य सारीपुत्र, मुद्गलपुत्र और आनन्दका नाम उल्लेखयोग्य है। इससे दो सदी बाद प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग भारतवर्ष (५२९-६४५ ई०) आये। अपने भ्रमणवृत्तान्त मथुराप्रसङ्गमें उन्होंने लिखा है, कि उसकी परिधि प्रायः २० लीग होगी। उनके आगमनकालमें भी फाहियानवर्णित २० सङ्घाराम विद्यमान थे। दुःखका विषय है, कि बौद्धप्रधानताकी क्रमिक अवनति हो जानेसे बौद्धयतियोंकी संख्या भी घटती आ रही थी। उन्होंने यहां प्रायः २ हजार यतियोंको शास्त्रालोचना करते देखा था। अशोकनिर्मित ४ स्तूप पूर्ववर्त्ती ४ बुद्धोंके पदचिह्न और शाक्यमुनिशिष्य सारीपुत्र, मौद्गलायन, पूर्णमैत्रायणीपुत्र, उपालि, आनन्द, राहुल, मञ्जुश्री और अपरापर बोधिसत्त्वके स्मरणार्थ निर्मित कुछ स्तूपोंकी कथा उल्लेख कर गये हैं। उस समय बौद्धयतिगण प्रतिवर्ष १म, ५म, ९ष्ठ और ९म मासके उपवासकालमें उक्त स्तूपोंके समीप इकट्ठे हो कर अर्चनादि करते थे। नगरके पूर्व ५।६ लीगकी दूरी पर उपगुप्त-निर्मित एक संघाराम और तन्मध्यस्थ तथागतका नखस्तूप है। उसके उत्तर भागमें अवस्थित गण्डशैलके ऊपर एक गुहा बुद्धकी विचरणभूमि है। उससे दक्षिण चार बुद्ध और सारीपुत्र, मुद्गलपुत्र आदि बौद्धाचार्यांकी उपासनाभूमिका विषय उन्होंने लिखा है। अपने आगमनकालमें उन वनोंमें वे बौद्धाचार्योंके स्मरणार्थ प्रतिष्ठित स्तूपका निरीक्षण कर गये हैं। पतद्भिन्न उक्त परिव्राजकने मथुराधाममें ५ हिंदू मन्दिरका अवस्थान भी देखा था।

इससे साबित हुआ, कि बौद्धधर्मके अवसानकालमें यहां ब्राह्मणधर्मकी जड़ मजबूत हो रही थी। धर्मसम्प्रदायका परिवर्त्तन और दीर्घकाल अवस्थान-निबन्धन चीनपरिव्राजक-वर्णित बौद्ध-कीर्त्तिस्तम्भ कालक्रमसे भग्न, प्रोथित और हिन्दूके हृदयसे सदाके लिये अपनोदित हो गया था। पीछे प्रत्नतत्त्वविद् डा० कनिंहमके यत्नसे उसके एक एक निदर्शनसे बौद्धप्रधानताका यथेष्ट परिचय पाया गया है।

किन्तु कालकी विचित्र गति है। हजारों वर्ष बीत चले, जल और वायुके नितान्त दूषित होनेसे सभी लोग विनष्ट होने लगे; उसके ऊपर विधाताकी विड़म्बना! कालकी क्षयशील गोदमें रक्षित हो कर भी जो स्मृतिचिह्नरूपमें जीता जागता था, दुर्द्दान्त गजनीपति महमूद, सिकन्दरलोदी, शाहजहान और औरङ्गजेब आदि विधर्मी मुसलमानोंके अत्याचारसे वह लूटा और

तहस नहस कर डाला गया। असल बात कहनेमें क्या! हिंदू धर्मद्वेषी मुसलमानोंने हिंदूकी कीर्त्तिको बिलकुल लोप करनेकी इच्छासे पूर्वतन ध्वंसावशेषको तोड़ फोड़ डाला और धनलाभकी आशासे दीवार तकको भी खनन कर वरबाद कर दियो था। उन्होंने बौद्ध वा जैन प्रतिकृतिके मुख, नाक वा हस्तपदादिको छेदन कर डाला था। इस प्रकार एक स्थानके उपकरण अन्य स्थानमें अन्तरित हो जानेसे वे जनसाधारणके कामलायक न रह गये हैं। अर्थात् कहीं जैनमूर्त्तियां बौद्धमूर्त्तियोंके साथ और हिन्दू मूर्त्तियां बौद्धके साथ मिल गई हैं। अभी किसी किसी धनी व्यक्तिने देवोद्देशसे मन्दिर निर्माण करके दोनों प्रकारकी मूर्त्ति एकमें जोड़ दी है। ऐसा करनेसे प्रत्नतत्त्वविद् बड़े भ्रम मे पड़ गये हैं। किसी किसी पाश्चात्य-प्रत्नतत्त्वविद्ने पूर्वतन जैन और बौद्धप्रतिमूर्त्तिके प्रभेदका पता न लगा सकने पर उन्हें एक एक बौद्धप्रतिमूर्त्ति बतला कर घोषणा कर दी है। किंतु यथार्थमें अनेक जैनस्मृति देखनेमे आती हैं। केशो (केशव)-पुरके सेठों द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिरके समीप जैनयुगका शिल्पकार्य सम्वलित एक छोटा प्रकोष्ठ जम्बुस्वामीका भजनागृह समझा जाता है। उनके स्मरणार्थ वेदीके नीचे एक शिलाफलकमें जम्बुस्वामीका नाम खोदित है। यही जंबुस्वामी जैनोंके शेष श्रुतिकेवली सुधर्मके शिष्य हैं। सुधर्म शेष तीर्थङ्कर महावीरके शिष्य थे। मणिरामने पूर्वोक्त मन्दिरका निर्माण कर उसमें २य तीर्थंकर चन्द्रप्रभुकी प्रतिमूर्त्ति स्थापन की। पीछे सेठ रघुनाथ दासने ग्वालियरके एक प्राचीन भग्न मन्दिरसे अजितनाथकी प्रस्तर प्रतिमूर्त्ति ला कर उसकी प्रतिष्ठा की थी। मथुरामण्डलके नाना प्राचीन स्थानोंकी मट्टी खोद कर बहुत नीचेसे नाना सम्प्रदायकी पुराकीर्त्ति बाहर निकाली जाती है। उससे स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि मथुरा एक समय विशेष समृद्धिशाली था तथा वहां नाना सम्प्रदायोंके केन्द्र थे।

मथुराका इतिहास।

मथुरामें श्रीकृष्णका जन्म, गोकुलमें नन्दगृहमें अवस्थान, वृन्दारण्यमें गोपाङ्गनाके साथ केलिविहार, उनका मथुरामें आगमन, कंसनिधन और राज्यग्रहण आदि प्राचीन स्मृतियां आज भी प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें जागरुक हैं। अधिक क्या, आज भी प्रत्येक हिन्दूका प्राण मथुरा वृन्दावनके नाममात्रसे नाच उठता है। मथुरा आर्यसमाजका एक प्राचीन केन्द्रस्थान है। वृन्दारण्य उसके उपकण्ठस्थित एक गण्ड ग्राममात्र है। मथुरामें आज भी कंस-कारागार विश्रान्तिघाट आदि प्राचीन पीठ विद्यमान हैं। एतद्व्यतीत भिन्न भिन्न युगमें यहां जिन सम्प्रदाय विशेषका अधिष्ठान हुआ था उनके भी अनेक स्मृतिचिह्न आज मथुरावक्ष पर विराज करते हैं।

गोप-बालकरूपमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और उनके अवतार बलदेव लीलाके साथी हो कर मथुराधाममें द्वापरीलीला शेष कर गये हैं। आज भी मथुरा, वृन्दावन, गोवर्द्धन, गोकुल और महावन आदि स्थानोंमें उसके असंख्य निदर्शन पड़े हैं। उन सब देवकीर्त्तियोंके दर्शन करनेसे मनमें आपे आप इस देवतीर्थकी पवित्रता उपलब्ध होती है। क्रमशः इस क्षेत्रका माहात्म्य जब चारों ओर फैल गया, तब दूर दूर देशके लोग यहां आने लगे। बौद्धप्रधानताके समय मथुरा नगर ही निर्वाण धर्मप्रचारका मुख्यकेन्द्र हुआ था। चीन-परिव्राजक फाहियान ४थी शताब्दीमें तथा युएनचुवंग ७वीं शताब्दीमें इस स्थानकी बौद्ध प्रधानताका उल्लेख कर गये हैं। १०१७ ई०में गजनीपति महमूदके आक्रमण और लुण्ठनसे मथुरानगर बिलकुल श्रीहीन हो गया। उस महा-विप्लवमें मथुरनगराकी तथा उसके आसपासकी देवभूमिकी अनेक प्राचीन कीर्त्तियां ध्वंसमें परिणत हो गई थीं। उस समयसे ले कर मुगल-सम्राट् अकबरशाहके राज्य तक किसीने भी मथुराकी नष्टश्रीका उद्धार करनेकी चेष्टा नहीं की। महमूद और सुलतान सिकन्दर लोदी (१५० ई०) मथुराका जो सर्वनाश कर गये थे, सम्राट् अकबरशाहने उसीके जीर्णसंस्कारकी ओर ध्यान दिया था। परन्तु उन्हींके हीनचेता वंशधर शाहजहान् और औरङ्गजेब उसे बिलकुल उजाड़ गये हैं। मुगल-राजवंशके अवसान पर यहां भरतपुरके जाट-राजाओंने अपना आधिपत्य फैलाया। मुगलोंकी अवनति देख कर जाटोंने सिर उठाया। उस अराजकता और शासन-विशृङ्खलताके समय जाटोंने

दस्युवृत्ति द्वारा नाना स्थान लूटा और विपुल अर्थ उपार्जन किया था। वदनसिंह नामक एक व्यक्तिके बलवीर्यसे वशीभूत हो कर जाटदलने उन्हींको अपना दलपति बनाया। १७१२ ई०में सरदार वदनसिंह शहरमें आ कर बस गये। यहां उन्होंने एक सुदृढ़ प्रासाद बनवाया था। बुढ़ापा आने पर वदनसिंहने अपने अधिकृतप्रदेश लड़कोंके बीच बांट दिये। बड़े लड़के सूर्यमलके भागमें मथुरा आदि अधिकांश राज्य और छोटे प्रतापके भागमें भरतपुरका दक्षिण-पश्चिमांश पड़ा। वदनसिंहकी मृत्युके बाद सूर्यमलने भरतपुर आ कर राजोपाधि ग्रहण की। १७८८ ई०में रोहिला-विद्रोह दमनके लिये मुगल सम्राट् अहमद शाहने जाट सरदार सूर्यमलको बुलाया। जाट और होलकर सेनादलने वजीर सफदरजङ्गकी अधिनायकतामें युद्धयात्रा की थी। युद्धकालमें सेनापति सफदर बागी हो गये। इस समय जाट सरदारने दलबलके साथ वजीरका पक्षावलम्बन किया, किन्तु मुगल-सेनापति गाजिउद्दीनको महाराष्ट्र सेनासे सहायता मिली थी। दोनों दलमें घोर विवाद चलते देख वजीर सफदरजङ्ग अयोध्याकी ओर चल दिये। इधर गाजि-उद्दीनने भरतपुरमें डेरा डाला। महाराष्ट्र-सहयोगी सेना-दल पर उनका पूर्ण विश्वास न रहनेके कारण वे बहुत दिन तक अवरोधकी रक्षा न कर सके। उन्होंने दिल्ली नगर लौट कर अहमदशाहको सिंहासनच्युत और २य आलमगीरको राजमुकुट पहनाकर अपनी जिघांसावृत्तिको चरितार्थ किया था।

१७५७ ई०में अहमद शाह दुर्रानीने जब भारतवर्ष पर आक्रमण किया उस समय सरदार जहानखाँ मथुरावासीसे कर संग्रहकी चेष्टा करने लगे। किन्तु अधिवासियोंने विपद् समझ कर दुर्गमें आश्रय लिया। निरापद प्रजावृन्द पर कोई जुल्म न कर सकनेसे उनकी क्रोधवह्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। उन्होंने नगर लूटनेका दृढ़ संकल्प किया। नगरमें जितना धनरत्न था सभी जहान खाँके हाथ लगा। जिन्होंने उन्हें लूटनेमें छेड़छाड़ की थी, वे सभी मुसलमानोंकी तेज तलवारसे यमपुरको सिधारे।

इसके ठीक दो वर्ष बाद नवसप्राट् २य आलमगीर गुप्तचर द्वारा मारे गये। इस विशृङ्खलताके समय अफगान-राज अहमदशाहने पुनः दिल्लीकी चढ़ाई कर दी। विख्यात चको गाजि उद्दीन जान ले कर मथुरा भागे। यहां वे भरतपुरके जाट-सरदार और महाराष्ट्र-सेनादलको एकत्र कर १७६१ ई०में पानीपत रणक्षेत्रमें अग्रसर हुए। मिलित हिन्दूवाहिनी अहमदशाहके साथ युद्धमें परास्त हुई, किन्तु महाराष्ट्र-सेनापतिके साथ इस घटनाके पहले ही विरोध पैदा हो जानेके कारण सूर्यमल पानीपतकी लड़ाईमें नहीं उतरे। उन्होंने मौका देख कर आगरा नगरको महाराष्ट्रकवलसे विच्छिन्न कर अपने शासनाधीन कर लिया। सदाशिवभाव देखो।

अहमदशाह दुर्भाग्य शाह आलमको दिल्ली-सिंहासन पर बिठा कर स्वदेशको चल दिये। इस समय सुअवसर समझ कर सूर्यमलने रोहिला-वजीर नाजिर-उद्दौला पर चढ़ाई करना ही अच्छा समझा। वे दलबलके साथ दिल्लीसे ३ कोस दूर शाहदेरा नामक स्थानमें जा धमके। अकस्मात् राजकीय सेना-दलने उन्हें पकड़ लिया। म्लेच्छके हाथसे ही उनकी जीवलीला शेष हुई थी। उनकी मृत्युके बाद प्रथम दो पुत्रोंने इस अभियानकी अधिनायकता ग्रहण की, किन्तु वे भी मुगलोंके हाथके शिकार बने। उनके तृतीय पुत्र जाविताखांके विद्रोहके समय आगरा राज्य खो कर १७७६ ई०में इस लोकसे चल बसे। उनके चतुर्थ पुत्र समस्त राज्य चौपट कर आखिरमें भरतपुर सिंहासन पर अधिष्ठित हुए।

१७८८ ई०में सिन्दे-राजके साथ राजपूत राजाओंका जब विरोध खड़ा हुआ, उस समय जाटोंने सिन्देराजकी सहायता की थी। जाट-सेनाकी सहायतासे सिन्देराजने गुलाम कादेर कर्त्तृक अवरुद्ध आगरा नगरीका पुनरुद्धार किया था। इस समय मथुरा नगरीके साथ साथ आगरा फिरसे सिन्देराजके कवलमें आया। १८०३ ई०में भरतपुरके राजा रणजित्सिंहने ५ हजार जाट अश्वारोहीको ले कर सिन्देराजके विरुद्ध अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकका साथ दिया था। इस युद्धमें महाराष्ट्र-सेना पराजित हुई, जाट-सरदारका पारितोषिक-स्वरूप वृटिश-सरकारसे कृष्णगढ़, रेवारी और मथुराका दक्षिण-पश्चिम भूभाग मिला। किन्तु दूसरे ही वर्ष

उन्होंने डिगकी लड़ाईमें पराजित होलकरराजको आश्रय दे कर अंगरेजोंसे संबंध तोड़ दिया। लार्ड लेक द्वारा परिचालित अंगरेजो-सेनाने भरतपुर-दुर्गमें घेरा डाला, किन्तु इस वार दुर्ग तो हाथ नहीं लगा, पर अंगरेजों द्वारा दिये गये प्रदेश और समग्र मथुरा जिलेको अंगरेजोंने अपने अधीन कर लिया।

अंगरेजी अधिकारमें आनेके वाद मथुरा अञ्चलमें और कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी। १८५७ ई०में मीरटके सिपाही-विद्रोहका संवाद जव मथुरा पहुंचा, तव यहां सिपाही-सैन्यका खासा प्रवन्ध किया गया। उसी सालकी १६वीं मईको भरतपुर-सैन्यके आने पर अंगरेज सेनापतिने उस मिलित सेनादलको दिल्लीको ओर परिचालित किया। १६वीं मईको उन्होंने होदल नामक स्थानमें छावनी डाली। ३०वीं मईको मथुरासे राजकोष आगरा स्थानान्तरित करते समय सहगामी सिपाहीदल वागी हो गया। अङ्गरेज कर्मचारिगण कोई उपाय न देख दो दलमें भाग आये। इधर भरतपुरसेनाको भी हठात् विद्रोही होते देख अङ्गरेज कर्मचारिगण वहांसे भी भाग जानेको वाध्य हुए। तत्कालीन अंगरेज-मजिष्ट्रेट सहायता पानेकी प्रत्याशासे आगराको ओर वढ़े। किन्तु अपने मनोरथको व्यर्थ हुआ, देख वे पुनः मथुरानगरमें लौट आये। यहां सेठ उपाधिधारी धनियोंने १४वीं जूनको उन्हें इस विपद्में आश्रय दे कर विशेष वन्धुत्वका परिचय दिया था। अलीगढ़में ग्वालियर सेनादलको विद्रोहिता प्रशमित होने पर निमारके सेनादलने मथुराकी ओर वढ़ कर अंगरेजोंको मार भगाया। इस समय अंगरेजोंने आगरा भाग कर अपनी जान वचाई। धीरे धीरे मथुराके पूर्वविभागमें विद्रोहवह्नि धधक उठी। ५वीं अक्तूवरको मजिष्ट्रेट एक दल सेना ले कर अग्रसर हुए। राहमें देवकर्ण नामक एक विद्रोही दलपतिके साथ उनका साक्षात् हुआ। दोनों पक्षमें युद्ध होनेके वाद देवकर्ण अंगरेजोंके हाथ वंदी हुए। इसी समय कर्नल काटनने ससैन्य आगरासे कोशी और वहांसे मथुरा आ कर ग्रामवासी विद्रोहियोंका दमन किया। पीछे आप आगराकी ओर चल दिये। तवसे मथुरामें और कोई विपत्तिकी सूचना न देखी गई।

सिपाही-विद्रोहके समय हातरसके जाटोंने तथा मथुराके सेठ साहुकारोंने अंगरेजोंकी विशेष सहायता की थी। इसलिये उनमेंसे थोड़ेका परिचय नीचे दिया जाता है।

माखमसिंह नामक एक जाट राजपूतानेसे मुर्सान आ कर वस गया। उसका प्रपौत्र ठाकुर नन्दराम फौजदार था। १६९६ ई०में उसकी मृत्युके वाद उसके १४ पुत्रोंके मध्य जलकरणसिंह मुर्सानसम्पत्तिका अधिकारी हुआ और जयसिंह फौजदार वना। जयसिंहका प्रपौत्र वदनसिंह हातरस जा कर रहने लगा। जलकरणका प्रपौत्र राजा भगवन्तसिंह और जयसिंहका प्रपौत्र ठाकुर दयाराम वहुत ताकतवर था। इस समय मथुरा और अलीगढ़ जिलेके अधिक अंश उन दोनोंके दखलमें थे। उक्त दोनों सामन्तोंके स्वाधीनता अवलम्वन करने पर अंगरेज उनके विरुद्ध खड़े हो गये। मेजर जेनरल मार्सलने दलवलके साथ जा कर मुर्सानराजको परास्त किया। किन्तु हातरसके राजा अंगरेजोंके निकट आत्मसमर्पण करना विलकुल ही नहीं चाहते थे। उनके अलीगढ़ दुर्गमें आश्रय लेने पर अंगरेजी सेनाने उस दुर्गको जा घेरा। १८१७ ई०की १ली मार्चको दोनों पक्षसे गोलावृष्टि होने लगी। उस दिन शामको वारूदखानामें आग लग जानेसे समूचा दुर्ग तहस नहस हो गया। सभी चीजोंको नष्ट होते देख दयाराम रातको ही भरतपुर भागा। किन्तु भरतपुर-राजने जव उसे आश्रय देना अङ्गीकार नहीं किया, तव वे वहांसे जयपुरको चल दिये। अंगरेजो सेनाने उसका दुर्ग तोड़ फोड़ डाला और सम्पत्ति जब्त कर ली। केवल उसके भरणपोषणके लिये वृटिश-सरकारने मासिक १ हजार रुपया स्थिर कर दिया।

१८४१ ई०में उसकी मृत्युके वाद उसका लड़का ठाकुर गोविंदसिंह तख्त पर बैठा। १८५७ ई०के गदरमें यह अंगरेजोंकी ओरसे विद्रोहानलमें कूद पड़ा था। उसकी वीरता और राजभक्ति देख कर अंगरेज चमत्कृत हो गये थे। इस समय अंगरेजोंका पक्ष लेनेके कारण विद्रोहियोंने उसका धन और वृन्दावन-प्रासाद लूट लिया। क्षतिपूरणस्वरूप उसको अंगरेजोंसे ५० हजार

रुपया और लार्ड कैनिंगकी हस्ताक्षर की हुई जमींदारी सनद मिली। उनके एक भी सन्तान न थी। उनकी विधवा पत्नी रानी साहबकुमारीने राजा हरिनारायण सिंहको गोद लिया।

सेठ लक्ष्मीचंदने सिपाही-विद्रोहकी सूचना देख कर कलकृर थरणहिल साहबको उसकी खबर दी। आगरामें संवाद पहुंचनेके पहले ही विद्रोहियोंने अंगरेजोंके मकानमें आग लगा दी थी। मजिष्ट्रेट आदि अंगरेजोंने लक्ष्मीचन्दके यहां आश्रय ग्रहण किया।

ग्वालियरराजके धनाध्यक्ष गोकुलदास परिखजीके धनसे ही इस वणिक्‌वंशने सारे भारतवर्षमें सुख्याति पाई थी। गोकुलदास वल्लभाचार्य-सम्प्रदायभुक्त थे। १८२६ ई०में मृत्युकालमें वे अपने विषयकार्यके सहकारी मणिरामको ही अपनी प्रचुर सम्पत्तिके उत्तराधिकारी बना गये। १८३६ ई०में मणिरामकी मृत्यु के बाद उनके बड़े लड़के लक्ष्मीचांद राजगद्दी पर बैठे। १८६६ ई०मेंलक्ष्मीचांदकी मृत्यु पर उनके लड़के रघुनाथ दास सम्पत्तिके अधिकारी हुए, किन्तु नाबालिग पुत्रकी ओरसे राधाकृष्ण और गोविन्ददास राजकार्य चलाने लगे। हिमालयसे ले कर कुमारिका पर्यन्त समग्र भारतके प्रत्येक वाणिज्यप्रधान नगरमें मणिराम लक्ष्मीचाँदकी हुंडी चलती थी। रामानुज-मतावलम्बी स्वामी रङ्गाचार्यसे वे वैष्णवधर्ममें दीक्षित हुए थे। आज भी वृन्दावनस्थ रङ्गजीका मन्दिर उनकी कीर्त्तिको घोषणा करता है। १८५६ ई०में राधाकृष्णकी मृत्यु हुई। पीछे गोविंददास एकक वाणिज्य चलाने लगे। उन्होंने कृतकार्यके पुरस्कारस्वरूप अंगरेज़ोंसे C, S, I. की उपाधि पाई। उनके तथा उनके तत्परवर्त्ती लक्ष्मीचांदके पुत्र रघुनाथ दासके यत्नसे मथुराधामकी बहुत उन्नति हुई थी।

एतद्भिन्न यहांके सैदाबादवासी लालखानी नामक मुसलमान-नवाबवंश उल्लेखयोग्य है। ये लोग राजौरके गूजर ठाकुर कुमार प्रतापसिंहसे ही अपनी वंशगाथा का कीर्त्तन करते हैं। प्रतापसिंह दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके समसामयिक थे। इनके वंशधर लालसिंहने सम्राट् अकबरसे खाँकी उपाधि पाई थी। तभीसे यह वंश लालखानी कहलाने लगा। उनके पौत्र इतिमाद राय सम्राट् औरङ्गजेबसे इस्लामधर्ममें ही दीक्षित हुए थे। इतिमादसे ७ पीढ़ी नीचे नाहर अली खाँ और दुन्दे खांने बुलन्द शहरके कुमोना दुर्गमें रह कर अङ्गरेजोंके विरुद्ध हथियार उठाया। इस कारण उनकी सारी सम्पत्ति जब्त हो गई, किन्तु अङ्गरेजराजने दया दिखला कर छतारीवासी उस वंशके मर्दन अली खाँ नामक एक व्यक्तिको उक्त सम्पत्ति दे दी। मर्दन अली सैदाबाद सम्पत्ति खरीद कर वंशकी सम्मान वृद्धि कर गये हैं। इस वंशमें नवाब सर फैज अली खाँने अङ्गरेजोंसे C S, I. की उपाधि पाई थी।

हिन्दूसे वंशकी उत्पत्ति समझ कर वे आज भी अनेक विषयोंमें हिन्दुत्व-रक्षा करते आ रहे हैं। पुरुषगण कुमार और रमणीगण ठाकुरानी कहलाती हैं। विवाहादि सामाजिक क्रियाकलापमें भी प्राचीन हिन्दूप्रथाका प्रकरण देखा जाता है। वर्त्तमान वंशधर कट्टर मुसलमान हैं। इस वंशके प्रधान व्यक्ति छतारीके नवाब कहलाते हैं। ये ओहावी-मतावलम्बी हैं।

मथुरामण्डलस्थ तीर्थप्रसंग।

मथुरा श्रीकृष्णकी लीलाभूमि है,* इसीसे यह सप्त मोक्षदायिका पुरीके अन्तर्गत माना गया है। भागवत और हरिवंशादिके मतसे श्रीकृष्णने जो जो लीला की थी, उनके पादस्पर्शसे जो जो स्थान पवित्र हुए थे, अभी वही सब स्थान एक एक तीर्थ वा पुण्यक्षेत्र माने गये हैं। किन्तु मथुरामें ऐसे तीर्थोंकी संख्या ज्यादा है, यह ब्राह्मण्यधर्मके पुनरभ्युदयके बाद हुआ है, कारण महाभारतमें नाना तीर्थप्रसङ्ग रहने पर भी मथुराकी गिनती तीर्थमें नहीं की गई है। श्रीकृष्णके तिरोधानके बाद उनकी पवित्र स्मृति रखनेके लिये कृष्णपुर या केशवपुर स्थापित हुआ था। ईसा जन्मके ३री और ४थी शताब्दीमें भी वह कृष्ण वा केशवपुरकी ख्याति पाश्चात्य ऐतिहासिकगण कीर्त्तन कर गये हैं। यहां तक कि, जिस

* "अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥
अयोध्या रामनगरी मथुरा कृष्णपालिता।
एतास्तु पृथ्वीमध्ये न गण्यते कदाचन॥" (भूतशुद्धितन्त्र)

समय प्रचलित विष्णुपुराण सङ्कलित हुआ उस समय भी मथुरामें नाना तीर्थ और नाना वनका अस्तित्व ही नहीं था ।

विष्णुपुराणमें लिखा है—जेठ मासकी शुक्ला द्वादशीको उपवास करके मथुरामें यमुनाजलमें स्नान और विष्णुकी अर्चाना करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। पितृदेवगण अन्यान्य उन्नतिशील पुरुषोंकी सम्पद् देख कर कहते हैं, कि मथुराक्षेत्रमें ज्येष्ठमासकी शुक्ला द्वादशीको हमारे कुलमें ऐसा कोई व्यक्ति उत्पन्न हो जो मथुराक्षेत्रमें ज्येष्ठ मासकी शुक्ला द्वादशीको उपवास कर यमुना जलमें स्नान और विष्णुकी अर्चाना करे । इससे हम लोग परम गतिको प्राप्त होंगे।' यह दिन अतिशय पुण्यप्रद है; यमुनामें स्नान, विष्णुपूजा, पितृपुरुषोंका श्राद्ध आदि जो तीर्थकर्त्तव्य है, उसका अनुष्ठान करनेसे इहलोकमें विविध भोग और परलोकमें मोक्षलाभ होता है। (विष्णुपुराण ६।८ अ०)

विष्णुपुराणके उक्त विवरणसे केवल इतना ही जाना जाता है, कि मथुरा नगरी-प्रवाहित यमुना नदी ही हिंदूके निकट पूर्वकालमें पुण्यतीर्थ समझी जाती थी ।

यहां तक, कि ७वीं शताब्दीमें चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग जब मथुरा दर्शनको आये उस समय उन्होंने नाना सम्प्रदायके सिर्फ पांच हिन्दू देव मन्दिर देखे थे। सुतरां उस समय भी मथुरामें अनेक तीर्थस्थान, अनेक वन और अनेक देव कल्पित नहीं हुए थे।

७वीं शताब्दीके बादसे ही ब्रह्मण्यधर्माभ्युदयका सूत्रपात है। सम्राट् हर्षदेवकी मृत्युके साथ वर्द्धमान साम्राज्य लोप, मगधमें हिन्दूप्रधर गुप्त राजाओंका प्राधान्यलाभ और उसके बाद कन्नोजमें हिन्दूधर्मनिष्ठ यशोधर्मदेवका अभ्युदय हुआ। प्रायः समस्त आर्यावर्त्तमें फिर कुछ दिनके लिये ब्राह्मणप्रभाव प्रवर्त्तित हुआ था।

अधिक सम्भव है, कि उस समय धर्मचेता वैष्णवों द्वारा वराह पुराणोक्त तीर्थ और वनसमूह प्रतिष्ठित तथा तत्तन्माहात्म्य कीर्त्तित हुआ था। उसके साथ साथ शैव, शाक्त और सौरगण भी अपने अपने इष्टदेवका माहात्म्य प्रचार करनेको अग्रसर हुए थे। वराहपुराणमें उसका यथेष्ट आभास मिलता है।

वराहपुराणमें मथुरा माहात्म्यप्रसङ्गमें इस प्रकार लिखा है।

"इन्द्रस्येव पुरी रम्या यथा नाकेऽमरावती ।
जम्बूद्वीपे तथोत्कृष्टा मथुरा नाम वल्लभा ॥
विंशतिर्योजनानां हि माथुरं मम मण्डलम् ।
पदे पदेऽश्वमेधानां फलं नात्र विचारणा ॥
न मया कथितं देवि ब्रह्मणश्च महात्मनः ।
रुद्रस्य न मया पूर्वं कथितञ्च वसुन्धरे ॥
मया सुगोपितं पूर्वं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
अत्र क्षेत्रे पुरी रम्या सर्वरत्नविभूषिता ॥
तस्यां तिष्ठन्ति तीर्थानि तानि वक्ष्यामि तच्छृणु ।
षष्टिकोटि सहस्राणि षष्टि कोटि शतानि च ॥
तीर्थसंख्या च वसुधे मथुरायां मयोदिता ।
गोवर्द्धनं तथा क्रूरं द्वे कोटी दक्षिणोत्तरे ॥
प्रस्कन्दनञ्च भाण्डीरं कुरुक्षेत्र समानि षट् ।
पुण्यात् पुण्यतरं श्रेष्ठमेतद् विश्रान्तिसंज्ञकम् ॥
असिकुण्डं सवैकुण्ठं कोटितीर्थसमं स्मृतम् ।
अविमुक्तं सोमतीर्थं यमनन्तिन्दुकं ततः ॥
चक्रतीर्थं तथाक्रूरं द्वादशादित्यसंज्ञितम् ।
एतत् पुण्यं पवित्रञ्च महापातकनाशनम् ।
कुरुक्षेत्राच्छतगुणं मथुरायां न संशयः ॥
ये पठन्ति महाभागाः शृण्वन्ति च समाहिताः ।
मथुरायास्तु माहात्म्यं ते यान्ति परमं पदम् ॥"

(वराह पु० १५८ अ०)

श्रीकृष्णने वसुधासे कहा था "प्रिये! समग्र जम्बूद्वीपके मध्य यह मथुरापुरी ही मुझे प्रिय है । यह इन्द्रकी अमरावतीके समान रमणीय है। इस मथुरामण्डलका विस्तार बीस योजन है। यहां प्रतिपदक्षेपमें अश्वमेध यज्ञका फललाभ होता है । मैंने इस पुरीका विवरण पहले ब्रह्मा वा रुद्र किसीसे भी नहीं कहा है। इस क्षेत्रमें एक सर्वरत्न भूषित रमणीय पुरी है । वहां बहुसंख्यक पवित्र तीर्थ विद्यमान हैं। मैंने मथुरामें साठ साठ कोटि सहस्र और साठ कोटि सौ तीर्थसंख्या निर्देश की है। एतद्भिन्न गोवर्द्धन और अक्रूर आदि

और भी दो कोटि तीर्थ दक्षिणोत्तरकी ओर विद्यमान है। प्रस्कन्दन और भाण्डीरादि छः तीर्थ कुरुक्षेत्रके समान हैं। ये सब तीर्थ अति पवित्र और सर्वश्रेष्ठ हैं। असिकुण्ड और वैकुण्ठ कोटितीर्थतुल्य तथा चक्रतीर्थ और अक्रूर, अविमुक्त, सोमतीर्थ, यमन, तिन्दुक और द्वादशादित्य तीर्थ हैं। ये तीर्थ अति पवित्र और महापातकहर हैं। मथुरामण्डलके तीर्थ कुरुक्षेत्रसे सात गुण अधिक पुण्यप्रद हैं। इस मथुरामाहात्म्यका जो समाहित हो कर पाठ वा श्रवण करते हैं, वे परमपद लाभके अधिकारी होते हैं।"

ऊपर नाना तीर्थोंका उल्लेख रहने पर भी वराहपुराणमें द्वादशतीर्थ, द्वादश वन और पञ्च स्थलका विशेषरूपसे उल्लेख है।

वराहपुराणमें मथुरामण्डलके अन्तर्गत जिन बारह पवित्र वनोंका उल्लेख है, उनका विवरण इस प्रकार है। प्रथम मधुवन है, इस वनमें विष्णु भगवान् रहते हैं। इस वनका दर्शन करनेसे मानवोंके समस्त अभीष्ट सिद्ध होते हैं। द्वितीय तालवन है, भक्तिमान् व्यक्ति इस वनमें आ कर स्नान करनेसे कृतकृत्य लाभ कर सकते हैं। तृतीय कुमुद वन है इस वनमें जाते ही मानवके सर्वाभीष्ट लाभ होते हैं। विशेषतः भाद्रमासकी कृष्ण-एकादशीको यहां आ कर जो व्यक्ति स्नान करते हैं, उन्हें रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। चतुर्थ काम्यकवन है, यहां आनेसे मनुष्य विष्णुलोकको जाते हैं। इस वनमें आ कर यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसे अवश्य विष्णुलोक प्राप्त होता है। पञ्चम वकुलवन है, इस वनमें जानेसे अन्तमें अग्निलोकको प्राप्ति होती है। षष्ठ भद्रवन है, यह वन यमुनाके दूसरे किनारे अवस्थित है। यह देवताओंको भी दुर्लभ है। यहां आ कर मनुष्य यदि एकान्त मनसे विष्णुका ध्यान करे तो इस वन-महिमासे उसे नागलोक प्राप्त होता है। सप्तम खादिर वन है, इस प्रसिद्ध वनमें जा कर मनुष्य विष्णुलोकके अधिकारो होते हैं। अष्टम महावन है, यह वन विष्णुको बड़ा ही प्रिय है। यहां आ कर स्नान करनेसे इन्द्रलोककी गति होती है। नवम लोहजङ्घवन है, यह लोहजङ्घसे रक्षित है। इस वन-महिमासे सभी पाप विनष्ट होते हैं। दशम विल्ववन है, यह वन देवताओंका भी पूजनीय है। यहां आ कर मनुष्य ब्रह्मलोकके अधिकारी होते हैं। एकादश भाण्डीरवन है, यह वन योगियोंको भी प्रिय है। यहां आ कर वासुदेवके दर्शन करनेसे उसे जन्म मरणका क्लेश नहीं रहता। द्वादश वृन्दावन है, यहां आ कर वृन्दावनचन्द्र श्रीगोविन्दके पदारविन्दका दर्शन करनेसे सब पाप दूर होते हैं और यमका भय जाता रहता है*।

द्वादशतीर्थ—१ अविमुक्ततीर्थ, २ विश्रान्तितीर्थ, ३ प्रयागतीथ, ४ कनखलतीर्थ, ५ तिन्दुकतीर्थ, ६ सूर्यतीर्थ, ७ ध्रुवतीर्थ, ८ तीर्थराज, ९ ऋषितीर्थ, १० मोक्षतीर्थ, ११ कोटितीर्थ और १२ वायुतीर्थ।

उक्त बारह तीर्थोंके मध्य अविमुक्ततीर्थमें स्नान करनेसे मुक्ति होती है। सभी तीर्थस्नानमें जो फल है एक विश्रान्तितीर्थमें देवमूर्त्तिके दर्शन करनेसे वही फल होता है तथा उसमें स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। प्रयागतीर्थमें स्नान करनेसे अग्निष्टोमका फल होता है और यहां यदि मृत्यु हो जाय, तो वैकुण्ठ लाभ होता है। कनखल अति गुह्यतीर्थ है, यहां स्नानमात्रसे स्वर्गलाभ होता है। तिन्दुकतीर्थमें भी स्नान करनेसे वैकुण्ठकी गति होती है। रविवार, संक्रान्तिके दिन और चन्द्रसूर्यग्रहणमें सूर्यतीर्थमें स्नान करनेसे राजसूययज्ञका फल होता है। ध्रुवतीर्थमें पितृपक्षको श्राद्ध करनेसे पितरोंकी मुक्ति होती है और स्नानकारी वैकुण्ठ लाभ करता है। ध्रुवतीर्थके दक्षिण तीर्थराज है, यहां स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होतो है और मृत्यु होनेसे वैकुण्ठलाभ होता है। ऋषितीर्थके दक्षिण मोक्षतीर्थ है, यहां स्नान करनेसे ही मोक्ष और कोटितीर्थमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोकको प्राप्ति होती है। वायुतीर्थमें पिण्डदान करनेसे पितृगण तृप्त होते हैं, विशेषतः यहां ज्यैष्ठमासमें पिण्डदान करनेसे गया-पिण्डदानका फल

---

* "रम्यं मधुवनं नाम विष्णुस्थानमनुत्तमम्।
तं दृष्ट्वा मनुजो देवि कृतकृत्यो हि जायते ॥३०
एकादशी शुक्लपक्षे मासि भाद्रपदे तथा।
तस्यां स्नातो नरो देवि कृतकृत्यो हि जायते ॥"३१

होता है। (वराहपु० १५२ अ०) वराहपुराणके मतसे ये बारह तीर्थ देवताओंके भी दुर्लभ हैं, यहां स्नान, दान, जप और होम करनेसे सहस्र गुण फल लाभ होता है। यहां तक कि, इन सब तीर्थोंके नाम लेनेसे समस्त पाप दूर होते हैं।

पञ्चस्थल यथा—१म अर्कस्थल, २य वीर्यस्थल, ३य पुष्पस्थल, ४ महास्थल और ५ कुशस्थल।

वराहपुराणमें लिखा है,—अर्कस्थल यमुनाके दूसरे किनारे भाण्डह्रदके निकट अवस्थित है। यहांके कुण्डमें स्नान करनेसे सब पापोंसे मुक्त हो कर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। अर्कस्थलके समीप सप्तसामुद्रक कूप है। यहां मृत्यु होनेसे मृत व्यक्ति विष्णुलोकको जाता है। वीरस्थल सलिल-सन्निकटवर्त्ती और पद्मकुमुदभूषित है, यहां एक एक रात उपवास रह कर स्नान करनेसे वीरलोककी गति होती है। कुशस्थल भी मङ्गलप्रद और पापहर है। यहां स्नान करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। पुष्पस्थल श्रेष्ठ शिवक्षेत्र है, यहां आ कर स्नान करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

(वराहपु० १५७ अ०)

उपरोक्त प्रधान वनों और तीर्थस्थलोंके अलावा वराहपुराणमें धारापतनक, गोकर्ण, ब्रह्म, शिव, सोम, सरस्वती-पतन, दशाश्वमेध, मानस, नागघण्टाभरण, अनन्त, अक्रूर, वत्सक्रीड़नक, भाण्डीर केशि, कालिकोद, यमलार्जुन, वकुल, गोपीश्वर-वसुपत्र, फाल्गुनक, वृषभाञ्जनक, संपीठक, पिशाच, यमुना, कृष्णगङ्गा आदि तीर्थ भी मथुरामण्डलके अन्तर्गत वर्णित हुए हैं।

उपरोक्त द्वादश वन भिन्न शाम्बवन और बहुलवनका उल्लेख देखा जाता है। वराहपुराणमें लिखा है, कि शाम्ब जब सूर्यकी कृपासे कुष्ठरोग-विमुक्त हुए, तब उन्होंने मथुरा आ कर भविष्यत्पुराणकी विधिके अनुसार शाम्बवनमें सूर्यमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी।

मथुरा-परिक्रम।

वराहपुराणमें लिखा है,—कार्त्तिकमासकी कृष्णाष्टमीके दिन मथुरा जा कर विश्रान्ति-तीर्थमें स्नान करना होता है। स्नानके बाद पितृ और देवार्चनपूर्वक दीर्घविष्णु, केशव और विश्रान्तिदर्शनके बाद प्रदक्षिण करके उस दिन उपवासी रहे अथवा यत्किञ्चित पवित्र वस्तु भक्षण करे। अनन्तर सायंकालमें आत्मशुद्धिके लिये एक दन्तकाष्ठका व्यवहार करे। इस दिनको रात्रि ब्रह्मचर्यसे बितानी होगी।

दूसरे दिन नवमी तिथि पड़ती है। इस दिन बहुत सवेरे उठ कर प्रातःकर्म समाप्त करना होता है। पीछे मौनालम्बन-पूर्वक धौतवस्त्रसे स्नानादि समाप्त कर तिल, अक्षत और कुशादि ले पितृ और देवपूजामें नियुक्त होवे। इस दिन विश्रान्तितीर्थमें रातको जगना होता है। रात्रिकालमें एक प्रज्वलित प्रदीप हाथमें ले कर यात्रिगण वन जावे और पहले ध्रुवादि ऋषियोंने जिस प्रकार अनुक्रमण किया था, उसी प्रकार वहां परिक्रमण करे। यहां पर भक्तियुक्त हो प्रदक्षिण करनेसे सब प्रकारकी कामना सिद्ध होती है, यहां तक कि अश्वमेध-फल तक भी प्राप्त होता है।

इसी भावमें रातको जागरण कर नवमी तिथि बितावे। अनन्तर दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ कर सूर्योदय न होने तक तीर्थस्नानार्थ यात्रा कर दे। इस तीर्थका नाम दक्षिण-कोटिक है। यहां आचमनादि शेष कर हनुमानको प्रसन्न करे।

वहां पद्मनाभ, दीर्घविष्णु, देवी वसुमती और दानवदलिनी अपराजितादेवीके दर्शन और पीछे गृहदेवी तथा वास्तुदेवीके निकट प्रार्थना कर मौनी हो प्रस्थान करे। दक्षिण-कोटिमें आनेके बाद स्नान, पितृतर्पण और देवताओंको प्रणाम कर इक्षुवासादेवीके दर्शन करने जावे। इसके बाद श्रीकृष्णने गोपगणोंके साथ बालकरूपमें जो क्रीड़ा की थी, उस रूपधारी कृष्णके विभिन्न तीर्थका दर्शन करे। अनन्तर सर्वपापहर वत्सपुत्र, अर्चास्थल, वीरस्थल, कुशस्थल, पुण्यस्थल और महास्थल दर्शनको जावे। इनका दर्शन करनेसे ब्रह्मसङ्गलाभ होता है। यहां सिद्धमुख शिवका दर्शन कर हयमुक्तिमें गमन करे। वहां शिवकुण्डमें स्नान करनेसे महाफल-लाभ होता है। कृष्णकी मल्लिका दर्शन कर कदम्ब खण्डमें आवे, यहां आनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। यहां दक्षिणकी ओर कृष्णके रक्षणार्थ योगिनीपरिवृता चर्चिका नाम्नी योगिनी

विद्यमान है। पीछे वर्णखात नामक कुण्डमें आ कर स्नान और पितृतर्पण करे। अनन्तर क्षेत्रपालको देख कर भूतेश्वर शिवका दर्शन करे। इस शिवका दर्शन नहीं करनेसे मथुरापरिक्रम सफल नहीं होता। जहां कृष्णक्रीड़ा सेतुबंध, बालहृद और कुक्कुटक्रीड़न नामक कृष्णकी क्रीड़ाभूमि है, उनका दर्शन करनेसे शरीरमें कोई पाप रहने नहीं पाता। यहां कृष्णपूजित सुगन्धिभूषित बहुत-से उच्च स्तम्भ हैं। प्रदक्षिण करनेके बाद इन स्तम्भोंकी पूजा करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं। यहां-से मुक्तिप्रद नारायण-स्थानमें जावे। वसुदेव देवकीकी गर्भरक्षाके लिये यहां पर एकान्त शयन किया करते थे। इस स्थानका प्रदक्षिण कर, पीछे यथाक्रम विघ्नविनायक और कृष्णपालिता कुब्जिका तथा वामना नाम्नी ब्राह्मणी के दर्शन कर गर्त्तेश्वर शिव, महाविद्येश्वरीदेवी और प्रभामल्लीका दर्शन करे। उक्त शिवका दर्शन करनेसे तीर्थयात्रा-फल सिद्ध होगा। यहां पर कृष्ण-बलरामने गोपगणके साथ कंस-वधकी मन्त्रणा की थी, इसीसे यह स्थान सङ्केतक नामसे प्रसिद्ध है। यहां सिद्धेश्वरी नामक सङ्केतकेश्वरी और स्वच्छसलिल सङ्केतकुण्ड है। पीछे सर्वपापहर गोकर्णेश्वरका दर्शन करे। अनन्तर सरस्वती नदी देख कर विघ्नराज गणेश और गङ्गा देखनेको आवे। बादमें रुद्रमहालय और क्षेत्रप देख कर उत्तरकोटिकी ओर यात्रा करे। वहां गणेश्वर गोपोंके साथ कृष्णका द्यूतक्रीड़ास्थान और गोपाल कृष्णको देख आवे।

कृष्णने बाल्यकालमें जो जो खेल किया था वहां उसका रूप प्रतिष्ठित है। यहांसे यमुनाके जलमें जो महातीर्थ माना जाता है, जा कर स्नान और पितृतर्पण करे। पीछे गार्ग्यतीर्थ, भद्रेश्वर, महातीर्थ और सोम-तीर्थमें स्नान कर सोमेश्वरको देखना होगा। अनन्तर सरस्वतीसङ्गम, घण्टाभरणक, गरुड़केशव, धारालोपनक, वैकुण्ठ, खण्डबेल, मन्दाकिनीसङ्गम, असिकुण्ड, गोप-तीर्थ, मुक्तिकेश्वर, वैलक्षगरुड़ और विश्रान्तितीर्थमें देव और पितृतर्पण करके देवपूजा करे। पीछे सुमङ्गला-देवीके समीप जा उनकी अर्चनासे पिप्पलादेश्वरके दर्शन करने होंगे। अनन्तर कर्कोटकनाग और [illegible] सिद्धिजादेवीको देख आवे। यह देवी कंस-वधके लिये आविर्भूत हुई थीं। इसके बाद वज्रानन और शुक्ल नवमी-को माथुरोंके कुलेश्वर सूर्यदेवका दर्शन और दानादि सम्पन्न कर मथुरायात्रा शेष करनी होती है।*

परिक्रमकालमें जहां जहां देवता मिलेंगे वहां उनकी पूजा कर मङ्गलके लिये प्रार्थना करे।

(वराहपु० १६०० अ०)

वराहपुराणमें जिस प्रकार तीर्थपरिक्रमा वर्णित है उस प्रकार नहीं होती। अभी व्रजभक्तिविलासके अनुसार जिस प्रकार तीर्थपरिक्रमा होती है, उसे नीचे लिखते हैं,—

मथुरामण्डलके द्वादश-वन परिक्रमणकालमें तीर्थ-यात्रिगण मथुरानगरसे निकल कर पांच कोस दक्षिण-पश्चिम वर्त्तमान महोली ग्राममें स्थापित मधुवन जाते हैं। वहांसे दक्षिणाभिमुख हो तालवन जाना होता है। यहां पर बलरामने धेनुकासुरको मारा था। वर्त्तमान तारसिग्राममें तालवन अवस्थित है। पीछे उच्छगांवका कुमुदवन, वाथिग्रामका बहुलावन और कृष्णकुण्डका दर्शन करते हैं।

उक्तबहुलावन नामक पवित्र निकुञ्जका प्राचीन नाम बहुलावती था। सम्भवतः इसी स्थान पर एक समय बहुलावती नगरी स्थापित थी। कालक्रमसे अथवा साम्प्रदायिक विरोधसे यह जनस्थान अरण्यमें परिणत हो गया। किंतु श्रीकृष्णकी लीलाभूमि मथुरा और वृन्दावनके समीप होनेके कारण यात्रिगण उसे स्मृति पथके बहिर्भूत नहीं कर सकते। प्रवाद है, यहां पर बहुला नामक एक पवित्रचेता तपस्विनी गौ रहती थी। एक दिन व्याघ्रसे आक्रान्त होने पर उसने शार्दूलराजके निकट क्षणकालके प्राणभिक्षा की। तदनन्तर वह पुनः अपने स्थानको लौटी और अपने बच्चेको दूध पिला कर

---

* "सूर्यं तं वरदं देवं मथुरायां कुलेश्वरम्।
दृष्ट्वा तत्रैव दानञ्च दत्त्वा यात्रां समापयेत्॥
एवं प्रदक्षिणं कृत्वा नवम्यां शुक्लकौमुदे।
सर्वं कुलं समादाय विष्णुलोके महीयते॥"

(वराहपुराण १६० अ०)

पुनः व्याघ्रके सामने जा खड़ी हुई। वह व्याघ्र और कोई भी नहीं था, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पयस्विनीको साधुता जांचने आये थे। भक्तवत्सल भगवान्ने उस समय व्याघ्रका रूप छोड़ कर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी वङ्किम-मोहनधाममें बहुतोंको दर्शन दिये। यहां कृष्णकुण्डके पार्श्वमें बहुलागायका पीठ अवस्थित होनेके कारण आज भी वह अतीत-स्मृतिकी घोषणा करता है।

वर्त्तमान वाथिग्रामके पार्श्वमें एक वृहत् पुष्करिणीके दूसरे किनारे बहुलावन-तीर्थ है। यहां एक छोटे गह्वरके मध्य गो-मन्दिर विद्यमान है। मन्दिरके प्रकोष्ठ-मध्यस्थ एक प्रस्तरगात्रमें बहुला-गाय, उसका बछड़ा और जीवभयहारी श्रीमधुसूदनमूर्त्ति खोदित देखी जाती है। उक्त पुष्करिणीके दूसरे किनारे मुरलीमनोहरका प्राचीन मन्दिर और गो-मन्दिरके समीप राधाकृष्ण वा विहारीजीका मन्दिर अवस्थित है। मुरलीमनोहरका मन्दिर प्राचीन शिल्पनैपुण्यसे पूर्ण होने पर भी ध्वंसावस्थामें पड़ा है। किन्तु विहारीजीका मन्दिर उससे कुछ हालका बना हुआ है। वाथिग्रामके दुर्गके समीप भरतपुरराज सूर्य्यमल्लके गुरु महन्त रामकृष्णदास द्वारा सीतारामका मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है। पौराणिक जनश्रुतिका माहात्म्य और विगत शताब्दीकी समृद्धि इस स्थानका तीर्थत्व संस्थापनमें समर्थ है, किन्तु अफसोस! यह बहुलावती-वनमें ही पर्य्यवसित रहा। श्रीकृष्णकी विचरणभूमि समझ कर यह स्थान एक तीर्थमें गिना जाने लगा।

अनन्तर यथाक्रम तोस, यक्षिणग्राम और मुखराईको अतिक्रम कर राधाकुण्ड-श्यामकुण्डमें आना होता है। राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड इन दो सरोवरोंके नामसे यह स्थान राधाकुण्ड ही कहलाता है। श्रीकृष्णने अरिष्ट नामक वृषकी हत्या कर इस सरोवरमें स्नान किया था, पीछे वे गो-हत्यापापसे मुक्त हुए थे। यह स्थान प्रसिद्ध गोवर्द्धन पर्व्वतके समीप ही अवस्थित है। यहां भी वृन्दावनके जैसे गोविन्दजी, गोपीनाथ और मदनमोहनके मन्दिर हैं। गोविन्दजी मन्दिरके पार्श्वमें ही उक्त दोनों कुण्ड अवस्थित हैं। आश्चर्यका विषय है, कि उनमेंसे एकका जल कृष्णरूपवत् काला और दूसरेका श्रीराधिकाके तप्तकाञ्चनाङ्गके समान हरिद्रावर्णका है। किन्तु दोनों ही कुण्ड एक दूसरेसे संयोजित हैं। इन दोनों कुण्डोंमें स्नान करनेके बाद एक नारियल हाथमें ले कर मन्त्रपाठपूर्व्वक तीर्थस्नानका फललाभ करना होता है। पूर्वोक्त अरिष्ट वृषका उपाख्यान स्मरण कर अरिष्ट ग्राममें (मथुरा और गोवर्द्धनपर्व्वतके मध्यवर्त्ती वर्त्तमान अरिङ्ग) उसका वास-स्थान कल्पित हुआ है।

उक्त दोनों कुण्डमें स्नानदानके बाद गोवर्द्धन पर्वत और तत्समीपवर्त्ती कल्लोलकुण्ड, माधुरीकुण्ड, मयूरवन, चन्द्र सरोवर, नारायण-सरोवर आदि तिर्थोंके दर्शन करने होते हैं। पूर्वोक्त अरिङ्ग-उपवनमें कल्लोल-कुण्ड अवस्थित है। गोवर्द्धन पर्वतके समीप वसाई ग्राममें कृष्ण और बलरामको साथ ले कर गोपराज नन्दने यशोमती और रोहिणीके साथ वास किया था, इसीसे इस स्थानका माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। चन्द्र सरोवरमें ब्रह्मा गोपियोंका नृत्य देख ऐसे पुलकित और बेसुध हो गये थे, कि उन्होंने उस आमोदका उपभोग करनेके लिये एक रात्रिको छः मास व्यापिनी कर लिया था। वर्त्तमान पार्शोली ग्राममें (मानचित्रका महम्मदपुर) वह पुण्यसलिला पुष्करिणी अवस्थित है। भरतपुरके राजा नाहरसिंहने इस सरोवरमें पत्थरकी सीढ़ी बनवा दी थी।

इसके बाद सभी यात्रिगण पैठा दर्शनको जाते हैं। प्रवाद है, कि श्रीकृष्णने जब गोवर्द्धन-पर्वत धारण किया था, उस समय व्रजवासियोंने पैठा प्रदर्शित गुहाके मध्य आश्रय ग्रहण कर इन्द्रकी कोपवह्निसे रक्षा पाई थी। यहां पहले चतुर्भुज-मन्दिर अवस्थित था। सम्राट् औरङ्गजेबके तोड़ फोड़ डालने पर उसीके ऊपर अभी एक दूसरा मन्दिर बनवा दिया गया है। अनन्तर गोवर्द्धन-पर्वतके ऊपरसे अन्योर ग्राममें आ कर दूसरे किनारे अवस्थित सुगन्धिशिला, सिन्दुरीशिला और सुन्दरशिला तथा गोवर्द्धन-नाथके दर्शन करते हुए गोपालपुर, बिलछू और गांठोली ग्राममें आना होता है। प्रवाद है, कि गांठोली गूाममें श्रीकृष्ण और राधिकाकी प्रेमगांठ जोड़ी गई थी।

अन्योरमें गोविन्ददेव और वलदेवके दो प्राचीन मन्दिर तथा गोविन्दकुण्ड नामक एक पुण्यतोया पुष्करिणी है। रानी पद्मावती उस पुष्करिणीकी प्रतिष्ठा कर गई हैं। सुना जाता है, कि उस कुण्डमें स्नान करनेसे कुष्ठ रोग आरोग्य होता है तथा इसके किनारे श्राद्धकालमें पिण्डदान करनेसे गयाक्षेत्रमें पिण्डदान करनेके समान फललाभ होता है।

यहांसे मथुरा-सीमान्त पार कर भरतपुर राज्यके अन्तर्गत कामवनमें जाना होता है। वह स्थान अभी एक तहसीलके सदररूपमें गिना जाता है तथा मथुरा नगरसे ३६ मील दूर पड़ता है। यहां पर यात्रिगण लुक्-लुक् गुहा और अघासुर-गुहाका परिदर्शन करते हैं। प्रवाद है, कि इस लुक्-लुक् गुहामें श्रीकृष्ण गोपबालकों-के साथ ले लुकाचोरी खेलते थे तथा उस अघासुर गुहामें उन्होंने असुरवरका संहार किया था। पीछे काम्बरगांव पार कर यात्रिगण पुनः उच्छ-ग्रामके वल-देव मन्दिरका दर्शन करते हुए पर्वतके ऊपर वर्सनाग्राम जा लाड़ली-जी, दोहनीकुण्ड, प्रेमसरोवर, संकरीखोर और गह्वरवन देखने आते हैं।

जहां पर वृकभानु और उनकी पत्नीने श्याममनो-मोहिनी श्रीराधाका लालन पालन किया था वहां ललीं वा लाड़ली जीका मन्दिर स्थापित है। मन्दिरपार्श्वस्थ एक स्थान आज भी राधाका पालन-गृह कहलाता है। चक्रशैलीके निकट दोहनीकुण्ड अवस्थित है। यशोदाने अपना दुग्धपात्र धोते समय इसी जगह राधिका और श्रीकृष्णको विचरण करते देखा था। प्रेम सरोवर-में नवदम्पत्तिका प्रेमसागर उमड़ उठा। उसी प्रेम-प्रवाहसे इस सरोवरकी उत्पत्ति हुई है। उसके पास ही श्री गण्डशैलके मध्यवर्त्ती-पथ पर संकरी-घोर देखा जाता है। प्रवाद है, कि गह्वर वनसे जब गोप-ललनाएं दूधकी कलसी बगलमें दबाए आती थीं, तब उनका दूध लेनेके लिये श्रीकृष्ण यहां पर छिप कर रहते थे।

इसके बाद सङ्केत ग्राममें सङ्केत-स्थान है। यहां वांसुरीके सङ्केत (इशारे) से श्रीराधिका आदि कृष्ण-दर्शनको आती थीं। रिठोरामें चन्द्रावलीका कुञ्ज है, यहां पर राधाको धोखा दे कर भगवान्ने सखी चन्द्रा-वलीकी मनस्कामना पूरी की थी। नन्दग्राममें नन्दा-लय और पान-सरोवरका पर्यवेक्षण कर यात्रिगण 'कर-हेला' देखने आते हैं। नन्दालयमें आज भी श्रीकृष्णका बाल्य-लीलाक्षेत्र दिखलाया जाता है। भगवान् नन्द-की गायें जब शामको घर लौटती थीं, तब जिस सरो-वरमें वे जल पीती थीं वही पान सरोवर नामसे कीर्त्तित हुआ है। जहां कदम्ब वृक्षकी शाखा पर हाथ झुला कर श्रीकृष्ण रासलीला करते थे वहीं करहेला कहलाता है। इसके बाद कामई है, यहां पर राधाकृष्णने युगल-मूर्त्तिमें दर्शन दे कर किसी सखीकी अभिलाषा पूरी की थी। इसके बाद अञ्जन-पुष्करिणी है—यहां पर श्रीकृष्णने राधिकाकी आंखोंमें अञ्जन लगाया था और जहांका जल ले कर राधाने श्रीकृष्णकी प्यास बुझाई थी उसका नाम पिपासा-तीर्थ है। इस तीर्थका दर्शन कर वे उत्तरकी ओर बढ़ते हुए खेराके अन्तर्गत खदिरवन, कुमारवन, जावकवन और कोकिलवनका दर्शन कर चरण पहाड़ पर पहुंचते हैं। यहां ऐरावतकी पीठ पर सवार हो देवराज इन्द्रने श्रीकृष्णकी चरण-वन्दना की थी। उक्त वनोंमें श्रीकृष्णका लीलाप्रसङ्ग है।

अनन्तर यात्रिगण दधिग्राम पार कर परिक्रमाकी उत्तरसीमा कोटवनमें आते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण दधिग्राममें रह कर गोपियोंके साथ क्रीड़ा कौतुक करते थे तथा बलराम उन्हींके छल परामर्शसे बथान-ग्राममें गौ चराते थे। यहांसे घरकी ओर जानेमें शेषई ग्राम (वर्त्तमान हथान) जाना होता है। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामने यहां पर गोपाङ्गनाओंको नारायण और अनन्तरूपमें दर्शन दिये थे। अनन्तर यमुनाके किनारे पहुंच कर खेलवन (शेरगढ़में), विहारवन, चीरघाट, नन्दघाट, वकवन, आतस, नरि-सेमरी, छटिकरा, अक्रूर और भात-रांधा पा कर वृन्दावन आना होता है।

खेलवनमें श्रीकृष्ण माला गूंथ कर गोपियोंके साथ रस-कौतुक करते थे। चीरघाटके कदम्बवृक्ष पर वे व्रज-वासिनी रमणियोंके स्नान करते समय चीर चुरा कर छिप रहे थे। वह 'वस्त्रहरण' घाट नामसे भी प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णदर्शनकी प्रत्याशामें वरुणदेव एक

दिन स्नानके समय गोपराज नन्दको यमुना जलमें ले गये थे। यह खबर लगते ही सभी लोग व्याकुल हो गये। श्रीकृष्णने जलमें घुस कर नन्दका उद्धार किया। इस भयके लिये निकटवर्त्ती स्थान भयगांव नामसे प्रसिद्ध है। वकवनमें भगवान्ने वकासुरको मारा था, पार्श्ववर्त्ती वशाइ-ग्राममें भगवान् द्वारा गोपाङ्गनाओंका वशीकरण उल्लेखित हुआ। नरिसमरीमें प्रतिवर्ष चैत्र-मासको कृष्णाचतुर्दशीको नवदुर्गाका मेला लगता है। यहां श्यामलादेवी विद्यमान हैं। भातरांधाग्राममें एक ब्राह्मणीके यहां देवरूपी दोनों बालकोंने मथुरायात्राकाल-में अन्नग्रहण किया था। यहां आज भी उस घटनाका स्मरण कर भातमेला नामक एक उत्सव मानाया जाता है।

यहां यमुना पार कर जहांगीरपुरमें बेलवन, माट-नगरके समीप भद्रवन, भाण्डीरवन, डाङ्गोलि, मानसरोवर और पीछे पिपरौली ग्राममें पिप्पलकुञ्ज दर्शन कर लोहवन, रावल और बुड़ियाका-खेरा आना पड़ता है।

बेलवन श्रीदाम-सखाका आवासस्थान माना जाता है। भाण्डीरवनमें बलरामने प्रलम्बासुरको मारा था। डाङ्गोलीमें श्रीकृष्णने अपनी वंशी रख कर मानसरोवरके किनारे श्रीराधाका मानभञ्जन किया। लोहवनमें लोहासुरकी पराजय सूचित हुई। रावलमें श्रीराधाका ननिहाल था। यहां पिता स्वर्भानुके साथ वृकभानुकी पत्नी रहती थी। बूढ़ीका खेरामें किसी वृद्धाके पुत्रके साथ राधाकी सहचरी मानवीका विवाह हुआ। एक दिन लालसामुग्ध हो कर श्रीकृष्णने उसके स्वामीका रूप धारण कर मानवीके घरमें प्रवेश किया। मानवी आदर पूर्वक उन्हें अपने घर ले गई और जाते समय वह अपनी सासले कहती गई, कि यदि कोई उसके स्वामीके जैसा दरवाजे पर आवे, तो दरवाजा नहीं खोलना, वरं उसे ईंट पत्थर मार कर भगा देना। श्रीकृष्णके छल कपटसे उस बेचारेका मस्तक चूर चूर हो गया था।

इस स्थानका परित्याग कर तीर्थयात्रिगण बन्दी ग्राममें बन्दि और आनन्दि (यशोदाकी दो विश्वस्तदासी) का मन्दिर तथा बलदेव ग्राममें रेवतीमन्दिरका दर्शन करते हुए हथौराके समीप चिन्ताहरण और ब्रह्माण्डघाट पहुंचते हैं। यहां श्रीकृष्णने अपने मुखमें यशोदाको ब्रह्माण्ड दिखलाया था। एतद्भिन्न महावनके श्रीकृष्ण-सम्वलित नाना घटनास्थल और गोकुल नदीतीरवर्त्ती असंख्य देवमन्दिर दर्शन कर वे क्लान्त हो जाते हैं और मथुराके परम पवित्र तीर्थ विश्रान्तिघाट पर आ कर पुण्यकार्यको शेष करते हैं।

ऊपर श्रीकृष्णके लीलास्थलरूपमें जिस प्रकार बारह वनोंका उल्लेख किया गया है, उसी प्रकार श्रीराधाके भी लीलाभूमि २४ वन बतलाये गये हैं। एतद्भिन्न नारायण-भट्ट-कृत व्रजभक्तिविलासमें १३३ वनोंके परिक्रमणकी कथा लिखी है—

१। द्वादश वन—महावन, काम्यवन, कोकिलवन, तालवन, कुमुदवन भाण्डीरवन, छत्रवन (छातानगर), खदिरवन, लोहवन, भद्रवन, बहुलावन और बिल्ववन वा बेलवन।

२। द्वादश उपवन—ब्रह्मवन, अप्सरावन, विह्वल-वन, कदम्बवन, स्वर्णवन, प्रेमवन, सुरभिवन, मयूरवन, मननगीतिवन, शेषशायीवन, नारदवन, परमानन्दवन।

३। द्वादश प्रतिवन—रङ्कवन, वार्त्तावन, करहेला, काम्यवन, अञ्जनवन, कामवन, कृष्णक्षेपणक, नन्दप्रेक्षण, इन्द्रवन, शिक्षावन, चन्द्रावतीवन और लोह वा लोहजङ्घ-वन।

४। द्वादश अधिवन—मथुरा, राधाकुण्ड, नन्दग्राम, गतस्थान, ललिता ग्राम, वृषभानुपुर, गोकुल, बलदेव, गोवर्द्धन, जाववन, वृन्दावन और सङ्केत। एतद्भिन्न ५ सेव्यवन, १२ तपोवन, १२ मोक्षवन, १२ कामवन, १२ अर्थवन, १२ धर्मवन और १२ सिद्धिवन हैं। प्रत्येक वनमें देवलीलाघटित प्रसङ्ग और देवमूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

वराहपुराण और व्रजभक्तिविलास इन दोनोंसे ही तीर्थ-परिक्रमा उद्धृत हुई। देखनेसे ही मालूम होता है, कि वराहपुराणमें उक्त विवरण सङ्कलित होनेके समय जैसा मथुराप्रदक्षिण होता था, अभी वैसा नहीं होता। बहुतोंको मालूम है, कि रूपसनातनने वृन्दावनका प्राचीन स्थान निरूपण करनेमें अपना जीवन बिता दिया था। १६वीं सदीमें उन्हींके शिष्य नारायण

भट्टने व्रजभक्तिविलासमें मथुरापरिक्रमा लिपिबद्ध की। रूपसनातनकी चेष्टासे श्रीकृष्णलीलाभूमिका जहां तक पता लगाया था तथा परिक्रमाके सम्बन्धमें जनताको जहां तक मालूम हुआ था वही व्रजभक्तिविलासमें वर्णित देखा जाता है तथा उसीके अनुसार धार्मिक हिंदूगण मथुराकी परिक्रमा करते हैं।

जनसाधारणको मालूम है, कि मथुरामण्डलका विल्लवन, भाण्डीरवन आदि स्थान यमुनाके किनारे बसे हुए हैं। यमुनाके पूर्वतन खाद देखनेसे भी यमुनाकी पूर्वतन गतिका वहुत कुछ ज्ञान हो सकता है तथा आज भी वह कालिन्दी कुलध्वंसिनी हो कर स्थानविशेषको वहा देती है। पहले जिस 'यमुनापुलिन' पर श्रीकृष्णने गोपाङ्गनाके साथ विहार किया था, अभी वह एक वालुकामय प्राङ्गणमें परिणत हो गया है।

तीर्थक्षेत्ररक्षाका और भी एक स्वतन्त्र नियम है, किसी प्राचीन देवमन्दिर वा देवतीर्थके नदीगर्भमें निमज्जित होनेसे पण्डा वा पुरोहितगण उसकी रक्षाके के लिये विशेष यत्न करते हैं। वे उसीके पार्श्ववर्त्ती भूमिभागमें किसी जगह उसी तीर्थस्थानकी घोषणा कर देते हैं। सभी जातिके मध्य यह प्रथा प्रचलित देखी जाती है। कौन कह सकता है, कि यह द्वापर युगकी कथा है, जहां भगवान् श्रीकृष्णने विहार किया था, वह आज भी विद्यमान है। युगविपर्य्यसे एक नष्ट हो गया है और उसके वदलेमें एक दूसरा नया वनाया गया है। पतद्भिन्न सुप्राचीन मथुराधाममें साम्प्रदायिक विप्लवके कारण घोर अनर्थ भी हो गया है।

इस जिलेमें १४ शहर और ८३७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८ लाखके करीब है। जिनमेंसे सैकड़े पीछे ६६ हिन्दू और शेषमें मुसलमान है। हिन्दूमें जाट और चौबे ब्राह्मणकी संख्या ही ज्यादा है। चौबे साधारण अधिवासीकी अपेक्षा बलवान् होते हैं। वृन्दावनमें महोत्सव देनेमें मथुरावासी चौबे ब्राह्मणको मिठाई खिलानी पड़ती है। वृन्दावनतीर्थमें यह 'मच्छव' दान विशेष पुण्यजनक माना गया है।

यहांकी प्रधान उपज गेहूं, वाजरा, चना और जुआर है। साधारण अधिवासियोंके मध्य अधिकांश कृषिजीवी और भूस्वाधिकारी हैं।

जलाभावके कारण यहांके अधिवासियोंको कभी कभी वहुत कष्ट भुगतना पड़ता है। उसके साथ साथ दुर्भिक्षरूप महामारी भी अपना दर्शन दे कर लोगोंको विपद्समुद्रमें विलोड़ित करती है। १८१३ ई०में सहार परगनेमें ऐसा विपदुपात हो गया है। यहां तक कि, अन्नाभावमें निम्नश्रेणीके अधिवासियोंको मुट्ठी भर अनाजके लिये थोड़े मोलमें अपने स्त्री-पुत्रको भी बेचना पड़ा था। १८२५-२६ ई०में महावन और जलेश्वरके अधिवासियोंको अन्नका कष्ट हुआ था। १८३७-३८ ई०को मथुरा जिलेके अन्तर्वेदी प्रदेशमें और दक्षिण पश्चिम पार्व्वत्य विभागमें महा अन्नकष्ट उपस्थित हुआ था। १८६०-६१ ई०में जलाभावके कारण जिलेके अधिकांश स्थानमें फसल विलकुल नहीं हुई। पीछे आधा अधिवासी अपनी जन्मभूमिका परित्याग कर अन्यत्र जा वसे। इसके बाद पुनः १८७७-७८ ई०में अनावृष्टिके कारण अनाजका मूल्य दूना बढ़ गया। इस समय मथुरा और पार्श्ववर्त्ती लोगोंको महान कष्ट उठाना पड़ा था। कितने लोग शान्तिदेवीकी गोदमें सदाके लिये सुखसे सो रहे। गवर्मेण्ट १८७८ ई०के अगस्त मास तक प्रतिदिन २० हजार लोगोंको अन्न देती रही थी।

विद्याशिक्षामें यह जिला वढ़ा चढ़ा है। स्कूलके अलावा आठ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७°१४´से २७° ३६´ उ० तथा देशा० ७७° २०´से ७७°५१´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३६६ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखके करीब है। यह पूर्वमें यमुना नदी और उत्तर-पश्चिममें भरतपुर एव तमालाके पाददेश तक विस्तृत है। गोवर्द्धनके निकटवर्त्ती गिरिराज नामक गण्डशैल ही उल्लेखयोग्य है। यह पर्वत पार्श्ववर्त्ती समतलक्षेत्रसे प्रायः १०० फुट ऊंचा और ५ मील विस्तृत है। श्रीकृष्णके पौराणिक लीलाप्रसङ्गमें इस स्थानका माहात्म्य गाया गया है। पर्वतके ऊपर श्रीकृष्णके उद्देशसे मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है। परिक्रमामें उसका कथञ्चित उल्लेख किया गया है। काशीधाममें जिस प्रकार शिवलिङ्गका वाहुल्य देखा जाता है, उसी प्रकार इस मथुरा मण्डलमें विष्णु-मूर्त्तिका भी

अभाव नहीं है। प्रायः प्रत्येक हिन्दूके घरमें भगवन्नारायण विराज करते हैं।

इस तहसीलके पूर्वभागमें एकमात्र यमुना नदी ही कृषिकार्यमें सहायता देती है। आगरा-नहर काटी जानेके बाद वहां जलकी बहुत सुविधा हो गई है। उत्पन्न द्रव्यमें तमाकू, ईख, चना, रूई, जौ, गेहूं, ज्वार और बाजरा प्रधान है।

मथुरानगरी—जिलेका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० २६° ३०´ उ० तथा देशा० ७७° ४१´ पू० यमुनाके दाहिने किनारे अवस्थित है।

इस नगरकी गिनती पहले महासमृद्धिशाली राजधानीमें होती थी, रामायण, पुराण और बौद्धशास्त्र ललितविस्तरसे उसका पता चलता है। यह स्थान विशेष समृद्ध और कनोज आदि विभिन्न श्रीसम्पन्न राजधानीके पास अवस्थित था, इस कारण विभिन्न धर्मसम्प्रदाय अपने अपने धर्मप्रचारके लिये यहां आ कर बस गये थे। उन्हींमेंसे किसी किसीने एकके ध्वंसावशेषका परित्याग कर उस सुरम्य यमुनाके किनारे किसी दूसरे स्थान पर वास किया था; कालक्रमसे मथुरामें एकके अवसान होने पर दूसरेका प्रताप बढ़ गया। इसी प्रकार मथुरामण्डलमें ब्राह्मण्ययुगके बाद प्राचीन जैन और बौद्धयुगका प्रचार हो गया है। बाद उसके पुनः हिन्दूधर्मके अभ्युत्थानसे वैष्णवधर्म फैला। क्रमसे श्री, निम्बार्क, माध्व, विष्णु और वल्लभाचार्य आदि साम्प्रदायिकोंने मथुरामें प्रतिपत्ति जमाई और उन्होंने ही देवमन्दिरादिका निर्म्माण किया। पतद्भिन्न इतिहास वर्णित ग्रीक और मुसलमान-राजाओंने मथुराके प्राचीन मन्दिर आदि पर कब्जा किया था इसमें जरा भी सन्देह नहीं। शत्रुघ्न द्वारा प्रतिष्ठित मधुपुरी वा प्रकृत मथुरा किस जगह अवस्थित था बतलाना कठिन है। इसीलिये हिन्दू शास्त्रमें मथुरामण्डल परिदर्शनकी व्यवस्था दी गई है। कारण, मथुरामण्डलके किसी न किसी स्थानमें प्राचीन मथुरातीर्थ अवस्थित है। अभी जो सब वन श्रीकृष्णका लीलाक्षेत्र बतलाया जाता है वह भी सम्भवतः उस पौराणिक युगमें गांव वा नगर था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमेशा उन सब स्थानोंमें घूमा करते थे। बिल्ववनमें श्रीदाम सखाका घर था, ऐसा कहा जाता है। कालक्रमसे ये सब स्थान अभी वनके आकारमें परिणत हो गये हैं। परिब्राजक फाहियान और यूएनचुवंग मथुरा परिदर्शन कर बहुतसे बौद्ध-संघाराम और हिन्दूमन्दिरका उल्लेख कर गये हैं।

इस प्राचीन कीर्त्तिसमूहको ले कर प्रत्नतत्त्वविदोंमें मतभेद है। वे प्राचीन स्तूप देख कर ही बौद्धकीर्त्तिका अनुमान कर लेते हैं, किन्तु अभी विशेष यत्न और अध्यवसायसे आलोचना करने पर उनमेंसे कितने जैनकीर्त्तिके निदर्शन भी बाहर हुए हैं।

मथुरा जिलेका पुरातत्त्व देखो।

आजकल मथुराधाममें जो सब प्राचीन कीर्त्तियां देखी जाती हैं नीचे उनका एक संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

परिब्राजक यूएनचुवंग यहां २० सङ्घाराम और ५ मन्दिर देख गये हैं। किन्तु फा-हियानके ४०० ई०के वृत्तान्तके साथ ६३४ ई०में यूएनचुवंगकी विवरणीका मिलान करनेसे ईस्वीसन्‌की चौथी शताब्दीसे ही यहांके बौद्धप्राधान्यके अवसानकालकी कल्पना की जाती है। सुतरां ईस्वीसन्‌के पहले ४थी शताब्दीके उपगुप्तके समयसे ले कर ईस्वीसन् १ली और २री शताब्दी तक यहां बौद्धधर्मकी सविशेष विस्तृति कल्पित होती है। बौद्धसमृद्धिके अवसानके साथ साथ मथुराकी समृद्धि भी अस्तमित हुई।

अभी मथुरा नगरके चारों ओर इधर उधर पड़े हुए ईंटे और पत्थरके टुकड़े मिलते हैं। इनसे यद्यपि प्राचीनत्वका कोई निदर्शन नहीं मिलता, पर वे एक एक प्राचीन कीर्त्तिके ध्वंसावशेष अनुमित होते हैं। किसी किसीने यमुनातीरवर्त्ती इन स्तूपोंको स्वभावजात बतलाया है। शीतलघाटके समीपमें इस प्रकार एक स्तूपके ऊपर मथुराका प्राचीन दुर्ग तथा कटवाके मध्यवर्त्ती स्तूपके ऊपर सम्राट् औरङ्गजेबने मसजिद बनवाई थी। अलावा इसके आनन्दटोला और विनायकटीला खोद कर प्राचीन कीर्त्ति बाहर निकालने पर भी उनको नाम तथा यूएनचुवंगकी वर्णनाके अनुसार आनन्द और उपालिकी कथा याद आ जाती है।

जमालपुर और तन्निकटवर्त्ती कङ्काली वा जैनटीला और कटरास्तूपसे अनेक बौद्धनिदर्शन तथा शिलालिपि निकली हैं। कङ्कालीटीला कङ्कालीदेवीके अधिष्ठान-स्नान-रूपमें जन साधारण द्वारा पूजित होने पर भी यहां बहुत से बौद्ध और जैनकीर्त्तिके निदर्शन तथा शकराज-कनिष्क, हुविष्क और वसुदेवके लिपियुक्त बारह दिगम्बर तीर्थङ्करोंकी मूर्त्ति और श्वेताम्बरोंके पद्मप्रभानाथकी मूर्त्ति एवं मौर्य-अक्षरमें लिखित कितने प्रस्तरफलक पाये गये हैं। कङ्कालीटीलाके अदूरस्थ कटवाके समीप भूतेश्वर-महादेव मन्दिरके पीछे एक गण्डशैलके ऊपर बहुतसे बौद्ध निदर्शन फैले हुए हैं। उक्त मन्दिरके पार्श्वदेशमें वलभद्रकुण्ड नामक पुण्य-सलिला पुष्करिणी विद्यमान है। यहां अनेक बौद्धकीर्त्तिके खंडहर रहने पर भी इस स्थानमें हिन्दूमाहात्म्य घोषित होता है। प्रतिवर्ष सलोनी पूर्णिमाके दिन वलभद्रकुण्डमें एक मेला लगता है। अलावा इसके १ मील दक्षिण पश्चिममें चौवाड़ा या चौरासी स्तूप अवस्थित है। उसके एक स्थानसे एक दन्तविमण्डित स्वर्णकौटा पाया गया है। दुःखका विषय है, कि अब भी मथुराका सभी स्थान अन्वेषित नहीं होता, नहीं तो मथुराधामके बहुतसे स्थानोंमें प्रतिमूर्त्ति और भग्न स्तम्भके सिवा और भी कितनी कीर्त्तियां बाहर होतीं। प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक यूएनचुवंग जिन सब बौद्ध संघारामोंका उल्लेख कर गये हैं, प्रत्नतत्वविद् डा० कनिंहम्, फुरार, वार्गस आदिके यत्नसे स्तूप निहित शिलाफलकसे उनमेंसे यशोविहार, उपगुप्त-विहार, संघमित्रसदविहार, हुविष्कविहार और कुण्डशुक-विहारके नाम मिले हैं।

१६६१ ई०में यहांका सुप्रसिद्ध केशवदेवका मन्दिर सम्राट् औरङ्गजेबने तहस नहस कर दिया। यह स्थान आज कटरा कहलाता है। सम्राट् औरङ्गजेबने केशव देवमन्दिरका ध्वंसावशेष ले कर उसके ऊपर एक मस जिद बनवाई। आज भी मसजिद-गात्रस्थ १७१३ और १७२० सम्वत्की नागरीलिपिसे उसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

१८८६ ई०में मथुरासे वृन्दावन रेलपथ ले जानेमें कटराकी जमीन खोदने पर बहुत-सी बौद्धमूर्त्ति और मौखरिराज महादित्यकी भग्न-शिलालिपि मिली थी। इस कटराके पश्चात्भागमें केशवदेवका वर्त्तमान मंदिर बनवाया गया है। उसके पास ही पोतरकुण्ड और कंसका कारा-गढ़ वा श्रीकृष्णकी जन्मभूमि हैं। इस पोतरकुण्डके पीछे धुलकोट (मथुरानगरका प्राचीन वप्र) परिवेष्टित स्थानमें एक बड़ा स्तूप देखा जाता है जो सम्भवतः किसी बौद्ध मठादिका निदर्शन होगा।

वलभद्रकुण्डके समीप भूतेश्वर-महादेव-मन्दिर और चारों ओर टूटे फूटे खंडहरोंको देखनेसे अनुमान होता है, कि ब्राह्मणके द्वारा कृष्णावतार-प्रसङ्ग उत्थापित होनेके पहले यहां शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा हुई थी। इस प्रकार यहां किसी एक समय काम्यकवनमें कामेश्वर, गोवर्द्धनमें चक्रेश्वर और वृन्दावनमें गोपेश्वरकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई।

भूतेश्वर-महादेवमंदिर-संलग्न काजीवाग नामक उद्यानमें एक छोटी मसजिद देखी जाती है। उसमें हिन्दूधर्मका कोई निदर्शन नहीं रहने पर भी उसका गठन-कार्य देखनेसे अनुमान होता है, कि वह एक समय हिंदू द्वारा बनवाई गई थी। उसका गठनकार्य सम्पूर्णरूपसे हिन्दूभावमें पूर्ण है उसमें मुसलमान मसजिदका बिलकुल आभास नहीं है।

कटराका द्वारपथ तै कर दिल्ली जानेकी राह पर 'कुब्जा' घरका प्राचीर दृष्टिगोचर होता है। अम्बरीषशैलके समीप वृन्दावनद्वार और शाहगञ्ज सराय होते हुए सम्राट् अकबरशाहके शासनकर्त्ता अली खांकी छतरीके सामने पहुंचते हैं। इसके पास ही सरस्वती-सङ्गमकी धारा और दक्षिणमें महादेवका मंदिर है। निकटवर्त्ती कैलास पर्वत पर गोकर्णेश्वर तीर्थ तथा इस धाराके निम्नदेशमें गार्गी और शार्गी तीर्थ है। प्रवाद है, कि गोकर्ण अष्ट वीतरागमेंसे एक हैं। ये महादेवके अवतार हैं तथा उनकी गार्गी और शार्गी नामकी दो पत्नी गौरीके अंशावतारमात्र हैं। यहां बहुत-सी भैरवमूर्त्ति, शीतला-देवी, मशानी और मायादेवीकी मूर्त्ति स्थापित हैं। कैलासशैलके अपर पार्श्वस्थ सड़कके किनारे रामलीला-का मैदान है। उसके करीब ही सरस्वतीकुण्ड अवस्थित है।

यमुनाके किनारे जयपुरराज विहारीमल्लकी पत्नीके सतीत्वके निदर्शनस्वरूप १५७० ई०में उनके पुत्र राजा भगवान् दासने 'सतीबुरुज' बनवाया जो ५५ फुट ऊँचा और चार मंजिलका है। सम्राट् औरङ्गजेबने उसकी चोटी तोड़ डाली थी।

कङ्काली-टिलाके पास शिवताल नामक पवित्र पुष्करिणी है। वाराणसी-राज पटनीमल्लने १८०७ ई०में उसके चारों ओर उच्च प्राचीर बनवा दिया था। प्रतिवर्ष भादोंके महीनेमें कृष्णा-एकादशीके दिन यहां एक मेला लगता है। प्राचीरके वाहरमें शिल्प-कौशलसे पूर्ण अचलेश्वर महादेवका मंदिर है।

नगरके ठीक बीचमें जुमा-मसजिद है। यह सम्राट् औरङ्गजेबके समय १०७१ हिजरीमें अवदुन्नवी खांसे किसी हिन्दू कीर्त्तिके ध्वंसावशेष पर बनाबाई गई थी। नगरोपकण्ठस्थ मनोहरपुरमें सम्राट् महम्मद शाहके राजत्वकालमें निर्मित एक और बहुत छोटी मसजिद देखनेमें आती है। यमुनाकी उत्तरीसीमामें एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष पतित है जिसे लोग 'कंसका किला' कहते हैं। किन्तु अन्यत्र प्रवाद है, कि सम्राट् अकबर शाहके विख्यात सेनापति जयपुरके राजा मानसिंहने वह दुर्ग बनवाया था। कालवशसे वही टूट फूट गया है। यहां मानसिंहके वंशधर अम्बरेश्वर सवाई जयसिंहने स्वीय अभ्यस्त ज्योतिर्विद्याकी आलोचनाका एक मानमंदिर (Observatory) निर्माण कराया था। उक्त जयसिंह सम्राट् महम्मदशाह कर्त्तृक १७२१ ई०में इस प्रदेशके शासन कर्त्ता नियुक्त हुए थे। उसी समय यह मानमंदिर स्थापित हुआ, किन्तु सम्प्रति उस घरका चिह्नमात्र भी नहीं है।

मथुराके किलासे ले कर यमुना-बाग तक विस्तृत यमुनावक्षमें कुल २४ स्नानघाट हैं। इनमेंसे प्रत्येकका माहात्म्य किसी न किसी तीर्थमें गाया गया है। उत्तरमें गणेशघाट, मानसघाट, दशाश्वमेधघाट, चक्रतीर्थघाट, कृष्णगंगाघाट, कालिञ्जरेश्वरका महादेवमन्दिर, सोमतीर्थ वा वसुदेवघाट, ब्रह्मलोकघाट, घण्टाभरणघाट, धारापतनघाट, सङ्गमनतीर्थघाट वा वैकुण्ठघाट, नवतीर्थघाट और असिकुण्डघाट तथा दक्षिणभागमें अविमुक्तघाट, विश्रान्तिघाट, प्रयागघाट, कनखलघाट, तिन्दुकघाट, सूर्य्यघाट, चिन्तामणिघाट, ध्रुवघाट, ऋषिघाट, मोक्षघाट, कोटिघाट और बुद्धघाट है। कंसासुरको मार कर भगवान् श्रीकृष्णने विश्रान्तिघाटमें ही विश्राम किया था। यहां पितृपुरुषोंको पिण्डदान करनेसे यमुनामेंके कच्छप आ कर उसे भक्षण करते हैं। इस विश्रान्तिघाटके पास ही कंसखाँड़ी नामक एक गर्त्त है। प्रवाद है, कि कंसकी मृतदेह अन्त्येष्टि-क्रियाके लिये इसी हो कर यमुनाके किनारे लाई गई थी। योगघाटमें नन्दकन्या योगनिद्राको कंसने शिला पर पटक दिया था। योगघाट और प्रयागघाटके बीचमें वेणीमाधवतीर्थ और शृङ्गारघाट अवस्थित है। प्रयागघाटमें रामेश्वर महादेव एवं शृङ्गारघाटमें पिप्पलेश्वर महादेव और बटुकनाथ विद्यमान हैं। इसके सिवा प्रायः प्रत्येक घाटमें ही शैव या विष्णुमूर्त्ति स्थापित हैं। मथुराके घाटकी शोभा अतुलनीय है।

१८०३ ई०के भयानक भूमिकम्पसे मथुराकी बहुत-सी प्राचीन कीर्त्तियां नष्टभ्रष्ट हो गई। वर्त्तमान अट्टालिकामें यमुनाबागकी छतरी, मथुरा प्रवेशद्वार, जादूघर, असिकुण्डका द्वारकाधीश और विश्रान्तिघाट, गतश्रम-मन्दिर, ईसाइयोंका गिर्जा, 'हार्डिंजआर्च' या होलिदरवाजा, तेण्डाखेराका राधाकृष्ण-मन्दिर, सतघराका विजयगोविन्द-मन्दिर, कंसखेराका बलदेवमन्दिर, लोहारका भैरवनाथमन्दिर, स्वामिघाटका मदनमोहन-मन्दिर, सेठ कुशालका गोवर्द्धननाथ-मन्दिर, स्वामिघाटका विहारीजीका मन्दिर, निकार्चीका गोविन्ददेव-मन्दिर, स्वामिघाटका गोपीनाथमन्दिर, हार्डिंजआर्चके सन्निकटस्थ बलदेवमन्दिर, सतघराका मोहनजी, असिकुण्डका मदनमोहन, कंसखांड़का गोवर्द्धननाथ, दीर्घविष्णु-मन्दिर, सतीबुरुज, अवदुन-नवि और औरङ्गजेबकी मसजिद, लक्ष्मीचांदका वासभवन आदि उल्लेखयोग्य है।

मथुरादास—मध्यप्रदेशके सुवर्णशेखरवासी एक कायस्थ पण्डित। इन्होंने वृषभानुजा नामक संस्कृत-नाटिकाकी रचना की।

मथुरानाथ (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। २ एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद। इन्होंने १६१० ई०में सूर्यसिद्धान्तमञ्जरी नामक एक सूर्यसिद्धान्तकी टीका लिखी।

मथुरानाथकवि—श्यामाकल्पलतिकाके प्रणेता। गुप्तिपाड़ामें

ये मथुरेशकवि नामसे ही प्रसिद्ध हैं। गुप्तिपाड़ाके प्राचीन लोगोंके मुखसे सुना जाता है, कि मथुरेश रामानन्द आश्रमके समसामयिक थे। उन्होंने प्रायः १६८५ ई०में श्यामाकल्पलतिकाकी रचना की। वे सिद्ध पुरुष भी थे। एक दिन वे एक बड़ा शराव लिये आ रहे थे, रास्तेमें सिद्ध रामानन्दसे उनकी भेंट हो गई। रामानन्द जानते थे कि घड़ेमें शराब है अथवा उन्होंने उनकी शक्तिकी परीक्षाके लिये उनसे पूछा, 'घड़ेमें क्या है?' उत्तरमें मथुरेशने कहा, 'इसमें गङ्गाजल है।' रामानन्दने थोड़ा गंगाजल मांगा। मथुरेशने भी घड़ेसे जल निकाल कर दे दिया। मथुरेशके सम्बन्धमें इस प्रकार अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं।

मथुरानाथ चक्रवर्त्ती—प्रश्नरत्नांकुर और शुद्धिरत्नांकुर नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

मथुरानाथतर्कवागीश—नवद्वीपके एक प्रधान नैयायिक, रामतर्कवागीशके पुत्र, सुप्रसिद्ध रघुनाथ शिरोमणिके शिष्य और वासुदेव सार्वभौमके प्रशिष्य। इनके बनाये हुए मथुरानाथी वा माथुरी, गुणकिरणावली प्रकाशटीका, तत्त्वचिन्तामणिटीका, तत्त्वचिन्तामणि आलोकटीका, न्यायलीलावतीटीका, न्यायलीलावती-प्रकाशरहस्य और सिद्धान्तरहस्य आदि कुछ ग्रंथोंका नव्यनैयायिकसमाजमें विशेष आदर है। उक्त ग्रंथोंमें माथुरी ही मथुरानाथकी अपूर्वप्रतिभाका उज्ज्वल निदर्शन है। यह रघुनाथ-शिरोमणि-रचित तत्त्वचिन्तामणि और तत्त्वचिन्तामणि-दीधितिकी टीका होने पर भी इसमें मथुरानाथने जिस विचार और तर्कशक्तिका परिचय दिया है, वह पढ़नेसे विस्मित होना पड़ता है।

उपरोक्त प्रधान ग्रन्थोंको छोड़ कर मथुरानाथ विरचित नव्य-न्यायशास्त्र-घटित अनेक पर्चे देखे जाते हैं। उनमेंसे कुछ उनके उक्त किसी ग्रन्थके अन्तर्गत हैं अथवा स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं, ऐसा मालूम होता है। अनुसन्धान करने पर जहां तक पाया गया है उसे नीचे लिखते हैं—

अतएवचतुष्टयिरहस्य, अनूपसंहारि पूर्वपक्षरहस्य, अनूपसंहारिसिद्धान्तरहस्य, अनुमानप्रामाण्यवादरहस्य, अनुमितिपरामर्श, अनुमितिरहस्य, अपूर्ववादरहस्य, अभिधाविचाररहस्य, अर्थाध्याहार-पूर्वपक्षालोकरहस्य, अर्थापत्तिपूर्वपक्षरहस्य, अर्थापत्तिरहस्य, अर्थापत्तिसिद्धान्तरहस्य, अवच्छेदकत्व-लक्षणरहस्य, अवयवग्रन्थरहस्य, असाधारण-पूर्वपक्षरहस्य, असाधारणरहस्य, आकांक्षाग्रन्थरहस्य, आकाङ्क्षा-पूर्वपक्षालोकरहस्य, आकाशखण्डन, आकाशवादार्थ, आख्यातवादरहस्य, आसत्तिग्रन्थरहस्य, उदाहरणलक्षणरहस्य, उपनयलक्षणरहस्य, उपाधिदूषकतावीजपूर्वपक्षरहस्य, उपाधिदूषकतावीजरहस्य, उपाधिपूर्वपक्षरहस्य, उपाधिवादरहस्य, उपाधिविभागरहस्य, उपाधिसामान्यलक्षणरहस्य, उपाधिसिद्धान्तग्रन्थरहस्य, उपाध्याभ्यासरहस्य, केवलव्यतिरेकिपूर्वपक्षरहस्य, केवलव्यतिरेकिसिद्धान्तरहस्य, केवलान्वयिग्रन्थरहस्य, केवलान्वयिपूर्वपक्षरहस्य, केवलान्वयिसिद्धान्तरहस्य, गुणदीधिति नामक गुणप्रकाशदीधितिटीका, जातिपक्षतावाद, जातिमाला, तर्कप्रतिबन्धकतारहस्य, तर्करहस्य, तात्पर्यग्रन्थरहस्य, द्वितीयचंक्रवर्त्ति लक्षणरहस्य, द्वितीयस्वलक्षणरहस्य, न्यायमूलपरिभाषा, पक्षताग्रन्थरहस्य, पक्षताटीका, पक्षतापूर्वपक्षग्रन्थरहस्य, पक्षतारहस्य, पक्षतासिद्धान्तरहस्य, परामर्शपूर्वपक्षरहस्य, परामर्शसिद्धान्तरहस्य, प्रतिज्ञालक्षणरहस्य, प्रत्यक्षपरिच्छेदरहस्य, प्रत्यक्षालोकफक्किका प्रत्यक्षलोकरहस्य, प्रथमप्रगललक्षणरहस्य, प्रथमस्वलक्षणरहस्य, प्रामाण्यवादरहस्य, बाधग्रंथ रहस्य, बौद्धाधिकाररहस्य, भावप्रत्ययवादार्थ, योग्यताग्रन्थरहस्य योग्यतापूर्वपक्षरहस्य, लक्षणवादरहस्य, लिङ्गकारणतापूर्वपक्षरहस्य, लिङ्गकारणतासिद्धान्तरहस्य, लिङ्गोपस्थितलैङ्गिकभावनिवासरहस्य; लिङ्गोपद्धित लैङ्गिकभावविचार, विधिवाद, विधिवादटीका, विरुद्धग्रन्थपूर्वपक्षरहस्य, विरुद्धसिद्धान्तग्रन्थरहस्य, विशिष्टवैशिष्ट्यबोधविचार, विशेषव्याप्तिरहस्य, व्यतिरेकपूर्वपक्षरहस्य, व्यतिरेकिरहस्य, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावखण्डन, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावरहस्य, व्याप्तिग्रहोपायरहस्य, व्याप्तिरहस्य, व्याप्तिपूर्वपक्षरहस्य, व्याप्तिवाद, व्याप्तिवादरहस्य, व्याप्त्यनुपमरहस्य, शक्तिप्रकाशबोधिनी, शक्तिवादरहस्य, शब्दरहस्य, शब्दनित्यतारहस्य, शब्दामाण्यरहस्य, शब्दालोकरहस्य वा शब्दमणिपरिच्छेदालोकटीका, संशयकरणतार्थापतिपूर्व पक्ष-

रहस्य, संशयकारणतार्थापत्तिरहस्य, संशयपक्षताविचार, संशयवादार्थ, संशयानुमितिरहस्य, सङ्गत्यनुमितिवाद, सत्प्रतिपक्षग्रन्थरहस्य, सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षरहस्य, सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तग्रंथरहस्य, सन्निकर्षवादार्थ, सव्यभिचाररहस्य, सव्यभिचारसिद्धान्तरहस्य, साधारणपूर्वपक्षरहस्य, साधारणरहस्य, सामान्यनिरुक्तिग्रंथरहस्य, सामान्यलक्षणरहस्य, सामान्यभावरहस्य, सिंहव्याघ्ररहस्य, सिद्धान्तलक्षणरहस्य, स्वप्रकाररहस्य, हेत्वाभासरहस्य।

उक्त न्याय ग्रंथोंके अतिरिक्त मथुरानाथ आयुर्दायटीका नामक एक ज्योतिर्ग्रन्थ लिख गये हैं।

मथुरानाथशुक्ल—काशीवासी एक महापण्डित। मालवके अन्तर्गत पाटलिपुत्र ग्राममें इनका जन्म हुआ था। ये १८वीं शताब्दीमें काशीधाममें विद्यमान थे। इन्होंने नाना शास्त्रीय अनेक ग्रन्थोंकी रचना की जिनमेंसे निम्नलिखित ग्रंथ मिलते हैं—

अघपञ्चविवेचन, अघपञ्चषष्टि, आचारार्क, आचारोल्लास, आत्मपुराणदीपिका, अशौचनिर्णयटीका, आश्वलायनसूत्रवृत्ति, कालमाधवचन्द्रिका, कालीतत्त्वटिप्पन, कुमारीतंत्रविवरण, कुवलयानन्दवृत्ति, कृत्यसार, क्रियाकौमदी, गणकभूषणटीका, गणेशस्तोत्र, गुरुसूयगोचरविचार, गोरक्षशतकटीका, छन्दःकल्पलता, जटापटलटिप्पन, जातककल्पलता, ज्योतिःसिद्धान्तसार, तिथिनिर्णय, दिलीपचरित, दिव्यतत्त्वलघुटीका, दुर्गाच्चनामृतरहस्य, नैषधीयटीका, पञ्चमीसुधोदय, पाणिग्रहादिकृत्यनिर्णय, पिङ्गलवृत्ति, प्रवोधचन्द्रोदयवृत्ति, बृहत्संहिताटिप्पन, बृहदारण्यकोपनिषल्लघुवृत्ति, ब्रह्मसूत्रलघुवृत्ति, भगवद्गीताप्रकाश, भुवनेश्वरीवरिवस्यारहस्य, भैरवसपर्य्याविधि, भैरवार्च्चनकल्पलता, मन्त्ररत्नाकर, मलमासतत्त्वटीका, माण्डुक्योपनिषद्भाष्यटिप्पन, मिताक्षरा नामक प्रश्नमनोरमाटीका, मिताक्षरा नामक याज्ञवल्क्यकी आचाराध्यायटीका, यन्त्रराज, यन्त्रराजकल्प, यन्त्रराजटीका, यन्त्रराजपद्धति, युद्धजयोत्सवटिप्पनी, योगकल्पलता, योगवर्णन, वृत्तदर्पण, वृत्तसुधोदय, वैद्यामृतलहरी, शारदातिलकप्रकाश, शिवपूजाप्रकाश, षट्चक्रादिसंग्रह, सहमचन्द्रिका, साहित्यदर्पणटिप्पन, सिद्धान्तचन्द्रिका, सुभाषितमुक्तावली, सौभाग्योपनिषट्टिप्पन, हठयोगसंग्रह, हनूमन्तोद्धार और हारावलीकोषटिप्पनी।

मथुरापुर—१ बंगालके चौबीस परगना जिलेके डायमंड-हारवरके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह देवयानकी हाट नामसे प्रसिद्ध है। यहां एक हाट लगती है जिसे वाणिज्य भाण्डार भी कह सकते हैं।

२ यशोहर जिलेके झिनाइदह महकुमेके अन्तर्गत एक ग्राम।

मथुरिया (हिं० वि०) मथुरासे सम्बन्ध रखनेवाला, मथुराका।

मथुरेश (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। २ मथुरानाथ कवि।

मथुरेशविद्यानिधि—ज्योतिःसागरसारके रचयिता।

मथुरेश विद्यालङ्कार—एक विख्यात पण्डित। इन्होंने १६६६ ई०में सार-सुन्दरी नामक अमरकोषटीका लिखी। अलावा इसके शब्द-रत्नावली नामक उनका बनाया हुआ एक और अभिधान पाया जाता है। उनके बनाये हुए ग्रन्थोंसे उनकी वंशावलीका हाल जाना जाता है, कि सर्वानन्दके पुत्र माधव, माधवके पुत्र काशीनाथ, काशीनाथके पुत्र चन्द्रवन्द्य, चन्द्रवन्द्यके पुत्र शिवराम और शिवरामके पुत्र प्रसिद्ध मथुरेश थे।

मथूरा (सं० स्त्री०) मथ-बाहुलकात् ऊरः टाप्। मथुरा।

मथौरा (हिं० पु०) एक प्रकारका भद्दा रंदा। इससे बढ़ई लकड़ीको खरादनेके पहिले छोल कर सीधा करते हैं।

मथौरी (हिं० स्त्री०) एक आभूषण। इसे स्त्रियां सिरमें पहनती हैं। यह अर्द्ध चन्द्राकार होता है जिसमें कई लटकन लगे रहते हैं। यह जंजीर वा धागेसे बांधा जाता है।

मथ्ण (सं० स्त्री०) आलोड़न।

मथ्र (सं० त्रि०) मथनशील।

मथ्य (सं० त्रि०) मथनीय, मथनयोग्य।

मद (सं० पु०) १ हस्तिगण्डस्थल, वह गंधयुक्त द्राव जो मतवाले हाथियोंकी कनपटियोंसे वहता है। २ हर्ष, आनन्द। ३ रेतः, वीर्य। ४ कस्तूरी। ५ उन्मादरोग। ६ गर्व, अहंकार। ७ मद्य। ८ मत्तता, पागलपन। ९ कल्याण-वस्तु। १० एक दानवका नाम। ११ कामदेव, मदन। १२ मतवालापन, नशा। (त्रि०) १३ मत्त। मैं एक महान् पुरुष और धनवान् हूं, मेरे जैसा कोई भी पृथ्वी पर नहीं है, इस प्रकार चित्तमें जो अभिमान होता है, उसे मद कहते हैं। अहङ्कारसे मदकी उत्पत्ति होती है।

मद (अ० स्त्री०) १ लम्बी लकीर जिसके नीचे लेखा लिखा जाता है, खाता। २ कार्य वा कार्यालयका विभाग, सरिश्ता। ३ शीर्षक, अधिकार। ४ ऊँची लहर, ज्वार।

मदक (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका मादक पदार्थ। यह अफीमके सतमें बारीक कतरा हुआ पान पकानेसे बनता है। पीनेवाले इसकी छोटी छोटी गोलियोंको चिलम पर रख कर तमाकूकी तरह पीते हैं।

मदकची (हिं० वि०) जो मादक पीता हो, मदक पीनेवाला।

मदकट (सं० पु०) मदं कटति प्रकटयतीति कट्-अच्। षण्ड, साँड़।

मदकद्रुम (सं० पु०) ताड़का पेड़।

मदकर (सं० पु०) १ धुस्तूर वृक्ष, धतूरेका पेड़। स्त्रियां ङीप्। २ धातकीवृक्ष। ३ सुरा, शराब। (त्रि०) ४ मत्तताजनक, जिससे मद उत्पन्न हो।

मदकरिन् (सं० पु०) मत्तहस्ती, पगला हाथी।

मदकल (सं० पु०) मदेन कलोऽव्यक्तमधुर ध्वनिर्यस्य। मत्तहस्ती। १ मत्त, मतवाला। २ अव्यक्त-प्रलापी। (त्रि०) ३ मदाव्यक्तवाची, बावला।

मदकसिरा—१ मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ४५१ वर्गमील है। यहांका दक्षिण भाग पर्वतमय है। पश्चिममें उर्वर समतल क्षेत्र है। जलकी प्रचुरताके कारण यहां धान बहुतायतसे उपजता है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० १३° ५६′ ३०″ उ० तथा देशा० ७७° १८′ ४०″ पू०के मध्य पड़ता है। पहले यहां विजयनगरराजके एक पलिगाके सामन्तकी राजधानी थी। नगरके उत्तर पर्वत पर परिखा और प्राचीर परिवेष्टित एक दुर्ग है। यहां सामन्तराज रहते थे। १७४१ ई०में मुरारीराव तथा १७६६ ई०में हैदरअलीने इस स्थान पर चढ़ाई की थी।

मदकारिन् (सं० त्रि०) मदं मत्ततां करोति कृ-णिनि। मत्तताजनक, जिससे मद उत्पन्न हो। जिससे बुद्धि नष्ट होती है उसीको मदकारी कहते हैं।

मदकी (हिं० वि०) मदक पीनेवाला, मदकची।

मदकृत (सं० त्रि०) मदं करोति कृ-क्विप् तुक् च मत्तता कारक, उन्मादजनक।

मदकृद्द्रुम (सं० पु०) तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

मदकाहल (सं० पु०) वृषभ, सांड़।

मदखूला (अ० स्त्री०) वह स्त्री जिसे कोई बिना विवाह किये ही रख ले वा घरमें डाल दे, रखेली।

मदगन्ध (सं० पु०) मदस्य दानवस्येव गन्धो यस्य। १ सप्तच्छद वृक्ष, छितवन। २ मद्य, शराब।

मदगन्धा (सं० स्त्री०) मदगन्ध-टाप्। १ मदिरा, शराब। २ अतसी, अलसी।

मदगमन (सं० पु०) महिष, भैंसा।

मदगल (हिं० स्त्री०) मत्त, मस्त।

मदघ्नी (सं० स्त्री०) मदं मत्ततां हन्तीति मद-हन-ढक ङीप्। पूतिका, पोय।

मदच्युत् (सं० त्रि०) गवहन्ता।

मदच्युत् (सं० त्रि०) मत्ततासे इधर उधर घूमना।

मदजल (सं० क्ली०) हस्ति दानवारि, मत्त हाथीके मस्तकका स्राव।

मदत्खान्—एक पठान-सरदार। इन्होंने सिन्धु-प्रदेशके हैदराबाद जिलेका प्राचीन बादिन-नगर ध्वंस किया था।

मदद (अ० स्त्री०) १ सहारा, सहायता। २ किसी कामके लिये नियुक्त मजदूर और राज आदि, साथ काम करवालोंका समूह।

मददखर्च (अ० स्त्री०) १ सहायतामें दिया जानेवाला धन। २ वह धन जो किसीको काम करनेके लिये अगाऊ दिया जाय, पेशगी।

मददगार (फा० त्रि०) सहायक, मदद पहुंचानेवाला।

मदद्विप (सं० पु०) मत्तहस्ती, पगला हाथी।

मदधार (सं० पु०) मदप्रधाना धारा यत्र। पर्वतभेद, महाभारतके अनुसार एक पर्वतका नाम।

मदन (सं० पु०) मदयतीति मद-णिच्-ल्यु। कामदेव।

इसकी उत्पत्तिका विवरण कालिकापुराणमें इस

प्रकार लिखा है,—लोकपितामह ब्रह्माने जिस समय दक्ष आदि प्रजापतियोंकी सृष्टि कर मरीचि आदि मानस पुत्रोंकी सृष्टि की, उस समय उनके मनसे एक परम रूपवती कामिनी आविर्भूत हुई। उसका नाम संध्या रखा गया। इसी सन्ध्याकी सायंकालमें अर्चना की जाती है।

इस वरवर्णिनीको देख कर ब्रह्मा, दक्ष प्रजापति और मरीचि आदि उनके मानस पुत्रगण नितान्त उत्सुक हो सोचने लगे, यह स्त्री सृष्टिके मध्य क्या करेगी तथा यह होगी ही किसकी? इसी समय ब्रह्माके मनसे काञ्चन-चूर्णवत् पीतवर्ण एक मनोहर चञ्चल पुरुष उत्पन्न हुए। उनका वक्षःस्थल पोवर, नासिका सुचारु, ऊरु, कटि और जङ्घा सुवृत्त, कुन्तल, नील और कुञ्चित, भ्रूयुगल परस्पर संलग्न तथा मुखमण्डल पूर्णचन्द्र सदृश था। वे कम्बुग्रीव, मीनकेतु और मकरवाहनयुक्त थे। पुष्पमय पञ्च शर और कुसुमकार्मुकसे शोभित हो कर वह कमनीय पुरुष उस समय अपने दोनों नयनोंको घुमाते थे। दक्ष आदि इन्हें देख कर बड़े उत्कण्ठित हुए।

उस पुरुषने ब्रह्माको प्रणाम कर कहा, 'ब्रह्मन्! मैं कौन काम करूंगा, जब मैं पुरुष हूं, तब कोई न कोई काम करना मुझे उचित है। अतएव आप मुझे किसी प्रशस्त और न्याय कर्ममें नियुक्त कीजिए तथा मेरे अनुरूप नाम, धाम और पत्नी निर्देश कर दीजिये।' ब्रह्माने कुछ समय सोच कर उनसे कहा, 'तुम अपनी इस मनोमोहनमूर्त्ति और पुष्पमय पञ्च शरसे स्त्रियोंको मोहित कर चिर-स्थायिनी सृष्टिका प्रवर्त्तक बनो। देव, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि सभी तुम्हारी शरण लेंगे। अन्य प्राणीकी बात तो दूर रहे, मैं, विष्णु और महेश्वर ये त्रिदेव भी तुम्हारे वशवर्त्ती होंगे। तुम स्वयं प्रच्छन्नरूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश कर सबोंको सुख देते हुए सनातन सृष्टिका प्रवर्त्तक बनो। सभी प्राणियोंका मन तुम्हारे पुष्पबाणका लक्ष्य होगा। तुम उन्हें सर्वदा मत्तता और आनन्द देते रहोगे। यही मैंने तुम्हारी वृत्ति निर्देश कर दी।

हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम हम लोगोंके तथा विधाताके चित्तको मथन कर उत्पन्न हुए हो, इस कारण तुम जगतमें मन्मथ नामसे प्रसिद्ध होगे। जगत्‌में तुम असाधारण कामरूपी हो, तुम्हारे सदृश कोई भी नहीं है, इस कारण तुम्हारा नाम काम, लोगोंके मनको मथन करोगे, इस कारण मदन, महादेवका दर्प चूर्ण करोगे, इस कारण दपक और कन्दर्प नामसे प्रसिद्ध होगे। तुम्हारे पञ्चशरमें जैसा पराक्रम है, वैष्णवास्त्र और रौद्रास्त्र आदिमें भी वैसा विक्रम नहीं है। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल और सनातन ब्रह्मलोक सभी स्थानोंमें तुम विराजोगे। क्योंकि तुम सर्वव्यापी हो, अधिक और क्या कहूं, तुम्हारे समान कोई भी नहीं है। ये प्रजापति दक्ष तुम्हें अभिलषिता पत्नी प्रदान करेंगे।'

अनन्तर मदन रमणी-भ्रू-सदृश कुसुमनिर्मित शरासन तथा हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण और मारण नामसे प्रसिद्ध मुनियोंके भी ज्ञाननाशक पुष्पमय पञ्चशरको ग्रहण कर वहीं पर रहने लगे। बादमें वे सोचने लगे कि, ब्रह्माने जो मेरी वृत्ति निर्देश कर दी उसे इन मुनियोंके सामने ब्रह्माके ही ऊपर नियोग कर परीक्षा करनी चाहिये। ऐसा सोचते हुए मदनने सन्ध्याके सामने ब्रह्माके ऊपर ही शर फेंका। इससे ब्रह्माका मन ठिकाने न रहा। वे काममोहित हो टक लगा कर सन्ध्याको देखने लगे। इस समय उनके शरीरसे उनचास सात्त्विक भावोंका तथा कामशर-विद्धा संध्यासे विवोकादि सभी हाव और चौंसठ कलाओंका आविर्भाव हुआ।

ब्रह्माका इस प्रकार कामभाव देख कर महादेवने तिरस्कार करते हुए उनसे कहा, "ब्रह्मन्! अपनी कन्याको देख कर क्या तुम्हें कामभाव उपस्थित हुआ? तुम वेदशास्त्रोंके नियामक हो, तुम्हारे लिये यह वेदविगर्हित कार्य नितान्त अयोग्य है। पुत्रवधू और कन्या मातृतुल्य है। इनके प्रति कामासक्त होना घोर पापका कार्य है, ऐसा वेदका सिद्धान्त है। तुम सामान्य कामके प्रभावसे इस प्रकार क्यों विस्मृत हो गये?" शिवजीकी बात सुन कर ब्रह्माको बड़ी लज्जा आई और वे मदनके प्रति क्रोध करते हुए बोले, 'जब तुमने मुझे ऐसा लज्जित बनाया, तब तुम्हें श्राप देता हूं, कि तुम इस अपराधसे महादेवके नयनानल द्वारा दग्ध हो जावोगे।'

इस निदारुण अभिशापको सुन कर मदनने ब्रह्मासे

कहा, 'ब्रह्मन् ! आपने जो कहा था, कि मैं, विष्णु और महेश्वर तीनों ही तुम्हारे वशवर्त्ती हैं, सो सिर्फ उसीकी परीक्षा करनेके लिये मैंने आप पर शरक्षेप किया था, मैं निरपराध हूं, अतएव मेरे इस शापको मोचन कीजिए ।' तब ब्रह्माने स्थिर हो कर उससे कहा, 'तुम्हारा शाप जिस प्रकार मोचन होगा, उसका उपदेश देता हूं, सुनो ! तुम महादेवके नयनानलसे भस्मीभूत तो जरूर होगे, पर उन्हींकी कृपासे फिर शरीर पा जाओगे । महादेव जब फिर विवाह करेंगे, तब वे ही स्वयं तुम्हें जिला देंगे ।' इतना कह कर ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये ।

पीछे दक्षने मदनकी पत्नी निर्देश कर उससे कहा, 'मदन ! यह मेरी देहजात कन्या है, रति इसका नाम है । तुम इससे विवाह कर सुखसे रहो ।'

एक दिन मदन देवताओंके उसकानेसे महादेवका ध्यानभङ्ग करने गये और वहीं पर उनके नयनानलसे भस्मीभूत हो गये । महादेवके साथ जब पार्वतीका विवाह हुआ, तब मदनने पुनः शापविमुक्त हो शरीर धारण किया । (कालिकापु० १७ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें श्रीकृष्ण जन्मखण्डके ३६वें अध्यायमें मदनका उत्पत्ति-विवरण लिखा है । विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर नहीं दिया गया ।

२ योगाचार्यरूप शिवका अवतारविशेष । मदयति भक्तानां मन इति मद-ल्यु, मनसि आनन्दजनकत्वादस्य तथात्वं । ३ महादेव । (भारत १३।१७।६६) ४ मत्तता, वरारोहा कामिनियोंका भावविशेष । ५ वसन्त । ६ धुस्तूर, धतूरा । ७ मैनफल नामक वृक्ष और उसका फल । पर्याय—पिचुक, मुचुकुन्द, कण्टकी, पिण्डीतक, शल्य, कैटर्य, पिण्ड, धाराफल, तगर, करहाट, श्वसन, मरुवक । गुण—वमिकारक, तिक्त,उष्णवीर्य, लेखन, लघु, रूक्ष, कुष्ठ, कफ, आनाह, शोफ, गुल्म और व्रणनाशक । ८ भ्रमर, भौंरा । ६ माष, उड़द । १० खदिर वृक्ष, खैरका पेड़ । ११ वकुल वृक्ष, मौलसिरि । १२ कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका आलिङ्गन । इसमें नायक अपना एक हाथ नायिकाके गलेमें डाल कर और दूसरा मध्यप्रदेशमें लगा कर उसका आलिङ्गन करता है । १३ मोम । १४ अखरोटका वृक्ष । १५ सारिका, मैना । १६ ज्योतिषशास्त्रके अनुसार जन्मसे सप्तम गृहका नाम । १७ एक प्रकारका गीत । १८ प्रेम । १६ रूपमालछन्दका दूसरा नाम । २० छप्पयके एक भेदका नाम । २१ खञ्जन पक्षी ।

मदन—१ एक प्राचीन कवि । भोजप्रवन्धमें इनका उल्लेख है । २ वालसरस्वती नामक ग्रंथके रचयिता । उक्त ग्रंथके द्वारा वे वालसरस्वती नामसे परिचित हुए । अर्जुनवर्मदेवने अमरुशतक ग्रन्थमें इनका नामोल्लेख किया है । ३ श्रीकृष्ण-लीला-काव्यके प्रणेता ।

मदन आचार्य—एक वैद्यक ग्रन्थकार ।

मदनक (सं० पु०) मदयतीति मद-णिच् ल्यु, स्वार्थे क । १ दमनक वृक्ष, दौना । २ सिक्थ, मोम । ३ खैर । ४ धतूरा । ५ मदनवृक्ष, मैनफल । ६ मौलसिरी ।

मदनकण्टक (सं० पु०) मदननिमित्तः कण्टक इव । सात्त्विक रोमाञ्च ।

मदनकाकुरव (सं० पु०) मदनेन हेतुना काकुः कामजन्यो विकृतो रवः अस्फुटध्वनिर्यस्य । पारावत, कबूतर ।

मदनकीर्त्ति—एक प्राचीन कवि । राजशेखरकृत प्रवन्धचिन्तामणि ग्रन्थमें इनका नामोल्लेख है ।

मदनगञ्ज—ढाका जिलेके मध्य एक नगर । यह लाखसिया (लाक्षा) नदीके किनारे नारायणगंजके उस पारमें अवस्थित है । यहां पाट और स्थानीय नाना द्रव्योंका कारोबार फैला हुआ है । नारायणगंज देखो ।

मदनगृह (सं० क्ली०) मदनस्य गृहं । १ स्त्रीचिह्न, भग । २ ज्योतिषके अनुसार जन्मकुण्डलीमें सप्तम स्थान । ३ मदन हर छन्दका दूसरा नाम ।

मदनगोपाल (सं० पु०) मदनश्चासौ गोपालश्चेति । भक्तचित्तोन्मादकत्वादस्य तथात्वं । श्रीकृष्ण ।

मदनगोपाल—एक प्रसिद्ध योगी । इनका दूसरा नाम गोपालपुरि भी था । ये वैकुण्ठपुरीके गुरु थे तथा इन्होंने द्वादशमहावाक्य-विवरण लिखा ।

मदनचतुर्दशी (सं० स्त्री०) मदनोत्सवात्मिका चतुर्दशी । चैत्रमासकी शुक्ला चतुर्दशी । इस दिन मदनदेवकी पूजा करनी होती है । पूजा करनेवाला परम गति पाता है तथा पुत्रपौत्र और सुखकी समृद्धि होती है ।

रघुनन्दनने इसे ही 'मदनमहोत्सव' बतलाया है। किन्तु भविष्योत्तरपुराणमें 'मदनमहोत्सव'-विवरण पढ़नेसे ऐसा नहीं जाना जाता। भविष्यो-तरमें मदन-द्वादशी, मदनचतुर्दशी ये सब पृथक् व्रत निर्दिष्ट हुए हैं।

मदनमहोत्सव देखो।

मदनचोर (सं० पु०) एक छोटी चिड़िया।

मदनताल (सं० पु०) एक प्रकारका ताल। इसमें पहले दो द्रुत और अंतमें दीर्घ माता होती है।

मदनत्रयोदशी (सं० स्त्री०) मदनपूजायां त्रयोदशी। चैत्रमासकी शुक्ला त्रयोदशी। इस दिन मदनव्रत करना होता है। इस त्रयोदशी तिथिमें यथाविधि मदनकी पूजा करनेसे विपद् नष्ट होती है। * मदनका ध्यान निम्नलिखित मंत्रसे करना होता है। यथा—

"चापेषुधृक् कामदेवो रूपवान् विश्वमोहनः।"

स्तुति यथा—

"पुष्पधन्वन्! नमस्तेऽस्तु नमस्ते मीनकेतन।
मुनीनां लोकपालानां धैर्यच्युतिकृते नमः॥
माधवात्मज कन्दर्प सम्बरारे रतिप्रिय।
नमस्तुभ्यं जिताशेषभुवनाय मनोभुवे॥
आधयो मम नश्यन्तु व्याधयश्च शरीरजाः।
सम्पाद्यतामभीष्टं मे सम्पदः सन्तु मे स्थिराः॥
नमो माराय कामाय देवदेवस्य मूर्त्तये।
ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां मनःक्षोभकराय च॥"

(तिथितत्त्व)

मदनदमन (सं० पु०) शिव, महादेव।

मदनदहन (सं० पु०) मदनभस्मकारक शिव।

मदनदिवस (सं० पु०) मदनोत्सवका दिन।

मदनदेव—दाक्षिणात्यके गंजाम जिलेके किमेड़ी सामन्त-राज्यका एक राजा।

मदनदोला (सं० स्त्री०) इन्द्रतालके छः भेदोंमेंसे एक।

मदनद्वादशी (सं० स्त्री०) मदनपूजाविषयिणी द्वादशी, चैत्रमासकी शुक्लाद्वादशी। इस तिथिमें मदनव्रत करना चाहिये।

"श्रोतुमिच्छामहे सूत! मदनद्वादशीव्रतम्।
सुतोनेकोनपञ्चाशत् येन लेभे दितिः पुनः॥"

(मत्स्यपु० ७ अ०)

वशिष्ठने दितिको इस व्रतका उपदेश दिया था जिससे दितिके उनचास पुत्र उत्पन्न हुए। इसी तरह क्रमशः यह व्रत प्रचार हो गया। जो विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं वे निखिलपापसे मुक्त होते तथा इह-लोकमें अनेक प्रकारके सौभाग्य लाभ कर अन्तमें विष्णु-लोक पाते हैं।

मत्स्यपुराणके ७वें अध्यायमें इस व्रतका विशेष विवरण लिखा है। स्थानाभावसे अधिक नहीं दिया गया।

मदननालिका (सं० स्त्री०) भ्रष्टा-स्त्री, दुश्चरित्रास्त्री।

मदननृप (सं० पु०) मदनपाल, मदनराज।

मदनपक्षिन् (सं० पु०) खञ्जनखग, खंजनपक्षी।

मदनपञ्चानन—प्रक्रियार्णव नामक व्याकरणके प्रणेता।

मदनपति (सं० पु०) १ इन्द्र। २ विष्णु।

मदनपल्ली—१ मद्रासप्रदेशके कड़ापा जिलेका एक तालुक। भू-परिमाण ५६३ वर्गमील है। इस तालुकमें तमाम पर्वत है केवल दक्षिण-पश्चिमका महिसुर-अधित्यका-संलग्न स्थान कुछ कुछ उपजाऊ है। १८७६से ले कर १८७८ ई० तकके दुर्भिक्षसे यहांके अधिवासियोंको बहुत कष्ट भुगतना पड़ा था।

२ उक्त कड़ापा जिलेका एक नगर। यह समुद्रपृष्ठसे २॥ हजार फुट ऊंचा एक मनोरम स्थान है और अक्षा० १३° ३३' ३७" उ० तथा देशा० ७८° ३२' ४५" पू०-के मध्य अवस्थित है। मदनपल्लिगिड्डु, मदनपल्ली और वटलनुत्तिगिड्डु नामको तीन छोटी छोटी पल्लियोंसे यह नगर गठित हुआ है। यहाँके वसनिकोण्डशैल पर एक पुराना देवमन्दिर देखा जाता है।

मदनपाठक (सं० पु०) मदनं तदुद्दीपकं पठतीति पठ-ण्वुल्, ८-रेण कामोद्दीपनात्तथात्वं। कोकिल, कोयल।

मदनपाल (सं० पु०) १ मदनराज। २ रतिपति मदन।

* "चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां मदनं दमनात्मकम्।
कृत्वा संपूज्य विधिवद् बीजवद् व्यजने न तु॥
तत्र सन्धुक्षितः कामः पुत्रपौत्र विवर्द्धनः।
कामदेवस्त्रयोदश्यां पूजनीयो यथाविधि।
रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोकमणिभूषितः॥" (तिथितत्त्व)

आच्यः युक्तः। १ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। (त्रि०) २ मदयुक्त।

मदाढ्या (सं० स्त्री०) मदेन आढ्या। लोहितझिण्टी, लाल कटसरैया।

मदातङ्क (सं० पु०) मदजनितः आतङ्कः रोगः। मदात्यय रोग। मदात्यय देखो।

मदात्यय (सं० पु०) मदेन अत्ययो नाशोन्मुखता अत्र। मद्यपानजनितरोग, एक प्रकारका रोग जो शराब पीनेसे होता है। पर्याय—मदातङ्क, पानात्यय, मदव्याधि, मद। (राजनि०)

इस रोगका निदान—विषमें जिस प्रकार सन्निपात-प्रकोपणादि गुण हैं, मद्यमें भी वही सब गुण पाये जाते हैं। किन्तु विषमें वे सब गुण अधिक मात्रामें रहते हैं, इस कारण अनियमसे, अधिक मात्रामें वा अहितजनक द्रव्योंके साथ कुसमयमें मद्यपान करनेसे यह मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। अवैध मद्यपान करनेसे नाना प्रकारके विकार उपस्थित होते हैं। आहारीय द्रव्योंका उल्लङ्घन कर अनवरत मद्यपान करनेसे अत्यन्त क्लेशकर मदात्ययादिरोग उत्पन्न होता है तथा उससे शरीर विनष्ट हो जाता है।

इस रोगकी उत्पत्तिका दूसरा कारण—क्रोधयुक्त, भीत, पिपासार्त्त, शोकाभिभूत, क्षुधित, व्यायामकारी, भारवाही और पर्यटनप्रयुक्त, क्षीण, मलमूत्रादिका वेगरोध-कारी और अभिघातादि द्वारा आहत व्यक्ति यदि मद्यपान करे, तो उसे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। अत्यंत जलपान करने अथवा रूखी वस्तु खानेसे पेट अफरने लगता है। इससे खाई वस्तु नहीं पचती और शरीर दुर्बल हो जाता है। ऐसी अवस्थामें मद्यपान करनेसे मदात्ययरोग उत्पन्न होता है।

इस रोगका सामान्य लक्षण—अत्यन्त शारीरिक क्लेश, मोह, हृदयमें वेदना, अरुचि, सर्वदा पिपासा, ज्वर, कभी शीत, कभी उष्ण, शिरःपीड़ा, पार्श्व और त्रिकस्थानमें वेदना, अस्थिसंधिमें वेदना, अतिशय जृम्भण, स्फूरण, कम्पन, श्रान्तिबोध, हृदयका अवरोध, कास, हिक्का, श्वास, निद्राक्षय, शरीरकम्प, कर्णरोग, नेत्र-रोग, मुखरोग, वातजवमि, पित्तजमलभेद, कफज वमनो-द्वेग, भ्रम, प्रलाप और असाधुताका लक्षण दिखाई देता है। रोगी चित्तभ्रंश हो तृण, भस्म, लता, पत्र और धूलिपूर्ण वा पक्षिगण कर्त्तृक आक्रान्त बोध करता है, तथा व्याकुलताके साथ अलीक स्वप्न देखता है।

यह मदात्यय रोग वातज, पित्तज, श्लेमज और त्रिदोषज है। वातज मदात्ययका निदान है—स्त्रीप्रसङ्ग, शोक, भय, भारवहन और पथपर्यटन द्वारा देहक्लेश। रूखी वस्तु वा अल्प और परिमित भोजन करनेवाला व्यक्ति यदि रूखी वा परिणत मद्य रातको जग कर अधिक मात्रामें सेवन करे, तो उसे शीघ्र ही यह वात-जन्य मदात्ययरोग होता है। इस वातिक मदात्ययरोगमें हिक्का, श्वास, शिर घूमना, पार्श्वशूल, अनिद्रा तथा अत्यन्त प्रलाप उपस्थित होता है।

पित्तज मदात्ययका निदान है—अत्यन्त अम्ल, उष्ण और तीक्ष्ण द्रव्यका भोजन। क्रोधान्वित व्यक्ति यदि तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्य अधिक मात्रामें सेवन करे, तो भी यह तीव्रतर पैत्तिक मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें पिपासा, दाह, ज्वर, घर्मोद्गम, मोह, अतीसार, विभ्रम और शरीर हरिद्वर्णका हो जाता है।

श्लैष्मिक मदात्ययका निदान—जो व्यक्तिकिसी प्रकारका परिश्रम नहीं करता अथच दिनको सोना, बेकाम बैठना बहुत पसन्द करता है तथा मधुर, स्निग्ध और गुरु द्रव्य खाता है, वह यदि अधिक मात्रामें मद्यपान करे, तो उसे शीघ्र ही श्लैष्मिक-मदात्ययरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें वमि, अरुचि, हृल्लास और तन्द्रा होती और ऐसा मालूम होता है मानो शरीर आर्द्रवस्त्र-से अच्छादित हो।

त्रैदोषिक मदात्ययरोगमें उक्त सभी प्रकारके लक्षण दिखाई देते हैं तथा इसकी उत्पत्ति ऊपर कहे गये कारणोंसे होती है।

यह मदात्ययरोग पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रमके भेदसे कई प्रकारका है। कफकी अधिकता, देहकी गुरुता, मुखकी विरसता, मलमूत्ररोध, तंद्रा, अरुचि, पिपासा, शरःपीड़ा और गांठोंमें सूई चुभनेसी वेदना होनेसे परमद नामक मदात्यय जानना चाहिये। पानाजीर्णरोगमें उदराध्मान, उद्गार और दाह उपस्थित

होता है। पैत्तिक मदात्यय जिन सब कारणोंसे उत्पन्न होता है, यह पानाजीर्णरोग भी उन्हीं सब कारणोंसे हुआ करता है। पानविभ्रमरोगमें हृदय और शरीरमें वेदना, कफस्राव, कण्ठसे धूमवत् निर्गम, मूर्च्छा, वमि, मत्तता, शिरःपीड़ा और मुखका कफसे लिप्तप्राय मालूम होना तथा नाना प्रकारके मैरेय, सुरा, पिष्टक-लड्डुकादि सुराविकृति और अन्नविकृतिसे विद्वेष उत्पन्न होता है।

असाध्य मदात्ययरोगका लक्षण—जिस मदात्यय-रोगीके होंठ लम्बे हो कर नीचेकी ओर लटक गये हों, शरीरका वहिर्भाग अत्यन्त शीतल हो गया हो, भीतरसे जलन देती हो, मुख तैलाक्त, जिह्वा और दन्त कृष्ण वा नीलवर्ण हो गये हों, वैद्यको ऐसे रोगीका परित्याग करना चाहिये। हिक्का, ज्वर, कम्प, पार्श्वशूल, कास और भ्रमपरिपीड़ित पानाहत रोगीका भी परित्याग करना उचित है।

इस रोगकी चिकित्सा—जिस प्रकार अग्निदग्ध स्थानमें अग्नि द्वारा स्वेद देना हितकर है, उसी प्रकार मद्य पीनेसे उत्पन्न रोगमें मद्यपान बहुत लाभदायक वतलाया गया है। अनियम वा अतिमात्रामें मद्यपान द्वारा जो रोग उत्पन्न होता है, उसे रोकनेके लिये उपयुक्त अथच समपरिमाणमें मद्यपान करे।

खट्टा नीबू, थैकल, वेर, अनारके रस और घृतको एकत्र कर खूब जोरसे मसले, पीछे उसमें अजवायन, हवूषा, जीरा और सोंठका चूर्ण तथा सैंधव यथासम्भव डाल कर चटनी वनावे। अनन्तर उसके साथ मद्यपान करनेसे वहुत पुराना वात-पैत्तिक मदात्ययरोग दूर होता है। मद्य ४ पल, सौवर्चल २ माशा, त्रिकटुका चूर्ण ४ माशा और जल २ कर्ष एकत्र मिला कर पिलानेसे वातिक पानात्यय प्रशमित होता है। चई, सौवर्चल, हिंगु, विजौरा नीबूका छिलका, सोंठ और अजवायनका चूर्ण डाल कर मद्यपान करनेसे पानात्यय रोग आरोग्य होता है। लाव, तीतर और मोर ये सब पक्षी, मृग, मत्स्य और आनूप मांसका रस अन्नके साथ मुखप्रिय स्निग्ध उष्ण लवण अम्लद्रव्य तथा गेहूंके वने हुए स्निग्ध द्रव्यके साथ मद्यपान करनेसे वातिक मदात्यय नष्ट होता है। यौवनमदोन्मत्ता कामिनियोंका गाढ़आलिङ्गन, सुखजनक उष्णशय्या, उष्ण आच्छादन आदिसे भी प्रबल वातिक मदात्यय दूर होता है। पैत्तिक मदात्यय रोगमें सब प्रकारकी शीतल क्रिया हितकर है तथा चीनी और मधु संयुक्त अर्द्ध जलमिश्रित मद्यसेवन उचित है। खजूर, दाख, फालसा और अनारके रस द्वारा शीतल मद्य अथवा चीनी मिश्रित माध्वीकमद्य अथवा अन्य कोई मद्य अधिक परिमाणमें जल मिला कर पीनेसे पैत्तिक मदात्यय अतिशीघ्र दूर हो जाता है।

शशक, कपिञ्जल, हिरण, असितपुच्छ लाव और वकरेके मांसका रस, अम्लरसयुक्त द्रव्य, परवलके पत्तोंका जूस, उड़द और मूंगका जूस तथा अनार और आंवलेके साथ धान वा साठी धानका चावल, अथवा दाख, आंवला, खजूर और फालसेका जूस और मांसरस नाना प्रकारका तर्पण प्रयोग, शीतल अन्न, पानीय, शीतल स्थानमें सोना और वैठना, शीतल वायु सेवन, शीतलजल संस्पर्शन, पट्टवस्त्र, पद्म, उत्पल, मणि, मुक्ता और चन्दनसिक्त शीतल जलस्पर्श तथा चन्द्रकिरणसेवन पैत्तिक मदात्यय रोगमें विशेष उपकारी है।

श्लैष्मिक मदात्यय रोगमें अजवायन और त्रिकटुके चूर्णको मिला कर रुक्षतर्पण तथा जौ और गेहूं जातिके अन्नको रुक्ष जूसके साथ भोजन करावे; अथवा अत्यधिक कटुद्रव्य-चूर्णके साथ जौकी वनी हुई चीज खानेको दे। वकरेके मांसका रस अथवा जंगली जानवरके मांसका रस, रुक्ष अथच अल्प अम्लमिश्रित कर पान करनेसे श्लैष्मिक मदात्यय रोग प्रशमित होता है। मट्टीके वरतनमें कटु, अम्ल और लवणमिश्रित नीरस मांस भून कर खिलानेसे भी श्लैष्मिक मदात्यय नष्ट होता है। इस रोगमें रोगीको वमनकारक द्रव्यसंयुक्त मद्यपान करा कर वमन और रोगीके वलानुसार उपवास करावे।

वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक मदात्ययरोगमें जो सब क्रियाएं वतलाई गई हैं, सान्निपातिक मदात्ययरोग-में भी उन्हें मिश्रितभावमें प्रयोग करे।

कोंहड़के रसको गुड़के साथ सेवन करनेसे कोद्रव जन्य नशा अति शीघ्र दूर होती है। सुपारी खानेसे यदि नशा आ जाय, तो उसी समय पेट भर पानी

पीले। इससे वमि, मूर्च्छा और अतीसार संयुक्त मत्तता बहु जल्द दूर हो जाती है। मद्यपान करके यदि उसी समय घृतसंयुक्त चीनी चाटे, तो मत्तता जरा भी नहीं आती।

(भावप्र० मदात्ययरोगाधिका०)

मदान्ध (सं० त्रि०) मदेन अंधः। मदमत्त, नशेमें अंधा।

मदामद (सं० त्रि०) सदा मदोन्मत्त, हमेशा नशेमें चूर।

मदाम्नात (सं० पु०) मदाय मत्ततोद्रेकाय आम्नायते वाद्यते स्मेति आ-म्ना-कर्मणि क्त। गजढक्का, वह बड़ा ढोल जो हाथीकी पीठ पर बजाया जाता है।

मदाम्बर (सं० पु०) मदो दानवारिअम्बरमिवास्यच्छादकत्वात्। मत्त हस्ती, पागल हाथी।

मदार (सं० पु०) माद्यति मत्तो भवतीति मठ (अञ्जि-मदि मन्दिभ्य आरन्। उण् ३।१३४) १ हस्ती, हाथी। २ धूर्त्त, चालबाज। ३ शूकर, सूअर। ४ कामुक, अशोक। ५ गन्धभेद, एक प्रकारका गंध द्रव्य। ६ मस्तहस्ती, पागल हाथी। ७ नृपभेद, एक राजाका नाम।

मदार (हिं० पु०) १ अकवन, आक। २ मदारी देखो।

मदारगदा (हिं० पु०) धूपमें सुखाया हुआ मदारका दूध। यह प्रायः औषध आदिमें डाला जाता है।

मदारिया—मदारी देखो।

मदारी (अ० पु०) युक्तप्रदेशवासी मुसलमान फकीर-सम्प्रदायविशेष। ये लोग शाह मदारके अनुयायी हैं। मकनपुरकी शाह मदार-मसजिदमें जो विवरण लिखा है, उससे मालूम होता है, कि शाह मदारका जन्म १०५० ई०में एक यहूदीके घर हुआ था और यह स्वयं इस्लाम धर्ममें दीक्षित हुए थे। ये फरुखाबादमें रहते थे और सुलतान शरकीके समय कानपुर आये थे। उस समय कानपुरमें 'मकनदेव' नामक जिन्न रहता था। शाह मदार उस जिन्नको वहांसे निकाल कर वहां रहने लगे। इसीसे उस स्थानका नाम मकनपुर पड़ा। उनके बहुतसे शिष्य प्रशिष्य थे। ८३८ हिजरी (१४३३ ई०) में १७वीं जमादिउल अव्वलको उनकी मृत्यु हुई। सुलतान इब्राहिम द्वारा निर्मित उनकी एक समाधि मकनपुरमें विद्यमान है।

ये लोग हिंदूयोगी और संन्यासियोंकी तरह शरीरमें भस्म लगाते हैं, गले और मस्तकमें लौहशृङ्खल बांध कर तथा सिर पर टोपी और काला निशान धारण कर घूमने निकलते हैं। ये लोग कभी भी नमाज नहीं पढ़ते और न किसी त्योहारमें उपवास ही रहते हैं। प्रायः सभी भंगके नशेमें चूर रहते हैं।

ऐतिहासिक आलोचनासे मालूम होता है, कि शाह मदार जौनपुरराज इब्राहिमशाह शरकीके शासनकालमें मकनपुर आ कर बस गये थे। स्थानीय प्रवाद है, कि ये चौहानराज पृथ्वीराजके समसामयिक थे और ३८३ वर्ष तक जीवित थे। मृत्युकालमें श्वास रोक कर योगावलम्बन करनेसे उनकी मृत्यु नहीं हुई थी। दम रोक कर प्राणरक्षा की थी, इस कारण मृत्युके बाद 'दममदार' नामसे एक उत्सव मनाया जाता है। आज भी मुसलमानोंमें 'दममदारपर्व' देखा जाता है। ये लोग इन्हें जिन्दाशाह कहते हैं और अब तक जीवित मानते हैं। रमणी जातिके ऊपर ये बड़े विरक्त रहते थे। प्रवाद है, कि रमणियोंके उनके समाधिक्षेत्रमें पहुंचते ही वे हृदयमें दाह और वेदना अनुभव करती हैं।

कानून-इ-इस्लाम नामक ग्रन्थमें 'धम्माल कुदना' नामक इन लोगोंका एक उत्सव देखा जाता है। इस दिन ये लोग एक अग्निकुण्ड बना कर शाह मदार फकीरोंको इकट्ठे करते हैं। 'फतिहा' समाप्त करनेके बाद वे सब फकीर अग्निकुण्डमें चन्दनकाष्ठ फेंकते हैं। पीछे उनमें जो प्रधान फकीर रहता है वह सबसे पहले 'दम-मदार' शब्दका उच्चारण करते हुए अग्निमें कूद पड़ता है। बादमें और सभी फकीर उसके पीछे पीछे उक्त मन्त्र पढ़ते हुए चलते हैं। फकीरोंका अग्निविचरण शेष हो जाने पर वे लोग दूध और चन्दनसे उनके पैर धोते हैं। पीछे उन लोगोंके गलेमें माला डाल कर शरबत पान और भोजनादि कराया जाता है।

मदारियोंके मध्य दो श्रेणी हैं, तकादार और मदेङ्गगण। तकादार मदारी विवाहादि करके घरमें रहते हैं और मदेङ्गगण संन्यासीकी तरह इधर उधर विचरण कर दिन बिताते हैं।

२ वाजीगर, तमाशा करनेवाला। ३ बन्दर आदि नचानेवाला।

मदार्म्मद (सं० पु०) मदार्म्मं मदजन्यं अर्म्मं नेत्ररोग-विशेष ददातीति दा-क। फलकमत्स्य, एक प्रकारकी चीतल नामकी मछली।

मदालस (सं० त्रि०) मदेन अलसः। मत्तता द्वारा आलसी।

मदालसा (सं० स्त्री०) गन्धर्वराज विश्वकेतुकी कन्या। इसका विषय मार्कण्डेयपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

राजा शत्रुजित्‌के पुत्र ऋतध्वज गालवकी तपोरक्षाके लिये उनके आश्रममें गये। एक दिन गालव सन्ध्या-वन्दनादि कर रहे थे, इसी समय एक दानव शूकरका रूप धारण कर वहां पहुंचा। उसे देख कर सभी शिष्य चिल्ला उठे। राजकुमार ऋतध्वजने शरासन ले कर सूअरका पीछा किया। तीर लगते ही वह बहुत तेजीसे भागा। ऋतध्वजने भी गालवके दिये हुए कुवलय नामक घोड़े पर सवार हो उसका साथ नहीं छोड़ा। सूअर बड़े वेगसे सहस्र योजन रास्ता तै कर आखिर एक बिलमें घुस गया। साथ साथ राजकुमार भी भीतर गये। बिलमें गहरा अन्धकार था, वह सूअर कहां गायब हो गया, राजकुमारको कुछ भी मालूम नहीं। पीछे वे पातालमें घुसे, पर वहां भी सूअर न मिला।

पातालमें उन्होंने इन्द्रपुरीकी तरह सैकड़ों प्रासाद-परिवेष्टित एक पुरको देखा। अनन्तर इधर उधर घूमते हुए उनकी दृष्टि एक क्षीणाङ्गी ललना पर पड़ी। राज-कुमारने उससे पूछा, 'तुम कहां जा रही हो और क्यों?' ललनाने कुछ भी जवाब नहीं दिया और एक प्रासाद पर चढ़ गई। कुमारने भी उसी जगह घोड़ेको बांध कर उसका पीछा किया। प्रासादमें घुस कर कुमारने देखा कि परमसुन्दरी एक कुमारी कामसहचारिणी रति-की तरह सुविस्तीर्ण पलंग पर बैठी हुई है। कामिनी राजकुमारको देख कर ज्यों ही पलंग परसे उठ कर भूमि पर बैठी त्यों ही वह मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

राजकुमार ऋतुध्वज भी 'मत डरो' कह कर उसे आश्वासन देने लगे। जिस रमणीको इन्होंने पहले देखा था, वह अभी पंखा ले कर व्याकुल चित्तसे उस सुन्दरी-को हवा देने लगी। पीछे जब वह होशमें आई, तब राजकुमारने उसका परिचय पूछा। इस पर उनकी सखी ने कहा, 'देवलोकमें विश्वावसु नामक जो विख्यात गन्धर्वराज हैं, यह उन्हींकी कन्या है। मदालसा इनका नाम है। मैं इनकी सखी हूं। यह एक दिन उद्यानमें घूम रही थीं, इसी समय वज्रकेतु दानवका पुत्र दुरात्मा पातालकेतु तमोमयीमाया फैला कर इन्हें यहां हर लाया है और आगामी त्रयोदशीके दिन वह इनसे विवाह करेगा, ऐसा स्थिर हो चुका है। इसी कारण ये आत्महत्या करने-को उद्यत हैं, किन्तु सुरभीने मना किया है, और कहा है, 'दुरात्मा कभी भी तुम्हें नहीं पा सकता। दानवके मर्त्यलोकमें जाने पर जो शरप्रहारसे उसे विद्ध करेगा, वही तुम्हारा स्वामी होगा।' ये मेरी सखी हैं कुण्डला मेरा नाम है, मैं विन्ध्यावनकी कन्या और पुष्करमालीकी पत्नी हूं। शुम्भने मेरे स्वामीको मार डाला, तभीसे मैं व्रतधारण करती हुई यहां पर हूं। यह तो हुआ मेरे सखीका परिचय, अब आप अपना परिचय दे कर हम लोगोंका संदेह दूर कीजिये।' अनन्तर कुमारने कहा, 'मैं राजा शत्रुजितका पुत्र हूं, नाम मेरा ऋतुध्वज है। पिताने मुझे मुनियोंकी रक्षा करने-के लिये गालवके आश्रममें भेजा था। वहां आ कर मैं मुनियोंके रक्षाकार्यमें नियुक्त था, कि एक व्यक्ति शूकरका रूप धारण कर विघ्न डालनेके लिये वहां उपस्थित हुआ। अर्द्ध चन्द्राकृति शर-प्रहारसे मैंने उसे घायल किया और ज्यों ही वह भागा, त्यों ही मैंने घोड़े पर सवार हो उसका पीछा किया। अनन्तर एक बिलमें घुस कर मैं अकेला अन्धकारमें भटकने लगा। तदनन्तर रोशनी मिलने पर मैंने अपनेको देख पाया और वह दुष्ट दानव कहां चला गया मालूम नहीं। बस, यही मेरा यथार्थ परिचय है।'

अब कुण्डलाने अतिशय हर्षान्वित हो कुमारसे कहा, 'मेरी सखी आपको देख कर आसक्त हो गई हैं और आपने सचमुच उस दानवको विद्ध किया है, अतएव आप इस रमणी-ललामभूता-कामिनीको ग्रहण कीजिये।' इस पर राजकुमार बोले, 'मैं पराधीन हूं, बिना पिताके आदेशके किस प्रकार इनसे विवाह कर सकता।'

कुण्डलाने पुनः कहा, 'आप ऐसा न कहें, क्योंकि ये देव कन्या हैं, इनसे विवाह करनेमें कोई दोष नहीं होगा।' राजकुमारके सहमत होने पर उनके कुलगुरु तुम्बुरु वहां आये और वैवाहिक विधि यथारीति सम्पन्न की।

मदालसाको व्याह कर ऋतुध्वज आ रहे थे, कि मार्गमें दैत्योंने उन पर आक्रमण किया। युद्ध होने लगा। अकेले ऋतध्वजने समस्त दैत्यसेनाको उन्मत्त हस्तीके समान मथ डाला। वे जय प्राप्त कर निर्विघ्न स्त्रीके साथ पिताके राज्यमें उपस्थित हुए। यहां आ कर राजकुमारने आद्योपान्त कुल घटना पितासे कह सुनाई। पिता बड़े प्रसन्न हुए और पुत्रकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

कुछ दिनोंके वाद राजाने पुनः पुत्रसे कहा, 'तुम इस वार ब्राह्मणोंके लिये पृथ्वी पर पर्यटन करो।' ऋतध्वज पिताकी आज्ञासे भूतल पर पर्यटन करते करते एक दिन यमुनाके किनारे पहुंचे। वहां पातालकेतु दानवका छोटा भाई तालकेतु मायावलसे मुनिका रूप धारण कर एक आश्रममें रहता था। तालकेतुने अपने भ्रातृहन्ता ऋतध्वजको देखते ही पहचान लिया और उनसे वदला चुकानेके लिये अवसर ढूढ़ने लगा। उसने ऋतध्वजसे कहा, 'राजकुमार! आप ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये भ्रमण कर रहे हैं। मैं एक यज्ञ करना चाहता हूं, पर दक्षिणा देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, अतएव मैं यज्ञ भी नहीं कर सकता हूं। यदि आप अपना यह मणिमय हार मुझे दे कर मेरे आश्रयकी रक्षा करें, तो मैं जलमें प्रवेश कर वरुणका स्तव कर आऊं।' यह सुन कर ऋतध्वजने अपना हार गलेसे निकाल कर उस ऋषि-रूपधारी दानवको दे दिया। जातेसमय वह दानव उनसे कह गया, कि जब तक मैं फिर कर न आऊं तब तक आप मेरे आश्रमकी रक्षा करना। राजपुत्रका हार ले कर तालकेतु राजा शत्रुजितकी सभामें आया और वही हार दिखला कर कहने लगा, 'वीर ऋतध्वज मेरे आश्रमके समीप तपस्वियोंके रक्षाकार्यमें नियुक्त थे। पीछे यज्ञद्वेषी दैत्योंके साथ उनका युद्ध हुआ और वे मारे गये। इस भयङ्कर संवादको सुन कर मदालसा स्थिर न रह सकी, मूर्च्छित हो कर जमीन पर गिर पड़ी और फिर न उठी।

इधर तालकेतु यमुना-तट पर लौट आया और युवराजसे वोला, 'हमारा यज्ञ समाप्त हो गया, अव आप जा सकते हैं। आपने मेरा वहुत दिनोंका मनोरथ पूर्ण किया, आपका मङ्गल हो। राजकुमारने उस कपटी ऋषिको प्रणाम कर पितृराजको ओर प्रस्थान किया।

राजा और पुरवासिगण कुमारको देख कर नितान्त विस्मित हुए। कुमारने पिताकी चरणवन्दना करके पूछा, 'पिता! आप ऐसे क्यों उदास हैं?, साफ साफ कहिये।' पिताने आद्योपान्त कुल घटना कह सुनाई। राजकुमार मदालसाको हृदयसे चाहते थे, अतः उसका मृत्युसंवाद सुन कर वे शोकसागरमें डूव गये। किन्तु पिता-माताके सामने शोकप्रकाश करनेमें वे लज्जा वोध करते थे, इस कारण मन ही मन इस प्रकार विलाप करने लगे,—हाय! उस साध्वीवालाने मेरा मृत्युसंवाद सुन कर ही प्राण छोड़ दिये और मैं उससे वियुक्त हो कर अभी तक जीता हूं! अतएव मेरे समान निर्दय और निष्ठुर व्यक्ति संसार भरमें नहीं होगा।

इस प्रकार राजकुमारने बहु विलाप करनेके वाद मतिको स्थिर कर पत्नीके उद्देशसे जलदान और अन्यान्य कर्त्तव्य कर्म तो किये, पर प्राणप्रतिमाके विरहमें जरा भी चैन नहीं मिलता, रात दिन गभीर चिन्तामें डूबे रहते थे। इस समय उनके पूर्व मित्र नागराज अश्वतरके दो पुत्रोंने ऋतध्वकी ऐसी अवस्था देख कर अपने पितासे जा कहा, 'पिताजी! हम लोगोंके प्रिय सखा ऋतध्वज अभी अपनी प्रियतमा मदालसाके विरहमें समस्त सुखभोगोंका त्याग कर विषण्ण मनसे कालयापन करते हैं। मदालसा यदि उन्हें फिर मिल जाय, तो उनका सचमुच भारी उपकार किया जायगा, किन्तु यह किसका साध्य है, दूसरेकी वात तो दूर रहे स्वयं ईश्वर भी यह काम कर सकें, संदेह है।

नागराजने अपने पुत्रोंकी वात सुन कर उत्तर दिया, 'मनुष्य यदि असाध्य जान कर कोई काम काज न करे, तो उद्यमहानिवशतः विशेष अनिष्ट होता है। अतएव अपने पुरुषकारका परित्याग न कर कर्ममें प्रवृत्त हो जाना उचित है। दैव और पुरुषकार इन दोनोंके वलसे सभी

काम चलते हैं। अतएव मैं तपस्या करने जाता हूं और आशा है, कि इस असाध्य कार्यको कर दिखाऊंगा।' इतना कह कर नागराज हिमालयस्थित प्लक्षावतरणतीर्थमें गये और कठोर तपस्या करने लगे।

नागराजने अपनी तपस्यासे सरस्वती और महादेवको प्रसन्न कर यह वर मांगा कि, 'कुवलायश्वकी पत्नी मदालसा जिस अवस्थामें मरी है, उसी अवस्थामें वे मेरी दुहिता हो कर जन्मग्रहण करें। पहले उनकी जैसी कान्ति थी, ठीक वैसी ही कान्ति होवे। वे मानो जातिस्मरा तथा पहलेकी तरह योगिनी और योगमाता हो मेरे घर उत्पन्न हों।'

इस पर शिवजीने कहा, 'मेरे प्रसादसे वही होगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। श्राद्ध उपस्थित होने पर तुम भी प्रयतचित्त हो मध्यम पिण्ड खाना। मध्यम पिण्ड खानेसे कल्याणी जिस अवस्थामें मरी है ठीक उसी अवस्थामें वह तुम्हारे कानसे उत्पन्न होगी।'

अनन्तर नागराजने यथाविधान श्राद्ध करके मध्यम पिण्ड भक्षण किया। पीछे ध्यान करते करते निश्वासका त्याग करते ही उसके मध्यम कर्णसे क्षीणाङ्गी मदालसा उत्पन्न हुईं। अपने घरमें नागराजने उस सुदतीको स्त्रियोंकी सहायतासे छिपा रखा।

एक दिन नागराजने अपने दोनों पुत्रोंसे कहा, 'तुम दोनों राजकुमार ऋतध्वजके पास जाओ और उन्हें निमंत्रण कर यहां बुला लाओ।' दोनों नागपुत्र पिताकी आज्ञासे राजकुमारके यहां गये और नागराजकी अनुमति कह सुनाई। ऋतध्वज बड़े प्रसन्न हुए और नागलोकको चल दिये। यहां नागराजने कुमारका अच्छा सत्कार किया और कहा, 'भद्र! मेरे घरमें तुम अभी अभ्यागत हो, अतएव निःशङ्कचित्तसे तुम्हारी जो प्रिय वस्तु हो, मांगो, मैं अवश्य दूंगा।' ऋतध्वजने उत्तर दिया, 'मुझे सोने, चांदी किसी वस्तुकी जरूरत नहीं।' इतना कह कर उन्होंने अपने दोनों मित्रोंको इशारा किया।

अनंतर दोनों नागपुत्रोंने पिताके चरणोंमें वन्दना कर कहा, 'पिताजी! इनकी पत्नीने किसी दुष्टात्मा दैत्यसे प्रतारित हो कर स्वामीके मृत्यु-संवाद पर प्राण त्याग किया है, मदालसा उनका नाम था, वे गंधर्व-कन्या थीं। अभी उससे मिलनेके लिये इनका मन तड़फड़ा रहा है, आप यदि मिलन करा सकें तो सच कहते हैं, इनका भारी उपकार होगा।'

नागराजने कहा, कि पञ्चभूतसे एक बार वियोग होने पर फिर उनके साथ उसी प्रकार संयोग होना स्वप्न वा आसुरी मायाके सिवा और किसी उपायसे सम्भव नहीं है।

इस पर ऋतध्वजने प्रणाम कर लज्जापूर्वक उनसे कहा "तात! आप यदि इस समय मदालसाको माया करके भी दिखा सकें, तो मैं परम अनुगृहीत होऊंगा"

नागराज बोले, 'वत्स! यदि माया देखनेकी इच्छा है, तो ठहरो, दिखलाता हूं।' इतना कह कर नागराज घरके भीतर गये और मदालसाको बाहर लाये। पीछे उन लोगोंको भुलावेमें डालनेके लिये कुछ अस्फुट मन्त्र पढ़ते हुए राजपुत्रको मदालसा दिखला कर कहा, 'वत्स! देखो तो सही, यह तुम्हारी भार्या मदालसा है वा नहीं?' राजकुमार मदालसाको देखते ही शोकसे मूर्च्छित हो पड़े। मदालसा सोचने लगी कि मेरे प्रति कुमारका अनुराग पहले जैसा अविचलित है। अभी माया बतला कर मुझे दिखालाया गया है, सचमुच मैं मिथ्या हूं, मायास्वरूप हूं। वायु, आकाश, तेज, जल और पृथ्वीके योगसे जिसका जन्म है वह मायाके सिवा और क्या हो सकता है?'

अनन्तर नागराज अश्वतरने जिस प्रकार मृत मदालसाको पुनर्जीवित किया था, कह सुनाया। ऋतध्वज भार्याको पा कर फूले न समाये और उसी समय उन्होंने अपने घोड़ेका स्मरण किया। स्मरणमात्रसे घोड़ा उनके सामने खड़ा हो गया। अब वे नागराजको प्रणाम कर स्त्रीसमेत घोड़े पर सवार हुए और अपने घरको लौटे।

घर पहुंच कर राजकुमारने परलोकप्राप्त मदालसाको पुनः जिस प्रकार पाया, कुल हाल अपने पितासे कह सुनाया। मदालसाने भी श्वसुर और सासको प्रणाम कर स्वजनोंको यथायोग्य वन्दनादि की। इस प्रकार बहुत दिन बित जाने पर राजा शत्रुजित् कालधर्मके वशवर्ती हुए। पौरोंने आ कर ऋतध्वजको राजपद पर अभिषिक्त किया। ऋतध्वज पुत्रके समान प्रजाका प्रतिपालन करते हुए राज्यशासन करने लगे।

इस समय मदालसाके प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, पिताने उसका नाम विक्रान्त रखा। मदालसाने पुत्रका नाम सुन कर हास्य किया। एक दिन विक्रान्तको किसीने मारा, वह रोते रोते घर गया और अपनी मातासे रो कर कहने लगा, 'मुझे अमुक अमुकने मिल कर पीटा है। मैं राजपुत्र हूं। उन्होंने मेरी प्रतिष्ठा पर कुछ भी ध्यान न दे कर मुझको मारा है। आप इसका प्रतिविधान करें'। उत्तरमें मदालसाने कहा, 'वत्स! तुम शुद्ध आत्मा हो, आत्माकी प्रकृति नामके द्वारा कलुषित नहीं हो सकती। राजपुत्र वा विक्रान्त तुम्हारी उपाधि है। अतएव अपनेको राजपुत्र समझ कर तुम्हें अभिमान नहीं करना चाहिये। तुम्हारा यह परिदृश्यमान शरीर पाञ्चभौतिक है। तुम्हारा यह शरीर नहीं है, फिर शरीर पर मार खानेसे रोते क्यों हो। तुम्हारे इन्द्रियनिचयमें भी विविध भौतिक गुण और अगुण कल्पित हुए हैं। सभी भूत जिस प्रकार भूतोंकी सहायतासे अन्न और जलदानादि द्वारा परिवर्द्धित होते हैं; तुम्हारी उस प्रकार वृद्धि नहीं है, क्षय भी नहीं है। तुम्हारा यह शरीर आवरणमात्र है। यह शीर्ण हो जायगा, अतः मोहका कभी आश्रय न लेना। शुभाशुभ कर्मबलसे ही तुम्हारे शरीरमें यह आवरण सन्निवद्ध हुआ है। पिता, माता और स्त्री तथा आत्मीय अनात्मीय कोई भी कुछ नहीं है, तुम उन पर अधिक स्नेह भी न करना। जो मोहाच्छन्न चित्तके हैं, वे ही दुःखको दुःखके उपशमका कारण और भोगको सुखलाभ का हेतु समझते हैं।' विक्रान्त माताके निकट इस प्रकार आत्मज्ञानकी शिक्षा पा कर ज्ञानी और वासनात्यागी हो गये।

द्वितीय पुत्र भूमिष्ठ होने पर पिताने उसका नाम सुवाहु रखा। इस पर भी मदालसाने हास्य किया और इस कुमारको भी पहलेके जैसा आत्मबोधकी शिक्षा दी। शिक्षाके फलसे यह पुत्र भी ज्ञानलाभ कर कामना और क्रियाविहीन हो गया।

इसके बाद तृतीय पुत्रके उत्पन्न होने पर राजाने उसका शत्रुमर्दन नाम रखा। इस बार भी मदालसाने हंसी उड़ाई। पीछे मातासे आत्मबोधकी शिक्षा पा कर यह पुत्र भी संसारविरागी संन्यासी हो गया।

अनन्तर चतुर्थ पुत्रके भूमिष्ठ होने पर राजाने मदालसासे कहा, तुम प्रतिवार हमारे नामकरण करनेके समय हास्य करती हो, इस बार तुम ही इस पुत्रका नाम रखो। मदालसाने इस पुत्रका नाम अलर्क (पागल कुत्ता) रखा। राजाने यह नाम सुन कर कहा, 'तुमने नितान्त असम्बन्धु नाम रखा।' मदालसा बोली, राजन्! लोकाचारसे एक नाम रखना होता है, इस कारण कोई एक नाम रख दिया। आपके रखे हुए नामोंमेंसे किसीका अर्थ नहीं है। प्राज्ञपुरुषगण आत्माको सर्वव्यापी वतलाते हैं। क्रान्ति शब्दसे, एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गति, समझा जाता है। आत्मा सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हैं तथा देहके ईश्वर हैं, तव फिर उनकी गति कहां? अतएव आपने विक्रांत नाम रखा है, उसका कोई अर्थ नहीं होता। आत्माको कोई मूर्त्ति नहीं है, इस कारण दूसरे पुत्रका नाम जो सुवाहु रखा गया है, वह भी सर्वथा अर्थशून्य है।

तृतीय पुत्रका नाम जो अरिमर्द्दन रखा गया है, वह भी नितांत असम्बन्ध है। इसका कारण यह है, कि एकाकी आत्मा समस्त शरीरमें विराजमान है, तव फिर उनके शत्रु तथा मित्र हो कहां? भूत द्वारा भूतोंका लय होता है। जिसकी मूर्त्ति नहीं, उसका लय किस प्रकार हो सकता? आत्मा क्रोधादि सर्वविध दोषवर्जित है, तो फिर वे किस प्रकार शत्रुमर्दन कर सकते? यदि केवल व्यवहारके लिये ऐसे निरर्थक नामको कल्पना की जाती है, तो मैंने जो चौथे पुत्रका अलर्क नाम रखा वह क्यों निरर्थक होगा?

इस पर राजा वोले, 'तुमने जो कुछ कहा, वह ठीक है, किन्तु अभी तुमसे मेरा यही अनुरोध है, कि तीन पुत्रोंको उपदेश दे कर वनवासी कर चुकी हो अब इस छोटे पुत्र अलर्कको ऐसी शिक्षा दो जिससे वह अपने भाइयोंके मार्गका अनुसरण न करे। यदि वह भी संन्यासी हो जायगा, तो राज्यशासन कौन करेगा? मदालसाने उसे मंजूर कर लिया और अलर्कको राजनीतिकी शिक्षा देने लगी। उनके उपदेशसे अलर्क राजनीतिविद्यामें निपुण हो गया।

मदालसाने अपने पुत्रोंको जो उपदेश दिया था, वह

गौड़सीधु (गुड़जात तीक्ष्ण मद्य)—कषाय, मधुर, पाचक और अग्निकर।

शार्करशीधु (शर्कराजात तीक्ष्ण मद्य)—मधुर, रुचिकर, अग्निकर, वस्तिशोधनकर, वातघ्न, परिपाकमें मधुर, हृद्य और इंद्रियका उत्तेजक। पक्वरसजात शीधु (ईखके रस, गुड़, चीनी आदि किसी द्रव्यके रसको अग्निमें चुआ कर जो मादक रस निकलता है, उसे पक्वरसजात शीधु कहते हैं)—बलकारी, वर्णकर, सारक, शोफनाशक, अग्निकर, हृद्य, रुचिकर, श्लेष्मा तथा अर्शका हितकर।

माक्षिकशीधु—शरीरकृशकारी, शीतलरसविशिष्ट, शोथ और उदररोगनाशक, वर्णकर, स्वर और व्रणके पक्षमें हितकर, कोष्ठरोग और अर्शरोगका शांतिकर, पाण्डुरोगनाशक, मल और मूत्रका कठिनतासम्पादक, लघु, कषाय, मधुर, पित्तघ्न और रक्तप्रसादनकर।

जाम्बवशीधु (जामुनका मद्य)—मलमूत्ररोधक, कषाय और वायुप्रकोपकर। सुरासव (ताल खजूर आदिके रससे जो फेन ऊपर उठता है उसे सुरासव कहते हैं)—तीक्ष्ण, हृद्य, मूत्रवृद्धिकर, कफ और वायुका शान्तिकर, मुखप्रिय। स्थिरमद (बहुकालस्थायी मद्य)—मत्तताकर और वायुनाशक, मध्वासव (मधुजात आसव) लघु, छेदक, मेह, कुष्ठ और विषका शान्तिकर, तिक्त, कषाय, शोफघ्न, तीक्ष्ण, स्वादु अथच वायुनाशक।

मैरेय आसव (धातकीपुष्प, गुड़ और अजवायनके साथ जो मादक रस प्रस्तुत होता है उसे मैरेय आसव कहते हैं)—तीक्ष्ण, कषाय, मादक, अर्श, कफ और गुल्मनाशक, कृमि, मेद और वायुका शान्तिकर तथा गुरुपाक।

मृद्वीक इक्षुरसासव (अंगूर और ईखके रसका बनाया हुआ मद्य)—बलकर, पित्तनाशक और वर्णकर। मधुपुष्पजात शीधु—विदाही, अग्निकर, बलकर, रुक्ष, कषाय, कफनाशक और वातपित्तका प्रकोपकर।

अन्यान्य कन्दमूल और आसवका गुण उनके रस द्वारा निर्णय करना चाहिये। नूतन मद्य—चक्षुरोगकारी, गुरुपाक, वायु, पित्त और कफका प्रकोपकर, अनिष्टगन्धयुक्त, विरस और विदाही। पुरातन मद्य—सुगन्धित, अग्निकर, मुखप्रिय, रुचिकर, कृमिनाशक, नाड़ीपथका शोधनकर, लघु और वायुपित्तका शान्तिकर।

अरिष्ट द्रव्योंके साथ संस्कृत होने पर यह अधिक गुणकारी होता है। इस कारण यह अनेक दोषोंका नाशक, कफ-वातघ्न, सारक, पित्तविरोधकारी, शूल, आध्मान, उदररोग, प्लीहा, ज्वर, अजीर्ण और अर्शका हितकर माना गया है।

अरिष्ट, आसव और शीधु इनका द्रव्य गुण और क्रिया तथा प्रस्तुत करनेकी प्रणाली जान कर व्यवहार करना चाहिये। गाढ़ा होने पर यह विदाही, दुर्गन्धविशिष्ट, विरस, कृमिकर और गुरुपाक तथा तरुण होने पर अप्रिय, तीक्ष्ण और खराब वरतनमें रहनेसे उष्ण होता है। जो मद्य अल्प औषधिविशिष्ट, पर्युषित, निर्मल और पिच्छिल है तथा जो पात्रमें बच रहता है उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। जिस मद्यके उपकरण-द्रव्य अल्प हैं तथा जो तरुण और पिच्छिल है वह मद्य गुरुपाक, कफप्रकोपकर और दुर्जर माना गया है। उपकरण द्रव्य अधिक पड़नेसे वह मद्य पित्त प्रकोपकर, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, अप्रिय, फेनिल, दुर्गन्धविशिष्ट, कृमिकर, विरस और गुरुपाक होता है। पर्युषित मद्य वायुका प्रकोपकर और दोषजनक है।

रस और वीर्यके भेदसे मद्य नाना प्रकारका है। मद्यमें वीर्यकर, सूक्ष्म, उष्ण, तीक्ष्ण और प्रफुल्लकर गुण है इस कारण यह जठराग्निके साथ हृदयमेंकी धमनियोंमें प्रवेश कर ऊपरकी ओर जाता और मन तथा इन्द्रियोंको सञ्चालित तथा उन्मादित कर डालता है। मद्यपान करनेसे श्लेष्मा प्रकृतिके मनुष्य देरीसे, वायुप्रकृतिके मनुष्य कुछ जल्दीसे और पित्तप्रकृतिके मनुष्य बहुत जल्दीसे मत्त हो जाता है। मद्यपानसे मत्त होने पर सात्त्विक प्रकृतिवाले व्यक्तिके शौच, दाक्षिण्य, हृष, सौन्दर्याभिलाष, गीत, अध्ययन और सुरतक्रीड़ामें उत्साह तथा राजसिक प्रकृतिवाले व्यक्तिके दुःखशीलता साहसपूर्वक आत्मत्याग और कलहेच्छा तथा तामसिक प्रकृतिवाले व्यक्तिके अशौच, निद्रा, मात्सर्य, अगम्यागमनकी इच्छा होती है तथा वह बहुत असत्य बोलता है। किसी फल वा मूलको लवणयुक्त तेलमें डुबा कर

उसे सुखा ले। पीछे जलमें डाल कर जब फेन ऊपर उठता है तब वह शुक्त होता है। यह शुक्त मद्यके समान मादक है। इसका गुण—रक्तपित्तकर, छेदक, पाचक, स्वरका विकृतिकर, जारक, श्लेष्मा, पाण्डु और कृमिनाशक तथा लघुपाक माना गया है। इस शुक्तको चुआनेसे जो रस निकलता है वह तीक्ष्णोष्ण, मूत्रल, हृद्य, कफघ्न, कटुपाक और विशेषरूपसे रुचिकर है। गुड़रस अथवा मधुके साथ जो शुक्त प्रस्तुत होता है वह चक्षुरोगकर और लघु है।
(सुश्रुत शारीरस्थान मद्यवर्ग ४५ अ० और उत्तरतन्त्र ४७ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि मद्य, शीधु, मैरेय, मिरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, वारुणी, हाला और बलवल्लभा ये सब मद्यके नाम हैं। सामान्यतः मादकके लिये लोग जिन सब वस्तुओंका व्यवहार करते हैं, उन्हींको मद्य कहते हैं। यह मद्य अरिष्ट, सुरा, शीधु और आसव आदिके भेदसे नाना प्रकारका है। सभी प्रकार का मद्य उष्णवीर्य, पित्तवर्द्धक, वायुनाशक, भेदक, रूक्ष, अतिशय कफकारक, अम्लरस, अग्निदीप्तिकारक, रुचिजनक, पाचक, आशुकारी, तीक्ष्ण, सूक्ष्ममार्गानुसारी तथा विशद माना गया है। औषध और जलको एकत्र सिद्ध कर उस क्वाथसे जो मद्य प्रस्तुत होता है उसे अरिष्ट कहते हैं। अरिष्टमें सब प्रकारके मद्यसे अधिक गुण है, विशेषतः लघुपाक है। अरिष्टोंका गुण उन उपादान-द्रव्यके गुणके समान जानना चाहिये।

धान और साठी धानकी पीठीसे जो मद्य बनता है उसे सुरा कहते हैं। सुरा गुरु, बलजनक, स्तन्यवर्द्धक, शरीरका पुष्टिसम्पादक, मेदोजनक, कफप्रदायक, धारक तथा शोथ, गुल्म, अर्श ग्रहणी और मूत्रकृच्छ्रनाशक है।

वारुणी सुराका प्रभेदमात्र है। पुनर्णवाको शिला पर घिस कर जो सुरा बनती है उसे वारुणी कहते हैं। ताड़ और खजूरके रसको मिला कर जो सुरा तैयार होती है उसका भी नाम वारुणी है। वारुणी सुराके समान गुणदायक है, विशेषतः इसमें लघु तथा पीनश, आध्मान और शूलनाशक गुण है।

ईखके रसको सिद्ध कर जो शीधु तैयार होता है उसे पक्वरसशीधु तथा अपक्व ईखके रससे तैयार किये हुए शीधु को शीतरसशीधु कहते हैं। पक्वरसशीधुमें श्रेष्ठ गुणदायक, स्वर और वर्णप्रसाधक, अग्निवर्द्धक, बलकारक, वायु और पित्तवर्द्धक, सद्यःस्निग्धकारक, रुचिजनक तथा मेद, शोष, अर्श, शोथ, उदर और कफरोगनाशक गुण माना गया है। शीतरसशीधु पक्वरसशीधुसे अल्पगुणदायक है।

अपक्व औषध और जल द्वारा जो मद्य प्रस्तुत होता है, उसे आसव कहते हैं। आसवका गुण उपादानसामग्रीके समान जानना चाहिये।

नूतन मद्य—अभिष्यन्दी, त्रिदोषजनक, सारक, अहृद्य, शरीरका उपचयकारक, दाहजनक, दुर्गन्धयुक्त, विशदगुणान्वित तथा गुरु। पुरातन मद्य—रुचिजनक, कृमिनाशक, कफघ्न, वातापहारक, हृदयग्राही, सुगन्धित, लघु और रेतःशोधक।

मद्यपानके विधानानुसार यथासमय उपयुक्तमात्रामें हितकर द्रव्यके साथ हृष्टचित्तसे जो व्यक्ति मद्यपान करता है उसका वह पीया हुआ मद्य अमृतके समान गुणकारी है। किन्तु मद्यको स्वभावतः अन्नके समान जानना होगा अर्थात् विधिपूर्वक सेवन करनेसे अन्नपानादि जिस प्रकार शरीरका हितकर तथा अविधिपूर्वक सेवन करनेसे अहितकर है, मद्यको भी उसी प्रकार जानना चाहिये। सुतरां यथानियम पान करनेसे अमृतके समान फल प्राप्त होता है और यदि अनियमित रूपसे पान किया जाय, तो वह रोगका कारण होता है।

मद्यपान कर मोथा, कुट, जीरा, धनिया और इलायचीको एकत्र चबानेसे मद्यजनित मुखकी दुर्गन्धि जाती रहती है। (भावप्र० मद्यवर्ग)

चरक आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें मद्यका विषय इसी प्रकार लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं दिया गया।

ब्राह्मणके लिये मद्यपान निषिद्ध है। मद्यपानसे संज्ञा विलुप्त होती है। महानुभव शुक्राचार्यने सुराके प्रति इस अभिशापवाक्यका प्रयोग किया था—

"यो ब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चित्
मोहात् सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः।

अपेतधर्मो ब्रह्महा चैव स स्या-
दस्मिल्लोके गर्हितः स्यात् परे च ॥
मया चेमां विप्रधर्मोक्तसीमां
मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके ।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणां
देवा लोकाश्चोपशृण्वन्तु सर्वे ॥

(महाभारत १।३९ अ०)

आजसे जो ब्राह्मण मोहवशतः सुरापान करेगा वह मन्दबुद्धि धर्मच्युत, ब्रह्महत्यापातकमें लिप्त तथा इह और परलोक गर्हित होगा। मैंने ब्राह्मणके धर्मविषयमें इस सीमा और मर्यादाको जगत्में स्थापन किया। साधुगण, ब्राह्मणगण, देवगण आदि सभी इसको ध्यानसे श्रवण करें।

राजनिघण्टमें लिखा है, कि द्विज औषधार्थमें भी मद्यपान न करे। यहां पर द्विज शब्दसे केवल ब्राह्मण-ही समझना चाहिये। इस श्रेष्ठ वर्णमें मद्यपान निषिद्ध है। मृत् व्यक्तिको यदि मद्यपान करनेसे जीवन मिल जाय, तो भी ब्राह्मणको मद्यपान न करावे।

"मद्यप्रयोगं कुर्वन्ति शूद्रादिषु महार्त्तिषु।
द्विजैस्त्रिभिस्तु न ग्राह्यं यद्यप्युज्जीवयेन्मृतम् ॥"

(राजनि०)

पुराणादिमें भी ब्राह्मणके लिये मद्यपान निषिद्ध बतलाया गया है।

द्विजातियोंके लिये मद्य अदेय, अपेय और अस्पृश्य है, अतएव भूल कर भी मद्यपान न करें। यदि श्रेष्ठ-ब्राह्मण मद्यपान करें, तो वे भी कर्मसे पतित होते हैं तथा उनके साथ बातचीत भी नहीं करनी चाहिये। (कूर्मपु० १६ अ०)

गरुडपुराणके २२वें अध्यायमें भी द्विजातिके लिये मद्यपान निषिद्ध बतलाया है। विस्तार हो जानेके भयसे उसके प्रमाणादि यहां पर नहीं दिये गये।

मनु-मतमें भी मद्यपान निषिद्ध है—नारिकेल, खजूर, पानस, ऐक्षव, मधूक, टाङ्क, ताल, माक्षिक, द्राक्ष, गौड़, पैष्ट और मधूज ये बारह प्रकारके मद्य हैं। ये सभी मद्य ब्राह्मणके लिये अपेय हैं। इन सब मद्योंमें पैष्टमद्य सबसे निकृष्ट, मधूज और गौड़ मद्य मध्यम है तथा इसके अतिरिक्त और सभी प्रकारके मद्य उत्कृष्ट हैं। क्षत्रियादि पैष्ट मद्यको छोड़ कर शेष ग्यारह प्रकारके मद्य पान कर सकते हैं। अनुपनीत व्यक्ति यदि मद्यपान करे, तो उसे त्रैवार्षिक व्रत करना होगा।

"पैष्टीपाने ब्राह्मणस्य मरणान्तिकमुच्यते ।
माध्वी-गौड़ी-सुरापाने द्वादशाब्दं विधीयते ॥
इतरेषान्तु पानेन शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु ।
राजन्यवैश्ययोश्चापि गौड़ी माध्वी न शस्यते ।
मोहात् क्षत्रश्च वैश्यश्च पीत्वा कृच्छ्रद्वयं चरेत् ॥
शूद्रोऽपि गौड़ीं पैष्टीञ्च न पीबेद्धीनसंस्कृताम् ॥
कामात् पीत्वा सुरां विप्रो मरणान्तिकमाचरेत् ।
चरेच्चान्द्रायणं ज्ञानात् क्षत्रियो वैश्य एव च ॥
पैष्टीपाने तु शूद्रस्य प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ।
ज्ञानादभ्यासयोगे तु चान्द्रायणत्रयं स्मृतम् ॥"

(मत्स्यसूक्त महातन्त्र चतुर्विंशतिसाहस्रे ३६ पटल)

ब्राह्मण यदि पैष्टी मद्य पान करे, तो मरणान्त प्रायश्चित्त करना होगा। माध्वी और गौड़ी सुरापानमें द्वादश वार्षिक व्रत तथा अन्य मद्य सेवन करनेसे चान्द्रायण व्रत द्वारा शुद्धि होगी।

क्षत्रिय और वैश्य यदि गौड़ी और माध्वी मद्यपान करे तो कृच्छ्रव्रताचरणसे शुद्धि होगी।

मद्यपान शूद्रके लिये भी निषिद्ध है। शूद्रको पैष्टी मद्य पीनेसे प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। यह सब प्रायश्चित्त अज्ञानतः और एक बारके लिये जानना चाहिये। ज्ञानपूर्वक या अभ्यासवशतः मद्यपान करनेसे चान्द्रायणव्रतका अनुष्ठान करना होता है। उत्पत्तितन्त्रमें लिखा है—

"सिद्धमन्त्री भवेद्वीरो न वीरो मद्यपानतः ।
कलौ तु भारते वर्षे लोका भारतवासिनः ।
गृहे गृहे सुरां पीत्वा वर्णभ्रष्टा भवन्ति हि ॥"

(उत्पत्तितन्त्र ६४ पटल)

जिनका मन्त्रसिद्ध हुआ है वे ही वीर हैं, केवल मद्यपानसे वीर नहीं होते। कलिकालमें मद्यपान करनेसे वर्णभ्रष्ट होना पड़ता है। महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है—

"दिव्यवीरमयो भावः कलौ नास्ति कदाचन।
केवलं पशुभावेन मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥"

(महानिर्वाणतन्त्र)

कलिकालमें दिव्य और वीरभाव निषिद्ध वतलाया गया है, केवल पशुभावसे ही मन्त्रकी सिद्धि होती है। भैरवतन्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण महादेवीको मद्य न चढ़ावे और न स्वयं सेवन करे।

"न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्चन।
क्षेमकामो ब्राह्मणो हि मद्यं मांसं न भक्षयेत् ॥"

(भैरवत०)

"नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे गव्यं तथा मधु।
राजन्यवैश्ययोर्देयं न द्विजस्य कदाचन ॥
एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत् ॥"

(आगमतत्त्ववि०)

कांसेके बरतनमें नारियलका पानी, तांबेके बरतनमें गव्य और मधु ये सब क्षत्रिय और वैश्यके लिये देने योग्य हैं, ब्राह्मणके लिये नहीं।

स्मृति, तन्त्र आदि सभी शास्त्रोंमें मद्यपानको निषिद्ध वतलाया है। मनुमें लिखा है—

"सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिवेत्।
तया स्वकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्विषात् ततः ॥
सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिवेत् ॥
गौड़ी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधाः सुराः।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥
यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥"

(मनु ११ अ०)

ब्राह्मण यदि मोहवशतः सुरापान करे, तो अग्निवर्णकी सुरा पी कर देहत्याग करके पापमुक्त होवे। सुरा अन्नका मल है, इसी कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णोंके लिये मद्य अपेय है। गौड़ी, पैष्टी और माध्वी यही तीन प्रकारकी सुरा हैं। इनमेंसे ब्राह्मणके लिये कोई भी सुरा पेय नहीं है।

"मद्यमदेयमपेयमग्राह्यं" (उशनाः)

मद्य दान, पान और ग्रहण नहीं करना चाहिये।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि देवताको मद्य चढ़ावे तो वे ब्राह्मण्यसे हीन होंगे।

"स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा आत्महत्यामवाप्नुयात्।
मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥"

(कालिकापु०)

सभी शास्त्रोंमें मद्यपानको निषिद्ध वतलाया है। अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिये मद्यपान विशेष निन्दित है।

मद्य वारह प्रकारका है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। इनका सेवन करनेसे मत्तता आ जाती है, इसीसे सबोंका नाम मद्य रखा गया है। प्रायश्चित्तका विषय इस प्रकार लिखा है—

"गौड़ीं माध्वीं सुरां पैष्टीं पीत्वा विप्रः समाचरेत्।
तप्तकृच्छ्रं पराकञ्च चान्द्रायणमनुक्रमात् ॥"

(प्रायश्चित्तवि०)

गौड़ी, माध्वी और पैष्टी मद्य पान करके ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र, पराक और चान्द्रायणका अनुष्ठान करे। इनका सेवन करनेसे ब्राह्मण महापातकी होता है। किन्तु क्षत्रिय और वैश्य यदि गौड़ी और माध्वी मद्यपान करे, तो वह महापातकी नहीं होगा। किन्तु पैष्टी सुरा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णके लिये निषिद्ध है।

"एका माध्वी च गौड़ी च पैष्टी च त्रिविधाः सुराः।
द्विजातिभिर्न पातव्याः कदाचिदपि कर्हिचित् ॥"

इति यमवचने द्विजातिपदं ब्राह्मणपरमेव, अतएव द्विविध सुरापाने न क्षत्रियादीनां महापातकं। तावदस्तु दोषाभावमेवाह वृद्धयाज्ञवल्क्य :—

"कामादपि हि राजन्यो वैश्यो वापि कथञ्चन।
मद्यमेव सुरां पीत्वा न दोषं प्रतिपद्यते ॥"

तदेवं पैष्टीनिषेधस्त्रैवर्णिकानां, गौड़ीमाध्वीनिषेधस्तु ब्राह्मणानामेव।" (प्रायश्चित्तविवेक)

इस वचनसे जाना जाता है, कि गौड़ी और माध्वी सुरा यदि क्षत्रिय और वैश्य पान करे, तो कोई दोष नहीं। किन्तु पैष्टीमद्यपानसे भारी पाप होगा। उक्त वचनमें "द्विजातिभिर्नपातव्या" ऐसा लिखा है उससे द्विजातिका अर्थ यहां पर ब्राह्मण जानना होगा। कारण, अन्यान्य वचनोंमें क्षत्रिय और वैश्यके लिये

मद्यपानकी व्यवस्था देखी जाती है। अतएव यहां पर द्विजातिका अर्थ ब्राह्मण जानना चाहिये।

ब्राह्मणोंकी स्त्रियां भी मद्यपान नहीं कर सकतीं, यदि करें तो उन्हें पतिलोक जानेका अधिकार नहीं रहता।

"तज्जातेः स्त्रीणामपि सुरापाननिषेधः", यथा भविष्ये,—

"तस्मात् न पेयं विप्रेण सुरामद्यं कथञ्चन।
ब्राह्मण्यापि न पेया वै सुरा पापभयावहा॥"

"या ब्राह्मणी सुरापी स्यान्नतां देवाः पतिलोकं नयन्ति

(श्रुति)

न चैवं क्षत्रिय वैश्यस्त्रीणामनिषेधः॥"

(प्रायश्चित्तवि०)

मनुमें जो ब्राह्मणके लिये मद्यपानका प्रायश्चित्त, अग्निवर्ण सुरापान द्वारा प्राणत्याग, लिखा है वह ज्ञानतः तथा अभ्यासवशतः है अर्थात् बार बार पान करनेसे वह प्रायश्चित्त करना होगा।

"एतच्च मरणप्रायश्चित्तं कामकृते यथाह बृहस्पतिः—
सुरापाने कामकृते ज्वलन्तीं तां विनिः क्षिपेत्।
मुखे स हि विनिर्दग्धो मृतः शुद्धिमवाप्नुयात्॥"

(प्रायश्चित्तवि०)

जो सब प्रायश्चित्तके विधान लिखे गये उन्हें गौड़ी, माध्वी और पैष्टीके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

ब्राह्मण यदि पानस, द्राक्ष आदि मद्यपान करें, तो त्रैरात्रिक व्रताचरण द्वारा शुद्धि होती है।

बालक, वृद्ध और स्त्रीके लिये आधा प्रायश्चित्त बतलाया गया है। अन्यान्य विषय मद्य और सुरासार शब्दमें देखो।

तन्त्रमें कौलाचारियोंके मद्यपानका विषय इस प्रकार लिखा है—

"कुलाचाररतो वीरः कुलसङ्गी सदा भवेत्।
सम्विदासेवनं कुर्यात् सोमपानं महेश्वरी।
सुरापानरतो नित्यं बलिपूजापरायणः।
नरश्छागमश्च महिषो मेषः शूकर एव च॥
इत्यादेस्तु वलेर्दानैः पूजयेत् स्वेष्टदेवताम्।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं प्रकुर्याच्च दिने दिने॥
कुलवारे कुलर्क्षे च तिथौ च कुलके तथा।
भैरव्याः कल्पितं चक्रं संस्थाप्य पूर्ववत् प्रिये॥
सुरायां शोधनं कुर्यात् यथावत् परमेश्वरि।
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमाः॥
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्।
विजयाञ्चानुकल्पञ्च द्विजो दद्याद् युगे युगे॥"

(उत्पत्तितन्त्र ६३ पटल)

कुलाचारिगण सर्वदा कुलसङ्गी हो कर सोमपान करे। शक्तिके उद्देशसे बलि और पूजा दे कर सर्वदा सुरापानमें रत रहे। कुलवार, कुलतिथि और कुलनक्षत्रमें नित्य, नैमित्तिक और काम्यकर्मका अनुष्ठान कर भैरवीचक्रकी कल्पना करे। भैरवीचक्र कल्पित होनेसे सुराशोधन करना होता है। इस चक्रमें सभी वर्ण द्विजोत्तम हैं अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हैं। इसका अवसान होने पर पुनः जो जो वर्ण है वह उसी वर्णमें रहेगा। इसमें विजया (सिद्धि) और अनुकल्प-द्रव्य देना आवश्यक है। सुराके अभावमें गोक्षीर अनुकल्प हो सकता है।

"द्रव्याभावे च नुकल्पैः पूजयेत परदेवताम्।
सुराभावे च गोक्षीरं द्विजो दद्याद् युगे युगे॥"

(निरुत्तरतन्त्र ५ पटल)

तन्त्रमें लिखा है, कि जो ब्राह्मण विना शोधन किये सुरापान करता है वह ब्रह्मघाती और जो शोधित सुरापान करता है वह जलदग्निको तरह तेजस्वी होता है।

"असंस्कृतां सुरां पीत्वा ब्राह्मणो ब्रह्महा भवेत्।
संस्कृतान्तु सुरां पीत्वा ब्राह्मणो ज्वलदग्निवत्॥"

(उत्पत्तितन्त्र)

फिर मृतकाभेदतन्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि मद्यपान करें तो महामोक्ष तथा उसी समय शिवरूपत्वको प्राप्त होते हैं, इसमें जरा भी संदेह नहीं। क्षत्रियादि सायुज्य आदि महामोक्ष लाभ करते हैं। जिस प्रकार जलमें जल लीन होता है, उसी प्रकार ब्राह्मण मद्यपान द्वारा ब्रह्ममें लीन होते हैं। विना मद्यपानके तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता। गायत्री जप करनेसे ही ब्राह्मण कहलाता है, सो नहीं, जब ब्रह्मज्ञान लाभ होता है, तभी ब्राह्मण है। ब्रह्मज्ञान शब्दका अर्थ इस प्रकार है,—देवताओंका अमृत ब्रह्म है, वही लौकिक सुरा है तथा यह सुरत्वभोगमात्र ही सुरा कहलाता है। ब्रह्मशापादि

मोचनरूप मन्त्रपाठ करनेसे सुरा ब्रह्ममयी होती है। मन्त्र द्वारा संस्कृत-सुरासे पाप दूर होता तथा मुक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार सुरा पान करनेसे ब्राह्मण, ब्राह्मण पद-वाच्य, वेदज्ञ, अग्निहोत्री और दीक्षावशिष्ट होते हैं

"ब्राह्मणस्य महामोक्षो मद्यपाने प्रियंवदे।
ब्राह्मणः परमेशानि यदि पानादिकं चरेत्॥
तत्क्षणात् शिवरूपोऽसौ सत्यं हि शैलजे॥
तोये तोयं यथा लीनं तैजसं तैजसे यथा।
घटे भग्ने यथाकाशं वायौ वायुर्यथा प्रिये॥
तथैव मद्यपानेन ब्राह्मणो ब्रह्मणि प्रिये।
लीयते नात्र संदेहः परमात्मनि शैलजे॥
सायुज्यादिमहामोक्षं नियुक्तं क्षत्रियादिषु।
मद्यपानं बिना देवि तत्त्वज्ञानं न लभ्यते॥
अतएव हि विप्रस्तु मद्यपानं समाचरेत्।
वेदमातृजपेनैव ब्राह्मणो न हि शैलजे॥
ब्रह्मज्ञानं यदा देवि! तदा ब्राह्मण उच्यते।
देवानाममृतं ब्रह्म तदेव लौकिकी सुरा॥
सुरत्वं भोगमात्रेण सुरा तेन प्रकीर्त्तिता।
मन्त्रत्रयं सदा पाठ्यं ब्रह्मशापादि मोचनम्॥
प्रकुर्य्यात्तु हि येनैव तदा ब्रह्ममयी सुरा।
हविरारोपमात्रेण वह्निदीप्तो यदा भवेत्॥
शापमोचनमात्रेण सुरा मुक्तिप्रदायिनी।
अतएव हि देवेशि! ब्राह्मणः पानमाचरेत्॥
स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्निहोत्री स दीक्षितः।
बहु किं कथ्यते देवि स एव निर्गुणात्मकः॥
मुक्तिमार्गमिदं देवि! गोप्तव्यं पशुसङ्कटे।
प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् निन्दनीयो न चान्यथा॥"
(मातृकाभेदतन्त्र ३ पटल)

सुराको शोधन करके पान करना चाहिये। सुरा-शोधनविधिका विषय तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है,—

पद्मासन पर बैठ कर कृताञ्जलिपुटसे वाम भागमें गुरुगणको और दक्षिण भागमें गणपतिको प्रणाम करे। अनन्तर मध्यदेशमें देवीको प्रणाम कर तीन बार प्राणायाम करना होता है। इसके वाद समस्त शरीरमें मातृका वर्णन्यास करके ऋष्यादिन्यास और स्वकल्पविधानानुसार षडङ्गन्यास करना उचित है। पीछे भूमि पर त्रिकोण वा षट्कोण मण्डल बना कर उसके ऊपर मद्य पात्र रखना होता है। 'फट्' इस मन्त्र द्वारा पात्रको प्रोक्षण करके मूल मन्त्र द्वारा उस घटमें मद्य भर दे। पीछे चतुर्दश स्वरान्वित शक्तिबीजको नादविन्दुके संयोगसे उसके ऊपर सौ वार जप करे। अनन्तर धेनु, योनि, गालिनी और मत्स्यमुद्रा दिखावे।

(कैवल्यतन्त्र २ पटल)

अनन्तर इस मद्यपूर्ण घटको पकड़ कर निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करना होता है। मन्त्र यथा—

"ओं एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥
ओं सूर्यमण्डलसम्भू ते वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्वि मुच्यताम्॥
ओं वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु॥"

इस मन्त्रका पाठ कर निम्नोक्त मन्त्रसे आनन्दभैरवका ध्यान करना होगा। ध्यान यथा,—

"रक्तवर्णं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं वरदं शिवम्।
जटाजूटधरं देवं वासुकिकण्ठ भूषितम्॥
डमरुञ्च कपालञ्च मुद्गरं पाशमुत्तमम्।
धारिणं तं यजेद्देवं व्याघ्रचर्माम्बरं शिवम्॥"

इस मन्त्रसे ध्यान कर पूजा करनी होती है। पीछे निम्नोक्त ध्यानसे आनन्द-भैरवीकी पूजा करनेकी विधि है। ध्यान यथा—

"आनन्दभैरवीं देवीं वराभयलसत्कराम्।
घोररूपां वरारोहां त्रिनेत्रां रक्तवाससम्॥
रक्तवर्णां महारौद्रीं सहस्र भैरवान्वितांम्।
ब्रह्मविष्णु महेशाद्यैः स्तूय मानां शिवां भजे॥"

पीछे आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीकी ऐक्य-भावना करके सुधागायत्रीका स्मरण करे।

गायत्री यथा—'ओं सुधादेव्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।'

इस गायत्रीका पाठ करनेसे मद्यशुद्धि होती है। यह मद्यपान करनेसे भुक्ति और मुक्ति दोनों होती है।

प्राणतोषिणी आदिमें भी मद्यशोधनका विषय लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं दिया गया। सुरा देखो।

२ वासुदेव पत्नी। (भागवत ६।२४।४५) ३ छन्दोभेद, बाईस अक्षरोंके एक वर्णिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें सात मगण और अंतमें एक गुरु होता है। इसका दूसरा नाम मालिनी, उमा और दिवा भी है।

मदिराक्ष (सं० त्रि०) मदिरे इव अक्षिणी यस्य इति (अक्ष्णोऽदर्शनात्। पा ५।४।७६) इति अच्। १ खञ्जन-तुल्य नेत्र, जिसकी आंखें मद भरी हों। (पु०) २ विराटराजके भाई। (भारत ४।२०)

मदिराक्षी (सं० स्त्री०) मत्तलोचना, मस्त आंखोंवाली।

मदिरागृह (सं० क्ली०) मदिराया गृहम्। मद्यसन्धान-गृह, शराबखाना।

मदिराश्व (सं० पु०) १ विराटराजाके एक सेनापतिका नाम। (भारतउदयोगप०) २ हिरण्यहस्तके श्वसुर प्राचीन राजाका नाम। (भारत अनुशा० १४८ अ०)

मदिष्ठा (सं० स्त्री०) मदोऽस्या अस्तीति मद-इनि इयमतिशयेन मदिनीति इष्ठन्, इनो लोपः, टाप्। मदिरा, शराब।

मदिष्णु (सं० त्रि०) मत्ततायुक्त प्रफुल्ल, नशेमें आनन्द होनेवाला।

मदी (सं० स्त्री०) मृद्नाति चूर्णीकरोति कृष्टक्षेत्रलोष्टादिकमिति मृद् इन, कृदिकारादिति पक्षे ङीष् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ चषकवस्तु, शराब पीनेका बरतन। २ कृषक वस्तु, हलका फाल।

मदीना (अ० पु०) अरबके एक नगरका नाम। यहां मुसलमानी मतके प्रवर्त्तक मुहम्मदसाहबकी समाधि है।

मदीय (सं० त्रि०) मम इद अस्मच्छब्दादीय। मत्सम्बन्धी, मेरा।

मदीयून (फा० पु०) कर्जदार, वह जो देनदार हो।

मदीला (हिं० वि०) नशीला, नशेसे भरा हुआ।

मदुकल (हिं० पु०) दोहेके एक भेदका नाम। इसमें तेरह गुरु और बाईस लघु मात्रायें होती हैं। इसे गयंद भी कहते है।

मदुरा—मद्रास प्रेसिडेन्सीका एक जिला। यह मद्रास-से दक्षिण है। पहले हिन्दुओंके राजत्वकालमें इसका मधुरा या मधुरापुरी नाम था। अंग्रेजोंके शासनकालमें इसने जिलाका रूप धारण किया। इसका क्षेत्रफल ८७०१ वर्गमील है। यह अक्षा० ९° ६´ से १०° ४६´ उ० तथा देशा० ७७° ११´ से ७९° १९´ पू०के मध्य विद्यमान है। यह जिला छः परगनोंमें बंटा हुआ है। इनमें रामानन्द तथा शिवगङ्गा ही प्रधान है। मदुरा नगरमें जिलेका सदर विचारालय मौजूद है।

इस जिलेके पश्चिम तथा उत्तरकी ओर पश्चिमघाटकी पहाड़ियां घेरे हुई हैं। इसके दक्षिण और पश्चिम कोने पर स्थित तिवाङ्कुरका पहाड़ उसका एक अंश है। शेषोक्त पहाड़की पलनी शाखा इसी जिलेके अन्तर्गत है। वहांके रहनेवाले उसे बराह पर्वत कहते हैं। निकट ही इसके कई सर्वोच्चशिखर आठ हजार फोटसे भी अधिक ऊंचे हैं। इन शिखरोंके बीचमें कोई सात हजार फीटकी एक अधित्यका मौजूद जो प्रायः पचास कोस होगी। यहां अंग्रेजोंके उद्योगसे काफी बोई जाती और उत्पन्न की जाती है तथा इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है। यहांके कोदैकाजल नामक स्थानमें अङ्गरेज लोग गर्मीके दिनोंमें हवा खाने जाते हैं। इसके पूर्वकी ओर नट्ट-ग्रामके समीप शिरुमलय, करुण्ठ मलय, नाट्टम् और अलगढ़गिरिश्रेणी है। इनका सर्वोच्च शिखर चार हजार चार सौ फीट है। इन सब पहाड़ोंमें पहले मनुष्य रहते थे। इस समय जलवायुके परिवर्त्तनसे यहांके स्वास्थ्यमें व्याघात उपस्थित हुआ है। इसलिये मनुष्य अब यहां नहीं रहते। सिवा इन पहाड़ोंके मदुरा नगरके आसपास और भी कई पहाड़ दिखाई देते हैं। उनमें गिरिदुर्ग शोभित दिण्डागल तथा अनमलय या हस्ती पर्वत और मुसलमानोंके परम पवित्र स्कन्धमलय पहाड़ उल्लेखनीय है। स्कन्धाचलमें एक मुसलमान-फकीरका समाधि-मन्दिर है।

दक्षिणसे पूर्व बहनेवाली वैगाई ही यहांकी प्रधान नदी है। इस नदी-तट पर मदुरानगर बसा हुआ है। सुरुली, बराह नदी और वड्डिल्लगुण्डु वैगाई नदीका कलेवर बढ़ाती रहती हैं। सिवा इसके गुण्डु और वर्षलाई नामक और भी दो नदियां बाढ़के पानीसे उमड़ आतीं और सागरकी ओर दौड़ती हैं। अन्यान्य समय इनमें कुछ ही धारा

बहती है। इसी समय इनका जल रोक कर खेत पटाया जाता है।

सारे जिलेमें १०९८ वर्गमील भूमि पहाड़ और वन है। इस वनका एक तृतीयांश अङ्गरेजोंके अधिकारमें है। पलनी पहाड पर शाल वृक्षके सिवा सुपारी, इलायची, दालचीनी और काली मिर्चके भी पेड़ दिखाई देते हैं। पहाड़ोंमें तरह तरहके पत्थरके टुकड़े भी पाये जाते है। इनमें तरह तरहके ओपाल, संगमरमर, कैलसिड़ोनी, जेस्पाड़ और गार्नेट प्रधान है। खनिज पदार्थोंमें सोरा, नमक, चूना और लोहेका कारोबार ही अधिक है। पलनी पहाड़को धोती हुई जो धारायें बहती हैं, उनमें सोना भी पाया जाता है।

मदुरा राज्यका प्राचीन इतिहास पाण्ड्य राज्यसे विजड़ित है। मधुरापुरमें पाण्डवराजकी राजधानी थी। यूनानी भौगोलिक टलेमी और परिप्लोसके लिखे विवरणसे पाण्ड्य-राजवंशकी समृद्धि मालूम होती है। मधुरापुरीके स्थल-विवरणमें पाण्ड्य राजवंशका जिक्र दिखाई देता है। इसके अधिकांश स्थानोंमें पौराणिक उपाख्यानोंकी भरमार है, इसीसे इस पर साधारणको अविश्वास उत्पन्न हुआ है। किंतु इससे दाक्षिणात्यमें शैवधर्मका प्रचार तथा शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठाका आभास मिलता है। पुरातत्व विभाग द्वारा प्राप्त शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंसे भी मदुराके पाण्ड्यराज्यका पूरा परिचय मिलता है। इससे मालूम होता है, कि ईसामसीहसे पांच सौ वर्ष पहलेसे ले कर ११वीं शताब्दी तक पाण्ड्यराजवंशका शासन था। दाक्षिणात्यमें राजा राजेन्द्रचोलके अभ्युदयसे पाण्ड्यराजका तेज धीमा पड़ गया। १३वीं शताब्दीमें इस राज्यवंशके अन्तिम राजा सुन्दर पाण्ड्य अपने पिताके सिंहासन पर बैठे। इनके ही राजत्वमें मालिक नायब काफूरने मदुरा पर अधिकार किया। इसके बाद मदुरा पर आठ मुसलमानोंका शासन कायम रहा। मुसलमानोंकी शक्तिके ह्रास होनेके समय १३७२ ई०में कम्पनउदैयाने बलपूर्वक मदुराका सिंहासन छीन लिया। १४०४ ई० तक यह नगर इसी वंशके हाथमें रहा। १४०४—५१ ई० तक यहां दो नायक राज और १४५१से १४६६ ई० तक फिर एक बार पाण्ड्यराजवंशके चार राजाओंने राज्य किया। इसके बाद १४६६-१५५८ ई०में फिर नायकोंका राज्य हुआ। पाण्ड्य शब्द देखो।

चोल और पाण्ड्यवंशका पराभव तथा मुसलमानोंकी शक्तिहीनता देख कर विजयनगरके राजाने शिर उठाया। पीछे इस राज्यने दाक्षिणात्यमें एक विशाल हिंदू-साम्राज्य स्थापित कर लिया था। १६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें विजयनगरके राजाने नायकवंशके प्रतिष्ठाता विश्वनाथ नायकको इस राज्यशासनमें नियुक्त किया था। विश्वनाथने अपने बल पौरुषसे केवल मदुराके सिंहासनको ही उज्ज्वल नहीं किया था, वरं अपने राज्यको उन्होंने ७२ सरदारोंमें विभाग कर ७२ बुर्जों द्वारा इस नगरकी रक्षा की थी। १५५९-६३ ई० तक विश्वनाथने मदुराके सिंहासन पर आरूढ़ रह कर जिस राज्यका विस्तार किया था, उसीको उनके वंशधरोंने बेरोक टोक भोग किया था। इस वंशके राजा तिरुमलने १६२३-५९ ई० तक अपने बाहुबलसे दाक्षिणात्यके तिन्नेवली, त्रिवाकुंर, कोयम्बतुर, सलेम और त्रिचनापल्ली आदि राज्यों पर अधिकार कर अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखा था। जेसुइट धर्मसम्प्रदाय इनके बलवीर्य्यकी बात भली भांति वर्णन कर गया है।

राजा तिरुमलने जिस छोटे साम्राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, उसके राज-करसे उन्होंने सेना-विभागकी उन्नति कर अपने बलको बढ़ाया। इनके द्वारा मदुरा नगर नाना राजकीय चिह्नोंसे विभूषित हुआ था। उस समयकी अट्टालिकाओंके भग्नावशेष अब तक मौजूद हैं।

इसके बाद मदुराराजने विजयनगराधिपके हाथसे निकलना चाहा। इस सूत्रसे मुसलमानोंके साथ उनका एक खण्ड युद्ध हुआ। सुलतानसे पराजित हो कर उन्होंने राजकर दे छुटकारा पाया। राजा तिरुमलके ही अन्तिम समयमें मैसूरका एक प्रबल आक्रमण हुआ। इससे यह बहुत दुःखित हुए थे। भेदमन्त्रकुशल तिरुमलने अपने राज्यमें भेद-भावकी जैसी सृष्टि की थी, कि उसीके फल स्वरूप उनके मृत्योपरान्त दाक्षिणात्यके समूचे राज्य पर मुसलमानोंका राज्य हो गया।

तिरुमलकी मृत्युके बाद मदुरा राज्य छिन्न भिन्न हो गया। महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीके भाई एकोजीके तञ्जोर-आक्रमण, मैसूरमें उदैयाराजवंशके और मुसलमानराज हैदर अलीके आधिपत्य तथा कर्णाटकके नवाबोंकी राज्य-लिप्सा ही मदुरा राज्यकी अवनतिका प्रधान कारण है। १७४० ई०में चांद साहबने मदुरा पर आक्रमण किया। तभीसे मदुरासे नायकवंशका अधिकार जाता रहा। इसके बाद २० वर्ष तक मुसलमान और मरहठोंके बार बार आक्रमणसे मदुराराज्य तहस नहस हो गया। १७६२ ई०में कर्णाटक राज वालाजाके प्रतिनिधिरूपमें अङ्गरेज-कम्पनीने इस जिलेका कुल भार अपने हाथ ले लिया। कर्णाटकके उक्त शेष स्वाधीन नवाबने १८०१ ई०में उक्त प्रदेशका शासनभार सब तरहसे इष्ट-इण्डिया कम्पनीके हाथ सुपुर्द किया। १७९० ई०में युद्धविग्रहके बाद दिण्डिगल तालुक महिसुर-राजशासनसे अलग कर लिया गया।

रामनाद और शिवगङ्गा सामन्तराज्यका विस्तृत इतिहास इस प्रकार है—रामनादके सेतुपति-वंशीय सरदार रामेश्वर-मन्दिरके सेवाइत थे। इन लोगोंका कहना है, कि अयोध्यापति रामचन्द्रने उनके पूर्वपुरुषको इस मन्दिर-की अध्यक्षता प्रदान की थी। इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि सेतुपति राजाओंकी पाण्ड्य-राजवंशके साथ गाढ़ी मित्रता थी। नायकराजाओंके अधिकारकालमें ये सब सेतुपतिसरदार ७२ पलिगा सरदारके प्रधान समझे जाते थे। मरवर नामक रामनादके दुर्द्धर्ष अधि-वासीको सहायतासे नायकवंशने अपनी राजमर्यादाकी रक्षा करते हुए वर्षों राज्यशासन किया था।

१६५९ ई०में तिरुमल-राजकी मृत्यु होने पर राज्यमें तमाम अशान्ति फैल गई। इस राष्ट्रविप्लवके समय भी सेतुपति अपने वंशानुचरित सरल और सहृदय व्यवहार दिखला गये हैं। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कई बार दुर्भिक्ष पड़ा जिससे रामनाद उजाड़-सा हो गया। कृषि-कार्यके अभाव और राजनैतिक अन्तर्विप्लवसे रामनादका राजतन्त्र छिन्न भिन्न हो गया।

१७२९ ई०में राज्यका कुछ अंश प्रकृत उत्तराधि-कारियोंके और कुछ एक विद्रोहिसामन्तके अधिकारभुक्त हो गया। इस सामन्तके वंशधरगण शिवगङ्गाके राजा कहलाने लगे।

अङ्गरेजो अधिकारके प्रारम्भमें इन दोनों सामन्त-वंशोंके बीच घोर विवाद चलता रहा। इससे दोनों पक्षकी महती क्षति हुई और राजकोष भी खाली हो गया। कोर्ट आव वार्डके अधीन रह कर रामनादकी अच्छी उन्नति हुई, किन्तु शिवगङ्गा-राजकार्य ढीला पड़ गया।

मदुरामें ईसाधर्मका प्रचार दाक्षिणात्यके इतिहासमें एक प्रधान घटना है। इस सुप्राचीन धर्मप्रचारकालके लिखित विवरणमें हम मदुराके प्रकृत इतिहासकी कुछ धारावाहिक घटनाओंका समावेश देखते हैं। १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मदुरामें एक जेसुइट ईसा-सम्प्रदाय-का एक गिरजा प्रतिष्ठित हुआ। यहां एक पुर्त्तगीज-धर्मयाजक कुछ निम्नश्रेणीके मल्लाहोंको ईसाधर्ममें दीक्षित कर अपना जातीय कार्य चलाने लगा। १६०६ ई०में राबर्ट डि नोबिलि मदुरापरिदर्शनमें आये। मदुरावासी जनसाधारणकी धर्मभक्ति देख कर इनने अपनेको हिन्दू-धर्मप्रचारक घोषित करना चाहा। इस उद्देशको सिद्ध करनेके लिये उनने क्रुङ्गानूरके धर्माध्यक्ष (Arch-bishop of cranganore)-की सलाह ली और उन्होंकी सलाहके अनुसार संन्यासीका वेश धारण कर पूर्ण ब्रह्मचर्य अवलम्बन किया। इस समय वे केवल थोड़ा चावल, दूध और साग खा कर रहते तथा निर्जन स्थान-में रह कर योगसाधन किया करते थे। उनके इस योगावलम्बनका स्वतन्त्र उद्देश्य था। ऐसे निर्जन अन्त-रालमें रह कर उन्होंने तामिल भाषा सीख ली थी।

धीरे धीरे इस पवित्र भाषान्तरकी कथा चारों ओर फैल गई। झुण्डके झुण्ड लोग उनका धर्ममत जाननेके लिये आने लगे। उन्होंने अपनेको रोमका कुलीन ब्राह्मण-वंशीय बतला कर जनतामें परिचय दिया और यह भी कहा, कि जातिके फरासी होने पर भी वे ईश्वराराधनाके निमित्त गुरुरूपमें रोमसे भारतवर्ष भेजे गये हैं। भक्त हिन्दुगण उनके ब्रह्मचर्य, ज्ञानगभीरता, तामिलशास्त्रमें व्युत्पत्ति और बुद्धिवृत्तिकी परिस्फुटता देख कर मुग्ध हो गये। एतद्भिन्न अवधूतकी तरह उनकी वेशभूषा देख

कर भी उनके प्रति जनताकी विशेष भक्ति और विश्वास उत्पन्न हो गया था। ईसाधर्मके निदर्शनस्वरूप वे तीन सोनेके और दो चांदीके क्रोशचिह्न धारण करते थे।

उनके मोहनवाक्य पर मोहित हो कर उस देशके प्रायः अधिकांश लोग उनके चलाये हुए ईसाधर्ममें दीक्षित हुए थे। वह प्रपंची हिन्दुओंकी चिरप्रचलित क्रियापद्धतिके किसी भी विषयमें हस्तक्षेप नहीं करता था। इस प्रकार जनताको प्रसन्न करके उसने दाक्षिणात्यमें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। स्वयं राजा तिरुमलने उसकी मनोहर वक्तृता पर मुग्ध हो कर उनके कार्यमें सहानुभूति दिखलाई थी। इस धर्मप्रचारके लिये जेसुइट प्रवरने 'कुन्दन' नामसे तामिल भाषामें एक ईसा-धर्म-ग्रन्थ प्रचार किया। यहां तक कि इसने 'बाइविल' ग्रन्थका संस्कृतमें अनुवाद करा कर उसे यजुर्वेदका एक अंश साबित करनेकी चेष्टा की। प्रायः ४० वर्ष तक कठोर परिश्रम करनेके बाद उसने १६६० ई०में मन्द्राजके निकटवर्त्ती एक गण्डग्राममें जीवनलीला संवरण की। जीवनके शेष दिन तक उसने बहुत दीन भावसे ही कालयापन किया था। तामिल भाषामें बनाये हुए उनके कुछ धर्मग्रन्थ प्रचलित हैं।

उनकी मृत्युके बाद ज़ान डि ब्रिटो नामक किसी पुर्त्तगीजने दाक्षिणात्यमें ईसा-धर्मका प्रचार किया। उन्होंने असभ्य मरावर जातिको सभ्य बनानेके लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था। साम्प्रदायिक द्वेषवशतः वे सेतुपतिराजके आदेशसे १६९३ ई०में मारे गये। इस जेसुइट सम्प्रदायके शेष धर्मयाजक बेसचो (Beschi)-ने मदुरामें रह कर तामिल व्याकरण और कुछ साहित्य प्रणयन किये।

राजा तिरुमलके शासनकालमें कुछ पथ और छत्र बनाये गये। अपने राज्यकी उत्तरी सीमा उक्कातुरसे ले कर दक्षिणी सीमा सेतुपति तक एक बहुत लम्बी चौड़ी सड़क बनवा कर उन्होंने यात्रियोंकी सुविधाके लिये बीच बीचमें एक छत्र स्थापन किया। स्थानीय लोगोंकी सुविधाके लिये वे बहुत-सी पुष्करिणियोंका संस्कार और कूप खनन कर गये थे। एतद्भिन्न मधुराका राजभवन, वसन्तमण्डप, तेप्पाकुलम, पुष्करिणी, मीनाक्षीदेवीका मन्दिर और कुछ गोपुर उनकी कीर्त्तिके निदर्शन हैं।

मधुरापुरी सुन्दरलिङ्गके मन्दिर और तिरुमल नायकके प्रासादके लिये प्रसिद्ध है। सुन्दरलिङ्गके उत्पत्तिविषयमें स्थलपुराणमें जो विवरण दिया गया है वह इस प्रकार है—

त्रेतायुगमें एक दिन देवनर्त्तकियां इन्द्रालयमें नाच कर रही थीं, इन्द्र मन लगा कर उसे देख रहे थे। इसी समय देवगुरु वृहस्पति वहां पधारे, पर इन्द्रका मन नाच गानमें ऐसा आकृष्ट था, कि वे उनका कुछ भी सत्कार न कर सके। इस पर देवगुरु वृहस्पतिने अपना अपमान समझा और उसी समय गुरुत्वपदका त्याग कर तपस्याको चल दिये। इन्द्रने जब सारा वृतान्त ब्रह्मासे जा कहा, तब पितामहने उन्हें विश्वरूप नामक त्रिशिराको गुरु बनानेका आदेश किया। इधर वृहस्पतिकी खोजमें कुछ दूत छूटे। त्रिशिरा त्वष्टाके पुत्र थे, पर दौहित्र थे दैत्यकुलके। देवगुरुका पद पा कर वे यज्ञमें आहुति देनेके समय प्रकाश्यरूपमें देवताओंको और अप्रकाश्यरूपमें अपने मातामहकुलकी मङ्गलकामना करते थे। देवराजको इस बातका पता लगने पर वे बड़े बिगड़े और उनका शिर काट डाला। त्रिशिरा ब्राह्मण थे, इस कारण इन्द्रको ब्रह्महत्याका पाप लगा। पीछे देवताओंकी सहायतासे उन्होंने उस पापको चार भागोंमें विभक्त कर उद्भिद, स्त्री, जल और पृथिवी पर फेंक दिया और इस प्रकार वे ब्रह्महत्यापापसे मुक्त हुए। उसी समयसे उद्भिदसे निर्यास, स्त्रीसे रज, जलसे फेन और पृथ्वीसे क्षारमृत्तिका (सज्जी मट्टी) उत्पन्न हुई। इन्द्र पापसे विमुक्त तो हो गये, पर एक दूसरी विपद्ने उन्हें आ घेरा। त्वष्टाने पुत्रनिधन पर दुःखित हो एक दूसरे बलिष्ठ पुत्रलाभके उद्देशसे पुत्रेष्टि यज्ञ ठान दिया। यज्ञके फलसे उनके एक असीम पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम वृत्र रखा गया। वृत्रने धीरे धीरे इन्द्रको परास्त कर त्रिलोक पर अधिकार जमाया। इन्द्रने कोई उपाय न देख चतुराननके उपदेशसे विष्णुकी शरण ली। पद्मनाभने इन्द्रको दधीचि मुनिकी अस्थिसे वज्रायुध बना कर वृत्रके साथ युद्ध करनेका आदेश किया। इन्द्रने उसी उपायसे वृत्रका बध किया था। वृत्रमें ब्राह्मणत्व रहनेके

कारण इन्द्र इस बार भी ब्रह्महत्याके पापमें लिप्त हो कर महाकष्ट पाने लगे। अब निरुपाय इन्द्र स्वर्ग त्याग कर पृथिवी पर आये और पद्मकर्णिकामें छिप रहे। शासनकर्त्ताके अभावमें स्वर्गमें अराजकता देख देवताओंने वृहस्पतिकी शरण ली। वृहस्पति उनका पूर्व अपराध क्षमा कर इन्द्रके अन्वेषणमें निकले। जब पद्मवनमें एक दूसरेसे भेंट हो गई, तब वृहस्पतिने पापक्षयके लिये उन्हें भूलोकमें तीर्थपर्यटन करनेका आदेश दिया। अनन्तर तीर्थ-पर्यटन, दर्शन और स्नान करते करते वे कल्याणपुरके निकट कदम्ब वनमें आये। यहां आते ही ब्रह्महत्या-पाप उनके शरीरसे जाता रहा। पाप-मुक्तिका कारण जाननेकी मनशासे इन्द्रने कदम्ब वनकी तलाश करते करते एक अनादिलिङ्गको देख पाया। बाद उन्होंने विश्वकर्माको बुला कर उक्त लिङ्गके ऊपर एक मन्दिर बनवा दिया। लिङ्गका नाम सुन्दर रख कर इन्द्रने वृहस्पति द्वारा वैदिक मतसे उनकी पूजा कराई।

उनकी पूजासे सन्तुष्ट हो कर सुन्दरलिङ्गने उन्हें दर्शन दिये। इन्द्रने भी साष्टाङ्ग प्रणिपात हो कर 'प्रतिदिन आपकी पूजा कर सकें' इस प्रकार प्रार्थना की। महादेवने आदेश किया कि, स्वर्गमें बहुत दिनोंसे अराजकता फैली हुई है, सिर्फ पूजा करनेके निमित्त राज्यका त्याग कर यहां रहनेकी जरूरत नहीं। वर्षमें एक बार वैशाखी पूर्णिमाको स्वर्गसे आ कर पूजा करनेसे वर्ष भरका पूजाफल लाभ होगा, अभी अपने राज्यको लौट जावो।

इस प्रकार आदेश दे कर शिवजी अन्तर्हित हो गये। पीछे इन्द्र भी स्वर्गको लौटे। तभीसे इन्द्र वर्षमें एक बार वैशाखीपूर्णिमाको कदम्ब वन आते और शिवकी पूजा कर वापस जाते थे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। कुलशेखर पाण्ड्यराजके शासन-कालमें धनञ्जय नामका एक वणिक् रहता था। वह एक दिन कहींसे आ रहा था। कदम्ब वनके निकट कल्याणपुरमें राह भूल गया। इस प्रकार कुछ समय भटकते रहनेके बाद उसने शामको कदम्ब वनमें पूर्वोक्त मन्दिरका लिङ्ग देखा। रात वहीं पर बिता कर जब सवेरा हुआ, तब वह राजाके समीप आया और इसकी खबर दी। राजाने उस वनमें राजधानी बसाई और महालिङ्गकी पूजापद्धतिका मर्त्यलोकमें प्रचार किया। ऋषिके रूपमें महादेव उसी रातको राजाके समीप आये और मन्दिरका संस्कार करनेका आदेश किया। तदनुसार राजाने जंगल काट कर वहां राजधानी बसाई और देवालयका संस्कार किया। काशीसे ऋत्विक्को बुला कर महालिङ्गकी पूजाका नियम कराया गया। राजधानीका नाम क्या रखा जायगा, राजा इसकी चिन्ता करने लगे। इसी समय महादेवने प्रत्यक्ष हो कर नई पुरीमें अपने मस्तक परका अमृत छिड़क दिया। यह देख कर राजाने राजधानीका मधुरापुरी नाम रखा। इस प्रकार राजा कुलशेखर द्वारा सुन्दरलिङ्गकी पूजा मर्त्यलोकमें प्रचारित, मधुरापुरी निर्मित और वह पाण्ड्यराजाओंकी राजधानीरूपमें परिणत हुआ। यह घटना कब घटी थी, मालूम नहीं।

स्थलपुराणके मतसे जब अयोध्यापति दाशरथि श्रीरामचन्द्र पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षके लिये वनमें आये और जब लङ्काधिपति रावणने पञ्चवटी-वनमें सीताको हरण किया, तब रामचन्द्रने सुग्रीवके साथ मित्रता करके सीताकी तलाशमें लङ्काकी यात्रा कर दी। राहमें अगस्त्य मुनिके आदेशानुसार मधुरापुरीमें ठहर कर उन्होंने सुन्दरदेवकी पूजा और आराधना की थी।

इस समय राजा अनन्तगुणपाण्ड्य मधुरापुरीमें राज्य करते थे। ये कुलशेखरसे ११ पीढ़ी नीचे थे। अतएव स्थलपुराणके मतानुसार मधुरापुरी त्रेतायुगमें स्थापित हुई। पहले ही कहा जा चुका है, कि राजा कुलशेखरने पुरीका निर्माण कर काशीसे ब्राह्मणको बुलाया और सुन्दरदेवको पूजाका प्रबन्ध कर दिया। इससे बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि कुलशेखर पाण्ड्यराजके समय दक्षिणदेशमें वैदिक ब्राह्मण नहीं थे और उन्हींके समय आर्यावर्त्तसे ब्राह्मणने आ कर दक्षिणदेशमें उपनिवेश बसाया।

अति प्राचीनकालसे दक्षिणदेशमें शिवलिङ्गका जैसा बहुलप्रचार देखनेमें आता है उससे यह भी साबित हो सकता है, कि वह द्राविड़ अर्थात् तामिलोंका देवता था। आर्यब्राह्मणोंने दक्षिणदेशमें आ कर उसका प्रचार

तमाम देखा और उसे अपना देवता बना लिया। चिदम्बर-माहात्म्यमें लिखा है, कि पञ्चम मनुके पुत्र जब श्वेतवर्ण चिदम्बरतीर्थमें स्नान करनेके बाद हिरण्यवर्णके हो गये तब उन्होंने काशीसे तीन हजार ब्राह्मण मंगाये थे; यह भी पूर्व अनुमानका पोषक-सा मालूम होता है।

इसमें ६ गोपुर हैं जिनमेंसे एक १५२ फुट ऊंचा है। इस देवालयका प्राकार पूर्व-पश्चिममें ७४४ फुट और उत्तर-दक्षिणमें ८३७ फुट है। कहते हैं, कि विल्वबनाथी-वंशीय राजाओंने बाहरके बड़े प्राकार और चार गोपुर बनवा दिये थे। जो सब नये मण्डप दिखाई देते हैं वे विश्वनाथ नायककी कीर्त्ति हैं। अरियनायक सहस्र स्तम्भ-मण्डप बनवा गये हैं। मृत्युञ्जय नामक ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है, कि तिरुमल नायकने गर्भगृहसे ले कर कपालीदेवीके मन्दिर तक कुल नया बनवा दिया था और उन्हींके समयमें यह देवालय उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था।

पहले शिवगङ्गातीर्थका जलस्पर्श करनेके बाद विश्वेश्वर सुन्दरलिङ्ग और मीनाक्षीदेवीके दर्शन तथा अर्चनादि करने होते हैं। इसके बाद यात्रिगण सहस्र स्तम्भ-मण्डप और बसन्तमण्डप देखने जाते हैं। इसे तिरुमल नायकने २० लाख रुपये खर्च कर बनवाया था। इसकी लम्बाई १०० गज और चौड़ाई २० गज है। इसकी छत १२० प्रस्तरखम्भों पर अटकी हुई है, प्रत्येक स्तम्भ २० फुट ऊंचा है।

इस मण्डपमें जल निकलनेको नाली भी दौड़ गई है। यहां सुन्दरलिङ्गदेवका वसन्तक्रोड़ा-उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव बैशाखी शुक्लापञ्चमीसे ले कर पूर्णिमा तक दश दिन महासमारोहसे सम्पन्न होता है। उस समय उक्त नाली जलसे भरी रहती है, क्योंकि, इससे वहांकी गरम हवा जलके संयोगसे ठंढी होगी। इस वसन्त-उत्सव-मण्डपके स्तम्भमें दश प्रकारकी मूर्त्ति खोदित है जिनमें तिरुमल और उनसे पहले नौ पुरुषकी तथा उनकी धर्मपत्नियोंकी मूर्त्ति विद्यमान हैं। कहते हैं, कि उन सब मूर्त्तियोंका निर्माण-कार्य १६२४-२६ ई०से आरम्भ हो कर १६४६ ई०में शेष हुआ था।

देवालयके पात्र और अलङ्कारादि देखने लायक हैं। पात्रका मूल्य ५००००) हजार रु० और मणिमुक्तादिका करीब डेढ़ लाख रुपयेसे अधिक होगा। वहांसे तिरुमल नामका राजभवन देखा जाता है। राजभवनका अभी सिर्फ एक अंश विद्यमान है। दूसरे अंशको उनके पोते शोक्यनाथने तोड़ फोड़ कर उसके मसालेसे त्रिशिरापल्ली-दुर्गके मध्य राजभवन बनवाया था। पुराने राजभवनको अभी मरम्मत करा कर उसमें सेशन जजकी कचहरी लगती है। यह भवन दो अंशोंमें विभक्त तथा देखने लायक है।

इसके बाद वहांसे तेप्पनकुलम नामक बृहत् पुष्करिणी नजर आती है। यह पुष्करिणी राजभवनसे डेढ़ मील पूर्व-उत्तर पड़ती है। इसकी लम्बाई सब ओर १२०० गज करके है। चारों ओर उत्तम ग्रेनाइट प्रस्तरकी सीढ़ी और सबसे ऊपरमें एक ग्रेनाइट पत्थरका कलस है। बीच बीचमें देवघोटक, मयूर और अन्यान्य पशुमूर्त्ति सुशोभित हैं। कलसके चारों ओर घूमनेका एक चौड़ा रास्ता है। वहां शामको लोग हवा खाने जाते हैं। पुष्करिणीके मध्यस्थलमें एक उपद्वीप है जो चारों ओर पत्थरसे बंधा हुआ है। इसके ऊपर मध्यस्थलमें दो मंजिला देवालय और चारों कोनमें चार छोटे छोटे कारुकार्यविशिष्ट देवमन्दिर हैं। मध्यस्थलमें रास्ता है और रास्तेकी बगलमें तरह तरहकी गुल्मलताएं शोभा दे रही हैं।

उत्सवके समय एक दिन देवालय और पुष्करिणीके चारों ओर लाख बत्ती जलाई जाती है। उस दिन शामको सुन्दरलिङ्ग मीनाक्षीदेवीके साथ रथ पर चढ़ कर उपद्वीपके चारों ओर भ्रमण करते हैं।

वहांसे ५ मील दूर तिरुपरङ्कुन्द्रमसे कन्थमलके पार्श्वदेशमें एक शैवमन्दिर है। यह मन्दिर भी देखने लायक है।

मधुराका प्रधान उत्सव बैशाखी शुक्लपञ्चमीसे ले कर पूर्णिमा तक रहता है। पहले देवराज इन्द्र उक्त पौर्णमासीको ईश्वरकी पूजा करते थे, तदनुसार बारह दिन तक उत्सव मनाया जाता है। यहांके लोगोंकी धारणा है, कि उक्त पौर्णमासीको सुन्दर लिङ्गकी अर्चना करनेसे सम्बत्सर अर्चनाका फल लाभ होता है। यही कारण

है, कि हर दिन ३०।४० हजार मनुष्य जमा होते हैं।

इस जिलेमें ५० शहर और २५२३ ग्राम लगते हैं। अधिवासियोंमें [illegible] कर्षक हैं। वेल्लाल, मरावर और कल्लर जाति ही प्रधान है। वेल्लालगण साधारणतः कृषिजीवी हैं। प्रवाद है, कि पाण्ड्यराजाओं द्वारा ये लोग इस देशमें लाये गये हैं। [illegible] विशुद्ध [illegible] बातचीत करते हैं। बहुतसे इन्हें द्राविड़ीय जातिकी शाखा बतलाते हैं। मरावर और कल्लरगण पणियवान नामसे प्रसिद्ध हैं। समुद्रोपकूलवर्ती रामनाद और शिवगङ्गाके मध्य मरावर जातिका वास देखा जाता है। इनके शारीरिक गठन और उपधर्म वैचित्र्यका लक्ष्य करनेसे मालूम होता है कि ये लोग ही यहांके आदिम अधिवासी हैं। ये लोग रामनाद और शिवगङ्गाके राजाओंको ही अपना सरदार मानते हैं। वृटिश-शासनके पहले इन्होंने युद्धकौशल द्वारा वीरताका परिचय दिया है। अन्यान्य द्राविड़ीय जातिकी तरह ये लोग शवको गाड़ते और विधवा-विवाह करते हैं।

कल्लरगण दस्युवृत्ति द्वारा जीविका चलाते हैं। पदुकोटा सामन्तराज्यमें इनका प्रधान अड्डा है। ये लोग ऐसे उद्धत और दुर्द्धर्ष हैं, कि कभी कभी अङ्गरेजोंके भी विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार अङ्गरेज-सेनापति पर आक्रमण कर ये कई बार वीरताका परिचय भी दे गये हैं। ये लोग किस जातिसे उत्पन्न हुए हैं उसका आज तक भी निर्णय नहीं हो सका है। पार्वतीय असभ्य जातिकी तरह भूतप्रेतादि उपदेवताकी उपासना करना ही इनका धर्म है। एतद्भिन्न मुसलमानोंकी तरह सुन्नत कराते और स्त्रियां अनेक स्वामी बना सकती हैं।

विद्याशिक्षामें यह जिला मान्द्राजप्रांतके मध्य छठा है। प्राइमरी स्कूल और सेकेण्ड्रीके अलावा दो शिल्प-कालेज भी हैं। लगभग चार लाख रुपये प्रतिवर्ष विद्याशिक्षामें खर्च होते हैं। जिलेमें कुल मिला कर ५० अस्पताल हैं। मदुरा शहरमें जो अस्पताल है वही सबसे बड़ा है। नया जेलखाना, सिविल अस्पताल, जिला स्कूल और अमेरिकन प्रोटेष्टेण्टमिसनबोर्डि स्कूल देखने लायक है।

यहांका जलवायु शुष्क, उष्ण और सर्वदा परिवर्तनशील है। जाड़ा बहुत कम पड़ता और वर्षा ज्यादा होती है। बीच बीचमें अतिशय ज्वरका प्रादुर्भाव भी देखा जाता है। जब रामेश्वर जानेवाले यात्रियोंकी बहुत भीड़ लगती है, तब विसूचिकाका प्रकोप देखा जाता है।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ९° ४५' से १०° १२' उ० तथा देशा० ७७° ५१' से ७८° १८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४४६ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखसे ऊपर है। इसमें मदुरा नामक एक शहर और २८३ ग्राम लगते हैं। वेगाई नामकी नदी तालुकके मध्य हो कर बह गई है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० ९° ५५' उ० तथा देशा० ७८° ७' पू० वेगाइनदीके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। यहां ईसाजन्मके पहलेसे पाण्ड्यराजाओंकी राजधानी थी। उस समयसे यह नगर राजनैतिक उन्नति और धर्मविस्तारका केन्द्रस्थल हो गया था। राजा तिरुमल के अधिकारमें यहां नाना कारुकार्ययुक्त जो सौधमाला बनाई गई थी उसका शिल्पनैपुण्य देखनेयोग्य है।

मधुरा-स्थल पुराणमें इस स्थानका माहात्म्य गाया गया है। यह दाक्षिणात्यका मथुरा वा मधुरापुरी नामसे प्रसिद्ध है। प्रभेद इतना ही है, कि यह विष्णुक्षेत्र न कहला कर शैवक्षेत्र कहलाता है। यहांके रामेश्वर, सुन्दरेश्वर और मीनाक्षीदेवीका माहात्म्य ही पवित्र है। स्थलपुराणमें मधुरानगरकी प्रतिष्ठा और देवक्षेत्रकी पवित्रता कीर्त्तित हुई है।

१४वीं शताब्दीमें मदुरानगर पर मुसलमानोंने आक्रमण किया। उनके अत्याचारसे अधिवासियोंके नाकोंदम आ गया था। उन्होंने सुन्दरलिङ्ग-मन्दिरके बहिर्भागको ध्वंस कर अपनी देवद्वेषिता चरितार्थ की। अलावा इसके इस सुवृहत् मन्दिरके १४ शिखर, गोपुर तथा अन्यान्य मन्दिरादि भी तोड़ फोड़ डाले गये। किन्तु सौभाग्यक्रमसे सुन्दरेश्वर और मीनाक्षीदेवीके गर्भगृह पर उन आततायियोंकी दृष्टि न पड़ी।

मुसलमान लोग जब यहांसे वोरा-बधना ले कर भागे

तव मन्दिरके सेवाइत पूजकोंने देवोत्तर सम्पत्तिकी आयसे वर्त्तमान ४ गोपुर बनवाये थे। मन्दिरके ध्वंसावशेषकी आलोचना करके मि० फार्गुसन आदि प्रत्नतत्त्वगण चमत्कृत हो गये हैं। आज भी उत्तर-दक्षिणमें इसकी लम्बाई ८४७ फुट और चौड़ाई ७४४ फुट होगी। उसके चारों ओरके ६ गोपुरोंमेंसे एककी ऊंचाई १५२ फुट है। मदुराके नायकवंशके प्रतिष्ठाता विश्वनाथ नायकके सहकारी और सेनापति आर्यनायक वा नायक मुथली जो सहस्रस्तम्भमण्डप बनवा गये हैं उसका भास्करशिल्प और चित्रचातुर्य लिख कर प्रकाश नहीं किया जा सकता। जिन्होंने एक बार भी अपनी आंखोंसे उसे नहीं देखा है वे कुछ भी उपलब्ध न कर सकेंगे। अभी उस मण्डपमें ६६७ स्तम्भ विराजित हैं।

उक्त मन्दिरके अलावा राजा तिरुमलका प्रासाद, वसन्तमण्डप, तमकस् प्रासाद और तेप्पाकुलम् नामक दीर्घिका उल्लेखनीय है। सुन्दरेश्वरदेवको ग्रीष्मके समय स्थानान्तरित करनेके लिये वसन्तमण्डप बनाया गया था। तेप्पाकूलम् नामक ह्रदकी लम्बाई और चौड़ाई प्रायः २४०० हाथ है। वर्षमें एक बार इस पुष्करिणीके चारों ओर रोशनी जला कर सुन्दरेश्वर-मन्दिरकी प्रतिमूर्त्तियोंको नाव पर जलविहार कराया जाता है।

अङ्गरेजोंके अधिकारमें आनेसे मदुरानगरकी बहुत श्रीवृद्धि हुई है। वृटिश-सरकारने अपने खर्चासे तिरुमलप्रासादका संस्कार करके उसमें राजकीय कचहरी आदि स्थापन की।

मदुरा—आसामप्रदेशके कछाड़ जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह बराकनदीकी दक्षिणवाहिनी एक शाखामात्र है। उत्तर कछाड़ पर्वतमालासे यह नदी बोङ्गपाई नामसे निकल कर पीछे मदुरा कहलाने लगी है।

इस नदीकी पुण्यसलिलाके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती इस प्रकार प्रचलित है,—किसी समय कछाड़के कोई राजा अपने राज्यसे निकाल दिये गये। एक रातको उन्हें स्वप्न हुआ, 'कल सबेरे मदुरानदीमें स्नान करते समय जिस किसीको बहते देखोगे, उसको उठा लेना। उससे तुम्हारा कल्याण होगा।' सबेरे प्रातःकृत्यादि करके राजा मदुरानदीमें स्नान करने गये। स्नान कर चुकनेके बाद उन्होंने अपने सामने एक सांपको बहते देखा। राजाने स्वप्नानुसार उसकी पूंछका अगला भाग पकड़ा। देखते देखते वह सांप एक तेज तलवारमें परिणत हो गया। उस तलवारके प्रभावसे राजाने पुनः अपने खोये हुए राज्यका उद्धार किया। पीछे उस तलवारको एक मन्दिरमें रख कर वे रणचण्डी नामसे उसकी पूजा करने लगे। धीरे धीरे वह रणचण्डीदेवी समस्त कछाड़वासीकी कुलदेवी हो गई। वह देवीपीठ कछाड़ नगरमें स्थापित था। कछाड़-राज्यके वृटिश शासनभुक्त होने पर रानी उस तलवार और देवमूर्त्तिको बड़खोलामें उठा ले गईं। पीछे वह तलवार वहांसे चोरी हो गई। १८८२ ई०में कछाड़-विद्रोह इसी देवी अपहरणके लिये हुआ था।

मदुरा—यवद्वीपके पश्चिममें संलग्न एक छोटा द्वीप। दोनों द्वीपके बीच एक कोस तक एक नाली दौड़ गई है। भूतत्त्वकी आलोचना और यहांके प्राकृतिक अवस्थान द्वारा यह द्वीप यवद्वीपका एक अंश समझा जाता है। यहांके लोगोंका कहना है, कि भगवान्‌के अवतार श्रीकृष्ण और बलदेवकी जन्मभूमि मथुरानगरीके नामसे इस स्थानका मदुरा (मथुरा) नाम पड़ा है।

यव और बालिद्वीप देखो।

यहांके अधिवासी हर हालतमें यववासीके अनुरूप हैं। किन्तु उनकी भाषा यवभाषासे स्वतन्त्र है। इस द्वीपके पूर्वभागमें जो भाषा चलती है उसका नाम सुमनप है। उसमें बहुत कुछ स्पेनीय भाषा शामिल है। पश्चिमांश-वासीकी भाषा पुर्त्तगोजमिश्रित है जो मदुरा कहलाती है।

मदुरान्तकम्—१ मान्द्राजप्रदेशके चिङ्गलपट जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १२° १५´ से १२° ४६´ उ० तथा देशा० ७९° ३८´ से ८०° ९´ पू० बङ्गालकी खाड़ीके किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ५९६ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखके करीब है। इसमें ३ शहर और ५२४ ग्राम लगते हैं। पालार और किलियार नामकी नदी तालुकमें बहती है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२° ३१´ उ० तथा देशा० ७९° ५३´ पू० मान्द्राज शहरसे ५० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

मदोत्कट (सं० पु०) मदेन दानवारिणा उत्कटः। १ मत्त हस्ती, पागल हाथी। २ कपोत, कबूतर। (त्रि०) मदेन गर्वादिना उत्कटः। ३ मदोन्मत्त, नशेमें चूर। स्त्रियां टाप्। ४ मदोत्कटा, मदिरा। ५ अतसीक्षुप, तोसीका पौधा।

मदोदग्र (सं० पु०) मदेन हर्षेण दर्पेण, उदग्रः उग्रः। १ मत्त, मतवाला। स्त्रियां टाप्। २ नारी, स्त्री।

मदोद्धत (सं० त्रि०) मदेन मत्ततया उद्धतः। १ मत्त, नशेमें चूर। २ घमण्डी, अभिमानी।

मदोद्रेक (सं० पु०) वकायन, नीमकी जातिका एक पेड़।

मदोन्मत्त (सं० त्रि०) मदेन उन्मत्तः। १ मद द्वारा उन्मत्त, नशेसे पागल। (पु०) २ तन्त्रसारोक्त मन्त्र-भेद।

मदोल्लापी (सं० पु०) कोकिल, कोयल।

मद्गु (सं० पु०) मज्जतीति मस्ज् (भृ-मृ-शीतृ-चरिदिति। उण् १।७) इति उ। १ पक्षिविशेष, एक प्रकारका जलपक्षी। यह भारतवर्षके प्रायः सभी भागोंमें विशेष-कर पहाड़ी और जङ्गली प्रदेशमें होता है। इसकी लम्बाई पूंछसे चोंच तक ३२से ३४ इंच तक होती है। इसके डैने कुछ पीलापन लिए होते हैं। इसकी पूंछ काली, चोंच पीली और मुंह, कनपटी और गलेके नीचेका भाग सफेद तथा पैर काले होते हैं। इसे जलपाद और लमपुछार भी कहते हैं। इसके मांसका गुण वायु-नाशक; स्निग्ध, भेदक; शुक्रकारक, शीतल और रक्तपित्त-नाशक माना गया है। २ पर्णमृगभेद, पेड़ पर रहनेवाला एक प्रकारका जंतु। २ मद्गुरमत्स्य, मंगुरी मछली। ४ एक प्रकारका युद्धपोत, जंगी जहाज। ५ एक प्रकारका सांप। ६ एक वर्णसंकर जातिका नाम। मनुस्मृतिमें इन-की उत्पत्ति ब्राह्मण पिता और बंदी जातिकी मातासे है। ये वन्य पशुओंको मार कर अपनी जीविका चलाते हैं।

मद्गुमूषिक (सं० पु०) वृक्ष मर्कट, पेड़ पर रहनेवाला एक प्रकारका जंतु।

मद्गुर (सं० पु०) माद्यति जलं प्राप्य हृष्यतीति मद् (मद्गुरो दयश्च। उण् १।४२) इति उरच्, निपातनात् सिद्धः। १ मत्स्यविशेष, मंगुरी मछली। सब मछलियोंमेंसे मंगुरी मछली विशेष गुणकारी होती है। इसका गुण—मधुर, स्निग्ध, संग्राही, शुक्रवर्द्धक और गुरु। भावप्रकाशके मतसे—वातनाशक, वलकर, वृष्य, कफवर्द्धक और लघु। रेहू और मंगुरी मछलीको छोड़ कर सब प्रकारकी मछलियां कफकर होती हैं। २ वर्ण-संकरजातिविशेष, एक वर्णसङ्करजाति। इस जातिके मनुष्य समुद्रमें डूब कर मोती निकालते हैं। ३ गोता-खोर, पनडुब्बा।

मद्गुरक (सं० पु०) मद्गुरः स्वार्थे कन्। मद्गुर मत्स्य, मंगुरी मछली।

मद्गुरसी (सं० स्त्री०) मद्गौ पक्षिविशेषे रसो मत्स्यः ङीप्। शृङ्गिमत्स्य, सींगी मछली।

मद्दिखेरा—मान्द्राजप्रदेशके कर्नूल जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १५ं १५ उ० तथा देशा० ७७ं २७´ पू० हिन्द्री नदीके किनारे अवस्थित है।

मद्दूर – १ महिसुर राज्यके महिसुर जिलेका एक प्राचीन उपविभाग। १८७५ ई०में यह दो भागोंमें विभक्त हो कर मण्ड्य और मलवल्ली तालुकके अन्तर्भुक्त हुआ है।

२ उक्त विभागका एक शहर। यह अक्षा० १२ं ३५´ उ० तथा देशा० ७७ं३ पू० शिमशा नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ढ़ाई हजारसे ऊपर है। पहले यह नगर वहुत समृद्धिशाली था। स्थानीय असंख्य प्राचीर मन्दिर और पुष्करिणी आदि उसका परिचय देती हैं। पाण्डय-राज अर्जुन अपने तीर्थपर्टनकालमें यहां आये थे और इसका अर्जुनपुर नाम रख गये। हय-शाल वल्लालवंशीय किसी राजाने यह नगर एक ब्राह्मणको ब्रह्मोत्तरमें दिया था। १७९१ ई०में टीपू-सुलतानके साथ लार्ड कार्नवालिसका जो युद्ध हुआ था उसमें कार्नवालिसने दुर्ग और वहुत-सी कीर्त्तियां तोड़ फोड़ डाली तभीसे उनका संस्कार आज तक होने नहीं पाया है। १८७५ ई० तक यहां मद्दूर तालुकाका विचार सदर रहा। शिमशा नदीके ऊपर एक पुल है। उस पुल परसे बङ्गलूर-महिसुर-रैलवे लाइन गई है। मद्दूर-में एक रेलवे-स्टेशन भी है। १८८४ ई०में शहरमें म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

सर्वोको अनुकूल मन्त्र ग्रहण करना उचित है। ताराचक्र और राशिचक्र आदि चक्रविचारमें जो मन्त्र अनुकूल होगा वही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये।

सिद्धसारस्वत तन्त्रके मतानुसार नृसिंह, सूर्य और वराहमन्त्र, प्रासादवीज (हौं) प्रणव और कूटमन्त्र इनके सिद्धादि शोधनकी आवश्यकया नहीं।

ताराचक्र, १० राशिचक्र, और नामचक्र इन सब चक्रोंके विचारसे सगुण होने पर भी मन्त्रग्रहण किया जा सकता है। अन्य चक्रविचारकी आवश्यकता नहीं रहती। इसका तात्पय यह, कि ताराचक्र, राशिचक्र और नामचक्रका विचार अवश्य कर्त्तव्य है। अन्य ऋणिधनी आदि चक्र द्वारा विचार नहीं करना चाहिये, सो नहीं। क्योंकि इससे दूसरी जगह जो लिखा है, कि धनीको मन्त्र नहीं लेना चाहिये, इत्यादि वचन निष्फल होते हैं। इसमें ऐसी मीमांसा की जा सकती है, कि पूर्वोक्त वचन ताराचक्रादिके प्रशंसासूचक हैं। मन्त्रग्रहणमें सभी चक्रों द्वारा मन्त्रका उद्धार करके मन्त्र लेना होगा।

स्वप्नलब्ध, स्त्रीगुरुप्रदत्त, मालामन्त्र, त्र्यक्षरी मन्त्र और वेदोक्त मन्त्र ये सब मन्त्र लेनेमें भी सिद्धादि शोधनकी आवश्यकता नहीं है। बीस अक्षरसे अधिकका जो मन्त्र रहता है उसे मालामन्त्र कहते हैं। इस मालामन्त्रमें, नपुंसक मन्त्रमें, सूयके अष्टाक्षरी और पञ्चाक्षरी तथा सब प्रकारके वैदिक मन्त्रोंमें सिद्धादि शोधन नहीं करना होगा। जिस मन्त्रके अन्तमें 'हुं फट्' रहता है उसे पुंमन्त्र, जिसके अन्तमें स्वाहा है उसे स्त्रीमन्त्र और जिस मन्त्रके बाद नम रहता है उसे नपुंसक मन्त्र कहते हैं।

"ताराचक्रं राशिचक्रं नामचक्रं तथैव च।
अत्र चेत् सगुणो मन्त्रो नान्यचक्रं विचिन्तयेत्॥"
इति तु प्रधानतया बोद्धव्यं—
तथाच 'धनिमन्त्रं' न गृह्णीयाद कुलज्ञ तथैव च।
इत्यादि तथा दर्शनात् तत्तचक्र विचारस्य आवश्यकत्वात् प्रथमं तन्निरूप्यते।

स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे च त्र्यक्षरे।
वैदिकेषु च सर्वेषु सिद्धादींश्च शोधयेत्॥
हंसस्याष्टाक्षरस्यापि तथा पञ्चाक्षरस्य च।
एकद्वित्र्यादिवीजस्य सिद्धयादीन्नैव शोधयेत्॥" इत्यादि

काली, तारा, महादुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्ता, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा, प्रत्यङ्गिरा, कामाख्यावासिनी, बाला, मातङ्गी, शीलवासिनी तथा काली, तारा, षोड़शी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला ये दश महाविद्या हैं। इस विद्याका मन्त्र लेनेमें सिद्धादि शोधन, नक्षत्रादिविचार, कालादि शुद्धि और अरिमित्रादिक विचार नहीं करना होता। ये सब देवता सिद्धविद्या हैं इसीसे किसी विचारकी जरूरत नहीं होती।

तन्त्रके पूर्वोक्त वचनसे जाना जाता है, कि काली तारादि महाविद्याका मन्त्र लेनेमें कोई विचार नहीं करना होगा। पर यह बात नहीं है, केवल उक्त वचनोंको उच्चस्थान दिया गया है। सभी प्रकारके मन्त्रग्रहण करनेमें विचारकी आवश्यकता है। क्योंकि कहीं पर लिखा है, कि स्वप्नमें भी वैरिमन्त्र लाभ होता है तथा उससे भी अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। अतएव अच्छी तरह सोच विचार कर मन्त्र लेना चाहिये।

"काली तारा महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तिका।
वाग्वादिनी चान्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुनः॥
कामाख्यावासिनी बाला मातङ्गी शैलवासिनी।
इत्याद्याः सकला देव्यः कलौ पूर्णफलप्रदा।
सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसेवापरिश्रमः॥
काली तारा महाविद्या षोड़शी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका॥
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादिविचारणा॥
कालादिशोधनं नास्ति नारिमित्रादि दूषणम्।
सिद्धविद्या तथा नात्र युगसेवापरिश्रमः।
नास्ति किञ्चिन्महादेवि दुःखसाध्यं कदाचन॥"

अतएव इन सब वचनों द्वारा यह स्थिर हुआ, कि सिद्धिविद्या वा महाविद्या, कोई भी मन्त्र क्यों न हो, उसका विचार करके ग्रहण करना चाहिए। पहले कुलाकुल चक्रका विचार करना होगा।

कुलाकुल चक्र ।

वायु,	अग्नि,	भू,	जल,	आकाश,
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह;

वायु, अग्नि, पृथिवी, जल और आकाश इन पञ्चभूतमय पचास वर्णोंको क्रमशः रख कर कुलाकुलका निर्णय करना होगा। मन्त्रगृहीताके नामका आदि अक्षर और जो मन्त्र लिया जायगा उसका भी आदि अक्षर, ये दोनों अक्षर यदि एक भूत वा एक दैवत हों, तो उस उस मन्त्रको स्वकुल अन्यथा अकुल जानना चाहिये। स्वकुल मंत्रग्रहण करना ही शास्त्रसङ्गत है।

इस कुलाकुल विचारकी सुविधाके लिये एक चक्र अङ्कित किया गया है। वह चक्र देखनेसे मंत्र सहजमें स्थिर किया जायगा। चक्र पांच कोष्ठामें बंटा हुआ है। उन सब कोष्ठाओंके ऊपरमें वायु, अग्नि, भू, जल और आकाश ये पांच नाम लिखे हुए हैं। नीचे एक कोष्ठामें जो जो वर्ण हैं वे एक भूत वा दैवत हैं। नामाद्यक्षर, मन्त्राद्यक्षर एक कोष्ठामें होनेसे मन्त्रग्रहणमें शुभ है और यदि साधक नामादि वर्ण तथा मन्त्रादि वर्ण एक भूत वा एक दैवत न हो; तो उक्त दोनों वर्णोंकी परस्पर मित्रता रहने पर भी मन्त्रग्रहण लिया जा सकता है। नामादि वर्णके साथ किस वर्णकी मित्रता वा शत्रुता है, वह इस तरहसे जाना जाता है। वारुणवर्ण भौमवर्णका और मारुत वर्ण आग्नेय वर्णका मित्र तथा मारुत्वर्ण पार्थिव वर्णका और आग्नेय वर्ण वारुणवर्ण एवं पार्थिव वर्णका शत्रु है। आकाश सभी वर्णोंका मित्र है। इस प्रकार वर्णोंकी शत्रुमित्रता स्थिर करके मित्र मन्त्र ग्रहण करे, शत्रुमन्त्र नहीं। कुलाकुल चक्रका विचार करनेके बाद राशिचक्र द्वारा विचार करना होता है।

राशिचक्र ।

- वृष — उ ऊ ऋ
- मेष — अ आ इ ई
- मीन — य र ल व
- मिथुन — ॠ ऌ ॡ
- कुम्भ — प फ ब भ म
- कर्कट — ए ऐ
- राशि चक्र
- मकर — त थ द ध न
- सिंह — ओ औ
- कन्या — ह ल क्ष
- तुला — क ख ग घ ङ
- वृश्चिक — च छ ज झ ञ
- धनु — ट ठ ड ढ ण

इस प्रकार राशिचक्र स्थिर करके पीछे विचार करना होगा। अपनी जन्मराशिसे मन्त्रराशि अर्थात् जिस राशिमें मन्त्रका आदिवर्ण देखा जायगा, उस राशि तक गणना करनेसे यदि वह मन्त्रराशिसे छठां, आठवां वा बारहवां हो, तो मन्त्रग्रहण नहीं करना चाहिये। यदि जन्मराशि मालूम न रहे, तो नामके आदि अक्षर सम्बन्धीय राशि ले कर गणना करे। इस गणणामें भी छठा, आठवां और नवां राशिस्थित मनका परित्याग करना होता है। पहला, पांचवां और नवां राशिगत मंत्र मित्रके समान हितकारी है। दूसरा, छठा और दशवां राशिस्थित मंत्रसिद्धि; तीसरा, ग्यारहवां और सातवां मंत्र पुष्टिकर; बारहवां, आठवां और चौथा मंत्र घातक है। इसमें विशेषता यह है, कि विष्णु मंत्रविषयमें चौथा मंत्र घातक है। द्वादश राशि लग्न, धन, भ्रातृ, बन्धु, पुत्र, शत्रु, कलत्र, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय इन बारह राशियोंकी बारह संज्ञा हैं। जन्मराशिगत मंत्र लेनेसे मनकी सिद्धि, धनस्थानस्थित मंत्रसे धनलाभ, भ्रातृस्थानमें भ्राताकी उन्नति, बन्धुप्रियता, पुत्रस्थानमें पुत्रलाभ, शत्रुस्थानमें शत्रुवृद्धि, कलत्र स्थानमें सामान्य फल, मृत्युस्थानमें मृत्यु, धर्मस्थानमें कार्यसिद्धि, आयस्थानमें धनसम्पत्ति और व्ययस्थानमें

सञ्चित धन व्यय होता है। राशिचक्रमें शुद्धाशुद्धिका विचार करके मन्त्रग्रहण करे।

अनन्तर नक्षत्रचक्र स्थिर करके मन्त्रविचार करना होता है। नक्षत्रचक्रकी गणना सहजमें बोधगम्य नहीं होती, इसलिये नीचे एक चक्र दिया गया है। वह चक्र देखनेसे ही मन्त्र सहजमें स्थिर कर सकेंगे। चक्र सत्ताईस घरोंमें विभक्त हैं। इसके एकसे ले कर सत्ताईस घरों में अश्विनी आदि सताईस नक्षत्रों और वचनोंके अनुसार जिस जिस घरका जो जो वर्ण और गण लिखा है उसीसे मन्त्र स्थिर करना होगा।

नक्षत्रानुसार गण स्थिर करके मन्त्रका विचार करे। स्वजातिमें परम प्रीति, अन्य जातिमें मध्यम प्रीति, राक्षस और मनुष्यमें विनाश और देवगणमें शत्रुता जाननी होगी। जन्म नक्षत्र और मन्त्रका आदि अक्षर जिस घरमें पड़ेगा उस घरका नक्षत्र ले कर गणना करनी होगी। यदि मन्त्र और मन्त्र लेनेवालेका एक गण हो, तो वह मन्त्र शुभ माना गया है। फिर जिसका नरगण है वह देवगण-मन्त्र ग्रहण कर सकता है। मनुष्यगण और राक्षसगणमें मृत्यु तथा राक्षसगण और देवगणमें शत्रुता होती है, इसलिये वैसा मन्त्रग्रहण नहीं करना चाहिये।

नक्षत्रचक्र।

अश्विनी अ आ देव	भरणी इ मानुष	कृत्तिका ई उ ऊ राक्षस	रोहिणी ऋ ॠ ऌ ॡ नर	मृगशिरा ए देव	आर्द्रा ऐ नर	पुनर्वसु ओ औ देव	पुष्या क देव	अश्लेषा ख ग राक्षस
मघा घ ङ राक्षस	पूर्वफल्गुनी च नर	उत्तरफल्गुनी छ ज नर	हस्ता झ ञ देव	चित्रा ट ठ राक्षस	स्वाति ड देव	विशाखा ढ ण राक्षस	अनुराधा त थ द देव	ज्येष्ठा ध राक्षस
मूला न प फ राक्षस	पूर्वाषाढ़ा ब नर	उत्तराषाढ़ा भ नर	श्रवणा म देव	धनिष्ठा य र राक्षस	शतभिषा ल राक्षस	पूर्वभाद्रपद व श नर	उत्तरभाद्रपद ष स ह नर	रेवती ळ क्ष अं अः देव

जन्म, सम्पत्, विपद्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र और परममित्र इस प्रकार जन्म नक्षत्रसे ले कर मन्त्र नक्षत्र तक पुनः पुनः गणना करे। यदि जन्म नक्षत्रसे मन्त्र नक्षत्र तृतीय, पञ्चम वा सप्तम हो, तो उस मन्त्रका परित्याग करे। छठा, आठवां, दूसरा, नवां अथवा चौथा मन्त्र शुभ तथा अन्य मन्त्र अशुभ होता है। इस मन्त्रकी अपने जन्मनक्षत्रसे गणना करनी होगी। जिसका जन्मनक्षत्र मालूम न रहे उसका स्वनामाद्यक्षर सम्बन्धि नक्षत्र ले कर गणना करे।

इस नक्षत्रके अनुसार मन्त्र स्थिर हो जाने पर अकथह, अकड़म और ऋणिधनि चक्रमें मन्त्रका विचार करें। अकथह, अकड़म और ऋणिधनि चक्रका विषय उन्हीं शब्दोंमें देखो।

गुरुको चाहिये, कि वे अच्छी तरह सोच विचार कर इन सब चक्रोंसे मन्त्र उद्धार कर शिष्यको प्रदान करें।

मन्त्रका कालनिर्णय।—चैत्र मासमें मन्त्र लेनेसे सब प्रकारके पुरुषार्थकी सिद्धि, वैशाखमें रत्नलाभ, ज्येष्ठमें मरण, आषाढ़में बन्धुनाश, श्रावणमें दीर्घायु, भाद्रमें संताननाश, आश्विनमें रत्नलाभ, कार्त्तिक और अग्रहायणमें मंत्रसिद्धि, पौषमें शत्रुवृद्धि और पीड़ा, माघमें मेधावृद्धि और फाल्गुनमें मन्त्र लेनेसे सब प्रकारके मनोरथ पूर्ण होते हैं।

इस प्रकार मासके गुणागुणका विचार कर मन्त्रग्रहण करें। किन्तु मन्त्र लेनेमें यदि विहित मास मलमास हो, तो उस मासमें मन्त्र न ले। क्योंकि मलमासमें सभी

कार्य निन्दित बतलाये गये हैं। चैत्रमासमें जो दीक्षा कही गई, वह गोपाल-विषयमें जानना चाहिये। कारण, दूसरे वचनमें लिखा है, कि चैत्रमासमें मन्त्र लेनेसे दुःख-भोग और मरण होता है। अतएव चैत्रमासमें गोपाल मन्त्र ही लिया जा सकता है। आषाढ़मासमें मन्त्र लेनेसे बन्धुनाश होता है, ऐसा जो लिखा है, वह सभी देवताके पक्षमें नहीं, केवल श्रीविद्या मन्त्र-विषयमें जानना चाहिये।

मन्त्रके सम्बन्धमें जो मासका विषय कहा गया वह सिर्फ सौरमास समझो। कारण; मन्त्रग्रहणमें चान्द्रमासकी कोई आवश्यकता नहीं। सौरमास ही प्रशस्त है।

मन्त्रग्रहणमें वार नियम।—रविवारको मन्त्र लेनेसे वित्तलाभ, सोमवारको शान्ति सौर मङ्गलवारको आयुक्षय होती है। अतएव इस दिन मन्त्रग्रहण न न करे। बुद्धवारको सौन्दर्य लाभ, वृहस्पतिवारको ज्ञानवृद्धि, शुक्रवारको सौभाग्य और शनिवारको यशकी हानि होती है। अतः रवि, सोम, बुध, वृहस्पति और शुक्र मन्त्र लेनेका प्रशस्त वार है। केवल शनि और मङ्गलवार प्रशस्त नहीं है। इन दो दिनोंमें मन्त्र नहीं लेना चाहिये।

मन्त्रग्रहणमें तिथि-नियम।—प्रतिपद तिथिमें मन्त्र लेनेसे ज्ञान-नाश, द्वितीयामें ज्ञान-वृद्धि, तृतीयामें शुचिता, चतुर्थीमें वित्तनाश, पञ्चमीमें बुद्धि, षष्ठीमें ज्ञान-क्षय, सप्तमीमें सुखलाभ, अष्टमीमें बुद्धिनाश, नवमीमें शरीर क्षय, दशमीमें राजसौभाग्य, एकादशीमें शुचिता, द्वादशीमें सर्वकार्यसिद्धि, त्रयोदशीमें दरिद्रता, चतुर्दशीमें तिर्यक् योनिमें जन्म, अमावस्यामें कार्यहानि और पूर्णिमामें धर्मवृद्धि होती है।

अस्वाध्याय अर्थात् जिस जिस दिन वेदपाठ निषिद्ध बतलाया गया है उस दिन मन्त्रग्रहण न करे। संध्यागर्जन, भूमिकम्प और उल्कोपातका दिन अस्वाध्याय है। अन्यान्य तन्त्रमें जो षष्ठी और त्रयोदशीका विधान देखा जाता है वह विष्णु विषयमें जानना चाहिये। पञ्चमी, सप्तमी, षष्ठी, द्वितीया, पूर्णिमा, त्रयोदशी और दशमी तिथि मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त है। षष्ठी तिथिमें शिवमन्त्र लेनेमें कोई दोष नहीं।

मन्त्रग्रहणमें नक्षत्र।—अश्विनी नक्षत्रमें मन्त्र लेनेसे शुभ; भरणीमें मरण, कृत्तिकामें दुःख, रोहिणीमें ज्ञानलाभ, मृगशिरामें सुख, आर्द्रामें बन्धुनाश, पुनर्वसुमें धन, पुष्यामें शत्रुनाश, अश्लेषामें मृत्यु, मघामें दुःखमोचन, पूर्वफल्गुनीमें सौन्दर्य, उत्तरफल्गुनीमें ज्ञान, हस्तामें धन, चित्रामें ज्ञानवृद्धि, स्वातिमें शत्रुविनाश, विशाखामें दुःख, अनुराधामें बन्धुवृद्धि, ज्येष्ठामें सुतहानि, मूलामें कीर्त्ति-वृद्धि, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ामें यशोवृद्धि, श्रवणामें दुःख, धनिष्ठामें दारिद्र्य, शतभिषामें बुद्धिवृद्धि, पूर्वभाद्र-पदमें सुख तथा रेवती नक्षत्रमें कीर्त्तिवृद्धि होती है।

आर्द्रा और कृत्तिका नक्षत्रका जो निषेध किया गया है वह शिवमन्त्र और वह्निविषयमें। ज्येष्ठा और भरणी नक्षत्रको राममन्त्र विषयमें जानना चाहिये।

मन्त्रग्रहणमें योग-नियम।—शुभ, सिद्ध, आयुष्मान्, ध्रुव, प्रीति, सौभाग्य, बुद्धि और हर्षण ये सब योग मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं। रत्नावलीतन्त्रमें लिखा है,—प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्मा, साध्य, शुक्र, हर्षण, वरीयान्; शिव, ब्रह्मा और इन्द्र ये सोलह योग मन्त्रग्रहणमें विशेष प्रशस्त हैं।

मन्त्रग्रहणमें करण-निर्णय—बव, वालव, कौलव, तैतिल और वणिज ये सब करणमन्त्र लेनेमें शुभ है।

मन्त्रग्रहणमें लग्न-निर्णय।—वृष, सिंह, कन्या, धनु और मीन इन सब लग्नोंमें तथा चन्द्र तारा शुद्धिमें मन्त्रग्रहण कर्त्तव्य है। विष्णुमन्त्र लेनेमें स्थिरलग्न अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ ये सब लग्न प्रशस्त हैं। शिवमन्त्र लेनेमें चरलग्न और शक्तिमन्त्र लेनेमें द्व्यात्मक लग्न शुभकर है। मन्त्र लेनेके समय तत्का-लीन लग्नकी अपेक्षा तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें यदि पापग्रह तथा लग्न और चौथे, सातवें, दशवें, नवें और पांचवें स्थानमें शुभग्रह रहे, तो मन्त्र ले सकते हैं। मन्त्र लेनेमें वक्रीग्रह अनिष्टकारी है।

मन्त्रग्रहणमें पक्ष निर्णय।—शुक्लपक्षमें मन्त्र लेनेसे शुभ फल होता है। कृष्णपक्षकी पञ्चमी तक मन्त्र लिया जा सकता है। अगस्त्यसंहिताके मतमें शुक्ल और कृष्ण दोनों ही पक्ष मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त है। कालोत्तरमें लिखा है,—सम्पत्कामी व्यक्तिको शुक्लपक्षमें और मोक्षकामीको कृष्णपक्षमें मन्त्र लेना चाहिये।

निषिद्ध मासमें भी तिथिविशेषमें मन्त्रग्रहण किया जा सकता है। रत्नावलीमें लिखा है,—भाद्रमासकी षष्ठी, आश्विनमासकी कृष्ण चतुर्दशी, कार्त्तिकी शुक्ला नवमी, चैत्रकी कामचतुर्दशी (किसीके मतसे त्रयोदशी), वैशाखकी अक्षयतृतीया, ज्येष्ठमासकी दशहरा, आषाढ़की शुक्लापञ्चमी और श्रावणकी कृष्णापञ्चमी इन सब दिनोंमें नक्षत्रादि निन्दित होने पर भी मन्त्रग्रहण किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त चैत्रकी शुक्ला त्रयोदशी, वैशाखकी शुक्ला एकादशी, ज्येष्ठकी कृष्ण चतुर्दशी, आषाढ़की नागपञ्चमी, श्रावणकी एकादशी, भाद्रकी जन्माष्टमी, आश्विनकी महाष्टमी, कार्त्तिककी शुक्ला नवमी, अग्रहायण की शुक्ला षष्ठी, पौषकी चतुर्दशी, माघकी शुक्ला एकादशी, फाल्गुनकी शुक्ला षष्ठी ये सब तिथि मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं।

उत्तरायण और दक्षिणायनादि संक्रान्ति-दिनमें, चन्द्रसूर्यग्रहणमें, युगाद्या तिथि और मन्वन्तरा तिथिमें मन्त्रग्रहण प्रशस्त है। मन्त्रग्रहणमें सूर्यग्रहणके जैसा और कोई शुभकाल नहीं है। सूर्य और चन्द्र दोनों ही ग्रहणकालमें मन्त्र लेना शुभ है।

कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिमें शुभ लग्नमें, पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें तथा मित्र-तारामें तारामन्त्र ग्रहण करे। तारा-मन्त्रकी दीक्षामें अनुराधा और रेवती नक्षत्र तथा आश्विन और कार्त्तिक मास प्रशस्त है।

सोमवारमें अमावस्या, मङ्गलवारमें चतुर्दशी, रविवारमें सप्तमीतिथि पड़नेसे वह सौ पर्वके समान होता है। इस पर्वमें मन्त्र लेनेसे विशेष शुभ होता है।

यामलमें लिखा है—गङ्गादि पुण्यक्षेत्रमें, कुरुक्षेत्रमें, प्रयागमें, काशीक्षेत्रमें अथवा किसी पीठस्थानमें कालाकाल शुद्धिका प्रयोजन नहीं। एतद्भिन्न अन्य स्थानमें मन्त्र लेनेसे ही विशुद्ध कालकी ओर अवश्य ध्यान रखना होगा।

विष्णुयामलमें लिखा है—देवीके बोधनसे महानवमी पर्यन्त जितनी तिथियां हैं, प्रत्येक तिथिमें मन्त्रग्रहण किया जा सकता है। दुर्गादेवीके बोधनमें, अशोकाष्टमीमें, रामनवमीमें तथा गुरु जब कहे उस समयमें मन्त्र लिया जा सकता है। इसमें कालाकालके विचारकी जरूरत नहीं।

गुरु कृपापूर्वक शिष्यको बुला कर यदि मन्त्र देना चाहें, तो लग्नादि विचार करनेका कोई प्रयोजन नहीं। कारण, इस समय समस्त वार, समस्त तिथि तथा समस्त नक्षत्र ही शुभप्रद है।

मन्त्रस्थाननिर्णय—गोशाला, गुरुगृह, देवालय, कानन, पुण्यक्षेत्र, उद्यान, नदीतीर, आमलकी वृक्षके समीप, पर्वताग्र, पर्वतगुहा और गङ्गातट इन सब स्थानोंमें दीक्षाग्रहण करनेसे कोटिगुण फल होता है।

मन्त्रग्रहणमें निन्दित स्थान।—गया, भास्करक्षेत्र, विरजातीर्थ, चन्द्रपर्वत, चट्टग्राम, मातङ्गदेश तथा कन्यागृह इन सब स्थानोंमें मन्त्रग्रहण निषिद्ध है।*

यदि शुक्र अस्तगत अथवा वृद्धावस्थामें रहे अथवा गुरु और रवि एक घरमें हों, तो मेष, वृश्चिक और सिंहमें मन्त्र लेनेमें कोई दोष नहीं।

मन्त्रग्रहणके पूर्वदिन गुरु शिष्यको अपने घर पर बुला कर पवित्र कुशशय्या पर बिठावें और निद्रामन्त्रसे उसकी शिखा बांध दे। शिष्य शयनकालमें उस मन्त्रका तीन बार पाठ कर श्रीगुरुका पादपद्म ध्यान करते करते सो जावे।

निद्रामन्त्र—ओं हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा'

मतान्तर—

'नमो जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः॥
स्वप्ने कथय मे तथ्य सर्वकार्य्येष्वशेषतः।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत् प्रसादान्महेश्वर।

दूसरे दिन सबेरे गुरु शिष्यसे स्वप्नका शुभाशुभ पूछें। शिष्य समस्त स्वप्नविवरण उन्हें कह सुनावें। कन्या, छत्र, रथ, प्रदीप, अट्टालिका, पद्म, नदी, हस्ती, वृष, माल्य, समुद्र, सर्प, वृष, पर्वत, घोटक, पवित्र मांस

---

* 'गयायां भास्करक्षेत्रे विरजे चन्द्रपर्वते।
चट्टले च मतङ्गे च तथा कन्याश्रमेषु च।
न गृह्णीयात् ततो दीक्षां तीर्थेष्वेतेषु पार्वति॥"
(तन्त्रसार)

और मद्य ये सब स्वप्नमें देखनेसे मन्त्रकी सिद्धि होती है। (तन्त्रसार)

मन्त्रके आठ प्रकारके दोष हैं, यथा—अभक्ति, अक्षरभ्रान्ति, लुप्त, छिन्न, ह्रस्व, दीर्घ, कथन और स्वप्नमें कथन।

(१) मन्त्रको अक्षर समझनेका नाम अभक्ति है। मन्त्र ही देवता स्वरूप है, ऐसा जान कर मन्त्र द्वारा उपासना करनेसे देवता प्रसन्न हो कर अभिलषित फल प्रदान करते हैं। यह मन्त्र केवल अक्षरोंकी समष्टि है ऐसा जो समझते हैं उनका मन्त्र सिद्ध नहीं होता, वरं उन्हें नरककी प्राप्ति होती है। दूसरे मन्त्रकी प्रशंसा करके अपने मन्त्रको निष्फल समझना भी अभक्ति है। (२) अक्षरभ्रान्ति, गुरु वा शिष्यके भ्रमवशतः मन्त्रका वर्णवैपरीत्य अथवा वर्णाधिक्य। (३) लुप्तमन्त्रमें वर्णका न्यूनत्व। (४) छिन्न मन्त्रान्तर्गत युक्तवर्णका एकदेश न्यूनत्व। (५) ह्रस्व, मन्त्रका दीर्घवर्णस्थानमें ह्रस्व शब्द-प्रयोग। (६) दीर्घ, मन्त्रका ह्रस्वस्थानमें दीर्घ-प्रयोग। (७) कथन, दूसरेके निकट अपना मन्त्र-प्रकाश। (८) स्वप्नमें कथन, निद्राकालमें मन्त्र दूसरेसे कहना। मन्त्रके यही आठ प्रकारके दोष हैं। (हरतत्त्वदीधिति)

"अक्षरे भ्रान्तिः गुरोः शिष्यस्य वा भ्रान्त्या मन्त्रेषु वर्णवैपरीत्यं वर्णाधिक्यञ्च। लुप्तः, मन्त्रेषु वर्णन्यूनत्वं। छिन्नः, मन्त्रान्तर्गतयुक्तवर्णैकदेशन्यूनत्वं। ह्रस्वः, दीर्घस्थाने ह्रस्वप्रयोगः। यद्यप्येतद्दोषयोरक्षरभ्रान्त्यन्तर्भूतत्वेन पौनरुक्त्यं स्यात्, तथापि एतद्दोषयोः पृथक्प्रायश्चित्तस्य वक्ष्यमाणत्वात् अक्षरभ्रान्तिस्तदितरविषया, कथनमन्येषु स्वीयमन्त्रप्रकाश, स्वप्नेन्विति स्वप्ने ब्राह्मणरूपिदेवेन स्वीय-मन्त्रस्य ग्रहणं तस्मिन् स्वीय मन्त्रप्रकाश इति यावत्।" (हरतत्त्वदीधिति)

मन्त्रके उक्त प्रकार दोषदुष्ट होनेसे उसका प्रायश्चित्त करना होगा। प्रायश्चित्त द्वारा वह मन्त्रशुभमय होता है, नहीं तो पद पदमें विघ्नकी सम्भावना है। जिससे मन्त्रमें इस प्रकारका दोष होने न पावे, शिष्य इसके विशेष सतर्क रहें।

मन्त्रमें अभक्ति दोष होनेसे बहुजप, होम और बहुकाय क्लेश द्वारा उसे दूर करना होगा। इस प्रकार अभक्ति दूर होनेके बाद यदि भक्तिका उदय हो, तो सिद्धिलाभमें अधिक विलम्ब नहीं होगा।

"बहुजपात् तथा होमात् कायक्लेशादिविस्तरात्।
यदि भक्तिर्भवेत् देवि तस्य सिद्धिरदूरतः॥"

(हरतत्त्वदीधिति)

मन्त्रमें अक्षरभ्रान्तिका दोष होनेसे गुरु, गुरुके अभावमें उनके पुत्र, पुत्रके अभावमें गुरुलक्षणविशिष्ट किसी साधक द्वारा मन्त्रका दोष हटा कर उनसे दूसरी बार मन्त्रग्रहण करे।

"गुरुणा तत्सुतेनैव साधकेन परानने।
अक्षरे दूषणं हित्वा पुनर्मन्त्रं प्रकाशयेत्॥"

(हरतत्त्वदी०)

मन्त्रमें लुप्तदोष होनेसे गुरु, गुरुके अभावमें गुरुपुत्र या कोई साधक समाहित चित्तसे लुप्तवर्ण निर्णय करके शिष्यको मन्त्र दें।

मन्त्रमें छिन्नदोष होनेसे गुरु आदि वह दोष दूर कर शिष्यको मन्त्रप्रदान करें तथा उसके प्रायश्चित्त स्वरूप लाख बार जप करें। इत्यादि।

सभी प्रकारके दोषोंको गुरु स्थिरचित्तसे निराकरण करें। मन्त्रके दश प्रकारके संस्कार—

"जननं जीवनं पश्चात् ताड़नं बोधनं तथा।
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः॥
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रिया॥" (तन्त्रसार)

जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गुप्ति यही दश मंत्रके संस्कार हैं। संस्कार करनेके बाद ही मंत्र लेना उचित है।

निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार मन्त्रके दश प्रकारके संस्कार करने होते हैं। कुंकुम, रक्तचन्दन अथवा भस्म द्वारा सुवर्णादि-पात्रमें मातृका यंत्र अङ्कित करना होगा। पीछे शक्तिमंत्रसे रक्तचन्दन और शिवमंत्रसे भस्म द्वारा मातृका यंत्र लिख कर मंत्रका संस्कार करना होगा। मातृका यंत्रके सिवा अन्य मंत्रका संस्कार नहीं होता। निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार मातृका यंत्र प्रस्तुत करना होता है। मातृकायन्त्र देखो।

'हंसौ' इस मंत्रको कर्णिका करके दो दो स्वर द्वारा केशर अङ्कित करे। पीछे अष्ट दलपद्म अङ्कित करके उन पर अष्टवर्ग लिखे। पद्मके वहिर्भागमें चार द्वार और चतुष्कोण अङ्कित करके पद्मसे घेर दे। यंत्रके चारों ओर 'वं' और चारों कोणमें 'ठं' लिखे तथा ककारादि म पर्यन्त पञ्चवर्ग, य से व पयत, श से ह पर्यंत और ल क्ष इन्हें पूर्व ओरसे आरम्भ करके ईशान कोण तक अष्टदल पर लिखना होगा। इसके वाद चतुरस्र और चतुर्द्वार वना कर चतुर्द्वार पर 'वं' और चतुष्कोणमें 'ठं' लिख कर यंत्र अङ्कित करे।

मंत्रका जननसंस्कार।—मातृका यंत्रसे जो मंत्रवर्णोंका उद्धार किया जाता है उसे जनन-संस्कार कहते हैं।

जीवन उद्धृत वर्णोंके पंक्तिक्रमसे प्रत्येक वर्णको प्रणव द्वारा पुटित करे। पीछे एक एक वर्णका सौ सौ बार जप करना होगा। इसीको मंत्रका जीवन कहते हैं। किसी किसीने दश वार भी मन्त्र जपनेको व्यवस्था दी है।

ताड़न।—मंत्रके सभी वर्णोंको पृथक् पृथक् लिख कर 'वं' इस मंत्रसे चन्दनोदक द्वारा ताडन करे, इस प्रकार सौ वार करते रहे। किसी किसीके मतमें दश बार भी करनेसे काम चल सकता है।

बोधन—मंत्रके सभी वर्णोंको पृथक् पृथक् रूपमें लिख कर मंत्रवर्णके जितने अङ्क हों, उतने ही रक्त करवीरपुष्प द्वारा 'रं' इस मंत्रसे मंत्रवर्णोंका हनन करे। इसीका नाम मंत्रवोधन है।

अभिषेक—मंत्रके सभी वर्णोंको लिख कर मंत्राक्षरसंख्यक रक्त करवीर पुष्प द्वारा 'रं' इस मंत्रसे एक एक बार सभी वर्णोंको अभिमंत्रित करे। पीछे मंत्रोक्त विधानसे अश्वत्थ पल्लव द्वारा मन्त्रकी वर्ण-संख्याके अनुसार अभिसिञ्चन करना होता है।

विमलीकरण—सुषुम्नाके मूल और मध्यभागमें देनेयोग्य मंत्रकी चिंतना कर ज्योतिर्मय अर्थात् ओं ह्रौं इस मन्त्रसे मलत्रय दग्ध करे। इसीका नाम मंत्रका विमलीकरण है। आनव्य, मायिक और कार्मण यही तीन प्रकारके मल हैं। योषा अर्थात् स्त्रीसे जो मल उत्पन्न होता है उसे मायिक मल, पुरुषसे उत्पन्न मलको कार्मण मल और दोनों प्रकारके मलको आनव्य मल कहते हैं। ये तीनों प्रकारके मल सर्वशास्त्रनिन्दित हैं। मन्त्रका विमलीकरण करनेसे यह त्रिविध मल नष्ट होता है।

आप्यायन—स्वर्ण और कुश अथवा पुष्पोदक द्वारा पूर्वलिखित ज्योतिर्मय मन्त्रका आप्यायन करे।

तर्पण—पूर्वोक्त ज्योतिर्मंत्रमें देय मंत्रकी वर्णसंख्याके अनुसार जल द्वारा तर्पण करना होगा। इसमें विशेषता यह है, कि शक्तिमंत्र-विषयमें मधु द्वारा, विष्णुमंत्रमें कर्पूरमिश्रित जल द्वारा तथा शिवमंत्रमें दुग्ध द्वारा तर्पण करना होगा। अभिषेक भी इसी प्रणालीसे करना होता है।

दीपन—"ओं ह्रीं श्रीं" इस मंत्रसे मन्त्रका दीप्तिसाधन करना होगा।

गुप्ति—जिस मन्त्रका जप करे, उसे प्रकाश न करे। उसे हमेशा गोपन भावमें रखना होगा। इस प्रकार मन्त्रकी प्रणालीसे मन्त्रका संस्कार करके यदि मन्त्र लिया जाय, तो साधक अभीष्ट लाभ करता है।

(तन्त्रसार)

मंत्रग्रहणके पूर्वदिन गुरु और शिष्य दोनों ही संयत हो कर रहें। बादमें मन्त्र लेनेके दिन गुरुदीक्षा पद्धतिके अनुसार शिष्यको मन्त्र दें।

वंशपरम्परामें एक एक देवताका उपासक देखनेमें आता है अर्थात् कोई कालीमन्त्रका उपासक, कोई तारामंत्रका इत्यादि रूपसे विभिन्न वंशमें महाविद्यादि विभिन्न देवताकी उपासनाप्रणाली प्रचलित है। मालूम होता है, उस वंशके किसी महापुरुषने उस देवताकी उपासनासे सिद्धि लाभ की थी। तभीसे उनके वंश परामपराक्रमसे उस देवताकी उपासना चली आ रही है। एक एक देवताके वहुतसे वीजमन्त्र हैं। गुरु पूर्वोक्त प्रणालीके अनुसार वीजमन्त्रोंमेंसे कोई वीजमंत्र जो उसके अनुकूल हो, चुन कर शिष्यको प्रदान करे। किन्तु कुलदेवता ठीक रखना होगा। कुलदेवताका परित्याग कर अन्य देवताका मन्त्र लेनेसे सिद्धि नहीं होती। इस कारण कुलदेवताके प्रति लक्ष्य रखना नितान्त आवश्यक है।

मन्त्र लेनेमें शैव, वैष्णव, शाक्त आदिमें विभेद समझना उचित नहीं। इनमेंसे जिस किसी देवताका मन्त्र क्यों न लेना हो, भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करनेसे ही मन्त्रसिद्धि होगी। काली तारादि नाममें विभेद तो देखा जाता है, पर यथार्थमें वह विभेद नहीं है, एक है। केवल साधकोंके हितके लिये महामायाने नाना रूप धारण किया है।

"ध्यायन्ति तं वैष्णवाश्च कृष्णं श्यामलसुन्दरम्।
केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम्॥
त्रिशूलधारिणं केचित् पञ्चवक्त्रं दिगम्बरम्।
नानारूपञ्च पश्यन्ति ध्यानानुसारतश्च याम्॥
सा देवी प्रकृतिर्ब्रह्मा तेजोमण्डलवासिनी।
केवलं प्रकृतिश्चैका दृश्यते भक्तियोग्यतः॥
भिद्यते सा कतिविधा सूर्ये दर्पणसन्निधौ।
आकाशो भिद्यते यादृक् घटस्थादिस्तथा च सा॥
एकैव सा महाविद्या नाममात्रं पृथक् पृथक्।
चितिरूपा महामाया परब्रह्मस्वरूपिणी॥
सेवकानुग्रहार्थाय नानारूपं दधार सा।" इत्यादि।

(हरतत्त्वदीधितिधृत तन्त्रवचन)

अमुक व्यक्तिने कालीमन्त्र ग्रहण करके सिद्धिलाभ किया है, मैं भी अगर वह मन्त्र ग्रहण करता, तो सिद्धिलाभ कर सकता था, ऐसा साधकोंको कभी भी सोचना नहीं चाहिये। जिसके जो कुलदेवता हैं उनका मन्त्र लेना ही उसके पक्षमें शुभकर है।

साधक यदि दैववशतः बहुतसे मन्त्रलाभ करे, तो उसे उन्हीं सब देवताओंकी पूजादि करनी होगी तथा उन सब देवताओंमें जिस देवताके प्रति उसका भय होगा उसीके मन्त्रादिका जप करना उचित है।

"अथ दैवात् गृहीतबहुमन्त्रसाधकस्य इति कर्त्तव्यतामाह, समयाचारतन्त्रे अष्टमपटले—

बहुमन्त्री यदा देवि साधको दैवयोगतः।
तस्य कस्य जपं कुर्यात् पूजनादिकमेव च॥
सर्वदेवनमस्कारं नित्यं कुर्यात् प्रयत्नतः।
जपादिकन्तु तस्यैव यत्र शङ्का प्रजायते॥"

(हरतत्त्वदीधिति),

गुरु शिष्यको मन्त्र दे कर यदि देशान्तर चले जांय, या उनकी मृत्यु हो जाय तथा शिष्य यदि दुरदृष्टवशतः अपना मन्त्र भूल जावे, तो शिष्यको उचित है कि वह पहले गुरुपुत्रको बुला कर उन्हें कुल हाल कह सुनावे। पीछे गुरुपुत्र भी उस देवताके समस्त मंत्र उच्चारण करे; मंत्र सुन कर यदि शिष्यको वह मंत्र स्मरण हो जाय, तो शिष्य उसी मंत्रकी उपासना करे। यदि गुरुपुत्र भी न रहे, तो उस वंशमें जो कोई मंत्राभिज्ञ रहेंगे उन्हींसे मंत्रग्रहण करना चाहिये। यदि गुरु-वंशमें कोई भी न रहे, तो मंत्राभिज्ञ किसी ब्राह्मणसे पूर्वोक्त नियमानुसार मंत्र लेना उचित है। शिष्य यदि अतिशय दुरदृष्टवशतः कुलदेवता भी भूल जावे, तो पूर्व नियमानुसार गुरुपुत्रसे वह मालूम कर ले। यदि देवताका नाम किसी तरह याद न आवे तथा दूसरी तरहसे जाननेका उपाय भी न रहे तो, शिष्यके जिस देवताके प्रति अधिक भक्ति रहेगी, वही देवता उसके कुलदेवता होंगे।

अथ दुरदृष्टवशात् मन्त्रविस्मृतौ गुरौ देशान्तरगते मृते वा उपायमाह कालीविलासतन्त्रे तृतीयपटले—

"दत्त्वा मन्त्रं तथा विद्यां गुरुर्देशान्तरं गतः।
शिष्यैर्गुरुमुखाच्छ्रुत्वा मन्त्रो विद्या च विस्मृता।
किं कर्त्तव्यं तदा देवि शिष्येण वद साम्प्रतम्॥
श्रुत्वा चान्यतरस्यास्यातान्त्रिकस्य सुरार्चिते।
पूर्वविद्यां तथा श्रुत्वा ज्ञात्वा सिद्धीश्वरो भवेत्॥"

तथा गुरुपुत्रादिना तदभावे तद्वंशजाते नान्येनाखिलेषु मन्त्रजाते सञ्चरितेषु स्वमंत्रस्य श्रवणादवश्यं स्मृतिर्जायते, प्रचुरदुरदृष्टवशेन तत्राप्यानिश्चये तद्देवतामंत्रान्तरं गृहीयात् तत्राप्यतिदुरदृष्टवशात् देवताविस्मृतौ बहुषु देवेषु उच्चरितेषु यदि स्मृतिर्जायते, तदा तन्मन्त्रं गृहीयात्। तत्रापि देवतास्मृतेरभावे यत्र प्रचुरतरभक्तिः सैवोपास्या।

"स्वान्तःकरणवृत्त्यैव यत्र श्रद्धा गरीयसी।
सैवोपास्या प्रयत्नेन विचारस्तत्र निष्फलः॥"

(हरतत्त्वदीधिति)

पहले ही कहा जा चुका है, कि गुरु अथवा गुरुदत्त मंत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। किन्तु गुरु यदि महापातकी वा देवनिन्दक आदि दोषोंसे युक्त हों, तो

मरिच (सं० क्ली०) म्रियते नश्यति श्लेष्मादिकम-नेनेति मृ-बाहुलकात् इच्। स्वनामख्यात वर्त्तुलाकार कटु-द्रव्यविशेष, गोल मिर्च। इसे तैलङ्गमें मिरियलु, तामिलमें मिलगू, महाराष्ट्रमें मरिच, कलिङ्गमें मेनसू कहते हैं। संस्कृत पर्याय—पवित, श्याम, कोल, वल्लीज, ऊषण, यवनेष्ट, वृत्तफल, शाकाङ्ग, धर्मपत्तन, कटुक, शिरोवृत्त, वीर, कफविरोधि, मृष, सर्वहित, कृष्ण, वेल्लज, कोलक, घरिष्ठ। इसका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, लघु, श्लेष्मा-नाशक, वात, कृमि और हृद्रोगनाशक, अग्निवर्द्धक, रुक्ष और शुक्रनाशक।

मरिच झाल-मसालेमें गिना जाता है। अंगरेजीमें इसे Pepper कहते हैं। इसका साधारण गुण है कटु, उग्र, उष्ण, शुष्क और वायुनाशक। कविराजी मतसे मरिच सविराम ज्वरमें, अजीर्णरोगमें और अर्श रोगमें बहुत उपकारी है। पीपर और अदरकके साथ मिलनेसे यह त्रिकटु नामसे व्यवहृत होता है केशहीनता और चर्मरोगमें मरिच-चूर्णकी मालिश करनेसे बहुत फायदा दिखाई देता है। हकीमी मतसे मरिच बलकारक औषध है। कुष्ठरोगमें इसका बाहरी प्रयोग किया जा सकता है। दन्तरोगमें मरिचचूर्णसे यदि दतुवन किया जाय, तो बहुत उपकार होता है। कहते हैं, कि सांपके काटे हुए स्थानमें इसका लेप देनेसे विष ऊपर चढ़ने नहीं पाता, बल्कि नीचे उतर आता है। ज्वरजनित दुर्बलतामें तथा सिर-दर्दमें यह उत्तेजक माना गया है। गलेके भीतर फोड़ा होनेसे इसका बाहरी प्रयोग किया जाता है। विस्फोटकमें मरिचको घिस कर लगानेसे फायदा देखा गया है।

रासायनिक विश्लेषण—मरिचमें रजन, चरबी और तैल ये तीन पदार्थ हैं। इनमेंसे जो रजन पदार्थ हैं, उसीका स्वाद उग्र या झाल है।

यूरोपमें अति प्राचीनकालसे मरिचका मसाले और औषधमें व्यवहार चला आ रहा है। केवल यूरोपमें ही नहीं, पृथिवीके प्रायः सभी स्थानोंमें वह मसालेरूपमें व्यवहृत होता है। अतएव इसके व्यवहारके सम्बन्धमें और कुछ लिखना अनावश्यक है।

मरिचकी खेती।—मरिचकी लता होती है। अनेक समय यह लता जंगलमें आपे आप उगती है। गञ्जाम और मान्द्राज प्रदेशमें बिना खेतीके काफी मरिच उत्पन्न होता है। आसाम और मलवारके जंगलोंमें भी मरिच-की लता मिलती है। एतद्भिन्न दक्षिण भारतके उष्ण-प्रधान जलसिक्त स्थानमें इसकी खेती होती है। अति प्राचीनकालसे यूरोपके साथ भारतका मरिचका व्यव-साय चला आ रहा है। इस वाणिज्य-विस्तारके लिये दक्षिणभारतके दक्षिणांश तकमें यह उपजाया जाता है। सुमात्रा, श्याम और मलय-उपद्वीप आदिमें मरिचकी खेती होती है; किन्तु मलवारका मरिच सबसे उमदा होता है।

जेठके महीनेमें जब वर्षा शुरू होती है, उससे कुछ पहले मरिचकी लताको काट कर या कलम तैयार कर रोपते हैं। जिन सब वृक्षोंकी छाल असमान अथवा कांटोंसे भरी है उन्हींके नीचे इसकी लता रोपी जाती है। क्योंकि इससे लता बहुत मजबूत हो कर वृक्ष पर चढ़ती है। लता बीससे तीस हाथ लंबी देखी जाती है; किन्तु काटने छांटनेसे इतनी लंबी नहीं हो सकती। तीन वर्षके बाद उसमें मरिच निकलना शुरू होता है। एक एक लतामें मरिचके प्रायः २०से ५० गुच्छे तक लगते हैं। ३ वर्ष तक लता बढ़ती है, बादमें नहीं बढ़ती, एक-सी रहती है। चार पांच वर्षके बाद लता मरने लगती है। इसके बाद पुरानी लताको काट कर नई लगाते हैं। सब्ज वर्णसे जब मरिच लाल होने लगता है, तब गुच्छोंको तोड़ कर छेमीसे दाने निकाल लेते हैं। अनन्तर सूर्यकी किरणमें अथवा धीमी आंचमें उन्हें सुखाते हैं। सुपक्व मरिच-को जलमें धो कर उसकी भूसी अलग कर देनेसे सफेद मरिच तैयार होता है। कभी कभी यह क्लोरिन गैससे भी परिष्कार किया जाता है।

१८वीं सदीके अन्तमें डाक्टर रोक्सवर्ग (Roxburgh) समूलकोटासे उत्तर पहाड़ीप्रदेशमें जंगली मरिच-की लता देख कर वहां इसकी खेती करने लगे। १७८९ ई०में उन्होंने एक लंबा चौड़ा मरिचका बगीचा लगा कर कमसे कम पचास हजार किस्मके चारे कलम तैयार किये थे।

मरिचमें दो तरहके फूल लगते हैं, एक स्त्री-जातीय और दूसरा पुरुष-जातीय। स्त्रीजातिके फूलसे जो मरिच निकलता है वह उतना झाल नहीं होता।

बम्बईप्रदेशके केवल कनाड़ा जिलेमें मरिचकी खेती होती है। वहां सुपारीके बगीचेमें एक पेड़के नीचे चार चार मरिचकी कलम गाड़ते हैं। कलमकी जड़ मट्टीसे ढक दी जाती है। सिर्फ अगला भाग खुला रहता है। पीछे एक वर्षके भीतर सिर्फ एक बार उसकी डालको बांध देते हैं।

अकसर तीन प्रकारके मरिच देखे जाते हैं, कलिमलीसरु, शाम्बर और आश्विन-मर्त्तिग। इन तीनों प्रकारके मरिचके गुणमें कुछ भी पृथकता नहों देखी जाती, किन्तु प्रकारभेदसे कोई कम और कोई अधिक उपजता है। पहले प्रकारका मरिच अधिक परिमाणमें उत्पन्न होता है, किन्तु इसको उपजाना बहुत दुःसाध्य है। खेतमें अच्छी तरह जोताई नहीं होने अथवा बढ़िया खाद नहीं देनेसे फसल नहीं लगती। खाद अथवा जोताईके अनुसार मरिचके गुणमें भी तारतम्य देखा जाता है।

बहुत प्राचीनकालसे यूरोपके साथ पूर्वदेशके मरिचका वाणिज्य चला आ रहा है। बीच बीचमें इसकी बहुत उन्नति हुई थी। फ्लकिजर और हनबुरीभैषज्यतत्त्व नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि ईसाजन्मके ४ सौ वर्ष पहलेसे लोग मरिचका व्यवहार करते आ रहे हैं। इसके व्यवसायके सम्बन्धमें कौतुहलजनक विवरण भी देखनेमें आता है। परियनके बनाये हुए पेरिप्लस ग्रन्थमें लिखा है, कि नीलकुण्डा (वर्त्तमान मलवारका अन्तरीप)-से मरिचकी रफ्तनी होती थी। जो कुछ हो, मध्यकालमें मरिचका व्यवसाय अन्यान्य मसालोंकी अपेक्षा अधिक लाभजनक था, इसमें बिन्दुमात्र भी संदेह नहीं।

प्राचीनकालमें रोम और इङ्गलैण्डमें मरिच पर महसूल लगाया जाता था। २य हेनरीके समयमें मरिचके व्यवसायियोंकी एक समिति स्थापित हुई। पीछेसे उस समितिका नाम 'ग्रोसरस कम्पनी' रखा गया है। मध्यकालमें मरिचकी दर बहुत चढ़ गई थी। क्योंकि उस समय इजिप्त हो कर मरिच लाया जाता था जिससे व्यवसायियोंको ज्यादा महसूल और खरचा पड़ता था। इङ्गलैण्डमें १ पौंड मरिचका दाम १ शिलिङ्ग था। इसी कारण पुर्त्तगीज लोग भारतवर्ष आनेके लिये अन्य पथका आविष्कार करनेकी धुनमें लगे। १४९८ ई०में उनका उद्देश्य फलीभूत हुआ और तभीसे मरिचकी दर बहुत घट गई। अनन्तर मलयद्वीपपुंजमें इसकी खेती भी होने लगी। इस समय मरिचका व्यवसाय पुर्त्तगीजोंका खास हो गया था। लिंसोटनका वर्णन पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस समय पुर्त्तगीज-राज मलवार-उपकूलस्थित प्रत्येक दुर्गके लोगोंके साथ निर्दिष्ट नियमानुसार मरिचका कारबार करते थे। किसीको भी स्वतन्त्र खेती करनेका अधिकार नहीं था, करनेसे उसे प्राणदण्ड मिलता था।

वर्त्तमानकालमें मलवारका खास व्यवसाय उठ-सा गया है। मलयद्वीपपुंज और इसके पूर्ववर्त्ती स्थानोंमें इसकी खेती भी होने लगी है। भारतवर्षसे बहुत अधिक मात्रामें इसकी रफ्तनी होती है।

२ कक्कोल, कंकोल। ३ कतकफल, निर्मली। ४ कुमरिच, लाल मिर्च। ५ मरुवक वृक्ष, गन्ध तुलसी।

मरिचपत्रक (सं० पु०) मरिचस्य पत्राणीव पत्राणि यस्येति बहुव्रीहौ क। १ सरलवृक्ष। २ देवदारु।

मरिचसदृश (सं० पु०) कक्कोलवृक्ष, कंकोल।

मरिचा (हिं० पु०) बड़ी लाल मिरिच। मिरिच देखो।

मरिचाद्यचूर्ण (सं० क्लो०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—मरिचचूर्ण २ तोला, पिपराचूर्ण १ तोला, दाड़िम्बबीजचूर्ण ८ तोला, पुराना गुड़ १६ तोला और यवक्षार १ तोला इन्हें अच्छी तरह मर्दन कर उपयुक्त मात्रामें प्रयोग करनेसे कठिनसे कठिन खांसी जाती रहती है। (भैषज्यरत्ना० कासाधिकार)

मरिचाद्यतैल (सं० क्लो०) तैलौषधविशेष। यह तैल स्वल्प और वृहत्के भेदसे दो प्रकारका है। प्रस्तुत प्रणाली—स्वल्प मरिचाद्य तैलमें कटुतैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, कल्कार्थ मरिच, हरिताल, मनछाल, मोथा, अकवनका दूध, करवीका मूल, निसोथका मूल, गोबरका रस, ग्वालककड़ीका मूल, कुट, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, देवदारु, रक्तचन्दन प्रत्येक ४ तोला और विष ८ तोला। तैलपाकके विधानानुसार इस तेलको पकाना होता है। इसका व्यवहार करनेसे दाह, सफेद कोढ़ आदि रोग नष्ट होते हैं।

वृहन्मरिचाद्यतैल—कटु तैल १६ सेर, गोमूत्र ६४ सेर, कल्कार्थ मरिच, निसोथका मूल, दन्तिमूल, अकवनका दूध, गोवरका रस, देवदारु, दरिद्रा, दारुदरिद्रा, जटामांसी कुट, रक्तचन्दन, गोपाल कर्कटीका मूल, करवीका मूल, हरताल, मनछाल, चितामूल, ईशलाङ्गलामूल, विड़ङ्ग, चाकुन्दका वीज, शिरीषकी छाल, नीमकी छाल, मोथा, खैरका सार, पीपर, वच, ज्योतिष्मती, सीजका दूध, गुलञ्च, अमलतासका पत्र, उदरकरञ्जका वीज, प्रत्येक द्रव्य एक एक पल, विष २ पल, मट्टी वा लोहेके वरतनमें तैलपाकके नियमानुसार पाक करे। इस तेलकी मालिश करनेसे कोढ़ आदि रोग प्रशमित होते हैं तथा देहकी कमनीयता बढ़ती है। कुष्ठाधिकारमें यह सबसे उमदा तेल है। इस तेलसे गो अश्वादिका भी वातरोग नष्ट होता है। (भैषज्यरत्ना० कुष्ठरोगाधि०)

मरिमन् (सं० पु०) म्रियते इति मृ-(जनिमृङ्भ्यामिमनिन्। उणा् ४।१४८) इति इमनिन्। मृत्यु, मरण।

मरिया—आसामवासी मुसलमान जातिको एक शाखा।

मरिया (हिं० स्त्री०) १ वह रस्सी जो खाटमें पायतानेकी ओर उंचन लगा कर ऊपरसे एक पट्टीसे दूसरी पट्टी तक वानेकी तरह बांधी जाती है। २ नावमें वह तख्ता जो उसके पेंदेमें गूढ़ेके नीचे बेड़ें बलमें लगा रहता है। ३ लोहेकी एक छोटी हथौड़ी। इससे धातुओं पर खुदाईका काम करनेवाले कलमको ठोंकते हैं।

मरियाडीह—मध्यप्रदेशके दामोदर जिलान्तर्गत हट्टा तहसीलका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २४° १६´ उ० तथा देशा० ७८° ४२´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह हट्टा नगरसे १० मील उत्तर योगिदार-नालेके किनारे बसा है। यहां बारद्वारी नामक एक प्रासाद और दुर्ग है। चक्रहारीके बुन्देलाराज जब मरियाडीह देखने आये, तब यहां पर एक दुर्ग बना कर स्वयं रहने लगे। इस ग्रामके समीप उनका एक रङ्गालय था। १८६० ई०में हमीरपुर जिलेके मध्यवर्त्ती कुछ अंशोंको ले कर उन्होंने यह ग्राम अंगरेजोंको समर्पण किया था। यह स्थान देशी मोटे कपड़ेके लिये प्रसिद्ध है। एतद्भिन्न यहां एक थाना और विद्यालय है।

मरियाम् उज् जमानी—मुगल-बादशाह अकवरशाहकी प्रधान महिषी और जहांगीरके माता। यह कच्छवह सरदारके राजा विहारीमल्लकी कन्या थी, इसके रूपलावण्य पर मुग्ध हो कर सम्राट्ने इससे विवाह किया था। जहांगीरके राज्यकालमें १६२३ ई०को आगरा-नगरमें उसकी मृत्यु हुई। जहांगिरने अपने पिताके विख्यात सिकेन्दरा-समाधिमन्दिरकी बगलमें अपनी पुण्यवती माताका समाधि-मन्दिर बनवा दिया है। कोई कोई कहते हैं, कि अकवरशाहने ही प्राणप्रिय सहधर्मिणीका मकबरा उसके कहनेके अनुसार अपने समाधि-मन्दिरकी बगलमें बनवाया था। यह मकवरा 'रौजा मरियाम्' नामसे मशहूर है। कोई कोई इस 'रौजा मरियाम्'-को अकवर शाहकी Maria or Mary नामक खृष्टान् महिषीकी कब्र वतलाते हैं।

मरियाम् मकानी—सम्राट् अकवरशाहकी माता, हुमायूंकी पत्नी और सेख अहमद जामकी प्रपौत्री। इसका असल नाम हमीदाबानो बेगम था। मृत्युके वाद मरियाम-मकानी नाम पड़ा। १५४१ ई०में हुमायूंके साथ इसका विवाह हुआ था। अकवरके जन्मके वाद यह मक्का तीर्थयात्राको गई और वहांसे ३ सौ बलवान् अरवी खोजाके साथ दिल्ली राजधानी लौटी। उन लोगोंके रहनेके लिये मरियाम्ने प्राचीन दिल्ली नगरमें हुमायूं-मसजिदको बगलमें १५६० ई०को अरव-सराय बनवा दी थी। १०६३ ई०को ७८ वर्षकी उमरमें इसका देहान्त हुआ। हुमायूं-मसजिदमें इसका मकवरा आज भी देखा जाता है।

मरियाहु—१ युक्तप्रदेशके जौनपुर जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २५° २४´ से २५° ४४´ तथा देशा० ८२° २४´ से ८२° ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३२१ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः २५३४०२ है। इसमें मरियाहु नामक एक शहर और ६७८ ग्राम लगते हैं। तहसीलका विस्तार मरियाहु परगनेके समान है। इसके प्रायः सभी स्थान समतल हैं, बीच बीचमें कुछ सामान्य जलयुक्त छोटे छोटे हृद हैं। उत्तर-पश्चिम कोनसे दक्षिण-पूर्वकी ओर विशाही नदी बह गई है। यह नदी तहसीलको दो समान भागोंमें बांटती है। इसके उत्तर-पूर्वमें शाई नदी दौड़ गई है। जौनपुरसे मिर्जापुर तककी पक्की सड़क तहसीलके उत्तर-दक्षिण हो कर चली गई है।

यहांसे काशी और प्रतापगढ़ जानेके लिये दो कच्ची सड़कें गई हैं।

२ उक्त तहसीलका एक प्रधान सदर। यह अक्षा० २५° ३६' ८" उ० तथा देशा० ८२° ३८' ४०" पू०के मध्य विस्तृत है। जौनपुर शहरसे यह १२ मील दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। शहरमें सिर्फ एक बड़ी सड़क है। पहले यह स्थान जुलाहोंके रहनेके लिये विशेष प्रसिद्ध था, किन्तु आजकल वे दूसरी जगह चले गये हैं। नगरमें एक तहसील-कचहरी, दीवानी अदालत, अङ्गरेजी स्कूल, डाकघर, थाना और सेनाओंके रहनेका स्टेशन है। प्रति मङ्गलवार और शुक्रवारको यहां हाट लगती है।

मरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका दोष। यह स्पर्शदोषसे फैलता है और एक साथ बहुतसे लोग मरते हैं, महामारी। २ एक प्रकारका भूत। लोगोंका विश्वास है, कि यह किसी ऐसी दुष्ट स्वभाववाली स्त्रीकी प्रेतात्मा होती है जो किसी रोग, आघात अथवा किसी अन्य कारणवश पूर्णायुको न पहुंच कर अल्पायुमें मरी हो। ३ भारतवर्षमें तथा लङ्का, सिंगापुर आदि द्वीपोंमें मिलनेवाला देशी सागूदानेका पेड़। यह पेड़ देखनेमें बड़ा मनोरम होता है। इससे ताड़ी निकाली जाती है। ताड़ी लोग पीते हैं और उससे गुड़ भी बनाते हैं। इसकी कोमल बालों या मंजरीकी तरकारी बनाई जाती है। इसके पुराने स्कन्धमेंके गूदेसे सागूदाना निकलता है। यह दाना पानीमें पका कर खाया जाता है वा पीस कर उसकी रोटी बनाई जाती है। रेशे कूंची, ब्रुश, रस्सी और जाल बनानेके काममें आते हैं। लकड़ी इसकी मजबूत और टिकाऊ होती है। इस पेड़का दूसरा नाम मेरवा भी है।

मरीच (सं० क्ली०) मृ बाहुलकात् ईचः। स्वनामख्यात कटुद्रव्यविशेष, गोलमिर्च। मरिच देखो।

मरीचि (सं० पु०) म्रियते पापराशिर्यस्मिन्नति मृ (मृकणिभ्यामीचिः। उण् ४।७०) इति ईचि, तपःप्रभावादस्य तथात्वं। १ मुनिविशेष। पुराणोंमें इन्हें ब्रह्माका मानसिक पुत्र लिखा है, एक प्रजापति माना है और सप्तर्षियोंमें गिनाया गया है। किसी किसी पुराणमें इनकी स्त्रीका नाम 'कला' और किसी किसीमें 'संभूति' लिखा है। इनके कश्यप और पूर्णिमास नामक दो पुत्र थे। प्रतिदिन इनके उद्देशसे तर्पण करना होता है। सप्तर्षियोंमें ये प्रधान हैं।

२ दनुके एक पुत्रका नाम (हरिवंश ३।८२)। ३ एक मरुत्‌का नाम जो भृगुके पुत्र और कश्यपके पिता थे। ४ महर्षिभेद। ५ प्रियव्रत-वंशी एक राजाका नाम। ६ एक प्राचीन मान जो छः त्रसरेणुके बराबर होता है। ७ एक दैत्यका नाम।

(स्त्री०) म्रियन्ते इव देवा यद्दर्शनादिति मृ-ईचि। ८ अप्सरोविशेष, एक अप्सराका नाम। ९ किरण। १० कान्ति, ज्योति। मियते वारिभ्रमेण जीवा यस्याः मृ-अपादने ईचि। ११ मरीचिका, मृगतृष्णा।

मरीचि—१ शङ्कराचार्यके शिष्य। २ एक विख्यात ज्योतिर्विद। नारदीयसंहितामें इनका उल्लेख है। ३ जैन-पुराणोक्त प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेवके पौत्र। ४ पुराणोक्त मुनिविशेष। इनके औरस और सम्भूतिके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। ५ एक संहिताकार। ६ उपपुराणभेद।

मरीचिका (सं० स्त्री०) मरीचिरेव स्वार्थे कन् टाप्। १ मृगतृष्णा, सिरोह। गरमीके दिनोंमें जब वायुकी तहोंका घनत्व उष्णताके कारण असमान होता है, तब पृथ्वीके निकट ही वायु अधिक उष्ण हो कर ऊपरको उठना चाहती है। परन्तु ऊपरकी तहें उसे उठने नहीं देती; इससे उस वायुकी लहरें पृथ्वीके समानान्तर बहने लगती हैं। यही लहरें दूरसे जलकी धारा-सी दिखाई देती हैं। मृग इससे प्रायः धोखा खाते हैं इससे इसका दूसरा नाम मृगतृष्णा भी है। मृगतृष्णा देखो।

२ बौद्धमतानुसार जगदन्तरभेद। ३ किरण।

मरीचिगर्भ (सं० पु०) मरीचि आलोककणा गर्भे यस्य। १ सूर्य। २ दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें होनेवाले एक प्रकारके देवताओंका गण। ३ जगद्भेद।

मरीचिजल (सं० पु०) मृगतृष्णा।

मरीचितोय (सं० क्ली०) मरीचिका, मृगतृष्णा।

मरीचिन् (सं० त्रि०) मरीचि अस्त्यर्थे इनि। १ किरणयुक्त, जिसमें किरण हो। (पु०) २ सूर्य और चन्द्रमा।

मरीचिप (सं० त्रि०) १ सूर्यरश्मिपानमें देहधारी। २ मरीचिपालक देवता। ३ ऋषिकुलविशेष।

मरीचिपत्तन (सं० क्ली०) नगरभेद।

मरीचिमत् (सं० त्रि०) मरीचि अस्त्यर्थे मतुप् । मरीचियुक्त, जिसमें किरण हो ।

मरीचिमाली (सं० पु०) मरीचिमाला अस्यास्तीति इनि । १ मरीचि-मालायुक्त, चन्द्र और सूर्य । (त्रि०) २ किरणमालाविशिष्ट ।

मरीज (अ० वि०) रोगग्रस्त, रोगी ।

मरीना (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत मुलायम ऊनी पतला कपड़ा जो मेरीनो नामक भेड़के ऊनसे बनता है ।

मरीमृज (सं० क्ली०) पुनः पुनः मार्जन द्वारा परिष्कार करना, बार बार मल कर साफ करना ।

मरीमृश (सं० क्ली०) अनुभव करना ।

मरीयमि (सं० स्त्री०) अंगरेजी *Mary* शब्दका अपभ्रंश । रोमकसिद्धान्तमें जिस मरीयमिपुत्रका उल्लेख है, वह मेरिपुत्र ईसाका नामान्तर समझा जाता है ।

मरु (सं० पु०) म्रियतेऽस्मिन्निति मृ (भृमृशीति । उण् १।७) इति उ । १ निर्जलदेश, मरुभूमि, रेगिस्तान ।

"अदृश्या गच्छ भीरु त्वं सरस्वती मरून् प्रति ॥"

(भारत १३, १५४।२७)

२ वह पहाड़, जिसमें जलका अभाव हो । ३ मारवाड़ और उसके आसपासके देशका नाम । ४ मरुवक वृक्ष, मरुआ नामका पौधा । ५ नरकासुरके सहचर एक असुरका नाम । ६ सूर्यवंशीय भावीराजविशेष । भगवान्ने कल्कि अवतार ले कर म्लेच्छोंका निधन और मरुको अयोध्याराज्यमें अभिषिक्त किया । पीछे विशाखयूप राजाकी कन्यासे इनका विवाह हुआ ।

(कल्किपु० १८ अ०)

७ वसुओंमेंसे एक । कल्कि देखो । ८ शीघ्रराजके एक पुत्रका नाम । ९ निमिवंशके राजा हर्यश्वके एक पुत्रका नाम ।

मरुआ (हिं० पु०) १ वनतुलसी वा बबरीकी जातिके एक पौधेका नाम । यह पौधा बागोंमें लगाया जाता है । इसके पत्ते बबरीके पत्तोंसे कुछ बड़े, नुकीले, मोटे, नरम और चिकने होते हैं । इनसे उग्र गंध आती है । इसके दल देवताओं पर चढ़ाये जाते हैं । इसका पेड़ डेढ़ दो हाथ ऊंचा होता है और इसको कुआरी या कार्तिक अगहनमें तुलसीकी तरह मंजरी निकलती है । इन मंजरियोंमें सफेद फूल लगते हैं । जब फूल झड़ जाते हैं तब बीजोंसे भरे हुए छोटे छोटे बीजकोश निकल आते हैं । बीजकोशके पकने पर उनमेंसे बहुत बीज निकलते हैं । इन बीजोंको यदि पानीमें डाल दे, तो वे ईशबगोलकी तरह फूल जाते हैं । यह पौधा बीजोंसे उगता है ; पर यदि इसकी कोमल टहनी या फुनगी लगाई जाय, तो वह भी लग जाती है । रंगके प्रभेदसे मरुआ दो प्रकारका होता है, काला और सफेद । काले मरुएका प्रयोग ओषधिरूपमें नहीं होता और फूल आदिके साथ देवताओं पर चढ़ानेके काम आता है । सफेद मरुआ ओषधियोंमें काम आता है । इसका गुण चरपरा, कड़ुआ, रूखा और रुचिकर तथा तीखा, गरम, हलका, पित्तवर्द्धक, कफ और वातनाशक, विष, कृमि और कुष्ठनाशक माना गया है । मरुवक देखो ।

२ हिंडोलेमें वह ऊपरकी लकड़ी जिसमें हिंडोला लटकाया जाता है वा हिंडोलेको लटकानेकी लकड़ी जड़ी वा लटकाई जाती है । ३ माँड ।

मरुक (सं० पु०) १ मयूरभेद, एक प्रकारका मोर । २ मृगविशेष, एक प्रकारका हरिन ।

मरुकच्छ (सं० पु०) देशविशेष । यह दक्षिण दिशामें है और हस्त, चित्रा और स्वाती नक्षत्रोंके अधिकारमें माना गया है ।

मरुकान्तर (सं० पु०) बालू या रेतका मैदान, रेगिस्तान ।

मरुकुच्छ (सं० पु०) देशविशेष । मरुकुत्स देखो ।

मरुकुत्स (सं० पु०) बाराहीसंहिताके अनुसार एक देशका नाम । यह कूर्मविभागके अनुसार पश्चिमोत्तर दिशामें है और उत्तराषाढ़ा, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रोंके अधिकारमें माना गया है ।

मरुकेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद ।

(स्कन्दपु० नागर० १०२।१३)

मरुकोट (सं० पु०) देशभेद ।

मरुचीपट्टन (सं० क्ली०) बृहत्संहिताके अनुसार एक देशका नाम । यह दक्षिण दिशामें है और हस्त, चित्रा और स्वाती नक्षत्रोंके अधिकारमें माना गया है ।

मरुज (सं० पु०) मरौ निर्जलदेशे जायते इति जन-ड ।

१ नखी नामक गन्धद्रव्य। (क्ली०) २ वंशांकुर, बांसका कल्ला। ३ विटखदिर। (लि०) ४ मरुदेश जात, रेगिस्तानमें होनेवाला।

मरुजा (सं० स्त्री०) मरुज-स्त्रियां टाप्। मृगेर्व्वारु, मरुस्थलमें होनेवाली इन्द्रायणको जातिकी एक लता।

मरुजाता (सं० पु०) कपिकच्छुलता, केवांच, कौंछ।

मरुटा (सं० स्त्री०) उच्च-ललाटयुक्त स्त्री, वह स्त्री जिसका ललाट ऊंचा हो।

मरुण्डा (सं० स्त्री०) मरुटा देखो।

मरुत (सं० पु०) म्रियते प्राणिनो यदभावादिति मृ-बाहुलकात् उत; १ वायु, हवा। २ देव। ३ घंटापारुलिवृक्ष। ४ यदुवंशीय एक राजाका नाम। ये प्रसिद्ध राजर्षि थे। इनके पिताका नाम सितेयु और पितामहका उशना था। इनके एक पुत्र थे जिनका नाम कम्बलवर्हि था।

(लिङ्गपुराण)

मरुत् (सं० पु०) म्रियते प्राणी यस्याभावादिति मृ (मृग्रोरुति। उण् १।९४) इति उत्। १ वायु, हवा। २ एक देवगणका नाम। वेदोंमें इन्हें रुद्र और वृश्निका पुत्र लिखा है और इनको संख्या ६०की तिगुनी मानी गई है। पुराणोंमें इन्हें कश्यप और दितिका पुत्र बतलाया है। मरुत्के वैमात्रेय भाई इन्द्रने दितिका गर्भ काट कर एकसे उनचास टुकड़े कर डाले थे। अनन्तर उन्होंने 'मा रोदोह' अर्थात् 'मत रोवो' कह कर दितिको अश्वासन दिया, इसीलिये जात बालकका नाम मरुत हुआ। उनके उनचास टुकडे किये गये थे इस कारण उनचास मरुत् हुए। वेदोंमें मरुद्गणका स्थान अन्तरिक्ष लिखा है; उनके घोडेका नाम पृशित बतलाया है तथा उन्हें इन्द्रका सखा लिखा है। पुराणोंमें इन्हें वायुकोणका दिकपाल माना गया है। पवन देखो।

३ मरुवक वृक्ष, मरुआ। ४ देव। ५ साध्यविशेष। ६ भ्रातृवत्सल देवताविशेष। ७ हिरण्य, सोना। ८ ऋत्विक्। ९ ग्रन्थिपूर्णवृक्ष, गठिवन। (स्त्री०) १० पृक्का, असबर्ग।

मरुत्—मुसलमानोंके स्वर्गीय दूतभेद। कुरानमें लिखा है,—आदमके पुत्रोंने पृथ्वी पर घोर उपद्रव मचाना शुरू कर दिया। यह अत्याचार देख कर स्वर्गीय दूत स्तम्भित और विस्मित हो गये। पीछे उन्होंने जगत्-नियन्ता परमेश्वरके समीप जा कर कुल वृतान्त कह सुनाया। तदनुसार जगत्-पिताने मरुत् और हारुत् नामक दो देवदूतोंको पृथ्वी पर भेजा। पृथ्वी पर उतर कर वे दोनों बड़ी कुशलतासे अपना अपना कर्त्तव्य करने लगे। अनन्तर जोह्रा (शुक्रग्रह) स्त्रीका रूप धारण कर पृथ्वी पर आया। दोनों देव-दूत उसके रूपलावण्यको देख कर मुग्ध और प्रेम-पीड़ित हो पड़े। इसके बाद उक्त रमणीके स्वर्ग जाने पर मरुत् और हारुत्ने उसका पीछा किया। किन्तु स्वर्गरक्षक रिदवानने उन्हें घुसने नहीं दिया। पापके प्रायश्चित्त स्वरूप वे दोनों जब तक इसका विचार शेष नहीं हुआ, तब तक बाबिलनमें बंद रखे गये।

मरुत्कर (सं० पु०) करोतीति कृ-अच्, मरुतो अपानवायोः करः। १ राजमाष, उड़द। (लि०) २ मरुत्कारी।

मरुत्कर्म (सं० पु०) १ उदराध्मान, पेटका फूलना। २ वायुनिःसरण, हवाका निकलना। ३ शब्दकल्पद्रुम।

मरुत्क्रिया (सं० स्त्री०) मरुतः क्रिया। अपानोत्सर्ग, पादना।

मरुत्त (सं० पु०) मरुदस्त्यस्येति मरुत-(तप्पर्व्वमरुदभ्यां। पा ५।२।१२२) इत्यत्र काशिकोक्त्या तप्। एक चन्द्रवंशीय राजा। इनके पिताका नाम अवीक्षित था। ये चक्रवर्त्ती राजा थे। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है :—चन्द्रवंशीय राज्यश्रेष्ठ करन्धमके अवीक्षित नामक एक पुत्र थे। अवीक्षित वीर पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे। विदिशाधिपति विशालकी कन्याको वे स्वयम्बर सभासे हर लाये थे। इस कारण उपस्थित राजाओंने युद्धस्थलमें उन्हें बांध रखा। अवीक्षितके पिताको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने आ कर राजाओंको युद्धमें हराया और पुत्रको बंधन-मुक्त किया।

अनन्तर विदिशाधिपति विशालने अपनी कन्याको अवीक्षितसे ही ब्याहना चाहा; परन्तु पराजित अवीक्षित दुःखी थे इसीलिये विवाह करनेसे इन्कार चले गये। इधर युवती कन्या भी अवीक्षितके सिवाय दूसरेके साथ ब्याह करना नहीं चाहती थी। पिताने जब उसे दूसरा पति चूनने कहा, तब वह बोली,

"हे पिता ! यदि पूर्व निश्चित स्वामी मेरा पाणिग्रहण न करें तो मुझे तपस्या करनेकी आज्ञा दीजिये, तपस्या भिन्न इस जन्ममें मेरा पति और कोई हो ही नहीं सकता।" राजा विशाल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कुछ स्थिर न कर सके। कन्या तपस्या करने जङ्गल चली गई। घोर तपस्यासे जब उसका शरीर क्षीण होने लगा और प्राण निकलनेकी नौबत आन पड़ी तब देवताओंने उसके पास एक देवदूत भेजा। उस दूतने कहा "मैं देवदूत हूं, देवताओंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। सुनो! यह शरीर दुर्लभ है तुम उसे मत त्यागो। तुम्हें एक चक्रवर्त्ती पुत्र होगा जो शत्रुओंका संहार कर सातों द्वीपका अधिकारी बनेगा।" कन्या बोली, 'हे दूत ! बिना स्वामीके मुझे किस प्रकार वैसा पुत्र मिल सकता ? मैंने तो संकल्प कर लिया है, कि अवीक्षितको छोड़ कर और कोई भी इस जन्ममें मेरे पति नहीं हो सकते। मेरे पिता और अवीक्षितके पिता करन्धमने उन्हें मुझसे विवाह करनेके लिये बार बार समझाया, मैंने भी कई बार अनुनय विनय किया, पर उन्होंने एक भी न मानी।

इस पर देवदूतने कहा, 'अधिक कहनेकी जरूरत नहीं। तुम्हारे निश्चय ही एक पुत्र होगा। अतएव अधर्म द्वारा प्राणत्याग न करना, इसी काननमें रह कर इस क्षीण शरीरकी पालना।'

उधर अवीक्षितकी माता वीराने पुत्रसे कहा, 'मैं किमिच्छिकव्रत करना चाहती हूं तुम मेरी सहायता करना।' अवीक्षितने उत्तर दिया, 'धन मेरे पिताका है, उसमें मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है। पर हां, मैं प्रतिज्ञा करता हूं, जहां तक हो सकेगा, मैं अपने शरीरसे जरूर मदद पहुंचाऊंगा।'

अवीक्षितके इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर राजा करन्धम उनके समीप गये और बोले, 'वत्स ! मैं तुमसे एक वस्तु मांगना चाहता हूं, कबूल करो, तो कहूं।' अवीक्षितने हाथ जोड़ कर कहा, 'तात ! आप जरा भी न सकुचें, कह डालें, वह कौन सी वस्तु है जो आप चाहते हैं। चाहे वह साध्य हो वा असाध्य, मैं उसे अवश्य कर डालूंगा।' राजाने उत्तर दिया, 'मैं अपनी गोदमें पौत्रमुख देखना चाहता हूं, सो मेरा मनोरथ पूरा करो।' अवीक्षित बोले, 'राजन् ! मैं आपका एकमात्र पुत्र हूं, फिर भी मैं ब्रह्मचारी हूं। मेरे स्त्रीपुत्र कुछ भी नहीं है। ऐसी हालतमें किस प्रकार आप पौत्रका मुख देख सकते ?' राजाने कहा, 'तुमने अन्याय ब्रह्मचर्यका अवलम्बन किया है। अभी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहो और विवाह करो, यही मेरा अनुरोध है।' अवीक्षित इस पर राजी हो गये।

अनन्तर एक दिन राजपुत्र अवीक्षित आखेटको निकले। वहां उन्होंने किसी स्त्रीका रोना सुना। शब्दका अनुसरण करते करते वे उसके पास गये और बोले, 'तुम कौन हो और क्यों रोती हो ?' स्त्रीने जवाब दिया, 'मैं राजा करन्धमके पुत्र पृथ्वीश्वर धीमान् अवीक्षितकी भार्या हूं। दुरात्मा असुर मुझे यहां हर लाया है, इसीलिये मैं रोती हूं।' यह सुन कर अवीक्षित सोचने लगे, 'क्या सचमुच यह मेरी भार्या है अथवा कानन वासी दुष्टप्रकृति मायावी राक्षसोंकी माया है ? जो कुछ हो, मैं जब यहां पहुंच गया, तब इसका यथार्थ तत्त्व मालूम कर जरूर इसका प्रतिकार करूंगा।' पीछे जब उन्हें मालूम हुआ, कि दनुके पुत्र दृढ़केशने उस सर्वालङ्कारभूषिता कन्याको यहां हर लाया है, तब उन्होंने उसे युद्धमें बुलाया और मार डाला।

दुरात्मा दानवके मारे जाने पर देवगण वहां पहुंच गये और उन्होंने अवीक्षितसे अभिलषित वर मांगनेको कहा। इस पर राजपुत्रने पिताकी कामना पूरी करनेके हेतु एक महावीर्य पुत्रके लिये प्रार्थना की। देवताओंने कहा, 'तुमने इस कन्याका संकट दूर किया है, इस कारण इसीके गर्भसे तुम्हें एक महाबलिष्ठ चक्रवर्त्ती पुत्र होगा।'

इस समय तुलय नामक गन्धर्व अन्यान्य सहचरोंके साथ वहां पहुंचे और कहने लगे, 'यह मालिनी मेरी ही नन्दिनी है, भामिनी इसका नाम है। अगस्त्यके शापसे विशालकी कन्या हो गई है। तुम इसका पाणिग्रहण करो, इसके गर्भसे तुम्हें चक्रवर्त्ती पुत्र होगा।' राजपुत्र अवीक्षितने इस बात पर सहमत हो कर उससे विवाह कर लिया।

कुछ दिनके बाद उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

तुम्बुरु जातवालकका जातकर्मादि शेष करके स्तुति करने लगे—"मरुत् तुम्हारा कल्याण करें, पूर्व-मरुत् तुम्हारे कल्याणके लिये मन्द गतिसे प्रवाहित होवें, उसके साथ नाममात्र भी धूल न रहे, दक्षिण-मरुत् अक्षीण और निर्मल हो कर तुम्हारे अनुकूल रहें, पश्चिम-मरुत् तुम्हें उत्कृष्ट वीर्य और उत्तर-मरुत् विशिष्ट रूपसे वल प्रदान करें।" स्वतिवाचन शेष होने पर आकाशवाणी हुई, 'तुम्हारे गुरु-ने वार वार तुम्हारे उद्देशसे मरुत् शब्दका प्रयोग किया है, इसलिये यह बालक मरुत् नामसे पृथिवी पर प्रसिद्ध होगा। पृथिवी परके सभी राजा इसकी आज्ञाके वशीभूत होंगे।

अनन्तर राजपुत्र अवीक्षित अपने पुत्र मरुत्त और स्त्रीके साथ घर लौटे। राजा पौत्रका मुख देख कर फूले न समाये। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन राजाने अवीक्षितसे कहा, मैं वृद्ध हो गया हूं, अब राजकाज तुम चलाओ, मैं वन जाऊंगा।

अवीक्षित भी तपस्याके लिये वन जाना चाहते थे, सो उन्होंने पितासे कहा, 'पिता! मैं राजा होना नहीं चाहता, मेरे मनसे आज तक भी लज्जा दूर नहीं हुई है, अतएव आप किसी दूसरेको राज्यमें नियुक्त कर जायें। आप अच्छी तरह जानते हैं, मैं बन्दी हुआ था, आपने ही मेरा उद्धार किया। अतएव मुझमें पौरुष रहा कहां, जो राज्य-शासन करूं! विना पौरुषके राज्यशासन करना उचित नहीं।'

पिताने कहा, 'पिता जिस प्रकार पुत्रसे भिन्न नहीं है, पुत्र भी उसी प्रकार पितासे अभिन्न है। तुम्हारा और किसीने बन्धनमोचन नहीं किया, स्वयं पिताने ही मोचन किया। इस पर पुत्र बोले, 'मैं अव मनकी गति-को पलट नहीं सकता। दूसरेकी सहायतासे मुक्त हो कर मैं बड़ा लज्जित हो गया हूं। अधिक क्या, वयः प्राप्त हो कर जो पुत्र पिताके उपार्जित अर्थका भोग करता है अथवा पिताकी चेष्टासे पाप या कष्टसे उत्तीर्ण होता उसकी जैसी गति होती है, मैं भी उसी गतिको प्राप्त हुआ हूं।

पिताके लाख समझाने पर भी अवीक्षितने नहीं माना और राजपाट अपने पुत्र मरुत्त पर सौंप आप जंगलको चल दिये।

मरुत्त भी पिताके आज्ञानुसार पितामहसे राज्य पा कर पुत्रवत् प्रजापालन करने लगे। वे बड़े धार्मिक थे, सर्वदा यज्ञानुष्ठानमें ही लगे रहते थे। पृथ्वी देवी महात्मा मरुत्तसे परिपालित हो कर देवसमाजमें उनका सर्वदा गुणानुकीर्त्तन किया करती थीं। राजा मरुत्तने यज्ञ करके केवल राजाओंको ही नहीं, देवराजको भी परास्त किया था। अङ्गिरा-पुत्र सम्वर्त्त इनके यज्ञमें ऋत्विक् होते थे। राजा मरुत्त सुरगण-सेवित सुवर्णमय मुञ्ज-वान् पर्वतशृङ्गको यज्ञमें लाते थे। इनके यज्ञीय सभी प्रासाद सोनेके वने थे।

इस प्रकार राजा मरुत्तके राज्यशासन करते करते बहुत दिन बीत गये। एक दिन कोई तपस्वी उनके निकट आये और वोले, 'राजन्! मदोन्मत्त सर्पगण तापस-मण्डलीको वहुत सता रहे हैं, उनके विषसे सभी त्राहि त्राहि कर रहे हैं, यह देख आपकी पितामहीने कहला भेजा है,—"आपके पितामह सम्यक्रूपसे राज्यशासन कर गये हैं। अभी वे और्व आश्रममें ठहर कर तपस्या कर रहे हैं। तुम राज्यशासनके योग्य नहीं हो, क्योंकि तुम्हारे पितामह और पूर्व पुरुषोंके अधिकारमें जो कभी नहीं हुआ, वह तुम्हारे राज्यशासनमें हो रहा है। तुम सच-मुच विषयवासनामें लिप्त हो कर इन्द्रियके वशीभूत हो गये हो। तुम प्रजाका दुःख सुख नहीं सुनते। उन्मत्त भुजङ्गोंने पातालसे आ कर सात ऋषिकुमारोंको डँस लिया है तथा जलाशयादिमें स्वेद, मूत्र और पुरीष त्याग कर जलको दूषित कर डाला है। उनके दौरात्म्यसे अनल-में दिये गये घृत समिधादि भी यों हो नष्ट हो गये हैं। ऋषिगण विना प्रयासके सर्पकुलको भस्म कर सकते हैं, पर इस विषयमें उनको अधिकार नहीं; तुम ही एक-मात्र अधिकारी हो।"

राजा मरुत्त तापसकी यह बात सुन कर शरासन लिये बड़े वेगसे और्वके आश्रममें चल दिये। वहां उन्होंने सचमुच सांपसे काटे गये सात ऋषिकुमारोंको देखा पीछे मुनियोंके समीप जा अपनेको धिक्कारते हुए कहा, 'हे दुष्ट भुजङ्ग! तुमने मेरी अवहेला करके ब्राह्मणों-से शत्रुता ठान दी है। आज मैं तुम लोगोंको ऐसा दण्ड दूंगा, कि सदाके लिये याद रहेगा।

इतना कह कर मरुत्तने पाताल और भूतल परके सभी नागोंका विनाश करनेके लिये सम्वर्त्तक अस्त्रको छोड़ा। अस्त्रके तेजसे समस्त नागलोक दग्ध होने लगा। नागोंने कोई उपाय न देख मरुत्तको माता भामिनीको शरण ली। भामिनीने अपने स्वामी अवीक्षितसे नागोंकी रक्षाके लिये अनुरोध किया। इस पर अवीक्षित बोले, 'नागोंने भारी अपराध किया है, इसी कारण मरुत्त क्रोधमें आ कर ऐसे काममें प्रवृत्त हुआ है। उसका यह क्रोध सहजमें शान्त होगा, सो मुझे विश्वास नहीं होता।' अनन्तर नागगण अवीक्षितकी शरणमें पहुंचे। अवीक्षितने शरणार्थी नागों तथा निज पत्नी भामिनीके अनुरोध पर कहा, 'भद्रे! मैं अति शीघ्र मरुत्तके पास जा रहा हूं और उसको इस कामसे रोकता हूं। क्षत्रियको ऐसा कदापि उचित नहीं, कि वे शरणागतको विमुख लौटा दे। यदि मरुत्त मेरी बातको न मानेगा, तो निश्चय जानना कि मैं अपने अस्त्रसे उसके अस्त्रका प्रतिरोध करूंगा।

इस प्रकार नागोंको सान्त्वना दे कर अवीक्षित पुत्रके पास गये और बोले, 'मरुत्त! अस्त्रको रोको, क्रोधके वशीभूत मत होवो।' मरुत्त पिताकी आज्ञा सुन कर एक टकसे उन्हें देखने लगे और प्रणाम करते हुए बोले, 'तात! इन दुष्ट सर्पोंने गुरुतर अपराध किया है। मैं पृथ्वीका शासनकर्त्ता हूं, मेरे शासनकी अवज्ञा कर इन्होंने आश्रयवासी निरपराध सात ऋषिकुमारोंको डंस लिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने यज्ञोय घृत और जलको भी दूषित कर दिया है। इसी कारण मैं इन सबोंका बध करनेको उद्यत हुआ हूं। मेरा अनुरोध है, आप मुझे इस कामसे न रोकें।

पुत्रकी बात सुन कर अवीक्षितने कहा, 'सच है भुजङ्गोंने भारीसे भारी अपराध किया है, पर इस समय मेरा अनुरोध तुम्हें अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। नागगण अपने अपराधका दण्ड अच्छी तरह पा चुके, अब अपना अस्त्र रोको।' इस पर मरुत्तने कहा, 'यदि मैं इन पापियोंको अच्छी तरह शास्ति न दूं, तो मुझे नरक जाना पड़ेगा। अतएव आप मुझे इस कामसे न रोकें। अवीक्षित बोले, 'इन पन्नगोंने मेरी शरण ली है, शरणागतको आश्रय देना क्षत्रियका एकान्त धर्म है। अतएव मेरे प्रति दया करो और अब अस्त्र चलाना छोड़ दो।' मरुत्तने जवाब दिया, 'ये दुष्ट और अपराधी हैं, इन्हें कदापि क्षमा नहीं कर सकता। मैं अपने धर्मका उल्लङ्घन करते हुए किस प्रकार आपके वचनकी रक्षा करूंगा। दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करना ही राजाका कर्त्तव्य है। ऐसा नहीं करनेसे नरककी गति होती है।

इस प्रकार पिताके वार वार अनुरोध करने पर भी जब पुत्रने अस्त्र चलाना नहीं छोड़ा, तब एक बार और अवीक्षितने कहा, 'ये सभी पन्नग डर गये और मेरी शरणमें पहुंचे हैं। इसके लिये मैंने तुमसे कई वार अनुरोध किया, फिर भी तुमने अस्त्र चलाना छोड़ा नहीं। अब निश्चय जानो, मैं स्वयं अस्त्र धारण करूंगा। केवल तुम ही अस्त्रविद् नहीं हो, मैं भी अस्त्र चलाना जानता हूं। मेरे सामने तुम ठहर नहीं सकते! पिताका कहना नहीं मानते, इसलिये तुम अति दुर्वृत्त हो।'

अनन्तर राजा अवीक्षितने कालास्त्र ग्रहण कर पुत्रके उद्देशसे प्रयोग किया। तब मरुत्तने चिल्ला कर कहा, मैंने सिर्फ दुष्टोंका शासन करनेके लिये ही इस संवर्त्तक अस्त्रकी योजना की है, आपका वध करनेके लिये नहीं। मैं आपका पुत्र हूं, फिर भी सुपथसे चल कर आपकी आज्ञाका पालन करता आया हूं, प्रजाका परिपालन ही मेरा कार्य है, तब ऐसा अन्याय क्यों हो रहा है।'

अवीक्षितने उत्तर दिया, "मैंने भी तो शरणागतकी रक्षा करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा की है, तो फिर तुम क्यों वाधा डालते हो। निश्चय जानो, जब तक दम है, तब तक तुम मुझसे पार नहीं पा सकते। चाहे तुम अस्त्रसे मेरा बध कर इन दुष्ट सर्पोंको संहार करो चाहे मैं अस्त्र बलसे तुम्हें मार कर इनकी रक्षा करूं। शरणागत चाहे शत्रु भी क्यों न हो जो उन पर दया नहीं दरसाते उनका जीवन धिक् है। मैं क्षत्रिय हूं, ये सब भयभीत हो कर मेरी शरणमें पहुंचे हैं, किन्तु तुम इनका अनिष्ट कर रहे हो, तो फिर बताओ मैं तुम्हारा क्यों नहीं बध करूं?'

इस पर मरुत्तने उत्तर दिया, 'मित्र, बान्धव, पिता वा गुरु चाहे कोई भी क्यों न हो प्रजापालनमें विघ्न

डालनेसे राजा उसका अवश्य बध करेगा। अतएव मैं आपको प्रहार करूंगा। इसमें यदि आप कोप करें, तो अनुचित है।

पिता और पुत्र दोनों आपसमें मर मिटनेको तैयार हो गये। जब यह खबर भार्गवादि मुनियोंको लगी, तब वे वहां आये और मरुत्तसे बोले, 'पिता पर अस्त्र छोड़ना उचित नहीं।' पीछे वे लोग अवीक्षितको भी समझा कर कहने लगे, 'तुम्हारा यह पुत्र विख्यात-विक्रम है, इसका संहार तुम्हें हरगिज नहीं करना चाहिये।' उत्तरमें मरुत्तने कहा, 'मैं राजा हूं, दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन हमारा कर्त्तव्य कर्म है। भुजङ्गोंने भारी अपराध किया है, इसीसे मैं उन्हें दण्ड देता हूं।' अवीक्षित बोले, 'शरणागतको रक्षा करना मेरा एकमात्र कार्य है। मेरा यह पुत्र शरणागतके संहारमें प्रवृत्त हुआ है अतएव यह सर्वदा अपराधी है।'

इस पर ऋषियोंने फिर कहा, 'भुजङ्गोंने जिन ब्राह्मण-कुमारोंको डंसा है उन्हें वे ही जिला देंगे। अतएव पितापुत्रमें विवाद करनेकी जरूरत नहीं। तुम दोनों ही राजश्रेष्ठ हो।' इसी समय अवीक्षितकी माता वीरा वहां पहुंची और पुत्रसे कहने लगी, 'तुम्हारा पुत्र मरुत्त मेरे ही कहने पर इन पन्नगोंका संहार करनेको उद्यत हुआ है। अतएव मेरा यही कहना है, यदि मृतब्राह्मण-कुमार जीवन पा जांय तो तुम्हारे शरणागत सर्पगण भी रक्षा पायेंगे।'

तदनन्तर भुजङ्गोंने सभी ब्राह्मण कुमारोंको दिव्य ओषधि द्वारा जिला दिया। अब मरुत्त पिताके चरणोंमें गिर कर वन्दना करने लगे। अवीक्षितने भी प्रेमपूर्वक आलिङ्गन कर उन्हें आशीर्वाद दिया।

राजाधिराज मरुत्त षड़रिपुओंको जय कर धर्मतः पृथिवीका पालन करते हुए सभी भोगोंका संभोग करने लगे। विदर्भकी कन्या प्रभावती, सुवीरकी कन्या सौवीरा, मगधपति केतुको कन्या प्रभावती, सुवीरकी कन्या सौवीरा, केकयकी कन्या सैरिन्ध्री, सिन्धुकी कन्या वसुमती और चेदितकी कन्या सुशोभना यही सात मरुत्तकी पत्नी थीं। इन सातोंके गर्भसे अठारह पुत्र उत्पन्न हुए। सभी पुत्रोंमें नरिष्यन्त श्रेष्ठ था।

जो व्यक्ति इस मरुत्त-उपाख्यानको ध्यानपूर्वक सुनता है, उनके सभी पाप नष्ट होते हैं तथा अन्तमें वह शुभ गतिको प्राप्त होता है। (मार्कण्डेय पु० १२८-१३२)

२ यदुवंशीय करन्धमके एक पुत्रका नाम (भाग० ९।२३।१७) ३ राजा शिलेयुके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ३६।७)

मरुत्तक (सं० पु०) मरुदिव तकति हसतीति तक हासे अच्। १ श्वेत मरुवकवृक्ष, सफेद मरुआ। २ देवदारुवृक्ष।

मरुत्तम (सं० त्रि०) मरुत् तुल्य वेगगामी, हवाके समान चलनेवाला।

मरुत्पति (सं० पु०) मरुतां पतिः ६ तत्। इन्द्र।

मरुत्पथ (सं० पु०) मरुतां पन्था (ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे। पा ५।४।७४) इति असमासान्तः। आकाश।

मरुत्पाल (सं० पु०) मरुतो दिवान् पालयतीति पालि-अच्, देवराजत्वादस्य तथात्वं। इन्द्र।

मरुत्पुत्र (सं० पु०) मरुतो वायोः पुत्रः। भीमसेन।

मरुत्प्लव (सं० पु०) मरुदिव प्लवते द्रुतं गच्छतीति प्लु-अच्। सिंह, शेर।

मरुत्फल (सं० क्ली०) मरुतां वायूनां फलमिव। घनोपल, ओला।

मरुत्वत् (सं० पु०) मरुतो देवाः पालनीयत्वेन सन्त्यस्य इति मरुत् (मध्वादिभ्यश्च। पा ४।२।८६) इति मतुप् मस्य व, संज्ञायां प्रत्ययवकारे परे न तस्य द। १ इन्द्र। २ महाभारतके अनुसार देवताओंके एक गणका नाम जो धर्मके पुत्र माने जाते हैं। ३ हनूमान। (त्रि०) ४ वायु विशिष्ट।

"बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रो बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रः।
बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रो बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रः॥"

(भट्टि १०।२९)

भट्टिके इसी एक श्लोकमें सभी अर्थोंका उदाहरण है।

मरुत्वती (सं० स्त्री०) धर्मकी पत्नीका नाम। यह प्रजापतिकी कन्या थी।

मरुत्वतीय (सं० त्रि०) मरुत्वत् इन्द्रसम्बन्धीय माध्यन्दिन यागभेद।

मरुत्सख (सं० पु०) मरुतां देवानां सखा (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। १ इन्द्र। मरुतो वायोः सखा। २ अग्नि।

मरुत्सखि (सं० स्त्री०) १ सरस्वती । २ इन्द्र ।

मरुत्सहाय (सं० पु०) मरुत सहायो यस्य । अग्नि ।

मरुत्सुत (सं० पु०) १ वायुपुत्र, हनूमान । २ भीम ।

मरुत्स्तोत्र (सं० पु०) मरुतोंके साथ स्तुत ।

मरुत्स्तोम (सं० पु०) १ मरुत्सम्बन्धीय स्तोम । २ एकाह-यागभेद, एक प्रकारका एकाह यज्ञ ।

मरुथल (सं० पु०) मरुस्थल देखो ।

मरुदान्दोल (सं० पु०) मरुत् वायुरान्दोल्यतेऽनेनेति आन्दोलि करणे घञ् । १ धवित्र, धौंकनी । २ प्राचीन कालकी एक प्रकारकी धौंकनी जो हरिन वा भैंसके चमड़ेसे वनती थी ।

मरुदिष्ट (सं० पु०) मरुतां देवानामिष्टः । गुग्गुलु, गूगुल ।

मरुदेव (सं० पु०) इक्ष्वाकुवंशीय राजभेद । ऋषभदेवके पिताका नाम ।

मरुदेवी (सं० स्त्री० ऋषभदेवको माता ।

मरुदेश (सं० पु० १ मरुभूमि । २ मारवाड़का जनपद ।

मरुद्गण (सं० पु०) मरुत्समूह ।

मरुद्ध्वज (सं० क्ली०) मरुत्सु वायुषु ध्वजः पताकेव, नभसि वायुवशाच्चलित त्वादस्य तथात्वं । वाततूल, गुड्डीका तागा ।

मरुद्वद्ध (सं० पु०) १ यज्ञीय पात्रविशेष । २ समावेदकी एक शाखा । ३ विष्णु ।

मरुद्भव (सं० पु०) १ वनकपास । २ शुकशिम्बी, कपिकच्छु । ३ इन्द्र और वरुण । ४ ह्रस्वखदिर, छोटा खैर ।

मरुद्भवा (सं० स्त्री०) मरुत् वायुर्भव उत्पत्तिकारणं यस्याः । ताम्रमूलाक्षप, कपिकच्छु ।

मरुद्रथ (सं० पु०) मरुत् वायुरथो यानमिवास्य, ऊर्ध्वां स्तोकं वियति बहुतरं गच्छतीति तथात्वं । १ अश्व, घोड़ा । २ देवरथ ।

मरुद्रुम (सं० पु०) मरोर्निर्ज्जलदेशस्य द्रुमः, मरुजातो द्रुमो वा । १ विट्खदिर । २ बबूल ।

मरुत्वर्त्म (सं० क्ली०) मरुतो वायूनां देवानां वा वर्त्म पन्थाः । आकाश ।

मरुद्वाह (सं० पु०) मरुता वायुना उह्यतेऽसौ इति कर्मणि घञ्, यद्वा मरुद्वायुर्वाह इव यस्य । १ धूम, धूआं । २ अग्नि, आग ।

मरुद्विधा (सं० स्त्री०) नदीभेद, मरुद्वृधा ।

मरुद्विप (सं० पु०) मरौ निर्ज्जलदेशे द्विपो हस्तीव । उष्ट्र, ऊँट ।

मरुद्वीप (सं० पु०) वह उपजाऊ और सजल हरा भरा स्थान जो मरुस्थलमें हो, ओसिज । इसे अंग्रेजीमें Oasis कहते हैं ।

मरुद्वृता (सं० स्त्री०) नदीभेद, कावेरी नदी ।

मरुद्वृध (सं० त्रि०) मरुत् कर्त्तृक वर्द्धमान ।

मरुद्वृधा (सं० स्त्री०) १ पुण्या-नदीभेद । २ पञ्जावकी एक नदीका वैदिक नाम । ३ नदीमात्र ।

मरुद्वेग (सं० पु०) मरुतो वेगः । १ वायु वेग । २ एक दैत्यका नाम ।

मरुधन्वा (सं० पु०) १ निरुदकदेश, मरुभूमि । २ इन्दीवर नामक विद्याधरके पुत्रका नाम ।

मरुधर (सं० पु०) मारवाड़ देश ।

मरुन्ध (सं० क्ली०) नगरभेद ।

मरुन्नाम (सं० पु०) मरुतोंके नाम ।

मरुन्माला (सं० स्त्री०) मरुद्भिर्माल्यते धार्यते इति मल-धारणे कर्मणि घञ्, टाप् । पृक्का नामकी लता, असवर्ग ।

मरुपथ (सं० पु०) एक देशका नाम ।

मरुपुष्प (सं० स्त्री०) हेमपुष्प ।

मरुप्रिय (सं० पु०) मरुनिर्ज्जलदेशः प्रियोऽस्य । उष्ट्र, ऊँट ।

मरुफगञ्ज—विहार और उड़ीसाके पटना जिलान्तर्गत एक गंज । पटना शहरकी इस हाटमें विस्तृत कारबार है । यहां देशदेशान्तरसे आये हुए जहाज द्वारा बहुपण्यद्रव्यकी आमदनी और रफ्तनी होती है । आमदनीमें लवण, चावल, रुई, काठ और चीनी तथा रफ्तनीमें गेहूं, वार्ली, सरसों, घी और लोहा आदि प्रधान है ।

मरुभव (सं० पु०) एक देशका नाम ।

मरुभू (सं० स्त्री०) मरु निर्ज्जला भू-भूमिः । १ दासेरक देश, मारवाड़ । २ वह देश और उस देशका रहनेवाला । ३ निर्ज्जलभूमि, मरुभूमि ।

मरुभूति (सं० स्त्री०) यौगन्धरायणके पुत्र ।

मरुभूमि (सं० स्त्री०) वृक्ष, लता, गुल्मरहित बालुकामय विस्तृत भूमिखण्डको ही मरुभूमि कहते हैं। जिस भूमिकी उर्वराशक्ति जलाभावसे नष्ट हो चुकी है, उस भूमिको भी मरुभूमि कहते हैं। किन्तु विस्तृत बालुकामय मरुभूमिमें भी सम्पूर्णतः जलाभाव नहीं; कहीं कहीं छोटे छोटे जलाशय भी दिखाई देते हैं। ऐसे स्थान 'ओसिस' कहे जाते हैं। सिवा इसके जनशून्य तृणाच्छादित उजाड़ वनभूमिको भी मरुभूमि कहते हैं। रूसिया और अमेरिकामें ऐसे भूमिखण्ड अधिक दिखाई देते हैं। संसारके बालुकामय प्रान्तरोंमें अरबकी वृहत् मरुभूमि और अफ्रिकाका 'सहारा' नामको मरुभूमि सबसे बड़ी और विख्यात है। किन्तु इन दोनों भूमिखण्डोंके पूर्वांश उपजाऊ हैं। अफ्रिकाका लिबिया मरुभूमिखण्ड विशेषरूपसे विख्यात है। तेगाजाके निकट मरुदेशमें इधर उधर सेंधा नमकके स्तूप दिखाई देते हैं। नान अन्तरीपसे नीलनद तक एक विस्तृत भूभागं लवणमिश्रित तथा जलशून्य होनेसे वहांकी मिट्टीको उर्वराशक्ति नष्ट हो चुकी है। केवल बीच बीचमें कहीं कहीं जल दिखाई देता है। ऐसे ही जलाशयों पर वणिक्-पथिक अपनी थकावटको दूर करनेके लिये आश्रय ग्रहण करते हैं। केवल ऊंट पर चढ़ कर ही मरुभूमिको पार किया जाता है। मरुभूमिके मध्यस्थित ऐसे उर्वरा खण्डको मरुद्वीप (Oasis) कहते हैं।

ऊंटोंके सिवा दूसरी किसी सवारी पर चढ़ कर मरुभूमिको पार करना या इधर उधर घूमना फिरना असम्भव है। क्योंकि ऊंट ही ऐसा जानवर है, जो सूर्यके प्रखर उत्तापमें बालुकामय भूमिमें बिना जलकी सहायताके चल फिर सकता है। दूसरा कोई जानवर ऐसा कर नहीं सकता। सिवा इसके कभी कभी मरुभूमिमें एक तरहकी प्राणनाशके दूषित वायु बहा करती है। ऊंट इस हवाको सूंघ कर जान लेते हैं और इससे बचनेके लिये जमीन पर पेट सटा कर सो जाते हैं। वहांके व्यवसायी भी यह बात जानते हैं। इस कारण वे ऊंटोंसे सट कर उसी पर सर रख कर सो जाते हैं। दूषित वायुके निकल जाने पर ऊंट आप ही आप उठ जाता है। उठते ही उसकी पीठ पर पड़े बालू दूर हो जाते हैं। उस हवासे ऊंटकी पीठ पर बालूकी एक मोटी तह जम जाती है। इसीसे ऊंट बालुकामय समुद्रका जहाज कहलाता है।

पुराने लोगोंका विश्वास था, कि मरुभूमिमें भूतप्रेत या अपदेवताओंका वास रहता है। पाश्चात्य पण्डित प्लिनीने लिखा है, कि अफ्रिकाकी मरुभूमिमें भूतप्रेत मनुष्यका रूप धारण कर पथिकोंके सामने खड़े हो जाते हैं और शीघ्र ही वायुमें मिल कर अन्तर्द्धान हो जाते हैं। मध्य एशियाके लोगोंमें भी यह विश्वास अत्यधिक जमा हुआ है। उनका कहना है, कि कभी कभी तो यह भूत पथिकोंको ऊंट या घोड़ोंसे उठा कर आकाशमें ले जाते हैं।

अफगानियोंका विश्वास है, कि पर्वत परके जनशून्य स्थानोंमें भूतोंका आवास है। अफगानी भाषामें इन्हें "घोल-ऐ-बियर्ण" कहते हैं। यह और भी कहते हैं, कि भूतप्रेत या दानवगण सजीव मनुष्योंको पकड़ कर भक्षण कर जाते हैं।

मरुभूमि कहनेसे हम लोगोंको मानवहीन बालुकापूर्ण स्थानका ही ख्याल होता है, किन्तु मरु शब्दका यथार्थ अर्थ है उजाड़, शस्यहीन और परती जमीन। उत्तर अमेरिकामें ऐसे जलपूर्ण तथा बिना जोती हुई जमीनको प्रेरिज (Prairies) और रूसी इसको स्टेपिज (Steppes) कहते हैं। भारतमें भी मरुभूमि है। यह सिन्धु नदसे पूर्व राजपूतानेके बीच तक फैली हुई है। यह जमीन बालुकामय होने पर भी कहीं कहीं छोटी छोटी झाड़ी, जङ्गल तथा वृक्षादि दिखाई देते हैं। सिवा इसके कहीं कहीं छोटे छोटे गांव भी नजर आते हैं। वहांके लोग बैल, घोड़े, बकरी, ऊंट, गाय, भैंसे पालते हैं। नदी न होनेसे या विस्तृत कोई भी जलाशयके अभावसे कभी कभी फसल नहीं होती। क्योंकि वृष्टिका जल ही इनका प्रधान अवलम्बन है। फसल अच्छी न होने पर ग्रामवासी केवल दूध ही पी कर रहते हैं। नियमितरूपसे वृष्टि होनेसे वहां बाजरा तथा साक सब्जी पैदा होती हैं।

प्राचीन संस्कृतग्रन्थोंमें राजपूतानेको मरुस्थली लिखा है। इस समय यह राजपूतानेकी मरुभूमि भी कही जाती है। इसका क्षेत्रफल ६०० वर्गमील है। सारा बीकानेर राज्य बालुकापूर्ण है। यहांके

अधिकांश अधिवासी नीच जातिके हैं। जाटोंके यहां आने तथा उपनिवेश स्थापन करनेसे पहले परमारवंशी राजा इस मरुप्रदेशका शासन करते थे। ये शान्तप्रिय और श्रमजीवी थे।

एक ही अक्ष पर स्थापित भारतवर्ष और अफ्रिका की मरुभूमियोंमें ऐसा पार्थक्य देख भूतत्त्वविद् आश्चर्य प्रकट करते हैं। आज भी इसके तत्त्वका अनुसन्धान करनेमें कोई प्रयासी नहीं हुआ है। स्थान स्थानकी मिट्टी खोद कर जो परीक्षा करते हैं; उनको मालूम हुआ है; कि मौरयाक मरुभूमिमें बीस फीटके नीचे जल मिल सकता है। किन्तु भारतवर्षके मरुमें ऐसी बात सुनी नहीं जाती। डेसमथ नामक स्थानमें देखा गया है; कि दो तीन सौ फीट न खोदनेसे जल दिखाई नहीं देता। अन्ततः ६० फीटके इधर पीनेयोग्य जल मिलता ही नहीं।

स्वच्छ शैलमालाके (Crystalline rocks) फैले हुए अंशोंके अग्निप्रस्तर सम्बन्धीय बालुकण (Siliceous Sand)-से ही मरुभूमिकी उत्पत्ति माननी पड़ेगी। सिवा इसके यह भी हो सकता है, कि चकमक पत्थर ही कालके वशीभूत हो बालुकामें परिणत हो गये हों और उससे ही इस विस्तृत मरुभूमियोंकी सृष्टि हुई हो। क्योंकि इस जगत्‌में सभी पदार्थोंका परिवर्त्तन हुआ करता है। पदार्थमात्र कालक्रमसे सदा रूपान्तर हुआ करते हैं। प्रकृतिके इस असह्य नियमके अनुसार चकमक पत्थरके टुकड़ोंका करणके रूपमें हो जाना कोई असम्भव बात नहीं। फिर यही बालुकाकरण पृथ्वीके उत्तापसे उत्तप्त हो कर स्फटिकमणि शैल (quartz) का रूप ग्रहण करता है। फिर समय पा कर यही स्फटिकचूर्ण विचूर्ण हो कर बालूकणमें परिणत होता है। इस तरहके बालुकणोंसे परिपूर्ण भूमिखण्डको मरुभूमि कहते हैं। जिन स्थानोंमें उपर्युक्त शैलश्रेणी विद्यमान थी वही देश कालवश मरुभूमि हो गया है।

सिवा इसके मरुभूमिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक कारणका और भी उल्लेख किया जा सकता है। समुद्रांश कई बार पृथ्वीके वक्ष पर उपसागरके रूपमें या बड़ी बड़ी झीलोंके रूपमें आ जाता है। यही जलराशि पीछे सूख कर उर्वर बालुकणाका रूप धारण कर लेती हैं। यही काल पा कर वृक्षलतादि परिशून्य मरुभूमि बन जाती है। इसके बालुकण कभी सूर्यके तीक्ष्ण उत्तापसे विषाक्त हो जाते हैं। बहुत पुराने समयमें पृथ्वीवक्षमें बहुतेरे इस तरहके समुद्र थे और इस समय भी मौजूद हैं। कौन कह सकता है, कि किसी न किसी अभावनीय कारणसे पृथ्वीके सागर काल पा कर सुख कर बालुकामय तृणरहित क्षेत्रमें परिणत न होंगे। यही क्षेत्र मरुभूमि कहलाते हैं।

पृथ्वीके बहुतेरे स्थलोंमें बहुत दूर तक फैली हुई मरुभूमि दिखाई देती है। ऐसा बड़ा बालुकापूर्ण भूखण्ड देख कर हम लोग स्वभावतः क्षोभित हो उठते हैं। इसका कारण यह है, कि हम लोग यह ख्याल करते हैं, कि यदि यह बालुकापूर्ण न हो कर उर्वरा भूमिखण्ड होता तो, इसमें शस्य उत्पन्न होता और जगत्‌का उपकार होता। किन्तु यह ध्यान मस्तिष्कमें लानेसे पूर्व हमको यह सोच लेना चाहिये था, कि यह विशाल ब्रह्माण्ड अपनी इच्छासे परिचालित नहीं होता। उन्हीं मङ्गलमय सर्वनियन्ता विश्वपिताकी इच्छाके अनुसार इस जगत्‌का परिचालन होता है। पिता जगत्‌के अमङ्गलके लिये कोई काम नहीं करते। भूपृष्ठ अनवरत रूपान्तर हो रहा है। इसी कारण पृथ्वीका ऊपरी भाग कालके वशीभूत हो नानारूप धारण करता है। भूतत्त्वको पढ़ कर जाना जा सकता है, कि 'मरुभूमि' इन सब रूपान्तरोंमें एक रूप है अर्थात् भूतत्त्व देशके इस तरह मरुभूमिके रूपमें परिणत न होनेसे जगदीश्वरके नियमसे अपूर्णता रह जाती; इसीसे जगत्‌के सृष्टिवैचित्र्यकी रक्षाके लिये विधाताका आदेश प्रतिपालित हुआ है।

अकसर देखा जाता है, कि मरुभूमिका बालुकण सूर्यके उत्तापसे उत्तप्त हो असहनीय हो उठता है। इसका क्या कारण है? इसके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंने अनुसन्धान कर जो निश्चित किया है, उसी पर अब आगे प्रकाश डालेंगे। प्रोफेसर चिण्डालने प्रमाणित कर दिया है, कि बालुकाकी तापसञ्चालन-शक्ति अन्य धातुसे भी अत्यधिक है। इसका प्रमाण देते हुए आप

कहते हैं :—काठमें तापसञ्चालन-शक्ति १२° है, किन्तु बालूको यही शक्ति ६०° डिग्री है। इससे हम भी अनुभव करते हैं, कि सूर्यका उत्ताप वृक्षलतादिको उतना जल्द उत्तप्त नहीं कर सकता जितना जल्द बालुकणको उत्तप्त कर देता है। इसी तरह ठंढा होनेमें भी देखा जाता है, कि जितना जल्द उत्तप्त बालू ठण्ढा हो सकता है उतना जल्द अन्य पदार्थ वृक्षादि नहीं होते। वे धीरे धीरे ठण्ढे होते हैं।

सहारा मरुभूमि—इस मरुभूमिमें जगह जगह बालुका राशिका स्तूप पड़ा है। ये सब बालुकास्तूप स्थितिशील नहीं। ये सदा हवाके रंगसे एक जगहसे दूसरी जगह सञ्चालित हुआ करते हैं। इनके बीच बीचमें दो एक पहाड़ भी दिखाई देते हैं। सिवा इसके कहीं कहीं जलसे परिपूर्ण गड्ढे और छोटे छोटे जलाशय भी नजर आते हैं। ऐसी जलामय भूमि पर वृक्षलतादि भी उगती हैं।

अनेक समय यहांकी जलीय वाष्पहीन उत्तप्त वायु लोहित वर्ण वाष्पके समान दिखाई देती है। जब इसकी लाल आभा दिग्वलय पर पड़ती है, तब ऐसा मालूम पड़ता है मानो असंख्य आग्नेय पर्वतसे अग्निशिखा निकल रही हो। सहारा मरुभूमिमें दो एक खजूर और अन्यान्य वृक्ष दिखाई देते हैं। बानर और मृगगण कभी कभी इन सब फलोंको ले कर आपसमें लड़ते झगड़ते हैं। यहां बहुतसे उष्ट्रपक्षी (Ostrich) भी विचरण करते देखे जाते हैं। ये सब छिपकली और शम्बूकादि खा कर अपना पेट भरते हैं। इस मरुस्थलमें कोई निर्दिष्टपथ नहीं है। इस कारण पथिकोंको ध्रुवतारेके सहारे ही अपने गंतव्य स्थानमें जाना होता है। यहांकी 'सामुन' नामक अग्निवत् उत्तप्त वायु ऐसी भयङ्कर होती है, कि ऊंट पर रखा हुआ जल थोड़े ही समयके भीतर सूख जाता है। कहते हैं, कि १८०५ ई०में दो हजार यात्री और १८०० ऊंट प्याससे मर गये थे। इस सहारा-मरुभूमिमें पथिकगण मरीचिकामें पड़ कर अपने प्राण गंवाते हैं।

अफ्रिकाके उत्तर-पूर्व तथा पूर्व दिशामें जो मरुविभाग है उसके पूर्व और दक्षिणांशमें तिब्बू नामक वर्वर जाति रहती है। उत्तर-पूर्वका 'बार्का' मरुभाग (प्राचीन सिरैनाइका) भूमध्य सागर तक विस्तृत है। दोनोंके ही साथ 'लिबिया' नामक मरुभाग संयुक्त है। लिबिया-मरु मिश्र राज्यके पश्चिममें अवस्थित है। यह दक्षिणमें न्युबिया और आबिसिनियाके अनुर्वरक्षेत्र तक फैला हुआ है। इसके बाद यह नीलनदको पार कर पुनः लोहित-सागरके उपकूल होता हुआ स्वेजयोजक तक चला गया है। पीछे स्वेजयोजकको पार कर अरबदेशमें पालेस्तिन तक आया है।

अरबदेशके मरुविभागके मध्यवर्त्ती स्थलमें प्रसिद्ध सिनाई पहाड़ है। उस पहाड़के पाददेशमें जो उर्वरा उपत्यका है वहां अंगूर आदि खाने लायक फल उत्पन्न होते हैं।

मिसोपोटेमियाका मरु युफ्रेटिस और टाइग्रीस नदीके बीचमें अवस्थित है। ग्रीकभाषामें मिसोपोटेमियाका अर्थ है दो नदियोंके बीचका स्थान। इस कारण उक्त मरुदेशका नाम मिसोपोटेमिया हुआ है। अफ्रिका और अरबके मरुक्षेत्रकी अपेक्षा यह स्थान बहुत भयङ्कर है। यहांका जल लवणाक्त तथा गन्धकपूर्ण है।

पारस्यराज्यमें कुल ८ मरु हैं। समग्र राज्यके दश भागोंमेंसे तीन भागमें मरुभूमि है। जो सबसे प्रधान मरुस्थल है वह खोरासन और इराक-अजेमीके बीचमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें कारमानिया मरु है। शेष तीन मरुस्थलका नाम कियार, मेकरान और करकौमा है।

तातारदेशकी मरुभूमिका परिमाण प्रायः ५४० हजार वर्गमील है। इसके आधेमें बालू ही बालू है। यह बालुकापूर्णक्षेत्र कास्पियन ह्रदके उत्तरसे होता हुआ डान-नदी तक चला गया है और युराल नदीके पूर्व इसिमके जंगल (Steppe of Isim)-से जा मिला है। आर्लह्रदके दक्षिण जो खाराजेम् प्रदेश है उसकी मरुभूमिमें एक उर्वराक्षेत्र देखा जाता है। यह क्षेत्र खिवाप्रदेशका एक छोटा जिला माना गया है। यह जिला इतना छोटा है, कि घोड़े पर चढ़ कर तीन दिनके भीतर ही तमाम घूम कर लौट सकते हैं।

अफगानराज्यका अधिकांश स्थान मरुभूमिसे पूर्ण है। जिधर देखिये, उधर ही मरुभूमि नजर आती है। केवल पूर्व और उत्तरमें कुछ पर्वत हैं। वहां लोरा और हेलमन्द नदीके किनारे खेती होती है।

ऊपर जिन मरुक्षेत्रोंका उल्लेख किया गया वे प्रायः समसूत्रपातमें पृथ्वीपृष्ठके एक देश तक फैले हुए हैं। पर हां, कहीं कहीं वक्ररेखापात करनेसे भी उन्हें एक श्रेणीमें ग्रथित कह सकते हैं। अफ्रिका महादेशमें जो सहारा मरुक्षेत्र है उसके पश्चिमदेशवर्त्ती अटलाण्टिक महासागर-के वोजाडर अन्तरोपसे क्रमशः पूर्वदिशामें सहारा, मिश्र, अरब, तातार, पारस्य अफगानिस्तान और भारतवर्षके सिन्धुप्रदेशस्थ मरुक्षेत्र एक सूत्रमें ग्रथित मालूम होते हैं। बीचमें यदि सिन्धु नदी नहीं बहती, तो राजपूताने-की अनुर्वर मरुस्थलीको भी हमलोग इसी निस्तीर्ण मरु-राज्यमें शामिल कर सकते थे। इस विशाल मरुभूमि-में कहीं कहीं उर्वरक्षेत्र हैं और कहीं कहीं ग्राम भी देखे जाते हैं। पश्चिम-अफ्रिकासे लगायत पश्चिम-भारत तक इस विस्तीर्ण मरुराज्यका विस्तार प्रायः १४ सौ भौगोलिक मील है। हम्बोल्ट साहबके मतसे यह २७ लाख वर्गमील स्थानको अधिकार किये हुए है।

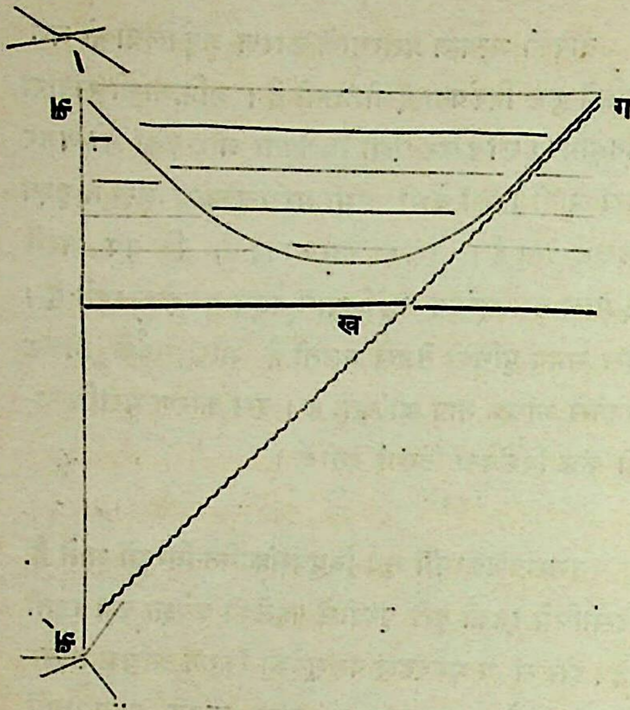
यह विस्तीर्ण मरुराज्य मालूम होता है किसी अभाव-नीय कारणसे जगदीश्वर द्वारा अभिशप्त हुआ है। शस्य शून्य इस मरुराज्यके अन्तरालमें और भी कितनी मरु-भूमि देखी जाती हैं। उक्त मरु साम्राज्यके एशिया विभागके उत्तर मध्य-एशियाकी अधित्यकाभूमिका विस्तीर्ण मरुक्षेत्र नजर आता है।

एशियाकी मध्य मालभूमिके मरुक्षेत्रके पूर्व जो छोटा बुकारिया नामक क्षेत्र है वह यद्यपि मरुभूमिमें गिना जाता है, पर मरुभूमि है नहीं। वहां काफी फसल लगती है। इसके उत्तरमें पर्वतश्रेणीसे बहुसंख्यक नदियां निकल कर इसको उर्वरा बनाये हुई है। साङ्गरियासे लगायत मङ्गोलिया तक एक और मरुक्षेत्र है। यह क्षेत्र चीनदेशके विख्यात चहारदिवारी तक फैला हुआ है। चीनराज्यमें इसे शामो कहते हैं। इसकी लम्बाई करीब १५०० मील है।

तापकी अत्यन्त प्रखरताके कारण अष्ट्रेलियाकी मरु-भूमिमें कुछ विशेषता देखी जाती है। अफ्रिकाकी सहारा मरुभूमिको छोड़ कर ऐसी विशेषता और कहीं भी नजर नहीं आती। यहां कभी कभी मरीचिकाका अद्भुत दृश्य दिखाई देता है। इसका कारण यह है, कि वर्ष भरमें ६ मास तक सूर्यदेव अष्ट्रेलियामें बहुत नजदीक रहते हैं। इस समय पृथिवी तेजसे चलती है और सूर्यके निकट रहनेसे अधिक ताप खींचती है। इस कारण मरीचिका-में कुछ विशेषता दिखाई देती है।

उत्तरायणकालमें सूर्य विषुवसंक्रान्ति-विन्दुमें आते हैं, इसीलिये इनकी दूरी पृथ्वीसे पहलेकी अपेक्षा कम रहती है। इस स य भूमण्डल पर सूर्यकी किरण अधिक मात्रा-में पड़ती है। इस कारण ग्रीष्म ऋतुके मध्यभागमें दक्षिण गोलार्द्ध पर रविका उत्ताप अत्यन्त प्रखर हो जाता है। तापकी प्रखरताके कारण अष्ट्रेलियाका मरु-क्षेत्र साधारणतः भट्ठे-सा दीखता है।

दक्षिण-अफ्रिकाके नमकोयलैण्ड नामक भूमि पर इसी प्रकार ताप और उत्तापके तारतम्यानुसार उप-रोक्त घटना घटती है। सहारा आदि मरुभूमिमें पथिक-गण अनेक समय मायावी मरीचिकाके जालमें फंस कर प्राण गवांते हैं। यह मरीचिका एक दृष्टिभ्रममात्र है। गरमीके दिनोंमें जब वायुकी तहोंका घनत्व उष्णताके कारण असमान होता है, तब पृथिवीके निकट ही वायु अधिक उष्ण हो कर ऊपरको उठना चाहती है। परन्तु ऊपरकी तहें उसे उठने नहीं देती। इससे उस वायु-की लहरें पृथ्वीके समानान्तर बहने लगती हैं। यही लहरें दूरसे जलकी धारा सी दिखाई देती हैं और प्यासे पथिक बड़ी तेजीसे उस ओर कदम बढ़ाते हैं। किन्तु जब वहां पहुंच जाते हैं, तब उनकी आशा उत्तप्त वायु-पूर्ण बालुकामय स्थान देख कर बिलकुल भग्न हो जाती है। इस प्रकार श्रान्त क्लान्त अवस्थामें भग्नाश हो कर पथिक प्याससे प्राण गंवाते हैं। किस प्रकार इस मरी-चिकाकी उत्पत्ति होती है, इसका संक्षिप्त विवरण ऊपर दिया जा चुका है।



मरुभूमि पर की वायु-तहोंके चापवैलक्षण्यके कारण जो अत्याश्चर्य मरीचिकाका नैसर्गिक चित्र दिग्वलयमें दिखाई देता है, उसका विशेष कारण ऊपर दिये गये चित्रसे स्पष्ट हो जायगा। चित्रका क एक वृक्ष है। ख भूपृष्ठको समतल भूमि है और ग एक दर्शक है। अलावा इसके क, ख और ग के बीचमें जो सरलरेखाएं हैं वे विभिन्न वायुस्तर हैं।

अभी मरुभूमिके क चिह्नितवृक्षका किरणपुञ्जजनित छायापात यथाक्रम विभिन्न घनत्व विशिष्ट वायुस्तर हो कर 'ख'-में पहुंचता है। क से ख में आनेके समय आलोकरश्मि एक स्तरसे दूसरे स्तरमें प्रवेश कर क्रमशः वक्रभाग धारण करती है। इस प्रकार अन्तमें वह ऐसे स्तरमें पहुंचती है, कि जहांसे आलोकरश्मि टेढो न पड़ कर सोधी प्रतिविम्बित होती है। अतएव ख स्तरमें प्रतिविम्बित चित्र आलोकरश्मि द्वारा पुनः धीरे धीरे विभिन्न स्तर होता हुआ वक्रगतिमें ग तक पहुंचता है। ख-से ग-में जानेके समय किरणपुञ्जकी वक्रगति क-से ख तक विपरीत दिशामें होगी। इसका कारण यह है, कि अभी आलोकमाला हलके वायुस्तरसे क्रमशः घने वायुस्तरमें प्रवेश करती है। अतएव ग-स्थित दर्शकको ऐसा मालूम होता है, कि क-स्थित वृक्षरश्मि वालुकापूर्ण क्षेत्रके नीचे क ग पथसे न आ कर ख ग पथसे आ रही हो।

इस कारण वृक्षकी प्रतिकूल-प्रतिकृति साधारणतः पथिकके नयन पर पड़ती है। उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो ख स्थानमें जल रहनेके कारण वायु-मध्यस्थ क वृक्ष ख जलमें प्रवेश कर रहा हो। अतएव मरुभूमि पर विचरण करनेवाले तृष्णातुर पथिकको वह जलाशय-सा दीखेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या! ताप और तृष्णाक्लिष्ट पथिक दूरसे जलाशय जान कर अपनी प्यास बुझाने दौड़ते हैं। अन्तमें जल न पा कर तृष्णासे शुष्क-कण्ठ और हताश्वास हो प्राण खो बैठते हैं। दृष्टिविभ्रम से यह घटना होनेके कारण इसका मरीचिका वा मृग-तृष्णा नाम रखा गया है।

अमेरिका महादेशमें और भी एक प्रकारका समतल मरुक्षेत्र है। परन्तु वह वालुकामय मरुके जैसा नहीं है। उस पर जङ्गलादि देखे जाते हैं। वह समतलक्षेत्र पम्पस, साभेनस आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।

मरुभूरुह (सं० पु०) मरुभुवि रोहति जायते इति रुह (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। पा ३।१।१३५) इति क। १ करीर-वृक्ष, करीलका पेड़। (त्रि०) २ मरुभूमिजात, मरुभूमि-से उत्पन्न होनेवाला।

मरुमही (सं० स्त्री०) मरुभूमि।

मरुआ (हिं० पु०) गोरचकरा।

मरुल (सं० पु०) म्रियते अलं विनैति भृ उल। १ कारण्डव पक्षी। २ जंगली वराककी एक जातिका नाम।

मरुव (सं० पु०) मरुं निर्जलदेशं वाति प्राप्नोतीति वा-क। १ मरुआ। संस्कृत पर्याय—खरपत्र, गन्धपत्र, फणिज्झक, बहुवीर्य, शीतलक, सुराह्व, समीरण, जम्बीर, प्रस्थ-कुसुम, मरुवक, आजन्म-सुरभिपत्र, मरिच। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, कृमि, कुष्ठ, विड्‌वन्ध, आध्मान, शूल और त्वग्‌दोषनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय—मरुत्तक, मरुचक, मरुत्, मरु, फणि फणिज्झक, प्रस्थपुष्प, समीरण। इसका गुण—अग्निप्रद, हृद्य, तिक्त, उष्ण, पित्तवर्द्धक, लघु, वृश्चिकादिका विषहर, श्लेष्म, वात, कुष्ठ तथा कृमिदोषनाशक, कटुपाक, रुचिकर, रूक्ष और सुगन्धयुक्त।

मरुवक (सं० पु०) मरुव स्वार्थे इवार्थे वा कन्। १ एक कंटीले पेड़का नाम जिसे मैनी कहते हैं। पर्याय—पिण्डी-तक, श्वसन, करहाटक, शल्य, मदन। २ स्वल्पपत्र तुलसी, तुलसीका छोटा पत्ता। पर्याय—समीरण, प्रस्थपुच्छ, फणिज्झक, जम्बीर। ३ जम्बीरभेद, एक प्रकारका नीबू। ४ पुष्पवृक्षविशेष, मरुएका फूल। पर्याय—शुक्रपुष्प, तिलक, कुलक। विशेष विवरण मरुआ शब्दमें देखो। ५ क्षुपविशेष नागदौना। पर्याय—खरपत्र, गन्धपत्र। ६ तिलका पौधा। ७ व्याघ्र, बाघ। ८ राहु। (त्रि०) ६ भयानक, खौफनाक।

मरुवा (हिं० पु०) मरुआ देखो।

मरुवत्तुर—मान्द्राजप्रदेशके तञ्जोर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

मरुसम्भव (सं० क्ली०) मरुः सम्भव उत्पत्तिस्थानमस्य। चाणक्यमूलक, एक प्रकारकी छोटी मूली।

मरुसम्भवा (सं० स्त्री०) मरौ सम्भवो यस्याः टाप्। १ महेन्द्रवारुणी। २ क्षुद्र दुरालभा, छोटा धमास। ३ ह्रस्व खदिर, एक प्रकारका खैर जिसका पेड़ बहुत छोटा होता है। ४ कर्पास, कपास। ५ एक प्रकारका कनेर।

मरुसा (हिं० पु०) मरसा देखो।

मरुस्थल (सं० क्ली०) मरुभूमि, बालूका मैदान जिसमें निर्जल होनेसे कोई वृक्ष वा वनस्पति न उगती हो।

मरुस्थली—राजपूतानेके अन्तर्गत वर्त्तमान मारवाड़-प्रदेशका प्राचीन संस्कृत नाम।

मरुस्था (सं० स्त्री०) मरौ तिष्ठतीति स्था-क स्त्रियां टाप्। १ छुद्रदुरालभा, छोटा धमास। २ महेन्द्रवारुणी।

मरूक (सं० पु०) म्रियते इवेति मृ (मृकणिभ्यामूकोकणौ। उण् ४।३९) इति ऊक, भयशीलत्वादस्य तथात्वं। १ मृगविशेष, एक प्रकारका मृग। २ मयूर, मोर। ३ शठी, कचूर।

मरूद्भवा (सं० स्त्री०) मरौ धन्वप्रदेशे उद्भवतीति उत्-भू-अच्, स्त्रियां टाप्। १ कार्पासी, कपास। २ जवास। ३ ह्रस्व खदिर, छोटा खैर। ४ दुरालभा, धमास।

मरूभू (सं० स्त्री०) मरुभूमि, रेगिस्तान।

मरूर (सं० पु०) गोरचकरा।

मरूल (सं० पु०) मरूर देखो।

मरोड़ (हिं० पु०) १ मरोड़नेका भाव या क्रिया। २ क्षोभ, उद्वेग आदिके कारण उत्पन्न पीड़ा। ३ ऐंठन, मरोड़नेसे पड़ा हुआ घुमाव। ४ पेटमें ऐंठन और पीड़ा होना, पेट ऐंठना। ५ गर्व, घमंड। ६ क्रोध, गुस्सा।

मरोड़ना (हिं० क्रि०) १ एक ओर घुमा कर दूसरी ओर फेरना, बल डालना। २ ऐंठ कर नष्ट करना वा मार डालना। ३ वेदना उत्पन्न करना, पीड़ा देना। ४ मलना, मसलना।

मरोड़फली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी फली। यह प्रायः पेटके मरोड़के लिये गुणकारी होती है। इसे मुर्रा वा अवतरनी भी कहते हैं।

मरोड़ा (हिं० पु०) १ ऐंठन, उमेठ। २ पेटकी पीड़ा। इसमें अन्दरकी ओर कुछ ऐंठन-सी जान पड़ती है। इस रोगमें मलोत्सर्गके समय पेटमें ऐंठन सी होती है और प्रायः कोष्टवद्ध रहता है। कभी कभी आंवके साथ भी मरोड़ होता है।

मरोड़ो (हिं० स्त्री०) १ ऐंठन, घुमाव। २ वह बत्ती जो आटेमें सने हुए हाथोंसे मलने पर छूट कर निकलती है। ३ गांठ, गुत्थी।

मरोलि (सं० पु०) मकरकी जातिका एक बड़ा सामुद्रिक जन्तु।

मरोलिक (सं० पु०) मरोलि स्वार्थे कन्। मरोलि देखो।

मरोलिन् (सं० पु०) मरौ निर्जलदेशे लीयते म्रियते मरूली-इन् पृषोदरादित्वात् साधुः। मकर।

मरोली—बम्बईप्रदेशके थाना जिलेका एक बन्दर। यह अक्षा० २०°१८´ उ० तथा देशा० ७२°४६´ पू०में पड़ता है।

मरौरी—युक्तप्रदेशके पिलिभित जिलान्तर्गत एक प्राचीन गण्ड ग्राम। यह विलासपुर शहरसे चार कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहां खनाउत नदीके दक्षिण किनारे पर एक समृद्धिशाली नगरका खण्डहर पड़ा हुआ है।

मर्क (सं० पु०) मर्च्चति चेष्टते इति मर्च्च (इन-मी-का-पा शल्यति मर्चिभ्यः कन। उण् ३।४३) इति कन यद्वा मर्कति सर्पतीति अच्। १ देह, शरोर। २ वायु, हवा। ३ शुक्राचार्यके एक पुत्रका नाम। ४ वानर, बन्दर। (त्रि०) ५ मार्जयिता, मार्जन करनेयोग्य।

मर्कक (सं० पु०) मर्क इवार्थे संज्ञायां वा कन्। १ गलगण्डपक्षी, हरगीला नामक चिड़िया। २ ऊर्णनाभ, मकड़ा।

मर्कट (सं० पु०) मर्कति गच्छतीति मर्क (शकादिभ्योऽटन्। उण् ४।८१) इति अटन्। १ वानर, बन्दर। २ ऊर्णनाभ, मकड़ा। ३ स्थावर-विषभेद। ४ गलगण्डपक्षी, हरगीला नामक पक्षी। ५ अजमोदा। ६ शस्यविशेष। ७ एक प्रकारकी मछली। ८ दोहेके एक भेदका नाम। इसमें सत्रह गुरु और चौदह लघु मात्राएं होती हैं। ९ छप्पयका आठवां भेद। इसमें ६३ गुरु, २६ लघु कुल ८९ वर्ण या १५२ मात्राएं वा ६३ गुरु, २२ लघु ८५ वर्ण या १४८ मात्राएं होती हैं।

मर्कटक (सं० पु०) मर्कट स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १ लूता, मकड़ा। २ एक दैत्यका नाम। ३ मडुआ। ४ मकरा नामक घास। मर्कट देखो।

मर्कटतिन्दुक (सं० पु०) मर्कटप्रियस्तिन्दुकः, मध्यपद-लोपि कर्मधा०। कुपीलु, एक प्रकारका अबनूस।

मर्कटपाल (सं० पु०) बन्दरोंका राजा, सुग्रीव।

मर्कटपिप्पली (सं० स्त्री०) मर्कटस्य पिप्पलीव। अपामार्ग, चिचड़ा।

मर्कटप्रिय (सं० पु०) मर्कटस्य प्रियः। क्षीरवृक्ष, खिरनी-का पेड़।

मर्कटवास (सं० पु०) मर्कट ऊर्णनाभस्तस्य वासः आवासस्थानं। १ लूतातन्तु, मकड़ीका जाला। पर्याय—आशावन्ध।

मर्कटशीर्ष (सं० क्ली०) मर्कटस्य शीर्षमिव तद्वर्णत्वा-देवास्य तथात्वं। हिंगुल।

मर्कटह्रद (सं० क्ली०) वैशालीके अन्तर्गत ह्रदभेद।

मर्कटाख्य (सं० क्ली०) १ कपिकच्छुबीज, केवांच। २ गुड़ूची आदि मोदक।

मर्कटाम्र (सं० पु०) राजाम्र, अमड़ा।

मर्कटास्य (सं० क्ली०) मर्कटस्य आस्यमिव तद्वर्णत्वा-देवास्य तथात्वं। १ वानमुख, बन्दरका मुंह। २ ताम्र, तांबा। मर्कटस्य आस्यमिव आस्यं यस्य। (त्रि०) ३ वानरमुख, बंदरके जैसा मुंहवाला।

मर्कटिकाफल (सं० क्ली०) केवांच।

मर्कटी (सं० स्त्री०) मर्कति वायुवेगेन इतस्ततो गच्छतीति मर्क-अटन्, स्त्रियां ङीप्। १ कपिकच्छु, भूरी केवांच। २ अपामार्ग। ३ अजमोदा। ४ करञ्जभेद, एक प्रकारका करंज। ५ बानरी, बंदरी। ६ मकड़ी। ७ भीमरुद्ररस। ८ छंदके नौ प्रत्ययोंमेंसे अन्तिम प्रत्यय। इसके द्वारा मात्राके प्रस्तारमें छन्दके लघु, गुरु, कला और वर्णोंकी संख्याका परिज्ञान होता है।

मर्कटीव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष।

मर्कटेन्दु (सं० पु०) मर्कटे खगविशेषे इन्दुरिव। काक-तिन्दुक वृक्ष, कुचिला।

मर्कत (सं० पु०) मरकत देखो।

मर्कर (सं० पु०) मर्कति गच्छतीति मर्क-बाहुलकात् अर्। भृङ्गराज, भंगरैया।

मर्करा (सं० स्त्री०) मर्कर स्त्रियां टाप्। १ दरी, तहखाना। २ भाण्ड, बर्तन। ३ सुरंग। ४ निष्फला-स्त्री, वांझ स्त्री।

मर्खामाऊ—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलेके सोरावन उप-विभागके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। नगरके चारों बगल पत्थरकी प्रतिमूर्त्तियां और बड़े बड़े स्तूप देखने-से मालूम होता है, कि एक समय इस नगरमें हिन्दूकी प्रधानता अक्षुण्ण थी। पीछे मुसलमानोंने उन सब प्राचीन कीर्त्तियोंको तोड़ फोड़ कर उनके माल मसालेसे मस-जिद बनवाई।

मर्गाव—पुर्त्तगीज-अधिकृत गोआराज्यके सालसेट (गाढ़ा-पुरी) जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १५° १८´ उ० तथा देशा० ७४° १´ पू०के मध्य विस्तृत है। पञ्जीम-से १६ मील दक्षिण-पूर्व शालनदीके किनारे उक्त जिलेके ठीक मध्यस्थलमें मनोहर समतलक्षेत्र पर अवस्थित है। प्रत्नतत्त्वविदोंके मतसे इस नगरमें बहुत प्राचीनकालसे आर्यजातिका उपनिवेश चला आ रहा था तथा यहां पर उनका एक मठ वा धर्ममन्दिर भी स्थापित हुआ था। उस मठसे इसका नाम मठग्राम हुआ। वर्त्तमानकालमें मठग्रामके अपभ्रंशसे मर्गाव कहलाने लगा है। मराठो और मुसल-मानी सेनाने भी इस शहरमें लूटपाट मचाया था। यहां बहुत सी सुन्दर सुन्दर अट्टालिकाएं हैं। १५६० ई०को शहरमें ईसाधर्मका प्रचार हुआ और १५६५ ई०में एक गिर्जा बनाया गया। शहरमें टाउनहाल, सरकारी स्कूल,

थियेटर और दरिद्राश्रम हैं। १८११ ई०में सेनाओंके रहनेके लिये एक वृहत् मकान निर्मित हुआ और एक दल सेना भी रहने लगी। अभी उस मकानमें थोड़ी-सी सेना तथा पुलिस-कर्मचारी रहते हैं।

मर्चौं (हिं० स्त्री०) मिर्च देखो।

मर्ज (सं० स्त्री०) मृज्यते इति मृज् शुद्धौ (मृजेर्गुणश्च। उण् ११८१) इति ऊ, गुणश्च। १ शुद्धि। २ रजक, धोबी। ३ पोठमर्द।

मर्जा—पञ्जाबप्रदेशके बशहर राज्यके अन्तर्गत एक पहाड़ी रास्ता। यह अक्षा० ३१° १६´ उ० तथा देशा० ७८° २७´ पू०के मध्य विस्तृत है। इसकी ऊंचाई १६०००से १७००० फुट है। केवल जेठसे सावन मास तक इस रास्तेसे लोग आते जाते हैं। पीछे वर्षा पड़ने पर रास्ता बंद हो जाता है।

मर्जात—बङ्गदेशके खुलना जिलेमें प्रवाहित एक नदी। जहां पर यह समुद्रसे मिली है वह स्थान भी मर्जात कहलाता है। यह अक्षा० २१° ४४´ उ० तथा देशा० ८६° ३२´ पू०के मध्य विस्तृत है। पाटनी द्वीपसे यह ८।६ मील दूर पड़ती है। इसका मुख बहुत चौड़ा है। नदीके मुहानेसे प्रायः ४।५ मीलके फासले पर पारभङ्गा नामक दो द्वीप हैं।

मर्जादपट्टी—युक्तप्रदेशके वाराणसी विभागके मिर्जापुर जिलेका एक गण्ड ग्राम। यहां सैयद सलार गाजीकी जो दरगाह है वह बहुत प्राचीन हैं। प्रतिवर्ष यहां एक मेला लगता है।

मर्जी (हिं० स्त्री०) मरजी देखो।

मर्तबा (अ० पु०) १ पद, पदवी। २ बार, दफा।

मर्तबान (हिं० पु०) रोगनी बर्तन जिसमें अचार, मुरब्बा, घी आदि रखा जाता है। इसका दूसरा नाम अमृतवान भी है।

मर्त्त (सं० पु०) म्रियतेऽसौ इति मृ (हसिमृग्रिण्विति। उण् ३।८६) इति तन्। १ मनुष्य।

"पौर्णमास्याममावस्यां पर्व्वस्वन्येषु प्रस्तरः।
ममैष संश्रुतो मर्त्त्यैर्भविता पापनाशनः॥"
(मार्कण्डेयपुराण १००।१८)

२ माणवक। म्रियतेऽस्मिन्निति। ३ भूलोक।

मर्त्तवान—अंगरेजाधिकृत ब्रह्म-तेनासेरिम प्रदेशके आमहार्ष्ट जिलेके अन्तर्गत एक विभाग। इसके दक्षिण-पूर्वसे उत्तर-पश्चिम तक एक विस्तृत शैलश्रेणी है। इस शैल श्रेणीके पूर्ववर्त्ती स्थान जङ्गलसे आवृत हैं। इस कारण यहां खेतीबारी नहीं होती। पश्चिमभागमें बहुत लम्बा चौड़ा उर्वरक्षेत्र है। यहां छोटी छोटी नदियां और खाल होनेके कारण वाणिज्य-व्यवसायमें बड़ी सुविधा है। बाढ़के समय समुद्रका जल नदीमें प्रवेश करता और पश्चिम कुलजात शस्यादिको नष्ट कर डालता है। दक्षिणांशमें बांध है इससे समुद्रका जल आगे बढ़ने नहीं पाता और इस कारण फसल भी नष्ट नहीं होती।

यहांके अधिवासिगण तलैङ्ग हैं। उनकी भाषा भी तलैङ्ग कहलाती है और उत्तरब्रह्मकी भाषासे कुछ भी नहीं मिलती जुलती।

२ उक्त स्थानका प्रधान नगर। यह अक्षा० १६° ३२´ उ० तथा देशा० ९७° ३८´ पू०के मध्य शालुएन नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। शालुएन नदीके किनारे एक देवालय देखा जाता है।

कहते हैं, कि पेगूके प्रधान राजा थ-म लने ५७६ ई०में इस नगरको बसाया। इसके बाद १३वीं सदीमें ब्रह्मराजके समय इसकी बहुत उन्नति हुई। पहले इसी शहरमें राजधानी थी; पीछे १३२३ ई०में पेगू शहरमें उठा कर लाई गई। पेगू और श्यामके साथ जब ब्रह्मदेशवासियोंको लड़ाई छिड़ी थी उस समय यह नगर कई बार अवरुद्ध और लूटा गया था। १६वीं सदीके अन्तमें श्यामके राजाने मर्त्तवानको जीत कर वहां एक शासनकर्त्ता नियुक्त कर दिया। इसके बादका कोई इतिहास नहीं मिलता। १७वीं और १८वीं सदीमें ब्रह्मदेशके राजा द्वारा नियुक्त किये गये शासनकर्त्ता इसी नगरमें रहते थे। १८२४ ई०के प्रथम ब्रह्मयुद्धमें अंगरेजोंने इस नगरमें घेरा डाला और इसे जीत लिया। १८५२ ई०के द्वितीय युद्धमें ब्रह्मवासियोंने पुनः इसे उद्धारकी चेष्टा की, पर कोई फल न निकला।

मर्त्तोली—युक्तप्रदेशके कुमायूं जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० ३०° २१´ उ० तथा देशा० ८०° १३´ पू०के मध्य विस्तृत है। जुहारीघाटीसे जो रास्ता हुणदेश (चीना-

धिकृत तिब्बत)-को गया है उसीके ऊपर यह ग्राम बसा हुआ है। इसके उत्तरांशमें बहुत ठंढ पड़ती है, इस कारण अधिवासिगण शीतकालमें पहाड़ परसे उतर कर नीचे उपत्यकामें रहते हैं। यह ग्राम समुद्रपृष्ठसे ११३५२ फुट ऊंचा है।

मर्त्य (सं० पुं०) म्रियतेऽत्रेति मर्त्तो भूलोकस्तत्र भवः मर्त्त-यत्, यद्वा मर्त्त एव यत्। १ मनुष्य। २ मध्यमलोक। ३ शरीर।

"तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत् सरित्।"

(भागवत ३।३३।३२)

मर्त्यकदली (सं० स्त्री०) कदलीविशेष एक प्रकारका केला।

मर्त्यकृत (सं० त्रि०) मनुष्य द्वारा अनुष्ठित।

मर्त्यता (सं० स्त्री०) मर्त्यस्य भावः तल्-टाप्। मनुष्यका भाव वा धर्म, मर्त्यत्व।

मर्त्यत्रा (सं० अव्य०) मर्त्योंकी पालयती।

मर्त्यत्व (सं० क्ली०) मर्त्य भावे त्व। मनुष्यका भाव या धर्म, आदमीपन।

मर्त्यत्वन (सं० क्ली०) मनुष्य अवलम्बनीय पन्था, मनुष्यके एकमात्र गुजर करनेका उपाय।

मर्त्यधर्म (सं० पु०) मनुष्यका धर्म।

मर्त्यधर्मन् (सं० पु०) मनुष्य-धर्मयुक्त, वह मनुष्य जो धर्ममें लीन हो।

मर्त्यभाव (सं० पु०) मर्त्यस्य भावः। मनुष्यस्वभाव, मनुष्यत्व।

मर्त्यभुवन (सं० क्ली०) मर्त्यलोक, मनुष्यलोक।

मर्त्यमहित (सं० त्रि०) मर्त्ये महितः। १ मनुष्य द्वारा पूजित। (पु०) २ देवता।

मर्त्यमुख (सं० पु०) १ मनुष्यके जैसा मुख। २ किन्नर, यक्षादि।

मर्त्यलोक (सं० पु०) मनुष्य-लोक, पृथिवी।

मर्त्येन्द्रमाता (सं० स्त्री०) अग्निदमनीक्षुप, अग्निदमनी नामक पौधा।

मर्त्येषित (सं० त्रि०) मारक वा अन्य द्वारा प्रेरित।

मर्द (सं० पु०) मृद-घञ्। १ मर्द्दन, कुचलना। २ मर्द्दनशील, वह जो कुचला जाय।

मर्द (फा० पु०) १ मनुष्य, पुरुष। २ साहसी पुरुष पुरुषार्थी मनुष्य। ३ वीर, योद्धा। ४ पति, भर्ता। ५ पुरुष, नर।

मर्दना (हिं० क्रि०) १ मालिश करना, अंग आदि पर जोरसे हाथ फेरना। २ रौंदना, कुचलना, मसक कर विकृत करना। ३ उबटन तेल आदिको अंगों पर चुपड़ कर बलपूर्वक चुपड़े हुए स्थान पर बार बार हाथ फेरना जिससे अंगमें उसका सार वा स्निग्ध अंश घुस जाय। ४ चूर्णित करना, तोड़ फोड़ डालना।

मर्दानगी (हिं० स्त्री०) मरदानगी देखो।

मर्दाना (फा० वि०) १ पुरुष-सम्बन्धी। २ पुरुषका-सा, पुरुषवत्। ३ वीर, साहसी। ४ मनुष्योचित। ५ वीरोचित।

मर्दित (सं० क्रि०) मर्द्दित देखो।

मर्दी (फा० स्त्री०) मरदानगी, बहादुरी।

मर्दुम (फा० पु०) मनुष्य।

मर्दुमशुमारी (फा० स्त्री०) १ किसी देशमें रहनेवाले मनुष्योंकी गणना, मनुष्य-गणना। यह प्रथा यद्यपि भारतवर्षके मद्रास और पञ्जाब प्रान्तोंमें समय समय पर वहांके रहनेवालोंकी गिनतीके लिये बहुत पूर्वसे चली आती थी पर पाश्चात्य देशोंमें नवीन प्रणालीकी मनुष्य-गणनाकी प्रथा रोमसे आरम्भ हुई है जहां स्वतन्त्र मनुष्योंके कुटुम्ब, सम्पत्ति, दास और मुखियाकी परिस्थिति आदिका विवरण यथासमय लिख कर मनुष्योंकी वर्णना की जाती थी। इंगलैण्डमें सबसे पहले मनुष्य-गणना सन् १८०१ ई०में प्रारंभ हुई और १८११में आयरलैंडमें गणनाकी चेष्टा हुई। पर १८५१ ई० तककी मनुष्य-गणना परिपूर्ण नहीं कही जा सकती। सन् १८६१ ई०में नियमित रूपसे इंगलैंड, स्काटलैण्ड और आयरलैण्डमें मनुष्यकी गणना शुरू हुई जिसमें प्रत्येक गांव और नगरके मनुष्योंकी आयु, वैवाहिक सम्बन्ध, पेशे, जन्मस्थान आदिका सविस्तर विवरण लिखा गया और १८७१में व्यवस्थित रूपसे राजकीय वा इम्पीरियल मनुष्य-गणना हुई। ठीक इसी समय अर्थात् सन् १८६७ और १८७२ ई०में भारतवर्षमें

मनुष्य गणना प्रारम्भ हुई। पर उस समय काश्मीर, हैदराबाद, राजपूताने और मध्यभारतके देशी राज्योंमें मनुष्य गणना नहीं हुई और गणनाका प्रवन्ध भी समुचित नहीं था। भारतवर्षको ठीक ठोक मनुष्य-गणनाका आरम्भ १८८१ ई०से माना जा सकता है। यह मनुष्य-गणना १७ फरवरोको हुई थी। तवसे प्रति दशवें वर्ष प्रत्येक ग्राम और नगरमें रहनेवालोंके नाम, आयु, धर्म, जाति, शिक्षा, भाषा, व्यापार आदिका विवरण लिखा जाता है।

२ आवादी, किसी स्थानमें रहनेवाले मनुष्योंकी संख्या।

मर्दु मी (फा० स्त्री०) १ मरदानगी, पौरुष। २ पुंसत्व।

मर्दूद (फा० वि०) मरदूद देखो।

मर्द्दक (सं० पु०) १ मर्द्दनकारक, मर्द्दन करनेवाला। २ तिरोभावक, दवानेवाला। ३ कासमर्द्द, कसौंदा। ४ चक्रमर्द्द, चकवंड़।

मर्द्दन (सं० क्ली०) मृद भावे ल्युट्। १ अङ्गमर्द्दन दूसरेके अंगों पर अपने हाथोंसे वलपूर्वक रगड़ना। पर्याय—संवाहन, सम्वल। इसका गुण श्रमहर, निद्रा, शुक्र और सुखप्रद; मांस, रक्त और त्वक्प्रसन्नकारक, वायु और कफनाशक माना गया है। २ चूर्णन, ध्वंस। ३ कुचलना, रौंदना। ४ तेल, उवटन आदि शरीरमें लगाना, मलना। ५ कदन, द्वन्द्व-युद्धमें एक मल्लका दूसरे मल्लकी गर्दन आदि पर हाथोंसे घस्सा लगाना। ६ रसेश्वर दर्शनके अनुसार अठारह प्रकारके रस-संस्कारोंमें दूसरा संस्कार। इसमें पारे आदिको ओषधियोंके साथ खरल करते या घोटते हैं। ७ घोटना, पीसना। (त्रि०) ८ मर्द्दनकारक, विनाशक।

मर्द्दनक (सं० क्ली०) तैल, तेल।

मर्द्दनसिंह—मध्यप्रदेशके भानपुरके एक हिन्दू राजा। १८५७ ई०के गदरमें शाहगढ़के राजा जव विद्रोही हुए, तव इन्होंने सुअवसर देख कर कुवाई महकूमा जीत लिया। अनन्तर इन्होंने शाहगढ़के राजा और गड़-अमापानीके नवाव आदिल महम्मदके साथ मिल कर अंगरेजाधिकृत सागर जिले पर चढ़ाई कर दी और उसे जीत कर आपसमें वांट लिया। ८ मास तक इसी प्रकार चलता रहा था। सागर और दुर्ग अंगरेजोंके शासनाधीन रहने पर भी आस पासके सभी स्थान विद्रोहियोंके हाथ लग चुके थे। १८५८ ई०में सर ह्यू रोजने पहले आदिलशाहको हराया पीछे मर्द्दनसिंहको हरा कर सागर जिला विद्रोहियोंके हाथसे छीन लिया।

मर्द्दल (सं० पु०) मर्दमर्द्दन लातीति ला-क। वाद्यविशेष, प्राचीन कालका मृदंगकी तरहका एक प्रकारका वाजा। इस वाजेका उल्लेख महाभारतमें है। आजकल इस वाजेका प्रचार वङ्गालमें पाया जाता है और विशेष कर मृतकोंकी अर्थीके साथ अथवा हरिकीर्त्तन आदिके समय वजाया जाता है।

मर्दान—१ पञ्जावप्रदेशके पेशावर जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० ३४° ५' से ३४° ३२' उ० तथा देशा० ७१° ४६' से ७२° २४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६१० वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीव है। इसमें मर्दान नामक एक शहर और १३० ग्राम लगते हैं। तहसीलको प्रधान उपज गेहूं, जौ, रुई, ईख और जुन्हरी है। यहां एक असिष्टाण्ट कमिश्नर और एक तहसीलदार रहते हैं।

२ उक्त तहसीलका प्रधान शहर। यह अक्षा० ३४° १२' उ० तथा देशा० ७२° २' पू०के मध्य कालपानी नदीके वाएं किनारे अवस्थित है। शहरमें १८५४ ई०का वना हुआ एक किला है। यहां सरकारी अदालत, डाकघर, अस्पताल और एक एङ्गलो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल है।

मर्द्दित (सं० त्रि०) मृद-कर्मणि क्त। १ नष्ट किया हुआ। २ चूर्णित, टुकड़े टुकड़े किया हुआ। ३ जो मर्द्दन किया गया हो, मला या मसला हुआ।

मर्फा—उत्तर-पश्चिम प्रदेशके वान्दा जिलेका एक प्राचीन नगर। यहांका ध्वंसप्राय दुर्ग उस पूर्वसमृद्धिका परिचय देता है। यहां पाला-राजवंशीय एक वघेल राजाकी राजधानी थी। इस वंशके अन्तिम राजा चाचरीयाकी लड़ाईमें १७८० ई०को मारे गये थे। उसी समयसे यह दुर्ग टूटी फूटी अवस्थामें पड़ा है। इस दुर्गमें चार फाटक हैं जिनमें कई एक शिलालिपि उत्कीर्ण देखी जाती है।

मर्म (सं० क्ली०) मृ (सर्वधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।१४४) इति मणिन्। १ स्वरूप। २ तत्त्व, रहस्य।

"मृगया न विगीयते नृपैरपि धर्मागममर्म पारगैः।
स्मरसुन्दर ! मां यदत्यजस्तवधर्म्मः सदयो दयोज्वलः॥"
(नैषध० २।९)

३ सन्धिस्थान। ४ जीवस्थान।

"सन्निपातः शिरास्नायुसन्धिमांसस्थिसम्भवः।
मर्म्माणि तेषु तिष्ठन्ति प्राणाः खलु विशेषतः॥"
(भावप्रकाश)

शिरा, स्नायु, सन्धि, मांस और अस्थि—इन सब एकत्रित अवयवोंको मर्म कहते हैं। मर्मस्थानमें प्राण विशेषरूपसे रहता है। सुश्रुतमें लिखा है,—कि मर्मके १०७ स्थान हैं। ये स्थान पांच भागोंमें बंटे हुए हैं:— मांसमर्म, शिरामर्म, स्नायुमर्म, सन्धिमर्म और अस्थि-मर्म। इनमें भी फिर मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायु-मर्म २७ है। इनमेंसे प्रत्येक पद और हाथमें ११, उदरमें और वक्षःस्थलमें १२, पीठमें १४, गरदनमें और उसके ऊपरोभागमें ३७ मर्मस्थान हैं। क्षिप्र, तलहृदय, कुर्च, कूर्चशिर, गुल्फ, जानु, इन्द्र-वस्ति, ऊरु, आणि, लोहि-ताक्ष और विटप—ये ग्यारह तरहके मर्म प्रत्येक पादमें मौजूद हैं।

उदर और वक्षस्थलके मर्म—"गुद, वस्ति, नाभि, हृदय, स्तनमूल, स्तनरोहित, अपलाप, अवस्तम्भ हैं। पीठके मर्म इस तरह हैं,—कटीकतरुण, कुकुन्दर, नितम्ब, पार्श्वसन्धि, वृहती, अंशफलक और अंशद्वय। बाहुके मर्मोंका नाम,—क्षिप्र, तलहृदय, कूर्च, कूर्चशिर, मणिवन्ध, इन्द्रवस्ति, कूर्पर, आणि, उर्वी, लोहिताक्ष और कक्षधर।

स्कन्धसन्धिके मर्म,—धमनी ४, मातृका ८, कृका-टिका २, विधुर २, फण २, अपाङ्ग २, आवर्त्त २, उत्क्षेप २, शङ्ख २, स्थपनी १, सीमन्त ५, शृङ्गाटक ४ और अधि-पति नामक एक। ये ३७ मर्मस्थान स्कन्धसन्धिके ऊपर मौजूद हैं।

इन सब मर्मोंमें तलहृदय, इन्द्रवस्ति, गुह्यमण्डल और स्तनरोहित आदि मर्म मांसमर्म हैं। नीला, धमनी, मातृका, शृङ्गाटक, अपाङ्ग, स्थपनी, फण, स्तनमूल, अप-लाप, अपस्तम्भ, हृदयनाभि, पार्श्वसन्धि, वृहती, लोहि-ताक्ष और उर्वी—ये सब शिरामर्म हैं। आणि, विटप, कक्षधर, कूर्च, कूर्चशिर, वस्ति, क्षिप्र, अंश, विधुर और उत्क्षेप—ये सब स्नायुमर्म हैं; कटीकतरुण, नितम्ब, अंशफलक और शङ्ख—ये सब अस्थिमर्म हैं। जानु, कूर्पर, सोमन्त, अधिपति, गुल्फ, मणिवन्ध, कुकुन्दा, आवर्त्त और कृकाटिका—ये सब सन्धिमर्म हैं। इन सब मर्मोंके पांच तरहके कार्य हैं,—सद्यःप्राणनाशक, कालान्तरमें प्राणनाशक, विशल्यघ्न, (जिस जगहके कांटेको निकालनेसे मृत्यु होती है) वैकल्यकर, (जिससे अङ्गप्रत्यङ्गकी विकृति हो) और पीड़ाकर। १९ मर्म-सद्यः प्राणनाशक हैं, ३७ कालान्तरमें प्राणनाशक करने-वाले हैं, ३ विशल्यघ्न, ४४ वैकल्यकर और ८ पीड़ा-कर हैं।

हृदय, वस्ति, नाभि, शृङ्गाटक, अधिपति, शङ्ख, शिर और गुद—इन सब स्थानोंमें चोट लगनेसे सद्यः प्राण-नाश होता है। वक्षःमर्म, सीमन्त, तल, क्षिप्र, इन्द्रवस्ति, कटीकतरुण, पार्श्वसन्धि, वृहती और नितम्ब,—इन सब मर्मोंको चेट पहुंचने पर कालान्तरमें प्राणनाश होता है। उत्क्षेप और स्थयनी,—ये दोनों मर्म विशल्यघ्न कहे जाते हैं। लोहिताक्ष, जानु, ऊर्वी, कूर्च, विटप, कूर्पर, कुकुन्दरद्वय, कक्षधरद्वय, विधुरद्वय, कृकाटीकद्वय, अंश, अंशफलक, अपाङ्ग, नीलाद्वय, मन्याद्वय, फणद्वय और आवर्त्तद्वय,—इन सब मर्मोंमें चोट लगनेसे अङ्गवैकल्य प्राप्त होता है। दो गुल्फ, दो मणिबन्ध और कूर्चशिर-चार—ये आठ मर्मविद्ध होनेसे यातना होती है। क्षिप्र-मर्मविद्ध होते ही या कुछ देरके बाद प्राण विनष्ट होता है।

इन सब मर्मोंमें सद्यःप्राणनाशक मर्म आग्नगुणसे गुणवान् है। इस अग्निगुणका ह्रास होनेसे भी मृत्यु हो जाती है। जिन मर्मोंसे कालान्तरमें प्राण नाश होता है, वे सौम्य और अग्नि-गुणसम्पन्न होते हैं। जो सब मर्म विशल्य प्राणनाशक हैं, उनमें वायुका अंश बहुत है। जितने समय तक शल्यका मुंह बन्द रहता है, उतने समय तक वायु भीतर रहता है। शल्य निकालने ही पर

वायु निकल जाती हैं। अतएव जब तक शल्य रहता है तब तक मनुष्य जीवित रहता है। शल्य निकालनेसे ही मृत्यु हो जाती है। जिन मर्मोंका नाम वैकल्य है, वह सौम्य है। इसी सौम्यता तथा शीतलताके कारण ही इनमें प्राणवायु वास करती है। जो सब मर्म पीड़ा देनेवाले हैं, वे अग्नि और वायु दोनों गुणसम्पन्न हैं। क्योंकि वायु और अग्नि दोनों ही यन्त्रणादायक हैं। लोगोंका कहना है, कि पीड़ाकर मर्म केवल अग्नि और वायुगुणविशिष्ट नहीं, वे पाञ्चभौतिक हैं।

कुछ लोगोंके मतसे मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य—ये पांच पदार्थ ही जो मर्ममें मिलते और बढ़ते हैं, वहीं सद्यःप्राणनाशक हो जाता है। उक्त धातुओं का संयोग रहनेसे ही इस मर्ममें चोट करनेसे सद्यः-प्राणनाश होता है। जिस मर्ममें पूर्वोक्त धातुओंमें चार धातुओंका संयोग रहता है, उस मर्ममें आघात लगनेसे कालान्तरमें मृत्यु हो जाती है। जिस मर्ममें तीन धातुओंका संयोग रहता है, उस मर्मसे शल्य निकालते ही मृत्यु होती है। जिस मर्ममें दो धातुओंका संयोग रहता है, उसके आहत होने पर अङ्गकी विकलता होती है और जिस मर्ममें केवल एक ही धातु होती है, उसमें चोट लगनेसे केवल खून निकलता है।

शरीरमें मुख्यतः चार प्रकारकी शिरायें हैं वे सभी मर्मस्थानसे जुड़ी हैं। ये स्नायु, अस्थि, मांस और जोड़ोंको पोषण कर शरीरको पुष्ट करता है। मर्मस्थान-में फोड़ा होने पर वायुवृद्धिके लिये शिरायें आहत स्थानके चारों ओर फैल जाती हैं और इससे शरीरमें पीड़ा अधिक होती है। इस पीड़ासे मनुष्य-शरीर-जर्जर हो नाशको प्राप्त होता है या संज्ञाहीन हो जाता है। अत-एव जिनको शल्य बाहर करना हो, उन्हें मर्मस्थानकी अच्छी तरहसे परीक्षा कर शल्य बाहर करना चाहिये।

जो मर्म सद्यःप्राण हरनेवाले हैं, वे अन्तर्भाग विद्ध होने पर कालान्तरमें प्राणनाशक हैं। अन्तर्भागमें आहत होनेसे शरीरमें विकलता उत्पन्न होती है। जो मर्म विशल्य प्राणहर है, वह अन्तर्भागमें विद्ध हो कर पीड़ा उत्पन्न करता है। सद्यःप्राणहरमें चोट लगनेसे सात दिनमें मृत्यु होती है। जो मर्म कालान्तरमें प्राण हरण करने-वाले हैं, इनमें यदि चोट लगे तो उससे एक पक्षमें या एक मासमें मृत्यु हो जाती है। क्षिप्र नामक मर्ममें चोट लगनेसे कभी कभी अल्प समयमें ही मृत्यु हो जाती है। जो सब मर्म विशल्य प्राणहर या अङ्ग वैकल्यकर हैं, उन-के विशेषरूपसे आहत होने पर मृत्यु होती है।

पैरके अंगूठे और उंगलियोंके बीच क्षिप्र नामक मर्मके आहत होने पर उसी समय मृत्यु हो जाती है। मध्यमा उंगलीके सामने पाद तलके बीचमें तलहृदय मर्ममें चोट लगनेसे अत्यन्त कष्टसे मृत्यु होती है। क्षिप्र मर्मके ऊपरके भागको दोनों बगलमें कूर्च नामक दो मर्मोंका वास है। इसके आहत होने पर चलते समय पैर कांपता रहता है। गुल्फसन्धिके निम्न भागके दो कूर्च शिरा नामक मर्ममें चोट लगनेसे दर्द होता है और सूजन पैदा हो जाती है। पैर और जङ्घाके जोड़में गुल्फ नामक मर्मके आहत होनेसे स्तब्ध और 'खञ्ज' होता है। जङ्घाके मध्यस्थानमें पीछेकी ओर इन्द्रवस्ति नामक मर्म आहत होने पर खून गिर कर मृत्यु हो जाती है। जङ्घा और ऊरुस्थानके जानु नामक मर्म आहत होने पर 'खञ्ज' होता है। जानुके तीन अंगुल ऊपर दोनों बगल आणि नामक दो मर्म हैं, इनके आहत होने पर पैर अत्यन्त फूल जाता और उसकी गति-विधि बन्द हो जाती है। उसके मध्यमें ऊर्वी नामक मर्म आहत होने पर रक्तस्राव होता और पैर सूख जाता है। ऊरुमूलस्थित लोहिताक्ष मर्म आहत होने पर पक्षाघात रोग हो जाता है। वंक्षण और दोनों मुष्क-के बीच विटप नामक मर्म आहत होने पर वीर्यकी कमी हो जाती है। दोनों पैर और दोनों हाथोंमें यही ग्यारह मर्म मौजूद हैं। इनमें विशेषता यह है, कि पैरोंके गुल्फ, जानु और विटप नामक मर्म हाथोंके मणिबन्ध, कूर्पर और कक्षधर नामक तीन मर्मोंके केवल नामान्तर हैं। वङ्क्षण और मुष्कद्वयके बीचके विटप नामक मर्म वक्षः और कक्षाके मध्यस्थित कक्षधर मर्मके समान हैं। यह विद्ध होने पर एक ही तरहका उपद्रव होता है। मणिबन्ध नामक मर्मके आहत होने पर उंगलियां सिकुड़ जाती हैं।

मोटी अंतड़ीसे संलग्न वायु और मल निकलनेवाले पथको गुदमर्म कहते हैं। इसके आहत होने पर अति शीघ्र मृत्यु होती है। कमरमें अत्यल्प रक्तमांससंयुक्त मूत्राशय है इसीको वस्तिमर्म कहते हैं। पथरी (अश्मरी रोग)-की बीमारीके सिवा इसकी दो बगल छेदनेसे जीवन संकटापन्न हो जाता है और मूत्रस्रावी व्रण या फोड़ा हो जानेकी सम्भावना है। यत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर यह फोड़ा आराम हो जाता है। पक्वाशय और आमाशयके बीच नाभी नामक मर्म रहता है। यही शिराओंकी उत्पत्तिका स्थान है। यहां भी आघात लगनेसे शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। दोनों स्तनोंके बीचमें आमाशयका द्वार 'वक्ष' है। यही हृदय नामक मर्म है। यही रज और तमका आश्रयस्थान है। इस जगह भी आघात लगनेसे शीघ्र ही मृत्यु होती है। दोनों स्तनोंके निम्नस्थलमें प्रत्येक ओर दो उंगली परिमाणमें स्तनमूल नामक दो मर्म हैं। वह मर्म कफसे भरे हुए हैं। इससे यहां चोट लगने पर खांसी और दमेकी बीमारी हो कर मृत्यु हो जाती है। दोनों स्तनोंके अग्रभागके ऊपर प्रत्येक ओर दो उंगलीके स्तनरोहित नामक दो मर्म हैं। यह रक्तसे भरे हुए हैं। इसीलिये यहां चोट लगने पर रक्तस्राव होने लगता और खांसी हो जाती और साथ ही मृत्यु भी हो जाती है। अंशकूटके निम्न भागमें दोनों ओर अपलाप नामक दो मर्म हैं। यहां चोट लगने पर क्षतस्थानसे रक्तस्राव होने लगता है। पीछे यह रक्त जब पीवमें परिणत हो जाता है, तब मृत्यु हो जाती है।

वक्षस्थलके दोनों ओर वायुप्रवाहिनी दो नाड़ियां हैं। अपस्तम्भ नामक दो मर्म इसी नाड़ीमें रहते हैं। यह सदा वायुसे परिपूर्ण हैं, इससे आहत होने पर खांसी पैदा हो जाती है और दमेकी बीमारीसे मृत्यु हो जाती है।

पीठ—मेरुदण्डके दोनों ओर श्रोणिस्थानमें जो कटीकतरुण नामक दो मर्म हैं; उन पर आघात लगनेसे रक्तक्षय हो कर पाण्डु, विवर्ण और रूपकी विकृति हो कर मृत्यु होती है। दोनों जांघके बाहरी पार्श्वमें पीठकी रीढ़से थोड़ा नीचे दोनों ओर कुकुन्दर नामके दो मर्म हैं। इसके आहत होने पर शरीरके नीचेके भागमें स्पर्शज्ञान नहीं रहता। इस तरह दोनों जांघ क्रियाहीन हो जाती हैं। श्रोणिमध्यस्थित दोनों अस्थिकाण्डोंके ऊपरी भागमें जो स्थान आशयके आच्छादन तथा अधोभागसे संलग्न है, शरीरके दोनों ओर नितम्ब नामके दोनों मर्मोंमें चोट लगनेसे शरीरका निम्नभाग सूख कर दुर्बल हो जाता है और मृत्यु भी हो जाती है। दोनों जंघोंसे जरा ऊपर तिरछी और दोनों जङ्घ और दोनों बगलके बीचमें, निम्नभागके दोनों ओरसे सटा 'पार्श्वसन्धि' नामक रक्तपूर्ण मर्म विद्ध होने पर मृत्यु हो जाती है। स्तनमूलके ठीक सीधमें पीठ पर वृहती नामक दो मर्म हैं। इनके आहत होने पर अत्यधिक रक्तप्रवाहके कारण मृत्यु हो जाती है। इस जोड़ पर अंशफलक नामके दो मर्म हैं, इनको आघात लगनेसे दोनों बाहु सूख कर क्रियाहीन हो जाते हैं। दोनों बाहुओंके ऊपरी भागमें गरदनके बीचमें कन्धेके जोड़ पर जो पित्तअंश नामक दो मर्म हैं उनके आहत होने पर बाहुकी गतिविधि रुक जाती है।

कन्धेके जोड़के मर्म कण्ठनालीके दोनों ओरकी चार धमनियों, दो नीला, दो मन्यामें बंधे हुए हैं। इनके आहत होनेसे मूकता, शरीरकी विकृति और रसज्ञानका पूर्णतः अभाव हो जाता है। गर्दनके दोनों ओर शिरामातृका नामक मर्मके आहत होने पर उसी समय मृत्यु हो जाती है। मस्तक और गरदनके सन्धिस्थान पर कृकाटिका नामक दो मर्म हैं। इनके आहत होने पर चलमूर्द्धता शिरोरोग होता है। दोनों कानके पार्श्वके नीचेकी ओर विधुर नामके दोनों मर्ममें चोट लगने पर अघ्राणशक्तिका ह्रास होता है। दोनों भौंके भीतर आंखोंके बाहर नीचेकी ओर अपाङ्ग नामके दो मर्म हैं उनके चुटीला होने पर मनुष्य अन्धा हो जाता तथा दृष्टिदोष उत्पन्न होता है। भौंहें के अन्तिम भागके नीचे आवर्त्त नामक मर्मके विद्ध होने पर भी अन्धा और दृष्टिहीनता उत्पन्न होती है। भौंहें के अन्तके भीतरी भागके ऊपर कान और ललाटके बीचमें शङ्ख नामक दो मर्म हैं। इनके आहत होने पर

तत्काल मृत्यु हो जाती है। शङ्खके ऊपरी भागमें केश-मूलोंके अन्त तक उत्क्षेप नामक दोनों मर्म मौजूद हैं। यह जिस पदार्थके द्वारा आहत होते हैं, वह पदार्थ उसके साथ जितनी देर तक वन्द रहेगा, सटा रहेगा तब तक अथवा पक कर उसके आपे आप गिरनेसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है। शल्य निकाल लेने पर उसकी मृत्यु हो जाती है। भौंहोंकेबोचमें स्थपनी नामक मर्म मौजूद हैं। इसके बिद्ध होनेका फल पूर्वोक्त मर्मविद्धकी तरह फल होता है। मस्तककी अस्थिके पांच सन्धिस्थान सीमन्त नामसे प्रसिद्ध हैं। यह स्थान विद्ध होने पर उन्माद, भय और चित्तनाश हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

आंख, कान, नाक और जोभ—ये चार इन्द्रियां जिन शिराओं द्वारा जुड़ी हुई हैं अर्थात् गन्धवाही, शब्द-वाही, रसवाहो और रूपवाहो जितनो शिराये हैं, उन सबके जोड़को श्रृङ्गाटक मर्म कहते हैं। श्रृङ्गाटक चार हैं, इसके छिद जाने पर शीघ्र मृत्यु हो जाती है। मस्तकके अभ्यन्तर भीतरी भागमें शिराओंकी जोड़वाली जगहसे बाहर रोमका आवर्त्त है। वहांका अधिपति नामक मर्म आहत हो, तो शीघ्र हो मृत्यु हो जातो है।

ऊर्वीद्वय, सब शिरायें, विटप, कक्षपार्श्व और दोनों स्तनोंके ऊपर ओरके मूल आदि स्थानोंमें चीर-फाड़ करते समय चतुर डाकृरको सदा सावधान रह कर काम करना चाहिये। मर्मरक्षाके लिये एक उंगलीका अन्तर दे कर शस्त्रका प्रयोग करना चाहिये। मणिवन्ध और गुल्फस्थानमें दो उंगलो और घुटने तथा पूठों पर तीन उंगलीका अन्तर देना उचित है। हृदय, वस्ति, कुर्च्चा, स्तन, नाभि और मूर्द्धा—इन सब स्थानोंमें चार उंगलीका अन्तर, गलेमें और कण्ठनालीके दोनों ओर शस्त्रपात करनेमें पांच उंगलीका अन्तर दे कर शस्त्र प्रयोग करना चाहिये।

बाकी मर्मस्थानोंकी रक्षाके लिये आध उंगलीका अन्तर दे कर चीर-फाड़ करना उचित है। मर्मज्ञ व्यक्तियोंने परीक्षा द्वारा स्थिर किया है, कि शस्त्रक्रियामें मर्मों की रक्षाके लिये उक्त परिणामसे जगह छोड़नी चाहिये। मर्मके निकटका स्थान भी छिद जानेसे मर्म नाश होता है। अतएव शस्त्रप्रयोग करते समय मर्मस्थानकी रक्षा करना उचित है। हाथ, पैर और शिराओंके कट जाने पर वे छोटे हो जाते हैं। उस स्थानसे रक्तस्राव होता रहता है। इससे डाल पत्तियोंके विना जीवित मनुष्य ढूंढ वृक्षको तरह जोवन धारण करता है, मर नहीं जाता। क्षिप्र और तल नामक मर्म आहत होने पर अत्यन्त रक्तस्राव होता और वायुनिवृत्तिवशात् पेटमें पीड़ा उत्पन्न होता है।

मर्मस्थानके छिद जाने पर यद्यपि मनुष्य चिकित्सा-बलसे जीवित रह सकता है, किन्तु उसके अङ्गकी पीड़ा दूर नहीं होती।

मर्मस्थानमें सोम, वायु, तेज, सत्त्व, रजः, तमः और भूतात्म सभी वास करते हैं। इसीलिये मर्म छिद जाने पर मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। जो सब मर्म तुरन्त प्राण नाश करनेवाले हैं उनके आहत होने पर इन्द्रियज्ञान, मनोबुद्धिकी विपरीतता और कई तरहकी तीव्रतर वेदना उपस्थित होती है। जो सब मर्म काला-न्तरमें प्राणहर्त्ता हैं, उन सबोंके छिद जाने पर क्रमशः धातुक्षय होता रहता है और इससे तरह तरहकी वेदना उपस्थित होती और प्राणनाश हो जाता है। जिन मर्मोंके आहत होने पर शारीरिक विकलता उत्पन्न होती है, सुनिपुण वैद्यों द्वारा उसकी यथावत् चिकित्सा होने पर केवल अङ्गहीन हो कर रोगी जी जाता है। जिन सब मर्मस्थानोंसे शल्य निकालनेसे मृत्यु हो जातो है, यदि किसी बुरे वैद्यका पाला पड़ गया तो अत्यन्त पीड़ा भोग कर विकलाङ्गसे जीवन-धारण करना पड़ता है। छिद जाना, भेद होना, चोट लग जाना, जल जाना या चीर देना चाहे जिस तरह ही क्यों न हो मर्म-आघात सभी समान है।

अधिक हो या कम हो हो, मर्म आहत होने पर कई तरहके दर्द पैदा हो जाते हैं, प्रायः अङ्गकी विकलता तथा मृत्यु उपस्थित हो जाती है। मर्म आहत होने पर शरीरमें जो सब विकार उत्पन्न होते हैं, वे प्रायः कभी कष्टसाध्य हैं। अत्यन्त यत्नके साथ चिकित्सा करने पर मनुष्य आरोग्य होता है।

(सुश्रुत शारीरस्थान ६ अ०)

इन सब मर्मोंका परिचय सरलतापूर्वक बता देनेके

लिये नीचे एक फिहरिस्त दी गई है। इसमें मर्मका नाम, ठहरनेका स्थान, आहत होने पर कैसा फल होता है। यह सहज ही समझमें आ जायेगा।

मर्मस्थानकी फिहरिस्त।

मर्मका नाम	ठहरनेका स्थान	आहतका फल
१। क्षिप्र स्नायुमर्म,	वृद्धांगुलि और तर्जनी-के बीच	आक्षेपक-उपद्रवसे मृत्यु होती है।
२। तलहृदय मांसमर्म,	मध्यमा उंगलीके मूलसे सीधा पाद तलेका मध्यस्थल,	पैरके रोग से मृत्यु।
३। कूर्च स्नायुमर्म,	क्षिप्रके ऊपरी भागके दोनों पार्श्वों में,	चलते समय पैर कांपता है।
४। कूर्चशिर-स्नायुमर्म,	गुल्फसन्धिके निम्नभागके दोनों ओर,	रोग होता और फूल जाता है।
५। गुल्फसन्धि-मर्म,	पैर और जंघेका जोड़,	पद स्तब्ध तथा अकर्मण्य होता है।
६। इन्द्रवस्ति सन्धिमर्म,	प्रत्येक पार्श्व और जङ्घाका जोड़	रक्तप्रवाहसे ही मृत्यु हो जाती है।
७। घुटनेका जोड़ सन्धिमर्म,	जङ्घा और ऊरुका सन्धिस्थान,	अकर्मण्य।
८। आणिस्नायु-मर्म,	घुटनेके ऊपर दोनों ओर तीन उंगल प्रमाण,	फूल जाता और चलनेकी शक्ति नहीं रहती।
९। ऊर्व्वी शिरामर्म,	ऊरुदेशका मध्यस्थल,	रक्त गिर कर पैर पतला हो जाता है।
१०। लोहिताक्ष शिरामर्म,	उर्वीके ऊपर वैजाके नीचे ऊपरके मूलमें,	शोणित क्षय हो कर लकवा, (पक्षाघात) हो जाता है।
११। विटप शिरामर्म,	वैजा और अण्डकोषके बीचमें,	वीर्यकी कमी होती है।
१२। गुदमांस-मर्म,	मोटी अंतड़ीसे सटी वायु और मल त्याग करने-का मार्ग,	तुरत मृत्यु होती है।
१३। वस्ति स्नायुमर्म,	कमरके भीतर अल्पमांस तथा रक्त-परिपूरित मूत्राशय, या वस्ति,	पथरी रोगके सिवा चीर-फाड़ करने पर मनुष्य बच नहीं सकता, एक ओर यदि भेद किया जाय तो मूत्रस्रावी फोड़ा उत्पन्न होता है।
१४। नाभि शिरामर्म,	पक्वाशय और आमाशयके बीचवाले सिराका मूल,	तुरत मृत्यु।
१५। हृदय शिरामर्म,	स्तनोंके बीचमें आमाशयका द्वार,	तुरत मृत्यु।
१६। स्तनमूल शिरामर्म,	प्रत्येक स्तनके अधोभागके दोनों पार्श्वमें,	कफ सञ्चित होनेकी वजह खांसी और दमेसे मृत्यु।
१७। स्तनरोहित मांसमर्म,	स्तनके अग्र-भागके दोनों ओर,	रक्तसञ्चयसे खांसी और दमेसे मृत्यु।
१८। अपलाप शिरामर्म,	अंसकूटके नीचे और बगलके ऊपरी भागमें,	रक्त पीव अवस्था को प्राप्त हो कर मृत्यु होती है।

	मर्मका नाम	ठहरनेका स्थान	आहतका फल
१९।	अपस्तम्भ शिरामर्म,	वक्षःस्थलके दोनों ओर वायु प्रवाहिनी नाड़ी,	वायुके कारण खांसी और दमेसे मृत्यु।
२०।	कटीकतरुण अस्थिमर्म,	दोनों ओरके श्रोणिस्थानके दोनों अस्थियों-का सटा हुआ स्थान,	पाण्डु और विरूप हो कर मृत्यु।
२१।	कुकुन्दर सन्धिमर्म,	मेरुदण्डके दोनों ओर जंघाकी बगल और बाहरी भागसे थोड़ा नीचे,	शरीरका निम्नांश क्रियाहीन होता।
२२।	नितम्ब (चूतड़) अस्थिमर्म,	श्रोणिकाण्डके ऊपर पार्श्वद्वय-का ऊपर आव-रणसे सटा हुआ स्थान,	शरीरका निम्न भाग सूख जाता और दुर्वलतासे मृत्यु।
२३।	पार्श्वसन्धि शिरामर्म,	निम्नभागमें बगल-के भीतर संलग्न जंघा और बगल-के बीच जंघासे तिरछे ऊपरकी ओर,	रक्तपूर्ण हो कर मृत्यु होती है।
२४।	वृहती शिरामर्म,	रीढ़के दोनों ओर-के स्तन मूलकी सीध पर,	अत्यन्त रक्त-प्रवाहके कारण मृत्यु होती है।
२५।	अंशफलक शिरामर्म,	पीठके रीढ़के दोनों ओर पृष्ठ के ऊपर भाग-में त्रिकस्थानसे सटा हुआ स्थान,	दोनों बाहु अकर्मण्य और क्रियाहीन हो जाती और सूख जाती है।
२६।	अंश, स्नायुमर्म,	दोनों बाहुओंके ऊपर गरदनके दोनों ओर कंधे-से सटा हुआ स्थान,	दोनों बाहु क्रियाहीन हो जाती है।
२७।	नीला और मन्या,	कण्ठनालीके दोनों बगलमें चार धमनीको दो नीला और दो मन्या,	मूकता, स्वरकी विकृति और रस ग्रहण करनेमें प्रवीणता।
२८।	शिरा मातृका,	गरदनके दोनों ओर दो दो चार शिरायें,	तुरत मृत्यु होती है।
२९।	कृकाटिका,	मस्तक और गरदनके सन्धि-स्थलमें दोनों ओर,	मस्तक हिलता है।
३०।	विधुर,	कानके पीछे नीचे भागमें,	बहरापन।
३१।	फणा,	नाकके गह्वरमें सटा हुआ स्थान,	आघ्राण-शक्ति नष्ट होती है।
३२।	अपाङ्गद्वय,	भौंहेंके नीचे नेत्र-से बाहर,	अन्धा होता या दृष्टिदोष हो जाता है।
३३।	दोनों आवर्त्त,	दोनों भौंहेंके ऊपर और नीचे,	अन्धा होता या दृष्टिदोष हो जाता है।
३४।	दोनों शङ्ख,	भौंहेंके ऊपरी भागमें कर्ण और ललाटके बीच,	तुरत मृत्यु।
३५।	दोनों उत्क्षेप,	दोनों शङ्खके ऊपरी केशके प्रान्त भागमें,	छिदे हुए शल्य (कांटे)-के निकलनेसे मृत्यु हो जाती है, किन्तु वही स्थान पक जाय और पीव-के साथ निकल आय तो मनुष्य नहीं मरता।

मर्मका नाम	ठहरनेका स्थान	आहतका फल
३६। दोनों स्थपनी,	दोनों भौहेंके वीचमें,	ऊपर जैसा फल होता है।
३७। पांचों सीमन्त,	मस्तक विभाजिनी ५ सन्धि स्थान,	उन्माद, भय या चित्तनाश द्वारा मृत्यु।
३८। चार शृङ्गाटक.	नेत्र, कर्ण, नाक और सन्तपर्णी शिराओंका संगम-स्थान,	तुरत मृत्यु।
३६। अधिपति.	मस्तकके भीतर ऊपरकी शिरा सम्मिलित स्थान या वाहरके रोमावर्त्त स्थानमें।	तुरत मृत्यु।

आज कल तत्त्वविदोंकी इन सब मर्मोंमें एक तरहकी राय नहीं है। कहीं सम्पूर्ण रूपसे और कहीं कुछ सामान्यता हो जाती है। किन्तु शिरामर्म प्रायः ही समान है।

भावप्रकाश तथा चरकमें भी मर्मका विशेष विवरण लिखा है। वे इसी वातसे मिलती जुलती हैं, इसीसे इसका पुनरुल्लेख करना वृथा है। मर्मका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

"परक्षेत्रे गां चरन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित्।
न संवत्सेत् सूतके च न कं वै मर्मणि स्पृशेत्॥"
(कूर्मपुराण उप० १५ अ०)

मर्मकील (सं० पु०) मर्म कीलति विध्यतीति कील-क यद्वा मर्मणि गूढ़ विषये कीलशंकुरिव। भर्त्ता, स्वामी।

मर्मग (सं० त्रि०) मर्म तत्त्वं गच्छतीति मर्म ड। मर्मज्ञ।

मर्मघ्न (सं० त्रि०) मर्म हन्ति हन टक। मर्मघातक।

मर्मचर (सं० पु०) हृदय।

मर्मच्छिद् (सं० त्रि०) मर्म छिनत्ति छिद् क्विप्। मर्मच्छेदकारक, मम भेदनेवाला।

मर्मच्छेदक (सं० त्रि०) मर्मभेदक, मर्म भेदनेवाला।

मर्मच्छेदन (सं० पु०) १ प्राणघातन, जान लेना। २ अधिक कष्ट देना, वहुत सताना।

मर्मज्ञ (सं० त्रि०) मर्म तत्त्वं जानातीति ज्ञा-क। १ मर्मविद्, किसी वातका मर्म या गूढ़ रहस्य जाननेवाला। २ तत्त्वज्ञ, भेदकी वात जाननेवाला।

"तेषामापततां वीर शीघ्रं पूर्वमथो दृढम्।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद् व्रातान्मर्मज्ञो मर्मवेदिभिः॥"
(भारत ७।३५।२०)

मर्मत्र (सं० क्ली०) हृदयाच्छादक वर्मविशेष, पित्तपापड़ा।

मर्मधाम (सं० क्ली०) मर्मस्थान।

मर्मन (सं० क्ली०) मर्म देखो।

मर्मपारग (सं० पु०) मर्मपारं गच्छतीति गम-ड। मर्म या तत्त्व जाननेवाला, मर्मज्ञ।

मर्मपीड़ा (सं० स्त्री०) मर्मणः पीड़ा। मनःपीड़ा, मनको पहुंचानेवाला क्लेश।

मर्मप्रहार (सं० पु०) मर्मस्थान पर होनेवाला आघात, मर्मस्थानकी चोट। वैद्यकमें इसे व्रणका एक भेद माना है। इसमें रोगी गिरता पड़ता, अटपट वकता, घवराता और मूर्च्छित होता है। उसके शरीरमें गरमी छटकती है और इन्द्रियां ढ़ीली पड़ जाती हैं।

मर्मभिद् (सं० त्रि०) मर्मच्छिद, मर्मभेदी।

मर्मभेद (सं० पु०) मर्मणः भेदः। मर्मच्छेद, मम।

मर्मभेदक (सं० त्रि०) १ मर्म छेदनेवाला। २ हृदयविदारक, वहुत अधिक हार्दिक कष्ट पहुंचानेवाला।

मर्मभेदन (सं० पु०) १ ममभेदक अस्त्र, मर्मको भेदनेवाला अस्त्र। (त्रि०) २ मर्मभेदकारी, मर्मको भेद करनेवाला।

मर्मभेदिन् (सं० त्रि०) मर्म भिनत्ति भिद् णिनि। मर्मभेदकारी, हृदय पर आघात पहुंचानेवाला।

मर्मभेदी (हिं० वि०) ममभेदिन् देखो।

मर्ममय (सं० त्रि०) मर्म-स्वरूपे मयट्। १ मर्मस्वरूप, मर्मके जैसा। २ गुप्त विषय सम्वन्धीय, रहस्यपूर्ण।

मर्मर (सं० पु०) १ मरमर देखो। २ कपड़े या पत्तकी अव्यक्त ध्वनि। (त्रि०) ३ मर्मरध्वनि करनेवाला।

मर्मर पर्वत—मध्यप्रदेशके जव्वलपुर जिलेमें विन्ध्यगिरिकी एक शाखा। यह जव्वलपुरसे ६ कोस दक्षिण-पश्चिम और मीरगञ्ज रेलवे ष्टेशनसे ३ मील पर नर्मदा नदीके किनारे अवस्थित है। मर्मरपर्वत मेगनेसिया नामक खनिज पदार्थयुक्त चूनेके पत्थरसे भरा हुआ है। यह वीस फुट ऊंचा है। इसका प्राकृतिक दृश्य वड़ा ही मनोरम है।

शुक्लपक्षकी रात्रिको चांदनी इस पर्वतके श्वेत शरीर पर पड़ कर इसकी शोभाको और भी बढ़ाती है। उस तुषार-वृत्त धवलवक्ष, उस नीलिममयी वनमाला, उस प्रशान्त-वाहिनी नर्मदाकी रजत-धारा पर चन्द्रकी चन्द्रिकाके पतित होनेसे एक अपूर्व मनोमुग्धकर सौन्दर्य दिखाई देता है। प्रकृतिकी गोद पर इस शान्तिमयी तथा नयनाभिराम शोभाको देखनेके लिये बहुतेरे मनुष्य जब्बलपुर जाते हैं। अनार्यजातिकी रङ्गभूमि इस भारत भूमिमें जितनी तरहकी कृत्रिम या अकृत्रिम शोभनीय कीर्त्ति स्थापित हैं, उनमें नर्मदातीरवर्त्ती इस मर्मर पर्वतका स्वाभाविक सौन्दर्य श्रेष्ठतम है।

कहा गया है, कि देवराज इन्द्रने अपने वज्र द्वारा इस मर्मरपर्वतको विदीर्ण कर स्रोतस्विनी नर्मदा नदीकी रुद्ध-गतिको मुक्त किया है। आज भी ऐरावतका पदचिह्न वहांके लोगोंको दिखाई देता है। बहुतेरे लोग उस स्थानको इन्द्रकी विचरण-भूमि समझ उनकी पूजा करते हैं। उक्त पहाड़की चोटी पर एक शिव-भगवान्का मन्दिर है। इस मन्दिरमें अनेक देवदेवीकी प्रतिमूर्त्ति थी, सुना जाता है, कि कितने हो मुसलमानोंने उन्हें नष्ट कर दिया है। कहते हैं, कि औरङ्गजेबके संग्रामपुर रहते समय उसकी पिशाचिनीने ही इसे नष्ट भ्रष्ट किया था।

मर्मर-प्रस्तर—स्वनामख्यात मर्मर पत्थर (*Marble*)। पदार्थविद्व पण्डितोंने इसे एक तरहके दानेदार चूनेका पत्थर वतलाया है। कालक्रमानुसार और जलवायुके गुणसे मर्मर पत्थर अति कठिन तथा दृढ़ होता है। फिर भी शीघ्र ही इस पर पालिश की जा सकती है। एक मर्मर गाढ़े काले रंगका और दूसरा तुषारकी तरह सादा होता है। सिवा इनके सब्ज़ा (हरा), धूसर, लाल, नीला और पीला मर्मर भी दिखाई देता हैं।

चीन, भारतवर्ष और ब्रह्मदेश आदि देशोंमें मर्मर पत्थर मिलता है। चीनदेशका एक फुट काला चौकोन मर्मर पत्थर भारत, अमेरिका आदि देशोंमें भेजा जाता है। इसके द्वारा लोग अपने घरोंको सजाया करते हैं। केण्टन-नगरमें लाल रङ्गका मर्मर पत्थर मिलता है। इससे टेबिल और टूल तय्यार होता है। मद्रास प्रेसिडेन्सीका मर्मर पत्थर बहुत उत्तम तथा दुष्प्राप्य है। सन् १८५१ ई०में एक प्रदर्शिनी हुई थी, उसमें यह ममर पत्थर नमूनाके लिये भेजा गया था। उस नमूनेको देखनेसे यह मालूम होता है, कि इससे मूल्यवान् मूर्त्ति भी बनाई जा सकती है। जब्बलपुरमें सादा मर्मर पत्थर बहुतायतसे मिलता है, वहां इसका चूना बनाया जाता तथा मकानोंमें लगानेके काममें आता है। मरमर देखो।

मर्मरी (सं० स्त्री०) मर्मर गौरादित्वात् ङीप्। १ पीतदारु, दारुहरिद्रा। २ सरलकाष्ठ, चोड़ी लकड़ी। ३ कर्णस्थित शिराविशेष, कानमेंकी रक्तकी छोटी नाड़ी।

मर्मरीक (सं० पु०) म्रियत इवासाविति (फर्फरीकादयश्च। उण् ४।२०) इति ईकन् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। दीन, दुखिया।

मर्मवचन (सं० पु०) मर्मभेदी बात, वह बात जिससे सुननेवालेको आन्तरिक कष्ट पहुंचे।

मर्मवाक्य (सं० पु०) रहस्यकी बात, भेदकी या गूढ़ बात।

मर्मविद्व (सं० त्रि०) मर्म वेत्तीति विद-क्विप्। मर्मज्ञ, मर्मको जाननेवाला। पर्याय—कार्पटिक, मर्मिक मर्मवेदी।

"वक्रनासस्ततोऽवादीद्द्वयोऽयं परमर्म्मवित्।"
(कथास० ६२।६०)

मर्मविदारण (सं० पु०) १ मर्मच्छेद। (त्रि०) मर्मच्छेदकारक।

मर्मविभेदिन् (सं० त्रि०) मर्म वि-भिद्-णिनि। मर्मभेदकारक।

मर्मवेदिन् (सं० पु०) मर्म वेत्तीति विद् णिनि। मर्मविद्, मर्मज्ञ।

मर्मवेधिन् (सं० त्रि०) मर्म विध्यति विध-णिनि। मर्मवेधकारक, मर्मवेधक।

मर्मवेदी (सं० त्रि०) मर्मवेदिन देखो।

मर्मवेधी (सं० त्रि०) मर्मवेधिन् देखो।

मर्मसंरोध (सं० पु०) मर्मव्यथा।

मर्मस्थल (सं० पु०) मर्मस्थान। मर्म देखो।

मर्मस्थान (सं० पु०) मर्मस्थल। मर्म देखो।

मर्मस्पृश् (सं० त्रि०) मर्म स्पर्शतीति स्पृश्-क्विन्। स्पृशोऽनुदके क्विन्। पा ३।२।५८) इति क्विन्। १ मर्मपीड़क। पर्याय—

अरुन्तुद, व्यथक। २ हृदयको स्पर्श करनेवाला, हृदय पर प्रभाव डालनेवाला।

मर्मातिग (सं० त्रि०) मर्म अति-गम-ड। मर्मभेदी, हृदय पर आघात पहुंचानेवाला।

मर्मान्तिक (सं० पु०) १ मर्म पर्यन्त। २ मर्मस्पृशो क्लेश, मनमें चुभनेवाला दुःख।

मर्मान्वेषण (सं० क्ली०) तत्त्वानुसन्धान, किसी बातका तत्त्व या गूढ़ रहस्य जानना।

मर्मान्वेषिन् (सं० त्रि०) तत्त्वानुसन्धानकारी, किसी बातका तत्त्व या गूढ़ रहस्य जाननेवाला।

मर्मावरण (सं० क्ली०) वर्म-चर्म।

मर्माविध् (सं० त्रि०) मर्म विध्यतीति मर्म-व्यध् क्विप। मर्मज्ञ, सन्धिस्थान वेध-कर्त्ता।

मर्माविधद्ध (सं० त्रि०) मर्माविध् देखो।

मर्मिक (सं० त्रि०) मर्म वेत्तीति मर्म-ठक्। मर्मविद्, मर्मज्ञ।

मर्मी (सं० त्रि०) रहस्य जाननेवाला, तत्त्वज्ञ।

मर्मृजेन्य (सं० त्रि०) सब मनुष्योंसे परिचरणीय।

मर्य्य (सं० पु०) मृ-यत्। मनुष्य।

"के मे मर्यकं वि यवन्त" (ऋक् पा ५।२।५)

'मर्यकं मर्त्त्यसङ्घं राष्ट्र' (सायण)

मर्य्यक (सं० पु०) मर्त्त्यसङ्घ, मर्त्त्यसमूह, जहां अनेक मनुष्य इकट्ठे हों।

मर्य्यश्री (सं० त्रि०) मनुष्य कर्त्तृक भजनीय, मनुष्य द्वारा भजनेयोग्य।

मर्य्या (सं० स्त्री०) म्रियतेऽवशिष्यतेऽत्र मृ-यत्, टाप्। सीमा।

मर्य्याद (हिं० स्त्री०) १ मर्य्यादा देखो। २ रीति, प्रथा। ३ चाल। ४ विवाहमें दिया जानेवाला एक भोज। कन्या पक्षवाले वर पक्षवालोंको यह भोज देते हैं। इसको बड़हार वा वढ़ार भी कहते हैं।

मर्य्यादक (सं० त्रि०) मर्य्यादा-कर्त्ता, माननीय।

मर्य्यादा (सं० स्त्री०) मर्य्या-दा-अङ्। १ न्यायपथस्थिति, धारणा।

"मर्य्यादायां स्थितो धर्म्मो शमश्चैवास्य लक्षणम्।"

(भारत १५।२२।२५)

पर्याय---संस्था, धारणा, स्थिति।

२ सीमा, हद। ३ कूल, नदीका किनारा। ४ देवातिथिके पुत्र। (भारत १।९५।२३) ५ नियम। ६ सदाचार। ७ मान, सम्भ्रम, गौरव, सम्मान। ८ करार, दो वा दोसे अधिक मनुष्योंके वीचकी प्रतिज्ञा। ९ धर्म।

मर्य्यादागिरि (सं० पु०) मर्य्यादा सीमा तज्ज्ञापको गिरिः। कुलाचल, वर्षसीमा पर्वत। 'उत्तरोत्तरेण इलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्य्यादागिरयः प्रागायताः' (भागवत ५।१६ अ०)

इलावृतवर्षके उत्तरी भागमें उत्तरादि दिक्क्रमसे नील-गिरि, श्वेतगिरि और शृङ्गवान्‌गिरि, यह तीन पर्वत यथाक्रम रम्यकवर्ष, हिरण्मय वर्ष और कुरुवर्षके सीमा-पर्वतस्वरूप दण्डायमान हैं। उक्त तीनों पर्वत पूर्वकी ओर विस्तृत हैं। हरएककी ऊंचाई दश हजार योजन है।

मर्य्यादाचल (सं० पु०) मर्य्यादा-पर्वत, सीमा-पर्वत।

मर्य्यादान्वित (सं० त्रि०) मर्य्यादायुक्त, सम्भ्रान्त।

मर्य्यादावत् (सं० त्रि०) मर्य्यादा अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। मर्य्यादान्वित, माननीय।

मर्य्यादावन्ध (सं० पु०) १ अधिकारकी रक्षा। २ सम्मान-के साथ आवद्ध करना। ३ नजरबंदो।

Acc NO - 217

षोड़श भाग सम्पूर्ण

